श्री धन्वन्तरयेनमः।

निखिलभारतवर्षीय

आयुर्वेदमहामण्डल

का

[रजतजयन्ती ग्रन्थ]

दिसम्बर सन् १९३६.

द्वितीय भाग

सम्पादक—

रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह, प्राणाचार्य,
भिषङ्मणि, सुपरिन्टेडेन्ट आयुर्वेदिक फार्मेसी
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

भू० पू० अध्यक्ष—चतुर्विंशतितम निखिलभारतवर्षीय
आयुर्वेदमहामण्डल।
प्रधान मंत्री—नि० भा० आ० महामंडल।

[मूल्य १०)

प्रथम संस्करण]   सन् १९३६ ई०

प्रकाशक—
प्रधान मंत्री, निखिल भारतीय
आयुर्वेदमहामण्डल, बनारस ।

aidyaraj
ational Ayurvedic Library
anjali Bagh, New Delhi
al No.........................
k No.........................
No.........................

Lb9N07
152N32;4

002795

206

मुद्रक—
एन० पी० भारती
महाशक्ति-प्रेस, बुलानाला
बनारस सिटी ।

प्राक्कथन

जगन्नियन्ता जगदीश्वर की असीम कृपा का यह फल है कि निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामंडल और विद्यापीठ के रजतजयन्ती ग्रन्थ का द्वितीय भाग प्रकाशित करने का सौभाग्य भी मुझे ही प्राप्त हुआ है। यद्यपि प्रथम भाग प्रकाशित हुए अभी एक ही वर्ष हुआ है; किन्तु प्रथम भाग के संकलन-समय में ही इतना विषय अवशिष्ट रह गया था कि द्वितीय भाग का शीघ्र ही प्रकाशन करना अनिवार्य समझा गया।

महामंडल के गुणज्ञ सदस्यों ने इसके व्यय के लिये सम्मति प्रदान कर इस ऐतिहासिक कार्य को समाप्त करने में परम सहायता की है, अतः उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मैंने इस भाग के सङ्कलन में प्रान्तीय और अवशिष्ट वैद्य सम्मेलन के सभापतियों और मंत्रियों के चित्र-चरित्र के अतिरिक्त, प्राप्य प्रसिद्ध स्वर्गीय वैद्यों के एवं प्रसिद्ध पुस्तक लेखक तथा पत्र-सम्पादकों के चित्र-चरित्र के प्रकाशन करने का प्रयत्न भी किया है। यह प्रयत्न कितना सफल हुआ है यह तो विज्ञ पाठक ही समझ सकेंगे; किन्तु मुझे यह खेद अवश्य है कि जिनका मैंने चित्र-चरित्र प्रकाशित करने का यत्न किया, उनकी ओर से मुझे पूर्ण सहायता नहीं मिली। अनेकानेक पत्र लिखने पर भी कई स्थल से तो उत्तर से भी वंचित रहा। इसलिये मैं अपनी इच्छा के अनुसार क्रमबद्ध, यथेच्छसुन्दर सुश्रृंखलित स्वरूप में इसे प्रकाशित न कर सका। एक सज्जन ने तो अपना भाषण पुस्तक के समाप्ति काल के समय साग्रह प्रकाशनार्थ भेजा है; ऐसी दशा में विषयों का इतस्ततः होना अवश्यम्भावी है।

यद्यपि निरंतर प्रयत्न करने से काश्मीर से लंका (सीलोन) और गुजरात से उड़ीसा तक के वैद्यों का परिचय इसमें समावेश करने की आयोजना की है; पर बहुत-सी उपयोगी सामग्री के उपलब्ध न होने से अपूर्णता रह गई है। आशा है, भविष्य के प्रकाशक इस काम को पूरा कर आयुर्वेद महामंडल के इतिहास-भंडार को पूरा करेंगे।

मैंने प्रान्तीय सरकार, म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के पत्र व्यवहार भी इस आशा से प्रकाशित कर दिये हैं कि समय आने पर अपने-अपने प्रान्तों में वैद्यगण इसका सदुपयोग कर लाभ उठा सकें।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ अनेक वर्षों से पाठ्यप्रणाली प्रस्तुत कर आयुर्वेद के संस्कृत पाठ्यक्रम का प्रचार कर रही है, तथापि अपना अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय न होने के कारण जो त्रुटियें हो रही हैं उसका वैद्यसमाज अनुभव कर रहा है, इसलिये मैंने प्रान्तीय सरकारों की सहायता से चलने वाले विद्यालयों की पाठ्यप्रणालियाँ भी एकत्र प्रकाशित कर दी हैं कि उनका तुलनात्मक अध्ययन कर आयुर्वेद महामंडल के सदस्य एक ऐसी सर्वोपयोगी पाठ्य विधि निर्माण करें कि जिसको सारे देश के विद्यालय अपना कर एक ही प्रकार की पदवी प्रदान करने की समुचित व्यवस्था कर समस्त आयुर्वेद शिक्षा प्रणाली को एक सूत्र में बाँध सकें।

इस समय देश में अनेक प्रकार की पदवियों के प्रदान करने की प्रणाली से आयुर्वेद विद्या को बड़ी हानि हो रही है और एक ऐसी अव्यवस्था उपस्थित हो गई है कि जिसका परिहार परमावश्यक है।

आजकल कई एक प्रान्तों में वैद्यों का सरकार की तरफ से रजिस्ट्रेशन होने लगा है इसलिये वैद्य समाज की जानकारी के लिये संयुक्तप्रान्त के रजिस्ट्रेशन के नियम भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर दिये हैं ।

मैं प्रयत्न यह कर रहा था कि देश के सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्यालय, धर्मार्थ औषधालय, आयुर्वेदिक ट्रस्ट, और जंगलात से प्राप्त होनेवाली वनस्पतियों का विवरण एवं हस्तलिखित पुस्तकों की सूची भी इस भाग में संकलित की जावे; किन्तु छोटा टाइप देने पर भी एक सौ से अधिक फार्म और चित्र अब तक छप चुके हैं, ऐसी दशा में इस पुस्तक की अत्यधिक कायावृद्धि स्वीकृत धन और समय की सीमा के अन्तर्गत समाविष्ट करना सर्वथा असम्भव समझ कर अगले भाग में प्रकाशित करने की असम्भावित आशालता के उद्गम को अभिलाषा मात्र की प्रेरणा से प्रेरित होकर संग्रहीत सामग्री हृदय सन्निहित रख दी गई है । किसी ने सच कहा है "उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" ।

इस भाग के संकलन में सर्वतोऽधिक सहायता बम्बई निवासी श्रद्धेय आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी महाराज से प्राप्त हुई है। अतः मैं आपको इस असीम कृपा के लिये हृदय से आभारी हूँ । आप ही के उत्साहवर्धन और पथप्रदर्शन का यह फल है कि यह भाग इस सजधज के साथ इतनी शीघ्रता से अत्यल्प समय में प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

अनेक मित्रों ने इस संग्रह के प्रकाशित करने में अनेकानेक प्रकार की सहायता प्रदान की है, उनको भी मैं हार्दिक धन्यवाद समर्पण करता हूँ ।

यद्यपि प्रूफ संशोधन में मेरे सहयोगियों ने अतिशय प्रयत्न किया है; तथापि सूक्ष्म अक्षर और शीघ्रता के कारण अनेकानेक त्रुटियें रह गई हैं । आशा है, विज्ञ पाठकवृन्द "अशुद्धं शोधयेत् विद्वान्" की कहावत के अनुसार सुधार कर अभिप्रेत अर्थ निकालने की कृपा करेंगे । विज्ञेषु किमधिकम् । पुनः कृतज्ञता प्रकाशनार्थं संस्कृत पद्य नीचे लिखकर सहयोगी मित्रों को हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हुआ विरति ग्रहण करता हूँ ।

कार्यैरनेकैर्न यथाक्रमेण दृष्टं मयातः सुलभोऽत्र दोषः ।
तदर्थमाप्तैर्गुणपक्षपातैः क्षन्तव्य एषो भिषजां वरेण्यैः ॥
श्रीमन्मुकुन्दो बुधभैरवाख्यो नागेश्वरः श्री हनुमत्प्रसादः ।
राजेश्वरो वैद्यवरोऽपि दुर्गादत्तश्च धन्याः सहयोगिनोऽत्र ॥
एषां सुश्रमशीलानां यादवाचार्यकस्य च ।
ये भद्राश्चित्रदातारस्तेषाञ्चाभारिणो वयम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विदुषां विनयावनत
क. प्रतापसिंह
बनारस

प्रताप-प्रासाद
१३ दिसम्बर १९३६.

विषयानुक्रमणिका

[विषय-सूची निर्माण के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि अत्यधिक चेष्टा करने पर भी समय पर लोगों ने भाषण, जीवन चरित्र या अन्य आवश्यक सामग्री नहीं भेजी, जिसका परिणाम यह हुआ कि क्रम नितान्त असंगत हो गया और यथा स्थान सामग्री का उपयोग न हो सका। अक्टूबर मास के प्रथम सप्ताह में ग्रन्थ का मुद्रण कार्य आरम्भ हुआ था और अति मंथर गति से कार्य होता था, किन्तु इस पर भी बीच-बीच में आवश्यक सामग्री का इंतजार कर लिया था; अन्त में नवम्बर के द्वितीय सप्ताह में मुद्रण कार्य बड़ी तेजी से आरम्भ किया गया। आज दिसम्बर की १२ तारीख हो गई और अभी तक कुछ-न-कुछ सामग्री आ ही रही है। अस्तु आज तक जो कुछ उपलब्ध हो सका है, दिया गया है और अब यहीं से यह समाप्त किया जाता है। क्योंकि १८-१२-३६ को इसका प्रकाशन नितान्त आवश्यक हो गया है।]

विषय	पृष्ठ
१—प्राक्कथन	प्रारम्भ में
२—कुँवर सरयूप्रसाद नारायण सिंह जी का जीवन चरित	३
३—अखिल भारतीय नवम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५
४—अखिल भारतीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	३२
५—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	५६
६—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	६०
७—अखिल भारतीय द्वादश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	७६
८—अखिल भारतीय षोड़श वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	८३
९—अखिल भारतीय द्वाविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९०
१०—अखिल भारतीय त्रयोविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९६
११—अखिल भारतीय चतुर्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	९८
१२—अखिल भारतीय पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण	१०८
१३—श्री० कविराज गंगाधर जी का जीवन चरित	१२२
१४—श्री० कविराज श्यामादास जी का जीवन चरित	१२६
१५—श्री० कविराज धर्मदास जी का जीवन चरित	१२९
१६—गुजरात प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१३१
१७—गुजरात प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१३६
१८—गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१५९
१९—गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१६१
२०—गुजरात प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१७८
२१—गुजरात प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित	१८९
२२—गुजरात प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	१९१

विषय पृष्ठ

२३—कर्णाटक प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण २०७

२४—कर्णाटक प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २२५

२५—कर्णाटक प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण २२८

२६—श्री० द्रविड़ आयुर्वेद मण्डल का इतिहास २६६

२७—आंध्र प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण २६९

२८—डा० पी० वी० कृष्णराव का जीवन चरित २७३

२९—डा० पी० वी० कृष्णराव का भाषण २७५

३०—बिहार प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २८१

३१—बिहार प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २८३

३२—बिहार प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण २८४

३३—बिहार प्रान्तीय द्वादश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २९१

३४—बिहार प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २९२

३५—बिहार प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण २९३

३६—बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ३०८

३७—बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ३१०

३८—हिजहाइनेस श्रीमान् स्वर्गीय महाराजा सर रामेश्वरसिंह जी बहादुर अफ़ दरभंगा, जी० सी० आई० ई०, के० बी० ई० महोदय का जीवन चरित ३१७

३९—संयुक्त प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ३१९

४०—संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ३२४

४१—संयुक्त प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ३२६

४२—संयुक्त प्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ३३५

४३—संयुक्त प्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ३३७

४४—मध्य प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ३५४

४५—मध्य प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ३५७

४६—राजपूताना प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ३८९

४७—पंजाब प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन का संक्षिप्त विवरण ४०७

४८—पंजाब प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ४११

४९—पंजाब प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ४१२

५०—पंजाब प्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ४२२

५१—सिंध प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ४३२

५२—बंगाल प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ४४६

५३—पंजाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित ४६९

५४—पंजाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण ४७०

५५—स्वर्गीय शंकर दा जी शास्त्री पदे का जीवन चरित ४७६

५६—स्वर्गीय कविराज द्वारकानाथजी सेन का जीवन चरित ४८४

५७—स्वर्गीय कविराज विजयरत्न सेन का जीवन चरित ४८९

विषय	पृष्ठ
५८—वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्र नाथ सेन का जीवन चरित	४९२
५९—स्वर्गीय राजवैद्य पं० छन्नूलाल जी भिषग्रत्न का जीवन चरित	४९४
६०—स्वर्गीय आयुर्वेदमार्तंड पं० अर्जुन जी मिश्र का जीवन चरित	४९९
६१—स्वर्गीय कविराज हरिदास जी का जीवन चरित	५०२
६२—स्वर्गीय आयुर्वेद महोदधि पं० क्षमापति जी का जीवन चरित	५०५
६३—वैद्यरत्न पं० सोहनलाल जी पाठक का जीवन चरित	५०८
६४—स्वर्गीय झंडु बिट्ठल जी का जीवन चरित	५१०
६५—प्राणाचार्य वैद्य सुखराम दास ओझा का जीवन चरित	५१२
६६—वैद्य ठाकुरदत्त शर्म्मा अमृतधारा का जीवन चरित	५१४
६७—भिषक् चूड़ामणि पं० मणिराम शर्म्मा का जीवन चरित	५१८
६८—चरक-चतुरानन चक्रपाणिदत्त का जीवन चरित	५२०
६९—कविराज शिवदास सेन का जीवन चरित	५२०
७०—कविराज राजेन्द्रनाथ सेन का जीवन चरित	५२०
७१—कविराज श्री पूर्णचन्द्र रथ का जीवन चरित	५२१
७२—वैद्य श्रीनन्दलाल जी कौल का जीवन चरित	५२२
७३—वैद्य श्री कन्हैयालाल शर्मा जी का जीवन चरित	५२५
७४—वैद्यरत्नम् पी० एस० वैरियर का जीवन चरित	५२५
७५—वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री का जीवन चरित	५२७
७६—वैद्य जेठालाल देवशंकर दवे का जीवन वृत्तांत	५२९
७७—वैद्यराज ख्यालीराम जी द्विवेदी का संक्षिप्त परिचय	५३२
७८—राजवैद्य जीवराम कालिदास महोदय का संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त	५३७
७९—स्वर्गीय श्री कृष्णरामजी भट्ट का जीवनेतिवृत्त	५४०
८०—राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी शर्म्मा का संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त	५४४
८१—चिकित्सक-चूड़ामणि श्री श्यामलालजी का जीवनेतिवृत्त	५४५
८२—वैद्यरत्न श्रीकान्त शर्मा जी का जीवन चरित	५४७
८३—ग्रंथकार	५४८
८४—प्राणाचार्य, कविराज प्रतापसिंहजी का संक्षिप्त परिचय	५४८
८५—वैद्य राजेश्वरदत्तजी शास्त्री का परिचय	५५०
८६—प० हनूमानप्रसाद शर्म्मा वैद्यशास्त्री का संक्षिप्त परिचय	५५१
८७—पत्र और पत्रकार	५५३
८८—संयुक्त प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का संक्षिप्त भाषण	५६४
८९—आयुर्वेद	५६६
९०—आयुर्वेद	५७२
९१—मध्य प्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५७६
९२—बंगाल प्रांतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति का भाषण	५९२
९३—भिषग्रत्न पं० शिवनारायण जी का जीवन परिचय	६०१

विषय पृष्ठ

९४—श्रीमान् कविराज सत्यनारायण जी शास्त्री का परिचय ६०७

९५—वैद्य श्यामसुन्दराचार्यजी का जीवन चरित ६०९

९६—नूतनव्याधिविचार सम्भाषापरिषद् के सभापति का भाषण ६११

९७—रजतजयन्ती उत्सव के सभापति का भाषण ६२२

९८—स्वर्गीय कविराज श्री विश्वनाथ सेन जी का परिचय ६२८

९९—कविराज श्री सुशीलकुमार सेन जी का परिचय ६३०

१००—पं० व्रजविहारी जी चतुर्वेदी का वैद्यरत्न का प्रमाणपत्र ६३२

१०१—वैद्यरत्न एम० दुरायस्वामी आयंगर का परिचय ६३३

१०२—वैद्यवर स्वर्गीय पं० बाबूनन्दन जी भट्ट का परिचय ६३५

विषय-सूची

[प्रान्तीय सरकार]

विषय पृष्ठ

१—प्रान्तीय सरकारों का विवरण १

२—आयुर्वेदिक इन्स्टीटयूशन्स अफ़ नेटिव स्टेट्स २१

३—यू० पी० म्युनिसिपल बोर्ड ३४

४—बिहार म्युनिसिपल बोर्ड ४२

५—बंगाल म्युनिसिपल बोर्ड ४३

६—आसाम ,, ,, ४७

७—आंध्र-द्रविड़ ,, ,, ४८

८—बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, सिंध म्युनिसिपल बोर्ड ५१

९—सेंट्रल प्राविंन्स ,, ,, ५५

१०—युक्त प्रान्तीय डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ६१

११—बिहार ,, ,, ७०

१२—बंगाल ,, ,, ७२

१३—आंध्र-द्रविड़ ,, ,, ७६

१४—बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, सिंध डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ७९

१५—पंजाब ,, ,, ८३

१६—मध्यप्रान्तीय ,, ,, ८६

१७—रूल्स फार दी रजिस्ट्रेशन अफ़ प्रैक्टिशनर्स अफ़ इण्डियन मेडिसिन यू० पी० ८९

१८—संयुक्त प्रान्तीय वैद्य-हकीमों के रजिस्टरी सम्बन्धी नियम १००

१९—संयुक्त प्रान्तीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड के चुनाव सम्बन्धी नियम १०७

२०—संयुक्त प्रान्तीय बोर्ड अफ़ इंडियन मेडिसिन आयुर्वेदिक स्कूल की नियमावली १११

२१—दी प्रासपेक्टस अफ़ दी गवर्नमेंट स्कूल अफ़ इण्डियन मेडिसिन मद्रास १३०

२२—रूल्स फार दी गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना १४२

२३—सिलिबस अफ़ दी गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना १५१

२४—कालेज अफ़ इन्डिजिनस मेडिसन, जफ़ना १६७

२५—प्रासपेक्टस अफ़ दी कालेज अफ़ इन्डिजिनस मेडिसन, जफ़ना १६९

२६—बिहारोत्कल संस्कृत समिति की नियमावली १९७

२७—आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की नियमावली २०१

२८—भिषगाचाराः २३१

२९—कोड अफ़ मेडिकल एथिक्स २३७

३०—वैद्यरत्न पदवी का प्रोग्राम, पटना २४४

३१—अखिल भारतीय षड्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के सभापति का जीवन चरित २४६

चित्र-सूची

[इस रजत-जयन्ती ग्रंथ के द्वितीय भाग में जो चित्र गए हैं, उनकी अनुक्रमणिका यहाँ दी जाती है । इसके अतिरिक्त प्रथम भाग रजत-जयन्ती ग्रंथ में कुल ३३ चित्र हैं और इस द्वितीय भाग में ११७ चित्र हैं । कुल १५० चित्र दोनों भाग में हैं]

नाम	पृष्ठ
१—स्वर्गीय शंकर दा जी शास्त्री पदे	४
२—ग्रूप गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, मैसूर	३०
३—ग्रूप मंत्रिमंडल नि० भा० आ० महामंडल विद्यापीठ, काशी ।	३२
४—श्री पं० गोवर्द्धन जी शर्मा छांगाणी, भिषक्केसरी, नागपुर ।	५६
५—स्वर्गीय रामकृष्ण सेवराम दुबे जी नागपुर ।	५८
६—श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका, नागपुर ।	७२
७—स्वर्गीय कविराज हाराणचन्द्र जी चक्रवर्ती, राजशाही (बंगाल)	७६
८—स्वर्गीय कविराज गंगाधररायजी, मुर्शिदाबाद ।	१२२
९—स्वर्गीय कविराज श्यामादासजी, कलकत्ता ।	१२६
१०—कविराज श्री विमलानन्द जी, कलकत्ता ।	१२८
११—स्वर्गीय कविराज धर्मदास जी, काशी ।	१२९
१२—डा० श्री पोपट प्रभुराम जी, बम्बई ।	१३१
१३—ग्रूप अध्यापक मंडल पोपट यूनिवर्सिटी, बम्बई ।	१३५
१४—ग्रूप अध्यापक मंडल राजकीय आयुर्वेद विद्यालय, बड़ोदा ।	१७६
१५—स्वर्गीय त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि जी	१७८
१६—ग्रूप संस्थापक और संचालक मंडल धूतपापेश्वर औषधालय, पनवेल ।	१८६
१७—श्री सूरजमल शर्म्मा वैद्यराज, बंबई ।	१८९
१८—डा० श्रीमान् एच० वी० सावनूर ।	२०७
१९—वैद्य पंचानन श्री गंगाधरजी शास्त्री गुणे ।	२१६
२०—डा० श्रीमान् सी० वी० रामराव ।	२२२
२१—वैद्यराज श्री भिकाजीविनायक डेग्वेकर ।	२२५
२२—ग्रूप अध्यापक मंडल आयुर्वेद महाविद्यालय, पूना ।	२३२
२३—ग्रूप अध्यापक मंडल विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय, अमरावती ।	२३७
२४—ग्रूप पदवीदान समारंभ श्री भारतीय आयुर्वेद विद्यालय, अमरावती ।	२४०
२५—ग्रूप अध्यापक मंडल राजकीय संस्कृत विद्यालय, बड़ोदा ।	२४४
२६—ग्रूप अध्यापक मण्डल आर्यांग्ल आयुर्वेद विद्यालय, सतारा ।	२४८
२७—श्रीमान् डा० पी० वी० कृष्णराव, मद्रास ।	२७३

नाम	पृष्ठ
२८—श्रीमान् वैद्यरत्न पं० व्रजविहारीजी चतुर्वेदी, पटना ।	२८१
२९—श्री पं० हरिनारायण जी चतुर्वेदी, पटना ।	२८३
३०—श्रीमान् आनरेबुल कृष्णसहाय जी, पटना ।	२८६
३१—श्रीमान् आनरेबुल जस्टिस सर ज्वालाप्रसाद जी, पटना ।	२८८
३२—कविराज श्रीविधुभूषण सेनजी, पटना ।	२९१
३३—वैद्य पण्डित श्रीचन्द्रशेखरधर जी मिश्र, चंपारन ।	२९२
३४—श्रीमान् राजा हरिहरप्रसाद नारायणसिंह जी, अमावां ।	३०४
३५—कविराज श्रीनृत्यगोपाल जी, मुंगेर ।	३०८
३६—स्वर्गीय श्रीमान् सर रामेश्वरसिंह जी बहादुर, दरभंगा ।	३१७
३७—स्वर्गीय श्री पं० गणेशदत्त जी त्रिपाठी, काशी ।	३१९
३८—स्वर्गीय श्री पं० गोपाल जी त्रिपाठी, काशी ।	३२१
३९—श्री० पं० रामनारायण जी मिश्र, लखनऊ ।	३२३
४०—श्री० पं० जगन्नाथ जी वाजपेयी, काशी ।	३३५
४१—साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्राम जी शास्त्री, लखनऊ ।	३५४
४२—श्री० पं० पुरुषोत्तम जी शास्त्री हिर्लेकर, अमरावती ।	३६८
४३—वैद्य पं० श्रीठाकुरदत्त जी मुलतानी, लाहोर ।	४०७
४४—वद्यपंचानन पं० श्री मस्तराम जी शास्त्री, रावलपिंडी ।	४०८
४५—श्रीमान् पण्डित शिवशर्मा जी आयुर्वेदाचार्य, लाहौर ।	४१०
४६—वैद्यराज पं० श्री मनोहरलाल जी, दिल्ली ।	४११
४७—श्री पं० देवकीनन्दन जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली ।	४१२
४८—श्री पं० शंकरदेव जी आयुर्वदाचार्य, दिल्ली ।	४१२
४९—ग्रूप अध्यापकवर्ग तिब्बिया कालेज, देहली ।	४१६
५०—बाबा कालीकमलीवाले का आयुर्वेद विद्यालय तथा औषधालय, हृषीकेश ।	४१९
५१—ग्रूप अध्यापक मंडल डी० ए० वी० कालेज, लाहौर ।	४२०
५२—वैद्यराज पं० श्रीदत्त जी शर्मा, भिवानी ।	४२२
५३—ग्रूप अध्यापक मंडल एस० डी० प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालेज, लाहोर ।	४२४
५४—श्रीमान् डा० गणेश दत्तात्रय आपटे, पूना ।	४३२
५५—कविराज श्री गणनाथ सेन जी, कलकत्ता ।	४३६
५६—कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र, लाहोर ।	४६९
५७—स्वर्गीय कविराज श्री विजयरत्न सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
५८—कविराज श्री ज्योतिषचन्द्र सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
५९—कविराज श्री हेमचन्द्र सेन जी, कलकत्ता ।	४८९
६०—स्वर्गीय राजवैद्य पण्डित छन्नूलाल जी, काशी ।	४९४
६१—स्वर्गीय आयुर्वेदमार्तण्ड पं० अर्जुन जी मिश्र, काशी ।	४९९
६२—स्वर्गीय कविराज हरिदास जी, काशी ।	५०२
६३—स्वर्गीय वैद्य पं० क्षमापति जी वाजपेयी, लखनऊ ।	५०५

नाम	पृष्ठ
६४—वैद्यरत्न श्रीमान् पं० सोहनलाल जी शास्त्री, मथुरा ।	५०८
६५—वैद्यराज श्री० पं० दुर्गाशङ्कर केवलराम जी शास्त्री,	५०९
६६—स्वर्गीय झंडु विट्ठल जी, बंबई ।	५१०
६७—राजवैद्य श्रीजुगतराम शङ्करप्रसाद जी भट्ट, बंबई ।	५११
६८—प्राणाचार्य श्री सुखरामदास जी ओझा, करांची ।	५१२
६९—वैद्य श्री ठाकुरदत्त जी शर्मा, अमृतधारा, लाहोर ।	५१४
७०—वैद्यराज श्री विष्णुकान्त जी, मुरादाबाद ।	४१६
७१—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी, देहली ।	५१६
७२—स्वर्गीय वैद्य शङ्करलाल जी, मुरादाबाद ।	५१७
७३—कविराज श्री पूर्णचन्द जी रथ, पुरी ।	५२१
७४—वैद्यराज श्री नन्दलाल जी कौल, काश्मीर ।	५२२
७५—वैद्यरत्नम् पी० एस० बैरियर	५२५
७६—वैद्य श्री कन्हैयालाल जी, बंबई ।	५२५
७७—वैद्य जेठालाल देवशङ्कर जी दबे, अहमदाबाद ।	५२९
७८—श्रीमान् महाराजा श्री भगवतसिंह जी गोंडल-नरेश ।	५३७
७९—राजवैद्य पं० श्री जीवराम कालिदास जी शास्त्री, काठियावाड़ ।	५३७
८०—स्वर्गीय राजवैद्य पं० कृष्णराम जी भट्ट, जयपुर ।	५४०
८१—अध्यापक मण्डल जयपुर संस्कृत कालेज, जयपुर ।	५४४
८२—वैद्य श्यामलाल जी भट्ट, जयपुर ।	५४५
८३—कविराज श्री रामचन्द्र जी मलिक, कलकत्ता ।	५४६
८४—वैद्य पं० हरिप्रपन्न जी, बंबई ।	५४८
८५—श्री० पं० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री, काशी ।	५५०
८६—श्री० पं० हनूमानप्रसाद शर्म्मा, वैद्यशास्त्री, काशी ।	५५१
८७—स्वामी श्री हरिशरणानन्द जी, अमृतसर ।	५५३
८८—कविराज श्री० ए० सी० विशारद, कलकत्ता ।	५५५
८९—वैद्यराज श्री विश्वेश्वरदयालु जी, इटावा ।	५५६
९०—वैद्य श्री रूपेन्द्रनाथ जी शास्त्री, इटावा ।	५५७
९१—कविराज श्री गोपालप्रसाद जी शर्म्मा, मथुरा ।	५५९
९२—वैद्यराज श्री गोपाल जी कुँवर जी ठक्कुर, कराची ।	५६०
९३—वद्यराज श्री रविशङ्कर जटाशङ्कर त्रिवेदी, अहमदाबाद ।	५६१
९४—वैद्य श्री गोपीनाथ जी गुप्त, अहमदाबाद ।	५६३
९५—वैद्यराज श्री हरिदत्त जी शास्त्री, लाहोर ।	५६४
९६—कैप्टन ए० एन० एन० पनिक्कर, मद्रास ।	५६६
९७—श्रीयुत् डा० गिरीन्द्रनाथ मुकर्जी, कलकत्ता ।	५६८
९८—श्रीयुत के० बालासिंघम, जफ़ना, (सीलोन)	५७२
९९—भिषग्रत्न श्री शिवनारायण जी मिश्र, कानपुर ।	६०१

नाम	पृष्ठ
१०० – कविराज श्रीयुत् पण्डित सत्यनारायण जी शास्त्री, काशी ।	६०७
१०१—रसायनाचार्य स्वर्गीय श्री श्यामसुन्दराचार्य, काशी ।	६०९
१०२—स्वर्गीय कविराज श्री विश्वनाथ सेन जी, कलकत्ता ।	६२८
१०३ – कविराज श्री सुशीलकुमार सेन जी, कलकत्ता ।	६३०
१०४ – स्वर्गीय पण्डित बाबूनन्दन जी भट्ट, राजवैद्य, काशी ।	६३५
१०५ – स्वर्गीय पण्डित रघुनन्दन जी भट्ट, राजवैद्य, काशी ।	३६
१०६—प्राणाचार्य पण्डित श्री सदानन्द जी शास्त्री, गढ़वाल ।	४१
१०७—कविराज श्री भूदेव मुकर्जी कलकत्ता ।	४३
१०८—स्वर्गीय डा० वामनगणेश देसाई, बम्बई ।	५०
१०९—वैद्य श्री नागरलाल मोहनलाल पाठक, पाटन (गुजरात)	५२
११०—श्री० पं० विश्वेश्वर दयालु जी स्वामी, अजमेर ।	६०
१११—ग्रूप अध्यापक मंडल महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय, बंबई ।	७६
११२—श्रीमान् वैद्यराज नगीनदास छगनलाल जी, बंबई ।	८०
११३—श्रीमान् वैद्यराज अमृतलाल जी प्राणशंकर पट्टणी, कठियावाड़ ।	८८
११४—अज्ञात	९६
११५ – श्रीमान् वैद्यराज रङ्गलाल जी ओझा ।	१०४
११६—ग्रूप अध्यापक मंडल आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ।	२०१
११७—प्राणाचार्य श्री नारायणशङ्कर देवशङ्कर जी, अहमदाबाद ।	२४६

आयुर्वेदमहामंडल

का

[रजतजयन्ती ग्रंथ]

द्वितीय भाग

दिसम्बर सन १९३६.

प्रथम वैद्यसम्मेलन के सभापति

कुँवर सरयूप्रसाद नारायणसिंहजी बरांव

कुँवर सरयूप्रसाद नारायणसिंहजी इलाहाबाद जिले की बरांव रियासत के राजा राघवप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के चचेरे भाई थे। प्रथम वैद्यसम्मेलन के समय जो सनातनधर्म महापरिषद हुई थी उसके सभापति राजा साहब और वैद्यसम्मेलन के सभापति कुँवर साहब हुए थे। आप भूमिहार ब्राह्मण जमीनदार थे। आपका आयुर्वेद पर अटल अनुराग था। आप केवल आयुर्वेद का अध्ययन ही नहीं करते थे बल्कि आयुर्वेदिक औषधियाँ और रसादि तैयार भी किया करते थे। अब आप स्वर्गवासी हो चुके हैं। आपका चित्र प्रथम भाग में प्रकाशित हो चुका है।

स्वर्गीय आयुर्वेद महामहोपाध्याय शङ्करदाजी शास्त्री पदे

नि० भा० आयुर्वेदमहामण्डल-प्रवर्तक

[ब्लाक अहमदाबाद निवासी श्री पं० वैद्यरत्न, माधवप्रसाद नारायणशंकरजी की कृपा से प्राप्त।]

श्रीमद्धन्वन्तरये नमः

"यस्मिन् देशे हि यो जातः तज्जं तस्यौषधं हितम्"

लाहोरनगरे १९१८ एप्रिलमासे २७ शुभदिने नवमवैद्यसंमेलने अभिभाषितम् ।

आयुर्वेदमार्तंड, भिषङ्मणि, प्रभृतिविरुदभाजः

वैद्यरत्न पं० डि० गोपालाचार्लु ए० वि० एम्० महाशयस्य

अभिभाषणम् ।

ओम् "शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इंद्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः......
ओं शांतिः शांतिः शांतिः"

नमामि धन्वंतरिमादिदेवं सुरासुरैर्वंदितपादपद्मम् ।
लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं दातारमीशं विविधौषधीनाम् ॥

आर्याः सोदरविद्वद्वैद्याः ! प्रियवैद्यप्रतिनिधयः !

सोदरी मतल्लिकाः !

श्रीमद्भारतजननी गर्भशुक्तिमुक्ताफलानाम् अदूरत्रिंशत्कोटिपरिमितानाम् जनानाम् संततारोग्यभाग्यस्य निधानम् एतन्निखिलभारतायुर्वेदवैद्यकमहासंमेलनम्, धीरधिषणासमुल्लसितैः ज्ञानवयोवृद्धैः विविधविद्याविशारदैः सौशील्यशौचसदाचारादिगुणसंपन्नैः विद्वद्वैद्यवर्यैश्च विजेजीयतेतराम्; इति विदितचरमेवार्यमिश्रैःतादृशेऽस्मिन्नातिमहति सदसि आयुर्वेदीयविषयविमर्शनादिकार्यजातम् निष्प्रत्यूहं साधयितुमलमस्मि वा न वेति मे मनसि विचिकित्सा जागर्ति । तथापि भारते धरामण्डले अनेकप्रदेशेषु विद्यमानैः प्रतिनिधिसंघैः स्वागतकारिण्याः सभायाः पारिषदैश्च ऐककण्ठ्येन नियोजितेऽस्मिन् महति कार्ये यदि न प्रविशेयम्, आर्षतेजोविराजिते आयुर्वेदे औदासीन्यम् धाष्टर्यं अनादरश्च मयाऽवलंबितो भवेत्; तत्र भवतामाज्ञातिवर्ती च भवेयमिति भीतभीतेन चेतसा कथंकथमिमां परिषत्पतिपदवीमवनतशिरसा भवदनुकंपाकुसुममालिकामिवाग्रहिषम् ।

तत्रभवतामकुटिलया करुणया भारतमहीमण्डलवर्तिनः प्रियसोदरवैद्यवृन्दस्य सेवमानेन व्याजेनैकदैव कर्तुमवकाशः समजनीति कौतुकमेदुरम् मे मानसम् ।

दुःसाधमपि चैतत् कार्यनिर्वहणम् इतः पूर्वमेतत्पदवीमधिष्ठितानाम् महतां कृपालेशेन तत्रभवतां भवतां साहाय्येन च निरंतरमयमेव साधयितुं शक्नुयामिति दृढतरम् विश्वसिमि ।

मम तु अष्टांगायुर्वेदवैद्यमहासंमेलनदास्यमुत्पाद्य अतितराम् गौरवमुत्पादयताम् भवतां समर्प्यंते मया अवनतशिरस्केन साष्टांग प्रणामसहस्रं सविनयं सप्रश्रयं च ।

त्रिकालज्ञानसंपन्नैः भरद्वाजादिमहर्षिवर्यैर्विज्ञानसमुल्लसितैः चरकाद्यायुर्वेदाचार्यैः सर्वतः प्रसारितमायुर्वेदविज्ञानम् एतत्पीठमलंकुर्वाणैः सभाधिनाथैरितः पूर्वमेव सविमर्शम् बहुधा प्राकाशि। ततोऽप्यधिकं समग्रं निर्भीकं वर्णयितुं तत्रभवतां दास्यमनुतिष्ठता मया अस्मिन्महासदसि न पार्यतेति संदिह्यते मे मनः।

तथापि जगदवनसमर्थं विषयमिमं दीनावनबद्धदीक्षस्य श्रीपतेरनुकंपया आयुर्वेदप्रवर्तकानां भवतामकुटिलेनाभिमानेन च निवेद्यकृती भवेयमिति निरचिनवम्।

स्वर्गीयस्मरणं

श्रेष्ठाः! इदं किलास्माभिरस्मिन्नानंदसमये अवश्यं स्मरणीयम्:—यो वा आयुर्वेदीयाः विविधाः ओषधीः विषौषधानि च आधुनिकरसतंत्रसाहाय्येन बहुधा परिशोध्य, तत् प्रतिपादकग्रन्थान्विरचय्य, मुद्राप्य चायुर्वेदमपूपुषत्। येन च मथुरानगरे पञ्चमायुर्वेद संमेलनं स्वयमेवाधिकृत्य विजयपूर्वकमुदवाहि। यश्च वाराणसीपुरवरे हिंदूविश्वविद्यालयशंकुस्थापन महोत्सवसमये आशतेभ्यो वत्सरेभ्यः प्रवृत्तं अनुदिवसंप्रवर्धमानंवैद्यकसमुदायमुद्दिश्य बहुधा प्रपंचितवान्; यश्च सेनानीपदमधितिष्ठन् महाराष्ट्रीयेषु वीराग्रेसर इति विख्यातिमलभत्; सोऽयं महाशयः लेफ्टुनेंटु-कर्नल् कीर्तिकर् इति विख्यातः भारतवीराग्रगण्यः स्मर्तव्यां दशामापन्न इति महदिदम् विचारस्थानम्। अनेनैव लोपेनायुर्वेदस्य तदनुसारिणां विद्वद्वैद्यानां च अतितरां कष्टमुदपद्यत।

किञ्च—पूतचरितः गुणैकपक्षपाती पाश्चात्यवैद्यकविधाननिष्णातः सर्‌पार्डील्कीस् महाशयः "वैदेशिकवैद्यविदः आर्षवैद्यविद्योतमानेषु विधानेष्वेकदेशमपि न जानंतीति, शोथरोगे लवणः पथ्यतमः, मकरध्वजो रसायनः" इत्यपि न जानंतीति सोपहासं प्रत्यपादयत्। न्यरूपयच्च "ईदृशा विषयाः त्रिकालवेदिभिर्मुनिपुङ्गवैः द्विसहस्रवर्षेभ्यः प्रागेव प्रकाशिता" इत्यपि। पाश्चात्यवैद्यपुङ्गवोऽप्ययं एवमादिभिः कृत्यविशेषैर्दूरीकृत्य पक्षपातमायुर्वेदमुद्दिधीर्षुरनितरसाधारणीं प्रशस्तिमगमत्।

तादृशगुणगरिष्ठः भारतजननीमपहाय भगवत्साब्रिध्यमलभतेत्यन्यदेवैतन्मनसो वैलक्ष्यजनकम्। तादृशे लोकोपकारदीक्षाधरेये तस्मिन्नतरिते न केवलं भारतसाम्राज्यस्यैवातिकष्टमापतितं परंत्वायुर्वेदस्य तत्प्रचारकाणां चासोढव्या दशा समापतितेति सर्वैरप्यस्माभिर्ज्ञातमेव।

अभ्यर्थयामहे च भगवन्तमेतादृशां ज्ञानवयोवृद्धानां महनीयानामंतरात्मनः सर्वदा शांतिमुत्पादयितुम्।

सार्वभौमप्रशंसा

न्यायैकदीक्षाधुरन्धरस्य प्रजाः धर्मेण परिपालयतः अखण्डभूमण्डलाधिपतेः श्री० श्री० श्री० पञ्चम जार्जसार्वभौमस्य अकाण्डसमापतितेऽस्मिन् घोरसंग्रामे जय श्रीपरिष्वङ्गः तूर्णमेव भूयादिति आर्तशरण्यं भगवन्तं प्रार्थयामहे।

आर्यवैद्यमहाशयाः! अस्याः विद्वद्वरपरीतायाः महापरिषदस्सन्दर्शनेन चिरन्तनादपि कालात्पूर्वं हिमाचलपर्यन्तिकाश्रमवनेषु भरद्वाजादिमुनिपुङ्गवैः अधिष्ठिता काचनसभा प्रवृत्तेति चरक सूत्रस्थाने प्राथमिकेऽध्याये यदुपवर्णितं तदद्य स्मृतिपथमधिरोहतीव। त्रैकालिकज्ञानसंपन्नानां ऋषिपुङ्गवानां पादरजोवहनेऽपि सामर्थ्यमस्माकं नास्त्येव; तथापि तेषामेव सन्ततिषु जनि-

मुपलभमानैरस्माभिस्तत्प्रदर्शितेन पथा यथामत्यायुर्वेदसेवारूपकार्यं आचरणीयम् । तादृशमहर्षितेजः पुञ्जविकासितान् विषयान् विमृश्य यथाशक्ति कार्यं निर्वोढुं वयमिहैकदा समभूम । न केवलं पाण्डिती समुल्लसितं ज्ञानगरिमाणं प्रकटय्य कृतार्थतामुपलभेमहि । भारतधरातलवर्त्तिनां त्रिंशत्कोटिपरिमितानां प्रियसोदरजनानामारोग्यसंरक्षणं सर्वस्वसमर्पणेनापि अनवद्यमायुर्वेदं संसेव्य निरन्तरं तत्तन्निर्णीतकार्याचरणेन संभवेत् ; न केवल मुपन्यासादि वाग्व्यापारमात्रेण ।

आयुर्वेदे उदारभावः

आर्यविद्यानां प्रधाननिलयेऽस्मिन् भारतमहामण्डले सन्ततं रोगाक्रान्तानां प्राणरक्षणाय त्रिकालज्ञाननिधिभिर्मुनिवर्यैस्तुलितदयापराः केचन महान्तः ऐहिकभोगवैभवं तृणायमन्वानाः सर्वस्वव्ययेनापि प्राणसंरक्षणं कुर्वन्त आसन्निति विदितचरमेवास्माकम् ।

तामेवसरणिमनुसृत्यः—

"भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान् ।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् कीर्तिमनुत्तमाम् ॥"
"नात्मार्थं नापि कामार्थमथभूतदयां प्रति ।
यो वर्तते चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते ॥"

(चरकचिकित्सा प्रथमाध्याये)

इति चरकोक्तिमवलम्ब्य तत्रभवद्भिस्सर्वैरपि सन्त्यज्य आत्मीयं कार्यजातं दूरीकृत्य धनादिकांक्षितं भूतेषु पारमार्थिकीं कृपामवलम्ब्य सर्वानप्यातुरान् स्वसुतनिर्विशेषं उपचरद्भिः प्रतिकर्तुं यतनीयमिति प्रतिपाद्यते मया ।

शिष्टैरवक्षुण्णां तादृशीं सरणिमनादृत्य केवलं वृत्यर्थमेव यदि चिकित्सा क्रियेत महान् प्रत्यवायस्समापततीति—

"कुर्वते ये तु वृत्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम् ।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांसुराशिमुपासते ॥"

एवमादिवचनैः चरकचिकित्साप्रथमाध्याये प्रतिपादितम् ।

एतादृशाः उदारगुणाः आर्षतेजः पुञ्जविराजिते अस्मिन्नायुर्वेद एव स्फुटतरं समुल्लसन्ति ।

एवं महोदारविशिष्टार्षवैद्यविधानमवलम्ब्य तत्रतत्र पट्टणेषु जनपदेषु च देशीयवैद्यवराः व्याधितानुपचरन्तः, प्रत्युपकृतिमनपेक्ष्यैव प्रतिकुर्वन्तः, केवलमकिञ्चनानां जीविकोपकरणानि संघटयन्तः, आरोग्यमुपजनयन्तीति लोकेविदितमेवैतत्. एवंविधप्रात्यक्षिकार्षचिकित्साविधानमेतद्भारतभूभागादृते न हि अन्यत्र कुत्रापि दृश्यते ।

आर्याः ! किमेतेन बहुधा कथनेन ? भारत धरातले आर्षचिकित्सा कोविदानां सर्वाण्यपि सदनानि धर्मवैद्यभवनानीव औषधादिसंभारनिबिडितानि प्राणरक्षणसमर्थानि समुल्लसन्ति ।

सांप्रतमस्मिन् भूभागे राजकीयधर्मवैद्यशालाः सर्वतः प्रसृताः आर्तानामुपकुर्वाणाः विलसन्ति परश्शतं. तत्साहाय्येन सर्वेपि जनाः असाधारणं फलमनुभवन्तीति प्रथितमेव. तथापि एतत्कालिकजनसंख्यामपेक्ष्य राजकीयवैद्यकशालानामपर्याप्तत्वात्, पट्टणेषु जनपदेषु च शस्त्रचिकित्सां विना इतरचिकित्साविधानेषु आर्षविधानैरेव साहाय्यस्य सुलभत्वात्, प्रकृतराजकीयवैद्यशालापेक्षया आयुर्वेदधर्मवैद्यकपद्धतिरेव नितरामुपकुरुत इति सगर्वं मुक्तकण्ठं वक्तुं प्रभवामि ।

इममेव विषयमुपादाय साम्राज्यशासनसभायां सर 'पार्डी लूकीस्' महाशयेन प्रापञ्चि। त्रिकालज्ञानसंपन्नानां महर्षिणां विविधविज्ञानप्रकाशितानि आर्षचिकित्साविधानानि सर्वधा प्राणिःसमुदयस्य आरोग्यमुत्पाद्य परिपालयन्तीति निर्विवादमेतत्। वैदेशिकवैद्यविधानैर्बहुधा चिकित्सितेपि चिरादपि फलमलभमानाः ये पीडामनुभवन्ति तेषां आरोग्यजननिपुणैषा आर्यचिकित्सा सरणिरित स्फुटमुपलभ्यते। परन्तुः—

एवमुन्नतस्थितेः परां कोटिमधिरूढं आर्षचिकित्साबिधानं देशीयवैद्यैः राजकीयैर्देशबान्धवैश्च नाद्रीयत इति महदिदं विचारस्थांनं। एवं सकलजनोपकारसमर्थमष्टाङ्गविशिष्टं इदमायुर्वेदविधानं बहोः कालात् बलवत्तरैः कारणैः तदातदा विनाशोन्मुखदशायाः अभिमुखे स्थितमपि स्थिरतरं रूढमूलत्वात् कथंचिदपि उज्जीवितुमशकत्।

तादृशमिममायुर्वेदं राजकीयाः देशबान्धवाश्च सत्संप्रदायमनुसृत्य लक्ष्यलक्षणपुरस्सरं सम्यग्विज्ञाय सर्वतो यदि प्रसारयेयुः तदा पुरातनादपि कालात् अधिकफलप्रदः प्राणरक्षणकरश्च भवेदिति सम्यङ्निरूप्यते।

आयुर्वेद स्थानादित्वम्

ऋग्वेदादिश्रुतिषु आयुर्वेदस्याङ्गभूतानां शल्यशालाक्यादि विधानानां बोधकाः ऋचः बहुधा दृश्यन्त इति निमित्तेनास्य वेदान्तः पातित्वं ऋषिपुङ्गवैः प्रतिष्ठितमासीत्—तत्र ऋग्वेदे 'युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुश्शचीभिः" "तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजा वनर्वन्" "सद्यो जङ्घा आयसीं विश्पलायै"

इत्यादीनां शल्यतन्त्रादिबोधकत्वात् चरणव्यूहे एवमादिभिश्श्रुतिवाक्यैः आयुर्वेदस्य ऋग्वेदोपवेदत्वं प्रतिपादितम्। आयुर्वेदविज्ञानबोधकैः चरकसुश्रुतादितन्त्रैः "इहखलु आयुर्वेदोनामयदुपाङ्गमथर्ववेदस्य" (सुश्रुत)

भिषजावै पृष्टेनैव "चतुर्णां वेदाना मात्मनो भक्तिरादेश्या" (चरक)

एवमादिवचनैः अथर्ववेदस्योपवेदोयमिति सर्वेषां, वेदानामनुगत इति च बहुधा प्रतिपादितम्। समुदितेनानेन प्रपंचेन आयुर्वेदस्यानादिता सर्वथा प्रतिपादितैव।

आयुर्वेद शब्दनिरुक्तिः

आयुर्वेदशब्दस्य प्राचीनेषु तन्त्रेषु बहुधा निर्वचनं प्रतिपादितम्। तत्र "आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदस्स उच्यते।"

"अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च। तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदः प्रकीर्तितः।

इत्येवमादिभिर्वचनैर्यत्रायुर्निर्णयः व्याधेः हिताहितं शमनोपायश्च दृश्यते स आयुर्वेद इति, रसायनादि सेवयाऽनन्तपुरुषायुषं प्राप्तुं साधनभूत प्रक्रियाबोधक आयुर्वेद इति च अन्वर्थकता प्रतिपादिता। वैद्यकतन्त्रेषु निदानचिकित्सादीनां सामान्यतः प्रतिपादने उपलब्धेपि अस्मिन्नायुर्वेदे दीर्घजीवनसाधनभूतानां रसायनादीनां प्रक्रियाबहुधा प्रपञ्चयन्ते इति अस्मिन्महान्विशेषोदृश्यते हि अस्मिन्नभयामलकीयादिरसायनिकौषधानां प्रक्रियाः परश्शतम्। प्रत्यक्षमनुभूयते च तत्सेवनयाऽनन्यसाधारणमनिर्वाच्यं फलं सर्वैरपिजनैः वलीपलितादिनिवृत्तिं यौवनास्थापनादिकं व्याधिनिवृत्तिपूर्वकमुत्पादयतां तेषां महिमा ईदृशीति केन वा उपवर्णितुं पार्यंत। न ह्यन्येषु वैद्यविधानेषु एतादृशमौषधजातं कदाप्युपलभामहे।

उपरि निर्दिष्टभावगर्भया आयुर्वेदनिरुक्त्या शब्दार्थे विचारिते गज, तुरग, लतादिसंबन्धवैद्यतन्त्राणामपि आयुर्वेदाङ्गत्वेनैव ग्रहणं सूचितम्। इमं विषयमुपादाय अग्निपुराण शालिहोत्रादि ग्रन्थेषु बहुधा प्रपञ्चितम्।

आर्याः किमत्र वक्तव्यं ? एवमादिका अपूर्वविषयबोधका अनेके ग्रन्थाः अस्मद्विधिवैपरीत्येन नाममात्रावशिष्टाः इति वक्तुं नोत्सहते मे चेतः।

एवमनेकोपांगविशिष्टोयमायुर्वेद स्सांप्रतं मनुजमात्रोपयोग्यअष्टांग विशिष्ट एवोपलभ्यते। स एवाऽयुर्वेद इति प्रख्यातिमुपलभ्य सर्वतो विस्तरमुपगम्य जागर्तीति निश्चेतुमवकाशस्समजनि।

आयुर्वेदस्य कलात्वनिरूपणम्

लोके विज्ञानं विद्याकलाभेदेन द्विविधम्। तत्र विद्यावाङ्मयं केवलमाश्रित्य समुल्लसति। कला प्रक्रियोपबृंहित वाङ्मयमनुसरति। हेतु लक्षणौषधरूपस्कंधत्रयात्मकः आयुर्निगमस्तु कलास्वन्तर्भूत इति प्राज्ञो निरणैषुः। तदुक्तं शुक्रनीतौ :—

"पाषाणधात्वादिद्रुतिस्तद्भस्मीकरणं कला।
धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता।
धातुसांकर्यपार्थक्यकरणन्तु कला स्मृता।
संयोगपूर्वविज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता।
क्षारनिष्कासनज्ञानं कलासंज्ञन्तु तत्स्मृतम्।" इति।

वात्स्यायनमहर्षिणा कामतन्त्रे "सुवर्णरत्नपरीक्षा, मणिरागकरणज्ञानं, धातुवादः" इत्यादिभिरायुर्वेदसंबन्धिन्यः कलाः स्पष्टं प्रतिपादिताः। तत्र हेतुस्कन्धः अंगप्रत्यंगादि शारीरकशास्त्रपरिज्ञानमधितिष्ठति। औषधस्कन्धः खनिजप्राणिजकाष्ठौषधादिपरिज्ञानम् तत्तदौषधकल्पनादिविभागज्ञानञ्चाऽश्रयते। यस्तु लोके वैद्यकपदवीमधिजिगमिषति सत्सम्प्रदायानुगत शास्त्रपरिज्ञानं क्रियाकौशलमित्येतदुभयमपि तस्यावश्यकम्। न हि शास्त्रपरिज्ञानेन वा क्रियापरिचयमात्रेण वा कृतार्थता स्यात्। शास्त्रपरिज्ञानविहीनो वैद्यब्रुवो राज्ञाऽनुशासनीयः। तथाचोक्तं सुश्रुते।

"यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्यभीरुरिवाहवम्।
यस्तु कर्मसु निष्णातः धाष्टर्याच्छास्त्रबहिष्कृतः।
न सत्सु पूजामाप्नोति वधञ्चार्हति राजतः।" इति।

अभ्यासावश्यकतातत्क्रमः

किञ्च—"एतदवश्यमध्येतव्यम्, अधीत्य च कर्माप्युपासितव्यं, उभयज्ञो हि भिषग्राजार्हो भवति" एवमादिभिर्वचनैर्भिषजालक्ष्यलक्षणपुरस्कृतमेवाऽयुर्वेदशास्त्रपरिज्ञानमवश्यं सम्पादनीयम् इतिस्फुटमेवोक्तं सुश्रुतेन॥

एवं सम्यगधीतशास्त्रेण सुशिक्षितकर्मपथेन भिषजा चिकित्साकरणीयेति उपरिष्टात्प्रदर्शितमासीत्। तादृशमुभयपरिज्ञाननैपुण्यं सद्गुरुमुखतोऽध्ययनादेव सम्भवति, न केवलं पुस्तकपर्यालोकनमात्रेण। अध्यापनक्रमपठनपद्धत्याचार्यगुणसंपत्त्यन्तेवासिसदाचारादयश्चरक-

विमानस्थाने रोगभिषग्जितीयाध्याये, सुश्रुतसूत्रस्थानेशिष्योपनयनीये अध्ययनसम्प्रदानीये च निपुणतरं सुविपुलं प्रपञ्चितम्। तत्सर्वं आयुर्निगमनिष्णातारः सभासदो जानन्त्येव; तानेव विषयाननूद्य किञ्चिद्विमृश्य संक्षेपतः प्रतिपाद्यते—

अध्ययनप्रकारः आचार्यादिगुणसंपत्तिः

अद्यतनकलाशालासु राजकीयासु यथाकर्मपथबोधनपूर्वकं वैद्यकविद्या बोध्यते तथा पूर्वकालेऽपि चरकसुश्रुतादिविद्यापीठेषु आयुर्वेदाभ्यासः प्रचारित इति ज्ञायते। तत्र शास्त्रलक्षणमेवं चरकेः—"यन्मन्येत महद्यशस्वि, धीरपुरुषानुमोदितमर्थबहुलं, आप्तजनपूजितं, त्रिविधशिष्यबुद्धिहितं, अपगतपुनरुक्तदोषं, आर्षंसुप्रणीतसूत्रभाष्यसंग्रहक्रमं, स्वाधारमनवपतितबीजं, पुष्कलाभिधानं, क्रमागतार्थमर्थतत्वनिश्चयप्रधानं, संगतार्थमसंकुलप्रकरणं, आशुप्रबोधकं, लक्षणवच्चोदाहरणवच्च तदभिप्रपद्येत शास्त्रं; शास्त्रं ह्येवंविधममल इवादित्यः तमोविधूय प्रकाशयति सर्वं इति" लोके वैद्यशास्त्राणि बहुधा प्रचारमुपगतानि संति। तत्र वैद्यशास्त्रं पिपठिषता देशकाला दीन्सम्यगवबुध्योपरिनिर्दिष्ट गुणसंपन्नं वैद्यकतन्त्रं परीक्ष्य तत्पठने अप्रमत्तेन यतितव्यम्। यद्येवं यथा सूर्यः अमलैः स्वकिरणजालैर्लौकिकान्पदवीन्प्रकाशयति तथाऽस्मिन्शास्त्रे प्रतिपादनीयमर्थजातं बोधयितुं समर्थं भवति। अन्यथा स्वाभिलषितस्य पूर्णता न संभवति।

"ततः पर्यवदातश्रुतं परिदृष्टकर्माणं दक्षं दक्षिणं शुचिं जितहस्तं उपकरणवन्तं सर्वेन्द्रियोपपन्नं प्रकृतिज्ञं" इत्यादिभिराचार्यलक्षणं निपुणमुपपादितम्। अनेन सम्यगवबुद्धशास्त्रः अवाप्तकर्मकौशलः अविगीतचारित्रः अहंकारादिनिवृत्तः अकुटिलशिष्योपदेशो अकृत्रिमप्रेमा आचार्यः आयुर्वेदमुपदेष्टुमर्हतीति सूचितम्। शिष्यलक्षणमपि तत्रैव विशेषेण प्रतिपादितम्। शान्तगुणप्रधानेनाक्षुद्रेण मेधाविना ऊहापोहस्मृतिशालिना तद्विद्यकुलजेन तद्विद्यवृत्तेन वा शिष्येण भवितव्यमिति विज्ञायते।

एवं विधलक्षणशिष्यवरः पूर्वोदितगुणगरिष्टमाचार्यं देववद्राजवत् पितृवच्चाऽप्रमत्तः उपचरन्स्वाभिमतं कृत्स्नं शास्त्रार्थमधिगन्तुं यतेत।

आचार्यस्तु यथायोग्यं शास्त्रार्थं कर्मपथं च बोधयितुमुद्यतस्तस्य अभिवर्धनानि कानिचिन्नियमान्तराणि सम्यगवबोधयेत्। तत्प्रकारोपि तत्रैव विस्तरेण प्रतिपादितः—"देवताग्निद्विजातिगुरुवृद्धसिद्धाचार्येषु तेषु सम्यग्वर्तितव्यम्" इत्यादि। यथाविधिपरिज्ञातशास्त्रार्थः पर्यवगत कर्मपथश्च वैद्यविद्यावद्भिः पण्डितवरैस्संभाषेत। तेनैव ज्ञानातिशय उत्पद्यते. वैशारद्यं वचनशक्तिरभिवर्धते. अवगतार्थेषु यदि संशयाः स्युः ते पुनः पुनस्संघर्षणेन दूरतोऽपसरन्ति। अश्रुतचरमपि कंचित् विषयमवगंतुमवकाशस्संभवति। इत्येवमादिका गुणाः तद्विद्याकुशलैः परस्परसंभाषणेन संगृह्णेरन्। तेनैवोपायेनाऽधीतस्य शास्त्रस्य दार्ढ्यमुदेयात्. तद्विद्यासंभाषापि तत्रैव चरके बहुधा प्रपञ्चिताः—"द्विविधा खलु तद्विद्यासंभाषा भवति, सन्धायसंभाषा विगृह्य संभाषेत्यादि"—उपरि निर्दिष्टक्रमेण चरके प्रतिपादिताः पठन नियमा आचार्यपरिस्थिति शिष्यगुणसम्पत्तिरित्यादीनाकलतामिदानीन्तनानां मनसि प्राचीनबोधनापद्धतिषु विशेषतोऽभिमानः आदरः विस्मयश्च उत्पद्यन्त एव॥

आचार्यानुशासनम्

एवं शास्त्रपरिज्ञाने कर्मपथे च लब्धप्रज्ञेन वैद्यकपदव्यां यथावर्तितव्यं तत्सर्वं चरके सुश्रुते

च प्रतिपादितम् । यथा—"न चातुरकुल प्रवृत्तयो बहिर्निश्चरितव्याः । साध्वनाथाभ्युपगतानाञ्च आत्मबान्धवानामिव स्वभेषजैः प्रतिकर्तव्यम्" इत्यादि । एवमादिनी हितबोधनानि चिरन्तनां विद्यागुरूणां करुणारसपूरितं महोदारमाशयं अन्तेवासिनां प्रवृत्तेरकलंकतां चाविष्कुर्वन्ति ।

अंगप्रत्यंगादिपरिज्ञानम्

लोके मनुजकोटीनामागंतुकादयो ये व्याधयः उत्पद्यन्ते तेषांविनिश्चये अंगप्रत्यंगादिविशिष्टं शारीरक परिज्ञानमावश्यकं तच्च न हि विभागादिविशेषज्ञानमन्तरा लोकोपकारदक्षमायुर्वेदपरिज्ञानं कृत्स्नशो लभ्यते इति विज्ञायते । तदुक्तं चरके शारीरे षष्ठध्याये—

"शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वकाले च यो भिषक्
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥" इति ॥

शरीरे विद्यमानास्सूक्ष्मसूक्ष्मा विभागाः प्रत्यक्षदर्शनमन्तरा न शास्त्रोपदेशमात्रेण निस्संशयं ज्ञातुं शक्येरन् । संशयाक्रान्तं च केवलं परिज्ञानं न च क्रियाकरणसमर्थं भवेत् । उक्तंहि सुश्रुतेः—

"प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद्भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम्" ॥ इति ॥

तस्मात्प्रत्यक्षतश्शास्त्रपरिज्ञानार्थं मृतशरीरमानीय परीक्षणीयं इति तत्रैवसुश्रुते तद्विधानं सम्यक्प्रपंचितम् । सकलावयवपूर्णं विषादिभिरनुपहतं चिरन्तनैर्व्याधिभिरक्लिष्टं निस्सारितान्त्रपुरीषं पुरुषशवमानीय पञ्जरे निक्षिप्य मुञ्जवल्कलादिभिरावेष्ट्य अप्रकाशे प्रदेशे अप्रवहन्त्यामापगायां सप्तदिनावधि संस्थाप्यप्रकुथितकलेबरं जलाद्बहिरुद्धृत्य उशीरवालादीनामन्यतमेन वेणुदलवल्कलादिभिर्वा कूर्चनैः त्वगादीन् शनैः शनैरपाकुर्वन् बाह्याभ्यन्तरगतानंगप्रत्यंगविभागांस्तत्सूक्ष्मभागांश्च शास्त्रपरिज्ञानमनुसृत्य चक्षुषा प्रत्यक्षतः द्रष्टव्यम् ।

पूर्वोदितविधिना प्रत्यक्षज्ञानमवाप्य निस्संशयं क्रियाकरणदक्षो भवति । एवं चोक्तं सुस्रुतशारीरे पञ्चमाध्यायेः—

"तस्मान्निस्संशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता ।
शोधयित्वामृतंसम्यग्द्रष्टव्योंऽगविनिश्चयः ॥
शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थःस्याद्विशारदः ।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवाप्योहिचरेत्क्रियाः ॥" इति ॥

एतेन प्राचीनानां त्रिकालविद्वराणां शरीरतत्वोपदेशे तदभ्यासविधौ च परिश्रमोऽन्यादृश इति स्पष्टतरमेव दृश्यते । अपिच सप्तदिनावधि जलक्षेपणेन शरीरसंबंधिविषं (सेप्टिक्पायिजन्) अपनोद्य परीक्षणीयमिति सूचितम् । अहो महोदयाः अनेनास्मदीयानां आयुर्वेदकोविदानां शरीरपरीक्षणे तन्निश्चयेच कीदृशी ज्ञानगरिमेति भवंत एव विमृशंतु ॥

आर्यमहोदयाः !

अस्थ्नांपरिज्ञानम्

शरिरस्य प्रधानतयाऽधारभूतानामस्थ्नां संख्याने चरके षष्ट्यधिकशतत्रयमिति (३६०) सुश्रुते त्रिशत (३००) मिति च भेदो विद्यते । अधुनातनाः द्विशत (२००) सख्या परिमि-

तानीति पर्यगणयन् । तानि च कपाल, वलय, रुचक, तरुण, नलक भेदेन पंचधा विभक्तानीत्युपलभामहे । एतत्संख्यावैषम्यं विमृशता "प्रोफिसर् हार् नल्" इति विख्यातेन पाश्चात्यविद्वद्वैद्यशिखामणिना स्वीयग्रंथे, (Ostiology of the Hindus) "एतादृशसंख्याभेदजनिताः दोषाः तत्संस्कर्तणां प्रमादादिजनिता एव; न हि ग्रंथकर्तृभिः पुरातनैराचार्यैः कदाप्येवमाचरितं भवेत् । अस्थि विभागपरिज्ञाने तेषां निपुणता गरीयसीति" निरबध्नात् ।

अस्मदीयेषु प्राचीनतंत्रेषु हस्तपादादीनामंगानां मस्तकोदरादिप्रत्यंगानांप्लीह, यकृत्, क्लोम, वृक्क, वस्ति, हृदय, पुप्फुस, आमाशय, गर्भाशय, पक्वाशयादीनां च स्वरूपाणि तेषां संनिवेशान् स्थानविशेषांश्च सुनिपुणमदर्शयन् । सिराधमनीस्नायूनां कंडराणां स्रोतसां च स्थानानि निरूप्य विशेषतः तत्कृत्यानि न्यरूपपिषतः । उपरिनिर्दिष्टान्यंगादीनि संछाद्य परिपालनार्थं भगवता कल्पितानि सप्तविधानि चर्माणि च दृश्यंत इति निरणैषुः तेषु अधुनातनपाश्चात्यवैद्यपुंगवपरिकल्पिताणुवीक्षणयंत्रस्य साहाय्येनापि वीक्षितुमगोचराः सुसूक्ष्मा भागाः विद्यंत इति आंग्लायुर्वेदतंत्रनिपुणेन महामहोपाध्याय गणनाथसेन् महोदयेन प्रत्यक्षशारीरेनिरूपितम् ।

कलापरिज्ञानम्

अपिच धात्वाशयांतरमर्यादाभूतानां कलानां स्वरूपं तत्सन्निवेशश्च रम्यतया सुश्रुतेन निरणायि । एतेन शवच्छेदनपूर्वशारीरपरिज्ञानेन प्रांचः अतिनिपुणं विज्ञानमलभन्निति स्फुटमेव प्रतीयते ।

पुंसवनादि परिज्ञानम्

पिण्डोत्पत्ति पुंसवनादिविषयाः पाश्चात्य वैद्यधुरीणेषु प्रशस्ति मुपगतवता प्रोफेसर् "ओन् आटन्" महाशयेन परिशोधितसिद्धांतविषयानप्यतिशेरत इति आंग्लायुर्वेदतंत्रज्ञानां बलवती प्रतीतिः ।

मर्मपरिज्ञानम्

शवच्छेदने परिज्ञातेषु शारीरकविभागेषु प्राधान्येन ज्ञातव्यानि संति मर्माणि । तानि, मांस, सिरा स्नायु, वस्ति, संधीनाश्रित्य पंचप्रकाराणि । तानि स्वभावत एव प्राणानाश्रित्य तिष्ठंति । अभिहतेषु तेषु अतितरां बाधामाप्नुवंति प्राणिनः । अत एव तेषां मर्मसंज्ञेति चरके प्रतिपादितम् । तान्याश्रयभेदेन पंचप्रकराण्यपि क्रियाभेदेन सद्यः प्राणहर, कालांतरप्राणहर, विशल्यप्राणहर, रुजाकर, वैकल्यकरभेदेन पुनः पञ्चधाविभक्तानि । शस्त्रावचारं कर्तुमुद्यतेन शल्यतन्त्रज्ञेनैतान्यवश्यं ज्ञातव्यानि । तदुक्तं सुश्रुते "मर्माणि शल्यविषयार्धमुदाहरन्ति" इति। अन्यथा मर्मस्थलेपि शस्त्रमवचार्य कदाचिदपराध्येत ।

सर्वप्राणायतनानामेतेषां न क्वापि आंग्लवैद्यकतंत्रेषु जागर्ति परिगणनम् । तेनैव बलवता कारणेन शस्त्रचिकित्सानिपुणा इति प्रख्यातिमुपगतैरपि पाश्चात्यवैद्यकविशारदैः शस्त्रचिकित्सायां विफलमनोरथैरनुभूयते मनःक्लेश इति समुन्नीयते चास्माभिः । यदि आंग्लवैद्यनिष्णाता अपि अस्माकीं धान्वंतरीयां सरणिमवलंब्य, अनुसृत्य सौश्रुतं मतं, शवच्छेदनाभ्यासेन मर्मविभागज्ञाने निष्णातारो भवेयुः, नहि कदापि शस्त्रचिकित्सासु प्रत्यावृत्तमनोरथाः कुण्ठितयत्नाश्च भवेयुरिति मुक्तकण्ठमेव धीरतरं प्रभवेयम् ।

रक्तसंवहन परिज्ञानम्

आर्यमिश्राः—

अस्मदीयेषु आर्षसंप्रदायेषु रक्तसंवहनक्रिया मुद्दिश्यावश्यमालोचनीयम् । इदमपि अदूरवत्सरद्वयकाले "सर् विलियम् हार्वे" इति प्रख्यातेन पाश्चात्य वैद्यकोविदेन स्वेनैव मनसा समुन्मीलितमिति सोत्प्रासं भाषन्ते तदभिमानिनः । किमिति वदामो वयं ! इदमेव किलास्माकं विस्मयस्थानं ! यतः वत्सरसहस्रद्वयात् पुरातने काले ऋषिपुङ्गवैः स्वनिबन्धनग्रन्थेषु सुष्टुप्रतिपादितमपि विषयमुपादाय अस्माभिरेव योगदृष्ट्यानुमितमेतदपूर्वामिति मुधा विकत्थन्तेऽधुनातनाः। प्रत्यपादि किल महर्षिणा चरकेण सुनिपुणं साभिप्रायञ्च—

"तेन मूलेन महता महामूला मता दश ।
ओजोवहाश्शरीरे वा विधम्यन्ते समन्ततः ॥
येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताः सर्वदेहिनः ।
यद्दते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते ॥
यत्सारमादौ गर्भस्य योऽसौगर्भरसाद्रसः ।
संवर्धमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा ॥"

(चरकसूत्रस्थान ३० अध्याय) वाग्भटेपि हृदयस्थाः दश मूलसिराः सकलचेष्टाकारणभूतं रसात्मकं सारमादाय शरीरं समंततः वाहयंतीति स्फुटतरमेव प्रतिपादितम् । तत्रहि—

"दश मूलसिराः हृत्स्थाः ताः सर्वं सर्वतो वपुः ।
रसात्मकं वहंत्योजः तन्निबद्धं हि चेष्टितम् ॥"

इत्यनेन सुष्टु प्रतिपादितम् रक्तप्रसारमुद्दिश्य । किंच "संवर्ध मानं हृदयं समाविशति यत्पुरा" यत्यनेन चरकवाक्येन हृदयस्थानगतं रक्तं सर्वतः शरीरमभिव्याप्य यथापूर्वं पुनः हृदयमेवाविशतीति तत्संचारक्रमोपि निपुणमेवोक्तः ।

'तन्निबद्धंहि चेष्टितम्" इति वाग्भटवाक्येन,

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते ।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥"

रक्तमेवप्राणधारणम्

इत्यनेन सुश्रुतवाक्येन च रुधिरमेव सर्वशरीरपोषकं धारकं च भवति । आंगिकादिचेष्टाः सर्वा अपि तदेवाश्रयंते, इति स्फुटमेव प्रतीयते । अनेन समुदितेन चरकसुश्रुतादिवाक्यजातेन रुधिरस्य प्रधानं धाम, तत्संचारक्रमः, तत्कृत्यं इत्येवमादीनि सर्वाणि बहोः कालादर्वागेवास्मदीयैराचार्यैः सम्यगवगतानीति स्तनंधयेनापि ज्ञातुं शक्यते ।

स्रोतोधमन्यो परिज्ञानं

प्राचीनैरस्मदीयैराचार्यैः धमनीनां स्रोतसां च स्थानं तत्प्रसारणक्रमः कृत्यादीनि च बहुधा परिज्ञातानि । तत्र उदकवहनाड्यौ तालुक्लोमनी चाश्रित्य वर्तेते । तत्र विद्धे पिपासा सद्योमरणं च भवेदिति पर्यज्ञासिषुः । एवमेव रसवहानां रक्तवहानां आर्तववहानां च प्रधानाश्रयादिकं तद्वेधेन संजातान् रोगांश्च निपुणतरं जानंत आसन् ।

तदुक्तं सुश्रुते शारीरे—

उदकवहे द्वे, तयोर्मूलं तालु क्लोमच; तत्र विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च।"

"रसवहे द्वे, तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहविद्धवच्च मरणम्।"

"रक्तवहे द्वे, तयोर्मूलं यकृत् प्लीहानौ; रक्तवाहिन्यश्च धमन्यः। तत्र विद्धस्य श्यावांगता ज्वरो दाहः पाण्डुता शोणितातिगमनं रक्तनेत्रता च।"

"आर्तववहे द्वे; तयोर्मूलं गर्भाशयः; आर्तववाहिन्यश्च धमन्यः; तत्र विद्धायां वन्ध्यात्वं मैथुनाऽसहिष्णुत्वम् आर्तवनाशश्च" इति।

एवमेव प्राणवहादीनां मलमूत्रादिस्रोतसां च आश्रयादीनि चरकसुश्रुतादौ सुष्टूपपादितान्युपलभ्यन्ते; एतादृशसूक्ष्मपरिज्ञानं न हि प्रात्यक्षिकशारीरज्ञानमन्तरा उपलभ्यते; एतदपि द्रढयति चिरंतने काले शरीरपरीक्षणेन जनितस्य अस्मदीयानाम् आयुर्वेदपरमाचार्याणां परिज्ञानस्यौत्कृष्ट्यं सर्वातिशायितां च।

माननीयाः! एतावता प्रपंचेन प्राचीनानां वैद्यकाचार्याणां शारीरकपरिज्ञानं परीक्षणेन प्रत्यक्षतश्शवशरीरे यावदुपलब्धं ज्ञानं तस्यौत्कृष्ट्यं निरूपितं। तेनैव पथा शिष्यगणमपि कर्मपथेषु बोधनापद्धतिं प्रादर्शयन्निति च प्रत्यपादि।

तेन अंगप्रत्यंगादिविभागे सम्यगवबोधिते शल्यतंत्रांतर्गतछेदनभेदनादिषु अष्टत्वपि कर्मसु हस्तकौशलमभ्यसनीयम्। तत्राभ्याससमये एव शरीरेप्रयुक्तान्येतानि कर्माणि कदाचित् शिरास्नाय्वादीनां अन्यथा भेदनेन शरीरस्य हानिरपि जायेत। तदर्थमवश्यं अन्यत्र तत्तदर्हेषु वस्तुषु तत्तत्कर्मपथं प्रदर्श्य आचार्येण हस्तनैपुण्यं बोधनीयं शिष्यजनेभ्यः। तत्प्रकारस्तु सुश्रुतेन निपुणतरमुपदिष्टः; तत्रदिङ्मात्रमत्रप्रदर्श्यंते; छेदन, उत्कर्तनापकर्तनानि पुष्पफलालाबू प्रभृतिषु, भेदनं उदकपरिपूर्णचर्ममयकोशेषु, लेखनं सलोमनि चर्मणि, वेधनं पश्वादीनां मृतशरीरे स्नायुप्रभृतिषु, एषणम् कीटादिभिः कृतरंध्रेषु दारुषु, आहार्यं पनसबिंबीफलादिषु, निस्राव्यं शाल्मलीफलकादिषु मधूच्छिष्टोपलिप्तेषु, सीवनं मृदुतरचर्मादिषु च बोधनीयमिति छेदनादीनां कर्मणामभ्यासक्रमः दृश्यते।

एवमेव चतुर्दश प्रकारेषु बन्धनेषु क्रियाभ्यासः दारवपुत्तलिकादिसाधनैः अवगन्तव्यः। नेत्रवस्ति, व्रणवस्ति, वस्तिपीडनक्रियाः अलाबूप्रभृतिषु बोधनीया। एवमधीतशास्त्रः अभ्यस्तकर्मकौशलश्च कृतहस्ततामवाप्य ज्ञानपूर्ण एव न जातुचिदपि चिकित्सासु भ्रान्तिमवाप्नोति।

तदुक्तं सुश्रुते—"एवमादिषु मेधावी योग्यार्हेषु यथाविधि द्रव्येषु योग्यां कुर्वाणो न प्रमुह्यति कर्मसु" इति। उपरि सूचितानि बन्धनानि सुश्रुते चतुर्दशधा विभज्य नामतः प्रदर्शितानि; तानि च कोशदाम स्वस्तिक अनुवेल्लित उत्तोली मंडल स्थगिक यमक खट्वा चीना विबंध वितान गोफण पंचांगी इति नामत एव प्रशस्तसन्निवेशानि भवंति। तदुपयोग्यानि क्षौमकार्पासाविकादीनि द्रव्याण्यपि निर्णीय तत्तत्स्थानभेदेन बंधनबोधनप्रकारः बंधनार्हद्रव्याणां धूपजादिसंस्कार विशेषाश्च निपुणं निरूपिताः।

शस्त्रकर्माणि तदभिवृद्धिः—

कायचिकित्सकाग्रगण्यः भगवान् चरकाचार्यः शस्त्रकर्माणि पाटनव्यधनछेदनलेखनप्रच्छानसीवनभेदेन षड्विधानि भवंतीति उक्तवान्; शल्यतंत्रप्रवर्तकः सुश्रुतः आहार्य विस्राव्य भेदेन अधिकतया संयोज्य अष्टधाभवंतीति अजीगणत्; वाग्भटाचार्यः अष्टांगसंग्रहे उत्पाटन कुट्टन

मंथन उद्धरण नामकानि चत्वारि पूर्वोदितैस्संयोज्य द्वादशधा व्यभजत् तेनैव अष्टांगहृदये दाहकर्मापि एकं संयोज्य त्रयोदशधा शस्त्रकर्माणीति प्रत्यपादि ।

तादृशशस्त्रकर्मसाधनभूतानि शस्त्राणि विंशतिप्रकाराणि भवंतीति सुश्रुते उक्तमस्ति । अष्टांगसंग्रहे शलाका कर्तरी सर्पमुख कर्णव्यधनसूची सूचिका कूर्चभेदेन षड्विधानि शस्त्राणि सुश्रुतप्रतिपादितेभ्यः अधिकतया अग्रहीत् । बंधनेषु सुश्रुतपरिगणितेभ्योऽप्यधिकः उत्सङ्गनामक बन्धविशेषः चतुर्दशसंख्यातीतः वाग्भटेन संगृहीतः । उपरि निर्दिष्टक्रमेण चरकापेक्षया सुश्रुतकाले शस्त्रकर्मसु द्वितयाधिकता, वाग्भटकाले ततोपि पंचाधिकता च श्रूयते । एवं शस्त्रविषयेऽपि सौश्रुतात् वाग्भटकाले क्रमाभिवृद्धिः, बंधनेषु एका अभिवृद्धिः, उपलभ्यते । एतेन वाग्भटकालपर्यंतं शस्त्रचिकित्सा विधिं तत्तत्कालानुगुणं अभिवृद्धेः परांकोटिं प्रापयन्तः प्राचीनतन्त्रकाराः प्रतिभायास्सर्वातिशायित्वं अलभन्निति स्फुटतरमेव विज्ञायते । एतत्कालावधि पूर्वोदितक्रमेण यदि वर्धेत तदा कीदृशी समुन्नतिः चिकित्सानैपुण्यं च जायेतेति भवन्त एव विमृशंतु । चिरादपिकालात् पूर्वं औन्नत्यमापन्ना अस्मर्याहरणादिविधयः इदानीमपि अव्याहतप्रसरा दरीदृश्यन्ते ।

वृद्धिपत्रमंडलाग्रादिशस्त्राणां छेदनादिकृत्येषु धारणपद्धतिः तत्तदर्हेषु विनियोजनप्रकार इत्यादीनि बहुधा प्रापञ्चयन् । एवं प्राचीनाः पूर्वोक्त नयेन सदाचार्यसन्निधाने लक्ष्यलक्षणसमुपेत आयुर्वेदं अधीत्य बोधना पद्धतिमवलम्ब्य बाह्याभ्यन्तरावयवादिसन्निवेशाप्रत्यक्षतो निस्संशयं ज्ञात्वा कर्मसु नैपुण्यमुपलभ्य तत्तदुचितांश्चिकित्साविधीन्यथाक्रमं विनियोजयन्त अनुदिनाभिवृद्धं प्रतिभाविशेषेण कानिचिदपूर्वाणि लोके प्रकटयन्त अनन्यसाधारणीं कीर्ति प्राप्तुं यतमाना आसन्निति स्फुटतरमेव वयमवगच्छामः ।

अपितु प्रात्यक्षिकबोधनापद्धतिसमुल्लसितोऽयं शस्त्रविधिः अधुनातनशस्त्रपरिपाटीं सर्वथाऽतिशेत इति उच्चैरेव वक्तुं प्रभवामि ।

आर्याः ! उपरिष्टात्कर्मपथाभ्यासो बहुधोपवर्णितः । तत्राभ्याससमये आतुरालयः, प्रसूतिशाला, आरोग्यसदनं, औषधागारश्च अत्यन्तमुपकुर्वन्ति । तैरपिसाधनैः कर्मपथं सम्यगवबोधयन्निति अनेकैः कारणैरवगच्छामः । न केवलं क्रियाभ्यासमेवोपकुर्वंति ते । नानामयपीडितानां बहूनामारोग्यजननेनाऽत्यन्तोपकृतये समर्था अभूवन् । पुरा अशोकस्य काले देशांतरेपि तत्रतत्र जन्तुसामान्यं चिकित्सुतुमर्हा आतुरालयः प्रचारमुपगता इति तदीयशासनाद्विज्ञायते ।

तेष्वातुरालयः यथोचितवातातपप्रसरणशीले रम्यतमे प्रदेशे परिकल्पनीयः । तत्रैकतमे प्रदेशे नात्यल्पवातसञ्चारक्षमं प्रेक्षावतां मनस्यानन्दोत्पादकनिकेतनमेकं निर्मातव्यं । गेहेऽस्मिन्धूमपरागादिभिस्ससमं कदापि न भवितव्यम् । तच्चेन्द्रियोद्वेजकशब्दस्पर्शादिविषयैरसंस्पृष्टं मनोज्ञैस्सुखारोहणैस्सोपानैरुपनिबद्धेन सौधभागेनोपस्कृतश्च कल्पनीयं । अन्यतमे भागे मलमूत्रादिविसर्जनोचितमेकं निकेतनं निर्मातव्यम् । औषधप्रेषणार्हास्सुश्लक्ष्णा उपलोपेताः खल्वास्तत्तत्क्रियासाधनानि पात्राणि स्थापनीयानि । कालोचितक्रियाकरणचतुराः सेवका आतुरानुपचरितुं समर्थाः परिचारकानि योजनीयाः । तस्मिन्निकेतने निवसतां व्याधितानां मनसो वैकल्यमपनेतुं वेदनायाः मनः प्रत्यावर्तयितुंचाख्यानकाख्यायिकेतिहासबोधकाः केचनपुरुषा आह्लादजनकाः शारीशुकलावकादिमनोहरजन्तुनिचयाश्चाऽभ्यासितव्याः । आतुराणां सुखशयनार्हाः स्वास्तृताः सोपधा नात्युन्नतनीचाः मञ्चाः शीतादिनिवृत्तिदक्षाणि उपबर्हाणि स्थापयेयुः । शल्यचिकित्सोचित यन्त्रशस्त्रादीनि साधनानि उपयन्त्राणि तत्तदुचितप्रदेशेषु निवेशयेत् । यानि चान्यानि चिकित्सोपयोग्यानि आतुराणां सुखोपजननानि च भवन्ति सर्वाण्यपि तानि उचितस्थले सङ्गृह्याणि संक्षेपणीयानि ।

एवं निर्मितः आतुरालयः आरोग्यायोपकल्पते । एतच्च चरके निपुणंप्रतिपादितं “दृढन्निवातं प्रवातैकदेशं सुखप्रविचारं अनुपत्यकं परिसंख्यायोपकरणं विद्यते यच्च प्रतिभोगार्थं तत्तदुपकल्पयेत्” (चरक. सू.) शस्त्रचिकित्सावसरे पूर्वमेवातुरालये संगृहीतव्यानि द्रव्याणि सुश्रुते अग्रोपहरणीयेऽध्याये एवं प्रलिपादितानि—‘‘अतोन्यतमं कर्मचिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि भवन्ति । तद्यथा यन्त्रशस्त्रक्षाराग्नि शलाकाशृङ्गजलूकालाबुजाम्बवौष्ठ पिचुप्लोत सूत्रपत्र पट्टमधुघृत पयस्तैल तर्पणकषाया लेपनकल्क व्यजन शीतोष्णोदककटाहादीनि परिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिराः बलवन्तः” इति । अनेनोपदेशेन शस्त्रकर्मचिकीर्षता भिषजा अप्रमत्तेन शीघ्रकारिणा च भवितव्यमिलि सूचितं भवतिं ।

अपिच चरकशारीरे अष्टमेध्याये सूतिकागृहनिर्माणपद्धतिः शिशुनिवासार्हं निकेतनप्रकारश्च सम्यक्प्रतिबोधितः । शस्त्रविधिना चिकित्सितस्य आतुरस्य निवासार्हं निकेतनं समुचितोपकरण संभृतं पृथगुपकल्पनीयमिति सुश्रुत एकोनविंशोध्याये दृश्यते । पूर्वोदितप्रकारेण सुश्रुताद्याचार्यैः उपवर्णितः आतुरालयनिर्माणपद्धतिः प्रसूतिशालारचनाप्रकारश्च इदानींतन वैद्यकशालापरिकल्पनामतिशेत इति स्फुटतरमेव प्रतीयते । आलयनिर्माणं समुचितवातसंचारे शुचौ रम्यतरे प्रदेशे परिकल्पनीयमिति उक्तवतामाचार्याणां निर्माणकौशलं आधुनिकवास्तुविद्यावतां मनसि आश्चर्यं मुत्पादयेत् । अत्र निरूपितैः परिचारकादीनां नियमैः तत्तदुचितकृत्यैः आचार्यैः स्वापाश्रयाणां पारिशुध्यादिगुणैश्च व्याधितानामारोग्यसंपादने परिरक्षणे परिचरणे च आचार्याणां बलीयानुद्योग इति सूचितं भवति ।

सुश्रुते व्याख्यात शस्त्रचिकित्साशालाक्रमः अनन्यादृशः । आधुनिकशस्त्रचिकित्साशालानिर्माणरीतिमपि अतिशेते । शस्त्रचिकित्सासमये पूर्वमेव संभारादिकं संनिधापितव्यमिति बोधयन् आचार्यः शस्त्रचिकित्साकौशलं तत्राप्रमत्ततां च परमुत्तेजयति । प्रसूतिशिशुपाकशालानां निर्माणक्रममनुस्मृत्य को वा विस्मयाक्रांतचेतसो न भवेयुः ।

एवंपूर्वोदित नयेन विद्यालायातुरालयेषु सानुभवं वैद्यकतंत्रमधीत्य लब्धप्रज्ञः अभ्यस्तसकलक्रियाकलापः वैद्यकधुरीणः त्रिजप्राणाचार्येत्यादिबिरुदैस्संभावयितुमर्हतीति चरकश्लोकस्थानेनावगम्यते ।

अपिच तादृशपरिज्ञानेन लब्धबिरुद एव चिकित्सकपदवीमधिरोढुमीष्टे । ततश्च राजानुमतिमुपलभ्य बहिरंगचिकित्सासु प्रतिकर्तुं यतनीयम् नान्यथेति सुश्रुतसूत्रविशिखानुप्रवेशनीयाध्याये ‘‘राजानुज्ञातेन” इत्यादिवाक्यैः स्फुटमेव प्रतीयते । राजानुमतेनापिसंशमाक्रांतफलेषु मूढगर्भादिचिकित्सितेषु तात्कालिकीं राज्ञानुमतिं पृष्टवैव शस्त्रमवचारणीयमिति “अथापृच्छेश्वरं वैद्यः” इत्यादि वचनैर्मुक्तकण्टमवादीत्सुश्रुताचार्यः ।

उपरिनिबद्धैः निबंधनैर्वैद्यकशासनं तदनुसरणं च चिरादपि कालात्सदाचरणमनुभवतीति विज्ञायते । एवमत्युन्नतां गतिमवलंब्य सर्वतः प्रचारितोयं सांगायुर्वेदः अद्यतने काले राजावलंबनादिराहित्यदोषेण विरलप्रचारः कामपि अनवस्थितां दशामनुभवतीति वक्तुमपि नोत्सहते मे चेतः । तादृशीं भगवतीमिमां आयुर्वेदविद्यांतमोग्रस्तामिव चंद्रप्रभामुद्दिधीर्षवः अस्मदीयाः भारतीयाः सकलेष्वपि देशेषु तदुचितानुद्यमान् कर्तुं प्रोत्सहंते । अतीतदशवत्सरप्रभृति अनेन विद्यापीठेन महासंमेलने क्रियमाणं कार्यंजातं जानन्त्येव तत्रभवन्तः महोदयाः । पुनानगरे प्रवृत्तमहासंमेलने आयुर्वेदसंबन्धिनी काचन निबन्धनापद्धतिरुपक्रांता । तस्याः अभिवृद्धये अप्रमत्तैरस्माभिः प्रयतितव्यं लक्ष्यपरिज्ञानमनुसृत्य सुशिक्षितानां वैद्यानां संख्याधिकता यदा भवेत्

तदैवायुर्वेदीयानि निबन्धनानि चिकित्साविधानानि च सर्वतः प्रचारयितुं वयं शक्नुमः ।

शासनानि ।

आर्यमहोदयाः !

उपान्तप्रदर्शितैः चरकसुश्रुतादिवाक्यैः आतुरालयादिनिर्माणं तदनुसरणे कर्मपरिशीलनपद्धतिः तदनुबन्धतया आरोग्यपरिपालनं च चिरादपि कालात् प्रचारितमासीदिति विज्ञायते; तामेव सरणिमनुसरद्भिः कैरपि आतुरालयादीनि निरमायिषतेति शासनैः अवगच्छामः । पुरा किल अशोकस्य परिपालनावसरे न केवलं मनुजमात्रोपयोगीति, अपितु पश्वादिजन्तूनामपि संरक्षणदक्षाणि आतुरालयादीनि निर्मितानीति तदीयशासनेष्वेकतरेणावगम्यते ।

वीरचोलातुरालयशासनम् !

शासनेषु तेषु वीरचोलातुरालयनाम्ना विख्यातमेकं प्राथमिकमित्यनुमीयते । शासनमिदं चोलदेशाधीशेन राजकेसरिवीरराजेन्द्रदेवनाम्ना नरपतिना (१०६२—६७) क्रैस्तवशके प्रतिष्ठितम् । तेनैव निर्मितायाः विष्ण्वालयानुबन्धिन्याः संस्कृतपाठशालायाः संबन्धी तत्र अध्येतृणामारोग्यपरिपोषणचणः एकः आतुरालयोऽपि स्थापितः । तत्र पंचदशातुराणाम् उचितवसतिः चिकित्सोपयोगीनि द्रव्याणि चिकित्सकः परिकर्मिणश्च नियुक्ताः ।

तथाहि— कायचिकित्सकः एकः । अन्यस्तु शल्यचिकित्सकः । द्वौ पुरुषपरिचारकौ स्त्रीपरिचारिके अपि द्वे. ओषधि प्रभृति द्रव्यजातमानेतुमेकः परिचारकः । अन्यस्तु औषधपाकादि निर्वर्तयितुं नियुक्तः पाकादिक्रियोपयोज्यानां पात्राणां परिकल्पनार्थं कुलाल एकः । रुग्णानां परिधानीयादि संशोधकः एको रजकः नियोजितः । आलयपरिपालनार्थं दौवारिक एको नियमितः वत्सरपर्यन्तमुपयोग्यानां तैलघृतासवादीनामुपकल्पनाय आवश्यकं द्रव्यजातं, उपरिप्रदर्शितानां वेतनादिविशेषाश्च प्रतिपादिताः; आतुरालयस्य धर्मतः परिपालनार्थं कार्यनिर्वाहकसंघोपि निर्दिष्टः । एवमादीनि विवरणानि तस्मिन्नेव शासने विलिखितानि दृश्यन्ते ।

मलकापुरशासनम्

अस्मिन् चेन्नपुरराष्ट्रे गुटूंरुमंडलांतर्वर्तिनि मंगलगिरिपरिसरे मलकापुरग्रामे प्रतिष्ठितमेकं शासनं परिदृश्यते । शासनमिदम् एकादशक्रैस्तवशताब्दमध्यवर्तिनि काले काकतीयवंशजातेन गणपतिदेवेन निरमायि । अयं हि धर्मरतः अग्रहारमेकं विरचय्य केषांचिदार्याणां वृत्यादिकं निर्णीय तत्र अधिवसतां स्वास्थ्यपरिपालनार्थं आरोग्यशालां प्रसूत्यालयं च परिकल्प्य तेषां चिरकालप्रवर्तनाय कानिचिन्निबन्धनान्यकरोदिति

"प्रसूत्यारोग्यशालाभ्याम्"
"पंचव्याख्याकृतो वैद्यः"
"प्रत्येकं पुट्टिकाद्वयम्"

इत्येतैः शासनविलिखितैः वाक्यैरवगम्यते ।

इतरशासनानिः—

एवमादीनि आतुरालयादीनां विवरणशासनानि मदीये ह्यायुर्वेदीयशासनपुस्तके निपुणमुपपादितानि ।

उपरि निर्दिष्टशासनविमर्शनेन तस्मिन् काले प्रवृत्तः शस्त्रचिकित्साप्रचारः सूच्यते । स्त्रीपरिचारकनियोजनेन रोगिणां परिचरणे स्त्रीणामेव प्रीतिपूर्वकप्रवृत्तिस्सम्भवतीति, तादृशक्रिया-

करणदक्षाः विद्यावत्यश्च योषितस्समभूवन् इति विज्ञायते। नह्येतत्सर्वं पाश्चात्यकवैद्यप्रचारेणैवोपलब्धं पुरेतिवक्तुमवकाशः एवं किल मन्वते केचन पाश्चात्यवैद्याः "स्वीययैववैद्यकविद्यया आतुरालयादीनां प्रचारः लोके परिदृश्यते। नहीतः पूर्वम् भारतीयैर्विज्ञातमेतद्विषयजातम्" इति चिरन्तनैश्चरकादिभिराचार्यैः प्रदर्शितेषु राजवर्यैः प्रचारमुपनीतेषु च विषयेषु वयमेवाग्रेसराः तत्प्रवर्तका इति साभिमानं वदताम् अधुनातनानां जल्पितानि आत्मस्तुतिमात्रपर्यवसन्नानीति वक्तुं को वा प्रत्यवायः।

मान्याः! एवं विधानि शासनानि वैद्यकप्रतिपादकानि वहूनि संति; तत्रैकम् "११९१" क्रैस्तवशके निर्मितं नंदलूरुशासनम्।

(१७६८) क्रैस्तवशके निष्पन्नं अक्कलपूडिशासनं; (१४२३) क्रैस्तवशके कल्वयेरु शासनम्।

अंतिमशासनद्वयं विषचिकित्साकौशलं निरीक्ष्य तदर्थं कल्पितमिति तस्मिन्नेव शासने विलिखितमस्ति। एवमादीनि शासनानि वैद्यकविद्योपयोगीनि मन्ये तत्र तत्र बहूनि संतीति।

शासनान्वेषणक्रियासु नियुक्ताः राजकीयाः एतदन्वेषणाय यदि यतेरन् भारतीयानामत्यन्तोपयोगीनि वैद्यकविषयजातानि तूर्णमेव वैद्यानामितरेषां च अत्यंतमुपकुर्युरिति विश्वसिमि। आर्याः प्रियसोदरवर्याः!

वस्तुगणपाठ विमर्शनम्

एतावता प्रबन्धेनाऽयुर्वेदचिकित्साभ्यासप्रधानोपयोगिनामन्यतमं शारीरकविभागज्ञानं तद्बोधनापद्धतिं चाधिकृत्य यथोचितं निरूपितमासीत्। इतश्च चिकित्साविधानेषु प्रधानभूतानां द्रव्याणां गणपाठानुद्दिश्य किञ्चिद्विमर्शना कर्तुमुत्सहते मे मनः—

चरकसुश्रुतादयः औषधोपयोगीनि द्रव्याणि खनिजप्राणिजकाष्ठौषधभेदेन त्रिधा विभज्याऽग्रहिषुः। तेषां स्वरूपपरिज्ञानं तापसगोपालकिरातादिमुखेनाऽवगन्तव्यमिति प्रतिपादितत्। उक्तंहि सुश्रुतेः—

"किरातास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यः भेषजव्यक्तिरिष्यते॥" इति।

तत्र काष्ठौषधानि ओषधि वनस्पति वीरुत् वानस्पत्येति भेदेन चतुर्धा विभक्तानि। खनिजानि महारस साधारणरस लोहादिभेदेन पर्यगणयन्। प्राणिजानि च महामृगादिभेदेनाऽष्टधोपदिष्टानि। एतानि द्रव्यजातानि तत्तदाश्रितेन प्रमाणेन वर्णनाऽऽकृत्यानामभेदेन जात्या च परिज्ञातव्यानीति पञ्चोपायानुपादिशन्। तैरुपायैस्स्वरूपतो वस्तूपलभ्य प्राणिनामनेकशो उपयुज्य तदाश्रिताणान्त्रसवीर्यविपाकप्रभावास्तदधिष्ठितान्दीपनपाचनादिशक्तिविशेषांश्चाऽऽबोधिषुः ओषधीनां स्वरूपनिरूपणसमये तत्तदवयवविन्यासभेदेनाऽयं द्विपत्रोऽस्य पत्राणिस्निग्धानि इदं च पत्ररहितम् इत्यादिभेदान्विशिष्य प्रादर्शयन्। प्रमाणत इदं पञ्चरत्नि विस्तृतम्। मूले द्व्यङ्गुलायतमिति, आकृत्याऽयंसर्पाकारो हंसपादमविच्छिन्नपत्रः इत्यादिभेदैस्तत्तद्ववस्तुबोधकचिह्नानि सम्यङ्निरूपितानि।

भगवांश्चरकाचार्यं ओषधीनां परिगणनसमये विरेचन द्रव्याणि षट्शतानीति पर्यगणयत्। सुश्रुतवाग्भटयोरियती संख्या न दृश्यते। चिकित्सासौकर्यार्थं चरकादिभिराचार्यैर्द्रव्याणि गणशोविभज्य प्रदर्शितानि। ते गणास्सप्तत्रिंशतिसंख्याका भवन्तीति सुश्रुतेन प्रत्यपादि। वाग्भटाचार्य-

त्रयस्त्रिंशदित्यवदत् । चरकमते एतदुभयापेक्षयाऽऽधिक्यं दृश्यते । चरकसुश्रुतवाग्भटानां वर्गीकरणविषये परस्परभेदोदृश्यते । तन्नेदमधिकृत्य किञ्चिद्विमृश्य प्रदर्श्यते ।

चरकसूत्रस्थाने चतुर्थाऽध्याये प्रतिपादितो जीवनीयादिगणिवाग्भटेन जीवन्त्यादिगण इति निरूपितः । तमेवगणं सुश्रुताचार्यः काकोल्यादिनाम्नाऽग्रहीत् । एतेषां त्रयाणामपि मते नामतः भेदः परिदृश्यते क्लृप्तपरिगणितानां पदार्थानामपिपरस्पर भेदः स्फुरति ।

सुश्रुते—आमलक्यादिलाक्षादि प्रभृतयो गणा उपवर्णिताः, वाग्भटे भद्रादार्वादि दूर्वादिप्रभृतयो निरूपिताः । एतेषां परस्परभेदोऽतीव दृश्यते ।

सुरसादिगणस्सौश्रुते वाग्भटे च गृहीतः । तत्र सुश्रुतेन सुमुखखरपुष्पनिर्गुण्डी प्राचीबलेत्येति अधिकतया नियोजिताः ।

वेल्लादिगणे चरकसंगृहीतेषु वस्तुषु लशुन हरिद्रा तुन्दुरु सुरसा कुठेरक फणिज्जक ज्योतिष्मती सैन्धवा ऽजाजीप्रभृतीनुत्सृज्य वाग्भटस्स्वजीगणत् । एवमेव चरकसुश्रुतवाग्भटानां वर्गीकरणे तत्तद्वर्गीयद्रव्येषु च महान्भेदो दृश्यते । चरकसुश्रुतोपदिष्टेषु पदार्थेषु स्नेहादिवर्गगताः मांसबर्गप्रभृतिषु परिगणिताश्च पदार्थाः केचन वाग्भटेन परित्यक्ताः ।

सङ्घाङ्गीकृतवर्गाः ।

चरकसुश्रुतवाग्भटेषु तत्तद्वर्गेषु निरूपिताः पदार्थाश्चिकित्सासूपयुज्यमानाश्च तत्तद्ग्रन्थकर्तृणां समये विमर्शनाबलेन प्राचीनैस्संघाङ्गीकृतानङ्गीकृतभेदेन द्विधा विभक्ता इति वक्तुमवकाशो लभ्यते । तत्र लक्षणे प्रत्येकं निर्णीतेषु वर्गेषु संगृहीतानां पदार्थानां परस्परभेदः परिदृश्यते अयं च भेदस्तन्त्रकाराणां विमर्शनाबलेन देशकालाद्यनुगुणं केषांचिद्द्रव्याणां त्यागेन सग्रहेण च समजनीति द्योत्यते । लक्षणेषु ये परिगणिता वर्गीयद्रव्यनिचयास्तेषामेव चिकित्सासु उपयोगोदृश्यते ग्रन्थेषु एतेनैतन्निश्चीयते, प्राचीनाः ग्रन्थरचनासमये केचन संघीभूय प्राचीनतन्त्रेषु परिगणितान् कालाद्यनुगुणं कांश्चन विहायाऽन्यास्संगृह्यच तैरेव नामभिर्वर्गान्परिगणय्य तन्त्रेषु ग्रथयन्त आसन् । तेषामेव द्रव्याणां संघांगीकृतता संभवति ।

संघानांगीकृतवर्गाः

प्राचीनवर्गीयेभ्य इतराणि सर्पनिर्मोक श्वानास्थि गोचर्म हस्तिदन्त मार्जालविष्ठा प्रभृतीनि द्रव्याणि तदधिष्ठितगुणवीर्यादिभिश्चिकित्सोपयोगितामुपलक्ष्य नवीनतया संगृह्य तत्तदुपयोग्येषु चिकित्सासु प्रायुङ्क्केचन तन्त्रकाराः । एतानि स्वानुभवेनैव चिकित्सोपयोगितां सम्यगनुमीय नवीनां कांचन सरणीमवलंब्य लोकोपकृतये संयोजितानि । न हि बहवस्सम्भूयैककण्ठ्येन पर्यालोच्य निरणेषुः ।

अस्मादेव हेतोरेवंविधानि संघानङ्गीकृतानीत्युच्यन्ते । ईदृश्यः द्रव्यसन्ततयः तत्तद्देशीयवैद्यकवरैः क्रमेण उपयुज्यमानाः प्रदर्शितफलाः यदि भवेयुः; तदा संघाङ्गीकृतेष्वन्तर्भूता एव भवितुमर्हन्ति । तथैव दृश्यन्ते केचन क्रमोपयोगेन संघाङ्गीकृताः पदार्थाः । अष्टनवत्युत्तर अष्टशताधिके सहस्रे वत्सरे (१८९८) सिद्धान्तिते ब्रिटिश फर्माकोपिया, नामकग्रन्थे अजण्डनामकप्रकरणे प्रदर्शितवस्तुजातानि चतुर्दशोत्तरनवशताधिके सहस्रे वत्सरे सिद्धान्तिते ब्रिटिशफर्माकोपिया ग्रन्थे संघाङ्गीकारेण अनुमतान्युपलभ्यन्ते । तत्रैव पूर्वाङ्गीकृतेषु केषुचिद्वस्तुषु भूसार ऋतुदोषादिकृतं गुणवैपरीत्यमुपलक्ष्य पर्यत्यजन् । एवमेव अनेकैः भिषग्वरैः उपयुज्यमानानि

गुणोत्तराणि यदि भवेयुः तानि अवश्यं संघैरनुमतानिभवेयुः अनया दिशा प्राचीन ऋषिपुङ्गवैः चरकसुश्रुतादिभिः परिगणितेषु वर्गेषु ऋतुकालादिजनितवैपरीत्यं प्रत्यक्षत उपलभ्य केषां चिद्वस्तूनां त्यागः, अन्येषां संयोगश्च दृश्यते इति निश्चिनुमः। समंजसंचैतत्, यतः—न्यग्रोधः मूत्रसंग्राहीति चरकेण गृहीतः। तस्मिन्नेव वस्तुनि रक्तपित्तदाहमेदोहरत्वादिगुणान्, योनिदोषहरत्वं, व्रणेषु हितकारित्वं च समुन्नीय सुश्रुतः प्रकाशितवान्। अन्येपि ये केचन गुणग्राहिणः एतादृशेषु अनधिगतपूर्वान् अन्यानपि गुणान् स्वानुभवेन विमृश्य निश्चिनुयुः। तर्हितेषामपि लोके प्रचारः भवेदिति मन्ये। एतादृशे विषये चराचर वस्तुजालनिर्मात्रा भगवता निर्मिता अनिर्वचनीया शक्तिरेव गरीयसी जागर्ति कारणम्। एवं किल दृश्यते लोके—निर्दुष्टे तपनीये गुणाधिकतां उपलभमानैः प्रज्ञाबलेन उच्चावचान्याभरणानि बहुधा निर्मीयन्ते; अलंक्रियन्ते तैरेव तत्तत्समुचितान्यङ्गानि।

परिशोधनानि

उपरि प्रदर्शित नयेन प्राचीनैस्सविमर्शं सङ्गृहीताः पदार्थाः अदूरद्विसहस्रसंख्याकाः भवेयुः। तेषां परिशोधनविषये आचार्याणां कौशलं स्मरणमात्रेण सर्वेषां विस्मयमुत्पादयति। सर्वाण्यपि द्रव्याणि रसवीर्यादिभिः उपनिबद्धानि तत्तदुचितदीपनपाचनादि क्रियासु उपयुज्यमानानि न कदापि व्यभिचरन्ति। तत्तु द्रव्यमधिकृत्य रसवीर्यादयः त्रैकालिकज्ञानसंपन्नैः ऋषिपुङ्गवैः चिरन्तनात् कालात् पूर्वं निर्णीता अपि एतत्कालावधि न कदापि व्यत्यासमधितिष्ठन्ति।

भोजनोत्तरकाले आमाशयमुपगतानां द्रव्याणां परिणामसमुद्भूताः कटु-अम्ल-मधुर-विपाकाः प्राचीनैर्निपुणमुन्नीताः, एतादृशेपरिज्ञाने आचार्याणां शारीरकपरिज्ञानेन अवश्यं बलवता कौशलेन भवितव्यम्। एवंविध परिज्ञानेन विमर्शनेन च सिद्धान्तितद्रव्याश्रित रसवीर्यादीनां त्रिदोषस्यापि सम्बन्धमुपकल्प्य दोषसाम्यं च तैरेव द्रव्यैः जायेतेति निरणैषुः।

रसशालाः

उपरि निरूपितानां उपयुज्यमानपदार्थानां कल्कक्वाथादि परिकल्पनाय सिन्दूरभस्मादि परिणामान्तरमुपकल्पयितुं, सिद्धानामौषधानां शुद्धाशुद्धपरीक्षणाय च रसशालाः निर्माय तत्र तथोक्तेन विधिना तत्तत्परिकल्पनेन अबोधयन्निति स्फुटमेव प्रतीयते। तथाचोक्तं रसार्णवे रसरत्नाकरे चः—

"स्वहस्तेन कृतं सम्यक् जारणं न श्रुतं मया।
स्वहस्तभवयोगेन कृतं सम्यक् श्रुतेन हि।
धातुबन्ध स्तृतीयोऽसौ स्वहस्तेन कृतो मया।
दृष्टप्रत्यययोगोयं कथितो नात्र संशयः।
यद्यद्गुरुमुखाज्ज्ञातं स्वानुभूतं च यन्मया।" इति

तत्रैव रसशाला निर्माणप्रकारः परिशोधन साधनानि यन्त्रादीनि बहुधा उपवर्णितानि दृश्यन्ते इति वैद्यविद्यानिपुणैः भवद्भिः ज्ञायत एव।

आर्याः! औषधनिर्माणे वस्तुपरिशोधनादिविषये आवश्यकाः रसशालादि निर्माण विधानादयः यन्त्रादिसाधनविशेषाश्च अस्मदीयैः परमाचार्यैः निपुणमुपवर्णिताः किल। अधुनातनाः

प्राचीनैः रसशालादि विषयाः न परिज्ञाताः, अपरीक्षितान्येव औषधानि इति जल्पमानाः विस्मयमुत्पादयन्ति मनसि ।

सिद्धौषध परिज्ञानं

रसशालासु तत्तद्विधानमनुसृत्य सिद्धान्यौषधानि अग्निनिक्षेपणेन घर्षणेन तोलनादिना सम्यक् परीक्ष्य प्राचीनैः तत्तत्क्रियासु उपयुक्तानीति प्रमाणवचनानि दृश्यन्ते ।

"रसौषधानि सर्वाणि त्वग्निमध्ये विनिक्षिपेत् ।
किंचिद्गन्धं धूमयुक्तं रसयुक्तं सुपाचितम् ॥
वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति ।
घर्षणे रक्तवर्णं स्यात् सिन्दूरं तत् प्रशस्यते ॥
चांपेयकुसुमाभासं तद्गन्धेन च संयुतम् ।
लघुवारितरं श्लक्ष्णं वसन्तकुसुमाकरम् ॥" इत्यादि ॥

आर्याः वैद्यविशारदाः !

ज्ञानगरिष्ठाः प्राचीनऋषिपुङ्गवाः एवमादिभिः परिशोधनैः विमर्शनैश्च स्वप्रतिभाकौशलेन अपूर्वानपिविषयान् रचनापद्धतीश्च विज्ञाय शिष्यगणायोपदिशन्तः स्वनिबन्धनेष्वासंजयन्तः आयुर्वेदविद्याम् अनुदिनमऽवर्धयन्निति स्फुटतरमेव प्रतीमः । प्राचीनाचरितोऽयमाचारः स्मृति पथादपेतः आचरणदूर एव अभूदिति जनयति मनसः वैलक्ष्यमस्माकम् ।

स्त्रीवैद्यक शिक्षणम्

मान्याः !

नवनागरिकतायाः परमां कोटिमुपगतेऽस्मिन् काले–पाश्चात्याः काश्चन नारीमणयः वैद्यकपद्धतिषु सुशिक्षिताः अभ्यस्तकौशलाः चिकित्सामाचरन्तीति विदितमेवास्माकम् । तादृशं नैपुण्यमस्मदीयानां भारतधरावलयमलंकुर्वतीनां आचारदूरमासीत् । अयमपि स्त्रीवैद्यकशिक्षणाचारः भारतीयानामनभ्यस्तपूर्वः अश्रुतचर इति, पाश्चात्यवैद्यकपद्धतिषु स्त्रीवैद्यकशिक्षणमुपलक्ष्य भारतीयेष्वपि काचन तादृशी पद्धतिः तत्रतत्रेदानीमंकूरयतीति पाश्चात्यवैद्याभिमानिनः अभिमन्वते । इदमप्येकम् स्वोत्कर्षप्रविलसितम् । पुरातनेष्वार्षेषु तंत्रेषु स्त्रीणां प्रसूतिसमये तत्परिरक्षणाय वयोवृद्धाः प्रजमनदक्षाः परिकर्तितनखाः स्त्रियो नियोक्तव्या इति बहुधा प्रतिपादितम् । तदुक्तं सुश्रुते "चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः परिकर्तितनखाः परिचरेयुः इति (सुश्रुत, शा, अ, १०) ।

अपिच मूढगर्भशल्योद्धरणोचिताः योनि यकृत्प्लीहांत्रविवरगर्भाशयानां मध्यप्रदेशे कर्तव्याः स्पर्शेन उत्कर्षणापकर्षणादयः सुश्रुते चोपवर्णिताः । योनि व्यापद्रोगेषु दुःस्थित संवृतनिःसृतविवृत स्थानाय वृत्ताभिधेषु कर्तव्यानि विविधानि सुष्ठूपदिदेश भगवान् चरकः । तत्र "पाणिना नामयेजिह्मा" मित्यादि वाक्यैर्हस्तप्रसारणादिकर्तव्यानि क्रियांतराणि बहुधा निरूपितानि । नहीदृशाः विकाराः हस्तकौशलेन विना औषधैरेव केवलं साधयितुं शक्येरन् । न वा अनधीतशास्त्राः अपरिचितकर्मपथाश्च एवंप्रकारेषु दुःसाध्येषु रोगेषु चिकित्सितुमुद्युञ्जानाः सफलोद्यमा भवेयुः ; नापीदृशेष्वापत्सु विधिदुर्विलसितेन समुपस्थितास्वपि आभ्यन्तरे अनुपलक्ष्ये एक·

देशे पुरुषैश्चिकित्सामुपलभ्य जीवितुमुत्सहेरन् मानवत्याः। लज्जैव हि भूषणानामप्यलंकारो मानिनीनां सहजोऽकृत्रिमश्च भवति।

अतः प्रसूतिसमयेषु मूढगर्भादिषु आंतरंगिकेषु विकारेषु अधिगतशास्त्राः अभ्यस्तकर्माणः समयोचितकृत्यनिपुणाः स्त्रियः प्रतिविधातुमवश्यं नियोजनीयाः अयं च समुदाचारः शिष्टैरनुज्ञातः आर्यैरादृतश्चेति किल पूर्वोदितैश्चरकादिवाक्यैरवगच्छामः। द्रढयति चेवमेव पक्षम् ''कुशला पाणिनाभ्यक्तेन हरेत्'' इत्यादि वाग्भटवाक्यजातम् ''कुशला तद्व्यापारनिपुणा, योषित्, पाणिना सर्पिषाभ्यक्तेन तां हरेत्'' इति तदीयव्याख्यावसरे अरुणदत्तवाक्यम्। न केवलमागममात्रेणानुगृहीतः, अपिचाचारपरं परास्वनुस्यूत इत्यपि उपरिप्रदर्शित वीरचोलशासनेन आतुरपरिचरणार्थं स्त्रीजननियोजनबोधकेन जानीमः।

एवं सन्मूलः सदाचरणानुगतोप्ययम् स्त्रीवैद्यकशिक्षणक्रमः अनतिचिरात्कालादारभ्य विस्मृतः अनादृतश्चेतीदमेकं विचारस्थानम्।

नवनागरकविराजिते अस्मिन् काले क्रियासु निपुणाः पाश्चात्यवैद्यविद्याविदुष्यः राजकीयानि स्त्रीवैद्यसदनानि च यदि न भवेयुः तदा सोदर्यविशेषाणाम् भारतयुवतीमतल्लिकानां प्रसूत्यादिसमयेषु मूढगर्भादिषु समुपजातेषु का वा परिस्थितिः? किं वा शरणं, कः प्रतिविधेय उपायः इति? दयमानाः तत्र भवन्त एव विदांकुर्वंतु एकाग्रेण चेतसा। एतस्मिन् विषये राजकीयनियोगः अतितरामुपकुरुत एवास्माकम्। तथापि विपुलतरे अस्मिन् भारते विद्यमानानां योषितामुपकर्तुं न पर्याप्तोयं राजकीयस्त्रीवैद्यकसमुदायः सदाचारपरायणः काश्चन भारतनारीमणयः वैदेशिकाचारभूयिष्ठामिमां चिकित्सासरणिमसहमानाः कुसुमकोमलं शरीरं दुःसाध्यैर्व्याधिसमूहैः दूषयंति, विपद्यन्ते च केवलम्।

आर्याः! एतादृशींमनर्थपरंपराम् सम्यगाकलय्य वयमितः संभूयार्षसंमतं सदाचरितं सद्यः प्राणरक्षणदक्षं च भगवन्निर्मितमायुराम्नायं भारतसोदरीमणीनां साभ्यासमुपदिश्य जगद्वनाय प्रयतेमहि।

अस्मत्प्रियमित्रवरः नासिकापुरनिवासी वैद्याचार्यः कृष्णशास्त्री महाशयः अस्मिन्नेव कार्ये बद्धादरः स्त्रीणां वैद्यकपद्धतिं वोधयतीति विदितमेवास्माभिः। एतादृशे कार्योद्यमे तेषां महांतमुत्साहनभिवर्धयद्भिवश्यं कृतज्ञैर्भवितव्यम्।

गैर्वाण्यां वाण्यां आयुर्वेदीयेषु विधानेषु च सहजनिपुणानां केरलीयानां स्त्रीणामतितरामुत्साहः अवश्यं संपद्येतेति विश्वसिमि। तासामेव प्रोत्साहपरिकल्पनेन शास्त्रीयां सरणिमूरीकृत्याभ्यासे यदि प्रयतेमहि तर्हि तूर्णमेवायमाचारः सर्वतः प्रसृतो भवेदिति मन्ये।

संस्करणम्

आर्याः! सोदरवर्याः!

एतावता आयुर्वेदीयानां कांश्चन विषयानधिकृत्ययथौपयिकमसूसुचम्। इतः परमायुर्वेदसंस्करणमुद्दिश्य प्रत्यवतिष्ठामहे। अस्मिन्विषये केचनैवंसंविवदन्तिः—बहोः कालात्पूर्वं मुन्नतां पदवीमाश्रित्य जनोपकृतिदक्षाण्यप्यायुर्वेदविधानानि इदानींतने काले उपयोगार्हाणि न भवंतीति केचिदनुमन्वते। तान्येवैतत्कालाद्यनुगुणं संस्कारासंजितानि फलवन्ति भवेयुरिति केचिदनुमोदन्ते। अपरे केचिद्यथाश्रुताभिमानिनः अतीतानागतवेदिभिः ब्रह्मज्ञानिभिः मुनिवरैः कालत्रयानुगुणमुपलक्षितानि उपनिबद्धानि चेमानि न कदापि संस्करणमपेक्षंत इत्यभिमन्यंते। अवश्यमेतदस्माभिर्विमृश्य सिद्धांतयितुं यत्नः करणीयः।

पुरातनेपि काले तंत्रकाराः संघीभूय तत्तद्विषयान् प्राचीननिबद्धानपि देशकालाद्यनुसरणानुरोधेन संस्कृत्य सिद्धांतान् ग्रंथेष्वाससंज्ञुरिति द्रव्यपरिशीलनावसरे उपरि प्रदर्शितमासीत् ।

एतदेव बोधयति संस्करणपद्धतिः प्राचीनैरप्युररीकृता, निपुणमाचरितेति, संस्करणसमये न केवलमस्मदीयं विज्ञानमेवानुसृतं, अपितु द्वीपान्तरेषु प्रथितम् आचरितं च विज्ञानमवलम्बय संस्कुर्वन्त आसन्निति हेतुभिरनेकैरनुश्रृणुमः । द्वीपान्तरे प्रसिद्धेऽपि रोमकलवणे गुणाधिकतामालोच्य भगवता चरकेण तमधिकृत्य स्वग्रन्थे प्रतिपादितम् । अनार्यदेशसुप्रसिद्धा अनार्योक्तिषु श्रुतादिभिः सुगृहीता । यावनसरण्यां प्रख्यातिमुपगतान् रेवाचीनी खस्-खसमाचीफलफिरंगादीनुपादाय तेषां रसवीर्यविपाकादीनुपलक्ष्य सम्यक् न्यरूपयत् भावमिश्रः । निदानेषु फिरंग स्नायुकप्रभृति रोगानुद्दिश्य निदानपूर्वरूपादीन् विशदमवर्णयत् आधुनिकेषु ग्रन्थेषु, एवमादिभिः कारणैः प्राचीनानां संस्करणसमये गुणैकग्राहितां परिशीलन चातुरीमनन्यादृशीं प्रतीमः । तमेव पन्थानमनुसरद्भिरस्माभिः एतत्कालौचित्यमनतिक्रम्य काचन पद्धतिः आयुर्वेदीयसंस्करणाय अवश्यमन्वेषणीयेति प्रचीनाचरितेषु अनुगृहीतेषु मार्गेषु संचरतादस्माकं न कदापि प्रत्यवायी हानिर्वा जायेतेति स्फुटतरमभिधास्ये ।

शस्त्रचिकित्सा संस्करणम्

अपिच शस्त्रचिकित्सा विधानानि तत्साधनानि यन्त्र शस्त्रादीनि शारीरिकपरीक्षणविधानानि च केवलम् ग्रन्थमात्रप्रतिनिबद्धानि अतिक्रान्तकर्मपथानि दृश्यन्ते । शास्त्रे निरवद्यं परिज्ञानमुपलभ्यापि तदाचरणे निरुत्सुकानामस्माकं न्यूनतैव गरीयसी सर्वकार्यपरिपन्थिनी जागर्तीति प्रतिजाने । इदानीम् शल्यतंत्रप्रक्रियासु निपुणानाम् आंग्लवैद्यनिष्णातानां सुश्रुतादिनिबद्धानि शल्यतंत्रविधानानि शारीरकपरिज्ञानं चोपदिश्य तेन मूलेन प्रचारमुपनेतव्यानीति मे बलवानभिनिवेशः :

इतरे संस्करणविशेषाः

आयुर्वेदनिबन्धनानुसारेण रसशालाः निर्माय चिकित्सोपयोज्यानां पदार्थानां सिद्धौषधीनां च परीक्षणमवश्यं विधेयं । आधुनिकरसायनशास्त्रमुपादाय तदनुसारेण वस्तूनि शोधनीयानीति केषांचिदाशयः । अधुनातन पद्धत्यवलम्बनेपि परिशोधनेनावगतानां विशेषाणां प्रकाशनं आयुर्वेदीयपरिभाषा अनतिक्रम्य यदि भवेत् तदा न कापि हानिरिति मे मतिः ।

मिथ्याहारादिसंजातानां रोगाणामुत्पत्यनन्तरं चिकित्सितुम् यतन्ते भूयसास्मिन्काले उत्पत्तेः प्रागेव तदनुत्पादकानामाचाराणामनुसरणं समुचितमिति आयुर्वेदाचार्याणाम् धर्मशास्त्रादिरचयितृणां च बलवानुद्देशः तदुपायाः चरकादिभिराचर्यैः स्वस्थवृत्ते मुनिवरैः मन्वादिषु स्मृतिषु अनेकशो निरूपिताः । तेषामाचारपथे प्रवर्तनं विना न हि संस्कारान्तरमन्वेषणीयम् प्राचीनैस्सन्दर्शितान् स्वस्थवृत्तसंरक्षणोपायान् दूरीकृत्य, आर्यसदाचारविरुद्धान् भारतीयानाम् शीतोष्णपरिस्थितेः प्रत्यनीकान् असात्म्यान् वैदेशिकपरिकल्पितान् आरोग्यरक्षणोपदेशानादृत्य तेषाम् परिशीलनेन मारिविषूच्यादिक्रूररोगव्याघ्रमुखेषु पतन्त्यस्मदीया इति शोचनीयमेतत् । इतः परं लब्धावबोधैरस्माभिः प्राचीनसंदर्शितस्वारोग्यपरिपालनोपायानाम् समुचिताचारप्रवर्तनेन परिपोषणे प्रयतितव्यमवश्यम् ।

रोगनिदानादिसंस्करणविषये भावमिश्रादिसरणिमादृत्य एतस्मिन् काले सर्वतोविसृत्वरा-

णाम् । प्रशस्तिमुपगतानाम् आंग्लसंप्रदाये, बेरि, डिंगीफीवर् न्यूमोनिया, प्रभृतीनां क्रूरतराणां व्याधीनाम् निदानादिपरिकल्पने न संस्कृत्याचारनुप्रवेशनमावश्यकमिति मन्ये ।

एवमादीन् विषयानधिकृत्य विमर्शयितुमस्मिन् महासदसि महान्तमवकाशमुपकल्पयतां स्वागतकारिणीं सभामलंकुर्वतां महोदयानां समर्प्यते प्रणामसरणिरियम् ।

आयुर्वेदयूनानिवैद्यमेलनम्

आर्याः !

लोकेस्मिन् देशीयवैद्येषु यवनवैद्यविधानमपि जनानामत्यन्तमुपकुरुत इति सर्वैरपि विदितचरमेव, एतद्विधानमपि अत्युन्नताम् स्थितिमधिष्ठाया अनतिचिरात्कालात् राजावलम्बनराहित्यादिजनितदोषेण समालीढम् सत् आयुर्वेदस्यैव सहचरीभूय मन्दप्रचारमभूत् । एतद्विधानेषु रासायनिकवाजीकरणतन्त्रविहितानि औषधानि विराजन्ते बहूनि । तेषां गुणाः सर्वातिशायिनो भवन्ति । भावमिश्राचार्यः तन्निबद्धान्येव कानिचित् रेवाचीनाप्रभृतीनि; द्रव्याणि समग्रहीदिति पूर्वमवादिषम् । अस्मिन् सम्प्रदाये ततोपि बहूनि ग्राह्याणि संति वस्तूनि तानि । परिशोधनादिभिः संस्कृत्य आयुर्वेदीयेष्वासंजयितुम् अर्हाणि भवेयुः ।

आयुर्वेदवैद्याः यावनवैद्याश्च परस्परसम्मेलनेन समुचितं कार्यजातमालोच्य कर्तुं यदि यतेरन् तदादुर्घटान्यपि कृत्यानि कर्तुं समर्थाभवितुमर्हंतीति मन्ये संघानामेकीभावेन किल दुस्साध्यान्यपि कार्याणि सुखेन साधनीयानि भवंति ।

आर्याः !

एतावता विमर्शनेन आयुर्वेदीयसंस्करणमुद्दिश्य तत्तत्प्रमाणवचनैः आचारैश्च किंचिदुपपादितं मया विद्वद्वैद्यानां इदमेकं प्रधान करणीयम् । व्याधितानां चिकित्सोपयोगेन यत्प्राणसंरक्षणमिति उक्तं हि भगवता चरकेन—

"तदेवयुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठः रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥"

इत्येवमदीनि आचार्यसुशिक्षितानि मनसि निधाय जनानामारोग्यपरिपालने अस्माभिस्सर्वदायतनीयमिति विज्ञाप्यते मया ।

भेषजोद्यानानि

भिषक्पदमधितिष्ठता कुशलेन व्याधिपरिपीडितानां तत्त दुचितचिकित्साचरणेन आरोग्यपरिकल्पनाय अवश्यं यतनीयमयमेव प्राथमिको धर्मः यदार्तपरिपालनमिति उपरिष्टात् कैश्चिद्वाक्यजातैरवोचं सा च चिकित्सा निस्संशयं भेषजद्रव्यपरिज्ञानमनुवर्तते, तदुक्तं क्रियाकमीभेषजं लभेम" इति न ह्यजानता भेषजवस्तुभेदान् औषधनिर्माणे कौशलं लभ्यते संशयाक्रान्तानि भैषज्यानि किल कदाचिदन्यधीष्वयुक्तानि प्रतीपपरिणामानि भवेयुः । अद्यतने काले आचरणमनुप्रविष्टानामपि भेषजद्रव्याणां परिमाणे संशयसमालीढचेतसः मुह्यन्ति केचन विपश्चितोपि विपणिं गतेन यत्किंचन वस्तु नाम निर्दिश्य पुष्टः आपणिकः अवश्यं ददात्येव यच्च तेन दीयते तदेय वस्तुबिश्वसनीयं तदेववा अन्यद्वेति विवेचयितुं न शक्नोति वैद्यवरः तत्रापणिकवचनमेवैतेषमिति मन्तव्यम् । अयमेव वलवत्तरो लोपः चिकित्साकार्यपरिपंथी वैद्यकवरेषु जागर्ति अनेकावात्मज्ञानवतामपि महर्षीणां विज्ञानस्य कलंकः व्यापाद्यते तं च कलंकमपनेतुम् अन्वेषणोयः

कश्चिदुपायः भेषजद्रव्याणि तु तत्तदोचितकालेषु च समुत्पन्नानि सारवंति भवंतीति अनुश्रूयन्ते भिन्नदेशेषूत्पन्नानाम द्रव्याणां परिज्ञानमेकदा न हि संभवितुमर्हति अतः विविधेषु देशेषु उत्पन्नानामोषधीनां परिपोषणाय एकमोषधिप्रस्थम् निर्माय तत्रसर्वाऽप्यौषधयः निक्षिप्य परिपालनीयं तेन मूलेन सर्वासामप्योषधीनां निस्संशयं स्वरूपज्ञानमुद्भेयात् इदमेकम् प्रयाससाधनम् द्रव्यपरिज्ञानाय ।

वस्तुप्रदर्शनानि

अयमन्यः विविधदेशीयानां वस्तुनिचयानां परिज्ञाने साधीयानुपायः वस्तुप्रदर्शनशालाः निर्माय तत्र विविधदेशप्रथितानि द्रव्याणि आनाय्य तेषां सुप्रसिद्धानि नामानि गैर्वाण्यां देशभाषासु स्फुटं विलिख्य तत्तदवयवान् पृथग्विभज्य स्थापनीयानि । द्रव्यबोधनसमये तत्स्वरूपादीन् गुणादींश्चसम्यग्बोधयेदाचार्यः । प्राचीना अपि एवमेव वस्तुप्रदर्शनशालाः संस्थाप्य तन्मूलेन स्वाश्रितानां द्रव्यपरिज्ञानमजनयन्नित्यअनुश्शृणुमः । तदुक्तं तन्त्रेषु—

“अष्टाश्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः”
“पञ्चवर्णसुवर्णवत्”

इत्यादिवचनैः वैक्रान्तमाक्षिकादीनां लक्षणानि स्वरूपादिबोधकानि सुष्ठु उपवर्णितानि ।

हरीतकी सप्तविधेत्युपक्रम्य सप्तविधानामपि तेषां प्रत्येकपरिज्ञानाय पृथक् लक्षणानि एवमुपनिबद्धानि—

“विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया ।
जीवन्ती चेतकी चेति विज्ञेयास्सप्त जातयः ॥
अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ।
पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता ॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ।
त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥” इति ॥

एवं प्राचीनपद्धतिमनुसृत्य वस्तुस्वरूपबोधनार्थं भेषजोद्यानानि वस्तुप्रदर्शनशालाश्च आवश्यका भवन्ति । तदिदानींतनकालपरिस्थितिमनुचिन्त्य तत्परिकल्पनाय कश्चिदुपाय-श्चिन्तनीयः ।

आयुर्वेदवाङ्मयम्

लोके ऋषिवर्यैः प्रचारमुपनीतानां आयुर्वेदविषयाणां बोधकाः ग्रन्थराजाः परश्शतं चकासति । तेष्वनेके नाममात्रावसिष्टाः परिदृश्यन्ते । चरकसुश्रुताऽऽदिव्याख्याकारैः तत्तद्व्याख्यासु प्रदर्शितानि हरिचन्द्रजैज्जटचक्रपाणिप्रभृतीनां तन्त्राणि न हि इदानीं क्वाऽप्युपलभामहे । चिरन्तने काले उपनिबद्धाः जतूकर्ण, हारीत, पराशर, खरनादादि संहिताः रुग्घृदयसारादिसूत्रग्रन्थाश्च बहवः व्याख्याकारैः तत्रतत्र संगृहीतवाक्यमात्रा एवावशिष्यन्ते ।

चिरात् प्रवृत्तानां एवमादीनां अनुपलम्भेऽपि प्रख्यातिमुपगतैः अग्निवेशादिकृततन्त्रैः रक्तसंचलन वाक्सिनेषन् प्रभृतीन् विषयान् पाश्चात्यवैद्यकापेक्षया वयमेव प्रथमं जानीम इति प्रतिज्ञातुमलं प्रभवेम । उपरिनिर्दिष्टाः ग्रन्थाः यदि लभ्येरन् तदा एवमादिकाः प्रसिद्धिमनुपगता विषयाः विज्ञानगोचरा भवेयुरिति स्फुटमेव वदेयं । इदानीन्तनराजकीयपुस्तकान्वेषणशाखातः

अविदितचराः बहवो ग्रन्थाः संपादितास्तत्रतत्र पुस्तकभाण्डागारेषु प्रकाशमुपलभते। तत्रापि अष्टाङ्गानां बोधकानि पृथक् स्वतन्त्राणि तन्त्राणि न दृश्यन्ते। शालाक्य तन्त्र प्रधानाचार्येण विदेहेन रचितः ग्रन्थः तत्तद्व्याख्यासु उपात्तविषयमात्रमख्यातः श्रूयते।

इदानीमुपलभ्यमानेषु ग्रन्थेषु सूत्रात्मकः केचन समुल्लसन्ति। तत्र आयुर्वेदसूत्रनामक-ग्रन्थराजः मन्निकटे विद्यते। अयं च सप्तदशप्रश्नात्मकः अत्र प्रतिपादितानां विषयाणां पर्यालोचनेन असमग्रोयमित्यनुमिनोमि। अस्य पञ्चमप्रश्नमभिव्याप्य योगानन्दसनाथविरचिता व्याख्या चकास्ति मन्निकटे। महर्षिणा अगस्त्येन भगवता विरचितमस्य भाष्यमस्तीति प्रवादश्श्रूयते। अस्मिन् उपनिबद्धाः विषयाः चरकसुश्रुतादि प्रतिपादितानपि अतिशेरते। तेषु कानिचित् सूत्राणि निवेद्यन्ते भवतां समवधाने—

"लालारूपो रसादिभेदान्न विभज्य जिह्वया रसं गृह्णाति" (प्रश्न० २. सूत्र २२)

"मातृजं रक्तमांसमेदः, पितृजं मज्जास्थिरेतः" अ० १

"रक्तातिरिक्तपूर्णसिरा न वेध्याः" अ० २

"तास्सिराममर्मांशयगताः" अ० २

"सिरासृग्विभागविधिं ज्ञात्वा विमोचयेत्" अ० २

"एवमादीनि रम्यतमानि सूत्राणि विराजन्ते।

एतद्व्याख्यावसरे अनूद्य प्रतिपादितानि वाक्यानि भूयोवाग्भटे दृश्यन्ते। एतत्सजातीयाः रुग्घृदयसार रुग्विलास रुग्घृदयप्रभृतयः सूत्रात्मकाः ग्रन्थाः भौतिकविद्याविधानवाधकाः अनेके विलसंतीति तत्रतत्र व्याख्याग्रन्थेषु अनूदितस्सूत्रैरनुमातुमवकाशो विद्यते।

इयं च सूत्ररचनापद्धतिः दक्षिणभारते प्रवृत्तेति कैरपि हेतुभिरनुमीयते। दक्षिणभारते चतुः शतवत्सरेभ्यः प्राचीन काले प्रख्याताः बसवराजादयः स्वकीयेषु ग्रन्थेषु वातरोगप्रकरणे सूत्रग्रन्थेभ्यः अनेकानि सूत्राणि संगृह्य प्रादर्शयन्। सूत्रग्रन्थानां व्याख्याप्रणेतारोपि दक्षिणापथे प्रसिद्धा इत्येव विज्ञायते।

आर्याः—

न केवलमीदृशाः चिरन्तने काले प्रवृत्ताः सूत्रसंहितारूपाः ग्रन्था एव विलीनाः, परन्तु वत्सरसहस्रेभ्य अर्वाचीने काले प्रख्यातिमुपगतैः पशुपतिगौतम कुंभदत्त हस्तचारि श्रीधर पण्डित पूज्यपादादिभिरायुर्वेदनिपुणैर्विरचिता अपि ग्रन्थाः जलदमालान्तर्हितचन्द्रपादा इवान्तर्दधुः; इति विस्मयेनाक्रम्यते चेतः एवमन्तर्हितानां ग्रन्थानां संपादनाय बद्धपरिकरैरस्माभिः प्रयत्नैः काचिदुद्योगसरणिर्निर्णेतव्या। तादृशग्रन्थपर्यालोचनबलेनैवापूर्वान्विषयानुद्धृत्येदानींतनदेशकाला-द्यनुसारेणायुर्वेदीयान्विषयान्संस्कर्तुं वयं शक्नुमः।

एतत्कालिकाः केचिदायुर्वेदपारदृश्वानः अस्माकीनेषु निदानग्रन्थेषु 'जीर्णतां गतेन ज्वरेण प्लीहाभिवर्धते' इति न क्वाप्युपदिष्टम्। इदमपि पाश्चात्यपण्डितैर्निपुणमुपपादितमिति मन्वते। एकविंशति दिनावधि अनुगतो ज्वरः जीर्णतामुपगतः अन्तर्लीनः प्लीहानमभिवर्धवति; अग्निं च सादयतीति अर्थबोधकत् "त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः प्लीहाग्निसादं कुरुते" इदं जातूकर्ण वाक्यमनूद्य बृन्दमाधवव्याख्यावसरे श्रीकण्ठदत्तेन प्रत्यपादि। वचनमिदमनालोकयतां हि केषांचिदस्मदीयानां एवमादीन्यर्वाचीनैरेव समुन्नीतानि नास्मदीयैरिति भ्रान्तिमुपगच्छति मनः। तादृशान् ग्रन्थविशेषान् यद्युपलभेम एवमादिकमतीतप्रचारपथं विषयजातं ज्ञातुमवकाशः

संपद्येत । ग्रन्थोद्धृतेष्वपिविषयेषु अनुक्तंमन्वानाः "अनुक्तमन्यतो ग्राह्यम्" इत्यार्योक्तिमनुसृत्य अर्वाचीनपद्धतिमेवाश्रित्यास्माभिरवगन्तव्यमिति निश्चिन्वानाः मुह्यन्त्यस्मदीयाः ।

आर्यवैद्यसोदराः ! उपरि निर्दिष्टैः कारणैः प्राचीनर्षिपुंगवैरुपनिबद्धमायुर्वेदवाङ्मयं संपादयितुमुद्यमः आयुर्वेदकर्तव्येषु विधानेषु प्राथमिकोविधिरिति सहस्रधाभिधास्ये । प्राचीनग्रन्थसंपादनं तत्परिशीलनमन्तरा आयुर्वेदीयसंस्करणेषु प्रयत्नः साहसिकोयमिति पुनरपि वक्तुमुद्युंक्ते मे चेतः । तेन हि संपादनेन स्थिरमूला अनश्वराः कालत्रयानुबन्धिनः प्राचीनर्षिवरैरद्वितीयप्रतिभाविशेषेण उपनिबद्धाः बहवो विषयाः अद्यतने काले सर्वतः प्रचारमुपगच्छेयुः । आर्षसंततिषु लब्धजनुषामस्माकं तन्निबद्धविषयप्रचारणकृत्येनैव किल जन्म फलवत्संपद्येत ।

आयुर्वेद्वाङ्मय-परिवर्तनम्

आयुर्वेदीयग्रन्थविततिः गैर्वाण्या वाण्याउपनिबद्धः विराजते । सा च भाषा अनतिचिरादारभ्य कालात् न व्यावहारकी संवृत्तेति न सर्वतः प्रचारमुपगता आसीत् । न केवलमायुर्वेदीया एव, सर्वे वेदाः सर्वाण्यपि शास्त्रादीनि ग्रन्थजातानि च तामेव भाषामलंकुर्वन्ति । अतएव कारणात् अनधिगतगीर्वाणभाषैः बहुभिः प्राचीनोपनिबद्धाः मुख्यतमाः अनेके विषयाः विज्ञानदूरा अभूवन् । तेषां दुरधिगमतामुपलक्षयन्तः केचन देशभाषासु अभिजाताः प्राचीनग्रन्थान् सर्वतः प्रचारमुपनिनीषन्तः तत्तद्देशभाषासु परिवर्तयितुमयतिषत ।

तत्र प्रथमतः वेदादीन् वेदान्तशास्त्राणि वैद्यकशास्त्राणि च द्राविड्यां पर्यवतिष्ठेति श्रूयते । द्राविड्यां परिवर्तितस्य निगमनिचयस्य चतुस्सहस्रग्रन्थपरिमितस्य (नालायिरंप्रबन्ध) इति विख्यातस्य विशिष्टाद्वैतसंप्रदाये विशेषतः प्रचारो दृश्यते । इतश्च दक्षिणापथे द्रविडभाषायामुपनिबद्धानि स्वतन्त्राण्यपि वैद्यकतन्त्राणि भूयसा उपलभ्यन्ते । इयं च द्रविडवैद्यग्रन्थरचनापद्धतिः इतरासु देशीयभाषासु प्रचारणात् प्रथमत एव प्रवृत्तेति वक्तुं कानिचित्कारणान्तराणि विद्यन्ते—

यथा वा उत्तरापथे चरकसुश्रुतादिविद्यापीठानि वैद्यविद्याभिवृद्धये समर्थानि व्यराजन्त एवमेव दक्षिणापथेऽपि अगस्त्यविद्यापीठनाम्ना प्रथितमेकं आयुर्वेदविद्यापीठमवर्तत । इदं च भगवतो रावणनिषूदनस्य दाशरथेः दक्षिणापथगमनात् पूर्वमेव प्रवृत्तमिति विज्ञायते । एतस्य अगस्त्यविद्यापीठस्य संबन्धिनः परम्पराः चिकित्सारचनाविधानानि च मयाविरचिते अगस्त्यवैद्यसंप्रदायनामकग्रन्थे सविस्तरमुपवर्णितानि ।

सन्ति अत्र सम्प्रदाये तेरय्यर् भोगय्यर् प्रभृतयःअष्टादश सिद्धवराः । रसतन्त्रोदितप्रक्रियाः परश्शतमत्र प्रतिपादिताः एताः नागार्जुनादिभिरुपवर्णितेभ्यः प्रक्रियाभागेभ्यः विभिन्ना एव दृश्यन्ते । साधारणरसमहारसादीनां विभजनमनन्यादृशमेव विद्यते ।

प्रक्रियाविधानानि सर्वाण्यपि संस्कृतरसतन्त्रप्रक्रियाभागेभ्यः सुलभतराणि फलवन्ति च दृश्यन्ते । अत्र दक्षिणापथप्रसिद्धानामोषधीनां उपवर्णनं भूयसा चकास्ति । एतदधिकृत्य मया विरचिते पूनासम्मेलन संबन्धिनि दक्षिणभारतायुर्वेद प्रचारनामकपुस्तके प्रकाशितमस्ति विषेशतः

तेरय्यर्प्रभृतिभिः विरचिताः ग्रन्थाः केचिदस्मदीयां आयुर्वेदीयां ग्रन्थसरणिमनुसृत्य प्रावर्तन्त । एवमादीनि ग्रन्थरत्नानि द्रविडभाषाप्रचुराणि अदूरद्विशतसंख्याकान्युपलभ्यन्ते । एते ग्रन्थाः इदानन्तिने काले प्रवृत्तां परिवर्तनसरणिमनवलम्ब्य सत्परिवर्तनेन प्रवृत्ताः प्रकाशमाप्नुवन्ति । एवमेवमङ्गराजादिकाले क्रैस्तवचतुर्दशशताब्दे वैद्यकतन्त्राणां परिवर्तनपद्धतिः प्रवृत्तेति विजानीमः ।

प्रकृते काले वैद्यशास्त्रग्रन्धानभिज्ञाः ज्ञानगर्विताः दुरभिमानिनः केचिदायुर्वेदीयान् ग्रन्थान् देशभाषासु परिवर्तयन्ति । ते च ग्रन्थाः अपेतवैद्यसत्संप्रदायाः तदध्येतृमूलेन जगतो विरुद्धमेव फलमुत्पादयन्ति । विषयेऽस्मिन् अतीते मासे प्रचारमुपगतायां 'इण्डियन् मिडिकल्-गजेट्' नाम्ना प्रख्यातायां आंगलवैद्यमासपत्रिकायां सुश्रुतमुदिश्य विरचितानि विरुद्धविमर्शनान्येव साक्षिपदमधितिष्ठन्ति । इयं च सौश्रुती संहिता प्रोफिसर् हार्नल, डाक्टर् वैज, डाक्टर क्लार्क प्रभृतीनां पाश्चात्यवैद्यपंडितवराणां श्लाघापात्रतामयासीत् । तादृशोयं ग्रन्थराजः यद्यनेन गैर्वाण्यां उपनिबद्ध एव सान्तमधीतो भवेत् तदा अस्य मनस्येवंविधाः विरुद्धाः अभिप्रायाः नोदेयुः यदि कदाचिदुदेयुः अनवधानतः पुनरपि समाहितेन चेतसा सम्यगालोच्य परिवर्तयितुं शक्नुयादेवैषः आंगलभाषायां परिवर्तितं सौश्रुतं ग्रन्थं आपाततस्समवलोकयतः किल अस्य मनस्येवंविधाः अनर्थपरंपराः उदवभूवन् ।

आर्याः सोदरवैद्याः !

एवं अपरिचितवैद्यशास्त्रैः अनभ्यस्तवैद्यसंप्रदायैः परिवर्तितानां ग्रन्थानामवलोकनेन प्रचारेण च प्राचीनर्षिवरप्रणीतानां ग्रन्थानां कलङ्कमुत्पादयन्ति केचनावहितचेतसः स्तोकविषयपरामर्शिनः अदूरदर्शिनः एवमादीनि विरुद्ध परिवर्तनान्यपहाय वैद्यसंप्रदायमनुसृत्य देशभाषासु आपुर्वेदीयान् ग्रन्थान् परिवर्त्य लोकोपकृतये आयुराम्नायस्य सञ्जातम् कलङ्कं परिमार्ष्टुमभ्यर्थये भवतः ।

भारतदेशे वैद्यसाहाय्यम्

आर्याः !

भारतेस्मिन् देशे त्रिंशत्कोटिसंख्याकाः जनाः समुल्लसन्ति । तेषामारोग्यपरिपालनाय व्यथितानां चिकित्सासौकर्याय प्रभुवरैरुपविद्धम् वैद्यसाहाय्यकमुद्दिश्य किंचिद्विमृश्यते ।

भारतेऽत्र प्रतिष्ठितानां सर्वासामपि वैद्यशालानां परिगणने द्विषष्ठ्युत्तरशतत्रयाधिक । चतुस्सहस्रसंख्या (४३६२) परिमिताः विराजन्ते । तासु सप्ततिसहस्राधिकलक्षषट्कसंख्या (३७००००) इन्पेशंट्संज्ञकाः आतुरा एकानषष्टिसहस्राधिनएकसप्ततिलक्षोत्तर कोटित्रय । (३६१५९०००) परिमताः आउट्पेषन्ट् संज्ञकाश्चिकित्सासाहाय्यं प्राप्नुवंति । उपरि प्रदर्शित जनसंख्याभैषज्यशालासंख्याविमर्शने कृते पंचपंचाशत्सहस्रसंख्या (५५०००) परिमितानामेको वैद्यालयश्चिकित्साविधानेनोपकुरुते इति जानीमः उपरि निर्दिष्टानां वैद्याशालानां निर्वाहणार्थमुपकल्पितानां वैद्यानां संख्यानेन जनसंख्याविमर्शने कृते द्विचत्वारिंशत्सहस्रसंख्या (४२०००) परिमितानां जनानामेकः आंग्लवैद्यनिपुणः चिकित्सितं नियुक्त इति विद्मः ।

विद्यालयानां निर्वर्तनाय रोगिणामाहारादिसंपत्तये, कार्यनिर्वहणसंस्थायैच संभूय द्विसप्तत्यधिक, षट्शतोत्तरद्विसप्ततिसहस्राधिक चतुर्लक्षोत्तरकोटि (१४७२६७२) परिमितानि रूप्याणिव्ययार्थं निर्णीतानि । एतावत्परिमिते द्रव्ये पञ्चाशत्सहस्रोत्तराणि पञ्चलक्षाणि (५५००००) रूप्याणि राजवरैरुपलभ्यन्ते । अवशिष्टाः द्विसप्तत्यधिकषट्शतोत्तरद्विसप्ततिसहस्राधिक, पंचाशीतिलक्षसंमिताः (८५७२६७२) मुद्रिकाः 'लोकलफण्डम्मुनिसिपल्" संघादुपनता भवन्ति । स च संघः जनैः कायक्लेशादिना संपादितं धनमेव केवलमनुतिष्ठति । उपरि सूचितनयेन भारतीयवैद्यसाहाय्यकरणे राजकीयापेक्षया अस्मदीयैर्वितीर्णमेव धनसाहाय्यमधिकमिति स्फुटमेवागच्छामः । उपरितन धनसचय अदूरविंशतिलक्षपरिमितम् (१९९२१५०)

धनं औषधानां संघटनाय अष्टत्रिंशदुत्तराष्टशताधिकषट्सप्ततिसहस्राधिक त्रयोदशलक्षसंमिताः (१३७६९२८) मुद्रिकाः अतुराणामाहारादीनां निर्वर्तनाय व्ययं कुर्वन्तीति विज्ञायते।

अवशिष्टः चतुरशीत्यधिकाष्टशतोत्तर द्विसहस्राधिक सप्तलक्षोत्तर कोटिपरिमितः (१०७०२८८४) धनसंचयः तत्राधिकृतां वेतनायेतरसाधारणव्ययायचोपयुज्यते।

वेतनार्थमुपकल्पितमेतद्धनमाहारनिर्वर्तनाय औषधादि साधनाय च निर्णीतादपि धनाद् अतिशेत इति वक्तुमपि नोत्सहते मनो मे।

चिकित्सासाहाय्य निर्णीतधनसंख्यामादाय पर्यालोचिते एकस्मै व्यथिताय षट्कलाः (०-६०) उपयुज्यंत इति प्रतीयते।

एवमेवायुर्वेदचिकित्सालयपद्धत्यनुसारेण चिकित्सामाचरतां एकैकस्मै ताम्रशकलत्रयमारभ्य (०-०-३) ताम्र शकलपंचकपरिमितं (०-०-५) पर्याप्तमिति, केषु चिच्चिकित्सालयेषु दशताम्रखण्डादा (०-०-१०) रभ्य पंचदश ताम्रशकल (०-१-३) परिमितं धनमपि अपेक्ष्यत इति अनुभववशान्मया परिज्ञातम्।

उपरिप्रदर्शितया विमर्शनसरण्या आंग्लायुर्वेदीयचिकित्साविधानयोः को वा सुलभसाध्यः अल्पव्यये बहुफलप्रदश्च भवेदिति भवंत एव जानंतु।

राजकीयाः वात्सल्येनांग्लचिकित्साहाय्यमुपजनयन्तः भारतीयानामुपकुर्वंतीति सत्यमेतत्। अथापि नैतत्सार्वजननीम्। अथ यदि कथंचिदुपलभ्येत अधिकव्ययेन साधनीयम्। व्ययमपि तृणाय मत्वांग्लचिकित्सार्थमेव यदि यतेमहि तच्च विधानं नास्माकं सात्म्यम्। न वा भारतीयानां शीतोष्ण परिस्थितेरनुगुणमिति विदितमेव सर्वैरस्माभिः।

वैद्यक शासनम्

मान्याः —

राजकीयवैद्यकशासनमिति नामोच्चारणमात्रेणैव धरातले सर्वेपि तच्चरितं जानंत्येव। शासनेनानेनार्षवैद्यानां देशीयवैद्यानां च संजाता दुःस्थितिः एतावतीते न हि वक्तुं पार्यंत। अनेनैव मूलेन आंलवैद्यवराणां देशीयविद्वद्वैद्यानां च चिरात् प्रवृत्तः पारस्परिकः मित्रभावः सुतरामुन्मूलितः। समूलघातमायुर्वेदमुन्मूलयितुं प्रवृत्तमिदं शासनं दूरतोऽपसारणीयमिति, सत्यपि शासने देशीयवैद्यस्य वैद्यानां च यथा हानिर्नस्यात् तथा करणीयमिति च सविनयं बहुधा प्रर्थितोपि न ह्येतावदवधि राजकीयानां कृपारसतरंगिता दृष्टिरस्मासु प्रसरति।

सर्वजनादरणीयस्य देशीयायुर्वेदवैद्यस्य प्रोत्साहजननाय "हानरबुल् असदल्लिखान्" बहद्दूर्महोदयेन कृतानि विमर्शनानि उपादाय प्रजाप्रियः "लार्ड हार्डिंज" प्रभुवरः सर् पार्डीलूकीस् महाशयश्च साम्राज्यशासनसभायां केवल मृदुमधुरैर्वाक्यजातैरुपन्यस्य स्वाशयमुपपादितवंतौ।

एवमेव तत्रतत्र प्रांतिकशासनसभासु आनरेबुल्ल्मेंबर्समहाशायानां निवेदनान्यपि पर्यवस्यन्ति। श्री० श्री० श्री० जार्जी सार्वभौम मकुटाभिषेकमहोत्सवसमते लोकोपकृतये प्रवृत्तासु देशीयचिकित्सासु नैपुण्यमवाप्तवतान् आयुर्वेद, यवन, वैद्यवराणाम् शास्त्राणां च परिपोषणाय वैद्यरत्न, "शिफाउल्० मुल्क" इति विख्यातबिरुदद्वयं वितीर्य स्वास्थानवैद्यकसमाजपदे तेषां प्रवेशमसूसुचत्। अहो! एतदेव किलास्माकं अपूर्वविस्मयमातनोति चेतस्सु। यतः सार्वभौमनाद्दतोऽयं देशीयवैद्यकपद्धतीनां निकरः भारतसाम्राज्याधिकृतैर्धीरतरं प्रत्याख्यातः एतदेव किलास्माकं मनसो वैलक्ष्यमुत्पादयति।

यावताकालेन आयुर्वेदवैद्यस्य यूनानीवैद्यस्य च प्रोत्साहमुत्पाद्य समुचितां प्रतिष्ठामुपकल्पयेयुः तावन्तं कालमस्माभिः तदुचितोद्योगकृत्यानि आचरणीयानि। विज्ञापनीयवानि तानि सार्वभौमसविधे, तदुचितोयं समय आसन्न इति संबोध्य प्रतिपाद्यते।

एवमादीनि शासनानि पुराकालेपि सुप्रतिष्ठामुपलभ्य आचारानुप्रविष्टानि प्रावर्तिषेतति "राजानुज्ञातेन" "अथापृच्छयेश्वरम् वैद्यः" इत्येवमादिभिः सुश्रुतादिवाक्यैः विज्ञायत इति पूर्वमेवावादिषम्। एतेन लक्ष्ये लक्षणे च सुशिक्षितो वैद्यः राजानुमतः चिकित्सासु प्रवर्तेत तदनभिज्ञः यदि धनादिलोभेन चिकित्सितुमुद्यतो भवेत् स च राज्ञा शिक्षणीयं इति "वधम् चार्हति राजतः" इत्येवमादीनि वचनानि उद्घोषयेति।

पुरा किल काले देशीयप्रभुवराः विद्याभिमानिनः तत्तद्विद्यापरिपोषणाय अर्हेषु कृत्येषु बद्धादराः तेषामभिवृद्धये आवश्यकानि निबन्धनानि रचयंत आसन्। ते च वैद्यकशास्त्रं सदाचारानुगतं प्राणरक्षणदक्षमिति मन्वानाः तदनुयायिनां समुचितप्रवर्तनाय पृथगेव वैद्यकशासनान्याकल्पयन्।

तादृशनिबन्धनमनुसृत्य लक्ष्यलक्षणविज्ञानवान् चिकित्सतपदवीमधिष्ठातुमर्हति न केवलमन्यतरज्ञानमात्रेण यस्तु केवले लक्ष्य लक्षणे वा कृतपरिश्रमः अधिगतकौशलो भवेत् एकपक्षवान् विहंग इव न हि क्रियाकरणसमर्थो भवेत् तेनोपयुज्यमानान्यमृतकल्पान्यपि औषधानि शस्त्राशनि क्रूराणि भूत्वा दुस्साध्यामापदमापादयंतीति चरकादिषु स्फुटमेव निरूपितम्।

छेद्यादिकर्मसु अनभ्यस्तकर्मपथः स्नेहादिकृत्येषु अनधिगतकौसलश्च कुत्सितवैद्यः राज्ञा यद्युपेक्षितो भवेत् स चावश्यं जनानां प्राणहानिमपि कुर्यादिति सुश्रुतेन विजानीमहे। उक्तं हि तत्र—

"छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु।
स निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्यो नृपदोषतः॥" (इति सुश्रुत। सू० अ० ३)

एवं विधानर्थपरंपरा राज्ञामश्रद्धया उपेक्षया च लोके व्याप्नोति। तदर्थं विज्ञानवता राज्ञा अप्रमत्तेन भवितव्यमिति स्फुटंप्रतीमः तादृशसूक्ष्मपरिज्ञानमुपलब्धम् इदानींनैनः कथं शक्येत? कालेस्मिन् क्रूराण्यपि राजकीयशासनानि कुत्सित वैद्याचरणनिवर्तनकृत्ये कुण्ठितशासनानि भवंतीत्येतत् विस्मयमातनोति।

राजकीयाः देशीयवैद्यानां तद्विधानानां च प्रकृतवैद्यक शासनानुगतत्वम् उपकल्पयितुं नशक्येदिति। तदर्थं शासनान्तरमपि न हि निर्मातुं युज्यत इति, एते नवीनां कांचनपरिस्थितिमुपगंतुं नार्हन्तीतिच स्फुटमेव प्रवदंति, वैद्याचरणे प्रवृत्तानां यदि दोषाः कदाचिदुत्पद्येरन् तान् दूरीकृत्य समीकरणमेव राजोचितकृत्यमिति नाज्ञासिषुरिति महदिदं विचारस्थानम्। इतः परं वापि सुश्रुतेन प्रतिपादितं "नृपदोषतः" इति वाक्यमेकमपि मनसि निधाय देशीयवैद्यानां समुचितविधिमुपकल्प्य सुशिक्षितवैद्यवरैः लोकोपकृतये चिकित्सासाहाय्यं कारयितुं राजवरान् बहुधा प्रार्थयामहे।

निगमनम्

एतावना उपन्यासेन आयुराम्नाये प्रशस्तिमुगतान् मुख्यतमान् कांश्चन विषयानुपादाय सविमर्शमदर्शयम्। एतत्सजातीयाः विमर्शनार्हा विषयाः सन्ति सहस्रशोऽस्मिन् आयुर्निगमे। अद्वितीयमेधावद्भिः अप्रतिमप्रतिभासम्पन्नैः प्राचीनमुनिवर्यैः आचार्यैश्च विज्ञानगरिम्णा उप-

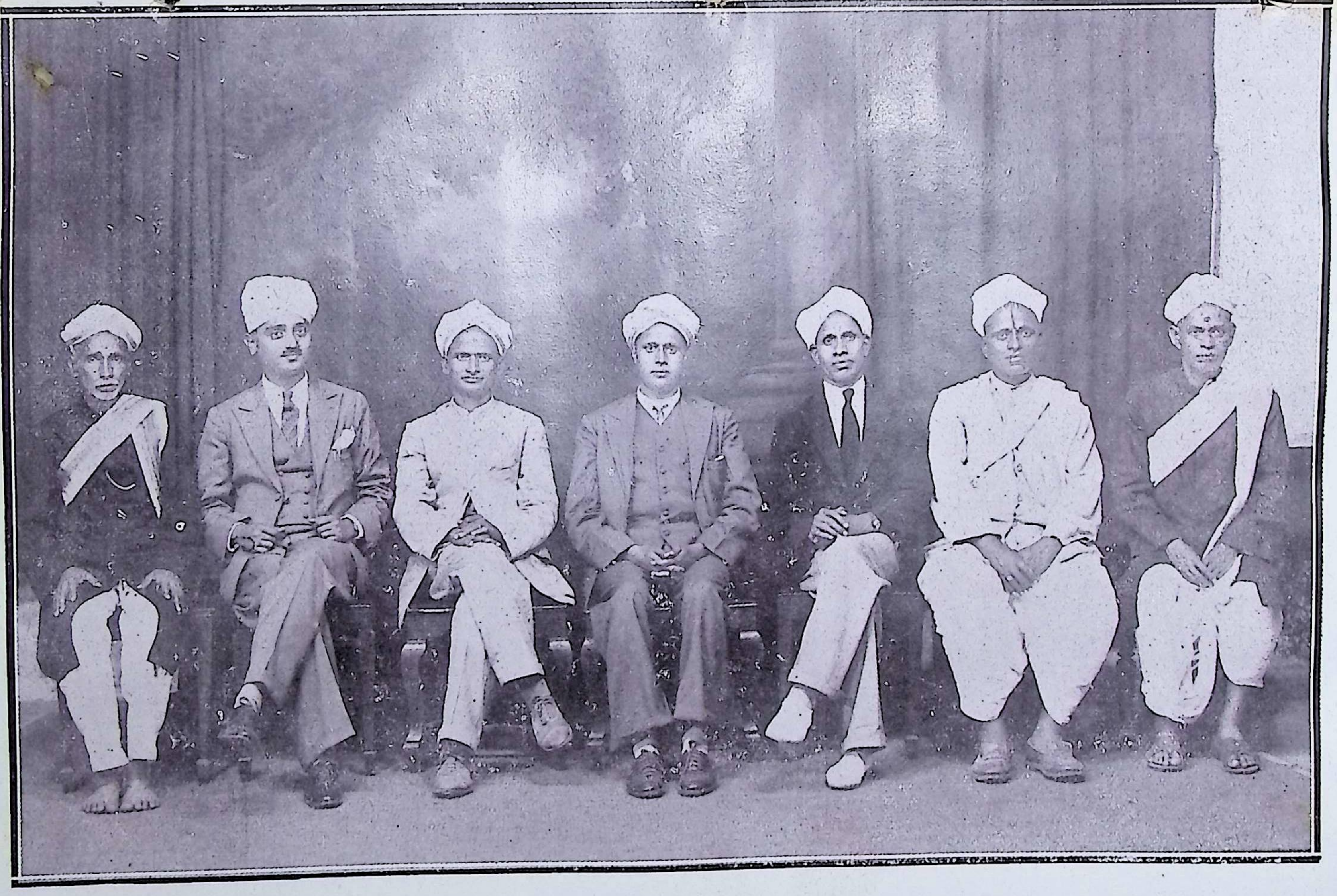

The staff of Proffessors and Physicians of the Government
Ayurvedic College & Hospital, Mysore. 1933.

लक्षिताः प्रकाशिताश्च विषयाः अपरिमेयाः आर्षसन्ततिसमुत्पन्नैरस्माभिः तेषां प्रकाशने प्रचारे अभिवृद्धौच बद्धपरिकरैः संजातकुतूहलैरवश्यं बलवद्यतितव्यम् । न केवलं तेषां मेधाविलसितं स्मारंस्मारं तत्प्रतिनिबद्धान् ग्रन्थान् दर्शं दर्शं तावतैव सन्तुष्टा वयं क्वापि कदापि कृतिनो भवेम । तन्निबंधेषु प्रदर्शितानि निदानचिकित्साद्रव्य औषधपरिकल्पनादिविधानान्यनतिक्रम्य उपदिश्य शिष्यगणेभ्यः प्रचारमुपगमयितव्यानीति पुनरपि बोध्यते । एवं सम्प्रदायमनुसृत्य सुशिक्षितानां विद्वद्वैद्यानां संख्या यदावृद्धिमधिगच्छति तदैव भारतधरातलवासिनां सर्वेषामपि जनानां समुचितचिकित्सया प्रतिविधातुं वयं पर्याप्ता भवेम । अधुनाकाले राजकीयपरिकल्पितं वैद्यसाहाय्यं जनसंख्यामपेक्ष्य नपर्याप्तमिति प्रतिभाति । कृते च परिगणने द्विचत्वारिंशत्सहस्र (४२०००) परिमितानां जनानां एकश्चिकित्सकस्साहाय्यं करोतीति, शते एकोनाः महाजनाः देशीयवैद्यकसाहाय्यमेवाश्रित्य प्राणरक्षां कुर्वन्तीतिच सर् पार्डीलूकीस् प्रभुवरेण बहुधा प्रतिपादितम् ।

महामण्डली-प्रशंसा

निखिलेप्यस्मिन् भारतदेशे एषा महामण्डली वैद्यकविज्ञानं सर्वतः प्रसारयति अनतिचिरादेव कालात् । गतवत्सरद्वयादारभ्य एषामहामण्डली भारतदेशे अष्टाङ्गविशिष्टायुर्वेदविद्यां सर्वथा अभिवर्धयितुं वैद्यकविद्यामहालयः एकः प्रतिष्ठापनीय इति अभ्यर्थ्यन्ते अस्मदेशीयप्रभुवराः अयं च उद्यमः तूर्णमेव सफलो भवेदिति प्रार्थये भगवन्तं धनवन्तरिम् ।

मान्याः ! आर्यवैद्यसोदर्याः !

एतावताकालेन वयमिहैकदा सर्वे सम्भूय महता कौतुकेन तांस्तानायुर्वेदीयान् विषयान् विमृश्य आनन्दमेदुरमानसाः अभूम । एवमेव सर्वदा आवश्यकेषु कृत्येषु अयं प्राथमिक इति कृत्वा मनसि भगवता वितीर्णं प्रजानां जीवितसंरक्षणसमर्थं भगवन्तमिमयायुराम्नायं अधिकृत्य तदुचितक्रियासु सर्वदा बद्धपरिकरैरस्माभिः भवितव्यमिति पुनरपि बोध्यते ।

प्रकृते काले अचिन्तितसमापतितेन क्रूरेण महता संगरेण वैदेशिकान्यौषधानि नविद्यते लब्धुमवकाशोपि । अस्मदीयानां आर्यचिकित्सापद्धतीनां अभिवर्धनाय प्रचारणाय च समुचितः समयः सन्निहितः ब्रह्मविदुत्तमैः त्रिकालवेदिभिः आर्यैः ऋषिपुङ्गवैः लोकानुग्रहमभिकांक्षमाणैः उपकल्पितं त्रिसूत्रात्मकमायुर्वेदं लक्ष्यलक्षणसम्प्रदायैः शिष्यवरेभ्यः सम्यगुपदिश्य लोके अभिवर्धयितुं आर्षसन्तत्यां जनिमुपलब्धवतामस्माकं प्रधानकृत्यमिति पुनरपि प्रतिपाद्यते सोत्साहम् ।

"भिषजांसाधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥"

ओं सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

Presidential Address

Fourteenth Session

The All India Ayurvedic Conference
Colombo, Ceylon

April 25, 1924

Vaidyaratna

Kaviraj Jogindra Nath Sen M. A.,

Vidyabhushan

Calcutta.

अप्रत्यक्षफलाः प्रमाणत्रिकला वाग्विस्तरैराकुला
वेदाः प्राप्तपदा यदाप्तवचनप्रामाण्यसामान्यतः ।
यत्पक्षैकफलं त्रिसूत्रममलं स्वस्थातुराणां हितं
तं विद्यास्वखिलासु सत्तममहं वेदं भजाम्यायुषः ॥

DEAR FRIENDS,

It has been the invariable custom with the Presidents of this Conference to begin their addresses with thanksgiving. Believe me, gentlemen. when I say in all sincerity, that I do not merely follow the usual practice in offering you my warmest thanks for the great honour you have done me in inviting me to preside over your deliberations for the second time. Let me explain. The conference last met at Rajahmundry under the leadership of our esteemed friend Mr. Krishna Sastri Kavde. I can give no definite information about that session, as I was not fortunate enough to attend it: but no decision as to the next holding seems to have been arrived at there. The time gradually approached and letters passed between the General Secretary Ayurvedabhushana Pandit M. Duraiswami Aiyangar, A. K. A. C. and myself, about the holding of the present session. Though I had every desire to invite the Conference to our city, many untoward and unhappy incidents of a private character pevented me from so doing. I really cannot express how keenly I felt my inability to afford a room to our Conference even after an interval of nine years, when in 1915, I had the proud privilege of offering you all a most hearty welcome on behalf of the Calcutta Reception Committee. At this juncture, thanks to you, two

निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ
के मंत्री तथा कर्मचारी गण। सन् १९३६ ई०

simultaneous invitations including this one from Colombo came to our intense relief. My part in the advancement of this Conference has no doubt been very humble, but I think I yield to none in my intense love and regard for it. I have therefore especially to thank you, the people of Ceylon, for the very timely and happy invitation which you so kindly sent to us.

Thus it appears that though I could not do my duty towards the Conference, the Conference has given me much more than I deserve by inviting me to be the President. I am perfectly aware of my unworthiness and inability to do full justice to the exalted position in which you have so kindly placed me, inspite of the presence of so many abler and more deserving Vaidyas of great repute. But I have not ventured to disobey your call. The regret which I very keenly felt for my inability to invite the Conference, has to a great extent been removed at the sight of the splendid reception which the Conference has met at your hands. I therefore reiterate my grateful thanks to you all.

Before I proceed with my address any more, I think we cannot do better than remember and revere the memory of those Physicians who have recently died. We have it from the authorities on Poetics that benediction, salutation or the introduction of the subject-matter should form the beginning of a treatise. **आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्** they say. I think that the reverent remembrance of the memory of those mighty spirits will be the best introduction possible. This hero-worship will infuse energy into our hearts and remove obstacles from our path. I am confident that the spirits of those great Vaidyas, who laid down their lives in the cause of Ayurveda, are present here even now, to witness the continuance of the cherished desire of their lives; and I am equally confident that they will not deny us at this moment their sincere blessings.

Gentlemen, with a heavy heart I remember now the illustrious Kaviraj Rajendranarayana Sen of Calcutta. Apart from his uncommon ability and deep erudition which are known to you all, he was one of our true friends. Bengal has lost in him one of her best Kavirajes and we one of our best well-wishers.

It is really unfortunate that we have to mourn the loss of another sincere friend of ours, Kaviraj Kunjalal Bhishagratna of the "Susruta Samhita" fame. You all know him as the author of that monumental work—the English translation of the Susruta Samhita, but I knew him as my affectionate brother. He was a disciple of my venerable father and his sweet character and loving disposition endeared him to us all.

Bengal has lost two famous Kavirajes again, in the deaths of Kaviraj Jogendranath Das of Jessore and Kaviraj Harinath Vidyaratna of Calcutta. They were both skilful physicians and able scholars and the void created by their loss is not likely to be easily filled up.

Hyderabad has suffered an irreparable loss in the death of Hakim Hari Govindaji. He was one of the Provincial Secretaries of the Mahamandala and took great interest in the welfare of Ayurveda. His death is a loss not to Hyderabad alone. but to the Ayurvedic Community all over India.

May these mighty souls rest in peace in Heaven.

Gentlemen, I cannot help recollecting in this connexion that auspicious day when our Conference first met, under the parental care and guidance of the illustrious Pandit Sankara Sastri in 1908. They say that the third year of a child is a critical period and so it was in our case. The third session of the Conference could not be held owing to the sad death of its founder Pandit Sankara Sastri, and the session was postponed till the next year. Thenceforward the Conference has steadily and gradually been gaining in strength and prosperity, and I hope confidently that the critical period is past for good. Not to speak of Vaidyas, but the general public and medical men of other system too, have begun to take much interest in Ayurveda, and the day will surely come when we shall have the proud pleasure of seeing Ayurveda installed on the high throne it once occupied.

Orthodox Hindus as we are, gentlemen, it would be presumptuous on our part to trace the beginning and date of Ayurveda. Ayurveda is eternal and of no human origin. You all know that the Vedas manifested themselves from the breath of the great Purush,—**"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः" इत्यादि ; "यस्य निःश्वसितं वेदाः" ; "न कश्चिद्वेदकर्त्तास्ति वेदस्मर्त्ता चतुर्म्मुखः"** etc. Ayurveda which is an Upveda—a branch of the Veda, also has got the same characteristics. There are hymns in the Rigveda about the medical treatment of Vispala, Chyavana and others which strongly point to the Rigveda as one of the sources of Ayurveda. We have it from other sources too ; Maharshi Srikrishna Dvaipayana says, **"ऋग्वेदस्य आयुर्व्वेद उपवेदः"**. Susruta says that Ayurveda is a branch of the Atharva Veda—says he, **"इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य । अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः" ।** Charaka, Vridha Vagbhata and others too, assert the Vedic origin of the Ayurveda, and it is not for us to question the origin of the Veda. These are eternal truths unlimited by time and space ; only they manifested themselves at different times in different forms.

It would be quite legitimate and pertinent however to estimate the dates of Charaka, Susruta and other authorities on Ayurveda.

Nothing, I must confess at the very outset, is more difficult in India, than to fix the date and chronology of our ancient authors. Charaka was, according to some European scholars, the Court Pandit to the Scythian king Kanishka, who reigned in the first century A. D. In the Chinese translation of the Buddhistic Tripitaka, the name of Charak may appear as that of the Court Pandit to Kanishka, but there is no proof that he was the great Charaka, the author or redactor of the Samhita named after him.

No conclusion based merely upon similarity of names, but unwarranted by other evidences can be accepted. There are, on the other hand, strong reasons to believe that he flourished much earlier. In fact Charaka has been mentioned by Panini and has been commented upon by Patanjali, both of whom lived before the Christian era. Though no definite assertion can be hazarded, Charaka perhaps cannot be placed later than Panini, who again according to the conclusive evidence of Goldstuker, could not have flourished later than the sixth century B. C. The style and mode of expression in Charaka also bear unmistakable evidence as to its early age. It is known to you all, that Agnivesa was the real author of the Charaka Samhita, and Charaka himself acknowledged it at the end of every chapter by saying "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते" (in the Tantra of Agnivesa, redacted by Charaka). Charaka redacted the whole of the treatise of Agnivesa, excepting the last 44 chapters. This portion was redacted by Dridhabala—a native of Panchanadapura, a place which has not yet been satisfactorily indentified, some taking it to be the modern Benares, while others locating it somewhere in the Panjab and others again in Kashmir.

The original size and form of Agnivesa's can hardly be determined nor can we guess correctly how much and how far Charaka modified it, but there is hardly any doubt that the Samhita underwent considerable changes in his hands, for the redactor is said to write the treatise almost anew;

विस्तारयति लेशाक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम् ।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम् ॥

Agnivesa had five other fellow students, each of whom wrote a treatise named after the author. Of these upto the recent past, only the Harita Samhita was available. But a perusal and comparison of it with the Charaka Samhita give rise to strong doubts whether it is really the work of the great Harita, the contemporary of Agnivesa. The general tone and treatment in the two Samhita are so widely different, that they do not appear to have been written by the disciples of the same Guru. The Bhela Samhita, on the other hand, which was discovered in an incomplete form in the Tanjore Palace Library and has recently been published by the Calcutta University, appears to be the genuine Samhita. No research has as yet been made about these two works, but it is hoped that they will not long remain neglected. In a meeting at Calcutta, in January last, Dr. Benimadhab Barua, a well-known research scholar, tried to prove in the course of a lecture on Bhela, that he lived about the time of Buddha and Mahavira, but my remarks about the date of Charaka who flourished much later than Agnivesa, a contemporary of Bhela, apply here equally well. Much more research is required in these as yet unexplored fields which promise to be immensely profitable and interesting.

Next to Charaka, or for the matter of that, Agnivesa, stands pre-eminently the name of Susruta among medical authors of note. Susruta studied with Devodasa, who according to him, was the incarnation of Dhanvantari, the physician of the gods in Heaven. He was a son of Visvamitra, a contemporary of Rama. Susruta was the greatest surgeon of his day, just as Charaka was the greatest physician and it was at the time of Susruta that Surgery in India attained its zenith.

Apart from the divergence of opinion, about its date, scholars are not agreed even about the authorship of the Susruta. The author salutes at the begining, among others, Susruta; we find therein, "नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वन्तरिसुश्रुतप्रभृतिभ्यः; of course Susruta himself could not have said this. According to a line in the commentary of Dallanacharya, Nagarjuna redacted the treatise of Susruta; in that case, this line might well have been inserted by Nagarjuna or any other redactor; Dallana says in his comment upon that line, यत्र यत्र परोक्षे नियोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति । प्रतिसंस्कर्तापीह नागार्जुन एव ।" Among other authors of note, I might mention the three Vagbhatas, Madhavakara, Chakrapani, Sarngadhara and Bhava Misra. But most of them are of more or less recent date, and the discussion about them need not detain us long.

It might be said in connexion with the ascertainment of the dates of different authors that internal evidence especially based upon similarity of names would be a very misleading guide to rely upon. Moreover, it has been a custom in India, not only in medical Science, but in other branches of knowledge too, such as Nyaya etc. to represent a school by the name of its founder. Thus we often find treatises of different schools refuting one another's arguments. It is obviously impossible for the earlier author whoever he might have been, to refute in anticipation, the arguments to be advanced by any posterior adversary of his school. The only reasonable conclusion seems to be, that the treatise of each author was supplemented and modified as required by the followers of his school, though the original name was none the less retained; thus the treatises grew and developed until at last the nature and date of the original were forgotten; the same might very well have been the case with the two Samhitas we have just now been considering—those of Charaka and Susruta. Of course, I am not a research-student, and I leave it to them to pronounce the decisive opinion.

About the introduction of Ayurveda into the world, we learn that the kind-hearted Svayambhu at first compiled it. Prajapati learnt it from him, and from Prajapati the Asvins, who in their turn taught it to Indra. In Charaka we find that as diseases appeared on the earth at the end of the Kritayuga, many great sages sent Bharadvaja to Indra to study Ayurveda. Bharadvaja studied it and imparted the knowledge to Punarvasu the son of Atri, and others. Punarvasu with great care taught the art of healing to Agnivesa, Bhela, Jatukarna, Harita, Parasara and Ksharapani. Each of them as we have already stated, wrote a treatise, and thus helped a great deal in spreading the knowledge of Ayurveda. According to Bhavaprakasa, however, Atreya himself went to Indra; we have it there,

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् ।
इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम् ॥

In Susruta, again, we see that from Indra, Dhanvantari received his training which he imparted to Aupadhenava, Susruta and others.

Before we proceed further, we might pause for a moment to consider the nature and scope of Ayurveda. Ayurveda deals with the four kinds of Ayus (life) and with the things that lengthen or shorten life. आयुर्वेदयतीति आयुर्वेदः । It has a twofold aim. viz. the preservation of health and the cure of diseases. Says Charaka, "प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च ।" Susruta observes in the same connexion, "इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च ।" As to its authority we cannot do better than quote from the Nyaya Darsana, मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यम्, आप्तप्रामाण्यात् (Just as Mantra and Ayurveda are authoritative on the ground of revelation, so are the Vedas.)

This Ayurveda has got eight branches, viz. Salya (Major Surgery and Midwifery), Salakya (Surgery of parts above the *jatru*), Kayachikitsa (inner treatment of the body), Bhutavidya (exorcism), Kaumarbhritya (treatment and nursing of children), Agadatantra (toxicology), Rasayana (the art of long llfe) and Vajikarana (aphrodisiacs).

I do not want to deal mith the nature of Ayurveda in detail, first because it is known to you all, and secondly because it would be too technical and uninteresting for the non-Medical gentlemen here.

There is one point however which I should not pass over, I mean the *Tri-dhatu* theory. Much has already been said to dispel the ludicrous and at times even dangerous misconceptions that up till now prevailed about the nature of the *dhatus*, and I shall therefore try to briefly give you an idea about them. One of chief causes of the misconception has been the unhappy and grossly incorrect renderings of the Ayurvedic terms, and another, the over-zealous attempts at some quarters, in season and out of season, to explain every theory and principle in Ayurveda in the light of the modern Western System, as if the Western Science was only a revised and correctcd edition of Ayurveda, and the portion of Hindu Medicine that could not be identified with some corresponding section in the Westen System was fit only to be rejected,

According to Hindu Medical authors, the Purusha or Man consists of (1) the physical body, (2) the manas and (3) the atman. It is the physical body with the manas that comes under the jurisdiction of the Physician. There are three causes of diseases viz. **असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग** or incompatible combination of senses with their objects, **प्रज्ञापराध** or faulty judgment and **परिणाम** or unhealthy and unnatural influence of climate etc. These three causes vitiate the Vata, Pitta, and Kapha in the human system and give rise to diseases. Vata, Pitta and Kapha are almost invariably, though erroneously, translated as wind, bile and phlegm : but what are they after all ? The renderings hardly express the true significance of these Ayurvedic terms. These three ars known as dhatus or supporters—from the roots 'dha' to support **(धारणात् धातुः)**. When they are in equilibrium, they maintain the body properly; when the balance is disturbed, they are known as *Ghoshas* (morbid affections). and it is then that the man is indisposed. We have in Sarngadhara,

शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारगात् ।
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः ॥

Charaka observes about their equilibrium,

"सर्वशरीरचरास्तु खलु वातपित्तश्लेष्माणः सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि कुर्वन्ति । प्रकृतिभूताः शुभान्युपचयबलवर्णप्रसादादीनि । अशुभानि पुनर्विकृतिमापन्ना विकारसंज्ञकानि ॥"

As to their qualifications, Vagbhatta says.

तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।
पित्तं सस्नेहं तीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं खरं द्रवम् ।
स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः ॥

It is very difficult to explain clearly these qualifications in the language of the Western Science.

It is a general principle that things with similar qualities excite these doshas, while those of opposite nature subdue them ; says Vagbhata, वृद्धिः समानैः सर्व्वेषां विपरीतैर्विपर्य्ययः ।

Vata, the most important of the three, is the source of all inspiration, energy, voluntary movements and actions including speech, proper circulation of blood etc., and internal purification of the system. Pitta is the source of all internal heat including digestion, hunger, thirst, intelligence, memory etc ; while Kapha is responsible for the smoothness of the body, general strength, potency, forbearance etc. When in this triad Vata is predominent, emaciation, darkness of complexion desire for heat, tremor, flatulence, constipation, loss of strength, sleep and sense-activity, delirium, giddiness and exhaustion are the result. The symptoms of the predominance of Pitta are yellowness of stool, urine, eyes and skin, hunger, thirst, burning sensation and loss of sleep, while those due to the supremacy of Kapha are anorexia, excretion of mucus, want of energy, heaviness and pallor of the body, low temperature, feebleness of joints, heaviness in breathing, enough and excess of sleep.

It is evident from these, that the words Vata, Pitta and Kapha do not mean the ordinary wind, bile and phlegm, as was generally suppposed. If it is not possible to identify them from the European stand-point, that is because the Western scholars have never considered the human body from our point of view. According to Ayurveda, the aim of all medical treatment is the restoration or maintenance of the equilibrium of these three doshas or dhatus, for, says Charaka, "धातुसाम्यक्रिया प्रोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् ।"

The wonderful achievements of Ayurveda in remote past is a historical fact which admits of no doubt. It is a matter of very great regret, that few Indian scholars have as yet explored these fields, so that we have always to took to others in order to know the nature and amount of our ancestral treasure. "The ancient system possessed an imposing treasure of empirical knowledge and technical achievement which cannot be ignored even in these days of rapid progress" (Calcutta University Commission Report, Vol. V). I hope to be excused in giving you a few more apt quotations on the subject. Referring to the anatomical knowledge of the Hindus. Dr. Hoernle observes, "Its extent and accuracy are surprising, when we allow for their early age, probably the sixth century B. C." The late Surgeon General Sir Pardey Lukis once observed in the course of one of his speeches, "There is no doubt whatever that their (i. e. of the people of India) ancestors knew, ages ago, many things which are now a-days being brought forward as new discoveries. For intance, it is recognised, that in all cases of dropsy, the greatest benefit can be obtained by restricting your patients to an entirely salt-free dietary. There is nothing new in this. This was known thousands of years ago in the East, and any Hakim would have told you, long before Widal or Javal made their experiments, that salt is contra-indicated in all dropsical affections." About the past progress of Ayurveda, especially in the branch of Surgery, the following quotation from the Encyclopaedia Britannica will give you a good idea. "There are certainly some dexterous operations, described in Susruta, (such as Rhinoplastic) which were of native invention; the eleborate and lofty ethical code appears to be of pure Brahminical origin, and the very copious Materia Medica (which included arsenic, mercury, zinc and many other substances of permanent value) does not contain a single article of foreign sources. Susruta describes more than one hundred surgical instruments made of steel...There were fourteen varieties of bandage. The favourite form of splint was made of chips of bamboo. Fractures were diagnosed, among other signs by crepitus. Dislocations were elaborately classified, and the differential diagnosis given. Wounds were divided into incised, punctured, lacerated, contused etc. Cuts of the head and face were sewed. Skill in extracting foreign bodies was carried to a great height, the magnet being used for iron particles under certain specified circumstances. Leeches were more often resorted to than the lance; cupping was also in general use. Poulticing, fomenting and the like were done as at present. Abdominal dropsy and hydrocele were treated by tapping with trocar, and varieties of hernia were understood, omental hernia being removed by operation on the scrotum. Besides the operations already mentioned, the abdomen was opened by a short incision below the umbilicus, slightly to the left of the middle line, for the purpose of removing intestinal concretions or other obstruction (laparotomy). There was a plastic operation for the restoration of the nose, the skin being taken from the cheek adjoining, and the vascularity kept up by a bridge of tissue. The Ophthalmic Surgery included extraction of cataract. Obstetric operations were various, including Cæsarian Section and crushing of the fœtus".

Before I pass on to another topic, I should like, very briefly, to refer to the indebtedness of other Medical Systems to Ayurveda. "They (i. e. the Hindus) were the first nation who employed minerals internally, and to them we owe the therapeutic use of mercury and arsenic in intermittents". (Elphinstone's History of India, quoted by Dr. G. N. Mukherjee). Thakore Saheb Gondal observes in his History of the Aryan Medical Science, "The great works of Charaka and Susruta were translated into Arabic under the patronage of Kaliph Almamun, in the seventh century. These translations were in their turn, rendered into Latin. The Latin versions formed the basis of European Medicine, which remained indebted to the Eastern Science of Medicine down to the 17th century". We have already referred to the use of salt-free diet in the case of dropsy; the present Goat-treatment of the West in tubercular cases was long before known to our sages; says Charakadatta, "Goat's flesh, goat's milk and ghee with sugar, tending of goats and lying in their midst—these cure phthisis".

छागं मांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मणुत् ॥

Gentlemen, such instances might be multiplied any number of times but I hope it is not necessary. According to the Report of the Committee on the Indigenous Systems of Medicine, Madras, (1) from the stand point of science, the Indian Systems are strictly logical and scientific, and (2) from the stand point of art, they are not self-sufficient *at present*, especially in the Surgical line, though in the Medical line, they are, generally speaking, quite self-sufficient and economical." A list of some of the facts and figures, quoted in the Report, will illustrate the point. "A number of such (i. e. Ayurvedic, Siddha or Unani) systems exists even in our own Presidency town (Madras), and though greatly hampered for lack of State recognition and sufficient funds, they are nevertheless holding their own against the comparatively well financed dispensaries in the neighbourhood, maintained by the State or the Corporation, and are popular among all sections of our people, besides being decidedly cheap, as may be seen from the records of some such institutions." The number of patients, treated in the L. C. Naicker's Free Ayurvedic Dispensary in Madras, in the year 1921–22, viz. 122,238 included miner Surgical cases also. "We are obliged to handle these cases", the Secretary observes, "not because we have the necessary equipments and leisure to do so, but because of the importunity of the patients, who seem to believe that our ointments and applications cure them more speedly. With my experience in the line, I can confidently say, that if more facilities are made available, we will not be less successful in Surgical cases also." The total number of patients, as we have already said, in the year 1921–22, was 122,238 and the average cost, per head per day, was only 8 pies. The Report of the Baulia Naidu Dispensary—"the most popular among the dispensaries in Madras City worked on the Western System, and situated in the same neighbourhood as the former"—shows, that the total number of its patients was only 37,626, and the average cost, per head per day. was 3 annas i. e. six times the cost of the former.

Not less than 170,641 patients (including 5190 cases of poisoning), were treated during the year 1920-21, in the grant-in-aid Ayurvedic Institution of the State, while 115 in-patients and 29,151 out-patients were treated during the same period, at the State Ayurvedic Hospital and dispensary, Trivandrum. Among the in-patients, 82.4 p. c. were cured, 12.8 p. c. relieved, while death rate was so low as 0.9 p. c.; the death rates in the Government General Hospital and the Government Rayapuram Hospital, Madras, were 6.99 p. c. and 10·35 p. c. respectively. The average maintenance cost, per head, for the Ayurvedic Dispensary for the year was only 7 annas, while the corresponding figures for the two Government Hospitals were, approximately, Rs. 10/- and Rs. 4/- respectively. The best traditions of Ayurveda were, according to the Poona City Administration Report, 1918-19, amply vindicated during the terrible outbreak of Influenza in Poona in that year. It observes, "It will not be out of place here, to make a special mention of the temporary Ayurvedic hospitals, started and conducted with conspicuous success, during terrible Influenza epidemic of the year under report.... The opening of the Ayurvedic hospitals was a novel and unique step. Nowhere, in the whole of the Presidency, was such an experiment tried or even contemplated, at such times of grave crises; and the Poona Municipality were well-adviced, in coming forward to support the beneficial experiment, initiated by the Vaidya Mandal. As to the marvellous success of the Ayurvedic treatment, Dr. Paterson of the Mission Hospital. and Miss Heway, a nurse of the Willingdon War Hospital, have borne personal testimony. This fact goes a long way to prove, not only that the expenditure of the Municipality on its Ayurvedic dispensaries is necessary and justifiable, but that a permanent Ayurvedic hospital, supported by the Municipality, is a crying need."

In this connexion, we are reminded of the happy pronouncement of Sir Lawrence Jenkins, late Chief Justice of Calcutta High Court, on the occasion of the unveiling ceremony of my father's marble statue in the Beadon Squire, Calcutta. "In India", he said, "with all its hundreds of millions, if we exclude the few who have come under the spell of Western influence, it is to the Kaviraj and the Hakim, that the sick men turn in their sufferings and their ailments for their mental consolation; and it is in the method of their healing art, and in their words of hope, that the patient's confidence is placed." (Bengalee, June 30, 1912.)

Extract from the Report of the S. V. Dispensary, Tirupati, for the year 1921–22 shows. that the total number of patients was 16,076, and that the treatment proved quite successful in almost all cases. The average cost of medicines, for one patient, was about 11 pies. The total number of patients, treated in the Madras Ayurvedic College Dispensary, during the year 1918, was 51,930, as against 13,326, 14,155 and 29,482 respectively, for the years 1915, 1916 and 1917. The drugs and medicines prescribed were all indigenous and easily procurable, and the treatment worked out only at the rate of 6 pies per head.

The Report of S. M. Free Ayurvedic Dispensary, Choolai, Madras, from the 9th. July to the 31st. December 1922 shows that the daily average attendance was 57, and the average cost, per head per day, was only about 6 pies. Similar favourable reports are available from almost all the Ayurvedic Hospitals and Dispensaries, and I think, that even the most sceptic mind will not fail to be convinced of the claim of Ayurveda, on the grounds not only of efficiency, but of economy also, and will fully endorse the views of the Calcutta University Commission that "the entire System of Indigenous Medicine as practised in India, affords a fruitful source of study and investigation."

We have already mentioned, gentlemen, that the aim of Ayurveda is two-fold, viz. the treatment of disease and the preservation of health. Recent Cencus Reports reveal the terrible state of health of the Hindus at the present time. The late Sakharam Ganesh Deushkar was one of the first to draw public attention to the deplorable state of our health in Bengal. Later on, Col. U. N. Mukherjee in his "The Dying Race", and Kishorilal Sarkar in his "Dying Race—How dying ?" discussed the matter from different stand-points. Recently Dr. Kamakhy Charan Banerjea of Dacca has published a very useful and well-timed book in Bengali, named "*Hindu Dubila*" (The Dying Hindu). It contains many useful informations, and the general theme deserves our most serious attention.

In Bengal the number of Hindus in 1911 was 20,945,379, while in 1921, instead of increasing, it came down to 20,809,148 i. e. less by about 136,000. Side by side with them, Muhammadans have steadily been increasing in number, and now they represent more than one half of the entire population of Bengal. The cause of this gradual decay is to be partially found in the utter disregard, on the part of the Hindus, of the general rules of hygiene as laid down in Ayurveda. With the spread of Western civilisation including Western medical treatment, the death rate in India is going up by leaps and bounds, and unless preventive measures are adopted from now, we are bound to become an extinct race. Charaka, in the third chapter of the

Vimanasthama states, that four elements, when vitiated devastate the whole country. They are Air, Water, Soil and Time (तद्यथा वायुरुदकं देशः काल इति), and he points out प्रज्ञापराध or faulty judgment as the root of all evil. "तस्य मूलमधर्मः। तन्मूलञ्चासत् कर्म्मं पूर्वकृतम् । तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव," says he, and goes on to observe, यदा वै देशनगरनिगमजनप्रदप्रधाना धर्ममुत्क्रम्य अधर्मेण प्रजां प्रवर्तयन्ति तदाश्रितोपाश्रिताः पौरजानपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति ।......तथा शस्त्रप्रभवस्यापि जनपदोद्ध्वंसस्य अधर्म्मं एव हेतुर्भवति । येऽतिप्रवृद्धलोभक्रोधमानास्ते दुर्बलानवमत्यात्मस्वजनपरोधाताय शस्त्रेण परस्परमभिक्रामन्ति, परान् वाभिक्रामन्ति, परैर्वाऽभिक्राम्यन्ते, रक्षोगणाभिर्विविधैर्भूतसङ्घैस्तमधर्ममन्यद्वाप्यपचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते ।...That is to say, when the heads or ruler of a country, town or village abandon the path of rectitude their followers and the people in general also follow the same path of vice......Then again, vice is the cause of war also. The strong, infatuated with lust or anger, oppress the weak and attack one another; or they are destroyed by supernatural influences necessarily following their evil deeds. That the words of Charaka are but too true is quite evident from a comparison of the present economic state of the country with its reaction upon the mass. Moreover, the blind imitation of the Western method of living has done immense mischief. It is impossible to deal with the question fully within so narrow a compass, and therefore I shall mention several of the most important points only.

Together with the orthodox mode of living, we have now given up our ancient religion, custom, food, dress etc , for those of the West. Such rapid radical changes are sure to bring in their wake terrible results upon our health, and that is exactly the state of affairs that we see around us. We are buying with our lives the fashions of the Western System. We disregard the wholesome hygienic rules laid down in Ayurveda, because they are not in keeping with our modern ideas of civilisation which we are adopting at the cost of longevity. Illustrations taken at random will fully bear out my statement. We have substituted our cheap and easily available tooth-brush (दन्तकाष्ठ)—a twing of certain prescribed trees—for costly tooth-brushes made of animal's hair. Several cases of serious poisoning have resulted from the use of such brushes, and even apart from that, the repeated use of the same brush from day to day is highly reprehensible from the stand-point of hygiene.

We now use costly tooth-powder and tooth-paste, instead of powdering some such thing as nimba-leaf, haritaki etc. ; they contain among other things soap and alkali. But alkaline dentrifrice is highly injurious to the system. Research has shown that they depress the tooth-protecting agents in the mouth. The failure of all alkaline past methods is now attributed largely to the use of soap and alkali. You all further know that teeth are very intimately connected with the visual orgal. Thus, the decay in teeth causes impaired eye-sight, one of the most prevalent diseases of the day. In food, we are now accustomed to exactly the very articles that go against health. Not to speak of Eastern sages, even western scholars, like Dr. Parker, say, "Avoid stimulants, condiments, spiced food, pepper, mustard, fat, pickles, onions etc." (New Marriage Guide). Dr. Deo Lewis of America says, "Avoid spirits and malted liquors, tea, coffee. tobacco... Tea is a strong stimulant which acts directly upon the nervous system...It is a prolific cause of constipation." Fruits on the other hand, so favourite of our Rishis of old, are equally praised now by eminent Western Doctors. It is really horrible to think to what state the modern civilisation has led its votaries. Out of a hundred women in America, the "most civilised" country of the day, there may be found perhaps only one who has normal play of all the functions of her body ; the remaining ninety-nine are troubled with neuralgia, nervous disease or one or other of the many female complaints.

"Unfortunately this is an age of luxury," says Dr. Chavassi in his advice to a Wife, "Everything is artificial, and diseases and weakness and even barrenness follow as a matter of course." In another place he observes that "the system of the bringing up of the young ladies of the present day is rotten to the core."

The use of the modern tight dress including corset, jacket etc, is highly prejudicial to health, especially in the case of pregnant women. Need we wonder that with so artificial and perverse a mode of living, the infant mortality should be 226 per thousand before they are one year old in Bengal, while in Calcutta it is seven times as great as that in New Zealand ? It is a notorious fact that a radical change in the general mode of living and diet tells seriously upon a nation, especially upon the infants. Who knows but our young ones may be atoning with their lives for the sins of their parents.

In other important matters also, such as marriage, widow remarriage and so on, modern Europe is now discovering with a shudder her terrible error of judgment, and is beginning to realise the value of the commands of our Rishis.

Gentlemen, I do not wish to prosecute the point any further, as I hope to have clearly explained the claim of Ayurveda to be not only our physician in case of disease, but also the best practical guide for the prevention of normal health.

But gentlemen, when all is said about the former development and glory of Ayurveda, we have still to face, explain and remedy the fact that the present condition of our healing art is anything but satisfactory. Before a remedy can be found, we must trace the origin and development of the disease, and must ascertain how and why, inspite of all its splendid traditions, Ayurveda came to fall into disuse. Of the two branches of Ayurveda—Medicine and Surgery—the latter has suffered most, and we propose to deal with that branch first.

The religious tendency and susceptibility of the Hindus played a considerable part in the abandonment of the practice of dissection and operation on dead bodies. The fear of ceremonial uncleanliness hampered greatly the spread of anatomical knowledge, and thus struck at the very root of the practice of Surgery. "Even in the Manu Samhita" says Dr. Mukherjea in the Surgical Instruments of the Hindus. Vol I, "we can trace the decline of Hindu Surgery, and his law forbidding anyone from eating food from the hands of a Doctor (Manu III, IV) evidently refers to a Surgeon." Susruta recommended the practice of Surgery on models, but his salutary advice is honoured more in breach than in observance. This, together with the comparative success of internal and external medicines, and the charm-cures and spells so prevalent in the Middle ages, contributed not a little to the decay of Surgery. The Surgeon's knife was sought to be replaced, and in many cases with considerable success, by caustics, leeches and the like. As to the cause of the decay of Ayurveda in general, including both Medicine and Surgery, it is much more complicated, and the economic and political conditions of our country have had a very large share in bringing about the result.

The Committee on the 'Indigenous Systems of Medicine' already reffered to, in tracing the cause of the downfall of the Indian Systems, observes, "We are also clear that the chief causes of the present decadent condition of the Indian Systems are mainly two:—(1) Lack of recognition and support by the State, and following the example of the State by other agencies (Princes, Zamindars, Local Bodies, Universities &c.) who were their natural patrons in the past, but have now ceased to be except in a few instances. (2) The establishment of the Western System as the *official* System, recognised and supported by the State, and enjoying the sole monopoly of State patronage... The study of Western Medicine gives a State-recognised status, and a good chance of entering into the service of the State, the Local Boards, the Railways and the like ;......on the other hand, the prospects of those who would take up the study of Indian Medicine are dreary and discouraging to a degree ;......in the eye of the State and the Law, they are more or less "Quacks"......Is it any wonder, that under such circumstances, the Indian Systems have progressively suffered decay, and that sufficient number of the best brains of the nation are not attracted to it."

Of course there is no exception to be taken to these well-considered pronouncements, and the above two reasons have very largely been responsible for the downfall of Ayurveda ; but there have been other causes, and very potent ones too. The beginning of the decay should be sought for elsewhere also.

There is no gainsaying the unfortunate fact, that our Government has been sadly wanting in the performance of its duty towards our national healing art, replacing it altogether, without adequate reason and enquiry, by the more costly system of their own, which very often proves alien to the health and temperament of those for whom it is intended. But in our zeal for condemning others of negligence, we must not forget our own sins, both of omission and commission, which have contributed so largely in bringing about the sad predicament in which we now find ourselves. As I am not however competent to speak with authority on other Indian Systems such as Siddha and Unani, I shall confine myself to Ayurveda. I have already referred to the downfall of Ayurvedic Surgery. One of the causes of decay of Ayurveda as a whole, is the high regard which the Hindus have always cherished for the writings of their sages. As a result of this, the entire Medical Science has become stereotyped, all subsequent authors copying more or less correctly the few authorities including Charaka and Susruta. There was no printing system, and the entire Sastra was orally handed down from generation to generation, with the occasional help of written Mss. No one had the courage or opportunity to rectify any mistakes that might have crept into the text-books oral or written, the result being, that obscure or faulty portions were explained by more obscure and faulty commentaries. Later writers differed in many places among themselves, whenever they fell into any error. Thus the Medical Science had its final say once for all, and instead of being progressive, it became stereotyped. Far be it from me to question the authority and wisdom of our sages, but with the deepest respect for them, I must say, that no Medical Science can ever become complete and exhaustive, without the slightest need of modification or addition in any way even after ages. Charaka and Vagbhata say :—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानान्तराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥

तस्माद् विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च ।
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्य्यादुपक्रमम् ॥

"Let not a Physician feel shame, if he cannot identify any particular disease of a patient with a name given in his book; for all possible diseases have not exhaustively been enumerated in Medical treatises. One and the same dosha (Vayu, Pitta or Kapha), owing to the difference of the existing cause and its seat, produces innumerable diseases of different types. The Physician therefore should make prompt arrangements for treatment, after carefully considering the nature of the disease, its seat and the producing causes". Unfortunately there has up to now only been a servile following of Ayurveda, instead of intelligent handling, and numerous inaccuracies and mistakes have in the meantime crept into the System. I had to experience the greatest difficulty in deciding the correct reading of the text when in writing my Sanskrit Commentary on Charaka. I collected fifteen old Mss. from different sources for collation. A blind respect for the rules of Panini arrested the growth and sounded the death-knell of Sanskrit as a spoken language, and the same has been the case with our science also.

The downfall of Hindus as a political nation has been another factor. In Asoka Inscriptions we find that hospitals were established by him in different parts of his Kingdom, not only for men but for brutes also. We learn further from the accounts of Hieunth Sang and Fa Hian that charitable medical institutions were quite common in ancient India. We have also evidence that our standard Medical works were translated into Arabic in about the 8th century.

But with the end of their political supremacy, the Hindus lost their fine traditions. The adopted fashions of the Court, Vaidyas were often replaced by Hakims just as Vernaculars were replaced by Persian and Urdu. Muhammedans did not take real interest in our science, for the conquerors had their own Hakims whom they patronised. Then the English came, and they in their turn supplanted the Hakims by their Doctors. We have become so enamoured of the Western civilisation, that we do not even care to know whether our science can afford us any relief, but we must consult foreign Doctors even on trivial occasions. Our children no more like our homely products, but are now accustomed to—nay, dependent upon malted milk, condensed milk, biscuit and similar artificial food. Even meat juice, in order to be palatable to us, must come tinned from Europe. Ordinary purgatives and digestives are no more prescribed by Charaka, but supplied by British firms. We prefer preserved fruits and jellies of Europe to the fresher and cheaper ones of our own country. Could mental perversity and slavishness go further ? I do not like to exhaust the subject, for that would exhaust your patience too ; but, gentlemen, I cannot let the matter pass without considering the effect of some of the strong medicines and artificial food-stuffs of the West, especially on our infants. "The large amount of carbonate of soda that is used," says Dr. Fisher, M. D., "at the present day in one of the popular methods of feeding infants may be viewed in the light of stupefaction." Most of the patent foods and malted milks are highly injurious to children, for they contain very little fat and too much carbo-hydrates as revealed in their analysis. Even the rubber tubes in feeding-bottles have on very many occasions proved a fruitful source of disease in children. Mother's milk, supplemented by cow's milk is the best food for children, and this method of feeding them would greatly reduce the infant mortality.

Fortunately for India however, with the national awakening, there are unmistakeable signs of the revival of Ayurveda. We must not forget here to pay our deepest respects to the great Acharya Gangadhara of Berhampore, who was the pioneer of Ayurvedic renaissance, at least in Bengal. Indeed, such was the decadent condition of Ayurveda in Bengal before the time of Gangadhara, that a complete Ms. of the Charaka Samhita was a rare thing, and people did not even know the nature of the work. The Sabdakalpadruma—a Sanskrit Encyclopædia—which was published about one hundred years back, does not contain the name of Agnivesa at all, whereas under "Charaka" it says, **मुनिविशेषे, तत्कृतग्रन्थे च** i. e. "First, a sage of that name, and next, his treatise." The authors and editors had no information that Charaka was merely the redactor of the treatise of Agnivesa—a fact clearly stated at the end of every chapter of the Samhita. It was with the greatest difficulty that Gangadhara collected fragments of the Ms. from different sources, and then wrote and published his masterly commentary upon the work, and thus gave the first impetus to the study of Charaka after its dark age. His was a genius equally at home in all branches of Sanskrit learning, but his monumental work, the Jalpa Kalpataru is the landmark in the revival of Ayurvedic study. Certainly there were stray and feeble attempts, before Gangadhara, to keep up the tradition of Ayurveda, but these attempts coalesced into a complete whole under the able guidance of this intellectual giant who will for ever be remembered with the deepest veneration by all lovers of Ayurveda.

It might be mentioned also that Vridha Vagbhata's Ashtangasangraha too existed in name only. From Chakrapani who flourished about one thousand years ago, down to Gangadhara who died in the eighties of the last century, no Medical author has quoted from him. Now however, his work has been published and is easily available.

Gangadhara left behind him a host of worthy disciples who continued and spread his work. Then with the change in the national outlook, Ayurveda is steadily gaining in popularity. Though much more remains to be done, we cannot but view with hope the interest in Ayurveda evinced not only by the general public but by the Government, and following in its wake, Local Boards, Corporations and similar institutions. Several District Boards in Bengal have opened Ayurvedic charitable despensaries. Recently I was requested by the Civil Surgeon of Maldah to spare some medicines for their charitable dispensary in order to start experiments on patients suffering from Malaria and Kala-azar. I most gladly accepted the proposal, and I am sure that the results will be quite satisfactory.

Here I must gratefully make a mention of the kind interest evinced by the Madras Government which appointed in 1921 a committee "to report on the question of the recognition and encouragement of the Indigenous System of Medicine in vogue in this Presidency." The object of the enquiry was "to afford the exponents of the Ayurvedic and Unani Systems opportunity to state their case fully in writing, and to justify State encouragement of these Systems." The Committee, presided over by Khan Bahadur Muhammad Usman Sahid Bahadur, B. A., M. L. C., made thorough enquiry into the matter, submitted a report full of interesting and important informations. I have already referred to the Report more than once. Our grateful thanks are due to the Madras Government and the Committee for their sympathetic attitude.

Towards the end of February last, I received a letter from my friend Pandit M. Duraiswami Aiyanger which ran as follows, 'It is proposed to form an association of practitioners of Indigenous Systems with a view to advise the Government on the question of the curriculla of Indian Medical Schools, and the standard to be attained by registered practitioners of Indigenous Systems." He further informed me that the Government had appointed an Advisory Board of which Dr. Duraiswami himself was a member, to determine as to how to start an Indigenous Medical College. It may be pointed here, that the All India Ayurveda Vidypitha is steadly progessing; and the Government will be well advised to recognise it while starting an Ayurvedic College. In fact, the Vidyapitha may be transformed into, if I may say so, a Medical University to which the Indigenous Institutions should be affiliated. It is strongly hoped that the example set by the Madras

Goverument will be followed by other Governments and States in India.

The Bengal Government also appointed a Committee of Indigenous Systems of Medicine. The result of the labours of this Committee, when published, promises to be instructive and interesting.

In the beginning of March last, it appeared in the Amrit Bazar Patrika, that at a recent Cnnference of Hakims and Kavirajes held at Patna under the presidency of my esteemed friend the Hon'ble Khan Bahadur Sir Muhammad Fakhruddin, Minister of Education, means were dicussed to improve the methods of teaching Ayurvedic and Tibbi Sciences. Both the Ministers, the Hon'ble Sir Muhammad Fakhruddin and the Hon'ble Mr. Ganes Dutt Singh said that the Government was ready to help the study of Ayurvedic and Tibbi methods of treatment. Our sincere thanks are due to the B. & O. Government and the two Ministers.

Throughout India, as you all know, Ayurvedic Institutions have been started where regular examinations are held. Vaidyas and Hakims are now holding meetings and conferences to devise means of improving their respective sciences, and we fervently hope, that the day is not far distant when we shall once more find the Indian Systems in their full glorv and splendour.

Gentlemen, before I pass on to the discussion of the ways and means for the revival of Ayurveda, I should like to refer to a very popular topic of the day—namely the combination of the Eastern and Western Systems. I must confess gentlemen, that I really do not understand the exact meaning and scope of this demand. First, is the combination desired for the betterment of the Western System or for that of ours ? If the former, it is at least on the present occasion, beyond my province, for I am not just now advocating the cause of the European System. If the latter, we have got to consider the problem thoroughly, for, I am afraid, the question is not quite so simple as it seems. There are many at least in Bengal, who would prefer an Ayurvedic student to start with an English degree such as L. M. S., M. B., or the like. Now gentlemen, as matter stands, no student who has not at least passed the Intermediate Examination is admitted into the Medical Colleges, though among the selected ones every year we find many B. Sc.'s and several M. Sc.'s also. Five or six years' very hard labour is the minimum work that is expected of him before he has any chance of obtaining the Medical degree. I hope you will not differ from me very much when I hold, that after undergoing the strenuous labour and meeting the exorbitant charges in a medical college for about six years, an average student who has already graduated or at least passed the Intermediate Examination, finds neither the leisure, inclination, energy nor the money wherewith to start on a fresh medical carreer, namely the Ayurvedic, extending over several years more. For, the study of Ayurveda is not a matter of joke. An M. B. may derive some benefit from his previous knowledge of Anatomy, Physiology &c., but he has got to read entirely anew the portions embracing Medicine, Therapeutics, Toxicology, Diagnosis, Midwifery, Treatment of women and children, Rasayana, Vajikarana, etc., even if we leave Surgery out of account, for the present. In these departments of Ayurvedic study, he will hardly derive any assistance from his previous Western degree, except what is of a more or less comparative value, and he will require several years to complete his study properly. I repeat gentlemen, that this is certainly too much to be expected of a student of the average merit and means.

One thing more, we generally find that our first impressions are very strong, and man by nature is conservative. Once a student has had a medical knowledge through the Western method, he will, later on, test the merit of Ayurveda according as it tallies with his science. The result will be, that not only will he be very likely to reject all portion in Ayurveda that will appear to him to be conflicting with his former ideas, but even where both equally apply, it is ten to one that he will avail himself of the Western System rather than Ayurveda. He will hunt up the European Pharmacopoea for medicine, rather than Indian, and want of strong faith in Ayurveda will entirely vitiate his medical practice. Of course there may and will be honourable exceptions, but they will, so to say, prove the rule. We do not want staunch Doctors with some superficial knowledge in Ayurveda for which he feels no very high regard. Rather we want staunch Ayurvedic Physicians who may have their stock of knowledge increased by the rational and supplementary study of other Systems of Medicine. We want other systems to supplement and not to supplant Ayurveda. It would therefore be more to our purpose to educate our students thoroughly in Ayurveda first, and then to allow them to make comparative studies of other systems. Of course even during their Ayurvedic study of Anatomy, Physiology, Surgery etc., they may derive help from the Western System, but they must remember that other systems are always to supplement their national science and never to replace it. My remarks apply more forcibly in the branches of Diagnosis, Medicine etc., for, the method of diagnosis in Ayurveda is entirely different from that of the Europeans who have never heard of Vayu, Pitta and Kapha. We must first of all master these things thoroughly; then we may if we like, go through the same in other systems also, but never before; and similar is the case with other branches too.

Before I conclude gentlemen, I beg to place before you some of my humble suggestions for the proper cultivation of Ayurvedic science. The first twe aims ought to be (1) to make the study and practice of Ayurveda popular and (2) to make Ayurveda self-sufficient and efficient. For the attainment of these, State aid and patronage by Zemindars, Local Bodies and Corporations are essential. Offer of stipends, guarantee of service and the establishment of proper schools with laboratories and hospitals will go a very great way to solve the problem. Of course the details have to be worked out according to the special circumstances of every case, and even modified in the light of practical experience. What I say now is only a very general outline to start with. To make the science and art of Ayurveda self-sufficient, thorough investigation is to be made into the forgotten portions, such as Major and Minor Surgery, Midwifery etc; and text-books have to be selected, compiled, and written in the light of the modern tendency, method of expression and mode of study. Work in this direction is a-foot in all provinces in India, and many schemes have been formulated. All of them require a considerable sum of money not only initial, but of a recurrent nature too. But that need not dishearten us. One may not see eye to eye with it in every detail, but the scheme drawn up by the Committee for the Indigenous System of Medicine, Madras, is one of the best that I have come across, and it requires an annual grant of about five lakhs of rupees. "We cannot imagine", the members observe in putting forward their suggestion, "that at a time when we are voting nearly 57 lakhs per year for the maintenance of the European System of Medicine, which reaches but a small 10 to 20 p. c. of our population and that too mostly those who reside at urban centres, it will be possible for anybody to grudge a comparatively small provision of barely five lakhs for the promotion of those Indian Systems which minister to nearly 80 to 90 p. c. of our total population, and which are practically the only solace of our sick and suffering brethern resident in the vast and far-flung rural tracts."

Our Universities also can well make provisions for the study of Indian Medicine. Examinations are now held almost all over India every year for conferring Ayurvedic degrees, and the Hindu University and several States have already taken up the teaching of Ayurveda in right earnest. Such encouragements have not yet been sufficient, nor even, in cases, satisfactory, but undoubtedly they are a move in the right direction, and they have got to be followed with patience and discretion.

Another point is the true identification of drugs and other ingredients of the Ayurvedic pharmacopoea, as also the proper preparation of Ayurvedic medicines in strict accordance, except where obvious advantages are to be gained otherwise, with the instructions and provisions in the Ayurveda. I say advisedly, 'in accordance with the provisions in Ayurveda,' for there now seems to be a general desire for preparing indigenous medicines according to the modern scientific methods of the West. But these variations in very many cases take away much from the quality of the preparations. Several instances are quite well-known to you all ; e. g. substitution of metal pots for earthen or stone ones in storing acids will cause reaction of the acid on the metal. In many instances, special fuel is recommended for the preparation of particular medicines. There the substitution of one kind of wood for another, or for the matter of that, of gas or electricity is very likely to interfere with the medical qualities of the preparations. It is a fact known to even the women of Bengal, that rice cooked on a slow fire of cow-dung cakes is much more easily digestible than that boiled on some other kind of fire. Sveda (fomentation), to take another example, is not a matter of mere application of heat, but the source of heat as also the article to be heated and applied are of very great importance. A kind of Makaradhvaja has recently been prepared in Germany, and it sells in Calcutta at a rupee per tola. It appears a little blackish in comparison with ours ; it may be quite faultless as regards the general appearance and certain chemical properties even, but I have very grave doubts about its medical effect. Several chemical and phermaceutical works now manufacture extracts from drugs and many Ayurvedic medicines. Far be it from me to minimise the services of such companies, but I must firmly advocate the closest possible observance of the orthodox procedure in such manufacture.

Then, the Exhibition held in connexion with the annual sitting of the Conferenee serves a great deal to awaken a general interest in our healing art. The value of such Exhibitions, wherein very rare medicines and drugs, as also Mss., books and articles of medical interest are shown in a systematic way, can hardly be over-estimated ; and our sincere thanks are due to you, the people of Ceylon, for opening such a splendid Exhibition. The holding of such Exhibitions will go a great way to popularise Ayurveda and help its revival.

Last, though most emphatically not the least, we have got to re-kindle our strong faith in the rich treasures and immense possibilities of Ayurveda. We must learn to recognise and to love Ayurveda as our own, and we must look to it and not to foreign systems in our medical needs. Unwavering faith must precede all our attempts for its revival, paving our way and sustaining us in despair.

Gentlemen, I do not wish to detain you any more. There are here, as I find around me, many intellectual giants who are much more competent to speak authoritatively and in detail on the points that I have merely touched. I am as eager as you, if not more, to listen with interest and benefit to the speeches of these savants. Before however, I resume my seat I feel it my duty to thank you once more fot the honour you have done me in electing me for the second time your chairman, and secondly for the patient hearing which I have been fortunate enough in obtaining from you. Gentlemen, I know fully well, that I have not been able to discharge my duties as I would have, but I crave your indulgence and hope to be excused for my defects and short-comings. My intense love for Ayurveda and deep respect for your commands have been the chief factors that induced me to accept this heavy responsibility, and I hope that with your able guidance and hearty co-operation, our Conference will be crowned with success and glory.

Now ladies and gentlemen, let me conclude with the hope that.

स्निग्धैः स्निग्धैर्यदतिकरुणापुण्यपीयूषवर्षैः
कामं कामं सुचिरमभवत् तर्पितः सर्वलोकः ।
आयुर्वेदो ग्रहपरिगतः पार्वणः शर्वरीशः
सोऽयं भूयः प्रकटितरुचिर्जीवजीवातवेऽस्तु ॥ इति

॥ शम ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमान् पण्डित गोवर्धन शर्मा छांगाणी, भिषक्केसरी का जीवन-चरित ।

सम्माननीय पूज्यपाद श्रद्धेय गुरुवर्य गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी "भिषक्केसरी" की जीवनी नितान्त उद्बोधक एवं आदर्श है । भारतीय-आयुर्वेद संसार में आपको न जाननेवाला कदाचित् कोई विरला ही होगा तथापि आपके विषय में कुछ लिख देना हम उचित समझते हैं ।

आपका जन्म राजपूतानान्तर्गत मारवाड़ की राजधानी जोधपुर से ८० मील की दूरी पर बसे हुए पोकरण नगर में सम्वत् १९३२ आश्विन शुक्ला १० अर्थात् विजया दशमी गुरुवार की रात को पुष्कर्णा ब्राह्मण जाति के छांगाणी-कुल में हुआ था । आपके पूज्य पिताजी का नाम जीतमल्लजी था और माता का मूली बाई है । ज्येष्ठ कनिष्ठ मिलकर आप सात भाई-बहिन थे; किन्तु इस समय केवल तीन बंधु ही सपरिवार वर्तमान हैं । इन सब में आप ज्येष्ठ हैं । आपके छोटे भाई रामलालजी आर्वी (वर्धा) में और उनसे छोटे आपही से पढ़े हुए वैद्यभूषण पं० गौरीदत्तजी शर्मा छांगाणी अपने जन्मस्थान पोकरण में ही चिकित्साकार्य करते हुए, माताजी की सेवा में रहते हैं ।

छांगाणीजी की योग्यता

गुरुवर्य छांगाणीजी का बाल्यकाल पोकरण (मारवाड़) में ही बीता । लाड़-प्यार के सबब ११ साल की अवस्था तक आपने शुद्ध अ, आ, इ, ई, या क, ख, ग, तक भी नहीं पढ़ा था । यह बात आपके ज्येष्ठ बंधुओं तथा विशेषतः ममेरे भाई स्वर्गीय हीरालालजी जोशी को बहुत खटकी । वे प्रायः बरार में ही रहते और मुनीमी का कार्य करते थे । प्रसंगवशात् सम्वत् १९४४ में वे अपने घर पोकरण आये हुए थे । 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस उक्ति के अनुसार भाई हीरालालजी को बालक छांगाणीजी की बुद्धि बड़ी प्रखर प्रतीत होने पर भी दुःख हुआ कि खेल-कूद ही में सारी बात बिगड़ रही है । किसी तरह जोशी जी अपने फूफा-फूफी (छांगाणीजी के माता, पिता) को समझा बुझाकर, इन्हें जिला अमरावती (बरार) के क़सबा मंगरूल दस्तगीर में ले आए और आने के दस-पन्द्रह दिन बाद ही सरकारी मराठी पाठशाला (स्कूल) में भर्ती कर दिया । इस पाठशाला के प्रधानाध्यापक (हेड मास्टर) स्वर्गीय पं० हरिनारायणजी भिड़े संस्कृत एवं अंग्रेजी के अच्छे पण्डित थे । आपका पुत्र रामभाऊ छांगाणीजी का सहपाठी और मित्र था, अतः भिड़ेजी ने बालक छांगाणीजी को भी बड़े प्रेम पूर्वक पुत्र ही मान लिया था । वे प्राचीन हिन्दू संस्कृति के बड़े प्रेमी एवं संस्कृत साहित्य के आचार्य थे । पाठशाला के अतिरिक्त भी वे रामभाऊ और छांगाणीजी को खुला न छोड़कर अपने घर पर रात दस बजे तक पढ़ाते थे । इनकी इस महती कृपा का फल यह हुआ कि रामभाऊ और छांगाणी जी ने प्रति वर्ष उत्तीर्ण होते हुए सात ही साल में यहाँ की पाठशाला का अध्ययन

विद्यावाचस्पति श्रीमान् पण्डित गोवर्धनजी शर्म्मा छांगाणी,

भिषक्केसरी, वैद्यभूषण, प्राणाचार्य, नागपुर ।

अध्यक्ष
- नि० भा० पंचविंशतितम वैद्यसम्मेलन, अहमदाबाद ।
- राजपूताना प्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन, बीकानेर ।
- श्रीबरार-मध्यप्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन, छिन्दवाड़ा ।

भू० पू० प्रधान सम्पादक—वैद्यसम्मेलन पत्रिका ।

समाप्त कर दिया। सात कक्षा मराठी एवं तीन अंग्रेजी की पार कर गये। इतना ही नहीं, स्वर्गीय भिड़ेजी ने सात साल में शब्द रूपावलि, धातु रूपावलि, समास चक्र से आरम्भ कर संस्कृत व्याकरण, कोष, काव्यादि में इन्हें अच्छा पण्डित बना दिया। उक्त पाठशाला में सात कक्षाएँ ही थीं इसलिए ये दोनों मित्र अमरावती भेजे गये। हाई स्कूल एन्ट्रेंस में प्रविष्ट हुए किन्तु चार-छः मास के बाद ही दुःखेन छांगाणीजी को अपने मित्र रामभाऊ और स्कूल से अलग होना पड़ा। अपने ज्येष्ट बंधु प्रतापचंदजी के ग्रहणी रोग-ग्रस्त होने से उनके साथ इन्हें अपने देश पोकरण (मारवाड़) में जाना पड़ा। दो मास के अनन्तर ही ज्येष्ट बन्धु का देहान्त हो जाने पर संस्कृत विद्यानुरागी छांगाणी जी सम्बत् १९५२ के प्रारम्भ में पुनरपि अमरावती लौट आए। आते ही आपकी भेंट पं० काशीनाथ जी पंजाबी ज्योतिषशास्त्री से हुई। पण्डित जी के उपदेश एवं प्रोत्साहन देने पर ज्योतिषाध्ययन का संकल्प कर आप अमरावती से पंजाब की ओर अपने मित्र मोहन व्यास को साथ ले, वैशाख की कड़ी धूप में रवाना हुए। अजमेर, रेवाड़ी आदि होते हुए लाहोर पहुँचे। वहाँ व्यवस्था न बैठने से एकदम गूजरांवाला, वज़ीराबाद होते हुए जम्मू (काश्मीर) पहुँचे। वहाँ रघुनाथ पाठशाला के पं० श्री गंगाधर शास्त्री जी से लीलावती और बीजगणित पढ़े; परन्तु यहाँ की बर्फीली ठंढ बरदाश्त न कर सके और पुनरपि अपने देश (मारवाड़) में चले आये। सम्बत् १९५३ के जेठ में विवाह हुआ और कार्तिक में पुनः अध्ययनार्थ अमृतसर जा पहुँचे। वहाँ लगातार चार वर्ष रहे। श्रीमान् पं० धारीलाल जी से ज्योतिष तथा हजारीराम जी सारस्वत से आयुर्वेद का अध्ययन किया। उनकी आज्ञानुसार सम्बत् १९५८ में देश पधारे और वहाँ से खामगांव (बरार) में आकर वैद्यक-व्यसाय में प्रवृत्त हुए। इतना ही नहीं, सम्बत् १९५८ से आजतक गुरुवर्य छांगाणी जी ने राजपूताना, सिन्ध, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बंगाल, मद्रास, बंबई आदि प्रान्तों के कई नगरों की सैर भी की। नाना गुरुओं से नाना विद्याओं एवं हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फारसी, बंगाली आदि कई भाषाओं में प्रावीण्य प्राप्त कर, समय-समय पर सम्वाद पत्रों में कविता और लेख भी लिखे। सुलेखक समझ कर ही आपको सम्वत् १९७२ में 'मारवाड़ी' साप्ताहिक हिन्दी पत्र एवं प्रेस के स्वत्वाधिकारियों ने खामगांव से अनुनय-विनय कर नागपुर बुला लिया। उनके अनुरोध से सम्पादक का स्थान ग्रहण कर आपने १० वर्ष तक 'मारवाड़ी' का भली भाँति संचालन किया। साथ ही वैद्यक व्यवसाय भी करते रहे। तब से आज तक आप नागपुर ही में स्थित हैं।

आयुर्वेद सेवा और संमान

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल तथा आयुर्वेद विद्यापीठ से आपका सम्बन्ध सन् १९२९ में हुआ। प्रविष्ट होते ही आप महामण्डल के आश्रयदाता यावज्जीवन सभासद (Life Member) चुने गये। आपकी विद्वत्ता एवं कार्यकुशलता से मुग्ध होकर महामण्डल एवं विद्यापीठ प्रारम्भ से ही आपको मध्यप्रान्त की ओर से अपने कार्यकारी मण्डल के सदस्य चुनते आ रहे हैं। सन् १९३१ से आप महामण्डल एवं विद्यापीठ-संचालित वैद्य सम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक नियुक्त किये गये। वृद्ध होते हुए भी बड़े उत्साह के साथ सन् १९३५ तक आपने पत्रिका का सम्पादन किया। आपके सम्पादन काल में पत्रिका का कोई भी अंक ऐसा न निकला जिसमें आपका मौलिक एवं मार्मिक सम्पादकीय अग्रलेख न हो। इतना

ही नहीं, महामण्डल एवं विद्यापीठ सन् १९३१ से आपको प्रतिवर्ष विशारद एवं आचार्य परीक्षा के परीक्षक भी नियुक्त करते आरहे हैं। इसके अतिरिक्त दयानन्द आयुर्वेदिक कॉलेज लाहोर, हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग आदि के भी आप आयुर्वेद परीक्षक हैं। आपकी लगन एवं अदम्य उत्साह का ही फल है कि आज नागपुर में 'वैद्यक महाविद्यालय' 'श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय', उसके द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालयादि संस्थाएँ आयुर्वेद पढ़ाने और विद्यार्थियों को निदान चिकित्सादि के प्रत्यक्ष ज्ञान-प्रदान का कार्य सुचारुरूपेण कर रही हैं। वैद्यक महाविद्यालय के आरम्भ से दो साल तक आचार्य पद को आप ही ने सुशोभित किया था; किन्तु विज्ञप्ति देकर भी कार्यकारिणी के नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का अभ्यासक्रम न रखने के कारण आप उससे अलग होगये और तुरन्त ही अपने मित्रों एवं विशेषतः सेठ बंसीधर जी रामनिवास गोयनका के साहाय्य को प्राप्त कर आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रमानुसार शिक्षा देने वाले 'श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय' की स्थापना कर उसे विद्यापीठ से संबद्ध भी कर दिया। इतना ही नहीं, साथ-ही-साथ विद्यार्थियों के प्रत्यक्ष ज्ञानार्थ विद्यालय के नियंत्रण में चलनेवाले धर्मार्थ औषधालय का भी उद्घाटन करा दिया। इसका सारा खर्च श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका प्रति मास उदारता पूर्वक देते हैं। विद्यालय के आचार्य (प्रिंसिपल) गुरुवर छांगाणी जी प्रतिदिन नियमानुसार अपने तीन अन्य विद्वान् सहयोगियों सह बड़े प्रेम से विद्यार्थियों को पढ़ाते और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षा दिलाते हैं। आपकी पढ़ाने की शैली अत्यन्त प्रभावशालिनी है। केवल भिषक् ही नहीं, आपके पढ़ाये कई विद्यार्थी विशारद एवं आचार्य तक की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर आज महाराष्ट्र, राजपूताना, संयुक्तप्रान्त आदि में सफलतापूर्वक चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। सिवनी के अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय, नागपुर के पुराणिक आयुर्वेद विद्यालय एवं अन्य धर्मार्थ औषधालयों को भी आपका सहयोग प्राप्त है। अमरावती के "भारत आयुर्वेद महा विद्यालय" की संचालक समिति के आप सम्माननीय सदस्य हैं। वहाँ की आयुर्वेद पाठशाला का उद्घाट्टन भी आपही के कर कमलों द्वारा हुआ है। श्री बरार मध्यप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की स्थायि समिति, राजपूताना प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन एवं नागपुर वैद्य मण्डल के आप वर्तमान अध्यक्ष हैं।

कुछ वर्षों से आपका ध्यान दक्षिण भारत के सिद्ध साम्प्रदायिक आयुर्वेद साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ है। सिद्ध-साम्प्रदायिक-ग्रंथमाला का सम्पादन भी आपने प्रारम्भ कर दिया है। आप अपने निज व्यय से इस माला के प्रथम पुष्प स्वरूप 'वसवराजीयम्' नामक लगभग एक सहस्र बर्ष के प्राचीन एवं बृहद् ग्रंथ का सुचारु रूपेण संपादन एवं प्रकाशन भी कर चुके हैं। इसी ग्रंथमाला का द्वितीय पुण्य 'वैद्यचिन्तामणि' जो कि उक्त ग्रंथ से भी प्राचीन है, सम्प्रति आप ही के द्वारा छप रहा है।

भारत की कई प्रसिद्ध संस्थाओं ने आपका सम्मान किया है। सम्वत् १९७४ में कलकत्ते के विश्वनाथ निकेतन (सम्प्रति विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय) ने आपको 'वैद्यभूषण' एवं निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन मैसोर के अध्यक्ष महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन सरस्वतीजी ने सन् १९३१ में 'भिषगाचार्य' पद से अलंकृत किया है। निखिल भारतीत विद्वत्सम्मेलन के १६ वें अधिवेशन में श्रीमान् पंचाम्बुभूषण पं० बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यासागर ने 'विद्यावाचस्पति' एवं श्री १०८ श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्यजी ने आपको नागपुर में भोंसला संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य महामहोपाध्याय श्री केशवरावजी ताम्हन आदि सह नगरस्थ

C.S. RAI & BRO'S
ENGRAVERS
NAGPUR CITY

स्वर्गीय भिषक्केसरी पं० रामकृष्ण सेवाराम दुबे, इन्दौरकर ।

आपने ही नागपुर में पधार कर सन् १२१५ में नागपुर वैद्यमण्डल, धन्वन्तरि पाठशाला (संप्रति श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय) और श्री धन्वन्तरि धर्मार्थ चिकित्सालय की स्थापना की। नागपुर में आयुर्वेद-प्रचार का बड़ा भारी श्रेय आपही की दिवंगत आत्मा को प्राप्त है।

अनेक विद्वानों की सभा में बड़े सम्मान के साथ 'भिषक्केसरी' पद से विभूषित किया है।

सन् १९३२ में बीकानेर में होनेवाले राजपूताना प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन एवं सन् १९३४ में छिंदबाड़े के श्री बरार मध्यप्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति आप ही निर्वाचित हुए थे। इतना ही नहीं, सन् १९३५ के दिसम्बर में रजतजयन्ती सह अहमदाबाद में होनेवाले निखिल भारतवर्षीय २५ वें वैद्यसम्मेलन के सभापति आप ही निर्वाचित किये गये थे। इसलिये भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के सभापवि (अध्यक्ष) आप ही हैं। आपके हिन्दी एवं संस्कृत भाषण आपकी विद्वतानुरूप बड़े ही प्रभावशाली हैं। आयुर्वेद संसार के महारथी श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी आचार्य, श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य स्वामी लक्ष्मीरामजी, महामहोध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती आदि आपको बड़ी श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

रहन सहन और स्वभाव

श्रद्धेय छांगाणीजी की रहन-सहन इतनी सादी है जिसे देखकर कोई भी नहीं समझ सकता कि इस शरीर में परम पिता परमात्मा ने गहन गवेषणा पूर्ण इतना शास्त्रीय ज्ञान कूट-कूटकर भरा है। स्वभाव भी आपका नितान्त ही सरल है। इस समय आपकी अवस्था ६० वर्ष की हो जाने पर भी आपकी स्मरण-शक्ति बड़े-बड़े मेधावी युवकों से भी बढ़कर है। आप पीयूष-पाणि चिकित्सक हैं। धनिकों एवं दीन दुखियों तक से आपका व्यवहार एक सा रहता है। उदार भी आप ऐसे हैं कि आपके पास आया हुआ कोई भी व्यक्ति विमुख नहीं लौटाया जाता। आपका गोवर्धन नाम भी सार्थक ही प्रतीत होता है क्योंकि आप पर गोवर्धन की धुन सदैव ही सवार रहा करती है। आप किसी समय जायँ, उन्हें आप गो-सेवा (वाणी एवं गौओं की) में ही तल्लीन पाएंगे क्योंकि नागपुर जैसे बड़े शहर में रहते हुए भी आपके यहाँ १५, २० गौओं की सेवा सदैव हुआ करती है और हुआ करती है गो = भगवती सरस्वती की आराधना भी कभी आप गौओं की सेवा करते मिलते हैं तो कभी शास्त्रावलोकन करते या लिखते। गौएं भी। आपकी बड़ी हृष्टपुष्ट एवं दर्शनीय रहती हैं। संभवतः इसी द्व्यर्थक गो-सेवा को ध्यान में रखकर ही निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलनाध्यक्ष निर्वाचित होने पर नागपुर के समस्त वैद्य एवं विद्वन्मण्डल ने निम्न-लिखित पद्य को पढ़कर आपका अभिनन्दन किया था। यथा—

"आयुर्वेदविशारदः सहृदयः पीयूषपाणिर्बुधो
गोसेवानिरतो वहत्यनुगुणां गोवर्धनाख्या कृती।
स्थाने वैद्यमहासभापतिपदे विद्वद्भिरारोपित-
छांगाणीत्युपनामको विजयते श्रीमान् भिषक्केसरी॥"

आपके शिष्यद्वय

नागपुर,
ता० १।७।१९३६ ई०

श्री गुलराज शर्मा (आयुर्वेद विशारद)
श्री केदारनाथ शर्मा (आयुर्वेद शास्त्री)

॥ श्रीः ॥

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

निखिलभारतवर्षीयपञ्चविंशतितमवैद्यसम्मेलनस्य अहमदाबादनगरे समवेतस्य सभापतीनां

छाङ्गाणीत्युपाख्यवैद्यश्रीगोवर्धनशर्मणां

अभिभाषणम् ।

ॐनमो ब्रह्मप्रजापत्यश्वीन्द्रधन्वन्तरिसुश्रुतादिभ्यः ।

योगं योगविदां विधूतविविधव्यासंगशुद्धाशय-
प्रादुर्भूतसुधारसप्रसृमरध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
आनन्दप्लवमानबोधमधुरामोदच्छटामेदुरं
तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥१॥

त्रिभुवनजनरोगग्रामसंग्रामजेता-
मृतभृतधृतकुम्भोद्गूर्णहस्तायुधश्रीः ।
अमरमथितदुग्धाम्भोधिलब्धोदयोऽसौ
दलयतु दुरितौघानाद्यवैद्याधिपो वः ॥२॥

अयि परममाननीयाः स्वागतसमित्यध्यक्षाः, श्रीधन्वन्तरिकल्पवैद्यप्रवराः, समुपस्थितसभ्यमहोदथा आर्यललनाश्च,

श्रीजगदीशितारं वारंवारं प्रणम्य, स्मारंस्मारं च सर्वेषां श्रीमतां तत्रभवतां निर्व्याजसौहार्दं, प्रयच्छाम्यनन्तान् धन्यवादान् यत्सत्स्वप्यर्हत्तरेष्वपरेष्वायुर्वेदपारावारपारीणेष्वगदङ्कारप्रवरेषु सम्मेलनस्यास्य सभापतिपदेऽतीव निर्गुणमपि मां नियोज्यात्मसम्मातभाजनीकृतोऽहमिति । योग्यताभावेऽपि न जाने किमिव मनसि कृत्वास्मिन्महति पदे मन्नियुक्तिरेव कृता श्रीमद्भिरित्याश्चर्यमेव । प्रेम्णैव कृतमेतत्सर्वमपीति भाति । प्रेम्णैव मयाप्यविलङ्घनीयामाज्ञामिमां गुरूणां महतादरेण शिरसि कृत्वा स्वीकृतं पदमिदम् । किन्तु स्वयोग्यतायां संशयानोऽहमित्यभ्यर्थये सहयोगम् । यतः सर्वेषां सहयोगादेव भवति निरन्तरायकार्यसिद्धिरिति मे द्रढीयान्विश्वासः ।

प्रेष्ठाः, महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनसरस्वतीमहोदयानां, धन्वन्ततिकल्पश्रीलक्ष्मीरामस्वामिनां, त्रिविक्रमतनूजश्रीयादवाचार्याणामायुर्वेदमार्तण्डानां, महर्षिकल्पश्रीमदनमोहनमालवीयानां, राजर्षीणां श्रीरामवर्मणां, कैप्टनश्रीश्रीनिवासमूर्तीनामथ च राजवैद्यश्रीकृष्ण-

शास्त्रिदेवधरप्रभृतीनां गतचतुर्विंशतिवैद्यसम्मेलनाध्यक्षाणां प्रकाण्डपण्डितानामास्वादिते सति भाषणामृतेऽनाघ्रातशास्त्रगन्धस्य मेऽल्पज्ञस्य जल्पनं न तु भाषणं कथं नु भवेत्सन्तोषाय श्रीमतामिति शङ्कैव, किन्तु बालादपि सुभाषितमिव रुचिकरमेव स्यादित्याशासे ।

मान्याः, प्रातःस्मरणीयाः स्वर्गीयाः श्रीशङ्करदाजीशास्त्रीपदेमहाभागाः सर्वेषामप्यस्माकमनन्तधन्यवादार्हा भवन्तिस्म, यतो हि निखिलभारतीयायुर्वेदमहामण्डलमथ च वैद्यसम्मेलनमिदमप्येतैरेव महाशयैः संस्थापितमिति सुविदितमेव सर्वेषां तत्र भवताम् । तेषामेवानुकंपाफलमिदं यत्प्रत्यब्दं निखिलभारतीया भिषजः प्राप्नुवन्ति सुविचारविनिमयावसरमायुर्वेदस्य । तत्तत्प्रान्तीयास्ते महानुभावाश्चाप्यनन्तधन्यवादार्हा यैरदम्योत्साहैर्विगतानि चतुर्विंशतिवैद्यसम्मेलनानि स्वर्गीयपदेशास्त्रिमहाभागानामिच्छानुकूलान्येव साङ्गोपाङ्गतया संपादितानि । शुभेऽस्मिन् संवत्सरे गुर्जरराष्ट्रीयमहम्मदाबादपुटभेदनमपि धन्यातिधन्यमिति मन्ये, येन च प्रेम्णातिशयेन भवतः सर्वानप्यखिलभारतीयानगदङ्कारानामन्त्र्यायुर्वेदशास्त्रस्यायं सुविचारविनिमयावसरः प्रदत्तः । एवमेव तदनुकम्पया संमेलनेनानेन सहैवास्माभिरायुर्वेदमहामण्डलरजतजयन्त्युत्सवजन्यहर्षोऽप्यनुभूयते । वक्ष्यमाणेतिवृत्ताद् गुर्जरराष्ट्रस्य महती सेवेयं तदनुकूलैव ।

गुर्जरराष्ट्रस्यायुर्वेदसेवा ।

प्राचीनेतिवृत्तावलोकनाज्ज्ञायते यद् गुर्जरराष्ट्राभिजनैर्नागरौदीच्यपुष्कर्णाश्रीमालीगौडश्रीगौडसारस्वतमोढरायकवालगुर्जरभूनिर्जरैरेव न, किन्तु क्षत्रियवैश्यसाधुसन्यासिप्रभृतिभिः सर्वैरपि संस्कृतभाषासाहित्यस्यायुर्वेदस्य च महती सेवा विहिता । यद्यपि संस्कृतसाहित्याद्यनेकग्रन्थानां काव्यानां चोपमार्थगौरवपदलालित्यादिगुणमयानां रचयितारः, कलिकालसर्वज्ञाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः, महाकविमाघप्रभृतयोऽप्यस्या एव विद्वद्दलगर्भागर्भजा आसन् । तथापि कविकुलमुकुटमणिभूतानामेतेषां विषये विषयान्तरवशाद्विस्तृतिभयाच्चानुल्लिख्यायुर्वेदसेवावलम्बिनामेव विषये यत्किञ्चिन्निवेद्यते ।

नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि यदायुर्वेदसेवायां गुर्जरराष्ट्रोऽयं न कदाप्यासीत्पश्चात्पदभागिति । बहवश्चरकसुश्रुतवाग्भटवाग्भटा राष्ट्रेऽस्मिन्नासन्, किन्तु रसशास्त्रज्ञेष्वपि गुर्जरराष्ट्र एवासीदग्रगण्य इति निश्चयेन शक्यते वक्तुम् । विषयेऽस्मिन्नधुना केषांचिद्विदुषां प्रमाणपुरःसरो दीयते परिचयः ।

कविवरः श्रीशार्ङ्गधरः ।

नायुर्वेदीयचरकाद्यार्षसंहितानामेव, किन्तु रसशास्त्रादीनामपि मर्मज्ञो, महावैयाकरणो, यतिपतिस्वामिवैकुन्ठाश्रमस्यान्तेवासी, नागरवंशोद्भवः, सुकविर्ज्योतिश्शास्त्रज्ञाग्रगण्यानेकगुणगणमण्डितराजमान्यपण्डितश्रीदेवराजसूनुः, राजवैद्यः श्रीशार्ङ्गधरोऽपि गुर्जरभूभव एवासीत् । येन च निखिलज्वरकुलकण्डनाय तन्निदानशमनोपायपरः संस्कृतपद्यशतत्रयात्मकस्त्रिशतीनामको ग्रन्थो ग्रथित इति तेनैव त्रिशतीलिखितादात्मवृत्तान्तादवगम्यते । यथा हि—

अद्वैतोदधिगाहनादविरतं विध्वस्ततापत्रयः
स्वान्ताविष्कृतनित्यनिर्मलचिदानन्दप्रबोधोदयः ।
वैकुण्ठाश्रमसंज्ञया यतिपतिर्न स्यान्नमस्यास्पदं
कस्यायं निगमान्तशास्त्रविलसत्कान्तारकण्ठीरवः ॥४॥

सुधीरभूत्संसदि भूपतीनां
संमानभाङ् नागरवंशजन्मा ।
दोषज्ञमान्यः सुकविः कलावान्
दयानिधानं भुवि देवराजः ॥१२८॥
तस्यात्मजः शार्ङ्गधरस्त्रिलोकी-
पतिं त्रिनेत्रं त्रिपुरां च शश्वत् ।
ध्यायन्निमां वैद्यमुदे त्रिदोष-
ज्वरच्छिदे च त्रिशतीं चकार ॥१२९॥ इति

अतीव मनोहरं नानापद्यात्मकं वैद्यककाव्यमिदं विरच्य तथ्यमिदं यच्छार्ङ्गधरेण कविनानेन ऋणीकृताः खलु निखिलभारतीयायुर्वेदविद इति । क्लिष्टतरं ग्रन्थमेनं चावलोक्य श्रीवल्लभाख्येन भट्टेन तट्टीकां विधायातीव सरलीकृतः । सत्यपि ज्वरविषयकेऽस्मिन् ग्रन्थे ज्ञातारो ह्येतस्यायुर्वेदीयान्यान्यज्ञातव्यविषयाणामपि सुबोद्धारो भवन्ति ।

वैद्यवरः श्रीसोढलः ।

एवमेव वत्सगोत्रोद्भवरायकवालजातीयो, नन्दनवैद्यस्यात्मजः, सतां संघदयालूनां शिष्यः, सद्भक्तश्च भगवतः श्रीसहस्रांशोः, सद्वैद्यसोढलोऽप्यस्या एव विद्वद्रत्नगर्भागुर्जरवसुन्धराया रत्नभूत आसीत्, येन चाकलितं शल्यशालाक्यकायचिकित्साद्यष्टाङ्गायुर्वेदविज्ञापयितारं गदनिग्रहाख्यं बृहद् ग्रन्थरत्नम् । नावशेषि च तेन स्वग्रन्थेऽस्मिन्नार्षसंहितोक्तं, किमपि क्वाथचूर्णगुटिकावलेहासवारिष्टतैलघृतादिकम् । सोढलविरचितो गुणसंग्रहापरपर्यायः सोढलनिघण्टुरपि सद्ग्रन्थोऽस्तीति तल्लिखितादन्तिमांशात्प्रतीयते । यथा हि—

वत्सगोत्रान्वयस्तत्र वैद्यनन्दननन्दनः ।
शिष्यः संघदयालोश्च रायकवालवंशजः ॥
सोढलाख्यो भिषक् भानुपादपङ्कजषट्पदः ।
चकारेमं चिकित्साया समग्रं गुणसंग्रहम् ॥ इति ।

सिद्धनागार्जुनः ।

किं बहुना वर्तमानसंवत्सरादस्मादष्टादशशतवर्षेभ्योऽपि प्राग्भवः, प्रतिष्ठानपुराधीशशककृच्छालिवाहनसखा, नागराजात्मजो, बौद्धो, रससिद्धः, सुश्रुतसंहितायाः प्रतिसंस्कर्ता, कर्ता चानेकेषां रसशास्त्रादीनां, सिद्धनागार्जुनोऽपि गुर्जरदेशाधिपस्य पालीतानाख्यभूभर्तुरात्मजाया भोपलाख्यायाः स्वजन्मना कुक्षिमलञ्चकार । यो हि प्रकाश्य मन्त्रतन्त्रमयीं स्वां रसविद्यां तत्समयजानखिलान् भारतीयान् स्वगुरूंश्चापि पादलिप्ताचार्यान् चकितान्विधत्ते स्मेति प्रतीयते, स्वर्गीयवैद्यश्रीत्र्यम्बकगुरुनाथकालेकृतभारतीयरसायनशास्त्रसन्दर्भात् । सिद्धेनानेन रचिताः सन्त्याश्चर्ययोगरत्नमाला, रतिशास्त्रम्, नागार्जुनकक्षपुटीयम्, नागार्जुनसंहिता, नागार्जुनकल्पः, रसरत्नाकरः, लौहशास्त्रम्, धातुरत्नमाला, योगसारः, आरोग्यमञ्जरी चेति ग्रन्थाः । मुद्रिताश्चाप्येतेषु केचिदिति श्रूयते ।

रसप्रकाशसुधाकरकर्ता श्रीयशोधरः ।

ख्रिस्तीयत्रयोदशशताब्दिसंभूतेन, गुर्जरराष्ट्रस्यैव सौराष्ट्रप्रदेशान्तर्गतजूनागढाख्यनगरस्थेन, श्रीगौडवंशोद्भवविष्णुभक्तश्रीपद्मनाभपुत्रेण, रसशास्त्रज्ञेन सद्वैद्येन, कविवरश्रीयशोधरेण गन्धादीनां चाष्टादशसंस्कारसंस्कृतस्यामृतमयपारदस्य संयोगात्सद्यःफलप्रदरसशतकस्वर्णरजतनिर्माणाद्यनेकविद्याप्रकाशको रसप्रकाशसुधाकराभिधो ग्रन्थो रचित इति ग्रन्थान्ते तल्लिखितान्निम्नाङ्कितात्मवृत्तान्तात्प्रतीयते । यथा—

श्रीनारायणभक्तिसक्तमनसो विद्याविनोदाम्बुधेः
श्रीगौडान्वयपद्मनाभसुधियस्तस्यात्मजेनाप्ययम् ।
सद्वैद्येन यशोधरेण कविना विद्वज्जनानन्दकृद्
ग्रन्थोऽयं ग्रथितः करोतु सततं सौख्यं सतां चेतसि ॥१४॥
देशानां सुरराष्ट्रमुत्तमतमं तत्रापि जीर्णाभिधः
प्राकारोऽस्ति स वेदशास्त्रनिरतैर्विप्रैश्च संशोभितः ।
तस्मिन्विष्णुपदारविन्दरतिकृच्छ्रीपद्मनाभः स्वयं
तत्पुत्रेण यशोधरेण कविना ग्रन्थः स्वयं निर्मितः ॥ १५ ॥ इति

तथ्यमेवैतद्यच्चकोरकाणां सुधाकर इवायमपि रसप्रकाशसुधाकरश्चन्दयति चेतांसि वैद्यविदुषामिति ।

रससारकर्ता गोविन्दाचार्यः ।

ख्रिस्तीयत्रयोदशशताब्द्यामेवान्तर्वेदीयसारस्वताभयपालात्मजधीरदेवशिष्यो गुर्जरभूनिर्जरमोढजातीयाचार्यसहदेवपौत्रः, पुत्रश्च सुरादित्यस्य, मन्त्रसिद्धो, रसधातुवादावगमप्रदरससाराभिधग्रन्थस्य च कर्ता श्रीगोविन्दाचार्योऽप्यस्यामेव गुर्जरवसुन्धरायां प्रासूत इत्यवगम्यते रससारसमाप्तौ तेनैव लिखतादात्मवृत्तान्तात् । यथा—

मोढज्ञातिसमुत्पन्न आचार्यः सहदेवकः ॥ ३० ॥
सर्वशास्त्रप्रवीणोऽसौ मन्त्रसिद्धो द्विजोत्तमः ।
तदुत्पन्नस्तु यः सूनुः सुरादित्यः कृती भुवि ॥ ३१ ॥
तत्सम्भवः सुतः ख्यातो गोविन्दः शिववन्दकः ।
शिष्यः श्रीधीरदेवस्य रसकर्मसु कोविदः ॥ ३२ ॥
अनुभूयेदमखिलं शास्त्रं तेन विनिर्मितम् ।
कृपया धातुवादीनां दीनत्वस्य विनाशनम् ॥ ३३ ॥
अन्तर्वेदसमुत्पन्नो ज्ञात्या सारस्वतो द्विजः ।
अभयपालपुत्रोऽसौ धीरदेवो हि वादिराट् ॥ ३४ ॥
निर्मथ्य सर्वशास्त्राणि अनुभूय पुनः पुनः ।
बौद्धं मतं तथा ज्ञात्वा रससारः कृतो मया ॥ ३५ ॥

एकधा दशधा चैव शतधा तु सहस्रधा ।
मत्प्रणीतेषु योगेषु सिद्धिर्ज्ञेया विचक्षणैः ॥ ३६ ॥
मदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तदिहास्त्यखिलं स्फुटम् ।
यदिहास्ति तदन्यत्र नैवास्ति रसकर्मणि ॥ ३८ ॥ इति

सारस्वतो माधवाचार्यः ।

आयुर्वेदप्रकाशस्य "सौराष्ट्रदेशोद्भवसारस्वतमाधवविरचितायुर्वेदप्रकाशे"—इति प्रत्यध्यायसमाप्तिवाक्यादुन्नीयते यद्वैशवीयषोडशशताब्दिसंभूतो रसमाधवापरपर्यायायुर्वेदप्रकाशादिप्रणेता माधवाचार्यसारस्वतोऽप्यस्यैव गुर्जरराष्ट्रस्य सौराष्ट्रभूमिज आसीदिति ।

कृते सत्यान्वेषणेऽस्यामेव गुर्जरोर्व्यां स्यादुपलब्धिरन्येषामपि बहूनामायुर्वेदग्रन्थानां यतश्चाणहिल्लपुरपत्तनवटोदरश्रीनगरस्तम्भपुरादिनगरेषु सन्ति बहूनि प्राचां हस्तलिखितपुस्तकभाण्डागाराणीति श्रूयते ।

अहम्मदाबादीयाः श्रीलक्ष्मीरामभट्टादयः ।

नासीदस्ति चाहम्मदाबादनगरमपि निधानं किञ्चिदेवायुर्वेदविदाम् । अस्मादेव नगरान्निर्गत्य प्राप्य च जययुरं भट्टमेवाड़जातीय आयुर्वेदस्य प्रकाण्डपण्डितः श्रीलक्ष्मीरामस्तत्र थान् सद्य·फलप्रदचिकित्साचमत्कारैश्चमत्कृत्य समवाप्य च संमानं श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेववर्मणस्तत्रैव स्थितः सुखेनेति तद्वंशजदिवंगतभट्टगङ्गाधरलिखितसिद्धभेषजमणिमालाभूमिकातोऽवगम्यते । यथा—

तत्र श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेवराज्यसमयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूनिर्जरान्तर्गतभट्टमेवाड़जातीयः स्वयशःप्रख्यापनकृतमतिर्लक्ष्मीरामनामा सुमतिरहम्मदाबादनामकप्रसिद्धपुटभेदनादाजगाम । एत्य च रोगिनैरोग्यसंपादितप्रसिद्धिं भूमिपतेरपि संमानमवापेत्यादि ।'

महाभागोऽयं म्लानीभूतं मरुभूमिजमायुर्वेदभूरुहं स्वीयायुर्वेदसरस्वतीवारिधारासीकरैरभिषिच्य पुनरपि तं पुष्पफलवन्तं विधातुं चायतिष्ट । श्रीलल्लुरामनामाप्यस्यात्मजो नितरां गुणगणाश्रयो धन्वन्तरिकल्पो नानाविद्यावतां वैद्यविदुषां चाग्रणीरासीदिति प्रतीयते सिद्धभेषजमणिमालावतरणिकावलोकनात् । यथा—

आयुर्वेदवचःप्रपञ्चचतुरो विद्यावतामग्रणीः
संख्यातीतगुणाश्रयो गदहृतौ साक्षाद्धि धन्वन्तरिः ।
विश्वस्मिन्नुपकारबुद्धिरधिकं कल्पद्रुवत्श्रेष्ठदः
श्रीमद्भट्टवरेन्द्रगुर्जरकुले श्रीलल्लुरामोऽभवत् ॥

अस्य चानेकेषां वैद्यविदुषां विचारविनिमयादेव श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहवर्मणा राजस्थानभाषायामायुर्वेदस्य सारभूतोऽतीव प्रामाणिकः प्रतापसागरापरपर्यायोऽमृतसागराख्यो ग्रन्थोऽग्रन्थि । अत्युपयुक्तत्वादेवास्य ग्रन्थस्य भाषान्तरेष्वपि· भवति यत्र तत्र प्रकाशनम् ।

एतस्यैव लल्लुरामस्याङ्गजो हि खल्वायुर्वेदयूनानानीचिकित्साशास्त्रज्ञो लब्धराजवैद्याद्यनेकपदवीकः कुन्दनरामनामाभिधः समभूत् । येन च यूनानीचिकित्साप्रणालिपुरःसरो हिक-

मम्मन्दारबन्धो ग्रन्थो ग्रथितः, कृता च यस्य महतादरेण राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्यायुर्वेदविभागे राज्ञा नियुक्तिः। महोदयस्यास्यैव कुन्दनरामस्यात्मजाः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा नैककाव्यकर्तारो भट्टश्रीकृष्णरामपादाः समभूवन्। ये च नानासिद्धौषधिमणीनाहृत्य काव्यरसमयीं शब्दार्थालङ्कारान्वितां सिद्धभेषजमणिमालां गुम्फितवन्त इत्यपि ज्ञायते पूर्वोक्तसिद्धभेषजमणिमालावतरणिकयैव। यथा—

तस्मादिन्दुरिवाम्बुधेः समभवद्वेदार्थपारङ्गमः।
प्रौढः कर्मसु सर्वविद्वदगदङ्कारग्रणीः कुन्दनः।
यो रामक्षितिपेन पाठनिलये सत्कृत्य संस्थापितः
सर्वेषां गदगञ्जनाय हिकमन्मन्दारबन्धं व्यधात् ॥४॥
श्रीकृष्णस्तनयस्ततः समजनि श्रीपाठशालासन—
स्थायी नैकविचित्रकाव्यरचनाप्राप्तप्रतिष्ठाभरः।
सोऽहं संप्रति सिद्धभेषजमणीनाहृत्य मालामिमां
गुम्फामि स्फुरदच्छगुच्छरुचिरां विद्वद्भिषक्प्रीतये ॥५॥

नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि यदिमे श्रीकृष्णरामभट्टपादाः श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितेः रत्नभूताः, साहित्याचार्या महाकवयो धन्वन्तरिकल्पवैद्याश्चासन्। भारतवर्षीयानेकेषु भागेष्वधुनापि सन्ति तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च। यथोक्तं तच्छिष्यतल्लजैः—

श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ लब्धप्रतिष्ठास्पदः
साहित्याम्बुधिकुम्भसंभवमुनिर्धन्वन्तरिर्वैद्यके।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च कवने यः कालिदासोपमः
सोऽयं राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरुः ॥
न सा दिङ् न स देशोऽपि न च तन्नगरं क्वचित्।
यत्र श्रीकृष्णवैद्यानां शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते ॥

श्रद्धेयाः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनः।

सन्ति चैतेषामेव भट्टमहोदयानां पट्टशिष्या जयपुरस्था राजवैद्यायुर्वेदमार्तण्डाद्यनेकपदविभूषिताः पीयूषहस्ताः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागाः। गुर्वाज्ञाधारकैरेभिस्तद्यशःप्रख्यापनकृते चोपकृते खल्वायुर्वेदविदां सिद्धभेषजमणिमालायाः टिप्पणिका रचिता। यथोक्तं स्वामिमहाभागैरेव टिप्पणिका—समाप्तौ दोहाच्छन्दसि—

"वैद्यानामुपकारिणी, गुरुनियोगनिघ्नेन।
टिप्पणिका रचिता मया, पूर्णा चाविघ्नेन ॥"

दिवङ्गतानां भट्टचरणानामेभिरेवायुर्वेदप्रधानाध्यापकपदमलंकृतम्। अध्याप्य चानेकान् पटून् बहूनायुर्वेदाचार्यादिपदवीकान् कृतवन्तः। प्रत्यक्षज्ञानाय च तेषां दीनार्तिनाशकेनातुरालयेन सहैव जयपुरे श्रीधन्वन्तर्यौषधालय-दादूमहाविद्यालयायुर्वेदविश्वस्तनिध्यादिसंस्थाश्चापि संस्थापिताः। अव्याहतरूपेण भवतु सञ्चालनमासामिति मनसि कृत्वोत्सर्गीकृतं स्वो-

पार्जितं मुद्रालक्षतोऽप्यधिकं धनम् । दृष्टेऽस्मिन्नौदार्ये सर्वसम्पत्समेधमानैरन्यैप्यायुर्वेदबृंहणाय करणीयं किमपीति प्रार्थये ।

किं बहुना, दृश्यन्ते च यानि यान्यौषधालयादीनि संप्रति जयपुर–बीकानेर–रामगढ़-भिवानी–लवपुर–खुरजाप्रभृतिषु पुरेषु तानि सर्वाण्यपि प्रायशः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिसरस्वती-सिञ्चितायुर्वेदमहीरुहफलान्येव । अलमेतावतैव स्वामिमहोदयानां विषये यदहम्मदाबादपुटभेदनाचलात् प्रवाहिता श्रीलक्ष्मीरामसरस्वती राजस्थानललामभूतं विद्वद्रत्नाकरं जयपुरं प्राप्याद्यापि श्रीलक्ष्मीराम एव संराजते । वार्धक्याच्चाश्रमधर्मवशात्संप्रत्युक्तस्वामिमहोदया आयुर्वेदप्रधानाध्यापकपदाद्गृहीतावकाशा हरिस्मरण एव सन्तिष्ठन्तेऽहर्निशम् । इदानीं समलंकरोति च तत्प्रधानाध्यापकपदं तेषामेव पट्टशिष्यः श्रीनन्दकिशोरशर्मायुर्वेदाचार्यः ।

श्रद्धेयाः श्रीयादवाचार्याः ।

नाद्यापि प्राचामिव विक्रमस्यास्यां वर्तमानविंशतिशताब्द्यामपि गुर्जरवसुन्धरायामायुर्वेदसेवकानां न्यूनत्वम् । तत्कृतिभरैस्त्वद्यापि गुर्जरधरामुखमुज्ज्वलमेव । वहति च सा तेषामजस्रमभिमानम् । पोरबन्दरापरपर्यायसुदामापुरीभवानां संप्रति मोहमयीस्थानां, पुष्कर्णाब्राह्मणवंशावतंसानां, त्रिविक्रमतनूजानामनेकगुणमण्डितपण्डितप्रवराणामायुर्वेदमार्तण्डाद्यनेकविरुदावलीभाजां श्रीयादवाचार्याणां कच्छसौराष्ट्रगुर्जरधरारत्नेषु प्रथमतो नामग्रहणे न कापि विप्रतिपत्तिरिति मन्ये । गुर्जरवसुन्धरैव न, किन्त्वखिलभारतभूमिरप्येतेषां वहत्यभिमानम् । यतश्चैषामायुर्वेदसेवा नितरां संमाननीयैव इति कथने न काप्यतिशयोक्तिः । महाभागैरेतैः संशोधिताश्चरकसुश्रुतादयो हि बहवो ग्रन्थाः सर्वत्रैव महतादरेण पाठ्यन्ते विद्वद्भिः । स्वेनैव द्रव्यव्ययेनायुर्वेदीयग्रन्थमालया रसहृदयतंत्रम् , रससारः, रसप्रकाशसुधाकरः, आयुर्वेदप्रकाशः, गदनिग्रहः, रसकामधेनुः, रसपद्धतिः, लौहसर्वस्वं चेत्यादीनामथ च मत्कृतेतरहिंदीभाषणोक्तानां बहूनां दुष्प्राप्यग्रंथानामप्येत एव सन्ति समुद्धारकाः । प्रार्थयेऽहं परमात्मानं यदेते महान्तो दीर्घायुर्लभन्तामिति ।

राजवैद्यश्रीहरिप्रपन्नादयः ।

मोहमयीस्था राजवैद्याः पण्डितहरिप्रपन्नशर्माणोऽपि सुतरां धन्यवादार्हा एव । यैश्च स्वद्रव्यव्ययेन शतादप्यधिकाद्रसग्रन्थान्नानारसानाहृत्य स्वकृतसरलार्थभाषाटीकया मौलिकसंस्कृतटिप्पणैश्च सह सागर इव रसानां रसयोगसागराख्यो ग्रन्थः संकलितः प्रकाशितश्च । महाभागैरेभिर्यादवाचार्यैश्च मिलित्वायुर्वेदोद्धारकृते पञ्चपञ्चसहस्रमितं प्रदत्तं रूप्यकधनं, येनाव्याहतरूपेण प्रचलति विंशतिवर्षेभ्यो मोहमयीस्थायुर्वेदपाठशाला ।

अहम्मदाबादगुजरातायुर्वेदीयौषधिनिर्माणशालाया वैद्यकल्पतरोश्च मासिकपत्रस्य संस्थापका गृहवैद्याद्यनेकग्रन्थकाराः, स्वर्गीयश्रीजटाशङ्करत्रिवेदिनो वर्तमानाश्च रविशङ्कराख्यास्तदनुयायिनस्तत्पुत्राः । ऊँझायुर्वेदीयौषधिशालायाः संचालकाः पत्रस्य चायुर्वेददर्पणमासिकस्य संकलनकर्तारः, प्रकाशकाश्च भारतभैषज्यरत्नाकरबृहद्ग्रन्थस्य श्रीनगीनदासश्रेष्ठिनस्तत्सहयोगिभिषग्रत्नश्रीगोपीनाथगुप्ताश्चाप्यनन्तधन्यवादार्हाः ।

मोहमयीस्थझण्डुफार्मस्यपरपर्यायायुर्वेदीयौषधिनिर्माणशालायास्तथैवायुर्वेदविज्ञानाख्यमासिकपत्रस्य सञ्चालकाः, प्रकाशकाश्च गुर्जरभाषानुवादस्य महामहोपाध्यायकविराज-श्रीगणनाथसेन-

कृतप्रत्यक्षशारीरग्रन्थस्य, जामनगरस्थप्रातःस्मरणीयस्वर्गीयश्रीझण्डुभट्टवंशावतंसा श्रीजुगतराममहानुभावाश्चाप्यमलयायुर्वेदसेवया नितरां प्रशंसनीया एव ।

भावनगरवटोदरनरेशाः, एवमेवांग्लभाषायामायुर्वेदख्यातिकरग्रन्थलेखका रसशालाश्रयदातारो गोण्डलाधिपतिभगवत्सिंहवर्माणस्तदाश्रिता नैकग्रन्थप्रकाशकाः संपादकाश्चायुर्वेदरहस्यार्कस्य श्रीजीवरामशास्त्रिणो राजवैद्यास्तथैवाणहिल्लपुरपट्टनाभिजनास्तत्रत्यायुर्वेदमहाविद्यालयसंस्थापकाः स्वर्गीयो जमशीपीताम्बर श्रेष्ठिवर्याः मोहमयीस्थश्रीप्रभुरामायुर्वेदमहाविद्यालयसंचालकाः श्रीपोपटप्रभुराममहाशया दक्षतराः, सिन्धुफार्मेस्यध्यक्षा वैद्यश्रीगोपालजीठक्कुराः, दवेफार्मेस्यध्यक्षाः श्रीजेठालालमहाशयाः सम्मेलनस्यास्यस्वागतसमितेरध्यक्षाः श्रीनारायणशङ्करप्राणाचार्याः स्वागतगतोपाध्यक्षाः संमाननीयाः परमोदारचेतसो राजवैद्याः श्रीसूर्यमल्लशर्माणः, श्रीउमियाशङ्करमोतीरामा रसवैद्याः, श्रीकच्छकाठियावाड़गुजरातप्रान्तीयवैद्यसम्मेलनाध्यक्षास्तत्स्वागताध्यक्षाश्चामृतवादिनोऽमृतलालाख्या, प्रधानमन्त्रिवैद्यवराजाम्बाशङ्करत्रिवेदिनो, हस्तलिखितप्राचीनायुर्वेदशास्त्रसंरक्षकाः स्वर्गीयश्रीरणछोड़लालाङ्गजा वैद्यश्रीनन्दलालबोधाख्याश्चेत्यादि मे स्मरणपथमागताऽनागताश्च ये, ते सर्वेऽपि गुर्जरभूललामभूता महानुभावा धन्यवादार्हा एव, यैः खल्वायुर्वेदीयौषधालयातुरालयविद्यालयग्रन्थप्रकाशनादिभिः संपादितायुर्वेदसेवा ।

शोकप्रकाशनम् ।

विषयारम्भात्प्रागेव दुःखान्निस्सरतीयं मे भारती, यदिन्द्रप्रस्थस्थैः कविराजनिवारणचन्द्रभट्टाचार्यैः, कालिकातास्थकविराजश्यामादासवाचस्पतिभिर्वाराणसेयहिन्दुविश्वविद्यालयान्तर्गतायुर्वेदमहाविद्यालयप्रधानाध्यापकैराचार्यैः कविराजधर्मदासाभिधैः, सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यकारैः कविराजहाराणचन्द्रचक्रवर्तिभिः, खुर्जाभिजनैर्नारायणदत्तशर्मायुर्वेदाचार्यैर्मोहमयीस्थराजवैद्यत्र्यम्बकलालमुनिभिर्दुर्लभश्यामध्रुवमहोदयाद्यैश्च ध्रुवमिदं, यदस्मिन्नसारे संसारे खलु साहचर्यसुखेन वञ्चिता वयमिदमतीव दुःखास्पदम् । वैद्यकसमुद्धारधृतव्रतानां दिवङ्गतानामेषामभावान्महतीव क्षतिर्जातायुर्वेदस्येति स्फुटमेव । एतत्क्षतिपूर्त्यै ददात्वस्मभ्यं तादृग्बलं शर्म च तदात्मभ्य इत्यभ्यर्थयेऽहं परमात्मानम् ।

विषयारम्भः ।

नाविदितमेतद्धि भवतां यदायुर्वेदस्य शल्य–शालाक्य–कायचिकित्सा–भूतविद्याकौमारभृत्यागदतन्त्र–रसायन–वाजीकरणाख्येष्वष्टाङ्गेष्वेव विभाजितश्चिकित्साक्रमः । भगवता धन्वन्तरिणा प्राधान्येनात्रोपदिष्टं प्रथमं शल्यांगं तु बौद्धसाम्राज्यकालादेव भारतेऽस्मिन् ह्रासमानं नष्टप्रायमिव भासते । भाति तथैवावशिष्टानामनामप्यङ्गानामवस्था, शोककर्शितैव । वहन्ति भारतीयभिषजः कायचिकित्सोपर्यैवाशिष्टं स्वीयमभिमानम् । ऋषिमुनिदर्शिमार्गेण साङ्गोपाङ्गतयायुर्वेदीय चिकित्साकर्त्तारः सन्ति केचिदेवापवादरूपाः प्राणाचार्याः, किन्तु बहुभिरस्माभिस्त्वनध्ययनादपूर्णज्ञानाच्च सा चिकित्सापि धरातलीव कृतेत्यपि सुविदितमेव सर्वेषाम् । भान्ति केचिद्वैद्यम्मन्यास्त्वायुर्वेदस्याभिनयमेव रचयितारः । भवति सर्वमपि कार्यजातं तेषामैलोपैथीं हास्योपैथीं क्रोस्योपैथीं वा बायोकैमिकीमनुसृत्यैव । किन्त्वाश्चर्यमिदं यद्वदन्त्यायुर्वेदाभिमानिनो वैद्या वयमिति । हन्त चेखिद्यते मे चेतो यदेतेषामेवाभिनयकराणामनुकम्पया संप्राप्तावसरा निन्दन्त्यनिंद्यमप्यायुर्वेदं निन्दकाः । प्रतिपादयन्त्यस्माकमेवार्यवंशजा ''यदायुर्वेदस्य शास्त्रत्वं,

तल्लिखितान्यात्मनः सकाशादाकाशादिपञ्चभूतानि, तेभ्य एवोत्पत्तिर्जगतां वैशिष्ट्यं च सोमसूर्यानिलानामिव कफपित्तानिलानामपीत्यादि कथनं महर्षीणां कपोलकल्पनमेवेति ।" नास्त्यत्र किमप्याश्चर्यम् । प्रभावोऽयमनार्यैर्लिखितानां नव्यविज्ञानमेवाधिकृत्य ग्रन्थानां निरन्तराध्ययनस्य, अनध्यायस्य चाप्तोपदिष्टानाममरभारतीमयानामायुर्वेदतन्त्राणाम् । परमात्मानं प्रार्थयेऽहं यदेतेषां नव्यविज्ञानविमोहितानां भवत्वायुर्वेदपठनपाठनेऽपि निरन्तरा प्रवृत्तिरिति । अथातो नव्यानामेव तोषाय नव्यमेवाधिकृत्य किञ्चिन्निवेद्यते—

"चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥"
"याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम् ॥"

सामान्येन चिकित्सासाफल्यसूचकं महर्षिपुनर्वसूक्तं पद्यद्वयमिदम् । विविधावस्थानादिषु समुत्पन्नानां विविधानां विकाराणामुपशमार्थं के के वा विशेषेणादरणीयाश्चिकित्साविशेषाः, को वा स्वीकरणीयश्चिचित्साक्रम इत्येवं निर्णयः स्याच्चिकित्सकानाम् । नवनवबुद्धिमतां मते तु ज्वरगुल्मातीसारादिसर्वेषामपि विकाराणां तत्त्वतो द्विप्रकारकमेव भवितुमर्हति स्वरूपम् तत्तु दोषाणां वातादीनां, धातूनां रसरक्तादीनां मलानां च शकृदादीनां [क्षयाद् वृद्धितश्चेति । ततोऽपि—

"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।"

इत्यादिना दोषाणां वृद्धिरेव विशेषेण भवति कारणं रोगाणामिति स्फुटीभवति । यदुक्तं "कोपाद्व्याधिसंभवः" इति, किन्तु कोपः संभवति दोषाणां वृद्धेरनन्तरमेव । इति सर्वेषामपि विकाराणां प्रकुपिता वातादयस्त्रयो दोषा एव कारणं, प्रधानतमं निदानं वेत्युपवर्णितमायुर्वेदे । कथमेते वातादयस्त्रय एव दोषा भवितुमर्हन्ति विविधावस्थानस्थानोपद्रवप्रकाराणां विकाराणामुत्पत्तिकारणमित्याशंक्यते कैश्चिदायुर्वेदतत्वानभिज्ञैरतो निवेद्यते किञ्चित् । सुविदितमेवास्त्यायुर्वेदविदां यदपरिसंख्येयानामातङ्कानां सामान्येन भवति शोथदाहशूलात्मकं त्रिविधमेव स्वरूपम् । सत्यपि स्थानावस्थानभेदे शूलदाहशोथैरित्येतेषामन्यतमेन वानुविद्धं भवति व्याधिस्वरूपम् । इति सर्वेषामपि रोगाणां शूलसंभवाः शूलात्मानो वा, दाहसंभवा दाहात्मानो वा, शोथसंभवाः शोथात्मानो वेत्येवं त्रिधैव भवति सुगमं संख्यानम् । शूलदाहशोथाश्चैते वातपित्तकफोद्भवा एवेत्युक्तमायुषो वेदे । यथा—

"शूलं नर्तेऽनिलाद्दाहः पित्ताच्छोफः कफोद्यात् ।" इति

सर्वेष्वप्येतेषु शोथ एव प्रधानतमः । विकृतानां शारीराणामशारीराणां वा शरीरोपघातकराणां द्रव्याणामङ्गे प्रविष्टे सति स्ववैगुण्याद्यत्र कुत्रापि संजायते सङ्गस्तत्रैव तदा विकारोत्पत्तिर्जायत इत्यायुर्वेदसिद्धान्तः सुप्रसिद्ध एव । यथाह भगवान् धन्वन्तरिः—

"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।
यत्र सङ्गः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥"

इत्यनेन सङ्गादेव संभवो व्याधीनामिति प्रतिपादितम् । फलितार्थस्त्वस्य सङ्गादभिवहनाभावाद्वा धातूनां यत्र सञ्जायते सञ्चयो दोषाणां तत्रैव समुत्पद्यते शोथः । सङ्गस्यैवापरं नाम शोथ इति । प्रकारेणानेन सञ्चितस्य रोगोत्पत्तिकारणद्रव्यस्यैव दरीदृश्यते रोगविज्ञाने

"आमः"—इति नाम्नापि व्यवहारः। व्याधिविज्ञानोपवर्णितमिदमामाख्यं, दोषाख्यं, मलाख्यं वा द्रव्यमेवाहारोपयुक्तैर्द्रव्यान्तरैस्तद्गुणानुरोधेन शूलदाहशोथानामेतेषामन्यतमस्य वा भवत्युत्पादकम्। आख्यायते च शूलादिकारणानां वातादीनां प्रकोपणमिति। दुष्टा वातादयो दोषाः, इति व्यपदेशोऽपि शूलशोथादिकराणामेव द्रव्याणाम्। तत एव च प्रचलिता सञ्चयप्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयव्यक्तिभेदानां सुश्रुतोक्ता विकाराणां परंपरा। सिद्धत्येवं शूलदाहशोथात्मकस्य त्रिविधस्य विकारनिकरस्य कर्तारो वातादयस्त्रयो दोषा एव।

अथ रोगाणां चिकित्सा।

वातादिदोषाणां प्राधान्यं मूलत्वं च रोगाणां कथनानन्तरमधुनातङ्कशमापायविषये निवेद्यते। संप्रवृद्धानां प्रकुपितानां च दोषाणां परिहार एव प्राधान्येन चिकित्सोदर्कः। चिकित्सा सामान्येन द्विधा, बृंहणाख्या कर्षणाख्या च। सन्तर्पणापतर्पणाख्या वा। सन्तर्पणं चापतर्पणम्, बृंहणं लङ्घनं वेति द्विविधव्याधिचिकित्सायामपतर्पणापरपर्यायं लंघनमेव विशेषेणाद्रियन्ते भिषजः। सन्तर्पणन्तु क्षीणानां रसरक्तादीनां बृंहणायेति न प्राधान्येन व्याधीनां प्रतीकारकारणमिति स्फुटमेव।

"बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककर्शितान्।"

इत्यादिवचनैरायुर्वेदतन्त्रेषु वर्णितं सन्तर्पणापरपर्यायं बृंहणं, धातुवृद्धिकारणमपि नालं व्याधिप्रत्यूहव्यपोहाय। फलतो दरीदृश्यते लङ्घनापरपर्यायस्यापतर्पणस्यैव प्राधान्यम्। अपतर्पणचिकित्साप्रकारस्यास्य च प्रामुख्येन शोधनं शमनं चेति द्वौ भेदावुपवर्णितौ तयोश्चापि शोधनमेव विशेषेण श्रेष्ठमित्यायुर्वेदाभिमतं, यतो रोगोत्पत्तिकराणां प्रकुपितवातादिदोषाणां समूलोच्छेदनं यथा भवत्यनेन न तथा शमनेन। यथा हि—

दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥

शोधनं नाम प्रकुपितानामनिलादिवृद्धदोषाणां बहिरुत्सारणं शरीरात्। बहिरुत्सरणाद्विनाशाद्वा व्याधिकारणाकुपितदोषस्य तत्सम्भवव्याधेर्विनाशेन सहैव साकल्येन रोगसंभवस्यापि विनाश इति सुगमावबोधं सुधियाम्। अनेनैवाभिप्रायेणायुर्वेदतन्त्रेषूपवर्णितमस्ति शोधनचिकित्साविधानस्य प्राधान्यम्। सर्वेषामप्युपक्रमाणां श्रेष्ठतमं शोधनमिदं पञ्चविधम्। यथा—

यदीरयेद्बहिर्दोषान् पञ्चधा शोधनं च तत्।
निरूहो वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः॥

शरीराद्बहिर्मलोत्सरणसामान्यात्सर्वमप्येतद्वमनादिकं शोधनं विरेचननाम्नैवोपदिश्यते, स्थाप्यते चास्य सर्वोपक्रमेभ्यः श्रेष्ठत्वम्। यथाहि भगवानात्रेयः—

"दोषहरणमूर्ध्वभागं वमनसंज्ञकमधोभागं विरेचनसंज्ञकमुभयं वा शरीरमलविरेचनाद्विरेचनशब्दं लभते।"

"आस्थापनानुवासनं तु खलु सर्वथोपक्रमेभ्यो वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तदादित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति। तत्रावजिते वातेऽपिशरीरान्तर्गता वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कन्धशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वत्।"

"विरेचनन्तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं पित्तमूलं चापकर्षति। तत्रावजिते पित्तेऽपि शरीरान्तर्गताः पित्तविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते, यथाग्नौ व्यपोहे केवलमग्निगृहं च शीतीभवति तद्वत्।"

"वमनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं श्लेष्ममूलमपकर्षति। तत्रावजिते श्लेष्मण्यपि शरीरान्तर्गताः श्लेष्मविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते, यथा भिन्ने केदारसेतौ शालियवषष्ठिकादीन्यभिष्यन्दमानान्यम्भसा प्रशोषमापद्यन्ते तद्वदिति।"

एवं प्राधान्येऽपि रोगनिर्मूलकराणां वमनविरेचनादिशोधनोपायानामधुना चिकित्सायां दृश्यते सर्वथा विरलप्रायो व्यवहारः। चिन्तनीयमेवैतच्चिकित्साचणानां भारतीयानाम्। विद्यन्ते रसरसायनादीनि चूर्णक्वाथासवारिष्टघृततैलावलेहादिस्वरूपाणि पीयूषकल्पानि भैषज्यानि। उपयुक्तानि च तानि सर्वत्र सुयशस्कराण्यपि भवन्तीत्यनुभूयते किन्तु चिकित्साप्रकारेषु मूर्धन्यत्वेनोपवर्णितानां शोधनानामुपयोगस्तु केवलं ग्रन्थान्तरेष्वेवान्तर्हितः संदृश्यते। कदाचिदुपयुज्यन्ते विरेचनार्थं रेचनान्यौषधानि परन्तु विरेचनविध्युक्तानां स्नेहनादीनामादावन्ते चरणीयानां कर्मणां व्यवहारः कदापि नाद्रियत इति दृक्प्रत्ययः। न च शास्त्रानुमोदितवमनविरेचनविधिरपि विधीयते। एवमेव बस्तिविषयेप्यनास्था वर्त्तते। कदाचिन्मलशोधनार्थं "एनिमा" इत्याधुनिकापरपर्यायस्य बस्तिप्रतिनिधिभूतस्योपयोगो विधीयते, सोऽप्यांग्लपद्धत्यैव न चास्मदायुर्वेदप्रतिपादितपद्धतेरनुरोधात्। सर्वेषामपि वातविकाराणामुपशमार्थं प्राशस्त्येनोपवर्णितकालबस्तियोगबस्तिमात्राबस्तिविध्युपयोगस्य तु नितान्ताभावोपलब्धिरेव। प्रयोगाभावादेवं विस्मृता एव सर्वथा शोधनोपायाश्चैते। अनेनैव हेतुना यत्र कुत्रापि भिषगादेशादांग्लैनिमाबस्तिप्रयोगं वीक्ष्याधुनिका भाषन्तो दृश्यन्ते यद्भिषग्भिरपि विधीयतेऽधुनांग्लचिकित्सानुकरणमिति।

"तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि बस्तिनेकम्।"

आयुर्वेदोक्तमेतदभिस्मरतामायुर्वेदाभिमानिनां विपर्यासोऽयमस्मिन्विषये न विचारणीयः किम्? विषयेऽस्मिन् दत्तावधाना भवेयुर्भारतीयाः भिषजः, शोधनोपयोजनेनायुर्वेदीयचिकित्साविशेषस्यास्योद्धरणमुपबृंहणं च भारतीयारोग्यस्य कुर्युरिति बलवदाशास्यते।

शमनसंज्ञयाख्यातोऽपरश्चिकित्साविषयः "दीपनं पाचनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः" इति सप्तधा विभक्तोऽयं चिकित्साप्रकारोऽपि व्याध्यवस्थाविभागानुसारेणैवोपयोजनीयः। "तत्राल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम्" इत्यादिना चिकित्साप्रकाराणां व्यवस्थापि विस्तरेणोदाहृता। विजानन्त्येव व्याधिचिकित्साविचक्षणा व्याध्युत्पादकदोषदुष्ट्यनुरोधाल्लंघनदीपनपाचनादीनां समुचितत्वम्। ततश्चास्य विस्तरं विहाय चिकित्साधनानां भैषज्यद्रव्याणां सिद्धौषधीनां चैव विषये किञ्चिद्विचार्यते।

संप्रत्यायुर्वेदीयचिकित्सायां रसरसायनभस्मचूर्णासवारिष्टघृततैलावलेहगुटिकादयः कल्पाश्चानेकविधाः प्रयुज्यन्ते। तत्रापि रसरसायनभस्मनामेव प्रयोगाः प्राचुर्येणोररीकृता भान्ति। कषायकल्पानामुपयोगस्तु विरलप्रायः व्याधीनामवस्थास्थानविशेषानुसारेण प्रयुक्तानि भैषज्यकल्पान्तराण्येव द्रागेव रोगघ्नानि भवन्तीति दृक्प्रत्ययः। अयमेवास्ति भैषज्यकल्पानां हेतुः। यस्मिम् कस्मिन् व्याधिविशेषे यस्यां कस्यामप्यवस्थायां यस्य कस्यापि भेषजकल्पस्य प्रयोगकरणं न कदापि समीचीनं, न च वा विविधौषधिकल्पानां मुख्यहेतुरप्यनेन साध्यते।

सर्वाण्यौषधानि समानयैव कल्पनया कल्पनीयानीति केषांचिदस्ति सुधारणावादिनामभिप्रायः । कल्पनेयं सुष्टुतरेव भाति, किन्तु विचार्यते चेद्विविधानां विकाराणां स्थानान्तरजन्यत्वं वैविध्यं च व्याध्यवस्थानां तदा वहुकल्पान्येवौषधीनि विविधव्याध्यवस्थान्तरेषूपयुक्तानि गुणप्रदानि भवन्तीति जानन्त्येव व्याधिविज्ञानविदः । यथा—कोष्ठान्तर्गतेषु विकारेषु प्रायशश्चूर्णक्राथादीनामेवोपयोगः प्रशस्यते । यतो मुहूर्तादधिकसमपर्यन्तमवस्थितान्योषधीनि चूर्णक्राथादीनि पक्वामाशयादिषु सहवासादेव स्निग्धरूक्षादिगुणान्तरोत्पादने भवन्ति समर्थानि न तथा सत्वमात्रयोपयुक्तानि रसायनानि। रसरक्तादिधातुगतज्वरादिविकारेषु सत्वमात्रया प्रयुक्तानि व्यवायिविकासिगुणसंपन्नानि भेषजानि द्रुतगतित्वाद्यथा भवन्ति प्रशस्तगुणकराणि न तथा कषायचूर्णादिकल्पान्तराणि । कषायचूर्णादिकल्पनाकल्पितानि भेषजानि कोष्ठाग्निना विपक्वान्येव स्वकर्मसाधनसमर्थानि भवन्ति । कोष्ठाग्नेर्मन्दत्वे सति भेषजद्रव्याणामप्यपचनसंभवः स्यात् । अपाचितानि पुनरौषधानि रोगोत्पादकस्यामद्रव्यस्यैवोत्पादकानि बृद्धिकराणि च भवन्ति न तु रोगाणां शमनानि । अयमेव भेषजनिषेधहेतुरामज्वरावस्थायाम् । यथा—

अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।
आमसन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥
निहन्यादपि चैतेषां विभ्रमः सहसातुरम् ।

इत्यादिवचनैर्मन्देऽग्नौ सामविकारेषु मन्दतां याते रसाभिसरणे स्वल्पतरप्रमाणानि शरीरस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मेष्वप्यवयवेषु प्रवेशक्षमाणि तीक्ष्णोष्णव्यवायिविकासिगुणयुक्तानि भैषज्यान्येवातुरहितसाधनसमर्थानि भवन्ति न तथेतराणि क्षोदकषायादीनि । एवमेव कोष्ठगतिविकारेषु नातिमन्देऽग्नौ प्रयुज्यमानानि क्राथचूर्णाद्यौषधानि पक्वामाशयगतस्निग्धरूक्षादिगुणोत्पादनेन तद्गतविकारोपशमकराणि भवन्ति न तथेतराणि स्वल्पतरमात्रयोपयोज्यानि रसभस्मादीनि । त्वग्गतशोथपिडिकादिविकारेषु मूलक्षीरादिप्रलेपनस्य सिद्धानां च घृततैलादीनां भवति साक्षादुपयोगस्तथैव तत्तत्स्थानेषु रोगाणां तत्तदौषधिकल्पानाम् । अनेनैवाभिप्रायेणायुर्वेदे रोग्यारोग्यसंपादनायानेकेषां स्वरसफाण्टचूर्णकषायादिकल्पानामस्ति वर्णनम् । प्रमाणमत्र चिकित्सातत्वज्ञा एव ।

अपरश्चास्मिन् भैषज्यकल्पान्तरविधाने हेतुः—विविधेषु भेषजद्रव्येषु वर्तमानाश्चानेके गुणास्तेषामवयवान्तरेषु वर्तन्ते । भवन्ति कानिचिद् द्रव्याणि सर्वावयवशः समानगुणानि । रास्नापुनर्नवादीनां गुणाः सर्वावयवगता न तथा गुडूचीशतपुष्पाजमोदादीनाम् । गुडूच्यां ज्वरनाशकत्वं बृंहणत्वञ्चेति प्रधानं गुणद्वयं किन्तु नैतत्तत्सर्वाङ्गगतम् । तिक्तत्वादनुमीयते यज्ज्वरनाशकत्वं बाह्यत्वगन्तर्भागावस्थितहरितवर्णस्य घनरसस्य गुणो गुडूच्या इति । सत्वं तु बृंहणमिति प्रसिद्धमेव । ततो ज्वरनाशनार्थमुपयोगे विधीयमाने हिमकल्प एव प्रयोजनीयो गुडूच्याः, बृंहणार्थं च सत्वमित्युपपद्यते । नैवंविधश्चोपलभ्यते विशेषो हिमफाण्टक्राथसत्वरूपेणान्येन येन केनाप्युपकल्पेन । यानि सन्त्यजमोदाशतपुष्पादीनि तैलप्रधानानि भेषजानि तानि चूर्णरूपाण्येव भवन्ति गुणकराणि न तथा क्राथादिरूपान्तराणि । क्वथनाद्बाष्पयोगेन बहिर्गततैलानि कषायरूपाणीमानि वातानुलोमनादिकार्यकराणि न भवन्ति बातानुलोमनात्वात्तैलस्येति स्फुटमेव । अनेनैवाभिप्रायेण फाण्टकल्पो विहितः शठीशुण्ठ्यादीनां पिष्टविशिष्टानां, कषायश्च रास्नादीनां कठिनस्वरूपाणाम् । सिद्धयत्येवमाक्षैव्याध्यवस्थाविशेषानुरोधात्कल्पिता एव भेषज-

कल्पा विशेषतः श्रेयस्करा इति । व्यवहारसौकर्यार्थं सर्वाण्यप्यौषधिद्रव्याणि भेषजानि वा प्रयोज्यान्यासवारिष्टकल्पनयार्ककल्पनया वेति प्रतिपाद्यते कैश्चित् । सुविधेयत्वमिदमवश्यं विचारणीयं किन्तु विचारेऽस्मिन् गुणहानिर्न भवेदेवमपि यतनीयमावश्यकमेव । तुलसीस्वरसस्थाने तदासवकल्पप्रयोगात्सुगन्धाभावे हृदयोत्तेजनादीनां सुगन्धसम्भवानां गुणानामुपलब्धिर्न स्यादिति सत्यम् । एवमेव विज्ञेयं विज्ञैः सुगन्धसम्पन्नानां बिल्वादिभेषजद्रव्याणां विषयेऽपि । फलतः स्वरसफाण्टहिमचूर्णक्वाथगुटीघृततैलासवारिष्टादयः कल्पा आर्षमुनिभिरुपदिष्टा एव कल्पनीयाः । एवं कृत एव सार्थकं भवेन्मुनीनां कथनमिदम् । यदुक्तम्—

"बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम् ।" इति

दिव्यौषधीनां प्रभावविषये, हेतुव्याधिप्रत्यनीकचिकित्सामधिकृत्य निदानपरिवर्जनादिविषये चापि वक्तुं शक्यते, किन्तु विजानन्त्येवैतत्सर्वमपि भवन्तः श्रीमन्तोऽतः प्राणिजोद्भिजखनिजद्रव्यादिविषय एव विनिवेद्य किञ्चिद्विरामः ।

आयुर्वेदीयचिकित्सायामस्ति प्राणिजोद्भिजखनिजाख्यानामेव द्रव्याणां व्यवहारः । प्राणिजौषधानां सामान्यं तु सहजानुमेयम् । वनस्पत्यादीनामुद्भिजानां विविधव्याधिविनाशकाः प्रभावाख्या गुणाश्चापि सादृश्यादेवानुमेया भवन्ति । अग्र्यसंग्रहोक्तानामौषधीनां व्याधिविनाशकत्वं, साधर्म्यसम्भवमित्यपि जानन्त्येव सूक्ष्मधियः । केश्यत्वं नारिकेलफलस्य, मुस्तापर्पटयोर्ज्वरनाशकत्वं, शृङ्गाटकस्य मूत्रग्रन्थिनिवारकत्वं, श्लेष्महरत्वं कुमारीरसस्य, गुग्गुलोश्च मांसमेदोविकारनाशकत्वमित्यादीन्युदाहरणान्येव दिग्दर्शनपर्याप्तानि विषयेऽस्मिन् ।

व्याधिविपरीतोपक्रमे व्याधिप्रतीकारकराः प्रभावाश्चैते विशेषेण निवसन्ति वनस्पत्यादिषु न तथा खनिजेषु । द्रव्यसामान्यत्वेऽपि खनिजेषु जीवनस्य विशिष्टस्य च सेन्द्रियत्वस्याभावाज्जीवनकर्मविशेषसम्पन्नानां शारीरावयवानामिन्द्रियाधिष्ठानानामपि सेन्द्रियत्वसाधार्म्यस्याभाव एव । अनेनैव हेतुना खनिजान्यौषधानि वनस्पत्यादिवन्न धातुवृद्धिकराणि भवन्ति न च विविधव्याधिहराण्यपि । तथापि दृश्यतेऽधुनायुर्वेदीयचिकित्सायामभ्रलौहार्कपारद गन्धवङ्गादीनां खनिजानामेवादरेण प्राचुर्येण च व्यवहारः । स तु स्वल्पातिस्वल्पमात्रयोपयोगेऽपि तेषां सद्यःफलप्रदत्वात्सर्वदा सर्वत्र सुलभतया समुपलब्धत्वाच्च । अत्राशंक्यते कैश्चित् । समुद्भवन्ति प्रश्नाश्चेमे—"ननु विशिष्टसेन्द्रियत्वाभावात्प्रभावहीनानां कथं पुनरेतेषां खनिजानामेवादरेण प्राचुर्येण च दृश्यते चिकित्सायां व्यवहारः ? कथं पुनरिमान्येवाल्पतरमात्रयोपयुक्तानि भवन्ति सद्यःफलप्रदानि ? 'रसायनं हि तत्प्रोक्तं यज्जराव्याधिनाशनम्" इति सिद्धोक्त्याकथं पुनरनुपयुक्तान्यपि खनिजानि पारदाभ्रलौहादीनि रसरसायनानि भवन्ति जराव्याधिहराणि ?" कथ्यते—

"लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ।"

कथनमिदं सत्यम् तथैव विशिष्टसेंद्रियत्वाभावात्पारदादीनामप्रभावत्वमपि रसायनं नाम शरीरस्थानां रसरक्तादिधातूनामुपबृंहणम् । विदितमेव सर्वेषां यत्पारदादीनां खनिजौषधानां कल्पा रसायनपर्याया विविधवनस्पतिसहायादेव प्रकल्प्यन्त इति । विविधानां दिव्यवनस्पतीनां स्वरसपुटसहस्रैरेवैतेषु खनिजेषु स्थिरीक्रियते गुणाधानम् । विविधवनस्पत्यनुपानेन सहैवोपयुज्यन्ते । विशिष्टसेन्द्रियत्वसिद्धवनस्पतिसङ्गादेव प्रस्फुरति प्रभावोऽयं पारदाभ्रलौहादिखनिजेषु । यथा जम्बूद्रावसिद्धं लौहं भवति मूत्रविकारशमनं तदेव पुनर्नवासिद्धं शोथदिदमनम् ।

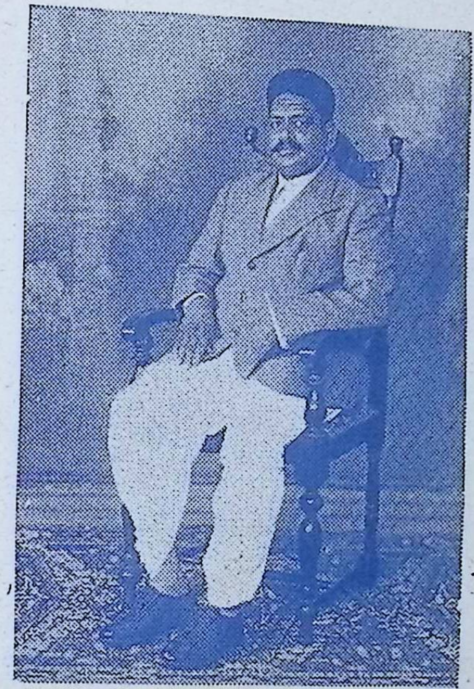

श्रीमान् सेठ रामनिवास जी गोयनका

मालिक फर्म—श्रीमान् वंशीधर जी रामनिवास, नागपुर

आप आयुर्वेद के अनन्य भक्त हैं और श्रीमान् विद्यावाचस्पति, पण्डित गोवर्धनजी शर्म्मा छांगाणी, भिषक्केसरी की प्रधानाध्यापकता में संचालित श्रीधन्वन्तरि आयुर्वेदमहाविद्यालय एवं तदन्तर्गत धर्मार्थ औषधालय के आप उदारचेता संरक्षक हैं।

वासास्वरससिद्धमभ्रं भवति रक्तपित्तादिहरं तदेवार्कदुग्धसिद्धं श्वासकासान्निहत्य रोग्यारोग्यकरम्। प्रमाणैरेभिः खनिजानां रसरक्तादिधातुवृद्धिकरत्वं हरत्वं च विविधव्याधीनां वनस्पतिसहायनिमित्तमेव सुगमानुमेयं सुधियाम्।

"दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥"

इत्यादि विविधव्याधीनां निमित्तावस्थावस्थानं, प्राधान्यमप्राधान्यमनुबन्ध्यानुबन्धत्वं, विशिष्टस्थानाश्रयदूष्याश्रयत्वमथ च विकारादिकारणभूतानामनिलादिदोषाणामाधिक्यमल्पत्वं सम्यगवलोक्यालोच्य च हेतुविपरीतान् व्याधिविपरीतान् हेतुव्याविपरीतांश्चावधार्य चिकित्साप्रकारान् स्थानावस्थादिविशेषानुसारमेवोपयोजनीयाश्चिकित्साविशेषाः। एवमायुर्वेदप्रतिपादिता रोगावस्थादिविभागाननुसृत्योपक्रमप्रकारा भेषजकल्पाश्च व्याधिव्यूहप्रत्यूहव्यपोहपूर्वमारोग्यकरा भवन्तीत्यवगम्यते।

उपसंहारः।

अथ तानेव विषयानधिकृत्य संक्षेपतो निवेद्यते येषामस्त्यायुर्वेदोद्धरणार्थं नितान्तमेवावश्यकता। सन्ति भारतेऽस्मिन्नायुर्वेदाध्यापनशीला बहवो विद्यालया महाविद्यालयाश्च। किन्तु तेषु प्रायशो वर्तमानसमयापेक्षितायुर्वेदशिक्षणदानेऽसमर्था एव। निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठतः प्रत्यब्दं समुत्तीर्णाश्चापि शतशो विद्यार्थिनः प्राचामेकामपूर्णां पूर्णां वा कायचिकित्सां विहाय शल्यशालाक्यादिशेषेष्वङ्गेनुत्तीर्णा इवैव प्रतिभान्ति। अपूर्णशिक्षाया एवोदाहरणस्वरूपो "विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाः प्रवर्तन्ते" इत्यादि—पद्यपरकः प्रचण्डो वितण्डावादो दृष्ट एव सर्वैरपि। शल्याद्यङ्गावगमपारङ्गतत्वं नितरामावश्यकं विद्यार्थिनाम्। भाव्यमेतदायुर्वेदभक्तैः प्राच्यप्रतीच्योभयवैद्यविद्याप्रवीणैरेवाध्यापकैरमरभारतीमध्यमादिपरीक्षोत्तीर्णैश्छात्रैश्च। स्पष्टमेवेति यदेतादृशा गुरवः शिष्याश्च सम्प्रत्यसुलभा एव। विद्यालयसञ्चालकैरुभयायुर्वेदविदामुपलब्धये विधेयः प्रबलः प्रयत्नः। न भवेदुभयवैद्यविदां लाभस्तावद्योग्यादिशल्यशालाक्याध्ययने निश्शङ्कतया ग्राह्यमस्मद्दक्षतरबन्धूनां साहाय्यम्। विद्यालयेषु चैतेषु प्रत्यक्षज्ञानार्थं शवच्छेदनशालावन्यखनिजौषधिभाण्डारान्वेषणविभागायुर्वेदपुस्तकागारोपवैद्यप्रसूतिकर्मशिक्षणादिव्यवस्थयाप्यवश्यमेव भाव्यम्।

पाठ्यपुस्तकानि।

अष्टाङ्गायुर्वेदावगमार्थं प्रथममेवापेक्ष्यन्ते सरलानि सुलभानि सुरभारतीलिखितानि च पाठ्यपुस्तकानि। महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनमहोदया नितरां धन्यवादार्हाः। महाभागैरेतैः प्रत्यक्षदेहतत्त्वावगमप्रदं सचित्रं प्रत्यक्षशारीराभिधं महानिबन्धं सुललितसुरभारत्यां विरच्य प्रकाश्य च ऋणीकृता निखिलभारतीयायुर्वेदविदः। शिरोभागहीनं शरीरमिवापूर्णमेवासीत्प्रत्यक्षशारीरमिदं तदपि सञ्जातं वत्सरेऽस्मिन् सम्पूर्णमित्यतीवानन्दावसरः। आयुर्वेदमहामण्डलरजतजयन्त्युत्सवस्य परममङ्गलावसर एव स्वनिर्मितस्यास्य प्रत्यक्षशारीरमहानिबन्धस्यान्तिमो भागस्तृतीयोऽपि श्रीकविराजमहाशयैर्द्वादशवार्षिकेण महता परिश्रमेण प्रकाशितः। सम-

वाप्य दीर्घमायुष्यं महात्मानश्चेमे कुर्वन्तु सिद्धान्तनिदानादीनामपि निबन्धानां पूर्तिमित्यभ्यर्थये श्रीभगवन्तं भक्तवत्सलम् । स्वस्थवृत्तसमुच्चयसङ्कलनेन काशीस्थाः श्रीराजेश्वरमिश्र शास्त्रिणोऽपि धन्याः, किन्तु पाठ्यपुस्तकानां रचनाविषये नैतावतैवालमिति मन्ये । प्रसूतितन्त्रकौमारभृत्यागदतन्त्रव्यवहारायुर्वेदादिशेषाङ्गानामपि रचनं नितान्तमावश्यकम् । प्रचलति येन केनापि प्रकारेण कार्यं विद्यार्थिनां व्यवहारायुर्वेदादिहिन्दीपुस्तकेभ्यस्तथापि संस्कृतभाषापाटवोपलब्धये सर्वेषां चायुर्वेदाङ्गानामवबोधाय देववाणीविरचितानामेवपाठ्यपुस्तकानां वर्तते परमावश्यकता । देववाणीलिखितान्येव पुस्तकानि समानतयोपयुक्तानि भवितुमर्हन्ति सर्वेष्वप्यङ्गवङ्गकलिङ्गोत्कलमद्रादिभारतीयेषु भूभागेषु । विषयेऽस्मिन् यथास्त्युत्तरदायित्वं निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलस्य न तथा यस्य कस्यापि । शीघ्रातिशीघ्रं प्रयतनीयं तेनैव स्वहस्तयित्वा कार्यमिदम् । स्वतन्त्रमहाविद्यालयस्य तस्य न भवेद्यावत्स्थापना तावत्तत्सञ्चालितायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाप्रभावोऽप्यल्पीयानेव । हन्त, महामण्डलशैथिल्यात्तदारब्धानि सर्वमान्ययोगसंग्रहनिघण्टुसमितिशारीरसंज्ञानिर्णयसमितिवैद्यसंघायुर्वेदमहामण्डलसंमतवैद्यसूचीप्रभृतीन्यनेकानि कार्याणि तद्गर्भस्थान्येवाद्यापि वर्तन्ते । वस्तुतस्त्वायुर्वेदमहामण्डलमिदमभिन्नमेवाखिलभारतीयायुर्वेदविद्भ्यः । वयमेव सर्वे घटकास्तस्य । सर्वैरप्यस्माभिरतो यतनीयं तदारब्धायुर्वेदोद्धारकार्यार्थमिति दिक्

आयुर्वेदोपबृंहणम् ।

आयुर्वेदोपबृंहणार्थं चरकसुश्रुताद्यार्षसंहितानां प्रकाशनं समूलं सटीकं नवीनान्वेषणकृट्टीकाटिप्पणैश्च संवलितं नितान्तमावश्यकम् । न केवलं कथनादेव महामहोपाध्यायश्रीगणनाथसेनसरस्वत्यादीनां किन्तु वेदोपनिषदाद्यायुर्वेदतन्त्राणां तुलनात्मकादध्ययनादपि निश्चीयते यत्प्रतिसंस्कर्तॄणां लेखकानां वा प्रमादादार्षसंहितास्वप्यस्माकं सन्ति कानिचिदुद्वेगकराणिस्खलनानीति । हृदयोदाहरणमेवैकमत्र पर्याप्तं भवेदिति मन्ये । हृदयवर्णनकराणि वचनानि यथा—

"हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।" इति यजुर्वेदः
"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।" इति श्रीमद्भगवद्गीता
"षडङ्गमङ्गविज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम् ।
आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संस्थितम् ॥" इति चरकः
"शिरोभिर्हृदयं वेत्ति तस्मात्तत्प्रभवाः शिराः ।"
"शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः ।" इति भेलः
"हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुतदेहिनाम् ।" इति सुश्रुतः ।
"सर्वेन्द्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः ।
तेन तस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामादृतो भवेत् ॥" इति वाग्भटः

प्रमाणैरेभिः स्फुटीभवति यद्वेदोपनिषदायुर्वेदार्षतन्त्रैरात्मनो मनसो बुद्धेश्च निवासरूपेणैवोपवर्णितं हृदयमिति । "शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः" इति भेलोक्त्या चरकादिकथनैश्च मनोबुद्धीन्द्रियाणां निवासो हृदि सिद्ध्यति, तथैव हृदयस्थितिरपि शिरस्येवेति स्पष्टीभवति । चेतनास्थानं हृदयमेतद्भगवतात्रेयेण चरकीयसूत्रस्थानस्यार्थेदशमहामूलीयेऽन्तिमेऽध्याये पृथगेव पठितं, तथैव स्वतन्त्रे महर्षिभेलेनाप्यूर्ध्वंदशमूलीये । पुण्डरीकेण सदृशमित्यादिवर्णनमप्यस्यैवेति भेलसंहितातोऽवम्यते । यथा हि—

अर्थं इत्याह हृदयं तस्मिन् धमनयो दश ।
ऊर्ध्वं चतस्रो द्वे तिर्यक् चतस्रश्चाप्यधः क्रमात् ॥

… … … … … …

तस्मात्तदर्थं विज्ञानं स्मृतियोगं च मानसम् ॥

… … … … … …

शिरोभिर्हृदयं वेत्ति तस्मात्तत्प्रभवाः शिरा ॥
हृदि प्राणश्च चक्रस्थः विमाने कर्णिका यथा ।
मर्माभिघातं तेनात्र सहते हृदयेन तु ॥
पुण्डरीकस्य संस्थानं कुम्भिकायाः फलस्य च ।
एतयोरेव वर्णं च बिभर्ति हृदयं नृणाम् ॥
यथा हि संवृतं पद्मं रात्रौ चाहनि पुष्यति ।
हृत्तदा संवृतं स्वप्ने विवृतं जाग्रतः स्मृतम् ॥ भेल अ० २०

हृदयमेकं चेतनायतनम्, इत्यस्यैकं पदं द्वितीयमप्यपेक्षते हृदयम् । तत्तु पञ्चदशकोष्ठगणितं रक्तस्थानमेवेति सुगमावगमं सुधियाम् । तत्सुप्ते रक्तसंवहनाभावात्परमधामप्राप्तिरप्यवश्यं भाविनी नृणाम् । एवं सत्यपि सुश्रुते वाग्भटे च रक्तस्थानस्यास्य हृदयस्य वर्णनाधोभागे कथं केन वा कृतो विन्यासः पुण्डरीकेण सदृशमित्यादि वाक्यानामिति चिन्त्य एव । एवमेवान्यान्यपि स्खलनान्यूह्यानि विद्वद्भिरिति प्रार्थये ।

आयुर्वेदोबृंहणाय च पुनः सचित्रनिघण्टूनां प्रकाशनं, तेषु नवीनप्राप्तभेषजानामपि संन्निवेशः, संदिग्धौषधिनिर्णयः, रसभस्मनां परीक्षणमाधुनिकविज्ञानरीत्या, विशुद्धभेषजलाभायौषधिभाण्डाराणां स्थापनाप्रभृतीनि कार्याण्यप्यावश्यकानि । आयुर्वेदस्य निखिलभारतेऽध्ययनपरीक्षापदवीभेषजनिर्माणादिकं समानपद्धत्या एव भवेदेवं प्रयतनीयम् । निखिलभारतीयानामथ च प्रान्तीयवैद्यसम्मेलनानां कार्यक्रमप्रस्तावादीनां प्रकाशनं, भारतीयम्युनिसिपल्टीलोकलबोर्डडिस्ट्रिक्टबोर्डाधिकारिभिः स्नेहं संपाद्यायुर्वेदीयौषधालयातुरालयविद्यालयादिधार्मिकसंस्थासंस्थापनं निखिलभारतीयतत्तत्प्रान्तीयधारासभाध्यक्षैः सदस्यैश्च सह विधाय विचारविनिमयं वैद्यवृन्दाधिकारवृद्धये संयुक्तप्रान्तीयइन्डियनमेडिसिनबोर्डवद्बोर्डानां राजकीयानां प्रान्ते प्रान्ते नियुक्तिर्यत्र तत्रायुर्वेदप्रचारार्थं व्याख्यानानां च प्रबन्धप्रभृतीनि बहूनि सन्ति नितान्तमावश्यकानि कार्याणि । वर्षेऽस्मिन् मध्यप्रान्तधारासभया इण्डियनमेडिसिनबोर्डप्रस्तावः स्वीकृतः, किन्तु राजकीयानां साहाय्याच्छीघ्रमेव भवेद्बोर्डस्थापनमिति तु वैद्यानां संघशक्त्यधीनमेव । विहाय पारस्परिकं मतभेदादिकं सर्वेऽप्यायुर्वेदोद्धरणे बद्धपरिकरा भवेयुरित्याशासे ।

मान्याः; बालादपि सुभाषितमिव प्रेम्णाकर्णितं मद्भाषणमतो वितीर्य धन्यवादान् वितरामि ।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

॥ इति शिवम् ॥

निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन के द्वादशाधिवेशन के सभापति

कविराज श्री० हाराणचन्द्र चक्रवर्ती महोदय का

जीवन चरित ।

(प्रोफेसर सत्येन्द्रनाथ सेन विद्यावागीश के लेख का हिन्दी अनुवाद)

कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती पवना जिला में बकलिया 'ग्राम' के रहने वाले कविराज आनन्दचन्द्र चक्रवर्ती के पुत्र थे। ये दोनों पिता-पुत्र मुर्शिदाबाद के रहने वाले कविराज गंगाधरजी के शिष्य थे। यह कविराज गंगाधरजी के अन्तिम शिष्यों में एक थे तथा अपने समय के सबसे बड़े महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन के जूनियर सहपाठी थे। कविराज गंगाधरजी के प्रसिद्धि का यह एक विचित्र चित्र है कि उनके शिष्यों में से कोई भी अपने जीवन में असफल नहीं हुआ। कविराज आनन्दचन्द्रजी भी एक सफल कविराज हो गये हैं और बहुत-सा द्रव्योपार्जन किया किन्तु अपने अमित व्ययता के कारण अपने पुत्र के लिये ऋण के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ सके। इस ऋण को लिये हुए कविराज हाराणचन्द्र ने अपना व्यवसायिक जीवन प्रारम्भ किया। इनका जन्म एक पुरोहित ब्राह्मण वंश में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन में यह पुरोहित और कविराज दोनों थे। यह अपने आपको दोनों व्यवसायों से बढ़ाते रहे। यह व्रत-कथा कहने के लिये एक आने की तुच्छ दक्षिणा (फीस) भी छोड़ने में असमर्थ थे (नहीं छोड़ते थे)। अपनी मृत्यु के समय तक यह निर्धन ब्राह्मण अपनी पूर्ण योग्यता की सहायता से बिना किसी प्रकार के विज्ञापन के ही सबसे बड़े कविराज हो गया तथा इसने २० बीस लक्ष रुपया उपार्जन किया। यह लगातार ७० वर्ष तक कविराजी करते रहे।

वर्तमान समय में पाश्चात्य औषधि प्रणाली का प्रचार है अतएव प्रायः कविराज लोगों को उन्हीं रोगियों पर सन्तुष्ट होकर बैठा रहना पड़ता है जिनको पाश्चात्य शिक्षित डाक्टर अपने हाथ में लेने से इन्कार कर देते हैं किन्तु हाराणचन्द्र के पास प्रारम्भिक रोगियों का एक बड़ा समूह भी आता रहता था। वह कौन सी विशेषता थी जिसने उनको इस महान पद पर पहुँचाया? वह केवल पाश्चात्य डाक्टर तथा भारतीय सच्चे कविराज के गुणों का संयोग था। वह एक पाश्चात्य डाक्टर की भाँति आवश्यक तथा खतरनाक (Hopeless) रोगों में तात्कालिक तथा प्रथम सहायता देने के उपायों में विज्ञ और शारीरिक विज्ञान तथा चीड़-फाड़ के कामों में अपनी ही बीती के प्रणाली के अनुसार निपुण थे तथा एक सच्चे कविराज की भाँति हमारे पूर्व ऋषियों से निर्धारित किये हुए पथ्य तथा उपचार करने के सिद्धान्तों का दक्षता से अनुसरण करते थे। राजशाही में कविराजी करते समय वहाँ के तत्कालीन सिविलसर्जन महाशय ब्रेंचमुलर के साथ इनकी घनिष्ठता हो गई थी। वहाँ उन्होंने शव-परीक्षा-गृह में मृतकों की शारीरिक परीक्षा करते हुए सुश्रुत के बतलाये गये आयुर्वेदिक शारीरिक ज्ञान की वृद्धि कर लिया। इस प्रकार शारीरिक रोगों में न तो वह अन्य कविराजों की भाँति असहाय थे

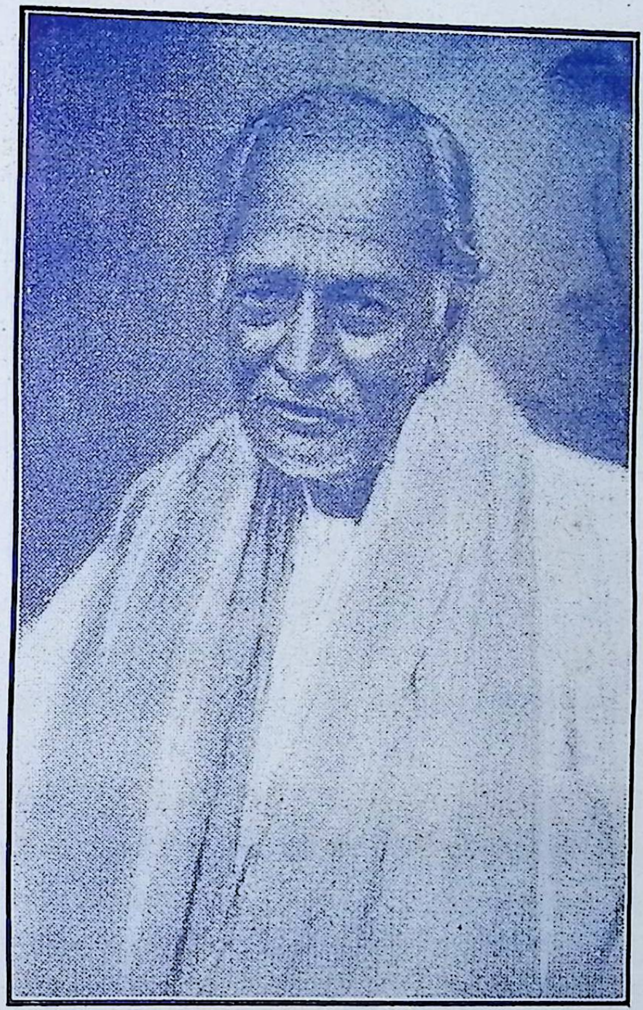

स्वर्गीय कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, राजशाही (बंगाल)

जन्म २८—१—१८४९ मृत्यु २९—५—१९३५।

सभापति—नि० भा० द्वादश वैद्यसम्मेलन, बम्बई।

सभापति—बंगालप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन।

न पाश्चात्य डाक्टरों का अन्धों की भाँति अनुसरण करने वाले थे बल्कि उनको इस विषय का अपना प्राप्त किया हुआ ज्ञान था। नेत्र, कलेजा, इत्यादि से सम्बन्धरखने वाले भिन्न प्रकार के चीर-फाड़ का काम करते हुए उन्होंने अपने इस ज्ञान का व्यवहार किया, शरीर से रुधिर निकलना जो सुश्रुत से बहुत से रोगों में समर्थ नहीं किया गया है उनके लिये एक साधारण काम था। इस प्रकार वे दोनों प्रकार के ज्ञान से युक्त एक पूर्ण वैद्य हो गये थे। वे शोचनीय वैद्यों के विषय में सुश्रुत में कही गई निम्नांकित पंक्तियाँ प्रायः पढ़ा करते थे।

उभ वेतौ अनिपुनौ असमर्थौ स्व कर्माणः।
अर्ध वेद धरा वेतौ एक पचा विवा द्विजौः ॥

अर्थात् वैद्य दो प्रकार के होते हैं—प्रथम वे जो पुस्तकों का ज्ञान रखते हैं किन्तु व्यवहारिक अनुभव उनको नहीं होता दूसरे वे जिनको व्यवहारिक अनुभव होता है किन्तु सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता। ये दोनों प्रकार के वैद्य अपूर्ण तथा रोगों का उपचार करने में असफल हैं। वे विज्ञान का आधा ज्ञान रखते हैं तथा एक पक्ष वाली पक्षी की भाँति अपूर्ण हैं अन्य वैद्यों के विरुद्ध उनको अधिक सफलता होने के कारण ये थे।

१—विद्वता

अपने विषय के पूर्ण पंडित थे उन्होंने इन विषयों की कविराज गंगाधर से पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी जो संस्कृत विद्या की सभी शाखाओं के पूर्ण तथा धुरन्धर विद्वान थे।

२—प्रस्तुत ज्ञान

उनकी स्मरण शक्ति इतनी अच्छी थी कि आयुर्वेद के प्रसिद्ध आदि पुस्तकों के सब श्लोक उन्हें कंठ थे। इस कारण वह अपने समय के अन्य कविराजों की अपेक्षा अधिक योग्य थे। क्योंकि अन्य कविराज उचित समय पर पाश्चात्य डाक्टरों की भाँति बिना पुस्तक देखे आवश्यक आयुर्वेद के श्लोकों को कंठ नहीं कर सकते थे।

३—अनुभव

वे बहुत बड़े अभ्यस्त तथा अनुभवी थे। उनके सम्मुख कभी भी कोई ऐसा रोग चाहे कितना ही विचित्र क्यों न हों, नहीं उपस्थित किया जा सका जिसका वे प्रामाणिक वर्णन न कर सके हों तथा उसी प्रकार के रोगों का अपना अनुभव में स्पष्ट वर्णन तथा रोग उनसे सम्बन्ध रखने वाले रोगियों के नाम सहित न कह सके हों। प्रथम बार उनके कहानियों के कुछ लक्ष्य सुनकर मुझे कुछ शंका होती थी कि वे उनके कल्पित किये हुये होंगे, किन्तु ऐसे मौकों का बार-बार आप जब उन कहानियों को विचित्र सत्यता में वर्णन करते थे तब तमाम संशय दूर हो जाता था।

४—आयुर्वेद की कीर्त्ति

वे सदा आयुर्वेद की कीर्त्ति बढ़ाने के लिये उत्सुक रहते थे। जहाँ कहीं दूसरे वैद्य तथा डाक्टरों से छोड़ी हुई विचित्र बीमारियों को पाते प्रायः उस रोगी को दवा निःशुल्क करते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी आर्थिक सहायता भी करते थे। उन्होंने अपने दिमाग की दशा का महान सैनिक भीष्म की तुलना करते हुये इस प्रकार वर्णन किया है।

अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योप जायते

अर्थात् जो भीषण संग्राम को देखकर हर्षोन्मत्त हो जाय।

५—दुष्कर कार्य तथा अटूट चेष्टा

उनके चीड़फाड़ के कामों की तत्परता ने उन्हें उनके कुछ प्रति-द्वन्दी प्रायः डाक्टरों के आँखो की किरकिरी बना दिया था। एक बार थोड़े से नेत्र के रोगियोंने जो राजशाही के गवर्नमेन्ट अस्पताल में भरती हुये थे कविराज हाराणचन्द्र की डाक्टरी दवा से लाभ उठाने के लिये अस्पताल की दवा करना छोड़ दी। इससे वहाँ का नया सिविलसर्जन उनके ऊपर इतना अप्रसन्न होगया कि उनको एक दोषी की भाँति रोक दिया। किन्तु मजिष्ट्रेट के द्वारा जो उनके गुणों से स्वयं विज्ञ था वे बचा लिये गये। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आँख के रोगों में उनकी सफलता सिविलसर्जनों से कहीं अधिक थी। सत्य ही नेत्र रोग की दवा करने में वे इतने दक्ष थे कि वह प्रायः यह कह कर आश्चर्य प्रकट करते थे कि कैसे डाक्टर लोग अपने थोड़े ज्ञान के बल पर ऐसे रोगों को अपने हाथ में लेने की हिम्मत करते हैं।

६—उनका परिश्रम

अकर्मण्यता एक ऐसी वस्तु उनके लिये थी जिससे वे बिलकुल अपरिचित थे शारीरिक तथा मानसिक कष्ट का उन्हें बिल्कुल ध्यान ही न था। राजशाही में जब वे अभ्यास कर रहे थे एक बार अपनी गाड़ी के साथ खाईं में गिर जाने के कारण उनके दोनों पैरों में चोट आ गई पर इतने पर भी बिना फीस के रोगियों की दवा करने के लिये चार-पाँच तल्ले पर चढ़ने तथा कभी-कभी बरसात के दिनों में सकरी गलियों में पानी में होकर जाने से तनिक न हिचकते थे।

वह अपनी दुःखी तथा रोगी पत्नी के साथ बनारस (काशी) गये। वहाँ पर स्त्री का स्वर्गवास होगया। आप वहाँ से लौट कलकत्ता आये, एक दिन दोपहर के बाद घर पहुँचे पर बिना किसी सम्बन्धियों से मिले ही तथा बिना आह भरे अपने रोगियों के लिये जो बैठक में मौजूद थे दवा का पुरजा लिखने लगे। दुःख तथा कष्ट के विषय में वे बिल्कुल बेपरवाह थे। यह बेपरवाही उनके रोगियों के औषध प्रयोग पर भी प्रभाव डालती थी किन्तु लाखों दरिद्र भूखों के प्रति उनके हृदय में दया भी थी। उन्होंने एक भी भिक्षुक को दरवाज़े से निराश नहीं लौटाया। सर्वदा उनकी आवश्यकतानुसार पैसे तथा अन्न से सन्तुष्ट करते रहे। उनकी फीस तथा दवाओं का दाम भी बहुत ऊँचा होता था। किन्तु ऐसा वह आयुर्वेद की मर्यादा की अन्य औषधि विधियों, विशेषतः डाक्टरी के मुक़ाबिले में रक्षा के लिये करते रहे।

७—उनका व्यवहार

उनसे मिलने के १२ बारह वर्ष पहले उनके क्रोधी स्वभाव के बारे में मैं सुना करता था। किन्तु एक या दो छोटे बल्कि असह्य अवसरों पर छोड़ कर उन्हें कभी भी न्यायोचित अवसरों पर क्रोध करते हमने नहीं देखा था। हम लोगों से वे कहा करते थे कि वह अपने जवानी में क्रोधी स्वभाव के थे। अब यह उनकी व्यर्थ की बदनामी ही है। वह सदा अपने रोगियों तथा उसी प्रकार जो वहाँ वर्तमान रहते थे उन्हीं की सेवा में लगे रहते थे। उनका

यह सिद्धान्त नहीं था कि रोगियों को अपने बैठक खाने में इकट्ठा होने पर नीचे उतरते। जितना शीघ्र हो सकता था रोगियों को दवा देकर छुट्टी कर देते थे। उनका अभ्यास था। रोगी आते-जाते रहते थे। एक कार्यशील मनुष्य होने के कारण उन्हें दूसरों की निन्दा करने का समय न था। किन्तु कोई रोग डाक्टरों द्वारा बिगड़ जाता तो वह उनको श्राप देते थे। फैशनेबुल डाक्टर तथा अर्धशिक्षित कविराजों का समान ही दोष देते थे किन्तु ईर्षा के कारण नहीं बल्कि करुणा तथा अपनी इस विषय में उन लोगों से अधिक योग्यता के कारण वे ऐसा करते थे।

८—कार्य-क्रम

वह सूर्योदय के एक घंटे पहले बिस्तर से उठ जाते थे। नित्य-क्रिया के पश्चात् वह पूजा-घरमें जाते थे। वहाँ दस बजे तक रहते तथा बीच-बीच में यदि आवश्यक रोगी कोई हो तो उसको देखते थे। जीवन के अन्तिम दिन तक पूजा की तैयारी वह अपने हाथ से ही करते रहे। वह दस बजे नीचे उतरते तथा बारह बजे दिन तक रोगियों की देख-भाल करते थे पश्चात् भोजन करके बाहर जाते थे फिर तीन, चार बजे तक लौट आते थे। चार बजे शाम से दस बजे रात तक बैठक में रहते थे। वह अपने रोगियों से सत्य कहने में घबड़ाते नहीं थे। यदि सायंकाल में आधे घंटे का भी समय पाते तो उस समय ईश्वर की प्रार्थना करते। दस बजे रात को अपना हिसाब जाँचते थे पश्चात् भोजन खोई, दूध, मुनक्का करने के पश्चात् सोने चले जाते। सोते समय भी उनके रोगियों से उन्हें बाधा पहुँचती थी। रोगियों के आदमी उनकी (कविराजजी) आज्ञानुसार उनसे राय लेने के लिये जगा देते थे तथा कभी-कभी असमय में भी उन्हें बाहर ले जाते थे। चाहे सोते समय जो कुछ बाधा हो किन्तु यह निश्चित था कि यह सूर्योदय के पहले ही पूजा पर बैठ जाते थे।

९—स्वावलम्बन

वह सदा अपने नौकरों तथा सम्बन्धियों की सहायता से स्वतंत्र रहे। एक समय जब उनका नौकर नहीं था अपनी धोती भी अपने हाथ से ही धो लिये। वह न तो धूम्रपान करते थे न तो सूघँनी ही सूँघते थे।

बहुत दिनों के जान-पहिचान के मध्य में मैंने कभी भी उनको मालिश कराते तथा साबुनादिक का प्रयोग करते नहीं देखा था। वह कभी भी आह भरते नहीं देखे गये जैसे वृद्ध तथा धनी लोगों की आदतें होती हैं। ईश्वर ने उनकी स्वावलम्बन की रक्षा अन्तिम जीवन तक किया। उनके इस आत्म-निर्भरता के व्यवहार ने साधारण जनता पर भी प्रभाव डाल दिया। उनको अपने विश्वास का साहस था जिसको वह बड़े-से-बड़े लोगों के सम्मुख भी प्रगट करने में नहीं सकुचते थे।

१०—स्वास्थ्य

वे उपवास के पक्षपाती थे जो स्वयं बहुत अधिक स्वास्थ्य की रक्षा करती है। वे स्वयं अपने तईं इसका प्रयोग करते थे जिससे बिना भोजन किये, वह भोजन करने की अपेक्षा अधिक स्वस्थ्य रहते थे।

तीन अवसरों—दुर्गा पूजा, जगद्धात्री, तथा वासन्ती पूजा—पर वह अपने घर (राजशाही) जाया करते थे। हर अवसर पर वह स्वयं पूजा करते थे। वह कई दिनों तक लगातार उपवास किया करते थे। तथा कठिन काम आसानी से करते थे जिसे देखकर नौजवान लोग चकित रह जाते थे। वह मिष भोजन करते थे किन्तु थोड़े से पशु बलि को वे इस कारण से नहीं रोकते थे कि उनके तथा दूसरे लोगों के दोषों को जो ज्ञात या अज्ञात में होते हैं, और अधिक न बढ़ा दें। यह पूछे जाने पर कि उनके अन्तिम समय में उनका उपचार करने के लिये कौन विश्वसनीय होगा। वह हम लोगों को सदा यही निश्चय दिलाते थे कि वह कभी भी रोग-ग्रसित नहीं होंगे बल्कि सूचना देते हुये सहसा इस संसार को छोड़ देंगे। उनकी यह भविष्य वाणी सर्वथा सत्य हुई। यद्यपि उसका अन्तिम भाग नहीं सत्य हुआ। वह छियासी वर्ष तक पूर्ण स्वस्थ दशा में जीवित रहे। दूसरे वृद्ध लोगों की भाँति कफ, खाँसी आदि रोगों से कभी भी पीड़ित नहीं हुये। वह स्वास्थ्य तथा कर्त्तव्य की मूर्त्ति थे। नौ वर्ष की अवस्था में एक बार उनपर ज्वर का आक्रमण हुआ था तब से उनके जीवन के अन्तिम घड़ी तक कभी भी ज्वर नहीं आया। नवयुवकों के रोगों का उन्हें अपना अनुभव न था बल्कि इसके लिये वह पुस्तक के ज्ञान पर निर्भर थे।

११—उनके गुण

वह अपने गुरु की विद्या, दैवी शक्ति तथा अनुभव का बहुत आदर करते थे। हम लोगों ने उनके गुरु के व्यवसायिक जीवन—जिसका वह सदा अनुसरण करने का प्रयत्न करते थे—सम्बन्ध रखनेवाली कहानियों को उनके मुख से सैकड़ों बार सुना। उन कहानियों में से कुछ भिन्न २ मौकों पर नये आगन्तुकों के कारण दुहराई जाती थीं किन्तु जिस सत्यता से वे कही जाती थीं वह आश्चर्यजनक थी।

१२—चरित्र

वह सच्चे ब्राह्मण की भाँति रहते थे, तथा भोग-विलास से बिल्कुल अपरिचित थे। आयुर्वेद तथा अन्य ब्राह्मण शास्त्र में उनका अटल विश्वास था। उनके चेहरे पर एक चिरस्थायी प्रकाश था। शास्त्रीय संस्कृत भाषा का उनका प्रस्तुत ज्ञान, स्मरण-शक्ति, अटूट चेष्टा तथा सबसे अधिक अपने पूर्वजों के शास्त्रों में दृढ़ विश्वास आदि ऐसे गुण थे जिनके कारण कविराज हाराणचन्द्रजी ने जीवन-क्षेत्र में अद्वितीय प्रतिभा प्राप्त की। अन्तिम १२ वर्ष तक लगातार उनसे जान-पहिचान होने के फलस्वरूप उनके विषय में मेरे यही विचार हैं जो मैंने निश्चय किया है। मैं यह अवश्य स्वीकार करता हूँ कि उनमें कम से कम यह दुर्बलता अवश्य थी और जिसका सम्बन्ध मुझसे ही था। मैं जूनियर तथा हर विषय में बहुत कुछ था लेकिन तिस पर भी वह सदा मुझे अपना आन्तरिक मित्र समझते थे और मेरी योग्यता की सदा प्रशंसा करते थे। उनकी मृत्यु से मेरी तथा रोगी जनता की अपनी विशेष तथा न पूरी होने वाली क्षति हुई है। अवश्यमेव उनके योग्य ही उनका स्मारक बनाने का प्रबन्ध किया जायगा किन्तु सुश्रुत संहिता पर उनकी बहुमूल्य टिप्पणियाँ जो आयुर्वेद को प्रोत्साहित करने के लिये एक वरदान स्वरूप हैं, उनके स्मरण के लिये प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी के हृदय में चिरस्थायी स्मारक हैं। वे अपने घर (राजशाही में) सर्वदा के लिये ५० आदमी के लिए भोजन का प्रबन्ध कर गये हैं

जो कि आज भी सुचारु रूप से चालू है और उसी जगह लाखों रुपये की सम्पत्ति खर्च कर आयुर्वेद विद्यालय खोल गये हैं जो अभी भी मौजूद है। आप निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन के प्रेसीडेन्ट थे। आप बम्बई, मद्रास, जयपुर इत्यादि के आयुर्वेद के परीक्षक थे। आप अपने कुटुम्ब-परिवार से भी सम्पन्न थे। आपको ६ पुत्र हैं तथा पौत्र-प्रपौत्रादि भी वर्तमान हैं जो कि उनके कार्यों को सुचारु रूप से चला रहे हैं। उनके स्थान पर उनके पौत्र उपेन्द्रचन्द्र चक्रवर्ती उन्हीं की तरह साहस, दया तथा शीलता से रोगीजनों का सेवा-कार्य कर रहे हैं। परमेश्वर दिनोंदिन इनको उत्साहित करते रहें। कविराजजी (हाराणचन्द्रजी) अन्तिम घड़ी तक भी स्वस्थता पूर्वक शाके १३४२, १५ ज्येष्ठ ताः २९ मई सन् १९३५ को स्वर्ग सिधारे। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे।

स्वागताध्यक्षों के विषय में

[नि० भा० आयुर्वेद महामंडल के वार्षिक अधिवेशनों पर विशिष्ट विद्वानों ने भी समय-समय पर स्वागत-कारिणी की अध्यक्षता स्वीकार कर जो उद्गार प्रकट किये हैं उनके कुछ उदाहरण नीचे प्रकाशित किये जाते हैं—एवं ऐसे अवसरों पर राजा महाराजाओं के जो भाषण हुए हैं उनमें से महाराजा सर भैरो सिंह जी बहादुर और लेफ्टिनेण्ट जेनरल हिज हाइनेस महाराजा सर गंगा सिंह साहिब जी० सी० एस० आई० जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई० के० सी० बी०, ए० डी० सी० एल० एल० डी० बीकानेर नरेश के भाषण दिये जाते हैं।]

❀ श्रीः ❀

अखिल-भारतवर्षीय षोडश-वैद्यसम्मेलन, जयपुर की स्वागतकारिणी समिति के सभापति

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ जी विद्यारत्न,

साहित्यभूषण एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, सी० आई० ई०
मेम्बर कौंसिल अफ् स्टेट, जयपुर का

भाषण

महानुभावो तथा महिलाओं !

आज का दिवस धन्य है जिसमें भारत का वैद्य समुदाय अन्यान्य सज्जनों सहित यहाँ एकत्रित हुआ है। हम जयपुरीय धन्य हैं जिनको आप महानुभावों का स्वागत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। सम्मेलन के इस अधिवेशन का स्थान सुनिश्चित होने से जयपुरवासियों के अन्तःकरण में इस समारोह का साक्षात्कार करने की जो लालसा लगी हुई है आज वह भगवान् की कृपा से पूर्ण हुई। भारतवर्ष के दूर दूर के प्रदेशों से पधार कर आप महानुभावों ने हम लोगों को वास्तव में बहुत कृतार्थ किया है। अतिथि-सत्कार भारतीय गृहस्थ का सुनिश्चित धर्म है, उस धर्म का पालन जयपुर का गृहस्थ वर्ग कहाँ तक कर सका है अथवा कर सकेगा, इसका अनुमान करने की चर्चा से हमारे हृदयों में बहुत हल-चल है। हृदयस्थ भाव की प्रगाढ़ता से हम विह्वल हैं, इसलिये हम आशा करते हैं कि यदि हम चारु रूह से भाव प्रकाशन न कर सकें तो उसका अर्थ यह न होना चाहिये कि भाव का अभाव है। जयपुरीय जनता अथवा स्वागत-समिति के आनन्द तथा उत्साह को यदि मैं यथावत् न कह सकूँ तो आप यह मेरा ही दोष समझिये।

जयपुर में वैद्य-सम्मेलन के प्रतिनिधियों का हम हृदय से स्वागत करते हैं। जिस प्रकार और विद्य-कला के कवि यहाँ के राजा और प्रजा ने प्रमुखता दिखाई है उसी प्रकार चिकित्सा शास्त्र के प्रति भी दिखाई है। आधुनिक डॉक्टरी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में राज्य से जो महान् व्यय किया जा रहा है उसके अतिरिक्त कितने ही वैद्य और हकीम भी राज्य के आश्रित हैं जिनमें बहुतों के तो बड़ी २ "जीविका" हैं, इनके नामोल्लेख और इनके आश्चर्य्यजनक चिकित्सा-कार्यों के विवरण से आपके अमूल्य समय को व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं पाई जाती। ये लोग अपने विद्याभ्यास और कौशल से अपना और राज्य का सुयश सर्वत्र विस्तृत कर रहे हैं। इनमें से कितनों ही के नाम और कार्य से आप भी, आशा की जाती है, अपरिचित नहीं हैं। जयपुर राज्य की कई तहसीलों के बजट में 'वैद्यों' की 'आसामी' बराबर चली आ रही है, जिससे यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है कि इस राज्य का प्रजा की चिकित्सा के सम्बन्ध में सदैव से असाधारण ध्यान रहा है। जिस प्रकार यहाँ

पर जगत्प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् राजा हुए हैं, वैसे ही अत्यन्त प्रसिद्ध, चिकित्सा-शास्त्र में प्रवीण राजा भी हो गये हैं। महाराजा प्रतापसिंह जी के 'अमृतसागर' से कौन अपरिचित है? यहाँ पर अमृतसागर के अतिरिक्त और भी कई वैद्यक ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमें वैद्यविनोद, प्रतापकल्पद्रुम, रामविनोद, सिद्धभैषज्यमणिमाला आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिस जयपुर में चिकित्सा शास्त्र को पूर्व समय में इतना सम्मान मिला है, वही जयपुर आज विनय भाव से आप सज्जनों का स्वागत करता है। हम जानते हैं कि आप जैसे महानुभाव अतिथियों के लिये किसी विशेष प्रकार की सुविधा करने में समर्थ नहीं हुए हैं, तथापि हम को दृढ़ आशा है कि हमारी श्रद्धा व भक्तिभाव की ओर दृष्टि रखते हुए हमारे प्राधूर्णिक महोदय हमारी सभी त्रुटियों को कृपा करके क्षमा करेंगे। आप लोगों की उदारता के भरोसे पर ही हम ने यह साहस कर लिया है और हम को निश्चय है कि हम जो कुछ भी कर सके हैं उसी को आप बहुत मानेंगे।

महानुभावों! शास्त्रीय विचार अथवा और कोई अनूठी बात आपके समक्ष उपस्थित करने का मेरा सामर्थ्य नहीं है। आयुर्वेद शास्त्र के सम्बन्ध में यदि कुछ कहने का उद्योग किया जाय तो वह अनधिकार चेष्टा मात्र है। यह विशेषज्ञों के करने का काम है और वे ही कर भी सकते हैं। मैं तो यहाँ पर केवल एक दो ऐसी साधारण बातें आपकी सेवा में निवेदन करना चाहता हूँ जिन पर मेरा कभी कभी विचार होता रहा है। उनमें कुछ भी सार यदि आप लोगों को प्रतीत होगा तो मैं अपने आप को कृत-कृत्य मानूँगा।

इसमें कोई सन्देह प्रतीत नहीं होता कि हमारे दुर्भाग्य से ही चिकित्सा शास्त्र की आवश्यकता आज दिन हमको कुछ अधिकाधिक होने लगी है। कुछ तो सामान्य परिस्थिति ही ऐसी है और कुछ वायुमण्डल भी ऐसा ही है जिसमें हम प्रायः सबही असहाय हैं। सामाजिक कुरीतियाँ कुछ ऐसी प्रचलित हो गई हैं, जिनसे जनता का स्वास्थ्य अच्छा रह ही नहीं सकता। सर्व-साधारण को आज-कल जीविकोपार्जन के लिये भी अभूतपूर्व मानसिक व्यथा सहनी पड़ती है। ग्राम-संस्था भी विचलित होती जा रही हैं और स्वतन्त्र व्यवसायों के स्थान में दुर्बोध जनता को सामान्य कोटि की सेवा तथा बड़े नगरों की स्वभाव-विरुद्ध श्रमजीविका भी अधिक सुहाने लग गई है। अनेक रोगों के आक्रमण के कारणों को दूर करना एक महान् कार्य है। जो स्वास्थ्य सम्बन्धी शास्त्र-संमत नियम हैं उनके पालन करने की शक्ति हमारे समाज में यदि फिर से आजाय तो चिकित्सा-शास्त्र का दूसरा उद्देश्य जो रोग-निवारण का है वह स्वतः ही सुकर हो सकता है। समष्टि रूप से भारतवर्ष के समाज का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। इसीलिये बारंबार अधिक अस्पताल खोले जाने के आग्रह की ध्वनि सुनने में आती है। अस्वास्थ्य होने पर उसे मिटाने का उपाय करना उचित है। परन्तु अस्वास्थ्य के मूलकारण को नष्ट करने का उद्योग करने की विशेष आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए जिससे समाज इतना रोगग्रस्त हो सके ही नहीं। जिन कारणों से अस्वास्थ्य होता है उनके मौजूद रहते हुये क्या औषधि करे और क्या ऑपरेशन करे?

बन्धुओं! वर्त्तमान युग में युक्तियों और प्रमाणों से हमारी प्राचीन विद्याओं की विशेषता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे देशों के विद्वान् स्वयं उद्योग करते जा रहे हैं और मानते जा रहे हैं कि इस प्राचीन सभ्यता की भूमि में सभी विद्याएँ अत्यन्त उन्नत दशा में पहुँच चुकी थीं। परन्तु हम को यह स्पष्टतया जान लेना चाहिये कि विद्या में किसी भी

देश का या जाति का ठेका नहीं है। जिस देश या जिस जाति के मनुष्य उद्योग करें वे ही विद्या प्राप्त कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि भारतवर्ष में किसी समय चिकित्सा शास्त्र ने बड़ी उन्नति कर ली थी और ऐसे-ऐसे सिद्धान्त स्थिर हो गये थे जो दूसरे देशों में अब स्थिर हो रहे हैं और बड़े 'आविष्कार' माने जाते हैं। आयुर्वेद की भारतवर्ष में प्राचीन समय में परिपूर्ण उन्नति होने का अन्यान्य प्रमाणों के अतिरिक्त एक यह भी बड़ा प्रमाण है कि यह नैसर्गिक नियम है कि प्रथम किसी भी विद्या-कला की समष्टिरूप से जब पराकाष्ठा की उन्नति हो चुकती है तब ही उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की विशेषोन्नति का विचार उत्पन्न होता है और भारतीय चिकित्सा शास्त्र में भी इसी नियम का परिपालन हुआ है। समष्टि रूप से पूर्णोन्नति होने के अनन्तर आयुर्वेद के विशेषाङ्गों की उन्नति भी इस चरम सीमा तक पहुँची है कि साधारण वैद्यों के अतिरिक्त विशेष वैद्यों की शाखा प्रशाखा भी इतनी और यहाँ तक फैली है कि युगान्तरों के अनन्तर भी यह विशेष वैद्य इतनी बहुतायत से प्रायः समस्त देश में ही पाये जाते हैं कि उनकी पृथक्-पृथक् जातियाँ तक बन गई हैं। यथा जर्राह, वाबर, सींगीवाले, फ़सद खोलने वाले, दाई आदि आदि। चिकित्सा-शास्त्र का वास्तविक उद्देश्य एक है, चाहे वह "आयुर्वेद" हो, चाहे "हिकमत" हो, चाहे "एलोपेथी" हो अथवा और कोई "पेथी" हो। सभी में शरीर की बनावट का ज्ञान आवश्यक है। कौन से अवयव का किस अवयव से और किस तत्व से क्या सम्बन्ध है और शरीर की मशीनरी किस प्रकार चलती है, यह जाने बिना चिकित्सा करने की चर्चा तक भी नहीं की जा सकती। दूसरी बात है औषधियों के प्रभाव को पहिचानना तथा उनके संमिश्रण से जो औषध तय्यार की जायँ उनके फल का जानना। यह भी सभी प्रकार की चिकित्सा-प्रणाली में होना आवश्यक है। यों तो प्रक्रिया का भेद होता ही है। सम्भव है एक-आध मौलिक सिद्धान्त के विषय में भी मतभेद हो। परन्तु ऐसे मतभेद से एकोद्देशता में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। इसलिये एक प्रणाली से दूसरी को विशिष्ट सिद्ध करने के उद्देश्य से जो विवाद उपस्थित किया जाय उससे कोई लाभ दृष्टि में नहीं आता।

केवल एक बात ध्यान देने योग्य है प्रत्येक देश के जल-वायु में कुछ न कुछ विशेषता है विभिन्न जल-वायु के प्रभाव से मनुष्यों के स्वभाव भी विभिन्न होते हैं। सब देशों में एकसी जड़ी बूटियाँ वा औषधियाँ उत्पन्न नहीं होतीं। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि जो मनुष्य जिस भूमि में उत्पन्न हुआ है और जिस जल-वायु में परिवर्द्धित हुआ है उसी भूमि तथा जल-वायु की औषधि स्वभावतः उसके लिये अधिक अनुकूल होती है। इसी नियम के अनुसार हमारे लिये हमारे देश की चिकित्सा-प्रणाली अधिक लाभदायक होनी चाहिये। एवं च उस प्रणाली की उन्नति होने में हमारा लाभ भी विशेष ही है, इसमें कोई संशय नहीं हो सकता।

भारतवर्ष सदा से सस्ती और सादगी का देश है। आडम्बर इस देश के स्वभाव के विरुद्ध है। भारतीय घर में, स्वास्थ्य में गड़बड़ होने पर पहिले तो प्रायः घरही में और घरही के बड़े-बूढ़े कौड़ियों की औषध से ही काम चला लेते हैं, दैवात् यदि वैद्य की शरण भी लेनी पड़ी तो भी पैसों में ही वहाँ से निवृत्ति हो जाती है। यह आयुर्वैदिक चिकित्सा-प्रणाली का एक बहुत बड़ा लाभ है। वैदेशिक पद्धति के अनुकरण के जो चिह्न यत्र-तत्र देख पड़ने लगे हैं वे इस प्रणाली के महत्व को हरने वाले और इसकी विशिष्टता को खोने वाले हैं। चिकित्सक संसार का एक परोपकारी जीव है, उसके मन में सामान्य कोटि के और और उद्देश प्रबल हो जायँ तो भारतीय चिकित्सा-कार्य भी व्यापार का अङ्ग हो जाय, सो कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

आज कल 'सर्जरी' की बड़ी महिमा है, हमारे यहाँ भी 'शस्त्रप्रयोग' की कला बड़ी उन्नत दशा में थी। यह सुश्रुत संहिता से पूर्णतया स्पष्ट है, इस देश के अनेक ग्रन्थरत्न लुप्त हो गये, यह किसी से अविदित नहीं है। अनुमान है कि हमारे आयुर्वेद-शास्त्र के भी कई ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। तथापि प्रमाण के लिए सुश्रुत संहिता ही पर्याप्त है। यह जान पड़ता है कि कारणवश चीर फाड़ के काम की अवहेलना हो गई। यहाँ तक कि जब तन्त्र ग्रन्थों का प्रचार हुआ तो 'शस्त्र-प्रयोग' को 'आसुरी चिकित्सा' कहा जाने लगा। संभव है औषधियों की चिकित्सा की पूर्णता के कारण शस्त्र-चिकित्सा का स्थान इतना नीचा हुआ हो। अहिंसा के सिद्धान्त का प्रचार तथा दुरुपयोग भी इसमें कारण हो सकता है, शस्त्र-प्रयोग के विरुद्ध कुछ भी कहे बिना यह तो मानना चाहिये कि जब चीर-फाड़ के बिना चिकित्सा हो सके तो चीर-फाड़ इष्ट नहीं हो सकती। यह आश्चर्य की बात है कि आज-कल भी जब सर्जरी के आचार्य यह कह चुकते हैं कि अमुक रोग का इलाज बिना ऑपरेशन नहीं हो सकता है तब हमारे साधारण 'जर्राह' 'कागली' लगा कर ही रोग का अन्त कर देते हैं। यह भी हमारे यहाँ की प्रणाली का गुण है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऑपरेशन हेय है।

इस प्रकार की सादी किन्तु पक्की चिकित्सा-प्रणाणी की पूर्णरूप से रक्षा होना अत्यावश्यक है। प्राचीन गौरव के अभिमान में चूर रहना हानिकारक है। प्राचीन गौरव में हमारा कोई भाग नहीं है। कोव्यधीश पिता का उत्तराधिकारी होने से ही पुत्र की योग्यता सिद्ध नहीं हो सकती है। द्रव्य की रक्षा कर सकने में भी कुछ महत्व नहीं। किन्तु पिता के उपार्जित धन में वृद्धि कर सके तब ही पुत्र की कुछ विशेषता स्वीकृत हो सकती है। जो महान् कार्य सुश्रुत, चरक, वाग्भट्ट इत्यादि ने कर लिया, उससे हम वास्तव में योग्य नहीं कहे जा सकते, प्रत्युत यदि उनके छोड़े हुए कोष की रक्षा भी नहीं कर सकें तो अयोग्य सिद्ध होंगे। बस यही एक महती समस्या है जो आप महानुभाव इस सम्मेलन में हल करेंगे। और यदि इस बड़े प्रश्न को हल करने का कुछ भी उद्योग नहीं हुआ तो यही कहना पड़ेगा कि यह सब कुछ व्यर्थ प्रयास है। अन्य देशों के विद्वान् आज कल निरन्तर उद्योग कर रहे हैं और एक-से-एक बढ़कर चमत्कार दिखा रहे हैं। एक दिन समाचार-पत्र में पढ़ते हैं कि अमुक स्थान में एक बालक का, जो सर्वथा अन्धा था, ऐसा उपचार किया गया जिससे उसको स्पष्ट देख पड़ने लगा। दूसरे दिन पढ़ते हैं कि अमुक स्थान में ऑपरेशन की ऐसी प्रक्रिया हुई कि जिसमें हृदय को अपने स्थान से बाहर निकाल लिया गया और फिर ज्यों-का-त्यों रख दिया गया। कहीं किसी का दूषित गुर्दा निकाल कर दूसरा गुर्दा लगा दिये जाने की बात सुनी जाती है। इन चमत्कारों के उत्तर में यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि हमारे यहाँ इससे बढ़ कर चमत्कार होते थे, कटे हुए शिर को जोड़ देते थे, वृद्ध को युवा कर देते थे इत्यादि। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी जो कुछ भी विशेषता वास्तव में थी वह आज-कल भी खोज कर निकाली जाय और उसका क्रियात्मक-प्रदर्शन किया जाय जिससे संसार विस्मित होकर देखता ही रह जाय।

मैंने ऊपर कहा है कि विद्या में किसी का ठेका नहीं। तथा यह भी निर्विवाद है कि ज्ञानार्णव की सीमा नहीं। ज्ञान का अटूट भंडार भरा हुआ है, उसमें जो जितना परिश्रम करता है उसको उतना अवश्य मिलता है। यह हम जानते हैं कि शास्त्र, विद्याकला की उन्नति विशेष परिस्थिति में हुआ करती है। विद्योपार्जन और खोज के लिये ऐसे धीर पुरुष

चाहिये जिनके निश्चित लक्ष्य के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य न हो और साथ ही में जीविकोपार्जन की तनिक भी चिन्ता न हो। ऐसे तत्त्वान्वेषी महात्माओं का समाज पर विशेष ऋण है और उनके लिये सब प्रकार की सुविधा करने का उत्तरदायित्व समाज का मुख्य धर्म है। क्योंकि वे जो कुछ भी चमत्कारिक आविष्कार कर सकेंगे उससे समाज का ही लाभ और समाज का ही सुयश है। विलक्षण पुरुषों को राज्य से जीविका दिये जाने का भी वास्तव में यही तात्पर्य है कि जब वे विज्ञान-समुद्र में डुबकियाँ लगाते हों तब शाक अथवा लवण का प्रश्न उनको न सतावे। जिस मनुष्य को पद-पद पर अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता रहे वह सामान्यतया शास्त्रीय खोज करने में सफल नहीं हो सकता।

सभी विद्याओं के विषय में और इस लिये रोग-परीक्षा व चिकित्सा के विषय में भी भारतवर्ष को खुली तबियत रखना चाहिये। हम सारे संसार के विद्यागुरु हैं यह सोच लेने से अथवा कह देने से हमारा काम नहीं चल सकता। इसी नशे की धुन में तो हमारा विद्यागुरु का आसन यदि अब तक किसी प्रकार रहा भी है तो अब छिन जाने योग्य होगा। जिस आत्माभिमान के कारण से व्यक्ति तथा जाति भी जीवित रहती है उतना सा आत्माभिमान तो अवश्य होना चाहिये। परन्तु जिस वर्ग से सर्वनाश होना सम्भव है वह सर्वथा परित्याज्य है। हमारा परम कर्तव्य है कि हम अपने घर का लेखा करें। हमारे जो विद्याकोष उपस्थित हैं उनकी संभाल करें और अपना "बैलेन्स शीट" संसार को अन्य जातियों के समक्ष रक्खें। तब दूसरों को यह पता चलेगा और विश्वास होगा कि हमारे पास अब भी ऐसे पदार्थ हैं जो दूसरों के पास नहीं हैं और उनको दिये जा सकते हैं। और हम को भी यह मालूम हो जायगा कि हमारे पास क्या नहीं है जो दूसरों से लिया जा सकता है अथवा जो हम अब पैदा कर सकते हैं। भारतवर्ष के प्रतिनिधि स्वरूप कितने ही दिग्गज पण्डितों ने विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय आविष्कार करके हमारा शिर आजकल भी समुन्नत किया है। क्या कठिन है इसी प्रकार से आयुर्वेद शास्त्र में अखण्ड उद्योग हो तो भारतवर्ष कमाल करके दिखा दे। इसके लिये यह जानना भी आवश्यक है कि अन्य देशों में क्या और कैसे हो रहा है। दूसरों के संसर्ग की भी आवश्यकता है, विच्छेद की नहीं, क्योंकि शास्त्रोन्नति का उद्देश्य सर्वत्र और सबका समान ही है।

आजकल आयुर्वेद शास्त्र की दशा कुछ अच्छी नहीं है, शास्त्र के परिशीलन की ही अच्छी व्यवस्था नहीं है। इस क्रिया-प्रधान शास्त्र में परीक्षण की भी अत्यन्त आवश्यकता है, इसके लिये आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये सब प्रकार की सुविधा नहीं है, आयुर्वेद के कम पण्डितों का अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार है, जिससे वे औरों के अनुभव से यथोचित लाभ नहीं उठा सकते हैं। आयुर्वेद की सर्वजन प्रियता भी सन्दिग्ध है, यह प्रायः हमारी सामान्य परिस्थिति का दोष है। यथा नवीन युग में नवीन का ही विशेष समादर होता है।

परन्तु हमारे सौभाग्य की बात है कि अब शनैः २ परिवर्तन हो रहा है, गवर्नमेन्ट तथा देशी राजाओं का ध्यान आयुर्वेद की ओर आकर्षित होने लगा है, प्रजा ने भी विशेष उत्साह दिखाना प्रारंभ कर दिया है। यत्र-तत्र आयुर्वेद के कॉलेज खुलने लगे हैं, कतिपय यूनिवर्सिटियों में भी आयुर्वेद को स्थान मिला है। इससे आशा है कि अब यह शास्त्र आजकल की अवनत दशा में अधिक दिन नहीं रहेगा।

बन्धुओं! भारतवर्ष में जहाँ-तहाँ आवश्यकता है। आयुर्वेद शास्त्र की पाठशालाएँ होनी

चाहिये। उन पाठशालाओं से सम्बन्ध रखनेवाले अस्पताल भी अवश्य होने चाहियें। क्योंकि आयुर्वेद पुस्तक-प्रधान शास्त्र नहीं है किन्तु क्रिया-प्रधान है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि पुस्तक का ज्ञान सर्वथा व्यर्थ है, तात्पर्य केवल इतना ही है कि पुस्तकों में दूसरों के अनुभव लिखे हुये हैं, उन अनुभवों का साक्षात्कार किये जाने की आवश्यकता के विषय में जितना कहा जाय थोड़ा है। औषधालय में सब प्रकार के बीमारों को देखने का अवसर विद्यार्थियों को मिल जाता है जिससे उनका क्रियात्मक अनुभव बढ़ता है। औषधालयों में परीक्षणालय होने चाहियें जिनमें औषध बनाने की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव हो सके। क्योंकि चतुर से चतुर मनुष्य भी प्रयोगों में केवल कल्पना से सिद्धहस्त नहीं हो सकता।

हमारे वैद्यक ग्रन्थों का अध्ययन विशेष प्रयत्न के साथ होना चाहिए। ग्रन्थों में बहुत सी ऐसी औषधियों का वर्णन है जिनका परिचय सम्भवतः आजकल वैद्यों को न हो। उन अपरिचित औषधियों को पहिचानना और उनके गुणों को जानना बड़ा कार्य है। बहुत से प्रयोग भी ऐसे अवश्य होंगे जिनको आजकल के समय में किया जाना बन्द हो गया है। उन प्रयोगों का पुनरुद्धार होना चाहिये। इस कार्य में प्रदर्शिनी से बड़ी सहायता मिलती है यह निर्विवाद है। इस सिद्धान्त के अनुसार यहाँ पर भी प्रदर्शिनी का प्रबन्ध किया है। स्थान-स्थान से जड़ी बूटियाँ और औषधियाँ एकत्रित करके प्रदर्शिनी को यथाशक्ति सर्वाङ्ग पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया है। प्रदर्शिनी के उद्देश्य का विस्तार होने की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि पदार्थों के वास्तविक प्रत्यक्ष ज्ञान और उनके संमिश्रणादि प्रयोगों का आनुभाविक ज्ञान आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्र की सफलता का एक प्रधान अङ्ग है।

नई जड़ी बूटियों की खोज भी आयुर्वेद की वृद्धि के लिये की जानी चाहिये। यह कठिन कार्य है। इसके लिये विद्यार्थियों और आचार्य्यों के सङ्ग जङ्गल और पहाड़ों में भ्रमण करे। ग्रामवासियों के पास जो अलिखित ज्ञान है वह प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ पर वैद्यों की पहुँच नहीं है, अथवा जिस स्थान के मनुष्य वैद्यों के पास नहीं पहुँच सकते, वहाँ पर मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा कैसे होती है, वे क्या उपाय करते हैं, कैसी औषधियों का प्रयोग करते हैं, उनका कब-कब क्या-क्या फल होता रहा है, यह सब कुछ मेरी सम्मति में संग्रह करने योग्य है। बहुत संभव है कई नवीन बातों का पता चले, जो पुस्तकों में नहीं है।

आयुर्वेद सर्वसाधारण के लिये पहिले से ही सुलभ है, परन्तु वास्तव में पूर्ण लोकोपकारक करने के लिये इसको और भी सुलभ बनाना चाहिये। हमारे देश में जनता की आर्थिक स्थिति, सब जानते और मानते हैं कि, संतोषजनक नहीं है उनके लिये यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अधिक व्यय का पदार्थ बहुत दुर्लभ होगा। जहाँ पर मुफ्त में अथवा सस्ती औषध मिल सके ऐसे स्थान बहु होने चाहियें। इसके लिये धनिकों की विशेष सहायता की आवश्यकता है। सन्तोष का स्थान है कि हमारे कई धनकुवेरों ने अपने निज के व्यय से ऐसे औषधालय खोल रखे हैं। आशा है इस दिशा में और भी उद्योग होगा। एतद्देशीय चिकित्साप्रणाली का सर्वसाधारण में प्रचार होने से बड़ा लाभ होगा।

महानुभावों! आजकल विज्ञान का युग है और विज्ञान स्थिर नहीं है, इसकी वृद्धि उत्तरोत्तर सर्वत्र हो रही है। इसलिये आयुर्वेद के आचार्यों को चाहिये कि वे चिकित्सा-संसार के साथ पूर्ण संसर्ग रक्खें। कहाँ क्या-क्या विलक्षण आविष्कार हो रहे हैं, इससे परिचय प्राप्त करें। अंग्रेजी भाषा द्वारा डाक्टरी विद्या के ग्रन्थों का परिशीलन करें। "सर्जरी" के ग्रन्थों से

देखकर अपने यहाँ की शस्त्र-क्रिया को आवश्यकतानुसार संशोधित और परिवर्धित करें। मेरे विचार से पार्थक्यदोष शास्त्रोन्नति के मार्ग में बड़ा बाधक होता है। अपने पास अच्छा हो तो दूसरों को देना चाहिये, दूसरों के पास अच्छा हो तो लेना चाहिये, जैसे मैंने कहा यह सोचना कि हमारी विद्या उत्कृष्ट है, दूसरों की नहीं, सर्वथा वृथा और अनिष्टकारक है। विद्या सब एक है और परस्पर के हार्दिक संयोग से उसकी सर्वाङ्ग वृद्धि होनी चाहिये।

उदारचरित सज्जनों ! मुझको और कुछ विशेष अब नहीं कहना है। विद्योन्नति के लिये निःस्वार्थ भाव और त्याग की आवश्यकता है। केवल धन के लोभ से विद्योपार्जन के लिये जो उद्योग होगा वह पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। धनोपार्जन भी अनुषङ्गिक फल हो सकता है। परंतु विद्या तो विद्या के लिये ही होनी चाहिये, इस भाव को अङ्गीकार करनेवाले विद्यार्थी होंगे तब आयुर्वेद की उन्नति में कोई सन्देह नहीं रह जायगा। ऐसी परिस्थिति बनाई जानी चाहिये जिसमें विद्यार्थियों में विद्यालाभ का नशा पैदा हो जाय। दूसरे देशों में भी यही होता है, समाज ऐसे निःस्वार्थ महात्माओं की सहायता करता है। भारतवासियों का तो यह सहज गुण है, उनको यह भाव दूसरों से सीखने की अपेक्षा नहीं है।

इस सम्मेलन से विचारशील जनता को बड़ी आशायें हैं। उन आशाओं की पूर्ति होनी चाहिए। बड़े परिश्रम से और व्यय से ऐसे अवसर सुलभ होते हैं। इनमें सदा कुछ न कुछ मार्के की बात होती रहनी चाहिए। पारस्परिक समागम और वार्तालाप से जीवनसञ्चार अवश्य होता है और कुछ न कुछ लाभ तो होता ही है परन्तु हमारे लिये ये आनुषाङ्गक लाभ ही पर्याप्त नहीं होना चाहिये। शास्त्रोन्नति के लिये यह सम्मेलन होता है, यह कैसे सफल हो इसका उपाय सोचना आप जैसे प्रकाण्ड पण्डितों का कार्य है। हम साधारण जन भी आप महानुभावों की सेवा के लिये तत्पर हैं। कोई ऐसा मार्ग निकाला जाय जिससे हमारे इस प्राचीन शास्त्र की चिरस्थायिनी सेवा हो, इस शास्त्र का विशेष प्रचार हो और उसकी वृद्धि हो। जिन विद्वानों ने शास्त्र का मथन किया है और जिनका अनुभव है उनके लिये ऐसे उपाय सोच निकालना कोई कठिन कार्य नहीं है।

अब, अन्त में, मैं आप लोगों को स्वागतसमिति की ओर से तथा अपनी ओर से अनेक हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। हमसे आप महानुभावों की कुछ सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध नहीं बना, इसके लिये आप हमको क्षमा कीजियेगा। भगवान् आपका उद्योग सफल करे, और इसी प्रकार प्रति वर्ष सम्मेलन होकर जनता को परामर्श करने का सुअवसर मिलता रहे, यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है।

॥ शुभम् ॥

॥ श्री धन्वन्तरिर्विजयते ॥

निखिल भारतीय २२ वें आयुर्वेदिक सम्मेलन ग्वालियर, स्वागत-समिति के अध्यक्ष

डॉक्टर यशवंत गोविन्द आपटे,

बी० ए०, एल० एम० एस० का

भाषण

आयुर्वेद प्रेमी उपस्थित सज्जनवृन्द—

(१) ग्वालियर राज्य के होम मेंबर, श्रीमंत खासे साहब पवार ने अपने प्रस्ताविक भाषा में आपका हार्दिक स्वागत करके इस २२ वें निखिल भारतीय आयुर्वेदिक सम्मेलन के कार्य का प्रारंभ किया है। इस हार्दिक स्वागत से आपको अवश्य संतोष हुआ होगा। स्वागत समिति को होममेंबर साहेब की आज्ञा थी कि संमेलन का निमंत्रण स्वीकार कर आप दूर-दूर से यहाँ पधारे हैं इसलिये आपका ग्वालियर का अल्प निवास सुखकारी होवे ऐसा प्रबंध किया जावे। इस आज्ञानुसार स्वागत समिती ने जो-जो प्रयत्न करने का था वह किया है। तथापि बहुत संभव है कि कई त्रुटियाँ रही होंगी, और आपको कष्ट हुआ होगा। स्वागत-समिती की ओर से मैं आपको इतना ही विज्ञप्ति करता हूँ कि 'क्षम्यताम्'।

अब आप जिस कार्य के लिये उपस्थित हुवे हैं उसको प्रारंभ करेंगे, ऐसे समय उक्त कार्य संबंधी कुछ अल्प मति के विचार आपके सम्मुख रखने की धृष्टता करता हूँ।

(२) आयुर्वेद का प्राचीन इतिहास आपको ज्ञात है। वह समय था कि आयुर्वेद की अष्टांग-चिकित्सा इतर देशों के तुलना में बहुत आगे बढ़ी हुई थी। शवच्छेदन से शरीर-ज्ञान भली भाँति हो जाता था। इस कारण शस्त्र-क्रिया उत्तम प्रकार हो सकती थी। आयुर्वेद का पहिला ही विभाग शल्य-तंत्र है। इस देश में सर्व प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। अनुभव से काय-चिकित्सा में विविध रोगों पर उनका प्रयोग किया जाता था, और ऐसे अनुभव पर विद्वान लोगों के परिषदों में चर्चा होकर सर्व मान्य अनुभव विविध ग्रंथों में एकत्रित किये जाते थे। यह ग्रंथ भाषांतर होकर पश्चिम के देशों में—अरबस्थान में व ग्रीस में—गये। वहाँ उनके अंग-प्रत्यंगों का देश-काल-स्थित्यनुसार परिवर्तन हुआ। कई विभागों का विशेष रूप से विकास हुआ। यह सब आयुर्वेद का ही विस्तार समझना चाहिये। आयुर्वेद के ही तत्वों का व शिक्षा का वह परिणत स्वरूप है। इस कारण जब आप आयुर्वेद के पुनरुन्नति का प्रयत्न करते हैं, तब ऐसे परदेशस्थ आयुर्वेद के उन्नत स्वरूप के ज्ञान से आपको वंचित नहीं रहना चाहिये। 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्'—'गुणिषु न च लिंगं नच वयः' इत्यादि वाक्यों से ज्ञान ग्रहण करने के लिये कोई भी देश, काल, जाति वर्ज्य नहीं है। विशेषतः जब पाश्चात्य वैद्यक भारतीय आयुर्वेद से वृद्धिंगत हुवा है, तब यहाँ के देश-काल

स्थित्यनुसार उसका जो भाग ग्रहणीय हो उसका प्रतिग्रह करने में कुछ भी संदेह होने की आवश्यकता नहीं है।

(३) कालांतर में आयुर्वेद का शस्त्रक्रिया का भाग आर्यावर्त में ही लुप्त हुआ। शस्त्रक्रिया में होने वाला रक्तमांसादि का अनिवार्य स्पर्श अहिंसा मत-वालों को असह्य हुवा। शरीर के विज्ञान के लिये शवच्छेदन आवश्यक था उससे लोगों का चित्त हटा। इस प्रकार शारीर-विज्ञान व शस्त्रक्रिया दोनों से परावृत्ति हुई। औषधि का उपयोग व चिकित्सा की इतर क्रिया इन पर ही शास्त्रज्ञों का विशेष विश्वास होने लगा। शरीर के जिस विकृत क्रिया से रोग की उत्पत्ति हुई हो उसी विकृत क्रिया को पलट कर एक एक अंश उलट कराने से रोग स्थिति हटनी चाहिये यह तत्वतः भी सत्य है।

(४) शस्त्रक्रिया सचमुच रोग की चिकित्सा ही नहीं है। रोग के परिणाम उससे हट सकते हैं, रोग के कारण नहीं हटाये जाते। मूत्राशय में मूत्राश्मरी होने से जो पीडा होती है वह अश्मरी को निकालने से दूर होती है, परंतु शरीर के जिस विकृति से अश्मरी उत्पन्न हुई हो वह विकृति अश्मरी को शस्त्रक्रिया से निकाल देने से जाती नहीं है।

रोग का परिणाम भी न हटाते हुवे रोगी का व्यंग, शस्त्रक्रिया से अंश में दूर हो सकता है, जैसा कि Corneal opacity में Iridectomy करने से; या कठिन स्थिति से छुटकारा हो सकता है जैसा कि Pelvic deformity में Coeserian Section से गर्भविमोचन। इस प्रकार जहाँ चिकित्सा कुंठित होती है वहाँ शस्त्रक्रिया की सहायता बहुमूल्य होती है। 'Surgery comes in when Medicine despairs.' चिकित्सा में जब ऐसी स्थिति प्राप्त होती है कि शास्त्रक्रिया से ही रोगी के प्राण अथवा अतीव कष्ट बच सकते हैं, तब शस्त्रक्रिया आवश्यक होती है। परंतु यह सब मान लेने पर भी शस्त्रक्रिया का क्षेत्र मर्यादित है। पाश्चात्य देशों में अवश्य से अधिक शस्त्रक्रिया का उपयोग होता है ऐसा उधर के ही पंडितों का अभिप्राय हो रहा है।

यह स्थिति इस देश में नहीं होगी, क्योंकि शस्त्रक्रिया के बहुत से कार्य शस्त्र बिना इतर क्रिया से हो सकते हैं ऐसा आयुर्वेद का अनुभव है।

(५) जिस प्रकार एक व्यक्ति की रोगचिकित्सा में निःशस्त्र उपायों का अवलंब ही आयुर्वेद को विशेष संमत है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन आयुर्वेद प्रवीण ऋषि तुल्य महात्मा की शिक्षानुसार देश के विराट पुरुष के राजकीय रोग-चिकित्सा में भी निःशस्त्रता का ही अवलंबन करने के बाबत आर्यावर्त का दृढ निश्चय हुआ है यह आप आजकल देख रहे हैं, इस नवीन चिकित्सा-पद्धति को यश प्राप्त होने पर सर्व संसार के राजकीय आंदोलन में परिवर्तन होगा। इस कारण सर्व जगत का ध्यान इस देश की ओर आकर्षित हुआ है।

(६) शस्त्रक्रिया के अलावा कई उत्तम गुणकारी औषधियों का संग्रह पाश्चात्य वैद्यक में है। आर्यावर्त संपूर्ण जगत का एक छोटा सा नमूना है, संपूर्ण जगत के औषधि के प्रतिनिधि प्रायः यहाँ मिलते हैं। परंतु पाश्चात्यों ने खनिज पदार्थ, वनस्पति, व प्राणी मात्र एवम् संपूर्ण सृष्ट पदार्थों से अपनी रसायन विद्या के ज्ञान द्वारा जो नये नये पदार्थ निर्माण किये हैं उनका भी परिचय आयुर्वेद को कर लेना चाहिये। यह प्रथा पहले से ही चली आ रही है। देश के बाहर के पदार्थों का गुण-वर्णन आयुर्वेद में मिलता है। आजकल की परिस्थिति में पाश्चात्य वैद्यक जिन नये नये पदार्थों का उपयोग करता है, उसके गुणागुण एवम् किन रोगी अवस्था

में उनका विशेष प्रभाव ज्ञात हो सकता है, यह जान कर उनको अपने निघंटु में समाविष्ट करके उनसे लाभ उठाना चाहिये।

'तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते' यह आयुर्वेद का महामंत्र है। ब्रिटिश फार्माकोपिया ने—Indian Addendum—हिंदुस्थानी औषधि का परिशिष्ट जोड़ने में लज्जा नहीं मानी। उसी के अनुसार अपने बृहन्निघंटु को पाश्चात्य औषधि का परिशिष्ट जोड़ने में हमको कोई संदेह नहीं होना चाहिये। पाश्चात्यों की बहुमूल्य औषधि अपने देश में बनाकर उनका उपयोग किया जाय तो उससे एक से अधिक लाभ होंगे। हिंदुस्थान के कई कारखानदारों ने ऐसी औषधि बनाने कार्य का प्रारंभ किया है। इस कारण वह अपने देश की ही औषधि समझनी चाहिये।

(७) रासायन रीत्या नव निर्मित शुद्ध औषधि का उपयोग करने में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि यह औषधि प्रायः तीव्र गुणों की होती हैं, विष समान है। उनके उपयोग में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। बालक के हाथ में शस्त्र, एवम् ऐसी औषधि अपूर्णविद्य चिकित्सक के हाथ में होगी। ऐसे ही सुरक्षिता के विचार से आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रायः सौम्य काष्टौषधि का ही विशेष प्रमाण में उपयोग होता है। पाश्चात्य वैद्यक में थोड़ा ही समय हुआ है कि निरिंद्रिय पदार्थों की अपेक्षा सेंद्रिय पदार्थों के रसायन मिश्रण से ही औषधि का उपयोग विशेष हितकर समझा जाने लगा है, जैसा आयुर्वेद में पहिले ही से प्रचार में है। परंतु तीव्र रोगों में तीव्र गुणों के औषधि की भी आवश्यकता होती है। आयुर्वेद निघंटु की यह न्यूनता इन नई औषधियों से पूरी हो जावेगी।

(८) परदेशी औषधियों को अपने निघंटु में समाविष्ट करने के पूर्व अपने निघंटु का संशोधन कर लेना भी आवश्यक है। वह इस कारण कि जो औषधि विशेष गुणकारी हों उन्हीं का उपयोग होता रहे। मध्यम वा कनिष्ट गुणों की औषधि कम की जावे। वैसे तो 'नास्ति मूलं अनौषधम्'—हर वस्तु का औषधि में उपयोग हो सकता है। परंतु मानव-बुद्धि मर्यादित होने से सर्व औषधि का विशेष अभ्यास व उनका यथोचित उपयोग हो नहीं सकता। इस कारण जो विशेष गुणकारी हों उन्हीं को चुन चुन के थोड़ी परंतु अत्यंत व निश्चित प्रभावशाली औषधि उपयोग में रहना अधिकांश में सुभीते का होगा।

वैद्यक ग्रंथों में बहुत बड़ी संख्या में औषधि का वर्णन है। उसकी आवश्यकता इस कारण थी कि विशेष प्रभावशाली औषधि सर्व स्थान पर प्राप्त होना असंभव था, उनके अप्राप्त स्थिति में उनके प्रतिनिधि ज्ञात होना आवश्यक था। अब वह कठिनता नहीं है। व्यवहार के मार्ग सुकर हो गये हैं, उत्तर देश का औषधि द्रव्य दक्षिण देश में सुलभता से मिल सकता है। इस कारण ऐसे हीनबल प्रतिनिधि औषधि का वर्ग निखिल भारतीय निघंटु में रखने की आवश्यकता नहीं। आवश्यक हो तो प्रांतीय निघंटु में वह रहे। 'यस्य देशस्य यज्जंतु तज्जं तस्यौषधं हितम्' यह सत्य है परंतु व्यवहार के लिये अपने देश की मर्यादा अब 'गोदायाः दक्षिणे तीरे' अथवा 'नर्मदायाः उत्तरे तीरे' ऐसी न रहकर आसेतुहिमाचल हो गई है, जैसे कि इस संमेलन से ही निदर्शित होता है। इतना ही नहीं, परंतु नवखंड पृथ्वी को वैद्यक शास्त्रदृष्ट्या एक देश ही समझने का प्रसंग आ रहा है।

(९) जैसा निघंटु का, वैसा ही इतर ग्रंथों का भी संशोधन आवश्यक है। कई ग्रंथ कालवशात् लुप्त हो गये हैं, अथवा उनके अंश ऐसे विकृत रूप में उपस्थित हैं कि वे आज

दुर्बोध से हैं। 'शरीरे सुश्रुतो श्रेष्ठः' इस उक्ति की जिस ग्रंथ की श्रेष्ठता, उसी को 'शारीरे सुश्रुतो नष्टः' यह लांछन लगने का प्रसंग प्राप्त हुआ है। यदि चेत् पूर्ण ग्रंथ अप्राप्य हो गया हो तो वह पाश्चात्य वैद्यक की सहायता से पुनः नवरूप में लिखना ही योग्य होगा। ऐसा एक अपूर्व प्रयत्न अपने मान्यवर डॉ॰ गणनाथ सरस्वती महोदय ने किया है, जिसकी प्रशंसा समस्त जगत् में हुई है। उनके अन्य दूसरे ग्रंथ इसी प्रकार मुद्रित हो रहे हैं। ऐसे ग्रंथ के पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में कुछ अंश में मतभेद होनां संभव है। परंतु सरल बुद्धि के शंका-प्रत्युत्तर रीति से समीकरण हो सकता है।

(१०) बह्वंश लुप्त ग्रन्थों की पुनर्रचना आवश्यक है। उसी प्रकार, परन्तु भिन्न कारण से संपूर्ण प्राप्य ग्रन्थों का भी विस्तरण आवश्यक है। पुराने ग्रन्थ हस्त लिखित होने से कंठगत करने के लिए सूत्ररूप में रचित हैं, इस कारण कई स्थानों में वह दुर्बोध हैं, ऐसे स्थानों के अर्थ के संबध में चर्चा होकर जो भाव सर्वमान्य हो उसको सूत्र के विस्तरण रूप में लिखना आवश्यक है। ऐसे दुर्बोध स्थानों के कारण पुराने ग्रंथ के कई तत्व चिंत्य समझे जाते हैं।

(११) संस्कृत भाषा में ऐसी नई ग्रन्थ-रचना करने के लिये विशेष भाषा-प्रभुत्व आवश्यक है। परंतु आयुर्वेदिक ग्रन्थों की विषयवार पुनर्रचना करने में कठिनाई नहीं है। आयुर्वेद विद्यालयों के अध्यापकों को अपने विद्यार्थी को एक ग्रन्थ समझाने में दूसरे ग्रन्थों से अवतरण लेकर टिप्पणियाँ करनी ही पड़ती होंगी। उनकी सहायता से विविध ग्रन्थों में बिखरे हुवे विचार विषयवार एकत्रित करने से विषयवार नये ग्रन्थ करना सुलभ होगा। ऐसे ग्रन्थों से पूर्वकालीन ग्रन्थकारों के मतांतर भी ठीक प्रकार दृश्य होंगे और उनके साथ पाश्चात्य ग्रन्थों के विचार की तुलना हो सकेगी।

(१२) ऐसा तुलनात्मक विचार करने के लिये वैद्यों को अंग्रेजी भाषा ज्ञान होने की आवश्यकता है। पाश्चात्य ग्रन्थों के अवलोकन के लिये जैसी आवश्यकता है वैसी ही आजकल वैद्यक के राजकीय स्वरूप में जो आंदोलन हो रहा है उससे, आयुर्वेद की प्रगति को सहायता न होती हो तो कम से कम विरोध तो न हो, इस कारण उक्त आंदोलन का स्वरूप ठीक प्रकार समझने के लिये वैद्यों को अंग्रेजी भाषा से परिचित रहना चाहिये। हिंदुस्थान में वैद्यों के मेडिकल सर्टिफिकेट को राजमान्यता नहीं है। ऑल इन्डिया जेनरल कौंसिल स्थापित होने की चर्चा हो रही है उसमें वैद्यों को कोई भी स्थान मिलने का संभव नहीं है। Drugs Enquiry Committee की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। उसके कार्य से आयुर्वेदीय वैद्यक का घनिष्ट संबंध आ सकता है। Indian Pharmacopœa बनाने की सूचना हुई है उसमें वैद्यों की उत्तम प्रकार सहायता हो सकती है। वैद्यों के आसव व अरिष्ट बनाने में Excise Act के विरुद्ध क्रिया होती है या नहीं यह प्रश्न उपस्थित किया गया है। ऐसे समय प्रचलित राजनीति से भी वैद्यों को परिचय होने की आवश्यकता है। स्वायत्तता पूर्ण स्वराज्य होने पर भी उसकी आवश्यकता रहेगी। आगामी काल के स्वराज्य में आयुर्वेद की उन्नति की तयारी का प्रारंभ आज करने का समय प्राप्त हो गया है।

(१३) इस सभा में बहुतांश में वैद्यों की उपस्थिति होने से उनको वैद्यक के अतिरिक्त किन दूसरीं बातों से परिचित होना चाहिये इसका मैंने उल्लेख किया है। पाश्चात्य डॉक्टरों का सम्मेलन होता तो उसमें उनको संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान संपादन करने की तथा ग्रन्थों का भावार्थ ठीक प्रकार समझने के लिये अन्य शास्त्रों से परिचित होने की आव-

श्यकता का मैं प्रतिपादन करता। कारण इसके अभाव से आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों का भावार्थ ठीक प्रकार ज्ञात न होकर उपहास बुद्धि से उसके तत्वों की आलोचना होती है। वैद्यों का उपहास डाक्टर करेंगे तो डॉक्टरों का उपहास वैद्यों को करने को भी बहुत कुछ जगह है। पाश्चात्य वैद्यक में भी बहुत सा अनर्थ-पांडित्य है। परन्तु ऐसी उपहासवृत्ति शास्त्रज्ञों को उचित नहीं है। अस्तु।

(१४) शरीर के स्वस्थ-स्थिति में जिह्वालौल्य के कारण अनेक रसों के पदार्थ एकत्रित करके अभिनव पक्वान्न मनुष्य तयार करता है। परंतु शरीर के रोगी स्थिति के सुधार के लिये औषधि-द्रव्य जितने थोड़े और निश्चित प्रभावी होंगे उतना चिकित्सा-प्रयोग अधिक यशस्वी होगा। शरीर के जीवन-क्रिया का ज्ञान अपूर्ण है। उस पर औषधि के परिमाण किस प्रकार होते हैं इसका ज्ञान और भी अपूर्ण है। इस स्थिति में दस बीस पदार्थ, एकत्रित करके उनका प्रयोग रोगी के शरीर पर करने से किस द्रव्य का क्या परिणाम हुवा यह ज्ञात होना असंभव है।

इस विचार से पाश्चात्य वैद्यक में एक मत ऐसा प्रस्तुत हुआ है कि रोगी के उपचार में एक समय एक ही औषधि का प्रयोग किया जावे। उसी के साथ औषधि के परिणाम मात्रा-भेद से विविध होते हैं, यह जानकर सूक्ष्म मात्रा का ही एक उपयोग किया जाता है मात्रा भेद का परिणाम विभिन्न होता है यह रोज का अनुभव है। मृदु स्पर्श से जो संवेदना होती है वह कठोर आघात से बहुत ही विभिन्न होती है। परन्तु आश्चर्य यह है कि ऐसे कठोर आघात के दुष्परिणाम को मृदु मर्दन उत्तम रीति से दूर भी कर सकता है। ऐसे अनुभव पर होमिओपॅथी का मत प्रस्थापित है। आयुर्वेद के तत्वों में सर्व प्रकार के चिकित्सा पद्धति का निदर्शन है। होमिओपॅथी का भी मूल उसमें है।

(१५) होमिओपॅथी एक मूल तत्व पर कृटिबद्ध है। इससे उसके चिकित्सा में विशेष परिवर्तन नहीं होता है परन्तु ॲलोपॅथी में एक साल का आविष्कार दूसरे साल पीछे पड़ जाता है। Venesection, Blistering, Injections Hypodermic, intramuscular, intravenous, intraspinal, Alkaloidal medication, Colloidals Opsonin, Antitoxins, Autovaccines, Organ-therapy, Hormones therapy, Vitamins इत्यादि प्रकार प्रचलित हो कर पीछे पड़े हैं और कल कौन सा नवमत प्रस्थापित होगा इसकी अपेक्षा की जाती है। इसका कारण यह है कि ॲलोपॅथिक औषधि तयार करने में बहुतांश में व्यापारी-पद्धति का अवलंबन होता है। रोज नये वस्तु का डंका बजाकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

डॉक्टरों के धंधे पर भी ट्रेड यूनियन के स्वरूप की अनुचित छाया पड़ रही है। वैद्यों को चाहिये कि इस उदाहरण का परिणाम अपनी वैद्यक्रिया पर न होने दें।

वास्तव में सर्व मतमतांतरों में कुछ सत्य है। विशेष आश्चर्य है कि इसमें से बहुत से मतों को आयुर्वेद शिक्षा में पुष्टि मिलती है। इस कारण इन नवमतों का परिचय कर लेना आयुर्वेद उपासक को कठिन न होकर उपयोगी होगा। उससे आयुर्वेद के तत्वों पर विश्वास अधिक दृढमूल होगा।

(१६) सर्व चिकित्सा का उद्देश्य रोग-निवारण है। और इसी कारण 'स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्' यह वचन है।

आयुर्वेद की यह घोषणा ऐसी है कि जो आपको हर एक चिकित्सा-पद्धति का परिचय करने को निमंत्रण करती है, और इनके अनुभव को अपनाये जाकर रोग-निवारण में उनका यथोचित उपयोग करने को अधिकार प्रदान करती है। रोग-निवारण के विचार आप पर भावलुप्त होकर सर्व-सृष्टि के विविध पदार्थों का व उपायों का अवलंबन करना अपना श्रेष्ठ कर्तव्य हो जाता है।

(१७) ग्वालियर में सरकारी ॲलोपॅथिक अस्पताल व डिस्पेन्सरीज होते हुये, यहाँ के म्युनिसिपालिटी ने नगरवासियों के रोगचिकित्सा के लिये आयुर्वैदिक डिस्पेन्सरी आज कई वर्षों से खोली है। आरम्भ में उसका कार्य कै. रामकृष्ण वेणीमाधवाचार्य ने उत्तम रीति से यशस्वी कर बताया और उनके पश्चात उनके सुपुत्र पंडित रामेश्वर शास्त्री जी चला रहे हैं। कै. श्रीमंत माधवराव महाराज ने सरकारी मेडिकल विभाग से उसको आर्थिक सहायता दी। उसका उपयोग देखकर ऐसे आयुर्वैदिक छोटे-मोटे दवाखाने इस राज्य में और २५ जगह खोले गये हैं और सरकारी दवाखानों में भी देशी औषधियों का उपयोग होता है। कच्ची औषधियाँ और सिद्ध औषधियाँ लोगों को बिना कष्ट और विश्वस्त रूप में मिलने के लिये यहाँ एक बड़ा औषधिसंग्रह आयुर्वैदिक अँड यूनानी फार्मेसी में रखा है। इस फार्मेसी को आरंभ से पंडित गणेशदत्त शास्त्रीजी, व्याख्यान वाचस्पति, ने नितान्त परिश्रम से उन्नत अवस्था को लाये। शास्त्रीजी खुद वैद्य न होते हुवे भी आयुर्वेद औषधि-क्रिया का विशेष अभ्यास किया, जंगलों में घूमकर आयुर्वेद-वर्णित सच्ची बनस्पति एकत्रित की और विश्वसनीय रीति से सर्वमान्य पाठानुसार सिद्ध औषधि तयार कर रखी। शास्त्री जी अब इस कार्य से निवृत्त हुये हैं और फार्मेसी की व्यवस्था पंडित रामेश्वर शास्त्री देखते हैं।

पंडित रामेश्वर शास्त्री जी के अधिपतित्व में यहाँ आयुर्वेद विद्यालय भी है, जहाँ से कई विद्यार्थी विशारद परीक्षा में और एक आचार्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हुये हैं।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप समयानुसार इन स्थानिक आयुर्वेद संस्थाओं का निरीक्षण करके उनके सुधार के बाबत अपनी अनुभविक सूचना का लाभ दें।

आपका अधिक समय न ले कर आपको सूचित करता हूँ कि आप अपना नियोजित कार्य का आरंभ करें।

निखिल भारतवर्षीय २३ वें वैद्यसम्मेलन बीकानेर के प्रदर्शनोद्धाटन के अवसर पर

महाराजा सर भैरूँसिंहजी बहादुर का

भाषण

ठीक समयपर महाराज सर भैरूँसिंहजी की सवारी भी पधार गई थी । आपका सबने उठकर सम्मान किया । पुष्पहारादिसंमान के अनन्तर महाराज ने अपना भाषण पढ़ा जिसका सरांश यह था कि—

“आप दूर-दूर से हमारी इस बीकानेर राजधानी में आयुर्वेदोद्धारार्थ पधारे हैं । इसकी मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता है । मैं आपका हृदय से स्वागत करता हूँ । सजनों, एक हमारी प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धति ही है जो आजके वैज्ञानिक युग की चकाचौंध में टिक रही है । यही आयुर्वेद की परम वैज्ञानिकता या सत्यता का सबूत है । इतना ही नहीं, आयुर्वेदपद्धति ही एक ऐसी है जो गरीबों से लेकर अमीरों तक समान उपकार करती है और सब पद्धतियों से बहुत सस्ती है । जहाँ का जन्मा हुआ प्राणी होता है वहाँ की उत्पन्न औषधि उसके लिए हितकारी है । इस प्रकार विचार करके ही हमारी बीकानेर गवर्नमेन्ट ने सन् १९२८ ई० में एक कमेटी कायम की । उसकी सिफारिशों के अनुसार राज्य के कई ग्रामों में “आयुर्वेद औषधालय” खोले गये । बीकानेर गवर्नमेण्ट सुभीते के अनुसार फिर इस विषयपर विचार करेगी ।”

सम्मेलनोद्धाटन के समय

लेफ्टिनेण्ट-जेनरल हिज हाइनेस महाराजा साहिब बीकानेर, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई०, के० सी० बी०, ए०-डी०-सी०, एल-एल० डी०, की ओर से बीकानेर में दिसम्बर, सन् १९३२, में होनेवाले अखिल भारतवर्षीय २३ वें वैद्यसम्मेलन के प्रति —

बीकानेर-नरेश का सन्देश

१. मुझे खेद है कि, अस्वस्थता के कारण, मैं अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन के इस २३ वें अधिवेशन को खोलने से वंचित रहा । किन्तु अपनी राजधानी में आप लोगों के स्वागत का यह सन्देश अपने भाई महाराज श्री भैरूँसिंहजी बहादुर के द्वारा भेजने में मुझे वास्तविक आनन्द होता है ।

२. यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में, विशेषतः सरजरी (शल्य-क्रिया) पैथोलॉजी और केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) में आश्चर्यजनक उन्नति और सफलता हो चुकी है फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कई बड़ी अड़चनों के होते हुए भी अपनी प्राचीन संस्कृति के और रोगों से पीड़ित जनता के सौभाग्य से अब भी कई चमत्कारिक गुण दिखलाने वाली जड़ी बूटियाँ, औषधियाँ और बहुमूल्य आयुर्वेदिक नुस्खे विद्यमान हैं जिनको मैं अपने निज के अनुभव से कृतज्ञतापूर्वक प्रमाणित कर सकता हूँ, और यह ज्ञान की पुरातन ज्योति अब तक जगमगाती रही है जिसका श्रेय प्रधानतः आप जैसे महाशयों को ही है ।

३. आप भारत के भिन्न-भिन्न भागों से दूर-दूर से आये हैं, यही इस बात का प्रमाण है कि आप आयुर्वेद की प्राचीन विद्या के पुनरुद्धार और उन्नति में कितने दत्तचित्त एवं तत्पर है और आप लोगों ने आयुर्वेद की और विशेषतः उसके निराले गुणों को देश के संपूर्ण भागों में प्रकट करने की आवश्यकता का अनुभव किया है। और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये स्थान-स्थान पर सम्मेलन और सभाएँ करने की प्रथा को अंगीकार किया है। यह प्रथा भी हमारी प्राचीन संस्कृति के लिये नई नहीं है।

४ प्राचीन सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये आपका नवीन पद्धतियों को अपनाना पूर्णतया उपयुक्त है। हमारी समस्त प्राचीन विद्याओं में यह एक महान् गुण है कि वे सनातन हैं और सर्वत्र एवं सर्वदा उपयुक्त हैं। इतनी बात अवश्य है कि देश और काल के अनुसार उनका उपयोग भिन्न-भिन्न रीति से होता है, और इसी में भावी सन्तति की चतुराई है। इसी से प्राचीन औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध में आपकी जानकारी और उसमें आपके गति के लिये काफी गुंजायश है। यदि मैं कुछ कहने का साहस करूँ तो आपसे अनुरोध करूंगा कि प्राचीन तथा नवीन, प्राच्य एवं पाश्चात्य, विज्ञान की समस्त अच्छी-अच्छी बातों को लेकर उनको एकत्र करने के लिये आवश्यकता है कि आप अपने साधारण वैद्य समाज के हृदय पर पाश्चात्य विज्ञान की लेबोरेटरी मेथड अर्थात् प्रयोग शैली पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता को अंकित कर दें और इस बात पर अधिक जोर दें कि वे लोग मानवशरीर-विज्ञान (anatomy) और निदान के नवीन साधनों का अधिक गहरा और विस्तृत ज्ञान प्राप्त करें। और यह भी आवश्यकता प्रतीत होती है कि पुस्तकीय ज्ञान-प्रयोगों को कठिन कसौटी पर कसा जाय।

५. मुझे विश्वास है कि आप इस बात से सहमत होंगे कि यदि इस प्रयोग में खाद के रूप में कुछ थोड़ा-सा हिस्सा जलने भी दिया जाय तो कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि उसके बाद जो कुछ बच रहेगा वह खालिस सोना होगा जो अग्नि में तप कर और भी अधिक उज्ज्वल होगा।

६. मैं आशा करता हूँ कि मुझे स्वास्थ्य लाभ होने पर आपके सम्मेलन के समाप्त होने के पूर्व आप लोगों से महल में मिल कर प्रसन्नता होगी, और मुझे विश्वास है कि आप यहाँ आराम से और आनन्द पूर्वक रहेंगे, तथा आप मेरी रियासत में आने और बीकानेर में कार्य करने की आनन्दमय स्मृति अपने साथ ले जायँगे।

अन्त में, महाशयों, मेरी अभिलाषा है कि आपका परिश्रम सब भाँति सफल हो, और मैं यह हार्दिक आशा प्रकट करता हूँ कि आपका यहाँ एकत्र होना आयुर्वेद की उन्नति में आपको एकदम और आगे बढ़ायेगा।

निखिलभारतीय चतुर्विंशतितम वैद्यसम्मेलन के स्वागताध्यक्ष

सेठ तेजभान दयाराम आहुजा, बैंकर, मर्चेंट और लैंड लार्ड का

स्वागत-भाषण

श्री मान्यवर प्रोफेसर प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य, दूर देश से आये हुए आयुर्वेदीय वैद्यों, सिंध तथा हिंद की देवियो तथा भद्र पुरुषों! ईश्वर की अपार कृपा है कि शिकारपुर नगर में आज यह उत्तम यज्ञ आरम्भ होता है। शिकारपुर में वैद्यों की संख्या न्यून है, तथा वैदिक चिकित्सा का प्रचार नाम मात्र ही है, इस अवस्था में यहाँ आयुर्वेदिक सम्मेलन का होना असम्भव प्रतीत होता था। परन्तु यहाँ तथा सक्खर के वैद्य भाइयों के साहस, शिकारपुर के चुने हुए सार्व-जनिक कार्य्य-कर्ताओं के उत्साह, सक्खर और शिकारपुर के दानवीरों की उदारता तथा हमारे धार्मिक नेताओं के आशीर्वाद द्वारा हमें इस उत्सव तथा समारोह के देखने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। पूज्य स्वामी हरिनामदास जी श्री साधुबेला सक्खर तथा पूज्य स्वामी रामदास जी महन्त खटवाली दरबार उत्तरीय सिंध के ज्योतिस्तम्भ हैं। उन्होंने हमें इस सम्मेलन के रचने में बड़ी सहायता दी है। यद्यपि सक्खर शिकारपुर के वैद्य भाइयों, महन्तों, सार्वजनिक सेवकों ने इस सम्मेलन के लिये अत्यंत उत्साह दिखलाया है तथापि यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि सम्मेलन के प्राण महाराज सुखरामदास टी. ओझा कराची निवासी हैं। ये वैद्यों में वैद्य, सार्वजनिक सेवकों में सार्वजनिक सेवक, धर्म-गुरुओं में धर्म-गुरू हैं इसलिये उनका प्रभाव सारे सिंध पर है और उन्होंने कष्ट सह कर हमें सहायता की है।

मैं इन भद्र पुरुषों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ इन समस्त वास्तविक कार्य-कर्ताओं तथा सम्मेलन के संचालकों ने जो मेरे ऊपर सम्मेलन का बोझ रखा है वह उन्हीं की उदारता तथा महानता का सूचक है। स्वागत-समिति के समूह में मुझसे कई सज्जन अधिक योग्य विद्यमान हैं। कई मुझसे यश तथा कीर्ति में, कई धन और सेवा में, मुझसे अधिक हैं, आयु में भी मुझसे बड़े हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो कार्य उन्होंने मेरे ऊपर रखा है उसके पूर्ण करने के लिये वे मेरे सहायक बनेंगे।

हे भारत के रत्नो, वैद्यशास्त्र के निपुण विद्वानों! प्राचीन सभ्यता के प्रचारको! मैं स्वागत-समिति, शिकारपुर तथा सक्खर की ओर से आपका भली प्रकार स्वागत करता हूँ आपके पधारने से हमारे नगर की शोभा हुई है, हमारे प्रांत का मान हुआ है दूर-दूर की यात्रा का कष्ट सहकर इस शीत ऋतु में हमारे नगर में आये हैं। इसलिये मैं आपका जितना कृतज्ञ बनूँ वह थोड़ा है। आपकी सेवा के लिये जितना प्रबन्ध करें वह पूर्ण न होगा। आप बड़े नगरों के निवासी हैं आपको प्राचीन तथा अर्वाचीन सब तरह की सुविधायें उपस्थित हैं। इस छोटे

नगर में ये सब सुविधायें उपस्थित करना हमारे लिये कठिन है इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कृपया हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर आयुर्वेद के प्रचार के उत्साह में तथा मनुष्यों के कल्याण की धुन में हमारी कमियों तथा निर्बलताओं को भूल जावें ।

हमारे प्रतिष्ठित अतिथियो, हमारे पथ-प्रदर्शकों ! आपका इन टूटे-फूटे शब्दों में स्वागत करते हुए मैं प्रचलित पद्धत्यानुसार शिकारपुर नगर का परिचय देना चाहता हूँ !

शिकारपुर नगर सिंध के मुख्य नगरों में से एक है। यह नगर हैदराबाद, सेवन, रोहड़ी की तरह पुराना नहीं है परन्तु इसको बने हुए लगभग ३०० वर्ष हुए हैं । शिकारपुर बनने की श्रुति इस प्रकार है ।

शिकारपुर का नगर बहादुर खाँ दाऊदपोते ने बनवाया था, यह दाऊद की आठवीं पीढ़ी में से था । दाऊद २०० वर्ष का हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ और ऐसा कहा जाता है कि वह अब्रासी ख़लाफों की पीढ़ी में से था । उनका एक "अमीर अहमद" नामक ठट्टे नामक गाँव में आया, उनकी पीढ़ी में एक "कलहोड़ा" नामक उत्पन्न हुआ, उनकी और दूसरों की आपस में लड़ाई हुई, इसलिये दाऊद उत्तरीय सिंध में चला आया । बहादुर खाँ जिसका उपर्युक्त वर्णन किया गया है उस पर बक्खर के अमीर ने सन्तुष्ट होकर लखी और खानपुर के मध्य का बेला भेट कर दिया, उसी स्थान पर शिकारपुर का नगर बना हुआ है ।

जंगल में शिकार बहुत होता था और बहादुर खाँ मृगया का अत्यन्त शौकीन था, परन्तु उबावड़े और लखी का नवाब शेर खाँ मुहार बहादुर खाँ का विरोध करता था इसलिये उनकी लड़ाई हुई, लड़ाई में मुहारों का पराजय और दाऊदों की विजय हुई । दाऊदों के गुरु ने पृथ्वी पर चाकू फेंका और चाकू सीधा खड़ा हो गया इससे दाऊदों ने अनुमान किया कि हमारे गुरु हमें नगर बाँधने के लिये आज्ञा देते हैं । इसलिये जंगल को काट-साफ कर उस स्थान को १०२६ हिजरी अर्थात् १६१७ में शिकारपुर बनाया गया । यह बात हाजी फज्लहल्लाह की स्मृतिपट पर जो (गोक) शब्द लिखा हुआ है उसके अबजद के गणित से प्रसिद्ध होता है ।

जिस स्थान पर नगर बना हुआ है उस स्थान की विशेष महत्ता है । शिकारपुर के उत्तर में बिलोचिस्तान और अफगानिस्तान है, इसलिये शिकारपुर को पूर्व समय में राजनैतिक महत्व था । करनल टाड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" में इस बात को स्वीकार किया है । इस लिये अंग्रेज लोग जब सिंध में आये तो मनहोड़े के पश्चात् शिकारपुर की ओर आँखें फेरीं । अंग्रेजों के पूर्व मीरों को भी शिकारपुर बहुत प्रिय था और उसको हाथ में लाने के लिये उन्होंने बहुत यत्न किया था । शिकारपुर उनकी विजय का अन्तिम नगर था । क्योंकि अफ़ग़ानों ने शिकारपुर को छोड़ना पसन्द नहीं किया । अहमदशाह अबदाली से लेकर अफ़ग़ानों का शिकारपुर से बहुत संबन्ध था और उस शासक के दिनों में ही शिकारपुरियों ने कंधार इत्यादि में अपना व्यवसाय आरंभ कर दिया था ।

सीमा नगर होने के कारण शिकारपुर का व्यापारिक और आर्थिक सम्बन्ध दूर-दूर था । शिकारपुर के शराफ (महाजन) बैंकर्ज़ और व्यापारी मध्य एशिया, बुखारा, पश्चिम चीन, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में फैले हुए थे और उनके व्यवहार और व्यापार की सचाई इतनी ऊँची थी कि उनकी हुंडिया भारत के प्रत्येक स्थान और मध्य एशिया, पश्चिम एशिया आदि में—कलकत्ता से एस्टराखाँ तक—अपनी राशि अनुसार चलती थीं । किसी समय शिकारपुर में

"कला-कौशल" भी अच्छे होते थे। रेशमी तन्तु-सञ्चय तथा रंगने का काम बहुत सुन्दर होता था। और जब नया युग आरम्भ हुआ तब शिकारपुर के शराफों ने बम्बई, बेंगलोर, मद्रास कोलम्बो, कलकत्ता और रंगून तक अपने धंधे को फैलाया और शिकारपुर के व्यापारियों तथा साहसी लोगों ने कराची और बम्बई की मण्डियों के ऊपर अधिकार किया और ईरान के कितने ही नगरों में, मिश्र, ईस्ट-अफ्रिका और बर्मा इत्यादि में अच्छा धंधा आरम्भ किया। इस समय शिकारपुर का व्यापार घटा हुआ है परन्तु अब भी शिकारपुर का शराफ़ी धंधा अच्छी उन्नति पर है। शिकारपुर के शराफ़ों को देशी विदेशी बैंकें तथा अन्य व्यापारीगण प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं।

मैं समझता हूँ कि शिकारपुर के राजनैतिक और व्यापारिक वर्णन के पश्चात् शिकारपुर के धार्मिक साहित्य और विद्या सम्बन्धी वृत्तान्त आपको अधिक प्रिय लगेंगे। साधारण जन शिकारपुर को धार्मिक नगरी के नाम से पुकारते हैं। परन्तु इस बात में तत्व भी है। शिकारपुर में पुराने समय के अच्छे धर्म-स्थान हैं जिनमें शंकरभारती का मन्दिर और पूज्य खटवाले महाराज का धर्मशाला प्रसिद्ध है। शिकारपुर के मसंदों की धर्मशाला में सिख-गुरु गोविन्दसिंह जी के हस्तलिखित पत्र उपस्थित हैं। पुरातन धर्म-स्थानों के अतिरिक्त अर्वाचीन समय के प्रवाहों का प्रभाव भी मन्दिर के ऊपर उपस्थित है। नगर में आते ही तत खालसों का अनाथालय देखने में आता है। थोड़ा आगे महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज द्वारा स्थापित आर्यसमाज के मन्दिर का दर्शन होता है। कुछ आगे प्रियतम धर्म-सभा का मन्दिर उपस्थित है और नगर के पश्चिम में प्राचीन सत्संग के लिये "सनातन धर्म सभा" और 'प्यारी संगत' विद्यमान हैं। शिकारपुर के धार्मिक स्थानों का वर्णन करते हुए मैं यह नहीं भूल सकता कि शिकारपुर में १०० वर्ष पहले दो महंत हो चुके हैं। जिनमें एक था वेदांत शास्त्र का वेत्ता, ब्रह्मश्रोत्री, ब्रह्मनेष्ठी स्वामी मेघराज जी और दूसरे थे यवन-साधु "रोहल"। रोहल स्वयं वेदांती तथा वैष्णव धर्म का पुजारी था। उनकी कविता में वेदांत, योग और भक्ति-मार्ग भरा हुआ था। उपर्युक्त दोनों पुरुष केवल धार्मिक नेता ही न थे, किंतु सिंधी साहित्य में भी उनका ऊँचा स्थान है। आपके साहित्य का प्रभाव सारे सिंध पर है और शिकारपुर की भाषा पर उनका पूरा प्रभाव है। इसलिये कृष्ण गोडबोले शास्त्री जी ने कहा है कि शिकारपुर की भाषा में सुन्दर सिंधी विद्यमान है। हर्ष की बात है कि यह सिंधी साहित्य का कार्य आज भी शिकारपुर में हो रहा है। म० बूलचंद्र जी राजपाल का "सिंधु पत्र" और प्रोफेसर ताराचंद्र जी गाजरा एम० ए० का "हरि सुन्दर साहित्य मन्दिर" बहुत अच्छा कार्य्य कर रहे हैं।

शिकारपुर की भाषा का संस्कृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऐसी सम्मति कृष्ण गोडबोले शास्त्रीजी ने दी है। इसीलिये यहाँ संस्कृत का पुराने समय में अच्छा प्रचार था और ग्रन्थ भी बहुत से उपस्थित थे। कुछ समय हुआ कि बाहर के विद्वान आकर ग्रन्थ मूल्य से ले गये। संस्कृत साहित्य में "स्वामी चिद्घनानन्द" का गीता-भाष्य एक उत्तम पुस्तक है वह एक हमारे शिकारपुर के महात्मा का बनाया हुआ है। आज भी हिन्दी संस्कृत का प्रचार अच्छा ही है। शिकारपुर में हिन्दी शिक्षा के बहुत सारे स्थान हैं और शिकारपुर के पढ़े-लिखे लोगों में ६० प्रतिशत हिन्दी जानते हैं।

शिकारपुर निवासियों ने हिन्दी प्रेम का कल एक प्रमाण दिया। हिन्दी सम्मेलन के बैठक में कितना उत्साह और कितना प्रेम का प्रकाश था। जिस कार्य में श्री स्वामी

हरिनामदास जी और स्वामी रामदासजी धर्म-गुरु प्रेरणा करें, उस कार्य की उन्नति क्यों न हो ?

संस्कृत-विद्या के प्रचारार्थ यहाँ बहुत सारी पाठशालायें हैं, और यहाँ के बहुत सारे विद्यार्थी पञ्जाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ विशारद और शास्त्री परीक्षायें देकर आये हैं। इसी कार्य में ब्रह्मचर्य्याश्रम अच्छा कार्य्य कर रहा है। आश्रम में गीता, रामायण, मैट्रिक और अन्य परीक्षायें भी होती हैं।

साधारण अर्वाचीन शिक्षा के प्रचारार्थ यहाँ ३ हाईस्कूल, एक आदर्श मिडिलस्कूल कितनी प्रारम्भिक पाठशालायें, १० कन्या पाठशालायें तथा २ नारी शालायें उपस्थित हैं। विद्या के प्रचारार्थ जो नई संस्था जारी हुई है वह है "चेलासिंह सीतलदास कालेज।" इसी कालेज के लिए सेठ सीतलदास तीर्थदास और सेठ चेलासिंह संतरामसिंह जी ने बड़ी धनराशियाँ दी हैं और सेठ चेलासिंह के भाई सेठ लुणींदासिंहजी और सेठ नारायणसिंहजी ने व्यावहारिक और कला सम्बन्धी विद्या के प्रचार-निमित्त एक बड़ी राशि निकाल रखी है। वहाँ एक बड़ा विद्यालय स्थापित किया जायगा जिसमें आयुर्वेद के प्रचारार्थ साधन रक्खे जायेंगे। और आयुर्वैदिक पाठशाला, रसायनशाला और चिकित्सालय स्थापित किये जायेंगे। सम्मेलन समाप्त होने से पूर्व इनका मुहूर्त होगा।

एक दूसरी विद्या की ओर ध्यान आकर्षित कराना आवश्यक है। प्राचीन चार उपवेदों में एक का नाम गांधर्व वेद है। गांधर्व वेद की अनेक विद्याओं में "संगीत विद्या" भारत में उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई है। एक अंग्रेजी लेखक का कहना है कि भारत में गायन विद्या सब विद्याओं के ऊपर राज्य करती है। संगीत विद्या का शिकारपुर में अच्छा ही प्रचार है, यहाँ ४४ वर्षों से 'होली" के पर्व पर श्री दाऊजी का हांडा योग्य पं० रांवलदास और संगीत-गायन मण्डली के सहारे पर होता है। यह एक प्रभावशाली संगीत सम्मेलन है, जो भारत के अन्य स्थानों के सम्मेलनों से किसी भी अवस्था में कम नहीं है।

शिकारपुर क्योंकि एक नया नगर है, इसलिये यहां पर पुराने आयुर्वेद की युवा अवस्था के दिनों के प्रभाव की खोज करना व्यर्थ है। जिस प्रान्त में शिकारपुर है, उसी सिंध प्रांत के भीतर आयुर्वेद की ध्वजा किसी समय आकाश पर थी। सिंध के इतिहास का अब तक पूरा पता नहीं मिलता। सिंध के "मोहन का दरा" दिखलाता है कि सहस्र वर्ष पहिले यहां के लोग उन्नत और सभ्य थे। "सैंधव ऋषि" का नाम सिंध की प्राचीन सभ्यता की ओर इशारा करता है। देवल स्मृति के निर्माता महर्षि "देवल" भी इसी प्रांत में उत्पन्न हुए थे। जयद्रथ का वर्णन स्वयं सिन्ध का सम्बन्ध भारत के अन्य प्रान्तों में दिखलाता है।

सिन्ध प्रांत में आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट उत्पन्न हुए। सिन्ध प्रान्त के वैद्य और अन्य विद्वान ख़लीफे मन्सूर के दिनों में बग़दाद को गये थे। जहाँ जाकर अरबों को भारत की विद्या सिखलाई और संस्कृत के वैदिक ग्रन्थों का अर्बी भाषा में अनुवाद किया था। किसी समय आयुर्वैदिक चिकित्सा उन्नत थी और साधारणतया प्रचलित थी, परंतु अब घट गयी है, क्योंकि यवनों के राज्य की शक्ति और ब्रिटिश सरकार के प्रभाव आयुर्वेद के प्रचार के विपरीत हैं। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति के अनुसार साधारण लोगों का प्रवाह भी इसी ओर चल रहा है। ऐसी विपरीत अवस्थाओं के होते हुए भी आयुर्वेद के टिमटिमाते दीपक को हमारे प्रान्त-निवासियों तथा शिकारपुरी भाइयों ने बुझ जाने से रोक रक्खा है। यहाँ पर कितने साधु-सन्यासी तथा ब्राह्मण इत्यादि, लोक-सेवा तथा व्यवसाय के विचार से आयुर्वेद द्वारा जनता की चिकित्सा

किया करते थे और कई अच्छे गृहों की स्त्रियाँ आयुर्वेद के किसी न किसी अंग में प्रवीण होती थीं। गत सौ वर्षों के अन्दर जिन्होंने आयुर्वेद द्वारा शिकारपुर में चिकित्सा की उनका बहुत सारा पता लग सकता है। समाधों का मठाधीश सौ वर्ष से पहले आनुर्वेद की चिकित्सा का प्रयोग करता था। इस समय का वैरागी महन्त श्री गोकुलदासजी आयुर्वेद का अच्छा जानकार है। श्री स्वामी हरिनामदास जी एक अच्छे वैद्य थे। वे जब शिकारपुर में आये उसको ८० वर्ष हुए। इस समय मेरे पिता जी के नाम पर एक धर्मार्थ आयुर्वैदिक औषधालय जारी है। मेरी प्रबल इच्छा है कि शीघ्र यह औषधालय बढ़े और बड़े विस्तार पर पहुँचे। एक रसायनशाला बने और औषधालय में रोगियों के ठहरने का प्रबन्ध हो, और शिकारपुर का आयुर्वैदिक औषधालय सरकारी औषधालयों के समान बने। मैं आशा करता हूँ कि आप भाइयों की शुभ इच्छाओं द्वारा मेरा संकल्प दृढ़ हो और यह उत्तम कार्य्य सिद्ध हो।

अब जब अनुकूल समय आया है, जब लोगों में जागृति उत्पन्न हुई है, जब महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रचार, स्वामी विवेकानंद के उच्च विचारों और महात्मा गांधी के आदर्श जीवन ने प्राचीन सभ्यता के पुनरोद्धार के लिये प्रेम उत्पन्न किया है, जब हमारे आयुर्वेद के प्रबल विद्वानों के कष्टों और पुरुषार्थ द्वारा आयुर्वेद के लिये लोगों में श्रद्धा उत्पन्न हुई है, तब मुझे आशा है कि यह प्राचीन टिमटिमाते दीपक अब नये रूप में ज्योतिस्तम्भ बनकर देश को प्रकाशमान करेंगे और चारो ओर चमत्कार दिखला कर लोगों को कल्याण का मार्ग बतायेंगे!

प्रश्न यह है कि इस शुभ अवसर का लाभ कैसे प्राप्त हो, कैसी नीति और रीति से कार्य-क्रम बनाया जाय कि जिससे आयुर्वेद-चिकित्सा का प्रचार और उन्नति हो! यह काम आप विद्वानों तथा नेताओं का है। मैं वैद्य नहीं हूँ, न मैं चिकित्सा-शास्त्र का वेत्ता हूँ, मैं साधारण मनुष्य की दृष्टि से सम्पूर्ण बात को देखता हूँ और अपने विचार के अनुसार आपकी सेवा में इस कार्य के २ भाग उपस्थित करता हूँ। पहिला भाग है प्रचार। आज के युग में किसी भी कार्य को सिद्ध करने के लिये बड़े से बड़ा साधन प्रचार है। प्रचार के द्वारा राज्यों के अंदर परिवर्तन आ गया है। प्रचार के द्वारा कितने विजेताओं की विजय भी पराजय हो गई है और हारे हुए दल सफलता को प्राप्त हुये हैं। प्रचार के कारण झूठे सिद्धांत भी संसार में फैलाये गये हैं। यदि हमारी सच्ची विद्या लोगों तक नहीं पहुँचती तो इसका कारण यही है कि जिस विधि के अनुसार हमें प्रचार करना चाहिये उस विधि के अनुसार हम कार्य नहीं करते। आयुर्वेद ऐसी वस्तु है जिसके गुणानुवाद देशी तथा विदेशी विद्वान् गाते हैं। देखिये तो क्या-क्या कहते हैं।

१—सर विलियम् हण्टर कहता है कि प्राचीन भारतीय वैद्यों की शल्य-विद्या साहस तथा कला-कौशल से भरी हुई थी।

२—एलफिंस्टन कहता है कि भारतीयों की शल्य-विद्या और औषधि विद्या दोनों एक दूसरे के बराबर और उन्नत थी।

३—मि० बेवर लिखता है कि शल्य-विद्या में भारत-वासियों ने विशेष उन्नति की थी और आज के यूरोपियन इस विषय में उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

४—डाक्टर ए. एफ. आर. हार्न लिखता है कि भारत के प्राचीन औषधि शास्त्र के लेखों में जो शरीर की बनावट का ज्ञान भरा हुआ है उसने मुझे आश्चर्य में डाल दिया है। औरों को भी अवश्य आश्चर्य में डालेगा।

५—फिलेडल्फिया का डाक्टर क्लार्क कहता है कि यदि आज के डाक्टर नई दवाइयाँ छोड़ अपने रोगियों को चरक की विधि से औषधियाँ दें तो कफन बेचने वालों का काम घट जाय और संसार में जीर्ण रोगों की संख्या कम हो जाय।

६—डाक्टर पाल वार्थालाम्यु कहता है कि चरक के कितने स्थानों पर गूढ़ अर्थ को देख कर मैं विस्मय में पड़ गया हूँ। सत्य तो यह है कि मैंने जितनी पहिले औषधियों की पुस्तकें पढ़ी हैं उनसे यह स्थान बहुत दूर जाते हैं।

७—डाक्टर सुमन्त महता लिखता है कि चरक और सुश्रुत जो आयुर्वेद के १६४ पुस्तकों में केवल दो हैं यह बात बतलाते हैं, कि उनके लेख की प्रणाली सम्पूर्ण नियमबद्ध और वैज्ञानिक है और उनमें सुंदर रीति से विचार की हुई कल्पनायें और वाद उपस्थित हैं। और उनमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं के नाम सूक्ष्म रूप से दिखलाये गये हैं और शल्य-विद्या तथा स्वास्थ्य-विद्या इत्यादि प्रत्येक बात का विस्तार पूर्वक वर्णन है।

भारत के प्राचीन ब्राह्मणों ने न केवल आयुर्वेद शास्त्र की उन्नति की बल्कि उन्होंने इसे विदेशों में भी फैलाया। खलीफे मन्सूर का मैंने दूसरे स्थान पर इशारा किया है, हारून रशीद जो खलीफ़े मन्सूर से पीछे हुआ उसके विद्यालय में माणक और सालेह भारत के वैद्य उपस्थित थे, जिन्होंने चरक और सुश्रुत का अर्बी में अनुवाद किया।

८—मि० हरविलास शारदा लिखते हैं कि अबुसीना अबुराज़ी और अबुसराबी प्रत्येक ने चरक के प्रमाण दिये हैं।

९—मिसेज़ मैनिंग और प्रो० मैग्डोनेल ने इस बात की पुष्टि की है कि अरबों ने भारत से औषधि-विद्या सीखी। ईरानियों ने अरबों के राज्य बनने से पहले स्वयं भारत की विद्या सीखने का यत्न किया था। बादशाह नौशेरवाँ का मंत्री ख़लीफे हारूनरशीद से २०० वर्ष पहिले भारत में आया था। खलीफों के राज्य और उससे पीछे भी भारत की विद्या का प्रचार होता रहा।

१०—स्याम देश के जबराईल बैक्शटना ने संस्कृत के चिकित्सा के ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किये।

१७ शताब्दी तक युरोप में चरक का नाम बड़ी प्रतिष्ठा और मान से लिया जाता था। लार्ड एम्टिहिल् ने कहा है कि आयुर्वेद भारत से पहिले अरब में गया, वहाँ से योरोप में। १७ शताब्दी के अन्त तक योरोपी डाक्टर अरबी वैद्यों के शिष्य थे, और अरबी हकीमों ने भारत के प्राचीन ऋषि धन्वन्तरि, चरक और सुश्रुत से विद्या प्राप्त की थी।

ऐसा भी देखने में आता है कि चीन के ऊपर भारत की चिकित्सा का प्रभाव पड़ा है। बोध-प्रचारक औषधियों से परिचित थे, स्वाभाविक रूप से वे जहाँ-जहाँ प्रचार करते गये हैं वहाँ भारत की अन्य विद्याओं के साथ आयुर्वेद का भी प्रचार किया है।

११—मैक्सन्यू वर्गर लिखता है कि साहित्य में यह बात प्रसिद्ध है कि यूनान के वैद्यों ने भारत की औषधियाँ और विधियाँ हस्तगत कीं। यूनान, रोम और इस्तम्बोल के लेखकों ने भारत के वैद्यों, भारत के रोगियों को छुड़ाने के साधनों और विधियों का बहुत बार वर्णन किया है। अबासी खलीफों के राज्य में भारत के वैद्य ईरान में आगे से अधिक प्रसिद्ध हुए और भारत की औषधियाँ यूनानी औषधियों से सम्मिलित हो गईं। पुनः दूसरी बार यूरोप पर अर्बी पोशाक के भीतर भारत के औषधियों का प्रभाव देखने में आया। यह जो सिस्ली में

अचानक ही अचानक १५ शताब्दी में बनावटी नाक बनाने की विद्या देखने में आई, उससे यह अनुमान निकाला गया कि बहुत समय पूर्व भारतवर्ष और अर्बस्तान का प्रभाव वहाँ उपस्थित था। १६वीं शताब्दी में इस विद्या को भारत के उदाहरण से उत्तेजना मिली। पहिले भारतवर्ष से सूचना मिली कि एक कुम्भार ने किसी भारतवासी के पेशानी से त्वचा का टुकड़ा काटकर नाक बना दिया।

१२—कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाते हुए सर हैवलाक चार्ल्स कहता था कि मैं वही वही बातें दुहरा रहा हूँ जो आज से २ सहस्र वर्ष पूर्व आयुर्वेद में वर्णित की गई थी। जो कुछ चरक ने सिखाया था उसका थोड़ा सा भाग मैं आपको सिखा रहा हूँ।

आवश्यकता है कि इन स्वदेशी तथा विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ भारत के बच्चे-बच्चे तक पहुँचाई जावें।

एलोपैथिक चिकित्सा के प्रचार के लिये जो साधन प्रयोग में लिये जाते हैं वे बड़े प्रबल हैं। उनके मुकाबले में यदि हम लाखों पत्रिकायें छपवाकर वितीर्ण करें तो भी थोड़ा है।

प्रचार के लिये न केवल ये सम्मतियाँ जनता तक पहुँचानी चाहिये; परन्तु इस युग में वैद्यराजों ने जो सफलता पूर्वक चिकित्सा के कार्य्य किये हैं उनका भी प्रकाशन आवश्यक है। ऐसा करने से जहाँ आयुर्वेद का यश और कीर्ति बढ़ेगी वहाँ दुःखित जनता को सुख के साधन प्राप्त करने में सुभीता होगा।

प्रचार के लिये साधारण समाचार पत्र, आयुर्वैदिक पत्रिकायें, घोषणा-पत्र तथा सम्मेलनों का प्रयोग किया जा सकता है परंतु सबसे प्रबल प्रचार का साधन वैद्य स्वयं है। ऐसा वायु-मंडल उत्पन्न करना चाहिये कि जिससे छोटे से छोटा वैद्य भी अपने को आयुर्वेद का प्रचारक और जनता का कल्याण करनेवाला सेवक समझे। हमारे शास्त्रों की पद्धति अत्यन्त उत्तम थी।

नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदया प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वं मति वर्तते॥
कर्वते ये तु वृत्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयं।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशे मुपासते॥

चरक ऋषि उपदेश करते हैं कि वैद्य को न अपने स्वार्थ के लिये, न इहलौकिक कामनाओं को पूरा करने के लिये परन्तु मनुष्य की कल्याण-कामना के लिये चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये। जो लोग औषधि को बेचते हैं वे स्वर्ण को छोड़कर मिट्टी को इकट्ठा करते हैं। ईश्वर करे इस पद्धति का प्रचार हर एक के जीवन में हो।

जब प्रचार पूर्ण रीति से हो जावेगा तो निर्माण के कार्य्य में बड़ी सुगमता होगी और स्वयं ही इस ओर आकर्षित होंगे पर हमें इस स्वाभाविक परिणाम की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। हमें अभी ही निर्माण कार्य के लिये यत्न करना चाहिये। दानी लोगों को प्रेरणा करनी चाहिये कि वे एलोपैथिक हस्पतालों के बदले आयुर्वेदिक हस्पताल खोलें। म्यूनिसिपलिटि, सरकार व लोकल बोर्डों के ऊपर दबाव डालना चाहिए कि वे जिस प्रकार ऐलोपैथिक हस्पताल खोलते हैं और उन्हें सहायता देते हैं वैसे ही सहायता और ध्यान आयुर्वैदिक हस्पतालों को भी दें। आन्दोलन करना चाहिये कि हर एक विश्वविद्यालय में आयुर्वेद की शिक्षा का प्रबन्ध हो।

व्यापारिक दृष्टि से अधिक रसायनशालाओं और औषधि-भंडारों का निर्माण होना चाहिये। हमारी महासभा की शाखायें प्रतिग्राम में होनी चाहियें और उनका संगठन ऐसा उत्तम हो कि कोई भी पुरुष महासभा के प्रमाणपत्र बिना और किसी परीक्षा के उत्तीर्ण हुए विना चिकित्सा न कर सके।

प्रचार और निर्माण का कार्य्य इस प्रकार का है कि जिसमें आयुर्वेद के विद्वान, अन्य विद्या के जानकार, और धनी-मानी जनता सब सहयोग दे सकते हैं।

कार्य्य-क्रम का तीसरा अंग अन्वेषण का है और यह कार्य्य केवल विद्वान वैद्यों से ही सिद्ध हो सकता है। वैद्यराजों को इसके लिये विशेष यत्न करना चाहिये। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यह जगत गतिमान है, संसार में कर्मशीलों का ही स्थान है। हमें उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते ही रहना चाहिये और हमेशा आयुर्वेद की सर्वांगीन उन्नति के लिये नये-नये विचारों और युक्तियों का आविष्कार करते रहना चाहिये। संभव है कि यह बात कइयों को अच्छी न लगे। वे कहेंगे कि ऋषि पूर्ण थे और उनमें कोई कमी न थी जिनको आज के नये आविष्कारों से पूरा किया जा सके। निस्सन्देह ऋषि पूर्ण थे और उनकी विद्या-प्रणाली आजकल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक थी। आजकल के वैज्ञानिक वृत्त की परिधि पर ही चक्कर लगाते हैं किन्तु केन्द्र पर बहुत कम पहुँचते हैं। परन्तु ऋषि लोग केन्द्र को हस्तगत कर आवश्यकतानुसार वृत्त का निर्माण कर लिया करते थे और हर एक विषय के अन्तर्गत आत्मा को जानकर आवश्यकता और अवस्था के अनुसार उसको भिन्न-भिन्न रूपों में निर्मित करते थे। ऋषियों की आयुर्वेद विद्या वात, पित्त, कफ़ रूपी आधार पर आश्रित है यही इसकी आत्मा है और यही सूत्र रूप आत्मा भिन्न-भिन्न असंख्य जीवों में अपने भिन्न-भिन्न रूपों को लेकर प्रकट करती है। यथा—"एकं सद्विप्राः बहुदाः वदन्ति"। एक प्रकृति ही अनेक रूपों को धारण करती है और एक बीज ही अनन्त फलों के निमित्त का कारण होता है। आयुर्वेद के इस प्राण-भूत आत्मा का ऋषियों ने अद्भुत विकास किया था और उनके अनुयायी आचार्यों ने इसका भिन्न-भिन्न रूपों में विस्तार किया था। हम लोगों का और विशेष कर वैद्यों का यह कर्तव्य है कि ऋषियों के विचित्र सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान के सामने विस्तृत रूप से खोलकर रखें। मध्य-कालीन आचार्य्यों के अद्भुत, देह-सिद्धि आदि आविष्कारों, अनुष्ठानों को सूक्ष्मता पूर्वक मनन कर उसको लोक-कल्याण के लिये विस्तृत रूप से लोगों के सामने रखें। हमें प्राचीन आचार्यों के भिन्न-भिन्न विचारों को मिलाकर उसके आधुनिक कालानुकूल नये-नये रूप भी बनाने चाहिये।

एक साधारण मनुष्य की हैसियत से मैं कुछ विचार आपके सामने रखता हूँ। उन पर विचार करना आपके आधीन है। शास्त्र में बताया गया है कि आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी और पृथ्वी से बनस्पति की उत्पत्ति होती है। इस क्रम से यह अनुमान निकलता है कि स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवृत्ति के लिये सर्वोत्तम साधन आत्मा का सहारा ही है। इसी को यूरोपियन विज्ञान में क्रिश्चियन हिलीङ्ग या न्यू थॉट पावर कहते हैं। वेदों में भी आत्मिक शक्ति को चिकित्सा का मुख्य साधन जताया है। यथा

अयंमे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयंमेविश्वभेषजोऽयंशिवाभिमर्शनः ॥

आकाश तत्व द्वारा रोग कैसे निवर्त्त हो सकता है यह दूसरा विचार है। मेरी समझ

से विद्युत आकाश का प्रतिनिधि है, विद्युत द्वारा रोग-चिकित्सा का वर्णन वेदों में भी आया है, यथा :—

प्राहिजर्ग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् । अ. १।११।१

इससे इन्द्र शब्द विद्युत-चिकित्सा के लिये आया है। विद्युत-चिकित्सा से रोग को दूर करने का उपदेश है।

वायु अथवा प्राण शक्ति की रोग निवारक शक्ति तो स्वयं सिद्ध ही है। प्राचीन कालीन प्राणायाम विद्या का अन्वेषण इसमें बड़ा सहायक होगा। प्राणायाम द्वारा चिकित्सा करने के केन्द्र आज भी हिन्दुस्थान तथा संसार के भिन्न-भिन्न भागों में है। और हज़ारों कठिन से कठिन रोगों की भी सफल चिकित्सा प्राण-शक्ति द्वारा होने के प्रमाण मौजूद हैं। वेदों में भी प्राण-शक्ति का वर्णन है :—

इहैवस्तंप्राणापानौमापगातमितोयुवं ।
शरीरमस्यांगानि जरसे वहतं पुनः ॥

अग्नि तत्व दो प्रकार से चिकित्सा में प्रयोग किया जा सकता है एक तो सूर्य्य के तेज और प्रकाश से हम लाभ उठा सकते हैं, वेद इसके विषय में जगह जगह संकेत करता है।

"सूर्य्यः कृणोतुभेषजं"

द्वितीय रूप से हम प्राचीन ऋषियों के हवन क्रिया को ले सकते हैं। भिन्न-भिन्न बनस्पतियों की अग्नि के संयोग से सूक्ष्म रूप होकर वायु-मण्डल तथा शरीर के भीतर घुसे हुए रोग के जीवाणुओं और मलभूत द्रव्यों के निर्वाण करने की शक्ति तो प्रसिद्ध ही है। हवन के विषय में पीलीभीत के डा० फुंदनलाल जी ने और गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार की रसायनशाला ने परीक्षण करके यह सिद्ध किया है कि भिन्न-भिन्न द्रव्यों में अग्नि के संयोग से सूक्ष्मता उत्पन्न होकर रोग-निवारण-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वेदों में भी हवन से बीमारी को दूर करने तथा स्वास्थ्य लाभ करने का उपदेश है यथाः—

"मुंचामित्वाहविषाजीवनायकमज्ञातयक्ष्मादुतराजयक्ष्मात्"

लूई कून्हे आदि पाश्चात्य चिकित्सकों द्वारा किये गये आविष्कारों एवं प्रयोगों द्वारा जल की रोग-निवारण-शक्ति आज जगत में प्रसिद्ध हो गई है। वेदों में भी जल-चिकित्सा का वर्णन आता है यथाः—

आपः सर्वस्यभेजजीस्तास्तेकृएवन्तु भेषजम्"

पृथ्वी तत्व का चिकित्सा से सम्बन्ध तो बिल्कुल स्पष्ट ही है। आज-कल के पाश्चात्य अनुसन्धानों से अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की मट्टियों में भिन्न-भिन्न रोगों के नाश करने की शक्ति है। महात्मा गाँधी आदि का तो यह दावा है कि भिन्न-भिन्न बुद्धिमत्तापूर्ण रोगानुकूल प्रयोगों से मट्टी द्वारा सब रोगों का इलाज कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पारद तथा स्वर्ण आदि खनिज और भिन्न-भिन्न रत्नों का तो आयुर्वेदिक चिकित्सा में मुख्य रूप में उपयोग है ही। पाश्चात्य चिकित्सक भी पारद तथा अन्य धातुओं की रोग-निवारण-शक्ति को मानने और प्रयोग करने लगे हैं परन्तु उनको अब तक रत्नों की रोग-निवारण-शक्ति का ज्ञान नहीं हैं। आप उपस्थित विद्वान आयुर्वेदज्ञों का कर्तव्य है कि आप उनके सामने रत्नों की रोग-निवारण की अद्भुत शक्ति को स्पष्ट कर दिखावें।

अन्त में बनस्पतियों के विषय में तो मैं अधिक कहना नहीं चाहता हूँ। बनस्पतियों के सूक्ष्म गुणों, प्रभावों तथा शक्ति (वीर्य) के वर्णन विषयक तथा उनके भिन्न-भिन्न असंख्य रोगों के निवारण प्रयोगों के विषय में हमारे प्राचीन संस्कृत वैद्यक ग्रन्थ हज़ारों इस समय भी उपलब्ध हैं। यह आप उपस्थित विद्वानों का कर्तव्य है कि संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों में सूत्ररूप से वर्णित बनस्पतियों के भिन्न-भिन्न गुण, वीर्य्य-विपाक आदि का सर्व सुबोध विस्तार कर लोक-कल्याण के लिये प्रकाशित करें।

यह मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार चिकित्सा के भिन्न-भिन्न अंगों एवं विधानों पर अपने विचार आपके सामने उपस्थित किये हैं। यह आप उपस्थित विद्वानों का कर्तव्य है कि प्राचीन ऋषियों के सूत्रभूत मौलिक सिद्धान्तों की सुविस्तृत सुलभ आधुनिक कालानुकूल व्याख्या कर लोक-कल्याण के लिये प्रकाशित करें।

अन्त में मैंने आपका जो इतना अमूल्य समय लिया है उसके लिये क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि हमारे स्वागत-विषयक प्रबन्ध में जो कमियाँ रह गई हैं उसके लिये आप उदार महानुभाव मुझको क्षमा करेंगे और अपने अमूल्य शिक्षाप्रद विचारों से नगर निवासियों को अनुगृहीत करेंगे।

॥ इति ॐ शम् ॥

001546

॥ श्री धन्वन्तरिर्विजयते ॥

श्री निखिलभारतवर्षीयपञ्चविंशतितम् आयुर्वेद महासम्मेलन के स्वागताध्यक्ष प्राणाचार्य

वैद्यशास्त्री नारायणशङ्कर देवशङ्करजी का

भाषण

यो विश्वंविदधाति पाति सततं संहारयत्यञ्जसा
सृष्ट्वा दिव्यमहौषधीश्च विविधान् दूरी करोत्यामयान् ।
बिभ्राणोऽञ्जलिना चकास्ति भुवने पीयूषपूर्णं घटं
तं धन्वन्तरिरुपमिशममलं वंदामहे श्रेयसे ॥ १ ॥

श्री धन्वन्तरितुल्य वैद्य महोदय व श्रीनगर (अहमदाबाद) नागरिक सभ्यगण !

श्री गुर्जर देश में पुण्य पवित्र साभ्रमती गंगातीर्थ क्षेत्र के तट पर प्रकृति सौंदर्य और बादशाही राजधानी का प्रधानभूत और विविध वाणिज्य व्यापृत से परिपूरित और सुशोभित वणिग्जन और नगर के चतुष्पथों से सुंदर आद्यऋषिगण तथा महात्माओं के निवासस्थान के लिये विश्वविख्यात और कलाकौशल से भारतदेश में अग्रण्य पुराना अहमदाबाद नगर का विजय हो ।

सज्जनों ! इस नगर में आप लोगों के शुभागमन से आज हम लोग पावन हुये हैं । आपका किस प्रकार से सुस्वागत करना चाहिये यह बात मेरी समझ में नहीं आती । सुस्वागत, इतना ही कहने से बैठ रहना यह परिपूर्ण नहीं है । परञ्च श्री अहमदाबाद वैद्य सभा की तरफ से आप लोग इस नगर में निमंत्रित किये गये हैं । सभा का सविस्तार वर्णन स्वागताध्यक्ष रूप से कहना यह मैं अपना धर्म समझता हूँ क्योंकि सभा की ओर से नियत किया है । इसलिये आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये सभा की ओर से इतने काल पर्यंत जितने-जितने कार्य करने में आये हैं उनका संक्षेप में दिग्दर्शन कराता हूँ ।

अहमदाबाद में वैद्यसभा की प्रथम स्थापना ।

जिस समय बम्बई गवर्नमेन्ट से सन् १९१० में वैद्यकीय निबंध (रजिस्ट्रेशन) का प्रारम्भ किया गया उस समय वैद्यसभा की अहमदाबाद में प्रथम स्थापना हुई । तदनन्तर वैद्यसभा की और नागरिकगणों की सभा में वैद्यकीय निबंध के विषय में प्रतिबंधक आवेदन-पत्र (अरजी) प्रस्ताव रूप में करके गवर्नमेन्ट में पेश किये गये ।

(२) अहमदाबाद नगर में सन् १९२५ साल में वैद्यसभा की ओर से श्रीगुर्जर प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ था जिसका छठवाँ अधिवेशन भी आप सज्जनों की कृपा से यहाँ इस समय रक्खा गया है ।

(३) कर्नल हुट्टन महाशय की ओर से आयुर्वेदशास्त्र अवैज्ञानिक ठहराया गया, जिस समय इस तरह का आक्षेप आयुर्वेदशास्त्र पर किया गया था उस वक्त भी समस्त वैद्यों की और नागरिकों की सभा बुलाकर विरोध रूप से प्रस्ताव पेश किया गया था।

(४) आप लोगों को विदित होगा कि पन्द्रह वर्ष पहले देशीय वैद्यक को उत्तेजन देने के लिये मद्रास गवर्नमेन्ट की ओर से देशीय "वैद्यक विमर्शक समिति" मद्रास गवर्नमेन्ट के कायदानुसार सन् १९२१ में स्थापित की गई थी। समिति की ओर से प्रत्येक भाषा में साक्ष्य प्रश्न प्रसिद्ध हुये थे। तदनुसार साक्ष्य प्रश्नों के उत्तर संस्कृत भाषा में लिखकर वैद्यसभा के सभ्यों की तरफ से भेजे थे। यह बात मद्रास समिति के पुस्तक के द्वितीय विभाग में प्रकाशित है। इस पर दृष्टि करने से आपको अवश्य ख्याल आ जायगा।

(५) जोइंट सिलेक्ट समिति के पुस्तक में "कर्नल वॉयर्ड व कर्नल ब्रूम" महाशयों की तरफ से आयुर्वेदशास्त्र पर निम्नलिखित शब्दों में गम्भीर आक्षेप हुये हैं; आक्षेप यह है:—

"आर्य वैदिक के लिये व युनानी वैदिक के लिये धन-व्यय करना व्यर्थ है क्योंकि जैसे मशीनगनों की आवश्यकता होने पर धनुष, बाण व खड्ग का उपयोग व्यर्थ है इसी तरह से एलोपॅथी के सामने आयुर्वेदिक व युनानी पद्धतियाँ बिलकुल व्यर्थ व निःसहाय हैं।" उन महाशयों से ऐसे निष्ठुर और अज्ञानपूर्ण वचन सुनकर किसके मन में खेद न होगा?

इस विषय में भी सभा सभ्यों की ओर से विरोध-प्रदर्शित प्रस्ताव करके यहाँ के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर जीवनलाल व्रजराय जी देसाई महाशय की तरफ से गवर्नमेन्ट कानूनानुसार आवेदन पत्र (मेमोरियम) तयार करके सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के समक्ष भेजा गया है।

(६) बम्बई धारा-सभा में आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये श्री सैयद मुनावर की ओर से आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का व विद्वद्वैद्यों के वैद्यकीय निबंध (रजिस्ट्रेशन) का यों दो प्रस्ताव पेश किये हैं। उनके समर्थन में सभा ने सभ्यों की ओर से प्रस्ताव रूप से प्रार्थनापत्र धारा-सभा में पेश किया है।

(७) अहमदाबाद म्युनिसिपालिटी की ओर से एक आयुर्वेदीय औषधालय तथा डी० जी० लोकलबॉर्ड की तरफ से आयुर्वेदीय दश औषधालय स्थापित हुये हैं। एवं अनेक प्रकार के कार्य आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये सभा ने किये हैं। अब विस्तार भय से इतना ही सूचित कर आगे चलता हूँ।

श्री गुर्जरप्रांतीय सद्वैद्यों का वैद्यक साहित्य।

अन्य प्रांतीय सद्वैद्यों की भाँति गुर्जरप्रांत के वैद्यों ने भी आयुर्वेद की सेवा उत्तम प्रकार से की है। उन्होंने आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये अच्छे-अच्छे ग्रन्थ बना कर अत्यंत लोकोपकार किया है। इन ग्रंथों ने रोगों की शांति के लिये अनेक चमत्कारिक प्रयोग बतलाये हैं। यथा सुप्रसिद्ध स्व० प्रातःस्मर्णीय राजवैद्य श्री कृष्णराम कुन्दनजी जो कि जयपुर महाराजा के राजवैद्य थे वही मेरे पूज्य गुरु थे; वह गुर्जरदेशीय थे। यह बात जयपुर-विलास काव्य की व सिद्धभेषजमणिमाला को भूमिकाओं में मुद्रित है।

"तत्रासीद्भट्ट मेवाड़ो गुर्जरो भूमि निर्जरः॥ तथा च॥ तत्र श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीप्रतापसिंहः देवराज्य समयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूनिर्जरांतर्गत भट्ट मेवाड़

जातीयः स्वयशः प्रख्यापन कृतमतिर्लक्ष्मीराम नामासुमतिरहमदाबाद नामक प्रसिद्ध पुट भेदनादाजगाम ।”

राजवैद्य के वंशजों से अहमदाबाद पवित्र हुआ है। राजवैद्य का स्थान इस नगर में रायपुर चकले में वाघेश्वर की गली में है। उनके कितने ही वंशज यहाँ रहते हैं व कितने ही जयपुर में। राजवैद्य के पौत्र राजवैद्य नरहरी गंगाधरजी अब भी जयपुर की संस्कृत पाठशाला में अध्यापक हैं। मुझे बड़े खेद से कहना पड़ता है कि राजवैद्य गंगाधर का असमय स्वर्गवास हुआ। राजवैद्य के शुभ हस्तों से पनवेल नगर में निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदीय महासम्मेलन की प्रथम स्थापना हुई। महासम्मेलन के प्रथम अध्यक्ष राजवैद्य ही थे। यह सब वृत्तांत प्रसिद्ध है। यह कहने की ज़रूरत न होगी कि वे वैद्यक-शास्त्र व साहित्य-शास्त्र में निपुण थे। स्व० प्रातःस्मर्णीय श्री कृष्णरामजी महाशय की अधो निर्दिष्ट पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वे यह हैं—

(१) श्री जयपुर-विलास काव्य	(सं० १९४४ वि० सन् १८८७ ई०)
(२) मुक्तक मुक्तावली-सार शतक	(,, ,,)
(३) पलाण्डु राज शतक	(,, ,,)
(४) आर्यालंकार शतक	
(५) सिद्धिभेषजमणिमाला (वैद्यक ग्रंथ)	(सं० १९५६ वि० शाके १८२१)

एवं साहित्य विषयों में व वैद्यक विषयों में बहुत प्रसिद्ध हुये हैं। यथा ताद्दक्कुद्द-नारायण चरणानाम् ॥

साहित्यामृतसागर प्रमथने निर्व्याजमन्थाचलः
स्फारस्फूर्जित गद्य पद्य कविता कांतार कण्ठीरवः ॥
रोग्याऽरोग्य विधि प्रबुद्धधिषणो लक्ष्मीविलासास्पदम्
श्रीमत्कुंदन नंदनो विजयते श्रीकृष्णरामः कविः ॥ १ ॥

एवं अयोध्यक गोलवादि द्विवेद कवि दुर्गाप्रसाद महाशय ने भी ऐसा प्रशस्ति पत्र प्रसिद्ध किया है। यथा—

उद्यल्लावण्यलक्ष्मीर्वलयति वपुषां स्वर्गवाराङ्गनाना—
माश्लेषेयः प्रमोदः स्फुरति च गरिमा योऽमृते माधुरीणाम् ।
सौरभ्यं कुंकुमेयत्पयसि विमलतायाप्यहोतत्समस्तम्
मित्रैकत्रेक्षितुं चेदभिलषसि तदा पश्य कृष्णस्य काव्यम् ॥ १ ॥

ऐसा सिद्धभेषजमणिमाला नामक वैद्यक ग्रंथ अत्यंत सुंदर व रसिक संस्कृत पद्यों में बना कर जगत्प्रसिद्ध किया है।

इसमें आपने समस्त रोगों की चिकित्सा के अच्छे-अच्छे अनुभूत प्रयोग प्रदर्शित किये हैं। इस समय पर्यंत ऐसी सुंदर पुस्तक कभी मेरे देखने में नहीं आयी। इस पुस्तक की टीका विश्वविदित पंडित प्रवर आयुर्वेदाचार्य श्री लक्ष्मीरामजी स्वामी ने की है। यह पूज्य गुरु महाराज के पट्ट शिष्य हैं, अतः इन्होंने लिखा है कि—

"न सादिङ् न सदेशोऽपि न च तन्नगरं क्वचित् ।
यत्र श्रीकृष्ण वैद्यानां शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते ॥ १ ॥"

उस समय मैंने भी स्व० प्रा० स्मर्णीय श्रीकृष्णराम गुरुजी के पास रह कर आयुर्वेद शास्त्र का पठन किया था। श्री गुरुचरणों की कृपा से आज सत्तर वर्ष हुए तथापि मैं चिकित्सा अभी तक करता हूँ। इसी तरह उनकी कृपा से भारतीय वैद्यों का सुस्वागत करने का भी मुझको सुअवसर प्राप्त हुआ है। प्रत्येक प्रांत की भाँति इस गुर्जर प्रांत से भी कितने ही आयुर्वेदीय साहित्य समर्पण हुये। साहित्य बहुत नहीं है फिर भी वह रसिक जरूर है। कवि लोलिम्बराज आदि कविराजों के लिखे हुए वैद्य-जीवन, वैद्यामृत, वैद्य-वल्लभ इत्यादि पुस्तकें अपनी रसिकता से जनसमाज में अत्यंत आदरणीय हो चुकी हैं। ऐसी ही आनंदपूर्ण वैद्यक-विषय की श्रेष्ठ पुस्तक सिद्धभेषजमणिमाला बीस वर्ष पहले की बनी हुई है। इसमें कितने ही स्थानों पर पाठकों को विस्मित कर देने वाले श्लोक भी पाये जाते हैं।

"पित्ततापितशरीरवल्लरी सा सखोबदहकीमदवाई ।
औषधं शृणुमृगाक्षिमनोज्ञं जा गुलाबगुलकन्दखवादै॥ १ ॥"
''ज्वरार्दितायाकटुकान्कषायान्नचेत्पिबेत्किंवद वैद्यदेयम् ।
निबोधहंसीमधुरप्रचारे वहां वनप्सा-शरबत पिलावै ॥ २ ॥

(२) विक्रम संवत् की बारहवीं सदी में वैद्यरत्न सोडलजी ने गदनिग्रह ग्रंथ का प्रथम व द्वितीय भाग लिखकर जन-सामज पर बहुत उपकार किया है। यह भी गुर्जर देश-निवासी व वत्स गोत्रीय रैक ब्राह्मण थे। सोढलकृत गुणसंग्रह नामक निघंटु ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ, अतएव किसी विद्वान् वैद्य के पास हस्तलिखित पुस्तक हो तो उसका संशोधन करके प्रकाशित करने की आवश्यकता है। उसके प्रकाशित होने से निघंटु ग्रंथ में बतायी हुई नवीन व अर्वाचीन वनस्पतियों की वृद्धि हो जायगी।

(३) आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला के स्थापक आयुर्वेद-मार्तण्ड यादवजी वैद्यराज से विद्वानगण भलीभाँति परिचित हैं। आयुर्वेदीय ग्रंथमाला द्वारा संशोधन कार्य करके इन्होंने एक भारी कार्य किया है। आयुर्वेदाकाश में यह मार्तण्ड नाम से ही प्रख्यात हैं।

(४) रसवैद्य महाशय जीवराम कालीदास जी ने रसशास्त्र की अनेक पुस्तकों का संशोधन कर प्रकाशित कराये हैं।

(५) इसी भाँति वैद्यराज पं० हरिप्रपन्न जी ने भी रसादि योगों का संग्रह कर रसयोग सागर नामक अद्वितीय ग्रन्थ जनता के समक्ष रक्खा है। इस ग्रंथ का उपोद्घात भी विद्वत्ता से परिपूर्ण है।

(६) वनस्पतिशास्त्र में निपुण गुर्जर देश-निवासी पूज्य सुप्रसिद्ध स्व. वैद्यराज श्री जयकृष्ण जी ने भी वनस्पति-शास्त्र नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध कर हम पर बड़ा उपकार किया है। यह ग्रन्थ अपने विषय में भारत के साहित्य में अतुल्य है।

(७) स्व. प्रातःस्मर्णीय श्री महात्मा झंडू भट्टजी राजवैद्य गुर्जर देश में अब भी प्रसिद्ध हैं। बम्बई में उनके सुपुत्र जुगतराम जी ने औषध-निर्माणशाला (झंडू फार्मेसी) स्थापन की। इसीसे आज सारे भारत देश में देशीय औषधियों की बड़ी प्रसिद्धि हो रही है।

(८) स्व प्रा. रसवैद्य श्री अचलजी महाशय भी गुर्जर देश में व राजपुताने में प्रख्यात

थे। रसशास्त्र में बहुत ही निपुण थे। बम्बई में उनके सुपुत्रों ने भले प्रकार आयुर्वेद का कार्य किया है। उनके ही कुल में वैद्यराज शिवजी महाशय भी स्वयं अंधे हैं फिर भी अपने ज्ञान-चक्षुओं द्वारा वैद्यकीय कार्य निपुणता से करते हैं। उपर्युक्त दोनों वैद्य गुर्जर देशांतरगत काठियावाड़ प्रदेश की सब राजधानियों में प्रसिद्ध थे व हैं।

(९) स्व. प्रा. वैद्यराज प्रभुराम महाराज ने भी बम्बई में कितने ही वर्ष रह कर सनातन वेद धर्मसभा व श्री आयुर्वेद पाठशाला स्थापन की। वेदधर्म-सभा की तरफ से सुश्रुत-ग्रन्थ का गुर्जर भाषा में अनुवाद हुआ है। उनके सुपुत्र प्राणाचार्य पोपटरामजी पाश्चात्य वैद्यक में निपुण हैं तो भी पूज्य पिताजी के आयुर्वेदीय सिद्धांतों के अनुसार चलते हैं। इन्होंने भी आयुर्वेद पाठशाला का प्रकारांतर करके महाविद्यालय की स्थापना की है। इस तरह बम्बई में जिस समय पर रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के समय पर तीन घण्टे तक साक्षी देकर आयुर्वेद वैज्ञानिक है ऐसा प्रतिपादन किया था।

(१०) स्व. वैद्यराज जटाशंकर लीलाधर जी ने भी पाश्चात्य पद्धति और आयुर्वेदिक पद्धति एवं दोनों प्रकार से मिला कर अनेक पुस्तकें वैद्य-कल्पतरु मासिक की भेट रूप से लिखी हैं। उनके सुपुत्र वैद्यराज रविशंकर जटाशंकर जी भी अपने पिता का ही अनुसरण करके मासिक की भेट रूप पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। एवं औषध-निर्माणशाला (गुजरात आयुर्वेदिक फार्मसी) भी भली भाँति चला रहे हैं। इस नगर के महासम्मेलन का स्वागत करता हुआ मैं स्व. जटाशंकर जी के मित्र-ऋण से मुक्त होता हूँ।

(११) गुजरात में खेड़ा ज़िलेके आनन्द तालुकांतर्गत, नापाड़ व जोल ग्राम निवासी स्व. प्रा. स्मर्णीय वैद्यराज राजाराम शास्त्री थे। इस जगह भी इनके पास अनेक विद्यार्थियों ने लघुत्रयी व काव्य पुराण का पठन किया है। उनके अनुभव-सिद्ध प्रयोगों का उल्लेख सिद्ध भेषजमणिमाला में पूज्य गुरुजी ने किया है।

(१२) आयुर्वेद-विज्ञान मासिक के सम्पादक वैद्यराज दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री जी ने भी आयुर्वेद के इतिहास का सार-रूप ग्रन्थ प्रकाशित किया है व उन्होंने सद्व्रत इत्यादि अनेक ग्रन्थ लिख अनन्य सेवा की है।

(१३) आरोग्यसिंधु के सम्पादक रा. गोपाल जी कुंवर जी ने भी विविध वैद्यकीय पुस्तकें लिख कर प्रसिद्ध की हैं। कराची नगर में औषध-निर्माणशाला (सिंधु आयुर्वेदिक फार्मसी) कितने ही वर्षों से स्थापित है। बम्बई व अहमदाबाद में भी उसकी शाखायें हैं। फार्मसी का काम भी अच्छे पाये पर चल रहा है।

(१४) भाग्योदय के सम्पादक वैद्यराज जेठालाल देवशंकर जी ने भी वैद्यकीय पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की हैं। औषधशाला का कार्य भी अहमदाबाद व बम्बई में अच्छा चल रहा है।

(१५) इस स्थान पर मुझको यह कहना उचित प्रतीत होता है कि वैद्यराज बापालाल जी संदिग्ध औषधियों के विषय में निर्णय करने का कठिन कार्य कर रहे हैं। इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने निघंटु आदर्श नामक लगभग ८०० पृष्ठ का ग्रन्थ जिसमें कि लगभग ७०० वनस्पतियों का संग्रह मौजूद है, बड़ा आदरणीय और वैद्य-समाज के लिये बड़ा उपयोगी ग्रन्थ बनाया है। उन वैद्य महाशय ने वृद्धत्रयी की वनस्पतियों का बड़ा भारी खर्च कर प्रकाशित किया है। अभिनव कामशास्त्र, न्याय वैद्यक, दिनचर्या, घरगत्थू वैद्यक इत्यादि अनेक पुस्तकें लिखकर गुर्जर देश को ऋणी किया है।

(१६) रसवैद्य नगीनदास छगनलाल की तरफ से रसादि प्रयोगों का "भारतभैषज्य रत्नाकर" नामक ग्रन्थ के पाँच विभाग प्रकाशित हुए हैं। यह विद्वानों में बड़ा आदरणीय है। इस नगर में ऊंझा आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना बहुत वर्षों से की है। कारोबार अच्छा चलता है।

(१७) "आरोग्य दर्पण" के सम्पादक महाशय ने जो कि वैद्यराज श्री गोपीनाथ जी गुप्त हैं इस नगर में रह कर वैद्यकीय अनेक पुस्तकें लिख कर वैद्यसमाज की अच्छी सेवा की है।

(१८) श्री बालकृष्ण जी पाठक ने भी संस्कृत प्रत्यक्ष-शारीर के दोनों विभागों का गुर्जर भाषा में अनुवाद कर महान् उपकार किया है। यह भी श्री पाटन आयुर्वेदिक कॉलेज के सभ्य और मंत्री है।

(१९) श्री शिवशंकर शुक्ल ने माधव-निदान का अनुवाद व प्रतिसंस्कार अच्छी तरह से किया है और आर्य-दृष्टि के साथ-साथ पाश्चात्य-दृष्टि का सम्यक् सम्मेलन किया है।

(२०) मैंने भी पाश्चात्य व पौर्वात्य निम्नलिखित वैद्यकीय पुस्तकें गुर्जर भाषा में लिखकर यथाशक्ति सेवा करने का प्रयत्न किया है।

(१) ज्वर-चिकित्सा-पद्धति।
(२) अनुभूत-चिकित्सा-पद्धति (द्वितीय आवृति)
(३) क्षयरोग-चिकित्सा-पद्धति इत्यादि।

ऐसे आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये बहुत परिश्रम करने वाले स्वर्गस्थ सद्वैद्य गुर्जर देश में बहुत हो गये हैं। उनकी नामावली नीचे देता हूँ—

(१) बड़ोदा राज्य के स्व० राजवैद्य घनश्यामजी महाशय।

(२) सूरत के स्व० वैद्यराज तिलकचंद महाशय ने भी वैद्यक विषय में निबंध ग्रंथमाला प्रकट कर उपकार किया है। जिसमें अनुभव-सिद्ध प्रयोगों का प्रकाशन है।

(३) अहमदाबाद के स्व० वैद्यराज हरीशंकर भाई व स्व० वैद्यराज गोकुल भाई यह दोनों प्रसिद्ध वैद्यराज थे। इनके सुपुत्र वैद्यराज स्व० बापालालजी भी आयुर्वेद शास्त्र में निपुण थे। उनके सुपुत्र वैद्यराज रणछोड़लाल जी महाशय ने भी जयपुर में श्री० गुरुजी के पास रह कर आयुर्वेद का पठन किया था। खेद होता है कि यह भी स्वर्गस्थ हुए। इस कुल में अब वैद्यराज बाबूलालजी शर्मा आयुर्वेद शास्त्रानुसार चिकित्सा कर रहे हैं।

(४) अहमदाबाद के स्व० वैद्यराज रणछोड़लालजी मोतीलालजी पुराने वैद्य थे। इन्होंने वैद्यक शास्त्र में बहुत कुशलता प्राप्त की थी। इनके घर में हस्तलिखित चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रंथ मौजूद हैं। जिस समय चरक सुश्रुतादि ग्रन्थ का प्रति संस्कार हुआ तब वैद्यराज यादवजी महाशय ने भी उनका बड़ा उपयोग किया था। उनके पुत्र वैद्यराज नंदलालजी भी पिता के अनुसार कार्य करते हैं। एवं प्राचीन स्व० वैद्यराजों ने आयुर्वेद की बहुत सेवा की है। उनकी नामावली यह है—

(५) राजवैद्य हेमुभाई
(६) वैद्यराज रवचंद छगनलालजी शाह
(७) ,, बापूराम कृष्णारामजी (घमीजवाले बालवैद्य)
(८) ,, बालगोविंद (बालवैद्य)
(९) ,, सुरचंदभाई (बहरा वैद्य)

(१०) ,, डुंगरसीभाई
(११) ,, मथुरादासजी
(१२) ,, भजगोविंदजी और वैद्य कृष्णाराम त्रिवेदी शाहपुर वाले
(१३) ,, अमृतलाल कुँवरजी पढ़ीआर
(१४) ,, जयशङ्कर श्रीनाथजी वाले
(१५) ,, प्राणाचार्य त्र्यंबक त्रिभूवन मुनि इत्यादि।

एवं स्व० अन्य वैद्यराजों ने भी आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिये लोगों की सेवा की है अतएव उन्हीं का उपकार मानता हूँ।

आयुर्वेद की उन्नति के उपाय और वैद्यों का कर्तव्य।

ऊपर की सब बातें कहने के पश्चात अब हमारा क्या कर्तव्य है इसका दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। आपने अनुभव से देखा है कि हमारा औषधि-भंडार विशाल है। इसकी उन्नति के लिये हम लोगों को कटिबद्ध होना चाहिये। इस आयुर्वेद शास्त्र के पठन-पाठन का प्रचार करने के लिये सुशिक्षित और अनुभवी वैद्य तैयार होने से गुजरात प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में आयुर्वेद-विद्यालय और महाविद्यालय की स्थापना हो सकेगी। आयुर्वेद महाविद्यालय का प्रस्ताव संपूर्ण रीति से गत सम्मेलन में किया गया था। उसके अनुसार महाविद्यालय की स्थापना करने की आवश्यकता है। अभी गुजरात प्रान्त में निम्नदर्शित महाविद्यालय और पाठशालायें चलती हैं।

(१) बड़ोदे में श्रीमंत सरकार महाराजाधिराज गायकवाड़ की ओर से आयुर्वेद पाठशाला और श्रावण मास में दक्षिणा परीक्षा, आयुर्वेद शास्त्र की मध्यमा और उत्तमा परीक्षा प्रचलित है। उत्तमा परीक्षा की प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को सौ रुपये के साथ वैद्य-रत्न की पदवी दी जाती है।

(२) बड़ोदा राज्य के अन्तर्गत पाटण नगर में श्रीमान् सेठश्री उजमसी पित्ताम्बर की ओर से श्रीपाटण आयुर्वेद महाविद्यालय नाम की संस्था स्थापित हुई है। इस संस्था में श्रीमंत सरकार महाराजाधिराज गायकवाड़ ने एक लक्ष रुपये का दान दिया है। संस्था में आयुर्वेदिक और एलोपॅथिक का अभ्यास चलता है।

(३) बम्बई में श्री प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज नाम की संस्था चलती है। संस्था के व्यवस्थापक प्राणाचार्य पोपटराम प्रभुराम महाशय हैं।

(४) बम्बई में मारवाड़ी आयुर्वेद पाठशाला।

(५) भावनगर में आयुर्वेद पाठशाला।

(६) अहमदाबाद में श्रीनगर संस्कृत पाठशाला में आयुर्वेद विभाग।

(७) श्री आयुर्वेद पाठशाला, गवर्नमेन्ट पत्र द्वारा ता० ३–२–२५ के रोज से रजिष्ट्री कराकर स्थापित की गई है। पाठशाला का अभ्यास-क्रम निखिल भारतायुर्वेद-विद्यापीठ की नियमावली के अनुसार चलता है। इसके प्रधान व्यवस्थापक का काम करने के लिए मुझे ही नियत किया गया है।

(८) श्री अनंत पाठशाला, सांकडीशेरी इत्यादि।

श्री गुर्जर देश में निम्नदर्शित स्थलों में वैद्यसभाओं की स्थापना हुई है।

(१) बम्बई, (२) सूरत, (३) भड़ोंच, (४) बड़ोदा, (५) भावनगर, (६) राजकोट, (७) अहमदाबाद, (८) नड़िआद इत्यादि।

आरोग्याश्रम की आवश्यकता।

गुजरात में दिन-प्रतिदिन प्राण-घातक क्षयरोग बढ़ता जाता है। इस विषय में जब मैं गम्भीर विचार करता हूँ तब मुझको आरोग्याश्रम की आवश्यकता मालूम पड़ती है। जहाँ-जहाँ पर ऐसे रोगियों के लिए जल-वायु अनुकूल पड़ता हो, वहाँ-वहाँ स्थान निश्चित करके क्षय के रोगियों को आराम मिले, ऐसे स्थानों में आरोग्याश्रम बनाने की खास जरूरत है। वैद्यक-विद्या के लिये भी मशहूर पच्छे गाम में ऐसा एक छोटासा आरोग्याश्रम है। किन्तु पर्याप्त संख्या में आरोग्याश्रम बनाने के लिये प्रान्त के राजा महाराजा और धनिकों को आरोग्याश्रम की उपयोगिता समझा कर जिस प्रकार भी हो सके उस प्रकार से उत्तम प्रमाण में आरोग्याश्रम बनवायें। ऐसा प्रयत्न सम्मेलन की ओर से हो, यह मैं चाहता हूँ। क्योंकि क्षय जैसे प्राण-घातक रोग से भारत दुर्दशा को पहुँच रहा है।

आयुर्वेदीय औषधालय।

(१) अहमदाबाद म्युनिसीपैलिटी की ओर से आयुर्वेदीय औषधालय स्थापित हुआ है। वहाँ का कार्य अच्छी तरह से चलता है।

(२) डी० जी० लोकलबोर्ड की ओर से दश आयुर्वेदीय औषधालय बहुत वर्षों से हैं। वहाँ का कार्य भी अच्छी तरह से चलता है। दोनों संस्थाओं के कार्यकर्ताओं का मैं अहसान मानता हूँ। इसके साथ प्रार्थना करता हूँ कि बहुत प्रमाण में आयुर्वेदीय औषधालयों की स्थापना करें।

(३) श्रीमान् सेठ अम्बालाल महाशय की ओर से धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय रीची रोड के रास्ते पर दश वर्षों से स्थापित है। इस औषधालय में मुफ़ दवाइयाँ दी जाती हैं।

(४) श्रीमती रूपाबाई तथा चंपाबाई की ओर से भी धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय बहुत वर्षों से चलता है।

(५) स्व० सेठ जेठाभाई अमृतलाल महाशय की तरफ से धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय चलता है।

(६) माधवपुरा महाजन की ओर से भी धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय चलता है।

मैं आज आपके सामने जो कुछ कहना चाहता हूँ वह कुछ नया नहीं है। क्योंकि संसार में जो कुछ बोला जाता है व लिखा जाता है या खोजा जाता है वह सबका सब चर्वित-चर्वण पिष्ट-पेषण ही है। फिर भी एक ही बात को बार-बार कहने से उत्तम परिणाम निकलता है। ऐसी मेरी कुछ धारणा है। चरकसुश्रुत-वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेद शास्त्र के धुरन्धर ग्रन्थकारों ने जो सिद्धान्त पद्धति बताई है इसके ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक और अशास्त्रीय है और वैद्य ऊँट-वैद्य हैं, इन आक्षेपों का उत्तर जहाँ तक मुझ से बन सकेगा वहाँ तक दोनों प्रथाओं की तुलना करके देने का प्रयत्न करूँगा। साथ ही यह भी बताने का प्रयत्न करूँगा कि आयुर्वेद अन्य सब पद्धतियों की अपेक्षा वैज्ञानिक और शास्त्रीय है।

आयुर्वेद का इतिहास।

आयुर्वेद के अति प्राचीन ग्रन्थों में से ब्रह्मसंहिता, दक्षसंहिता आदि ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं होते। परन्तु ये ग्रन्थ प्राचीनकाल में विद्यमान थे। यह बात चरक-सुश्रुतादि आयुर्वेद के ग्रन्थों से सिद्ध होती है। चरक-सुश्रुत और वाग्भट ये तीनों ग्रन्थ आयुर्वेद के मूलभूत हैं। इन तीनों ग्रन्थों को बृहत्त्रयी कहते हैं। इन तीनों में चरकसुश्रुत ये दोनों ग्रन्थ वाग्भट की अपेक्षा प्राचीन और स्वतंत्र है। वाग्भट में इन दोनों पुस्तकों का आधार लिया है। और यह सुश्रुत-चरक की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित लगता है। इन ग्रन्थकारों का कालनिर्णय ठीक प्रकार से नहीं हो सकता तथापि चरक औषध-संग्रह के लिये सुविख्यात है और सुश्रुत शस्त्र-विद्या के लिये प्रसिद्ध है। इस देश का आयुर्वेद-ज्ञान अरब और यूनान के लोगों द्वारा यूरोप में फैला है और अर्वाचीन वैद्यक-शास्त्र के उद्भव में यही प्राचीन ज्ञान उपयोगी हुआ।

चरक और सुश्रुत में लिखे हुये औषधियों के वर्णन और रोगों की चिकित्सा से प्रत्यक्ष निरीक्षण करने की प्रथा के लिये हमको आश्चर्य और अभिमान उत्पन्न होता ही है।

ऋग्वेद से लेकर सिकन्दर के समय तक संपूर्ण पृथ्वी में "आयुर्वेद" ही वैद्यकशास्त्र का प्रमाणभूत शास्त्र था। इसमें दो मत हो ही नहीं सकते। एक दूसरे देश के लोगों द्वारा आयुर्वेद का प्रचार संसार में हुआ। और उन्होंने अपनी-अपनी भाषायें बनाये। वास्तव में यूनानी और एलोपॅथी ये दोनों चिकित्सायें इसी आयुर्वेद की पुत्रियाँ हैं।

मित्रों! आयुर्वेद का इतिहास और आयुर्वेद की भूतकाल की अवस्था ये बातें आयुर्वेद के बने हुये ग्रन्थों पर से जानी जा सकती है। आयुर्वेद यह संपूर्ण कला-कौशल से पूर्ण बना हुआ एक महल था। उसको काल के क्रूर आक्रमणों ने तोड़कर छिन्नभिन्न बना दिया है और आगे चोरी से इसके कितने ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं। और जिस काल बल से एवं कारणों से भारतवर्ष की अधोगति तथा दुर्दशा हुई है। उन्हीं कारणों से भूतपूर्व प्रकाशित आयुर्वेद की भी अवनति हुई है।

अपना आयुर्वेद यह केवल दवाइयों का शास्त्र नहीं था, यह केवल रोगों का शास्त्र न था। यह केवल स्थूल-शरीर या स्थूल पदार्थों से खेलने की पदार्थ विद्या नहीं थी; परन्तु यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं इहलोक तथा परलोक का तत्त्वज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में करनेवाला था और अब भी है। आयुर्वेद की दिवाल केवल पदार्थ विद्या की नींव के ऊपर नहीं रची गई थी बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का लक्ष्य यह शास्त्र बनाया गया था।

क्या वर्तमान चिकित्साशास्त्र की बातें आयुर्वेद में नहीं थीं? मैं मानता हूँ कि सूत्र-रूप में अथवा दूसरे रूप से यह सब बातें आयुर्वेद में हैं। आयुर्वेद का शारीरिक शास्त्र और शस्त्रोपचार-विद्या (Anatomy & Surgery) इन्द्रिय-विज्ञान (Physiology) आरोग्य-शास्त्र (Hygiene) वनस्पति-शास्त्र (Botany) और औषध-गुण-परिचय (Materia Medica) आदि प्रत्येक विषय के ग्रंथ कालयोग से नष्ट हो गये होंगे तो भी वर्तमान समय में मिलनेवाले ग्रंथों से तथा इनमें वर्णित रोग-निदान और उपचार आदि सबों से कहा जा सकता है कि ऊपर लिखे ये सब अंग परिपूर्ण दशा में रहे होंगे। किसी कवि ने ठीक कहा है कि—

"अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं न तेषु किञ्चिद्भुवि द्रष्टुमस्ति।
चिकित्सित ज्योतिषमंत्रवादा पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति॥

काव्य के मधुर रस से प्यास बुझती नहीं। व्याकरण की धातु-शुद्धि से शरीर की धातु-शुद्धि नहीं होती। एवं दुःखी मनुष्य का दुःख ब्रह्मज्ञान की शुष्क बातों से दूर नहीं होता? इसलिये आधिव्याधि को दूर करने के लिये यदि कोई शास्त्र समर्थ है तो वह केवल आयुर्वेद का चिकित्सा-शास्त्र ही है।

आयुर्वेद यह वेद ही है।

ऋग् यजुः साम और अथर्व ये चार वेद हैं और आयुर्वेद, धनुर्वेद गन्धर्ववेद और अथर्ववेद ये चार इनके उपवेद हैं। चरक और सुश्रुतादि ग्रंथों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार वेदों को ब्रह्मा ने बनाया है उसी प्रकार उपवेदों को भी ब्रह्मा ने बनाया है। वेद में आयुर्वेद सम्बन्धी बहुत सी आश्चर्यजनक बातें मिलती हैं। महर्षि गौतम ने आयुर्वेद सम्बन्धी मंत्रों के आधार से सब वेदों की सत्यता अनुमान द्वारा सिद्ध करने की युक्ति बताई है।

आयुर्वेद के आठ अंग

शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, अगद-तंत्र, रसायन-तंत्र, और वाजीकरण तंत्र ये आठ अंग हैं। इसलिये इसको अष्टाङ्ग कहते हैं।

आयुर्वेद की परम्परा

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने वेदों के साथ में इस अष्टाङ्ग आयुर्वेद को लगभग हजार अध्यायों की संहिता के रूप में बनाया था। आरम्भ में ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद के आठों अङ्ग सिखाये थे। प्रजापति के पास से अश्विनीकुमारों ने सीखा। इन्होंने इन्द्र को सिखाया और इन्द्र के पास से ऋषियों ने ज्ञान प्राप्त किया जिन्होंने आयुर्वेद का पृथ्वी पर प्रचार किया।

आयुर्वेद अपौरुषेय है।

ऊपरि लिखित बात के अनुसार आयुर्वेद को अपौरुषेय और ईश्वर-प्रणीत मानते हैं। माता, पिता, गुरु, ऋषि आदि से लेकर ईश्वर के वाक्यों में शब्द-प्रमाण कहते हैं। इस शब्द-प्रमाण को लेकर आयुर्वेद के ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद में "बाबा-वाक्यंप्रमाणम्" वाली कहावत बहुत है। हमारे स्वतंत्र विचार से काम करने की अपेक्षा अन्धश्रद्धा से वर्तने की प्रथा अधिक प्रचलित है। आर्यों के धर्म-भाव को समझनेवाला व्यक्ति ऐसा आक्षेप कर ही नहीं सकता। आर्यों की मान्यता के अनुसार वेद नित्य एवं सत्य वस्तु है। सत्य का आश्रय लेने पर मनुष्य की स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। इससे वेद के बताये हुये मार्ग के अनुसार करने में मनुष्य की बुद्धि का स्वातंत्र्य या विचार-स्वातंत्र्य नष्ट नहीं हो जाता। अपने शास्त्रों के भिन्न-भिन्न भाष्यों से यह देखा जा सकता है कि जब कभी किसी विचारक को यह अनुभव हुआ कि अमुक टीका या अर्थ भूलयुक्त है; तभी उसने बिना किसी संकोच के अपना सच्चा अभिप्राय प्रकट करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया। इस प्रकार के खण्डन-मण्डन में एक ही उदाहरण श्री शंकराचार्य और श्री रामानुजाचार्य का लेकर देख सकते हैं कि हमारे यहाँ बुद्धि और विचारों का कितना अधिक स्वातंत्र्य है।

और भी, शब्द-प्रमाण में प्रमाण शब्द का अर्थ अंग्रेज़ी में अथॉरोटी किया जाता है। वह अनुवाद अशुद्ध है। पाश्चात्य लोक इस शब्द को सत्तावाचक समझते हैं, और

जहाँ सत्ता होती है वहाँ पर स्वातंत्र्य नहीं होता, ऐसी उनकी मान्यता है। हमारा प्रमाणशब्द सत्तावाचक नहीं। हमारे शास्त्रकार सत्ताके बलपर किसी को मनवाते नहीं। परन्तु वे द्रष्टा होते थे, वैज्ञानिक रीति से विषयों को जानते थे। इसी कारण उनके वचनों के प्रति आदर भावना रखकर हम शब्दप्रमाण मानते हैं। वेद की टीकाओं की भांति आयुर्वेद में कितने विषयों की वृद्धि और स्वतंन्त्रतापूर्वक चर्चा की गई है। चरक और सुश्रुत ये आयुर्वेद के प्रमाणभूत ग्रंथ माने जाते हैं। ये दोनों ग्रंथकार कई बातों में एक दूसरे से पृथक् पृथक् जाते हैं। तथापि इनके पृथक् पृथक् जाने की दक्षता और वैज्ञानिक दृष्टि स्पष्ट प्रतीत होती है।

आयुर्वेद का धर्मके साथ सम्बन्ध

आयुर्वेद के विरुद्ध एक यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद के तत्व, न्याय सांख्यदर्शन एवं वेद पुराण इतिहास आदि से उठाये गये हैं। इस प्रकार से इस वैद्यविद्या को तत्त्वज्ञान और धर्म के साथ मिलाकर विज्ञान रहित बना दिया है। यह आक्षेप भी निराधार है। आर्यों के मतानुसार मनुष्य का ऊंचे से ऊंचा पुरुषार्थ और अन्तिम ध्येय पूर्णता प्राप्त करना है अर्थात् परब्रह्म का सक्षात्कार करके मुक्ति प्राप्त करना है। इसके लिये तन और मन की उत्तम से उत्तम आरोग्यता होनी चाहिये। मनुष्य-जन्म को सार्थ करने के लिये शारीरिक आरोग्यता की खास जरूरत है। इसीलिये कहा भी है "शरीरमाद्यंखलुधर्मसाधनम्" संक्षेप में कहें तो उभयों का प्रत्येक विचार, तत्व, ज्ञान, विज्ञान, और धर्म से भरा हुआ है इतना ही नहीं परन्तु इन तीनों में एक दूसरे का समावेश हुआ है और यही सच्ची वैज्ञानिक पद्धति है।

आयुर्वेद वैज्ञानिक है

पाश्चात्य लोगों की यह धारणा है कि आयुर्वेद शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक नहीं है। यह सबसे बड़ा आक्षेप है। आयुर्वेद जैसा वैज्ञानिकशास्त्र और विज्ञान की दृष्टि से जिस प्रकार आयुर्वेद विषयों की चर्चा करता है इस प्रकार का विज्ञान तो पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र में ढुंढ़ने से भी नहीं मिलता। आयुर्वेद विज्ञान एवं कला इन दोनों दृष्टियों से देखता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे इसके विभाग नीचे लिखे अनुसार करता हूँ। प्रत्येक को निरीक्षण करने से आपको विश्वास हो जायगा कि सच्चे विज्ञान के सिवाय इसमें एक भी खोटी बात नहीं रक्खी गई है।

(१) तीन प्रकार के प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द
(२) पञ्चभूत का सिद्धान्त
(३) त्रिधातु सिद्धान्त
(४) त्रिदोष सिद्धान्त
(५) निदान और चिकित्सा
(६) रस, गुण, वीर्य, विपाक, और प्रभाव गुणवाली औषधियाँ

हमारा यह वैज्ञानिक दृष्टि से किया हुआ वर्गीकरण इतना अधिक सफल हुआ है कि इसके लिये "फिलाडलफिया (अमेरिका) के सुप्रसिद्ध डॉक्टर ज्योर्ज क्लार्क एम० ए० एम० डी० ने कहा है कि चरक के प्रत्येक अध्याय को पढ़ते हुए मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचता हूँ कि यदि वर्तमान समय के डॉक्टर फार्मोकोपीया की वर्तमान कालीन नवीन औषधियों को छोड़कर चरक में बताई हुई प्रणाली के आधार से रोगों का निदान और चिकित्सा करें तो अकाल मृत्यु

की संख्या बहुत घट जाय और अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित जीर्ण रोग बहुत कम देखने में आयें।

त्रिधातुः

वात, पित्त और कफ ये तीन धातु हैं। शरीर का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा अवयव इनसे बना है। इसलिये इनको धातु कहते हैं। धातु शरीर का आधाररूप होता है। इन तीनों के अभाव होने का अर्थ यह है कि शरीर का अभाव; जब ये सम-विषम रूप में होते हैं तब दोष का रूप लेते हैं और रोग उत्पन्न होता है। कई विद्वान् धातु को दोषरूप से और दोष को धातु रूप से कहते हैं। इसलिये ये पर्य्याय वाचक है इस प्रकार कहने का कारण आयुर्वेद का एक स्वयं सिद्ध प्रमाण है—अर्थात् आरोग्यता और अनारोग्यता के आधार धातु के बलाबल के ऊपर टिका हुआ है। जिस समय धातु नियमित स्थिति में होता है उस समय इसे प्रसाद स्थिति में कहते हैं और जब अनियमित स्थिति में होता है, तब इसको मलस्थिति में कहते हैं। इस प्रकार से हम धातु को इसके कार्यकारण सम्बन्ध से भिन्न स्वरूप में जान सकते हैं। धातु अथवा दोष-प्रसाद-भूत धातु के अर्थ में एवं कीट-भूत मलके अर्थ में व्यवहार होते हैं।

विज्ञान की दृष्टि से शारीरिक क्रिया वात, पित्त और कफ, इस त्रिधातु के ऊपर आधार रखती है, और मानसिक क्रिया सत्व, रज और तम इस त्रिगुण के ऊपर आधार रखती है। सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति इन तीनों गुणों से होती है। ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। वेद में समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली तीन गुणों से युक्त इस प्रकृति का उल्लेख आता है।

इसीलिये प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक कही जाती है। सत्व, रज और तम ये तीनों गुण जीवित पुरुष में क्रम से वात, पित्त और कफ के रूप में दिखाई देते हैं। जीवित मनुष्य का शरीर वात, पित्त और कफ से भरा हुआ कहा जाता है। मुर्दे मनुष्य का शव पंचभूतों की खोल है। मनुष्य की खोल में जब तक जीव है तब तक वह जीवित है। जीते हुये मनुष्य के शरीर में जीवन का अस्तित्व है और मुर्दे में जीवन का अस्तित्व नहीं होता। इन दोनों को पंचभूतात्मक वात, पित्त और कफ वाला कहते हैं अर्थात् यह पंचभूतात्मक तथा त्रिधातु वाला कहा जाता है। सब में त्रिधातु नहीं हो सकता। इस प्रकार से शरीर का पृथक्करण दो प्रकार का है। पंचभौतिक और त्रिधातु इन दोनों का संयोग नीचे लिखे अनुसार है।

आकाश और वायु-वात जो राजसिक है—के रचना-कार्य में प्रविष्ट होते हैं। तेज पित्त (जो सात्विक है) के रचना कार्य में प्रविष्ट करता है। और पृथ्वी तथा अप कफ (जो तामसिक) है, में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश इससे पंचमहाभौतिक खोल में जीवन का प्रवेश होता है। तब जीव का यह शरीर वात, पित्त और कफ से बना हुआ है ऐसा कहा जाता है। यह वात, पित्त और कफ से बना जीव धारण करनेवाला शरीर सत्व, रज और तमगुणवाला त्रिगुणात्मक बना। इसलिये मनुष्य की प्रकृति के अनुसार वातल, पित्तल, और श्लेष्मल ये तीनों भाग किये गये हैं।

वायु विशेष हो तो इस प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्य को वातल, पित्त अधिक हो तो इस प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्य को पित्तल, और कफ अधिक हो तो इस प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्य को श्लेष्मल कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इनमें से कौन सी प्रकृति है यह जानने की खास जरूरत है। क्योंकि इनके उपर से ही मनुष्य की आरोग्यता या अनारोग्यता जाँच

करने की आयुर्वेद में आज्ञा है। शरीर के अन्दर की क्रियायें वात, पित्त और कफ से नियमित होती हैं। हम जो खुराक खाते हैं उससे धातु बनता है। रस, रक्त आदि को भी धातु रूप में गिना जाता है परन्तु इनको दुष्य शब्द से पहिचाना जाता है। क्योंकि ये वात, पित्त और कफ से दूषित होते हैं। भोजन खाने के पीछे उसका रस बनता है। यह क्रिया आमाशय ग्रहणी और पक्वाशय में होती है। रस बनाने वाले भी वात, पित्त और कफ हैं। प्राणवायु के रूप में वात भोजन को आमाशय में भेजती है, यहाँ पर कुछ रूपान्तर होने के पीछे इसको ग्रहणी में पहुँचाती है। यहाँ पित्त (पाचक पित्त) से कफ को द्रव रूप करके इसमें भोजन पचाने की क्रिया होती है। इस प्रकार से इसका रस बनता है। इसके पीछे वात, पित्त और कफ की वारम्वार क्रिया होने से रक्त बनता है, पीछे रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि (हड्डियाँ)। अस्थि से मज्जा, और मज्जा से शुक्र बनता है। इस प्रकार से सप्तधातु बनती हैं और भी इसमें से एक धातु बनता है जिसको कि ओज कहते हैं। यह ओजस् सातों धातुओं का सत्व अर्थ साररूप कहा जाता है। ऊपर के अनुसार यदि शुक्र धातु तक की क्रियायें ठीक प्रकार से न हों तो ओजस् धातु को बहुत नुकसान पहुँचता हैं और कई बार रस ओजस् धातु की कमी के कारण जीवन की क्रिया एक दम बन्द हो जाती है। शरीर की इन सातों धातुओं की क्रिया आयुष्य को भी स्थिर करती है। इसलिये इस शास्त्र का नाम आयुर्वेद है। आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या आदि का प्राधान्य है। चर्यादि का पालन आवश्यक है। अतएव महर्षि चरकाचार्य जी का कथन का स्मरण करना उचित है। "कोऽरुक् कोऽरुक क्षुत्कालेहित मितभूक्कृत्चङ्क्रमणः क्रमेणवामशयः। अविधृतमूत्र परीषस्त्रिपुजितात्मा पतङ्गसोऽरुक् स्यात्।" एवं पथ्याऽपथ्य पालन करना भी आवश्यक है इस विषय में शास्त्रकार कहते हैं कि "पथ्येसतिगदार्तस्यकिमौषध निषेवणैः। पथ्येऽसतिगदार्तस्यकिंमौषधनिषेवणैः।" श्रीमद्भगवद्गीता में कथन किया है कि "शास्त्रों की आज्ञाओं का पालन करना उचित है।" "ये शास्त्रविधि मुत्सृज्यवर्तते काम कारतः न स सिद्धि-मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्। तस्माच्छास्त्र प्रमाणन्ते कार्याऽकार्य व्यवस्थितौ।" आयुर्वेद शास्त्र में भी कहा है कि "आयुर्वेदो पदेशेषु विधेयः परमादरः।"

आयुर्वेद शास्त्र में दोषानुसारिणी चिकित्सा है। अतएव शास्त्र का कथन है कि "नास्तिरोगी विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः। अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपा चरेत्।" श्री काशीक्षेत्र में पञ्चभूत और त्रिदोष सिद्धान्त के विषय में नवेम्बर की ता० २ से ता० ८ तक विद्वान् वैद्यों की परिषद् हो गई। निवेदकों की ओर से प्रश्न पत्र निकला था। आयुर्वेद शास्त्र में पञ्चभूत और त्रिदोष सिद्धान्त का अन्योन्याश्रयत्व है। इस विषय में पञ्चभूत त्रिदोष सिद्धान्त समालोचना नाम की पुस्तक प्रसिद्ध हुई है। यह पुस्तक अवलोकन करने की विज्ञप्ति है। काशी की परिषद् में यह पुस्तक भेजी थी। सम्मेलन में भी विद्वानों ने समर्पण किया है।

सज्जनों! आज हम अपने को अतीव भाग्यशाली समझते हैं जो आप सबने इस शीत काल में गृह का सुख छोड़कर यात्रादि कष्टों को सहते हुये, नियत समय में अखिल भारत वर्षीय २५वाँ अधिवेशन में अपने शुभागमन से जो कुछ शोभा बढ़ाई है उसकी हम आप लोगों से गुर्जर प्रान्त अहमदाबाद वैद्यसभा और स्वागतकारिणी-समिति की ओर से क्षमा-प्रार्थना करते हुए आप सब लोगों का स्वागत करते हैं। हम लोगों के पास इस समय आप लोगों की स्वागत-सेवा-निमित्त कोई सर्वोत्कृष्ट सामग्री नहीं है जिससे हम आप लोगों को अच्छी तरह

संतोष कर कृतार्थ बनते। परन्तु आयुर्वेद के पुनरुद्धारार्थ कटिबद्ध होकर, मद्रास, बंगाल, यू० पी०, बम्बई आदि प्रसिद्ध शहरों से कष्ट उठाकर आकर आपने इस नगर को पवित्र किया है। इसलिये आपका अहसान मानता हूँ। स्वागत करने में प्रमाद होना संभव है इसलिये "प्रमादो मानुषो भावः" इति न्याये आप सज्जनों से क्षमा चाहता हूँ। अंत में श्री धन्वन्तरि भगवान की प्रार्थना करने के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां।
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदां॥
मणिं श्री वत्साङ्के हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा।
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरि विभुः॥१॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ संपूर्णम्॥

आयुर्वेद के नवयुग-प्रवर्त्तक चरकसंहिता की जल्पकल्पतरुटीका के प्रणेता

धन्वन्तरिकल्प कविराज गंगाधर की

संक्षिप्त जीवनी

कविराज गंगाधर को केवल वैद्यरूप से परिचय देना ठीक नहीं, क्योंकि उनके सदृश इन एक दो शताब्दियों में सर्वशास्त्रज्ञ विविध विषयक ग्रंथों के प्रणेता किसी विद्वान् ने जन्म-ग्रहण किया है, इसमें सन्देह है। अब तक संस्कृत भाषा में विरचित विविध विषयों के उनके ७६ ग्रन्थ मिले हैं। जिनका नामोल्लेख अन्त में किया जायगा।

आपका जन्म-स्थान बंग-देशान्तर्गत यशोहर (Jessore) जिला के मागुरा ग्राम में एक सुप्रसिद्ध वैद्यवंश में हुआ था आपके पिता का नाम भवानीप्रसाद राय और माता का नाम अभया देवी था। तथा जन्मकाल बंगला सन् १२०५–२४ आषाढ़ कृष्ण नवमी शुक्रवार था। आप संस्कृत से नाना शास्त्र का अध्ययन कर १८ वर्ष की अवस्था में राजशाही जिले के वैद्य बेलघरिया नामक स्थान के विख्यात कविराज रामकान्त सेन जी के पास आयुर्वेद अध्ययन करने आये।

यहाँ आकर स्वयं आयुर्वेद का अध्ययन करते हुए अन्य छात्रों को संस्कृत व्याकरण-साहित्यादि की अध्यापना भी किया करते थे। उसी छात्रावस्था में अपने छात्रों के सुभीता के लिये मुग्धबोध व्याकरण की "महावृत्ति" नामक एक नूतन टीका की रचना की। कविराज गंगाधर के पिता ने इस टीका की परीक्षा के लिये उस समय के एक प्रख्यात वैय्याकरण विद्वान् के पास ले गये थे, और उनसे आपने अपने पुत्र का नाम नहीं कहा था। उन्होंने टीका को ध्यानपूर्वक पढ़कर कहा—इस टीका को तो मैंने पहले कभी भी नहीं देखा था; परन्तु मालूम होता है कि यह अति प्राचीन एक उत्कृष्ट टीका है। इससे मालूम होता है कि छात्रावस्था में ही उनकी रचना-शक्ति कैसी तीव्र थी।

कविराज गङ्गाधर ने आयुर्वेद का अध्ययन समाप्त कर २१ वर्ष की अवस्था में ही कलकत्ता में प्रथम चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया। किन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण अपने पिता के आदेशानुसार मुर्शीदाबाद में जाकर चिकित्सा-कार्य में प्रवृत्त हुए। मुर्शीदाबाद मुसलमानी राज्य में 'बंगाल, विहार और उड़ीसा की राजधानी थी। उस समय भी वहाँ बहुत धनाढ्य जमीन्दार और व्यवसायी थे। यहाँ आने के थोड़े ही दिनों बाद इनकी यश-ध्वजा चारो ओर फहराने लगी। उस समय कासिमबाजार की विख्यात् महारानी श्रीमती स्वर्णमयी कठिन रोग से आक्रान्त हुई थीं। कविराज गंगाधर उस समय नवयुवक थे। परन्तु यशस्वी होने के कारण अन्यान्य वैद्यों के रहते हुए भी महारानी जी की चिकित्सा का भार आप ही को सौंपा गया। इनकी चिकित्सा के नैपुण्य से महारानी ने सम्पूर्ण आरोग्य लाभ किया। तब गंगाधर उस राज-दरबार के पारिवारिक चिकित्सक हुए, और इन्हें मासिक वृत्ति मिलने लगी।

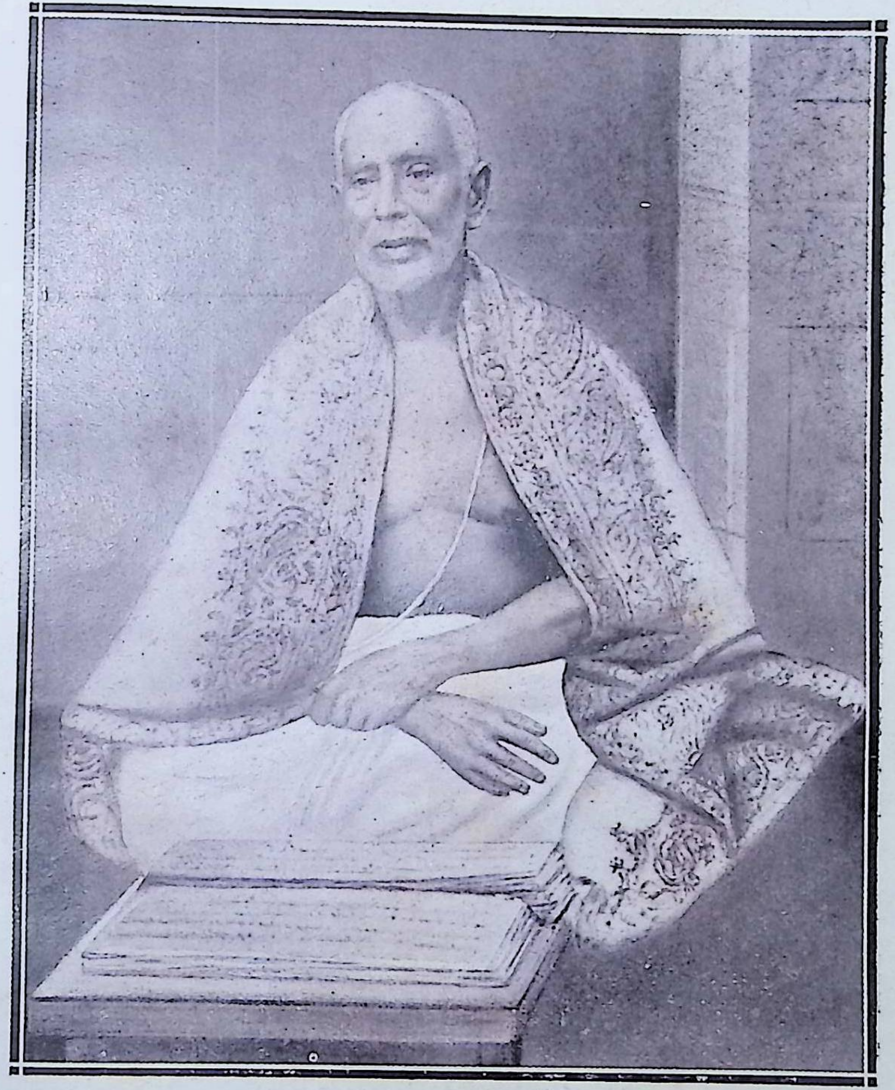

श्रीमान् स्वर्गीय कविराज श्रीगंगाधरराय कविरत्न **मुर्शिदाबाद** ।
चरककी जल्पकल्पतरु व्याख्या आदिके लेखक ।

उनका शास्त्रज्ञान और उपस्थित बुद्धि इतनी प्रबल थी कि उससे पाश्चात्य चिकित्सकों को भी अत्यन्त विस्मित होना पड़ता था। उस समय मुर्शीदाबाद के नवाब बहादुर एक बार रोगग्रस्त हुए, उनकी चिकित्सा के लिये डा० कोटा प्रभृति प्रसिद्ध डाक्टरगण बुलाये गये। किन्तु उन लोगों ने रोग असाध्य समझ कर चिकित्सा छोड़ दी। परन्तु गंगाधर जी की चिकित्सा से नवाब बहादुर ने आरोग्य लाभ किया। तब से उनकी ख्याति समग्र देश में और भी जोर से फैल गयी और नाना दिग् से चिकित्सार्थ रोगी और अध्ययनार्थ छात्रगण आने लगे।

गंगाधर जी के प्रथम यौवनकाल में ही उनकी स्त्री एक मात्र पुत्र धरणीधर को छोड़कर स्वर्ग सिधार गयीं। फिर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया और एक वृद्धा परिचारिका पर अपने पुत्र का पालन-पोषण का भार अर्पण कर स्वयं चिकित्सा और अध्यापन-कार्य में निमग्न हो गये और विद्यार्थियों के साथ रहने लगे। आपके अन्यतम शिष्य महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन जी कहा करते थे कि हम लोगों को अध्ययनकाल में रात्रि-भोजन के पश्चात् बहुत बार ऐसा अवसर आया था कि गुरु जी के पास अध्ययन करते ही रात्रि बीत जाती थी। गुरु जी रात्रि में बहुत कम निद्रा में समय व्यतीत करते थे। अवशिष्ट समय अध्यापन और ग्रन्थ-रचना में व्यतीत होता था। शयन-स्थान पर लेखन की सारी सामग्री रक्खी रहती थी। क्योंकि कभी-कभी उठ-उठकर भी आप कुछ-न-कुछ लिख जाते थे। शयनावस्था में भी आप शास्त्र विषय की ही चिन्ता करते थे तथा कोई नवीन तत्त्व मालूम होने पर अथवा संदिग्ध विषयों का संदेह दूर हो जाने से तत्काल उठकर निद्रित विद्यार्थियों को उठाकर उन लोगों को समझाने लग जाते थे। शास्त्रीय विषय की चिन्ता और उसके प्रतिपालन के लिये उनके निकट समय-असमय का विचार कुछ भी नहीं था।

कविराज गंगाधर कितने प्रकाण्ड 'विद्वान्, सुचिकित्सक' और निपुण अध्यापक थे, उसका लिखना व कहना असम्भव है। यह उनके रचित ग्रन्थसमूह और सुयोग्य शिष्यों को देख कर ही पता चल सकता है। वर्तमान आयुर्वेद के युग को यदि गंगाधर-युग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि अभी तक भी आयुर्वेदीय चिकित्सक-मण्डली में गंगाधर के शिष्य-परम्परा ही अधिक व्याप्त है। उनके शिष्यों में महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथ सेन, सुश्रुत के भाष्यकार प्राणाचार्य हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, कविराज परेशनाथ सेन, कविराज ईश्वरचन्द्र सेन, कविराज गोविन्दचन्द्र सेन, कविराज श्रीचरण सेन और प्रशिष्य में लक्ष्मीराम स्वामी, वैद्यरत्न योगेन्द्रनाथ, कविराज उमाचरण प्रभृति विख्यात हैं। कविराज गङ्गाधर के शिष्यों में कोई भी अपने जीवन में असफल नहीं हुए—यह एक विचित्र लीला है।

नाना शास्त्रों में बहुसंख्यक उपादेय ग्रन्थ लिखने पर भी चरक की जल्पकल्पतरु टीका ही ने उन्हें अमर कर दिया है। आयुर्वेद शास्त्र में उनका पाण्डित्य कैसा असाधारण था यह केवल जल्पकल्पतरु टीका देखने से ही ज्ञात हो सकता है। दर्शन, उपनिषद्, धर्मशास्त्र प्रभृति में भी उनका अगाध पाण्डित्य था। यह उनकी मनुस्मृति-टीका के एकही श्लोक के पढ़ने से मालूम होता है।

"असद् व्याख्यार्णवे घोरे मग्नां मानव-संहिताम्।
वेदान्तवत्समुद्धर्तुं तत्वतोऽयं ममोद्यमः॥"

(गङ्गाधरकृत मनुसंहिता की टीका)

कविराज गंगाधर ने अपनी मनुस्मृति-टीका में कूल्लूक भट्ट प्रभृति प्राचीन टीकाकारों के मतों का विशेष पाण्डित्यपूर्ण विचार से खण्डन किया है।

कविराज गंगाधर ने केवल ग्रन्थों की रचना कर ही अपना कार्य समाप्त नहीं किया, बल्कि उन ग्रन्थों को मुद्रणार्थ अपने गृह में एक विशाल-प्रेस की स्थापना की और प्रथम अमूल्य ग्रन्थ जल्पकल्पतरु टीका का मुद्रण किया। दुःख है कि आप अपने जीवन काल में स्वरचित ग्रन्थों का सम्पूर्ण मुद्रण नहीं कर सके।

उनके रचित ग्रन्थों में शेष ग्रन्थ "आग्नेय अलंकार" की काव्यप्रभा वृत्ति है। इस ग्रन्थ की रचना के थोड़े दिनों बाद ही आपका परलोक गमन हुआ था। आपका स्वर्गवास ८६ वर्ष की अवस्था में बंगला सन् १२९२-११ ज्येष्ठ में हुआ।

उनकी मृत्यु के बाद उनके रचित कई एक उत्कृष्ट ग्रन्थों का मुद्रण हुआ; किन्तु उनके पुत्र और पौत्र की असामयिक मृत्यु के कारण गंगाधर का समग्र ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका है।

निखिल भारतीय वैद्य मण्डली को उचित है कि वर्तमान युग के आयुर्वेद-प्रवर्तक कविराज गंगाधर की अप्रकाशित पुस्तकों को प्रकाशित करने का भरपूर प्रयत्न करे।

कविराज गंगाधरजी द्वारा रचित पुस्तकों की सूची—

आयुर्वेद में ग्रन्थों की संख्या ११

यथा—(१) चरक संहिता की जल्पकल्पतरु टीका, (२) परिभाषा, (३) भैषज्यरामायणम्, (४) आग्नेयायुर्वेद व्याख्या, (५) नाड़ी-परीक्षा, (६) राजवल्लभीय द्रव्यगुण विवृति, (७) भास्करोदयः, (८) मृत्युञ्जय संहिता, (९) आरोग्य स्तोत्रम्, (१०) प्रयोगचन्द्रोदयः, (११) आयुर्वेद-संग्रहः।

तन्त्र में ग्रन्थों की संख्या—२

यथा—(१) निर्वाणसारः, (२) महानिर्वाणतन्त्रम्।

व्याकरण में ग्रन्थों की संख्या—८

यथा—(१) कौमार व्याकरणम्, (२) त्रिपाठ व्याकरणम्, (३) मुग्धबोध महावृत्तिः, (४) पाणिनीय वार्तिकम्, (५) दोषसन्दर्शनी, (६) शब्दशक्तिप्रभा, (७) धातुपाठः, (८) वादार्थः।

साहित्य में ग्रन्थों की संख्या—१२

यथा—(१) लोकालोक पुरुषीय महाकाव्यम्, (२) शिखण्डि प्रादुर्भावः, (आख्यायिका) (३) तारावती स्वयम्बर महनाटकम्, (४) शौरीश्वर चरित महाकाव्यम्, (५) दुर्गावध महाकाव्यम्, (६) सप्तकाव्यम्, (७) सत्योपाख्यानम्, (८) छन्दोमारवृत्तिः, (९) काव्यलक्षणवृत्तिः, (१०) छन्दोऽनुशासनम्, (११) पिङ्गलटीका, (१२) अग्नेयालङ्कारस्य काव्य-प्रभावृत्तिः।

धर्मशास्त्र में ग्रन्थों की संख्या—७

यथा—(१) मनुसंहिता की प्रमादभञ्जनी टीका, (२) पराशरसंहिता टीका, (३) स्मृतिसेतुः, (४) दायभागः, (५) वैधहिंसादि निर्णयः, (६) धर्म्मानुशासनम्, (७) विष्णुपुराण टीका।

उपनिषद में ग्रन्थों की संख्या—८

यथा—(१) मिश्रोपनिषद् व्याख्या, (२) तैत्तिरीयोपनिषद् व्याख्या, (३) छान्दोग्योपनिषद् व्याख्या, (४) माण्डुक्योपनिषद् व्याख्या, (५) प्रश्नोपनिषद् व्याख्या, (६) केनोपनिषद् व्याख्या, (७) वाजसेनेयोपनिषद् व्याख्या, (८) कैवल्योपनिषद् व्याख्या।

दर्शन में ग्रन्थों की संख्या—१४

यथा—(१) षट्सिद्धान्तः, (२) वेदान्तसर्वस्वम्, (३) ब्रह्मविद्यामृतम्, (४) शारीरक सूत्रवार्त्तिकम्, (५) वस्तुनिर्णयः, (६) पञ्चपुष्पाञ्जलिः, (७) तत्त्वविद्याकरः, (८) संस्कारवादः, (९) सांख्यभाष्यम्, (१०) पातञ्जलभाष्यम्, (११) गौतमीय वात्स्यायन वृत्तिः, (१२) कुसुमाञ्जलि टीका, (१३) वेदान्तभाष्यम्, (१४) वैशेषिकभाष्यम्।

ज्योतिष में ग्रन्थ की संख्या—१

यथा—(१) काल-विज्ञानम्।

विविध विषयों में ग्रन्थों की संख्या—१३

यथा—(१) त्रिकाण्ड शब्दशासनम्, (२) जगन्नाथ स्तवः, (३) संसार संवरणम्, (४) कात्यायन वार्त्तिकम्, (५) गायत्री व्याख्या, (६) सिद्धान्त शतकस्तवराजः, (७) रामगीता व्याख्या, (८) आनन्द तरङ्गिणीस्तवः, (९) नवग्रह स्तोत्रम्, (१०) लिपि वर्ण विज्ञानीयम्, (११) शान्ति कान्तिक व्याक्यबोधः, (१२) भागवत-विचारः, (१३) महिम्नः-स्तव व्याख्या।

सब मिलाकर ग्रन्थों की संख्या ७६

कविराज शिरोमणि स्वर्गीय

श्यामादास-वाचस्पतिजी की

संक्षिप्त जीवनी

बङ्गदेश के प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र नवद्वीप के संनिकट गंगा-तट पर चूपी नामक ग्राम में सन् १८७६ (बंगला) २१ फाल्गुन को शुभ जन्म कविराज श्यामादास जी का हुआ था ।

अष्टादश शताब्दि के शेषांक में पण्डित-प्रवर रघुनाथ शिरोमणिजी के समय से नव्य न्याय शास्त्र के पठन हेतु भारतवर्ष के प्रायः सभी विद्यार्थी नवद्वीप में जाते थे ।

इस नवद्वीप के सन्निकट चूपी तथा पूर्वस्थली नाम के दो सम्मिलित ग्राम प्रसिद्ध हैं । इसमें प्रसिद्ध साहित्यिक अक्षयकुमार दत्त तथा भाव-संगीत रचयिता देवान रघुनाथ आदि मनुष्य-रत्न उत्पन्न हुये थे ।

इस ग्राम की और विशेषता यह थी कि यहाँ के वैद्य नाड़ी-ज्ञान के विशेषज्ञ होते थे ।

जिस वंश में पं० श्यामादास जी उत्पन्न हुए थे, उस वंश को चूपी के जमींदार ने अनेक धन-सम्पत्ति देकर वसाया था । पं० श्यामादास जी के पितामह पद्मलोचनदास बड़े प्रसिद्ध विद्वान् एवं चिकित्सक थे । उनके ज्येष्ठ पुत्र वाचस्पति जी के पिता कविराज अन्नदा प्रसाददास दो सहोदर भ्राता थे । अन्नदा प्रसादजी अपने कनिष्ठ (भ्राता) राधिकाप्रसादजी के ऊपर निज ग्राम के चिकित्सा का भार सौंपकर स्वयं रंगपुर "धरणी वाड़ी" के जमीन्दार जी के अनुरोध से उस स्थान के चिकित्सक हुए । मलेरिया के प्रारम्भ काल में डाक्टरों से प्रतियोगिता कर यश-संचय किया था । आप केवल चिकित्सक ही न थे वल्कि इनकी लगन अत्मोन्नति पूजा-पाठ की ओर भी अधिक आकर्षित थी ।

पं० श्यामादासजी की प्रतिभा बाल्यकाल से ही चमकती थी—उसी उम्र में उन्होंने "कविता-कदम्ब" तथा यौवनावस्था में संस्कृत की "बाल-चापल्य" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया था । १५ वर्ष की अवस्था में पूर्वस्थली निवासी पं० यदुनाथ विद्यारत्न के पास संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण पढ़ने के निमित्त गये थे वहीं उन्होंने संस्कृत भाषा में कथोपकथन तथा व्याख्यान देने का अभ्यास किया था ।

१२९० में पं० भूवन विद्यारत्नजी से भी शिक्षा प्राप्त की थी ।

१२९४ में काशी के प्रसिद्ध कविराज परेशनाथ जी के पास आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन किया था । सांख्य-वेदान्त, पूर्व मीमांसादि ग्रन्थ के भी अध्ययन के साथ ही साथ श्यामाचरण लाहिड़ी के संनिकट योगाभ्यास का भी अभ्यास किया था ।

१३०२ में काशी से वापस अपने ग्राम चले गये थे ।

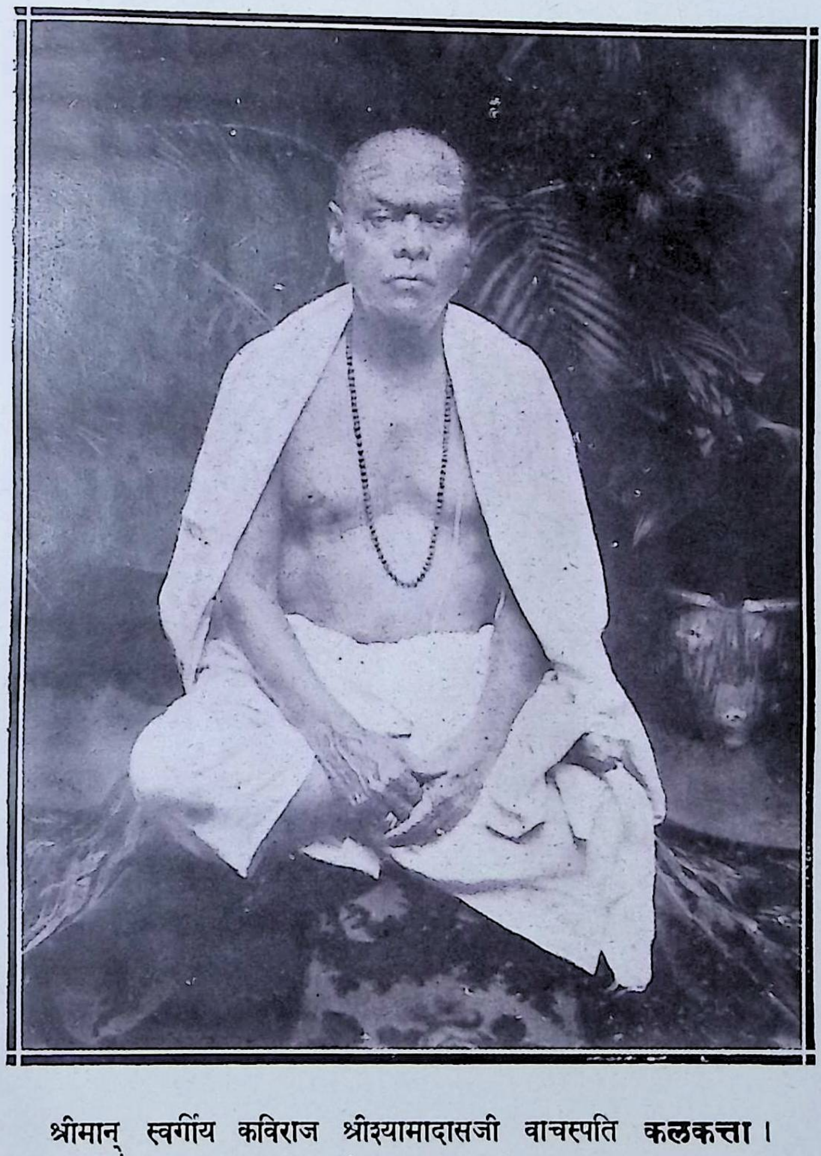

श्रीमान् स्वर्गीय कविराज श्रीश्यामादासजी वाचस्पति **कलकत्ता** ।

संस्थापक–श्रीवैद्यशास्त्रपीठ **कलकत्ता** ।

उनके सहपाठियों में पं० प्रमथनाथ स्मृति-तीर्थ, प्रतापचन्द्र काव्यतीर्थ आदि के नाम बिशेष स्मरण करने योग्य हैं।

कुछ दिन ग्राम में रहने के बाद अपने पिता के साथ रंगपुर में चिकित्सा-ज्ञान प्राप्त किया था।

अपना व्यवसाय करने के लिये कलकत्ते गये और वहाँ के प्रसिद्ध चिकित्सक द्वारिकानाथ सेन जी के पास व्यवसाय-प्रणाली तथा शास्त्रोपदेश ग्रहण कर स्वतंत्र रूप से अपना कार्य्यारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में उनका यश कलकत्ते में फैल गया।

उनकी सुप्रेरणा से अनेक छात्र कलकत्ते की सांख्य, वेदान्त-न्याय प्रभृत शास्त्र की परीक्षायें पास कर, नैपाल, काश्मीर, जयपुर, संयुक्त-प्रदेश आदि स्थानों पर विराजमान हैं।

नाना प्रदेशों से अनेक आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये छात्र स्वर्गीय पं० श्यामादासजी के चरण कमलों में आकर अपना जन्म सफल बना गये। महामहोपाध्याय पं० गंगाधर कविराज के लगभग ही इनके छात्रों की भी संख्या थी। अनेक असहाय-गरीब छात्र उनकी सहायता से एम० ए०; बी० ए० पास कर अब तक जीविकार्जन कर रहे हैं। भारतीय आयुर्वेदिक संस्थाओं के परिचालक मण्डलियों में आपका मुख्य स्थान था।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय तथा सारस्वत समाज के परीक्षक थे तथा उस कार्य के लिये जितना धन मिलता था वह उन्हीं संस्थाओं की उन्नति के लिये दान कर देते थे, उन्हें अनेक संस्थाओं ने अपनी तरफ से उपाधि प्रदान कर गौरवान्वित किया था।

नवद्वीप—विवुधुननी सभा से "शिरोमणि" पण्डित समाज से "वाचस्पति" आदि अनेक स्थानों से अनेक 'उपाधियाँ' दी गई थीं।

आपने निखिल-भारत-आयुर्वेदीय महासम्मेलन के सभापति का आसन सन् १३४० (वङ्गाब्द) में ग्रहण किया था तथा वङ्ग-साहित्य परिषद के सहकारी सभापति थे।

आप इतने परिश्रमी थे कि केवल रात-दिन में ३—४ घन्टे ही शयन करते तथा अन्य सब समय शास्त्रावलोकन तथा परोपकार (रोगी-निरीक्षण) में विताते थे।

आपका दान—दरिद्रों का भरण-पोषण-विद्यादान, समाज सेवादि में—अजातशत्रु के सदृश था। आप अनेक अवसर पर गुप्त दान किया करते थे, आप वैद्य-समाज में एक आदर्श थे तथा अति सुवक्ता एवं स्वदेश-प्रेमी थे। स्वयं खद्दर पहिनते तथा दूसरों को पहिनने के लिये कहते, सबको स्वावलम्बी और स्वाधीन वृत्ति से धनोपार्जन करने का उपदेश देते थे। जिन कर्मीने देश के लिये आत्मनियोग किया है उन सबकी देख-रेख एवं चिकित्सा वग़ैरह किसी प्रकार का द्रव्य लिये ही किया करते थे, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें धन भी दिया करते थे।

देशबन्धुदास, देशप्रिय यतीन्द्रमोहन तथा पं० मोतीलाल नेहरू आदि उनपर विशेष दृष्टि रखते थे।

देश-कर्मियों अर्थात् (कांग्रेस) की सहायतादि करने के कारण ही उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि गवर्नमेंट ने नहीं दी।

कविराज-शिरोमणिजी की स्थायी प्रतिष्ठित कीर्ति कलकत्ते की "वैद्यशास्त्र पीठ" अब भी वर्तमान है।

भारतीय आयुर्वेदीय संस्थाओं में डाक्टरी शिक्षा मिली हुई है किन्तु "वैद्यशास्त्र पीठ" प्राचीन ऋषियों की वैशिष्ट रक्षा करती चली आ रही है।

कविराज श्यामादास जी की अतुल महिमा लिखना अपार है।

कविराज शिरोमणि श्यामादास जी वङ्गदेश को अन्धेरे में छोड़कर १८ आषाढ़ १३४१ (बङ्गला) मङ्गलवार १०–५ समय (रात्रि) भारतवासियों को अश्रु-जल में निमग्न कर यह संसार छोड़कर वैकुण्ठधाम को सिधारे।

आप सुदीर्घ ७० वर्ष की आयु प्राप्त कर परोपकार करते-करते महाकाल के एक काल में कवलित हुए।

आप अंत समय अपने एकलौते पुत्र सुप्रसिद्ध कविराज विमलानन्द तर्क-तीर्थ को चार कन्यायें एवं पौत्र-पौत्री सहित छोड़ गये हैं।

* * *

श्रीमान् कविराज विमलानंदजी तर्कतीर्थ।
संचालक-श्री वैद्यशास्त्रपीठ. **कलकत्ता**।

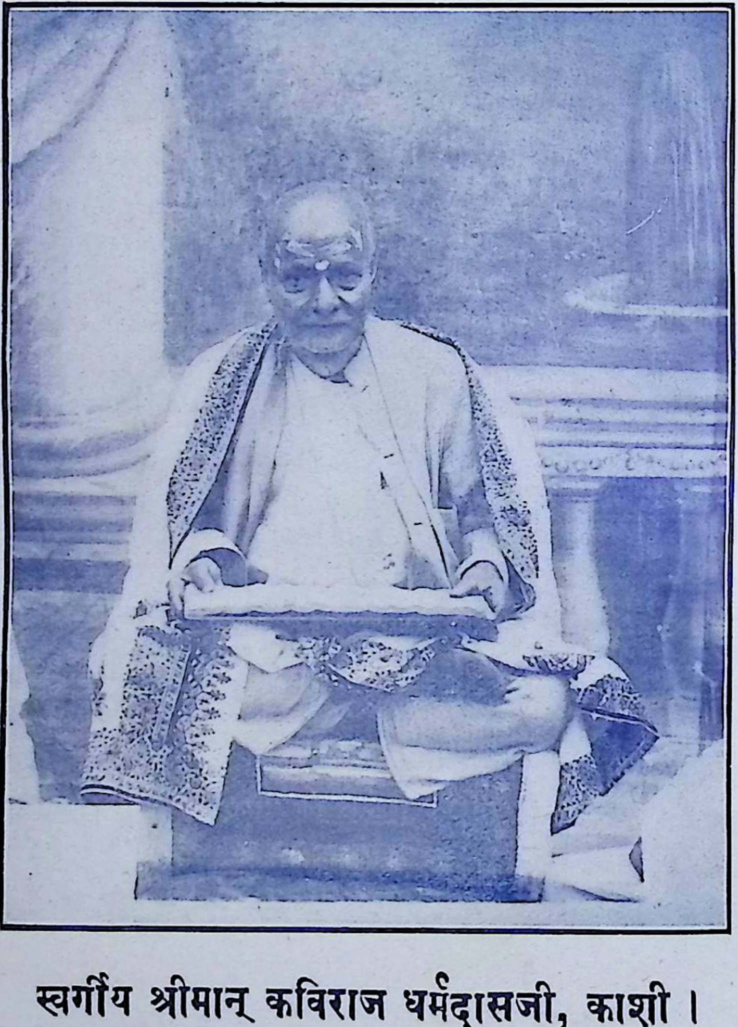

स्वर्गीय श्रीमान् कविराज धर्मदासजी, काशी।

प्रिंसिपल—आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस।

विद्वत्प्रवराः स्वर्गीय-कविराज-

धर्मदास-महोदयाः

१८६२ ईशवीये तथा १९१८ वैक्रमे संवत्सरे माघशुक्ल भीष्माष्टम्यां बर्दवानमण्डले नवद्वीपान्तर्गतपूर्वस्थलीसमीपवर्तिनि चूपीग्रामे कविराजश्रीकाशीप्रसन्नमहोदयानां गृहे कविराज धर्मदासमहोदयानां जनिरभूत् । तस्मिन्नेव ग्रामे व्याकरणसाहित्यदर्शनादिषु प्रौढिमुपपाद्य १५ तमे वर्षे वाराणस्यामायुर्वेदाध्ययनाय स्वमातुलविद्वद्वरेण्यश्रीपरेशनाथकविराजमहोदयानां सविधे समागताः । ये हि कविराजश्रीपरेशनाथमहोदयाः सुगृहीतनामधेयानामायुर्वेदगगनतिमिरभास्कराणामपूर्वप्रतिभावतां तत्रभवतां श्रीमतां कविराजश्रीगङ्गाधररायकविरत्नमहोदयानां प्रमुखशिष्या आसन्, ये चाधुनापि वङ्गदेशे बालगङ्गाधरेत्याख्यया सादरं स्मर्यन्ते । एतेषां चरणेष्वेवास्मत्कविराजमहोदयाः सुबहुक्लेशं समस्तमायुर्वेदवाङ्मयं चिकित्साक्रमञ्चाभ्यस्य स्वप्रतिभाबलेन परं पाटवमध्यगमन् । एते महानुभावाश्चरके कृतश्रमा अपि पुनश्चरकान्तर्गूढतत्त्वानुसंधाने दत्तचित्ताश्चरकसंहितायामेव विशेषेण श्रममकार्षुः । फलस्वरूपेण च चरकावतारा इव भारते चरकविषये प्रामाणिकपुरुषरूपेणावस्थिताः ।

अध्ययनानन्तरमेवैभिर्महाभागैर्निरलसतया स्वगृहेऽध्यापनमारब्धम् । पुनश्च काशीहिन्दूविश्वविद्यालये भारतपूज्यैः श्रीमदनमोहनमालवीयमहोदयैरायुर्वेदविद्यालयेऽध्यक्षपदमलङ्कर्तुं प्रार्थिताः, आयुर्वेदप्रचारदृष्ट्या लोकोपकारभावनया च तदध्यक्षपदमशोभयन्त । ततः प्रभृति—तत्रैवायुर्वेदनिगूढतत्त्वानि शिष्येभ्यो वितरन्त आजीवनं विराजमाना आसन् । एतेषां सहस्रतोऽप्यधिकाः शिष्या भारते वर्षे प्रायः सर्वेष्वेव प्रान्तेषु लब्धकीर्तयश्चिकित्साकर्म कुर्वन्ति । तेषु प्रधानतमाश्च कविराजश्रीसत्यनारायणशास्त्रिमहोदयाः, कविराजचक्रवर्तिश्रीताराचरणसर्वदर्शनतीर्थमहोदयाः, काशीस्थमारवाड़ी चिकित्सालयस्य प्रधानचिकित्सका आयुर्वेदशास्त्राचार्यश्रीदुर्गादत्तशास्त्रिणः, स्वस्थवृत्तसमुच्चयलेखकाः श्रीराजेश्वरदत्तमिश्रायुर्वेदाचार्याः ।

एते हि परमधार्मिकाः स्वदेशवस्तुव्यवहारपराः परमसौम्याश्छात्रवत्सलाश्चासन्, स्वप्रतिभाबलेन रोगाणां परिज्ञाने चिकित्सिते च प्रथितमहिमानो लब्धसिद्धयः "ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्" इति सूक्त्यनुसारं विपुलं द्रव्यं चोपार्ज्य भिषङ्मूर्धन्यत्वेनावस्थिताः ।

कविराजमहानुभावा एकं पुत्ररत्नं पुत्रीं चैकामसंख्यांश्च शिष्यान् विहाय १९९२ वैक्रमे वत्सरे काश्यां कैवल्यमधिगताः ।

श्रीजगदीश्वरस्यानुकम्पया महाभागानां तेषां पुत्रः श्रीभूपेन्द्रनाथकविराजगणपतिमहोदय आयुर्वेदशास्त्रे लब्धप्रावीण्यो वाराणस्यामेव छात्रानध्यापयन्नातुरानुपक्रमते—

कविराज महानुभावानां जीवनकाले केन चिद्विदुषा लिखितं पद्यमिदम्—

आयुर्वेदसुरापगां शिरसि यः सन्धार्य गङ्गाधरो
जातस्तस्य परम्पराप्रकरणे शिष्यः परेशस्य यः ।
साक्षाद्यश्चरकश्चिकित्सितविधावध्यापने कर्मणि
ख्यातो भारतभूतले विजयते श्रीधर्मदासः सुधीः ॥

प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनों के सभापतियों

के

जीवन-चरित एवं भाषण

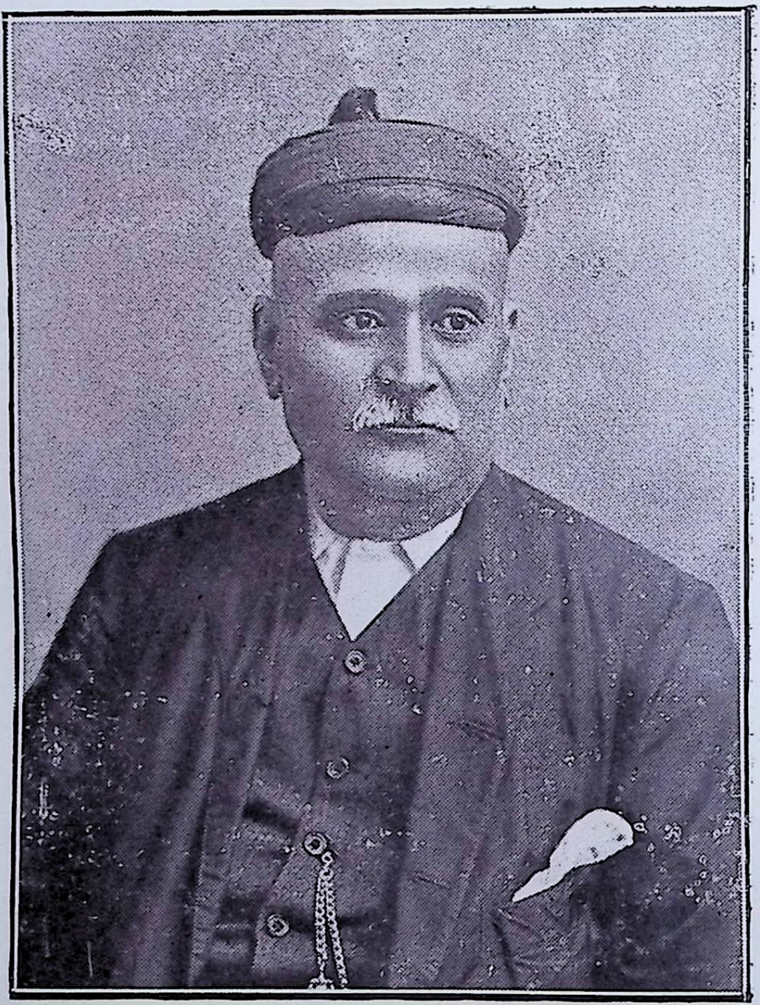

श्रीमान् प्राणाचार्य डॉ. पोपट प्रभुराम,

एल्. एम्. एन्ड एस्; जे. पी. बम्बई।

सभापति, कच्छ, काठीयावाड, गुजरातप्रान्तीय वैद्यसंमेलन प्रथम अधिवेशन।

अमदावाद (सन १९२५)।

गुजरात प्रांत

प्राणाचार्य

डॉक्टर पोपट प्रभुराम

एल० एम० एण्ड एस०, जे० पी० का

संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत

डॉक्टर पोपट प्रभुराम, प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज के प्रिन्सिपल और इसी कॉलेज में "निदान चिकित्सा" तथा "औषधिगुणदोष" के अध्यापक हैं। इस कॉलेज के अंगभूत स्थापन की हुई "उच्च वर्ण की हिन्दू हास्पिटल" के वे मुख्य चिकित्सक हैं। वे स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम जीवनराम के पुत्र हैं। इनका जन्म पोरबंदर में सं० १९२२ अधिक ज्येष्ठ बदी ३ के दिन हुआ था। इनका पहला विवाह बंबई में उस वक्त वैद्यकीय उपचार करने वाले स्व० सुप्रसिद्ध वैद्यराज जटाशंकर विट्ठलजी की पुत्री के साथ हुआ था, उन्होंने मुंबई यूनिवर्सिटी की एल० एम० एण्ड एस० की उपाधि १८९३ में प्राप्त की थी, और वैद्यक अभ्यास के लिये बंबई के ग्राँट मेडिकल कॉलेज में जिस वक्त प्रवेश किया उसी वक्त साथ ही में उन्होंने आयुर्वेद का अभ्यास अपने पिता के पास शुरू किया, कारण उसी समय में उन्हें शार्ङ्गधर, चरक, सुश्रुत और वाग्भट का ज्ञान प्राप्त करना था। आर्य और इंग्लिश दोनों वैद्यक शास्त्र के अभ्यास साथ-साथ हो रहे थे, इसलिये उन्हें दोनों का मेल-मिलाप करने का योग्य नमूना मिल रहा था। ग्राँट मेडिकल कॉलेज के अभ्यास के समय में उन्हें कर्नल ग्रे, कर्नल आरनॉट, कर्नल डिमक, कर्नल हॅच तथा मेडार मेन्सर सरीखे विद्वान् और उदार दिल डॉक्टरों का समागम अनायास ही प्राप्त हुआ था। जिस समय आयुर्वेद एक शास्त्र है, चिकित्सा विषय में आर्यावर्त के संपूर्ण वैद्य पूर्ण विश्वास से उससे लाभ उठा रहे हैं तथा आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करने वाले विद्वान वर्ग का अस्तित्व हिन्दुस्थान के संपूर्ण स्थलों में चिरकाल से है इस विषय का छाप उनके मन पर दृढ़तर करने के लिये हरवक्त उनके वैद्यराज प्रभुरामजी तथा दूसरे विद्वानों का समागम बहुत ही फायदेमंद हो रहा था।

डॉक्टर पोपट काठियावाड पोरबंदर के स्थायी वतनदार हैं। उन्हें डॉक्टर की उपाधि मिलनेपर थोड़े दिन के बाद ही पोरबंदर के ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटर ने उन्हें इस स्टेट के चीफ मेडिकल ऑफिसर की जगह के लिये मांगा, और डॉक्टर पोपटजी द्वारा यह अधिकार स्वीकार कर लेने पर सिर्फ तीन ही महीना के भीतर एक बड़ा स्टेट हॉस्पिटल—नामदार राणासाहब श्री भावसिंहजी के हाथ खोल दी, वही हॉस्पिटल आजकल भी पोरबंदर के वस्ती को अतिशय आशीर्वाद रूप हो रही है। यहीं उन्हें शस्त्रवैद्यक का अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ और संपूर्ण

हॉस्पिटल उनके अधिकार में होने से आयुर्वेदीय चिकित्सा का बड़े प्रमाण में अनुभव लेने के लिये अच्छा अवसर मिला।

सन् १८९५ में वैद्यराज प्रभुरामजी ने अपनी वृद्धावस्था को देख उन्हें फिर बंबई में आने के लिये कहा और आयुर्वेद पर इतने वर्षों में जो उनकी पूर्ण श्रद्धा हो रही थी इसलिये बड़े उत्साह के साथ वैद्यराज का काम उनके ऊपर सौंपा गया तथा आयुर्वेदीय औषधियाँ बनाने के उनके स्थापित खाते में तरक्की करके उसका "प्रभुराम अनंत औषधालय" (फार्मसी) नाम रखा। सन् १८९६ की प्रारंभ में ही अपने पिताजी की आज्ञा से आयुर्वेदीय पद्धति पुरःसर शिक्षण की एक योजना उन्होंने नियोजित की और उसे डॉक्टरों और वैद्यों की एक कमिटी द्वारा अनुमोदन मिलने पर, उसके अनुसार उसी वर्ष मुंबई हाइकोर्ट के न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, सी. आई. ई. की अध्यक्षता में "आयुर्वेद विद्यालय" नाम की संस्था स्थापित की गयी। इस संस्था में विद्वान अध्यापकों से व्याख्यानों और प्रत्यक्ष शिक्षण के साथ आयुर्वेद का अभ्यास विद्यार्थियों द्वारा किया जाने लगा। इस विद्यालय में पाँच वर्ष अभ्यास करके परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले को "भिषग्वर और एसोसियेट ऑफ दी आर्यन मेडिकल स्कूल" यह उपाधि देने का ठहराव किया गया था और इसी उपाधि के लिये उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों के पहले संग्रह के एक बड़े समुदाय के समक्ष विद्यालय के स्थापक वैद्यराज प्रभुराम जी की प्रार्थना करने पर बंबई के उस वक्त के न्यायमूर्ति सर लॉरेन्स जॉन्किन्स ने पूर्वोक्त उपाधि दी और इसके बाद प्रतिवर्ष विद्यार्थियों की परीक्षा लेकर वैसी उपाधियाँ देने का क्रम चालू किया गया, इन भिषग्वरों को अपने अभ्यास के बीच में आयुर्वेद के सम्पूर्ण शिक्षण के साथ वैद्यक सम्बन्धी अन्य स्थानों में से होने वाली अनेक तरह की सुविधाओं की भी तजवीज डॉ० पोपट जी की योजना में की गयी है।

सन् १८९६ में मुंबई में प्लेग शुरू होने पर और उसके दिनों दिन गंभीर स्वरूप धारण करने पर नामदार सरकार ने मुम्बई म्युनिसिपलिटी की मदद में रहने वाले अधिकारियों और प्रजा में सुखोत्पादक संबंध बनानेवाली योजना के संबंध में कितनेक बातों में हेरफेर होने से परस्पर असंतोष न बढ़ जाय इसलिये एक शांत और हिन्दी भाषा तथा मंतव्य को समझनेवाला अधिकारी समझ कर डॉ० पोपट जी को नियुक्त किया। इस समय हर रोज होनेवाली असंख्य मृत्यु-संख्या में काम करने पर भी उन्होंने गरीब रोगियों की तरफ अपनी पूर्ण मेहनत के साथ ध्यान दिया। उनकी इस सेवा के योग्य पुरस्कार देकर उन्हें उस जगह पर कायम रहने के लिये योजना बनाने की इच्छा से कहने पर उन्होंने उपकार के साथ स्वीकार न किया तथा आज तक की गई सेवाओं के लिये किसी प्रकार भी पुरस्कार लेना स्वीकार नहीं किया। नामदार सरकार ने उसके दूसरे वर्ष उन्हें "जस्टिस ऑफ दी पीस" का अधिकार दिया और थोड़े ही दिन बाद ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का विशेष अधिकार स्वीकार करने के लिये उनसे कहा गया, किन्तु अपने व्यवसाय के लिये बाधक समझ कर उसको स्वीकार करने में अपनी अशक्तता प्रकट की।

वैद्यराज प्रभुराम इस समय वैद्यक व्यवसाय से निवृत्त हो रहे थे और पूर्ण विश्रांति के दश वर्ष बीत जाने पर सन् १९०२ में संन्यास ग्रहण करके फाल्गुन बदी ३० के दिन सायंकाल सात बजे समाधिस्थ हो गये। आयुर्वेद विद्यालय का कार्य इस प्रकार डा० पोपट के अकेले हाथ में ही दिनों-दिन बढ़ता ही गया। उन्होंने विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव कराने

के हेतु उच्च वर्ण के हिन्दुओं के लिये एक हॉस्पिटल भी स्थापित किया और उसमें वैद्यक, शस्त्र-वैद्यक, नेत्र-वैद्यक तथा सूतिका रोगियों के रखे जाने का भी प्रबंध किया।

इस रीति से शिक्षण तथा अनुभव लेकर उत्तीर्ण करने वाले भिषग्वर वैद्यों द्वारा किया गया उपचार जनता को अनुकूल तथा लाभकारक मालूम होने पर नैसर्गिक रीति से धंधा करने वाले डाक्टर लोग इस पद्धति को पसंद न कर वैद्यों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे; इतना ही नहीं बल्कि इन चिकित्सक वर्ग से अपने को भिन्न समझ कर और अपने को ही उनसे श्रेष्ठ समझ इस बात का निवेदन-पत्र नामदार सरकार के पास भेजा कि उन्हीं के वर्ग की चिकित्सा में रजिस्टरी होनी आवश्यक है, और ऐसा कानून बना देने का आग्रह कर उन्होंने सन् १९१४ में वह कानून पास कराया।

इस समय आयुर्वेद विद्यालय को कॉलेज का रूप दिया गया था और उसके स्थापक स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम जीवनराम जी के स्मरणार्थ उनका प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज नाम रखा गया था। डॉक्टर पोपट को इस परिणाम के हेर-फेर में इस कॉलेज के प्रिन्सिपल की उपाधि दी गई। उन्होंने बंबई युनिवर्सिटी की एल० एम० ऐंड एस० की उपाधि पहले प्राप्त की थी और नये कायदानुसार रजिस्टर्ड हो चुके थे। इधर मेडिकल कौंसिल ने आयुर्वेद की उन्नति को न सह कर डॉक्टर पोपट को सूचना दे दी कि आप रजिस्टर्ड हो चुके हैं इसलिये आयुर्वेद के साथ तुम्हें संबंध नहीं रखना चाहिये तथा वहाँ से उनका संबंध बंद करने के लिये और आयुर्वेद तथा इनके अनुयायी चिकित्सकों में डॉक्टर पोपट को नीचा दिखाने की इच्छा से तथा आयुर्वेद के श्रेष्ठत्व को नीचा दिखाने वाले मेडिकल कौंसिल की इस करनी के सामने डॉक्टर पोपट को साहसी बनना पड़ा और इस मामले में मेडिकल कौंसिल के साथ दो वर्ष तक पत्र-व्यवहार चलता रहा, तथा बंबई की लेजिस्लेटिव कौंसिल में इसी विषय पर जोश भरा वाद-विवाद हुआ, आखिर मेडिकल कौंसिल ने अपने कोर्ट के तरफ से डॉक्टर पोपट की बात की जाँच करने का निश्चय किया, और १९१७ के अक्टूबर मास में तेरह जजों की बनायी एक मेडिकल कोर्ट पूर्णतः उनकी जाँच करने के लिये नियत हुई। जिसकी आज्ञा के अनुसार आयुर्वेद सरीखे एक उपयोगी शास्त्र को उन्नत स्थिति में पहुँचाने वाले तथा उसका पद्धति पुरःसर शिक्षण देने का प्रयास करने वाले डाक्टर पोपट सरीखे एक विद्वान् ग्रेजुएट को इस तरह केवल एक अंग्रेजी का पक्षपात करने वाले कोर्ट के समक्ष जवाब देने के लिये उपस्थित होना पड़ा, यह ब्रिटिश राज्य के हिंदुस्थान के इतिहास में पहला ही दृष्टांत है। चार घंटे की लंबी जाँच के बीच में जजों और बैरिस्टरों के कठिन सवाल का जवाब देकर 'आयुर्वेद एक शास्त्र है' ऐसा उन्होंने सिद्ध कर दिया, इतना ही नहीं बल्कि जनसमूहों की आयुर्वेदीय-चिकित्सकों पर कैसी भावना थी उसे भी सिद्ध कर दिया। इस रीति से उनके जवाबों से प्रसन्न होकर उस कोर्ट ने डॉक्टर पोपट को निर्दोष ठहराया और उसी कोर्ट के सम्पूर्ण जजों ने आयुर्वेद को फतेहमंद करने के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। इस प्रकार आयुर्वेद-संबंध में उनके ऊपर चले हुए और संपूर्ण भारत भर में चर्चित उस मुकदमे का परिणाम उनके पक्ष का होने से आयुर्वेद के संबंध में वह अत्यंत लाभकारी हुआ। डाक्टर पोपट की उम्र हाल में ७१ वर्ष की है। उनकी जाति प्रश्नोरा नागर है। उनके बड़े पुत्र भिषग्वर रतिलाल ए० ए० एम० एस० उनके धंधे में मदद करते हुए अपने पिता की संमति से एवं उन्हीं की देख-रेख में चलती हुई प्रभुराम अनंत फार्मेसी के मैनेजिंग डायरेक्टर तथा

प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज के रजिस्ट्रार और दयालभीम जी आयुर्वेद औषधालय में चिकित्सक रूप में काम करते हैं। चिकित्सा और औषधि बनाने का वैद्यक-धंधा करना हो तो आयुर्वेद का अभ्यास करके ही करना चाहिये, ऐसा डाक्टर पोपट का अभिप्राय है। इसी तरह बिना परीक्षा दिये जिसे चाहे वैद्यक की उपाधियाँ देना तथा औषधि की परीक्षा न कर सके ऐसे लोगों को या संस्थाओं को चँदा देना उन्हें पसंद नहीं था। वृद्धावस्था वाले धंधा के लिये यदि अयोग्य हों तो भी चिकित्सा तथा शिक्षण के विषय में उनकी संमति लेने में विद्वान-वैद्यों का महत्त्व समझते थे और इसी कारण प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज की कमिटी की तरफ से सन् १९२२ में प्राणाचार्य की माननीय उपाधि देने का निश्चय हुआ, जो सर भालचन्द्र, डॉ० देशमुख तथा दूसरे विद्वान चिकित्सकों के साथ डॉ० पोपट को भी दी गई थी। १९२५ में यही उपाधि नामदार गोंडल नरेश डॉ० सर भगवत्सिंह जी को भी दी गयी है। आयुर्वेद की पद्धत्यनुसार अभ्यास के लिये स्वीकृत की हुई प्राणाचार्य डॉ० पोपट की योजनानुसार प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज में शिक्षा दी जाती है, और वैद्यक विषय में विद्यार्थियों को औषधियों तथा चिकित्सा के साथ ही शास्त्रोपयोगी ज्ञान होने के बाद उन्हें वैद्यक संबंध में अन्य जगहों के सुधारों का भी संपूर्ण ज्ञान करा दिया जाता है। इस कॉलेज में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को "भिषग्वर" और "ग्रेजुएट ऑफ दी प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज" उपाधियाँ दी जाती हैं। आयुर्वेद के शिक्षण के लिये अत्यन्त उपयोगी इस संस्था की दिन-प्रति-दिन उन्नति के लिये डाक्टर पोपट जी निरन्तर तन, मन, और धन से प्रयत्न करते हैं।

सम्मेलन का प्रमुख-स्थान

संमेलन के प्रमुख स्थान अहमदाबाद में गुजरात प्रांतिक वैद्य संमेलन की पहली सभा हुई। उस समय प्राणाचार्य डॉ० पोपटजी को सभा का माननीय अध्यक्ष रूप चुना गया था, और उस निमंत्रण को स्वीकार कर वे वहाँ की चार दिन की सभा के लिये उपस्थित रहे थे। उस वक्त अध्यक्ष स्थानापन्न हो उन्होंने वायु, पित्त और कफ की प्रणालिका को जो कि समझना अत्यंत कठिन थी उसे अत्यंत सरलता के साथ और हरेक समझ सके ऐसी रीति से समझा दिया।

सख्त बीमारी

वे १९२७ में काश्मीर नरेश के यहाँ जा रहे थे, किन्तु इटोला के आगे बड़ी बाढ़ आने से फ्रान्टियर मेल में चार दिन रुके हुए उसीमें पड़े थे; उस समय उनकी तबीयत बीमार होने लगी, रात के २ बजे पास के कम्पार्टमेंट में सोने के लिए जाते समय एकाएक काश्मीर की रानी साहबा की छोटी बहन साहबा की खबर मिली कि पैर फिसल जाने से कीचड़ में गिर गयीं और वहाँ हाथ और पैर में सख्त चोट पहुँची, जिसके परिणाम स्वरूप बीमार तबीयत में ही काश्मीर नरेश को मिल कर पीछे आते ही सख्त रीति से बीमार होकर बिछौना पकड़ना पड़ा और छः मास की गंभीर बीमारी में विद्वान डाक्टरों ने भी उनकी आशा छोड़ दी थी।

इस समय उन्होंने प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज का धुरीणत्व किसे दिया जाय इसका निश्चय करने के लिये श्रीयुत गिरधरलाल हरीलाल सॉलीसीटर को बुलाया, और उस समय प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज के ट्रस्टियों का चुनाव कर तथा एक परीक्षक मंडल (युनीवर्सिटी) नियुक्त करके वे काम चलावें इस तरह की व्यवस्था करने की योजना बना कर उन्हें सौंप दी।

श्री प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज और डॉ. पोपट युनिवर्सिटी ओफ आयुर्वेद बम्बई (सन १९३५)।

ट्रस्टियों की नियुक्ति

अपने सह और दूसरे तीन व्यक्ति साथ लेकर डाक्टर पोपट—यदि बीमारी में अपने उपचार से ही ठीक हो जाँय तो, ट्रस्टी रूप से कायम रह कर काम चलावेंगे. इसके अतिरिक्त जो योजना डॉ० पोपटजी ने निश्चित कर दी है उसके अनुसार आयुर्वेद यूनिवर्सिटी स्थापन करके और आज तक की तन, मन, धन से उनकी सेवा पर ध्यान देकर पारितोषिक रूप मंडल के डाक्टरों ने पोपट यूनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद नाम देने का ठहराव किया। सद्भाग्य से डाक्टर पोपटजी इस भयंकर बीमारी से केवल अपने ही उपचारों से अच्छे हो उठे और ट्रस्टी-रूप से अपना कार्य चलाने लगे।

यूनिवर्सिटी की स्थापना

इस यूनिवर्सिटी की स्थापना—बंबई की धारा-सभा के मुखिया आनरेबल सर अली-महम्मदखान देहेलवीयजी ने प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज के ३३ वें वर्ष के पदवी दान समारंभ समय में उसे डाक्टर पोपट यूनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद नाम से चलाने की सलाह सितम्बर १९२९ में ट्रस्टियों दी।

यूनिवर्सिटी-बिल्डिंग

इस संस्था का स्थायी रूप करने के लिये उनके मन में बहुत दिनों से एक निजी मकान बनाने की इच्छा थी और संयोगवश जिस मकान में प्रजा की सेवा करते-करते २० वर्ष से हो गये थे, उसी मकान को ट्रस्टीयों ने योग्य रीति से खरीद लिया।

ऊपर कहे हुए परीक्षक मंडल की कार्यवाही तैयार होते ही १९२४ के जुलाई महीना से संस्था ने परीक्षा लेने का काम शुरू कर दिया और हाल में डा० पोपट की देख-रेख में काम योग्य रीति से चलता है।

स्वर्गवासी वैद्यराज प्रभुराम की स्थापित संस्थायें

१ प्रभुराम अनंत फार्मेसी।

२ आयुर्वेद विद्यालय, उसके अंग सेठ दयाल भीमजी की आर्थिक मदद से।

३ दयाल भीमजी आयुर्वेद औषधालय।

४ वेद-धर्म सभा।

५ बंबई वैद्य-सभा।

६ प्रभुराम जीवनराम प्राइज़ फंड।

हाल में प्राणाचार्य डॉ० पोपट की देख-रेख में चलने वाली संस्थायें

१ प्रभुराम अनंत फार्मेसी।

२ आयुर्वेद विद्यालय (प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज)।

३ दयालभीमजी आयुर्वेदिक औषधालय।

४ डा० पोपट युनिवर्सिटी आफ आयुर्वेद।

५ मुंबई वैद्य-सभा।

डाक्टर पोपट प्रभुराम की डाक्टरी, उनके अभ्यास, धंधा शुरू करने पर राज्य के साथ का संबंध, मेडीकल कौंसिल के साथ की लड़ाई वगैरह क्रमशः दूसरी पुस्तकों में दिये जायँगे।

गुजरात प्रांतीय प्रथम वैद्यसम्मेलन अहमदाबाद के सभापति

प्राणाचार्य डाक्टर पोपट प्रभुराम,

एल्० एम्० ऐण्ड एस्० महोदय का

भाषण

Speech delivered by
Pranacharya Dr. Popat Prabhuram, L. M. S.
President of the Gujrat Ayurvedic Conference.

विद्वान् चिकित्सक, सुशील भगिनी और माननीय गृहस्थो !

आज के इस अनुपम सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर मुझे नियत करके आपने जो सम्मान प्रदान किया है, उसके लिये मैं आप सबके प्रति अन्तःकरण से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। गुजरात के प्रधान नगर अहमदाबाद में आयुर्वेद सम्बन्धी वैद्यसम्मेलन इससे बहुत पहले होना आवश्यक था; क्योंकि प्रख्यात प्रगतिशील बम्बई नगर और पीछे रहे हुए काठियावाड़ का परस्पर सम्बन्ध जोड़नेवाला अहमदाबाद ही कहा जा सकता है। यूरोप और अमेरिका के समान दूर देशों से आकर, सर्व प्रथम भारतवर्ष में प्रवेश करने के लिये, दुर्भाग्यवश बम्बई पहला स्थान है, और इसीलिये वह दुर्भाग्यवश विदेशी जनसमूह, विदेशी विद्या, विदेशी रीति-भाँति और विदेशी आचार-विचार में अधिकाधिक डूब रहा है। उत्तर में अहमदाबाद और दक्षिण में पूना इस दुर्भाग्य के फंदे में नहीं फँसा, इसीसे आर्यावर्त की प्राचीन रीति-भाँति, प्राचीन-विद्या और प्राचीन आचार-विचार को बम्बई ने जितना खोया है उतना खो देने का दौर्भाग्य अहमदाबाद और पूने ने नहीं प्राप्त किया।

ऐसा होने के कारण आज का आवश्यकीय विषय आयुर्वेद, जिसका सच्चा अर्थ जीवनशास्त्र और चिकित्सा होता है, उसकी चर्चा के लिये एक अहमदाबाद ही वास्तविक योग्य स्थल कहा जा सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्राचीन काल में पाश्चात्य देश आयुर्वेद से लाभ उठाते थे।

Western Countries took advantage of Ayurvedic Practice in Olden Times.

आयुर्वेद प्राचीन काल में केवल भारतवर्ष में ही नहीं; किन्तु सारे संसार में प्रचलित था ऐसा मानने के लिये हमारे पास सबल कारण हैं। तिब्बी शास्त्र में आयुर्वेद के अनेक सूत्र देखने में आते हैं यह बात उक्त शास्त्र के ज्ञाता सुप्रसिद्ध हकीम अज़मलखाँजी ने अपने व्याख्यान में स्वयम् श्रीमुख से उस समय कहा था जब कुछ समय पहले वे प्रभुराम आयुर्वेदिक

कालेज का निरीक्षण करने आये थे। इस बात से सूचित होता है कि अफगानिस्तान, ईरान, अरबस्तान और तुर्किस्तान जहाँ कि तिब्बी शास्त्र प्रचलित है, वहाँ आयुर्वेद के सिद्धान्तों का उपयोग होता था, आयुर्वेद की, मुख्य निदान और चिकित्सा की, प्रणाली, जो वात, पित्त और कफ पर अवलम्बित है, वह एक अथवा दूसरे रूप में किसी समय यूरोपखण्ड में प्रचलित थी, यह मानने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि यह बात तो अब सर्वमान्य ही हो चुकी है कि आयुर्वेद के आधार पर तिब्बीशास्त्र की रचना हुई, उसका अनुवाद अर्बी में हुआ, उससे ग्रीस देश में उसका प्रचार हुआ, और ग्रीक भाषा में उसका अनुवाद होकर लैटिन भाषा में हुआ, जिससे पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र का जन्म हुआ। वात, पित्त और कफ की प्रणाली यूरोप में इस प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवादित होते समय ठीक न जाननेवाले अथवा जानने के लिये यत्किंचित् भी प्रयत्न न करनेवाले मनुष्यों के हाथ से चली गयी, और वात अर्थात् पवन अथवा wind पित्त अर्थात् वांति (उलटी) में निकलनेवाला व पदार्थ अथवा bile और कफ तथा बल्गम में निकलनेवाला चिक्कण पदार्थ अथवा Phlegm ऐसी खेदकारक विपरीत भावना उनके मन में घर कर बैठी। परिणाम में पीछे होनेवाले यूरोपीय विद्वान् शोधकों की समझ में इस प्रणाली की उपयोगिता समझ में नहीं आयी, और इसीसे वह पाश्चात्य देशों में समूल नष्ट हो गयी। ऐसा होने के कारण आयुर्वेद की निदान तथा चिकित्सा करने की यह उत्तम वात, पित्त और कफ की प्रणाली, केवल आर्यावर्त्त में ही रह गयी, और इसीसे उस प्रणाली को त्याग देने वाले चिकित्सकों को रोगी का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधारने के लिये कितने टेढ़े और लम्बे मार्ग से वह काम करना पड़ता है, यह बात उक्त प्रणाली के अनुसार काम करनेवाले सर्व चिकित्सक भली भाँति जान सकते हैं।

वात, पित्त और कफ यह क्या है ?

What is Vata, Pitta and Kafa ?

गृहस्थो, वात पित्त और कफ यह क्या है और किस प्रकार निदान तथा चिकित्सा में वह चिकित्सकों को उपयोगी होता है ? यह जानना प्रत्येक चिकित्सक के लिये विशेष आवश्यक है। क्योंकि इस प्रणाली से काम करने वाले चिकित्सक को इस प्रणाली के न जानने वाले चाहे जैसे चिकित्सक की अपेक्षा कितनी सरलता तथा कितनी शीघ्रता से यश मिल सकता है यह बारंबार प्रत्यक्ष देखने में आता है।

वात, पित्त और कफ ये वैद्यक विद्या की बारहखड़ी हैं।

Vata, Pitta and Kafa is the Alphabet of Ayurved.

गृहस्थो, विदेशी वैद्यक विद्या के चिकित्सकों की जानकारी के लिये मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि, जैसे एक बालक को विद्यारम्भ के निमित्त वर्णमाला और बाराखड़ी सीखने की आवश्यकता है, वैसे ही एक चिकित्सक को वैद्यक शास्त्र के अध्ययन करने के लिये वात, पित्त और कफ की प्रणाली जानने की परमावश्यकता है।

वात यह कोई साधारण वायु नहीं, किन्तु जीवन को सुरक्षित रखने से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक क्रिया और उस कार्य के सम्बन्ध में काम करने वाले सभी अवयवों को गति देने वाली एक महती शक्ति है। पित्त यह वमन और विरेचन द्वारा निकलने वाला पीला पदार्थ नहीं, किन्तु शरीर में होने वाली भिन्न-भिन्न क्रिया कि जिनमें विशेष करके क्रिया की उष्णता को योग्य

प्रमाण में संचित रखना, कि जिससे पाचन क्रिया बराबर हो सके, तथा उसके कारण रक्त की उत्पत्ति और वृद्धि हो, इतना ही नहीं बल्कि शरीर-स्वास्थ्य के लिये आवश्यक भिन्न-भिन्न रस भी तैयार होकर अपना काम करें, और इन सब क्रियाओं के होते हुए इनमें से उत्पन्न होने वाले उपयोगी पदार्थों को ग्रहण कर निरुपयोगी पदार्थों को मलमूत्र द्वारा बाहर निकालने के योग्य स्थिति में लाने वाली जो शक्ति है, वही पित्त है। कफ यह खाँसी में बाहर निकलने वाला चिकना पदार्थ नहीं, बल्कि शरीर की उष्णता पर दबाव रख कर शरीर को एक प्रकार की ठंडक देने वाली तथा शरीर का प्रबन्ध उत्तम रीति से चलाने में उपयोगी भिन्न-भिन्न रस और स्निग्ध पदार्थों को उत्पन्न करने वाली एक शक्ति है।

त्रिधातु तथा त्रिदोष का विवेचन

Explanation of Tridhatu and Tridosha.

वात, पित्त और कफ ये तीन शक्तियाँ उस शक्ति की उत्पत्ति के हेतुभूत शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के एकत्रित कार्यों से उत्पन्न होती हैं और इसी कारण उन अवयवों के कार्य्यों में न्यूनाधिकता होने पर इन शक्तियों के कार्य्यों में भी न्यूनाधिकता होना सम्भावित होने के कारण जब तक वात, पित्त और कफ के कार्य शरीर में समान परिमाण में स्थित हों तब तक उन्हें त्रिधातु कहा जाता है, और उनसे शरीर का स्वास्थ्य उत्तम स्थिति में रहता है परन्तु उस कार्य में न्यूनाधिकता होने से शरीर में भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होना सम्भव है तथा उस समय वे त्रिदोष कहे जाते हैं। यह त्रिदोष और त्रिधातु की प्रणाली रोगी की स्थिति का निदान करने तथा उसकी चिकित्सा करने में एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को इतनी अधिक उपयोगी है कि, उसका वास्तविक अभ्यास किये बिना शास्त्रीय रीति से निदान अथवा चिकित्सा करना उसके लिये नितान्त अशक्य हो जाता है। रोगों का निदान और चिकित्सा करने की यह शैली पूर्ण शास्त्रीय तथा इतनी अधिक विद्वत्तापूर्ण है कि, एक बार इसे समझ लेने पर किसी भी भयङ्कर रोग में अपना मार्ग सरलता से ग्रहण करने के लिये यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो चुकी है।

ऋतु, रोग और त्रिधातु तथा त्रिदोष का पारस्परिक सम्बन्ध।

Connection of different Diseases with different Seasons as well as Tridhatu and Tridosha.

भिन्न-भिन्न ऋतुओं का भिन्न-भिन्न रोगों के साथ कितना निकट का संबन्ध है यह इस प्रणाली द्वारा सहज में जाना जाता है। विदेशी वैद्यक-शास्त्रों में इस बात के समझने के लिये किसी प्रकार का कोई भी शास्त्रीय नियम अथवा पद्धति आज तक उसमें इतना शोध होने पर भी देखने में आयी नहीं। आयुर्वेद के आधार से प्रत्येक साधारण वैद्य भली भाँति समझ सकता है कि अमुक ऋतु में मनुष्य के शरीर में अमुक धातु वात, पित्त अथवा कफ न्यूनाधिक होकर दूषित होता है, और अमुक रोग की उत्पत्ति का कारण होता है। ऐसा होने के कारण विदेशी वैद्यक-शास्त्रवेत्ता जहाँ रोग उत्पन्न हो जाने पर उसके मिटाने के उपायों की योजना करने का सामर्थ्य रखता है, वहाँ आयुर्वेदीय चिकित्सक अमुक ऋतु में अमुक रोग उत्पन्न होने की संभावना है, इसे पहले ही जान कर उसे रोकने के लिये प्रथम से ही उसके

अनुकूल पथ्य सेवन की सूचना रोगी को देता है। आयुर्वेद का यह एक सिद्धान्त है कि ग्रीष्म ऋतु में अमुक, शरद् ऋतु में अमुक, वर्षा ऋतु में अमुक इस प्रकार प्रत्येक ऋतु में अमुक धातु का न्यूनाधिक होना संभव है, तथा वात के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग पित्त के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग और कफ के न्यूनाधिक होने पर अमुक रोग का होना संभव है।

रोग की प्रकृति के साथ वात, पित्त और कफ का सम्बन्ध।

Connection of Patient's temperament with Vata, Pitta and Kafa.

ये न्यूनाधिक वात, पित्त और कफ किसी रोगी पर अधिक तथा किसी रोगी पर न्यून प्रभाव रखते हैं।

वात जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह वात-प्रकृति वाला कहलाता है, पित्त जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह पित्त-प्रकृति वाला कहलाता है, और कफ जिस रोगी पर अधिक प्रभाव रखता है वह कफ-प्रकृति वाला कहलाता है। विद्वान् वैद्य अपने रोगी के निरन्तर सहवास द्वारा प्रथम से ही जान सकता है कि, उसका रोगी वात-प्रकृति वाला, पित्त-प्रकृति वाला अथवा कफ-प्रकृति वाला है, और इससे भिन्न-भिन्न ऋतु में कौन-कौन रोग होने की सम्भावना है यह बात पहले से ही उसके ध्यान में आ जाती है। यह वात, पित्त और कफ की प्रकृति वंशपरंपरा तक चलने वाली होने के कारण, बहुधा कई कुटुम्ब वात, पित्त अथवा कफ प्रकृति वाले पीढ़ी दर पीढ़ी देखने में आते हैं। इससे एक विद्वान् वैद्य जो किसी कुटुम्ब की प्रकृति को जानता हो, तो उस कुटुम्ब की चिकित्सा वह सैकड़ों कोसों की दूरी पर से भी कर सकता है।

रोगी की नाड़ी का वात, पित्त और कफ के साथ सम्बंध।

Connection of Patient's Pulse with Vata, Pitta and Kafa.

और इसमें विशेष अद्भुत और महत्त्व की बात यह है कि इन वात, पित्त और कफ की प्रकृति के समय मनुष्य की नाड़ी में भिन्न-भिन्न परिवर्तन होते हैं। प्रत्येक वैद्य को इन परिवर्तनों के जानने की आवश्यकता है और इसका शिक्षण उस वैद्यक-शास्त्र के शिक्षण का एक अति उपयोगी विभाग है। जब कि, प्रत्येक रोग में शरीर की न्यूनाधिक उष्णता के समय हृदय के रोग Heart diseases फेफड़े के रोग Lung diseases इत्यादि भिन्न-भिन्न रोगों में, जो नाड़ी का परिवर्तन होता है, उसे प्रत्येक डाक्टर जानता है तब शरीर में वात, पित्त और कफ के प्रकोप के समय भी नाड़ी में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। तदनुसार वात-नाड़ी, पित्त-नाड़ी और कफ-नाड़ी ये नाड़ो के भिन्न-भिन्न नाम साधारण रीति से होते हैं। वात के प्रकरण में वायु के रोग और उनके लक्षण बतलाये जाते हैं, पित्त के प्रकाण में पित्त के रोग तथा लक्षण लिखे रहते हैं और कफ के प्रकरण में कफ के रोग तथा लक्षण बताये जाते हैं।

नाड़ी से रोग का निदान किस रीति से होता है?

How the disease is diagnosed by Pulse?

इसके अनुसार रोगी से कुछ भी पूँछे बिना वात की नाड़ी हो तो अमुक रोग, कफ

की नाड़ी हो तो अमुक रोग और पित्त की नाड़ी हो तो अमुक रोग इस रोगी को होना चाहिये ऐसा एक वैद्य निश्चित कर सकता है। तदनन्तर कदाचित् रोगी से प्रश्न करने का संयोग न बने तो रोगी के शरीर पर दीखते हुए लक्षण और चिन्हों से कुछ भी पूछे बिना रोग का निदान करने में शक्तिमान् होना संभव है। अलबत्ता इस कार्य के लिये अधिक समय के अनुभव तथा हजारों मनुष्यों की नाड़ी देखने का जिसे सौभाग्य प्राप्त हुआ हो ऐसे विद्वान् वैद्य की आवश्यकता है। ऐसे वैद्यों को नाड़ी दिखाने मात्र से रोग की परीक्षा नहीं हो सकती ऐसा मानना तो असम्भवित ही है, किन्तु शिक्षण अथवा अनुभव की न्यूनता के कारण जैसे बैरिस्टर और डाक्टरों से भूल होती है वैसे एक वैद्य भूल करे यह हो सकता है।

इस प्रकार नाड़ी से रोग का निश्चय करने की पद्धति सर्वथा शास्त्रीय है, अतएव पूज्य महात्मा गांधी ने कलकत्ते में "अष्टाङ्गहृदय रुग्णालय" की नींव में शिलान्यास करते समय इस विषय में जो कुछ कहा है वह वैद्यक-शास्त्र और आयुर्वेद के सिद्धांत का परिज्ञान न होने के कारण ही कहा है ऐसा मानना चाहिये।

इस प्रकार सिद्ध हुई प्रणाली से एक आयुर्वेदीय चिकित्सक रोगी से रोग होने पर उसे मिटाने के लिये समर्थ हो इसमें तो संदेह ही नहीं, किन्तु रोगी के रोग उत्पन्न होने के सम्भव को प्रथम से ही जान उसे रोकने के लिये भी योग्य मार्ग का अनुसरण करने को वह प्रथम ही समर्थ होता है। सज्जनो, आज भी विद्वान् आयुर्वेदीय चिकित्सकों की रीति है कि, वे अपने रोगी को ऋतु-परिवर्तन के समय उसकी प्रकृति पर ध्यान देकर उसे एक नियत रीति से ही वर्तना चाहिये ऐसी सूचना देते हैं कि जिससे भविष्य में उत्पन्न होनेवाले अनेक महान् रोगों का प्रतिबन्ध प्रथम से ही कर सकते हैं।

सारे संसार में निदान तथा चिकित्सा करने और स्वास्थ्य की रक्षा के निमित्त ऐसे उत्तम रीति से सुसंघटित नियम अन्य किसी वैद्यक शास्त्र में नहीं दिखायी देते। और जब तक आयुर्वेद के अतिरिक्त जिस वैद्यक शास्त्र के साथ हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है उस अङ्गरेजी वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता वात, पित्त और कफ की इस प्रणाली को निदान चिकित्सा करने तथा शरीर का स्वास्थ्य सुरक्षित रखने की एक उपयोगी पद्धति के समान स्वीकार नहीं करते, तब तक अङ्गरेजी वैद्यक शास्त्र में चाहे जितना शोध और सुधार हों पर वे आयुर्वेदीय चिकित्सा और निदान की बराबरी करने के लिये कभी समर्थ नहीं हो सकते।

आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति।

Present position of Ayurved

सज्जनो, यह विषय मुझे हमारी वर्तमान परिस्थिति और हमारे अस्तित्व की उपयोगिता पर ले जाता है। मेरे प्रिय चिकित्सक बन्धुओं, मेरी सुशील बहिनों, और माननीय गृहस्थों! जो पद आज आपने मुझे दिया है और जिस पद का न्याय चुकाने के लिये मैं आपके समक्ष उपस्थित हूँ, उस पद पर आयुर्वेद सम्बन्धी किसी प्रकार का पक्षपात किये बिना तथा विदेशी वैद्यक शास्त्र की ओर किसी प्रकार का तिरस्कार किये बिना जैसे न्यायालय में एक गवाह अपना बयान देता है वैसे ही मैं कहता हूँ कि, यदि हम लोग विद्वान् वैद्यों के प्रभाव को सुरक्षित रक्खेंगे तथा नवीन विद्वान् चिकित्सकों को उत्पन्न करने के लिये समर्थ हो सकेंगे तो विदेशी वैद्यक के कितने ही सुधार और संवर्द्धन सम्बन्धी शोध हो चुकने पर भी आयुर्वेद आर्या-

वर्त में श्रीनगर से लङ्का तक और करांची से कलकत्ता तक अपना सबल हाथ सदा के लिये लम्बायमान करता हुआ इस महान् भारतवर्ष में बसनेवाले करोड़ों मनुष्यों के शरीर, स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तरदायित्व के लिये भिन्न-भिन्न सभी चिकित्सा शास्त्रों में प्रथम स्थान को प्राप्त करेगा।

मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है, मुझे इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं है। शास्त्रीय पद्धति पर रचा हुआ एक शास्त्र जो निरन्तर योग्य विद्वानों के हाथ में रहेगा तो मैं साहस पूर्वक कहता हूँ कि केवल आर्यावर्त ही नहीं, किन्तु सुदूर देशों में भी उसका प्रचार जो पूर्व काल में किसी समय था और समयानुसार नाश को प्राप्त हुआ है, उसे पुनः उत्पन्न करने के लिये हम लोग साधनभूत होंगे।

माननीय सज्जनो और बहनों, इस प्रसंग पर आपके समक्ष मेरा एक ही प्रश्न है कि जिस उत्साह से आपका आज के इस सम्मेलन में शुभागमन हुआ है उस उत्साह को क्या हम लोग आयुर्वेद के लिये मेरे बताये हुए उत्तम समय की पुनः प्राप्ति कराने के साधन-सम्पन्न करने की ओर ले जा सकेंगे? क्या आयुर्वेद-पारंगत विद्वान् चिकित्सकों को उक्त कार्य में सहायभूत होने के लिये तैयार कर सकेंगे? क्या आर्यावर्त के असंख्य धनवान् गृहस्थों में से थोड़ों को भी अपने साथ सहानुभूति के लिये ले सकेंगे? जो हम लोग ऐसा कर सकें तो इस आयुर्वेद का अधिकाधिक प्रचार होने के विषय में विशेष करके विद्वान् वैद्य, धर्मार्थ औषधालय तथा उत्तम आतुरालय बनाने के लिये शक्तिशाली हो सकेंगे।

इस समय एक गम्भीर प्रश्नका बहुतों के मन में वास्तविक रीति से उठना संभव है कि

क्या आयुर्वेद सम्पूर्ण है?

Is Ayurveda a perfect science?

चरक, सुश्रुतादिक हमारे प्राचीन ग्रन्थ, आधुनिक वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करने में निदान तथा चिकित्सा के लिये सब प्रकार से सम्पूर्ण हैं कि नहीं? यह प्रश्न अति महत्व का तथा प्रत्येक वैद्य के मनन करने योग्य, विचारणीय एवं उसके सम्बन्ध में एक निर्णय पर त्वरित आ जाने योग्य है। जनता आयुर्वेद के लिये कुछ भी करने के पहले हम लोगों से उक्त प्रश्न का उत्तर माँगती है और उस उतर पर वे अपना जीवन हमारे हाथ में सौपें या न सौपें इसका मुख्य आधार है।

आधुनिक विज्ञान का सुधार अर्थात् विदेशी मेडिकल साइन्स के नवीन शोध के रूप में वारंवार प्रकट होनेवाले प्रयोग जो असंख्य प्रमाण में हम लोगों के समक्ष होते हुए देखे जाते हैं उनके साथ तुलना करने पर आयुर्वेद सभी विषयों में निदान-चिकित्सा के लिये परिपूर्ण है कि नहीं? इस प्रश्न का उत्तर यदि मैं आयुर्वेद के अनुकूल दूँ तो मेरा आयुर्वेद की ओर पक्षपात माना जायगा। इस कारण विदेशी मेडिकल साइन्स के महान् ज्ञाता डा० पालबर्धन ए० वी० का इस विषय पर जो अभिप्राय है उसे मैं आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। वे कहते हैं कि:—

"I have been extremely struck with the profound meaning of many passages in Charaka, which indeed go beyond anything that I have met before, in Medical Literature of the West".

"चरक के अनेक वाक्यों से मैं इतना अधिक आश्चर्य को प्राप्त हुआ हूँ तथा मैं ऐसा

मानता हूँ कि पश्चिम की वैद्यक विद्या में मैंने आज तक जो कुछ पढ़ा और देखा है उससे भी चरक के सिद्धान्त आगे बढ़े हुए हैं।" इसी स्थिति के दूसरे सज्जन Mr F. A. S. Krine कहते हैं कि It is wonderful to note the comparatively advanced view held by the sages of India, and how completely they had anticipated discoveries, which we modern, flatter ourselves, are due to the enlightenment of this age".

"भारतीय वैद्यक शास्त्रवेत्ताओं के आगे बढ़े हुए विचारों को पढ़कर मैं बड़े ही आश्चर्य को प्राप्त हो रहा हूँ। मुझे कहना चाहिये कि आधुनिक जिन नवीन शोधों के लिये हमें अभिमान है उन शोधों को वर्षों पहले आर्यावर्त के विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में परिपूर्ण रूप से लिख रक्खा है।"

गृहस्थो! इन वाक्यों के अनन्तर और साक्षात् पाश्चात्य विद्वानों के मुख से निकलने पर क्या कभी ऐसा प्रश्न उठ सकता है कि आधुनिक वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करते हुए आयुर्वेद परिपूर्ण कहा जा सकता है या नहीं? वर्तमान वैज्ञानिक सुधारों के साथ तुलना करते हुए मेरा दृढ़ सिद्धान्त है कि आयुर्वेद परिपूर्ण है। उसमें जो कुछ अपूर्णता प्रतीत होती हो वह आयुर्वेद शास्त्र की नहीं किन्तु शिक्षा प्रणाली की है। इस कारण मैं अपने विद्वान् वैद्य मित्र, आयुर्वेदानुरागी-गृहस्थ तथा बहिनों को अन्तःकरण से विश्वास दिलाता हूँ कि वर्तमान विदेशी वैज्ञानिक सुधारों की प्रत्येक गहरी से गहरी भूमिका में पहुँचने पर मुझे विश्वास हुआ है कि वैज्ञानिक सुधारों के परिणाम स्वरूप जो सिद्धान्त आज तक जन-समूह के हृदय-पटल पर अंकित किये गये हैं उनकी अपेक्षा चरक, सुश्रुत के सिद्धान्त अधिक आगे बढ़ते हुए, अधिक अनुकूलता वाले और अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

मलेरिया (विषमज्वर) के लिये कमेटियाँ नियत हुई, मच्छड़ों की खोज की गयी, कुएँ और नाले बन्द किये गये, वृक्ष और वनस्पतियाँ उखाड़ डाली गयीं, हजारों, लाखों रुपये खर्च हुए और आगे भी होंगे। इस प्रकार साइन्स के ये सब सुधार हो चुकने पर भी हम लोग इस विषय में आज कहाँ पर हैं? (कहना पड़ता है कि) जहाँ थे वहीं पर। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर कहूँगा कि पहले से भी गिरी दशा में। इस ज्वर के लिये महात्मा चरक के सिद्धान्तों को आप ध्यान में लें, भिन्न-भिन्न ऋतु के अनुसार बतायी हुई दिनचर्या तथा रात्रिचर्या के अनुसार बरतें; मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मलेरिया आपके घर में अवश्य नष्ट हो जायगा।

डा० क्लार्क ठीक कहते हैं कि:—"If you treat your patient according to the methods of Charaka, there will be less work for undertakers and fewer chronic invalids in the world."

"जो आप अपने रोगियों की चिकित्सा चरक के सिद्धान्तानुसार करेंगे तो चिता रचने के काम में कमी होगी और जगत् में रोगी मनुष्य बहुत कम देखने में आयेंगे।"

दुःखदायक बात यही है कि नवीन नवीन शोध प्रकट होने के अनन्तर दूसरे अथवा तीसरे ही वर्ष इन शोधों का महत्त्व अनुभवानुसार घट जाता है। इसे क्या साइन्स का सुधार कह सकते हैं? माननीय गृहस्थ और बहनो, हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं कि

जिसके द्वारा हम ऐसे वैज्ञानिक सुधार के मोहजाल से आपको बचा सकें। हम तो केवल आपको सच्चे सिद्धान्त और सच्चे उपचार बता सकते और विश्वास दिला सकते हैं कि वे आपको नीरोग रख कर आपका आयुष्य बढ़ाने में साधनभूत हो सकेंगे।

विद्वान् वैद्यो, सद्गुणवती बहनो तथा माननीय गृहस्थो, पूर्वोक्त रीति से चरक, सुश्रुत आदि हमारे प्राचीन ग्रन्थ कहाँ तक परिपूर्ण हैं—यह बता चुकने पर ऐसी पूर्णता होते हुए भी आयुर्वेदीय चिकित्सकों की, उनके कामों में जो कुछ न्यूनता देख पड़े, तो वह क्यों देख पड़ती है? इसका उत्तर मैं आपको दूँगा। केवल पुस्तक सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करके जो काम किया जाय किन्तु उसकी प्रत्यक्ष क्रिया की शिक्षा में न्यूनता हो तो, उस काम में न्यूनता प्रतीत होना स्वाभाविक है। गृहस्थो, पूर्णरूप से प्रत्यक्ष शिक्षण मिल सके तो ऐसी शिक्षा प्रणाली तथा तदुपयोगी साधन सामग्री बिना इस न्यूनता को दूर करने के लिये हमारे पास कोई उपाय नहीं। वर्षों तक चरक और सुश्रुत के श्लोकों का अन्वय और अर्थ सीखा करो तो भी एक अनुभवी वैद्य होना बहुत कठिन है। शस्त्र सिद्धान्त पूर्णरूप से समझ लेने पर भी उन्हें प्रत्यक्ष क्रिया में लाना प्रत्यक्ष शिक्षण मिले बिना कदापि नहीं हो सकता। आयुर्वेद के उत्तम सिद्धान्तों का पूर्णरूप से अध्ययन कर उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेने के अनन्तर ही विद्यार्थी सच्चा वैद्य बन सकता है। अतः हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर विद्वान् वैद्यों को बहुत सूक्ष्म रीति से दृष्टिपात करने की आवश्यकता है।

आयुर्वेद का शिक्षण=मातृभाषा की आवश्यकता।

Study of Ayurved; Instructions in Mother Tongue necessary.

आयुर्वेद-शिक्षण के अपने तीस वर्ष के अनुभव से (आप जानते हैं कि प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज को स्थापित हुए तीस वर्ष हो चुके हैं) मैं ऐसे निश्चय पर आया हूँ कि यदि ग्रन्थ विद्यार्थियों की मातृभाषा में लिखे गये हों तो उनको समझने तथा उनका आन्तरिक तात्पर्य ग्रहण करने तक ही नहीं; किन्तु उसमें वर्णित भिन्न-भिन्न क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी अधिक उपयोगी होते हैं। ऐसा कह कर मैं संस्कृत भाषा के अग्र स्थान का हरण करना नहीं चाहता, किन्तु जब विद्यार्थी को शिक्षा देने के लिये प्रत्येक संस्कृत श्लोक को उसकी मातृभाषा में समझाने की आवश्यकता पड़ती है, तब यदि उसकी सम्पूर्ण पुस्तक मूल श्लोकों के आधार पर ही अथवा उनके साथ ही विद्यार्थी की मातृभाषा में लिखी गयी हो तो वह विद्यार्थी के लिये अधिक उपयोगी और उसका तात्पर्य ग्रहण करने के लिये अधिक सरल हो सके इसमें कोई सन्देह नहीं। इतना ही नहीं किन्तु इस प्रकार श्लोकों का भाव मातृभाषा में ऐसी उत्तम रीति से इतने विस्तार से विद्यार्थी को ऐसी पुस्तकों द्वारा दिया जा सके कि वह विद्यार्थियों के अन्तःकरण में तत्काल क्रीड़ा करने लगे।

पुस्तकें मातृभाषा में और विषयानुसार लिखानी चाहिये।

Necessity of seperate books in accordance with different subjects.

आयुर्वेद के शिक्षण की सब पुस्तकें विषयानुसार लिखानी चाहिये। विद्वान् चिकित्सक

बान्धवो ! आप जानते हैं कि आयुर्वेद के चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट वगैरह ग्रन्थों में वैद्यकानुसारी भिन्न-भिन्न बहुत विषयों का समावेश करने में आया है ! जैसे कि, निदान, चिकित्सा, शल्य-शालाक्यशास्त्र, सूतिकाशास्त्र, स्त्रीरोग, बालरोग-चिकित्सा, आरोग्य शास्त्र, विष प्रकरण, कृमि-तन्त्र, त्रिदोष, रुग्णेन्द्रिय विज्ञान, औषधि-गुण-दोष, रसशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, शरीर, त्रिधातु, इन्द्रिय-विज्ञान और उपवैद्यक ऐसे भिन्न-भिन्न हैं लेकिन अतिशय उपयुक्त विषय में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, रसरत्नसमुच्चय, माधवनिदान, बृहन्निघंटु, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश इत्यादि संस्कृत भाषा में रची हुई असंख्य पुस्तकों में एक दूसरे के साथ निश्रित हो गये हैं। ये सब विषय आयुर्वेद के अभ्यास-क्रम में उसके सानुकूल समय पर सिखाने की आवश्यकता है। ऐसा हो तो पहले सिखाये हुए विषयों के ज्ञान से पीछे सिखाने के विशेष उपयुक्त विषयों का शिक्षण अभ्यास करनेवालों को अधिक सरल हो। इसलिये आयुर्वेद की पुस्तकें विषयानुसार लिखी जाँय तो वे विशेष उपयुक्त हों इतना ही नहीं, किन्तु जब जब किसी भी खास विषय में कुछ भी घटाने बढ़ाने के सुधार की आवश्यकता आ पड़े, तब तब उस विषय की खास पुस्तक में उसकी सूचना देने की सरलता हो सके।

यहाँ पर एक दूसरा आवश्यक प्रश्न खड़ा होता है कि जो ऐसी पुस्तकें विषयानुसार विद्यार्थियों की मातृ भाषा में लिखी जायँ तो उसमें पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र की मदद लेने की आवश्यकता है कि नहीं ? यह बात बहुत विचारने योग्य और शास्त्रीय ज्ञान से निर्णीत करने योग्य है। सुश्रुताचार्य जी ने अश्मरी (पथरी) रोग हटाने का वर्णन सुश्रुतसंहिता के चिकित्सा स्थान के ७ वें अध्याय में बहुत सूक्ष्मता से किया है, इसलिये इस शस्त्र-क्रिया का वर्णन विद्यार्थियों को पढ़ाने के समय उसमें उपयोग में आते हुए शस्त्र विद्यार्थियों को बतलाने की आवश्यकता है। इन शस्त्रों का सूक्ष्म वर्णन भी सुश्रुत में करने में आया है, लेकिन ऐसे तैयार शस्त्र हम लोग आजकल पाश्चात्य शस्त्रक्रियालय में ही पा सकते हैं ऐसी अपनी स्थिति है। अतएव इस प्रकार की मदद, जब-जब आयुर्वेद को ऐसे विषय और साधनों में त्रुटि देखने में आवे अथवा अमुक विषय में साधनों के अभाव से समझना कठिन पड़े तब-तब वे विषय पाश्चात्य वैद्यक से लेना मैं किसी रीति से अयोग्य नहीं मानता हूँ, सायन्स यानी शास्त्र के सिद्धान्त और साधन कोई भी विद्वान् अपनी बुद्धि से, अनुभव से अथवा प्रयोग से सिद्ध करता है, तो भी उन सिद्धान्त और साधनों पर उसका ही अधिकार नहीं रहता, किन्तु जगत् में जिन-जिन लोगों को वे मान्य हों उन सबका भी उस पर अधिकार रह सकता है। मेरे प्यारे गृहस्थो, इस रीति से मनुष्य मात्र—पीछे वह चाहे किसी भी देश का हो, तो भी जगत् में अस्तित्व धरानेवाले शास्त्र उसको अपनी इच्छा बिना उतने अंश ग्राह्य होते हैं, इसलिये अपने शास्त्रों का हिन्दू राज्य के अस्त होने के बाद समयपरत्वेन जितने अंश नाश हुए हों वे त्रुटियाँ संपूर्ण करने के लिये अपने शास्त्रों के बीज से उत्पन्न हुए भिन्न-भिन्न वृक्षों में से आवश्यक फलों को लेकर उनमें फिर परिवर्तन होने से किसी प्रकार की बाधा हो ऐसा समझ में नहीं आता है।

आयुर्वेद के अभ्यास क्रम का निर्णय करने में इतने सिद्धान्तों पर ध्यान देकर पीछे एक उत्तम विद्यालय को चलानेवाले प्रत्येक विषयों का संपूर्ण रीति से शिक्षण हो सके इतने समय के लिये और प्रारंभ के शिक्षण के लिये तथा पीछे के शिक्षण के लिये उन विषयों का क्रम बना कर उसका पुस्तक द्वारा और प्रत्यक्ष शिक्षण दे सकें ऐसा अभ्यास क्रम बनाने की आवश्यकता है।

आयुर्वेद का अभ्यास-क्रम ।

Curriculum for teaching Ayurved.

इस प्रकार का अभ्यास क्रम पाँच वर्ष पर्यंत तो अवश्य होना ही चाहिये । कारण कि उसके सिवाय विद्यार्थियों को परिपूर्ण शिक्षण मिलना बिल्कुल अशक्य है, इसलिये इतने समय का अभ्यास-क्रम ऐसा रखना चाहिये कि, जैसे 'प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज में' रखने में आया है । इसलिये विद्यालय में पहले ढाई वर्ष के लिये अंग्रेजी वैद्यक-विद्या की शिक्षण पद्धति के अनुसार शारीर, त्रिधातु और इंद्रियविज्ञानशास्त्र, उपवैद्यक, औषधि-गुणदोष, वैद्यकीय रसशास्त्र तथा ओषधी क्रिया आदि वैद्यकीय वनस्पति शास्त्र, ये विषय होने चाहिये । इनमें सफल होने पर दूसरे ढाई वर्ष के लिये आरोग्य शास्त्र, न्याय, वैद्यक और विष-प्रकरण, कृमितंत्र, त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय विज्ञान, निदान, चिकित्सा, शल्यशालाक्य शास्त्र और सूतिका शास्त्र, स्त्री-रोग तथा बाल-रोग ये विषय रखने की आवश्यकता है । ये सब विषय आयुर्वेद के अन्यान्य पुस्तकों में से अच्छी तरह सिखाये जा सकते हैं । ऐसे ही पाश्चात्य वैद्यक में रहे हुए इन विषयों के सिद्धान्त का विशेष ज्ञान होने के लिये जानना इसमें कुछ बुराई नहीं है । त्रिधातु और त्रिदोष का विषय तथा स्वास्थ्य वृत्त के आधार पर अस्तित्व में रहा हुआ प्रिवेंटिव मेडिसिन का विषय अंग्रेजी वैद्यक शास्त्र के अभ्यास क्रम में दाखिल करने में आया नहीं है ।

अब ये सब विषय कैसी उत्तम रीति से आयुर्वेद के ग्रन्थों में वर्णन किये गये हैं और इस जमाने के अनुसार उनमें कुछ अदल-बदल करने की आवश्यकता है या नहीं और ऐसे ही उनका शिक्षण देने की कौन कौन उत्तम रीतियाँ हैं इस विषय में आपके सामने संक्षेप से बोलता हूँ ।

शारीर शास्त्र ।

Anatomy.

सारे जगत् का शारीर शास्त्र एक ही होना चाहिये, उसमें कुछ सन्देह नहीं है । आर्यावर्त, यूरोप, चीन अथवा जापान के मनुष्यों की शरीर की रचना में ईश्वर ने किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं रक्खा है । सुश्रुताचार्य जी शारीर के विषय में विस्तार से विवेचन करते हैं कि शरीर के सब अवयवों का स्थान और उनके कार्य बतला कर अस्थि, धमनी, शिरा इत्यादि की संख्याएँ विश्वसनीय रीति से बतलाते हैं । मुर्दे की परीक्षा किस तरह से होना चाहिये ? और बड़े बड़े अवयवों के साथ छोटे में छोटी रक्तवाहिनी नाड़ियाँ भी किस तरह से जाँचनी चाहिये इसकी जो जो रीतियाँ सुश्रुत में बतलाने में आयी हैं वह किसी भी सुशिक्षित वैद्य से अज्ञात नहीं है । अंग्रेजी वैद्यक विद्यार्थियों को अपने हाथ से मुरदा चीर कर जाँचने को बाध्य करता है इससे वे लोग शारीरिक शास्त्र के सम्बन्ध में बहुत प्रत्यक्ष अनुभव ले सकते हैं और भविष्य में शस्त्र का उपयोग करने के लिये हिम्मतवान् बन सकते हैं । आयुर्वेद का इतिहास अपने को याद दिलाता है, कि ऐसी क्रियाएँ आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये भी भगवान् बुद्ध के समय से पहले अस्तित्व में थीं । अगर ऐसा न होता तो सुश्रुताचार्य जी ने अश्मरी रोग की शस्त्र क्रिया का जिस सूक्ष्म रीति से वर्णन किया है ऐसा सूक्ष्म वर्णन कभी भी नहीं कर सकते । प्रिय चिकित्सक लोगों, आयुर्वेद के पहले पाठ का आरंभ करने के लिये आप लोगों को

शारीर शास्त्र पूरी तौर से सीखने के लिये मुर्दा चीर कर जाँचने की बहुत आवश्यकता है। शायद ऐसा न बन सके तो चीरे हुए मुर्दों के सब अवयव, शिराएँ, धमनियाँ, स्नायु इत्यादि आँख से देखने की आवश्यकता है। और साधनों के अभाव में यह भी न बन सके तो उस विषय के लिये बराबर तैयार करने में आये हुए नकली अवयव इत्यादि पास रख कर उस विषय के अभ्यास करने की आप लोगों को आवश्यकता है। विद्वान् वैद्य लोगों! वैद्यक शास्त्र के अध्ययन की यह पहली सीढ़ी अच्छी रखने के लिये जो कुछ अच्छी तजवीज आप लोगों से बन सके वह करने की खास आवश्यकता है।

त्रिधातु और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्र

Tridhatu and Physiology.

अपनी शिक्षण पद्धति की बारहखड़ी की दूसरी सीढ़ी त्रिधातु और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्र है। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव क्या काम कर सकते हैं और मनुष्य-जीवन के रक्षण करने में अपनी तरफ से वह शास्त्र किस जाति का हिस्सा देता हैं यह इन विषयों को सिखने से जानने में आता है। इन्द्रियों के जो भिन्न कार्य, जैसे कि, यकृत, आमाशय, हृदय, मस्तिष्क, अन्त्र, फुफ्फुस इत्यादि से होते हैं उनका परिपूर्ण अभ्यास करने की आवश्यकता है। इसलिये इस अभ्यास के लिये वाग्भट्ट और चरक की खास मदद लेकर सांप्रत इस विषय का प्रत्यक्ष शिक्षण जो इंग्लिश पद्धति से दिया जाता है उसकी मदद लेने की आवश्यकता है। कारण कि ऐसा करने से ये विषय विशेष सरलता से समझने में आवेंगे और इन सब अवयवों की क्रियाओं का कार्य समझने के बाद उसकी भिन्न-भिन्न पद्धति से इकट्ठे हुए बल से शरीर-स्वास्थ्य के रक्षण करने में अस्तित्व में आये हुए वात, पित्त और कफ से जो क्रियायें होती हैं, वे क्रियायें शरीर को पूर्ण स्वस्थता में रखने के लिये समर्थ होती हैं, अतएव ये वात, पित्त और कफ जो इस वक्त त्रिधातु कहे जाते हैं, उनके सिद्धान्त का परिपूर्ण अभ्यास करने की विद्यार्थियों को मेरी सूचना है। यह उनको उनके कार्य में अतिशय सहायकर्ता हो जायगा।

उपवैद्यक।

Minor clinical work.

अभ्यास क्रम के इसी विभाग में 'उपवैद्यक' नामक एक विषय बढ़ाने की आवश्यकता है। यह विषय शार्ङ्गधर, वाग्भट्ट, चरक, सुश्रुत इत्यादि में भिन्न-भिन्न स्थान पर लिखा गया है और यह रोगी के सम्बन्ध में तथा उसकी परिचर्या के सम्बन्ध में मात्र वैद्यक के अभ्यासियों के हाथ से हो सके ऐसी खास क्रियाओं का प्रत्यक्ष अभ्यास है। इसमें स्नेहविधि, स्वेदविधि, बस्तिविधि, नस्य, धूम्रपान, गंडूष, लेपविधि, औषध तथा पोषण देने की भिन्न विधि, रक्त-स्राव इत्यादि क्रियायें वैद्य की आज्ञा के अनुसार उपवैद्य, परिचारक, अथवा परिचारिका को करने की आवश्यकता है। इन सब विधियों की क्रियायें वैद्य होनेवाले विद्यार्थी का अपनी विद्यार्थी अवस्था में दूसरे विशेष महत्त्व के विषयों का अभ्यास प्रारंभ करने से पहले जान लेने की आवश्यकता है, उपरोक्त विषयों को जाननेवाले विद्यार्थी को उपवैद्य कहना चाहिये।

इन तीन विषयों के साथ ही उससे भी अधिक समय पर्यंत विद्यार्थियों को विशेष उपयुक्त विषय तैयार कराना चाहिये और वे विषय, ओषधी गुण-दोष, रसशास्त्र, ओषधी-

क्रिया तथा वनस्पति शास्त्र हैं। ओषधीगुणदोष में आयुर्वेद में कही हुई प्रत्येक खनिज, वनस्पति तथा प्राणिज ओषधियों के गुग, दोष और वात, पित्त तथा कफ परत्वे उसकी रचना, ये विषय समाये हैं।

ओषधी-गुणदोष।

Materia Medica.

भिन्न-भिन्न रोगों के ऊपर उपयोग में आती हुई ओषधियों से उस-उस रोग में वात, पित्त और कफ की वृद्धि अथवा न्यूनता को ध्यान में लेकर उसको समान कर सके ऐसी उस रोग की ओषधि रोगी को देने से उसको तुरत फायदा होता है।

अपने को वारंवार दोष देना पड़ता है कि, आयुर्वेद में कही हुई ओषधियाँ साम्प्रत की सायन्टिफिक पद्धति से परीक्षित न होने से वे शास्त्रीय नहीं कही जा सकती हैं। गृहस्थो! आयुर्वेद पर यह आक्षेप बिल्कुल झूठा और निर्मूल है। क्योंकि, आयुर्वेद में उपयोग में आने वाली प्रत्येक ओषधियाँ शास्त्रीय रीति से सिद्ध करने में आयी हुई हैं और सिद्ध करने के लिये खास प्रयोग जो आयुर्वेद में वर्णन किये गये हैं, जिसके आधार से अमुक ओषधि अमुक रोग पर अमुक रीति से उपयुक्त होगी, इसका निर्णय होता है।

वनस्पति ओषधियाँ।

Vegetable preparations of Ayurved.

चरक और सुश्रुत के समय में रीति से ओषधियों के गुण-दोषों का निर्णय करने के लिये राज्याश्रय से बहुत जंगल रखने में आते थे, और भिन्न-भिन्न प्राणियों को उन जंगलों में भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ खाने का प्रसंग आवे इस रीति से रखने में आते थे। इसके बाद उन-उन वनस्पतियों के गुण-दोषों का निर्णय करने वाला वैद्य उन प्राणियों को उस वनस्पति से अथवा ओषध से क्या गुण हुआ अथवा क्या दोष हुआ इसकी परीक्षा करते थे और इस पर से उन वनस्पतियों के गुण-दोष का निर्णय करने में आता था। मुझे कहना चाहिये कि आजकल भिन्न-भिन्न औषधों के गुणदोष का निर्णय करने के लिये जिन-जिन क्रियाओं का उपयोग करने में आता है जैसे कि, गूँगे प्राणियों के शरीर में त्वचा अथवा रक्तवाहिनी के मार्ग से औषधियों के तत्त्व दाखिल करके उनका उस प्राणी पर क्या असर होता है, यह जाँचने में आता है। उन क्रूर प्रयोगों की अपेक्षा से ऊपर बतलायी हुई प्राचीन रीति को अलबत्त मैं अधिक प्रशंसनीय और शास्त्रसंमत मानता हूँ। क्योंकि इस रीति का प्रयोग प्राणियों पर स्वाभाविक रीति से असर करता है और उससे उनके शरीर पर होते हुए परिणाम भी स्वाभाविक देखने में आते हैं, इस प्रकार से प्राचीन काल में करने में आये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुई वनस्पतियों की फिर आधुनिक रीति से जाँच करने में उनके गुणदोष में कुछ भी परिवर्तन हुआ हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता है, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण बतलाना आवश्यक होगा कि, बम्बई सरकार ने बेक्टीरियोलोजीकल और जेनरल रीसर्च पर नियुक्त किये हुए स्व० डा० सरवेयर जिन्होंने एम्० ए० डी० के साथ दूसरी बहुत ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त की थी उन्होंने आधुनिक रीति से अतिविष के गुण जाँचने का प्रारम्भ किया, और उन वनस्पतियों का प्राणियों पर भिन्न-भिन्न प्रयोग करने के बाद वे इतना सिद्ध कर सके हैं कि, अतिविष आम और अतिसार रोग पर उपयोगी है। गृहस्थों! इस रिसर्च के लिये इतनी सिरफोडी न कर आयुर्वेद

के शास्त्रीय सिद्धान्तों को अङ्गीकार करने में एलोपैथिक के आधुनिक विद्वानों को कौन बाधा है, यह मैं नहीं समझ सकता। बृहन्निघंटु के ७ वें भाग के २१२ पन्ने में अतिविष के गुणदोष में लिखा है कि, "हरेत् अतिसार आम" अतिविष झाड़ा और आम को मिटाता है। पैसा, वक्त और विद्वत्ता का चिरकाल पर्यंत व्यय करने से निर्णीत किया हुआ आधुनिक सिद्धांत हजारों वर्षों के पहले इस बाबत में शास्त्रीय रीति से प्राचीन विद्वानों के किये हुए सिद्धान्तों के साथ कैसा अक्षरशः मिलता है यह इससे सिद्ध होता है। जब डा० सरवेयर ने मुझसे यह बात जाना तब उन्होंने कहा कि, "हमारे रिसर्च वर्क का इतना उद्योग होने पर आयुर्वेद में उस वनस्पति के लिये बताये हुए गुणदोष में कुछ भी परिवर्तन मैं देख नहीं पाता" इससे आयुर्वेद के सिद्धान्तों के लिये उन डाक्टर साहब के हृदय में बड़ा ऊँचा स्थान हो गया।

आयुर्वेद की रसक्रिया फूटती नहीं है।

The Mercurial preparations of Ayurved; they cannot produce eruption.

यहाँ मैं आयुर्वेद की रस क्रियाओं के उपर कुछ बोलता हूँ, इस क्रिया में पारद और गन्धक जो अद्भुत काम बजाते हैं, वे किसी भी वैद्य से अज्ञात नहीं। आयुर्वेद के आधार से "पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः" पारा हर रोग को जीतने वाला और पुष्टि करनेवाला है। इंग्लिश वैद्यक-शास्त्र के आधार से भी पारद को रक्त-शुद्धि करने वाला माना जाता है। आयुर्वेद में रस-मिश्रित प्रयोग इतने हैं कि, पारद को अपने लोग भी औषधियों में श्रेष्ठ पद देते हैं यह असत्य नहीं कहा जायगा। यह पारद और उसकी क्रियाएँ आयुर्वेदीय चिकित्सकों के बड़े द्रव्य गिने जाते हैं। मुझे कहने में खेद उत्पन्न होता है कि, कितनी जगहों पर वैद्यों का मान उतारने के लिये, वे लोग वैद्यक-चिकित्सा में रोगियों को पारा खिलाते हैं और वह फूट निकलता है ऐसी बातें कह कर देशी मात्राओं के ऊपर असत्य अश्रद्धा उत्पन्न करा देते हैं। जनसमूह के लाभ के लिये इस संमेलन के पास मैं खात्री से कहता हूँ कि आयुर्वेद में लिखी हुई शास्त्रीय पद्धति से तैयार करने में आई कोई भी दवा रोगी को खिलाने से वह फूट आयी ऐसा कोई भी दृष्टान्त कोई भी मनुष्य अथवा कोई भी डाक्टर नहीं बतला सकेगा। आयुर्वेदीय मात्राओं के लिये यह आक्षेप बिल्कुल झूठा और कुछ भी प्रमाण संमत नहीं है। पारद तो क्या! परन्तु ऐसी कोई आयुर्वेदीय औषधि नहीं है कि, जो खिलाने से शरीर में फूट आयी हो। इससे मेरे चिकित्सक बान्धवो! कोई भी रोगी अथवा कोई भी डाक्टर आपकी दवा फूट आयी ऐसा कह कर आपको उपालम्भ दें तो वे झूठे हैं, ऐसा हिम्मत से बोलने में चूकना नहीं! कोई भी रसायन-क्रिया पीछे चाहे वह कच्ची हो या पक्की हो तो भी उसमें शरीर में फूट निकलने का गुण है ही नहीं। फूटने वाले जो-जो औषध हैं वे जिस-जिस रीति से अंग्रेजी वैद्यक-शास्त्र की पद्धति से देने से फूट आते हैं, इसी रीति से ही आयुर्वेद की पद्धति से देने से भी फूट आते हैं, परन्तु इन फूटने वाले औषधों में से एक भी औषध रसायन नहीं है। मैंने बहुत लोगों को कहते सुना है कि, "हम देशी दवा खाते डरते हैं, शायद उसमें रसायन हो और वह फूट निकले" सो यह एक अज्ञानता की पराकाष्ठा है और रोगियों के मन में ऐसे विचार भर देना यह ऐसे समझाने वालों की इस विषय में परिपूर्ण अज्ञानता है। पारद के संयोग से होने वाले असंख्य औषध आयुर्वेद में अत्यन्त क्षेम कार्य करते हैं। मकरध्वज, पूर्ण

चन्द्रोदय रस, रस सिन्दूर, सुवर्ण पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, रस पर्पटी इत्यादि औषध शास्त्रीय होकर जिस रोग पर देने में आते हैं, उस पर वे अपना कार्य पूरी तौर से पूरा करके शरीर स्वास्थ्य के रक्षण करने में अत्यन्त उपकारक होते हैं। इन औषधियों ने जैसा उत्तम परिणाम दिखलाया है वैसा सृष्टि के ऊपर अस्तित्व रहने वाली दूसरी किसी भी चिकित्सा-पद्धति की औषधियों के उपयोग से देखने में नहीं आया है। आयुर्वेद के इस विषय का अभ्यास यह आयुर्वेद के एक किसी भी खास अंग के बराबर है, और यह हरएक विद्यार्थी को परिपूर्ण रीति से समझने की आवश्यकता है। यह विषय शार्ङ्गधर, रस-रत्नसमुच्चय, रस-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों में बहुत उत्तम रीति से विस्तार से लिखा गया है। पाश्चिमात्य डाक्टर जब पारद को कितनेक वर्षों से पहले एक प्रकार का विष समझते थे, तब आयुर्वेदीय चिकित्सकों के पारद और गंधक के मिलाने की रीति और उसके आधार पर तैयार करके आये हुए औषध सर्वोत्तम गुण बतलाने वाले साबित हो चुके हैं।

धातु और उपधातु इत्यादि।

Metalic and other preparations of Ayurved,

धातु तथा उपधातु और रत्न तथा उपरत्न के संबंध में बोलने की आवश्यकता है कि, सुवर्ण जिसको थोड़े वर्ष से पहिले ही अंग्रेजी शोध की प्रणाली से आमाशय के रसों में पाचन न हो सके ऐसी एक धातु निर्णीत करके औषध में निरुपयोगी गिनने में आया था, वह प्राचीन आयुर्वेद में सुवर्णभस्म, राजमृगांक, सुवर्ण पर्पटी, सुवर्णवसन्त इत्यादि नाम से चमत्कारी फायदा करने वाली औषध गिना गया है। आप लोग सुनके आश्चर्यचकित होंगे कि मेरे डाक्टर मित्र भी अब सुवर्ण को Arsenic Aura, Gold chloride, Aura et Sodium chloride ऐसे रूप में शक्तिदायक और रक्तशोधक पद्धति में उपयोग करने लगे हैं। क्षय रोग में वैद्य लोग अभ्रक भस्म देते हैं, उसका जो पृथक्करण देखने में आवे तो उसमें Calcium, Silicon, Manganese, Iron देखने में आता है कि जिन धातुओं को पाश्चिमात्य चिकित्सक ऐसे ही रोगों में रोगियों को देते हैं। वे दिखाते हैं कि आयुर्वेद में औषधि-शास्त्र और रस-शास्त्र खोज, उपयोग और उनसे होने वाले उत्तम परिणामों के विषय में पृथ्वी तल पर दूसरे किसी भी शास्त्र से अधिक प्रमाण में हैं।

वैद्यकीय वनस्पति-शास्त्र।

Ayurvedic Botany.

इसके सिवा शिक्षण के इसी विभाग में वैद्यकीय वनस्पति-शास्त्र का भी समावेश होता है, इस विषय का ज्ञान वैद्यक के हर एक विद्यार्थियों को देना अति आवश्यक है, ऐसा बिना बोले नहीं रहा जा सकता। जिस बनस्पति के आधार से आयुर्वेद में कही हुई भिन्न-भिन्न औषधियाँ बन सकती हैं और जिस बनस्पति के पुट से आयुर्वेद में बताये हुए भिन्न-भिन्न भस्म तैयार करने में आते हैं, उस वनस्पति की पहचान एक वैद्य को न हो तो उसके वैद्यक का शिक्षण और अभ्यास दोनों ही व्यर्थ हैं। गृहस्थो! मेरे विद्वान् डाक्टर मित्रों तथा आयुर्वेद-चिकित्सकों! मैं नहीं समझ सकता कि इस उपयोगी विषय का अभ्यास पाश्चिमात्य वैद्यक-शास्त्र के अभ्यास-क्रम से क्यों निकाला गया है? वैद्य लोग जङ्गलों में फिर कर, हर एक बनस्पति के ज्ञानी होकर उनके गुण-दोष आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार निर्णीत

करके उनका औषधों में उपयोग करते हैं, तो भी वैद्यक के इस उपयुक्त अंग के विषय में कुछ भी शिक्षण अथवा समझ वैद्यक के अंग्रेजी अभ्यास क्रम में देखने में आती नहीं है । गृहस्थो ! दुख के साथ मुझे बोलने की फर्ज पड़ती है कि, यह बात मुझे दूसरे एक गंभीर और अत्यन्त भयंकर विषय पर खींच लेती है और वह यह है कि, जब आयुर्वेदीय-चिकित्सक अपनी दवा किस वनस्पति में से किस रीति से बनाने में आई है इसका ज्ञान होने पर पीछे उनका उपयोग करते हैं, तब पाश्चिमात्य डाक्टर लोग उनके औषधों में आये हुए द्रव्यों को न जानने पर भी उनका उपयोग कर देते हैं, इसलिये वैद्यों के ऊपर विना समझे बिना पहचाने औषध देने का जो दोष देने में आता है वह बिल्कुल निर्मूल है ।

विद्वान् चिकित्सक लोगों ! ये औषधि गुण-दोष, औषधि-क्रिया, रस-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र के अति उपयुक्त विषय जो कि, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, वनस्पति-निघंटु, रस-रत्न-समुच्चय और रस-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे रखे हैं उसका परिपूर्ण अभ्यास करने की आवश्यकता है, इस विषय में पूरा ज्ञान धराने वालों को 'रस-वैद्य' कहना चाहिये ।

स्वस्थवृत्त ।

Hygiene and Preventive Medicine.

शिक्षण के विषय में इतने तक पहुँचने पर दूसरे अधिक महत्त्व के विषयों का वैद्यक के विद्यार्थियों को अभ्यास करना है । स्वास्थ्यवृत्त, जिसमें शरीर के स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये किसी भी वैद्यकशास्त्र में आज पर्यंत लिखे हुए नियमों की अपेक्षा वाग्भट्ट, चरक, सुश्रुत इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे हुए नियम अधिक श्रेष्ठ हैं और वे शरीर स्वास्थ्य के रक्षण करने के साथ रोग न हो, उसके लिये भी उत्कृष्ट नियम देते हैं जैसे कि, दिनचर्या, रात्रिचर्या और शरीर-स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये एक मनुष्य को कैसा बर्ताव करना चाहिये, किस प्रकार के अनाज, फल, शाक वगैरह का कैसा उपयोग करना चाहिये ? भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न, फल, शाक इत्यादि में कौन-कौन गुण-दोष रहे हैं ? भिन्न ऋतुओं में जो भिन्न-भिन्न रोग होने का संभव है वे किस रीति से न हों, इसके वास्ते कौन-कौन उपाय करना चाहिये ? व्यायाम, स्नानविधि, दंतधावनविधि, गरम पानी के गुण, ठंढे पानी के गुण, धुँआ, नदी, समुद्र, इत्यादि के पानी का गुण, दूध की स्वच्छता, उपवास की आवश्यकता, वमन और विरेचन की आवश्यकता, छाछ, मक्खन, तैल, मधु और शकर इत्यादि की उपयोगिता, पोशाक, रोग होने के कारण, रक्त-शुद्धि करने का मार्ग, इत्यादि बहुत विषयों का वर्णन करने में आया है, जो विस्तार से लिखे जाँय तो इनकी एक बड़ी पुस्तक हो जाय । यह विषय अंग्रेजी में हाइजिन के नाम से कहा जाता है परन्तु इसमें हाइजिन से अधिक, रोग न होने के नियम हैं अर्थात् प्रिवेन्टिव मेडिसिन भी है उसको हर एक वैद्यक-विद्यार्थी को सीखने की आवश्यकता है ।

विषप्रकरण और न्याय वैद्यक ।

Poisons and Medical Jurisprudence.

उससे आगे बढ़ कर विष-प्रकरण और न्यायवैद्यक जिसके ज्ञान के लिए वैद्यक का उद्योग करने वालों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु इस ज्ञान के प्राप्त करने की आवश्यकता है । इसमें समय-समय पर ज्ञान वा अज्ञान से व्यवहार में लेने वाले भिन्न-भिन्न विषों में क्या

क्या लक्षण होते हैं, यह विषय आता है। इसका वर्णन आयुर्वेद में बहुत अच्छी तरह से दिया गया है। सुश्रुत के कल्प स्थान में यह बात विस्तारपूर्वक कही गयी है। बहुत वक्त वैद्यों के हाथ में ऐसे रोगी आते हैं और जो कोई भी विष एक मनुष्य को दूसरे किसी के हाथ से दिया गया हो तो उसके लक्षणों पर से यह किस प्रकार का विष है इसका निर्णय करने का और उस पर नियुक्त किये गये जिम्मेदार अधिकारी के सामने वह मामला पेश करने का जिम्मा उस चिकित्सक पर रहता है, इसमें न्याय का प्रश्न खड़ा होने से वैद्यक संबंधी न्यायशास्त्र के इस विषय से और उसके बाद साक्षी देने के कार्य का हर एक वैद्य को ज्ञान होने की आवश्यकता है। सुश्रुत जी विषों के चिह्न इत्यादि का सूक्ष्म वर्णन करने बाद इस विषय के अन्दर अधिक अभ्यन्तर प्रवेश करके जैसे साम्प्रतकाल में समाप्त हुई बड़ी लड़ाई में जर्मनों ने जहरीली हवा का प्रयोग किया था ऐसे ही प्राचीन काल में लड़ाई के समय शत्रु लोग तालाब नदियों के पानी, वनस्पति, अन्न, धूम और हवा को भिन्न-भिन्न विषों से जहरीला बना देते थे, उन विषों को पहचान कर सैनिकों को उनमें से बचाने को बड़े कार्य करने की उस विषय में सूचना देते हैं। सामान्य रीति से पीने के पदार्थ, शाक, दन्त-धावन, अभ्यंग, लेप, नस्य, जूते इत्यादि में जहर डाल कर मनुष्यों के प्राण लेने के दृष्टान्त पुनः पुनः देखनें में आते हैं, उससे भी मनुष्यों को बचाने का कार्य भी वैद्यक को करना पड़ता है। विष-प्रकरण और न्याय-वैद्यक का इस रीति से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है इससे उसका अभ्यास वैद्य को आवश्यक है।

त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान।

Tridosha and Pathology.

उसके पीछे का अतिशय उपयोगी विषय त्रिदोष, रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान और कृमितंत्र यह है। त्रिधातु और त्रिदोष विषय में मेरे व्याख्यान के प्रारम्भ में मैं बहुत बोल चुका हूँ। त्रिधातु याने वात, पित्त और कफ ये दूषित हो तब इनको त्रिदोष कहते हैं और इनसे शरीर में भिन्न-भिन्न रोगों के चिह्न और लक्षणों का प्रारंभ होता है। त्रिदोष के वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों में से कोई भी एक दोष अच्छी तबियत के समय में भी मनुष्य के कोई भी अवयव को थोड़े वक्त के लिये विकृत बना कर स्वयं प्रधान हो जाता है। ऐसे ही ऋतु परत्वे ये दोष अपने अनुकूल प्रकृति वाले मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होकर अपने अनुकूल रोगों को उत्पन्न करते हैं। त्रिधातु और त्रिदोष के अस्तित्व का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त मैं इस जगह पर आपको सुनाता हूँ, अच्छी तबियत वाले मनुष्य का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त आप लोगों की आज्ञा से ग्रहण करूँ तो अपने महान् 'वाइसराय लार्ड हार्डिंज' जिनको दिल्ली में प्रवेश करते समय बम्ब लगा था, उनको आप सब जानते हैं कि आपने अपना स्वभाव उस वक्त बहुत नियम में रक्खा था, क्योंकि आप कफ प्रकृति प्रधान थे, इससे कफ के जो खास गुण दृढ़ता, शांति, उत्साह, पुरुषार्थ, ज्ञान और बुद्धि ये सब आप में इतने अंश वाले थे कि, आपने अपनी कफ-धातु को उस वक्त दूषित होने न दिया, अन्यथा उनमें दृढ़ता के बदले शिथिलता आ जाती और इस प्रकार के हुक्म करते लेकिन उत्साह से अपने हाथी को आगे चलाने का आपने हुक्म दिया, उसके बदले वे कदाचित् इस जलूस को वहीं खड़ा करके अपने लिये गाड़ी अथवा मोटर लाने का हुक्म देते, यह उन्होंने अपना पुरुषार्थ और अनुभव-सिद्ध पूरा ज्ञान बता के अपने मनको शांत किया, उसके बदले अज्ञान बता के उस समय अयोग्य

करके उनका औषधों में उपयोग करते हैं, तो भी वैद्यक के इस उपयुक्त अंग के विषय में कुछ भी शिक्षण अथवा समझ वैद्यक के अंग्रेजी अभ्यास क्रम में देखने में आती नहीं है। गृहस्थो! दुख के साथ मुझे बोलने की फर्ज पड़ती है कि, यह बात मुझे दूसरे एक गंभीर और अत्यन्त भयंकर विषय पर खींच लेती है और वह यह है कि, जब आयुर्वेदीय-चिकित्सक अपनी दवा किस वनस्पति में से किस रीति से बनाने में आई है इसका ज्ञान होने पर पीछे उनका उपयोग करते हैं, तब पाश्चिमात्य डाक्टर लोग उनके औषधों में आये हुए द्रव्यों को न जानने पर भी उनका उपयोग कर देते हैं, इसलिये वैद्यों के ऊपर विना समझे बिना पहचाने औषध देने का जो दोष देने में आता है वह बिल्कुल निर्मूल है।

विद्वान् चिकित्सक लोगों! ये औषधि गुण-दोष, औषधि-क्रिया, रस-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र के अति उपयुक्त विषय जो कि, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, वनस्पति-निघंटु, रस-रत्नसमुचय और रस-रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे रखे हैं उसका परिपूर्ण अभ्यास करने की आवश्यकता है, इस विषय में पूरा ज्ञान धराने वालों को 'रस-वैद्य' कहना चाहिये।

स्वस्थवृत्त।

Hygiene and Preventive Medicine.

शिक्षण के विषय में इतने तक पहुँचने पर दूसरे अधिक महत्व के विषयों का वैद्यक के विद्यार्थियों को अभ्यास करना है। स्वास्थ्यवृत्त, जिसमें शरीर के स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये किसी भी वैद्यकशास्त्र में आज पर्यंत लिखे हुए नियमों की अपेक्षा वाग्भट्ट, चरक, सुश्रुत इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से लिखे हुए नियम अधिक श्रेष्ठ हैं और वे शरीर स्वास्थ्य के रक्षण करने के साथ रोग न हो, उसके लिये भी उत्कृष्ट नियम देते हैं जैसे कि, दिनचर्या, रात्रिचर्या और शरीर-स्वास्थ्य का रक्षण करने के लिये एक मनुष्य को कैसा बर्ताव करना चाहिये, किस प्रकार के अनाज, फल, शाक वगैरह का कैसा उपयोग करना चाहिये? भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न, फल, शाक इत्यादि में कौन-कौन गुण-दोष रहे हैं? भिन्न ऋतुओं में जो भिन्न-भिन्न रोग होने का संभव है वे किस रीति से न हों, इसके वास्ते कौन-कौन उपाय करना चाहिये? व्यायाम, स्नानविधि, दंतधावनविधि, गरम पानी के गुण, ठंढे पानी के गुण, धुँआ, नदी, समुद्र, इत्यादि के पानी का गुण, दूध की स्वच्छता, उपवास की आवश्यकता, वमन और विरेचन की आवश्यकता, छाछ, मक्खन, तैल, मधु और शकर इत्यादि की उपयोगिता, पोशाक, रोग होने के कारण, रक्त-शुद्धि करने का मार्ग, इत्यादि बहुत विषयों का वर्णन करने में आया है, जो विस्तार से लिखे जाँय तो इनकी एक बड़ी पुस्तक हो जाय। यह विषय अंग्रेजी में हाइजिन के नाम से कहा जाता है परन्तु इसमें हाइजिन से अधिक, रोग न होने के नियम हैं अर्थात् प्रिवेन्टिव मेडिसिन भी है उसको हर एक वैद्यक-विद्यार्थी को सीखने की आवश्यकता है।

विषप्रकरण और न्याय वैद्यक।

Poisons and Medical Jurisprudence.

उससे आगे बढ़ कर विष-प्रकरण और न्यायवैद्यक जिसके ज्ञान के लिए वैद्यक का उद्योग करने वालों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है, किन्तु इस ज्ञान के प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसमें समय-समय पर ज्ञान वा अज्ञान से व्यवहार में लेने वाले भिन्न-भिन्न विषों में क्या

क्या लक्षण होते हैं, यह विषय आता है। इसका वर्णन आयुर्वेद में बहुत अच्छी तरह से दिया गया है। सुश्रुत के कल्प स्थान में यह बात विस्तारपूर्वक कही गयी है। बहुत वक्त वैद्यों के हाथ में ऐसे रोगी आते हैं और जो कोई भी विष एक मनुष्य को दूसरे किसी के हाथ से दिया गया हो तो उसके लक्षणों पर से यह किस प्रकार का विष है इसका निर्णय करने का और उस पर नियुक्त किये गये जिम्मेदार अधिकारी के सामने वह मामला पेश करने का जिम्मा उस चिकित्सक पर रहता है, इसमें न्याय का प्रश्न खड़ा होने से वैद्यक संबंधी न्यायशास्त्र के इस विषय से और उसके बाद साक्षी देने के कार्य का हर एक वैद्य को ज्ञान होने की आवश्यकता है। सुश्रुत जी विषों के चिह्न इत्यादि का सूक्ष्म वर्णन करने बाद इस विषय के अन्दर अधिक अभ्यन्तर प्रवेश करके जैसे साम्प्रतकाल में समाप्त हुई बड़ी लड़ाई में जर्मनों ने जहरीली हवा का प्रयोग किया था ऐसे ही प्राचीन काल में लड़ाई के समय शत्रु लोग तालाब नदियों के पानी, वनस्पति, अन्न, धूम और हवा को भिन्न-भिन्न विषों से जहरीला बना देते थे, उन विषों को पहचान कर सैनिकों को उनमें से बचाने को बड़े कार्य करने की उस विषय में सूचना देते हैं। सामान्य रीति से पीने के पदार्थ, शाक, दन्त-धावन, अभ्यंग, लेप, नस्य, जूते इत्यादि में जहर डाल कर मनुष्यों के प्राण लेने के दृष्टान्त पुनः पुनः देखनें में आते हैं, उससे भी मनुष्यों को बचाने का कार्य भी वैद्यक को करना पड़ता है। विष-प्रकरण और न्याय-वैद्यक का इस रीति से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है इससे उसका अभ्यास वैद्य को आवश्यक है।

त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान।

Tridosha and Pathology.

उसके पीछे का अतिशय उपयोगी विषय त्रिदोष, रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान और कृमितंत्र यह है। त्रिधातु और त्रिदोष विषय में मेरे व्याख्यान के प्रारम्भ में मैं बहुत बोल चुका हूँ। त्रिधातु याने वात, पित्त और कफ ये दूषित हो तब इनको त्रिदोष कहते हैं और इनसे शरीर में भिन्न-भिन्न रोगों के चिह्न और लक्षणों का प्रारंभ होता है। त्रिदोष के वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों में से कोई भी एक दोष अच्छी तबियत के समय में भी मनुष्य के कोई भी अवयव को थोड़े वक्त के लिये विकृत बना कर स्वयं प्रधान हो जाता है। ऐसे ही ऋतु परत्वे ये दोष अपने अनुकूल प्रकृति वाले मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होकर अपने अनुकूल रोगों को उत्पन्न करते हैं। त्रिधातु और त्रिदोष के अस्तित्व का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त मैं इस जगह पर आपको सुनाता हूँ, अच्छी तबियत वाले मनुष्य का एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त आप लोगों की आज्ञा से ग्रहण करूँ तो अपने महान् 'वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज' जिनको दिल्ली में प्रवेश करते समय बम्ब लगा था, उनको आप सब जानते हैं कि आपने अपना स्वभाव उस वक्त बहुत नियम में रक्खा था, क्योंकि आप कफ प्रकृति प्रधान थे, इससे कफ के जो खास गुण दृढ़ता, शांति, उत्साह, पुरुषार्थ, ज्ञान और बुद्धि ये सब आप में इतने अंश वाले थे कि, आपने अपनी कफ-धातु को उस वक्त दूषित होने न दिया, अन्यथा उनमें दृढ़ता के बदले शिथिलता आ जाती और इस प्रकार के हुक्म करते लेकिन उत्साह से अपने हाथी को आगे चलाने का आपने हुक्म दिया, उसके बदले वे कदाचित् इस जलूस को वहीं खड़ा करके अपने लिये गाड़ी अथवा मोटर लाने का हुक्म देते, यह उन्होंने अपना पुरुषार्थ और अनुभव-सिद्ध पूरा ज्ञान बता के अपने मनको शांत किया, उसके बदले अज्ञान बता के उस समय अयोग्य

हुक्म देते, परन्तु ऐसा न करके अपनी बुद्धि के प्रभाव से उन्होंने यह बड़ी क्रिया बिना हरकत से चालू रहने दी। कदाचित् इससे उलटा पित्त धातु दूषित होने का प्रत्यक्ष दृष्टान्त जलियान वाला बाग में देखने में आया था और इस स्थल में बनी हुई बात में दोनों दलों का पित्त दूषित होकर उसके परिणाम में क्रोध के लक्षण देखने में आये थे इससे आप लोग जानते हैं ऐसे खेदकारक वृत्तान्त बनने पाये।

जब तन्दुरुस्त मनुष्यों की बावत में इस प्रकार के आकस्मिक वृत्तान्त के समय भी उसके शरीर में रहा हुआ धातु, वात, पित्त और कफ का प्रकोप हो के दूषित होता है, तो शरीर के भीतर रहे हुए अवयवों में ऋतुपरत्वे कुछ विकृति होने से धातु बिगड़े यह असंभावित नहीं है। मनुष्य के शरीर के साथ वाव, पित्त और कफ इस तीन प्रकार की शक्ति धातु-रूप से निरोगी स्थिति में और दोष-रूप से रोगी स्थिति में निरन्तर रही हुई है। इससे कोई रोगी के रोग का निदान करते समय जिस अवयव में रोग हुआ हो उसका निदान करने की आवश्यकता है इतना ही नहीं, किन्तु उसके शरीर में रहे हुए वात, पित्त और कफ का जो-जो धातु दूषित हुआ हो उसका भी निदान करने की आवश्यकता है। रोगी मनुष्य के निदान के समय में ये दोनों निदान ही संपूर्ण निदान कहा जाता है इसलिये त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान ये दोनों वैद्यों को संपूर्ण निदान करने के लिये अति उपयोगी और अभ्यास करने योग्य एक उत्तम विषय है।

कृमितंत्र।

Bacteriology.

अन्त में हम कृमितंत्र विभाग पर आते हैं। कृमितंत्र विभाग को अंग्रेजी में Bacteriology कहते हैं। बहुत लोगों का अभी तक यह मत है, कि आयुर्वेद शास्त्र में इस विभाग का अस्तित्व नहीं है। बम्बई मेडिकल काउन्सिल से "आयुर्वेद अशास्त्रीय है ऐसी पुरानी समझ से मुझ पर नोटिस आयी, कि एक रजिस्टर्ड डाक्टर की हैसियत से मैं अपना सम्बन्ध आयुर्वेद से तोड़ दूँ।" इस विषय में तीन वर्ष तक पत्र द्वारा प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् काउन्सिल की ओर से मेरी जाँच की गयी। उस समय कौंसिल के सदस्य एक डाक्टर साहब ने इस सम्बन्ध में मुझसे पूछा था। गृहस्थो! अभी तक बहुत लोग मानते हैं कि यह विषय आयुर्वेद में नहीं है, परन्तु यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी वेक्टिरोलाजी का पहला वाक्य यह है—The Bacteria are found invariably in the blood tissues or excretions of persons suffering from various diseases. They are Rod shaped (Bacilli) Globular (Micrococci) Twisted (Spirilla) ठीक अक्षरशः ऐसा ही वाक्य चरक के विमान स्थान में ऐसे ही विषय के आरम्भ में देखने में आया है; उसमें कहा है, 'कि न दृश्याः कृमयः' ऐसे जन्तु जो दृष्टिगोचर नहीं हो सकते वे अनेक रोग उत्पन्न करने के कारण स्वरूप होते हैं। ये जन्तु शोणितज अर्थात् रक्त में, श्लेषमज अर्थात् कफ में और पुरीपज अर्थात् मल में दृष्टिगोचर होते हैं, वे लोमादि अर्थात् बाल के सदृश छोटे Rod shaped (Bacilli) केशादि अर्थात् बाल के सदृश लम्बे, टेढ़ा हो जाय (Spirilla) और 'लोमद्वीपाः' बाल टेढ़े होकर गुच्छे हो जायँ उनके सदृश (Micrococci) होते हैं। यह हूबहू अथवा एक दूसरे का अनुवाद हो ऐसा कृमितंत्र चरकशास्त्र में बर्णित है। मेरे विद्वान् डाक्टर मित्र तो ऐसा नहीं

कह सकते, कि वर्तमान वेक्टिरोलाजी में से चरक में यह वाक्य लिया होगा। यदि वे ऐसा नहीं कहते तो इसका उलटा सच्चा होना चाहिये। चरक में सूत्र-रूप से पढ़कर उसके प्रमाण के लिये भिन्न-भिन्न प्रयोग कर पाश्चात्य डाक्टरों ने इसे एक नये शास्त्र के रूप में जनता के सामने पेश करने का श्रेय प्राप्त किया है। मैं यह पहले बता चुका हूँ कि चरक सुश्रुत के अनुवाद अरबी, यूनानी और लेटिन भाषाओं में हुए हैं और इसी लेटिन भाषा में से अंग्रेजी वैद्यक का बीज बोया गया है।

स्वस्थवृत्त, न्यायवैद्यक और विषप्रकरण तथा कृमितंत्र, त्रिदोष और रुग्णेन्द्रिय-विज्ञान आदि वैद्यकशास्त्र के विभागों के पूर्ण जानकार को भिषक् कहते हैं।

अब हम वैद्यक विषयों के उन कार्यों पर, जिन्हें सर्वसाधारण करते हुए देख सकते हैं और जिन कार्यों के करने के लिये सब विषयों को पूर्ण रूप से जाने विना योग्य नहीं हो सकते, उन तीन विषयों पर आता हूँ। वे तीन विषय ये हैं—निदान-चिकित्सा, शल्य-शालाक्य शास्त्र अथवा शस्त्रवैद्यक और नेत्र-रोग, सूतिका शास्त्र तथा स्त्री और बाल रोग हैं। पहले कहे हुए विषयों को तैयार करने के बाद वैद्यक का काम करने को तैयार होना चाहिये। वही इन तीन विषयों के सम्बन्ध का है।

निदान, चिकित्सा।

Theory and practice of Medicine.

निदान, चिकित्सा का महान् विषय प्रत्येक वैद्यक प्रवृत्ति वालों को जानने तथा अध्ययन करने योग्य है। इसमें रोग का अर्थात् जो अवयव विकृत हुआ हो उसका निदान करना और उसके साथ रोगी के शरीर में जो वात, पित्त, कफ दोष हैं, उनमें जो धातु दूषित हुआ हो उसका भी निदान करना आवश्यक है। आयुर्वेद में किसी रोग की चिकित्सा करने के पहले उसके सम्बन्ध के दोनों तरह के निदान करना आवश्यक है। इसीसे मैं इस निदान को सम्पूर्ण निदान कहता हूँ। अंग्रेजी पद्धति के अनुसार विकृत हुए ही अवयव का केवल निदान करना मेरी समझ में अधूरा निदान करना है। इस अपूर्ण निदान के कारण ही हम अनेक तीव्र रोगियों को जीर्ण रोग में जाते हुए देखते हैं। आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार अवयव की विकृति और शरीर का कौन धातु दूषित हुआ है इन दोनों का निदान होने से रोग के अच्छा होने में देर नहीं लगती और अवयव सुधरने तथा त्रिधातु समान होने से रोगी पुनः पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। इस विषय में मैं आपको एक ऐसे रोग का उदाहरण देता हूँ जो निरन्तर आपकी दृष्टि में आता रहता है। अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के अनुसार मलेरिया बुखार के लिये क़िनाइन एक अनुभूत उपाय है। अब एक स्थान में एक ही स्थिति में चार मलेरिया के रोगियों को रखिये और उन्हें एक ही तरह की खुराक और एक ही प्रमाण में क्वीनाइन दीजिये। परिणाम में बहुत बार आप देखेंगे कि केवल मलेरिया के ही रोगियों को एक सी मात्रा में एक सी दवाई देते हुए भी एक अथवा दो रोगी को लाभ नहीं होता और दिन-दिन उसकी स्थिति खराब होती जाती है। प्रत्येक डाक्टर को ऐसे केस देखने पड़े हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। मैं अपने डाक्टर मित्रों से पूछता हूँ कि ऐसा होने का कारण क्या है? मुझे कहना चाहिये कि अंग्रेजी वैद्यक शास्त्र में इसका कोई जवाब नहीं है। ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न हो जाती है, इसका उत्तर आयुर्वेद दे सकता है, वात, पित्त और कफ की प्रणाली से प्रत्येक औषध का

विभाग करने से प्रत्येक वैद्य यह कह सकता है कि क्वीनाइन पित्तप्रकोप करने वाली दवा है। इस प्रणाली के अनुसार जिन चार रोगियों में से अच्छे नहीं हुए उनकी पित्त प्रकृति होनी चाहिये। पित्त प्रकृति वाले को कोई पित्तप्रकोप करने वाली दवा चाहे कितने भी लाभ की दृष्टि से दी जाय वह उसके पित्त को बढ़ा कर दूषित करेगी। इसलिये रोग में गुण करना तो दूर रहा उलटे रोगी को वमन-तृषा आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं और ज्वर भी घटने के स्थान पर बढ़ता ही जायगा। डाक्टर वाशिङ्गटन, यार्क रॉयल सोसायटी आफ ट्रापिकल मेडीसिन और हाइजिन की गत वार्षिक सभा में कितने ही मलेरिया के रोगियों के सम्बन्ध में कहते हैं:— The amount of daily doses of Quinine, the length of time it is continued, and the manner of its administration do not exert any influence. बहुत समय तक भिन्न-भिन्न रीति से पृथक् पृथक् प्रमाण में क्वीनाइन देने पर भी मलेरिया पर कोई असर नहीं होता। इस प्रकार के रोगियों का मलेरिया मिटाने की आशा से अधिकाधिक मात्रा में क्वीनीन देने से तो परिणाम में उन रोगियों को सहज ही लाभ नहीं जान पड़ेगा, बल्कि रोग के साथ उनका पित्तदोष बढ़ने से उनकी मृत्यु हो जायगी। इतने अधिक समय तक डाक्टर का इलाज करने के बाद अन्त में रोगी की जब अत्यन्त खराब दशा हो जाती है उस अवस्था में यदि कोई सुशिक्षित वैद्य पहुँच जाय तो वह केवल उसका पित्तदोष शमन करने के लिये क्वीनाइन के साथ अथवा विना क्वीनाइन के नीम, गिलोय, खड़सलिया अथवा प्रवाल देता है। परिणाम में बहुत दिनों का बुखार वैद्य की एक ही पुड़िया से मिट जाता है। मेरे विद्वान् डाक्टर मित्रो तथा वैद्यो! मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि शास्त्रीय रीति से होते हुए ऐसे चमत्कारिक गुणों को बम्बई की लेजिस्लेटिव काउन्सिल में डाक्टर सर नरिमान ने इसे एक अकस्मात् संयोग बता कर आयुर्वेद का महत्त्व कम करने का यत्न किया था। ऊपर बताये हुए बुखार उतारने के शास्त्रीय कारण कोई अकस्मात् संयोग नहीं है, बल्कि निदान तथा चिकित्सा की एक शास्त्रीय पद्धति का एक शास्त्रीय परिणाम है। इस उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझ में आजायगी कि आयुर्वेदिक पद्धति से किया हुआ निदान शास्त्रीय और सम्पूर्ण निदान है और उसके आधार से रोगी की चिकित्सा करने से केवल रोग का ही नाश नहीं होता, बल्कि रोग उत्पन्न करने वाले तथा रोग से उत्पन्न होने वाले दोष भी नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वात, पित्त और कफ की प्रणाली को अलग रख जो निदान किया जाता है वह अपूर्ण होता है और उसके अधार पर की हुई चिकित्सा अधूरी रह कर रोगी को पूर्ण आरोग्य प्रदान नहीं करती। इस प्रकार के प्रमाण मिल सकते हैं। कुछ समय हुआ एक राज्य परिवार की एक छोटी कुमारी कफ-ज्वर से पीड़ित थी। उसके साथ उसे वात-प्रकोप भी हुआ। इंगलिश पद्धति के अनुसार कहा जाय तो फेफड़ों में भयंकर सूजन हो गयी थी और इसके साथ पेट फूलना और हिचकी भी आने लगी थी। स्थिति इतनी भयंकर हो गयी थी कि उसके जीवन की आशा छोड़ दी गयी थी। जिस समय अन्त के सब कामों की तैयारी हो रही थी उस समय मुझे वहाँ जाने का अवसर मिला। नाड़ी और श्वास की ओर नजर रखने से रोग की भयंकर स्थिति देखकर भी मुझे उसमें कुछ आशा दिखायी पड़ी। मैंने कफ और वात का प्रकोप पूर्ण रूप से देखा परन्तु पित्त का प्रकोप बिल्कुल नहीं देखा। इस एक लक्षण से मुझे उपचार करने की हिम्मत हुई और सब लोगों के आनाकानी करने पर भी मैंने उपचार करने के लिये उसे माँग लिया।

मुझसे कहा गया, कि अब इसकी चिकित्सा का अर्थ अन्तिम धार्मिक क्रियाओं में वाधा डालने जैसा साहस है। परन्तु रोगी में जो एक दोष की कमी दिखाई दी थी, उसे देख कर यदि मैं कुछ नहीं करता तो मेरे मन में सन्ताप बना रहता, कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। केवल इसलिये मैंने उसके उपचार करने का आग्रह किया। वैसा करने से धीरे-धीरे रोगी को लाभ होने लगा और जो डाक्टर एक के बाद एक देखने को आये सबको अंग्रेजी पद्धति के अनुसार रोगी का भविष्य निराशाजनक मालूम पड़ा, परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार जब तक तीनों दोष पूर्ण रूप से नहीं हो जाते तब तक रोगी को नहीं मरना चाहिये इस विश्वास पर मैंने उपचार जारी रखा और आज ईश्वर की कृपा से वह पूर्ण स्वस्थ है। गृहस्थो और प्रिय चिकित्सक वन्धुओं ! मुझे यह उदाहरण यहाँ नहीं देना चाहिये था। ऐसा करना वैद्यक-विवेक के विरुद्ध है। फिर भी वात, पित्त और कफ की त्रिधातु और त्रिदोष की प्रणाली के अनुसार काम करने से, जो औषधि का प्रयोग करे तो भी आयुर्वेद चिकित्सकों को कितना यश मिल सकता है इसका मैंने एक प्रत्यक्ष उदाहरण देने का साहस किया है उसके लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। इस प्रमाण से आयुर्वेद में चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, माधवनिदान आदि निदानचिकित्सकों ने निदान व चिकित्सा का विषय अत्यन्त सूक्ष्म रीति से और अत्यन्त विद्वत्ता पूर्वक वर्णन किया है और अंग्रेजी पद्धति के अनुसार जैसी चिकित्सा होती है उसकी अपेक्षा यह चिकित्सा कितनी पूर्ण है यह बात उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है। इसके लिये वैद्यक विद्यार्थियों को उसका पूर्ण रूप से अध्ययन करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

शल्य-शालाक्य-शास्त्र।

Surgery and Eye diseases.

इसी विभाग में शल्य-शालाक्य शास्त्र यह दूसरा महत्व का विषय है। इस विषय में पाश्चात्य चिकित्सकों ने जो वृद्धि की है वह अवश्य ही प्रशंसा करने योग्य है। योग्य स्थान पर चिकित्सा की योग्य पद्धति का सन्मान करना एक शास्त्रीय चिकित्सक की हैसियत से अपना धर्म है। मुझे कहना चाहिये कि शस्त्रवैद्य लोग अपनी जल्दबाजी के कारण जहाँ शस्त्र-क्रिया की जरूरत नहीं है वहाँ वह करके गलत निदान न करें तो उन्हें और भी अधिक यश प्राप्त हो सकता है। सुश्रुताचार्य ने इस विषय को बड़ी पद्धति के अनुसार लिखा है। भिन्न-भिन्न शस्त्रों का वर्णन कर तथा पृथक्-पृथक् शस्त्रों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये यह बताकर, यह भी वर्णन किया है कि अमुक रोग पर अमुक प्रकार के शस्त्र का प्रयोग करो। पथरी रोग के लिये जिस शस्त्र-क्रिया का वर्णन किया है वह वर्तमान विद्वान् डाक्टरों की इस सम्बन्ध की शस्त्र-क्रिया में छेद कहाँ करना चाहिये, छेद कितना लम्बा होना चाहिये, क्रिया करने के पहले क्या-क्या तैयारी करनी चाहिये व क्रिया समाप्त कर चुकने पर क्या तजबीज करनी चाहिये इत्यादि का सविस्तर वर्णन सुश्रुत में किया गया है। सुश्रुत में और भी ऐसी अनेक शस्त्र-क्रियाओं का वर्णन किया है जिन्हें कुछ वर्ष पूर्व अंग्रेज चिकित्सकों ने हमारे पास से ग्रहण कर उसका Indian operation (इण्डियन आपरेशन) नाम रक्खा है। इस क्रिया में शरीर के एक भाग से त्वचा निकाल कर उसका एक हिस्सा उस अङ्ग में ही जुड़ा हुआ छोड़ देते हैं, अर्थात् त्वचा को जीवित रखकर नाक, कान अथवा दूसरे अवयव उसमें हूबहू पूर्व आकृति के अनुसार जोड़ देते हैं। इस शस्त्रक्रिया का रहस्य इतने ही में नहीं है। रक्ताभिसरण

(रक्तसंचालन) के विषय को प्राचीन आर्य्य जानते थे। सूक्ष्म तथा अत्यन्त तीव्र शस्त्रों की आवश्यकता वे समझते थे। युद्ध समय के घाव व कटे हुए हाथ-पैरों को शस्त्रक्रिया से पुनः अच्छी स्थिति में लाना उन्हें मालूम था। ये सब क्रियायें करने के बाद रोगी को धनुर्वात आदि दूसरे उपद्रव न हों इसके लिये क्या-क्या तजबीज करनी चाहिये, यह सब वे अच्छी तरह जानते थे। यह बात उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होती है। खेद है कि कुछ वैद्य यह मानते हैं, कि शस्त्रोपचार योग्य प्रत्येक रोग औषधोपचार से मिट सकते हैं। इस विश्वास के कारण तथा बुद्ध के समय के प्रचारित धार्मिक विश्वासों के कारण, नेत्ररोग तथा अन्य रोग की शस्त्रोपचार की चिकित्सा आयुर्वेदीय चिकित्सा में कम हो गयी, जिससे चिकित्सा के इस अंग को विकसित करने के हेतु और साधनों में न्यूनता हो गयी। अंग्रेजी शास्त्र में इस विषय के अनुभव तथा प्रत्यक्ष क्रिया करने से अत्यन्त विकास हुआ है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी योग्य शिक्षण और प्रत्यक्ष अनुभव कर चिकित्सा के इस अङ्ग को आगे बढ़ाने की आवश्यकता मैं मानता हूँ।

सूतिकाशास्त्र–स्त्रीरोग और बालरोग।

Midwifery, Diseases of Women and Children.

इसी तरह सूतिकाशास्त्र जिसमें शस्त्रों, यंत्रों इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, उसके पृथक्-पृथक् प्रयोग चरक, सुश्रुत में भिन्न-भिन्न स्थानों में आये हैं। उसमें लिखा है, कि प्रसव किस तरह कराना, टेढ़ा हुआ गर्भ किस तरह निकालना। संयुक्त गर्भ हो तो क्या करना, जरा किस प्रकार डालनी, राक्षसी गर्भ हो तो उसका किस प्रकार सिर छेदना, एक-एक करके कौन-कौन अवयव, हाथ-पैर इत्यादि काट कर बाहर निकालना आदि यह सब वर्णन गर्भिणी व्याकरण शरीराध्याय में चरक तथा दूसरे ग्रंथों के आधार पर बहुत अच्छी तरह किया गया है। गर्भ सम्बन्धी शस्त्र-क्रिया कैसी गंभीर है, उस समय वह कैसी हिम्मत से की जाती थी इसका वर्णन उस अध्याय में बहुत अच्छी रीति से किया गया है। ये क्रियाएँ आयुर्वेदिक चिकित्सा से धर्म के निमित्त अथवा औषधोपचार से सब हो सकता है इस विश्वास के कारण नष्ट हो गयीं। उन्हें पुनर्जीवित करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि निदान, चिकित्सा के इस अङ्ग का भी पूर्ण ज्ञान हुए बिना कोई पूर्ण वैद्य नहीं हो सकता। इसके साथही साथ स्त्री-रोग चिकित्सा तथा बाल-रोग चिकित्सा का भी अभ्यास करना आवश्यक है। प्रत्येक वैद्य जानता है कि चरक-वाग्भट्ट में इन विषयों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। विशेष कर कितनेक वैद्य तो इस विषय का खास अनुभव कर केवल इसी विषय की चिकित्सा ऐसी उत्तम रीति से करते हैं कि जिससे विद्वान् डाक्टर भी चकित हो जाते हैं। गृहस्थो, यह निदान, चिकित्सा, शल्य-शालक्य-शास्त्र, सूतिका-शास्त्र स्त्री-रोग और बाल-रोग का परिपूर्ण अभ्यास कर जो विद्वान् वैद्य योग्य चिकित्सा करने के योग्य हों उसे भिषग्वर अर्थात् एक विद्वान् चिकित्सक कह सकते हैं।

अभ्यास, परीक्षा और योग्यता।

Study, Examinations and Qualifications.

प्रिय चिकित्सक बन्धुओं! आयुर्वेद के शिक्षण और अभ्यास क्रम पर इतना कहने के बाद मैं आप से विनती करता हूँ कि शास्त्रीय विषयों और शास्त्रों में कोई भी व्यक्ति अथवा

कोई शास्त्र में परिपूर्ण होगा ऐसा विचार कभी नहीं रखना चाहिये। जिस प्रकार जगत् आगे बढ़ता जाता है उसी भाँति मनुष्य की बुद्धि की तीव्रता और दृढ़ता अधिक होना संभव है। ऐसा होने के कारण मनुष्य के जीवन-संरक्षण के नियमों में भी समय के अनुसार फेर-फार सुधार और वृद्धि होना संभव है। अपने महान् ऋषि, मुनि हमें जो सिखा गये हैं उसको मध्य कार्य-विन्दु मान कर चिकित्सा के प्रत्येक अंग का हम लोग किस प्रकार विकास कर सकते हैं, इसपर विशेष ध्यान देना चाहिये। उपरोक्त सब विषयों के साथ अपने हाथ से अथवा अन्य से दिनो दिन जो विकास होता है, उसमें कितना ग्राह्य है और कितना अग्राह्य उसका विचार कर अपने शास्त्र में उसके अनुसार सुधार और वृद्धि करना यह एक शास्त्रीय बुद्धिमत्ता है।

सुशील बहनो, माननीय गृहस्थो तथा विद्वान् चिकित्सक-बन्धुओं! आयुर्वेद कितना अगाध है, उसमें कैसे विषय कितने गहरे गोता लगा कर लिखे गये हैं, एक भावी चिकित्सक को उन विषयों के परिपूर्ण अभ्यास करने की कितनी आवश्यकता है, वह अभ्यास किस प्रकार किया जाय और अभ्यास-क्रम में कैसे अनुक्रम से किस-किस विषय का अभ्यास करना चाहिये, वह अभ्यास पूरा करने के बाद परीक्षा कर किस-किस योग्यता की पदवी मिलनी चाहिये, उस विषय का परिपूर्ण विवेचन मैंने आपके समक्ष किया है। मैं अपने विद्वान् चिकित्सक वन्धुओं से फिर प्रार्थना करता हूँ कि भावी चिकित्सक वर्ग को ऐसी पूर्णता प्राप्त हो सके इसके लिये सब साधन तैयार करना चाहिये। इस दृष्टि-विन्दु को ध्यान में रख कर 'प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज' का अभ्यास-क्रम और उस विषय की दी जाने वाली योग्यता उपाधि निश्चित हुई है। वह योग्यता वर्षों से हमारे बीच काम करने वाले विद्वान् आयुर्वेदिक चिकित्सकों में परिपूर्ण रूप से स्थित है जो विदेशी चिकित्सक तथा जन-समूह के समूह को देखने में आती है उसका श्रेय हमारे प्राचीन आयुर्वेद को ही है।

आयुर्वेदिक चिकित्सकों का स्थान, जनता से विनय।

Position of Qualified Ayurvedic practitioners.

A word to the Public.

अब मैं जन-समुदाय, सुशील बहनों और माननीय गृहस्थों से पूछता हूँ कि ऐसे गहन आयुर्वेद का उत्तम पद्धति के अनुसार अभ्यास करके आने वाले एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को भिन्न-भिन्न वैद्यक-पद्धति के चिकित्सक-समूह में कौन-सा स्थान देंगे? यदि आप ऐसे चिकित्सकों का मान कम कर देंगे तो आप आयुर्वेद का नाश करने में केवल साधन भूत होंगे इतना ही नहीं, बल्कि उसके अन्दर वर्णित स्वास्थ्य-रक्षा के प्रत्येक नियमों का भी उसी के साथ नाश हो जायगा। आप देख सकेंगे कि उपरोक्त रीति से सूक्ष्म अभ्यास करके जो चिकित्सक तैयार होंगे उनकी चिकित्सा-पद्धति दूसरी चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षा उत्तम और लाभकारक है। जिस आयुर्वेद चिकित्सा की प्रणाली ने प्राचीन काल में अत्यन्त लाभ पहुँचाया और जो आज भी पहुँचा रही है उसके प्रत्येक कार्य्य में उत्तेजन देना उसका मान बढ़ाना और शिक्षण और निदान-चिकित्सा सम्बन्ध में उसके लिये तन, मन, धन से उसकी सहायता करना आपका जन्म-सिद्ध कर्तव्य है; क्योंकि आप जानते हैं कि अपने जन्म के समय तथा माता के दूध के पहले आपने इस चिकित्सा का उपभोग किया है।

अपने डाक्टर मित्रों से विनती।

A word to our friends the Doctors.

अब मैं अपने डाक्टरों से सविनय कहूँगा कि आयुर्वेद शास्त्रीय नहीं है यह कह आप जो हमसे दूर रहते हैं, वह मेरी उपरोक्त बतायी हुई घटनाओं से क्या आप शास्त्रीय स्वीकार करेंगे ? संगठन और सहयोग के इस युग में आप हमसे दूर कैसे भागते हैं। आवश्यकता के अनुसार एक दूसरे के सहायक होने में आपको क्या हर्ज है। आघात और प्रत्याघात यह प्राकृतिक नियम है। आप यदि जनसमूह में हमें नीचा दिखाने का यत्न करेंगे तो हम आप के प्रति किस प्रकार सम्मान बनाये रख सकते हैं ? बम्बई मेडिकल काउन्सिल में मेरी तीन घंटे तक जाँच करने के बाद कोई यह सिद्ध न कर सका कि आयुर्वेद अशास्त्रीय है हमारे और आपके अलग-अलग रहने से जितनी आपकी हानि और हमारी हानि है, उसकी अपेक्षा हजार गुनी जनता की हानि है। इस अलगाव के कारण जनता को आपसे हमारे पास हमसे आपके पास दौड़ना पड़ता है। जनता के इस कष्ट की ओर और इस प्रकार उखड़-पट्टी के कारण एक दूसरे के उलटे उपचार से जो असंख्य मृत्यु होती है उसकी ओर क्या आप दया की दृष्टि से नहीं देख सकते ? आयुर्वेद के अभाव के कारण वैद्यों को अपने से अलग रख परस्पर की सलाह के अभाव से जो हजारों रोगी मरते हैं क्या उसे आप आँख मीच कर देखते रहेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपके लिये हम और जनता क्या फैसला करेगी यह स्वयं जनता निर्णय कर लेगी।

महाशयो, विद्वान् चिकित्सको तथा सुशील बहनो, मैंने आपका बहुत समय लिया है। आपके समक्ष जो कुछ कहना था, वह मैंने संक्षेप में कहा है। मुझे जान पड़ता है, कि बहुत सी बातें कहनी रह गयीं। मैंने जो कुछ कहा है उसमें सत्य और न्याय को आगे रखा है, फिर भी यदि किसी को मेरा भाषण सन्तोषजनक मालूम न हुआ हो तो मैं उसके लिये क्षमा याचना करता हूँ और परम कृपालु परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आयुर्वेद को उत्तेजन देकर यह कार्य्य वह परिपूर्ण करे।

वैद्यशास्त्री-प्राणाचार्य

नारायणशंकर देवशंकर महोदयस्य

जीवन वृत्तान्तम् ।

(१) श्री जयपुर राजकीय संस्कृतायुर्वेद महाविद्यालये पू० स्व० राजवैद्य श्री कृष्णराम गुरु सन्निधावभ्यासःकृतः ।

(२) वटपत्तने (बडोदरानगरे) व्याकरणशास्त्रस्य, साहित्यशास्त्रस्य, धर्मशास्त्रस्य, आयुर्वेदशास्त्रस्य च परीक्षादत्ता ।

(३) पश्चात् वाराणस्यां वर्षद्वयं स्थित्वामहाभाष्यस्याध्ययनं गवर्मेन्ट संस्कृत महाविद्यालये कृतम् ।

(४) तदनन्तरं श्रीनगरे (अहमदाबादनगरे) श्री "आयुर्वेद चिकित्सालस्य" स्थापना कृता (सं० १९५१–सने–१८९५) तदङ्गभूता "आयुर्वेद पाठशाला"ऽपि च संस्थापिता । गतवर्षे "पाठशालायाः" गवर्नमेंट दफ्तरे रजिस्टरं कृत्वा ट्रस्टडीडपत्रं कृतं । पाठशाला कार्यार्थं "व्यवस्थापकाः निर्णिताः । तत्र यथायोग्यं धनमपिदत्तम् । तत्रैव त्रिंशत् विद्यार्थिनः पठन्ति । पाठशालायां जयपुर राजकीय परीक्षायामुत्तीर्णोऽध्यापको नियोजितः । विद्यार्थिनामभ्यासक्रमो विद्यापीठ नियमावल्यनुसारेण प्रचलति । निम्नदर्शिता अन्येचाध्यापकाः अध्यापनं कुर्वन्ति ।

(१) वैद्यरत्न माधवप्रसादः (२) वैद्यशास्त्री शंभुप्रसादः (३) डॉ० बालकृष्णश्च । तत्रमदीयं व्यवस्थापकत्वं। धनोपार्जने समिति स्थापिता । एवं शनैः शनैः कार्यं प्रचलति। विंशति सहस्रपर्यन्तधनसंचयस्सञ्जातः । धनोपार्जने गृहस्थानां समितिस्स्थापिता । श्री धन्वन्तरिकृपया धन बाहुल्येन महाविद्यालस्य स्थापना भविष्यतीति। एवं 'आयुर्वेद प्रचारार्थकार्यं" करोमि ।

(५) अहमदाबादनगरे शेठ अंबालाल दलपतराम धर्मार्थमायुर्वेद औषधालये व्यवस्थापकोहं ।

(६) डी० जी० लोकलबोर्ड संस्थापित चतुर्दश "आयुर्वेदीयौषधालयानि प्रचलन्ति । तेषां समितौ सभापतिरहम् ।

(७) श्रीपाटणआयुर्वेद महाविद्यालयसमितौ सभ्यः परीक्षकश्च ।

एवं बड़ोदरा, श्रावणमासदक्षणापरीक्षायामपि परीक्षकोहम् । मुम्बापुर्य्यां श्रीप्रभुराम आयुर्वेद महाविद्यालयेऽपि ।

(७) विद्यापीठस्य "अष्टादशवर्ष पर्यन्तं" परीक्षकत्वेन सेवा सततं कृता ।

(९) श्री गुजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलनस्य मुम्बई नगरे ता० १९–१२–२६ तारिकायां द्वितीयाधिवेशने सभापतिरहम् ।

(१०) कराचीनगरे महासम्मेलनस्याधिवेशने स्वास्थ्य-सम्भाषापरिषदि सभापतिरहम् ।

(११) मैसूरनगरे सने १९३१ संवत्सरे महासम्मेलनं जातं तत्राऽपि रसायनतद्विद्य-सम्भाषापरिषदि सभापतिरहम् ।

(१२) अहमदाबादनगरे गतमहासम्मेलनेस्वागताध्यक्षोऽहम् । भाषणम् संस्कृते-हिन्दी भाषायां च ।

(१३) कराचीनगरस्य-मैसूरनगरस्य च भाषणं वैद्यसम्मेलन पत्रिकायां मुद्रितम् ।

(१४) अहमदाबाद वैद्यसभायामिदानीं माननीयप्रमुखोहम् । तथा च श्रीगुजरातकच्छ कठियावाड़प्रान्तीयस्थापि समितेश्चाऽपि माननीयप्रमुखोहम् ।

एवमायुर्वेदप्रकर्षार्थं सप्ततिवर्षाणिसञ्जातानि तथाऽपि सेवा करोमि । पुस्तकान्यपि लिखितानि । स्वागताध्यक्षरूपेणमदीय भाषण पुस्तके ७ सप्तमपृष्ठे द्रष्टव्यम् । श्रीगुर्जरप्रान्तीय वृन्तान्तमपि भाषणे द्रष्टव्यम् । भाषणपुस्तकस्य ९ नवमेपृष्टे वृत्तान्तमस्ति भाषणम् वाचयित्वा पद्गृहीतव्यमस्ति तदवस्यमेवगृहीतव्यमिति ।

(१) श्रीगुजरातप्रान्तिक वैद्यसम्मेलनस्य द्वितीयाधिवेशनस्यमदीयं भाषणम् ।

(२) श्री नि० भा० व० आयुर्वेदमहासम्मेलनस्य २५ अधिवेशने स्वागताध्यक्षरूपेण मदीयं भाषंणम् ।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

गुजरात प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति

प्राणाचार्य वैद्यशास्त्री नारायणशङ्कर देवशङ्कर का

भाषण

यो विश्वं विदधाति पाति सततं संहारयत्यञ्जसा ।
सृष्ट्वादिव्यमहौषधींश्च विविधान् दूरीकरोत्यामयान् ॥
बिभ्राणोऽञ्जलिना च कास्तिभुवने पीयूषपूर्णघटम् ।
तं धन्वन्तरिरूपमीशममलं वन्दामहे श्रेयसे ॥

विद्वान आयुर्वेदानुरागी चिकित्सकों, सज्जनो और सन्नारियो !

परम पुनीत श्री मुंबा देवी की कृपा से जिसके पैरों को सागर अपनी आनंदोर्मि की तरंगो से धो रहा है, जहाँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि भिन्न-भिन्न जातियाँ भ्रातृ-भाव से हिल-मिल कर रहती हैं और जहाँ श्री और सरस्वती का संयोग हो रहा है, ऐसे इस सुविख्यात रमणीय नगर में पधारे हुए महाशयों के समक्ष इस सम्मेलन में मेरे जैसे साधारण ज्ञान वाले मनुष्य का सभापति का आसन ग्रहण करना, एक प्रकार की धृष्टता ही है क्योंकि मुझसे अधिक विद्वान्, बुद्धिमान और वयोवृद्ध अनेक महाशय यहाँ विराजमान हैं तथापि स्वागत-कारिणी समिति की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं नम्र भाव से इस पद को स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस कर्तव्य में भगवान श्री धन्वन्तरि सहायभूत हों। मेरे विचारानुसार तो सभापति होना और सभा का दास होना दोनों समान ही है, अतः सेवा करने की जो आज्ञा मुझे मिली है उसके लिए मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ और उसके पालन में आप सबकी सहानुभूति प्राप्त करने की याचना करता हूँ।

मैं आज आपके समक्ष जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह नवीन नहीं है क्योंकि दुनियाँ में जो कुछ कहा, लिखा अथवा शोधा जाता है वह सब चर्वित-चर्वण ही है। फिर भी यदि एक ही बात बारंबार कही जाय तो भी मेरे नम्र मत के अनुसार उसमें से कुछ न कुछ फल अवश्य निकलेगा। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेद शास्त्र के धुरंधर ग्रन्थकारों ने जो सिद्धान्त, पद्धति और प्रणाली बनायी है उसपर यह आक्षेप किया गया है कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक, अशास्त्रीय है, इस आक्षेप का उत्तर जहाँ तक मुझसे हो सका है दोनों शास्त्रों की तुलना करके दिया है और दूसरी सब चिकित्सा-पद्धतियों की अपेक्षा आयुर्वेद विशेष वैज्ञानिक और शास्त्रीय है, यह दिखाने का भी मैंने प्रयास किया है।

आयुर्वेद का इतिहास

आयुर्वेद के बहुत प्राचीन ग्रन्थों में से ब्रह्मसंहिता आदि ग्रन्थ इस समय अप्राप्य हैं

किन्तु ये ग्रन्थ पुरातन समय में थे यह चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों से सिद्ध होता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ये तीन ग्रन्थ आयुर्वेद के ग्रन्थों में मुख्य और मूलभूत हैं। इन तीन ग्रन्थों को वृद्धत्रयी कहते हैं। इन तीनों में चरक और सुश्रुत, वाग्भट्ट की अपेक्षा अधिक प्राचीन और स्वतंत्र हैं। वाग्भट्ट ने इन दोनों ग्रन्थों का आधार लिया है। सुश्रुत चरक की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित लगता है। इन ग्रन्थों का काल-निर्णय ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता किन्तु चरक औषध-संग्रह के लिये विख्यात था और सुश्रुत शस्त्रवैद्य के लिए प्रसिद्ध था। यूरोप की अर्वाचीन औषध-विद्या और वैद्य-विद्या केवल तीन सौ वर्ष पुरानी मानी जा सकती है। इसके पहले यूरोप के लगभग सभी प्रदेशों में झाड़-फूँक की पद्धति चलती थी। हमारे आयुर्वेद का ज्ञान अरब और यूनान प्रजा के द्वारा यूरोप में फैला था और अर्वाचीन वैद्यक शास्त्र के उद्भव में यह प्राचीन ज्ञान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

चरक और सुश्रुत की पुस्तकों में दी हुई औषधों का वर्णन और रोगी की चिकित्सा पर से प्रत्यक्ष निरीक्षण करने की प्रथा के लिए हमें आश्चर्य एवं अभिमान उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

ऋग्वेद से लेकर सिकंदर के समय तक समस्त पृथ्वी भर में आयुर्वेद ही वैद्यक-शास्त्र का केवल एक ही प्रमाणभूत शास्त्र था, इसमें दो मत नहीं है। एक दूसरे देश की प्रजा द्वारा आयुर्वेद का प्रकार समस्त संसार में हुआ और लोगों ने अपनी-अपनी भाषा में शास्त्रों की रचना की। वस्तुतः यूनानी और पश्चिम की एलोपैथी ये दो पद्धतियाँ आयुर्वेद की ही पुत्रियाँ हैं। मित्रो! आयुर्वेद शास्त्र के इतिहास और आयुर्वेद पर रचे हुए ग्रन्थों द्वारा हम भूतकाल की स्थिति की कल्पना कर सकते हैं कि आयुर्वेद यह संपूर्ण कला-कौशल से बना हुआ महल था। काल के आक्रमण ने इस महल को तोड़ डाला है, अग्नि और चोरी से इसके कितने ही ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं और जिस काल-बल और कारणों से भारतवर्ष की अधोगति और दुर्दशा हुई है, जिन कारणों से हमारा धर्म, संसार और व्यापार छिन्न-भिन्न हुआ है उन्हीं कारणों से भूतपूर्व प्रकाशमान आयुर्वेद की भी अवनति हुई है।

हमारा आयुर्वेद यह केवल दवा का, रोगों का, शास्त्र नहीं था, वह केवल स्थूल शरीर और स्थूल द्रव्यों पर खिलवाड़ करने वाली पदार्थ विद्या नहीं था बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, उसी प्रकार इहलोक और परलोक के तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान कराने वाला आयुर्वेद शास्त्र था और अभी भी है। आयुर्वेद की नींव केवल पदार्थ-विद्या पर नहीं रची गई थी बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य-बिंदु को सामने रखकर रची गई थी।

प्रिय चिकित्सको! क्या वर्तमानकाल के वैद्यकशास्त्र की बातें आयुर्वेद में नहीं थीं? मैं दृढ़ता के साथ कहता हूँ कि सूत्ररूप में अथवा बीजरूप में ये सब बातें हैं। आयुर्वेद का शारीरशास्त्र और शस्त्रोपचार विद्या (Anatomy and Surgery) इन्द्रिय विज्ञानशास्त्र (Physiology) आरोग्य शास्त्र (Hygiene) वनस्पति शास्त्र (Botany) औषधगुण परिचय (Materia Medica) आदि प्रत्येक विषय के ग्रन्थ काल की गति से नष्ट हो गये हैं तो भी वर्तमान समय में उपलब्ध ग्रन्थों के तथा उसमें दिये हुए रोग-निदान और उपचार आदि बातों से आयुर्वेद में उपरोक्त सब अंग परिपूर्ण दशा में अवश्य रहे होंगे, यह मानने का हमें अच्छा कारण है। किसी कवि ने सत्य कहा है:—

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं, न तेषु किंचिद्भुविदृष्टमस्ति।
चिकित्सित ज्योतिष तंत्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति॥

काव्य के मधुर रस से प्यास नहीं बुझती, व्याकरण की धातु-शुद्धि से शरीर की धातु शुद्धि नहीं होती, उसी प्रकार दुःखी मनुष्य का दुःख ब्रह्मज्ञान की शुष्क बातों से दूर नहीं होता। इसलिए आधि-व्याधियों को दूर करने में यदि कोई शास्त्र समर्थ है तो वह केवल आयुर्वेद का चिकित्सा-शास्त्र ही है।

आयुर्वेद यह वेद ही है

ऋग्, यजुस्, साम और अथर्व ये चार वेद हैं; और आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद और अथर्व वेद ये उनके चार उपवेद हैं। चरक, सुश्रुत आदि संहिताओं से मालूम पड़ेगा कि जिस प्रकार वेद ईश्वर प्रणीत हैं उसी प्रकार उपवेद भी ब्रह्मा के ही बनाये हुए हैं। वेद में आयुर्वेद सम्बन्धी बहुत सी आश्चर्यजनक बातें मिलती हैं। महर्षि गौतम ने आयुर्वेद संबंधी मंत्रों के आधार से सब वेदों की सत्यता अनुमान द्वारा सिद्ध करने की युक्ति बताया है।

आयुर्वेद के आठ अंग

शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरणतंत्र, ये आयुर्वेद के आठ अंग है, इससे ये अष्टांग कहे जाते हैं।

आयुर्वेद की परंपरा

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने वेद के साथ यह अष्टांग आयुर्वेद लगभग हजार अध्याय की संहिता के रूप में बनाया था। आरंभ में ब्रह्मा ने प्रजापति को आयुर्वेद के आठ अंगों की शिक्षा दी। प्रजापति से अश्विनीकुमार ने सीखा, उन्होंने इन्द्र को सिखाया। इन्द्र से ऋषियों को ज्ञान प्राप्त हुआ। जिन्होंने आयुर्वेद का पृथ्वी पर प्रचार किया।

आयुर्वेद अपौरुषेय है

ऊपर कहे अनुसार आयुर्वेद अपौरुषेय मानते हैं—ईश्वर-प्रणीत मानते हैं। माता, पिता, गुरु, ऋषि आदि से लेकर ईश्वर का वाक्य शब्द-प्रमाण कहा जाता है। इस शब्द-प्रमाण के लिए आयुर्वेद पर यह आक्षेप किया जाता है कि आयुर्वेद में "बाबा वाक्यं प्रमाणं" ऐसा अधिक है। हममें स्वतंत्र-विचार से कार्य करने की अपेक्षा अंधश्रद्धा से कार्य करने की प्रथा अधिक प्रचलित है। आर्यों की धर्मभावना का रहस्य समझनेवाले उपर्युक्त आक्षेप कर ही नहीं सकते। आर्यों के मतानुसार वेद यह नित्य, सत्य बात है। सत्य को अलग रख देने से मनुष्य की स्वतंत्रता को कोई भी रुकावट बाधा नहीं डालती। इसमें वेद द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य का बुद्धि-स्वातंत्र्य अथवा विचार-स्वातंत्र्य नष्ट नहीं होता।

'शब्द प्रमाण' के "प्रमाण" शब्द का अर्थ अंग्रेजी में ऑथोरीटी (Authority) किया गया है। यह अनुवाद ही गलत है। पश्चात्य लोग इस शब्द को सत्तावाचक समझते हैं और जहाँ सत्ता होती है वहाँ स्वातंत्र्य नहीं हो सकता ऐसा उनका कहना है। हमारा "प्रमाण" शब्द सत्तावाचक नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने सत्ता का भी विशेष तात्पर्य नहीं रखा है, वे द्रष्टा थे, वैज्ञानिक रीति से विषय को जानते थे, इसी से उनके वचनों के प्रति अपूर्व आदर के

कारण ही हम शब्द-प्रमाण को मानते हैं। चरक और सुश्रुत ये आयुर्वेद के प्रमाण-भूत ग्रंथ माने जाते हैं। ये दोनों ग्रन्थकार यद्यपि एक दूसरे से बहुत स्थान पर अभिप्रायों में एक दूसरे से भिन्न पाये जाते हैं। फिर भी उनकी भिन्नता में उत्तम प्रकार की दक्षता और वैज्ञानिक दृष्टि दिखाई देती है।

आयुर्वेद का धर्म के साथ सम्बन्ध

आयुर्वेद के विरुद्ध एक दूसरा आक्षेप यह है कि आयुर्वेद के तत्व न्याय, सांख्य, दर्शन, वेद, पुराण इतिहास आदि ग्रन्थों में फुटकल पड़े हैं। वैद्य-विद्या के तत्वज्ञान को धर्म के साथ मिलाकर इसे विज्ञान-रहित बना दिया गया है। यह आक्षेप भी ठीक नहीं है। आर्यों के मतानुसार मनुष्य का उच्च से उच्च पुरुषार्थ एवं अंतिम ध्येय पूर्णता प्राप्त करने का है अर्थात् साक्षात्कार कर मुक्ति प्राप्त करने का है जिसके लिये तन और मन आरोग्य रहना आवश्यक है। मनुष्य-जन्म को सार्थक बनाने के लिए शारीरिक स्वस्थता की विशेष आवश्यकता है, इसी से कहा भी गया है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''। संक्षेप में आर्यों के प्रत्येक विचार तत्वज्ञान, विज्ञान और धर्म से परिपूर्ण है। इन तीनों में एक दूसरे का समावेश हुआ है और यह पद्धति ही शुद्ध वैज्ञानिक है।

आयुर्वेद वैज्ञानिक है

पाश्चात्यों का यह कहना है कि आयुर्वेद शास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। आयुर्वेद जैसा वैज्ञानिकशास्त्र और विज्ञान की दृष्टि से, जैसा आयुर्वेद विषयों की चर्चा करता है। वैसा विज्ञान तो पाश्चत्य वैद्यकशास्त्र में ढूंढ़ने से भी नहीं मिलता। आयुर्वेद विज्ञान एवं कला दोनों की दृष्टि से देखता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से हम इसे नीचे लिखे विभागों में विभक्त करेंगे और प्रत्येक विभाग पर विचार करेंगे जिससे विश्वास हो जायगा कि सच्चे विज्ञान को छोड़कर इसमें कहीं भी त्रुटि नहीं है।

१—तीन जाति के प्रमाण—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) शब्द
२—पञ्चभूत सिद्धान्त
३—त्रिधातु सिद्धान्त
४—त्रिदोष सिद्धान्त
५—निदान और चिकित्सा
६—रस, गुण, वीर्य-विपाक और प्रभाव की गुण वाली औषधियाँ।

वैज्ञानिक दृष्टि से उपर्युक्त वर्गीकरण इतना अधिक सफल हुआ है कि इसके लिए फीलाडल्फीया (अमेरिका) के सुप्रसिद्ध डा० ज्योर्जक्लॉर्क एम० ए० एम० डी० कहते हैं कि—
"चरक के प्रत्येक अध्याय को पढ़कर मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान काल के डाक्टर फर्माकोपिया की वर्तमान समय की नवीन औषधियों का त्याग कर केवल चरक की बतायी हुई प्रणाली के अनुसार यदि रोगियों का निदान और चिकित्सा करें तो अकाल मृत्यु की संख्या बहुत अधिक घट जाय और अनेक रोगों से पीड़ित जीर्ण रोगी भी बहुत कम देखने में आवें।"

त्रिधातु

वात, पित्त और कफ, ये तीन धातु हैं, इन्हीं से छोटे से छोटे और बड़े से बड़े शरीर के अवयव बने हैं; इसीसे इन्हें धातु कहा जाता है। धातु शरीर का आधार रूप माना जाता है। इसका अभाव ही शरीर का अभाव है। सम विषम होने पर ही दोष-युक्त और व्याधि की उत्पत्ति होती है। जब धातु नियमित स्थिति में होता है तब इसे "प्रसाद-स्थिति" में और अनियमित में "मलस्थिति" में स्थित कहा जाता है। हम धातु को उसके कार्य-कारण संबंध से भिन्न-भिन्न स्वरूप में देखते हैं। धातु अथवा दोष प्रसाद-भूत धातु के अर्थ में एवं कीटभूत मल के अर्थ में व्यवहृत किया जाता है।

विज्ञान की दृष्टि से शारीरिक-क्रिया का आधार वात, पित्त और कफ, इस त्रिधातु पर है और मानसिक क्रिया का आधार सत्व, रज और तम त्रिगुण पर है। संपूर्ण संसार की उत्पत्ति इन तीनों गुणों से होती है। ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। वेद में समस्त संसार को उत्पन्न करने वाली तीन गुणों से युक्त इस प्रकृति के संबंध में उल्लेख है और इसीसे प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक कही जाती है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण जीवित मनुष्य में क्रमानुसार वात, पित्त और कफ के रूप में दिखाई देते हैं, मृत मनुष्य का शव पञ्चभूत की ठठरी है। मनुष्य की ठठरी में जबतक जीव है तभी तक उसमें जीवन है। जीवित मनुष्य के शरीर में जीव का भी अस्तित्व है, मुर्दे में नहीं है। ये दोनों पञ्चभूतात्मक वात, पित्त और कफवाले कहे जाते हैं, इसीसे वे पञ्चभूतात्मक तथा त्रिधातुवाले कहे जाते हैं। शव में त्रिधातु हो नहीं सकता। इस प्रकार शरीर के दो प्रकार के पृथक्करण हैं, पञ्चभौतिक और त्रिधातु। इन दोनों का संयोग नीचे लिखे अनुसार होता है।

आकाश और वायु, वात (जो राजसिक है) की सीमा में प्रवेश करता है, तेज पित्त (जो सात्विक है) की सीमा में प्रवेश करता है और पृथ्वी और अप कफ (जो तामसिक है) में प्रवेश करता है। इस प्रकार पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश ये पंचमहाभौतिक ठठरी में जीव का प्रवेश होता है उस समय इस जीव का शरीर वात, पित्त और कफ का बना हुआ है ऐसा कहा जाता है। यह वात, पित्त और कफ वाला जीव धारण करने वाला शरीर रज, सत्व और तम गुण वाला त्रिगुणात्मक बना; इस प्रकार मनुष्य की प्रकृति के अनुसार वातल, पित्तल और श्लेश्मल ऐसे तीन विभाग हुए। प्रत्येक मनुष्य की इन तीन में से कौनसी प्रकृति है यह जानने की विशेष आवश्यकता है क्योंकि इसपर से आयुर्वेद मनुष्य के आरोग्य और अस्वस्थता को परखने की आज्ञा देता है। शरीर के भीतर की क्रियायें वात, पित्त और कफ से नियमित हुआ करती हैं। हम जो कुछ भोजन करते हैं उससे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इससे सात धातु वात, पित्त और कफ की वारंवार होने वाली क्रियाओं से बनते हैं। इनमें से एक ओजस् धातु भी बनता है। यह ओजस् सात धातुओं का सत्व अथवा साररूप कहा जाता है। शुक्र धातु आदि की कियायें यदि ठीक-ठीक अपना कार्य संपादन नहीं करतीं तब ओजस् धातु को बहुत हानि पहुँचती है और कभी-कभी इस ओजस् की कमी के कारण जीव का चलना एक दम रुक जाता है। शरीर की इस सात धातु की क्रिया आयुष्य को भी निश्चय करती है, इससे इस शास्त्र का नाम आयुर्वेद हुआ है।

त्रिदोष

हम ऊपर देख चुके हैं कि वात, पित्त और कफ शरीर में सम विषम होने पर दोष का रूप लेते हैं, इस प्रकार शरीर में ये दो रूप से रहते हैं—धातु-रूप और मल-रूप में। धातु-रूप में वायु, पित्त और कफ सूक्ष्म और इन्द्रियों को अगोचर हैं, केवल क्रियाओं द्वारा इनका अनुमान हो सकता है और मल-रूप में वायु, पित्त और कफ इन्द्रीय-गोचर हैं।

वात—"वा गति गंधयोः" इस धातु से वायु पद बना है। वायु शरीर के तमाम आशय और यन्त्रों को धारण करता है और इसकी क्रियाओं को चलाता है। इसके प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान ऐसे पाँच रूप हैं। इसका कार्य हृदय, कंठ, उदर, त्वचा और गुह्य आदि स्थानों में स्पष्ट मालूम पड़ता है। छोटी बड़ी सभी क्रियाओं का प्रवर्तक वायु है, मन की प्रवृत्तिओं का नियन्ता और चालक है, सभी इन्द्रियों में चैतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का वहन करने वाला है। यह दोष को सुखा डालता है और मल को बाहर निकालता है।

वायु रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विषद और खर है। इससे विपरीत गुण वाले द्रव्यों से यह शान्त होता है। कुपित अवस्था में वायु शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। मनुष्य का बल, रंग, सुख और आयुष्य का यह नाश करता है, मन में विकृति उत्पन्न करता है और इन्द्रियों की शक्ति का नाश करता है।

पित्तः—"तपसंतापे" इस धातु से पित्त शब्द बना है। शरीर में ताप का मूलभूत जो सूक्ष्म अतिन्द्रिय वस्तु है वह पित्त है। शरीर में तेजोगुण का कार्य पित्त ही करता है। शरीर में समान गर्मी रखना, चमड़े की शोषण-शक्ति, मन की तेजस्विता, दृष्टि की उज्वलता और लोहू का लाल रंग यह तेजोगुण का प्रधान कार्य है। इसी से पित्त को, भ्राजक, पाचक, साधक, आलोचक और रंजक कहा गया है। पित्त उष्ण, द्रव, पीला, नील, परिणाम में सत्व-गुणी, सारक, कड़वा, लघु, स्निग्ध और पाक में अम्ल है। इससे विपरीत गुण वाले द्रव्यों से यह शान्त होता है। कुपित अवस्था में विस्फोटक, उष्मा आदि रोग उत्पन्न करता है।

कफः—"श्लिष आलिंगने", इस धातु से श्लेष्म शब्द बना है। यह सोम गुणात्मक है और यह भी पित्त के समान अतिन्द्रिय वस्तु है। पित्त अग्निरूप और श्लेष्म जलरूप है। श्लेष्म संधियों को तेल जैसे पदार्थ से चिकना, रखता है, कंठ, जिह्वा आदि स्थानों को स्निग्ध रखता है। कफ अन्न के क्लेदन और धातुओं के पोषण में पानी का कार्य करता है। यदि शरीर में श्लेष्म न हो तो थोड़े ही दिवस में शरीर भस्म हो जाय। इसके क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मन स्थान-भेद से पाँच नाम हैं। यह स्वेद, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल तथा तमोगुणी है विदिग्ध होने पर खारा होता है। नाक और मुँह में से जो कफ निकलता है वह तो मलरूप मात्र है। इसे शरीर का आधार नहीं माना गया है।

तर्पण, शोषण और संचारण से चन्द्र, सूर्य और वायु जिस प्रकार जगत को धारण करते हैं उसी प्रकार वायु, पित्त और कफ शरीर को धारण करते हैं। ये शरीर के स्वयं रूप हैं, इतना ही नहीं बल्कि आयुर्वेद के हेतु, लक्षण और औषध स्कंध के तीन प्रधान स्कंध रूप हैं।

आयुर्वेद की पूरी इमारत इन तीन धातुओं पर रची गई है। इन तीन धातुओं का आयुर्वेद ने कैसा सुन्दर अर्थ समझाया है और उनका कैसा कर्तव्य बताया है फिर भी पाश्चात्य

वैद्यक शास्त्र वाले हमारे इस त्रिधातु सिद्धान्त को समझने की चेष्टा न कर उसे उखाड़ फेंकने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह कैसी शोचनीय बात है ! सद्गुणी वैद्यो ! वात, पित्त और कफ का अनुवाद अंग्रेजी में इन्होंने विंड, बाइल और प्लेज्म शब्द में किया है। पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान न होते हुए भी एक के बदले दूसरा अर्थ अपनी भाषा में करना भूल नहीं तो और क्या है ? वात, पित्त और कफ का लक्षांसवाँ अर्थ भी इन शब्दों से नहीं निकलता। इस प्रकार का अर्थ का अनर्थ कर ये लोग आयुर्वेद की हँसी करते हैं और कहते हैं कि आयुर्वेद वैज्ञानिक नहीं है। अतः उनका मन्तव्य उन्हीं को मुबारक हो।

त्रिधातु और सेल्युलर थियरी

ऐसा कोई भी सिद्धान्त पाश्चात्यों में नहीं है जिसके साथ त्रिधातु सिद्धान्त से तुलना की जा सके। इनकी एक सेल्युलर थियरी है जिसे ग्रीक लोग ह्युमोरल थियरी के नाम से पुकारते थे। सेल्युलर सिद्धान्त से त्रिधातु सिद्धान्त बहुत आगे बढ़ जाता है, इन दोनों की तुलना की ही नहीं जा सकती। वात को इन लोगों ने नर्व फोर्स के स्थान पर माना है किन्तु वात नर्वफोर्स से कहीं अधिक काम करता है क्योंकि उसमें बहुत सी मानसिक क्रियाओं का भी समावेश होता है।

शरीर और मन का सम्बन्ध

जहाँ तक सत्वगुण प्रधान होता है वहाँ तक आनंद, ज्ञान और शांति का साम्राज्य होता है। रजोगुण और तमोगुण बढ़ने से ही मन में काम, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, मद, मान और अहङ्कार आदि पैदा होते हैं। चरक कहते हैं कि 'रजोगुण और तमोगुण ये मन के दोष हैं। वात, पित्त और कफ ये शरीर के दोष हैं।" शरीर और मन का परस्पर घना सम्बन्ध है। मनुष्य के शरीर की रचना उसके मन के अनुरूप होती है और मन शरीर के अनुसार होता है।

शारीरिक स्थूल शरीर, मानसिक शरीर और आत्मा, इन तीनों के योग से मनुष्य कहा जाता है। पाश्चात्य स्थूल शरीर को ही मनुष्य कहते हैं। रोग में मन और शरीर दोनों एक समान भाग लेते हैं किन्तु पाश्चात्य डाक्टर इस बात को स्वीकार नहीं करते।

रोग की उत्पत्ति

हमारे आतुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य प्राणी के तीन भाग हैं—आत्मा, मन और शरीर। इनमें आत्मा सदा निर्विकार और निर्दोष रहता है और उसे किसी प्रकार रोग आदि नहीं होता। रोग का मन और शरीर दो अधिष्ठान हैं।

मिथ्या आहार-विहार द्वारा वात, पित्त और कफ विषमावस्था को पहुँचते हैं तब दोष गिना जाता है। रोग की उत्पत्ति बाह्य और आभ्यंतर दो प्रकार से होती है।

१—बाह्यकारण—असात्मेन्द्रिय संयोग अर्थात् पञ्चेन्द्रिय द्वारा होने वाले रोग। ये अतियोग, हीनयोग और मिथ्यायोग, इस प्रकार तीन रीति से हो सकते हैं।

२—प्रज्ञापराध—समझ शक्ति के दोषों से होने वाले शारीरिक, मानसिक और वाचिक रोग।

३—परिणाम—ऋतु, जल-वायु आदि में होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न रोग।

आभ्यन्तर कारण—धातु-वैषम्य और गुण-वैषम्य। नीचे के कारणों से धातु में विषमता उत्पन्न होती है:—

१ संचय, २ प्रकोप, ३ प्रसर, ४ स्थानसंश्रय, ५ व्यक्ति और ६ भेद। इन कारणों को क्रियाकाल भी कहा जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार व्याधि के कारण नीचे लिखे अनुसार हैंः—

वाह्य, सर्दी हो जाना अथवा गर्मी का प्रमाण बढ़ जाना, वातावरण में परिवर्तन, विद्युत, आघात, अयोग्य खुराक, हवा की कमी, लू, विष और जन्तु विषयक।

आयुर्वेद में कहे गये वाह्य हेतु में इन कारणों का समावेश हो जाता है किन्तु इन दोनों में एक मुख्य भेद यह है कि आयुर्वेद की दृष्टि मानसिक है और पाश्चात्य वैद्यक की पदार्थ विषयक। आयुर्वेद कहता है कि शरीर पर व्याधि का आक्रमण दो मार्ग से हो सकता है, इन्द्रियों द्वारा और मन द्वारा। ऊपर लिखे अनुसार जो छः भाग किये गये हैं उनमें अज्ञान अथवा भविष्य में ज्ञान होने वाले कारणों का भी समावेश हो सकता है। अतः इसमें भी हमारा आयुर्वेद विज्ञान का पूर्णतः अनुसरण करता है।

पाश्चात्य वैद्यक के एक महान शोधवेत्ता सर जेम्स मेकेन्जी कहते हैं कि—"पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र के निदान में तीन प्रकार की कमी है—(१) प्रारंभिक अवस्था में ही बढ़ते हुए रोग का निदान-उपाय इसमें नहीं है। (२) निदान में प्रत्येक चिह्न से पूर्व चिह्न जानने की कमी और इस कमी से उपचार में होने वाली गड़बड़ी। (३) क्लिनिक की अपेक्षा लेबोरेटरी को अधिक महत्व। रोगी की प्रकृति, सत्व और सात्म्य आदि की परीक्षा करने की चाभी पाश्चात्य वैद्यक विद्या में नहीं है। वह केवल रोग का निदान करता है।"

वाग्भट्टाचार्य ने अपने अष्टांग हृदय सूत्र स्थान प्रकरण १२ श्लोक ६६ से ६८ में निदान और चिकित्सा के सम्बन्ध में जो रीति दी है वह अति उत्तम है।

तस्माद्विकार प्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च।
बुद्धा हेतु विशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम्॥
दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं,सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे।
योवतते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥

आयुर्वेद में प्रकृति-स्थापन नामक उपचार है। चयकाल के पहले अर्थात् रोग प्रारंभ होने के पहले रोगी को जो असल स्थिति हो उसे स्थिति पर लाना। यह बात दूसरे किसी भी शास्त्र में नहीं है। रोगी को उपर-उपर से आराम हुआ कि बस, रोग मिट गया ऐसा पाश्चात्यों का मानना है किन्तु रोग तो छिपी रीति से मौजूद रहता है जब कि हमारा आयुर्वेद अच्छे प्रकार से स्वस्थावस्था को प्राप्त करा देता है :—

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

रोग की परीक्षा

त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायैः (दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः) रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके। तत्तु न सम्यक्। षड्विधिर्हि रोगाणां विज्ञानोपायः। तद्यथा पञ्चभिः श्रोतादिभिः प्रश्नेन चेति।

दर्शन, स्पर्श और प्रश्न से भी रोग की परीक्षा की जा सकती है किन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि रोग को तो पंचेन्द्रियों और प्रश्न से समझ लेना चाहिये। सुश्रुताचार्य का यह अभिप्राय है कि रोग को अच्छी तरह समझने के लिए छाती पर कान रखकर देखना, हाथ से यकृत, प्लीहादि को स्पर्श कर देखना, आँख से जीभ और विकृत लक्षणों को देखना, जीभ से रस आदि की परीक्षा करना, नाक से विकृत अवस्था की बास कैसी आ रही है, यह देखना और रोगी से भिन्न-भिन्न प्रश्न कर उसकी दशा का अनुभव प्राप्त कर लेना चाहिये अर्थात् आयुर्वेद के लिए माइक्रासकोप, स्टेथस्कोप, थरमामीटर आदि नये नहीं हैं। इस प्रकार के दूसरे यंत्र वैद्यों के पास थे नहीं तो कान से रोगी की परीक्षा और अदृश्य सूक्ष्म कृमियों की परीक्षा किस प्रकार होती रही होगी।

आयुर्वेदिक औषधियाँ

आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धान्त का अनुसरण कर औषधों का पाँच प्रकार से निर्णय किया गया है:—

१ गुण—औषधि में कौन कौन से भौतिक तत्व हैं, उसका निर्णय।

२ रस—स्वाद से निर्णय। स्वाद छः प्रकार का है—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, और कषाय।

३ वीर्य—(बल-सामर्थ्य) यह दो प्रकार का है उष्ण और शीत। किसी किसी ने इसको आठ भाग में विभक्त किया है। उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विषद, पिच्छिल, मृदु और तीक्ष्ण। औषधि के दूर के कारण और वीर्य में सम्बन्ध है। औषधि में वीर्य का गुण हो तो रस और विपाक दोनों को दबा कर ये औषधियाँ बहुत ही अच्छा परिणाम देती हैं।

४ विपाक—शरीर में औषध जाने के पश्चात् दूसरे द्रव्यों के साथ पाचन होने के बाद जो औषध की क्रिया होती है उसे विपाक कहते हैं।

५ प्रभाव—दो जाति की औषधियाँ होती हैं और वे दोनों रस, वीर्य और विपाक में मिलती हुई होने पर भी व्याधि-निवारण की क्रिया में दोनों में जो अन्तर पड़ता है उसे प्रभाव कहते हैं। औषधियों में जो वीर्य (बल अथवा सामर्थ्य) का बल है वही व्याधि दूर करता है। भौतिक और रसायनिक गुणों का औषधि में से नाश करने के पश्चात् ही यह गुण झलक उठता है।

पाश्चात्य डाक्टर औषध को पहले किसी पशु पर आजमा कर देखते हैं। उसका परिणाम अच्छा दिखाई पड़ने पर मनुष्य पर उसका उपयोग करते हैं। यह पद्धति तो मुझे भूलपूर्ण मालूम होती है। जो औषध अन्य प्राणी के शरीर को अनुकूल हो वही मनुष्य के लिए विषवत् हो सकती है। इसी प्रकार स्वस्थ प्राणी को जो औषध अनुकूल हो वही अस्वस्थ मनुष्य के लिए अनुकूल हो यह अनुमान भी गलत है। हमारे महर्षिगण मनुष्य शरीर पर ही अनुभव कर ऊपर बतायी हुई गुणवाली औषधियों की परीक्षा करते थे।

जीवाणुवाद

महाशयो! ऐसा कहा जाता है कि आयुर्वेद में कृमि रोग के संबंध में कुछ भी नहीं दिया है। पाश्चात्य वैद्यक में इसे अत्यधिक प्राधान्य दिया गया है। आयुर्वेद में इसका स्थान

है किन्तु उसे इतना महत्व नहीं दिया गया है। रोग के वाह्य कारणों में कृमि रोग का कारण, आगन्तुक के पहले विभाग में आ जाता है। पाश्चात्य त्रिदोष के साथ कृमिरोग के सिद्धान्त की तुलना कर कहते हैं कि सब रोगों के कारणभूत ये कृमि ही हैं। किन्तु यह संभव नहीं प्रतीत होता। बहुत से जन्तु वर्षों से हमारे पेट में कुछ भी हानि पहुँचाये बिना पड़े रहते हैं और कभी कभी तो वे मित्र रूप में काम करते हैं। परन्तु जब पेट में अज्ञात प्रसंग आ बनता है तभी ये शत्रु बन जाते हैं, अब तक इनका कोई जोर नहीं चलता था किन्तु जब भीतर कुछ खराबी आ गई तब उनका भी बल प्रकट हुआ अतः इन दोनों का परस्पर बीज और भूमि का संबंध है। त्रिदोष का सिद्धान्त इसे भूमि की दृष्टि से देखता है और कृमिवाद का सिद्धान्त इसे बीज की दृष्टि से देखता है। कृमिवादी कहते हैं कि जन्तुओं का नाश करो इससे आप सही सलामत होंगे किन्तु जन्तुओं को नष्ट करना असंभव है, जन्तु तो सर्व-व्यापी हैं। उचित मार्ग तो यह है कि आप अपनी भूमि को ऐसी बनाइये कि उसमें बीज बोने पर उग न सके। सर जेम्स गुडहार्ट जिनका नाम पाश्चात्य वैद्यों में पूजा जाता है, अपने "हारवेनओरेशन" नामक पुस्तक में एक स्थल पर लिखते हैं कि "निदान विद्या अभी ठीक नहीं हो सकी है, अभी हम पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके हैं, संभव है कि जन्तु कारण रूप न होकर परिणाम रूप हों।" इससे भी मालूम हो जायगा कि पाश्चात्य अब जो समझने लगे हैं वह आयुर्वेद में पहले से ही है।

शल्यतंत्र (सर्जरी)

मित्रों! अब आप के समक्ष आयुर्वेद का कला की दृष्टि से विवेचन करने की आज्ञा माँगता हूँ। इसमें क्या सर्जरी थी? सुश्रुत के मतानुसार चिकित्सा का यह प्रथम अंग समझा जाता था। प्राचीनकाल में सुश्रुत संप्रदाय के वैद्य रोगी की जीव-रक्षा के लिए उसका हाथ पैर काट डालते थे। जलोदर रोग में सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के १४ वें अध्याय में वर्णित व्रीही-मुख शस्त्र और द्विद्वारा नाड़ी से चार-पाँच बार में बिलकुल पानी निकाल दिया जाता था। यह विधि पाश्चात्य 'पेरेसेन्टेसीस' विधि से कहीं अधिक उत्कृष्ट है। अश्मरी रोग में सुश्रुत के चिकित्सा के सातवें अध्याय में बस्ती चीर कर पथरी निकालने की विधि बड़ी ही सरल वर्णित है। सुश्रुत के शारीर स्थान के आठवें अध्याय में वर्णित यकृत और प्लीहादि रोग में हाथ पैर का शिरादाह और शिरावेध से जो उत्तम परिणाम होता है उसे आज भी डाक्टर नहीं जानते। इसी प्रकार और बहुत से अद्भुत शस्त्र-चिकित्सा का वर्णन सुश्रुत में है जिसे पढ़कर विश्वास-पूर्वक कहना पड़ता है कि ऐसा वर्तमान समय की सर्जरी भी नहीं कर सकती किन्तु इस समय शोचनीय बात इतनी ही है कि यह शल्यतंत्र इस समय बिलकुल ही नष्टप्राय हो गया है जिससे पाश्चात्य अपनी सर्जरी की प्रशंसा करते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र में यदि शस्त्र-विद्या का स्थान न होता तो आज जो ऑपरेशन (हॉसडी ऊपर का) इण्डियन ऑपरेशन के नाम से प्रसिद्ध है, वह देखने में ही न आता।

मैंने ऊपर आयुर्वेद की विज्ञान तथा कला की दृष्टि से समालोचना की है। आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक है और पाश्चात्य वैद्य विद्या की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा हुआ है। वैद्यक विशाल विषय है। पाश्चात्य वैद्यक-शास्त्र का अध्ययन कर जो उसमें ग्रहण करने योग्य बातें दिखायी दें उनका ग्रहण कर लेना चाहिये तभी पाश्चात्य और आयुर्वेद का वैद्य अच्छी रीति से

काम कर सकता है। पाश्चात्य डाक्टर आयुर्वेद का अध्ययन किये बिना झूठा आक्षेप करते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता, इसमें उदारता तो है ही नहीं। हमारा आयुर्वेद संपूर्ण होता हुआ भी उदार है और भेद-भाव छोड़कर अपनी कमी की पूर्ति दूसरों के गुण को लेकर करता है। इस सम्बन्ध में महर्षि चरकाचार्य का अभिप्राय यह है किः—

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते। संचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्। नचैवह्यस्तिसुतरामायुर्वेदस्य पारम्, तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्। कृत्स्नोहि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतामतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमताऽमित्रस्याऽपि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति।

(च० वि० अ० ८)

जो आरोग्यता दे वही सच्ची औषध, जो रोगों से मुक्त करे वही सच्चा वैद्य है। आयुर्वेद का पार नहीं है। अतः इसमें निरन्तर लगे रहना चाहिये। बुद्धिमान के लिए समस्त संसार उसका गुरु है। मूर्ख मनुष्य के लिए संसार शत्रुवत लगता है। चतुर मनुष्य को शत्रु की शिक्षा यदि वह हितकर हो, प्रसंशनीय हो, आरोग्य बढ़ाने वाली हो, और लोगों के लिये अनुकूल हो तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

आयुर्वेद का रसशास्त्र

आयुर्वेद की रसादि क्रिया पर यह आक्षेप किया जाता है कि उनके उपयोग से दवायें शरीर से फूट निकलती हैं। ऐसी ही लोगों में कटूक्ति भी प्रसिद्ध है—'जो खाय रसायन वह जाय मसान' किन्तु आयुर्वेद में कोई भी रसायन ऐसा नहीं है जिसमें ऐसा गुण हो। जो लोग रसायन को फूट निकलने वाली दवा कहते हैं वे रसायन शब्द का अर्थ ही नहीं समझते रसायन शब्द का अर्थ यह है—"रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जरा व्याधिनाशनम्" जो जरा और व्याधि का नाश करता है उसे रसायन कहते हैं चाहे वह वनस्पति हो अथवा रसादि।

धातु घटित औषधों का प्रधान प्रवर्तक रसवैद्य संप्रदाय है। रस शब्द का अर्थ पारा होता है। इस रसादि धातु से जरा-मरण को भी टाला जा सकता है तब वह रोग को दूर करे तो इसमें नवीनता ही क्या है? क्योंकि—

पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः।
सुज्ञेन साधितः कुर्यात् संसिद्धिं देहलोहयोः॥

यहाँ पर मुझे केवल इतना ही कहना है कि हाल में रेडियम जैसी धातु ने पाश्चात्य वैद्यक में बहुत प्रकाश डाला है। रेडियम के योग से कैन्सर जैसा भयंकर रोग भी दूर किया जा सकता है ऐसा पाश्चात्य विद्वानों का कहना है। परन्तु हमारे आयुर्वेद में रसादि दवाओं की बहुत सी ऐसी बनावट हैं जिसके सेवन से पाश्चात्य विद्वान् जिस रोग को आसाध्य मानते हैं उन्हें हम सरलता पूर्वक मिटा सकते हैं।

सज्जनों! उपरोक्त कथन से आप सबको विश्वास हो गया होगा कि आयुर्वेद संपूर्ण रीत्या वैज्ञानिक है। जो कुछ मैंने प्रमाण उपस्थित किया है उसकी सचाई जानने के लिए अथवा इससे अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मद्रास कमिटी की रिपोर्ट आप देखें जिसमें बहुत छानबीन के पश्चात् मद्रास सरकार इस निर्णय पर पहुँची है कि आयुर्वेद वैज्ञानिक है, इसमें उच्च प्रकार का विज्ञान भरा हुआ है एवं इसकी सहायता करने की आवश्यकता है।

आयुर्वेद की उन्नति के उपाय और वैद्यों का कर्तव्य

महाविद्यालय की आवश्यकता

प्रिय चिकित्सको ! अब हमें जो कर्तव्य करना है उसका थोड़ा दिग्दर्शन कराऊँगा। हमने अपने अनुभव से देखा है कि आयुर्वेद का औषधि-भंडार विशाल है अतः उसकी उन्नति के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्र के पठन-पाठन का प्रचार करने के लिए सुशिक्षित और अनुभवी वैद्यों को तैयार करना चाहिये। इस प्रकार वैद्य तैयार होने से ही गुजरात प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में आयुर्वेद विद्यालय और महाविद्यालयों की स्थापना हो सकेगी। आयुर्वेद का सर्वांग पूर्ण महाविद्यालय की स्थापना का निश्चय गत संमेलन के अवसर पर हुआ था, उस निश्चय के अनुसार महाविद्यालय खोलने की विशेष आवश्यकता है। इस समय गुजरात प्रान्त एवं बड़ोदा राज्य में जो संस्थाएँ आयुर्वेद की शिक्षा दे रही हैं उनके संचालकों को धन्यवाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता। साथ ही निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा ली जाने वाली परीक्षायें भी आयुर्वेद की प्रगति का साधन है अतः इसके लिये भी उसके कार्यकर्ताओं का मैं अभिनंदन करता हूँ।

संग्रह-स्थान—महाविद्यालय में एक संग्रह-स्थान भी होना चाहिये जिसमें वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न नमूने, अस्थिपिंजर, खनिज और उद्भिज औषधियों का बृहद् संग्रह हो।

प्रयोग-शाला—उसमें एक प्रयोग-शाला भी होना आवश्यक है जिससे शास्त्रीय और अनुभूत प्रत्यक्ष प्रयोगों से पूर्ण निश्चय हो सके और वैद्यक शास्त्र का असरकारक ज्ञान प्राप्त हो सके। वैद्यों को क्रिया प्रवीण और शास्त्र-प्रवीण होने की विशेष आवश्यकता है क्योंकि—

> शास्त्रप्रवीणाः क्रियया विहीनाः क्रियाप्रवीणाः किल शास्त्रहीनाः।
> एतादृशा यद्यपि सन्ति किं तैर्वैद्यास्तएवोभयथा प्रवीणाः॥

पुस्तकालय—इसके उपरान्त हमें एक ऐसे पुस्तकालय की आवश्यकता है जिसमें पाश्चात्य, पौर्वात्य एवं यूनानी वैद्यक शास्त्र की पुस्तकों से पूर्ण एक बड़ी पुस्तक-शाला हो। इस पुस्तकशाला में सभी भाषा की नवीन प्रकाशित पुस्तकों के साथ ही साथ अप्राप्य, अधिक मूल्य वाली अथवा अप्रकाशित पुस्तकों का भी संग्रह होना चाहिये।

रुग्णालय—इस महाविद्यालय के लिए एक अच्छी दवाशाला की भी आवश्यकता होगी जिसमें रोगी रखे जा सकें जिनकी चिकित्सा विद्यार्थी कर सकें।

विद्यार्थी-भवन—विद्यार्थियों के रहने के लिए विद्यार्थी-भवन की आवश्यकता भी प्रतीत होती है। यह भवन यथा शक्ति दवाखाना के पास होना चाहिये जिससे विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के रोगियों को देखने का प्रत्यक्ष ज्ञान का लाभ हो सके।

अभ्यासक्रम, परिचारिकायें और दाइयाँ—अपना कार्य सरल और ठोस बनाने के लिए गुजरात में स्थापित होने वाले महाविद्यालयों में सबका अभ्यास क्रम एक समान होना चाहिये और सब पाठशालाओं के विद्यार्थियों की परीक्षा एक संस्था द्वारा ही होना चाहिये जिससे व्यवहार नियमपूर्वक निभ जाय। स्त्री रोगियों के लिये दाइयों की आवश्यकता है, विशेषतः प्रसूति का ज्ञान होना उन्हें आवश्यक है जिससे प्रसूति रोग से होनेवाली मृत्यु रोकी जा सके।

उपवैद्य – वैद्यों के लिए सुशिक्षित उपवैद्य अथवा कम्पाउण्डर की भी आवश्यकता है जो उनकी लिखी हुई औषधियाँ, रोगियों को, वय के अनुसार मात्रा एवं अनुपान सहित दे

सकें। निरक्षर और अज्ञान कम्पाउण्डरों द्वारा अथवा शिक्षित कम्पाउण्डरों की लापरवाही से रोगियों के जीवन के अंत होने के दृष्टान्तों की कमी नहीं है अतः इस वर्ग के लिए भी विशेष प्रमाण-पत्र देने की आवश्यकता है, इससे हम लोगों की बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी।

फर्माकोपिया

हममें से भिन्न-भिन्न वैद्य एक ही दवा बनाने में भिन्न-भिन्न द्रव्यों का उपयोग भिन्न-भिन्न ग्रन्थ के पाठानुसार करते हैं। इसके बदले में यदि सब वैद्य पाश्चात्य-पद्धति के अनुसार एक ही पाठ ग्रहण करें तो इससे बहुत लाभ हो और हमारा काम सफल हो जाय। इसपर आप अपना निश्चित विचार प्रकट करेंगे और एक निर्णय पर पहुँचेंगे, यह मेरी विनती है।

आरोग्याश्रम

गुजरात प्रान्त में दिन-प्रतिदिन प्राणघातक क्षयरोग का ज़ोर बढ़ता जाता है, उसपर विचार करने से हमें आरोग्याश्रम की विशेष आवश्यकता प्रतीत होगी। जिस-जिस स्थान का जल-वायु ऐसे रोगियों के लिए अनुकूल हो उस स्थल पर क्षयरोग की चिकित्सा के लिए आरोग्याश्रम बनवाने की विशेष आवश्यकता है। प्रान्त के राजा महाराजाओं एवं धनिकों को आरोग्याश्रम की उपयोगिता समझा कर जिस प्रकार हो सके शीघ्रातिशीघ्र आरोग्याश्रम खोलने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि क्षय जैसी भयानक व्याधि से भारत देश आज दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है।

हस्तलिखित पुस्तकों का संशोधन और प्रकाशन

आयुर्वेद के हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों में से—जो अब तक अप्रकाशित हैं—जो कुछ मिल सकें उनका संग्रह कर प्रकाशित करने की विशेष आवश्यकता है। ऐसी पुस्तकें बड़ोदा सेन्ट्रल लायब्रेरी, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई तथा कलकत्ता, संस्कृत कालेज कलकत्ता, क्वींस कॉलेज बनारस, आनन्दाश्रम पूना, मैसूर, नैपाल, बीकानेर पाटन आदि स्थानों के पुस्तकालयों से एवं भिन्न-भिन्न प्रान्तों के विद्वान वैद्यों के घर से मिल सकती हैं। मेरा विश्वास है कि इन ग्रंथों का संशोधन और प्रकाशन होने से आयुर्वेद की बहुत अच्छी उन्नति हो सकेगी। इसके अतिरिक्त जैन-साधुओं और यतियों के पास भी आयुर्वेदिक दवाओं के प्राचीन नुस्खे और टिप्पणियाँ मिल सकती हैं, उनका भी संग्रह कर छपवाना चाहिये। बिषय-प्राधान्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में रा० वैद्यराज जयशंकर भाई लिखित "आयुर्वेद की उन्नति का खुलासा" नामक निबंध में जो सूचनायें दी हैं उनपर भी मेरी विनती है कि आप विशेष ध्यान दें।

पारिभाषिक शब्दकोष

अंग्रेज़ी में परिभाषा निश्चय करने के लिए जैसी मेडिकल डिक्शनरी है, उसी प्रकार आयुर्वेद की परिभाषा निश्चय करने के लिए एक शब्दकोष की विशेष आवश्यकता है। इस शब्दकोष से आयुर्वेदीय परिभाषा के शब्दों का अर्थ सरल रीति से समझ में आयेगा, इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान औषधों के निर्णय में भी संभ्रम होना बंद हो जायगा।

वैद्य सभाओं का प्रबंध और वैद्यों का संगठन

इस युग में समाज बल बहुत ही श्रेष्ठ बल समझा जाता है। प्रत्येक समाज अपने संघ बल का प्रबन्ध करता है उसी प्रकार वैद्यों को भी अपना संघबल एकत्र कर उसके द्वारा अपना

स्वत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। जबतक वैद्य-समाज अपना संगठन नहीं करता तब तक जनसमाज से वह अपना हिस्सा योग्य प्रमाण में प्राप्त न कर सकेगा और वर्तमान काल की दुर्दशा भी ऐसे प्रबन्ध भाव से ही है। इससे वैद्य सभाओं के प्रबंध की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देगी। गुजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन भी ऐसी वैद्य-सभाओं की आभारी है।

मेरी उपरोक्त सूचना के अनुसार यदि कार्य किया जाय तो हमारे आयुर्वेद के प्रति अत्यन्त अभिरुचि उत्पन्न हो जाय और पाश्चात्य वैद्यक का मोह धीरे-धीरे कम हो जाय।

औषधों की संदिग्धता और उसका निर्णय

हमारी औषधों में से कितनी ही संदिग्ध रह गई हैं उनका भी निर्णय करने की विशेष आवश्यकता है। हमारी औषधियाँ निम्नाङ्कित छः कारणों से संदिग्ध रह गई हैं।

१—आयुर्वेद के शिष्ट ग्रन्थों में लगभग सात सौ वनस्पतियों का उपयोग लिखा है किन्तु उनमें से कईयों का पीछे ग्रंथकारों द्वारा उपयोग किया जाना नहीं मालूम पड़ता। निघंटु में उनका उल्लेख ही नहीं है। इस कारण से चरक सुश्रुत की बहुत सी वनस्पतियाँ देशकाल के बदल जाने से दिखाई नहीं देती तब उनका उपयोग ही कहाँ से हो?

२—बहुत सी औषधियों का ग्रन्थों में अत्यन्त उपयोग है किन्तु परंपरा टूट जाने से दिखाई नहीं देती जैसे जीवक, ऋषभक आदि।

३—ग्रन्थों में लिखित बहुत सी वनस्पतियाँ इस समय उपयोग में नहीं आती क्योंकि उनका नाम तो ज्ञात है किन्तु वे सब स्थान पर सरलता पूर्वक प्राप्य नहीं है। जैसे शालिपर्णी, रास्ना आदि।

४—प्रान्तभेद के कारण बहुत सी वनस्पतियाँ संदिग्ध रह गई हैं जैसे श्योनाक, काकनाशा, शंखपुष्पी, ब्राह्मी आदि।

५—बहुत सी अब तक संदिग्ध और अज्ञात थीं किन्तु उन औषधियों को शास्त्र के साथ मिलान करके देखने से संदिग्ध मालूम होती हैं। जैसे जीवन्ती, त्रिकन्टक आदि।

६—कितनी ही को वनस्पति शास्त्री संदिग्ध मानते हैं जैसे दारुकी। यह प्राचीन स्वर्णक्षीरी नहीं है। वनस्पति शास्त्री के कथनानुसार यह अमेरिका में उत्पन्न होती है।

इन छः कारणों से उत्पन्न संदिग्धता दूर करने की विशेष आवश्यकता है, जिसके लिए "आयुर्वेदीय वनस्पति प्रचारक" नाम की एक संस्था यदि बनायी जाय तो बड़ा लाभ हो सकता है।

इसके अतिरिक्त वैद्यसम्मेलन-पत्रिका (पु० १० सं० २) में जो संदिग्ध औषधियों की सूची छपी हुई है, उनका निर्णय होना अत्यन्त आवश्यक है।

निघंटु में परिवर्तन-परिवर्द्धन

वनस्पति के सम्बन्ध में वनस्पतिशास्त्र के ज्ञाता गुजरात के सुप्रसिद्ध वृद्ध वैद्य जयकृष्ण इन्द्रजी भाई ने "वनस्पति शास्त्र" और "कच्छ की जड़ी बूटी" नामक पुस्तकें प्रकाशित कर हमारा महद् उपकार किया है। इन ग्रंथों में वनौषधि की परीक्षा, गुण-दोष आदि का वर्णन बड़ी अच्छी रीति से किया गया है। इस सम्बन्ध में मेरी इतनी ही विनती है कि नवीन निघंटु तैयार करने में उनकी एवं उनके ग्रंथों की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

औषध द्रव्यों की मात्रा और अनुपान

आयुर्वेद के अमूल्य रस-औषध जैसे हिरण्यगर्भ, सूतशेखर, राजमृगाङ्क, मृगांक आदि की बनावट एक समान होनी चाहिये क्योंकि ऐसी औषधों के बनाने में गुरुभेद देखने में आता है। साथ ही ऐसी औषधों के अनुपान-संबंधी भी बहुत मतभेद देखने में आते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में मात्रा महामात्रा और दूसरी औषधियाँ प्रत्येक रोग पर अनुपान भेद से दी जाती हैं। देखने में आता है कि वर्तमान समय में यह पद्धति बहुत कम हो गई है जिससे दवा अपना पूरा असर नहीं करती। यह अनुपान-पद्धति अवश्य ही लाभदायक है अतः विद्वान् वैद्यों की एक समिति द्वारा निर्णय कर, पुस्तक रूप में छपाने से साधारण जनसमाज के लिए बहुत उपयोगी होगा।

इसके अतिरिक्त औषध-द्रव्य और प्रयोग की मात्रा सम्बन्धी भी एक समान नियम बनाने की बहुत आवश्यकता है क्योंकि—"स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलं। प्रकृतिं दोषदेशौच ज्ञात्वा मात्रां प्रयोजयेत्।"

इस प्रकार यद्यपि आयुर्वेद का एक सिद्धांत है फिर भी नवीन चिकित्सक और अनुभव-रहित वैद्यों के लिए मात्रा के निश्चित नियम की आवश्यकता है। निघंटु में भी मात्रा सम्बन्धी उल्लेख कहीं दिखाई नहीं देता, इसलिए प्रसिद्ध प्रयोगों की, वर्तमान काल के अनुकूल, मात्रा का अनुभवी वैद्यों द्वारा निर्णय होना चाहिये।

मानपरिभाषा और उसका निर्णय

मानपरिभाषा के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न ग्रंथों में अन्तर देखने में आता है, इतनाही नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी जिस मानपरिभाषा का व्यवहार में उपयोग होता है उसमें भी अन्तर देखने में आता है। इससे उत्पन्न होने वाली गड़बड़ी को दूर करने के लिए समस्त भारतवर्ष की मानपरिभाषा एक समान ही होने की विशेष आवश्यकता का अनुभव मैं करता हूँ।

विशेष चिकित्सक

इसके उपरान्त कई एक रोगों के लिए विशेष चिकित्सकों को भी बड़ी संख्या में तैयार करने की आवश्यकता है। आज संग्रहणी, क्षय, अर्श, भगंदर, उपदंश, आदि के लिए विशेष चिकित्सक थोड़ी संख्या में हैं और वे बड़ी अच्छी रीति से रोगों को दूर कर सकते हैं। इसके उपरांत रजबी तथा हाडवैद्य भी जिस स्थान पर डॉक्टर ऑपरेशन करके निराश हो जाते हैं वहाँ विजय प्राप्त करते हैं। ऐसे चिकित्सकों को हमें मान भरी दृष्टि से देखना चाहिये और यह प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे लोग अपनी चिकित्सा का प्रचार बड़े प्रमाण में कर सकें।

डाक्टरों द्वारा आयुर्वेद की सेवा

गृहस्थो! बंगाल और मद्रास के डाक्टर स्व० कविराज यामिनी भूषणराय, कविराज गणनाथ सेन, स्व० कविराज विजयरत्न सेन, कविराज राजेन्द्र नारायण सेन शास्त्री, डा० सुरेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य आदि अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद के लिये अपना तन, मन और धन समर्पण किया था और कर रहे हैं। स्व० कविराज यामिनी भूषण राय ने सदिच्छा से प्रेरित

होकर पचास हजार से भी अधिक व्यय कर आयुर्वेदिक कॉलेज चलाने में सहायता की है। जो कुछ बंगाल और संयुक्त प्रान्त ने आयुर्वेद के लिए त्याग किया है उसके सामने गुजरात का त्याग नहीं के समान है। गुजरात प्रान्त में "प्रभुराम आयुर्वेदिक कॉलेज" बहुत समय से चल रहा है और प्राणाचार्य डाक्टर पोपट प्रभुराम, अपने पिता के आयुर्वेद के सबल सिद्धान्तों का स्वयं डाक्टर होते हुए भी प्रचार कर रहे हैं। इसके उपरान्त डा० सुमन्त मेहता और डा० बाला भाई नाणावटी ने भी आयुर्वेदोद्धार के लिए कठिन परिश्रम किया है जिसके परिणाम स्वरूप पाटण आयुर्वेदिक कालेज आज चल रहा है। उपरोक्त दोनों कालेजों में दोनों पद्धतियों का अनुसरण कर अभ्यास क्रम रखा गया है। मेरी इच्छा है कि इसी प्रकार के और भी कॉलेज खुलें एवं वैद्य तथा डाक्टर आयुर्वेद के उद्धार के लिए एकमत होकर कार्य करें।

आयुर्वेद की उन्नति के लिए राज्याश्रय की आवश्यकता

मद्रास, संयुक्त प्रान्त आदि प्रान्तों में 'सरकार द्वारा आयुर्वेदिक महाविद्यालय-स्थापन करने के लिए लाखों रुपयों की सहायता दी गई है। मैं आशा करता हूँ कि हमारी मुंबई सरकार भी आयुर्वेद की उन्नति के लिए ऐसे ही महाविद्यालय की स्थापना करेगी! इस संबंध में गतसम्मेलन में बंबई सरकार से प्रार्थना करने का प्रस्ताव हुआ था और प्रार्थना पत्र भेजा भी गया था। इस सम्बन्ध में बंबई लेजिस्लेटिव काउंसिल में प्रश्न करने पर सरकार की ओर से उत्तर मिला था कि मद्रास सरकार ने जिस महाविद्यालय की स्थापना की है उसका परिणाम देखने पर यदि उचित समझा गया तो यहाँ भी उसीके अनुसार कार्य किया जायगा। यहाँ पधारे हुए वैद्य महाशयों को इस सम्बन्ध में योग्य विचार कर, मद्रास, बंगाल और संयुक्त प्रान्तों की सरकार ने जैसे महाविद्यालय की स्थापना की है, वैसा ही बंबई सरकार करे और सिविल हॉस्पिटलों में आयुर्वेद के लिए भी एक विशेष विभाग रखा जाय, इसका प्रयत्न करना चाहिये।

म्यूनिस्पैलिटी और लोकलबोर्डों से भी हमें विनती करनी चाहिये कि जिस प्रकार भी हो सके अधिक प्रमाण में अपने प्रान्त में देशी दवाखाना खोलकर आयुर्वेद को उत्तेजन दें।

अहमदाबाद म्युनिस्पैलिटी ने इस संबंध में गत संमेलन के पश्चात् वैद्यसभा की विनती को ध्यान में रखकर एक देशी दवाखाना के लिये ग्रांट देने का निश्चय किया है। जिला लोकल बोर्ड भी म्यूनिस्पैलिटी का अनुकरण कर स्वयं दवाखाना खोलेंगे ऐसी आशा है। म्यूनिस्पैलिटी को अहमदाबाद के दानशील गृहस्थों से हॉस्पिटल खोलने के लिए पाँच लाख रुपये की बड़ी रकम मिली है उसमें आयुर्वेद के लिए विशेष भाग रखा जाय, इसका प्रयत्न करने की विशेष आवश्यकता है।

साथही प्रान्त के आयुर्वेदानुरागी राजा-महाराजा भी इस सम्बन्ध में अपने राज्य में धर्मादा आयुर्वेदिक दवाखाना, पाठशाला की स्थापना करें, इसका प्रयत्न करना चाहिये।

सुज्ञ सज्जनों, विद्वान चिकित्सको और सुशील सन्नारियो! आपका मैंने बहुत अमूल्य समय लिया है, जो कुछ मुझे कहना था उसे मैंने संक्षेप में कहा है, जिसमें बहुत सी बातें कहने की रह गई होंगी किन्तु अब मैं आपका और समय लेना नहीं चाहता। आपने शांति पूर्वक जो मेरा वक्तव्य सुना है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। यदि भाषण में कहे गये शब्दों से किसी को कुछ असंतोष हुआ हो अथवा कुछ भूल दिखाई दी हो तो आप "प्रमादो

श्री राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालय-बडोदा. संवत् १९९२ आयुर्वेदविभाग अध्यापकमण्डल (सन १९३५)।

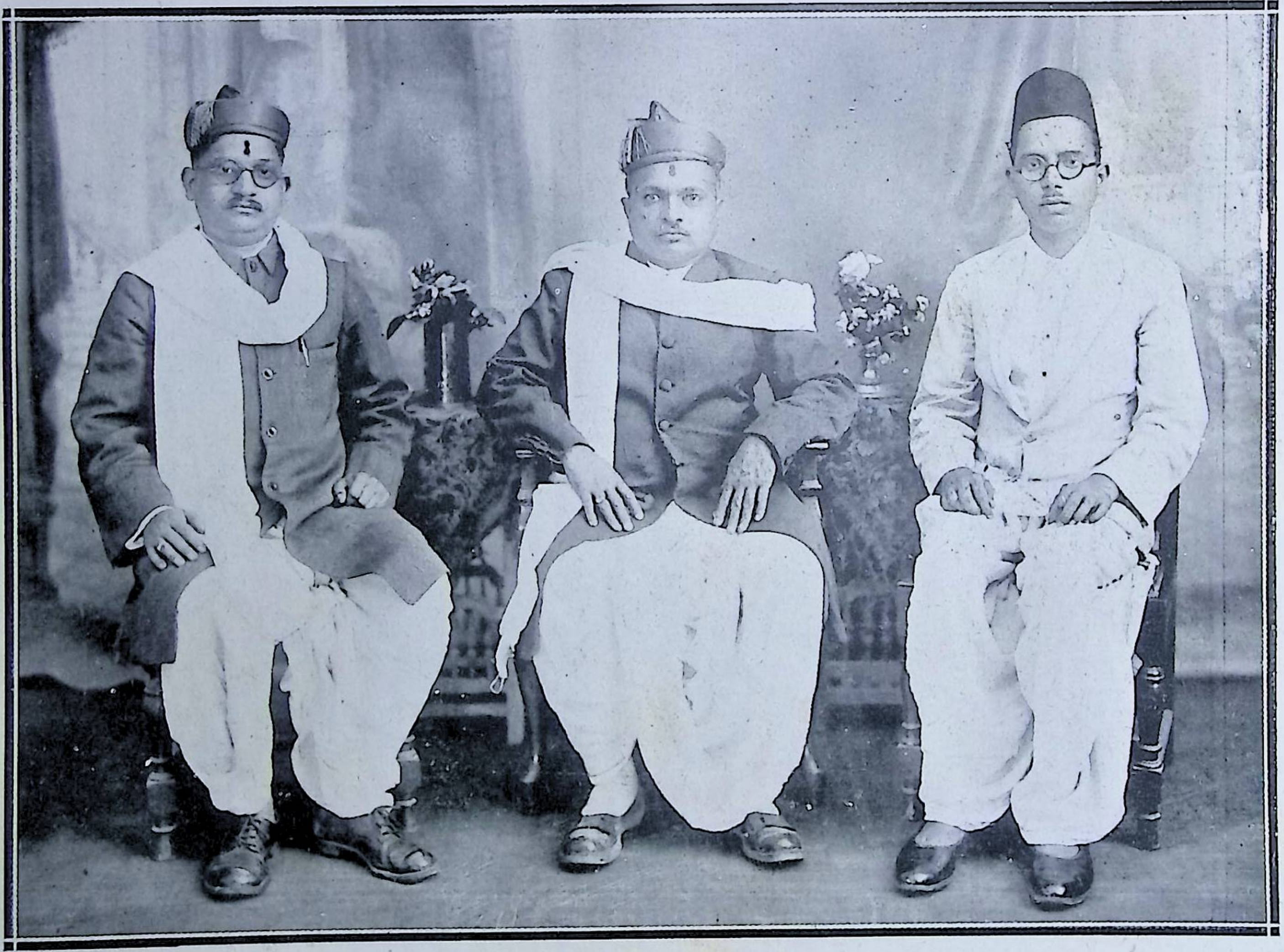

वैद्यराज पं. हरिप्रसाद सी. भट्ट. ' आयुर्वेदाचार्य । 'भिषगाचार्य-धन्वन्तरि'	वे. शा. सं. लक्ष्मीनाथ व. शास्त्री. बी. ए. (ऑनर्स). प्रिन्सिपाल.	यशवंत रा. पंडित. डी. ए. एम्. (गृहीतायुर्वेद).

मानुषो भावः" के अनुसार मुझे क्षमा करेंगे। अन्त में धन्वन्तरि भगवान जिन्होंने महान कृपा कर पृथ्वी पर आयुर्वेद का प्रचार किया है, वही परम कृपालु भगवान हमारे कार्य में सहायभूत हों, ऐसी प्रार्थना कर मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ॥
मणिं श्रीवत्साङ्के हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

श्री गुजरात प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन, तृतीय अधिवेशन, सूरत के

सभापति वैद्यराज त्र्यंबकलाल त्रिभुवनमुनि का

भाषण

जनको गिरजा माता गिरजा माता च यस्य विख्याता ।
परमेकरदं वंदे परमेकादं भुवां बुधौ वरदम् ॥

हिमालय पर्वत के जामाता अर्थात् शंकर जिसके पिता हैं और हिमालय पर्वत की पुत्री पारवती जिसकी माता हैं ऐसे एक दन्त वाले श्रेष्ठ गणपति जो गम्भीर भवसागर में सहायता करनेवाले और वरदान देनेवाले हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ।

क्षीरोदधि संभूतं धृत्वा हस्ते सुधामृतं कुंभम् ।
सुरसंघरक्षणार्थं देव धन्वन्तरिं मुदा वंदे ॥

क्षीर-सागर में से अमृत से भरा हुआ घड़ा लिये हुए देवताओं की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए धन्वन्तरि भगवान की मैं आनन्द से वंदना करता हूँ ।

राजा भोज द्वारा रचा हुआ निम्नलिखित श्लोक से सर्व ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करतो हूँ ।

उच्चैर्गतिर्जगति सिध्यति धर्मतश्चेत्तस्य प्रमाच वचनैः कृतकेतरैश्चेत् ।
तेषां प्रकाशनदशात्र महीसुरै श्चेत्तानंतरेण निपते तनु मत्प्रणामः ॥

यदि इस जगत् में उच्च गति धर्म से प्राप्त होती हो और उस धर्म में प्रमाण स्वरूप वेदों की गणना हो और उन वेदों का उत्कर्ष करनेवाले और प्रचार करनेवाले ब्राह्मणों को छोड़ कर किसको मैं प्रणाम करूँ ।

विद्वान् वैद्यराजगण, सुशील बहनों और सज्जन वृंद !

आप सब बन्धुओं ने मुझे इस सम्मेलन का सभापति मनोनीत कर मेरा जो सन्मान किया है उसके लिए मैं आप सबका अन्तःकरण से आभारी हूँ । यहाँ एकत्रित सर्व बन्धुओं का आन्तरिक हेतु एक ही है और वह आयुर्वेद का अभ्युदय किस प्रकार हो इसपर विचार करना है । प्राचीन समय में भारतवर्ष में रोगियों की चिकित्सा केवल आयुर्वेद की पद्धति से की जाती थी । उस समय दूसरी पद्धतियों का अस्तित्व मात्र भी नहीं था । दूसरे देशों से अत्यधिक संख्या में विद्यार्थीगण हमारी वैद्यक-विद्या सीखने के लिये आते थे । राजा अलेक्ज़ेन्ड्रा ने अपनी सेना में सर्प विष की चिकित्सा करने के लिये भारतवर्षीय वैद्यों को बुलाया था । यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है किन्तु इस समय अनेक प्रकार के चिकित्सा-

श्रीमान् प्राणाचार्य, वैद्यराज स्व. वा. त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि बंबई।
अध्यक्ष, गुर्जरप्रान्तीय ३ वैद्यसंमेलन सुरत (सन १९२७)।

शास्त्र संसार में प्रचलित हैं। सब अपनी-अपनी चिकित्सा-पद्धति की प्रशंसा कर रहे हैं। यहाँ पर उन पद्धतियों का नाम मात्र का उल्लेख मैं करूँगा—अलोपैथी, जिस रीति के अनुसार डाक्टर लोग वर्तमान समय में उपचार करते हैं; होमियोपैथी, (रोग-औषध सादृश्य सिद्धान्त) हाइड्रोपैथी, (जलचिकित्सा) क्रोमोपैथी (सूर्य्यरश्मि-चिकित्सा अथवा रंग रसायन) अलेक्ट्रो होमियोपैथी (काउन्टमेंटी की चिकित्सा) फादर मुलर स्पेसिफ़िक्स, यूनानी रीति और अपना आयुर्वेद। इन सब में आयुर्वेद सबसे प्राचीन है और उसका प्रचार हिन्दुस्तान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, लंका आदि देशों में है किन्तु योरोप और अमेरिका में दो पद्धतियों का विशेष प्राबल्य है। पहली अलोपैथी और दूसरी होमियोपैथी; इनमें से अलोपैथी के मूल सिद्धान्त और अनेक औषधियाँ हमारे आयुर्वेद में से ही लिये गये हैं। प्रारम्भ में वे हमारे त्रिदोष के सिद्धान्त को मानते थे किन्तु जबसे रोगों के जन्तुओं (Germs) की खोज हुई है तब से इन जन्तुओं को रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण मानते हैं और जन्तुओं को नाश करने वाली दवाओं की खोज में लग गये हैं। कितनी ही नवीन-नवीन दवायें वे प्रसिद्धि में लाते हैं किन्तु थोड़े ही समय पश्चात् ये दवायें अन्धकार में कहाँ लुप्त हो जाती हैं इसका पता भी नहीं लगता। इसके अतिरिक्त दो नवीन सुधार उन्होंने उपचार-शास्त्र में किया है, प्रथम, तात्कालिक गुण देने वाली उग्र औषधियों में से रसायन-क्रिया द्वारा सत्व निकालने का; जिस सत्वमय पदार्थ को आलकोलाइड् कहते हैं और उग्र असर करने में दो मूल पदार्थों से भी बढ़ जाते हैं। इस खोज के प्रारम्भ में ऐसे पदाथ रोगियों को मुख द्वारा दिये जाते थे; ऐसे सत्वमय पदार्थों से चिकित्सा करने के लिये अमेरिका में एक ग्रन्थ लिखा गया है जो अलकेलॉइड्स थिरेपी (Alkaloid's Therapy) नाम से प्रसिद्ध है। इतने से भी सन्तुष्ट न होकर औषधों को और भी उग्र असरवाली बनाने के लिये उन्होंने पिचकारी द्वारा औषधों को रगों में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। यह प्रथा हाइपोडरमिक इञ्जेक्शन्स् (Hypodermic Injections) के नाम से प्रसिद्ध है और इसमें भी इन्ट्रा मसक्यूलर (Intra Muscular) इन्ट्रावेनस (Intravenous) आदि भेद हैं। दूसरी रीति से भी रगों में प्रवेश करनेवाली दवायें बनायी गई हैं। रोगों का कारणभूत माने हुए भिन्न-भिन्न जाति के जन्तुओं में से भिन्न-भिन्न जाति के रस बनाये जाते हैं। फिर किसी रोगी का अशुद्ध रक्त लेकर उसमें से भी उसके लिये रस बनाये जाते हैं। रोग की स्थिति में रोगी के शरीर में से निकलने वाले विकृत पदार्थों में से भी इसी प्रकार के रस बनाये जाते हैं। ऊपर जो सत्वमय पदार्थ का मैं वर्णन कर चुका हूँ उसमें पचासी प्रतिशत जहरीले पदार्थ हैं। यदि ये प्रमाण में बढ़ते जाँय अथवा शरीर में इनका धीरे-धीरे संचय होता जाय तो विनाश कारक परिणाम हुए विना नहीं रह सकता; इन पदार्थों पर विशेष ध्यान देने के लिए यहाँ पर उनका कुछ विशेष विवेचन करता हूँ। मोरफिया (Morphiæ) एपोमोरफिया (Apomorphiæ) कोडीन (Codeine) हिरोइन (Heroin) आदि सत्व अफ़ीम में से बनते हैं। कुचला में से स्ट्रिकनियाँ निकाली जाती है। धतुरा में से डेटुराईन (Dhaturine) बेलाडोना नामक विषैले वृक्ष में से एट्रोपाइन (Atropine) खुरासानी अजवाईन में से हायोसियेमाइन (Hyosiyamine) और हायोसिमा (Hyocima) तथा सोमल, पारा, लोह आदि द्रव्यों का भी पिचकारो द्वारा उपयोग करने में आता है। वर्तमान समय में ऐसी परिस्थिति है कि यदि किसी रोग ने भयंकर रूप धारण किया अथवा कुछ विशेष दिन लग गये तो उसमें इन्जेक्शन देने की विशेष रूप से सलाह दी

जाती है; इतने से भी पूरा न पड़ने पर साथ में पीने की दवा भी चलती रहती हैं। इस प्रकार इस एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में मुख्यतः दो बातें देखने में आती हैं एकतो इन्जेक्शन और दूसरा चीड़फाड़ (Operation)। इन इन्जेक्शनों से बहुधा रोगियों को कठिन वेदना होती है। कभी सूजन हो जाती है, कभी ज्वर हो जाता है। ऐसे ऐसे इन्जेक्शन छः बार अथवा इससे अधिक लेना पड़ता है। क्वचित उग्र विषमय दवाओं के असर से यकायक मृत्यु हो जाने के दृष्टान्त भी देखने में आये हैं।

एक एक इन्जेक्शन का पांच, पचीस, पचास और इससे भी अधिक रुपया मूल्य देना पड़ता है। डाक्टरों को घर बुलवाने की फीस अलग। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि बड़े बड़े धनवानों को भी ऐसे खर्च से कष्ट होता है; तब विचारे गरीब मनुष्यों की क्या गिनती है। जिसके घर में दस बीस दिवस लायक भोजन के लिए अन्न भी न हों ऐसे लोगों के लिये यह पद्धति तो बिल्कुल अयोग्य ही है। बहुधा रोगियों को कुछ समय तक रोग-मुक्त हुआ मालूम पड़ता है; किन्तु पुनः पुनः वह रोग उठकर रोगी को तंग करता है। गतवर्ष में प्रकाशित हुए एक एलोपैथिक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि यदि आपको अपना रोग निर्मूल करना हो तो नियमित रूप से दो वर्ष तक औषध का सेवन कीजिये। तदुपरान्त इन्जेक्शन के लिये इन्जेक्शन के सीरम (Serum) भी अधिकांश परदेश से ही आते हैं। यहाँ भारतवर्ष में पास हुए डाक्टरों में से शायद ही कोई इसे बनाना जानता हो। वर्तमान समय में मुख-मार्ग द्वारा दवा लेने में डाक्टरों को अधिकांश अंश में अविश्वास है। इसीलिए वे वारंवार इन्जेक्शन लेने के लिये सलाह देते हैं। साथ-साथ खाने अथवा पीने की दवा तो चलती ही रहती है। अब यदि रोगी रोग-मुक्त हो जाय तो वह इस बात का कैसे निर्णय करे कि वह इन्जेक्शन से रोग-मुक्त हुआ है या पीनेवाली दवा से। मलेरिया के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि यदि तुम्हें मलेरिया से छुटकारा पाना हो तो दो, तीन, मास तक बराबर क्विनाइन (Quinine) का सेवन करो। यह एलोपैथिक पद्धति का आपके समक्ष सारांश रूप में वर्णन किया। एलोपैथिक शब्द का मूल अर्थ तो यह है कि सर्दी ऊपर गरम औषध देना और गर्मी के ऊपर शीतल। किन्तु वर्तमान समय में वे इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकते और सर्वथा कीटाणुओं को ही रोगों का कारण मानते हैं। अब दूसरी उपचार-पद्धति जिसकी खोज सौ वर्ष हुए हुई है उसका वर्णन सारांश रूप में आपके सामने करूँगा।

जर्मनी के डाक्टर हैनिमेन ने एक ऐसी शोध की कि आरोग्य स्थिति में कोई भी उग्र औषध यदि खाई जाय और उससे शरीर में जैसे लक्षण उत्पन्न हों वैसे लक्षणवाले रोग उसी औषध के सूक्ष्म प्रमाण से दूर हो सकते हैं। उदाहरण-स्वरूप सोमल खाने से कै, दस्त, दाह, तृषा, ज्वर आदि लक्षण शरीर में उत्पन्न होते हैं तो ऐसे ही लक्षण जिस रोग में दृष्टिगोचर हों उस रोग में सूक्ष्म प्रमाण में उसी औषध को देने से रोग दूर होते हैं। Likes are cured by likes. हमारे यहाँ भी 'विषस्य विषमौषधम्' यह वाक्य इस होमियोपैथी के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। जर्मनी में इसके मूल को रोपे हुए यद्यपि सौ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं फिर भी इस थोड़े समय में यूरोप के देशों में, एवं उत्तर दक्षिण अमेरिका, अफ्रिका, अस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान आदि देशों में दिनों दिन उसका अत्यधिक प्रचार होता जा रहा है। इस सिद्धान्त को एलोपैथिक डाक्टर बिल्कुल ही स्वीकार नहीं करते। कई बार इसका वहिष्कार करने पर भी यूरोप अमेरिका आदि सुधरे हुए देशों में इस सिद्धान्त के कॉलेज खोले गये हैं और वहाँ

नियमित पद्धति से शिक्षा दी जाती है। जहाँ एलोपैथिक डाक्टर अपने औषधों की आजमाइश जीवित प्राणियों पर करते हैं, वहाँ ये होमियोपैथिक डाक्टर जीवित निरोगी मनुष्यों पर अपने औषधों का अनुभव करते हैं और उसीसे औषधों का गुणदोष का ज्ञान प्राप्त करते हैं। एलोपैथिक डाक्टर एक औषध का प्रमाण पाँच-दस बूँद अथवा इससे अधिक देते हैं उसी स्थान पर ये डाक्टर एक बूँद का पाँच हजारवाँ भाग, दस हजारवाँ अथवा इससे भी अकल्पनीय प्रमाण में दवा का भाग देकर रोगी को आरोग्य करते हैं। इसपर तुर्रा यह कि इनकी औषध किसी प्रकार कड़वी या बदस्वाद नहीं होती और कोमल प्रकृति के मनुष्य को भी सरलता से अनुकूल हो जाती हैं। एलोपैथिक डाक्टर इस सिद्धान्त को नहीं मानते।

इस होमियोपैथिक से मिलती हुई एक तीसरी पद्धति भी है। इसका फल यह है कि शरीर के सूक्ष्म कणों की जिस क्षारमय द्रव्यों से रचना हुई है उसकी गति में अथवा प्रमाण में न्यूनता होने से रोगों की उत्पत्ति होती है और वही पदार्थ पुनः शरीर के सूक्ष्म प्रमाण में यदि प्रविष्ट हो जायँ तो रोग नष्ट हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार चलनेवाले डाक्टरों की संख्या भी बढ़ती जाती है और अपने देश में भी उसका प्रचार बढ़ रहा है। इस पद्धति की औषध भी निस्वाद और निर्दोष होती हैं, इसपर भी खूबी तो यह है कि किसी प्रकार का विष काम में लाया नहीं जाता।

यूनानी पद्धति भी बहुत समय से प्रचलित है। अधिकांश में यह आयुर्वेद से मिलती-जुलती है अतः इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इन पद्धतियों का यहाँ वर्णन करने का मूल कारण केवल इतना ही है कि यदि हम अपने आयुर्वेद की रक्षा के लिए तत्पर नहीं होंगे तो बहुत थोड़े ही समय में इन पद्धतियों के विशेष प्रचार से हमारा आयुर्वेद लुप्त हो जायगा। बहुत वर्षों से अंग्रेजी डाक्टर आयुर्वेद पर आक्षेप करते आते हैं कि आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक हैं जिससे इसे शास्त्र नाम से नहीं पुकारा जा सकता। उनका कहना है कि आर्य वैद्यक का मूल पाया ही बुरे सिद्धान्त पर रचा हुआ है और वात, पित्त, कफ क्या है, उसे वे समझ ही नहीं सकते, इसके सम्बन्ध में पहले सम्मेलनों के अवसर पर बहुत कुछ कहा जा चुका है अतः पृष्टपेषण कर व्यर्थ आप लोगों का समय नष्ट करना है। मैं केवल इतना ही दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि यह त्रिदोष सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकृत प्रोटोप्लेज़्म (Protoplasm) के सिद्धान्त से कहाँ तक मिलता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों के अंग्रेजी भाषान्तर हुए हैं जिनमें वायु का पर्याय wind अथवा Gas रखा गया है। श्वासोश्वास लेते समय अथवा मलद्वार से जिस वायु का निःसरण होता है वही वह वायु का केवल स्थूल रूप है किन्तु जो-जो क्रियायें शारीरिक अथवा मानसिक होती हैं वे सब वायु से ही होती हैं और वह उसका सूक्ष्म स्वरूप है। वाग्भट्ट कहते हैं—"तेव्यापिनोपि हुन्नाभ्योरधो मध्वोर्ध्व संस्थिता।" इसमें त्रिदोष को व्यापक कहा गया है, व्यापक पदार्थ उसी को कह सकते हैं जो शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु में विद्यमान रहता है, इसी प्रकार पित्त भी शरीर के प्रत्येक अणु में उष्णता का समानत्व बनाने वाला तत्व है। वमन के साथ जो कड़वा खट्टा पदार्थ निकलता है तथा यकृत में से जो पदार्थ खुराक के साथ मिलकर उससे रुधिर बनाता है वह पित्त का स्थूल स्वरूप है। पित्त का स्वरूप पतला है इसके विपरीत कफ का स्वरूप गाढ़ा है। पित्त कड़वा खट्टा होता है जब कि कफ मधुर और क्षार गुणवाला होता है। कफ शीत प्रधान है और पित्त उष्ण प्रधान है। इस प्रकार थोड़े में

विवेचन कर प्रोटोप्लेज़मिक थियरी में (Protoplasmic Theory) हमारे शरीर की रचना के सम्बन्ध में जो वर्णन किया गया है उनमें से कुछ उद्धरण आपके सम्मुख रखूँगा जिससे दोनों की तुलना हो सके। हमारे शरीर में प्रोटोप्लेज्म नामक पदार्थ जिसे वाइट कॉरपसल्स (White corpuscles) भी कहते हैं, यह पदार्थ कैसा है उसका वर्णन नीचे लिखे अनुसार किया गया है—

This white corpuscle is a structureless, transparent, colourless, semifluid substance consisting of minute spherical particles of very complex chemical constitution and in continued spontaneous movement. This protoplasm does all the vital work of the organism. It is protoplasm which is the formative agent for all the tissues. According to the situation it lies into nerve muscle, epithelium, areolar tissue, bone. It has the power of taking up fresh pabulum from the blood and converting it into its own substance Thus the whole process of nutrition from the time that mechanical and chemical acts of digestion are over the chain of operation consisting of chylification and sanguification of the taking up of the blood plasma by the tissue and the formation from it of new material. All this is the work of protoplasm. No less is secretion performed by it. Every where active and every where present protoplasm is the agent in nutrition and secretion, so it is the vital function. It enables us to think and feel. It receives impression and conveys volition wherever we have living action i. e. action impossible to the same body when dead, then we have protoplasm at work. A portion of it is differentiated into a system previously unknown i. e. the nervous. This new organism while it lives its own life and carries on its own operation of nutrition and function exerts a regulating influence over the vegetative process which were before and are beneath it. Though they be for their own affairs independent of, it yet they all acknowledge its sway by its control (through the muscular coats of the arteries) of the circulation it determines the all important blood supply of the tissues.

यह सफेद पदार्थ आकृति-विहीन महीन गोल अणुओं का बना होता है जिसकी रसायनिक रचना बड़ी ही विचित्र, समझ में न आने वाली और हमेशा गतिमान रहती है। यह प्रोटोप्लेज्म हमारे शरीर के जीवन का सब कार्य चलाते हैं, शरीर की सब नाड़ियों का संचालन करते हैं और जहाँ वे शरीर के भाग की अनुकूल स्थिति में हों वहाँ वे शिरास्नायु, धमनी, त्वचा, अस्थि आदि में बल देते हैं। अपने पोषण के लिए आवश्यक तत्व वे रुधिर में से ले सकते हैं और उन्हें अपने समान बनाते हैं। शरीर में भोजन प्रविष्ट होने के पश्चात पोषण की सब क्रियायें जैसे रस, रुधिर आदि बनाने की, सब इस प्रोटोप्लेज्म से होती है। यह सब प्रोटोप्लेज्म का कार्य है। जिस प्रकार वह पोषण का कार्य करता है उसी प्रकार मल-विसर्जन का कार्य भी वही करता है अतः यही जीवनोपयोगी सब क्रियाओं का मूल स्थान है; हम जो कुछ इच्छा, अथवा विचार कर सकते हैं वह सब इसी की शक्ति के द्वारा ही है। इस प्रोटो-

प्लेज्म के एक भाग में से पूरा नरवस सिस्टम बनता है। यह नरवस सिस्टम अपना पोषण और अपनी सब क्रियायें चलाता है, इतना ही नहीं उसपर अपना पूर्ण अधिकार भी रखता है। यहाँ तक कि उसकी सहायता बिना उस स्थल का काम हो नहीं सकता। रुधिर की गति पर भी उसकी सत्ता होती है; शरीर के सूक्ष्म कणों को आवश्यक रुधिर देने की व्यवस्था उसके हाथ में है।

हमारा शास्त्र इस सम्बन्ध में क्या कहता है उस पर अब हम विचार करेंगे। वाग्भट्ट कहते हैं कि—'ते व्यापिनोपि' अर्थात् ये तीनों दोष शरीर भर में व्याप रहे हैं और जो अति सूक्ष्म होता है वही व्यापक रूप में रह सकता है इसलिए शरीर के प्रत्येक अणु में उसकी उपस्थिति आवश्यक है। सुश्रुत में लिखा है—

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभव हेतवः

वात, पित्त, कफ यही इस शरीर की उत्पत्ति का मूल कारण है।

त एव व्यापन्नाः प्रलयहेतवः

वे जब बिगड़ते हैं तब शरीर का नाश करते हैं।

भगवान चरक अपने चरक संहिता में वायु का नीचे लिखे अनुसार वर्णन करते हैं—

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदान समान व्यानापानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वे इन्द्रियाणामुद्योतकाः। सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोधा सर्वशरीर-धातुव्युहाकरः सन्धानकरः शरीरस्य प्रवर्तको वाचः प्रकृतिः स्पर्श शब्दयोः श्रोत्रस्पर्शतयोर्मूलं हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेदोषः संशोषणः। क्षेप्ताबहिर्मलानां स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता कर्त्ता गर्भाकृतिनां आयुषोऽनुवृत्ति प्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः।

वायु इस शरीर रूपी यन्त्र को धारण करनेवाला है। प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान उसके आत्मा रूप हैं। उच्च नीच सर्व चेष्टाओं का प्रवर्तक है। मन को नियम में रखने वाला और प्रसन्न रखनेवाला है। सब इन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाला है। सब प्रकार के इन्द्रियार्थ (शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध) को वहन करनेवाला है। वाणी का प्रवर्त्तक, स्पर्श और शब्द का मूल-स्वभाव तथा श्रवण और स्पर्श का मूल है। हर्ष और उत्साह का कारण-रूप और अग्नि के दोष का संशोधन करने वाला है। शरीर के मल को बाहर निकालने वाला, छोटे-मोटे स्रोत का विभेदक, गर्भ की आकृति को बनाने वाला, आयुष की स्थिरता रखने वाला है। शुद्ध वायु उपरोक्त सब कार्य करने में समर्थ है।

प्रोटोप्लेज्म के सिद्धान्त और त्रिदोष सिद्धान्त इन दोनों में किस प्रकार की समानता है, इस पर हम विचार करेंगे। प्रोटोप्लेज्म अति सूक्ष्म अणु रूप है उसी प्रकार हमारा त्रिदोष भी सर्व व्यापी होने से अणु रूप और सूक्ष्म है। प्रोटोप्लेज्म सक्रिय है (Everywhere active) उसी प्रकार हमारा त्रिदोष भी अपनी क्रिया करता है। प्रोटोप्लेज्म में से रस, रक्त, स्नायु इत्यादि पूरा शरीर उत्पन्न होता है उसी प्रकार त्रिदोष में से भी सम्पूर्ण शरीर की उत्पत्ति मानी गई है। जिस प्रकार प्रोटोप्लेज्म में से उत्पन्न नरवस सिस्टम (Nervous System) की क्रिया से हमें ज्ञान-भान होता है उसी प्रकार वायु से भी ज्ञान-भान, इच्छा, इत्यादि क्रियाओं का होना शास्त्र लिखता है। जिस प्रकार शरीर की चेष्टा, चालचलन आदि पर नरवस सिस्टम अपनी सत्ता चलाता है वैसे ही वायु भी सब क्रियाओं और चेष्टाओं में मुख्य भाग लेता है। शास्त्र कहता है—

पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ॥

पित्त और कफ दोनों पंगु हैं, वायु उन्हें बादल के समान जहाँ चाहता है ले जाता है।

प्रोटोप्लेजमिक सिद्धान्त में जिस वाइट कोरपसल्स का उल्लेख है वह अर्धद्रव (Semifluid) है। अतः द्रवरूप अर्थात् पतले पदार्थ को हम पित्त मान लें और उसमें के घन पदार्थ को कफ मान लें तो हमारा वात, पित्त और कफ का सिद्धान्त यथा शास्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार हमारे शास्त्रीय वात, पित्त कफ सिद्धान्त का आधुनिक विज्ञान-शास्त्र भी समर्थन करता है फिर यह कैसे अशास्त्रीय कहा जा सकता है? सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिसे हम वायु का रोग कहते हैं उन सब रोगों का समावेश अंग्रेज़ी निदान शास्त्रज्ञ ने Diseases of the nervous system and brain में किया है जिससे स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि यह नरवस सिस्टम और उससे होनेवाली सूक्ष्म क्रियायें ही वायु का स्वरूप है। आदि-वैद्यक में वात, पित्त और कफ का ८०, ४० और २० के क्रम से लक्षण दिया गया है। इसपर से किसी नवीन रोग का निदान और उसके मिटाने के उपाय सरलता से हो सकते हैं। इस त्रिदोष के सिद्धान्त द्वारा हमारा शास्त्र यह उपदेश देता है कि वात रोग का उपचार गरम और स्निग्ध, कफ का गरम और रूक्ष तथा पित्त का शीतल होना चाहिए। यह बात तो सभी के समझ में आ सकती है कि यदि किसी मनुष्य के हाथ पैर बरफ के समान ठंढे हो गये हों तो उस समय डाक्टर भी उसके लिये गरम उपचार ही करेंगे और बरफ न रखकर सेक आदि करने की सलाह देंगे। इसी प्रकार यदि किसी रोगी के संपूर्ण शरीर में दाह हो तब उसे ब्रान्डी, सोंठ, राई जैसे गरम पदार्थ न देकर शीतल उपचार ही करेंगे। इस प्रकार यद्यपि त्रिदोष के सर्दी, गर्मी के सिद्धान्त को वे स्वीकार नहीं करते फिर भी उपचार करने के समय उसी के अनुसार उन्हें चलना पड़ता है। क्वीनाइन से ज्वर में एक रोगी को लाभ पहुँचता है किन्तु उसी क्वीनाइन से दूसरे रोगी को लाभ नहीं होता; इसका कारण भी हमारी पद्धति के अतिरिक्त दूसरी पद्धति बताने में समर्थ नहीं है। हम अपने आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार कह सकते हैं कि क्वीनाइन वात, कफ, ज्वर को दूर कर सकती है किन्तु पित्त-ज्वर में उसका विरुद्ध असर होता है। इस प्रकार अनुभव होने पर पित्त-ज्वर में क्वीनाइन देने की कोई भी वैद्य भूल नहीं करेगा। अतः यह सिद्ध हो गया कि हमारे शास्त्र द्वारा निर्धारित सिद्धान्त बिलकुल ही सच्चे और वैज्ञानिक स्तंभपर रचे गये हैं और उसे सर्वमान्य होना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे देश में हजारों वर्ष से दवा दी जाती है, करोड़ों बार उसका अनुभव हो चुका है और करोड़ों मर्तबा वह रोग मिटाने में विजयी हो चुका है, अब भी हो रहा है और भविष्य में भी होगा; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

इस स्थल पर, अंग्रेज़ी डाक्टर जो नवीन सिद्धान्त को मुख्य समझ कर, उसीको रोग का कारण रूप-मानते हैं, उस संबंध में भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

डाक्टर कहते हैं कि शरीर में जन्तु प्रविष्ट हुए और रोग की उत्पत्ति हुई। हमारे सुश्रुताचार्यगण ने भी दृश्य और अदृश्य ऐसे कृमियों का वर्णन किया है किन्तु उनका कहना यह है कि त्रिदोष में बिगाड़ होने पर ही उसमें जीव-जन्तु का पोषण हो सकता है। वर्त्तमान समय में डाक्टर अनेक प्रकार की जन्तुनाशक दवाओं की शोध चला रहे हैं जिसका मुख्य

उद्देश्य जन्तुओं का नाश करना है; किन्तु जब तक भीतर का भाग बिगड़ा हुआ है तब तक जन्तु बार-बार उत्पन्न होंगे अतः आवश्यकता ऐसी औषध के खोज निकालने की है जिससे यह शरीर रूपी क्षेत्र में सुधार हो और यह सुदृढ़ बने और इसमें कृमि टिक न सकें। अंग्रेज़ी निदानकार कहते हैं कि कृमि से रोग उत्पन्न होता है, हमारे निदानकार एक पद और आगे बढ़कर कहते हैं कि कृमि उत्पन्न होने का कारण कफादि दोषों के प्रकोप ही हैं। यदि वे अपनी आविष्कृत स्थिति में हों तो बाहर से प्रविष्ट होने वाले जन्तु उन्हें बिगाड़ ही नहीं सकते। प्रकृति की यह कैसी आश्चर्यजनक लीला है कि इस जर्म थियरी (Germ Theory) न मानने वाले भी रोग को अच्छा कर सकते हैं। यदि प्रत्येक रोग का कारण कीटाणु ही है तब उसका कारण दूर हुए बिना अर्थात् कीटाणुनाशक दवा दिये बिना उस रोग को नष्ट नहीं होना चाहिये। किन्तु इसके विपरीत हम सब ने हजारों बार इसका अनुभव किया है कि नीम की गुरुच जैसी साधारण वस्तु से भयङ्कर ज्वरों का नाश होता है। आज तक उसमें किसी भी डाक्टर ने कीटाणु नाशक गुण नहीं बताया है। अमेरिका जैसे उन्नत देश में होमियोपैथी और बायोकेमिक विद्याओं को एलोपैथिक के समान ही आश्रय दिया है, उसी स्थान पर भारतवर्ष ने रजिस्ट्रेशन का झगड़ा लगाकर वैद्यों को डाक्टर की पंक्ति से अलग करने का नियम चलाया है, अपने मन से डाक्टरों ने रोग अच्छा करने का इजारा स्वयं ले रखा है और वारम्वार आयुर्वेद को अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक कहने से कहीं चूकते। अभी कुछ ही दिन हुए मेजर हूटन ने सरकार को सलाह दी है कि आयुर्वेद अशास्त्रीय और अवैज्ञानिक होने से उसे सहायता नहीं देनी चाहिये। मैं छाती ठोक कर कहता हूँ कि हमारे आयुर्वेद की रचना सुदृढ़ नीव पर हुई है। यदि इसकी नीव निर्बल होती तो पाँच पचास वर्ष में इसकी इमारत गिर पड़ती। आप ही विचार कीजिये कि यदि आयुर्वेद पद्धति से रोगी अच्छे न होते तो क्या यह हजारों वर्ष तक टिक सकती? मान लीजिये कि एक वैद्य के पास पचास रोगी जाते हैं, यदि वह एक भी रोगी को अच्छा न कर सके तो क्या दूसरे दिन भला एक भी रोगी चिकित्सा के लिये उसके पास जायगा? मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त जाँच कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में आयुर्वेद और यूनानी दोनों पद्धतियों को शास्त्रीय सिद्ध किया है और जिस पद्धति का डाक्टर हूटन साहब इतना विरोध करते हैं उसी पद्धति के संबंध में बड़ी-बड़ी डिग्रीधारी उन्हीं के बन्धुओं का क्या मत है उसका प्रमाण मैं यहीं दे सकता हूँ उस वृहद् ग्रन्थ का नाम दी एलोपैथी जजड बाइ इट्स ओन प्रोफेसर्स (The Alopathy judged by its own professors) है। स्थल संकोच से उसमें से यहाँ पर उदाहरण नहीं देता। विशेष खूबी की बात तो यह है कि उसमें लेख लिखनेवाले डाक्टर साहबों ने स्वयं आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ का अध्ययन किया हो ऐसा उन लेखों से मालूम नहीं होता, ऐसा करना क्या किसी विद्वान को शोभा देता है? भाइयो! हमारा आयुर्वेद हजारों वर्ष के अनुभव का भंडार है। हमारे पूर्वजों द्वारा प्रदत्त ज्ञान-रूपी खजाना—अमूल्य रत्नागार है। यदि ध्यान देकर हम इसको शोधन करेंगे तो इसमें से अमूल्य रत्न हम प्राप्त कर सकेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है अतः आलस्य त्याग कर आयुर्वेद के लिए हर एक तरह का प्रयत्न करने के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिये। हमें अनुभव-सिद्ध चमत्कारिक प्रयोगों का संग्रह करना चाहिये, इससे हमें एवं भविष्य में आने वाली हमारी सन्तान को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा। दक्षिण द्रविड लिपि में संस्कृत भाषा की पुस्तकें हैं, उनका संशोधन कर यदि देवनागरी लिपि में छपाई जा सके तब भी वैद्यों का अत्यन्त लाभ हो।

साथ ही अभी तक अप्रकाशित ग्रन्थों को छपा कर प्रकाशित करने से भी बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ सकता है। हमें अभी बहुत कुछ करना है। एक ऐसे निघंटु की आवश्यकता है जिसमें वनस्पतियों का चित्र सहित विशद वर्णन हो, शस्त्रक्रिया और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र को आधुनिक पद्धति के अनुसार सीखने के लिए ग्रन्थ तैयार करने की विशेष आवश्यकता है और विद्वान वैद्य एवं विद्यानुरागी डाक्टरों को यह कार्य तुरत कर डालना चाहिये। अपने देश में उत्पन्न औषधि ही उस देश के मनुष्य के लिए हितकर है, इस वचन का हमें निरंतर स्मरण रखना चाहिये। हमारी औषधों में गुण है ऐसा निश्चय करके ही विदेशियों ने अपने मेटीरिया मेडिका (Materia medica) औषधि गुण वर्णन-शास्त्र में हमारी औषधों को स्थान दिया है। ब्रिटिश मेटीरिया मेडिका की १९१३ की आवृत्ति में ऐसी औषधें दी हुई हैं, उन्हें आप देख सकते हैं। इतना ही नहीं, आयुर्वेद के दिये हुए रोग मिटाने के उपचार; ऋतुचर्या, दिनचर्या, सद्वृत्तंन आदि आरोग्यता को कायम रखने के सरल उपदेश भी उसमें वर्णित हैं। सुश्रुत ने अपने रसायनाधिकार में ऐसे उपदेश दिये हैं कि यदि प्रातःकाल उठकर शीतल जल, दूध, शहद और घी इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ अथवा दो तीन या चार पदार्थ (जो अपनी प्रकृत्ति के लिए मुआफिक आवे) लिया जाय तो वह जीवन को स्थिर करता है।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं सर्पिरित्येकशो द्विशः।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः॥

यह उपाय कितना सरल और प्रत्येक मनुष्य द्वारा होने लायक है। इसी प्रकार की हमारे आयुर्वेद शास्त्र में बहुतसी साधारण वस्तुओं और वनस्पतियों के प्रयोग हैं जिनका यदि सेवन किया जाय तो शरीर दृढ़ हो, और रोगों का भी नाश हो, यहाँ तक कि रोगों की उत्पत्ति शरीर में हो न सके। प्रान्तीय सरकार एवं राजा महाराजा भी अब इस ओर ध्यान देने लगे हैं और उन्होंने आयुर्वेद कालेज, आयुर्वेद-शिक्षालयों को यथेष्ठ सहायता देना स्वीकार किया है। इस वर्ष आयुर्वेद की उन्नति के लिए डाक्टर वामन देसाई रचित "औषध संग्रह" रावल बापालाल का "आदर्श निघंटु" पंडित हरिप्रपन्न का 'रसयोग सागर' डा० नाडकरणी का "मेटीरीआ मेडिका" आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। भाइयो! हमें निराश नहीं होना चाहिये। एक बार तात्कालिक फल हमें न दिखाई दे तौभी प्रयत्नशील रह कर यदि सतत् प्रयास हम चालू रखेंगे तो निश्चित किये हुए कार्य में हमें अवश्य सफलता मिलेगी। वर्तमान काल में जिस प्रकार आयुर्वेद का अरुणोदय हुआ दिखाई देता है उसी प्रकार आयुर्वेद रूपी सूर्य के प्रखर किरणों का भी दर्शन होगा। यूरोप अमेरिका में विज्ञान की अभिवृद्धि से नवीन-नवीन शोध के सम्बन्ध में हम सुना करते हैं, अभी कुछ दिन हुए उन्हें ज्ञात हुआ है कि लहसुन के उपयोग से क्षय रोग में लाभ होता है, बहुत से डाक्टर लहसुन का रस क्षय रोग में पिचकारी द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। एक दूसरे अमेरिकन डाक्टर की राय है कि सब मिलाकर दिन भर में ३० से ६० गेहूँ के वजन भर क्षय रोग वाले रोगी को लहसुन देने से अत्यधिक लाभ पहुँचता है। यह उनके मन से नवीन शोध है किन्तु हमारे सुश्रुत के उत्तरतंत्र में कहा है कि विधि पूर्वक लहसुन का प्रयोग क्षय रोग में करना चाहिये—

रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेणवा नाग बला प्रयोगम्।
सेवेत वा मागधिका विधानं तयोपयोगं जतुनोऽस्मजस्य॥

श्रीमान् कै वा. वैद्यराज विष्णुशास्त्री पुराणिक भिषक्चूडामणि ।
संस्थापक–श्रीधूतपापेश्वर आयौंषधिकारखाना पनवेल ।

श्रीयुत वैद्यराज गंगाधरशास्त्री पुराणिक ।
संचालक–श्रीधूतपापेश्वर आयौंषधिकारखाना
पनवेल ।

श्रीमान् कै. वा. वैद्यराज कृष्णशास्त्री पुराणिक ।
संस्थापक–श्रीधूतपापेश्वर आयौंषधिकारखाना पनवेल ।

दूसरी खोज यह है कि क्षय रोग में ओपेन एअर ट्रीटमेंट (Open air treatment) खुली हवा में रहने जैसी दूसरी चिकित्सा नहीं है। हमारे शास्त्र में लिखा है कि क्षय के रोगी को बकरी के साथ घूमना फिरना, उसी के साथ रहना और उसी का घी दूध खाना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि बकरी के साथ जाने में रोगी को जंगल की शुद्ध वायु और सूर्य की किरणों का लाभ प्राप्त होगा, साथही हलकी कसरत भी हो जायगी जिससे रोगी को लाभ हुए विना नहीं रह सकता।

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम्॥

अभी हाल का विज्ञान यह कहता है कि एक क्षय रोगी के लिए हाइपोफोसफाइट ऑफ लाइम (Hypophosphite of lime) जैसा चूना का क्षार बड़ी ही लाभ जनक वस्तु है, उसी प्रकार हमारे यहाँ भी मोती भस्म, प्रवाल भस्म आदि चूना के क्षारों का क्षयरोग में विशेष उपयोग करने में आता है। थोड़े ही दिनों पहले तक अंग्रेजी में स्वर्ण के सम्बन्ध में कोई भी विवेचन नहीं था। उनका उस समय कहना था कि स्वर्ण में ऐसा कोई भी उत्तम औषध-गुण नहीं है और वह बिना पचे ही निकल जाता है, किन्तु उन्होंने अब स्वर्ण के बहुत से क्षार बना कर उसका उपयोग करना प्रारंभ किया है। एक डाक्टर ने तो स्वर्ण से ऐसी दवा निकाली है कि उससे सर्प का विष उतर जाता है। यही शोध वाग्भट्ट में स्पष्ट रीति से लिखी हुई है।

न सज्जते हेमपात्रे पद्मपत्राम्बुवद्विषम्।

अधिकांश लोगों के मनमें यह शंका है कि डाक्टरों ने पिचकारी द्वारा लोहू में दवा प्रवेश करने की रीति नवीन खोज निकाला है और जिसका प्रचार वे दिनों-दिन बढ़ाते जा रहे हैं, इसका वर्णन आयुर्वेद में नहीं है। किन्तु यह बात नहीं है। हमारे शास्त्र में भी इस खोज का मूल स्पष्टतः दिखाया गया है। रस-शास्त्रों में कहा है—

रक्तभेषज संपर्कात् मृतावस्थोऽपि जोवति

हम ऐसे उग्र उपायों का उस समय उपयोग करते थे जिस समय रोगी को बचाने का दूसरा कोई मार्ग नहीं रह जाता था। किन्तु ऐसी उग्र वस्तुओं का उपयोग वारंवार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका फल लाभ के बदले हानि होता है। हमारे "सूचिका-भरण रस" के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के सामने डा० जगदीशचन्द्र बोस ने एक मेढक पर एक्सपेरिमेंट (Experiment) करके दिखा दिया है कि वह वनस्पति-जीवन और उसके हृदय की अंतरंग गति पर आश्चर्यजनक बल देता है। उन्होंने कुमायूँ पर्वत की एक वनस्पति के सत्व से मेढ़क के हृदय की गति को सचेतन किया था। इस सम्बन्ध में खोज करने वाले को ऐसी ही अनेक वनस्पतियाँ जंगलों में प्राप्त हो सकेंगी। चरक ऋषि तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस औषध का नाम गुण, दोष आदि तुम न जानते हो उसे उस जंगल में रहने वाले ग्वाल, भील, मरवाड आदि से पूछ लो। जल्दी में हमें कोई काम नहीं करना चाहिये। आजकल लोग जल्दी से जल्दी रोग को अच्छा करना चाहते हैं किन्तु उसके बुरे परिणाम की ओर ध्यान नहीं देते। एक क्वीनाइन को ही ले लीजिये, जिसका संबंध प्रत्येक व्यक्ति से है। इसके सेवन से ज्वर एक बार दब तो जाता है किन्तु आठवें पन्द्रहें उठकर बराबर छः छः महीने तक तंग किये रहता है।

भाइयों ! जिस प्रकार और प्रान्तों की सरकार ने आयुर्वेद की उन्नति के लिए धन-व्यय करने का निश्चय किया है वैसे ही हमें बंबई सरकार से भी इस ओर ध्यान देने की प्रार्थना करना चाहिये। शायद वह मद्रास सरकार द्वारा खोले गये पाठशाला के सफलता की ओर दृष्टि लगाये हुए है। मद्रास सरकार द्वारा प्रति वर्ष अधिकाधिक दिये जाने वाली ग्रांट से पता लगता है कि पाठशाला दिनों दिन अच्छी स्थिति पर आती जा रही है। हमें शहर-शहर गाँव-गाँव में आयुर्वेद की उन्नति के लिये दवाखाना खोल कर लोगों में प्रचार करना चाहिये।

सद् गृहस्थों, सुशील बहनों एवं विद्वान वैद्य बन्धुओं ! आपका मैंने अत्यधिक समय लिया है इसके लिए और मेरे व्याख्यान में जहाँ कहीं पिष्ट-पेषण जैसा लगता हो उसके लिए क्षमा माँगते हुए, तथा हमारे आयुर्वेद का अभ्युदय दिनों दिन बढ़ता जाय, ऐसी शुभेच्छा के साथ मैं अपना व्याख्यान समाप्त करता हूँ।

* * *

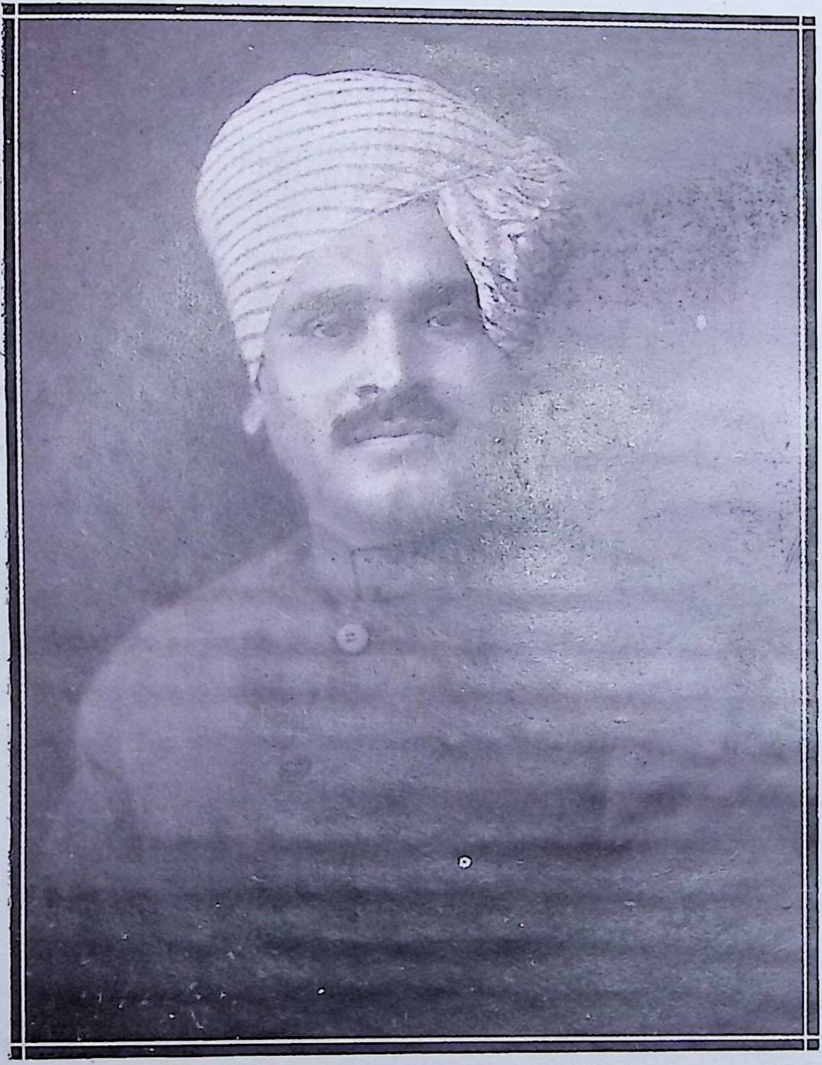

श्रीमान् राजवैद्य पं. एस. एम. शर्मा. (सूरजमल्ल शर्मा) अहमदावाद,
अध्यक्ष, कच्छ–काठियावाड–गुजरातप्रान्तीय ५ वैद्यसंमेलन, वसई (सन १९३२)।

॥ श्रीः ॥

अहमदाबाद-निवासी

राजवैद्य पं० श्रीसूर्यमल्लजी शर्मा महोदय का

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

शर्मा जी का जन्म उदयपुर राज्यान्तर्गत चौखड़ी ग्राम में जागीरदार पण्डित गिरिधर लालजी के कुलीन घर में वि० सं० १९५३ चैत्र कृष्ण १३ को हुआ था। आप ९ महीने की उम्र में ही पनेरी जी श्री पं० देवकृष्ण जी जो प्रतिष्ठित खानदान के हैं, उनके सन्तान न होने से गोद आ गये थे, किन्तु १२ वर्ष के बाद उनको सन्तान होने से उसी समय बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनसे हट गये।

प्रारम्भ में उदयपुर महाराणा हाई स्कूल में मेट्रिक तक अध्ययन कर मेवाड़वासी राजवैद्य मगनलाल लक्ष्मीराम से आयुर्वेद का अध्ययन किया। आप संस्कृत, इंग्लिश, गुजराती, मराठी भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं।

आप विद्वत्ता, कार्यदक्षता उत्साह एवं परमार्थ भावना को लेते हुए व्यवसाय के आरम्भ से ही सन्मान एवं कीर्ति प्राप्त किये हुए हैं। आप १५ वर्ष से अहमदाबाद में चिकित्सा-व्यवसाय कर रहे हैं।

आप अहमदावाद वैद्यसभा के ४ वर्ष तक सभापति रह चुके हैं। श्री गुजरात कच्छ काठियावाड़ पंचम वैद्य सम्मेलन वसई के आप ही सभापति थे।

सार्वजनिक कार्य

अहमदाबाद वैद्यसभा, आयुर्वेद वाचनालय आदि संस्थाओं की सेवा तन, मन एवं धन से आपने पर्याप्त की है।

स्वभाव

आप सरल स्वभाव वाले हैं। सर्वसाधारण से आप प्रेम करते हैं। वैद्यों से आप बड़े स्नेह से मिलते हैं। अतिथि-सत्कार के लिये तो आपके हृदय में पूर्ण स्थान मिला हुआ है।

अहमदाबाद में वैद्य सम्मेलन

शर्माजी की पूर्ण इच्छा थी कि अहमदाबाद में वैद्य-सम्मेलन किया जाय। इस सम्मेलन में आपने तन, मन एवं धन से पूर्ण सहयोग दिया। लिखना अरुचिकर न होगा कि सम्मेलन के समय आगत वैद्यों के लिये अपना मकान उनके लिये भोजन, मोटर आदि की सुव्यवस्था से स्वागतकारिणी को भी कष्ट से बचाया। सभापति आदि विशिष्ट-विशिष्ट वैद्य आपके मकान पर ही ठहरे थे। आपके ही पूर्ण सहयोग से यह अभूतपूर्व सम्मेलन हुआ।

सन्मान

अहमदाबाद में आप शर्माजी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं, आप प्रेमालु निस्वार्थ एवं निराभिमानी व्यक्ति हैं तथा आयुर्वेद के आप अनन्य भक्त हैं। अहमदाबाद के धनीमानी सेठ साहूकार सभी आपकी चिकित्सा से लाभ उठाते हैं। जैसे यह लाभ उठाते हैं तदनुसार गरीबों के लिये भी आप उतना ही आदर देते हैं। इसलिये गरीब एवं अमीर सभी के हृदय में आपके प्रति अपूर्व सम्मान है।

ज्ञान

शर्माजी आयुर्वेद के ग्रन्थों के ज्ञान के साथ-साथ वनस्पति शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता हैं। काश्मीर आबू आदि पर्वतों से तथा महात्माओं से आपने यह ज्ञान प्राप्त किया है। आप रसचिकित्सा एवं आसवादि निर्माण में विशेष दक्ष हैं।

आप १॥ वर्ष से बम्बई में विराजते हैं। यहाँ पर बड़े सन्मान एवं योग्यता से आपका चिकित्सा कार्य चल रहा है। यहाँ के धनीमानी मिल मालिक सेठ एवं गरीब आपकी चिकित्सा से लाभ उठा रहे हैं।

आपके बम्बई पधारने से वैद्यसमाज को बहुत गर्व है। ईश्वर आपको चिरायु करें, दिनों-दिन आपको उन्नत करे। भारत में ऐसे सुयोग्य विद्वान् अनुभवी एवं आयुर्वेद के अनन्य भक्त वैद्यों की बड़ी भारी आवश्यकता है।

चिकित्सा-शास्त्र में आप सिद्धहस्त हैं, तदुपरान्त असाध्य कुष्ठ, केन्सर, अपेन्डिक्स, क्षय आदि रोगों के भी विशेषज्ञ हैं।

श्री धन्वन्तरये नमः

गुजरात कच्छ काठियावाड पञ्चम् प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के

सभापति राजवैद्य एस. एम. शर्म्मा अहमदाबाद का

भाषण

परम माननीय, धन्वन्तरि तुल्य वैद्य महोदय तथा उपस्थित बन्धुओं ! इस वर्ष अध्यक्ष स्थान के लिये सर्वप्रथम प्राणाचार्य, वैद्यराज, पं० सुखरामदासजी टी० ओझा कराची-निवासी का निर्वाचक प्रान्तीय वैद्यों के बहुमत से हुआ था। परन्तु खेद है कि ओझा जी अस्वस्थता के कारण इस स्थान को स्वीकार न कर सके। ओझा जी द्वारा इस स्थान को अस्वीकृत हो जाने पर नियमानुसार क्रमशः बम्बई निवासी आयुर्वेद मार्तण्ड पूज्य पं० यादव जी त्रिकम जी आचार्य और गोंडल-निवासी राजवैद्य पं० जीवरामभाई कालिदास जी शास्त्री से इस पद के लिये प्रार्थना की गई। परन्तु खेद है कि इन दोनों महानुभावों ने भी हमारे दुर्भाग्यवश, अपनी अस्वस्थता के कारणों से इस पद के स्वीकार करने में असमर्थता प्रगट की। अन्त में स्वागताध्यक्ष और पूज्य आचार्य श्रीमान् यादवजी भाई के तथा अन्य वैद्य बन्धुओं के आग्रह से इस पद के लिये अपने आप अयोग्य समझते हुए भी और इस सभा में मुझसे अधिक ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, वैद्य महोदयों के विद्यमान होने पर भी, आप महानुभावों ने मुझे इस पद को ग्रहण करने की जो आज्ञा दी है, आप लोगों की उस आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझ कर ही मैं इस पद को नम्रतापूर्वक ग्रहण करता हूँ। इसके लिये मैं आप सबका कृतज्ञ हूँ। जो जिम्मेदारी का पद आप सज्जनों ने मुझे सौंपा है, उसके योग्य मैं कदापि नहीं हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि आप-जैसे उदार और योग्य आयुर्वेद-प्रेमियों की कृपा से ही मैं यह सेवा करने में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। मैं आप महानुभावों का आशीर्वाद चाहता हूँ, जिससे मेरा चित्त स्वार्थ या रागद्वेष की ओर न जाकर आयुर्वेद की शुद्ध सेवा में संलग्न रहे।

मान्यवर भद्र पुरुषों ! मैं सर्वाङ्ग सम्पूर्ण आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता नहीं हूँ, परन्तु आयुर्वेद का सच्चा भक्त अवश्य हूँ। मुझे विश्वास है कि संसार का सुख आयुर्वेद द्वारा ही हो सकता है।

आयुर्वेद किसे कहते हैं—ऋषियों ने लिखा है—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। और जिस शास्त्र से आयु का हिताहित का ज्ञान, रोग का निदान और शमन हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

आज इस भूतल पर जितने देश हैं सभी के आयुर्वेद अलग-अलग हैं। परन्तु सब देशों के आयुर्वेद की उत्पत्ति हमारे आयुर्वेद ही से हुई है।

धन्य है, उस जगदाधार जगदीश्वर निर्विकार को जिसने इस संसार में अपनी इच्छा से अनेक प्रकार के द्रव्यों को प्रगट किया, और ब्रह्मादिक देवता तथा अग्निवेशादि ऋषि मुनियों

ने सहस्रों वर्ष तप करके उन्हीं औषधियों के आश्रय से अपने-अपने नाम से संहिता-निर्माण करके अपने शिष्यों को विधिपूर्वक अध्ययन कराया। वह आयुर्वेद शास्त्र भारतवासियों के दुःख दूर करने का और शरीर को स्वस्थ्य रखने का एक महासागर के समान विशद, विशाल और महा गम्भीर अमृत का भाण्डार था। देवासुर संग्राम में देवताओं ने जो अमरत्व प्राप्त किया था, वह इसी आयुर्वेद का प्रताप था। इसी सुधासागर का रसपान करके प्राचीन आर्यगण दीर्घायु और बलवान होकर स्वास्थ्यमय जीवन सम्भोग करते थे। इस आयुर्वेद को पढ़ने से तृणादिक से लेकर शिरोभूषण मणिमाणिक्यादि तक द्रव्यों का आश्चर्य गुण जानकर सृष्टिकर्ता का अपार महात्म्य निश्चय होता है। यह आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओं का मूल है, और इसी चिकित्सा का सब जगत् में प्रचार था। जो विचार कर देखा जाता है तो आयुर्वेद की संहिताओं के अतिरिक्त और ग्रन्थों को भी साधारण पुरुषों ने नहीं रचा। वह ऐसे पूर्ण विद्वान् थे जो अपनी ज्ञान दृष्टि से भूत, भविष्य समय को वर्तमान समय के समान प्रत्यक्ष रूप से देखते थे। और अपने योगबल से जगत् के सम्पूर्ण विषयों को भली भाँति जानते थे। उन्हीं त्रिकालदर्शी जगदुपकारी महर्षियों ने संसार के उपकार के लिये उत्तमोत्तम आयुर्वेद के ग्रन्थ निर्माण किये ओर कोई विषय शेष नहीं छोड़ा। आठ भागों में विभक्त करके अलग-अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाये। किसी ने शस्त्र-चिकित्सा, किसी ने उर्ध्वजत्रु (कण्ठ से उपर नेत्रादि की) चिकित्सा किसी ने ज्वरातिसार आदि काय-चिकित्सा, किसी ने बाल-चिकित्सा, किसी ने ग्रह-पीड़ित प्राणियों की चिकित्सा, किसी ने विष-चिकित्सा, किसी ने रसायन-चिकित्सा और किसी ने वाजीकरण-चिकित्सा को मुख्य मानकर बड़े-बड़े विलक्षण ग्रन्थ रचे। इसके सिवाय किसी-किसी ने और-और रोगों की चिकित्सा भी उत्तम रीति से अपने ग्रन्थों में लिखी। आयुर्वेद में किसी प्रकार की चिकित्सा का अभाव नहीं है। जिस विषय की आवश्यकता होती थी, वही विषय मिल जाता था। इस कारण भारतवर्ष के मनुष्य विदेशी-चिकित्सा का कभी आश्रय नहीं लेते थे। सदैव आयुर्वेद ही की योग-क्रियाओं से सहज में सर्वरोग-मुक्त हो जाते थे। और उस चिकित्सा में एक बड़ी विशेषता यह थी कि जिसने एक बार रोग से मुक्ति पाई, फिर शीघ्र ही वह रोग की फाँसी में नहीं फसता था। इस आयुर्वेदीय चिकित्सा की कहाँ तक प्रशंसा करें। यह रामवाण की तरह कार्य सिद्ध करने वाली है। हमारी आयुर्वेदीय चिकित्सा पुराने और कठिन महा भयानक रोगों के समूहों को शमन करती है, इस देश के मनुष्यों के स्वभावानुकूल इसी देश की औषधि हैं। दूसरे देश की कदापि स्वाभावानुकूल नहीं हो सकतीं, वरन् भारत-वासियों के लिये इस देश की औषधि कल्याणकारी और कष्टहारी हैं ही, परन्तु और देशों के लिये भी परम हितकारी है। आप यह निश्चय जान लें कि इस आयुर्वेद विद्या का मूल भारत-भूमि ही है। पीछे और देशों में प्रचार हुआ। जैसे कि ग्रीक, अरब आदि। भारतीय चिकित्सा की प्राचीनता पर निम्नलिखित विद्वानों की सम्मतियाँः—

प्रोफेसर रायली साहब लिखते हैं—हिन्दुओं का आयुर्वेद पुराना है। अरब और यूनान वालों से बहुत पहले का है।

प्रोफेसर विलसन महोदय लिखते हैं—भारत में बहुत प्राचीन काल से चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन-शास्त्र के पारदर्शी विद्वान मौजूद थे।

पण्डितवर एलिफन्सटन साहब लिखते हैं—भारतवर्ष से ही यूरोप वालों ने चिकित्सा विद्या सीखी थी, 'रासायनिक सिद्धान्तों में हिन्दुओं का विज्ञान आश्चर्यजनक है, वे सल्फ्यूरिक

एसिड, नाइट्रिक एसिड, म्यूरेटिक एसिड, तांबा, लोहा, सीसा, कली और जस्ता के औक्साइड; लोहा, तांबा, पारा और संखिये के सल्फ्युरेट; तांबा, जस्ता, लोहा के सल्फेट और सीसा और लोहा के कार्बोनेट, तैयार करना जानते थे और यह चीजें तैयार करने के उनके तरीके बड़े विचित्र थे।

अयुल उल नामक एक अरबी ग्रन्थ में लिखा है—आठवीं सदी में भारत के पण्डित बगदाद की राजसभा में आयुर्वेद और ज्योतिष की शिक्षा देते थे।

सरक, सर्सस, और वेदान ये तीन चिकित्सा ग्रन्थ हिन्दुस्थान से अरब में लाये गये थे। अरब से इन ग्रन्थों का अनुवाद यूरोप में गया। सत्रहवीं शताब्दी तक अरबी चिकित्सा प्रणाली यूरोपीय चिकित्सा की मूल थी। प्राचीन भारतवासियों ने ही पहिले-पहिल शव का चीर-फाड़ कर शरीर-रचना का अध्ययन आरम्भ किया था और शस्त्र-चिकित्सा भी करते थे। यूरोप के दिग्विजयी सिकन्दर की सेना की चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्य नियुक्त हुए थे। असाध्य रोगों को नष्ट करने के लिये वह बहुत से भारतीय वैद्यों को बड़े मान से अपने साथ ले गया था। बगदाद के खलीफा हारूँलरशीद अपनी चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्यों को रखते थे। प्रसिद्ध हकीम जालीन्स अपनी पुस्तक में लिखते हैं—आयुर्वेद विद्या पहिले भारत से मिश्र देश में और वहाँ से यूनान और अरब में गई। एक चिकित्साशास्त्र ही नहीं, और भी अनेक विद्याएँ भारत से ही सब देशों में पहुँची है। अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिनसे साबित होता है कि पृथ्वीतल में जितनी विद्याएँ हैं, उन सबका उद्‌गम स्थान भारतवर्ष ही है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। वैद्य महानुभावो, जरा बिचारिये तो सही कि एक दिन वह था जब कि सिकन्दरे आजम भारतीय वैद्यों को चिकित्सा के लिये अपने साथ बड़े मान और आदर के साथ ले गया था। बगदाद के खलीफा अपनी चिकित्सा के लिये भारतीय वैद्यों को रखते थे। एक दिन वह था कि अरस्तून और अफलातून जैसे चिकित्सक भारत से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके जगत के श्रेष्ठ चिकित्सकों में परिगणित हुए थे और एक दिन आज का है कि भारतीय चिकित्सा निकम्मी समझी जाती है। आयुर्वेद के उस गौरव और आयुर्वेद की उस उन्नति में और आज की अवनति में जमीन आस्मान का अन्तर है। कहाँ वे दिन और कहाँ ये दिन। सोचने से बड़ा खेद होता है। खेद होवे उसमें आश्चर्य ही क्या है! एक दिन भारतीय चिकित्सा शास्त्र ने दुनियाँ में सर्वोच्च आसन ग्रहण किया था, और आज उसे सबसे नीचा आसन भी नहीं मिलता। जो विदेशी हमें अर्धसभ्य और मूर्ख बताते हैं उनके पूर्व पुरुष जिस जमाने में सचमुच बनमानुष थे। अपने रहने के लिये घर बनाना भी नहीं जानते थे। उनसे हजारों वर्ष पहले भारतवर्ष में ऐसे वैद्यरत्न हो गये हैं; जिन्होंने मनुष्यों के कटे हुए शिर जोड़ दिए हैं। अन्धों को नेत्रयुक्त कर दिया, बूढ़ों को जवान बना दिया, ऐसे कार्य अश्विनी कुमारों द्वारा हुए हैं। यह आप बन्धुओं को ज्ञात है। भेद इतना ही है कि भारत का सितारा बुलन्दी पर नहीं है। आज इसकी दशा गिरी हुई है। इससे सर्व बातें झूठ प्रतीत होती हैं। पर सूर्य कहीं छिपाये नहीं छिपता। इसी से पक्षपात-शून्य बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने भी आयुर्वेद के गौरव की बात मुक्त-कण्ठ से स्वीकार की है। जब तक विदेशियों का पदार्पण नहीं हुआ तब तक भारतीय चिकित्सा विद्या दिन दूनी उन्नति कर रही थी। जब हिन्दू सम्राट् दिल्लीश्वर पृथ्वीराज महाराज का पतन हुआ और मुसलमानी शासन इस देश में जारी हुआ तब मुसलमानी शासन

के जमाने में हकीमों की कदर हुई और वैद्यों की बेकदरी हुई। इसी से आयुर्वेद विद्या का दिन ब दिन प्रचार घटता गया, और उस जमाने में अनेकानेक आयुर्वेद चिकित्सा ग्रन्थ जला दिये गये थे, जिससे इस चिकित्सा की पूर्ण अधोगति हुई है। जब ब्रिटिश गवर्नमेंट इस देश की मालिक हुई, यहाँ ही से हजारों औषधि विलायत लेजा लेजाकर उनके सत्त, पाउडर, गोली, टिंचर तैल वगैरह बना कर उनको मनोमुग्धकारिणी शिशियों और डिब्बियों में बन्द करके उनके ऊपर रंगीन चटकदार खूबसूरत लेबल लगा कर यहाँ भेजने लगे। इसमें शक नहीं कि उन्होंने यह कार्य बड़े कठिन परिश्रम से किया है, इसलिये वे किसी प्रकार भी दोष भागी नहीं। यह तो मनुष्य का धर्म ही है, पर दोष भागी हम और हमारी पिछली सदी में होने वाले पूर्व पुरुष हैं। जो आलसी की तरह चुपचाप बैठे-बैठे देखा किये। अब जब आँख खुली उन्नति-उन्नति पुकारने लगे। अब जब रोग असाध्य हो गया है तो सहज ही में नहीं जा सकता। अब धीरे-धीरे उसका उपाय सोच कर साध्य बनाने का यत्न करना चाहिये। एलोपेथी की ऐसी उपरी सुन्दरता देखकर यहाँ के लोग उसकी तरफ सब के सब ढल पड़े। क्यों कि औषधियों के कूटने, पीसने, काढ़ा बनाने, औटाने, और छानने की सब दिक्कतें मिट गईं, और शस्त्र-चिकित्सा में डाक्टरों के हाथ की सफाई देख कर यहाँ वालों ने उन्हें देव ही मान लिया है। जिन्होंने अंगरेजी पढ़ी है, जिन्होंने विद्वत्ता सूचक डिग्रियाँ प्राप्त की है, वे भारतवासी हिन्दू सन्तान होते हुए भी आयुर्वेद चिकित्सा को हिकारत की नजर से देखते हैं। जो विलायती दवाओं से कोसों दूर भागते थे जो प्राणों के कण्ठ में आने पर भी मद्य मिश्रित दवा लेना पसन्द न करते थे, वे भी आजकल विलायती दवा गटागट पीते हैं। जिस जमाने में भारत में आयुर्वेद का पूर्ण प्रचार था, तब लाखों पंसारियों की दुकानें अव्वल दर्जे की थीं। उनके यहाँ हर तरह की उत्तमोत्तम औषधियाँ हर समय तय्यार मिलती थीं। वे लोग रोज काम पड़ने से दवाओं के नाम और गुण जानने में आजकल के अधिकांश वैद्यों से अच्छे होते थे। वैद्यगण जिनके यहाँ अच्छी और ताजी औषध मिलती थी, उन्हीं के यहाँ से औषधि खरीदते थे। जो पंसारी सड़ी घुनी दवा रखते थे उनका बहिष्कार करते थे। इसीसे धंधा मारे जाने के भय से वे सदा आयुर्वेद के नियमानुसार नयी पुरानी जैसी जैसी दवाएँ रखनी चाहिये वैसी वैसी ही रखते थे। अब पंसारी वैसा कार्य नहीं करते, काम नहीं पड़ने से उनके नाम भूल जाते हैं। नई पुरानी का तो उन्हें खयाल ही नहीं, पाँच वर्ष हो जाय चाहे युग हो जाय जब तक दवा थैली में रहती है, बेचते रहते हैं। अनेक बार एक के बदले दूसरी दवा देते हैं। पहले वैद्य-चिकित्सा में काम आने वाली प्रत्येक जड़ी-बूटी को भली भाँति पहचानते थे। स्वयं जंगल में जाकर ले आते थे। इसलिए पंसारी भी डरते थे। परन्तु आजकल के अधिकांश वैद्य पंसारियों से भी गये बीते होते हैं, पुस्तकों से नुसखे लिख कर ले जाते हैं और पंसारी से कहते हैं ठीक-ठीक औषध देना। पंसारी दो-चार बार में वैद्यजी के औषधि ज्ञान की थाह ले लेता है और फिर मनमानी करता है। जब असल हथियार की यह दशा है तब चिकित्सा में सफलता कैसे होवे? सभी जानते हैं कि जिसके पास अच्छे-अच्छे हथियार होते हैं वही शत्रु को युद्ध में परास्त कर सकता है। चिकित्सा करना बड़ी होशियारी और जिम्मेदारी का कार्य है। वैद्य की शरण में आये हुए रोगी का जीवन-मरण वैद्य की चिकित्सा चातुरी पर ही निर्भर है। इसलिये पहले जमाने के विद्वान् चिकित्सा-तत्व मर्मज्ञ वैद्य उत्तमोत्तम शिष्यों को इस विद्या की शिक्षा देते थे। जिन मनुष्यों के स्वभाव में

सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता नहीं देखते थे उन्हें अपने पास भी नहीं फटकने देते थे। विद्वानों को अपना शिष्य बनाकर और स्वयं निष्कपट भाव से आयुर्वेद विद्या पढ़ाते थे, एक-एक विषय को खोल-खोल कर समझाते, उनकी शङ्काओं का समाधान करते थे और औषधियों की पहचान कराने के लिये उन्हें अपने साथ जङ्गलों और पहाड़ों में ले जाते थे। इस तरह परिश्रम करने पर जब शिष्य आयुर्वेद में पारदर्शी हो जाता था, वनौषधियों के नाम, रूप और गुण के पहचानने में परिपक्व हो जाता था, शल्य, शालाक्य और कायचिकित्सा कर्म में अनुभवी हो जाता था, हस्त-क्रिया में निपुण हो जाता था, तब गुरु महाशय उसकी परीक्षा लेकर उसे चिकित्सा कार्य में हाथ डालने की आज्ञा करते थे। शिष्य भी जब तक पूर्ण पण्डित और अनुभवी न हो जाता था, गुरु का पीछा नहीं छोड़ता था, गुरु से आशीर्वाद लेकर वैद्य का व्यवसाय करता था, कहिये, आजकल वैसे गुरु और शिष्य कहाँ? आजकल पहले की भाँति कौन आयुर्वेद सिखाता है और कौन सीखता है। यद्यपि अब भी भारत में भिषक्-श्रेष्ठ प्राणदाता सद्वैद्यों का नितान्त अभाव नहीं है तथापि ऐसे पूर्ण वैद्य अंगुलियों पर गिने जाने योग्य ही हैं। आयुर्वेद के ऊपर अवैज्ञानित्व का आक्षेप करने वालों को भूत-पूर्व अध्यक्ष महोदयों ने सप्रमाण उत्तर देकर आक्षेपों का निवारण भी किया है, तौ भी यहाँ मुझे खेद से कहना पड़ता है कि कुछ अन्य चिकित्सा प्रणाली वालों को आयुर्वेद की यह उन्नति खटकती है। सज्जन, विचारशील डाक्टर बन्धु तो इसका आदर करते हैं और भली प्रकार जानते हैं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में ऐसे अमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं जिनसे संसार का बहुत उपकार हो सकता है। कई लोग बिना कारण ही आक्षेप किया करते हैं, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि कुछ आक्षेप सत्य भी हैं, जैसे देशी चिकित्सा में नियमित रूप से शिक्षा नहीं हैं, इसमें झूठी डिग्रियाँ देने वाले बहुत हैं, जो चाहे वह वैद्य बन जाय इत्यादि। पर इन त्रुटियों का उत्तरदायित्व हमारे वैद्य-समाज पर नहीं है। अगर सरकार आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को अपना ले और एलोपैथी की तरह उत्तम शिक्षा के लिये जगह-जगह स्कूल कालेज खोले जायँ, तो आशा है कि चन्द साल बाद ही आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली में जो त्रुटियाँ नज़र आती हैं, वे सबकी सब मिट जायँ और इस चिकित्सा-प्रणाली में एकदम से परिवर्तन हो जाय। इसके होने से Quacks का नाम निशान भी न रहे।

निदान की आधार शिला

त्रिदोष विचार

आयुर्वेदिक रीति से निदान करने के लिये वात, पित्त और कफ इनको भली भाँति समझ लेना चाहिये। क्योंकि हमारे पूर्वाचार्यों ने सब दारमदार वातादि दोषों पर ही रखा है। वात, पित्त और कफ इनको दोष और धातु कहते हैं। धातु और मल इनसे दूषित होते हैं इसलिये इनको दोष कहते हैं। और देह को धारण करते हैं इसलिये इनको धातु कहते हैं। "वायु" अन्य दोषों और रस, रक्त, मांस, मेद आदि धातुओं को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने वाला, रजोगुण युक्त, सूक्ष्म हलका रूखा और चंचल है। सब दोषों में वायु ही प्रधान है। विना वायु के प्राणी क्षण भर भी जिन्दा नहीं रह सकता, वह शरीर में सफाई करता है, और मल-मूत्र को निकाल कर बाहर फेंकता है।

वायु के पाँच रहने के स्थान —कण्ठ, हृदय, कोठे की आग, मलाशय और सारे शरीर में। कण्ठ में उदान वायु, हृदय में प्राण वायु, कोठे की अग्नि के नीचे नाभी में समान वायु, मलाशय में अपान वायु और सारे शरीर में व्यान वायु रहता है।

पाँचों वायु के कार्य—उदान वायु गले में रहता है, इसीसे प्राणी बोल सकता है, जब कुपित होता है तब कण्ठ के रोग उत्पन्न करता है, प्राणवायु, यह प्राणों को धारण करता है, और प्राणों की रक्षा करता है, यह कुपित होकर हिचकी और श्वास-रोग उत्पन्न करता है।

समानवायु, यह आमाशय और पक्वाशय में विचरता और जठराग्नि से मिलकर अन्न को पचाता और मल से उत्पन्न मल-मूत्रादि को अलग-अलग करता है। यह कुपित होकर मन्दाग्नि, अतिसार, वायुगोला आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

अपान वायु पक्वाशय में रहता है। मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्तव इनको निकाल कर बाहर फेंकता है, यह कुपित होकर मूत्राशय और गुदा के रोग पैदा करता है।

व्यान वायु सारे शरीर में विचरता है। यह रस, पसीना और खून को बहाता है। जाना, नीचे को डालना, ऊपर को फेंकना, आँख मीचना, खोलना ये क्रियायें इसी के आधीन है। यह कुपित होता है तब सारे शरीर के रोग उत्पन्न करता है।

पित्त एक तरह का पतला पदार्थ है, यह गरम है, इसका रंग पीला होता है।

पित्त के पाँच स्थान—अग्न्याशय में पाचक पित्त, यकृत और तिल्ली में रञ्जक, हृदय में साधक, दोनों नेत्रों में आलोचक, सारे शरीर और त्वचा में भ्राजक पित्त रहता है—

पाचक पित्त आमाशय में और पक्वाशय में रह कर सब आहारों को पचाता है इसी को जठराग्नि कहते हैं।

रञ्जक पित्त रस का रक्त बनाता है।

साधक पित्त बुद्धि धृति यानी मेधा और स्मरण-शक्ति बढ़ाता है।

आलोचक इसका काम रूप ग्रहण करना है।

भ्राजक यह कान्ति करता है, और लेप तैल की मालिश और स्नान आदि को पचाता है, याने सुखाता है।

कफ—सफेद भारी चिकना धिलमिलाशा, शीतल तमोगुण युक्त और मधुर होता है, विदग्ध होने से खारी होता है।

आमाशय में क्लेदन, हृदय में अवलम्बन, कण्ठ में रसन, शिर में स्नेहन और सन्धियों में श्लेष्मण कफ रहता है।

क्लेदन-अन्न को गीला करता है। और अपनी शक्ति से कफ के दूसरे स्थानों को भी जल-कर्म द्वारा सहायता देता है।

अवलम्बन-रस युक्त वीर्य से हृदय के भाग का अवलम्बन और त्रिक नामक हड्डी को संधारण करता है।

रसन-रस को जानता है और कण्ठ में रहता है।

स्नेहन-चिकनाई देकर सब इन्द्रियों को तृप्त करता है।

श्लेष्मण कफ सब सन्धियों को जोड़ता है।

इन तीनों दोषों के कोप, क्षय, वृद्धि, कोप का समय, और शान्ति वगैरह का विवेचन कर आप महानुभावों का ज्यादा समय नष्ट नहीं करना चाहता। आधुनिक काल में जो नई-नई

रीतियाँ निदान सम्बन्धी निकली हैं उन सबसे आयुर्वेद चिकित्सा की निदान पद्धति कितनी सरल और उपयोगी है।

आधुनिक काल में जितनी नई पद्धतियाँ निकली हैं, वे सब पृथक पेचीदा और कठिन हैं। और इसमें रोग का निदान करने के लिये अनेक कीमती यन्त्रों की आवश्यकता रहती है और यन्त्रों के अतिरिक्त अनेक साधन रखने पड़ते हैं।

अपने आयुर्वेदिक शास्त्र की पद्धति के अनुसार किसी खास साधन की आवश्यकता नहीं रहती। आयुर्वेदिक रीति के अनुसार निदान करने में बहुत सी सुविधायें होती है। वैसी अन्य पद्धतियों में नहीं पाई जाती। अगर वैद्य को शास्त्रोक्त पूरे-पूरे लक्षण याद न हों तो भी सरलता पूर्वक रोग पहिचान सकता है। किसी ऐसे नये रोग का निदान करने में कठिनता नहीं पड़ती जिसका वर्णन पुस्तकों में नहीं मिलता हो। यदि रोग का नाम मालूम न हो तो भी वैद्य द्वारा उसकी चिकित्सा बड़ी अच्छी तरह से की जा सकती है। क्योंकि आयुर्वेदिक चिकित्सक वातादि दोषों की परीक्षा अच्छी तरह करके इस बात की खोज निकाल कर कि कौन सा दोष कुपित है या कौन सा दोष घटा या बढ़ा है और कौन समान है, जिनकी घटती बढ़ती देखता है उन्हें समान करने की कोशिश कर समान करता है। दोषों के समान होने से ही रोगी आराम हो जायगा। क्योंकि आयुर्वेद में दोषों की विषमता का नाम ही रोग है। और इनकी समानता का नाम ही आरोग्य है। ऐसी सर्वोत्तम सरल पद्धति किसी भी अन्य चिकित्सापेथी में नहीं है, और इससे मामूली आदमी भी पूरा लाभ उठा सकता है।

और भी अष्टविध परीक्षा निदान करने की है, जैसे नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, मल-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा, शब्द-परीक्षा, स्पर्श-परीक्षा, रूप-परीक्षा और नेत्र-परीक्षा।

नाड़ी-परीक्षा से वात, पित्त, कफ, द्वन्दज, त्रिदोष और साध्य असाध्य जाना जाता है।

वात से नाड़ी वक्र (टेढ़ी) पित्त से चपल और कफ से मन्द चलती है और सब दोषों के कुपित होने से तीनों लक्षणों वाली होती हैं। यद्यपि नाड़ी देखने का काम महा कठिन है और सबों को पूर्ण ज्ञान होना आसान नहीं है। तो भी अभ्यास बढ़ाने से तथा गुरु-कृपा से नाड़ी का ज्ञान पूर्ण हो सकता है। यदि नाड़ी तीनों दोषों के क्रम से चले तो साध्य है और यदि इनसे विपरीत चले तो असाध्य है—अगर नाड़ी कभी मन्द कभी तेज और कभी खण्डित होकर चले और कभी सूक्ष्म कभी स्थूल इस तरह घड़ी-घड़ी चाल बदल कर चलने लगे, स्थान का परित्याग कर दे तो मृत्यु का कारण होती है।

नाड़ीद्वारा भोजन का ज्ञान भी हो सकता है, तैल गुड़ खाने से नाड़ी पुष्ट चलती है। मांस खाने से नाडी लकडी के आकार का चलती है। दुग्ध-पान से मन्द गति से चलती है। इत्यादि इत्यादि। अपने आयुर्वेद में नाड़ी-स्पन्दन संख्या भी है—

तत्काल के हुए बालक की नाड़ी की	एक पल में	स्पन्दन संख्या	५६ वार
१ वर्ष की अवस्थातक	,, १ ,,	,,	५२ वार
१ से २ वर्षतक	,, १ ,,	,,	४४ वार
२ से ३ ,,	,, १ ,,	,,	४० ,,
३ से ७ ,,	,, १ ,,	,,	३६ ,,
७ से १४ ,,	,, १ ,,	,,	३४ ,,
१४ से ३० ,,	,, १ ,,	,,	३२ ,,

३० से ६०	,,	,, १ ,,	,,	३० ,,
५० से ८०	,,	,, १ ,,	,,	२४ ,,

चूंकि १ मिनट २॥ पल के बराबर होता है यह चाल नवीन मत से लगभग मिलती-जुलती है ।

नाड़ी-परीक्षा के प्रधान होने पर भी बहुत से रोगों में अन्यान्य परीक्षा से भी बहुत मदद मिलती है जैसे-प्रमेह में मूत्र-परीक्षा की, अतिसार, संग्रहणी में मल-परीक्षा की, आम वात में जिह्वा-परीक्षा की, कण्ठरोग में शब्द-परीक्षा की, चर्म-रोग में स्पर्श-परीक्षा की, प्लीहा और कामला में नेत्र-परीक्षा की आवश्यकता होती है ।

मूत्र-परीक्षा से भी करीब करीब बहुत से रोगों का ज्ञान हो सकता है, वात के दोष में मूत्र जल के समान रूखा और अधिक होता है । पित्त के दोष में मूत्र लाल पीला और थोड़ा होता है । कफ के दोष में मूत्र सफेद गाढ़ा और चिकना होता है ।

धातुओं की समानता होने से मूत्र कुएँ के जल की तरह साफ होता है—जल की तरह का और कांजी की तरह का मूत्र निर्दोष होता है ।

प्रसूत रोगों में मूत्र ऊपर से पीला, नीचे से काला और बुदबुदे की तरह होता है ।

क्षय रोग में मूत्र का रंग काला होता है । अगर सफेद रंग होवे तो रोगी असाध्य समझा जाता है ।

पित्तज्वर में पीला, कफज्वर में मूत्र का रंग सफेद व झागदार, वातज्वर में मूत्र का रंग काला और विरामज्वर में ईख के रस के समान होता है ।

जलोदर में मूत्र घी के दानों के समान होता है ।

आमवात में मूत्र माठे के समान होता है ।

रुधिर-कोप में मूत्र उपर से नीला और नीचे से लाल होता है ।

मूत्र परीक्षा तैल द्वारा—स्वच्छ पात्र में मूत्र धूप में रखकर, मूत्र में तैल की बून्द डाले—अगर तैल की बून्द डालते ही मूत्र में बबूले या बुदबुदे से हो जाय तो पित्त का प्रकोप जाने, अगर तैल की बून्द मूत्र में सूखी और काली दीखे तो वायु का विकार जानना ।

अगर तैल की बून्द मूत्र में तालाब के जलके समान हो जाय तो कफ का विकार जाने ।

अगर तैल की बून्द मूत्र पर फैल जाय तो रोग साध्य है अगर न फैले तो असाध्य है ।

अगर तैल की बून्द मूत्र में नीचे बैठ जाय तो भी रोग असाध्य है ।

इसी तरह मल-परीक्षा, शब्द-परीक्षा, स्पर्श-परीक्षा, वर्ण-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा, रूप-परीक्षा, और नेत्र-परीक्षा आदि से भी हरएक रोग की जाँच हो सकती है ।

बहुत प्राचीन ग्रन्थों में निदान के लिये नाडी-ज्ञान का वर्णन नहीं आता है । यह पीछे प्रचलित हुई है । जब कभी नई बात मालूम हुई हमारे यहाँ ग्रहण की गई है । कई औषधियाँ हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न देशों की वर्त्ती जाती है । जैसे, केसर, कपूर, चोपचीनी इत्यादि । हम नये आविष्कारों के विरुद्ध नहीं हैं । हमारा दावा तो इतना ही है कि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जो है वह ठीक है ।

निदान के सम्बन्ध हमारे यहाँ बहुत से रहस्य होते हुए भी, हमको नई रीतियों से सहायता लेने में तनिक भी विरोध नहीं है, परन्तु यह मानने को भी हम तय्यार नहीं हैं कि इनके बिना निदान असम्भव है ।

निदान के लक्षणों की बारीकियाँ हमारे यहाँ वर्णित हैं, यदि उनको पूर्णतया व्यवहार में लाया जावे तो देशी चिकित्सकों के निदान से भी दुनियाँ विस्मित हो जावे।

आश्चर्य तो यही है कि हमारे यहाँ खाली नाड़ी-परीक्षा तथा मूत्र-परीक्षा ही से बहुत से विद्वान् वैद्य रोगी की सारी अवस्था, आदि से अन्त तक बतला दिया करते थे और अब इस वर्तमान समय में भी ऐसे वैद्यों का अभाव नहीं है पर ऐसे पुरुष बहुत कम हैं। विज्ञान के सहस्रों आविष्कार क्यों न हो जाँय, किन्तु हमारे सिद्धान्त गलत नहीं हो सकते।

मद्रास कमिटी की रिपोर्ट में प्रोफेसर मोक्षमूलर ने एक स्थान पर लिखा है कि जहाँ हमारी साइन्स समाप्त होती है वहाँ हिन्दुओं की आरंभ होती है। जो-जो तत्ववेत्ता अनुसंधान करते हैं, वे विस्मित होते हैं कि बड़े-बड़े अनुसंधानों के पश्चात् वे जिन परिणामों पर पहुँचते हैं, हिन्दुओं की पुस्तकों में उनका वर्णन पहिले ही विद्यमान होता है। स्वयं डाक्टर ल्यूकस ने कहा था कि अभी डाक्टरों को भारत से बहुत कुछ सीखना है।

आधुनिक विज्ञान यह सिद्ध नहीं कर सकता कि पारा .फिरंग को क्योंकर दूर करता है। जब अनुभव से यह सिद्ध हो गया तो सभी डाक्टर इस बात को मानने लगे।

हमारे पूर्व पुरुषों का ज्ञान इतना बढ़ा हुआ था के वे दावा करते थे कि संसार के सब रोग इसी पारद से निवारण हो सकते हैं, पारा गंधक को खरल करके, इसकी कज्जली करके जिस रोग की औषधि के साथ इसे मिलाते जाओ उससे उसी रोग का इलाज होता जायगा।

अगर आधुनिक विज्ञान वाले पूछें कि यदि सोना मकरध्वज में नहीं मिलता तो इसको साथ मिलाने से क्या लाभ है? हम कहते हैं कि आपकी साइन्स की किसी भी परीक्षा से यह सिद्ध नहीं हो सकता, सेवन करके देख लें।

एक सूक्ष्म नोकदार लोहे के टुकड़े को यदि बालू रेत का पानी चढ़ा दें तो वह शीशे को काटने लगता है, और यदि तैल का पानी चढ़ा दें तो लोहे को काटने लगता है। कहिए साइन्स का कौन सा नियम इसे सिद्ध कर सकता है।

डाक्टर लोग कहते हैं कि पारा पुंसत्व शक्ति का नाश करता है किन्तु हम कहते हैं कि इससे बढ़कर पुंसत्व शक्ति को बढ़ाने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं। वास्तव में बात यह है कि इसमें १८ दोष हैं। उनमें से एक दोष है जिससे यह नपुंसकता उत्पन्न करता है पर यह दोष पारद के शुद्ध करने से नहीं रहता।

वत्सनाभ डाक्टरी पुस्तकों में दिल को घटाने और निर्बल करने वाला माना गया है। परन्तु यदि इसको ३ दिन गौमूत्र में भिगो दें तो यही दिल को ताकत देने वाला होता है।

हमारे शास्त्रों में समभाग घृत और शहद को विष लिखा है, आप इसका अनुभव कर सकते हैं। पर विज्ञान की किसी भी रीति से इसे ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते। आप एक व्यक्ति को दो तोला घी और इतना ही शहद मिला कर प्रति दिन खिलाना शुरू करें और दूसरे को अढ़ाई तोला शहद और दो तोला घी अर्थात् समभाग न हों, सेवन करावें। कुछ ही दिनों में आपको ज्ञात हो जायगा कि हमारे शास्त्रकारों की बुद्धि कितनी प्रखर व तीव्र थी। समभाग खाने वाले व्यक्ति की भूख दिन प्रति दिन घटने लगेगी और वह रोगी होता जायगा, परन्तु विषम भाग खाने वाला बलिष्ठ होता जायगा।

घी केला दोनों भारी है परन्तु यदि वह घी में बनाकर खाया जाय तो हलका हो जायगा। निस्सन्देह ज्यों-ज्यों साइन्स उन्नति करेगी, त्यों-त्यों ऋषि द्वारा वर्णित सचाइयाँ

प्रकट होती जायँगीं। हमारे भारतवासी बालकों के गले में तांबा डालते हैं और तांबे के पात्र में जल भर कर पानी पीना उत्तम मानते हैं तांबे के पात्र में जल भर कर रखने से जल की शुद्धि होती है और उसमें कृमि-नाशक गुण प्रकट होता है।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि विज्ञान सर्वथा त्याज्य है। सब संसार को उन महानुभावों का कृतज्ञ होना चाहिये जो कि वैज्ञानिक शोध करके नई-नई बात निकालते रहते हैं। परन्तु जिसको नवीन साइन्स और आविष्कार कहा जाता है, वह प्रायः केवल युक्तियों का एक समूह ही होता है। पाश्चिमात्य चिकित्सक लोग इसी के आधार पर सिद्ध कर रहे हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा ही ठीक है, औषधियों का प्रयोग अप्राकृतिक है कोई कुछ कहता है और कोई कुछ, डा० लूई कूने ने भी तो साइन्स के आधार पर सिद्ध कर दिया था कि औषधि का प्रयोग रोगोत्पादक है, केवल चार प्रकार के स्नानों से सर्व प्रकार के रोग मिट जाते हैं। नवीन साइन्स ही के आधार पर डा० हनीमैन ने सिद्ध कर दिया कि संसार की सब चिकित्साएँ भ्रम मूलक हैं, केवल होम्योपैथिक चिकित्सा ही वैज्ञानिक है।

आयुर्वेद चिकित्सा में जहां धनियों के लिए बहुमूल्य औषधियाँ मिल सकती हैं। वहाँ निर्धनों के लिए थोड़े से थोड़े मूल्य की औषध भी मिल जाती है। जिनके लिये नाम मात्र का ही व्यय करना पड़ता है। वैद्य लोग प्रायः गरीबों को दवा मुफ़ देते हैं।

गौदन्ती हरताल को बराबर भून कर पीस कर रख लें, मैलेरिया के रोगियों की अत्युत्तम औषध बन जाती है। श्वेत फिटकरी को भून कर या फुला कर पीस कर रख लें, मैलेरिया अथवा कोई भी पारी से आने वाले ज्वर की उत्तम औषध बन जाती है। सौंफ को भून कर मिश्री मिला ले तो यह एक उत्तम पसीना लाने वाली औषध बन जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक रोग के लिये सरल तथा सस्ती औषधियाँ आयुर्वेद में विद्यमान हैं। इसमें कुछ कठिनाई नहीं, इच्छानुसार इनका प्रयोग करके देखा जा सकता है।

सबसे बड़ी विशेषता तो वास्तव में आयुर्वेद की यही हैं कि आयुर्वेदिक सिद्धान्त ऋषियों ने अनुभव की कसौटी पर परख कर सूत्र रूप में बाँधे हैं। इसीलिये परिवर्तन शील नहीं। यह भी सबको विदित होना चाहिये कि यदि कोई देश अपने स्वास्थ्य के लिये भी दूसरों के सहारे है तो वह कभी भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता है। कितना अन्धेर है कि जब तक विदेश से दवाइयों का जहाज न आवे तब तक हम अपनी बीमारी की चिकित्सा भी नहीं कर सकते हैं। हमारे लायक से लायक डाक्टर विलायत के दवासाजों के एजेन्ट मात्र हैं।

भारत और विशेष कर हिमालय पर्वत से बढ़ कर विश्व के किसी भाग में औषधियाँ तथा जड़ी बूटियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं इसी से अभी तक यह अवस्था है कि कोई देशी वैद्य जंगल में भी हो और कोई रोगी आवे, तो वह वहीं से जड़ी उखाड़ कर उसको आराम कर सकता है। साधारण एक वृक्ष या जड़ से बीसों रोगों की दवा हो सकती है। घरों में स्त्रियों को भी बीसों दवाओं के गुण मालूम होते थे और वे छोटी-मोटी बीमारियों की चिकित्सा भी कर लेती थीं, पर आजकल अंगरेजी पढ़ी स्त्रियाँ यह ज्ञान नहीं रखती हैं।

धातु और विषैली वस्तुओं को शुद्ध करने का रहस्य भी किसी अन्य पेथी वालों के मगज में नहीं आया है।

इनको यह मालूम नहीं कि सुवर्ण मिलावट से रहित खालिश होने पर भी, इसकी भस्म करने से पहिले इसमें से किन दोषों की शुद्धि करते हैं।

पारद खालिस होने पर भी १८ दोष अपने भीतर रखता है और जितने दोष दूर करते जाओ उतना ही लाभदायक होता जाता है। साइन्स यहाँ चुप है, कि शुद्धि से क्या हो जाता है, कैसे इन वस्तुओं के अवगुण दूर हो जाते हैं, क्यों विषैला कुचला अमृत हो जाता है, क्यों जमालगोटा अपनी तीव्रता खो देता है; क्यों सिंगरफ जिसे साइन्स बाजीकरण नहीं कहती शुद्ध करने से उत्तम वाजीकरण हो जाता है।

धातु उपधातुओं के भस्म करने की विधियाँ भी वैद्यों के अतिरिक्त अभी किसी को ज्ञात नहीं है। इनसे ऐसी-ऐसी औषधियाँ बनती हैं जो जादू का सा चमत्कार रोग दूर करने में रखती हैं। हीरा जिसको साइन्स केवल कार्बन (कोयला) कहती है, भस्म भी होता है और क्षय आदि रोगों के लिये रामवाण औषध है। पारद, सिंगरफ, हरताल, संखिया आदि जो आग दिखाते ही उड़ जाते हैं, उनकी ऐसी भस्में बनाते हैं, जो पुनः आग पर रखने से उड़ नहीं सकतीं। धातुओं के ऐसे सत्व निकलते हैं जो किसी साइन्स की रीति से उनमें देखे नहीं जाते।

औषधियों के गुण जानने में भी हमारे पूर्वजों को वह योग-दृष्टि प्राप्त थी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रस, गुण, वीर्य और विपाक के अतिरिक्त औषधि का एक प्रभाव होता है—प्रभाव प्रत्येक औषधि का विशेष गुण है जो साइन्स नहीं बता सकता। मोती, मूँगा, सीप, पाषाण, संगजरात का भस्म सब कैलसियम (चूना) होने पर भी अपने प्रभाव पृथक्-पृथक् रखते हैं। अपामार्ग की जड़ प्रसव-काल में स्त्री के शिर में बाँधने से बच्चा आसानी से उत्पन्न होता है। शहदेवी की जड़ शिर पर बाँध देने से ज्वर कम हो जाता है। शहद और घी समभाग मिलाने से विषैला प्रभाव करता है। ऐसे ही प्रत्येक औषधियों के प्रभाव ग्रन्थों में लिखे हैं। क्या कोई कह सकता है कि सहस्रों वर्ष पहले औषधियों के जो गुण लिखे गये हैं उनमें से आज तक एक भी मिथ्या प्रमाणित हुआ है? यही कारण है कि देशी वैद्य इस गरीबी तथा लाचारी की अवस्था में भी चिकित्सा में वह चमत्कार दिखाते हैं कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी इन "अयोग्यों" के कार्यों से दंग रह जाते हैं। जब कभी सामना हुआ देशी चिकित्सा की प्रधानता ही प्रमाणित हुई। जो कार्य ऑपरेशन के बिना सम्भव नहीं, वह औषधि द्वारा ही सिद्ध हो जाता है।

औषधि के साथ पथ्यापथ्य और अनुपान भी देशी चिकित्सा की विशेषता में से एक है। एक औषधि विविध प्रकार के रोगों में केवल अनुपान बदल कर प्रयुक्त कर सकते हैं। किसी को शहद में किसी को अद्रक में किसी को मक्खन में और किसी को घृत से देने से कफ पित्त और वात की प्रकृति में एकही औषधि प्रयुक्त हो सकती है। पुनः प्रत्येक औषधि का विशेष अनुपान भी भिन्न-भिन्न होता है। संग्रहणी-शोथ आदि में मण्डूर दिया जाय तो उसका पथ्य दही है। परन्तु यदि दुग्धवटि दी जाती है तो फिर दुग्ध के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं दी जाती। दोनों प्रकार से पूर्ण लाभ होता है। जिन बातों के लिये कहा जाता है कि ये नये अविष्कार हैं, इन सबके मूल हमारे यहां विद्यमान हैं।

वस्ति कोई नया आविष्कार नहीं है। चरक में पहले ही से १८ प्रकार की वस्ति लिखी है। शीतला का टीका भी नैपाल जैसे पहाड़ी प्रदेश में अभी तक पुराने ढंग से प्रचलित है।

वाजीकरण तथा रसायन भी जैसे कि आयुर्वेद में लिखे हैं वैसे ही अब डाक्टर लोग भी शनैः २ अपनी चिकित्सा में सम्मिलित कर रहे हैं। आयुर्वेद में पहले ही रसायन एक आवश्यक अंग है।

भारत से ही तो आयुर्वेद के सिद्धान्त यूनान ने सीखे, फिर यूनानी तथा इस्लामी तत्त्ववेत्ताओं ने अपने ज्ञान से इसमें वृद्धि की और वह आज यूनानी चिकित्सा कहलाती है। एलोपेथी यूनानी चिकित्सा से ही निकली है अब डाक्टरों ने इसमें पर्याप्त उन्नति की है इनमें से जो सिद्धान्त हमारी चिकित्सा-विधि से विरुद्ध नहीं पड़ते उन सबसे हम अवश्य लाभ उठावेंगे। विद्या जहाँ से भी प्राप्त हो लेना चाहिये। सचाई को जहाँ से भी हो ढूँढना चाहिये। यदि देशी चिकित्सा पद्धति के विरुद्ध आन्दोलन न होता तो इतना कहने की आवश्यकता ही न होती परन्तु जब आक्षेप किये जावें तो उत्तर देना आवश्यक हो जाता है।

बन्धुओं मुझे आशा है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों देशी तथा एलोपेथी चिकित्सा का मिलाप होता जायगा क्योंकि वर्तमान समय में बहुत से बन्धु भी आयुर्वेदिक औषधियाँ प्रेमपूर्वक काम में लेने लगे हैं और आयुर्वेद चिकित्सा के प्रति सहानुभूति दर्शाते हैं। ऐसे सज्जन डाक्टर बन्धुओं को मैं अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

कोई कोई वैद्यबन्धु जो कभी भी सम्मेलनों में भाग नहीं लेते और जिन्होंने सामाजिक सङ्गठन की शक्ति से प्रभाव का रहस्य नहीं समझा है, वे लोग सम्मेलनों की प्रवृत्तियों को निरर्थक मानते हैं और बिना कारण ही दोषारोपण किया करते हैं। उन बन्धुओं से मेरी नम्र प्रार्थना है कि कोई भी कार्य किसी एक व्यक्ति या समष्टि से भी एक दम फलीभूत नहीं हो जाते किन्तु उस कार्य को फलीभूत बनाने के लिये तन, मन और धन से लगातार उसके पीछे लगे रहने से ही फल प्राप्त होता है। निखिल भारतवर्ष के २२ वैद्य सम्मेलन आज तक हो चुके हैं २३ वाँ बीकानेर में होनेवाला है। और अपने प्रान्त का यह पंचम अधिवेशन है और भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में भी प्रान्तीय सम्मेलन बहुत से प्रायः हुआ करते हैं। अगर आप पूछें कि कि इन सम्मेलनों के करने से क्या लाभ हुआ—यदि आप आज से २० वर्ष पहले की स्थिति से आज की स्थिति से मुकाबिला करें तो आपको शीघ्र ही पता लग जायगा कि भारतवर्ष में जो आयुर्वेद की प्रगति नजर आती है वह सब सम्मेलनों द्वारा ही प्राप्त हुई है। सम्मेलन द्वारा उत्तमोत्तम धन्वन्तरि तुल्य महानुभावों के दर्श-स्पर्श होते हैं और उनके रामबाण से अति गोप्य से गोप्य प्रयोगों का भी प्रत्यक्ष लाभ होता है जिनको प्राप्त करने में सारी उम्र क्यों न बीत जाय, नहीं प्राप्त हो सकते। और अनेक शङ्काओं का समाधान भी वहाँ सहज ही में हो जाता है। परस्पर वैद्यों में भ्रातृ-भाव बढ़ता है—सम्मेलन द्वारा अपनी संघ-शक्ति बढ़ सकती है और बढ़ी है। आप लोग संग-बल से कठिन से कठिन कार्य भी सहज ही में कर सकते हैं, अभी समय संगठन का है।

सम्मेलन द्वारा ही—आयुर्वेद विद्यापीठ, वैद्य महासभायें आयुर्वेदिक कालेज–आयुर्वेदिक पाठशालायें कहीं-कहीं नये आरोग्यभवन और कई आयुर्वेदिक औषधालय खुले हैं। मुझे आशा है कि इसी तरह अपनी प्रवृत्ति कार्य करने की जारी रही तो शीघ्र ही आयुर्वेद का गौरव असल की भाँति हो जायगा।

लीजिये, अपने प्रान्त में ही धर्मार्थ औषधालय म्युनिसिपालटी की ओर से लोकलबोर्डों की ओर से और धनिक गृहस्थों की ओर से स्थापित हुए हैं तथा आयुर्वेद विद्यालय भी कई जगह खुले हैं जैसे बम्बई, सूरत, भावनगर, बड़ोदा, पाटण, अहमदाबाद आदि स्थलों में स्थापित हुए हैं। आयुर्वेद की उन्नति कैसे हो?

(१) जगह-जगह आयुर्वेद विद्यालय योग्य प्रबन्ध के साथ खोले जाँय।

(२) चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों का सरल भाषा में प्रकाशन कराया जाय।

(३) संस्कृत और हिन्दी भाषा में वैद्यक परीक्षायें ली जायँ।

(४) वैद्यक धंधा करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य जब तक पूर्ण वैद्य न होवें तब तक पूर्ण चिकित्सा कर्म में हाथ न डालें।

(५) आयुर्वेद पढ़ने की इच्छा रखने वाले को पहले हिन्दी और संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये; साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी होना चाहिये।

(६) अभ्यास कर्म पूरा करने किसी विद्वान् और अनुभवी वैद्य के पास रह कर दवा बनाने और चिकित्सा करने का अभ्यास करना चाहिये।

(७) विदेशी दवाओं से परहेज किया जाय, क्योंकि आजकल बहुत सी विदेशी पेटेण्ट दवाइयों का खूब जोर शोर से प्रचार बढ़ गया है जिनसे लाभ के बदले हानि होती है और अपने आर्यधर्म के विरुद्ध है उनका कुछ वर्णन करना आवश्यक है और उनके बजाय अपनी आयुर्वेदिक औषधियाँ काम कर सकती हैं उनका भी वर्णन कर आप महानुभावों के ध्यान में लाना चाहता हूँ।

विदेशी औषधि का नाम।	उनमें पड़ती धर्मविरुद्ध चीजें।	प्रतिनिधि देशी औषधि।
पेपसिन	डुक्कर, भेड़, वाछड़े वगैरह के होजरी में का निकाला हुआ सत्व	अरण्ड ककडी का क्षीर द्राक्षासव या पाचनवटि
मेलीन्स फूड वा दूसरे फूडस—	बहुत करके अंडो का रस	बालजीवन
असेन्सस ऑफ चीकन (मुर्गा) ,, बीफ (बैल) ,, मटन (भेड़)	मांस	चन्द्रोदय-द्राक्षासव, जीवन तथा पूर्णचन्द्रोदय
हेजेलीन स्नो	अंडों का रस	बादाम का तैल, गरी का तैल,
काडलीवर ओइल इत्यादि	मछली का तैल	सु. वसन्तमालिनी और मालिश के लिये लाक्षादि तैल
हिमाग्लाबीन	लोही का भाग	लोहभस्म, लोहासव
मेनोलावाहन	मद्य	द्राक्षासव
वाइन कारनीस	दारू और मांस	द्राक्षासव
सार्सापेरिला	दारू	बृहद मंजिष्ठादि क्वाथ
साबुन	चरबी	शुद्ध देशी साबुन
ओवलटाइन	अन्डा इत्यादि वस्तु	द्राक्षासव

वर्तमान समय में आयुर्वेद के विद्यालयों में अधिकांश में प्रायः कायचिकित्सा ही की शिक्षा दी जाती है। शस्त्र-चिकित्सा की शिक्षा भी वैद्यों को मिलना अत्यन्त आवश्यक है। शस्त्र-चिकित्सा का ज्ञान नहीं होने के कारण शस्त्र साध्य रोगी जब हमारे पास आता है तो

उसको डाक्टर के पास भेजना पड़ता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि धर्मार्थ औषधालयों में जहाँ एक ही चिकित्सक से काम चलाना हो, वहाँ जनता की इच्छा होने पर भी इसी कारण से वैद्य नहीं रखा जाता कि वह सामान्य शस्त्र क्रिया भी नहीं कर सकता, आयुर्वेद विद्यालयों के संचालकों को इस तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिये और अपनी आयुर्वेदिक-पद्धति अनुसार ही ऐसे शस्त्र-चिकित्सा के वैद्य तैयार किये जाँय ताकि ऊपर की खामी पूरी हो जाय—यह कार्य बड़े महत्व का है।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदीय हस्तलिखित ग्रन्थों का बड़ा भारी संग्रह अभी भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों में और वैद्यों के यहाँ मौजूद है उनमें से जो आवश्यक होवे उनका प्रकाशन कराना भी आवश्यक है। मुझे सहर्ष कहना पड़ता है कि ऐसा आदरणीय कार्य हमारे प्रान्त के अग्रगण्य सुप्रसिद्ध आयुर्वेद-मार्तण्ड पूज्य पं० यादव जी भाई आचार्य ने अब तक कम से कम ६० से ज्यादा आयुर्वेदीय प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को छपा कर प्रकाशित करके आयुर्वेद की बड़ी सेवा कर वैद्य-समाज पर बड़ा उपकार किया है विशेष आनन्द और गौरव की बात तो यह है कि सारे भारतवर्ष के वैद्य महानुभावों ने आपकी योग्यता और कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर आपको दो समय (हरिद्वार-ग्वालियर) निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलनों के अध्यक्ष स्थान का मान भरा आसन देकर आपकी योग्य कदर करके अपने प्रान्त का गौरव बढ़ाया है। वैसे ही आयुर्वेद-भास्कर पूज्य पं० हरिप्रपन्न जी आचार्य ने भी रसयोगसागर जैसा ग्रन्थ निर्माण करके वैद्य समाज का अतिशय उपकार किया है ऐसा बड़ा रस का उत्तम ग्रन्थ इस समय में किसी ने नहीं बनाया।

और भी अनेक विद्वान् वैद्य महानुभावों ने जैसे कि रसवैद्य नगीनदास भाई मालिक उँझा फार्मसी ने भारत-भैषज रत्नाकर के चार भाग, वैद्यराज बापालाल गडबडदास शाह ने आदर्श निघण्टु के दो भाग—राजवैद्य जीवराम भाई कालीदास गोंडल निवासी ने रस-रत्न समुच्चय आदि और स्वर्गस्थ वैद्यराज जटाशंकर भाई ने गृहवैद्यक आदि ग्रन्थें तथा स्वर्गस्थ वनस्पति शास्त्री वैद्यराज जयकृष्ण भाई ने वनस्पति शास्त्र के अन्यान्य ग्रन्थों को प्रकट करके आयुर्वेद की अपूर्व सेवा की है इन महानुभावों को जितना धन्यवाद दिया जाय इतना ही कम है हम सब इनके ऋणी हैं।

आर्य-वैद्यक में, रस-शास्त्र द्रव्यगुण-शास्त्र और चिकित्सा आदि में संशोधन (रिसर्च) होने की बड़ी आवश्यकता है। आयुर्वेद में योगों का संग्रह बड़ा है। यद्यपि पूर्वाचार्यों ने सब योगों को अनुभव करके ही लिखा है तथापि उनमें से विशेष फलप्रद निर्माण करने में सरल और वर्त्तमान वैद्यों के अनुभूत सब रोगों की चिकित्सा जिनसे बन सके, ऐसे योगों का एक संग्रह विद्यार्थियों के पाठ्य-पुस्तक रूप बनाया जावे तो बहुत अच्छा होवे। बड़े हर्ष की बात है कि पाश्चिमात्य देशों की भाँति श्रीधन्वन्तरि की कृपा से अपने प्रान्त में बहुत सी फार्मसियाँ स्थापित हो गई हैं। इनसे वैद्य-समाज तथा जन-समाज दोनों ही खूब लाभ उठा रहे हैं। उनके संचालकों से मेरा नम्र निवेदन है कि आप लोगों के कारखानों में बनने वाली औषधियों की बनावट एकही प्रकार की होनी चाहिये। अकसर, ऐसा मालूम हुआ है कि एकही औषध यदि दस भिन्न-भिन्न जगह से मँगाई जावे तो उनके रंग, स्वाद और गुणों में बहुत फर्क दिखाई देता है। इसलिये यदि आप लोग एक आदर्श औषधि-निर्माण-पद्धति (फर्माकोपिया) विद्वान् वैद्यों की सलाह से तय्यार करके प्रत्येक औषधि उसी पद्धति से

बनावें तो आप महानुभावों को विशेष लाभदायक होगा। प्रयोग बनाने में औषधियाँ विशुद्ध अकृत्रिम और नई काम में लिया करें। जो औषध जीर्ण एवं हीन वीर्य हो गई हों उनका विक्रय न करें, ऐसा करने से वैद्यसमुदाय एवं जनता में उनके प्रति विश्वास की अभिवृद्धि होगी और वे निर्भयता से उनकी औषधियों का उपयोग करेंगे तथा उनके व्यापार में भी विशेष लाभ होगा।

औषधों के योग बनाने में औषध द्रव्य जितने ताजे अकृत्रिम तथा विशुद्ध उपयोग में लिये जायँगे उतना ही वह योग विशेष गुणप्रद होता है। परन्तु इस विषय में हमारी दशा बड़ी शोचनीय है। बड़े-बड़े शहरों में अच्छी ताजी औषधियाँ नहीं मिलतीं, पंसारी जो कुछ अच्छी बुरी देता है उसी से काम चलाना पड़ता है। इसलिये छोटे-बड़े शहरों में वैद्यों द्वारा ही औषध-भण्डार खोलने की बड़ी आवश्यकता है।

वैद्य सम्मेलन की ओर से परीक्षोतीर्ण और प्राचीन वैद्य जिन्होंने किसी भी प्रकार की परीक्षा नहीं दी है परन्तु पठित—और अनुभवी हैं उन सबों को रजिस्टर करने की आवश्यकता है। रजिस्टर हुए वैद्यों को प्रेक्टिस करने देना अन्य को नहीं ऐसा कानून प्रान्तीय सम्मेलन तथा महा सम्मेलन द्वारा ही प्रचलित होना चाहिये। यह विषय उपेक्षा करने योग्य नहीं है क्योंकि अपने ही प्रान्त में कई देशी राज्यों में ऐसा रजिस्टरी का कानून बन गया है। मुझे आशा है कि आप इस विषय की तरफ अवश्य लक्ष्य देंगे।

वैद्य समाज का कर्तव्य होना चाहिये कि एक केन्द्रीय औषधि उद्यान के रूप में बनाया जावे जिसमें कि प्रत्येक औषधोपयोगी वनस्पति उत्पन्न की जावे जिससे आयुर्वेद प्रेमी सभी व्यक्ति औषध सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकें। हर्ष की बात है कि अपने प्रान्त में कई आयुर्वेदिक मासिक पत्रों जैसे कि, वैद्यकल्पतरु, आयुर्वेद-विज्ञान, आरोग्य-सिन्धु, आयुर्वेद-रहस्यार्क, और भाग्योदय आदि द्वारा भी आयुर्वेद का पूर्ण प्रचार हो रहा है।

वैद्यों को पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। उनको चाहिये कि परस्पर मेल रखते हुए एक दूसरे की निन्दा करने की अपेक्षा दूसरे के सामने अपने भाइयों के गुण रखा करें, एक दूसरे की औषधि बर्तने तथा एक दूसरे से परामर्श लेने की प्रथा प्रचलित करें। परामर्श लेने पर एक विद्वान् वैद्य दूसरे वैद्य के रोगी की सम्मति तो दे दे, परन्तु उस चिकित्सक की इच्छा बिना उस रोगी की चिकित्सा न करे; प्रत्येक स्थानों में सभायें स्थापित हों जो कि अपनी उन्नति के साधन सोचती रहें। म्युनिसिपल-डिस्ट्रिक्टबोर्ड और कौंसिल के मेम्बरों द्वारा अपनी माँगें कौंसिल तथा बोर्डों में पेश कराना, जनता को अपनी आवश्यकतायें निरन्तर बताते रहना; यत्न करके आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय खुलवाते रहना आदि भी वैद्य सभाओं के कर्तव्य होने चाहियें। कुछ चिकित्सक आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न अङ्गों के विशेषज्ञ (Specialist) भी बनें जिससे दूसरे समय पर उस-उस रोग के सम्बन्ध में उनसे सम्मति ली जा सके, और वे भी अन्य रोगी के सम्बन्ध में दूसरों से परामर्श ले सकें। इसके साथ ही यह ध्यान रखना चाहिये कि आयुर्वेद चिकित्सक को स्वयं स्वच्छ सुथरे रहना चाहिये वैसे ही अपना औषधालय औषध आदि भी सब प्रकार स्वच्छ तथा निर्मल रखनी चाहिये। औषधालय की प्रत्येक वस्तु सुन्दर दिखाई दे ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये।

आजकल झूठे विज्ञापन वालों ने भी अनेक प्रकार के प्रपञ्च रचकर प्राचीन आयुर्वेदीय औषधि और चिकित्सा की दुर्नामता की है इसके लिये वैद्य समाज इस तरफ अवश्य ध्यान

देकर बड़ोदा प्रान्तीय सम्मेलन में पास हुए प्रस्ताव का अवश्य अमल कर इन झूठे विज्ञापन बाजों को योग्य नसीहत देंगे ।

हिन्दू राजाओं के जमाने में आयुर्वेद संसार की सभी चिकित्सा विद्याओं की अपेक्षा श्रेष्ठ और भारत सन्तानों की स्वास्थ्य-रक्षा का एक मात्र अवलम्ब था । भारतीय चिकित्सा भारतीय सन्तान की मातावत् हितकारिणी थी । पहिले की भाँति सब राजा-महाराजा लोग इसका ही प्रचार अपने राज्यों में करना शुरु करें और इस प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सा को पूर्ण राजाश्रय दें ऐसी उन महानुभावों से मेरी प्रार्थना है ।

बन्धुओं इस गुजरात कच्छ काठियावाड़ प्रान्त में अनेक धन्वन्तरि-स्वरूप वैद्यरत्न प्रगट हुए हैं जिन्होंने इस आयुर्वेद चिकित्सा को मृतप्राय स्थिति से आज इस उच्च गति पर पहुँचाया है जिनके हजारों शिष्यगण आज भी नितान्त आयुर्वेद की तन, मन और धन से सेवा बजा रहे हैं उन सद्गत महानुभावों से आप अनभिज्ञ नहीं हैं तथापि उन प्रातःस्मरणीय धन्वन्तरि तुल्य महर्षि झन्डुभट्ट जी बावा भाई, पूज्य कताभट्ट जी पूज्य प्रभुराम भाई तथा पूज्य जटाशङ्कर भाई वगैरह-वगैरह हुए हैं इनके हम सब ऋणी हैं ।

इस वर्ष में श्रीमान् वैद्यभूषण त्र्यम्बकलाल त्रिभुवन मुनि जी प्राणाचार्य श्रीमान राजवैद्य फूलशङ्कर बावा भाई तथा धीरजराम जयशङ्कर भाई आदि महानुभावों के स्वर्गवास से मुझे अत्यन्त खेद हुआ है । इनके स्वर्गवास से वैद्यसमाज और आयुर्वेद को बड़ी हानि पहुँची है ।

बन्धुओं मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि सब मिलकर यत्न करो जिससे कि अपनी प्रथायें इस देश में प्रचलित रहती हुई कायम रह कर जनता को लाभ पहुँचाती रहें । मनुष्य उद्योग करता है तो परमात्मा सहायता करता है प्रभु अनुग्रह करे ।

॥ इति शुभम् ॥

श्रीमान् डॉ. एच्. वी सावनूर. एल्. एम्. एन्ड एस्. **बेळगाम।**
अध्यक्ष-कर्नाटकप्रान्तीय २ वैद्यसंमेलन **बेंगळूर** (सन १९२६)।

कर्णाटकायुर्वेद तृतीय सम्मेलनस्य सभापतेः

आयुर्वेद-भूषण श्री० एम० वी० शास्त्री महोदयस्य

अभिभाषणम्

वन्दे वैद्यगुरुं शान्तम् मुक्ताऽऽत्मानं जितेन्द्रियम् ॥
सभ्यांश्चापि प्रवयसो भेषजाऽऽगम सूरिषु ॥
यस्त्यक्त्वा रूपमाद्यं प्रभवति जगतोऽनेकधाऽनुग्रहाय ।
प्रक्षीण क्लेश राशिर्विषम विषधरोऽनेक वक्त्रस्सुभोगी ॥
सर्वज्ञानप्रसूतिर्भुजग परिकरः प्रीयते यस्य नित्यम् ।
देवोऽहीशः सवोऽव्यात् सितविमलतनुर्योगदो योगयुक्तः ॥

मान्याः ! अध्यक्षाः स्वागतिकाः सदस्याश्च !

मय्यविदुषि वैदुष्यं तथाऽकुशलेऽपि कौशल्यं सम्भाव्य सुगृहीताऽभिधाना भवन्तो विदुषा कुशलेन च निर्वाह्येऽस्मिन् महत्याः कर्णाटकाऽऽयुर्वेदस्य सभायाः कर्मणि मामायोजयन्तो विधेये कथं कृतकृत्याः स्युरिति न शक्नोमि वक्तुं अथवा स्वभावसौजन्यं यच्छ्रीमतां मय्यप्येवादृशं गौरवमजनयत् किमुताऽकृत्रिमं भवतां "विजयपुरा" ऽभिजनानां देश वात्सल्यमेवं दक्षिणेषु कर्णाटकेषु विलुप्तं सौहार्दं पुनरप्येधयितुं वा कथमन्यथा सतोऽपि कर्णाटकस्य भिन्नभिन्नेषु सुप्रथितेषु प्रदेशेष्वथवाऽस्मिन्नेव सदसि विद्यावयोवृद्धान् विज्ञानवतो वैद्यतल्लज्ञानुदास्य पश्चिमस्य पारावारस्याऽपि तीरमधिवसति मयि भवतां परीक्षणेक्षणपक्षपातः आस्तां तावत्किमनया दीर्घया शङ्कया परमहमेतावदेव तत्रभवतस्सदस्यान् प्रार्थये क्षन्त्वा मदीयं बाल्यं वैयात्यं साधयितव्यस्य कार्यस्य निर्वहणे भवन्त एव स्वप्रतिभा प्रभावेण धन्यं मां विधतामिति ।

प्रमेयः ।

आर्याः ! सम्भावयामि कर्णाटकाऽऽयुर्वेदमण्डलनामाऽऽयुर्वेदमहामण्डलस्यैव दलमथवा शकलं वाऽस्ति । तथा च मण्डलमेतत्तन्नियमावल्याः पञ्चमनिबन्धं तदुपनिबन्धांश्चाऽनुमन्वीत तदधीनत्वात् । तदित्थं सम्मतत्वान्महामण्डलस्य सुदुद्देशेभ्योऽनन्या एव ह्येतल्लघुमण्डलस्याप्युद्देशाः तदेवं भवति तेषामेवोद्देशानामन्तरङ्ग भावेन निर्वाहोऽस्माकं प्रमेय इति । प्रमेयांश्च नियमावल्यां निर्दिष्टान् प्रविभज्य प्रतिविभागं विवृद्धान् वार्षिकान्विषयान् मण्डलस्याऽस्यैव ज्येष्ठमन्त्री सदस्यान् भवतस्सम्यक् श्रावयेदिति निश्चिनोमि ।

महाभागाः ! 'न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः" इति लौकिकमाभाणकं कृतार्थयन्तो "विजयपुर" निवासिनो भवन्तो भवत्कार्यमार्गे वारंवारं समापतत आधिदैविकान् क्षामाऽतीसारविषूच्यवग्राहादिकान् आधिभौतिकांश्च विपक्षजनजनितान् क्लेशाऽतिशयान् विविधानन्याननुस्मरणीयान् विघ्ननिचयानपि सर्वथाऽगणयित्वा परमया भवकारणस्य भगवतःकरुणयाऽस्मिन् शुभे

दिवसे निरन्तरायमायुर्वेदकर्णाटकमण्डलस्य महतीं सभां समधिवेशयितुं समर्था अभूवन्नित्यनुवादिना महता जयघोषेण ध्वनितुं नितान्तमामोदावसरः प्रेक्षावतां सतां ।

पारिषद्याः ! येनाऽहं सदसोऽस्य पतित्वेनवृतस्तन्मां चपलयत्यस्थाने किमुत स्थाने वाऽभिभाषितुं पञ्चषाणि रिक्थानि सारजातानि वा वचनानि तथापि न च तान्यपलापत्वेन नापि च विप्रलापत्वेन परिणमेयुरिति मे प्रत्याशा । यदर्थेऽयं न केवलमस्माकं कर्णाटका नामापि तु निखिलभारतीयानां विज्ञानिनां विशेषतो वैद्यविदुषां समुद्यमः यदर्थे च वर्षे वर्षे तत्तत्प्रदेशेषु च भारतस्यैवं समवेतास्स्मः । यदर्थे चाऽस्माकं भिन्नभिन्नसिद्धान्तानां वैद्यावतंसानां सङ्गमस्सङ्गच्छते । सोऽयमर्थस्त्वायुर्वेदस्य सर्वांशेनाऽभ्युदयः । सत्याञ्चैवमस्माकं स्थितौ तस्यैव प्रधानस्य सारभूतस्याऽऽयुराम्नायस्याऽसकृदाघ्रातचरेऽपि विचारे किञ्चिदिव मदीयमपि तत्र मनोऽव्यवसायमाधित्सायि । तत्र च सन्दर्भमीषन्निर्वर्ण्य उद्दिष्टार्थमवतारयिष्यामि । तथाहि प्रवर्तमानस्य १८४९ तमस्य शालिवाहनशकस्याऽन्तिमं शतद्वयमारभ्यैतावदवधि केवलं परतन्त्राणामारण्यककल्पानामस्माकं न वेशमात्रेषु किन्त्वाहारेषु विहारेषु व्याहारेषु व्यापारेषु च परानुकरणञ्चांऽगहारादि देहवृत्तौ चिन्तनादि चित्तवृत्तौ च निरभ्यन्तरं प्राविशदिति । विदितचरोऽयं विदुषां निष्पक्षपातिनां वृत्तान्तः तदेवमातलात्भूतलात् सात्विकप्रकाशप्रसरेषु समूलच्छेदं छिन्नेषु सत्स्वस्मासु भारतीयेषु न केवलं भिषजोऽपि तु पुरोधसोऽर्थसाधका मन्त्रिणस्सामन्तादिसार्वभौमान्ताः राजानः ज्यौतिषिका वैदिका विविध कलावतंसा विद्वांसो विज्ञानिनः कृषकान्ताश्चापरेऽपि किमधिकेन सर्वे च तमोभूयिष्ठास्स्मः । न जाने एतेषु के केषामत्युच्चावचनीचगतेर्हेतुरिति । परं “नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेणेति” कविवरस्य कालिदासस्योक्तिमेवाऽत्र स्मरामि । तदेवं कालस्वभावात् किमुत प्रकृतिनियमादथवा परमेश्वरसङ्कल्पादुताऽस्माकमेव कर्मविपाकादाऽऽहोस्वित् सद्धर्मस्यैव लोपाद्वा महीतले च नीरन्ध्रतमोविलसिते किं वयमेव निन्द्यास्स्मोवैद्याः । कथमपि वा भवतु । यत् ‘उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानं अवसादयेदिति” भगवच्छासनमेवाऽस्माकमभ्युदये प्रवृत्तानां प्रमाणमस्तां बलत्तरमित्युक्त्वा समुद्दिष्टार्थं तावदवतारयामि ।

उद्दिष्टार्थस्त्वायुर्वेदः । आयुर्वेद इति यौगिकोऽन्वर्थं नामाऽयं शब्दोऽस्य च लक्षण निर्वचनानि चरकादिभिरभिहितानि भूयोभिश्च समासद्भिरावृत्तानीत्याबालवृद्धानां भिषजां विदितचराणीत्येकान्ततस्समुदासेऽत्र तानि, तस्य चाऽऽयुर्वेदस्योत्पत्तिमाविर्भावं, वाऽधिकृत्य तुल्याऽतुल्याऽभिप्रायाभ्यां गिरं गिरन्ति विपश्चितश्चिरत्ना नूत्नाश्च ।

तथाहि । अग्निवेशस्स्वस्य तन्त्रस्य प्रथमेऽध्याये “ब्रह्मणाहि यथा प्रोक्तमिति” । सुश्रुतस्तु “ब्रह्मा प्रोवाचेति” । वाग्भटो “ब्रह्मा स्मृत्यायुषो वेदमिति” । “विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्निति” च भावमिश्रः ऋग्यजुस्सामाऽथर्वाऽऽख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः । कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुरिति च ब्रह्मवैवर्तपुराणमपि । प्रतिपादयन्ति वाग्भटमन्तरा सर्वेऽप्यायुर्वेदं प्रति ब्रह्मणः प्रवक्तृत्वं कर्तृत्वाञ्चाऽमन्यन्त वाग्भटस्तु हृदये स्मर्तृत्वं ब्रह्मा बुध्वा सनातनमिति संग्रहे बोद्धृत्वञ्च व्याचख्यौ यद्यपि विषयममुं बहवो बहुषु च सभासु सभापतयोऽवर्णयन् । तत्किमनेन पुनरत्राऽनुपठनेनेत्यायादाक्षेपस्तत्रोच्यते सत्यं तथापि विशेषविचारायाऽनुपठनमिति विशेष विचारश्चोत्तरत्र विधास्यते । ब्रह्मणा स्मृतस्य किंवा बुद्धस्याऽथवा प्रोक्तस्य कृतस्य वा वेदग्रन्थस्य परिमाणविषये सोऽनन्तपारं विस्कन्धमायुर्वेदं महामतिरिति चाऽग्निवेशः श्लोकशतसहस्रञ्च कृतवान्

स्वयम्भूरिति सुश्रुतः स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुमिति च भावमिश्रोऽप्यब्रुवन्, एतावता ब्रह्मा लक्षश्लोकात्मिकां ब्रह्मसंहितां नाम चिकित्सासंहितां कृतवानिति पर्यवस्यति। सैषैव संहिता ह्यवशिष्टाऽऽयुर्वेदग्रन्थानां मूलमिति च सिध्यति । परन्तु दुर्दैवशात् सा ब्रह्मसंहिता विलीना नाऽस्माभिरिदानीं उपलभ्यते, तस्मादेव हि वयं हेतुलिंगौषधिविचारे प्रतिपदं स्खलामः, इत्यवदातश्रुतानां विदितमास्ते पुनरत्र विशेषविचारश्चाऽयं विद्यते । चरकसंहितायामाग्निवेशतन्त्रस्य वातकलाकलीये द्वादशे वातादीनां विचारे, यज्जः पुरुषीये पञ्चविंशे आमयोत्पत्तिविचारे, आत्रेयभद्रकाप्यीये रसविचारे, शरीरस्य षष्ठेऽध्याये—विप्रतिपत्तिवादास्तत्र बहुविधाःसूत्रकारिणामृषीणां सन्तीति गर्भांगोत्पत्ति विचारे आयुर्वेद समुत्थानीये चतुर्थपादे भृग्वङ्गिरोऽत्रिवसिष्ठकश्यपाऽऽगस्त्यपुलस्त्यवामदेवाऽसितगौतमप्रभृतयो महर्षय इति समुत्थानीयविचारे विमानस्य रोगभिषग्जितीयेऽष्टमे भिषग्बुभूषुः शास्त्रमेवाऽऽदितः परीक्षेत । विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके इति च शास्त्रविचारे इत्येवमन्यत्राऽपि कालाऽकालमृत्युविचारे । भेषजाऽभेषज साधनविचारे सत्वजीवविचारे एवम्भूतेष्वन्येषु भूयोविचारेषु स्थितप्रज्ञानां सर्वज्ञानां ऋषिवर्याणां स्वतन्त्रत्वेन वादविवादौ च यथाशास्त्रं प्राचलतां, एवं सुश्रुतोऽपि शारीरस्य प्रथमे तद्गुणा एव पुरुषा भवन्तीत्येके भाषन्ते, वैद्यके तु स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा । परिणामञ्च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः । भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्था इति, न चाऽऽयुर्वेदशास्त्रेपूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्चेति । शारीरस्य तृतीये अष्टाविंशे सूले·सुभूति शौनक कृतवीर्य पाराशर्य मार्कण्डेयानां मतानि प्रदर्श्य युगपत्सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिरिति च वर्णितवान् । अत्र दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्, एवंभूतानि च परतन्त्रोद्धृतानि वाक्यानि बहूनि सन्ति । नैतावन्त्येव वाक्यानि । सुश्रुतः कण्ठतोऽपि सूत्रस्थानस्य प्रथमेऽध्याये अन्यशास्त्रोपपन्नानाञ्चाऽर्थानामर्थवशादिति व्यक्तमुज्जुघोष । किञ्च सुश्रुत शारीर प्रथमोध्यायः, चरक शारीर प्रथम पञ्चमाऽध्यायौ च बाहुल्येन सांख्यमया एव सन्ति । तदित्थम्भूतायाञ्च दशायां ब्रह्मसंहितैकशरणा आयुर्वेदग्रन्था अथवा संक्षिप्तब्रह्मसंहितामूला इति वा कथयितुं कथम्पार्यंत । किञ्चाऽऽयुर्वेदस्य ब्रह्मकर्तृत्वमेवाऽङ्गीकुर्वन्त ऋगादिवेदोपवेदत्वं वाऽऽयुर्वेदे किमिति सम्बध्नीयुरिति हि मे महान् वितर्कस्सञ्जायते । तत्र चैवं समाधानं सङ्गच्छते । क्रमेण स्वतन्त्रपरतन्त्राभ्यां संयुक्तञ्चाऽऽयुर्वेदशास्त्रमात्रेयादिभिश्शिष्यबुद्धिविकासार्थं प्रकाशितं चास्ते । तत्र च स्वतन्त्रन्नाम—हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् । त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधेयं पितामहः । सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामतिरिति अग्निवेशेन निर्दिष्टम् । तेन च हेतून् लिङ्गानि औषधानि च प्रत्येकं प्रत्येकं स्कन्धे यथाक्रमं निरूपितवान् ब्रह्मा स्वसंहितायामिति भवति न चाऽऽयुर्वेदे हेतुलिङ्गौषधेषु सांख्यादीनां मतानि समाददुः । हेतुलिङ्गौषधेभ्यो व्यतिरिक्तविषयाणां ग्रहणेन च पौर्वाऽऽपर्य विरोधो न संघटते । तस्मादायुर्वेदस्य त्रिस्कन्धात्मकस्य ब्रह्मसंहितैव मूलमिति मननं न प्रतिहन्यते—तेन च ऋगादि वेदोपवेदत्वमायुर्वेदस्य समञ्जसं भवतीति न विस्तार्यतेऽयं विषयोऽल्पाऽवकाशत्वात् । "औषधान्यगदोविद्या दैवी च विविधा स्थितिः । तपसैव प्रसिध्यन्तीति" मनूक्तदिशा त्रिस्कन्धश्चायुर्वेदो हि ब्रह्मणो महत एव तपसः फलमिति फलितार्थः । न च सृष्ट्यादौ ब्रह्मज्ञानमन्तरा ज्ञानांकुरो जनेषूत्पद्येत । यदिदानीन्तनानां वैज्ञानिकानामपि ब्रह्मगः एव ज्ञानपरम्पराप्रसरो नाऽभविष्यन्नाऽभविष्यदेव चिकित्साज्ञानमपि तेषु, तदित्थं कार्यकारणभाव सम्बन्धे सिद्धे सर्वथा भारतीयानामेव ज्ञानप्रसरोऽन्यत्र न्यास्तो वैज्ञानिकानाञ्चाधुनिकानां सर्वेषा-

मपि ज्ञानप्रकाशे बीजमित्युच्यते कस्मात् ब्रह्मणो ज्ञानमयस्याऽऽयुर्वेदशास्त्रस्याऽत्रैव प्रादुर्भावात् ।

पुनश्चाऽत्र विज्ञानकुशलास्सदस्याः प्रार्थ्यन्ते । यदस्मिन्विषयेऽतिमात्रं परिश्रम्येतोऽप्यधिकं तत्वं च याथातथ्येन निष्कासयन्तु । निष्कासयन्तु च चरित्रकुशला अस्यैवाऽऽनुकूल्येन विविधानश्रुतचरान्विषयानिति च ।

यच्च ब्रह्मणा प्रोक्तमायुर्वेदशास्त्रं त्रिस्कन्धं हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणमिति चोक्तम् तत्किञ्चिदिव निरूप्यते । हेतवो लिङ्गानि औषधमिति त्रयो भिन्नविषयास्तेषां यथाक्रमं त्रयश्च स्कन्धास्तेन प्रथमो हेतुस्कन्धः, द्वितीयो लिङ्गस्कन्धः, तृतीय औषधस्कन्ध इत्येतेषु त्रिष्वेव स्कन्धेषु निर्दिष्टाऽऽयुर्वेदविषयः परिसमाप्यते । तमेव किञ्चिद्विस्तृत्य ब्रवीमि । चरकस्याऽष्टौ स्थानानि सुश्रुतस्याऽपि स्थानानि पञ्च तथोत्तरतन्त्रञ्च त्रिस्कन्धलक्षणेऽस्मिन्नेवाऽवगृह्न्ते । तथाहि,

(१) हेतुस्कन्ध इति । हेतूनां स्कन्ध इति तत्पुरुषः । हेतुशब्देन निमित्तमायतनं कर्ता कारणं प्रत्ययः समुत्थानं निदानमित्येतेषाञ्च ग्रहणम् । आध्यात्मिकः आधिभौतिकः आधिदैविक इति । असात्म्येन्द्रियार्थयोगः प्रज्ञापराधः परिणाम इति । प्रधानं व्यभिचारीति दूरस्थः निकटस्थ इति । रुग्जनकः दोषप्रकोपकः इति । व्यञ्जक उत्पादक इति । बाह्यः आभ्यन्तर इति । प्राकृतः वैकृत इति । प्रकृतियोगः अप्रकृतियोग इति । आशयाऽऽकर्षीति च । पल्लवीभूतस्यैतस्यैव समुदायः स्कन्ध इत्यर्थः । एतेन स्थूलभुता समुच्चयेन व्याख्याता आध्यात्मिकादयः समावेश्यन्ते, अत्रैव द्यावापृथिव्यौ अन्तरिक्षं च ।

(२) लिङ्गस्कन्ध इति । लिङ्गशब्देन पूर्वरूपं । लिङ्गं आकृतिः, चिह्नं, संस्थानं, व्यञ्जनम् , रूपमित्यादि शब्देन परीतं लक्षणञ्च, जात्यागतिशब्दाभ्यां परीता षट्प्रकारा सम्प्राप्तिश्च यथा संख्यासम्प्राप्तिः, प्राधान्यसम्प्राप्तिः, विधिसम्प्राप्तिः, विकल्पसम्प्राप्तिः, बलसम्प्राप्तिः, कालसम्प्राप्तिरिति । वर्णस्वरीयादिलक्षणोऽरिष्टराशिः । तथा च पूर्वरूपस्य लक्षणस्य विविधात्मिकायास्सम्प्राप्तेः नानात्मकस्याऽरिष्टस्य चाऽऽश्रयभूतस्य शरीरस्य च शास्त्रं सर्वमस्मिन्नेव लिङ्गस्कन्धे समाविशति ।

(३) औषधस्कन्धः । औषधानां स्कन्धः औषधस्कन्धः इति । औषधशब्देन आध्यात्मिकादि त्रयश्चोपायाः सात्म्यशब्दपरीताः अष्टदशप्रकारा उपशया, हेतुविपर्यस्त हेतुविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽन्नविहाराः । व्याधिविपर्यस्त व्याधिविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽऽन्नविहाराः । हेतुव्याधिविपर्यस्त हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारिणश्चौषधाऽऽन्नविहाराः । मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवास स्वस्त्ययन प्रणिपात तीर्थगमनादि रूपो दैवव्यपाश्रयः । आहारौषध योजनारूपो द्रव्यव्यपाश्रयः । मनोनिग्रहादि रूपः सत्त्वावजयश्च । वमनविरेचनाऽऽस्थापनाऽनुवासन शिरोविरेचन प्रकारं अन्तः परिमार्जनं । बाह्यस्पर्शप्रधानं अभ्यङ्ग स्वेद प्रदेहपरिषेकोन्मर्दनोद्वर्तनादिरूपं बहिः परिमार्जनम् । छेदन, भेदन, व्यधन, दारण, लेखनोत्पाटन, पृच्छन, सीवनैषणाऽग्निक्षार जलौकोरूपं शस्त्रप्रणिधानं सन्तर्पणोपक्रमः अपतर्पणोपक्रमश्चाऽन्ये चैतादृशा औषधस्कन्धे समाविशन्ति ।

तदिदानीं त्रिस्कन्धस्य हेतुलिङ्गौषधज्ञानस्य ब्रह्मकर्तृकस्याऽऽयुर्वेदस्य स्वरूपं सम्भाव्य किञ्चिदवोचम् ।

यदा समन्वेषणेन भारतस्य क्वापि भूभागे अस्मद्भाग्यवशात् ब्रह्मसंहितोपलभ्येत तदा समूलनाशं नश्येदस्माकं चिकित्साविषयस्संदेहः ।

अग्निवेशसदृशैराप्तैरभिहितत्वात् गगनकुसुमवत् ब्रह्मसंहितायाः केवलाऽसम्भवत्वं नैव शक्यते कल्पयितुमिति युवानः खलु चिकित्सकाः प्रयतन्तामस्य चान्वेषणे इति तानभ्यर्थये ।

इत्यायुर्वेदमूलभूताया ब्रह्मसंहिताया विषये किञ्चिदुक्त्वा आसिंहलहिमाचलमधिवसतां सद्यस्तनानां चिकित्सकानां हृदयपुण्डरीकाणि संक्षोभयतस्त्रिदोषस्य विचारे किञ्चिद्विवक्षामि ।

महाभागाः ! पौरस्त्येषु पाश्चात्येषु च वैद्यकृतिषु कृतमुखा नैके चिकित्सकाः कतिपयानारभ्य संवत्सरान् त्रीन् दोषानुद्दिश्य विचारयन्ति विवदन्ते चेति वयं सर्वे मन्यामहे । विवादस्य चाऽस्य तेषां वादमर्यादाऽनुरोधेनाऽपरिसमाप्तत्वात् निर्णयश्चैतदीयो दवीयान् हि विचारे चैवम्भूते गम्भीरे मम मादृशस्य वा नास्त्येव विचारयोग्यताऽवकाश इत्येतत्सत्यं तथापि सभापतिसम्प्रदायमनुसृत्य किञ्चिदपि वक्तव्यं भवत्येवेत्युपक्रमः । तथा चोच्यते—अनुपलब्धत्वात् त्रिदोषसंज्ञा वातपित्तश्लेष्माणो न विद्यन्ते । क्वचिदपि प्राणिशरीरे यदि च विद्येरन् न च ते स्वास्थ्यसंरक्षणे साधकाः । यदि च संरक्षणे साधकास्तथाप्यस्वास्थ्यकरणे न हेतव इत्येवं ब्रवीमि । तथाहि । अग्निवेशतन्त्रस्य शारीरे प्रथमे ‘प्रश्नाः पुरुषमाश्रित्य त्रयो विंशतिरुत्तमाः । कतिधापुरुषीयेऽस्मिन् निर्णीतास्तत्त्वदर्शिना इत्युक्तदिशा” । त्रयो विंशति प्रश्नेषु कतिधा पुरुषो धीमन् धातुभेदेन भिद्यते, इत्ययं प्रथमः प्रश्नः अस्य च उत्तरत्वे । खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। इत्येकमुत्तरं चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः, इति द्वितीयमुत्तरं । पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः । मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाऽऽष्टधातुकी । इति तृतीयमुत्तरं दत्तम् । तत्र प्रथमद्वितीययोरुत्तरयोरर्थस्तु स्पष्टः । तृतीयोत्तरस्य तु पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः पुरुषः स्मृतः, चतुर्विंशति धातवस्तु—मनो दशेन्द्रियाणि पञ्च चाऽर्थाः खादीनि पञ्चमहाभूतानि बुद्धिरव्यक्तं अहङ्कार इत्यष्टौ प्रकृतयः । साकल्येन चतुर्विंशति तत्वानि तेषां समुदायः पुरुषः इति भवति । सतां त्रिदोषाणां कुतोऽत्र न प्रस्तावःखुड्डीका गर्भाऽवक्रान्तौ पुरुषस्याऽनुपहतरेतसः स्त्रियाश्चाऽप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयायाः यदा भवति संसर्गः ऋतुकाले यदा चाऽनयोस्तथैव युक्तयोः संसर्गे तु शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाऽऽशयगतं जीवोऽवक्रामति सत्त्वसम्प्रयोगाद् तदा गर्भोऽभिनिर्वर्तते इति । तत्रैव चतुर्थेऽध्याये गर्भस्तु खल्वन्तरीक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः इति च प्रोक्तवान् तत्रैव । षष्ठेतु समयोगवाहिनो यदा ह्यस्मिन् शरीरे धातवो वैषम्यमापद्यन्ते तदायं क्लेशं विनाशं वा प्राप्नोति । धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारविहारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति । ह्रासन्तु विपरीत-गुणैर्विपरीत गुणभूयिष्ठैर्वाप्याहारैरभ्यस्यमानैः, तत्रेमे शरीरधातुगुणाः संख्यासामर्थ्यरूपकराः । तद्यथा गुरुलघुशीतोष्ण स्निग्धरूक्ष मन्दतीक्ष्ण स्थिरसर मृदुकठिन विशदपिच्छिल श्लक्ष्ण खर सूक्ष्मस्थूल सान्द्रद्रवाः, इति । अत्राऽपि तत्त्वसंख्यानबुध्या वातपित्तश्लेष्मणां परिगणना न दृश्यते । धातुशब्दस्य चाऽत्र प्राधान्येन वातादिषु न तात्पर्यम् न च गुर्वादयो विंशति गुणाः त्रिदोषानेवाऽऽश्रित्य विद्यन्ते । तस्मादेव हि ग्रन्थकृत् तस्मान्मांसमाप्याय्यते मांसेन भूयोऽन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः । तथा लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसयाऽस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्जया, शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वाऽऽमगर्भेणेति दृष्टान्तत्वेन प्रतिपादिते सूत्रे अतिक्रमेणापि रसादिशुक्रान्तानां सप्तानां मांसमारभ्य नामानि गृहीतवान् । नह्यत्राऽपि वातादीनां स्मरणं । यद्येते शरीराऽऽधारस्य स्वास्थ्यसंरक्षणस्य वा हेतवः तर्हि शरीरोत्पत्तिकथनप्रसङ्गे इतरधातूनां तत्त्वानां वोपादाननिमित्तानामिव वातादीनां कुतो न गणना ।

सुश्रुते, शारीरस्य द्वितीये, वर्णोत्पत्तौ भूतानां पञ्चानामेव नामान्याह । यथा तेजो

धातुः सर्ववर्णानां प्रभवः स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति। पृथिवीधातुप्रायः कृष्णं, पृथिव्याकाशधातुप्रायः कृष्णश्यामं, तोयाऽऽकाश धातुप्रायः गौरश्यामानीति दोषाणामत्र प्रसक्तिरेव न विद्यते। तत्रैव गर्भावक्रान्तिशारीरे तृतीये—सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेणेति। भूतसमवेतत्वमेव निरदिशत्, न दोषसमवेतत्वं, अत्र गर्भाशयगतः शुक्रशोणितजीवसंयोगो गर्भो भवति। गर्भाऽऽरम्भक तत्त्वेभ्यश्शरीरमुत्पद्यते तान्येव तत्त्वानि शरीरं प्रत्युपादानत्वेन नाम कार्ययोनित्वेन सन्ति। कार्ययोनिर्नाम सा या विक्रियमाणा कार्यत्वमापद्यते। न ह्यत्र दोषाणां नामाऽपि गृहीतं तेषाञ्च कार्ययोनित्वप्रतिष्ठापनाया वार्तात्वतिदवीयसी, तस्मादुक्तं अनुपलब्धत्वादिति। किञ्च—प्रमेयमात्रस्य विमर्शका दर्शकाश्च गौतमकणादकपिलपतञ्जलिप्रभृतयस्तथा स्याद्वादनिष्णाता अन्ये च तत्त्वाऽन्वेषकाः किमिति प्रमेयत्वेन वातपित्तश्लेष्मणो न जगृहुः। यद्येते गौतमकणादादिभिः प्रमातृभिर्दृष्टाः पृथक् प्रमेया इवाऽभविष्यन्। अवश्यं तेषां दर्शनस्य विषयाः अभविष्यन् नैतावदेव अपि त्वाऽऽयुर्वेदतत्त्वमूलेषु सर्वविद्याराशिषु वेदेष्वपि त्रिदोषोच्चारणानि न सन्ति। चरकस्य चतुर्थं शारीरे—मातृजादयोऽप्यस्य महाभूतविकारा एव। तत्रास्याऽऽकाशात्मकमित्यारभ्य पृथिव्यात्मको गन्धः घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्चेत्यन्तैस्सूत्रैः शरीरगतानां पञ्चभूतानां परिणामगुणकर्माण्यभिहितानि। तत्र वातपित्तश्लेष्माणो न वाच्यविषयत्वेन गृहीताः, तस्मात्सुष्ठूक्तमलब्धत्वादिति। उच्यते एतदतिमात्रं साहसं। यदलब्धत्वादिति भवत्यत्र विचार्यते। अत्राऽलब्धत्वं कथं केन कस्य कस्मादिति ह्यनुयोगाः किमत्र अधिकारिप्रमाता प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैः प्रमेयांश्च सर्वान् स्वतन्त्रसिद्धान्तमनुसृत्य प्रामिमीत। एतावदवधि शब्दप्रमाणमेवाऽधिकृत्य कृतश्चाऽऽक्षेपः। तत्रोच्यते, चरकस्य शारीरस्य प्रथमाऽऽध्याये त्रयोविंशतिप्रश्नेस्वेव कारणं वेदनानां किं? इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरत्वेन इत्यसात्म्यार्थसंयोगस्त्रिविधो दोषकोपनः। वेदनानामसात्म्यानामित्येते हेतवः स्मृताः इत्युक्तम्। अत्र त्रिविधोऽसात्म्यार्थसंयोगो दोषकोपनः इति दोषशब्देन वातपित्तश्लेष्मवाचकं त्रिदोषमभिप्रैति। समवेतशारीरधातुविषयकस्य प्रश्नस्योत्तरदाने त्रिदोषाणामवष्टम्भो न कृत इति तु भिन्नतात्पर्यं तच्च उत्तरत्र वर्ण्यते। सुश्रुत शारीरे चतुर्थे—असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः, तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाऽप्यनुधावति। ततोऽस्याऽन्त्राणि जायन्ते गुदं, बस्तिश्च देहिनः इति, अत्रत्वन्त्रगुदबस्तीनां प्रत्यङ्गानां समुत्पत्तौ वातादीनां कार्ययोनित्वं कथितमेव वातादयोऽत्राऽन्त्रादीनां जन्मन्युपादानकारणत्वेन तिष्ठन्ति। किञ्च धातुरूपेषु वातपित्तश्लेष्मसु भूतरूपेभ्यो वाय्वग्निवारिभ्यो जातेष्वपि तेभ्य एव समुत्पन्नेभ्यश्शारीरेभ्यो धात्वन्तरेभ्यो रक्तादिभ्यो विशिष्यन्ते। तस्मादायुर्वेदशास्त्रे पञ्चमहाभूतान्यङ्गीकृत्यापि दोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणामपि ग्रहणमवार्यम्। गौतमकणादकपिल पतञ्जल्यादयः सूक्ष्माच्च तत्त्वात् स्थूलं वर्णितवन्तः, आयुर्वेदकारास्तु स्थूलात् सूक्ष्ममनुवर्णितवन्तः तेषामुपक्रमभेदात् आयुर्वेदे वातादीनामुपलब्धिरनुपलब्धिश्च न्यायादिषु इति कल्प्यते। न त्वनुपलब्धत्वात् किन्त्वनावश्यकत्वात् ते दोषसंज्ञान् वातपित्तश्लेष्मणः स्वतन्त्रेषु न संजगृहुः। किञ्च सांख्यादीनां दर्शनानां ज्ञानेन्द्रियमात्रव्यापारवत्त्वात् वैद्यकस्य तु ज्ञानकर्मोभयेन्द्रियव्यापारवत्वाच्च दोषग्रहणं गृहीतम्। सर्वविद्याराशिषु वेदेषु यदि त्रिदोषाणां प्रसक्तिर्न विद्येत ततः का हानिरिति वक्तव्यं। आयुर्वेदस्य शब्दप्रमाणविषये वेदानामुत्तमं प्रामाण्यात् तस्मादेव चरकाचार्यः सूत्रस्थानस्यैकादशे तत्राप्ताऽऽगमस्तावद्वेदो यश्चान्योऽपि कश्चिद्वेदार्थादविपरीतः परीक्षकैः प्रणीतः इत्युक्तवान् तस्मात्प्रवरप्रमाणभूतेषु वेदेषु दोषाणां ग्रहणमवश्यं हि यद्येवं तर्ह्यायुर्वेदे समुप-

दिष्टानां वमनविरेचनाऽऽदीनां बहूनामुपायानां चिकित्सोपयोगिनां वेदेष्वनुपलम्भात् ते चोपाया अनादरणीया अनुपबृंहितप्रमाणा वा स्युरत्रैव वेदानामिव वेदार्थादविपरीतानां परीक्षकैः प्रणीतानां अन्यग्रन्थानामपि प्रामाण्यात् अन्येषु चरकसुश्रुतादिषु समुपलम्भात् अनुपलब्धत्वं न संगच्छते किञ्च वेदेषु दोषाणां प्रसक्तिर्न विद्यते इतीयमप्युक्तिरतिसाहसिकी । "त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि । त्रिरुदत्तमद्भ्य, ओमानं शंयोर्मम कायसूनवे । त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती (मं. १ अ. ७ सू. ३४)" इत्यस्यां ऋचि "त्रिधातु शर्म वहतं" इति वाक्यस्य वातपित्तश्लेष्मधातुत्रयशमनविषयं सुखं वहतं इति सायणाचार्यः । तदित्थं वेदेष्वपि त्रिदोषाणां नामनिर्देशोऽस्त्येवेति प्रकृतं तावदभ्युपगच्छामस्तथापि तेषां स्वास्थ्यसंरक्षणत्वं कथं सिध्यति । चरकस्तु सूत्रस्थाने एकादशेऽध्याये त्रय उपस्तम्भाः युक्तियुक्तैरुपस्तम्भैस्त्रिभिरुपस्तब्धं शरीरं बलवर्णोपचयोपचितं यावदायुषोऽनुवर्तते, ते च उपस्तम्भा आहारः स्वप्नः ब्रह्मचर्यमिति प्रोवाच । अत्र च दोषाः शरीरमुपस्तभ्नुवन्तीति नोक्तवान्, उपस्तम्भनञ्च बलवर्णोपचयैरुपचितस्य शरीरस्याऽऽयुषो यावदनुवर्तनं भवति तच्च स्वास्थ्यादभिन्नं तस्मात् अन्नपानविधिं तथा विविधाऽशितपीतीये चरके समुपादिष्टञ्च अनुपाल्यब्रह्मचर्यं तथा निदानञ्च यथाक्रमं शास्त्रानुरोधेनाऽनुचरन् स्वास्थ्यं रक्षितुं समर्थो भवति नान्यथा, यद्येवं किं तर्हि वृथा त्रिदोषाणामपस्तुतानामस्थाने प्रसक्त्या, किञ्च सप्तधातुषु श्रेष्ठत्वेन परिगणितं शोणितमेव स्वास्थ्यहेतुत्वेन कुतोनाऽङ्गीक्रियेत । रक्तस्य महत्त्वं ज्ञात्वा सुश्रुतः—देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिरित्युक्तवान् । चरकोऽपि विधिशोणितीयेऽध्याये तद्विशुद्धं हि रुधिरं बलवर्णसुखायुषा, युनक्ति प्राणिनां प्राणः शोणितं ह्यनुवर्तते, इति शोणितमेव हि मांसादि शुक्रान्तानां धातूनां समुत्पादने निदानमास्ते । लोकेऽपि देहेऽपि च रक्तप्रभावं प्रत्यक्षतः पश्यामः । यदधिकरुधिरस्य प्रस्रवणेन जीवा न जीवन्ति । क्षयेण च रुधिरस्य पुरुषाः उच्चावचानां रुजां क्षेत्राणि भवन्ति । तदेवम्भूतं रक्तधातुं स्वास्थ्यस्य हेतुत्वेनाऽयोजयित्वा दोषाणां केन वा पक्षपातेन हेतुत्वं कल्प्यते । पक्षान्तरे सर्वधातूनां सारतरं सोमात्मकं स्निग्धादिगुणभूयिष्ठं उत्तमञ्च प्राणाऽऽयतनम् ओजो नामकमेव वा धातुं स्वास्थ्यस्य हेतुत्वेनाऽङ्गीकुर्वन्तु ।

ओजसः प्रभावस्त्वेवम् । ओजःसोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् । बिविक्तं मृदु मृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तममिति (सु. सू. अ १५ श्लो. १४) सुश्रुताऽऽचार्यो निरदिशत् ।

किञ्च त्रिदोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणां आहारकिट्टजन्यत्वात् आहारप्रसादजन्यै रसादिभिर्धातुभिरुपबृंहितस्य जीवत्कलेवरस्य स्वास्थ्ये कथं तेषां साधकत्वं सिध्यति । "तेषां च किट्टजन्यत्वे तु चरकाचार्यः-किट्टात् मूत्रस्वेदपुरीषवातपित्तश्लेष्माणः कर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलकेशश्मश्रुलोमनखादयश्चाऽवयवाः (सू. अ. २८ सू. २)" इत्याह । किट्टजन्याः अपकर्षकाः दोषाः उत्कर्षकाणां प्रसादजन्यानां रसादीनां धातूनां स्वास्थ्यं संरक्षन्तीति लोकविरुद्धश्चाऽयं न्यायः केन वाऽङ्गीक्रियेताऽन्यच्च विध्युपयुक्तस्य चतुर्विधाऽऽहारस्य भिन्नभिन्नेभ्योंऽशेभ्य समुत्पन्नानां विभिन्नधर्मणां दोषधातूनां वाय्वादीनां रसादीनाञ्च रक्ष्यरक्षककार्यकारणसम्बन्धोऽपि कथं सङ्गच्छते । महदिदमद्भुतं उच्यते । वातपित्तश्लेष्माण एव स्वास्थ्यरक्षणे हेतवस्सम्पद्यन्ते । धातवोऽपि रसादयः दोषाऽपेक्षया शरीरे व्याप्यास्सन्ति प्रसादजन्याः अपि किट्टजन्येभ्यश्शरीरे दोषेभ्यः परिमिताश्च । नहि रसादीनां शरीरे दोषादीनामिव सर्वचरत्वं, धातवस्तु नियते कलेवरप्रदेशे जायन्ते चरन्ति च । वातादयस्तु नियते प्रदेशे जायमाना अपि सर्वशरीरदेशे

वर्धन्ते चरन्ति च । जन्मनि सत्यपि धातूनां रसादीनां प्राशस्त्ये जीवने धातुसंज्ञकानामेव दोषाणां भवतीति । सत्यमुक्तं दोषाः स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इति स्वयं रक्ष्या धातवः कथं रक्षेयुर्धात्वाख्यान् परान् तस्मादेव सुश्रुतः व्रणप्रश्नीये एकविंशतितमे सूत्रस्थाने "वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भव – हेतवः, तैरेवाऽव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वं सन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके" इति । परन्त्वत्राऽयं खलु विचारणीयोंऽशः । त्रिदोषशब्देन के ग्राह्याः इति ? वातपित्तश्लेष्माणो ग्राह्याः इति तर्हि किमति सन्दिह्यते । सन्देहश्च वातपित्तश्लेष्मणां त्रिदोषाख्यानां द्वैधीभावात् तथाहि ते च अन्तर्गता बहिर्गताः इति, दोषभूता धातुभूता इति, समाः कुपिता इति च (कुपितमित्यौपलक्षणिकं तेन सञ्चित प्रसृतानामपि ग्रहणं) द्वैधीभावमापद्यन्ते । तथा सम्पन्नेषु के ग्राह्याः इति हि सन्देहः । उक्तञ्च चरकेण वातकलाकलीये, "वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानाऽपानात्मा प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानामिति । अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः, कुपिताऽकुपित इति । सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताऽकुपित इति । शरीरविचये शारीरे तु शरीरधातवस्त्वेवं द्विविधाः संग्रहेण मलभूताः प्रसादभूताश्च । तत्र मलभूतास्ते शरीरस्य ये बाधकराः स्युः, अपि च प्रकुपिता वातपित्तश्लेष्माणः" इति च । सुश्रुते तु "व्यापन्नाअव्यापन्ना इति च योगविभागो विद्यते । तैरेवाऽव्यापन्नैरित्युक्त्वा ते एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः, अविरहितं शरीरं भवति" इति च । तस्मादुक्तं संदेह इति तर्ह्यतः अन्तर्गताः धातुभूताः समाः अव्यापन्नाश्च लौकिकाश्शारीरगताः प्राण्यङ्गधातुत्वेन स्थिताः वाय्वग्निसोमाः एव स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इत्युच्यते । अनेन च न कापि विप्रतिपत्तिः । तदेवं शब्दप्रमाणेन धातुसंज्ञका अविपन्ना अन्तर्गता अकुपिताश्च । त्रिदोषसंज्ञाः वातपित्तश्लेष्माणः स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इति सिद्धम् भवतु, तथापि तेऽस्वास्थ्यकरणे न हेतव इत्युच्यते अस्वास्थ्यञ्च सुखनिर्वेदनायाः प्रतिकूलरूपः स्वास्थ्याद्विपरीतलक्षणो रोगाख्यो धर्मोऽस्वास्थ्यादनन्यः, स च रोगः वातविण्मूत्रादीनां शरीरबाधकराणां धारणादुदीरणाच्च भवति । उक्तञ्च वाग्भटेन, "रोगास्सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैरिति" । न ह्यत्र दोषेभ्यो रोगा जायन्ते इत्युक्तं तस्मादपरीक्षितमेवोच्यते दोषाः करणं रोगाणामिति । तथाऽन्यदपि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाऽभिधानानां ज्ञानेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैस्तथा वाक्पाणिपादपायूपस्थाऽभिधानानां कर्मेन्द्रियाणां वचनाऽऽदानविहरणविसर्गाऽऽनन्दैश्च हीनमिथ्याऽतियोगा एवं हेमन्तग्रीष्मवर्षाणां शीतोष्णवर्षलक्षणानां स्वधर्मैश्शैत्यादिभिर्हीनमिथ्याऽतियोगाश्च कर्माणि च वाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिलक्षणानि तानि च सूचकाऽनृतादीनि वचनानि भयशोकक्रोधलोभादीनि मानसिकानि वेगधारणोदीरणादीनि शारीराणि मिथ्याकर्माणि एतेषां स्वाभाविकात् हीनातिकर्मणां च कायवाङ्मनोभिर्हीनमिथ्याऽतियोगाः प्रज्ञापराधञ्च रोगाणां कारणमिति किंवा आहारस्वप्नब्रह्मचर्याणामविधिनाऽनुष्ठानम् तथा स्वनियतप्रमाणात् क्षीणाः वृद्धाश्च रसादिधातवो मलाश्च किञ्चाऽदृष्टं कर्माऽपि वा रोगाणां निजानां हेतवः पुनरागन्तूनां तु चरकस्य त्रिशोफीये सूत्रस्थाने प्रोक्ताः "छेदनादिस्पर्शनान्ताः अभिघाताऽभिषङ्गाऽभिचाराऽभिशापाश्चैवमेतादृशा अन्ये च भावा रोगोत्पादने हेतुत्वेन सन्ति । तस्मादेव कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्याऽतिमात्रकः । सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगाऽऽरोग्यैककारणमिति" ।

कश्चित्पूर्वाऽपराधजः इति अभिघाताऽभिषङ्गाभ्यामभिचाराऽभिशापतः । इत्यादि निदानसूचीनि वचनानि दर्शितानि । तस्मादुच्यते वातादयो मा भुवन् रुजां कारणानीति । अयमत्र समुच्चयार्थः रोगोत्पादने तु—वेगोदीरणं वेगधारणं कालस्य अर्थस्य कर्मणश्च हीनमिथ्यातियोगाः

प्रज्ञापराधः अभिघातः अभिषङ्गः अभिचारः अभिशापः अदृष्टं कर्म। वृद्धाः क्षीणाश्च धात्वादयः अन्ये च विविधमुखा आगन्तवः आध्यात्मिकादयोऽन्ये च कारणानि भवन्ति । न च वातपित्तश्लेष्माणः कारणानीति उच्यते । अत्र निर्दिष्टास्सर्वेंपि रोगोत्पादने हेतव एवेति प्रतिश्रूयते । हेतुर्नाम कारणं तस्मात्सम्प्रदायानुरोधेन पूर्वं कारणमेव जानीयात् । यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तद्द्रव्यं समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः इति सूत्रस्थानस्य प्रथमेऽध्याये । विमानस्थानेऽष्टमे तु तत्र "कारणन्नाम तद्यत्करोति स एव हेतुः कर्ता सः" इति स चरकः, निमित्तसमवायिकारणयोर्लक्षणं स्वसम्प्रदायमनुसृत्य लक्षयामास । समवायिकारणग्रहणादत्राऽनुक्तस्याऽसमवायिकारणस्याऽपि तदविच्छेदसाहचर्येण भवति । तदेवं सयवायि असमवायि निमित्त कारणमिति कारणभेदाः । इदन्त्विदानीं विचार्यते रोगान्प्रत्येतेषामत्र हेतुत्वेन निर्दिष्टानां कीदृशं भवति कारणत्वमिति । नैषां रोगान्प्रति समवायित्वं नाऽपि चाऽसमवायित्वं कुतः इति चेत् यत्समवेतं कार्यम्भवति तत्समवायि । समवायिकारणञ्च चरकाऽऽचार्यः कार्ययोनित्वेन प्रतिपाद्य कार्ययोनिस्तु सा या विक्रियमाणा कार्यत्वमापद्यते । कार्ययोनिर्धातुवैषम्यमिति चाऽऽह । न हि पूर्वनिर्दिष्टाश्च हेतवो विक्रियमाणास्सन्तः कार्यत्वमापद्यन्ते । तस्मात्समवायिकारणत्वाऽसिद्धेस्तेषां समवायिकारणाऽऽश्रयिणोऽसमवायिकारणस्याऽपि सम्भावना तेषु नास्त्येव यदि ते हेतवो रोगान् प्रति निमित्तकारणत्वेन किंवा सहचारिकारणत्वेन तिष्ठन्ति चेदिष्टापत्तिरिति स्वागतं ब्रवीमि तेभ्यस्तादृशेभ्योऽन्येभ्योपि कृमिप्रभृतिभ्यो हेतुभ्योऽथ विक्रियमाणा कथं कार्यत्वमापद्यते इति किञ्चिद्विस्तार्य कथ्यते । रूक्षलघुशीत व्यायामवमनविरेचनाऽस्थापन शिरोविरेचाऽतियोग वेगसन्धारणाऽनशनेभ्यः वायुः प्रकोपमापद्यते। प्रकुपितः प्रविश्याऽऽमाशयमुष्मणः स्थानं ऊष्मणासह मिश्रीभूय आद्यमाहारपरिणामधातुं रसनामानमन्ववेत्य रसस्वेदवहानि च स्रोतांसि च पिधाय अग्निमुपहत्य पक्तिस्थानादुष्माणं बहिर्निरस्य केवलं शरीरमनुपद्यते। तदा ज्वरमभिनिवर्तयते इति ।

अस्मिन् दृष्टान्ते प्रकुपितो वायुर्दोषः तस्य प्रकोपणे रूक्षलघुशीताशनव्यायामादयो हेतवः परन्त्वत्र विक्रियमाणो दोषो वायुः न तु रूक्षाद्यशनादयः । वायुरपि प्रकुपितः न तु समः समस्य तस्य धातुसंज्ञत्वात् रोगोत्पादने अयोग्यत्वात् प्रकुपितवायुरत्र कार्ययोनिर्विक्रियमाणः स एव रोगसंज्ञो भवति । स च उष्मणः स्थानं प्रविश्योष्मणासह मिश्रीभूयेति तस्यैव प्रकुपितस्य प्रतिकृतिर्वर्णितास्ति न तथा तत्प्रकोपणहेतूनां तस्मात् दोषव्यतिरिक्तेभ्यः कारणेभ्यः समवाय्यसमवायिकारणत्वं न सिध्यतीति । रोगोत्पादने वायोर्दृष्टान्तेन दोषा एव कारणन्नाम समवायिकारणमित्यर्थः, किञ्च रोगान् प्रति त्रिदोषसंज्ञानां वातपित्तश्लेष्मणां समवायिकारणत्वं वेदेऽपि प्रतिपादितमस्ति । यथा अथर्ववेदस्य प्रथम काण्डस्य तृतीयेऽध्याये द्वादशतमे सूक्ते तृतीयऋचि, "मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परु राविवेशा यो अस्य । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्सचतां पर्वतांश्च" । अत्र त्रिदोषसम्बद्धानां वाक्यानां व्याख्यानं कुर्वन् सायणाचार्य एवं व्याचख्यौ" ॥ इदानीं वातपित्तश्लेष्मविकारजनितानां सर्वेषामपि व्याधीनां अस्मात्पुरुषादन्यत्राऽवस्थानं प्रार्थयते यो अभ्रजा इति । यो रोग अभ्रजाः अपो विभर्तीत्यभ्रं प्रवर्षको मेघसंघः तस्माज्जायते प्रवर्षणोदकसंसर्गेण उत्पद्यते इति । अभ्रजाः श्लेष्मरोगः तथा यो वातजाः वातात् कौष्ठ्याद्वायोर्जातः उत्पन्नः रोगः यश्च शुष्मः शोषकः पित्तविकारजनितः ज्वरादिरोगोऽस्ति । दोषत्रयोद्भूतः स सर्वोऽपि रोगः एनं पुरुषं विहाय वनस्पतीन् काननस्थान् वृक्षान् पर्वतांश्च मनुष्यसञ्चाररहितान् शिलोच्चयांश्च सचतां समवैतु आश्रयतु इत्यर्थः । इत्थं वेदेऽपि रोगान् प्रति त्रिदोषस्य जनकत्वं समवायिकारणत्वेन प्रतिपादितत्वादिदं सिद्धं यदाप्तोपदेशरूप-

प्रमाणेन दोषाणां रोगान् प्रति समवायिकारणत्वं भवत्येव । तस्मादस्वास्थ्यकारणानि दोषा एवेति निश्चयः ।

उपायान्तरेणाऽपि त्रयो दोषा यथा संक्षेपं विचार्यंते । सर्वेऽपि वयमायुर्वैदिका गत्यन्तराभावाद्याथातथ्याद्वा त्रीन्दोषान् व्याधिकारणत्वेन चाऽङ्गीकुर्मः । आप्तवाक्यग्रथितेषु चरकसुश्रुताद्यनेकग्रन्थेष्वत्यधिकान् वाह्यान् आन्तर्यान् हेतून् प्रदर्श्याऽपि सर्वरोगान् प्रति दोषाणामेव सिद्धान्तत्वेन कारणत्वं प्रतिष्ठाप्य तदनुरोधेनाऽऽयुर्वैदिक्यस्सर्वाश्चिकित्सा समुपदिष्टाः तदायुर्वेदचिकित्सकेषु दोषाणां प्रत्येकं पञ्चपञ्च भेदान् तेषामेव दोषाणां क्षयस्थानवृद्ध्याऽऽत्मिकां गतिं ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपां गतिञ्च कोष्ठशाखा मर्मास्थिसन्धिगतां चयप्रकोपप्रशमात्मिकां कालकृतां गतिं च धात्वात्मकानाञ्च तेषां गुणकर्मस्थानलक्षणानि च तान्येव दोषात्मकानामपि तेषां सर्वे जानन्ति । जानन्ति च सर्वे दैवयुक्तिसत्त्वव्यपाश्रयाऽऽत्मिकां तथा अन्तःपरिमार्जन बहिः परिमार्जन शस्त्रप्रणिधानात्मिकां दोषविधेयत्वेन प्रतिपादितां चिकित्साञ्च किमत्राऽस्ते साध्यं चिकित्सकानां दोषान्विहाय रोगानायुर्वेदनाम्ना चिकित्सितुं अपि चाऽस्ति साध्यं त्रिदोषविधेयत्वेन प्रतिपादितानि निदानपूर्वलक्षणलक्षणोपशयसम्प्राप्तिरूपाणि । रोगत्वबोधनसाधनान्यनाश्रित्य परीक्षितुं ज्ञातुञ्च तदुक्तं गत्यन्तराऽभावादिति । तथा चाऽऽयुयुर्वेदोक्तरीत्या परीक्षिता उपक्रान्ताश्च सहस्रशः उल्लाघिता भवन्तीति सर्वे चाऽऽयुर्वैदिका निश्चयेन विदन्ति । तदतिमात्रमायुर्वेदेऽस्माकं श्रद्धा चेति याथार्थ्यादित्युक्तम् । तद्वयं भारतीयाश्चिकित्सकास्त्रीन्दोषाननुक्षणं स्मराम इति तु सामान्यम् । परमासिंहलादाहिमाचलं भारतीयाश्चिकित्साशास्त्रेऽकृतमुखाः केवलं प्राकृता अपि दोषेषु यत्किञ्चिज्जानन्तोऽजानन्तश्च रुग्णान् चिकित्सन्तीति सर्वेषामस्माकं ज्ञातचरोऽयम् विषयः परन्नावगम्यते भारताद्बाह्येष्वपि देशेषु त्रिदोषसम्प्रदायोऽधुना व्यवहारेऽस्ति नास्तीति । सत्येवमत्र सन्दर्भे किं तत्र स्यान्मर्म ।

अन्यत्राऽर्वाञ्चः केचन शारीरे कृतदीर्घपरिश्रमाः क्षणे क्षणे रसादीन् सप्तधातून् चर्मनखकेशलोमश्मश्र्वादीन् स्वेदमूत्रपुरीषादीनि च सूक्ष्मेक्षणाऽन्तःप्रकाशकादि यन्त्रजालैः कणशोऽणुशश्च वीक्षमाणा दोषाननुपलब्धा इत्यनंगीकृत्यऽसम्परायिताः स्वभावनियतक्रिया अङ्गप्रत्यङ्गविशेषास्तथा स्नावानश्च स्वास्थ्यस्य कारणं सम्परायिता अस्वास्थ्यस्य च कारणानि तत्र च जीवाऽजीवमूलतत्त्वानां संयोगवियोगात्मिका चिकित्सेयं फलकारिणीति प्रत्यवतिष्ठन्ते । यथोक्तश्च, ते चिकित्सन्ते रुग्णांश्च मोचयन्ति रोगेभ्यः इत्थम्भूते च भिन्नसन्धाने कथञ्च त्रिदोषपद्धतिं स्थापयामः, उच्यते ।

अत्र पूर्वप्रस्तुतानां बहुपरिष्कृतानां पूर्वतरप्रस्तुतानामतिमात्रप्राकृतानाञ्च चिकित्सासिद्धौ सामाजिकं सहवासकृतं ज्ञान-संक्रमणमेवनिदानं । न चैषां विद्यावैभवो नाऽपि च तेषां अदृष्टाऽतिशयस्तत्र कारणम् । तस्मादेतत्सामान्यं फले भवति अतिप्राकृताः बहुपरिष्कृतास्सामान्या वा समापन्नान् रोगिणो यथा-बुद्धि यथा-शक्ति यथाऽनुभवञ्च परीक्ष्य तदनुकूलमुपक्रमंते ते च शारीरगतान् दोषान् जानन्तु मा ज्ञासिषुः तच्चिकित्सापरामृष्टाः दोषाः स्वाऽवस्थां प्राप्नुवन्तः विकृतान् दूष्यादीन् स्वप्रकृतित्वे स्थापयन्ति यथा बालाः पिपासवो जलं पीत्वा शान्ता भवन्ति, न ते विदन्ति पिपासाया जलपानं प्रतिकारणमिति । एवं बहुविधै लौकिकैर्दृष्टान्तै निर्णीयेत यत्तेषां चिकित्सा फलसिध्या दोषाणाञ्चाऽस्तित्वं बाध्येतेति । तेषां स्थितित्वञ्चैवं सिध्यति विषमाणां शारीराणां वातपित्तश्लेष्मणां व्याधिनिमित्तानां शोधनाय (शरीरादेतान् बहिष्कृत्य) आयुर्वेदशास्त्रे पञ्च च कर्माण्युपदिष्टानि यथा वमनं कायशिरो-

श्रीमान् वैद्यपञ्चानन पं. गंगाधर शास्त्री गुणे, अहमदनगर।

अध्यक्ष कर्नाटकप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन मेंगलूर, (सन १९२८)।

अध्यक्ष, आयुर्वेदमहाविद्यालय, अहमदनगर।

संपादक, भिषग्विलास (मराठी मासिकपत्र)।

विरेचनं अनुवासनं रुधिरमोक्षणमित्येतैः सम्यक्प्रयुक्तैः क्रमेण वमनविरेचनाऽनुवासनानि श्लेष्मपित्तवातान् शरीराद्बहिरानयन्तीति सर्वेऽपि वैद्या अवगच्छन्ति । तथा बहिरानीतेषु तेषु रौक्ष्य शैत्य लाघव सौक्ष्म्य चलत्व वैशद्य खरत्व लक्षणैस्समन्वितं वायुं, औष्ण्यं स्नेहत्वं तैक्ष्ण्य द्रवत्वाऽम्लत्व सरत्व कटुत्व लक्षणैरन्वितं पित्तं, गौरवशैत्यमार्दव स्निग्धत्व माधुर्य स्थिरत्व पैच्छिल्य लक्षणैस्समन्वितं श्लेष्माणञ्च यथा स्वेनेन्द्रियेण यथा स्वैरिन्द्रियैर्वा साक्षात्कर्तुं शक्नुयुः विशेषतस्तत्तत्प्राचुर्येषु व्याधिषु, यथाऽऽनाहाध्मानादिषु वायुं, पाण्डुकामलाहलीमकादिषु पित्तं श्वासकासयक्ष्मादिषु श्लेष्माणञ्च शोधनेन विना शोधनेन च प्रत्यक्षीकर्तुं समर्थयन्ते । वमनविरेचनाऽनुवासनानि कर्माणि तेषां यथाऽऽसन्नविशेषस्थानान्यालोच्य व्यवस्थितानि तानि किमप्रत्यक्षाणि ? परन्त्वेतदत्र न विस्मरणीयं ॥ शोधनशोधिताश्चैते प्रकुपितत्वात् शरीरस्य बाधकत्वेन स्थिता न पुनस्साधकत्वेन स्थिता इति । एते च बहुद्रव्ययुक्ता स्थूलतराः लंघनाऽसाध्या लंघनदुस्साध्या वा अन्तिमकार्यरूपा इति ज्ञेयाः । स्थूलतरमन्तिमकार्यत्वं दोषाणां प्रकोपस्य प्रसरस्य चाऽवस्थायाम्भवति । एतत्पूर्वाऽवस्थायां स्थिता चयमर्यादा कार्यात्मका लंघनसाध्या अनुमानगम्याः भवन्ति । एतस्मादपि पूर्वाऽवस्थायां स्थितास्सूक्ष्मरूपाः तथा च कार्यात्मकाः स्वास्थ्यसंरक्षणहेतवोऽनुमानगम्या सूक्ष्मेक्षणाऽन्तः प्रकाशकादिभिर्यन्त्रविशेषैर्दृश्याः दोषा भवन्ति । परमेतेषामपि कारणजाताः सर्वस्रोतस्सु व्यापकत्वेन शरीरसर्वप्रदेशे धात्वन्तरव्यतिकरा सूक्ष्मेक्षणादिभिर्जातुचिददृश्या गुणकर्मभिर्हेतुभिरनुमेयाः केवलं ज्ञानचक्षुषां तपश्चक्षुषामेव विषयीभूताः प्रविभक्तकर्मनिष्ठाः वाय्वग्निसोमात्मका द्यावापृथिव्योरन्तरिक्षे समधिष्ठितमूलप्रभावा देहधारणाद्धात्वभिधानाः सदात्मकाश्च ते व्यवहारसौकर्याय दोषव्यपदेशेनाऽऽकार्यन्ते । एतान् विद्वांसोऽन्यत्राऽन्यदा च सरसं वर्णयेयुः । अवसराऽभावान्न विस्तार्यते । यद्यपि वयं जानीम एतत्कथनमात्रेण न तावत् पाश्चात्यचिकित्सकास्तृप्ता भवेयुर्यावद् बाह्यैः करणसाधनैर्वाय्वादीन् दोषान् न साधयेमः । अपि नाम कोवा भारतीयेषु विद्वत्सु मनूक्तदिशा अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः इति । तरुगुल्मलतादिषु जीवोविद्यते इति न जानाति । न जानाति च रसोपरसादिषु जीवा विद्यन्ते इति । परं तत्त्वं न तावद् विद्वांसो विज्ञानिनो यथाहृदयङ्गममभ्युपागच्छन् यावत् जे. सि. बसुमहाशयः बाह्यैः करणकलापैः तज्जीवजीवनस्थितिं न प्रकाशयत् । एवं भोः तरुण चिकित्सकाः ! दोषानपि बाह्यैः करणकलापैः कृतिमुखेन दर्शयितुमचिराद्यतन्तां । सैषा खलु तेषां वस्तुनिश्चयस्यनिर्धारणपद्धतिः । न तावदुद्विग्नाः हताशाः हसनदूषणसाराश्च भवेयुरिति प्रतीक्षे । इदानीं वेदाऽऽयुर्वेदसम्बन्धमधिकृत्य किञ्चिदुच्यते । ब्रह्मवैवर्ते "ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः ॥ विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवाऽऽयुर्वेदञ्चकार सः ॥" इत्युपलभ्यते । अनेन च पूर्वप्रस्तुता ब्रह्मसंहिता नाम चिकित्सासंहिता तु न कस्याप्येकस्य स्वतन्त्रस्य बुद्धिचमत्कृतिः परंत्वशेषाऽनवद्यविद्यानामायतनस्य वेदपुरुषस्यैवाऽऽविष्कृतिर्ब्रह्मणा भाषान्तरेण प्रणीतकृतिरित्यवगम्यते । वेदेष्वपि विशेषतोऽथर्वसु चिकित्साविषया उपलभ्यन्ते । तस्मादेव हि सुश्रुतः इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्येति । चरकश्च तत्रभिषजापृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां आत्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्येत्यवोचतां वस्तुस्थितौ चतुर्ष्वपि वेदेषु चिकित्साविषयो दरीदृश्यते । तत्रापि चतुर्थे तु वेदे वेदोऽह्याथर्वणः स्वस्त्ययन बलिमङ्गल होमनियम प्रायश्चित्तोपवास मन्त्रादि परिग्रहाच्चिकित्सां प्राह इत्युक्तादिशा त्रिविधासु चिकित्सास्वन्यतमां दैवव्यपाश्रयां नाम चिकित्सां बोधयति । तथा च चरकः त्रिविधमौषधमिति दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं सत्वावजयश्च । तत्र दैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधि मणिमङ्गल बल्युपहार होमनियम

प्रायश्चित्तोपवास स्वस्त्ययन प्रणिपात तीर्थंगमनादि इत्यवादीत्। स्वस्त्ययनेत्यस्मात्सूत्राद्स्मिन् मण्योषध्युपहार प्रणिपाततीर्थंगमनान्यधिक्येन सूत्रितानीत्यनेन अथर्वात्तु विशेषेण दैवव्यपाश्रयां चिकित्सां बोधयतीति फलति। चरकस्त्वथर्ववेदविदां स्वतन्त्रेऽतिमात्रं गौरवं प्रादर्शयत्। यथा शारीरस्थाने "ब्राह्मणाश्चाऽथर्ववेदविदः (शा. ८ सू. ७९)" "ब्राह्मणश्चाऽथर्ववेदवित्सततमुभयकालं शान्तिं जुहुयादिति (शा. ८ सू. १०१)" दिङ्मात्रमेतत् दर्शितं अन्यत्र चरेके सुश्रुते च एवं विधानि बहूनि सन्ति वाक्यान्येतावता किमुपपद्यते व्यवहाराऽनुकूलार्थमायुर्वेदं कस्यापि वा वेदस्योपवेदत्वेन मन्यन्तां परमायुर्वेदस्य ऋगादि वेदैर्बलवाननादिश्च सम्बन्धोऽस्तीति निश्चयः। तथाचाऽऽयुर्वेदे तत्वार्थेन गृहीता बहवो विषया वैदिका वेदेषूपलभ्यन्ते दृष्टान्तार्थमेव काँश्चिद्विषयानत्र गृह्णामि।

यजुर्वेदे—"असुश्चमे चित्तञ्चमे मनश्च मे।"

अथर्ववेदे—"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याःपुरुष उच्यते इति पुरुषलक्षणं। केनपार्ष्णी केनमांसं केनगुल्फौ केनांऽगुली केनपेशनी केननखानि केनोच्छ्लंखौ कस्मान्नुगुल्फावधरौ अष्ठीवन्तावुत्तरौ जङ्घे जानुनोस्सन्धि। जानुभ्यामूर्ध्वंशिथिरं कबन्धं श्रोणी यदूरू कुसिन्धं उरो ग्रीवा स्तनौ कफोडौ स्कन्धान् पृष्टी बाहू अंसौ सप्तखानि शीर्षाणि कर्णौ नासिके चक्षाणि मुखम् हन्वोर्हि जिह्वा मस्तिष्कं ललाटं क्रकाटिकां कपालम् (कां. १० अ. १ सू. २)"

उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् हृदयात् क्लोम्नो हलीक्ष्णात् मतस्नाभ्यां प्लीन्हो यक्नस्ते। आन्त्रेभ्यः गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरात् कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्यां प्रपदाभ्यां भसद्यं भासदं भंससो अस्थिभ्यो मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनीभ्यः लोम्नित्वचस्य (कां. २ अ. ६ सू. ३३)।

शुक्रममृतं जनयन्त रेतः। (पू. अ. १९)।

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनुविष्टिताः तासां ते सर्वासां। (का. ६ अ. १० सू. ९०) शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणां। अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत। (का. १, अ. ४, सू. १७)।

विश्वस्मै प्राणायापानायव्ययानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। (पू. अ. १३ म. १९) इत्यादिभिरेभिर्वाक्यैरायुर्वेदस्य शारीरे विद्यमानानां अंगप्रत्यंगानां नामानि सप्तधातूनां स्नाय्नां धमनीनां सिराणां च नामानि लभ्यन्ते। लभ्यन्ते च मनश्चित्त प्राणानां तथा पुरुषशब्दस्याऽर्थलक्षण निर्वचनानि च सम्यग्वर्णितानि। इमानि यानि पञ्चेंद्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संश्रितानि। (का. १०, अ. १, सू. ९) आवृत्य योगविभागात् पञ्चकर्मेंद्रियाणां पञ्चज्ञानेन्द्रियाणां मनसश्च अर्थलाभो भवति। भवति च मनसइन्द्रियत्व सिद्धिश्च—मनसो हृदयं स्थानमिति निर्णयश्चैभिर्मन्त्रैर्भवति। कोऽस्मिन्नापो व्यदधात् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धु सृत्याय जाताः। त्रीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा उर्ध्वो अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः (कां. १०, अ. १०, सू. २)।

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनुविष्टिता तासां सर्वासां आभ्यां मन्त्राभ्यां लोहितकृष्णयोः शुद्धाऽशुद्धरक्तयोः उर्ध्वाधस्तिर्यग्प्रदेशेषु शरीरस्य सञ्चरणं स्पष्टतयाऽवर्ण्यंत। प्रियाऽप्रियाणि बहुलास्वप्नं संबाधतन्द्र्यः। (कां. १०, अ. १, सू. २)।

अनेन सुःष्वप्नान् दुःष्वप्नान् नानाविधत्वेन कल्पयित्वा तन्द्रा च प्रस्तुता। मिमातिमायुं पयते पयोभिः। (कां. ९, सू. १, मं. ८)।

वातात् ते प्राणमविदं। (कां॰ ७, अ॰ १, सू. ७)।

नाभिः लमानानां भूयासं। (कां॰ १६, सू. २,)।

यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्न वायव्यैर्नं मिनाति पित्तम्। (यजुः, पू. १९ म. ८५)।

आसो बलासोऽभवतु। (कां॰ ९ अ. सू. ९)।

सप्तप्राणाः सप्ताऽपानाः सप्तव्यानाः (कां॰ १५ अ. २ सू. १५)।

प्राणश्चमेऽपानश्चमे व्यानश्चमे। (पू. अ॰ १८)" इत्येभिर्मन्त्रैर्वातपित्तश्लेष्मणां (बलासो नाम श्लेष्मा) नामान्याम्नातानि क्रियाश्च तदंत्र शारीरं शास्त्रमधिकृत्य दिङ्मात्रमेतदुक्तं। अनेन च वेदाऽऽयुर्वेदयोश्शारीरसम्बन्धं जानीयुर्बुधाः। "यस्मान्मासानिर्मितास्त्रिशदरः संवत्सरोयस्मान्निर्मितो द्वादशारः। (कां. ४ अ. ८ सू. ३५)"।

"तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ। {कां. १५ अ॰ १ सू. ३)"

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त शिशिरो वसन्तः ऋतुवस्ते विहिता "हायनीरहोरात्रे पृथिविनी दुहातां। (कां. १२ अ॰ १ सू. १)"।

"न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् (कां. १५ अ॰ २ सू. १२) ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोका सर्वान् पथो अनृणा आक्षिपेयम्।

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः।

मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ (कां. १२ अ. २ सू॰ २)" अत्र पितृयाणन्नाम् दक्षिणायनं, देवयानन्नाम उत्तरायणमित्यर्थः मन्त्रैश्चैतैरायुर्वेदे प्रतिपादितं। क्षणादि विसर्गाऽऽदानात्मकं मासर्तुभिर्विभक्तं कालं जानीयात्।

"कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः। (का॰ १९ अ. सू. ५३)"

अनेन च मन्त्रेण परिणामात्मकं कालं विद्यात्। "शं न आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः सनिष्यदाः वर्ष्याः धन्वन्याः अनूप्याः खनित्रिमा कुम्भेऽभिराभृताः अनभ्रयः खनमानाः दिव्यानामणं स्रोतस्यानां। (कां॰ १९ अ. १ सू॰ १)"

एभिर्वाक्यैः कालदेशाऽऽधारोपाधिभिर्विभिन्नात्मकमुदकं विवृणोति। एतन्मूलकमेवाऽऽयुर्वेदे द्रवद्रव्यप्रकरणे उएकविवरणं दृश्यते।

"अस्थिस्रंसं परुस्रंसं हृदयामयं। (का॰ ६ अ॰ ५ सू. १४)"

"अग्निस्तक्मानमपबाधतां, बलासं कासमुद्युगं बलासेन कासीकया तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिं शारदं। तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकां (कां॰ ५ अ. ५ सू. २२)॰ यो अक्ष्यौ परिसर्पति, यो नासे परिसर्पति, दतां यो मध्यं गच्छति, तं क्रिमिं जम्भयामसि। (कां. ५ अ. ४ सू. २३) त्रयोदासा आञ्जनस्य तस्मा बलास आदहिः। (कां॰ ४ अ. ११ सू॰ ९)।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतं। ए. ते॰ मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम्। (का. १ अ॰ १ सू. ३)।

स्त्रीणां श्रोणि प्रतोदित इन्द्ररक्षांसि नाशय।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितं शीर्षण्यं कंकूषेभ्यः रोगं विसल्पकं अंगभेदं अंगज्वरं विश्वांग्यं। य ऊरु अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके। यक्ष्मंहिरमाणं ते अंत्रेभ्योप्त्वा मन्तरोदरात् सर्वेषां विषं निरवोचं काहाबाहं। (कां. ९ अ॰ ४ सू॰ ८) तद् विषं सर्पा उपाजीवन्ति। (का॰ ८ अ. ५ सू. ५) श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च (का. ८ अ. ४ सू॰ ८)

इदं तमाद्य त्वद् वयं विषूचीं विवृहामसि ।"

इत्येवम्भूतैर्बहुभिवाक्यैर्मन्त्रैश्च बहून्याम्नातानि सन्ति । रुजाणां नामानि लघुपरिचयार्थमेव श्रोतृणामेतावन्त्यैवोद्धृतानि । विपश्चिजस्सुनिपुणं समालोचयेयुरनेन वेदाऽऽयुर्वेदयोः रोग सम्बन्धम् । "अप्स्वंन्तरमृतमप्सु भेषजम्, अपो याचामि भेषजम् , अप्सुमे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा आपः प्रणीत भेषजम् (का. १ अ. १ सू. ४–५–६)"

"उद्यन्नादित्यः क्रिमीञ् हन्तु (का. २ अ ६ सू. ३२)"

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रि युगं पुरा । मनै नु बभ्रूणमहं शतं धामानि सप्त च । शतं वो अम्ब धामनि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदंकृत ।

पुष्पवतीः प्रसूवरीः वीरुधः (पू. अ. १२ मं ७५–७६–७७) अथोकृणोमि भेषजं यथा सच्छत हायनः । वराहो वेद वीरुदं नकुलो वेद भेषजीं । सर्पागन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे । या सुपर्णाः आंगिरसी दिव्यायारघटो विदु वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः । मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे । यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः । तावतीस्तुभ्यमोषधी शर्म यच्छन्त्वाऋताः यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः पुष्पवतीः, प्रसूमतीः, फलिनीरफला (का. ८ अ. ४ सू. ७) यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्य हिं पुनः । (कां. ६ अ. १३ सू. १३९)

अत्र शतं धामनि सप्त च इत्यस्मिन्मन्त्रे प्राधान्येन धाम्नां सप्तोत्तरं शतं संख्याय । द्वितीये मन्त्रे धामनिसहस्रमुत इत्य प्राधान्येन सहस्रञ्च सञ्चरव्यौ । यानि चाऽजाविमृगपक्षि हंससर्प सुपर्णनकुलवराह गन्धर्व मनुष्यादिभिर्ज्ञायन्ते । तानि सुखार्थं सर्वेभ्य उपयुक्तानि भवन्त्विति वेदो निर्दिशति किञ्चैतानि विनापि भेषजानि । कुष्ठ कृष्णरामा दर्भदूर्वा रोहिण्यश्वत्थ पिप्पल्यपामार्ग पृश्निपर्णी मधुवल्यादीनि बहून्येकैकत्वेन भेषजानि वीर्यगुणकर्मभिराम्नातानि वेदेषु तत्रतत्र उपलभ्यन्ते यदि तान्युद्धृत्याऽत्र कथयेयं सेषामेव कश्चन् महान् स्याद् ग्रन्थः । परमनौचित्याद्बिभेमि । किञ्च विषचिकित्सायञ्च बहूनि भेषजानि बहवोऽन्ये चोपायाः प्रदर्शिताः ।

किंबहुना । "उच्चैर्घोषो दुंदुभिस्सत्वनायन् वानस्पत्यः सम्भृत उस्रियाभिः वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्यसपत्नान्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि । (कां ५ अ. ४ सू. २०)" इत्यादिना सूक्तेन निर्वर्णित एव विषयः सुश्रुतस्य कल्पस्थाने दुन्दुभि स्वनीयाऽध्याये व्याख्यातस्य अनेन दुन्दुभिं लिम्पेत पताका तोरणानि च । श्रवणाद्दर्शनात्स्पर्शाद्विषात्सम्प्रमुच्यते इत्यस्य मूलं स्यादिति कथनमन्यथा न स्यादिति विश्वसिमि ।

वेदेषु न केवलं कायचिकित्सैवाऽपि तु शल्यप्रणिधानाद्यन्याङ्गचिकित्साश्च भूयस्य उपलभ्यन्ते । तत्तान् चिकित्सकमहाशयान् सप्रणयाऽवनतं सम्प्राथ्यं निवेदयामि । ये नाम वेदाऽऽयुर्वेदयोश्चिकित्सासम्बन्धं दृढतरं कर्तुमीहन्ते । ते च नितान्तं वेदेष्वायुर्वेदे च परिश्रम्य भूयोभूयश्चिकित्सकजन प्रीतानर्थानाविष्कुर्वन्त्विति । किञ्चाऽत्रैव दृष्टान्तत्वेन निदर्शितैः अप्स्वन्तरमृतं उद्यन्नादित्यः इत्यादि वेदोक्तैर्वाक्यैः स्वास्थ्यसंरक्षणे आपः सूर्यश्च कथं प्रयोजका भवन्तीत्यवगम्येताऽन्यत्र वाय्वादयोपि स्वास्थ्यरक्षणे प्रयोजकत्वेन समाम्नाताः । किञ्च केचनाऽनुपकरणनयनानामदृश्याः क्रिमयो बहून् ज्वरराजयक्ष्मादीनामयान् जनयन्तीत्यधुनातनानां कुशलानामपि भिषजां समालोचनाया वेदेष्वाधारका मन्त्राश्श्रूयन्ते तथाहि ।

"क्रिमे विश्वस्य तर्हणी दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहं । अलगण्डून् ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः । येऽस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् । (कां.

२ अ. ५ सू. ३१)". प्रसङ्गवशात् न केवलमदृष्टान् क्रिमीन् अपि तु बहूनन्यानपि जनज्ञानाय सूचितवान् । किञ्चास्वास्थ्य – कारणानां विविध कीटानां मक्षिकाणां सरीसृपादीनाञ्च नाम कर्माण्यभिहितानि । गौरवात् न विस्तार्यन्ते । तदलङ्करोमि सभायामस्याम् वेदपुरुष प्रस्तावं प्रमाणधुरन्धरम् ।

औचित्यादत्र रसशास्त्रं किञ्चिद्विवक्ष्यामि । अस्य शास्त्रस्य सिद्धाः लोकायतिकाश्च प्रवर्तकाः । तस्माद्रसस्य महारसानामुपरसानां रत्नानां लोहानां तथा चैतदुपयुक्तानामान्येषाञ्च केषाञ्चिद्विज्ञानविषयान् रसार्णव रससमुच्चयादितन्त्रग्रन्थेषु तथाऽर्थशास्त्रेपु च द्रष्टुं शक्नुमः ।

"सिद्धानाञ्चोद्देशो । सेत्स्यति रसे करिष्ये महीमह निर्जरामरणां (र. स. अ. १ श्लो. ३६)"

कर्मयोगेन देवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम् ।
रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा मतः ॥
मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयतिं स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरवि ॥ (रि. प्र. प. श्लो. १८-१९)

इत्युक्तदिशा । निर्जरामरणत्वं दीर्घकालानुबन्धस्य शरीरस्य धारणञ्चाऽऽस्ते । अर्थाजीवन्मुक्तिः स्वास्थ्यसंरक्षणञ्च । लोकायतिकानां पृथिव्या लाभेपालनेचोद्देशः । (अ. १, अध्या. १, सू. १) कोशाऽध्यक्षः कोशप्रवेश्यं रत्नं सारं । (अ. २, अध्या. ११, प्र. २९.) आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्र रसपाकमणिरागज्ञस्तज्ञसंघो वा । (अ. २, अध्या. ११, प्र. ३०) इत्यादि कथनानामनुरोधेन पृथिव्या लाभः पालनश्चोद्देशोऽस्ति ।

रसकर्मणि तु सिद्ध इव लोकायतिका अप्यपश्चिम विपश्चित आसन् ।

"यथा रसजं क्षेत्रजं चैव लोहसंकरजं तथा ।

त्रिविधं जायते हेम चतुर्थञ्चोपलभ्यते ॥ (र. प. ७, श्लो. ९९) इति त्रिविधानि सुवर्णान्येव निरदिशत् ।

अर्थशास्त्रे तु, जाम्बूनदं, शातकुम्भं, हाटकं, वैणवं शृङ्गशुक्तिजं जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतञ्च सुवर्णमिति । सप्तविध सुवर्णानि प्रादर्शयत् वैक्रान्तः सूर्यकान्तः, हीरकं मौक्तिकं चन्द्रकान्तः राजावर्तः गरुडोद्गारः पुष्परागं महानीलं पद्मरागं प्रवालकं वैदूर्यं नीलमिति । त्रयोदश मणिभेदान् सिद्धाः । सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः वैदूर्यः उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पकः उदकवर्णः वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्परागो गोमूत्रको गोमेदकः नीलावलीयः इन्द्रनीलः कलायपुष्पकः महानीलः जाम्बवाभः जीमूतकप्रभः नन्दकः स्रवन्मध्यः शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः इति चतुर्विंशति मणीन् लोकायतिकाश्च व्याजह्रुः । एवं तन्त्रशास्त्रे प्रतिपादितानां मणीनां लोहानां तेषामेवाऽर्थशास्त्रे प्रतिपादितानाञ्च गणनाभेदो विद्यते । तयोरर्थशास्त्रमेव धात्वादीन् सम्यग्विभज्य प्रादर्शदिति कथनमुत्प्रेक्षणन्नस्यात् एतत्कथनस्येदं तात्पर्यम् । रसशास्त्रमारम्भे चिकित्साबुध्या न प्रादुरभूत् । परमर्थसाधनबुध्या तस्माद्रसशास्त्रस्योत्कर्षविषये चिकित्सका इव लोकायतिका अपि कारणत्वेन सन्तीति । चिकित्सकाश्चार्थशास्त्रे प्रतिपादितान् धात्वादि विषयान् प्रसमीक्ष्येतोऽपि स्वप्रमेय लाभं लभेरन्निति मे प्रत्याशा ।

तन्त्रशास्त्रं, रसखण्डं, प्रयोगखण्डं, वादखण्डं, रसायनखण्डं, मन्त्रखण्डमिति पञ्चधा विभक्तं प्रकृतेऽस्मच्चिकित्सा प्रपञ्चे तु रसप्रयोगरसायनखण्डान्येव बाहुल्येनोपयुज्यन्ते । खण्डे-

ष्वेतेषु निर्दिष्टाऽर्थान् आयुर्वेदमहामण्डलस्य षष्ठस्य सम्मेलनस्य सभापतयो लक्ष्मीराम स्वामिनो यथोचितं व्याकुर्वन्निति । नाहं कालं भवदीयं हरामि । परन्त्वेतदेव सूचयित्वा विरमामि रसशास्त्रात् ।

महाशयाः ! सभ्याः ! रसरत्नसमुच्चयस्याऽष्टमे परिभाषाप्रकरणे "प्रोक्तानां रञ्जनसारणयोः तथा लेपक्षेपकुन्तधूमशब्दाख्यवेधानाञ्च पारिभाषिकाणां सूतकञ्चाऽभ्रकञ्चैव वज्रीक्षीरसमन्वितम् हाटकेनसमायुक्तं गुटिका खेचरी भवेदिति । (र. प. १२ श्लो. ३७३)" रसार्णवस्य श्लोकस्य चाऽर्थतत्वं विचारयेमस्तेन भारतीया अस्मत्पूर्वजा रसे कीदृशीं परां काष्ठां अगमयन्निति सुव्यक्तं जानीमः । परन्त्वत्राऽविश्वासोऽस्मदालस्यञ्च परं निदानं स्यात् । तदेव सुधियः प्रमाणमिति पुरस्तात्साधयामि ।

नाडीविद्या । नाडीविद्यामधिकृत्येदानीं किञ्चिदुच्यते । भारतीयेष्वाधुनिकेषु भिषग्जनेषु नाडीपरीक्षणन्नाम चरकसुश्रुतादिष्वार्षेषु ग्रन्थेष्वनुक्तं किञ्च न परीक्षणान्तरमुपलभ्यते । किमस्याः परीक्षाया मूलमिति कैश्चिद्विचार्यते । यद्यप्यर्वाचीनेषु शार्ङ्गधर—भावप्रकाशादि ग्रन्थेष्वस्या विद्यायास्समुल्लेखनञ्च दृश्यते । यथा करस्याऽङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी । तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैरित्यादिना प्रमाणञ्चैवं स्थाप्यतेऽत्र । नाडीविद्यायां नाडीस्पन्दनस्यैव परीक्षणं तत्र स्पन्दने वायुर्निदानं । तथाहि पित्तकफयोः पंगुत्वात् चलनात्मको वायुस्स्पन्दयते नाडीं । स च वायुर्योगवाही तस्य च योगवाहित्वे योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयादिति चरकः । धमनीषु संसरतोः कफपित्तयोः प्रेरकोवायुः कारणवशात् शीतस्पर्शः क्वचित् क्वचिच्चोष्णस्पर्शः क्वचिच्चाऽनुभयस्पर्शो भवति । किञ्च धमनीषु त्रयोऽपि दोषास्संसरन्तीति सुश्रुताचार्यः कथितवान् । तथाहि नहि वातं शिराः काश्चित् न पित्तं केवलं तथा श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहास्स्मृता इति (अत्र शिराधमनीनां समान क्रियावत्त्वं) तस्मात्त्रयोऽपि दोषाः शिरास्विव धमनीष्वपि शोणितेन सार्धं सरन्ति । तत् योगवाही च वायुः कारणानुकूलं क्वचिदुष्णस्पर्शः क्वचिच्छीतस्पर्शः क्वचिच्चाऽनुष्णाऽशीतस्पर्शः भवति । तीक्ष्णमन्दवेगवत्वयोर्विषमवेगवत्वस्य च नाड्यास्स एव कारणं तथा च तद्यथाऽन्त्रकूजनं सन्धिस्फोटकमङ्गुलीपर्वणाञ्च खर विशेषांश्च ये चाऽन्येपि केचिच्छरीरोपगताः शब्दास्तान् श्रोत्रेण परीक्षेत । स्पर्शञ्च पाणिना, प्रकृतिविकृतियुक्तमिति । प्रत्यक्षतोऽनुमानैकदेशतश्च परीक्षणमुक्तं । स्पर्शप्राधान्येनाऽऽतुरस्याऽऽयुषः प्रमाणविशेषं जिज्ञासुः प्रकृतिस्थेन पाणिना केवलमस्य शरीरं स्पृशेत् परिमर्षयेद्वाऽन्येन । परिमृषताऽऽतुरशरीरमिमे भावास्तत्रतत्राऽवबोद्धव्याः । तद्यथा सततं स्पन्दनानां शरीरोद्देशानां स्तम्भः नित्योष्मणां शीतीभावः, मृदूनां दारुणत्वं, श्लक्ष्णानां खरत्वं, सतामसद्भाव इति च चरकाचार्यः । अनेन हृदयस्य परिमर्षणञ्चोक्तम् । एवं नाडीविद्याया बीजरूपाणि वचांसि दृश्यन्ते खल्वार्षेष्वपि ग्रन्थेषु । तदनुयोगिभिस्तथा रसतन्त्रज्ञैश्च साऽतिमात्रं वृद्धिम्प्रापिताऽऽधुनिकेषु वैद्येषु प्रचरन्त्यास्ते इतश्चिकित्सका विपुलविमलबुद्धयश्शरणम् ।

सम्भावयामि श्रोतृमहाशयास्त्वेतावतैवोद्विग्ना अभूवन्निति । तस्मादितोऽपि श्रीमतो हि भवत उद्वेजयितुं सर्वथा नाभिलषामीत्यतिसत्वरं विषयमसुं चोपसञ्जिहीर्षामि । चरकाचार्यः । "यथावत्सर्वधातुसाम्यं चिकीर्षन्नात्मायमेवाऽऽदितः परीक्षेतेति (च. वि. सू. ९६)" । व्याजहार । तद्वयं समवेताश्चिकित्सका प्राणाऽभिसराः किमुत रोगाऽऽभिसरा वेति विचार्य सर्वथा सर्वकाले च यथा प्राणाऽभिसरास्स्याम् तथा यतेमहि ।

श्रीमान् डॉ, रायबहादुर सी. बी. रामराव एम्. डी. **बेंगळूर**।
अध्यक्ष–कर्णाटकप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन **धारवाड** (सन १९२९)।

प्राणाऽभिसरणाञ्च गुणलक्षणानि चरकाचार्यस्समग्राणि दशप्राणायतनीयेऽध्याये सम्यगुपदिदेश । तत्रोक्त गुणलक्षणान्येवाऽऽत्मसु धारयितुमुत्पादयितुञ्चाऽस्माकं प्रयत्नः एव कर्तव्योऽस्माकमास्ते । किं वयन्न जानीमोस्माकञ्च दौर्बल्यं कायचिकित्सायाः पञ्चसु कर्मसु बालत्वं कौमारतन्त्रेऽवैशाल्यं शल्यशालक्ययोस्सत्यप्यल्पीयसि रसायनवाजीकरणयोर्ज्ञानेऽनगदङ्कारता तु भूतविद्याऽगदतन्त्रयोः किन्तु वयन्न शोचामो नष्टं सिराव्यधं, नष्टञ्च जलौकसामवपातं किन्न सीदन्त्यस्माकं गात्राण्यवलोकयितुं क्षारकर्मणां दुर्गतिं दुर्दशां चाऽग्निकर्मणां किं वयं व्यस्मरामाऽस्मत्पूर्वजान्विविधयन्त्रेषु कृतहस्तान् तांश्चिकित्सकान् येऽन्तर्गतेभ्यो नानास्रोतोभ्यो वीक्ष्य नाडीभिर्नाडीयन्त्रैश्चापरैराहतान्यनायासेन शल्यानि क्व च ते सन्ति सद्वैद्यकुलजा विद्वत्प्रवरा शस्त्रचतुरा ये नाम छिन्नोदरेषु बद्धेषु चोदरेष्वसाध्येष्वपि दर्शितशस्त्रपातचमत्काराः ।

क्व च ते शीतोष्णकृतज्वरेषु परां काष्ठां उष्णशैत्योपचाराणामदर्शयन् । क्व च ते चोन्मादाऽपस्मारादिषु मानसिकेषु आमयेषु चित्रान्विचित्रांश्चोपायानपि तु तुहिनानां दत्यादींश्चाऽऽबोधयन् । हा ! च्युतास्स्मश्च्युतास्स्मः किन्न च्युतास्स्मः । आयुराम्नायमहानाकपृष्ठात्प्रदुष्टा वयम् । तदधुनाऽऽयुराम्नायस्याऽभ्युन्नतेः क्रियाकालस्सन्नद्धोऽस्ति क्रियाकालं न हापयेत् इत्युक्तिं बहुमत्वोद्दिष्टायर्थान् साधयितुं विचारयामः । विचारयतामस्माकं त्रीणि च भव्यानि शकुनान्यभयमतिमात्रं प्रदाय सूचयन्ति । शुभोदर्कं तथापि तत्प्रथमः सर्वकर्णाटकेष्वस्मास्वकुटिलो देशाऽभिमानः, द्वितीयश्च प्राच्यवैद्यकविद्यानां समुन्नत्यै महाराजानां निजानुग्रहः, तृतीयः कृतमुखानां नवीनचिकित्सासु वैद्यविदुषामप्रतिहतोऽकलुषितश्चाऽनुरागः पौरस्त्याऽऽयुर्विद्यासु । त्रयश्चैते दैवसंघटिता इति । त्रीणि शकुनानीत्यवोचम् किं बहुना ? । एते च त्रयो योगाः आयुर्वेदसमुन्नत्यै त्रयः उपस्तम्भास्सन्ति । तदस्मत्कर्तव्यानामेतैस्सम्बन्ध एव मण्डलस्य चिन्तनम् । कर्तव्येषु प्रथमञ्च प्रधानञ्चाऽयुर्वेदस्य कर्णाटकमण्डलस्य स्थिरीकरणं यथा वाऽवैद्यकम् द्वादशराजकं भवति मण्डलं तथा वैद्यमण्डलमपि द्वादशराजकम्भवतु । मण्डलं नियमावल्यां निर्दिष्टानुद्देशान् निर्वोढुं गृहीतजननमिव वेत्तुस्वम् विभिन्ना अपि मण्डल माण्डलिकास्संगतास्संवादिनः सम्मताश्च स्युः ।

वर्षे वर्षे च सभायां सभायां च परिमिता नेवोत्पादयंतु प्रस्तावान् उत्पादितान् विस्मृत्य कर्मणि प्रस्तावान् संक्रामयन्तु । तत्सभ्याश्च जीवनाय वर्धनाय च मण्डलस्य देयान् सांवत्सरिकान् प्रदद्युर्यथानियमम् तदित्थं पुष्टं सुविरूढं सुदृढञ्च मण्डलमुद्दिष्टान्नियमावल्यां च निर्दिष्टान् साधयितुं सुसाधनं भवति । विद्यासम्पद्भिर्धनसम्पद्भिरुद्योगसम्पद्भिश्च मण्डलमावर्जितं यथा स्यात्तथा विदुषो धन्यान् धनिनः समुद्यमिनश्च सदस्यान् बहून् संघटयितुं प्रयतितव्यं । प्रयतितव्यं तथा च तथैव मण्डलैकाश्रयं विद्यापीठञ्चाऽन्वर्थकं कर्तुं तदिदं प्रथमञ्च प्रधानञ्चेत्युक्तम् ।

यदीदमीदृशं च मण्डलमायुर्वेदमहामण्डलस्योद्देशान् शिरसि धृत्वा जिज्ञासते यदि स्वीयं कृतकृत्यम् तर्हि पञ्चदशाऽधिकान् तत्र निर्दिष्टानुद्देशान् कर्मणि परिवर्तयितुं यतताम् । तेन च क्व विद्यतेऽवकाशो यादृशस्याऽभिनवं किमपि सूचयितुं । नैतावन्मात्रमेवाऽपि च कर्णाटकायुर्वेदमण्डलस्य प्रथमद्वितीययोस्सम्मेलनयोः प्रस्तुतेभ्यः सप्तत्रिंशदन्यूनेभ्यः प्रस्तावेभ्योऽप्यधिकं किं प्रस्तोतुं विद्यते वेति न जानामि । न तावदेव परिसमाप्नोति प्रसङ्गस्साम्प्रतिकः । किञ्च मत्पूर्वपूर्वतराभ्यां मण्डलस्याऽस्यैव सम्मेलनसभापतिभ्यां सुनिपुणं निर्दिष्टा आयुर्वेदाऽऽभ्युदाय सदुपाययाः किं तेभ्योप्यहं निपुणतरस्तानुपायानतिशेतुं तदेतावदेव ब्रवीमि ।

महाभागाः ! पूर्वसभापत्योरुपदेशान् सर्वथा कार्ये विवर्तयन्त्विति पुनश्चैकाऽधिकोक्तिः ।

सा चैवं आयुर्वेदे तत्वार्थेनाऽभ्युपगतानां दोषदूष्यमलादीनां तथा द्रव्यरसगुणवीर्यादीनाञ्च तत्वानि यथायथं निश्चित्य वैज्ञानिकेष्वप्याधुनिकेष्वपि प्रतिपत्तिमुत्पादयितुं योग्यसाधनान्याविष्कर्तुं मण्डलस्याऽस्यैवाऽऽश्रयेण काञ्चन पौरस्त्यपाश्चात्यवैद्यविद्वद्भूषितां विशिष्टां समितिं स्थापयेत् । समितिश्चैषाऽविच्छिन्नाऽनुबन्धेन विचारेण शोधनेन च यावद्ध्येयाऽऽयत्तं व्यवस्य तत्वानि प्रकाशयेत् । क्रमेणैकैकम् यथा यथा त्रिदोषस्य षड्रसस्य विपाकस्येत्येवम्भूतानामपरेषाञ्चाऽऽयुर्वेदाऽनुगुण्वेन तदनुकूलमेव प्राचीनग्रन्थानां विमर्शनमर्वाचीनग्रन्थानां रचनं तत्सम्बन्धिनीनां पत्रिकाणां लेखनं प्रकाशनञ्चाऽनुसन्दधीत । तान्येवाऽनुसन्धाय कलाशालासु तथाऽन्यत्र वा शिष्यान्बुभुत्सून्नन्यान् वा शासितुं बोधयितुं वा प्रेरयेदिति ह्येकोक्तिः । सन्दर्भेऽस्मिन् महतो मण्डलोत्सवस्यायुर्वेदसाहित्यमेधयितॄन् सूर्यचन्द्रसालत्रपूज्यपादवसवराजेन्द्रादीन् कर्णाटकूमारानतीता स्मृत्वा जीवद्ग्रन्थकर्तॄन् पत्रिकाप्रकाशकान् सर्वांश्चायुर्वेदहितैषिणोऽभ्यर्थये । तदित्थं उपक्रान्तेषु सञ्चार्याऽर्थेषु तानेवोपसंहरामि प्रणिपत्य महाभागान् भवतः ।

भवन्तस्स्वागतिका ? भवदध्यक्षा ! अन्ये च सदस्याः ! स्वसौजन्याऽतिशयेन कालमेतावन्तं सावहितमनसो मदीयमनल्पजल्पविजृम्भितं दीर्घोपन्यासं विषमविलसितमप्याकर्ण्य भाषणं गौरवमतिगम्भीरमन्यादृशञ्च प्रदर्शितवन्तः प्रदर्शितवन्तश्चाऽतिशयप्रेमभरं मयि मत्सुहृत्सु च स्वागतोपचारविचारैः । मदभ्यर्हणीयेभ्यः सुधीधुरीणेभ्यः श्रीमद्भ्यः धन्याऽऽलापान् बहून् समर्प्य परिष्वज्य च मच्चेतोन्तः पातिनिर्भवत्प्रतीकप्रतिस्फूर्तीर्विरमामि भाषणप्रसङ्गादस्मात् भवतामेवाऽनुज्ञया, मान्याः ! एवं हि पार्थः,

त्वमादि देवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यश्च परंच धाम, त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽतु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

॥ इति ॥

श्रीमान् वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर एम्. ए; एल्. एल्, बी;.
ऍम्. एस्. सी., जबलपुर ।
अध्यक्ष कर्नाटकप्रान्तीयवैद्यसंमेलन, हुबली (सन १९३४ ई)।
अध्यक्ष, मध्यप्रांतीय ४ वैद्यसंमेलन भंडारा (सन १९३५)।

The Life Sketch of B. V. Degweker.

Written by Mr. B. V. Degweker M. A. L. L. B.

I passed my matriculation in 1st class in 1907 & since then I have devoted myself to the study of Ayurveda under my late maternal uncle Pt. Damodar Balkrisna Desai a renowned Physician in this parts. I passed my B. Sc. in 1911 in 2nd division. I took M. Sc. degree in Physics in 1st class in 1913 from Allahabad University, took M. A. degree in Mathematics in 1915 and L. L. B. degree in 1st class in 1916. I was all along studying Ayurveda. I worked as Professor of Physics in Hislop College Nagpur for two years from 1915-1917 and since 1917 I have been actually practicing Ayurveda for the last 19 years at Jubbulpore.

Since the year 1922 I have been preparing students to appear at the All India Ayurveda Vidyapitha examinations and from 1925. practically every year some of my students have appeared for Visharad examination. I have been conducting All India Ayurveda Vidyapitha examinations at Jubbulpore centre continuosly for the last 9 years, and am the Provincial Secretary of the Mahamandal for the last eight years.

I have presided over the following four conferences.

I. The third Berar Provincial conference held at Darheva in November 1928.

II. The 1st **'निदान' तद्विध संभाषा परिषद** held at Nasik in June 1929 where Captain Murti was the All India conference President.

III. The Seventh All Karnatak Ayurvedic conference held at Hubli December 1934.

IV. The fourth Central Provinces Ayurvedic conference held at Bhandara in April 1935.

I have contributed articles on Tridosh theory to the following journals.

(1) Journal of Ayurveda Calcutta.

(2) 'Vaidya-Sammelan Patrika' Cawnpur and Poona.

(3) 'Bhishagvilas' Ahmadnagar—I am a member of the editorial Board of this paper.

I am a member of the following bodies of the Nagpur University since the year 1930,

(1) Academic Council
(2) Faculty of Science
(3) Board of Studies in Mathematics
(4) Board of Studies in Physics
(5) Kinkhede Lectureship Committee.

I have been an examiner in B. A. & B. Sc. in the Nagpur University.

I am a Principal of "Hitkarini City College" Jubbulpore since its inception the year 1933. The College teaches all subjects upto B. A. standard and the number of students admitted is 185.

I am every year an examiner in All India Ayurveda Vidyapitha examinations in either Visharad or Acharya since the year 1929.

I am also an examiner nearly every year in the following institutions.

(1) Jaipur Sanskrit College examinations (Ayurveda Section).
(2) Gwalior State Ayurveda examination.
(3) Ahmadnagar Ayurveda "

I am teaching Ayurveda in the Gayatri Sanskrit College Jubbulpore since 1934.

My father was a Sanskrit Scholar and from my childhood I have studied Sanskrit literature. I have also studied Nyaya, Sankhya and Mimansa under a welknown Pandit Lokanath Shastri Vidya-Varidhi and प्रधानाध्यापक Gayatri Sanskit College.

Report of the Provincial Conferences of C. P.

A Vaidya Sabha was started at Jubbulpore in the year 1920, and after 10 years standing, the Sabha could arrange to call the 1st conference of the Central Provinces Ayurvedic practitioners under the name मध्यप्रांत आयुर्वेद मंडल. It was held under the Presidentship of Pt. Jagannath Prasad Shukla of Allahabad in the year 1931 at Jubulpore. The second conference was held at Nagpore in 1932 under the Presidentship of Pt. Shaligram Shastri of Lucknow. The third was called in the year 1933 and was to be held at Chindwara under the Presidentship of Pt. Rameshwar Shastri, but as Pt. Rameshwar Shastri did not attend it, it was held under the Presidentship of Pt. Goverdhan Sharma Changani of Nagpur in May 1934. One Mr. Shandilya Trivedi of Benares who was never a member of this conference was elected secetary and since then a quarrel arose and two parties were formed. One of this party designated itself as Berar-Madhya-Prantiya Ayurveda Mandal and the other was already a Madhya Prantiya Ayurveda Mandala.

The fourth Conference of this 'Madhya Prantiya Mandala' was held at Bhandara under my presidentship in April 1935 and the next 5th is to be held this year in November at Katni.

The Shandilya party headed by Pt. Goverdhan Sharma Changani passed a resolution of no confidence against me in the working committee in 1934 but a special general meeting of the conference held at Nagpur in 1935 expressed full confidence in me and no confidence in the working committee and thus the conference was held at Bhandara in April 1935 as was decided at Chindwara conference.

The Reception Committee President at Bhandara conference Mr. Kolte B. A. LL. B. Pleader aud M. L. C. moved a resolution in the C. P. Counsil in 1935 for the establishment of a Board of Indian medicine and the resolution was passed but owing to financial stringency it is not put in force.

A committee has been appointed by the 25th All India Ayurvedic Conference held at Ahmedabad to settle the dispute between the two parties formed in C. P. and it is expected that the Committee would give its decision before the next session at Benares.

* * *

The Seventh All Karnatak Ayurvedic Conference & Exhibition,

Held at Hubli

On 26th & 27th December, 1934

President's Speech

नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वंतरि सुश्रुत चरक प्रभृतिभ्यः ।
सुधाकुंभं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां ।
सहस्रं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ॥
मणिं श्रीवत्सांके हृदि जलनिधेर्योऽजनिपुरा ।
विनिघ्नं विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥

Chairman of the Reception Committee, Members and friends.

1. *Introdnctory:*—I have to express my deep gratitude, for the honour you have done me by calling upon me to preside over the deliberations of this august body. When I received the telegram from the worthy Secretary of the learned Reception Committee of this All-Karnatak Seventh Ayurvedic Conference, requesting me to accept this chair, I hesitated mainly for two reasons. First of all because, I happen to be an utter stranger to these parts; and secondly because, I am not in the least conversant with Canarese, your mother-tongue. I, however, accepted the responsibility with this consolation that this august body is well aware of these two deficiencies in me. It being my duty to be of service to you in the best possible way, I would crave your indulgence for my deficiencies. I am rather confident of your whole-hearted co-operation so as to make this session a complete success.

2. *A suggestion regarding election of the President:*—A suggestion, for which you will kindly cxcuse me, regarding the election of the president for these provincial sessions, may not be out of the way. My experience in my own province *viz.*, the Central Provinces, analogous to that of many of my friends in other provinces tells us that it is, in all cases, advisable to elect a person from one's own province, to the Chair. An outsider is neither expected to be fully aware of the prevailing local conditions concerning the advancement of Ayurveda in its various branches *e. g.* schools, dispensaries, hospitals etc., nor can he conveniently attend the various meetings of the

Executive Committee which have to be held during the following year, in order to give a practical shape to the resolutions passed by the Annual General Meeting. This question may, if necessary, be discussed in our Subject Committee.

3. *Condolence:*—Before I proceed further, I consider it my duty, to express my heart-felt sorrow at the sad demise of those Ayurvedic practitioners of renown, and specially for late Kaviraj Shiromani Pandit Shamdas Bachaspati, the most prominent Ayurvedic physician of the day, an erudite Sanskrit scholar. We must offer our sincerest condolence to the members of the bereaved families and pray that their souls may rest in peace.

4. *Scientific Aspect of Ayurvedas:*—Gentlemen, I now proceed to discuss the scientific aspect of Ayurveda. Before I assert that Ayurveda is a science, it is necessary to explain what is meant by that term. Karl Pearson in his "Grammar of Science" states, "The man who classifies facts of any kind whatever, who sees their mutual relations and describes their sequences is applying the Scientific method and is a man of Science." Science is critical systematic knowledge based on generalisations. It is an investigation into the nature of facts—facts not selected at random—but in their comprehensive entirety. The scientist systematies the date, records his observations and draws certain conclusions therefrom which ultimately assume the form of a formula or a universal truth. He proceeds rationally and logically through all his investigations.

With proper attention to this conception of science we may easily assert that Ayurveda has a rightful claim to that title. To those who have no adequate idea of its real nature, this assertion would appear absurd. Suffice it to say, that Ayurveda includes within its compass various modern sciences such as Physiology, Anatomy, Pathology etc. If these are easily accepted as sciences, what scruples should one have concerning Ayurveda which encompasses all these along with other things in its wide range ?

5. *Mixing Science with Philosophy:*—I may now consider an objection generally levelled against Ayurveda *viz.* that it mixes up Philosophy with Science. To quote Karl Pearson, once more "The scope of Science is to ascertain the truth in every possible branch of knowledge. There is no sphere of enquiry, which lies outside the legitimate field of science. To draw a distinction between Science and Philosophy is obscuratium." Showing thus how close together both the conceptions come,the objection no longer remains peculiar to Ayurveda, but can equally be raised against any science whatever, only to be refuted.

It is true, however, that Ayurveda is based upon the fundamental conceptions established by the Realistic schools of Indian metaphysics *viz.* Nyaya and Samkhya. But as the student of science of our day knows full well, every science is based on certain pre-suppositions or postulates which are established by some other science. These presuppositions are accepted as self-evident and on their basis the whole subsequent structure raised. Thus the science of ethics presupposes the doctrine of the freedom of will, the proof of which lies within the legitimate range of metaphysics, and builds its entire body of principles upon this postulate. Similarly psychology takes for granted the existence of human mind and then proceeds to investigate into its working. In the same manner, the knowledge of the two systems of Samkhya and Nyaya is as essential to the student of Ayurveda as that of physics, chemistry and biology to the student of Allopathy.

It is so far clear that Ayurveda is within its legitimate province when it borrows certain conceptions from those two schools. I would now proceed to show that those conceptions are inevitable to Ayurveda. The systems of Nyaya and Samkhya deal with the creation and evolution of the universe, and living bodies being the part of the same, the link between the Primary Constituent of the Universe on the one hand, and the evolved ones, on the other, which have a direct bearing on the living biological organisms, must be definitely understood before discussing the processes, according to which a living human being maintains his existence or wards off processes which tend to vitiate the equilibrium among the various functions of the body. I would therefore, point out the bare facts regarding the two systems before I proceed to discuss the theories on which Ayurveda is based.

6. *The Nyaya System:*—Kanada, who has propounded the Nyaya System, has classified all the different Bhavas *i. e.* categories *i. e.* anything of which the existence can be conceived into seven groups called Padartha. Of these we shall be mostly concerned with three *viz.* Matter (Drava), Qualities (Guna), and Actions (Karma), Matter is again of nine kinds which may be conveniently grouped together as Physical (Bhoutika or Panchabhoutika) and metaphysical. Ether (Akasha) Air (Vayu) Fire (Tejas) Water (Ap) and Earth (Prithivi) are included in the Bhoutika class. These five alone are capable of perception by the senses, (Indriya-Gochara) while the other four are not so being Ati-Indriya. All physical matter is Panchabhoutika *i. e.* composed of the five elementary dravyas mixed up together in various proportions. There are atoms of every one of these and a combination of a different number of atoms (Paramanus)

of each of these five elements gives rise to various physical objects which we perceive around us. Thus the different atoms of the eighty and odd so called elements of modern chemistry are not simple bodies but each one of them is composed of the atoms of these five elements in various proportions—a notion which has begun to gain ground in modern electron theory. Whatever it be, the promoters of the Nyaya system hold that this physical universe is made up of these Panchabhoutika paramanus. Even the mind is composed of paramanus, and Kanada holds that when the Panchabhoutika and the Manas Paramanus begin to combine, life is produced. Thus according to him the root cause of the universe is no other than the atoms. These atoms are extremely fine (Sookshma) and indestructible (Nitya). When they begin to combine, the different objects in the universe come into existence. This theory is technically known as Arambha-Vada.

7. *Its Failure:*—This theory may be termed the ancient equivalent of the Atomic Theory of Dalton. But as in the west the atomic theory has now been completely exploded by the evolution theory of Darwin, so also as far back as about three thousand years ago, the atomic theory of Kanada was exploded by Kapila the founder of the Samkhya system. Kanada is not only unable to state how the paramanu got into motion in order to combine itself with another one, but also fails to explain how the different progressive stages of the vegatable, animal and human kingdoms belonging to the living part of nature were evolved ; neither can he accord any explanation of the agency by which lifeless lumps could be evolved into animate beings. This has been explained in the west by Lamark and Darwin in the 19th century and by Kapila Muni in the east. They both hold that the universe has been created by the evolution of one single substance which existed before creation commenced. The western Scientists formerly held that the whole creation was the outcome of some ninety and odd elements but later researches showed that some of these elements could be converted one into the other. Recently an experiment is reported to have been performed in Germany, where an electric current was passed continously for eight days through mercury vapour, and a few particles of gold were obtained therefrom. The electron theory, Prof. Einstein's theory of Relativity and Madam Curie's radium experiments have proved that an atom is made up of positive and negative electric charges, and by an addition of these charges, an atom, like say of hydrogen, can be converted into another of a different element. Thus the number of elements has been gradually reduced.

The latest evolution theory of Darwin holds that the whole solar system is evolved out of a single incandescent mass of vapour, which gradually cooling down, the upper crust underwent a change, and owing to the force of gravity, portion of it being dislodged from the whole formed into different planets, one of them being our earth. As the process of cooling continued vegetable life came first into existence which was followed by animal and last of all human creation.

8. *Sat-Karya-Vada of Kapila:*—Kapila, the founder of Samkhya system of philosphy, enunciates the first and foremost axiom of his theory *viz.* that nothing new is created in the universe, because Shoonya *i. e.* that which did not exist before, would not give rise to anything but Shoonya, a nonexisting entity. There are no two opinions even among the western scientists as regards nothing being produced out of nothing. Therefore whatever attributes one finds in anything which is created, must in a very minute form (Sookshma-Roopa) exist in that form in which it was created. For example, we find that a big banian tree is evolved out of an extremely small seed by extracting necessary substances it requires from earth, air and water, and thus the same seed has just simply changed its form ; in other words, the tree existed though in a very minute form in the seed, and under favourable conditions that form developed into the tree. Similarly, if we burn fuel, its form is changed to ash or smoke, and not that smoke is a new thing obtained by the destruction of the substances in the fuel. If a new substance be supposed to be produced by the destruction of another, why should curds not be obtained from water, or why should we not be able to extract oil from sand, instead of from linseed ? Thus that which exists now must be obtained from something which existed in another form before, in howsoever minute form it may be. This axiom is known as Sat-Karya-Vada in Sankhya philosophy. This axiom and the principle of conservation of energy mathametically proved by modern scientists are practically the same except for this difference that while Sat-Karya-Vada has reference only to the creation of one substance or form matter from another, the sum total of matter and energy in all conditions is always the same.

9. *Prakrti. The Primal Constituent:*—Having admitted the truth of this Vada, it is evident that the creation could not be produced out of Shoonya. It must have evolved out of something which the Samkhyas call Prakrti or Avyakta, which contains the whole universe in a very minute form (Sukshma-Roopa). Thus Sushruta, who follows Kapila in treating of the creation of the universe, in the first canto of Sharira-Sthana, with the heading Sarwa-Bhuta-Chinta-Sharira says:—

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमो लक्षणमष्टरूपमाखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम । तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्रमिवोदकानां भावानाम् ।

आयुर्वेद महाविद्यालय (पुना) अध्यापकवर्ग (सन १९३५) ।

लाईन १ वांइओरसेः–१ न्यायरत्न नारायणशास्त्री वाडीकर, २ डॉ. मा. पु. जोशी, L. C. P. S. ३ डॉ. रा. ना. दातार, M. B. B. S. ४ वैद्य त्रिंबकशास्त्री आपटे, भिषगाचार्य, ५ वैद्य प. ग. नानल, आयुर्वेदाचार्य (अधिपति), ६ वैद्य र. वा. जोशी, आयुर्वेदविशारद ७ डॉ. वा. त्रिं

It may be stated here, that the discussion aboot Sattwa Rajas and Tamas Gunas of the Prakrti, and their different combinations, would require a separate chapter to be written, which is not possible to do here and now. I will, therefore, proceed to point out the different stages of evolution, starting from Prakrti as origin.

10. *Buddhi. Second stage of Evolution:*—Common experience tells us that whenever a human being intends doing anything he first resolves to do it by the exercise of the faculty of volition. In other words deliberate volition proceeds every conscious action. Chandogya-Upanishad says that the Primeaval matter first resolved to express itself into many aspects **एकोहं बहुस्या प्रजायैय इति,** and then the creation started. In accordance with this common experience, the Prakrti too, resolves to create the universe ; and thus the first stage in the evolution, is the expression of this attribute of resolution **व्यवसायात्मिक बुद्धि** as it is technically called-in Prakrta. But the human being, because he is possessed of soul along with everything else, can realise the existence of Buddhi, whereas Prakrti, which is everything except this soul, is not able to realise that existence. This difference is a consequence of the presence of life manifested in man but not in Prakrti Hackel in his 'Parigenesis of the Plastitudes' states "Without the assumption of an atomic soul the commonest and most general phenomena in Chemistry are inexplicable. Pleasure and pain, desire and aversion, attraction and repulsion must be common to all atoms of an aggregate, for the movements of atoms which must take place in the formation and dissolution of a chemical compound can be explained only by attributing to them sensation and will." Thus when we know that even the recent scientists hold that the most lifeless things in the universe do possess a power equivalent to the Buddhi possessed by human beings, but unrealised, we would easily appreciate the reasoning by which the Samkhyas assert that Buddhi is the first stage in the evolution of Prakrit. Hence Sushruta says—

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिंग एव । महानिति बुद्धितत्वं ।

नि॰ सं॰

11. *Ahankara. The next Stage:*—The next stage in evolution is Ahankara. Even after the evolution of Buddhi in Prakrti, we find that Prakrti is still homogeneous, while the creation that we see around us, is found to be heterogeneous consisting as it does of man, stone, earth, metals and so on. Unless this attribute of differenciation (Prthaktwa) is manifested, we cannot expect to find different objects in the universe. And therefore the next stage in the process aught to be the evolution of this Ahankara in Prakrti. The root meaning of the word Ahankara is the idea of holding one's own entity separately

from others. To realise that I (Aham *i. e.* Ego) is different from everything else is Ahanakra. This Ahankara cannot be realised by lifeless objects in the universe, while the human being as possessing soul can realise it. But the fact is certain that unless the existence of Ahankara is assumed, the actual existence of different objects with varying shapes, sizes specific gravities and so on cannot be explained. The idea of existing separately from others is what is meant by the term Ahankara. Hence says Sushruta:—

तल्लिंगाच्च महतः तल्लिंग एवाहंकार उत्पद्यते । स च त्रिविधः वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति ।

After this stage Prakrit branches off into two section, (i) organic and (ii) inorganic; Sendriya including vegetable, animal and human beings; and the other Nirindriya or matters. There are eleven elements of the organic section *viz.* the five Dnyan-indriyas or sense-organs the five Kama-indriys or motor-organs, and the Manas (Mind). All these are evolved by the predominence of Satwa Guna in Prakrti; while the five tanmatra dravyas are evolved by the predominence of Tamo-guna and from the basic elements of the inorganic world. Sushruta thus says:—

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राण वागस्थोपस्थ पायुपादमनांसीति । तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतरानि पंचकर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनः । भूतादेरपि तैजससहायात्तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा । शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रं चेति ।

12. *The five Subtle Chief Elements:*—It is desirable, at this stage to discuss why and how the basic elements of the inorganic creation are only five. Scientists of the present day have divided all created substances in the universe into three classes only, *viz,* solids, liquids and gases, but the principle on which the Samkhyas have classified substances is different, as well as interesting and at the same time convincing too. They hold that all objects in the universe are perceived by men, though five senses and five only and the mechanism of these senses is such that each of them can perceive only one attribute. Eyes are unable to perceive smell, while ears cannot see, Twak the cutaneous organ cannot discern whether a pudding is sweet or bitter, nor can the tongue hear; so aslo the nose unable to perceive colour. Thus if five sense-organs (Dnyanendriyas : Shrotra, Twak, Chakshu, Jihwa and Ghrana) and their corresponding perceptions of Shabda (Sound) Sparsha (Touch) Rupa (Form as grasped by the Sight) Rasa (Taste) and Gandha (Smell) are definite, it is evident the only five attributes which form the object of these Dnyanendriyas must go to form the whole creation, for even if we suppose that

there is a sixth attribute, we are not possessed of any means whereby to perceive it. Every one of these attributes can be subdivided into a number of classes, for example Shabda, although it is one attribute can be harsh, soft, high, sweet, unpleasant; or Sa Re Ma Pa or A B C D etc. as classified in the art of Music; or as palatal, lingual, gutteral, according to the human organs employed in its production. Similarly, Taste, another single attribute, may be classified as sweet, sour, salt, pungeant, bitter and so on. Roopa may vary according to colours as blue, red, green, yellow and so on. These differenciations of the single attributes do admit of further sub-classification. Thus sweetness, one of the tastes, is different in each of these, sugar-cane, milk, mango. In this manner, as each attribute is capable of innumerable subdivisions, by the combinations, of the subdivisions of each of these attributes, we obtain innumerable different substances, each having a different proportion of each of these attributes. This fact adequately explains the obvious variety and diversity of our creation. But howsoever the combination be obtained you cannot perceive more than five of these attributes, because you are endowed with five Indriyas only; which are as it were, God-gifted machinaries for the detection of separate attributes of the five Dnyanendriyas. Thus although it is impossible to obtain any substance which posses-ses only one single attribute, separately, still Kapila has, from the above discussion rightly arrived at the conclusion that the Prakrti must have evolved five elements; Shabda-Tanmatra, Sparsha-Tanmatra, Roopa-Tanmatra, Rasa-Tanmatra, and Gandha-Tanmatra as the bases for the formation of this creation, the word Tanmatra meaning exclusively. These Tanmatra elements of Tanmatra dravyas are necessarily subtle (Sukshma).

13. *Pancha-Maha Bhutas:*—The Sthula (Gross) Pancha Maha Bhutas are obtained by the combination of these Tanmatra Dravyas. The process is as follows:—We know that the sound is caused by the vibration of particles of any substance and vibration is possible only when the particles of any substance have sufficient space to move from one place to another. Thus sound cannot be produced inside a block of iron. Unless there is space, shabda or sound is impossible; in other words space is the necessary accompaniment of sound. This idia is expressed of the Samkhyas, by the aphorism "Shabda-gunam Akasham". Thus the Sthula Maha-Bhuta (Element) which must exist in the universe if sound is to be produced at all, is Akasha or space. Here we see that Akasha is the seat of one attribute only viz Shabda, and no other. Space cannot be felt by touch, seen, tasted or smelt; and so Daliana in his commentary, states "शब्दतन्मात्राच्छब्दगुण

व्योम" The next Vayu or air combines only two attributes viz. Shabda and Sparsha. It is capable of being felt and heard, but cannot be seen, tasted or smelt, in its unmixed states. Anything in which these two attributes alone combine, would fall under this category, but from the testimony of nature, we find that it is air alone that combines these two attributes. Hence the next Maha-Bhuta is termed Vayu. The third Maha-Bhuta is Tejas, Agni or Fire. It occupies space and can be felt by touch and seen by the sight, but can neither be tasted or smelt, The fourth is Apa or water, which possesses an additional quality of being tasted; and the last is Prthiwi which alone with the other four attributes possesses the quality of being smelt. It should be noted here, that the term Maha-Bhuta is given merely to the combinations of these Tanmatras, and to any material substance itself as perceived in the Physical world around us. The terms Prthwi, Apa, Tejas, Vayu and Akasha, as popularly understood connote the elements as we see them around us in their mixed or alloyed form. But the subtle elements though going by the same appelations stand for their pure unmixed unalloyed form. The subtle difference between the popular and the technical significance of these terms is generally overlooked both by the ignorent layman as well as by the mischievous hypocrites of shallow learning.

14. *Creation:*—It is then by the combination of these Pancha-Maha-Bhutas in different proportions that the inorganic creation is obtained. This process is known as Panchi-karana. A substance is called Parthiwa, if it possesses a larger proportion of Prthwi-Tattwa or maha-bhuta, along with the other four in smaller quantities. Sushruta therefore says in canto 41 of the Sutrasthana :—

पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानां समुदायाद्द्रव्याभि निर्वृत्तिः। उत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति।

Thus a lump of earth or an iron ball is a Parthiwa dravya. Even then the iron ball is more Parthiwa than the lump of earth, as it is the harder of the two. The qualities which such substances possess have been collectively described by Sushruta, thus :—

तत्र स्थूलसारसांद्रमंदस्थिरखरगुरुकठिनं गंधबहुलमीषत्कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवम्।

But supposing that the lump of earth has been dissolved in a very large quantity of water, the mixture would become an Apya Dravya, because :—

द्रवशीत स्निग्धस्तिमित मंद गुरुसरसांद्रमृदुपिच्छिलं रसबहुलमीषत्कषायाम्ललवर्णं मधुररस प्रायमाप्यम्।

Similarly the iron ball which is originally Parthiwa would become Taijasa if it be heated until it is white-hot, because :—

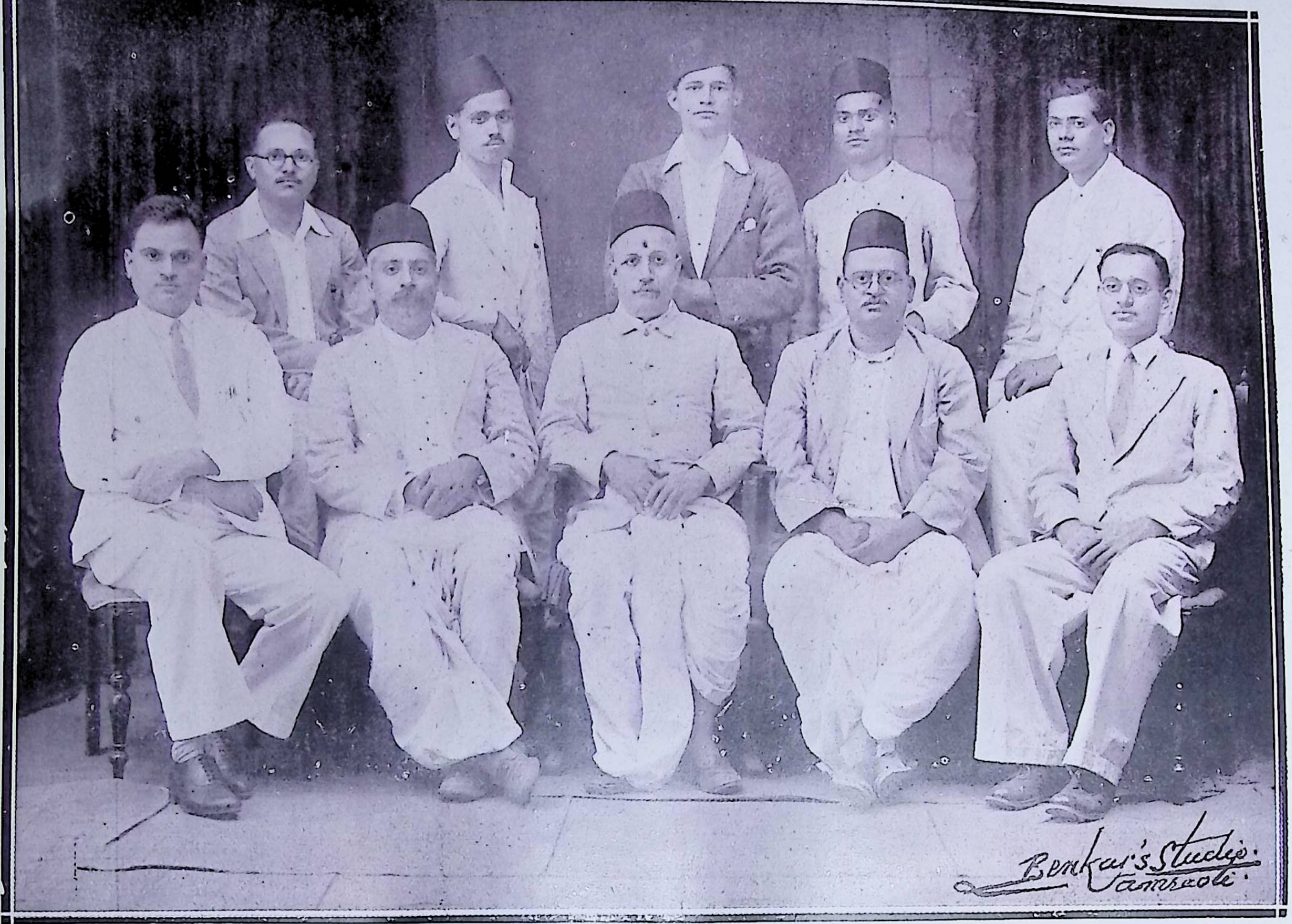
Benkar's Studio:
Amraoti.

अध्यापक मंडल विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय (सन १९३५) अमरावती । स्थापना सन १९३१ ।

उष्णतीक्ष्ण सूक्ष्म रूक्ष खर लघुं विशदं रूप गुण बहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसषायं तेजसम् ।

A substance like sulpher which is originally Parthiwa passes through the Apya and the Taijasa stages as it is continually heated and ultimately becomes Vayavya (gaseous). and hence Sushruta says :—

सूक्ष्मरूक्ष खर शिशिर लघु विशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयम्

as also श्लक्ष्ण सूक्ष्म मृदु व्यवापि विशद विविलमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयम् ।

This is in short the Panch-Maha-Bhuta theory of matter.

15. *The Theory in relation to Human Physique* :—Having thus established that every portion of matter on the surface of the earth is Pancha-Bhoutika, we now proceed to discuss the various constituents which combine. Now if we minutely study the human system, we find that it consists of substances like blood, bones, nails, flesh and such others, which as they come under one or the other category of Parthiva. Apya Taijas, Vayavya or Akashiya Dravyas are also Panchamahabhutatmaka, with only one difference that there exists life also along with these, which is due to the existence of mind Indriyas (that are, as stated above, God-gifted machinaries as it were) and soul. Charakacharya has clearly stated.

तत्र शरीरंनाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतावकारात्मकं समयोगवाही ।

And Sushruta corroborates it saying :—

अस्मिन् शास्त्रे पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः ।

Thus the body is also Panchamahabhutatmaka. and therefore a disease in the body is nothing else than Kshaya or Vridhi, (decrease or increase) in the proportion of one or more Panchamahabhutatmaka constituents of the body. But this change in the proportion can naturally occur in innumerable ways as there can be innumerable combinations of these Panchamahabhutas in different proportions. And as there are equally innumerable substances existing on the surface of the earth, each of which is in every respect different from others, one of these can be such as will have just the opposite kind of proportion of the Mahabhutas as compared to that on account of which the disease has occured. Such a substance when introduced in the system would counterbalance the proportion and thereby remove the disease. Sushruta therefore holds :—

अनेन निदर्शनेन न अनौषधिभूतं जगति किंचिद्द्रव्यमस्तीति कृत्वा ततं युक्तिविशेषं वा अभिसमीक्ष्य, स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कार्यकराणि भवन्ति ।

Thus every substance on the surface of the earth is an Aushadhi or treatment for some one or other of the Shareer diseases. These substances have been conveniently divided into three groups, *viz.* Jangama, Parthiva and Audbhida,

मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जासृगामिषम् । विण्मूत्र चर्मरेतोस्थिस्नायु शृंगनखाः खुराः । जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशलोमानि रोचनाः ॥

From this list of substances belonging to living and nonliving animals we see that each and every part is a cure for some disease, hunger and thirst too being included in the disease category. Of the Parthiva substances:—

सुवर्णं समलाः पंचलोहाःससिकताः सुधा । मनःशिलाके मणयो लवणं गैरिकां जने । भौममौषधमुद्दिष्टं ।

These include all metals and their salts and crude ores that are naturally available. There are 4 sub-sections of the 3rd class of substances:—

आद्भिदं तु चतुर्विधम् । वनस्पतिस्तथावीरुद्वानस्पत्यस्तथौषधी ।

And their differenciation is :—

१. फलैर्वनस्पातिः । २. पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि । ३. औषध्यः फलपाकान्ताः । and ४. प्रतानैर्विरुधः स्मृताः ।

Of these botanical products nearly every part is used. Charaka says :—

मूलत्वक्सार निर्यास नालस्वरसपल्लवाः । क्षारः क्षीरं फलं पुष्पं भस्मतैलानि कंटकाः । पत्राणि शुंगाः कंदाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदोगणः ।

The sage of the past have experimented upon a very large number of the above-noted classes of substances, and have described at length their effects on the human system according to a particular line they have followed which I will just describe. Some of these are to be found only in particular tracts of this vast continent, while others at other places, where the climate is suitable to them.

And therefore it is in such conferences that we have to collect as many of them as possible and exihibit them so that we might come to know all about them by mutual discussion and try them on particular ailments.

Siddha Aushadhis are also a speciality of Ayurveda. There are different processes to be followed in the preparation of different Bhasmas. Modern Chemistry is at present unable to detect why a particular preparation which when chemically analysed is found to contain the same ingredients in the same proportion, should produce an altogether different effect if the process followed in preparing it is different. For instance, Rasasindura and Makaradwaja are two different Siddhayogas, which if chemically analysed are found to contain the same proportion of mercury and sulpher. In fact, both are red oxides of mercury. But Makaradhwaja is far superior in its effect on the human system to Rasasindura. Some light is likely to be thrown on the difference existing in the action of these aparently similar substances according to the recent researches of Sir C. V. Raman. His spectroscopic results regarding "Raman lines" show that there is a molecular change in substances apparently similar in composition and it is just possible that this may account for their different effects on the human system.

Constituents of the Human System.

So far I have dealt with the basic elements that form the whole creation including the human system, as well as with all other substances that can be used as treatment for any ailment in the system. But when we come to the practical side of the treatment, it becomes very difficult to find out the changes in the proportion of the Mahabhutas either in the suffering human system or in the substances to be administered in order to set it right. Ayurveda has therefore adopted a different course to remove this difficulty. The sages have divided the main constituents of the human system into three classes, Dosha, Dhatu and Mala.

दोषधातुमल मूलं हि शरीरम् । सु. सू. १८
दोषधातुमला मूलं सदा देहस्य । वा. सू. ११

Difference between Dhatus and Upadhatus.

Before I proceed to discuss these three classes separately I have to make it clear that the word Dhatu has been used in Ayurvedic literature in two different senses. In fact, the word Dhatu according to Sanskrit Grammar is derived from the root 'Dhaya, Dharan, Poshane,' and any constituent of the body which helps to keep up and nourish it, may be called Dhatu. While there is no disease in the body, every constituent of it is a dhatu. But for convenience the word 'dhatu' has been reserved only for those constituents which take part in the general metabolism, and develop the principal constituents from the food that we take every day in order to make up for the waste which is occurring every second in the system. The rest are called Upadhatus. Thus skin (twacha), Snayu, Kandara. Shira etc. are all Upadhatus because they do not go to form any other substances in the body but are the ultimate products ; but still they have their various functions to perform. Thus whenever there is a disease in the human system, which is not Agantuka (Extrinsic), but Nija (Intrinsic), there is originally a change in the proportion of Dhatus and not of Upadhatus. If the disease continues, the Upadhatus too may be ultimately affected but not so in its initial stage. Hence Charakacharya holds that.

विकारो धातु वैषम्यंसाम्यं प्रकृतिरुच्यते ।

and Chakradatta in his commentary on this passage states—

धातवो वातादयो दोषाः रसादयश्च रजः प्रभृतयश्च । तेषां वैषम्यं व्यवहृयमाणस्वास्थ्यहेतोः स्वमान्यान्न्यूनत्वं अधिकत्वं वा ।

Thus a disease in the system is nothing else than either an increase (Adhikatwa) or a decrease (Nyunatwa) in the proportion of these dhatus. This proportion has been roughly stated thus—

दशोदकस्यां जलयः शरीरे स्वेनांजलिप्रमाणेन । नवां जलयः पूर्वस्याहार परिणाम धातोः य तं रसइत्याचक्षते । अष्टौ शोणितस्य । सप्त पुरीषस्य । षट् श्लेष्मणः । पंच पित्तस्य । चत्वारो मूत्रस्य । त्रयो वसायाः । द्वौ मेदसः । एको मज्जायाः । मस्तिष्कस्यार्धांजलिः । शुक्रस्य तावदेव प्रमाणम् ।

And therefore the treatment of a disease or (Chikitsa) is nothing else than to re-establish the original condition. Chikitsa has therefore been defined as—

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ।

Or as put still more concretely and lucidly—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद्भिषजां मतम् ।

In fact the very object of promulgating the Ayurvedic science has been stated as

धातुसाम्य क्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम् ।

The words Dhatusamya and Dhatuvaishamya referred to in these passages take into account only those dhatus or constituents of the human body which have been referred to above as the root-cause of the body in the Sutra—

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ।

Distinction between Doshas and Dushyas

Having thus made a distinction between the Dhatus and Upadhatus, we have now to consider the three groups in which the constituents has been divided. These are Doshas (mostly secretions) Dhatus (principal tissues), and Malas (excretions). The whole body, even according to the recent anatomists, has been divided into secretions, tissues and excretions. That Ayurveda could think of the same divisons so far back as 4000 years ago is a matter of pride for that science. Thus the words Dhatus—which as stated above in compounds like Dhatusamya and Dhatuvaishamya means and includes in a wide sense Doshas, Dhatus and Malas, has been in a narrow sense applied only to principal tissues. They have been enumerated thus:—

१. वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ।
२. रसासृङ्मांसमेदोस्थि मज्जाशुक्राणि धातवः । सप्तदूष्याः ।
३. मला मूत्रे शकृत्स्वेदादयोपिच ।

श्रीभारतायुर्वेदविद्यालय (अमरावती) के पदवीदान समारंभके समय लिया हुआ चित्र ।

The reason why these 13 dhatus have been distinguished as Dosha, Dhatu and Mala is that although they all support and nourish the body, the 1st three of them *viz*, Vayu, Pitta and Kapha substances have the power of vitiating all the rest 10 constituents, and thus bringing above disease in the system शरीर दूषणाद्दोषाः । while the rest *viz.*, 7 Rasadi and 3 Swedadi are called Dushyas because they cannot themselves bring about disease, but are themselves vitiated by Doshas.

दोषा दुष्टा रसैर्धातून्दूषयन्त्युभये मलान् ।

The last three *viz.* Sweda, Mutra and Shakrit are termed Malas also, because ultimately they are always excreted from the body, although in their initial stage they keep up and nourish it.

पुरीषवातादयोपि शरीरावष्टंभक्ताः प्रसाद एव गुणकर्तृत्वात्—चक्रदत्त ।

That these substances Wat, Pitta and Kapha so long as they are in normal condition in the body (Samyawastha) support and nourish the body is evident from the following passages:—

त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्र एवच । देहं संधारयन्त्येते ।

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नै रधोमध्योर्ध्वं संन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यंते आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः । अतः त्रिस्थूणमाहुः ।

नर्ते देहः कफादस्ति नपित्तान्नच मारुतात् । शोणितादपि वा नित्यं देहएतैस्तु धार्यंते ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्या निलायथा । धारयंति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ।

That these three exist in the body even when there is no apparant existence of the rest of the Dhatus *i. e.* from the time of conception until death, is clear from the following :—

नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः । विकृताः प्रकृतिस्थावातान्बुभुत्सेत पंडितः ।

शुक्रार्तं वस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः । तैश्च तिस्रः प्रकृतयो ।

And that disease is produced in the human system by no other agency than the vitiation in these three substances only is definitely proved by the following statement :—

स्वधातुवैषम्य निमित्तजा ये विकारसंघा बहवः शरीरे ।

न ते पृथक्पित्तकफानि लेभ्यः आगंतवस्त्वेव ततो विशिष्टाः ॥

General Principles to be followed in removing Dhatuvaishamya.

Having so far enunciated and differentiated the various constituents of the human body, and stated that Wat, Pitta or subnormal and Kapha substances are the only constituents which by their abnormal proportion bring about disease in the body, it is necessary to find out how the Dhatu-vaishamya caused by these Doshas can be removed and the original Dhatu-samya re-established.

Charaka holds that :—

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणं । ह्रासहेतुर्विशेषश्च । समानगुणाभ्यासोहि धातूनां वृद्धिकारणमिति । प्रकोपनविपर्ययो हि धातूनां प्रशमकारणमिति । वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः । वाग्भट्ट ।

Here Arunadatta, the commentator says :—

सर्वेषां दोषधातुमलादीनां शरीराश्रितानां समानैस्तुल्यस्वभावैः वृद्धिः स्वप्रमांणाधिक्यम् ।

Now can there be a Swapramanadhikya of only Karyanumeya substances as Dr. Gananath Sen says ?

These sentences indicate that whenever any substance in the body decreases in quantity, if the same substance could be introduced in the system, the Dhatu-vaidhamya due to it will be removed ; not only this but even if another substance which is Saman-guni *i. e.* possessed of the same attributes as the former be introduced, still Dhatu-samya could be established. Similarly, if on the contrary some constituent of the body has increased in quantity, the introduction of another substance which is Wiparita-guni *i. e.* possessing contrary attributes would remove the Dhatu-vaishamya. Thus if you find that a person is suffering from want of blood which passed away from his body owing to say a severe lathi charge, then according to Ayurveda, you should either inject blood from another in his system, or make him drink blood in some form or other. This remedy has been ordained by Charaka thus :—

एवमेव सर्वधातुगुणानां सामान्योगाद्वृद्धिः । विपर्ययाद्ह्रासः । तस्मान्मांसमाप्यायते । मांसेन भूयस्तर मन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः । तथालोहितं लोहितेनैव । मेदो मेदसा ।—— गर्भस्त्वामगर्भेण ।

But a difficulty arises when owing to various reasons, the chief of them all being aversion (Ghrinitwa) one cannot take that substance. Then the sage directs :—

यत्र त्वेवंलक्षणेन सामान्येन सामास्यवतामाहारविकाराणामसान्निध्यं स्यात् । सन्निहितानां वाप्ययुक्तत्वान्नोपयोगो घृणित्वादन्यस्माद्वाकारणात् , स च धातुरभिवर्धयितव्यः, स्यात् । तस्य ये समानगुणाः स्युरहारविकारा असेव्याश्च । तत्र समानगुणभूयिष्ठानामन्य प्रकृतीनाप्याहारविकाराणामुपयोगः स्यात् ।

And then the author goes on to enumerate a number of Samangunabhuyishtha remedies which include all the classes of materials whether Jangama, Parthiva or Audbhida, taking different examples of Dhatus in the wide sense whether they belong to Dosha, Dhatu or Mala sub-section.

शुक्रक्षए क्षीरसविषोरुपयो मधुरस्निग्ध समाख्यातानामपरेषां द्रव्याणाम् । मूत्रक्षये पुनरिक्षुरसवारुणीमंडः द्रवमधुराम्ललवणोपक्लेदिनाम् । वातक्षये कटुतिक्तकषाय ——पित्तक्षये ——श्लेष्मक्षये ——।

It is not that the Dhatu-vaishamya can be removed simply by the administration of Saman-gunabhuyishtha Ahar-vikar but even—

कर्माऽपि यद्यस्य धातोर्वृद्धिकरं तत्तदासेव्यं । एवमन्येषामपि शरीरधातूनां सामान्य विपर्ययाभ्यां वृद्धिह्रासौ यथाकालं कार्यौ ।

From this discussion it is evident that the word Bhava in the sentence सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् । does not merely indicate an attribute or Guna, but also a substance (Dravya) as well as (Karma) *i. e.* the action or the effect which the substance produces on the human system after it has been digested and assimilated. Chakradatta has clearly stated that

भवंति सत्वमनुभवंतीति भावाः गुणद्रव्यकर्माणीत्यर्थः ।

Thus since we cannot directly know which of the Shareera Dhatus has actually increased or decreased in the system, we must find out that decrease or increase by the corresponding reduction or increment in the attributes of that dhatu, as well as of its Karma, *i. e.* the actions for which it was responsible. For example, if we know that Wat is Sheeta and Ruksha and causes the nervous system of the body to work properly, then if we find that a person is feeling more cold, and his body is more dry than what it was ordinarily, and that the nervous system is stimulated to a higher degree than normal, our conclusion would be that the Wat substance has increased in the body. It is therefore necessary now to find out what are the Dravya, Guna and Karma of all the Shareera dhatus and especially of Wat, Pitta and Kapha which have been proved to be the root cause of all diseases; and also to determine the corresponding Dravya, Guna and Karma of all the existing substances to be found on the surface of the earth; so that when we know from these Guna and Karmas which of the Doshas in the body has either increased or decreased, we could introduce in the system such of these substances as would just counterbalance the original Waigunya in the Doshas. In fact these are the two main sections of Ayurveda, the first discussed in Sutrasthana of every work and the second in Nighantoo or materia medica.

Tridosha

The next subject which I would therefore like to discuss now is to determine the dravya, guna and karma of the tridoshas or tridhatus, as they are the principal constituents of the human body. This subject has been the object of discussion from the time Allopathic Science has set its foot on this ancient land of civilisation, and great and eminent Ayurvedists from Dr. Gadre of Poona down to the late Dr. Yaminibhusan Roy, and our worthy President Dr. Gananath Sen and Captain Shriniwas Murti have given their opinions about them. My profound respect for these worthy gems in Ayurveda encourages me to discuss the topic in my own way, and I hope to be excused if in this discussion I would differ from them in some respects,

Tridoshas are Matter

The first and foremost conclusion for which I would just put forward proofs is that the Tridhatus, or for the matter of that the Tridoshas are actual substances in the body. Ayurveda as stated above holds that

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ।

Which means that the visible body is composed primarily of three varieties of substances known as Dosha, Dhatu and Mala. Of these, the 7 Dhatus and 3 Malas, and definitely known to be actual substances in the body. They can be seen, separated from the body, examined by all other senses and analysed. Their description in terms of their attributes (Gunas) therefore, has been given in Ayurveda, and their function in the general working of the body has also been clearly described. But all that has been done in short.

Whether the 3 doshas also can be so separated from the body, and analysed is a question, and it will be at some length that I would quote from **ग्रंथचतुष्टय** *viz.* **चरकसुश्रुतवाग्भट** and **अष्टांगसंग्रह** what the Rishis have to say regarding this. Wagbhat says :—

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ।
बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलंघृतंमधु ।

From this statement it is evident that the Doshas are Shariraja *i.e.* produced in the body, and whatever is produced from the body must be a substance. Similarly from the above quoted statement **दोषधातुमलमूलं हि शरीरं** it is evident that if the body is composed of (Mulam) doshas they should also be actual substances, because according to Satkaryawada, which has been dealt with above at length while propounding the Panchmahabhutta theory, an existing entity like the human body (the structure alone and not mind soul &c.) will always be developed out of an actually existing substance. Sushruta as has already been quoted says

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः ।

Now a substance or Dravya has been defined by Charaka as

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तत् द्रव्यं ।

Therefore a Dravya or substance is that which possesses some attributes (Guna) and which produces some sort of action (Karma) on any other part of the universe, either independently or in conjunction with something else.

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (बड़ोदा) अध्यापक वर्ग (सन १९३३)।

If therefore the Tridoshas do possess some attributes, and if they also take part in the general working of the human system in one way or other, then they ought to be actual substances. Now if we look to any of these four works on Ayurveda, we find that the description of the tridoshas has been given in terms of their attributes thus :—

रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः । मारुतः रूक्षशीत लघुदारुण खर विशदा षडिमे वातगुणा भवंति । रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं कतिरमूर्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणि भवंति ।

एवं विधत्वाच्च कर्मणः स्वालक्षण्यमिदस्य भवति । तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः । वाग्भट

Here अमूर्तत्वमिति अदृश्यत्वं, आत्मरूपमिति स्वरूपम् । So say Chakradutta.

From a careful perusal of this description of Wata, one would naturally conclude that what Ayurvedists call wata is an actual substance existing in the human body. It is Amurta *i. e.* not that it has no form (Murti) but invisible just as an ordinary gaseous substance is. Since is Atmarupa (Swarupa) *i. e.* natural character or form or true constitution has been described, we cannot agree with M. M. Dr. Gananath Sen who has stated in his Siddhanta Nidan on page 13 that

रुक्षादिगुणाः वायोः कार्यानुमेया एव नतु साक्षादिंद्रिय गोचराः अस्मादृशाम् ।

No author or even commentator states that Doshas are Karyanumeya. Wipaka of a Dravya is said to be Karyanumeya, but not Doshas. In fact Arunadatta Says:—

एवं तत्गुणयोगाद्गुणिनो रभेदोपचाराद्वातादयो गुणतो निर्दिष्टाः ।

Therefore Wat is a certain kind of gas (which one—that we shall see later) like external air which we breathe, which is also Adrishya, because no one can say which is the colour of the air. All the other attributes stated above do exist in any gaseous substance. For instance a gas is always lighter than any solid or liquid. Hence as compared with the other doshas, Pitta and Kapha, it is Laghy (light). It is Sukshma सूक्ष्मः स्रोतः प्रचारित्वात् *i. e.* subtle, minute because it can penetrate the most minute structures in the body as any gas can, and not a solid or liquid. Sukshmatwa cannot always mean अनिंद्रियगोचरत्व *i. e.* imperceptible by sense. Otherwise the word will have no meaning in sentence like

जालांतरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

Wat is Sukshma as compared to Kapha and Pitta which are Sthula because their form and colour can be actually seen by the eye. In the course of a discussion regarding the nature of this Wat amongst the members of a conference which was held in those good old days, vide Charak chap. 12 of Sutrasthana one of the members put the following question:—

कथं चैनं वायुं असंघातवंत मनवस्थितमनासाद्य प्रकोपनप्रशमनानि प्रकोपयंति प्रशमयंति वा ।

Here Asanghat-vantam qualfies Wayu, and Chakradutta in his commentary clearly states असंघातवंतमिति पित्तश्लेष्मवदवयव संघातरहितं । This means that just as Pitta and Kapha are both possessed of Avayava-sanghat *i. e.* a form viz. that they are liquid, have a certain definite colour, odour etc., this Wayu has nothing of the sort, and is therefore like external air.

So also अनवस्थितमिति चलस्वभावं says Chakradutta *i. e.* if Pitta and Kapha substances were put in a bottle, they would remain there occupying a certain volume, while if Wayu were put in it, it would move about, and thus occupy the whole bottle *i. e.* all the space available. Hence as compared to Pitta and Kapha it is चल-चलः गमनशीलः नैकत्रतिष्ठतीति । It is Ruksha *i. e.* does not contain any lubricating quality; and we know that there is no lubricating quality in any gas whatsoever, and more so in air. Ruksha is a quality which is exactly opposite of Snigdha. It is Sheet *i. e.* cold as compared to Pitta and Kapha, as will be shown later, possess acid properties in a more or less degree, and are therefore Ushna. Pitta being highly acid is Ushna, Kapha slightly acid and therefore contains nearly negligible quantity of Ushnatwa, while Wat is purely Sheet. In fact a gas is naturally neither hot or cold but it is only when it is made hot or cold by external means that it becomes so. Thus Arunadatta says :—

अनुष्णाशीतो वायुरिति काणादैः पठितः । योगवाहः परं वायुः संयोगात् उभयार्थंकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तः शीत कृत्सोमसंश्रयादिति । तस्य योगवाहित्वेपि तावन्मात्राद्दाहौदयोच्छैत्यं स्वाभाविकं न निश्यति । शीतगुणव्यावर्णने चेदं प्रयोजनमुष्णेनायमुपशाम्यति इति प्रतिपत्यर्थम् ।

It is clear that a gas if it is heated increases in volume, and then passes out of the system, and thus it is got rid of Upashmyati. It is Khar *i. e.* rough खरः अमृदुः as opposed to Kapha which is smooth—Shleshma, and we know that external air or any kind of gas is rough to feel or touch. It is Wishad *i. e.* clear and clean as compared to Pitta and Kapha which are Visra and Pichhila *i. e*, slimy and smeary. A liquid or a solid may be Pichhila, but a gas is always Vishad. Thus from the attributes in terms of which Ayurveda describes Wat, we conclude that

(1) It is a Dravya-a substance or matter, and that
(2) It is a kind of gas.

Pitta and Kapha Doshas.

Next Pitta is described as :—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लसरं कटु। पित्तं लघुतथा विस्रं कटु। पित्तं तीक्ष्णं द्रवंपूति नीलं पीतं तथैवच। उष्णंकटुरसं चैव विदग्धंचाम्लमेवच। औष्ण्यं तैक्ष्ण्य लाघवमनति स्नेहो वर्णश्च शुक्लारूणबर्जों गंधश्च विस्रः रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्य आत्मरूपाणि।

This description of Pitta exactly coincides with that of a dilute acid like hydrochloric or sulphuric. It is liquid (Drava) slightly oily (Sasneha) as any of the above-mentioned two acids are, and is capable of acting chemically on another substance like food, and therefore Teekhna तीक्ष्णं शीघ्रकारी मंदविपरितं सूचीव भिनत्ति। It is hot to touch, Ushna, as compared to Wata and Kapha which are cold to touch (Sheeta). It is light (Laghu) *i. e.* its specific gravity is lower than that of Kapha, (But not as compared to that Wata) which being of slimy consistency (Pichhila) is always Guru. It is sour and bitter in taste (Katu and Amla) as acids generally are, and yellowish and greenish in colour. All the acids are generally of a yellow colour. It is Visra *i. e.* दुर्गन्धि मत्स्यगन्धि as a bodily acid is likely to be. Thus we conclude that

(1) Pitta is also a Dravya, substance or matter and that
(2) it is liquid with mostly acid properties.

Lastly Kapha is described as

गुरुशीतमृदु स्निग्ध मधुरस्थिरपिच्छिलाः। श्लेष्मणः गुणाः। श्लेष्माशीतो गुरुःस्निग्धः पिच्छिलः शीत एवच। मधुर स्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो लवणः स्मृतः। स्नेहशैत्य शौक्ल्य गौरवमाधुर्यमात्स्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि मृद्यमानोऽङ्गुलग्राही। पिच्छिलः चकचकायमानः इति अरुणदत्तः।

This Description of Kapha agrees in every respect with that of any mucus secretion in the body. The secretion of the mucus and salivary glands of the mouth which we throw off in spitting is a nice example. It is sweet in taste (Madhur), of slimy consistency (Pichhila) slightly oily (Snigdha), white in appearance (Shukla) not watery like dilute acid, but slightly thick and therefore weighty (Guru Sthira) and cold to touch (Sheet) as compared to pitta. That this secretion becomes saltish (Lavana) whenever there is any disease in the mouth is experienced by everybody when he suffers from cold. It is then that it gets Vidagdha. Thus we conclude that what is known in Ayurveda as Kapha or Shleshma is :—

(1) a Dravya—a substance or matter and that
(2) it is like secretion of any mucus membrane in the system

Principal place in the body where these Tridoshas are produced.

Having thus proved that Wata, Pitta and Kapha are actual substances; let us now try to find out where and how they are produced, and what part they play in maintaining the general equilibrium (Dhatu-samya) in the body. The human structure like that of other living beings consists of a number of organs, grouped together into what are known as system such as Circulatory, Respiratory, Nervous, Digestive and so on. Of these the digestive system which enables the food that we eat everyday to be converted into the different tissues of the body, is from the point of view of supplying the wasted materials, and thus maintaining the equilibrium of all other systems, the most important one. The principal part of the body which is engaged in this work is the alimentary canal known as Mahasrota in Ayurveda, commencing from the cavity of the mouth and extending to the end of the rectum. This Mahasrota, has for convenience of description and according to the primary functions which are performed in it, been divided by Ayurvedists into three parts :—

(1) Amashaya (Stomach)
(2) Pakwamashaya-madhya or Nabhi (Duodenum)
and (3) Pakwashaya (intestines both large and small) and these three have been described to be the chief abodes of the three doshas Kapha, Pitta and Wata respectively.

पक्काशयः वातस्य । पक्कामाशयमध्यं पित्तस्य । आमाशयः श्लेष्मणः । सु० सू० २१

It is these three portions of the alimentary canal which are indicated by the Urdhwa. Madhya and Adhah portions of the body in the statement.

वातपित्तश्लेष्मण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नैः अधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शारीरमिदं धार्यते ।

Ordinarily this alimentary canal is divided into five parts, mouth, stomach, duodenum, intestines and rectum. But of these, the mouth simply helps the food to reach the stomach where the digestion and absorption processes just begin, while the rectum simply stores up and then throws off the waste products of the food. Hence from the point of view of pure digestion and assimilation they are not so important although they help a great deal in these processes. A mucus membrane lines the whole alimentary canal from the mouth down right up to the rectum, and hence the mucus material (Kapha) is no doubt produced in the whole of the canal ; but the substance Kapha is obtained in profuse quantity in the stomach and also its accesory the mouth, and so according to the rule व्यपदेशस्तु भूयसा the stomach is said to be its chief abode.

अध्यापकवर्ग श्री आर्यांग्लवैद्यकविद्यालय. (सातारा).

We shall now consider how the food which we eat every day is assimilated in the body, and helps to make good the waste, or increase the substance of the different tissues of the body. In fact Charakacharya while explaining the process has so elaborately and nicely dealt with the actual production of these substances Wata, Pitta and Kapha in the body that we are simply wonderstruck to see how their statements are exactly in coincidence with the modern conceptions of Physiology. He says -—

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः। मधुरात्प्राक्कफोद्भावात् फेनभूत उदीर्यंते। परतु पच्यनानस्य विदग्धस्याम्ल भावतः। आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यंते। पक्काशयंतु प्राप्तस्य शोष्ममाणस्य वन्हिना। परिपिंडित पक्वस्य वायुः स्यात्कटु भावतः।

Wagbhata is still more explicit :—

तत्तु अन्नं सर्वंरसमपि पच्यमानं आदौ मधुरी भूतं कफं फेनीभूतमुदरियति। ततो विदग्धभाल्मन्नीभूत मामा शयाच्च्यवमानमच्छं पित्तं। प्राप्य पक्काशयं कटुकी भूत मलिनम्।

Kapha Secretion.

These statements show that as soon as the food which consists of all the six kinds of tastes मधुराम्ललवण कटु निक्तकशाय is taken in, chewed and swallowed, and thus reaches the stomach (Amashaya), there is a spontaneous flow in the stomach (उदीरयति, उदीर्यंते) of a substance known as Kapha which is foamy in appearance फेनीभूत. The secretions from the salivary glands and the mucus glands of the mouth having got mixed with it while it was being chewed, and these secretions being all sweet in taste, there is an increase of sweetness already existing in the food taken. (आदौमधुरी भूतं, मधुरात् प्राक्). But it is evident that the particles of food can be well acted upon chemically by an acid if instead of being in a mass or semi-solid state, they are reduced to a liquid or a viscous liquid state. Therefore some liquid, which would not allow the food at once to become Amla or Vidagdha, and would at the same time reduce it to a uniform liquid state, is required to be thoroughly mixed up with the food. This is provided by the gastric juice. Sustruta says :—

माधुर्यात्पिच्छिलत्वाच्च प्रक्के दित्वात्तथैवच। आमाशये संभवति श्लेष्मा मधुर शीतलः आमाशयः—चतुर्विधस्याहारस्याधारः। स च तभोदकैर्गुणैः आहारः प्रक्लिन्नः भिन्न संघातः सुखजरश्च भवति।

The Audaka Gunas are those of Kledak Kapha (gastric Juice) which contains nearly 99·5 p. c. of water.

The process of digestion and absorption begins here in the stomach. A profuse quantity of this gastric juice gets mixed up with the food, and then it passes from the mixture thus obtained to chyle (Rasadhatu), and thence to blood, and through blood to various other places in the body, where similar other mucus membranes exist. Thus it causes secretion according to the general rule.

वृंद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ।

Sushruta, therefore, says that स तत्रस्थः एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणा अनुग्रह करोति ।

From this it is evident that this Amashaya is the chief abode of Kapha.

Moreover Charak says—वमनंतु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतम मन्यंते भिवजः । तद्धि आदित एवामाशयमनुप्रविश्य केवल वैकारिकं श्लेष्ममूलमपकर्षंति । तत्रावजिते श्लेष्मणि शरीरान्तगताः अन्ये श्लेष्मविकाराः प्रशांतिमापद्यंते । यथाभिन्ने केदारसेतौ शालियवषष्ठिकादीन्यभिष्यं दमानान्यंभसा प्रशो ' आपद्यंते तद्वेतिदिति ।

This shows that the best course according to Charak for removing Dhatu-vaishamya due to Kapha is to administer medicines which would cause vomits, and thus empty the stomach, because the Shleshma there which is the root cause of all other diseases in the system due to Kapha is thereby eradicated from the system. Not only that, but owing to the removal of this Shleshma-mula, which, as stated above, nourishes the other four kinds of similar Kapha secretions to be described later on, all other diseases in the system due to Kapha disappear, just as when a field laden with crops is under water, the crops get withered owing te excess of water, but if the dam be opened at a certain point, and the water allowed to get out, the crops again attain their normal condition. This statement clearly proves that it is this Amashayagata Kledak Kspha (gastric juice) which is the root cause to all other diseases in the system due to Kapha. If it is produced in normal quantity, the whole system goes on all right, but if owing to some internal or external cause its quantity is increased, it has to be removed by Wamana. That this gastric juice flows spontaneously as soon as food is taken in the mouth is proved from the following passage from "Haliburton's" Physiology : "Pawlow has by a very ingeneous surgical operation succeeded in the dog in separating off from the stomach a diverticulum, which pours its secretion through an opening in the abdominal wall. The following are his main results :—

(1) Increase in the quantity of food given causes an increase in the amount of gastric juice secreted.

(2) The increase is most abundant in the early periods of digestion वयोहोरात्रि भुक्तानां तेतंमध्यादिगः क्रमात्, is a statement which clearly tells us that Kapha is most abundant in the Adi part *i. e.* early periods of digestion, but it continues to be secreted (उदीर्यंते) as long

as any food remains to be dealt with. When there is no food given, there is no Juice, *but sham feeding or chewing will cause it to flow.*''

That this gastric juice is mostly watery and therefore helps to moisten or liquify the food (क्लेदन) is proved by the fact that—"The effect of the sham feeding was a reflex and abundant flow of gastric juice, which commenced five minutes after (अन्नस्य भुक्तमात्रस्य) the beginning of the meal. *If water, milk or soup was given instead of meat, no such secretion occurred.*'' This clearly shows that. since in the case of water, milk or soup the amount taken is already liquid (क्लेदित) there is no necessity of Kledan, and hence no Kledak Kapha is secreted.

What more proofs are needed to establish that the gastric juice is the Kledak kapha? It is evident from the above comparative statements that the words उदारयति, उदीर्यते ईरयेत् etc. have been used with thorough significance be the authors, meaning thereby that the particular substance is naturally secreted in that particular substance is naturally secreted in that particular place, as soon as the food is taken in (भुक्तमात्रस्य) This leads one to infer rightly that the Rishis must have observed the phenomenon by actual experiments on living beings. Charakacharya has thus rightly instructed that:—

शरीरसंख्यां योवेद सर्वावयवषो भिषक्। तदज्ञाननिमित्तेन् संमोहेन न युज्यते।
अमूढो मोहमूलैश्च न दोषरीकिभूयते। निर्दोषो निस्पृहः शांतः—प्रशाम्यत्यपुनर्भवः।

As stated above the process of the moistening of the food starts profusely in the stomach, but it begins from the time the food is taken in the mouth. "The saliva is the first digestive Juice to come into contact with the food." Here it should be remembered that all the Juices and secretions that are obtained in the alimentary canal help digestion in one way or the other, and therefore they are called digestive juices. Even Kledana *i. e.* dilution helps digestion and so they may all be called digestive in this wide sense.

"The Saliva is transparent, slightly opalescent, of slimy consistency, and may contain lumps of pure mucin. On standing, it becomes cloudy owing to the precipitate of calcium carbonate, the carbonic acid which held it in solution as bicarbonate escaping. "The gastric juice is clear and colorless. It has a specific gravity of 1003 to 1006. It contains (·2) p. c. of Hydrochloric acid. When the juice remains in the stomach, this is in part neutralised by the food and saliva, and also by pancreatic juice which enters the stomach from the duodenum." Thus the mixture of saliva and gastric juice is what we call Kleda Kapha.

Does not the above description tally exactly with :—

स्निग्धः शीतो गुरुर्मंदः श्लक्ष्णो मृत्स्तः स्थिरः कफः ।

"The action of saliva is twofold, physical and chemical. (1) The physical use of saliva consists in moistening the mucus membrane of the mouth, assisting the solution of soluble substances in the food, and *in virtue of its mucin, lubricating of the bolus of food to facilitate swallowing* (2) The chemical action of saliva is due to its chemical principel ptyaline."

It is, thus, evident that from the time the food is taken in until it has reached the stomach and begins to enter the duodenum the physical process of moistening (**क्लेदन**) goes on, which is most adundant in the stomach due to the secretion of gastric juice therein. Hence the principal Kapha secretion, which, according to the Ayurvedists, obtained in the Urdhwa part of the Mahasrota, helps the digestion of food by being mixed with it uniformly, and by thus diluting the food it facilitates the action of strong acids which mix with it further on in the duodenum.

Pitta Secretion

Having thus passed out of the Amashya, the food then, reaches the Pakwa-amashaya-madhya (duodenum). Here it is in **पच्यमान** stage, because the gastric juice therein, although it contains more of water, does still contain a small quantity of Hcl. This causes the digestion to start, and as there is acidity (Amlatwa) in it due to the existence of Hcl, the food, which was Madhura so far becomes sligtly Amla.

Now, in the duodenum, this food comes in contact with another liquid called **पाचकपित्त** by Ayurvedists, and this liquid also, like the gastric juice flows spontaneously in the duodenum as soon as the food reaches that place. Charakacharya, therefore says:—

परंतु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्ल भावतः । आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छ मुदीर्यते ।

Here again the use of the word (Udiryate clearly shows that this liquid also is a secretion, which mixes with the food, while it comes down from the stomach (**आमाशयाच्च्यवमानस्य**). The nature of this pitta has been very elegantly described by Wagbhat in both of his works thus:—

पित्तं पंचात्मकं तत्र पक्वामाशयध्यगं । पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजस गुणोदयात् ॥ त्यक्त द्रवत्वं पाकादि कर्मणाऽनलशब्दितं । पचत्यन्नं विभजते सार किट्टौ पृथक्तथा ॥ तत्रस्थमेव शेषाणां पित्तानामप्यनुग्रहं । करोति बलदानेन पाचक—नामतत्स्मृतम् ॥

or as in Vridha-Wagbhat—

तत्र यदाम पक्वाशय मध्यस्थं पंचमहाभूतात्मकत्वेऽपि तेजोगुणोत्कर्षात्क्षपितसोमगुणं ततश्च त्यक्तद्रवस्वभावं सहकारि कारणैर्वायुक्लेदादिभिरनुगृहात् दहन पचनादि क्रियया लब्धा-

ग्निशब्द पित्तमन्नं पचति स्तरकिट्टौ विभजति, शेषाणिच पित्तस्थानानि तत्रस्थमेवानुगृण्हाति तत्पाचकमित्युच्यते ।

Let us now consider the nature of this Pitta as described above.

(I) First of all it is Pancha-mahabhutatmak, in other words it is also a substance, matter or Dravya, an existing entity like so many other Rasaraktadi substances in the body, and not merely a Shakti or Sukshma Pitta as some of the famous writers on the subject have said.

(2) Secondly, the place where it is secreted is Pakwa-mashaya-madhya *i. e.* the small portion of the alimentary canal joining the stomach and the instestines, which is in fact a part of the intestines themselves and is known as duodenum in the modern treatises on anatomy.

(3) Thirdly, it is liquid, Drava ; but owing to the predominance (उदय or उत्कर्ष) in it of the तैजसगुणं *i. e.* the heat producing element, the effect, which it would produce on any substance on account of its liquidity or excess of water (सोमगुण) is suppressed (क्षपित) and thus it losses its द्रवस्वभाव. We can understand the nature of this Pitta with reference to a semidiluted acid like Hcl or Sulphuric. If we take a few drops of water, and pour them on a metallic plate or a lump of sugarcandy, it will have practically no effect on the plate, and would simply dissolve the piece of sugar-candy turning it into a liquid solution of sugar. Here the water is a liquid (द्रव) and as it has not given up its द्रवस्वभाव it combines with the sugar-candy, and desolves it still maintaining its द्रवस्वभाव. Now supposing that we mix with that water a small quantity say I/50th part of strong Hcl, even then the mixture maintains its liquid appearance (द्रवत्व) but its (स्वभाव) character is changed. It no longer has no action on the metallic place ; but on the contrary, acts chemically on it, at once converting a part of it into some salt, and thus dissolving and digesting that part of it.

So also this acid mixture no longer simply dissolves the sugar-candy, but chars and burns each and every particle of the candy which comes into contact with it, and thus by chemical action reduces it to charcoal. Thus the mixture, though still maintaining liquid appearance, has abandoned its liquid character (त्यक्त द्रवस्वभाव) because of the suppression of the simple solubility of water (क्षपित सोमगुण) owing to the increase of heat producing element in it (तजोगुणोत्कर्षात) and this change in the state of water is due to the addition of acid in it.

(4) Fourthly, this Pachak Pitta is termed Agni simply from analogy. Just as a mixture of rice and water put in a vessel on fire would

reduce the rice to a cooked and assimilable food for the human system, so also this Pitta, when it gets mixed with the food that comes down from the stomach, digests it and reduces it to assimilable chyle (रसधातु) which in its turn changes itself into blood, and thus nourishes the whole human system. Charak, therefore, says :—

एवं रसमलायान्नमाशयस्थवधः स्थितः । पचत्याग्निर्यथास्थाल्यामोदनायांबुतंडुलम् ।

But it is not this Pitta which alone does the whole work of digestion.

(*a*) First of all, as stated above, the gastic juice which mixes up with the food in the stomach does the work of liquifying the food (क्लेदन) and this process is also an additional helping factor सहकारि कारण in digestion.

(*b*) Then secondly, when the food goes further in the intestines, the process of absorbtion of chyle through lacteals starts there, and as a result of this, gases are produced, the most abundant among them being Carbon dioxide. This gas, as will be shown later is readily absorbed by the nerves, which in their turn are stimulated due to this absorbtion. This stimulation then increases the quantity of Pitta secreted. In this way this Vayu or gas becomes a helping factor (सहकारि कारण) for digestion. Wagbhat therefore says :—

सहकारि कारणैर्वायुक्लेदादिभिरनुगृहाद् दहन पचनादि क्रियया लब्धाग्निशब्दं ।

It is thus that this Pachak Pitta digests the food (पचत्यन्नं) converts it into a mixture of two substances one of them being the essential part (Sara) which is chyle, and the other the waste product (Kitta). Thus this Pirta is said to—

विभजते सारकिट्टौ पृथक्तथा

(5) Fifthly and lastly, as the Pachak Pitta mixes with the food and is absorbed along with the chyle, and residual secretion which remains in addition to what has been already used up in the process passes on to the blood, and thereby nourishes all other Pitta secretions in the body. शेषाणां पित्तानां बलदानेनानुग्रहं करोति । This is just similar to the nourishment of the different Kapha secretions by means of the Kledak Kapha of the stomach.

That the duodenum is the place where Pachak Pitta is secreted, and that this is the main spring for all other secretion of the Pitta class of the body is also proved by the following statement in Charak.

विरेचनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यंते भिषजः । तद्धि आदित एव आमाशयमनु प्रविश्य केवलं वैकारिकं पित्तमूलं चापकर्षति । तत्रावजिते पित्ते अपि शरीरान्तर्गताः पित्तविकाराः प्रशान्तिमापद्यंते यथाऽग्नौ व्यपोढे । केवलं अग्निगृहं शीतीभवति तद्वत् ।

Amongst the remedies prescribed for treating the abnormal increase in the Pitta secretions, the best one is a purgative, because as soon as it reaches the duodenum, it removes the excessive Pitta substance itself. This Pitta is said to be (the Mula) the root cause, because as stated above, it nourishes all other Pitta secretions in the body. As the root cause is thus removed, all other diseases in any part of the body caused on account of abnormal Pitta secretions disappear, just as, if you extinguish the fire a whole house which is in flames becomes at once cold.

From the above discussion, it is evident that according to Ayurvedists Pitta is an actual substance, which flows spontaneously into the duodenum when the food reaches there. Let us see now what this substance is according to modern Physiology.

Physiology tells us that there are two glands, liver and pancreas, the former 'situated in the abdomen on the right side, is the largest gland in the body,' while the later is situated in the back. Both these glands produce secretions, that of the liver being known as bile, while that of the pancreas as pancreatic juice. "Bile is the secretion of the liver which is poured into the duodenum. It is being continuously poured into the intestine, *but there is an iucreased discharge immediately on the arrival of food in the duodenum* (**उदीर्यंते**). There is a second increase in the secretion a few hours later after the arrival of semi-digested food (chyme) in the intestines. This increase appears to be due to the effect of the digestive products carried by the blood to the liver stimulating the hepatic cells to activity. This is supported by the fact that protied food increases the quantity of bile secreted whereas fatty food which is absorbed not by the portal vein but by the lacteals has no such effect." This proves the general theorem that **सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्**. "Bile has little or no action by itself, but combined with pancretic juice, it assists the later in all its activities. This is true for the digestion of starch and of protein, but markedly so for the digestion of fat. Some state that bile has a slight action on fats and carbohydrates ; but it appears to be rather a co-adjutor to the pancreatic juice especially in the digestion of fat than to have any independent digestive activity."

These statements clearly show that the secretions of bile and pancreatic juice together are responsible for digestion, and this combined juice which is poured in the duodenum is therefore Pachakpitta. Halliburton says:—"Bile is a yellowish, reddish-brown or green fluid, according to the relative preponderence of its two chief pigments. It has a musk-like odour, a bitter sweet taste, and a neutral or faintly alkaline reaction." If we compare this description with **औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं**

लाघव मनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्ला रुण वर्ज्यो गंधश्च विस्रो रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्य रुपाणि ।
We find that here the colour of the Pitta has been described as other than white (Shukle), ann red (Aruna), and Halliburton tells us that the colour of bile is yellow, reddish-brown or green which is exactly what Charak says; its taste is bitter sweet, so also here कटुकाम्लौ the odour is musk like विस्र ; like that of a dead rat. All this clearly shows that the two descriptions agree in every respect. It has to be remembered that the Rishis have attempted at their description some 3000 years ago, and therefore some slight discrepancies are likely to occur but one has to make allowance for them.

In this connection I would like to state one important fact which agrees with the Ayurvedic tenets *viz.* that each secretion that gets mixed with the food causes nearly similar secretion to be produced as the digestive process goes on further.

Halliburton says:—"The importance of the work of Parlow arises from the entirely new light thrown upon the digestive process as a whole. We have been too apt to think the occurrence in the alimentary canal as a series of isolated phenomemon. We now see that each step follows an orderly manner as the result of previous steps For example, the acid gastric juice reaches the intestines and there produces secretion from its forerunners, the secretion is taken by the blood stream to the pancreas, where it excites a flow of the pancreatic juice, the juice arrives in the duodenum ready to act on starchy substances and fat. With the assistance of the bile, fatty acid is liberated which in its turn forms more secretion and so in turn more pancreatic juice."

Charakacharya has, therefore, clearly stated that :—

परस्परोपसंस्तम्भा धातुस्नेह परंपरा । संतत्याभोज धातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत् ।

Having thus proved that what is called Pachakpitta in Ayurveda is nothing else but the combination of bile and pancreatic juice secretions, we now proceed further down the alimentary canal towards the intestines and study the nature of the third Dosha Wata.

Wata substance.

The food which is so far mixed with saliva and gastric juice. and then with the bile and pancreatic juice, now reaches the intestines. "The small intestine, with its folds and villi to increase its surface is the great place for absorption. The superficial area of the small intestine, if it were flat, is about 1.5 squre meters. This by the presence of the villi is increased to about 42 square meters. Absorption, begins in the duodenum, and the products of digestion have largely disappeared by the time the intestinal contents have reached the commencement of the large intestines."

The increase of surface in the intestines is meant to allow the digested food to remain in contact with their inner surface for a pretty long time, so that the chyle (Rasadhatu), which is to be separated and absorbed by means of the "blood vessels and lymphatic vessels and lacteals" may be completely extracted from it. The Rasadhatu being a somewhat thick liquid substance, the original semi-liquid form of the digested food is changed here, and the mass goes on becoming more and more solid as it proceeds along the average 22 feet length of the intestine. The proceeds of absorption has been metaphorically said to be due to Agni by Ayurvedists. Just as a wet cloth gets dry in sunshine, because the sun's rays absorb the water in the cloth, so also here the process of absorption of chyle is said to be due to Pitta or Agni. The separation of the Sara and Kitta *i. e.* essential and non-essential *viz.* chyle and excreta, is stated to be due to Pachakpitta above.

पचत्यन्नं विभजते सार किटौ पृथक्तथा ।

Thus as the food reaches the intestines, and the chyle is absorbed there, a third substance termed as Wayu, which is the product of a chemical action between the digestive juices and the food is produced there.

पक्काशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना । परिपिंडित पक्कस्य वायुस्यात्कटु भावतः ।

Before I proceed further, it is advisable to discuss the chemical actions which digestive juices along with the bacteria in the intestines produce of the food eaten. Halliburton says :

"The carbo-hydrates are found chiefly in vegetable tissues and many of them form important foods. The most important of these are starch, glucose and lactose or milksugar. Maltose is the chief sugar formed from the starch by the diastic enzymes contained in the *saliva and pancreatic juice.* This starch is widely diffused through the vegetable kingdom. By means of the inverting enzymes such as occur in the intestinal juice, maltose is converted into Glucose. An important property of glucose is that under the influence of yeast, it is converted into ethyl alchohol and carbonic acid.

$$C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_6O + 2\ CO_2.$$

Glucose is found in many fruits, honey and in minute quantities in the blood and numerous tissues, organs and fluids of the body. Lactose or milk-sugar occurs in milk. By means of inverting enzymes such as occurring in the intestinal juice, it takes up water, and splits into equal parts of glucose and fructose.

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

The most frequent fermentation which the bacteria in the intestines set up on carbo-hydrates, is the lactic acid fermentation. This may go on further and result in the formation of carbonic acid, hydrogen and butyric acid. The two stages of the lactic acid fermentation are as follows :—

(1) $C_{12}H_{22}O_{11}$ (Lactose) $+ H_2O = 4C_3H_6O_3$ (Lactic acid)

(2) $4C_3H_6O_3$ (Lactic acid) $= 2C_4H_8O_2$ (butyric acid) $+ 4CO_2 + H_2$

Cellulose, which is accompanied with starch in alternate layers is broken up by the bacterial action in the intestines into Carbonic acid and methane. This *is the chief cause of the gases in the intestines*, the amouunt of which is increased by vegetable food. The action of the bacteria on amino-acids is also to produce carbon dioxide."

Thus we see that the gases in the intestines produced by the combined action of the secretions like saliva, pancreatic juice, bile intestinal juices and the bacteria consists mostly of this CO_2 on the different tissues of the body and specially nerves. The gases in the intestines are termed Apan-wayu by Ayurvedists. Sushruta says : **पक्वाधानालयोऽपानः** Intestines are said to be the chief abode of Wayu.

पक्वाशय कटी सक्थि श्रोत्रास्थि स्पर्शनेंद्रियं ।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ।

Therefore it follows that like gastric juice (Kledak kapha) in Amashaya, and Pachak Pitta in the duodenum, if this third substance Apan-wayu (mostly CO_2) is also produced in due quantity, the whole process of digestion, absorption and excretion will go on smoothly, but, if for some reason or other its quantity is increased **वातवृद्धी**, then the system gets vitiated, and there is a disease for which a remedy has been prescribed by **चरक** as follows :—

आस्थापनानुवासनं तु खलु सर्वोपक्रमेभ्यः वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः । तदादित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति । तत्रावजिते वातेऽपि शरीरान्तर्गताः वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते । यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कंद्ध शाखावरोह्कुसुमफलपलाशादोनां नियतो विनाशस्तद्वदिति ।

Just as **वमन** and **विरेचन** have respectively been prescribed as the best remedies for removing the **धातुवैषम्य** due to an abnormal increase of **क्लेदकफ** and **याचकपित्त** respectively, so also **आस्थापनानुवासन बस्ति** (enemetas) have been suggested as the most effective means of removing the abnormally increased Wata in the intestines. The drugs which are thus introduced by means of the enemas, remove that Wata subtance, from the insestines either by lubricating the inner surface, and thus making the passage clear by removing the obstructing solid stools (**परिपिंडित पक्व**) and thereby allowing these obstructed intestinal gases to pass off, or by absorbing that Wayu by means of oily

(Snigdha) and hot (Ushna) substances thus introduced according to the law.

प्रकोपन विपर्ययोहि धातूनां प्रशमकारणमिति ।

This Wayu is said to be the root. cause of all diseases due to Wata, which might appear in any other part of the body, and, therefore, as soon as its abnormality is removed, all other Wat-Vikaras in the body disappear, just as, when we chop off the very root of a tree, its branches, sprouts, flowers, fruits and all other off-shoots wither away. This passage clearly proves that this gas in the intestines (predominantly CO_2) is the Wata which is the root cause of all diseases.

That Wata is predominantly CO_2 is also proved by the statement in Sri-mad-bhagwat-gita *viz.*

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतर चारिणौ ॥

It is wel-known that during the process of **श्वासोच्छ्वास** the air which we breathe in contains more oxygen, and the one that we breathe out consists of more of carbon-dioxide ; and both these gases are **नासाभ्यंतर चारी** Pranavayu being predominantly oxygen.

Modern physiology tells us that "The intake of oxygen is the commencement and the output of carbonic acid is the end of a series of changes known as respiration. The intermediate steps take place all over the body and constitute what is known as tissue-respiration."

The carbonic acid gas is thus a substance which is produced in minute quantities all over the body. But its production is greatest in the intestines, which are therefore, its principal abode. This carbon dioxide acts in a peculiar way on the nervous tissues of the body. If it is produced in the normal quantity, it stimulates the nervous system but if produced in either an excess or less quantity, it disturbs the system. This has been proved by Waller's experiments.

"Waller has obtained a number of interesting results on the variation in nerve-action produced by drugs and other agents. *He finds that the effect of Carbonic acid in large doses is to cause a diminution and finally the disappearance of the activity of the nerves.* When this gas is replaced by air, the nerve recovers, and the action currents increase... *Small doses of carbonic acid increase the action currents* and Waller considers that the staircase effect in muscle, and the similarly progressive increase noted in action currents of a nerve as a result of repeated stimulation *is due to the evolution of this gas during activity.*

This hypothesis has been recently confirmed by Baryer and Frolich. They have shown that peripheral nerves participate in respiratory exchanges using up Oxygen and producing Carbonic acid in minute but measurable amount. Gotch has shown "that cold applied to a nerve acts very much like carbonic acid. Intense cold will cause disappearance of both excitability and conductivity."

It is evident from these experiments of Waller that amongst the different substances which are produced or developed in the body during various chemical changes it is CO_2 or a mixture of O and CO_2 alone has its action on the nervous system "Which is the great master system of the body that presides over, controls and regulates the functions of other systems. "Wata which controls this master system has therefore been, described as

सर्वगः सर्वतंत्राणां विधाता वायुरेव भगवानिति (master),

here Chakradutta says :—

सर्वतंत्राणातंत्रशब्दः कर्मवचनोऽप्यस्ति ।

In its normal state, the following actions have been attributed to it:

दोषधात्वग्नि समतां संप्रापितं विषयेषुच । क्रियाणामानु लोम्यं च करोत्य कुपितोऽनिलः ।

It is well known that the nervous system produces all sorts of secretions which have been above stated as Kapha and Pitta, and thereby helps the conversion of the food that we take every-day into chyle, blood and other tissues. It is thus the system which maintains equilibrium (समता) between the Dosha and Agni sacretions on the one hand, and Dhatus *i. e.* principal tissues on the other. The sensory nervous system is responsible for conveying to the mind the different sensations through Jnanendriyas organs of sense (विषयेषु संप्राप्ति). It is the motor and autonomous nerves which help to carry away all excretions out of the body and are responsible for various kinds of motions.

Thus it is that all the phenomena which have been attributed to Wata are due to action of CO_2 produced in the body on the nervous system as a whole or on some definite branches of it. It is therefore that the word Dhamani is the most suitable one for nerves according to the meaning ध्मानादनिल पूरणात् धमन्यः.

Thus Wat is said to be तंत्रयंत्रधर. Here Tantra means either body or actions ; and as either the body or Tantrayantra-meaning thereby the mechanism which causes actions in the body *i. e.* the nervous system is dependent for its action on the proper production of CO_2 in the system as proved by Waller's experiments, this Wata is तंत्रयंत्रधर. For the same reason it is प्रवर्तक श्चेष्टामुच्चावचानां विविधानां । If it is produced in abnoral quantities it would depress the nerves, and thus retard or ultimately stop their actions- Similary it is

नियंता प्रणेताच मनसः । सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा,
प्रवर्तको वाचःहर्षोत्साहयोर्योनिः ।

All these actions are due to sensory and moter nerves. It is also समीरणोग्नेः because when the nerves going to the pancreas are stimulated there is an increase of pancreatic juice secretion. Thus it is clear that each and every action which is attributed to Wata in Ayurveda originates from the nervous system, which in turn depends for its proper working on the production of CO^2 in the normal quantity throughout the system and principally in the intestines. Hence Chakradutta says:—

यद्यपि वायुना वातकारणानां वातशमनानां वा तथा संबंधो नास्ति, शरीर संवद्धैस्तैः तस्य शरीरचारिणः संबंधो भवति। ततश्च वातस्य समानगुणयोगाद्वृद्धिः विपर्ययाद्ह्रास उपपन्न एवेति।

It is thus proved that Wata, Pitta and Kapha are actual substances in the body like other seven Dhatus and three Malas. They are mainly produced in the alimentary canal, Pitta and Kapha being secreted in duodenum and stomach respectively; while Wata being formed as a by-product in the intestines; and it is through these substances conveyed by the blood stream all along the body that other froms of Wata, Pitta and Kapha, whether Sukshma or Sthula, are nourished. The blood or the lymph that exudes from the capillaries reaches even the minutest part of the body, and along with it reach also these substances in extremely minute proportions. And so it is said that:—

सर्वं शरीर चरास्तु वातपित्तश्लेष्माणो हि सर्वस्मिन्शरीरे कुपिताऽकुपिताः शुभाऽशुभानिकुर्वंति प्रकृतिभूताः शुभान्युपचय बलवर्ण प्रसादादीनि अशुभानि पुनर्विकृतिमापन्नानि विकारसंज्ञकानि।

Here the word Sarva-shareer-char is very important as it shows that the Tridoshas move about in the body along with the blood stream. The same idea is expressed in the statement.

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परी धावतरं। यत्र संगस्तु वैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते।

Of the different forms of कफ secretions, mucous membranes surrounding the tongue, nasal cavity and lungs, give rise to **बोधक, तर्पक** and **अवलंबक** forms, while Shleshak is the secretion of the synovial membranes lining the joints. Amongst the different Pittas, Ranjak and Bhrajak are actual secretions, while Sadhak and Alochak are Sukshma. Prana Vayu is ordinary air containing more of Oxygen than Co_2, Apan contains more of Co_2 while the other forms should also be different mixtures containing O and CO_2.

This subject needs more research ; but there can be no doubt that the Tridoshas are actual substances.

Distinction between Prasad and Mala Dhatus.

Now before I close this discussion, I have to point out the distinction which Ayurvedists have made between Prasad and Mala Dhatus.

Charak holds that the food that we eat everyday is changed into Rasa and Kitta thus :—

विविधमशितपतिलीढखादितं यज्जंतोर्हित मंतराग्नि संधुक्षित बलेन यथास्वेनोष्मणा सम्यग्विपच्यमानं कालवदनस्थित सर्वधातूष्म मारुतः स्रोतः केवलं शरीरमुपचय बलवर्णसुखायुषा योजयति शरीर धातूनूर्जयति। धातवो हि धात्वाहाराः प्रकृतिमनुवर्तन्ते। तत्राहार प्रसादाख्योरसः किट्टं च मलाख्यमभिनिर्वतेते। किट्टात् स्वेद् मूत्रपुरीष वातपित्त श्लेष्माणः कर्णाक्षि नासिकास्य लोमकूप प्रजननमलाः केशश्मश्रु नखादयश्चावयवाः पुष्यति।

This passge clearly shows that the food that we take in everyday helps to sustain the body by being converted with the help of various secretions into two parts, Rasa and Kitta. Rasa or chyle is no doubt the best part of the food (Ahar-prasad.) But the word Kitta here does not mean dross or anything worthless, and therefore fit to be thrown out of the system, because the author says that from this Kitta various parts (Avayava) of the body such as hair (Kesha) nails (Nakha) as also Sweda, Mutra and Purisha and Wata, Pitta and Shleshma are nourished. It has already been said by Chakradatta that :—

पुरीष वा तादयोऽपि शरीरावष्टंभका प्रसाद एव गुणकर्तृत्वात् as also त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्र एव च। देहं संधारयंत्येते।

Hence, here the word Kitta should be translated as a by-product. The question now arises as to which are these substances known as Wata, Pitta and Kapha that are nourished by Kitta. They are not the secretions Kapha and Pitta which take part in the conversion of the food into chyle. This point is madc clear by Charakacharya thus :—

किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्यच कफौसृजः। पित्तं मांसस्यच मलो मलः स्वेदस्तु मेदसः। स्यात्किट्टं केश लोमास्थ्नो मज्जः स्नेहोक्षि विट्त्वचाम्।

That Kitta is not anything worthless is also proved by the following statement of Charak.

ते सर्वे एव धातवो मलाख्या प्रसादाख्याश्च रसमलाभ्यां पुष्यतः स्वमानमनुवर्तयंते यथावयवः शरीरं। एवं रसमलौ स्वप्रमाणावस्थितौ आश्रयस्य समधाताः धातुसाम्यमनुवर्तयतः। निमित्ततस्तु क्षीणवृद्धानां प्रसादाख्यानां धातूनां वृद्धिक्षयाभ्यामाहार मूलाभ्यां रसः साम्यमुत्पादयत्यारोग्याय। किट्टेच मलानामेवमेव। स्वमानातिरिक्तश्चोत्सर्गिणः शीतोष्ण पर्यंयगुणैः चोपचर्यमाणाः मलाः शरीरधातुसाम्यकरा समुपलभ्यंते।

The portions above clearly prove that the Kitta which is Malakhya is also a Dhatu, and that, so long as it exists in the body in the normal quantity, it keeps up the Dhatu-samya; but whenever its quantity increases, it is thrown out of the body. Thus even the Malas, as they are called, are Dhatu-samayakar within certain limits.

Thus from the sense in which the word is used here, it is clear that each Mala is a by-product of each of the seven chemical processes beginning from the digestion of food, and ending in the conversion of Majja into Shukra. The process may be represented by an equation thus :—

Food plus the several degestive juices = Chyle (Rasadhatu) + Wit (feaces).

The next chemical process is that of formation of blood (Rakta-dhatu) from Rasa. Modern physiology tells us that the chyle which is formed and separated in the intestines by the action of the digestive juices is absorbed there and collected by lacteals, and then passing through the Thoraic duct is emptied in a vein near the heart. It then passes from the heart at the lungs. As this process goes on, the mucuous glands inside the mucuous membrane of the lungs give out a secretion, which as it were acts as a lubricant, because a portion of the lung is likely to waste away without it. This is therefore the Kapha secretion the by-product of this chemical process. It is a matter of everyday experience that a certain quantity of the स्वमानातिरिक्त therefore उत्सर्जनीय (ready to be thrown out) Kapha always comes out of lungs when we go to wash out mouth clean after taking our food. This is because as soon as the food enters the stomach the hearts beats faster in order to provide more blood within the same period to the glands, which give out secretions like gastric and pancreatic juices, and thus to bring out a copious flow of each of them. The venous blood, therefore, reaches the lungs more often than before during the same period, and thus requires a larger quantity of oxygen, making it necessary for the lungs to work faster. Thus the quantity of mucous secretion also increases, and this increased part being स्वमानातिरिक्त has to go out. This shows that the उरस्तफल is a by-prodoct produced in the system during the tranformation of the venous blood, (or as here of the Rasadhatu which is mixed with that blood,) into arterial pure blood Rakta-dhatu. This secretion, so far as it is useful, remains in the system, but where its quantity increases owing to the above cause, it has to go out.

Rasadhatu plus oxygen of the air = Raktadhatu plus Urastha Kapha.

The third chemical process is that of formation of Mansa-dhatu from blood. "A portion of the blood stream having been diverted once into the capillaries of the intestinal canal and some other organs, and gathered up again into a single stream, is second time divided in its passages through the liver before it finally reaches the heart and completes a revolution. This subordinate stream through the liver is called Portal Circulation. Thus the liver gets its supply of blood from two distinct sources *viz.* from the portal vein and from the hepatic artery while the blood is returned from it into the vena-cava interior by the hepatic veins. Its secretion, the bile, is conveyed from it by the hepatic duct either directly into the intestine or when digestion is not going on, into the cystic duct, and thence into the gall bladder where it accumulates until required."

This extract from Halliburton shows that before blood becomes so pure as to be able to be converted into other tissues such as flesh, it has to pass through liver where it gives out the secretion bile. Hence this bile is a by-product obtained while Rakta-dhatu is being purified so as to be able to form other tissues.

Hence Ranjak pitta is bile alone, while pachak pitta is a combination of pancreatic juice and bile. This is called Ranjak, because when there is obstruction in the bile ducts preventing the bile entering the intestines, it passes backwards into the lymph, enters the blood and is distributed over the body causing a yellow tint in the skin mucous membranes and colouring the urine deeply. As it gives colour to the blood, it is called Ranjak. Sushruta says :—

यत्तु यकृत्प्लीन्होः पित्तं तस्मिन्रंजकोऽग्निरितिसंज्ञा । सरसस्य रागकृदुक्तः ।

Halliburton, holding the same views, states "Besides these direct offices, the spleen fulfils some purpose in regard to the portal circulation with which it is in close connection."

All this discussion clearly proves that the Malakhya dhatus which are obtained during these chemical changes are different from those which spontaneously flow in the alimentary canal. They are not originally substances ready to be thrown out of the system, but become so when Swaman-atirikta.

Meaning of the word Mala.

It has to be remembered that there is yet another sense in which the word Mala has been used by Ayurvedists, and that is to mean substances always ready to be thrown out of the system.

शरीर धातवः पुनर्द्विविधाः संग्रहेण मलभूताः प्रसादभूताश्च । तत्र मलभूतासो ये शरीरस्य बाधकराः स्युर्यथा शरीरच्छिद्रेषू यदेहा, पृथग्जन्मानो बहिर्मुखाः परिपक्काश्च धातवः प्रकुपिताश्च वात पित्त श्लेष्माणो येचान्येपि केचिच्छरीरे तिष्ठंतो भावाः शरीरोपयाता योपपद्यंते सर्वांस्तान्मलेसंचक्ष्महे ।

Here the word Malabhuta has been used to show that as soon as those dhatus attain a particular stage, they have to be at once thrown out. The word Mala used here collectively to mean a Dhatus whether belonging to Dosha, Dhatu or Mala class but having attained a particular condition.

दोषाः—प्रकुपिताश्च वात पित्त श्लेष्माणः ।
धातवः—परिपक्वाश्च धातवः ।
.मलाः — शरीरच्छिद्रेषूपदेहाः पृथग्जन्मानो बहिर्मुखाः ।

Not only these three classes, but anything which is likely to cause damage to the body tissues such as a Shalya, is also included in the word Mala.

Thus Mala-bhuta dhatu means an excretion ready to be thrown out of the system.

Malakha dhatu is a by-product which becomes an excretion मलभूत when it is स्वमानातिरिक्त and Mala-dhatu means मूत्रशकृत्स्वेदाप्त्यः so long as they hold and nourish the body.

This finishes the exposition of bare skeleton of the Tridosha theory. I have in this short description attempted to make a distinction between the terms Dosha, Dhatu and Mala as they occur in Ayurvedic Works, and to prove that the tridoshas are actual substances in the body. I shall be glad if it helps to promote discussion and mutual understanding amongst us Baidyas on this point which is of utmost importance to the students of Ayurveda.

There are other topics of importance to be dealt with *viz.* Ayurvedic Actiology, Pathology, Methods of diognosis and Treatment, Kriya—Kalas, Rasa, Veerya, Vipaka and Prabhava of medicines and so on which will take hours of your precious time if dealt with now. I leave these today for some future date. My idea is that if tridosh theory which is the main stay of Ayurveda is somehow made intelligible to the promotion of other systems of medicine and accepted by them, we Ayurvedists will have achieved something. I have therefore tried to put it for your kind consideration with a hope that it will be throughly discussed either in this conference or afterwards and some resolution regarding it passed.

I thank you very much again for the honour you have done me by calling upon to preside over this conference and close with the wish that.

समानीव आकृतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसज्यसति ॥

A brief history of the Dravida Ayurveda Mandal

Since its inception in the year 1918

Subsequent to resolution No 8 passed at the 8th All India Ayurvedic Conference held at Poona in the year 1918, in which it was proposed to start a Provincial Association affiliated to the All India Ayurveda Maha Mandal in South India for the uplift of Ayurveda, a small party of physicians headed by the late Pandit D. Gopalacharlu & Mr. K. G, Natesa Sastrigal of Madras organised themselves and started an Association named "Dravida Ayurveda Mandal" in Madras.

Under the auspices of the above Association the first "Dravida Ayurveda, Sammelan" was held at Pachayappa's Hall Madras on the 13th & 14th April 1918. M. R. Ry K. Balasubramania Iyer avt B. A. B. L. Advocate Madras was the President and M. R. Ry. K. G. Natesa Sastrigal was the Secretary of the Conference. In this connection it may be mentioned that late Mr. T. V. Shehagiri Iyer avt, High Court Judge, Madras who was first elected as the President of the Conference was unable to preside over the function owing to ill health and consequently Mr. K. Balasubramania Iyer was elected instead.

The Second Dravida Vaidya Sammelan was held at THIRUVAHENDI PURAM (Chingleput Dt.) on the 23rd August 1919 under the Presidentship of Late Pandit D. Gopalacharlu of Madras. Mr. T. D. S. Moorthi Iyengar was the Secretary of the Conference.

A Reception Committee was formed to conduct the III Conference at Trichinopoly in 1920 and owing to some difference of opinion about the election of the President for the Conference between the members of the Reception Committee and the Standing Committee of the Mandal, the Reception Committee was dissolved and eventually the Conference was arranged to be conducted at Conjeevaram.

The III Conference was held in the year 1921 at Conjeevaram under the Presidentship of "Vaidya Visarada" K. G. Natesa Sastrigal of Madras and Mr. Venkatesa Sastrigal was the Secretary of the Conference.

By this time it may be mentioned that public agitation was strong enough to prompt the Govt. of Madras to take some action in promoting the growth of Ayurvedic Science, as a result of which they first appointed in the year 1918 Rao Bahadur M. C. Koman avt L. M. S. to investigate into the indigenous drugs and submit a report to the Government. Accordingly the learned Doctor submitted on the 7th December 1918 his preliminary report on the "investigations into indigenous drugs." The second and the chief report was submitted on the 31st Dec. 1919 and the third & final report was submitted to the Surgeon General with the Govt. of Madras on the 2nd Aug 1920. Since most of the statements contained in the report were absolutely baseless, incoherent, misguided and prejudicial it was decided by the Dravida Vaidya Mandal to form a Special Committee consisting of the Members of the Mandal and of the Madras Ayurveda Sabha to give a suitable reply to the Govt. on the "Koman's Report".

Subsequently the members of the joint Board of the Dravida Vaidya Mandal and the Madras Ayurveda Sabha met at Madras on 17. 3. 1921 and the following members were elected to constitute the Special Committee.

1. M. R. Ry. "Vaidyavisarada" K. G. Natesa Sastrigal
2. " " R. Bharatha Sastrigal
3. " " K. A. Venkatachala Sastrigal
3. " " E. R. Srinivasa raghavachariar

After several sittings the Committee drafted an effective and reasonable report setting forth clearly the inconsistency, misleading tendency and the inaccuracy, of the statements contained in the 'Komans' report and submitted the same to the Govt.

Subsequent to the above report, as an outcome of the strenuous efforts of the late Raja of Panagal and also due to strong public agitation, another Committee known as "The Usman Committee" was appointed by the Govt. of Madras to enquire into the Indigenous Systems of medicine in the year 1921.

Many members of the Dravida Vaidya Mandal took active part in giving evidence and M. R. Ry K. G. Natesa Sastrigal was a member of the Committee itself. As a result of the 'Usman Committee Report' a Govt. School of Indian Medicine was caused to be established in the year 1924 and regular work started in January 1925.

The fourth Conference was conducted at Kaniyur (Coimbatore Dt.) on the 9th Feb. 1922, under the Presidentship of "Vaidya Visarada" K. A. Venkatachala Sastrigal of Madras and Mr. Ramanatha Sastrigal was the Secretary of the Conference.

The fifth Dravida Vaidya Sammelan was conducted at Trichinopoly on the 30th March 1923 under the Presidentship of Pandit S. Narayana Iyenger of Madura and Pandit D. Narayan Iyer of

Trichinopoly was the Secrtary of the Conference. The Head quarters of the Mandal was then shifted from Madras to Trichinopoly.

The Period 1923 to 1933 was one of deep lethargy and inactivity owing to several reasons, the chief among which being want of funds, lack of enthusiasm and co-operation among the Vaidyas.

When the work of conducting the 6th Conference was taken up in the year 1933 after a lapse of eleven years, a lot of difficulties had to be surmounted, as the Mandal was practically extinct and had to be restarted. One of the most important obstacles that presented itself was dissention and misunderstanding existing between the followers of Ayurveda, and Siddha Systems of Medicine, that are Prevalent in South India. The last named one is generally practised by the "Tamil" Vaidyas in this Presidency. It will be noted that the term "Siddha Vaidyam" which originally meant Ayurvedic literature written in Tamil language or "Tamil Vaidyam" came to be used more prominently in this Province alone as a result of the recommendations of the Usman Committee.

Eventually the 6th Session of the Dravida Vaidya Sammelan was conducted at Trichinopoly on the 28th and 29th May 1934 under the Presidentship of "Ayurvedacharya" Pandit M. Dorai Swami Iyenger of Madras with much eclat and Dr. V. Subramania Iyer of Srirangam was the Secretary of the Conference.

* * *

13th Andhra Ayurvedic Conference, Tuni

May 16th, 17th and 18th

Presidential address by Dr. A. Lakshmi Pathi, B. A., M. B. & C. M., Bhishagratna.

I thank you for the honour you have done me in electing me to this responsible place for a third time. During the last two occasions I had to plead for the recognition of Ayurveda as a science. Now that this object has been fully achieved by the establishment of a Government School of Indian Medicine as a result of thorough scientific enquiry, there is no one to question as to the value of this great Indian Art of Healing.

Importanee of Teaching Ayurveda through Mother Tongue

We have now to consider whether we are satisfied with the establishment of this School at Madras. I must at once say, that we have to recognise the importance of the agitation, that is now carried on by some of our friends, about the inadequate nature of the education that the graduates of the Government School receive in that institution. The charges laid against the working of the school may be brought under 3 heads.

1. That the graduates are not so highly qualified as may be expected.

2. That the leanings of some of them are towards Westernisation of Indian Medicine as shown by their preferring injections and foreign patents to older methods of treatment by simple diet and country drugs.

3. That they are not able to make their own medicines as the Ayurvedic Physicians in the country have all along been able to do.

These defects can be remedied if the students have a thorough knowledge of the original texts so as to create a strong bias in favour of Indian treatment before they are introduced to western methods of treatment. Instruction should throughout be imparted in the student's own mother tongue and opportunities for practical training in pharmacy should be more adequate. Further, the instruction given through the medium of English is a great handicap for a genuine Sanscrit scholar who enters into the portals of this institution, which was originally intended for his use.

Need for Andhra Ayurvedic College.

To remedy this and to make the teaching very much cheaper, it will be necessary to establish a Government Ayurvedic College in the centre of the Andhra Country. This is sure to attract earnest and competent students from the families of Ayurvedic physicians. Moreover the cost of their studies would be very much less than that ot the Metropolis. A similar Tamil Ayurvedic college may be established at Chidambaram leaving the Kerala and the Canarees sections to develope under the Patronage of Mysore and Travancore States.

It is however very necessary to have a good institution at Madras for research work and for post graduate studies; here qualified Ayurvedic and Allopathic doctors may conduct team work for the developement of the science.

It is nothing but lack of sufficient effort on our part that stands in the way of establishing such a college in the Andhra Desa. The Andhra University has to be approached with definite proposals in this matter and I am confident that we shall have the enthusiastic support of the University. It may also be possible to add a substantial course of instruction in Ayurvedic medicine in the curriculum for the students of the Vizagapatam Medical College at a very small cost. I am sure Allopathic students would welcome such a teaching confering upon them a valuable qualification for independent medical practice in rural areas. I learn that the medical graduates of the Andhra University have rarely any chance now-a-days for employment in Government service. Only the angle of vision must change. The public should first be educated to support such a view through the legislative council.

Registration of Ayurvedic Doctors.

The most important subject that comes up for decision immediately before this conference is the question of registration. The chief objects with which a medical council is established in any country are—

1. To maintain a register of qualified medical practitioners.
2. To protect and to promote their interests and
3. Incidentally to punish any undesirable members either by eliminating them from the register or in any other way.

The medical council is a sort of brotherhood of the existing medical practitioners and all subjects common to their interests are discussed by the council. These council generally assume their powers by a royal charter or by legislation and thus become public institutions. Here in Madras, the registration of Indian Medical practitioners is started by an order of the Government of Madras apparently for the registration of Indian Medical practitioners in service. At first it was said that all registered medical practitioners will be entitled to Government grants. Latterly, even before a year had elapsed, it is now ordered that only those who are registered in A class are entitled to any kind of payment from the Government or Local Boards.

An Orthodox Ayurvedic physician however eminent he may be in public estimation by dint of his skill and scholarship, can only hope to be registered in D class, according to present rules. One cannot see why any independent medical practitioner should choose to register himself under those conditions.

Central Board of Indian Medicine.

This is said to consist of 18 members, all nominated by Government and I am told that all proceedings relating to the activities of the Central Board of Indian Medicine are confidential. Even their very name do not appear to have been published any where. These are the ways of bureaucratic government, who can always masquerade in the name of popular representatives as long as they can get hold of some persons, who can easily be bought over by titles or promises of favour as is the case with our present legislative council. Our hope seems to lie in forcing our enterance into this Central Board breaking down at least the secrecy that underlies their actions if we cannot do more than that.

The graduates of the All India Ayurvedic Mahamandal, which has done such yeoman service to the cause of Ayurveda for the last 20 years, are treated even worse than the illiterate vaidyas, who can secure easily a certificate of 10 years' standing. An Ayurvedacharya, however highly respected he may be by the Mahamandal by the award of certificates of honours, has to wait for 10 years before his name can be placed upon the register. I have heard of instances of corruption practised by some adventurers only to get themselves registered as vaidyas, though as already stated no benefit can accrue to any one by such registration.

Even to exclude these undesirables from entering into the Central Board it is necessary for the cultured and educated Ayurvedic pysicians to enter into and to fight from inside and as well as outside. After all our trouble is not so much internal. The whole lot of Indian Medical practitioners are still regarded as untouchables. Let us be united in our attempt for progress. I, therefore, request you to change your view point and to see that the register contains at least a good number of the representatives of the Mahamandal. It is true that we have no confidence in the present Board, but it is our duty to make this Board worthy of the confidence of the public.

Revival of Ayurveda, A Great step in Village Reconstruction Programmes.

There is one thing more that I wish to bring to your serious notice. It is well known to you that the success of the Ayurvedic treatment mostly depends upon the simple and efficient drugs that are easily available in all villages. You must, therefore, make it a point to draw your supplies from the nearest garden, forest or bazar. This will be the first great step in the village reconstruction programme. Moreover the more fresh the herb, the more active it is. Although you have every right to use any treatment Eastern or Western for the quick recovery of your patient, I would urge upon you to first think of the method of curing without the use of drugs and then think of the most efficient herb that is often in your own backyard before you give preference to any other treatment.

You should not be guided by country wide advertisements, which lure you and your patients into their trap. Do not be led away by the dictates of some patients, who very often try to suggest a treatment for themselves and persuade you to give them this injection and that. Such an obligation on your part may sometimes appear to be a lucrative method, but it is deceiving yourself and misusing the great trust handed down to us by our illustrious ancestors of whom we have every reason to be proud. You have to develop self-denial and self-control in the interests of our noble profession and I assure you that it will pay you in the long run if you follow the true scientific methods according to which you have been trained. After all most of our success in treatment depends upon the correct diagnosis and upon the advice that we give to the patient as regards suitable diet, regulation of habits, work and exercise. Rest to the stomach and fresh air cure more diseases than any medicine can. Study your patients more and study also to drug them less and less and thus your treatment will be the cheapest and most successful.

Thathiva yuktham bhishjyam yath
arogyaya kalpathe
achaiva bhishajyam areshtah
Rogabhya yah prommoohayath.

That which cures a patient is the best treatment, the physician that cures a patient is his best doctor.

Biographical Notes Regarding Dr. P. V. Krishna Rao., B. A., M. B. B. S., F. I. M., Ubhaya Vaidya Praveena, Professor and Resident Medical Officer, Government Indian Medical School and Hospital, Madras.

Born in 1889 as Andhra at the village of Devarapalli, West Godaveri District, Madras Presidency, in a Brahmin Salvite family of good means. Matriculated at High School, Tanuku, West Godaveri District, and passed First in Arts Examination in 1909 at Rajahmundry. Studied Medicine joining M. B. Course in 1909-10 at Madras Medical College and completed the same taking Honours certificates in Organic Chemistry and Dental Surgeon's course. Served as House-surgeon in Government Royapettah Hospital, Madras, working under Lt-Col. C. Donovan, M. D. I. M. S., Professor of Physiology, Medical College, Madras and the then Superintendant of the Royapettah Hospital, who has a world wide living fame as he discovered in India the Kalazar Parasite simultaneously when Col. Leishman discovered the same in Egypt. Then he had House-physician's training under Lt-col F. F. Elwes, M. D. I. M. S., chief Professor of Medicine and 1st Physician of Government General Hospital, Madras. Before finishing House Physician's course, Col. Donovan recommended him for the post of Junior (or II) Assistant Professor of Physiology (in charge of Research Branch) under him in Madras Medical College, where after serving the department for about 3½ years, he was promoted to the Senior or 1st Assistant Professor of Physiology and worked for another 2½ years. He did some researches in Garlic, treated successfully some surgical and medical cases not benefitted by Allopathic treatment and published those cured cases in the "Antiseptic" Journal of Madras (December 1922 in page 598) and also in the same journal of June 1924 page 318. He was Medical Inspector to High Schools in Chintadripet, Madras. and life member to some of them, and was Chairman of the Board of Government Technical Examinations Madras for some time and also served in the L. M. P. Board as Examiner. Subsequently he was selected as Lecturer in the Government Indian Medical School and later was appointed as Resident Medical Officer (Resident Surgeon) of the Hospital attached to the Government Indian Medical School, doing collatiral duties of Lecturer in Physiology and Hygiene and part of Practical Surgery. He is in charge of the Out-patient department of the Hospital where Indian Medicines are used under his guidance for treating surgical cases as well. He took a two years' course in Ayurveda, Siddha and Unani systems of Medicine, passed the Government Examinations in them and qualified for title "Fellow of Indian Medicine (F. I. M.)" He also passed B. A. in animal Physiology in II class by private study and took the degree. He is a member of the General and Sub-committee of the Central Board of Indian Medicine, Madras.

Amongst his other activities may be mentioned that he was the Chief Medical Officer of the World Jambore (Scouts) held at Madras during 1927. He is the President of the League of Indian Medicine, Madras. He was the recipient of the "Kings Silver Jubilee Medal" on 18th October 1935.

He was invited to preside over the Ayurvedic Conference held at Padacheukur, Bapatla Taluk, Guntur District in the month of June 1926.He also presided over the Andhra Provincial Ayurvedic and Unani Conference held at Tanuku, West Godaveri District on 27-10-1933. At this conference he was honoured with the title "Ubhaya Vaidya Praveena". He also presided over the All India Hereditary Ayurvedic Doctors' League, held at Yellamanchalli, Vizag Distirct, in December 1934.

He founded and opened a Library and Free Reading Room in his name in his native village, Devarapalli, West Godaveri District, on 6-5-1935 in honour of King's Silver Jubilee Day, for use of public and he has been also maintaining water pandals for use of public for the last 20 years near nis village during three months of summer as a charity.

THE PRESIDENTIAL ADDRESS

BY

M. R. Ry. Ubhaya Vaidya Praveena

Dr. P. V. Krishna Rao Pantulu Garu

B. A., M. B. B. S., F. I. M.,

Resident Medical Officer, Government Indian Medical School Hospital, and Lecturer in Physiology and Hygiene, Government Indian Medical School, Madras.

Held at Yelamanchili Vizag-District

LADIES AND GENTLEMEN,

I am deeply thankful to the Reception Committee for bestowing on me this great honour of presiding over this big conference, which I accepted not only with some hesitation, on account of the responsibilities attached to it, but also with a sense of satisfaction to serve the country in my own humble way and also to enjoy the benefits of your company. I hope to be excused for any of my shortcomings.

The importance of Ayurveda and its scope,

Ayurveda means the Science of Life. It is the most ancient of all medical sciences and is based on sound fundamental truths. Health is the cause of all happiness on this earth. Without health nothing useful can be achieved. Ayurveda teaches us to preserve normal health, to prolong life, to prevent disease and to cure it.

The Ayurvedic system of medicine is as old as the Vedas. The Panchabhuta and the Tri-dosha theories form the fundamental framework of Hindu Medicine, clinical as well as pathological. Its survival till to-day testifies to its greatness, which is mainly due to the real scientific theories based on the Tri-dhatu physiology and the clear methods of diagnosis, pregnosis, and successful treatment. The treatment does not consist in mere administration of certain drugs and other compound preparations. It also deals elaborately with other important factors of life such as ahara and vihara, as laid down by the great sage Charaka. By ahara is meant the regulation of diet suitable to climate, habits, and customs of people of different parts of the world. By Vihara is meant the conduct in life and regulation of sexual, moral, physical and mental functions, based on sound hygienic principles. The best examples for the above are to be found in the treatment of diabetes (Prameha) and tuberculosis (Rajayakshma) by dietetics and graduated physical exercises. Even now Ayurveda is serving to the needs of millions of people in this country.

Coming to the present day allopathic medical treatment, a few of the failures are due to too much attention being bestowed on the microbe, microscope and other costly and elaborate laboratory methods without paying sufficient attention to improve and develop the power of resistance in the human system against the attacks of these microbes.

Regarding Indian Surgery, the art is there though the Science in its fulness is wanting in some places. Many of the present day operarions and the instruments used in surgery and obstetrics were fully described by Susruta. It is stated that the human body has within itself a marvellous equipment for defence against invading micro-organisms and experience teaches us that nature's ways must be utilised rather than opposed in combating diseases. In the case of wounds, nature prevents infection machanically by hæmorrhage, chemically by salts in the blood and biologically by phagocytosis. And our duty in the treatment of wounds is to assist nature and not to go against it by using substances from outside which irritate and thus hinder the healing of the same. Some of the present day aseptic operations conducted under the greatest aseptic precautions are becoming septic; one of the chief causes of this being the undue prominence given to seed (microbe) rather to the soil (body). The proper remedy to rectify and present these mishaps consist in the thorough sodhanam, *i. e.*, purification of the patient by expelling the viciated doshas from within the body by the Pancha-Karmas, *viz.*, Vamana (Emetics), Virechana (Purgatives), Vasti (Enemata), Sirovirechana (Nasyam) and Raktamokshanam (Blood-letting), as laid down in the Ayurvedic books before he is submitted for an operation, so that his body fluids (Endocrines) become normal thereby raising the power of resistance from within and counteracting the infection from without. Ancient surgical works contain some important aspects of surgery such as the Marmas—the vital points in the body—the study of which will be immensely useful at the present day.

The present day practitioners are apt to neglect the preventive side of treatment of diseases. caring more for the curative aspect, and spending very little time to study their patients and their ailments unlike the good old physicians. They pay no heed to the observance of the daily and seasonal progamme of leading a healthy life as laid down in Ayurveda such as early rising, exercises, massages, oil-baths, pranayamam (controlling the mind), vyayamam (controlling the body), regulation of diet, sleep etc.

There is an immense fund of material in the Ayurvedic Science which is worthy of being learnt by the Medical practitioners of other systems. In India, Ayurveda lives in its practical aspect mostly in the hands of the Hereditary Ayurvedic Physicians who served the millions in the past and are serving and will continue to serve in the future. They have been the origin and source of the revival and development of Indian Medicine and they are also the hope of the future. Most of them are successful and popular practitioners and adepts chiefly in pharmacy work. But I think if only they undergo a disciplined course of theoretical instructions in a recognised and well equipped institution and supplemented by a sufficient knowledge of other systems, they will become real scholars and will be fit not only to practise Ayurveda more successfully, but also become great research scholars which alone is lacking at present for the further uplift and progress of Ayurveda in all its aspects. Further, there will be scope for spreading Indian Medicine not only throughout India, but also beyond the seas, revealing to the world the greatness of the same.

Union, co-operation and mutual understanding, which I am afraid, are somewhat lacking among Ayurvedic practitioners especially in Andhra Province, are essential to present a united and powerful front in the medical field for attaining the common object of bringing Ayurveda into more prominence, popularity and practical utility. The Hereditary Ayurvedic Doctors' League, though started very recently, has been doing very splendid work not only in the propagation of Avurvedic Science through its Journal "Vidya Pradeepika" in Telugu but also helpful in recommending to the Government many of its members for Registration.

In this connection I am glad to note that till now as many as about 800 practitioners have been registered and some more are yet to be registered. I wish to congratulate in this connection your League's worthy President Prof. D. Rangacharlu, N. D., D. M. Ch., Ph. N. D., for the selfless and enthusiastic work he has been doing.

Medical Ethics.

There should not be water-tight compartments between one system of medicine and another and all systems should be viewed with an impactial spirit gathering and imbibing what is best in each system with a mutual, friendly, good feeling amongst medical practitioners of all systems. In this connection I am glad to observe that the Secretary of your Conference, an able allopathic practitioner, having side by side a fund of knowledge of Indian Medicine, has been working sincerely for the advancement of Ayurveda. He serves the best practical example of mutual understanding and goodwill, among practitioners of different systems of medicine. After all, Medical Science is one and truth can only be universal. I am now, not suggesting anything new to you except what our ancient Rhishi, the great Charaka, said centuries ago, succinctly in a stanza that the real medicine is that which promotes health, and a real physician is only one who saves the sick. Here I cannot but remark that the practice, now seen in some places, of allopathic practitioners using Indian Medicine and Indian Physicians using Allopathic Medicines without proper scientific study and knowledge of the other system of medicine, is not only detrimental to the progress of the science, but is also attended with harmful results.

Registration

The origin of Registration could be traced to the times of Susruta when the King's permission was absolutely necessary for medical or surgical practice. The necessity for it arose from the fact that there were many quack-doctors who practised medicine and surgery without proper study of the Science, causing thereby menace to the health of the public. Such people, practising without any permission or license, were used to be punished by the Kings in those days. Hence the object of it is, to create a body of licensed practitioners having a standard qualification in the interests of public safety. Registration is also equally beneficial to the practitioner as it gives him status, respect, and state recognition, while the unregistered practitioner has not got all such facilities. In bringing the Indian Medical Registration Act into being, we should all be grateful to M. R. Ry. Vaidyaratna Captain G. Sreenivasa Murti Avl., B. A., B. L., M. B. C. M., Principal, Government Indian Medical School, Madras. Those of you who are registered can enjoy the rights and benefits attached to it, and have a voice in shaping the future of Indian Medicine. You can also, as a registered body, fight for any common cause for the benefit of Medical Science and also carry on propaganda work by organisations, sub-committee meetings and discussions on medical topics. Let me take this opportunity of congratulating those that are already registered. I hope many of the others will be registered soon. I may venture to add that the Central Board of Indian Medicine is likely to consider the claims of those practitioners registered at present, if they happen to possess a special merit in the practice of surgery and midwifery to the satisfaction of the public for a number of years.

The Lines of Future Improvement.

It is my duty to sketch briefly the lines of further improvement of Indian Medicine under the following heads :—

A. Improvement in the theoretical knowledge.
B. Improvement in the practical knowledge.
C, Propaganda.
D. Research.

A. Regarding theoretical knowledge :

(i) All the Indian Medical Schools, both private and public should be amalgamated and affiliated to a central institute to be established. In all these Schools, Indian Medicine should be taught on modern lines, supplemented by a knowledge of other sciences. A hospital should be attached to each school.

(ii) Encouragement should be given to the Hereditary Ayurvedic Physicians by utilising their services in these hospitals and pharmacies attached thereto.

(iii) Government have to be requested for opening more schools and also colleges of Indian Medicine on up-to-date lines.

(iv) A Central University should be established for giving due recognition to Indian Medicine and its special branches, by conferring higher degrees and titles.

(v) Exhibitions of drugs, compound preparations and herbariums containing all varieties of herbs, should be opened in each district.

(vi) Medical Libraries may be opened and located at prominent places in each district.

B. Improvement of practical knowledge :

(i) The Local Bodies may utilise the services of the eminent and erudite Indian practitioners of the locality for preparing the best quality of medicines for the use of dispensaries in the district.

(ii) A special course should be started for the training of the nurses.

(iii) Village practitioners should be requested to publish such of the successful recipes with their mode of preparation and therapeutic actions so as to spread their practical knowledge for the benefit of the people.

C. Propaganda work :

(i) District Committees and Sub-Committees should be constituted.

(ii) Lantern lecture should be conducted in each village for educating the people and creating more faith in Indian Medicine.

(iii) District, taluk, and village medical conferences have to be held; and quarterly meetings should be arranged by the Vidyapeeth where scientific reports of value in various medical subjects sent by eminent Ayurvedic Physicians, have to be put for discussion and the same published in the vernacular journals of all provinces and also in English for circulation througout India.

(iv) Medical books in vernaculars relating to Indian Hygiene and Public Health should be arranged to be written by competitions and the best selected may be published and prescribed in Schools as Test-books.

D. Research :

(i) The Government are to be requested to open a Central Research Institute for Indian Medicine.

(ii) The Medical papers and journals now conducted in various places should be increased and edited and published on modern lines.

(iii) Committees have to be formed consisting of well-versed Indian Physicians and those proficient in Indian as well as other systems of medicine, for purposes of touring throughout India and abroad for gathering more information, and recording the same for the benefit of the profession.

Lastly I wish to thank you all for the patient hearing you have given me and I hope you will kindly co-operate with me in the further deliberations of the Conference.

* * *

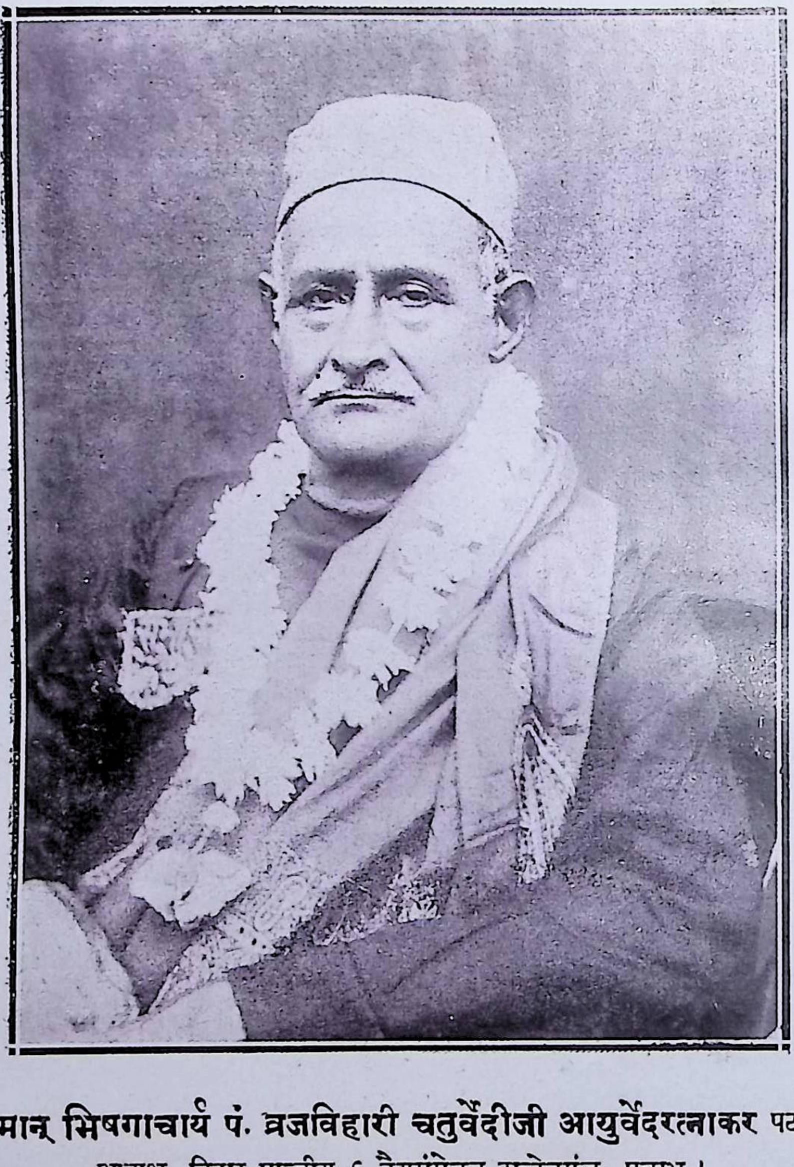

श्रीमान् भिषगाचार्य पं. व्रजविहारी चतुर्वेदीजी आयुर्वेदरत्नाकर पटना ।
अध्यक्ष, बिहार प्रान्तीय ६ वैद्यसंमेलन टाल्टेनगंज, पलाभू ।

बिहार

भिषगाचार्य

वैद्यरत्न, श्री पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी आयुर्वेद-रत्नाकर का

संक्षिप्त जीवन चरित

आयुर्वेद के उत्थान के लिये और भारतीय चिकित्सा-पद्धति को प्रतिष्ठित करने के लिये मिथिला प्रान्त के अन्तर्गत हाजीपुर नामक छोटे शहर में पण्डित व्रजविहारी चतुर्वेदी का जन्म हुआ। आप के पूज्य पिता पं० मोहनलालजी चतुर्वेदी कर्मकाण्डी सरयूपारी ब्राह्मण थे। पाँच वर्ष की अवस्था से आठ वर्ष की अवस्था तक आपने फारसी और कुछ अंग्रेजी पढ़ी। उपनयन संस्कार के बाद आपने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया और बारह वर्ष की अवस्था में पटना जाकर बिहार नेशनल कालेज के प्रोफेसर पं० रामनारायणजी से सात वर्षों तक सिद्धान्त-कौमुदी, परिभाषेन्दुशेखर, महाभाष्य, मुक्तावली, सांख्यतत्त्व-कौमुदी और साहित्य पढ़े। इसी बीच आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। अनन्तर आप काशी जाकर जम्बू-संस्कृत विद्यालय में चिकित्सा शास्त्र के मर्मज्ञ पं० सीतारामजी मिश्र से चार वर्षों तक अष्टाङ्ग आयुर्वेद का पूर्ण अध्ययन कर भिषगाचार्य हो गये और हाजीपुर लौट आये और वहाँ आपने अपना व्यवसाय (प्रैक्टिस) शुरू किया।

आरम्भ में आपने रुपये की कुछ परवाह न की। जो रोगी आपकी सेवा में आता उसकी चिकित्सा बड़ी सावधानी से करते थे। जिन रोगियों को डाक्टर महीनों की चिकित्सा कर अच्छे नहीं कर सके थे, उन्हें, डाक्टरों को चुनौती देकर आप अच्छा करने लगे। इस प्रकार आपकी निस्वार्थपरता, चिकित्सा की निपुणता, दरिद्रों के प्रति सहानुभूति, देश-सेवा, जाति-सेवा कार्य करने की अद्भुत शक्ति और तत्परता की कथा सर्वत्र फैल गई। सभी मुक्त-कंठ से आपकी प्रशंसा करने लगे। एक वर्ष के भीतर ही उनकी मासिक आय २००) रुपये की हो गयी।

संवत् १९५७ में कन्हौली रियासत से ६०) मासिक वेतन पर, सं० १९६० में मधुबन स्टेट से २००) मासिक वेतन पर, सं० १९६१ में रानी नरहन की तरफ से २००) मासिक वृत्ति पर, सं० १९६५ में श्रीमती राजवंसी कुअर अयोध्या की रानी साहिबा की तरफ से २५००) ढाई हजार सालाना वृत्ति पर तथा सं १९८० में महाराजाधिराज दर्भङ्गा नरेश की तरफ से २०००) मासिक वृत्ति पर आपकी बुलाहट आई; परन्तु स्वतन्त्र प्रकृति चतुर्वेदीजी ने कहीं जाना स्वीकार नहीं किया। कई बार महामना मालवीयजी ने चतुर्वेदीजी महोदय से बनारस विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग के प्रधान अध्यक्ष के पद को अलङ्कृत करने के लिये अनुरोध किया, पर आपने अति नम्रता तथा शिष्टता से पूज्य मालवीयजी की आज्ञा के पालन में असमर्थता प्रकट की है।

१५ वर्ष हाजीपुर में कार्य करने के पश्चात् पण्डित व्रजविहारी चतुर्वेदीजी अपने मित्रों के अनुरोध से १९१२ ई० में पटना आये और चिकित्सा कार्य करने लगे। छः मास के भीतर

सभी धनी, मानी, सेठ, साहूकार, जमीन्दार, राजा, महाराजा आपकी चिकित्सा से लाभ उठाने लगे।

हाजीपुर में आपने एक औषधालय स्थापित किया है और एक संस्कृत विद्यालय बनवाया है जिससे आयुर्वेद की अच्छी उन्नति हो रही है। आपको पढ़ाने का बड़ा व्यसन है। आपके पढ़ाये हुये ५७० वैद्य इस समय विहार को भूषित कर रहे हैं। स्वर्गीय पं० शिवचन्द्र मिश्रजी वैद्यराज आपके प्रधान शिष्य थे।

पटने में आकर आपने पण्डित-सभा की स्थापना की, जिसमें आयुर्वेद की परीक्षाओं की स्थापना हुई और प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का श्रीगणेश किया। ग० संस्कृत असोशियेशन में आयुर्वेद की मध्यमा और आचार्य परीक्षा जारी कराना आपही के उद्योग का फल है। आपही के अनुरोध से पटने में गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज खुला है जिसमें प्रिंसिपल आपके सुयोग्य पुत्र पं० हरिनारायणजी चतुर्वेदी हैं और सीनियर प्रोफेसर आपके प्रधान शिष्य पं० हरिनन्दन झाजी हैं। आपने गत भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिए औषध रूप में १२०००) रुपये दिये और सैकड़ों वैद्यों को इस कार्य के लिये नियुक्त किया था।

आयुर्वेद के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति, पुराण, षड्दर्शन तथा उपनिषद् में भी आपका अच्छा प्रवेश है। आपने आयुर्वेद पर एक नूतन पुस्तक लिखी है। सम्प्रति संस्कृत में मनोविज्ञान लिख रहे हैं। इनका लिखा शास्त्रतत्त्वेन्दुशेखर ग्रन्थ बड़ा मनोरञ्जक है तथा त्रुटिविवेक भी दर्शनीय है।

विहार प्रान्त में आयुर्वेद के प्रचार के लिये तन, मन, वचन और कर्म से जो उद्योग और कार्य आपने किये हैं, उनसे आपका नाम आयुर्वेद के इतिहास में अजर और अमर रहेगा। आपका प्रभाव जनता तथा विहार सरकार पर भी बहुत अधिक है। आशा है कि आपकी छाया में आयुर्वेद की दिनोदिन उन्नति होती जायगी।

* * *

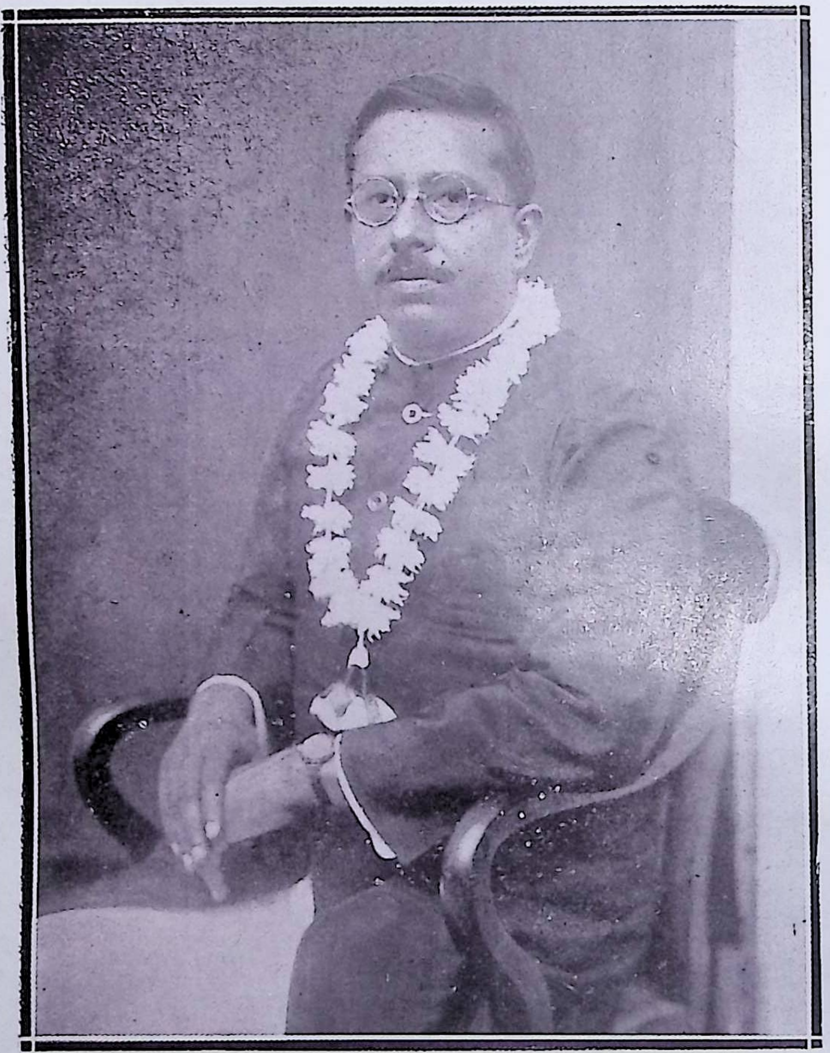

श्रीमान् भिषङ्मणि पं. हरिनारायण शर्मा चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य।
प्रीन्सीपल, गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज, पटना।

माधवनिदान की शारदानाम्नी संस्कृत-टीका-प्रणेता कविराज

श्रीयुत शारदाचरण सेन कविरत्नजी का

संक्षिप्त परिचय

आपका जन्म वंगदेशान्तर्गत फरीदपुर जिला के काशीयानी नामक ग्राम में हुआ है। आपने वर्धमान राजदरवार के विख्यात पंडित श्रीयुत हरिनाथ वेदान्तवागीश महोदयजी के पास व्याकरण-साहित्यादि अध्ययन करके कलकत्ते के तत्कालीन प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ कविराज अपने मातुल श्रीयुत कैलाशचन्द्र सेनजी के (कलकत्ता अष्टांग आयुर्वेद कालेज़ के वर्तमान प्रिंसपल श्रीयुत कविराज शिवनाथ सेन B. A., M. B. महोदय के पिताजी) के पास आयुर्वेद अध्ययन समाप्त किया। इसके पश्चात् कुछ दिन राजशाही शहर में रह कर चिकित्सा व्यवसाय भी किया। उस समय ही कविराजजी ने माधवनिदान की शारदानाम्नी संस्कृत टीका की रचना की। उसके बाद कविराजजी दरभंगा राज के महारानी रमेश्वर लता-विद्यालय में आयुर्वेद अध्यापक के पद पर नियुक्त होकर काम कर रहे हैं। बीच में कई वर्षों के लिये नेपाल राजदरबार के राज-वैद्य का भी काम किये हैं। कविराजजी बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन गया के सभापति निर्वाचित हुए थे। आप आयुर्वेद और दर्शनादि शास्त्र में भी विशेष पाण्डित्य रखते हैं।

॥ श्री दुर्गाशरणम् ॥

विहार-प्रान्तीय-सप्तम-वैद्य-सम्मेलन सभायां दरभंगा-महाराज लब्ध-प्रतिष्ठ कविराज

श्रीमत् शारदाचरण सेन कविरत्न सभापति महाशयस्य

अभिभाषणम्

शिवं स कुर्य्याद् भवतापहारी सदाशिवः सर्वरुजान्तकारी ।
यः सेवितः सद्य उपासकानाम् कामान् समस्तान् प्रददाति तुष्टः ॥ १ ॥
यस्याः सुराः सरस-गीतिगुणप्रवाहमाकर्ण्य मोदमतुलं दिवि संलभन्ते ।
सा भारती मलिन-मानस-पंकजेषु ज्ञान-प्रभाकर-करं चिरमातनोतु ॥ २ ॥

विद्यावयो वृद्धेभ्यो ब्राह्मणेभ्योनमः

अयि भोः ! विदांकुर्वन्त्वत्र भवन्तो विमल-विपुलधियः श्रीमन्तो विद्वांसः, यदत्र वितते विहार-प्रदेशे सन्ति भूयांसो यशः प्रभासमुद्भासित-दिङ्मण्डल-वैद्यशास्त्रविदो भिषजः ये किल सर्वथा अमुष्यां वैद्य-सम्मेलन-सभायां सभापति-पदमलंकर्तुं पारयन्ति, तथाप्यत्र श्लाघनीये परिषत्-पति-पदे मां नियोजयन्ति सन्तः । नियोगेनानेनानुगृहीतोऽहमात्मानं बहु मन्ये ।

ये महामतयो गुणसम्पदा शुभ्रं यशस्तन्वन्ति त एव सभापतिपदमध्यारोहन्ति, तथापि श्रीमतामार्य्यवर्य्याणां सद्भिषजां शासन-लंघनात्तेषामवधीरणा भवेदिति विचिन्तयता शंका-शंकित-चेतसा तच्छासनं सुकुमार-कुसुम-रचितं माल्यमिव विनम्रमौलिना मन्दमतिना मयोह्यते । तदत्र निसर्ग-सुन्दर-शुद्ध-मतयो मनीषिणो मधुकरा इव मधुबिन्दून् विरलानपि गृह्णन्तु गुणलेशान् ।

भगवन्नारायण चरणस्पर्शपरिपूता गयानगरी लोकप्रसिद्धैवास्ति, अत्रैव प्रदेशे बौद्ध-धर्म्मस्याभ्युदयकाले दिगन्त-विश्रान्तयशसां नृपाणां प्रयत्नेन विश्वविद्यालयः संस्थापितोऽभूत् । यत्र कुलपतयइव गुरवः प्रशान्त-चित्तानसंख्यान् शिष्यानध्यापयन्ति स्म । निखिलेषु प्राच्यभूमि-वलयेषूदीयमानार्करुचिं वितन्वन् अत्रत्यमहाविद्यालय एव विदुषां लोचन-लोभनीय आसीत् । इमां पुण्यभूमिं प्राप्य अस्याः प्राचीनसमृद्धिं स्मरामि, स्मरामि च तेषां ज्ञानतपोधनानाम् सौम्यमूर्तिं सर्वजीव-हितैषितां च येषाम् पुण्यवतां तत्त्वज्ञानं जगतीतले अद्यापि सतां चित्तेषु सन्तोष-सन्ततिमुत्पादयति । देवभूमिरियं पुनरपि तादृशैर्ज्ञान-विज्ञान-प्रभावैः पृथिव्यां परां प्रतिष्ठामियात् ।

ये महामतयः आयुर्वेदीय चिकित्सायामतीवनिपुणा आसन् येषाम् करुणामयीमूर्त्तिरातुराणां हृदये देदीप्यते तेषां परलोकनिवासिनाम् आरानिवासी सुगृहीतनामा ब्रह्मदेवमिश्राभिधानो महोदयः अन्यतम आसीत्, येनमहात्मनायुर्वेदस्याभ्युदयाय महानायासोऽङ्गीकृतः, हन्त ! करुणाविमुखेन मृत्युना स महात्मा हृतः, अतो नितरां शोक-सन्तप्तोऽहम् सर्वशक्तिमतः

परमेश्वरस्यान्तिके तस्य पारलौकिकीं सद्गतिं प्रार्थये, अन्येषामपि वैद्यशास्त्र-विदां परलोकमुपेयुषाम् कृते दुःखितोऽस्मि।

पाटलिपुत्रनगरे लब्धप्रतिष्ठ कविराज श्रीमद्राजमोहनराय महाशयः चिकित्सायां शुभहस्ततया स्वकीयैर्गुणैर्महामहिमान्वित इंराजराजेन वैद्यरत्न इत्युपाधिभूषणैर्विभूषितः, अनेन राजकीयसाम्मानेनाहम् परां प्रीतिमुपैमि।

आयुर्वेदस्य निरुक्तिः—

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते॥
अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः॥ अपि च

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्यहिताहितम्। मानंच तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते। इति चरकः।

आयुर्वेदस्य प्रयोजनम्—

आयुर्वेदोऽयमथर्ववेदस्याङ्गस्वरूपः मानवानां द्वितीयमुच्छसितमिव परमप्रयोजनीयः कथितः, यदाह सुश्रुतः—इहखल्वायर्वेदप्रयोजनम् व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्यस्वास्थ्यरक्षणञ्चेति। आयुर्वेदप्रसादादेव मानवाः स्वहिताहितं ज्ञातुं शक्नुवन्ति हिताहारविहारशीला निरामयं दीर्घजीवितञ्च लभन्ते। यदुक्तम्, चरके—

हिताशी स्यान् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
दृष्ट्वा बहुविधान् रोगान् बुद्धिमानहिताशनात्॥

भारतस्य सौभाग्यमायुर्वेदस्य प्राचीनत्वंच

आसीद्यदेयं विपुला धरित्री मोहान्धकारैः समावृता, तदा ज्ञान-प्रभाकर—किरणैर्भारत-भूमिरेव दिशो भासयन्ती विरराज। सर्वर्तु-शोभिता सुरसरिदसित-द्योतजाद्यनेक-पुण्य-तोय-तरङ्गिणी विधौत। पुण्य-भूमिरियं दर्शन-काव्य-ज्योतिष चिकित्साद्यमूल्यानि शास्त्र-रत्नान्यसूत, पुरा करुणा-प्रवणचेतसां तपोधनानाम् तथा शशिसूर्य-वंशावतंसानां भूपानामतिमात्र यत्नैः सर्वाणि शास्त्राणि समुन्नतेश्चरमशिखरमवापुः। ततः काले गते बहुतिथे भारतस्य दौर्भाग्यात् यदार्यकुलसम्भूत—ज्वलन्मणिमुकुट-शिरोनरपतयो यवनहृत-श्रियश्चाभवन्। तदा विधिनियोगात्तेजोविनाशपरिम्लानकान्तिरार्यगौरवरविरात्ययोधौ निममज्ज। आर्यद्वेषिणां केषाञ्चिद्यवननृपाणामहितकर्म्मणा बहून्यार्य-शास्त्राणि विलुप्तान्यभूवन्। किमधिकेन सहैवार्यराजश्रिया बहून्यार्यशास्त्राणि विलुप्तानि, यान्यवशिष्टानि इदानीमपि विद्यन्ते तान्यपि म्लानश्रीकाणि परिदृश्यन्ते। समुल्लसत्सु शास्त्ररत्नेषु आयुर्विज्ञानममूल्यंरत्नमिव प्रतिभाति, कुतः? "धर्म्मार्थ-काम-मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"। तत् पुनरायुर्वेदायत्तं च, उक्तञ्च सुश्रुते—अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकञ्च-श्रेयः। उक्तानि काव्यालङ्कारदर्शनशास्त्राणि भारतीयार्यजातेः प्राचीनतायाः तथा प्रथमसभ्यतायाः स्थानमित्यामनन्ति मनीषिणः। भारतीयायुर्विज्ञानमेव पाश्चात्यचिकित्साशास्त्रस्य मूलम्। तपोयोगर्द्धिमतां त्रैकालिक निखिलज्ञानशालिनां महर्षीणामायुर्वेदशास्त्रस्यानुत्तमत्वमभिसमीक्ष्य पाश्चात्यजातिभिररब-ग्रीकमिश्रदेशवासिभिः स्वस्वदेशभाषाभिरनूदितमायुर्वेदशास्त्रमशेषतः, ततः

समस्तपाश्चात्यदेशेषु विस्तीर्णं विजृम्भितं च इति प्रत्नतत्त्वविद्भिर्डाक्टर वाईज् प्रभृतिभिरुदीरितम् ।

"The Grecians obtained much of their knowledge from a mysterious nation of the east, which we have proved was the Hindu,... whose great progress in medicine.........was communicated through the Egyptian priesthood, to the philosophers of Greece."

Doctor Wise's History of Medicine

INTRODUCTION Page 49.

ये तावदार्य्यवर्य्या जगन्मण्डले सर्वेषां मानवानां ज्ञानगुरव आसन्, हन्त ! तद्वंशीया एव साम्प्रतम् परेषामन्तेवासिनः सञ्जाताः ।

आयुर्वेदस्याङ्ग-विभागः

शल्यं-शालक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम् , अगदतन्त्रम् , रसायनतन्त्रम् वाजीकरणतन्त्रमिति ।

अथास्य प्रत्यंगलक्षणसमासः—

तत्र शल्यंनाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थि बालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यन्त्र शस्त्र क्षाराग्निप्रणिधामव्रणविनिश्चयार्थञ्च, शालाक्यंनाम ऊर्द्धंजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ कायचिकित्सानाम सर्वांगसंश्रितानां व्याधीनां ज्वरातीसाररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥

भूतविद्यानाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाच बालग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्म्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥

अगदतन्त्रं नाम सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थम् विविधविषसंयोगविषोपहतोपशमनार्थम् ॥

रसायनतन्त्रं नाम वयस्थापनमायुर्मेधाबलकरं- रोगापहरणसमर्थंञ्च ॥ वाजीकरणतन्त्रं नाम अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तं प्रहर्षंजननार्थञ्च । एवमयमायुर्वेदोऽष्टांग उपदिश्यते ॥

अष्टास्वपि आयुर्वेद—तन्त्रेषु कायचिकित्सानाम तन्त्रम् शल्यतन्त्रं च प्रधाने भवतः । कायचिकित्सातन्त्रे ज्वरातीसारप्रभृतीनां प्रशमोपायो निर्दिष्टः । अपिच कुटीप्रावेशिकस्य तथा ब्राह्मादि नाना प्रकाराणां वातातपिकानां रसायनानां च प्रयोगं ऋषय ऊचुः । कलौ मानवा अल्पबलाः सुकुमाराः क्लेशं सोढुमशक्नुवानाः कुटीप्रावेशिकस्य रसायनस्य यथाविधि सेवां केनाप्युपायेन कर्तुं न शक्नुवन्ति । किन्तु अन्येषां ब्राह्मादिरसायनानामुपयोगं कर्तुमर्हन्ति । वैखानसा बालखिल्यादयो महर्षयः ब्राह्मरसायनस्य साद्गुण्येनामितमायुर्लेभिरे ।

वैखानसाबालखिल्यास्तथाचान्ये तपोधनाः रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः । मुक्ताजीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणंवयः । वीततन्द्राक्लम-श्वासा निरांतकाः समाहिताः ॥ मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रंतपोधनाः, ब्रह्मं-तपोब्रह्मचर्य्यं-चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥ रसायनमिदं ब्राह्मंमायुष्कामः प्रयोजयेत् । इति ब्राह्मरसायनम् ।

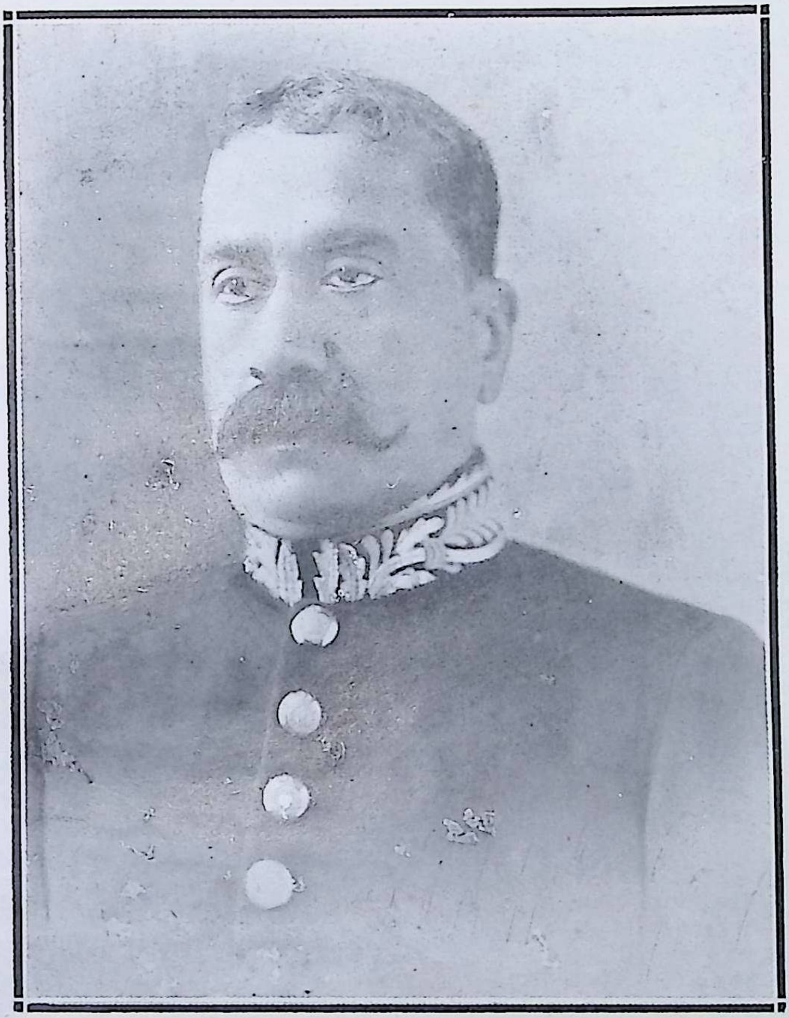

श्रीमान् आनरेबल रायबहादुर कृष्णसहायजी।
सिनियर एक्झीक्युटिव मेंबर गवर्नमेन्ट बिहार एन्ड उडीसा।
सभापति--बिहारप्रान्तीय २ वैद्यसंमेलन **पटना**।

चरक-सम्मत-चिकित्साप्रचारः—

यदा मानवानां तपोपवासाध्ययनादीनां विघ्नभूतारोगाःप्रादुर्बभूवुस्तदा दयार्द्रचित्ता महर्षयः प्राणिनामशेषदुःखजिहीर्षया हिमवतः पुण्यतमे पादप्रदेशे सम्मिलिता बभूवुः। तेच—अङ्गिरा जमदग्निश्च वसिष्ठः काश्यपोभृगुः। आत्रेयोगौतमः सांख्यः पुलस्तोनारदोऽसितः। परीक्षिर्भिक्षुरात्रेयो भारद्वाजः कपिञ्जलः। विश्वामित्रास्वरथ्यौ च भार्गवश्च्यवनोऽभिजित्। इत्यादयो महर्षयो ध्यानचक्षुषा शक्रं शरणं ददृशुः।

एतेषु महर्षिषु तीक्ष्णबुद्धिर्भरद्वाज इन्द्रभवनं गत्वा दीप्यमानमनलमिव सुरर्षिगण–मध्यगं सुरेश्वरमपश्यत्, धीमान् भरद्वाजः सुरेशं प्रत्युवाच–हे देवेन्द्र! सर्वप्राणिभयंकरा व्याधयः समुत्पन्नाः तेषां शान्तेरुपायं ब्रूहि। ततस्तस्मै पुरन्दरः सुस्थातुर–परायणमायुर्वेदं-प्रोवाच। अनन्तरमात्रेयमुनेः अग्निवेशादयः शिष्या अभवन्, ते पुनः स्वं स्वं तन्त्रं कृतवन्तः। महामतिश्चरकः अनुत्तमं चरकनामधेयं ग्रन्थं प्रणिनाय।

धन्वन्तरीयचिकित्साप्रचारः।

औपधेतव-वैतरण-सुश्रुतप्रभृतयःशिष्याः व्याधिभिः परिपीडितान् मानवानभिसमीक्ष्य तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमात्मनः प्राण-यात्रार्थञ्च काशीराजं धन्वन्तरिमुपसङ्गम्योचुः—भगवन्तमुपन्नाःस्मः शिष्यत्वेनेति, ततः परमकारुणिको भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुतादिभ्यः शिष्येभ्यः शल्यज्ञानं मूलङ्कृत्वा अष्टांगमायुर्वेदमभाषत। सुश्रुतसंहितायां मूढ़गर्भाश्मरीचिकित्सितं सर्वथा नैपुण्येन वर्णितम्। यं चिकित्साविधिं दृष्ट्वा युरोपीयविज्ञानदीक्षा शस्त्र-चिकित्सा-विशारदाश्च परं विस्मयं जग्मुः।

कलिकाता राजकीय मेडिकलकालेजाख्ये प्रवीणचिकित्साध्यक्षः डाक्टर चार्लस महोदय आयुर्वेद–सम्मतां मूढ़गर्भचिकित्साविधिम् अश्मरी-चिकित्सा-विधिञ्च जिज्ञासुः सुश्रुतसंहितायाः मढ़गर्भाश्मरी-चिकित्साध्यायस्य ईंगराजीभाषानुवादं ज्ञात्वा मूढ़गर्भशल्योद्धरण-विधिं नितरां प्रशशंस। तस्येदम् अभिमतं यदुक्तम् पण्डितवरेण उमेशचन्द्रेण—

> "Dr. Charles highly praised the process of delivery in difficult cases and even confessed that with all his great experience in midwifery and surgery, he never had any idea of the like being found in all the medical works that came under his observation."
>
> VAIDYAKA SABDA-SINDHU.
>
> *Preface page 36.*

यदुक्तं सुश्रुते

नातः कष्टतममस्ति यथा मूढ़-गर्भशल्योद्धरणमत्र हि योनि-यकृत् प्लीहान्त्रविवर-गर्भाशयानां मध्ये कर्म्म कर्तव्यं स्पर्शेन, इत्यादि। अन्तर्मृते शिशौ तत्र स्त्रियमाश्वास्य मण्डलाग्रेणाङ्गुलिशस्त्रेण वा शिरो विदार्य शिरःकपालानाहृत्य शङ्कुना गृहीत्वोरसि कक्षायां वापहरेदभिन्ने शिरसि चाक्षि-कूटे गण्डेवा अंससंसक्तस्य अंसदेशे बाहुं छित्वा दृतिमिवाततम् वातपूर्णोदरं वा विदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेज्जघनसक्तस्य वा जघन-कपालानीत्यादि। न केवलं ते शारीर-तत्त्व-विदो भारतीया मूढ़गर्भचिकित्सायां निकामं नैपुण्यमापुः। परन्तु छिन्नकर्ण-हीनौष्ठ नासिकानामपि अङ्गवैकल्यमपनिन्युः। पुरा शस्त्र-चिकित्सा विद्यासमुन्नतेः पराकाष्ठामवाप।

प्राक् प्रज्ञापराधजा रोगा न आसन् ; तदा विजिगीषवो बलोद्धता राजानः शस्त्रेण परस्परमभिक्राम्यन्ति स्म । तेषां देहात् शल्यमुद्धर्तुं व्रणरोपण—बन्धनाय च शल्यतन्त्रस्य प्रयोजनमन्वभूत् । प्राचीनभारते अभियानं कुर्वतः शत्रून् जिगीषतः युक्तसेनस्य नरपतेर्गन्तव्यं पन्थानं सलिलंयवसन्नम् तरुच्छायामिन्धनञ्च शत्रव विषयोगेनावदूषयन् । अष्टाङ्गायुर्वेद-विशारद-वैद्या यवेन्धन-सलिलादीनां संशोधनाय तथा विषान्न-सलिलादिभ्यो राजानं सैनिकाश्च रक्षितुं सर्वात्मनायततन्त । वैद्यशास्त्रे शारीरविज्ञानं तथा प्रत्यक्षतोऽङ्ग-प्रत्यङ्ग-विनिश्चयार्थं शवच्छेदविधानं नास्तीति वहवो मन्यन्ते । अनभिज्ञानामप सिद्धान्तोऽयम् ॥ सुश्रुते दृश्यते—त्वक्पर्य्यन्तस्यदेहस्ययोऽयमङ्ग विनिश्चयः । शल्यज्ञानादृते नैष वर्ण्यतेऽङ्गेषु केषुचित् ॥ तस्मान्निःसंशयंज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता, शोधयित्वा मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः । तस्मात् समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घ-व्याधि-पीडितमवर्षशतिकम् निःसृष्टान्त्र पुरुषमवहन्त्यामापगायां निबद्ध-पञ्जरस्थं मुञ्ज-वल्कल-कुश-शनादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गमप्रकाशे देशे कोथयेत् सम्यक् , प्रकुथितञ्चोद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्रादुशीरबाल-वेणु-वल्कल-कुचीनामन्यतमेन शनैः-शनैरवघर्षयन् त्वगादीन् सर्वानेव वाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्ग विशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा ।

आयुर्वेदस्यावनतिः ।

बहवो विपश्चित ईदृक् समुन्नत वैद्यशास्त्रस्याधःपतने वक्ष्यमाणानि कारणानि मन्यन्ते । यदा बौद्धधर्म्मस्य प्राधान्यं बभूव तदा अहिंसा परमोधर्म्म इति मन्त्रमुपासीना 'माभूत् कदाचिदङ्गे शस्त्रोपचारात् हिंसा' इति मन्यमाना शस्त्रचिकित्सां परितत्यजुः ।

अन्यच्चकारणम् ।

शवच्छेदमन्तरा मर्म-शिरा-स्नायु-धमनी प्रभृतीनां ज्ञानं किञ्चिदपि कोऽपि न लभते । शवस्पर्शात् स्नानं प्रायश्चित्तञ्च विधीयते ; अतः प्रायश्चित्त भयात् केऽपि हिन्दूधर्म्मावलम्बिनः शारीर-पदार्थ-दर्शनार्थं मृतं नस्पृशन्ति स्म । अतोऽज्ञात-शिरा-स्नायु-मर्म-सन्धि-वैद्या आतुरस्यात्यय-भयात् शस्त्रोपचारं नाकुर्वन् ।

चिकित्साफलम् ।

यः खलु पुरुषः गुरुसन्निधौ निरन्तरं वैद्यशास्त्रस्य पद-पाद-श्लोकार्द्धश्लोकमधीत्य चिकित्साविधिञ्च दृष्ट्वा चिकित्सत्यातुरान् स वैद्य इति नाम्नासद्भिरभिधीयते, चिकित्साकर्म्मणि रुगर्दितानां रोगानपनीय विपुलं पुण्यं संचिनोति, धनञ्च प्राप्नोति । परलोके च सुरसुन्दरीभिः सादरं परिगृह्यते । यः अनधीत शास्त्रः अदृष्टकर्म्मा स केवलमर्थलालसया अयुक्तियुक्तं भेषजं दत्वा आतुरमतिपातयति । शास्त्रोक्तानि महामेदादीनि कानिचिद्भेषजानीदानीं न लभ्यन्ते । यदिनाम कश्चिदुत्साह-शीलउत्तमगुण पुरुषः महामेद-जीवकर्षभादीनां परिचयाय परं प्रयत्नमाधरो तर्ह्यतिवीर्यवतां बहुभेषजानामनल्पेनायासेन प्राप्तिर्भवितुमर्हति, तन्यौषधानि हिमगिरौ जायन्ते, श्री ३ महाराजमहोदयस्य चिकित्सकरूपेण नेपालराजधानी काष्ठमण्डपनगरमध्युषितेन मया प्रागुक्तानिभेषजानि बहून्यवलोकितानि । वैद्यशास्त्रस्योन्नतेरुपाया वक्ष्यमाणा निर्दिश्यन्ते । (१) आयुर्वेदीयविद्यालयस्थापनम् (२) पुस्तकागार स्थापनम् [यत्र सर्व्वदेश प्रचलितानां हस्तलिखितानां प्राचीनवैद्यक-ग्रन्थानां संग्रहः] (३) शास्त्रोदित गुणोपेताध्यापकः (४) विनय मेधा-धृतिस्मृतिप्रतिपत्त्यादियुक्तः शिष्यः (५) युरोपीय चिकित्सा विज्ञानवित् आयुर्वेदाध्यापकः

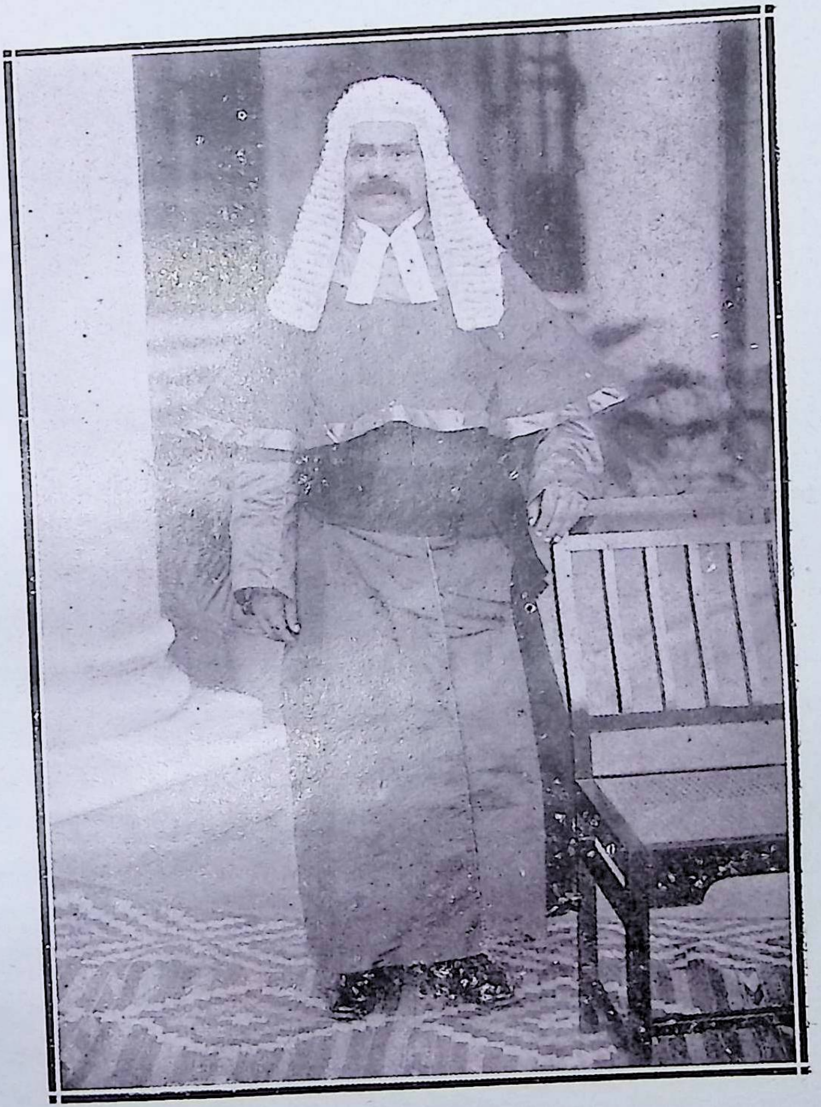

श्रीमान् आनरेबल जस्टिस सर ज्वालाप्रसादजी, एक्टिंग चीफ जास्टिस **पटना** हाइकोर्ट।
सभापति - विहारप्रान्तीय ३ **वैद्यसंमेलन आरा**।

(६) भैषज्योद्यान स्थापनम् (७) आतुराश्रमप्रतिष्ठा (८) नाना विधानां यन्त्र-शस्त्रादीनां संग्रहः (९) प्राचीनरीत्यायुर्वेदाध्यापनम् (१०) चिकित्साकर्म्मणि यूरोपीय नवाविष्कृत यन्त्रादीनां व्यवहारस्तेषां तत्त्वविज्ञानञ्च (११) शवच्छेदेन शारीरयन्त्रादीनां शिराधमनी प्रभृतीनां प्रत्यक्षतोदर्शनम् (१२) भिषजां शास्त्रालापनम् चिकित्सारीतिकर्म्म-फल-प्रचारश्च (१३) शिष्यगुणान्वितायान्तेवासिने वृत्तिप्रदानम्। संक्षेपत इमे उपाया निर्दिष्टा उक्तस्यास्य कर्म्मणः सिद्धिरमिततेजसो राज्ञः करुणामसृण- कटाक्षपातं विना तथा विपुल-धनानां महात्मनां स्वार्थत्यागमन्तरेण भवितुं नार्हति अतः सर्वैरेव भारतवासिभिः सर्वात्मना वैद्यशास्त्रस्याभ्युदयाय यतितव्यम् ।

भारते विन्ध्य-हिमाद्रि प्रभृति-नगरनिकुञ्जे कातिनामनंनस्य मानालता-मञ्जुल-मञ्जुलैः फलकुसुमैः परिशोभिताः परिदृश्यन्ते । उद्यानभूमिश्च नानाविधैः कुसुमस्तवकावनम्रैर्वनस्पतिभिरलङ्क्रियते, सरांसि च इन्दु-करोद्भिन्न-कुमुद-कह्लारादिभिः परिशोभन्ते । विकचनलिनानिच सतां चेतांसि रञ्जयन्ति । नानौषध-सम्पन्ना शस्यश्यामला भारतभूमिरियं विलोल-माल्य-वसना वनदेवतेव लोक-ललामभूता प्रतिभाति। उक्तञ्च चरके "ओषधीनां पराभूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः" भारतस्येदृक् सौभाग्ये विद्यमानेऽपि हन्त ! भारतीया भेषजलिप्सया शुष्क-कण्ठ-चातक इव सागरे परदेशादागच्छन्तम् औषध-पूर्णं पोतंविलोकयन्ति, इतः किमस्त्यधिकं सन्ताप-कारणम् ? इंराजराजः यदि आयुर्वेद विद्यालयं स्थापयित्वा तत्र शारीरतत्त्वं तथास्थिविद्या Anatomy प्रभृतीनां शिक्षाप्रदानेनायुर्वेदशिशिक्षून् निःशेषे आयुर्वेदमष्टाङ्गं शिक्षयेत्, रोगिणां रोगोपशमाय अन्तेवासिनां रोगविज्ञानाय कर्म्माभ्यासार्थं च आतुराश्रमं Hospital संस्थापयेत्, अधिकन्तु यूरोपामेरिकाप्रभृति सभ्यदेशेषु नवविष्कृतं चिकित्सा-विषय-ज्ञानं च शिक्षयेत् तर्हि परमार्थतः विद्यार्थिनः वैद्यशास्त्र-सागरं पारयेयुः ।

पाटलिपुत्रनगरे पाश्चात्यायुर्विज्ञानशिक्षायै पाठशाला विद्यते तत्र पुनः प्रधान चिकित्सा विद्यालयः Medical College अचिराद् भविष्यतीति श्रूयते, दरभंगा नगरेऽपि प्रतीच्यचिकित्साविद्यालयो भविष्यति । किन्तु आर्यचिकित्सा-शास्त्रस्य शिक्षाप्रदानाय राजपुरुषाणां कापि चेष्टा न लक्ष्यते, अतोगुणग्राहिण इंराजराजस्य सविधे इयमेवास्माकं प्रार्थना—विहार प्रदेशेऽपि राजानुग्रह परिचालितायुर्वेद विद्यालयो भवतु । इदानीमपि यत्ने कृते भारतान्नास्तं गमिष्यत्यायुर्वेद शास्त्रम् । आर्य्याणां स्वदेशजं भेषजं नितरामनुकूलम् उक्तञ्च "यस्यदेशस्य योजन्मी तज्जं तस्यौषधं हितम्" तीव्रवीर्यं परदेशजं अखिलं भेषजं सर्वदा सर्वथा भारतवासिनां सुखाय न सम्पद्यते ।

अमेरिका देश-निवासी चिकित्साशास्त्र विशारदः डाक्टर क्लर्क महोदयश्च चरकानुमतं चिकित्सा विधानं नितरां प्रशशंस ।

तस्येयमुक्तिः

"If the physicions of the present day, would drop from the pharmacopia, all the modern drugs and chemicals and treat their patients according to the methods of Charak, there would be less work for the undertakers and fewer chronic invalids in the world."

Dr. clarke.
M. A., M. D.

अस्या भावार्थः—यदि नाम इदानीन्तनाश्चिकित्सका वर्तमान चिकित्सा-विधिं परित्यज्य चरकानुमतां चिकित्सा पद्धतिमवलम्ब्य चिकित्सन्ति तर्हि पृथिव्यां सुदीर्घ-व्याधिपीड़ितानां संख्याबाहुल्यं लघुतां व्रजेत् तथा वैद्यानामपि श्रमलाघवं स्यात् ।

साम्प्रतं स्वदेश-सेवा-व्रत-दीक्षितानां सज्जनानां स्वदेशजे वसने यादृगनुरागो दरीदृश्यते यदि ताम् भारतवर्षजे भैषज्ये भारतीयानां तादृगनुरागो न जायते तर्हि वैद्यशास्त्रस्य पुनरभ्युत्थानं सूदूर-परा हतमिति मन्ये । विगत-हर्षस्य भारतवर्षस्य हिताय मानधनैरार्यवर्य्यैमहाजनोदितं वचनमिदमनिशं स्मर्त्तव्यम् तद् तथा "—नमहानिच्छति भूतिमन्यतः" । इति

हर्षप्रकाशः—

यतः प्रभृति श्रीर्भारतराजलक्ष्मीः प्रकर्षतन्त्रस्य इंगराजराजस्य अङ्कमलञ्चकार ततोऽद्यावधि भारतीय चिकित्साशास्त्र राजानुत्साह हत-प्रभमासीत् , दिष्टया सम्प्रति भारत-शासक-सम्प्रदायस्य वैद्यचिकित्साया उन्नतिविधौ प्रीतिस्निग्ध-दृष्टिर्निपतिता । यतो दिल्लीनगरे आयुर्वेदीय विद्यालयः संस्थापितः ततोऽनन्तरम् मुजफ्फरपुरे संस्कृतविद्यालये आयुर्वेदस्याध्यायना विधौ वैद्यशास्त्रस्याध्यापकोनियोजितः ।

महानयं हर्षविषयः यत् मिथिला-महाराजाधिराजः श्रीमान् रमेश्वरसिंह विक्रान्तोऽपि स्वकीये रमेश्वरलता विद्यालये आयुर्वेदस्य स्थानं दत्तवान् , अधीयतेच तत्र बहवोव्युत्पन्ना अन्तेवासिनः । श्रूयतेच इंगराजराजस्यादेशेन पूर्तकार्य्य—निर्वाहक—समितिः District Board तथा पत्तन-परिमार्जन-समितिः Municipality मूल्यंविनौषधस्य प्रदानाय । नगरे-नगरे आयुर्वेदीय चिकित्सालयं स्थापयितुमादिदेश, अतो भारत-साम्राज्यमुद्दिश्यासंख्यं धन्यवादं ददामि ।

"प्रवर्त्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः, सरस्वती श्रुति-महतीनहीयताम्"

आपत्पयोधौ दिनकृन्निमग्नः यथा प्रभाते पुनरेति लक्ष्मीम् ।
तथा ह्ययं वैद्यक-शास्त्र-सूर्य्यः प्राज्यांशुजालैः पुनरेव भायात् ॥

शिवमस्तु

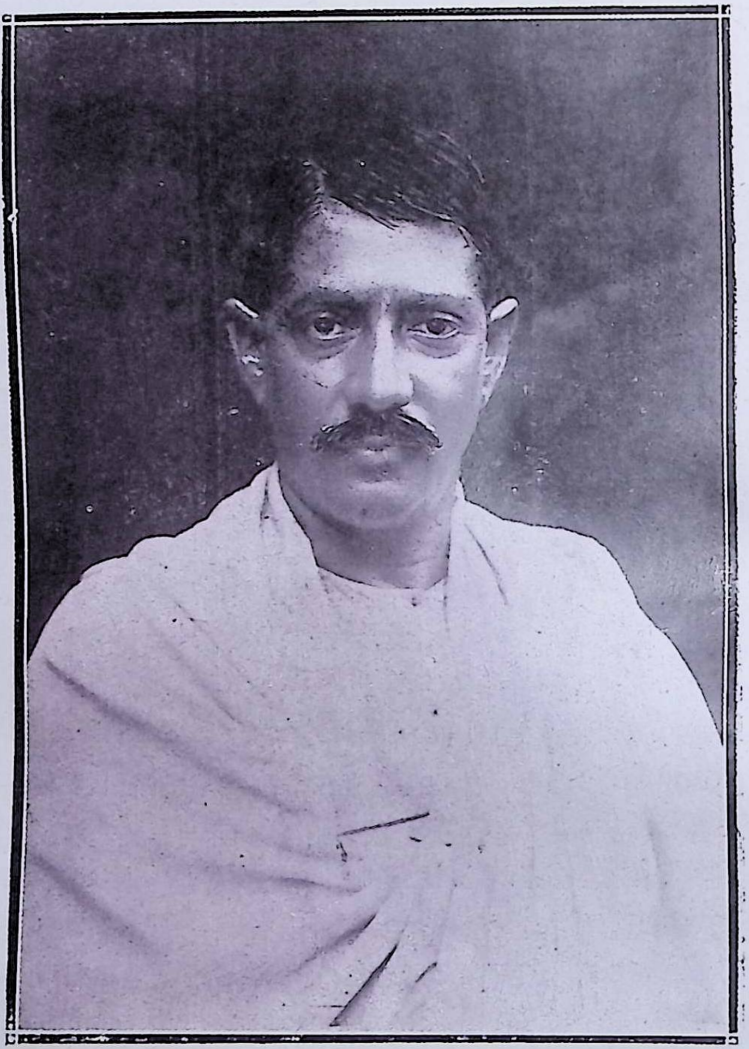

श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री विधु भूषणसेन
काव्यव्याकरणतीर्थ, कविरत्न (पटना)।
अध्यक्ष–बिहारप्रान्तीय १२ वैद्यसंमेलन, हाजीपुर।
प्रधान संपादक, बिहारप्रान्तीयवैद्यसंमेलनपत्रिका।
अध्यापक, गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज, पटना।

विहार प्रान्तीय द्वादश वैद्य सम्मेलनाधिवेशन के सभापति और विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक

आयुर्वेदाचार्य्य कविराज श्रीयुक्त विधुभूषण सेन, काव्य-व्याकरण-तीर्थ, कविरत्न महोदय का

संक्षिप्त जीवन चरित

कविराज श्री विधुभूषण सेन जी १९२६ ई० से विहार की राजधानी पटना में गवर्नमेंट आयुर्वैदिक महाविद्यालय में अध्यापन का कार्य्य और चिकित्सा व्यवसाय कर रहे हैं। इससे पहले आप १२ वर्ष तक दरभङ्गा राज संस्कृत कालेज के आयुर्वेद अध्यापक के पद पर नियुक्त रह कर चिकित्सा वृत्ति भी सम्पादन करते थे।

उसी समय आपने १९२० ई० में "सांसर्गिक रोगाणां संक्रमणप्रकारः" । नामक संस्कृत भाषा में पुस्तक लिखकर विहारोत्कलसंस्कृत समिति से प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था, पुनः आप १९२४ ई० में "वेदानामनादित्व विचारः।" और "आयुर्वेदस्योत्पत्तिक्रमः।" नाम से दो निबन्ध लिखकर दोनों ही के लिये पुरस्कृत हुये थे। उक्त समिति से अब तक और किसी व्यक्ति ने एक ही साल में दो पुरस्कार नहीं पाया है।

छात्रावस्था में कविराज जी ने बनारस, कलकत्ता और मुर्शिदाबाद प्रभृत्ति स्थानों के प्रसिद्ध विद्वानों से संस्कृत व्याकरण, साहित्य और दर्शनादि अध्ययन कर भारत-विख्यात कविराज महामहोपाध्याय श्रीयुक्त विजयरत्न सेन जी के पास प्रायः ७ वर्ष रहकर आयुर्वेद का यथोचित अध्ययन और कर्माभ्यास किया है। उस समय कविराज जी गुरु जी के साथ और स्वतन्त्र रूप से भी चिकित्सा कार्य्य के लिये हेतमपुर, टिकारी और काश्मीरादि राजदरबारों में गये थे।

छात्रावस्था में भी कविराज जी ने गवर्नमेन्ट से दो बार और अन्यान्य संस्थाओं से भी बहुसंख्यक वृत्ति और पुरस्कार पाये हैं।

आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक-चूड़ामणि, वैद्यरत्न

श्री पं० चन्द्रशेखरधर शर्मा मिश्र, कवीन्द्र महोदय का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

विद्यालङ्कार चिकित्सक चूड़ामणि कवीन्द्र पं० श्रीचन्द्रशेखरधर शर्मा (मिश्र) आयुर्वेदाचार्य, वैद्यरत्न महोदय जी सरयू-पारीण ब्राह्मणों के एक सर्वश्रेष्ठ पाङ्क्तिकुल में रत्नमाला पो० बगहा (चम्पारन) में उत्पन्न हुए हैं। सम्प्रति ७५ वर्ष की अवस्था में अब लोलार्क कुण्ड भदैनी में काशी वास कर रहे हैं। आप संस्कृत और हिन्दी के उच्च कोटि के पण्डित और सत्कवि हैं और आपने यज्ञाङ्ग प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। सन् १९१९ में महाराजाधिराज दरभङ्गा के सभापतित्व में सैकड़ों पण्डित सत्कवियों में केवल आपने ही तुरन्त "विजयते सकलः सकलो जनः" इस जटिल समस्या की प्रशंशित पूर्तियाँ की थीं। और महाकवि पण्डितों ने भी पूर्तियाँ की थीं पर नियमानुकूल शेष ३ चरणों में 'यमक' न आए। आपकी अत्युत्तम पूर्तियों में से एक यह है—

"न समयं समयञ्च जहाति यः सुमहितेन हितेन समन्वितः।
परमया रमया सकलङ्कृतो, विजयते सकलः सकलो जनः॥"

विहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना के १९२४ में आप सभापति थे— "विद्याधर्म बर्द्धिनी" सभा के आप संवत् १९४० से जन्मदाता हैं जिसका अब एक रूपान्तर "सरयूपारीण महासभा" और पक्ति महामण्डल है। आप गोरखपुर आदि जिलों की कई बार सरयूपारीण सभाओं के सभापति रहे हैं। संवत् १९४५ से बिना दाम ही आपने हिन्दी में विद्या-धर्म दीपिका नामक मासिक पत्रिका निकाल कर १९६२ तक वितरण की है। संवत् १९५६ से आपने आयुर्वेदिक श्री चन्द्रोदय औषधालय में नियमित रूप से आयुर्वेदीय औषधदानालय खोल रक्खा है, जिसमें प्रति वर्ष बीसों हजार रोगियों को बेदाम औषधि और असमर्थों को भोजन भी देते हैं। इसके प्रेसिडेण्ट जिला के कलक्टर और एस० डी० ओ० हैं। आपने जलोदर, मस्तिष्क, वृद्धि, पाण्डु, शोथ, ज्वर, मधुमेह, सूजाक (स्ट्रेक्चर) प्रदर आदि असाध्य रोगों की अद्वितीय अवश्य आरोग्य कर औषधियों का आविष्कार किया है, जिससे आरोग्य पाए रोगी तीसों वर्ष से पूर्ण स्वस्थ जीवन बिता रहे हैं। यद्यपि आपके विषय में और बहुत प्रशंसनीय बातें एवं प्रतिष्ठित राजा महाराजाओं विद्वानों तथा सिविल सर्जन आदि चिकित्सकों के प्रशंसा-पत्र देने का स्थान नहीं है, तथापि महामना मालवीय जी के सभापतित्व में कलकत्ते के महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती M. A., L. M. S., विद्यासागर आदि अतीव प्रतिष्ठित चिकित्सक (डाक्टर) और नागरिकों ने जो आपको सम्मान-पत्र दिया है, उसकी प्रतिलिपि के हिन्दी अनुवाद का कुछ अंश यहाँ देना आवश्यक है। "...पूर्व समय में मुनिजनों ने अपनी तपस्या के बल से स्वयं सुरपुर जाकर जिस जरामरणनिवारक अमृत को पाया और समाप्त भी कर दिया। उसी अमृत को इस समय करुणा कर के आपने सम्पूर्ण जनता के हितार्थ "उदुम्बर सार" के नाम से आविष्कृत किया है, जो शस्त्र-चिकित्सा (सर्जरी) और शरीर-चिकित्सा में महोपयोगी हो रहा है, इसलिये श्रीमान् के इस परोपकार को स्मरण करती हुई यह कृतज्ञ हृदया चिकित्सक समिति श्रीमान के समीप यह सम्माम-पत्र को सादर देती हुई अपने को धन्य और कृतार्थ समझती है" इति।

आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सकचूड़ामणि, वैद्यरत्न, गूलर-गुणाविष्कारक,

श्रीमान् पं० चन्द्रशेखरधर शर्मा मिश्र, चम्पारन ।

सभापति—बिहारप्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन, आरा ।

बिहार प्रान्तीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलन आरा (शाहाबाद) के सभापति रत्नमाला—
(बगहा, चम्पारन) निवासी आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक-चूड़ामणि, वैद्य-रत्न

पं० श्रीचन्द्रशेखरधर शर्मा मिश्र, कवीन्द्र महोदय का

अभिभाषण

श्रीगणपते नमस्तुभ्यम् । ॐ नमः शिवाय ॥

सकलया कलया सदसस्सदा, सुमनसाम्मनसाम्भिषजां शुभम् ।
शुचि समीहितदो हितदोऽनिशम् , सफलताम्फलताञ्च सदाशिवः ॥
प्रणति सन्नतिरस्तु कृपाकृते, सकलवैद्यविदामधिभूभृते ।
अविरतज्जगतीहितसम्पदे, जनतयानतयाऽर्थितसम्पदे ॥

१—आयुर्वेदज्ञों की वन्दना

आज तक जितने मान्य सज्जनवृन्द शुद्धान्तःकरण से आयुर्वेद वा चिकित्सा विज्ञान की उन्नति-कामना वा सेवा करते आये हैं, उन्हें मेरा सत्य और सर्वान्तःकरण से सविनय सादर शतशः सन्नति है । और उन प्राचीन आचार्यों ने जब कुछ कहे हैं—उपदेश किये हैं, एवं मध्यसामयिक महात्माओं ने जो कुछ हमारी उन्नति के अर्थ यत्न किये हैं—उपदेश दिये हैं, वे सभी मेरे स्तुति-पात्र हैं । तथा इधर वर्तमान समय के हमारे चिकित्सा-विज्ञान के उन्नायक महोदयगण भी मेरे स्तुति भाजन हैं, जिनमें कई एक महोदयों का नामोल्लेख कर देना हमारी कृतज्ञता है । जैसे जगत्पूज्य महामना पण्डित श्रीमदनमोहन मालवीयजी जिनकी सर्वतोमुखी सर्वहितैषिणी, लोकोपकारिणी प्रतिभा और विचित्र कार्यकारिणी शक्ति का प्रधान फल हिन्दू-विश्वविद्यालय और उसमें अतीव उच्च कोटि के आयुर्वेद-महाविद्यालय (कालेज) तथा औषध-वितरणालय एवं रोगिशाला की स्थापना है । अखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन के सभापति भी रहे हैं । यही नहीं, बाल्य समय से ही आपका आयुर्वेदीय औषधियों पर इतना अगाध अनुराग है कि अद्यावधि वे अन्य औषधियों का उपयोग नहीं करते हैं । फिर इसी प्रकार के आयुर्वेदोन्नायक एवं मेरे स्तुति-पात्र महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथसेन सरस्वती, एम० ए०, एल–एम० एस० विद्या-सागरादि पदवी विभूषण हैं जिन्होंने संस्कृत आदि भाषाओं में ‘प्रत्यक्षशारीर, सिद्धान्तनिदान’ आदि ग्रन्थ प्रणयन से आयुर्वेद के अष्टाङ्ग में विकलाङ्ग को परिपूर्णाङ्ग किया है और अपनी असाधारणी प्रतिभा से चिकित्सकोपदेश तथा कलकत्ते में अपने लाखों रुपये के व्यय से सर्वाङ्गपूर्ण विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय (कालेज) स्थापित कर दिये हैं, जिसमें रोगियों को केवल बिना मूल्य औषध ही नहीं दी जाती हैं, प्रत्युत भोजन और रहने का स्थान भी दिया जाता है । आपका जन्म सर्वतोभाव से आयुर्वेदोद्धार के लिये हुआ है ।

इसी प्रकार कलकत्ते के कविराज यामिनी भूषणराय, एम० ए०, एम० बी० भी हमारे स्तुति के पात्र हैं, जिनके प्रयत्न और लाखों रुपये धन से कलकत्ते में अष्टाङ्ग आयुर्वेद महाविद्यालय (कालेज) कई वर्षों से स्थापित हो अतीव उन्नत अवस्था में चल रहा है। योंही कलकत्ते के अंगरेजी भाषा के प्रसिद्ध डाक्टरी पत्र 'इण्डियन मेडिकल रिकर्ड' के स्वागत सम्पादक कविराज ए० सी० विशारद भी हमारे स्तुति भाजन हैं, जिनका निकाला 'आयुर्वेद जरनल' नाम का अंगरेजी मासिक पत्र अब तक आयुर्वेद का गौरव बढ़ा रहा है। आपने अपने भाषणों और लेखों से गूलरपत्र-विज्ञान की बड़ी ही उन्नति की है। इधर विहार के आयुर्वेद के उन्नायकों में प्रधान हाजीपुर–पटना–निवासी पं० ब्रजविहारी चौबे भी मेरे स्तुति भाजन हैं। आपने समय-समय पर आयुर्वेद के अनेक संकट काटे हैं और उसकी उन्नति भी की है। इसी भाँति अनन्य प्रतिभा, देश-सेवा-भाव-सम्पन्न संस्कृत एवं आयुर्वेद के असाधारण विद्वान् और सुवक्ता, मुजफ्फरपुर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के आयुर्वेद प्रोफेसर स्वर्गगत पं० शिवचन्द्र मिश्र भी हमारे स्तुति पात्र हैं। विहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के भी आप प्राणरूप रहे हैं।

सम्प्रति छपरा-भारतेश्वरी-मारवाड़ी-संस्कृत-महाविद्यालय के प्रोफेसर, अनेकशास्त्रवेत्ता सत्कर्मधर्मधुरीण पं० श्यामनारायण चतुर्वेदी भी हमारे स्तुति भाजन हैं। इसी भाँति आयुर्वेद की उन्नति में सहायक, मालवीयजी के साथ चन्दा-संग्रह करने के लिये घोर परिश्रम पूर्वक प्रयत्नकारी, मुज़फ्फरपुर के वैद्य सम्मेलन के सभापति, भूमण्डल विदित धर्मप्राण विद्वान, अनेक सत्पदवी सदलङ्कार स्व० सर श्रीरमेश्वरसिंहजी महोदय, दरभङ्गा नरेश भी मेरी स्तुति के पात्र हैं। पुनः 'सुधानिधि' आदि पत्रों के द्वारा तथा वैद्य सम्मेलनों की दृढ़भित्ति स्थापन करने एवं अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदीय विद्यापीठ परीक्षादि का क्रम स्थापित करने के कारण प्रयाग-निवासी पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, राजवैद्य भी हमारी समुचित स्तुति के सुयोग्य भाजन हैं। आप हमारे अनुरक्त आत्मा के आन्तरिक उपकारक एवं अनुग्रहकर्ता हैं।

इसी भाँति बम्बई के पण्डित यादवजी ने भी आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थोद्धार और उपकार किये हैं। और, पण्डित हरिनारायण चतुर्वेदी (प्रिंसिपल गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना) एवं पं० श्रीकान्त शर्मा भी मेरे स्तुति-भाजन हैं, जिनके सतत यत्न से इस बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का संचालन हो रहा है। तथा, आयुर्वेद के असाधारण विद्वान् कविराज विधुभूषण सेन (प्रोफेसर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, पटना) भी मेरे स्तुति भाजन हैं, जिन्होंने वैद्य सम्मेलन का अब तक संचालन किया है। इसके अतिरिक्त पं० रामदेव शर्मा आदि भी, जिन्होंने आयुर्वेद के प्रचार से जनतोपकार किये हैं और कर रहे हैं, सभी हमारे उपकृत आत्मा के स्तुति पात्र और आशीर्वाद एवं सहस्रशः धन्यवाद के भाजन हैं। आप सब लोग अपने उद्योग और अपने भाषण तथा ग्रन्थों से जो जनता के उपकार कर गये हैं और कर रहे हैं, उसे हमें अपने समक्ष रख तदनुसार उन्नति-पथ पर अग्रणी होना चाहिए। यद्यपि सम्प्रति ऐसे बहुत से आवश्यक विषय हैं और बहुत से हमारे कर्तव्य हैं, एवं बहुत से उत्तरदायित्व के कार्य हैं; पर सम्प्रति इनमें जो अतीव आवश्यक से भी आवश्यक हैं और जिन विषयों पर अपेक्षाकृत बहुत कम प्रकाश पड़ा है, हम आज उन्हीं विषयों पर कुछ उचित विनय करेंगे। सज्जन क्षमा करेंगे।

२—धर्म तथा नीरोगता

चिकित्सा विज्ञान में आज कल अब डाक्टर लोग भी अधिकांश रोगों को 'जर्म या

जीवाणु' और इनके समावेश 'छूत' से उत्पन्न मानते हैं, जिन्हें हमने अपने 'स्वास्थ्य-विज्ञान' आदि निबन्धों में 'रोगाणु' के नाम से सिद्ध किया है। जैसे वाग्भट लिखते हैं—

स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशोगदाः ।
सर्वे संक्रामिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥

"अर्थात् छूने से, एक ही स्थान-पात्रादि में भोजन करने से, एक ही स्थान में बिछौने आदि पर सोने-बैठने से प्रायः सभी संक्रामक रोग होते हैं।" विशेषतः आँख के रोग और चर्मरोग में जीवाणु वा संक्रामक रोगाणु ही को रोगोत्पत्ति में कारण मानने वाले डाक्टर लोगों ने जिन-जिन रोगों में संक्रामकता नहीं बतलाई है, 'वाग्भट' ने प्रायः उनमें भी संक्रामकता बतलाई है। महर्षि सुश्रुत कहते हैं—

प्रसंगात्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् ।
एकशय्यासनाच्चापि पुष्पमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

इसी भाँति धर्मशास्त्र कहता है कि एक ही स्थान और पात्र में भोजन करना अधर्म है, पाप है। वह हमें यों समझाता है कि जिसका छुआ हुआ तू अन्न खाता है, भोजन के समय में उसका छुआ हुआ भी न खाओ। जैसे, एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी अपने पिता को भोजन करने के लिए थाली में भात परोसता है और पिताजी भोजन कर रहे हैं। उस भोजन करने के समय में यदि वही परोसने वाला ब्रह्मचारी पुत्र, पिता को छू दे तो पिता को भोजन नहीं करना चाहिये और उसका प्रायश्चित करना चाहिये। वैद्यक में इसी भाँति वर्जित है; क्योंकि इससे 'संक्रामक' रोग होते हैं। और डाक्टरी विज्ञान भी इसी सिद्धान्त को मानता है। परन्तु आज-कल हम लोगों के पूर्व जन्म के कुछ ऐसे पापों का उदय है कि प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि इस काम से हमारी भयङ्कर हानि है, फिर भी नहीं सूझता। इसका प्रत्यक्ष नमूना आज-कल के हुक्के पीने की प्रणाली में देखें। सब लोग एकही हुक्के की नली को (बिना धोये ही) मुँह में रख सड़-सड़ाने लगते हैं, जिससे किसी को यदि भयंकर फिरङ्गरोग (सिफलिस) हुआ है तो दूसरे पीने वाले को भी यह रोग होगा। इसमें सन्देह नहीं कि किसी-किसी व्यक्ति के पूर्ण आरोग्य और ब्रह्मचर्य्य रहने से छूत का रोग कम होता है; परन्तु यदि होता है तो बिना छूत के संसर्ग के नहीं होता। यहाँ इसका उदाहरण दे देना अतीव आवश्यक है। जैसे यदि धान का पौधा उगेगा, तो बिना धान के बीज के नहीं उगेगा। यह दूसरी बात है कि धान का बीज यदि भुना है, सड़ा और पुराना है, तो नहीं उगेगा और यदि ऊसर धरती पर पड़ जायगा, तब भी नहीं जम सकता। यद्यपि साधारणतः निम्न-लिखित बातों से प्रायः सब सुविज्ञ परिचित हैं तथापि उसे फिर स्पष्ट समझना भी हमारा कर्त्तव्य (धर्म) है।

इन्हीं उल्लिखित आयुर्वेदीय उद्धृत बातों को धर्मशास्त्र में भी पाप कहा है। धर्मशास्त्र कहता है कि किसी का छुआ हुआ खाद्य पदार्थ न खाओ-पीओ। खाना ही पड़े, पीना ही पड़े, तो अग्नि से सन्तप्त कर वा सन्तप्त जल वा शुद्ध जल से शुद्ध कर लो। 'को हि जानाति कस्यास्ति प्रच्छन्नम्पातकम्महत्'—कौन जानता है किसके भीतर छिपा हुआ कौन महान् पातक

है । आयुर्वेद की भी यही ध्वनि है कि जो शरीर देखने में पूर्ण नीरोग और सुन्दर जान पड़ता है, कौन कह सकता है कि उस शरीर के भीतर फिरंग रोग (सिफलिस), पूयमेह (सूजाक) आदि में से कोई भी रोग नहीं है । मैंने अनेक कुतर्कियों से सुना है कि 'एकादशी' व्रत करने से कोई धरम-करम नहीं होता है, न 'अतवार' रहने में ही कोई धरम है । पन्द्रहवें दिन उपवास करने से शरीर नीरोग होता है और अतवार को खाना बदल देने और एक ही जून खाने से पाचन क्रिया ठीक होती है । इसी लिये धर्म का डर और लाभ दिखा दिया है जिससे इन व्रतों को करके लोग नीरोग रहें । अब हमारी बात को आप लोग सावधान हो सुनें । आप लोग एक बिजली की कल लगा देते हैं, उसमें आप धान भी कूटते हैं, ऊख का रस भी निकालते हैं, गेहूँ भी पीसते हैं, चीनी भी बनाते हैं, तेल भी निकालते हैं, प्रकाश का भी काम लेते हैं, समाचार भी देते-लेते हैं, मोटर चलाते है, ट्रामवे चलाते हैं—इत्यादि । आप इतने काम लेते हैं कि ठीक-ठीक उनकी गिनती भी कठिन है । उसी प्रकार एक एकादशी से धर्म और स्वास्थ्य (शरीर नीरोग रहना) दोनों ठीक रह सकते हैं, इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ? आप मनुष्य हैं, आपको बुद्धि परिमित है, तिस पर भी यदि आप एक बिजली से सैकड़ों काम लेते हैं और यह प्रश्न नहीं कर सकते कि ऐं ! यह ऊख पेरने वाली बिजली-कल है, इससे धान कैसे कूटा जा सकता है, तब जिस परमात्मा ने आप में काम करने की शक्ति दी है, बिजली में अपरिमित काम करने की शक्ति दी है, उस परमात्मा में आपकी बुद्धि से क्या इतनी भी बुद्धि नहीं भासित होती कि 'एकादशी' में धर्म (पारलौकिक लाभ) और स्वास्थ्य (लौकिक लाभ) दोनों गुण सोलहो आना ठीक है ? यहाँ एक दूसरे प्रकार का दृष्टान्त भी देता हूँ । आशा है कि आप ऊबेंगे नहीं । एक युवती को उसका प्रेमी (नायक) समझता है कि वह केवल मेरे ही आनन्द-विहारार्थ उत्पन्न है । उस युवती का पिता समझता है कि मेरे वंश चलाने के लिये यह मेरे वात्सल्य-प्रेम की अवतार है । उस युवती का सद्योजात बच्चा समझता है कि यह मुझे दूध पिलाने के लिये और मेरे रक्षार्थ ही मेरी जननी है । कठिन और जटिल दुर्गम वनों में विचरण करने वाले हिंसक जन्तुओं के समान उसके सिर के बालों में जो जूएँ (ढील-लीख) आदि रहती हैं, वे समझती हैं कि मेरी सजला-सफला सभोज्या शस्यश्यामला जननी जन्मभूमि यही है । दुर्दैववश यदि यही युवती जल के मगर से वा वन के व्याघ्र से आक्रांत हो तो वे इसे क्या समझेंगे ? इस करुण, वीभत्सरस-विधान को विशेष समझने वाले ही समझें । अब हम आपसे पूछते हैं, किसकी समझ ठीक है ?—इसका उत्तर दीजिये । कदाचित् पक्षपात का पक्ष ले आप यथार्थ उत्तर प्रदान में आनाकानी करेंगे । परन्तु यथार्थतः युवती के नायक, पिता, शिशु सब की समझ सोलहो आना ठीक है, और जन्तुओं की समझ भी । तब यदि एक युवती भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये यथार्थतः ईश्वर की निर्मित भिन्न-भिन्न कार्य-साधिका बनी है, तो अखिल ब्रह्माण्ड के नियन्ता यदि एकादशी आदि धर्म-व्रत साधनों से धर्म और स्वास्थ्य दोनों कार्य सम्पन्न करें तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है । आयुर्वेद के आचार्य्यों के अद्वितीय सिद्धान्तों के अनुसार मैं अपने आजतक के अनुभवों से भी यह प्रत्यक्ष और नितान्त अकाट्य सिद्धांत जानता हूँ कि धर्म है और ईश्वर भी हैं—इनके प्रभाव से रोग भी छूटते हैं और दुर्भाव से रोग भी उत्पन्न होते हैं । धर्मशास्त्रों में भी लिखा है किन-किन पापों से कौन-कौन रोग उत्पन्न होते हैं और कौन-कौन से प्रायश्चित करने से पाप-प्रणाश होता है । आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका वर्णन है—

स्वाभाविकागन्तुक कायिकान्तरा ।
रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ॥

आयुर्वेद के शतशः स्थलों में ईश्वराराधन और मन्त्र जप तथा पूजा से रोगमुक्ति के अनेक प्रकार के विधान वर्णित हैं, जिनका मैं भी अपने इस ७५ वर्ष की अवस्था पर्य्यन्त अपने तथा अन्य लोगों के देवाराधन (धर्म) द्वारा कठिन रोगों से आरोग्य हो जाने का बराबर पूर्ण अनुभव करता आता हूँ ।

३—आयुर्वेद और धर्मशास्त्र

डाक्टरों की तो बात ही मत पूछिये बहुत से वैद्य महोदयों ने भी आयुर्वेद के साथ धर्मशास्त्र का सम्बन्ध रखना उचित नहीं समझा है । इन लोगों ने भी औषधियों के साथ धर्माधर्म का विचार छोड़ ही दिया है । आजकल तो धर्म और ईश्वर को देश-विकाला दे देने से ही देश का उद्धार समझा जा रहा है ! हम यहाँ स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि धर्म को छोड़ देने से समाज भी जीवित नहीं रह सकता है । धर्मशास्त्र के जितने उपाय हैं वे अधिकाधिक पारलौकिक धर्म-समुन्नति के साथ ही साथ शारीरिक रोगों को भी शांत करने के लिये ही हैं । अपने सम्प्रदाय और उपासना के अनुसार धर्मग्रन्थों ने एकादशी, प्रदोष या अन्य अनेक व्रत करने का आदेश दिया है । दशमी से लेकर अमावास्या या पूर्णिमा-पर्यन्त समुद्र में अधिकतर ज्वाला-भाटा आता है । चन्द्रमा के आकर्षण से पार्थिव-जल-समूह ऊपर को उछलता है । इस को सब लोग देखते हैं । शरीर में भी रस है । इसमें भी इन दिनों उबाल आता है । दशमी पूर्णिमा वा अमा के मध्य में किसी एक-दो दिन भोजन न करने से शरीर का रस बढ़ता नहीं, समभावापन्न रहता है । शरीर के रस बढ़ने से भी ज्वर आदि अनेक रोग होते हैं । अब तो डाक्टरों ने भी ज्वर के समय उपवास को आवश्यक मान लिया है । ज्वर और रोग होने ही न पावे, इसलिये धर्मशास्त्रों ने नियम बना दिया है कि महीने में कम से कम दो दिन भी अवश्य व्रतोपवास करना चाहिये । हरिशयनी एकादशी को, आषाढ़-शुक्ला एकादशी को, भगवान सो जाते हैं और कार्त्तिक-शुक्ला एकादशी को जागते हैं । इन चार महीनों में धर्मशास्त्र ने विवाहादि शुभ कार्यों का निषेध कर दिया है । आज के नवशिक्षित लोग भगवान् के इस सोने-जागने की बड़ी-बड़ी दिल्लगियाँ उड़ाते हैं; किन्तु उन्होंने इस सोने-जागने के मूल कारण पर कभी ध्यान नहीं दिया । जगत्पिता जगदीश्वर की सृष्टिस्थितिलयकारिणी शक्तियों को ब्रह्मा विष्णु, महेश भी कहते हैं । ब्रह्माजी सृष्टि रचते हैं, विष्णु या हरि उसकी रक्षा करते हैं और 'शिव' जी संहार करते हैं । हरि वा विष्णु की रक्षा-कारिणी शक्ति सोती भी है और जागती भी है । श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक—इन चार महीनों में बहुत रोगों के कीटाणु वा रोगाणु उत्पन्न होते हैं । उस समय रक्षा करने वाली शक्ति दुर्बल हो जाती, सो जाती हैं । अतः उन कीटाणुओं के आक्रमण से बचने के लिये चातुर्मास्य में अनेक व्रतों के उपदेश धर्मशास्त्रों ने किये हैं । इन चार महीनों में जितने व्रत और त्योहार हैं, उतने अन्य महीनों में नहीं । जिन सूर्यकिरणों में सब रोगों के नाश करने की शक्ति हैं, वे भी कुआर के महीने में दूषित हो जाती हैं । वैद्य लोग कुआर के भरोसे ऋण लेते हैं—यह लोकोक्ति भी सर्वत्र प्रसिद्ध है—'शरन्मातेव वैद्यानाम् पितेव कुसुमाकरः ।' फिर कार्त्तिक-शुक्ला एकादशी हरि-बोधिनी को, रक्षा करने की शक्ति धीरे-धीरे जागती है । तब से प्राणि मात्र के स्वास्थ्य में परिवर्त्तन होता है । उल्लिखित बातों से भी

सिद्ध है कि धर्मशास्त्रों के नियम ही हमारी स्वस्थता के कारण हैं। इन नियमों की अवहेलना या उपेक्षा करना अपने पैरों पर आप कुठाराघात करना है। धर्मशास्त्रों में द्विजाति के लिये मद्य पीने का तो मरणान्त प्रायश्चित लिखा है। मुझे यह कहते हुए बड़ा दुःख हो रहा है कि होमियोपैथी चिकित्सा की कोई ऐसी दवा नहीं है, जो मद्य के बिना बनती हो। एलोपैथी-चिकित्सा की सैकड़े पचानबे औषधियों में मद्य का मिश्रण होता है। इन धन, धर्म और जीवन के घातक उपायों को रोकना वैद्य-समाज का सबसे बड़ा कर्तव्य होना चाहिये। और, अपराध क्षमा करें;। जिस मद्य-सेवन को सारा संसार अपने व्यवहार से बाहर करने का सिरतोड़ परिश्रम कर रहा है उसी मद्य को गङ्गाजलवत् पेय समझ कर हमारा समाज उसके व्यवहार में अग्रणी हो रहा है। एक दिन मुझसे हिन्दू-विश्वविद्यालय के एक ब्राह्मण छात्र से कुछ बातचीत होने लगी, जो इस वर्ष आयुर्वेदाचार्य्य परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है। उसने 'मद्य-पान' के पक्ष में इतना कड़ा तर्क-वितर्क किया कि अत्यन्त दुःख हुआ। अब इसपर ऐसे विचार वालों के लिये कुछ विशेष विनीत प्रार्थना करना है—(१) सारे संसार के सभी मतवाले मतवाले मद्यपों और और मद्यपान को बहुत बुरा कहते हैं। (२) धर्मशास्त्र में द्विजों के लिये गोघात और गोमांस भक्षण से बढ़ कर शराब पी लेने का प्रायश्चित्त है। गोघात और गोमांस भक्षण का दोष वा पाप दान से, और एक से तीन महीने तक के व्रत से छूट जाता है; परन्तु यदि कोई जान बूझ कर एक बार शराब पी ले तो उसके लिये यह प्रायश्चित है—

सुराम्बुघृतगोमूत्र पयसामग्निसन्निभम्।
सुरापोऽन्यतमःपीत्वा मरणाच्छुद्धिमिच्छति ॥

—याज्ञवल्क्य स्मृति (मिताक्षरा)

अर्थात् अग्नि में अग्नि के समान खौला कर मद्य, वाजल वा घी, वा दूध पीकर जब शराब पीनेवाला मर जाय तभी शुद्ध होता है, जीते-जी शुद्ध नहीं हो सकता इसी लिये गोघात उपपातकों में है और मद्यपान महापातकों में है। फिर यदि आप हँसी-खेल, दिल्लगी में महापाप किया करेंगे तो हिन्दू धर्म की इति श्री ही है।

दमदमे में दम नहीं अब खैर मानो जात की।
ऐ जफर अब हो चुकी शमशीर हिन्दुस्तान की ॥

यदि आप कहें कि इसके बिना चिकित्सा हो ही नहीं सकती तो क्षमा करें डाक्टर लोग रोगियों को ब्रांडी देकर जब शक्तिसञ्चार नहीं कर सकते, तब मेरे यहाँ से मकरध्वज आदि मँगा कर रोगियों की रक्षा करते हैं। मेरे यहाँ 'सुराभेद' आसव अरिष्ट का व्यवहार नहीं होता है। तब भी सुराव्यवहारी चिकित्सकों के निरोगियों की संख्या से मेरे यहाँ कम संख्या नहीं है, बल्कि अधिक ही है। यदि "औषधार्थे सुराम्पिवेत्" के बल पर मद्य व्यवहार करना चाहते हों तो यह वचन धर्मशास्त्रों में नहीं है। यदि कोई धर्मशास्त्रों से इसका प्रमाण निकाल दे तो मैंने जो बीसों वर्ष से इसके लिये २०००) का पारितोषिक देने की घोषणा की है, वह ले लेवे!

४—आयुर्वेद की अनादिता और प्राचीनता

आयुर्वेद का अनादित्व वैद्य सम्मेलन के माननीय सभापतियों ने वेदों के वचनों से भी सिद्ध किया है। अतः इस निर्विवाद विषय में कुछ कहना अधिकता है। जैसे वेद अनादि

है—किसी का बनाया नहीं है, सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी उसका केवल स्मरण कर अपने चारो मुख से वाणी के द्वारा संसार में प्रकट करते हैं; वैसे ही इस आयुर्वेद को भी प्रकट करते हैं। यह आस्तिक नास्तिक सभी प्रकार के विद्वानों का निर्विवाद और अभ्रान्त सिद्धान्त है कि भूमण्डल में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। फिर आयुर्वेद भी इसी प्रकार का वेद है। इसी लिये और अन्यान्य प्रकार के तर्कों से भी पाश्चात्य विद्वान डाक्टर हण्टर, मोक्षमूलर आदिकों ने—भारत के आयुर्वेद तथा चरक सुश्रुत आदि आयुर्वेद ग्रन्थों की शिक्षा के लिये अरब ग्रीक आदि के विद्वानों का छात्र-रूप में भारत आना और इसका अपने-अपने देशों में प्रचार करना—लिखा है जो समय पाकर सम्प्रति हकीमी और डाक्टरी (एलोपैथी आदि) चिकित्सा के रूप में प्रकट हुआ है।

५—आयुर्वेद और ज्योतिष—शुभ मुहूर्त

कोई भी अनुभवी सत्यभाषी फलित ज्योतिष और इसकी सफलता के विरुद्ध नहीं जा सकता, चाहे वह नास्तिक ही हो। आयुर्वेद में तो अच्छे मुहूर्त ही में औषध के संग्रह और व्यवहार की इतनी अधिकता है कि आचार्यों ने इसके लिये पुनरुक्ति वा बहुधोक्ति दोष भी स्वीकृत किया है; पर शुभ मुहूर्त व्यवहार को बार-बार कहा है। 'पुष्यानुग' चूर्ण एक अधिक प्रसिद्ध व्यवहृत आयुर्वेद का महौषध है, जिसे केवल पुष्य नक्षत्र ही में बनाने को कहा है, चाहे वह एक पुष्य नहीं, कई पुष्यों में, कई महीनों में, बने। मैंने भी इसका पूरा अनुभव किया है, और समय रहते इसकी अवहेलना करने से जो कुफल होता है उसे मैं ४४ वर्ष से झेलता आ रहा हूँ। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के जन्मदाताओं में प्रधान, हिन्दी के अनेक सद्ग्रन्थों के प्रणेता, सम्प्रति हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० से आजकल शिक्षित समाज प्रायः परिचित है। ६ वर्ष होते हैं, आपने मुझसे कहा था कि—"मुझे सान्निपातिक ज्वर हुआ। सुप्रसिद्ध डाक्टरों ने कहा कि प्राण के साथ ही यह ज्वर जायेगा। मेरे पुत्र ने स्थानीय पं० हरिनारायण भट्टाचार्य्य तान्त्रिक ज्योतिषी से सब समाचार कहा। उन्होंने एक यन्त्र बाँधने को दिया और कहा कि अमुक दिन इतने घंटे पर ज्वर उतर जायेगा, और आप स्वस्थ हो जायँगे। ऐसा ही हुआ। फिर एक बार मेरे भयंकर फोड़े में आपरेशन करना बहुत आवश्यक था। बहुत से डाक्टरों की सम्मति थी कि आपरेशन करने से कदाचित् आराम हो जायगा और बहुतों की यह सम्मति थी कि आपरेशन से अवश्य असाध्य अवस्था होगी। उक्त ज्योतिषी जी ने कहा कि अमुक दिन इतने घंटे पर फोड़ा फूट कर आप-से-आप बह जायेगा और आराम हो जायेगा, यन्त्र बाँधो। ऐसा ही हुआ।" इसी भाँति प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यसेवी पं० रामनारायण मिश्र ज्योतिष के अविश्वासी अब विश्वास करने लगे हैं। ज्योतिषी जी के कथन में १०० में ९० ठीक-ठीक उतरता है। कोई कुतर्की सद्यः यहाँ कहेगा कि "घरी में घर जरे, अढ़ाई घरी भद्रा"। आप मुहूर्त देखते हैं, रोगी को हैजा हुआ है, मिनटों में बेड़ा पार है। किसी को साँप ने काटा, कोई पेड़ से गिरा, आप मुहूर्त देखेंगे? सत्य है। ज्योतिष में सब मुहूर्तों से बढ़ कर 'शकुन' है और ईश्वर प्रेरणा है—(इसका विशेष विवरण मार्कण्डेयपुराण में लिखा है, देखिये) शकुन प्रेरणा करता है कि अभी औषध दो। बहुत लोग मुझे 'वारबेला' (वा अर्द्धयाम, अधपहरा) के मानने से मेरी और रोगियों की हानि बताते हैं; परन्तु यह उलटी बात है। मैं बहुत समुन्नत दशा में हूँ, शान्त हो ७५ वर्ष के आयु

में भी काशीवास करता हूँ और आयुर्वेद-सेवियों तथा अस्वस्थों की यथासाध्य सेवा भी करता हूँ। रोगी भी मेरा यश मानते हैं। मैं सभी प्रतिभाशाली सज्जनों से प्रार्थना करता हूँ, केवल आयुर्वेद ही में नहीं, समस्त श्रुति-स्मृति, कर्मकाण्ड और विशेषतः सनातन धर्म के प्राण ज्योतिष-विचारों पर विशेष आस्था रख चतुर्वर्ग सुख भोगें।

६—आयुर्वेद का महत्व

पूज्यचरण त्रिकालदर्शी महर्षियों ने आयुर्वेद को अनादि माना है। चरक सूत्रस्थान के तीसवें अध्याय में इस प्रकार लिखा है—"चतुर्णाम् ऋक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे अस्य उक्तिः' अर्थात् चारों वेदों का आत्मा आयुर्वेद है, उसका वर्णन अधिकतर अथर्व वेद में किया गया है। सुश्रुत में धन्वन्तरि जी ने कहा है—'अयुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रामध्याय सहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः' अर्थात् सृष्टि के पहले ब्रह्मा जी ने एक संहिता आयुर्वेद की बनाई, जिसमें एक लक्ष श्लोक और एक सहस्र अध्याय थे। पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में भी सबसे प्राचीन ऋग्वेद में भी आयुर्वेद के अनेक मंत्र मिलते हैं अथर्व वेद में तो इसकी प्रधानता ही है। ऋग्वेद में लिखा है—'या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु। यानि मनुर वृणीता पिता नस्ता शं चयौश्च रुद्रस्य वश्मि।' (ऋग्वेद २, ३३, १३,)—और भी—अश्वावती सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् आवित्सि सर्वारोषधीरस्मा अरिष्टतातये। (ऋग्वेद १०, ८, ९७, ७) इन मन्त्रों का भावार्थ यह है कि मरुतो! आपकी जो पवित्र कल्याणकारिणी ओषधियाँ हैं, जिनको मानव मात्र के पिता मनु ने प्राप्त की थी हमारे मङ्गल के लिये हैं। अश्वावता, सोमावती, ऊर्जवन्ती और उदोजस अर्थात् वाजीकरण, आयुर्वर्धक तथा बुढ़ापे के रोगों को नष्ट करने वाली औषधियाँ होती हैं। अथर्ववेद में लिखा है—'यद्वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम्। तेनेममस्समाद्, यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चत ओषधिरथो कृणोमि भेषजम् (अथर्व ८, ७, ५)। इसका सारांश यह है कि वैद्य रसवीर्य वाले औषध को रोगी पुरुष को देते समय यह भाव मन में लावें कि हे औषध! तू इस रोगी के सब रोग दूर कर। न्यायदर्शन में महर्षि गौतम ने भी 'मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्' इस सूत्र के द्वारा आप्तप्रमाण में आयुर्वेद को मान है। यहाँ मैं विस्तार के भय से अधिक आर्षग्रन्थों के प्रमाण देना उचित नहीं समझता इन संक्षिप्त प्रमाणों से आयुर्वेद की प्राचीनता के साथ-साथ उसका अद्भुत महत्व भी सिद्ध होता है।

७—प्राणिरक्षा

सबसे बढ़कर मनुष्य-धर्म है प्राणियों पर दया—विशेषतः किसानों और वैद्यों का। योंही इस दया का सबसे बड़ा प्रकार वा द्वार है रोगों से प्रतीकार (रक्षण)। इस रोग प्रतीकार का क्या सुलभ और सरल साधन है, मैं इसके विषय में इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि प्रथम तो 'गूलर-विज्ञान' वा गूलर के पत्र आदि से चिकित्सा करनी और द्वितीय मेरे सेवा-कार्य्य से जो जलोदर आदि असाध्य रोगों के ठीक प्रतीकार की चिकित्सा निकली है उसका भी प्रचार कर लोकोपकार करना। कदाचित विगत जनवरी मास ही की बात है कि मैंने महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती, एम. ए., एल. एम. एस, से पूछा था कि क्या 'जलोदर की कोई ठीक-ठीक प्रतिकारक चिकित्सा आयुर्वेद मत वा डाक्टरी मत से निकली है?" आपने कहा कि

किसी मत से अब तक ठीक आरोग्यकारिणी चिकित्सा नहीं निकली है, बहुधा हम भी रोगियों को आराम कर देते हैं, रोगी अपने को आराम समझ कर घर चले जाते हैं; परन्तु फिर भी उनका यह रोग बढ़ जाता है और वे मर जाते हैं। वर्तमान ही समय का इसका उदाहरण और प्रमाण मैं लिख देता हूँ—'बेलवा ग्राम, बिरैचा पोस्टआफिस, जिला गोरखपुर के ब्राह्मण मुन्नूकृष्ण त्रिपाठी जलोदर से आक्रान्त हो गोरखपुर सरकारी अस्पताल में चिकित्सा के लिये गये। वहाँ के एक प्रधान डाक्टर ने पेट से पानी निकाल दिया और खाने को दवा भी दी। आप आराम हो गये। दो वर्ष पर्यन्त पूरे नीरोग से रहे। पर फिर धीरे-धीरे जलोदर बढ़ा। सब चिकित्सा हुई; पर एक वर्ष के लगभग हुआ कि आपने संसार छोड़ दिया। मेरे ऋषिकल्प अनुज श्रीवागीश्वरीधर मिश्र को भी जलोदर हुआ। आपका भी विचार हुआ कि हम भी गोरखपुर के डाक्टर मन्नू तिवारी वाली डाक्टरी चिकित्सा करावें, पर मेरे रोकने पर आप अपनी ही चिकित्सा से क्रमशः आरोग्य हो चुके थे, परन्तु यह घोर शोक और हृदय-शल्य है कि आप दूसरे रोग (सेप्टिक और ज्वर) से, मेरी अनुपस्थिमि में स्वर्गवासी हो गए! किन्तु प्रायः ३४ वर्ष होते हैं, रोझी मियाँ (महुअवा ग्राम, डाकघर रामनगर, जिला चम्पारन) विकट भयङ्कर जलोदर रोग से जो आरोग्य हुए सो अब तक नीरोग रह हल-कुदाल चलाते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण प्रत्यक्ष हैं। इसी प्रकार असाध्य मस्तिष्क-वृद्धि, पाण्डु, शोथ, ज्वर आदि की चिकित्सा एवं मसूरिका-शीतला, सर्पदंश, पागल शृगाल-कुत्ते आदि के विष से रक्षा तथा मधुमेह, पक्षाघात (लकवा) के विज्ञान के प्रचार से भी जनता-प्राण-रक्षोपकार करने के लिये उचित उपचार होना चाहिए। इन नये असाध्य रोगों का रक्षण-विज्ञान न केवल भारत के वैद्य-वर्ग ही के लिये उपकारक है, बल्कि सारे भूमण्डल के लिये भी।

८—गूलर-पत्र

बहुत लोगों को 'गूलर-पत्र' के निम्न-लिखित गुणों में सन्देह होगा। ऐसे जिज्ञासु सज्जनों के विश्वास के लिये हम जहाँ कोई भी रोगी न मिले, वहाँ तुरन्त जाँच कर लेने का क्रम बतलाते हैं। जैसे, बायें हाथ में गूलर के पत्ते रक्खें और दाहिने हाथ में सूई लेकर बाँह वा जाँघ में यों छेदें कि लहू निकल आवे। इससे तीन क्रियाएँ अनुभूत होंगी—छेदने से पीड़ा होगी, लहू बहेगा, लहू का रंग लाल होगा। अब आप हाथ के गूलर के पत्ते को अपने हाथ ही पर मसल डालें और रस निकाल कर छिदे हुए स्थान पर मल दें। आप तुरन्त देखेंगे कि जादू के समान असर हुआ—छेदने से जो पीड़ा थी, शान्त हो गई, लहू का बहना बन्द हो गया, लहू का रंग लाल न रहा, मिट्टी के रंग का हो गया। इसी भाँति, जरा हिम्मत कीजिये; अपने या किसी के शरीर में दियासलाई से कहीं थोड़ा जला दीजिये और गूलर के पत्ते मल कर जले स्थान पर मल दीजिये जलन बिलकुल जाती रहेगी, झलके वा व्रण भी न होंगे।

एक महीने के भीतर की बात है कि काशी वा भारत के विद्वत्समाज तथा भगवद्भक्त-मण्डली के अग्रगण्य सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र श्री दामोदरलालजी गोस्वामी के एक छात्र, जो कासिम बाजार (बंगाल) के राजा के गुरु हैं, मेरे समीप आये। उनकी अवस्था २१ वर्ष की है। आप आठ मास के थे, तभी आपको पहले फोड़ा हुआ, फिर छूट गया। फिर लहू के साथ आम (मल) गिरने लगा। दिन में बीस व तीस बार तक दस्त होते थे—कुछ लहू के साथ। भूख बन्द, सर्वाङ्गीण शक्ति मन्द! बीस वर्षों से यही दशा थी। इधर एक मास से

तीसरे पहर सारा शरीर ऐसा तन कर कड़ा हो जाता था कि दो-तीन बलिष्ट युवकों के सीधा करने पर भी सीधा नहीं होता था। आपको यकृद्दोष और हृद्विकार भी था। मैंने पुनर्नवादि मंडूर, विषमुष्टिचूर्ण, मकरध्वज, उदुम्बरसार, गुग्गुलु आदि का प्रयोग प्रातः और मध्याह्न में महारसराज रस, तथा तीन बजे अनन्तामृत (सालसा) का प्रयोग किया। फल उलटा हुआ। प्रातः समय दवा खाते ही शरीर का जो तन जाना तीसरे पहर होता था सो प्रातः ही हो गया। फिर मैंने और दवाओं का नाम-मात्र सेवन रक्खा, गूलर-पत्र के पानक योग रेंड़ की जड़ के साथ देने लगा, और पूर्ववस्तिका भी। एरण्ड-तैल-सहित उदुम्बर-पत्र-रस का प्रयोग किया तब पहले दिन चार आना कम हुआ। दूसरे दिन आठ आना। तीसरे दिन से सोलहो आना। वे नीरोग हो गये। उन्हें नया जीवन लाभ हुआ। अब आनन्द से हैं।

इसी भाँति विगत चैत्र मास की बात है कि उपर्युक्त गोस्वामीजी की एक शिष्या की माता को भयङ्कर रक्तप्रदर बहुत दिनों से होता चला आता था। कुछ दिनों से उसने ऐसा भीषण रूप धारण कर लिया कि सभी प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने असाध्य कह दिया। मरने की घड़ी पहुँच गई। इसी अवस्था में 'गूलर-पत्र-पानक' के पान-पत्रों के रस के उत्तर-वस्ति-प्रयोग से, प्रायः पाँच महीने हो रहे हैं, वह नीरोग-पूर्वक काशीवास और गङ्गास्नान कर रही हैं।

संवत १९७९ के श्रावण मास में विहार के गवर्नर श्रीमान् ह्वीलर साहब द्वारा निमन्त्रित हो उनसे मिलने के लिये मोतिहारी गया। मेरे साथ पं० श्रीकान्तकृष्ण त्रिपाठी काव्य-व्याकरण-तीर्थ (रत्नमाला के आयुर्वेदीय श्रीचन्द्रोदय-महाविद्यालय के आयुर्वेदाध्यापक) भी थे। दस बजे दिन को मैं पूजा कर रहा था और पास ही आप रसोई (भोजन) तैयार कर रहे थे। आप सँड़सी से लगभग पाँच सेर तौल का दाल-पानी से भरा खौलता हुआ पात्र चूल्हे से उतार रहे थे। अकस्मात् वह उलट गया! दाल के सहित खौलता हुआ सारा जल आपके दोनों पैरों पर गिर पड़ा। फिर तो आप बेहोश हो गिरने लगे। मेरे पास पूजा के अर्थ घी रक्खा था वह तुरन्त लगाया गया; पर बेतरह विकलता बढ़ने लगी। पूजा ही पर मेरा आफिस-बक्स भी संयोगवश था। मैं उसमें से 'उदुम्बर सार' की डिब्बी ढूँढ़ने लगा। संयोगवश एक डिब्बी मिली भी, तो उसमें एक चने के बराबर ही सूखा उदुम्बर-सार निकला। निराशा के साथ ही मैंने चन्दन रगड़ने के होरसे पर उसे रख, जल देकर चन्दन-काष्ठ से रगड़, खूब महीन कर पैरों पर लगवाया। आश्चर्य के साथ देखा कि आप प्रसन्न हैं। मैंने पूछा, क्या हाल है? आपने कहा, बारह आना जलन शान्त हो गई और अब मैं ठीक होश में हूँ। फिर शाम तक प्रायः थोड़ी कसर रह गई, दूसरे दिन आप पूरे आराम हो गये, सारे शहर की पैदल परिक्रमा की। तीसरे दिन आपको मैंने एक कार्यवश बेतिया भेजा। वहाँ आपने २४ घंटे दवा न लगाई और पूरी पैदल यात्रा भी की, जिससे बायाँ पैर तो ठीक रहा, पर दाहिने पैर में एक झलका (फोड़ा) निकल आया और बढ़ने लगा। आप बेतिया से दो कोस दूर एक स्थान में चले गये। वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक प्रचलित चिकित्सा हुई। किन्तु व्रण की दशा शोचनीय ही होती गई, पाँव बहुत फूल गया, पीड़ा होने लगी, पीप भर गया। अन्ततोगत्वा फिर 'उदुम्बर-सार' ही की शरण लेनी पड़ी और पाँच ही सात दिन में सारा घाव आराम हो गया। घाव आराम होने के पहले भीतर से जो लाल रंग का मांस ऊपर आता है, वह सफेद रंग का हो चला था, जिससे यह निश्चित होता था कि अग्निदग्ध में जिस प्रकार सफेद दाग (चरक-सा) पड़ जाता है, इसमें भी होगा, परन्तु ऐसा नहीं हो सका, व्रण का दाग काला ही रहा।

एक बार भादो की आधी रात में मैं अपने छोटे भाई और मैनेजर के साथ हरीनगर जाने के लिये टमटम पर बगहा रेलवे स्टेशन को जा रहा था। रास्ते में टमटम का एक घोड़ा भड़का, सड़क छोड़कर बाँई ओर भागा, टमटम सहित ढाई हाथ पानी भरे गढ़े में उलट कर गिर गया। सभी सवार तो भाग्यवश बच गए—अलग जा खड़े हुए; पर मेरे पीछे टमटम का पिछला भाग और दाहिनी ओर टमटम का दाहिना भाग खड़ा था! आगे से घोड़ा गिर कर व्याकुल हो लात चला रहा था। उसकी कुछ चोट तो टमटम में लगती थी और बाकी सब मुझ पर बाईं ओर से पड़ती। भागने की कोई राह न थी। लोग कहते हैं कि "घोड़े की लात घोड़ा ही सहता है"। पर मैं आदमी होकर भी सह रहा था। अस्तु। आयु अवशिष्ट था। ईश्वर ने एक राह बतला दी। एक वृक्ष की डाल ऊपर से लटकी हुई देखी। उसे पकड़ कर ऊपर चढ़ गया; यद्यपि कष्ट बहुत था, हाथ और पैर की कई अँगुलियों के नख उखड़ कर गिर गए थे, कई स्थानों में भयंकर चोट लगी थी—कहीं मोच लगी, कहीं पिस गया, कही घिस गया। स्टेशन पर पहुँच कर रेल से हरीनगर गया, जो वहाँ से करीब २२ मील था, वहाँ गूलर के पत्ते के लेप का प्रयोग किया, सो भी चोट लगने के ७॥ घण्टे बाद! इसके पहले सजउ कपड़े की बराबर पट्टी बाँधी थी। फल यह हुआ कि मुझे न कुछ कष्ट हुआ, न देह में पीड़ा हुई, न घाव पका। काम बराबर लिखने-पढ़ने का भी करता रहा—यद्यपि दाहिने हाथ की हथेली और अंगुलियों पर ही बहुत चोट आई थी। डेढ़-दो सप्ताह में मैं सम्पूर्ण आरोग्य हो गया। समय पर नया नख भी जम गया।

इधर सन् १९३१ में उपर्युक्त त्रिपाठी जी रत्नमाला में अन्तर्धूम मकरध्वज बना रहे थे। तीव्राग्नि के कारण पारा-गन्धक आदि से भरी बोतल का काग (डाट) उड़ गया। आप बन्द करने गये। बोतल समूची फट गई। खौलते हुए पारा-गन्धक का पलस्तर आपकी बाँह और छाती आदि स्थानों में लग गया।

इस बार पहली बार से भी भयंकर जलन-पीड़ा होने लगी। जीने की आशा न थी। डाक्टर भी बुलाये गये। औषध में थोड़ा 'उदुम्बरसार' जल में घोल कर लगाया जाने लगा। गूलर के पत्तों का रस और कल्क भी। पीड़ा तो शान्त हुई; पर डाक्टर आदि सब का यही निश्चय था कि वह पलस्तर शरीर के चाल और मांस को नोच कर साथ ले निकलेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। सप्ताह के भीतर ही यह भीषण लेप (पलस्तर) खुट्टी के सहित अलग हो गया। जले हुए स्थान में जलने का कोई चिह्न अवशिष्ट न रह गया। इसी प्रकार छछुन्दर नामक विस्फोटक पदार्थ जलाने में मेरे पुत्र चन्द्रधर शर्मा की हथेली बेतरह जल गई, परन्तु इसी प्रयोग ने प्राण बचाया।

हमारे सम्माननीय चिकित्सकवर्य्यों! आप ही विचार करें कि—

यदोपेयादार्त्ता शमनसदनं जातु जनता,
समृद्धे यज्ञाङ्गे तदिह भविता कोऽतिकलुषी।
उपेत्ता विज्ञानाङ्किमुत परमेष्यांकुभिषजाम्,
प्रबन्धो वा राज्ञामहह हठकर्मापि सदसाम्॥

"जब कदाचित् रोग से पीड़ित जनता, समृद्ध गूलर-वृक्ष के रहते ही रहते, यमसदन-गामिनी हो जाये, तब इस अनर्थ और अकाल-मरण में भागो कौन होगा?—विज्ञों (समझ-

दारों) की उपेक्षा, अथवा कुचिकित्सकों की परम ईर्ष्या वा राजाओं का कुप्रबन्ध, वा सभाओं का हठ-कर्म ?" अर्थात् किसी के द्वार के पास ही गूलर का पेड़ है और वह यह नहीं जानता है कि इसके पत्तों को पीस कर पी लेने से हैजा छूट जाता है। इसी अवस्था में कहीं उसके लड़के को हैजा हुआ और वह औषध के बिना मर गया, तो जो लोग समझ-बूझ कर भी अपनी शक्ति भर गूलर के पत्तों के गुण का अथवा उसके सार का प्रचार नहीं करते, उनकी उपेक्षा इस अनर्थ की भागिनी है और जो लोग ईर्ष्यावश इसका प्रचार नहीं करते उनकी ईर्ष्या भी इस अनर्थ की भागिनी है। अथवा, राजाओं का प्रबन्ध ही इसका भागी है ? क्योंकि राजाओं का सबसे बड़ा और आवश्यक कर्त्तव्य वा धर्म प्रजा-पालन में प्रधान काम है प्रजा की प्राणरक्षा। यदि गूलर के पत्तों के गुण समझकर भी पुस्तकों और उपदेशों के द्वारा प्रजा-प्राण-रक्षण का प्रबन्ध नहीं किया जाता तो फिर इस विषय में और अधिक क्या कहा जाय ? देशोपकारिणी सभी सभाओं का काम है कि सबसे पहले रोगों से जनता के प्राणों की रक्षा करें। म्युनिसिपेल्टियाँ ऐसा कर सकती हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड भी रोगों से जनता की रक्षा का काम पूरे बल से कर सकते हैं। सरकारी कौंसिलें जनता की प्राण-रक्षा का प्रबन्ध करती हैं; परन्तु बीसों बरसों से गूलर के पत्तों से प्राण-रक्षा के काम में बहुत ही उपेक्षा की जा रही है।

सच मानिये, यदि किसी ग्राम में एक भी गूलर का वृक्ष है, तो वह एक अस्पताल ही है और प्रत्यक्ष ही रोगों का हरण करता है। प्रत्युत जब अस्पताल कुछ भी आराम नहीं कर पाता है तब भी यह गूलर ही अमृत-समान उपकार कर प्राण बचाता है; अस्पताल आराम करने में फेल भी हो सकता है; परन्तु यह तुरत सुख-प्रदान करने में सदा समर्थ है। आपको अचरज होगा कि यह अस्पताल से भी बढ़ने लगा। अत्युक्ति नहीं प्रमाण लीजिये—(क) अस्पताल में रुपये न हों तो वह फेल है, और इसमें रुपये न चाहियें। (ख) अस्पताल की औषधों में वह गुण न हो तब भी फेल है, मगर गूलर के पत्ते वा सार में वे गुण अव्यर्थ हैं। (ग) अस्पताल के डाक्टर की पहचान में रोग न आवे तब भी फेल है, यहाँ पहिचान में भूल होने से भी लाभ ही अधिकांश है। आप अस्पताल की वैज्ञानिक औषधों के फेल होने की बात सुन खूब हँसेंगे कि यह तो अत्युक्ति और पागलपन का अन्त हो गया। पर ठहरिये, सत्य की खोज कीजिये, एक और सच्ची बात सुनिये।

सन् १९२१ के अगस्त मास में कलकत्ते के एक सर्वश्रेष्ठ कविराज के यहाँ एक लड़के ने उनकी स्त्री को पंखे से मार दिया, जिस से आँख में सख्त चोट आई। तुरत गुलाब जल का प्रयोग हुआ। पर पीड़ा बढ़ती ही गई। दूसरे दिन अमेरिका से पास, आँख के स्पेशलिस्ट डाक्टर मैत्र और इसी प्रकार के डाक्टर बैजनाथ; तथा डाक्टर कार्तिकचन्द्र बोस; महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन, सरस्वती, एम० ए०, एल० एम० एस०; कविराज यामिनीभूषण राय, एम० ए०, एम० बी० आदि डाक्टरों की सम्मति से चिकित्सा का आरम्भ हुआ। उक्त चिकित्सकगण ने अपनी चिकित्सा का कोई भी उपचार वा उपाय अवशिष्ट न रक्खा। तीसरे दिन असाध्य और अन्तिम अवस्था उपस्थित हो गई। तीन दिनों तक दिन-रात बेचैनी बढ़ती ही गई। अन्त में 'उदुम्बरसार' ने ही वास्तविक लाभ पहुँचाया। सब लोग चकित रह गये और गूलर की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

सन् १९२५ की बात है। चम्पारन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सब ओवर-सियर बाबू रामनेवाज सिंह ने मुझसे कहा कि "मैंने अपनी तबदीली मोतीहारी से बगहा इसीलिये कराई है

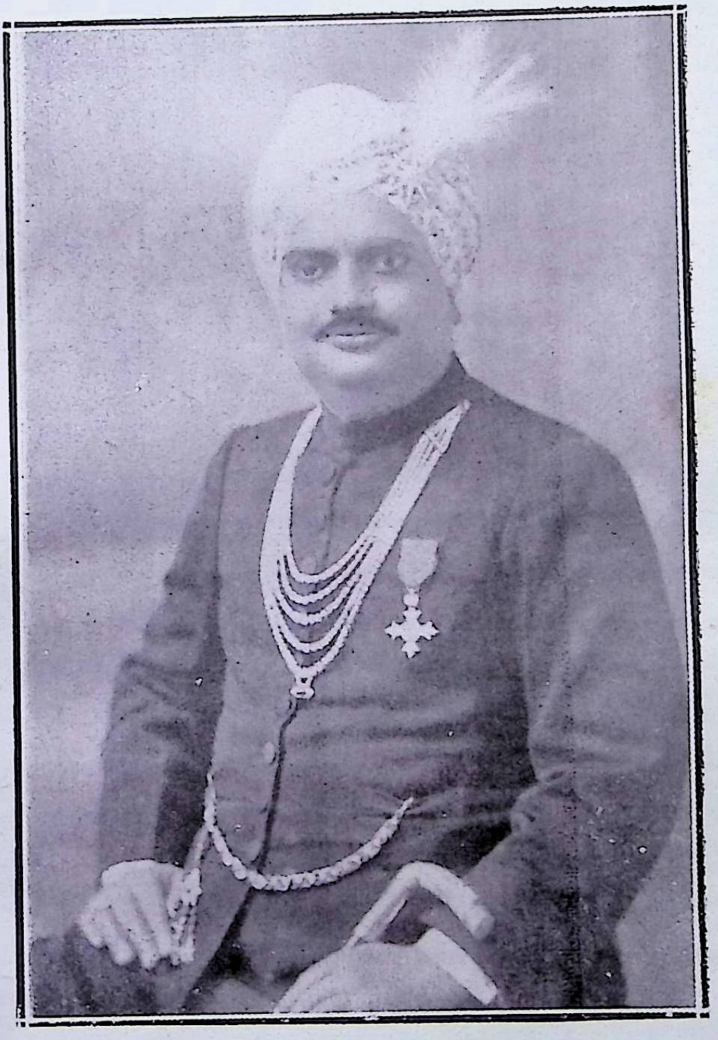

श्रीमान् राजा श्रीहरिहरप्रसाद नारायणसिंहजी अमावांनरेश ।
सभापति–बिहारप्रांतीय ४ वैद्यसंमेलन **गया** ।

कि मेरी स्त्री को बात की पीड़ा है, आप उसे देख कर अच्छा कर दें।" मुझे अपने क्वार्टर पर ले गये। मैंने उनकी स्त्री की अवस्था देखी। उम्र उसकी २२ वर्ष की थी, चल-फिर नहीं सकती थी। जाँच करने से ज्ञात हुआ कि ज्वर भी बहुत पुराना है। यकृत का भी दोष है। शरीर शीर्ण (अति दुर्बल) शोथयुक्त है, हृद्रोग है, शिर में चक्कर आता है। विष्टम्भ भी है। मन्दाग्नि और बहुमूत्र भी है। सारे शरीर में बात-पीड़ा है। विशेषतः त्रिक (डाँड, कमर) तथा पाष्णि (ऐंड़ी) में कभी-कभी ऐसा भी बोध होता था कि आग से जलती हुई सूई स्थान-स्थान पर शरीर में घुसाई जा रही है!

मेरे हृदय में भी अधिकांश निराशा ही ने अधिकार कर लिया; परन्तु 'जब तक साँस तब तक आस'—'दृष्टारिष्टोऽपिजीवति'—इस विचार से मैंने ईश्वर का नाम लेकर चिकित्सा आरम्भ कर दी। सोचा, मेरे अनुभूत औषधों का अभी उपयोग भी तो नहीं हुआ है, कदाचित् लाभ ही हो जाय। पथ्य केवल गूलर के फल और दूध ही रक्खा। तीन मास में एकदम आश्चर्य रूप से आराम हो गई। मुझे सन्देह था कि कदाचित् यह रोग उसको फिर हो और बढ़कर हानि पहुँचावे; किन्तु सवा दो वर्ष होते हैं कि भारत-प्रसिद्ध वैद्यवर पं० ब्रजबिहारी चौबे जी के यहाँ पटने में मुझसे रामनेवाज सिंह से भेंट हुई। मैंने सब समाचार पूछा। आपने कहा कि आज-कल तो वह ट्रेनिंग शिक्षा पटने ही में पा रही है। वह कुछ ज्वर और गलसुआ (कर्णपात शोथ) से पीड़ित है। यहाँ औषधार्थ आया हूँ। वह अपने पुराने रोगों से एकदम मुक्त हो गई है। आप कृपा कर उसे फिर देखें। वह दर्शन भी चाहती है। मैंने जाकर जो देखा तो आनन्द गद्गद हो गया। पहले की कोई भी बीमारी मध्य के ६ वर्षों के भीतर कभी नहीं हुई। गलसूए में उदुम्बरसार का प्रयोग किया। वह शीघ्र आरोग्य हो गई। विगत वर्ष मुजफ्फरपुर-डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन बाबू चन्द्रशेखर प्रसाद जी एम० ए० महोदय से उसकी चर्चा हुई। आपने कहा कि वह अब भी अच्छी अवस्था में है। उसके गाँव (मोरसँड़, डाकघर रूनीसैदपुर, जिला मुजफ्फरपुर) में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से एक कन्या-पाठशाला अलग बनवा दी गई है, जहाँ वह अध्यापिका है। इसके पहले भी वह अपने ही घर में पढ़ाती थी।" यह असाध्यतर रोग केवल 'गूलर-विज्ञान' ही के प्रभाव से छूटा है।

रामकेवल तिवारी (खोरैठा ग्राम, थाना विक्रम, जिला पटना) को विगत बैशाख मास में दाहिने हाथ के अंगूठे में बड़ी बिच्छी ने डंक मारा। विष जोरों से चढ़ने लगा। मन्त्र जानने वाले दो सज्जन आकर झाड़ने लगे। विष की पीड़ा कंधे तक पहुँच गई थी। मन्त्र के प्रभाव से कभी-कभी कन्धे से पीड़ा की लहर मणिबन्ध (कलाई) पर्यन्त लौट आती थी। अर्थात् उस अवस्था में भी अंगूठे से कलाई तक भयङ्कर पीड़ा रहती ही थी। मंत्र से झाड़ना बन्द करने पर फिर पीड़ा की लहर कन्धे तक पहुँच जाती थी आध घंटे के पीछे इनके पड़ोसी पं० इन्द्रदेव तिवारी उदुम्बरसार की डिब्बी लेकर पहुँचे। नहरनी से डंक की जगह से थोड़ा लहू निकाल कर उसमें बिना पानी मिलाये ही उदुम्बरसार भर दिया। कुछ ही मिन्टों के बाद बिच्छू मारने का कोई कष्ट नहीं रहा। झिनझिनी भी नहीं रही। इसी प्रकार बड़े हड्डों का विष भी भयङ्कर होता है। डङ्क मारे हुए स्थान से संभव हो तो छुरी आदि से कुछ रक्त निकाल कर उदुम्बरसार वा गूलर के पत्तों की लुगदी छाप देने से सारा कष्ट दूर हो जाता है। मेरे मकान के मेरे कर्मचारी इन्द्रदेव तिवारी को भी इन्हीं बड़े हड्डों ने काटा बिना लहू निकाले ही पानी से गूलरसार को तरल कर मल दिया। पट्टी भी नहीं दी गई,

पर पीड़ा तुरन्त शान्त हो गई।

कई वर्ष हुए कि पलकधारी पाण्डे नाम के एक सज्जन असाढ़ में छप्पर छाने के लिये खपड़े निकाल कर ऊपर देने लगे कि आपके अंगूठे को गेहुँअन साँप ने आकर पकड़ लिया, आपने उसे बहुत देर में झटक कर छुड़ाया। शायद साँप मारा भी गया। आपने एक ही बार तीन रुपये भर उदुम्बरसार को खा लिया। सारा विष का प्रकोप जाता रहा। लहर भी नहीं आई। मानों साँप ने काटा ही नहीं था।

६—सम्प्रति हमारा प्रधान कर्तव्य

उन विषयों पर फिर कुछ कहना पिष्टपेषण वा चर्वितचर्वण ही है, जिन पर इस सम्मेलन के पूर्व सभापतिगण समुचित प्रकाश डाल गये हैं—और आवश्यक उचित, उपकारक तथा उपादेय उपदेश दे गये हैं। परन्तु सम्माननीय चिकित्सकवर्य्यों! अद्यावधि आयुर्वेद-चिकित्सा विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों के जलाये जाने पर भी, अवशिष्टांश मात्र से भूमण्डल की सब चिकित्साओं से अधिकांश प्राणरक्षक केवल प्रसिद्ध ही नहीं सिद्ध भी है। आप उसे ऐसे उपकारक प्रकार और विचार के अनुसार व्यवहार में ले आवें कि आपको धर्म और यशोधन सबकी प्राप्ति हो। कहा भी है—

यात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयाम्प्रति;
शर्त्तते यश्चिकित्सायां स सर्भमतिवर्त्तते।

अर्थात् न अपने लिये, न किसी विशेष काम के लिये, बल्कि केवल प्राणियों पर दया की दृष्टि से जो चिकित्सा करते हैं—वे सब धर्म-कर्म करने वालों से बढ़ कर हैं।

न तो प्राणरक्षण वा जीवदान के समान कोई धर्म है, न इसके विपरीत प्रकार के समान अधर्म ही है। यदि आप कहें कि इस प्रकार के काम से हमारी संसार-यात्रा वा योग-क्षेम कैसे चलेगा? इसके चलाने वाले स्वयं परमात्मा हैं जो गीता में कहते हैं कि "तेषान्नित्याभियुक्तानां, योगक्षेमम्वहाम्यहम्"। फिर आयुर्वेद ने भी कहा है कि 'ईश्वराणाम्वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये—अर्थात्—राजा और धनवानों से वृत्ति मात्र के लिये धन लेना, अधिक नहीं।"

सज्जनो! कहाँ तक आपके समक्ष निवेदन करूँ? अब आपका अधिक समय न लूँगा। आशा है, जिस प्रकार बड़े धैर्य से आपने मेरी बातें सुनने की कृपा की है, उसी प्रकार उनकी उपयोगिता पर भी विचार करने की उदारता दिखावेंगे। मेरी बुद्धि को सठियाई हुई समझ कर कृपया मेरी बातों की उपेक्षा न करें! मेरे जीवन-भर के अनुभवों से आपकी हानि कदापि नहीं हो सकती। सुविख्यात पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी ने एक बार, आज-कल की नई रोशनी से चकचौंधे विकृतमस्तिष्क मनुष्यों से झुंझला कर, जले हृदय से कहा था।

'तुम्हारो कब उतरैगो भूत।
अपने पुरुषन मूढ़ बतावत, ऐसो निलज कपूत।'

अब आप से अधिक कुछ न कह कर जगदम्बा से प्रार्थना करते हुए अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

अयि अकारणकरुणामयि परमेश्वरशक्ते मातः!

(मालिनी छन्द)

यदपि कुछ अभी लों, ठीक मैंने न माँगा,
तदपि सुजननी-सी इष्ट देती रही तू।
अब समुचित मेरी प्रार्थना है हठीली,
अभिलषित हमारी वस्तु दे दी वही तू॥
यह उचित चिकित्सा-कार्य्य मैंने न माँगा,
पर यह मुझको दे यों किया है सुभागा।
अमृत-सम न मैंने इष्ट यज्ञाङ्ग चाहा,
पर बरबस दे माँ, प्रेम तूने निबाहा॥
फिर हित सब देना तो सताना बुरा है,
समुचित सुख देना तो दुखाना बुरा है।
हित कर पीछे ही रुलाना बुरा है,
सुयश सु जनता में दे हँसाना बुरा है॥
यह सब हँसने की बात ही है हमारी,
त्रुटि तनिक नहीं है, हे सुमातः तुम्हारी।
मति छिन छिन ही में भूलती है हमारी,
अनुपम अनुकम्पा पालती है तुम्हारी॥
समिति सुभिषजों की पूर्णकामा सदा हो,
अमिति निज गुणों से ख्यातनामा सदा हो।
अभिनव चिर-रोगोत्पात 'पीड़ाहरी' हो,
विकल सुजनता की पूर्ण रक्षाकरी हो॥

अब अन्त में धन्वन्तरि-रूप विष्णु भगवान् से प्रार्थना है कि—

श्रीमान् रुजार्दित जनानवनाय सिन्धो—
र्धन्वन्तरिर्जगतियोऽवतार विष्णुः।
मत्तश्च गूलरगुणान्प्रथयन्निन्दानीम्,
मत्तः स वैद्यसमिति सफलान्तनोतु च॥

(बरवा)

सब पढ़ने-लिखने का यह फल काम।
भजे निरन्तर मन से सीताराम।
इसी भाँति भिषजों का है यह धर्म।
आतुर जन का समुचित सेवा-कर्म॥

इति शम्।

श्री धन्वन्तरयेनमः

बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्य सम्मेलन के सभापति

कविराज श्री नृत्यगोपाल वन्द्योपाध्याय, कविरत्न का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

बंगीय १२९१ साल आश्विन मास (१८८४ के अक्टूबर में) ग्राम सादीपुर ज़िला मुरशिदाबाद के बहु प्रतिष्ठित एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण वंश में आपका जन्म हुआ है। पिता जी का नाम शशिभूषण वन्द्योपाध्याय था। आपको अपने जन्म के चौथे और पाँचवे वर्ष में ही क्रमानुसार माता जी और पिता जी का वियोग सहना पड़ा।

१३०८ बंगीय तदनुसार १९०१ इसवी साल में स्थानीय एम० ई० स्कूल से उत्तीर्ण होकर राशबिहारी सांख्यतीर्थ टोल में इन्होंने संस्कृत पाठारम्भ किया और उसके बाद कुछ दिनों तक व्रजेन्द्र विद्याभूषण टोल में अध्ययन किया।

१३१३ साल (१९०६ जून) ज्येष्ठ मास में भागलपुर के विख्यात कविराज अनुकूल चन्द्र चट्टोपाध्याय (जो वर्तमान महामहोपाध्याय कविराज श्री गणनाथ सेन के पिता विश्वनाथ विद्या कल्पद्रुम के छात्र थे) की प्रथमा कन्या से पाणि ग्रहण हुआ और उसके बाद से वहाँ ही आयुर्वेदाध्ययन आरम्भ कर दिया। १३१८ साल (८ जून, १९११ ई०) को मुंगेर में चिकित्सा करने के लिये बैठ गये।

उस समय मुंगेर में आयुर्वेद के मूल्यवान औषधों से चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों की संख्या बहुत कम थी। हकीमी और डाक्टरी का ही विशेष प्रचार था। वंश परम्परा से वैद्य कहलाने वाले भी प्रायः हकीमी चिकित्सा की ही विशेष सहायता लेते थे। आयुर्वेदोन्नति और इसके पूर्ण प्रचार के लिये इन्होंने अपनी चिकित्सा के प्रारम्भ में बिना फीस और कहीं-कहीं बिना औषध के मूल्य लिए ही आयुर्वेद का चमत्कार दिखाकर लोगों में इसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने लग गये।

इस प्रकार कुछ दिनों तक कार्य्य होने के बाद स्थानीय पं० श्री बुलाकी पाठकजी बी० ए० बी० एल० वकील (जो आयुर्वेद को उच्च शिखर पर देखने के लिए अत्यधिक व्यग्र थे) से मिल कर इन्होंने इसके नियमित कार्य होने के लिए एक संस्था खोली जिसका नाम "आयुर्वेद प्रचारिणी समिति" पड़ा। कुछ दिनों के बाद इसके बढ़ने पर इसका नाम "मुँगेर ज़िला आयुर्वेद प्रचारिणी समिति" कर दिया गया।

इन्होंने अपने भतीजे श्री मन्मथनाथ वन्द्योपाध्याय को जो उस समय एफ० ए० क्लास में थे कौलेज छोड़ाकर आयुर्वेदाध्ययन में प्रवृत्त किया और श्रीमान बुलाकी पाठकजी के पुत्र श्री अनूपलाल पाठक को मैट्रिक पास करने के बाद आगे कौलेज में पढ़ाने न देकर आयुर्वेद में ही लगा दिया। इन दोनों छात्रों को गवर्नमेंट बिहार उड़ीसा संस्कृत समिति से आयु-

कविराज श्री० नृत्यगोपाल वंद्योपाध्याय, कविरत्न, मुंगेर।

सभापति—बिहारप्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन।

र्वेदाचार्य परीक्षा पास कराकर और अनेक प्रामाणिक संस्थाओं से अनेक उपाधि आदि प्राप्त कराया और स्वयं भी अपनी सारी अभिज्ञता बता कर दोनों को आयुर्वेद के पूर्ण प्रचार में सदा यत्नवान रहने के लिये उपदेश दिया। श्री अनूपलाल पाठक मुँगेर के श्री दुर्गाविद्यालय में अवैतनिक आयुर्वेदाध्यापन कर प्रति वर्ष मध्यमा और आचार्य परीक्षाओं में छात्रों को उत्तीर्ण करा रहे हैं। भागलपुर में मनोनुकूल कोई ऐसी संस्था न देख कर जहाँ आयुर्वेद का सम्यक् पठन-पाठन हो सके वहाँ स्वयं अपने बड़े भाई श्री यतीन्द्रनारायण वन्द्योपाध्याय के स्मारक-स्वरूप उनके नाम पर यतीन्द्र आयुर्वेद विद्यालय बिलकुल अपने खर्च से खोल कर वहाँ श्री मन्मथनाथ वन्द्योपाध्याय को अध्यापनार्थ बैठा दिया। वहाँ भी बहुत छात्र पढ़ते हैं और परीक्षोत्तीर्ण हो कर प्रचार कार्य में कटिवद्ध हो जाते हैं। श्री ईश्वरीप्रसाद कुमर, श्री विद्यानन्द, श्री रामप्रसाद दासजी आदि अनेक छात्र अनेक स्थानों में प्रचार कार्य कर रहे हैं। अनेक चिकित्सकों को प्रारम्भिक चिकित्सा के लिए अपने पास से १००–२०० रुपये के औषध भी देकर इन्होंने सहायता की है।

आयुर्वेदोन्नति में सफल मनोरथ देख कर इन्होंने बाढ़ के विहार प्रान्तीय वैद्य सन्मेलन के अष्टम अधिवेशन के अवसर पर नवम अधिवेशन मुँगेर में करने के लिये निमन्त्रण दे दिया। इस अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष रहे और श्रीमान् बुलाकी पाठकजी को मन्त्री होने के लिये आपने वाध्य किया। अस्तु! आप दोनों के असीम परिश्रम और साथ-साथ भगवान की कृपा से कार्य बहुत ही सुन्दर रूप से निबह गया।

बंगीय १३४० साल १९३४ के भूकम्प में इनकी पत्नी का देहावसान हो गया। उनकी आत्मा की तुष्टि के लिये इन्होंने मुंगेर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में सालाना साढ़ेसात सौ रुपया का औषध देने की प्रतिज्ञा कर उनके नाम से "योगवासिनी दातव्य आयुर्वेद चिकित्सालय" की स्थापना स्थान दिग्घी ज़िला मुंगेर में की है।

शहर में भी आपकी चिकित्सा सर्व प्रथम समझी जाती है और जहाँ तक साध्य हो सकता है आयुर्वेद के लिये तन-मन-धन से सदा यत्नवान् रहते हैं।

श्री अनूपलाल पाठक

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

बिहार प्रान्तीय चतुर्दश वैद्यसम्मेलन के सभापति

कविराज, श्री नृत्यगोपाल वन्द्योपाध्याय कविरत्न का

अभिभाषण

माननीय स्वागताध्यक्ष महोदय एवं समागत सभासद् वृन्द ! हमारा सश्रद्धाभिवादन ग्रहण करें ।

मैं नहीं समझता हूँ कि किस अभिप्राय से हमारे ऐसे सभी भाँति से अयोग्य एक व्यक्ति को विहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के दायित्वपूर्ण सम्मानित पद पर आप लोगों ने प्रतिष्ठित किया है ।

पञ्चानन सदृश पण्डित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल जी ने जिसका उद्बोधन किया है तथा जिस आसन को—आयुर्वेद-वारिधि पं० व्रजविहारी चतुर्वेदीजी, माननीय कविराज श्री शारदाचरण सेनजी, देवताप्रतिम वैद्यवर देवताचरणजी, विहार-रत्न आयुर्वेद-गौरव पण्डितप्रवर शिवचन्द्र मिश्रजी, ऋषितुल्य आचार्य्य श्यामाचरण चतुर्वेदीजी, प्रथितयश कविराज श्री विधुभूषण सेनजी, आयुर्वेदमुकुटमणि पण्डित हरिनारायण चतुर्वेदीजी, चिकित्सककुलतिलक श्री चन्द्रशेखरधर जी शर्म्मा प्रभृति मनीषिवृन्द ने गौरवान्वित किया है; उसकी सम्मानरक्षा मुझ ऐसे नगण्य व्यक्ति से कहाँ तक हो सकेगी, विचारणीय है ।

पण्डितप्रवर रामावतार शर्म्मा जी का सतत उद्योग, अक्लान्तकर्मी पण्डितवर श्रीकान्त शर्मा जी की आ-प्राण चेष्टा और पण्डित गंगाधर शर्म्मा जी के पांडित्य ने जिसको गौरव के उच्च शिखर पर अधिष्ठित कर दिया है ; उसका गुरुदायित्व मुझसे सर्वथा अयोग्य व्यक्ति से किस प्रकार निर्वाह होगा, समझ नहीं रहा हूँ । तब जिस प्रकार विक्रमादित्य त्यक्त-सिंहासन पर बैठ कर आसनप्रभाव से वर्णज्ञानहीन गोरखिया-बालक भी ज्ञानदुरूह जटिल विषय की सम्यक् मीमांसा कर लेता था, उसी प्रकार पूर्व-पूर्व सभापतिगण की प्रतिभा से समुज्वल इस आसन के गुण से मैं भी इसकी सम्मान-रक्षा कर सकूँगा, इस आशा से आज आप लोगों के स्नेह-दत्त पद-गौरव की उपेक्षा हमने नहीं की ।

जिस प्रेम, शुभकामना एवं उदारता से आप लोगों ने हमको सभापति पद पर वरण किया है, उसी प्रकार मेरी समस्त त्रुटियों, विच्युति एवं अक्षमतावों को भी क्षमा करेंगे ।

माननीय सभासद्वृन्द ! आप लोगों की ऐकान्तिक कामना आयुर्वेद के लुप्त गौरव का पुनरुद्धार करना है और इसीलिये इस सम्मेलन की उत्पत्ति भी हुई है । विहार-प्रान्तीय-वैद्यसम्मेलन के द्वारा अनेकों लुप्त-गौरव उद्धार किये गये हैं और अभी तक बहुत अधिक उन्नति भी हुई होती ; किन्तु बीच में ही साधकगण के मध्य आत्मघाती गृहविवाद के कारण उन्नति स्थगित हो गई थी । आज बड़ी ही प्रसन्नता के साथ प्रकाश करता हूँ कि उस अभिसम्पात-

स्वरूप आत्मघाती नीति का अवसान हो गया है। ईश्वर से प्रार्थना है कि फिर कभी भी हम लोगों के बीच सर्वथा ऐसी लज्जाकर-परिस्थिति का प्रादुर्भाव न होवे। हम लोगों को सदा ध्यान रखना होगा कि हम लोग प्रत्येक वैद्य परस्पर सहोदर हैं। वह मैथिल हों, शाकद्विपीय हों, कन्यकुब्ज हों, वैश्य-शूद्र हों, बंगाली-बिहारी हों वा उत्तर पश्चिम प्रान्तीय जो कोई क्यों न हों वैद्यमात्र हम लोगों के एकान्त अपने जन हैं।

मुग्धबोध का एक सूत्र है "सहर्णैर्घः' णें परे पूर्वस्य णेन सह घं स्यात्। अर्थात् समान स्वर परे रहने से पूर्व स्वर के साथ मिल कर वह दीर्घ हो जाता है। हे हमारे माननीय वैद्य-वृन्द ! हम लोग सब कोई समान स्वर हैं। हम लोग पूर्व से मिल कर दीर्घ अर्थात् बड़े होंगे। पूर्व का लोप करना न होगा। मेल की शक्ति कितनी प्रबल होती है, यह आप विद्वानों को समझाने की चेष्टा करना मेरी वातुलता मात्र होगी। नीति शास्त्र में कहा है—

"अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य्य साधिका।
तृणर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥"

हे हमारे सहोदरवृन्द ! हमारे समक्ष प्रबल मातङ्ग पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान अपने सिंह पराक्रम से आयुर्वेद के नन्दन-कानन को छिन्न-भिन्न कर रहा है। आज यदि आप लोग एकताबद्ध होकर उसकी रक्षा की चेष्टा नहीं करेंगे तो वह शीघ्र ही हत-श्री एवं हत-गौरव हो जायगा।

गत नवमाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के अभिभाषण में हम लोगों के उन्नति-रोधक कई कारणों पर प्रकाश डाला गया था। इस जगह उनका पुनरुल्लेख कर विशेष समय नष्ट नहीं करना चाहता तब भी उनमें से दो-एक प्रधान विचारणीय विषय पर अवश्य निवेदन करूँगा।

सर्व्व प्रथम और प्रधान वाधा हमलोगों का अपने अभिज्ञता-लब्ध-ज्ञान को प्रचार न करके गुप्त रखना है। आज पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान ने जो इतनी उन्नति की है, उसका प्रधान कारण राज-प्रसाद होते हुए भी उसके आचार्यगण द्वारा सरल भाव से अभिज्ञता-प्रचार करना भी है। हसने पचास वर्ष में जो अभिज्ञता प्राप्त की है, उतनी यदि प्रथम प्रवेशार्थी को ज्ञात हो सके तो, उस अभिज्ञता-प्राप्ति के कारण उसे पुनः पचास वर्ष की अपेक्षा कर जीवन के मूल्यवान समय को नष्ट करना न होगा। उतने दिन में वह नई-नई गवेषणा में मनोनिवेश कर और भी अधिकाधिक अभिज्ञता-सम्भार से अपने परिवर्त्ती आचार्यगण समृद्ध कर सकेगा। इस प्रकार उत्तरोत्तर नये-नये ज्ञान सम्भार से आयुर्वेद-भंडार परिपूर्ण होगा।

द्वितीय वा सर्व्वापेक्षा गुरुतर बाधा है—आयुर्वेद के साधारण-विशुद्ध औषधालय का अभाव। आयुर्वेद शास्त्र में कृतविद्य अनेक मेधावी छात्र भी प्रथम जीवन में एक मात्र विशुद्ध औषध के अभाव से अपनी प्रतिभा प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। वे समझते हैं कि अमुक रोग में अमुक औषधि के प्रयोग करने से शीघ्र फल होगा; किन्तु यथोपयुक्त औषधि अपने पास न रहने के कारण उसके अभाव में अन्य खरीदी हुई औषधि वा अविशुद्ध औषधि प्रयोग करके यश एवं प्रतिपत्ति दोनों ही का विसर्जन कर देना पड़ता है। इसी प्रकार दो-चार बार अकृतकार्य्य हो जाने पर उनके जीवन का समस्त आशा-भरोसा नष्ट हो जाता है। इन्हीं कारणों से अनेक प्रतिभा जिनसे आयुर्वेद गौरवान्वित होने की आशा रख सकता है अङ्कुरावस्था में ही विनष्ट हो जाती है। दूसरी ओर मेडिकल कालेज से पास कर डाक्टरगण जिस किसी भी

स्थान पर बैठ कर आवश्यकतानुसार उपयुक्त औषधि की व्यवस्था कर अपनी प्रतिभा का विकास करने का सु-अवसर पाते हैं। एक ओर आयुर्वेद के सेवकों को दारुण असुविधाओं के साथ संग्राम कर कण्टकाकीर्ण पथ में अग्रसर होना पड़ता है। दूसरी ओर डाक्टरी चिकित्सकगण अनेक सुविधाओं से परिपूर्ण मार्ग में चलते हैं। तब इतनी असुविधाओं और वाधा-विपत्तियों के होने पर भी आज जो आयुर्वेद सगौरव मस्तक उठाये हुए है, उसका कारण इसकी अपौरुषेय-शक्ति, इसके गम्भीरज्ञान, इसकी अव्यर्थ औषधावलि और इसकी सत्य वैज्ञानिक-भित्ति पर स्थापित रहना है।

वर्तमान समय में आयुर्वेद के प्रति देशवासियों का जो अनुराग बढ़ रहा है एवं प्रतिवर्ष इसकी असंख्य कृतविद्य सन्तान सुयोग्यप्रतिभा लेकर जगह व जगह जिस प्रकार फैल रही है; इसमें यदि आयुर्वेदीय विशुद्ध औषधियों का सर्वत्र सुलभ प्रचार किया जावे तो बहुत ही थोड़े दिनों में आयुर्वेद के यशःप्रकाश से सारा देश प्लावित हो जायगा। मेरी इच्छा है कि विहार-प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन एक ऐसी आयुर्वेदिक प्रतिष्ठान स्थापित करे, जिसको समस्त देश एवं वैद्य वृन्द अपनी सम्पत्ति समझे, जिसका लभ्यांश कोई बाँट न ले और जो किसी व्यक्ति विशेष के प्रभाव से परिचालित न होवे। आप विचारें, यदि विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के परिचालनाधीन में सर्वसाधारण की सहायता से ऐसा आयुर्वेदीय औषधालय स्थापित किया गया, जो सामान्य लाभ में ही सर्वत्र अकृत्रिम औषध सर्वराह (supply) की व्यवस्था कर सके तो दिन-प्रतिदिन आयुर्वेद की श्रीवृद्धि के अतिरिक्त जिन नये-नये वैद्यों को विशुद्ध औषधि के अभाव से अपनी प्रतिभा के प्रकाश में कठिनाइयाँ होती हैं, उनकी असुविधा दूर हो जायँगी। सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि, इस संस्था पर अन्य संस्थाओं की अपेक्षा लोगों की सहानुभूति अधिक रहेगी क्योंकि इसके लभ्यांश बाँटे नहीं जाने के कारण यह स्वार्थ कलुषित होने की आशंका से रहित रहेगा। जो वस्तु अपनी नहीं है—जिसके हानि-लाभ में किसी व्यक्ति-विशेष की हानि वो लाभ नहीं होता बल्कि जो सर्व-साधारण की सम्पत्ति समझी जाती है, स्वभावतः उसपर लोगों की श्रद्धा एवं विश्वास स्थापित हो जाता है। हमको विश्वास है कि यदि यह उपयुक्त तत्वविधान में परिचालित हुआ तो बहुत ही शीघ्र यह एक विशाल प्रतिष्ठान में परिणत होकर प्रत्येक शहर में अपनी शाखा स्थापित करते हुए समस्त दातव्य-औषधालयों एवं सर्व-साधारण में विशुद्ध औषध सर्वराह (supply) करके आयुर्वेद के समस्त अभाव को दूर कर देगा।

जिस समय प्रत्येक शहर में इस विभाग की शाखा स्थापित हो जायगी उस समय आयुर्वेदीय चिकित्सकगण प्रतियोगिता क्षेत्र में डाक्टरों के साथ समान ताल में पैर उठाते हुए अग्रसर हो सकेंगे। आजकल की तरह "कौन औषधि दे सकेंगे" ऐसा सोच कर रोगी की व्यवस्था न करनी पड़ेगी; प्रत्युत कौन-सी औषधि उपयुक्त होगी इसी पर लक्ष्य करके वैद्यगण व्यवस्था करेंगे। आज इस शुभ मुहूर्त में सारे प्रान्त के आयुर्वेद धुरन्धरगण उपस्थित हैं। यदि सभों की विवेचना से हमारा प्रस्ताव समीचीन समझा जावे तब इसी अवसर में इसकी एक परिकल्पना निर्माण करके इसी सुवर्ण सुयोग में इसका रूप दान करें।

भद्र महाशयगण! और एक काम हम लोगों को करना होगा। सारे प्रान्त के वैद्यवृन्द को इसी सम्मेलन के मण्डप में समवेत कर ''विहार प्रान्तीप वैद्य-सम्मेलन" जिसमें सारे विहार के वैद्यवृन्द का तीर्थ भूमि स्वरूप हो जावे कर देना पड़ेगा। इसके वार्षिक अधिवेशन

में योगदान देकर विहार के प्रत्येक वैद्य अपने को धन्य समझेंगे। धर्मप्राण भक्त जिस प्रकार तीर्थ में स्नान, तर्पण और इष्ट देवता की पूजा करके धन्य हो जाते हैं; हम लोग भी उसी प्रकार इस सम्मेलन-क्षेत्र में परस्पर मिल कर प्रेम, शुभकामना और प्रीत्यर्घ विनिमय कर धन्य हो जायँगे। इसके लिये हम लोगों का प्रथम एवं प्रधान कर्तव्य होगा समस्त प्रान्त के वैद्यगण की नामावलि संग्रह कर प्रत्येक के निकट प्रेमपूर्ण आवेदन द्वारा सम्मेलन का सभ्य श्रेणीभुक्त होने के लिये वाध्य करना। लक्ष्य रखना होगा जिसमें एक भी वैद्य हम लोगों के इस प्रेम-बन्धन और भ्रातृत्व-दावी की उपेक्षा न कर सके। इसके बाद हम लोगों की सम्मिलित शक्ति के अमोघ अभिजान से आयुर्वेद की समस्त वाधा-विपत्ति दूर कर इसको गौरवमय सिंहासन पर स्थापित करेंगे।

हे हमारे महामान्य पूज्य वैद्यवृन्द! इस जीवन-नाट्य के वर्तमान पञ्चमाङ्क शेष कर यवनिकान्तराल में विलीन होने के पूर्व आप लोगों के आशीर्वाद से अपने चिर-वांछित मिलन-मन्दिर को क्या नहीं देख सकेंगे?

मिलने के बाद ही हम लोगों को एकान्त अपरिहार्य्य गवेषणा की ओर मनोनिवेश करना होगा। इस समय आयुर्वेद को देश काल पात्र के उपयोगी किये विना नहीं चलेगा। इसके अभ्यन्तरस्थ सूक्ष्म तत्व समूह जो इशारा मात्र से वर्णित हुए हैं उसको विस्तृत रूप से सरल भाव में प्रचार करना होगा जिससे सर्व-साधारण समझ सकें। आज पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान जिस तत्व को आविष्कार करने का गर्व अनुभव करते हैं उसको बहुत सहस्र वर्ष पूर्व त्रिकालदर्शी महर्षिगण आयुर्वेद में सन्निवेशित कर गये हैं। तब वे सब अति सूक्ष्म भाव से आयुर्वेद-भंडार में स्थापित किये गये हैं। अब इस जगह आयुर्वेद के जीवाणु-तत्व (जिसको सर्व-साधारण पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का खास आविष्कार समझ रहे हैं) के सम्बन्ध में कुछ आलोचना करेंगे। महर्षि चरक ने कहा है—

"आवाभूत विषवायवाग्नि संप्रहारादि समुत्थ"

यहाँ भूत शब्द से दूषित जीवाणुपुंज ज्ञात होता है "असात्म्य गंध वाष्प सिकता पांशु धूमोपहतम्" अर्थात्—दूषित गंध, दूषित वायु, दूषित बालू, दूषित धूली, दूषित धूम्र-युक्त स्थान ही जीवाणुपुंज के अनुकूल आश्रयस्थल कहा गया है। सुश्रुत में कहा है—

"प्रसङ्गाद्‌गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।
कुष्टं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥"

इस श्लोक में निदान टीकाकार श्रीकण्ठदत्त "औपसर्गिक रोगाश्च" का अर्थ "भूतोपसर्गजाश्च" कहे हैं। यहाँ भूत शब्द से प्राणिगण का बोध होता है सुतरां जिन समस्त प्राणीविशेष से विशेष-विशेष रोग-समूह उत्पन्न होते हैं उन्हीं-उन्हीं जीवाणु विशेष का ग्रहण किया गया है। इससे जीवाणुपुंज का वायु का प्रवाह में विस्तृत होने की आभास पाया जाता है—इससे समझा जाता है कि वायुप्रवाह रोगोत्पादक जीवाणुपुंज प्रवाहित होकर स्वस्थ शरीर में संक्रामित होकर विशेष-विशेष रोग उत्पन्न करते हैं। तब यह बात हमलोगों को अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि आयुर्वेद में जिस तत्व का आभास मात्र दिया गया है पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में

वही तत्व अति विस्तृत भाव में आलोचना वा गषेषणा द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से दिखाया गया है। आयुर्वेद शास्त्र "जीवाणुपुञ्ज द्वारा रोग संक्रामित होता है" इतना ही कह दिया है उसी को पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान अनुशीलन एवं गवेषणा द्वारा कौलरा, प्लेग, डिप्थीरिया (कण्ठ रोहिणी) वसन्त प्रभृति पृथक्-पृथक् रोगों के जीवाणुओं का पृथक्-पृथक् रूप, लक्षण, स्थिति, व्याप्ति आदि का निर्णय कर विस्तृत कर दिया है।

आज यदि आयुर्वेद की गवेषणा रहती—अनुशीलन (Research) करने के लिये मेधावी छात्र एवं अध्यापकगण को राजदत्त वृत्ति (Scholarship) रहती तो आज पाश्चात्य विज्ञान ने चिकित्सा शास्त्र को जितना दिया है उसकी अपेक्षा बहुत अधिक सम्पद से आयुर्वेद चिकित्सा-विज्ञान को विभूषित कर देता।

अस्तु! जो हो नहीं सकता उसके लिये सोच कर कालक्षेप करना अच्छा नहीं है। जो होना चाहिये आज उसी की चर्चा करना आवश्यक है। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान की तरह राजदत्त सुविधायें हम लोगों को मिलने की आशा नहीं है। हमलोगों को स्वयं अपना गवेषणागार निर्माण कर अनुशीलन का भार विज्ञ अध्यापक एवं मेधावी छात्र के हाथ में अर्पण करना होगा। अवश्य! ऐसा करने के लिये प्रचुर अर्थ का प्रयोजन होगा; किन्तु नहीं करने से भी आयुर्वेद का कल्याण नहीं है। जिस किसी रूप में हो हम लोगों को यह करना ही होगा। हमारा पूर्व वर्णित औषधालय स्थापित कर यदि उसको विस्तृत रूप से चलाया जा सके तो अर्थ का अभाव नहीं होगा। अर्थ की समस्या यदि दूर की जा सके तो अन्य समस्याएँ सहज ही हल हो जायँगी। भगवान के आशीर्वाद से उपयुक्त परिचालक गण के तत्वावधान में पटना आयुर्वेद महाविद्यालय दिन-प्रति-दिन उन्नत हो रहा है। उसमें यदि एक गवेषणागार निर्माण कर उसकी कृतविद्य अध्यापक मंडली एवं मेधावी छात्र-वृन्द की सहायता से अनुशीलन विभाग एवं प्रचार विभाग खुल सके तो शीघ्र ही आयुर्वेद उन्नति मार्ग में अग्रसर होगा।

माननीय महोदयगण! इसके बाद हम लोगों के प्रान्त में आयुर्वेद का जो अध्ययन हो रहा है, उस सम्बन्ध में दो-एक बात कह कर इस अकिञ्चितकर अभिभाषण को समाप्त कर दूँगा। इस प्रान्त के दो आयुर्वेद-प्रतिष्ठान विभिन्न पाठ्य, विभिन्न परीक्षा, विभिन्न नियमावलि द्वारा परिचालित होकर भविष्य आयुर्वेदाचार्य्यगण के बीच परस्पर भेद-भाव पैदा कर देता है। एक ही शास्त्र में व्युत्पन्न करने के विभिन्न पृथक् मान (सिलेवस) पृथक् परीक्षा और पृथक् प्रश्न-पत्र का निर्वाचन करना किस प्रकार सफलता दे सकती है, आप लोग विचार सकते हैं। मैं समझता हूँ कि यदि संस्कृत एशोसियेशन और महाविद्यालय दोनों के पाठ्य-क्रम एक हों, और यदि एक ही प्रश्नपत्र द्वारा परीक्षा कर कृतविद्य छात्रगण को समपर्य्याय में गिना जावे तो बहुत सुन्दर होगा। जिस प्रकार यूनिवर्सिटी परीक्षा में गवर्नमेंट कौलेज, जिला स्कूल और प्राइवेट स्कूल समूह सभी के छात्रों के एक पाठ्य, एक ही प्रश्नपत्र, एक ही परीक्षा और एक ही मानदण्ड में उनकी योग्यता निरूपित होती है, उसी प्रकार महाविद्यालय एवं एसोसियेशनान्तर्गत टोल-समूह और स्वतन्त्र छात्रवृन्द के पाठ्य और उनकी परीक्षा आदि स्थिरीकृत हो जावे तो अच्छा होगा।

कोई कोई सोच सकते हैं कि चिकित्सा विज्ञान के साथ साधारण पाठशाला का संयोग रखना उचित नहीं है। जिस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा देने के लिये मेडिकल कौलेज वो मेडिकल स्कूल हैं, दूसरे स्कूल वा कौलेज में डाक्टरी शिक्षा नहीं दी जाती है, उसी

प्रकार आयुर्वेद शिक्षा के लिये भी पृथक् व्यवस्था होनी उचित है; साधारण टोल में वा स्वतन्त्र भाव से उसका अध्ययन-अध्यापन बन्द कर देना चाहिये। सचमुच में यदि ऐसी व्यवस्था की जावे तो उसका परिणाम क्या होगा, उसको धीरभाव से चिन्ता कर देखने का अनुरोध करते हैं। आयुर्वेद शिक्षा के प्रति देशवासी का विशेष कर बड़े लोगों तथा जिनको बोर्डिङ्ग, मेस वा विदेश में लड़कों को रख प्रचुर खर्च कर शिक्षा देने की क्षमता है, उन लोगों की ऐसी प्रवृत्ति नहीं हुई है कि मेडिकल कौलेज वा स्कूल की तरह दल-के-दल-छात्र आयुर्वेद-विद्यालय में भर्ती हों। फल स्वरूप निर्धन छात्र जिन्होंने अपने घर के अन्न पर ही निर्भर कर अध्ययन आरम्भ किया है, आवश्यकतानुसार खर्च नहीं कर सकने के कारण आयुर्वेदाध्ययन त्याग कर टोल की पंडित वा पुरोहित की संख्या बढ़ा देंगे, एवं निरक्षर वैद्यनन्दनगण पिता व पितामह के आयुर्वेद ज्ञान को उत्तराधिकार सूत्र से दखल कर आयुर्वेद का सपिण्डीकरण (सत्यानाश) कर देंगे।

महामान्य सभ्यवृन्द ! एक बार २५ वर्ष पूर्व की अवस्था के साथ वर्तमान आयर्वेद-जगत की तुलना करके देखें। आज विहार प्रान्त में कितने अधिक शिक्षित आयुर्वेदाचार्य्य संस्कृत एसोसियेशन की कृपा से तैयार हो गये हैं, जो विहार के गौरव एवं आयुर्वेद के स्तम्भ स्वरूप हैं और वे ही लोग निकट-भविष्य में आयुर्वद को पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के सम-पर्याय में उन्नत कर देंगे यह हमारी आशा है। उसके बाद जब आयुर्वद, पाश्चात्य-चिकित्सा-विज्ञान की समकक्षता लाभ कर लेगा, तब हमको भी उसी की तरह पृथक रूप से स्कूल कौलेज की चहार-दिवारी के बीच रक्खा जा सकेगा। हमारा विचार है कि साधारण स्कूल-कौलेज में पढ़ कर स्वास्थ्य और अर्थ दोनों का श्राद्ध करते हुए सारे देश में असंख्य शिक्षित वेकार पैदा हो गये हैं, एवं मेडिकल कौलेज वा मेडिकल स्कूल में प्रवेश करना जिस प्रकार कठिन हो गया है, उससे यदि आयुर्वेद को ही सुपरिचालित किया जा सके तो बहुत ही शीघ्र देश की जनता पाश्चात्य-शिक्षा का मोह त्याग कर आयुर्वेद-शिक्षा के प्रति अपनी प्रवृत्ति प्रकाश करेगी। जिस मेडिकल कौलेज में प्रवेश करने के लिये आज तीक्ष्णधी छात्र प्रचुर-व्यय करके भी विफल मनोरथ होते हैं, वही मेडिकल कौलेज जिस समय भारत में प्रथम स्थापित हुआ था उस समय उसके प्रथम प्रवेशार्थी छात्रवृन्द के सम्मानार्थ फोर्ट विलियम दुर्ग से तपोध्वनि की गई थी। अवस्थानुकूल व्यवस्था करना ही विज्ञ का कर्तव्य है। वर्तमान मे हम लोगों की जैसी अवस्था है, उससे जितनी अधिक संख्या में शिक्षित वैद्य तैयार हों, उतना ही मंगल होगा। समकक्षता अर्जन के पूर्व ही यदि हम लोग मेडिकल कौलेज वा स्कूल के अनुकरण में फूल कर बड़ा होने की चेष्टा करें तो कहावत वाली भेक-जननि द्वारा हाथी का आकार लाभ करने की चेष्टा का परिणाम जो हुआ था, हम लोगों की अवस्था भी वैसी ही नहीं हो जायगी, यह कौन कह सकता है ? अतएव हे आयुर्वेद महारथी वृन्द ! आप लोग समवेत भाव से आयुर्वेद की वर्तमान अवस्था के प्रति लक्ष्य रख कर जिस प्रकार उसको परिचालित करना समीचीन समझें वैसा ही करें। संस्कृत एसोसियेशन से जो परीक्षा ग्रहण की जाती है उसके आप ही लोग परीक्षक हैं, आप ही लोग अध्यापक एवं आप ही लोगों में से अनेकों परिचालक-सभा के सभ्य अर्थात् मेम्बर भी हैं। पठन-पाठन वा परीक्षा-प्रणाली का यदि कुछ परिवर्तन करना चाहें तो उसको आप लोग अवश्य करें। मैं आयुर्वेद की प्रेक्टिकल परीक्षा-प्रणाली की ओर आप लोगों की तथा माननीय सेक्रेटरी महोदय की दृष्टि आकर्षित करता हूँ। प्रेक्टिकल परीक्षा का उद्देश्य

शिक्षार्थी व्यावहारिक एवं हथौटी क्रिया कहाँ तक कर सकता है, देखना है; किन्तु जिस प्रकार उक्त परीक्षा ली जाती है उससे प्रैक्टिकल परीक्षा का ध्येय सिद्ध नहीं होता है।

"छागलान्त्री" वा "व्याघ्री" किसको कहते हैं, अथवा वङ्गभस्म किस प्रकार बनाना पड़ता है, उसका मौखिक उत्तर न लेकर लिखित उत्तर ले लेने से ही काम चल सकता है। उसके लिये परीक्षक महाशय वा छात्रवृन्द को हैरान करने की आवश्यकता नहीं। प्रैक्टिकल परीक्षा प्रकृत-प्रेक्टिल होना चाहिये अर्थात् द्रव्य-परीक्षा के लिये औषधद्रव्य समूह जड़ी-बूटी धातूपधातु आदि मौजूद रख कर उसके सम्बन्ध में प्रश्न करना उचित है। कर्माभ्यास के सम्बन्ध में यन्त्रादि का स्थापन, पारदादि का तत्परतापूर्वक परिमापकरण, रोग-परिचय के लिये रोगी रख कर उसकी परीक्षा करा कर रोग निर्वाचन इत्यादि इत्यादि। और यदि मौखिक परीक्षा के १०० मार्क में ५० मार्क का मौखिक और ५० मार्क का उत्तर लिख कर देने की व्यवस्था हो तो परीक्षार्थी का अनेक उपकार होगा। यदि कोई छात्र हथौटी दिखाते समय (जो सब प्रकार परीक्षक महोदय की विवेचना पर निर्भर है) यदि २—१ नम्बर कम पावें तो भी अन्य लिखित अंश से नम्बर पूरा कर पास कर सकता है। जो हो, इस सम्बन्ध में मैं अनधिकार चर्चा कर सभ्य वृन्द के धैर्य को नष्ट नहीं करूँगा।

इस विषय को आप लोग स्वयं ही विचारेंगे। माननीय महोदय गण! समय के अभाव से, स्वास्थ्य के दैन्य और क्षमता के प्रतिकूल होने से मैं इस अकिञ्चितकर अभिभाषण को इसी जगह समाप्त कर करबद्ध प्रार्थना करता हूँ—

प्रकाशिता यात्र मया त्रुटिर्वा जानाम्यहं सा गुणसागरेव: ।
नीहारवत् यास्यति संत्तयश्च तथापि याचेय भवत्प्रसादम् ॥
श्री मद्भिर्यत् प्रदत्तं मे किमस्ति तत्कृते मयि ।
प्रणतिरेव सारास्तु मम तच्चरणेषु वै ॥

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !

* * *

C.S.RAI & BRO'S
NAGPUR

श्रीमान् स्वर्गीय हिजहाईनेस महाराजा सर रामेश्वरसिंह बहादुर,
जी० सी० आई० ई०, के० बी० ई०, दरभंगा।

Brief biographical sketch of His late Highness The Maharajadhiraj Sir Rameshwar Singh Bahadur of Darbhanga, G. C. I. E., K. B. E., etc.,

Sir Rameshwar Singh Bahadur, Maharajadhiraj of Darbhanga G. C. I. E., K. B. E., was born on January 16,1860, being a younger son of the holder of the vast Darbhanga estates, the Maharajah Maheshwar Singh Bahadur. He was educated at the headquarters of his father's Zemindari and at Benares, where he imbibed those religious conceptions to which he was so firmly attached. He had some experience in the pensionable public service, for from 1877 until he resigned in 1885 he was a member of the Indian Statutory Civil Service in Bengal, working as an Assistant Magistrate.

He retired for the purpose of managing his own considerable estates, though it was not until the death of his elder brother in 1898 that he came to the rich inheritance of the Darbhanga Raj. He was already serving on the Bengal Legislative Council as a representative of the landowners of Bengal and Bihar. There followed repeated spells of service in a like capacity in thc Imperial Legislative Council and this was frequently linked with the presidency of the Bengal landowners' organisation, the British Indian Association. The estates he owned and managed for more than 30 years extend over an area of some 2,500 square miles. He was reputed to be the wealthiest man in India and he gave with a lavishness proportionate to his great possessions when religious, philanthropic, and educational causes appealed to him. He built temples in many towns and he restored and constructed numbers of temples destroyed or damaged over a wide area in Assam and parts of Bengal by the great earthquake of 1902.

Such pious uses of wealth commended the Maharajah to orthodox Hindus throughout the country, and he was their acknowledged leader, a position conferred in part by birth, for he was the head of the Shrotriya sub-caste of Brahmins. In a considerable area of Bengal, anciently known as Mithila, he exercised the same power in religious matter as did King Janaka in far-off centuries. For nearly 30 years he was life president of the Bharat Dharma Mahamandal, an all-India religious organization with headquarters at Benares. He presided at the all-India religious conventions held at Calcutta in 1910 and at Allahabad in the following year; but this promising movement for religious comprehension and tolerance was checked by the spread of political and communal passion.

The Maharajah never willingly encouraged an aggressive Hinduism leading to breaches of the peace, though probably on occasion his financial support was secured for movements, which, unknown to him, were not wholy free from objection on such grounds. He never lost an opportunity, however, to discourage subversive political activities, such as the Satyagraha cult, or any agitation leading to violence and ill-will. Deeply anyious to conserve Hindu ideas and customs, he was the principal supporter of the organization of protest against the religious Endowments Act passed by the Madras Legislative Council which sought the intervetion of the Viceroy, Lord Reading.

His steadfast support of the British connection was one of the considerations which led to his selection as the first Indian member of the executive Council in Bihar and Orissa on the constitution of that province in 1912. He served for the full term of five years mostly in the war period, during which he gave most valuable financial and general support to the British cause. Later he served in the new Legislature as a member of the Council of State. He also had behind him a long record of public activity as a member of the Police Commission and other inquiries, and as chairman of many all-India conferences.

He was at once a most orthodox Brahmin and a scholarly patron of modern art and literature, a reclude and a great figure in social life, a great landowner and the holder of executive office in the State, a wealthy philanthropist and a keen, diligent man of business.

To the creation and development of Benares Hindu University, of which he was the first Vice-Chacellor, he gave lavish support, and most fitly received therefrom the honorary degree of D. Litt. It was a distinction he might well have earned if given the leisure for a thesis. He possessed the best private library in India, and made good use of it. Interested in a wide range of subjects, he knew how to acquire the best material for their study. He knew something of every modern author of any standing and was extra-ordinarily familiar with the literary history and output of his life time. He spent lavishly on the construction and embelishment of several of his homes, and his palace at Rajnagar is held to be the finest example of Oriental architecture in Bengal since Moghul times.

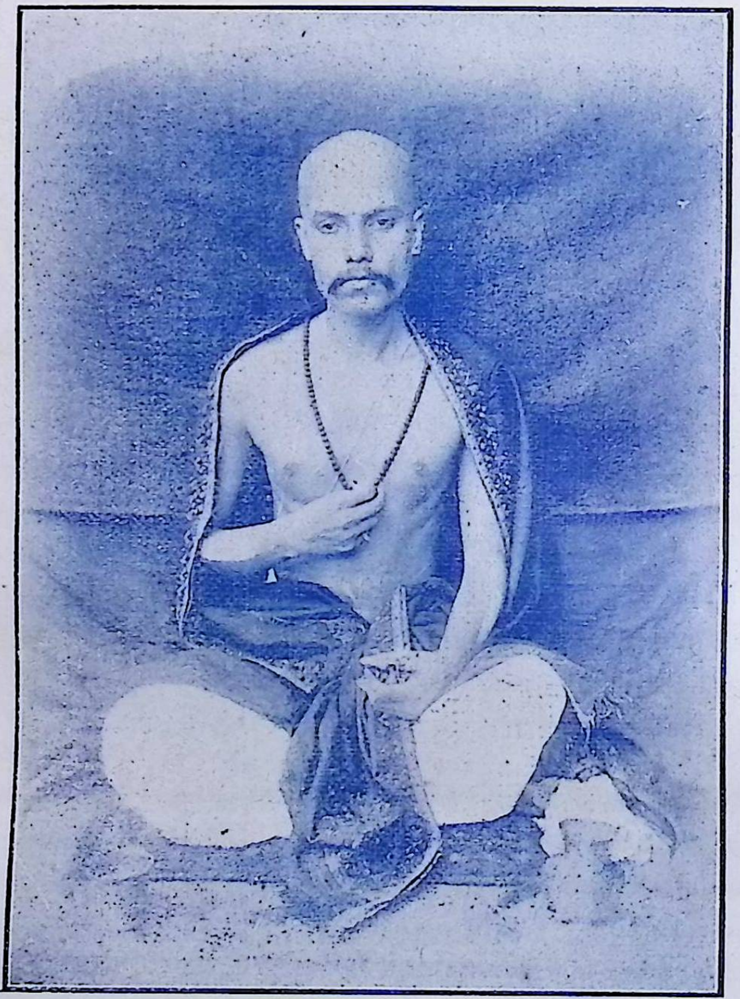

स्वर्गीय श्रीमान् पं० गणेशदत्तजी त्रिपाठी शास्त्री, काशी ।

सभापति—संयुक्तप्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन, कानपुर ।

धन्वन्तरिर्भाग्यवशाज्जनानां कृतावतारः किल काशिकायाम् ।
पीयूषपाणिर्भिषजां वरिष्ठः सोऽयं सुधीः शास्त्रिगणेशदत्तः ॥

संयुक्त प्रान्त

युक्तप्रान्तीय प्रथम वैद्य सम्मेलन कानपुर के सभापति

पं० गणेशदत्त जी त्रिपाठी आयुर्वेद-रत्न का

जीवन चरित

श्रीमान् आयुर्वेदरत्न, भिषक् सुधाकर पण्डित प्रवर गणेशदत्त शास्त्री त्रिपाठी जी श्री विश्वनाथ की रत्नमयी काशीपुरी के एक समुज्ज्वल रत्न थे। आपका जन्म प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में सं० १९२१ माघ की गणेशचतुर्थी के दिन मुहल्ला भदैनी (भद्रवनी) में हुआ, इसी से उनका नाम भी गणेशदत्त रक्खा गया।

इनके पिता प्रातःस्मरणीय करुणामूर्ति पीयूषपाणि भिषक्चक्र-चूड़ामणि पण्डितवर गोपालदत्त त्रिपाठी जी बड़े यशस्वी वैद्य थे। उक्त वैद्य जी के गुण-कीर्तन के लिये न तो यहाँ यथेष्ठ स्थान है और न उपयुक्त समय है संक्षेप में वही कहा जा सकता है जो कि स्वयम् पं० गणेशदत्त जी ने सभाष्य पारस्कर-गृह्यसूत्र की भूमिका में लिखा है।

यथा—शाण्डिल्यान्वय-सिन्धुचन्द्र-सरयूपारीण-विप्राग्रणी
रायुर्वेद-महाब्धि-मन्दरगिरि, रोगार्तचिन्तामणिः
विश्वव्यापियशाः शिवांघ्रिरत-गोपालत्रिपाठयाह्वयः
सूरि र्भूरि-दयार्णवो विजयते सद्वैद्य-चूडामणिः ॥
तस्मात्तद्बहु-पुण्यराशि-कणिकालेशादवाप्तोद्भवो
धर्म्मव्याकृति-वैद्यशास्त्र-कविताव्यायाम-रम्याशयः
राज्ञ सास्य कृपामृतोर्मि-मुदितोऽकार्षीगणेशो भिषक्
काव्य नाल्पघु भूमिका कृतिमिषाद्विद्वज्जनानां मुदे ॥

वस्तु तस्तु पण्डित गणेशदत्त त्रिपाठी जी पूज्य पिता जी के मूर्तिमान् पुण्यराशि ही थे। बाल्यावस्था में ही इनमें प्रखरबुद्धि, असाधारण धारणा; चमत्कृत-प्रतिभादि, भविष्णु बालक के सभी लक्षण दिखाई पड़ने लगे। अध्ययनारम्भ सर्व प्रथम निज पितृचरणों में ही किया, जो व्याकरण की सर्वप्रथम अध्ययन की परिपाटी है। बड़े होने पर व्याकरणशास्त्र, महामहोपाध्याय जगद्विख्यात पं० शिवकुमार मिश्र जी से पढ़ा। काव्य, साहित्य, महामहोपाध्याय पण्डित गंगाधर शास्त्री जी सी० आई० ई० से पढ़ा। और न्याय-शास्त्र उस समय के अपर गौतम पण्डितवर सीताराम शास्त्री जी से पढ़ा। दार्शनिक विषयों का भी परिशीलन उपर्युक्त महानुभावों से ही किया। "अष्टाङ्ग" आयुर्वेद का अध्ययन अपने पितृचरणों में ही किया!

मुहल्ले के वयोवृद्धों को कहते सुना है कि 'इन्होंने कब पढ़ा और कैसे इतना पढ़ा' यह हम लोगों ने न जान पाया।

निदान २१–२२ वर्ष की अवस्था में पूर्ण पण्डित हो गये। मैं यह नहीं कहता कि उसी उम्र में उन्होंने अध्ययन समाप्त कर दिया, क्योंकि काशी की परिपाटी है कि पण्डित हो जाने पर भी अध्ययन समाप्त नहीं करते, यथाशक्य, "यावज्जीनमध्ययनं ब्राह्मणानाम्" इस वाक्य को सार्थक करने का प्रयत्न करते हैं, फिर भी उनके पाण्डित्य के परिचय के लिये "काशिराजकरुणामञ्जरी" तथा "काशीश्वर-पुष्पाञ्जलि" के एक एक श्लोक पाठकों को भेंट करता हूँ, जिनकी रचना उन्होंने २५ वर्ष में अर्थात् सं० १९४६ में की थी। यथा—

धन्यायस्य सरस्वती-रसकला-लङ्कार-झङ्कारिणी
तृणामादरकारिणी गुणवतां वाञ्छामृतासारिणी
सीमातीतगुणै रहो सुरगुरु-प्रज्ञाप्रवीणानपि
ह्रीणानादधती विराजति पुनः क्षीणावलेया स्वयम् ॥

काशीश्वर पुष्पाञ्जलिः ॥ श्लो० १४ ॥

सेवा-हेवाकि-भूमीश्वरनिकरवरस्फारकोटीरकोटी
कोटिव्यारीकमाना मलचरण-सरोजांशुमालावतंसा ॥
अताधावा-पृथिव्यो रमृतधवलिमोद्गार मुल्लोलपन्ती
राजन्नाप्लुयवन्ती जयति तव जगत्कीर्त्ति मन्दाकिनीयम्

काशिराजकरुणाभञ्जरी ॥ श्लो० २५ ॥

श्रीमान् काशीनरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह जू बहादुर जी० सी० एस्० आई० बहुत बड़े विद्या प्रेमी थे, संस्कृत में बहुत सुन्दर रचना भी करते थे, और वेदान्त-शास्त्र के तो बड़े भारी मर्मज्ञ थे। अतः उनमें विद्वानों की ठीक परख थी। उक्त महाराज सब काम ठीक समय पर करते थे, सेकण्डों का हिसाब रहता था, पर वे पण्डित गणेशदत्तजी के गुणों पर ऐसे मुग्ध थे कि पं० जी से बातचीत करने में प्रायेण नियमित समय का उल्लंघन हो जाया करता था।

सम्भवतः सं० १९५० "में महाराज हथुआ सर कृष्णप्रतापसाही के० सी० आई० ई० ने जब उनका विचार पारस्कर गृह्यसूत्र" भाष्यचतुष्टय सहित प्रकाश करने का हुआ तो महामहोपाध्याय पण्डित प्रवर शिवकुमार शास्त्रीजी से इस कार्य-सम्पादन के योग्य पण्डित माँगा, उक्त शास्त्रीजी ने पं० गणेशदत्तजी को ही इस योग्य समझा और वहाँ भेज दिया।

पंडितजी की योग्यता से महाराज हथुआ बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु पण्डितजी तीन वर्ष से अधिक वहाँ न रह सके, क्योंकि पूज्य-पिताजी स्नेहवश अधिक काल तक उनका प्रवास सहन नहीं कर सके अतः महाराज की इच्छा के प्रतिकूल होते हुए भी उन्हें पितृचरणों की आज्ञा शिरोधार्य करके हथुआ छोड़ देना ही पड़ा।

तब से पंडितजी ने बाहर जाने का विचार छोड़ दिया, और रिटायर्ड सब जज मु० रामप्रसादजी, दुर्गाकुण्ड की पाठशाला में अध्यापक हो गये, पं० गणेशदत्तजी के दो कनिष्ठ भाई भी थे। पं० कान्तानाथ त्रिपाठी तथा पं० गौरीशंकर त्रिपाठी। ये दोनों महाशय भी चिकित्सा-शास्त्र में बड़े सिद्धहस्त थे और चिकित्सा का ही व्यवसाय करते थे अतः पंडितजी ने चिकित्सा के व्यवसाय में हाथ न लगाया और अध्यापन कार्य से ही सन्तुष्ट रहे।

स्वर्गीय श्रीमान् वैद्य गोपालजी त्रिपाठी, शास्त्री, काशी ।

सोऽयं महात्मा महनीयकीर्तिर्गोपालदत्ताभिध-राजवैद्यः ।
यदौषधामोघतया यमोऽपि निजाधिकारे क्षणमाकुलोऽभूत् ॥

कुछ दिनों बाद रणवीर-पाठशाला हिन्दू कालिज में मिला दी गई, उस समय हिन्दू-कालेज डाक्टर एनीवेसेंट के हाथ में था रणवीर-पाठशाला का संस्कार हुआ, योग्य अध्यापकों की खोज हुई, पंडितजी उस पाठशाला में बुला लिये गये, और अध्यापन कार्य करने लगे, परन्तु वहाँ भी चिरकाल तक नहीं ठहर सके कारण कि पूज्य पिताजी का काशीवास हो गया, पिताजी के काशीवास होते ही बहुत बड़े कुटुम्ब का भार ज्येष्ठ-श्रेष्ठ होने के नाते इन्हीं पर पड़ा। तब आपने हिन्दू-कालेज की नौकरी छोड़ी और पूज्य पिताजी का व्यवसाय अपने हाथ में लिया, किस योग्यता से पण्डित जी ने उस भार को उठाया जिसे देखकर लोग चकित हो गये, सभी को प्रायः यह धारणा थी कि इनमें जैसा शास्त्रान्तर-गाम्भीर्य है वैसा चिकित्सा-शास्त्र का अनुभव नहीं है पर यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

पंडितजी की विद्या, प्रतिभा और पैनी बुद्धि ने चमत्कार कर दिया, देखते-देखते दिग्दिगन्त में आपका यश व्याप्त हो गया।

कविराजों की खानि कलकत्ते ऐसे शहरों से आपकी बुलाहट आने लगी, सिविलसर्जनों को भी नीचा देखना पड़ा, और वहीं के सुप्रसिद्ध स्वनाम-धन्य कविराज श्री गणनाथ सेन जी ने भी पण्डित जी के विषय में लिखा—

आयुर्वेद महाम्भोधि-पारायण-परीयसे।
विद्वद्गणेशदत्ताय सादरं समुपायनम्॥

इतना सब होते हुए भी पण्डित जी बड़े सरल हृदय के मनुष्य थे। दया और उदारता में अपने पिता जी के सदृश ही थे, प्रातःकाल होते ही सैकड़ों पीड़ितों की भीड़ लग जाती थी, घर पर आये हुये किसी भी रोगी से दवा का मूल्य नहीं लिया जाता था और सब लोग जानते हैं कि दीन अनाथ रोगियों के पथ्यानुपान की व्यवस्था भी प्रायेण वैद्य जी को अपनी गाँठ से करनी पड़ती थी।

यह व्रत उनके पूज्य पिता जी के समय से ही आरम्भ हो अद्यावधि लड़कों तक चला जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि वैद्य जी चिकित्सा शास्त्र के हृदय को जानते थे, अपनी युक्ति से नवीन योगों का आविष्कार करते थे, और वे रामवाण सा काम करते थे।

जिसने दो चार साल उनकी सेवा की वही वैद्य हो गया और अपना जीवन सुख से बिताने लगा, वैद्य जी की वाणी ऐसी मधुमयी और हृदय ऐसा कोमल था कि उनकी बातों को सुनने से कभी जी ऊबता ही नहीं था।

ऐसे बहुत लोग हैं जिनकी मान-मर्य्यादा बाहर बहुत कुछ रहती है पर अपने पड़ोसियों से वे उपेक्षित रहते हैं। घर और बाहर दोनों स्थानों में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चरित्र-हीन व्यक्ति के लिये दुर्लभ है।

बहुत ही सदाचारी विनयी निरभिमान योग्य पुरुष ही स्वजनों के बीच सम्मान-भाजन होता है। कहना नहीं होगा कि वैद्य जी का जैसा सम्मान बाहर था वैसा ही सम्मान निवास स्थान में भी था। सभी लोग उन्हें अपना रक्षक समझते थे, आबाल-वृद्ध सभी उनसे प्रीत करते थे। सभी पर उनकी दया रहती थी। उनके चलते महाल में शान्ति-भङ्ग नहीं होने पाती थी।

सन्देह उपस्थित होते ही स्वयं जाकर बीच-बिचाव कर देते थे। परोपकार के लिये कष्ट उठाने में वैद्य जी के जी में कभी भी संकल्प-विकल्प न हुआ।

किसी रोगी की उपेक्षा उन्होंने उसके निर्धनता के कारण नहीं की ! अकिञ्चनों के लिये भी आवश्यकता होने पर उन्होंने बहुमूल्य औषधों को यावदावश्यकता देने में कभी भी आगा-पीछा न किया।

इसमें सन्देह नहीं कि वैद्य जी को घर पर भी यथेष्ठ आय होती थी, और बाहर जाने की दैनिक दक्षिणा (फीस) ३००) तीन सौ रुपये थे। पर उस उदार महापुरुष ने संग्रह की ओर कभी ध्यान न दिया। मैंने कई बार उनके मुख से यह दोहा सुना था।

दोहा—तूँ कतहूँ नहिं थिर रहति तेरो यही स्वभावु।
मेरे कर पर पैर दै जित चाहो तित जाउ॥

यह कवि-उक्ति लक्ष्मी के प्रति है।

वस्तु तस्तु लक्ष्मी की अस्थिरता उनके हृदय में जमी हुई थी। उपासना भी उनकी बहुत चढ़ी बढ़ी थी। गृहस्थों में इस विधि से शङ्कर की उपासना मैंने नहीं देखी थी। दो-चार सद्-पण्डित भी सदा पाठ-पूजा किया ही करते थे। निदान, वैद्य जी सनातन धर्म के एक बहुत बड़े स्तम्भ थे।

उनके कनिष्ठ-भ्राता पण्डित गौरीशङ्कर त्रिपाठीजी का देहावसान उनके सामने ही हो गया, इस बात का उन्हें बड़ा दुःख हुआ। बल्कि यों कहिये कि उसी समय से उनके स्वास्थ्य में घुन लगा। वैद्यजी का विचार था कि अपने पूज्य-पिता श्रीमान् पण्डित गोपालजी राजवैद्य के नाम पर एक आयुर्वेदीय-चिकित्सा-विद्यालय स्थापन करें और इसी अभिप्राय से आपने जमीन भी खरीद की। पर खेद है कि उनके काशीवास हो जाने से वह मनोरथ कार्य में परिणत नहीं हो सका।

वैद्यजी के उच्च विचार, उदार भाव, अपरिमित गुण विस्मरण नहीं होते, जो मैंने लिखा है वह बहुत ही अपर्याप्त है।

आपके तीन चिरञ्जीवी हैं, जिनमें से पं० तीर्थराज त्रिपाठीजी और पं० देवेन्द्रनाथ त्रिपाठीजी सुयोग्य वैद्य हैं।

वैक्रमेय सं० १९७२ में श्रीभारतधर्म-महामण्डल से आपको भिषक्-सुधाकर की उपाधि मिली; तथा सं० १९७५ पौष कृष्ण ५–६ रविवार, तथा सोमवार, को आप संयुक्त प्रान्तीय कानपुर प्रथम वैद्य-सम्मेलन में सभापति का आसन सुभूषित किया। पर उस समय उनकी रुग्णावस्था थी तो भी समाज के अनुरोध से आप कानपुर सिधारे और बहु संख्या में उपस्थित सभासदों को अपनी वाक्-सुधा से भली भाँति पूर्ण तृप्त किया !

आपका सारगर्भित, ओजस्वी, विशदार्थ-भाषण, उक्त अवस्था के कारण अपूर्ण रह गया, उस समय भविष्य में मुद्रित कर प्रकाशित करने का निश्चित हुआ। इसी अनन्तर वै० सं० १९७६ में हरदोई संयुक्तप्रांतीय-वैद्यसम्मेलन से आयुर्वेद-रत्न की उपाधि भी आप के निर्मल कीर्ति में आ गुम्फित हुई।

काल प्राप्त उक्त भाषण की पूर्ति के लिये आदरणीय वैद्य जी ने रुग्णावस्था ही में दत्त-चित्त होना चाहा, किन्तु ईश्वर को वह स्वीकृत नहीं था और दिन दिन शरीर की अवस्था क्षीण होने लगी, बस समय पूरा हो गया, और यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयातम्।

सं० १९७७ ज्येष्ठ–शुक्ल–९–नवमी, बुधवार को स्मरणीय-गुण वैद्य जी का काशीवास

श्रीमान् आयुर्वेदभूषण पं. रामनारायण मिश्र वैद्यशास्त्री ।

अध्यक्ष, सं. प्रां. वैद्यसंमेलन, हरिद्वार ।

गणेशगंज, लखनउ ।

हुआ। जिस शोक में उनके परम मित्र, बड़हर राजमान्य, "लक्ष्मीश्वरोपायन" "शारदोपायन" आदि ग्रन्थनिर्माता पण्डितवर श्रीरघुवीर मिश्र जी काव्यतीर्थ ने जो हृदयोद्गार-शोकावलि में प्रकट किया है उसमें से दो चार श्लोक मैं पाठकों को भेंट करके इस लेख को समाप्त करता हूँ।

सप्ताश्वनन्द-जगतीमित-वैक्रमाब्दे
शुक्रस्य शुक्लनवमी तिथि सौम्यवारे।
काशीस्थ-पण्डित-मणिः स गणेशदत्तो
ह्यस्मान् विहाय शिवसात्म्यसुखोन्मुखोऽभूत् ॥ १ ॥

शास्त्राणि पूर्वजनने परिशीलितानि
यस्याधुनाविरभवन् सहजानि शीघ्रम्।
तद्व्याकृतौ च कवितासु च दर्शनेषु
सायुः श्रुतौ च तलमार्म्मिक-बुधिरासीत् ॥ २ ॥

शिष्टोपचार विनयोचित-साधुवृत्तिः
पीयूषसाररस-निर्झरणी च वाणी
रोगापनोदन-महौषधि-दिव्यशक्ति-
र्यस्य स्मृता हृदय-शूलमुदीरयन्ती ॥ ३ ॥

रोगावधारणपरस्पर भिन्नवाचा-
मायुर्विदामधिसमं प्रसभं विवादम्।
शास्त्रप्रमाण-पटुवागमृतप्रवाहैः
कः प्लावयिष्यति सखे! त्वयि कीर्तिशेषे ॥ ४ ॥

विद्यार्जने च सुरदर्शन वन्दने च
गङ्गावगाहनविधौ सहभोजने च।
पूर्वम्पुरस्सर ममुं कृतवान् जनं त्वं
तस्मिन्नुपेक्षणमिदं मयि वज्रपातः ॥ ५ ॥

संयुक्तप्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन के सभापति

आयुर्वेद-भूषण राजवैद्य पं० किशोरीदत्त शास्त्री का

जीवन-चरित्र

राजपूताना और पंजाब की सन्धि में गुरुग्राम (गुड़ गावाँ) प्रान्त के अन्तर्गत रिवाड़ी नगर में सं० १९४१ विक्रम मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ३ गुरुवार को शास्त्रीजी का जन्म हुआ था। आपकी जाति चौरासिया (गौड़) ब्राह्मण है। इस जाति में स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री पं० दुर्गा प्रसाद जी काव्यमाला-सम्पादक (जयपुर) जैसे विद्वान जन्म ले चुके हैं।

५ वर्ष की अवस्था में ही शास्त्री जी का विद्यारम्भ करा दिया गया था और तब से आपका अध्ययन-क्रम जारी रहा। शास्त्रीजी के पिता श्री स्व० पं० गुजारीमल जी पढ़े-लिखे व्युत्पन्न ज्योतिषी थे। अतः कोष, वेद, व्याकरण पढ़ाकर शास्त्री जी को ज्योतिष के गणित और फलित के अंश ही पढ़ाये गये। पढ़ते समय ही आपकी रुचि आयुर्वेद की ओर थी। इससे वैद्यक का अध्ययन आप चुराकर पिता जी की रुचि के विपरीत करते थे। इनके पिता जी इस मार्ग से रोकते थे और कहा करते थे कि—"धग्-धिग् वैद्यस्य वैद्यत्वं, परदुःखेन दुःखितः। जीवितो दैवयोगेन मृतो वैद्येन मारितः॥" परन्तु—"क ईप्सितार्थ स्थिर निश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।" शास्त्री जी अपने ईप्सित आयुर्वेद से विरत न हुये। रिवाड़ी में रह कर आपने श्री स्व० साधुराम जी (उदासीन साधु) से, कानपुर में रहकर श्री स्व० पं० वासुदेव जी स्वामी (भागवताचार्य) तथा वर्त्तमान समय में लखनऊ में रहने वाले श्री पं० रामनारायण जी मिश्र से वैद्यक का अध्ययन किया और आयुर्वेद की संहिताओं के अनुशीलन से अपना आयुर्वेद का ज्ञान बढ़ाया। आप अध्ययन के लिये मद्रास जाना चाहते थे, इसके लिये आपको श्री स्व० पं० डी० गोपालाचार्लु जी से अनुमति पत्र भी मिला था। परन्तु पिता जी की अनुमति न मिलने से आप मद्रास न जा सके। फिर आपने जयपुर राजकीय संस्कृत कालेज की शास्त्री और आयुर्वेदाचार्य की परीक्षायें दीं। शास्त्री में आप सफल हुये पर आयुर्वेदाचार्य में आप एक पत्र में सफल न हो सके। इसका कारण आपको गृह और योगक्षेम की चिन्ता थी, पिता जी का स्वर्गवास हो चुका था और आप अकेले ही गृहपोषक थे। इसी कारण आप १००) मासिक पर तैनात हो जाने पर भी अमृतसर निवासी डा० पैडामल, एम्० डी० के साथ देश-विदेश भी न जा सके। आचार्य परीक्षा में असफलता की संभावना समझ कर ही आपने अंतिम परचे में लिखा था कि—"पितर्युपरते तच्चिन्ताशोकाकुलात्मनः। जाते मनोऽनवस्थाने स्खलनं चेत्तु का कथा।"

वैद्य सम्मेलन के जन्म से ही—स्व० शंकरदा जी शास्त्री पदे के साहित्य और उद्योग को पढ़ते रहकर आपको इस ओर विशेष श्रद्धा रही अतः आप यथाशक्य सम्मेलन को धन और अपने उद्योगों से बराबर सहायता देते रहे हैं। आयुर्वेद-पंचानन श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद

जी शुक्ल द्वारा प्रयाग में वैद्य सम्मेलन कार्यालय आ जाने पर वैद्य-सम्मेलन-पत्रिका और विद्यापीठ के कार्यों में बराबर योग देते रहने से आप इसके कार्यों से पूर्ण अवगत हैं। वैद्य सम्मेलन के कर्णधार विद्वान वैद्यमात्र आपसे परिचित हैं। मद्रास में कार्यालय रहने से अन्य प्रान्तों में अड़चन रहने से हरिद्वार सम्मेलन में जो एकाएक परिवर्त्तन हुआ उसके मूलसूत्र आप ही हैं। मैसोर के सम्मेलन में आप ही के त्यागपत्र देने से कानपुर में कार्यालय न रह सका। कराची के सम्मेलन में कानपुर में जो कार्यालय रुक सका उसके एक मात्र बीज आप ही हैं। अहमदाबाद वैद्यसम्मेलन में कार्यालय परिवर्त्तित होने में भी आपका हाथ है।

आप सम्मान नहीं चाहते हैं केवल काम करना चाहते हैं; वह भी शुद्धाशय और लगन के साथ। आपने युक्तप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की वर्षों सेवा की है—पर उससे कोई उपाधि लेकर नहीं। उपाधि के दान के विषय में आप सदा विपक्ष रहे हैं। युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन से प्राप्त आयुर्वेद-भूषण की उपाधि आपने यह लिखकर लौटा दी कि हम सेवक हैं, पर पुरस्कार के अधिकारी नहीं। कानपुर में जो भी प्रधान मंत्री बने सब शास्त्री जी के अनुरोध पर। आपने प्रधान मंत्री का कार्य अधिक से अधिक समय तक बराबर किया। विद्यापीठ के कार्य में आपकी सदा रुचि है। आप प्रधान मंत्री और विद्यापीठ मंत्री दोनों को स्वतन्त्र रखना चाहते हैं, एक दूसरे के पराधीन नहीं। और विद्यापीठ की गति प्रगति के लिये अपना आयुर्वेद विद्यालय चाहते हैं। सम्बद्ध संस्थाओं से यह कार्य होना असंभव समझते हैं। इसके लिये आप कुछ न कुछ उद्योग करते ही रहते हैं।

आपने २० से अधिक आयुर्वेद सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकें लिखी और संशोधित की हैं। २० वर्ष से आप चिकित्सक नाम का वैद्यक मासिक पत्र चला रहे हैं। एक दातव्य औषधालय १२–१३ वर्ष से अपने खर्च से चला रहे हैं। आपके विद्यार्थी पढ़कर विद्यापीठ की परीक्षा देते हैं। अब भी प्रान्तीय भाषाओं के और संस्कृत के ग्रन्थों का अध्ययन आप बराबर जारी रखते हैं। देशी औषधियों के गुणों पर आपकी सर्वाधिक श्रद्धा है उन्हीं से आप विदेशी औषधियों का मुकाबला करने को तैयार रहते हैं। अनेक सम्मेलनों में आप सम्भाषा-परिषदों के सभापति रह चुके हैं।

* * *

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

संयुक्तप्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन हरिद्वार के सभापति "चिकित्सक"—सम्पादक

आयुर्वेद-भूषण राजवैद्य पं० किशोरीदत्त शास्त्री का अभिभाषण।

यद्व्याप्तं येन रचितं जगदेतच्चराचरम्।
स वो भवतु भव्याय भूतात्मा भूतभावनः॥
शारीरमानसागन्तुव्याधिव्याधितवार्त्तकृत्।
धन्वन्तरिः स्याद्भव्याय भगवान् भक्तवत्सलः॥

माननीय वैद्यवरो और समुपस्थित सज्जनो!

अनेक सुयोग्य, विद्वान्, विनयज्ञानसम्पन्न और वयोवृद्ध वैद्यों के विद्यमान होने पर भी आपने मुझ जैसे अल्पज्ञ को यह पद देकर अपना जो औदार्य प्रकाशित किया है वह आप ही के योग्य है। मैंने इस पद को ग्रहण कर जो धृष्टता की है वह केवल आप लोगों की आज्ञा का पालनमात्र है।

यह स्थल बहुत समय पहिले आयुर्वेद के विशेषज्ञ ऋषियों द्वारा आयुर्वेद के पुनीत विचारों से पवित्र हो चुका है। यह वही पुण्य स्थल है जहाँ पर आयुर्वेद का पूर्ण विकास हुआ। आज तीन वर्ष प्रथम भी आप जैसे आयुर्वेदज्ञों ने इसी पवित्र स्थल पर समस्त भारत के विद्वान् वैद्य समुदाय को एकत्रित कर महनीय कीर्ति श्री यादवजी भाई आचार्य तथा आयुर्वेद-भूषण पूज्य गुरुवर्य पं० रामनारायणजी मिश्र के सभापतित्व में आयुर्वेद के अभ्युदय का विचार किया था। आज फिर आप लोग अपने प्यारे आयुर्वेद के अभ्युदय के लिये यहाँ एकत्रित हुए हैं। यह बड़े हर्ष की बात है।

आयुर्वेद कितना विस्तीर्ण है, कितना पुरातन है, कब-कब इसके पुनः संस्कार हुए हैं इन बातों को अनेक विद्वान् अपने गवेषणापूर्ण लेखों द्वारा आपको अनेक बार बता चुके हैं। इसलिये इस प्रकार का पुनः-पुनः कथन करना केवल पिष्टपेषणमात्र हो सकता है। वर्तमान परिस्थिति को देख कर आपको अपने और आयुर्वेद के अभ्युदय के लिये इस समय क्या-क्या करना चाहिये यही इस समय विशेष विचारणीय विषय है।

वैद्यों का संगठन।

किसी भी कार्य को करने के लिये हमको संगठन करने की परमावश्यकता है। हम सबको मिलकर, लगकर, दृढ़ होकर विचारपूर्वक, जो काम कठिनता से हो सकते हैं, उन्हें आरम्भ कर देना चाहिये। युक्तप्रान्त एक ऐसा प्रान्त है जहाँ पर आयुर्वेद के अभ्युदय के लिये सभी

प्रकार की सामग्री एकत्रित है। ऐसी दशा में हमारा उस सामग्री से लाभ न उठाना ज़बर्दस्त भूल होगी। हमको युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की छत्र-छाया में बैठ कर अपना निश्चय कर लेना चाहिये कि इस समय हमें क्या-क्या करना चाहिये।

संगठन के काम के लिये हमें एक कार्यालय से सम्बन्ध कर लेना चाहिये और अपने अभाव, अभियोग, अपनी आवश्यकतायें प्रति मास रिपोर्ट के रूप में अवश्य भेजनी चाहिये जिन पर पुनः-पुनः विचार होकर अपना मन्तव्य-मार्ग निश्चित होता चला जाय। ऐसा बिना किये हमारा एक मार्ग पर चलना असम्भव है। इस कार्यालय में हमारी जानकारी के साधन एकत्रित रहने चाहियें। इस कार्यालय से पुनः-पुनः अपने कर्त्तव्य की ओर जाने के आदेश मिलने चाहियें। इस कार्यालय को यह ज्ञात रहना चाहिये कि कौन वैद्य महाशय इस समय किस कार्य पर नियुक्त हैं। ऐसा होने से हमारे संगठन का कार्य बड़े सुचारु रूप से चल सकता है और हम अपने लक्ष्य पर जा सकते हैं।

वैद्यों की समानता।

संगठन से प्रथम यह भी परमावश्यक बात है कि हमारा आपस का भाव समान हो जाय। मामूली से लेकर विशेष अवस्था तक हमारी सामान्य निदान और चिकित्सा की शैली का एक ही आयुर्वेदीय मार्ग हो और उसे हमारे साथ का प्रत्येक छोटे से छोटा वैद्य जानता हो। हमारा प्रत्येक वैद्य लगन से काम करे और अपने कर्त्तव्य का एक रेकार्ड अवश्य रखे। समानता लाये बिना हमारा संगठन लाभप्रद न हो सकेगा। कहीं भी विजय-यात्रा के लिये प्रस्थान करने से पूर्व जिस प्रकार फौज समान भाव से संगठित होती है उसी प्रकार हमें अपने कार्यों के आरम्भ में समानता रख कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये। यह समानता लाने के उपाय प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन को अवश्य करने चाहियें।

वैद्यों के ज्ञानवृद्धि का साधन।

समानता लाकर हमें अपनी ज्ञान-वृद्धि, अधिकार-वृद्धि और क्षेत्र-वृद्धि पर अधिकार जमाना चाहिये। आलसी लोगों के लिये संसार में कोई विभूति नहीं है। परिश्रमी ही नयी खोज कर सकते हैं। खान खोदने से ही हीरा प्राप्त हो सकता है। फिर आपका परिश्रम तो मृत्युमुख-पतित तक को जीवनदान दे सकता है। इसके लिये आपको पूरा परिश्रम करना चाहिये।

ज्ञानवृद्धि के लिये हमें अपनी पुराचीन संभाषाविधि का व्यवहार आरम्भ करना चाहिये। विद्यार्थि-दशा के अध्ययन के बाद संभाषाविधि ही एक ऐसी विधि है जो आपके ज्ञान को सर्वथा बढ़ा सकती है। संभाषाविधि की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिये पूज्य चरकाचार्य आदेश देते हैं—

भिषक् भिषजा सह संभाषेत। तद्विद्यसंभाषा हि ज्ञानाभियोगसंहर्षकरी भवति। वैशारद्यमपि चाभिनिर्वर्त्तयति, वचनशक्तिमपि चाधत्ते, यशश्चाभिदीपयति, पूर्वश्रुते च सन्देहवतः पुनः श्रवणात् श्रुतसंशयमपकर्षति। श्रुते चासन्देहवतो भूयोऽध्यवसायमभिनिर्वर्त्तयति। अश्रुतमपि च कंचिदर्थं श्रोत्रविषयमापादयति यच्चाचार्यः शिष्याय शुश्रूषवे प्रसन्नक्रमेणोपदिशति गुह्याभिमतमर्थजातं तत् परस्परेण सह जल्पन् पण्डेन् विजगीषुराह संहर्षात्तस्मात्तद्विद्यसम्भाषामभिप्रशंसंति कुशलाः। च० वि० ८ अ०।

वैद्यों को परस्पर वैद्यक शास्त्र की चर्चा करनी चाहिये। ऐसा करने से ज्ञानवृद्धि होती है, चतुरता आती है, बोलने की शक्ति बढ़ती है, यश प्राप्त होता है, पहिले सुनी या जानी हुई बात में कोई सन्देह रह जाता है तो फिर सुनने से सन्देह दूर हो जाता है। यदि पहिले यह बात सुनी या जानी जा चुकी हो तो वह दृढ़ हो जाती है। कभी कभी कोई न सुनी बात भी सुनी जाती है और उसका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अच्छे शिष्य के प्रति सच्चे गुरु जो प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रीय बातें बता देते हैं वह गूढ़ विषय भी संभाषाविधि से समझ में आ जाता है। इसी से ज्ञानवृद्धि के लिए संभाषाविधि को विद्वान् लोग अच्छी बताते हैं।

हमारी समझ में जहाँ भी १०–५ वैद्य एकत्रित हों वहाँ संभाषाविधि का प्रचार अवश्य हो; जहाँ पर अन्यत्र के कोई विशेषज्ञ वैद्य पहुँचें वहाँ प्रेमपूर्वक संभाषाविधि की योजना अवश्य की जाय।

वैद्यों के लिये क्षेत्रवृद्धि।

अध्ययन के लिये कुछ समय से साधारण पाठशालाओं से अधिक उपयोगी आयुर्वेद विद्यालय खुलने लग गये हैं, परन्तु अभी उनकी संख्या पर्याप्त न होने से एक ही क्रम की शिक्षा का प्रसार नहीं हो रहा है। हमको दो प्रकार की शिक्षा के प्रसार की परमावश्यकता है। एक साधारण ज्ञान, दूसरा प्रत्यक्ष दर्शनपूर्वक ज्ञान। व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता ही हमारे लिये सर्वार्थकरी पद्धति है। शिक्षा में हमें इस बात के ज्ञान की परमावश्यकता है कि हमारी वर्तमान आयुर्वेदिक पुस्तकों में कितना विषय अपूर्ण या पूर्ण है और बाहरी संसार अपनी अपनी चिकित्सा पद्धतियों में इन विषयों में कहाँ तक अपना विस्तार कर चुका है। यह बताते हुए भी यदि तुलनात्मक ज्ञान की शिक्षा हो जाय तो विशेष अच्छा हो।

यदि एक ही कर्तव्य आयुर्वेदिक पद्धति में और पाश्चात्य पद्धति में थोड़ी बहुत भिन्नता से वर्णित हो तो उसका तुलनात्मक ज्ञान होना ही चाहिये। जैसे—जलोदर से जल निकालने की विधि दोनों पद्धतियों में लिखी हुई है, परन्तु नाभि के नीचे छिद्र करने और सम्पूर्ण जल एक ही बार निकालने न निकालने के विषय में मतभेद है। ऐसी दशा में हमें तुलनात्मक दृष्टि की आलोचना पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

इसी के साथ हमें अपनी शल्य और शालाक्य की प्राचीन शैली और चिकित्सा का लोप न करना चाहिये। हम लोगों ने आँख, कान, नाक मुख और फोड़े की चिकित्सापद्धति को अपने ग्रन्थों में लिखी रहने पर भी बुरी तरह भुला दिया है, उसे हमको सबसे प्रथम सजीव करना चाहिये। जब आप इन चिकित्साओं को विचारपूर्वक आरम्भ कर देंगे तो आपको अपनी उपरिलिखित चिकित्सा अपूर्ण प्रतीत हो तो उसे अपने ही उपायों से बढ़ाने या दूसरी चिकित्सा पद्धतियों से अपना कोष पूर्ण कर लेने में कभी आना कानी न करना चाहिये। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि आप केवल ज़बानी जमाखर्च करके अपने को, अपनी चिकित्सा-पद्धति को अपूर्ण बताकर बिना समझे दूसरों की चिकित्सापद्धति का आश्रय लेकर परमुखापेक्षी हो जायँ।

इस प्रकार ज्ञानवृद्धि करके अधिकारवृद्धि और क्षेत्रवृद्धि प्राप्त कर लेना बहुत सुकर है। इसके लिये हमको फिर चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। ऊँची श्रेणियों की शिक्षा देते हुए अथवा वैद्यों को विशेष ज्ञान प्राप्त कराते हुए हमारे विद्यालयों को प्रत्यक्ष दर्शन का आश्रय अवश्य लेना चाहिये।

आतुरालय।

प्रत्येक कस्बों में हमारे आतुरालय खुलने की बहुत भारी आवश्यकता है। आतुरालय होने से वैद्य, वैद्यक और रोगी तीनों का लाभ है। वैद्यों के लिये अपनी चिकित्सापद्धति का प्रसार, नया अन्वेषण, रिकार्ड करने का उद्योग और अधिकार-प्राप्ति का साधन जितना अच्छा आतुरालय द्वारा हो सकता है, उतना अन्य उपायों से नहीं। वैद्यक-शास्त्र की वर्त्तमान उन्नति, आतुरालय की स्थिति देखकर वैद्यक पर विश्वास, रोगों पर स्वतंत्र रूप की नयी खोज, औषधियों की चुनी हुई खोज पा जाने का एक मात्र मार्ग सहज में खुल जाता है। आतुरालयों के खुल जाने से कठिन रोगी का जिसका घर पर रह कर किसी भी कारण से ठीक-ठीक उपचार हो सकना असंभव हो; आतुरालयों में सम्पूर्ण रूप से चिकित्सित होना सर्वथा उचित है। इससे अनाथ और कष्टसाध्य रोगियों को पूर्ण लाभ हो सकता है। इससे हमें आतुरालयों की स्थापना करने में कभी न चूकना चाहिये। आतुरालयों के बिना केवल दातव्य औषधालयों की स्थापना करना हमारा अधूरा काम है।

संग्रहालय।

वैद्यों को सक्रिय पर शास्त्रीय ज्ञानवृद्धि के लिये सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। इससे हमें अपने संग्रहालय स्थापित करना बहुत ज़रूरी है। संग्रहालयों में एक विभाग पुस्तक-संग्रह का हो, जिसमें नई और पुरानी प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकों का संग्रह हो। संसार के चिकित्सकों के जो-जो नये अन्वेषण प्रकाशित होते जाँय उनका संग्रह भी इस संग्रहालय में बराबर होते रहना चाहिये। एक विभाग औषधि-संग्रह का हो; जिसमें अविकृत दशा में वनस्पति और बनी हुई औषधियों और औषधि के उपयोग में आने वाले उपयोगी द्रव्यों का सुन्दर संग्रह हो। एक विभाग में शल्य तन्त्रोपयोगी समस्त सामग्री का संग्रह हो और एक में औषधि निर्माणोपयोगी तथा चिकित्सोपयोगी द्रव्यों का संग्रह हो।

संग्रहालयों के स्थापित करने का काम बहुत खर्चीला है, समय-साध्य है, तथापि हमारे प्रांत में उसकी संख्या कम से कम एक और अधिक से अधिक तीन होने की बहुत भारी आवश्यकता है। इससे अधिक की आवश्यकता नहीं। यह संग्रहालय बहुत बड़े विद्यालय, आतुरालय के साथ और बड़े स्थान में ही होना चाहिये।

उपवैद्यों की योजना।

हमारे प्रांत में वैद्यों की संख्या कम नहीं है। औषधालयों की संख्या भी कम नहीं है। रोगियों की संख्या भी कम नहीं है, परन्तु उपवैद्यों (कंपौडरों) की संख्या बहुत कम है। यह संख्या बढ़नी चाहिये। उपवैद्यों के तयार करने का प्रांत भर में एक विद्यालय होना ही चाहिये। उपवैद्य न होने से वैद्यों का अधिकांश समय औषधि बनाने और रोगियों को औषधि देने के लिये पुड़िया बाँधते ही बीतता है। जब तक औषधि बनाने और देने वाले उपवैद्यों की पूरी संख्या हमें नहीं मिलेगी तब तक हमारे अमूल्य समय का दुरुपयोग ही होता रहेगा। अभी हम कहीं कहीं पर उपवैद्य बनाकर रखने का उद्योग करते भी हैं तो वह अधूरा ही रहता है। जो इस प्रकार का एक अधूरा किसी डिस्पेन्सरी का शिक्षित कंपौंडर होता है वह दूसरी जगह काम नहीं कर सकता। यह बात हमें शिक्षा के द्वारा दूर कर देना चाहिये। जबतक विद्यालय न

हो तब तक सम्मेलन को उपवैद्य बनाने का पाठ्यक्रम तयार करके उसकी परीक्षा आरंभ कर देना चाहिये। परीक्षा में वे परीक्षार्थी सम्मिलित होने चाहियें जो अपने निश्चित पाठ्यक्रम को पूर्ण किये जाने और किसी प्रतिष्ठित औषधालय से अपने पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा पा जाने का प्रमाण रखते हों। उत्तीर्ण परीक्षार्थी को हमारे सम्मेलन का प्रमाण पत्र मिलना चाहिये और वैद्यों से ऐसे उपवैद्य रखने के लिये आग्रह करना चाहिये। उपवैद्य बनाने या रखने का लाभ चाहे हम न समझ पाते हों, पर समय बतावेगा कि हमारे प्रत्येक वैद्य को जो औषधालय रखकर औषधि देने का कार्य रखता हो उसे उपवैद्य रखने की कितनी बड़ी आवश्यकता है। वर्त्तमान समय में छोटे डाक्टर भी कम्पौडर रखना नहीं चूकते और इससे अपनी काफी आय बढ़ा लेते हैं।

परिचारक तयार करना।

उपवैद्यों की तरह हमें परिचारक बनाने की भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। परिचारक चिकित्सा-कार्य के एक चरण हैं। इनका महत्व वही जान सकता है जो चतुष्पाद चिकित्सा के महत्व को जानता है। आतुरालयों में इन शिक्षित परिचारकों की बड़ी भारी आवश्यकता है। इनके बिना हमारी चिकित्सा सदा अधूरी रह जाती है। परिचारक न रहने या ठीक परिचारक न मिलने से कभी-कभी हम अपनी चिकित्सा में सम्पूर्ण रूप से असफल रह जाते हैं और हमें अपयश मिलता है। ठीक परिचारक न मिलने से अच्छे वैद्य का अच्छापन भी मिट्टी हो जाता है!

धात्री-शिक्षा की आवश्यकता।

धात्री-शिक्षा के लिये भी हमें उद्योग करना चाहिये। प्रसूति-शास्त्र और धात्री-शिक्षा के बिना हमारा चिकित्सा-क्रम पौने से भी कम रह जाता है। स्त्रियों की आवश्यक जीवन-रक्षा की ओर देखते हुये तो प्रसूति-शिक्षा और धात्री-शिक्षा में हम शून्य हैं। अपने शास्त्रों में लिखित इस विषय की शिक्षा को हम सर्वथा उपेक्षा दृष्टि से ही देखते हैं। अब पुरानी परम्परा शिक्षा से शिक्षित दाइयों का अभाव हो गया है और नई शिक्षित दाइयाँ हमारे लिये बहुत कम उपयुक्त और बहुत कम संख्या में मिलती हैं। हमें अपनी इतनी भारी आवश्यकता को दूसरों के ऊपर न छोड़कर स्वयं हाथ में लेना चाहिये। इस विषय की शिक्षा हमें अपनी परिस्थिति के अनुकूल और अपने शास्त्र के अनुकूल करना चाहिये। इस कार्य के करने के लिये यदि ऊंचे वर्ण की स्त्रियां हमें न प्राप्त हो सकें तो भी चिंतित न होना चाहिये। यह कार्य हमें अपने अछूत भाइयों की स्त्रियों को सहर्ष सिखाना चाहिये। उपवैद्यक, धात्रीशिक्षा, प्रसूति-शिक्षा, और परिचर्या की पुस्तकें सरल हिन्दी में होनी चाहिये और इनके इतने सुलभ संस्करण निकाले जाँय कि इनका प्रचार घर घर हो जाय, जिन्हें पढ़कर शिक्षित सूतिका को तथा धात्री को उसके कार्य में सहायता देने के लिये हमारी प्रत्येक बहिन और पुत्री तत्पर हो सके।

शवपरीक्षण।

वैद्यों में व्यवहारिक ज्ञान के साथ ही व्यवहारायुर्वेद के ज्ञान की भी बहुत भारी आवश्यकता है। इस विषय में हम वैद्यों में से हजारों में कोई एक वैद्य शायद थोड़ा बहुत

ज्ञान रखता हो। पर आवश्यकता तो इस बात की है कि हमारा प्रत्येक वैद्य इस विषय के व्यवहारिक ज्ञान से न सही पुस्तकीय ज्ञान से वंचित न रहे। हमें ज्ञात है कि पोष्टमार्टम (शवच्छेद) करने के लिये गवर्नमेंट से अधिकार मिलना असंभव है, पर आयुनिर्णय आदि के लिये या इस साहित्य के ज्ञान के लिये हमारा हाथ किसने पकड़ा है। साहित्य-ज्ञान न रुकना चाहिये। यह ज्ञान न तो अतीन्द्रिय है न दुःसाध्य है। वह संकुचित अधिकारों में गूढ़ रखने से हम लोगों में प्रसार नहीं पाता है। इससे अधिक महत्व की इसमें कोई बात नहीं है। अब इस विषय की उपयुक्त पुस्तकें हिन्दी में भी प्रकाशित हो चुकी हैं और भविष्य में भी विशद रूप से प्रकाशित होने की आशा है।

राज-साहाय्य।

बहुत से शिष्ट वैद्यों का ध्यान है कि राजसाहाय्य बिना हम अपनी प्रत्येक विषय की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकते। हमारे पास धन नहीं; धन चाहिये, अधिकार नहीं, अधिकार चाहिये, व्यवसाय नहीं; व्यवसाय चाहिये। हम भी इस आवश्यकता को कुछ अंशों में सत्य मानते हैं परंतु संपूर्ण अंश में नहीं। अपनी आवश्यकताओं को समझना हमारा काम है, उनकी पूर्ति के उपाय ढूँढना हमारा काम है, सरकार का नहीं। फिर सरकार जब हमारे आयुर्वेद को उतना योग्य मानने को तयार ही नहीं तब हम उससे अभीष्ट साहाय्य पा भी कैसे सकते हैं। इतने पर भी हमारे कुछ उदार-हृदय भाई मृगतृष्णा की आशा से कुछ न कुछ दौड़ लगाते ही हैं। इस दौड़ के लगाने में मार्ग में पहिले तो अपने से भिन्न मत रखने वाले और हमको सहायता न मिल सके इस इच्छा को रखने वालों के अनेक वाक्य सहन करने पड़ते हैं। जिनके भोग में से हमें कुछ अंश दिया जाता है या जिनके अधिकार में से हम कुछ हिस्सा बाँट कराना चाहते हैं तो वे ही हमें शत्रु समझ कर यद्वा तद्वा कहने लगते हैं। और कुछ लोग स्वार्थ तो नहीं रखते पर कुछ न कुछ कहना अपना धर्म समझते हैं वे ऐसी बातें बक जाते हैं जो हमारे लिये सर्वथा विपरीत पड़ती हैं। फिर हमारे अपने ही देशवासी एक स्वर से हमारा समर्थन करने में आलस्य करने लगते हैं तब हमें राजसाहाय्य कैसे प्राप्त हो सकता है।

यदि दैवात् कुछ प्राप्त भी हो जाय तो वह इतना कम कि "शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्" होता है। वह भी जो कुछ मिलता है उसके आधे के साझी, बँटवारे के लिये तयार रहते हैं। ऐसी दशा में जो कुछ कौड़ियाँ अन्त में हमारे पल्ले में पड़ती हैं उनसे हम क्या क्या तरक्की कर सकते हैं? फिर उन कौड़ियों की प्राप्ति और व्यय के लिये भी बड़ा आडम्बर रचना पड़ता है, पाबन्दी करनी पड़ती है, जिससे प्राप्त द्रव्य से हमारा कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो पाता।

यह सब समझा कर हम आप से यह नहीं कहते कि राजसाहाय्य न लो, या उसके लिए उद्योग ही न करो। उद्योग करते रहो, पर आप अपना लक्ष्य सिद्ध करना चाहते हो तो उसी थोड़े से द्रव्य पर धूनी मत रमाओ, आप अपना बल सम्पन्न बनाते जाओ और अपने कार्य को अपने बल से पूर्ण करते जाओ। परमुखापेक्षी होकर संसार में कोई नहीं जी सका है। नीति का यह कथन सत्य है कि—"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।"

हमारे प्रान्त में गवर्नमेंट द्वारा मेडिसिन बोर्ड की स्थापना हुई है। उसका काम दो वर्ष से आरंभ हुआ है। दोनों वर्ष इसने अपने नियमों के अनुसार ५०। ५० हजार रुपया आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालयों को सहायता के रूप से वितरण किया है। इसी प्रकार

एक अच्छी तादाद में हिन्दू विश्वविद्यालय, ऋषिकुल विद्यालय और यूनानी संस्थाओं को अपनी अपनी शिक्षा की सहायतार्थ द्रव्य दिया है। एतदर्थ बोर्ड धन्यवाद का पात्र है।

परन्तु खेद है कि बोर्ड के ढंग से, बोर्ड के पाठ्यक्रम से, बोर्ड के कार्यक्रम से हमारे वैद्यों में यथोचित सन्तोष न हो सका है। इसके अनेक कारणों में से दो कारण मुख्य हैं। बोर्ड उस क्रम को गवर्नमेंट के सामने रख रहा है जिसे गवर्नमेंट स्वीकृत कर सके और उसके संचालक मुख्य परामर्श दाता डाक्टर जिसका समूल विरोध न कर सकें। अन्यथा बोर्ड जिस कार्य के लिए बनाया गया है वह उसमें सफलता प्राप्त करने में बिलकुल असमर्थ हो सकता है इसीलिए उसका पाठ्यक्रम उसी की रुचि के अनुकूल है। दूसरे वैद्य-समुदाय केवल अपने विशुद्ध सिद्धान्त का पक्ष लेकर उसी की उन्नति चाहता है। वह वैद्यक के मूल वृक्ष को ही पल्लवान्वित कर उसे ही फल-फूल युक्त देखना चाहता है। पर ये दोनों बातें परस्पर विरोधिनी हैं। इन दोनों का सामंजस्य इस समय समान होना असंभव प्रतीत होता है।

भारत में इस समय जो और शिक्षाक्रम चल रहा है वह भी तो हमारे लिए वैसा ही है? इसी प्रकार गवर्नमेंट द्वारा अनुमोदित या अनुमोदित होने वाला पाठ्यक्रम हमारी (वैद्यों की) रुचि के अनुकूल न हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। नवीन पाठ्य प्रणाली को अपनी प्राचीन परिपाटी और ग्रन्थों के अनुकूल न होने के कारण ही हमें गुरुकुल और ऋषिकुल जैसी संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ी है। इसी तरह से हमें अपना लक्ष्य अपनी रुचि के अनुसार सिद्ध करना ही अभीष्ट है तो गवर्नमेंट चाहे हमारे कार्यों में सहयोग करके सहायता दे या न दे, हमें अपने बल पर अपनी संस्थाओं को स्वयं चलाना चाहिये। जब तक हम ऐसा न करेंगे तब तक परमुखापेक्षी होकर हमें दाता की रुचि पर निर्भर रहना ही होगा।

हमारे लोगों में बहुत से ऐसे सज्जन हैं जो देशी राज्यों की ओर से ही साहाय्य पाने की आशा रखते हैं। यह बात किसी अंश में ठीक भी है, परन्तु जब तक हम इस कार्य को हाथ में लेकर राजाओं से सहानुभूति सहित कुछ द्रव्य न पा जायँ या साहाय्य न प्राप्त कर लें तब तक आशा के फलीभूत होने पर हमें विश्वास न कर लेना चाहिये। हमारी समझ में राजा लोग स्वतन्त्र नहीं हैं और उनकी सहायता प्राप्त करना भी जरा टेढ़ी खीर है।

कुछ लोग देश से सहायता प्राप्त करने की और कांग्रेस से मिल कर अपनी तरक्की करने की बातें सोचा करते हैं। इनमें देश से सहायता तभी मिलना संभव हो सकता है जब कि हम अपने कार्यों से देश को लाभ पहुँचा कर उसे अपनी ओर आकृष्ट कर सकें। फिर कांग्रेस जैसी देश भर की प्रबल राजनैतिक संस्था से कुछ प्राप्त कर सकना दुराशा मात्र है। कांग्रेस के स्तम्भ देशी चिकित्सा के नाम से कोसों दूर हट जाते हैं और जब उन्हें आवश्यकता होती है तब उनकी पिपासा शुद्ध जल दूर नहीं कर सकता, सोडावाटर ही उनकी पिपासा दूर कर सकता है। आपेंटा-वाटर ही उनका कब्ज दूर कर सकता है। ब्राण्डी ही उनको बलदायक प्रतीत होती है और विलायती उपनिवेश ही उन्हें स्वास्थ्य-निकेतन प्रतीत होते हैं। कहने को भारत उनके लिए अपना देश है, पर वे अपनी प्राचीनता को पोषण करने के लिये बाध्य नहीं। लाचारी "रिपट पड़े पर हर गंगा" कहलाना ही उनके लिये काफी सहानुभूति है।

हमारी समझ में यदि प्राचीन विद्याओं में से कोई अर्थकरी, सजीव और व्यवहारिक विद्या इस समय हमारे पास बच रही है तो वह वैद्यक-विद्या ही है। नये सुधारक इस अवशिष्ट अंश को ही बचा रहने दें तो बहुत कृपा है।

हमको जो कुछ करना हो अपने बल पर अपने सहयोग से और अपने ही अध्यवसाय से करना चाहिये। इसी मार्ग से अपने लक्ष्य पर हम पहुँच सकते हैं हमारे योग्य होने पर जिन सम्पत्तियों की हम इच्छा करना चाहते हैं, जो सम्पत्तियाँ हमारे हाथ फैलाते दूर भागती हैं वे स्वयं हमारे अनुकूल होंगी और हम उनसे अपने कार्य्यों को सिद्ध करेंगे। इसलिये सबसे पहिले हमें अपनी योग्यता को पूर्ण करना चाहिये। फिर अपनी माँगें पेश करना चाहिये। इस समय के विद्यालयों की छात्र-वृत्तियाँ हमारे विद्यालयों को शून्य बनाये हुये हैं और आलसी विद्यार्थियों को भरती करके उनके जीवन को भविष्य के लिये रद्दी किये देती हैं। छात्र-वृत्तियाँ देकर पढ़ाना एक प्रकार का लोभ देकर उनसे जबर्दस्ती अपना जय बुलवाना है। यह आयुर्वेद की हृदयगत भक्ति नहीं है। फलतः हमारे ये छात्र जिनका लक्ष्य छात्रवृत्ति पर ही निर्भर रहता है आयुर्वेद के लिये अपना दिल दिमाग नहीं खर्च करते। फिर छात्र-वृत्ति नाम की ये वृत्तियाँ संख्या और परिमाण में इतनी कम होती हैं कि वे छात्रों को पंगु करने के सिवाय निश्चिन्त भी नहीं कर सकती हैं। इससे अब तो हमको अपना यह पुराना ढंग बिलकुल परिवर्त्तन कर देना चाहिये। हमारा लक्ष्य होना चाहिये आयुर्वेदज्ञ-कर्मठ वैद्य तयार करना और छात्र-वृत्ति उसे ही देना जो अपनी योग्यता से स्वयं इसे उपार्जित कर सकता हो। यह छात्र-वृत्तियाँ अच्छी भारी हों और उसे लेने वाला पाने की योग्यता रखता हो।

नित्य पास होने वाले वैद्यों को उपार्जन की योग्यता प्राप्त कर देने से वे जितने उपयुक्त होंगे इतने थोड़ी सी सहायता प्राप्त कर सदा के लिये उपार्जन की योग्यता रहित होने वाले उपयुक्त न होंगे। अब हमें अपने विद्यालयों में फीस लगा देनी ही पड़ेगी, इससे विद्यालय का खर्च चल सकेगा। पढ़ने वाले अपने धन का दुरुपयोग न करेंगे। हमारा भी लक्ष्य होगा कि इस प्रकार जो तन, मन, धन से आयुर्वेद जानने का प्रयास कर रहे हैं इन्हें सर्वथा योग्य बनाना हमारा कर्त्तव्य है। अर्थकरी विद्या सीखने वाले अर्थ खर्च करने के लिये तयार हैं और उन्हें उपयुक्त मार्ग बताया, सिखाया जाय तो वे इस स्वर्ण समय को कभी न चूकेंगे।

इस प्रकार की शिक्षा के लिये हमें अपने रात्रि-विद्यालयों का सूत्रपात करना पड़े तब भी कुछ हर्ज नहीं। जिन्हें पेट के लिये दिन भर प्रयत्न करना पड़ता है वे भी दूसरी अर्थकरी आयुर्वेद-शिक्षा के लिये बराबर रात्रि का समय दे सकेंगे और हम भी दिन भर चिकित्सा-वृत्ति करके रात्रि को अपना समय बिना वेतन के विद्यालय को दे सकेंगे। इस प्रकार विशेष व्यय के बिना ही हमारा विद्यालय चल सकेगा और हम आगे के संचालन का उपाय सहज में ढूँढ़ सकेंगे।

अर्थकरी विद्या समझ कर ही बहुत से मनुष्य होमियोपैथी का अभ्यास करते हैं, वैद्यक, होमियोपैथी आदि के प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की उत्कट इच्छा किया करते हैं, नि० भा० आयुर्वेद-विद्यापीठ की परीक्षाओं में प्रति वर्ष सैकड़ों छात्र बैठ कर प्रमाणपत्र पाने का यत्न करते हैं। परन्तु विद्यालयों की शिक्षा बिना ये परीक्षायें न तो शोभा पाती हैं, न उचित ही कही जा सकती हैं। इन सबके लिये विद्यालय-शिक्षा होनी ही चाहिये।

युक्तप्रान्त में योग्य वैद्यों की संख्या कम नहीं है, परन्तु अन्य प्रान्त वालों से वे इस बात में अवश्य कम हैं कि वर्तमान के अनुरूप सर्वसाधारण में, सभा सोसायटियों में अपनी प्रशंसा का मार्ग विस्तृत करने की आयोजना किया करें। परन्तु यह बात उनमें स्वाभाविक

है। तथापि मुझे आशा है कि अपने प्रान्त के वैद्यकीय अंश को उन्नत और विख्यात करने में अब युक्तप्रान्तीय वैद्य न चूकेंगे।

युक्तप्रान्त में अनेक आयुर्वेद विद्यालय अब भी सुचारु रूप से चल रहे हैं। ऋषिकुल का आयुर्वेद कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय का आयुर्वेदिक कालेज, पंचपुखरा, औरइया और आवागढ़ के विद्यालय, खुरजे का विद्यालय, पीलीभीत का ललितहरि विद्यालय, कानपुर आयुर्वेद-विद्यालय और कालेश्वर पाठशाला इत्यादि इस बात के उदाहरण हैं।

पर जैसा कुछ समय है और आ रहा है उसके अनुसार अब इनमें आवश्यक सुधारों की विशेष आवश्यकता बढ़ती जा रही है। एतदर्थ इनके अध्यापकों और संचालकों से सविनय प्रार्थना है कि वे संयुक्तप्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन कार्यालय से बार-बार परामर्श करके इनमें अवश्य सुधार करें। सुधार करने में यदि वैद्य भाई दूसरी चिकित्सा-पद्धति के विशिष्ट चिकित्सकों की कर्मठता की ओर लक्ष्य रखते हुये अपने हाथों ही उसे सम्पादित करें तो मुझे बड़ा हर्ष होगा। इससे उनमें समय के साथ चलने की शक्ति बढ़ेगी और अभी कुछ बातों के लिये उन्हें जो उपालम्भ मिलता है या मिल सकता है वह फिर न मिलेगा। हमें यह समझ लेना चाहिये कि उन्नति का मार्ग परमुखापेक्षियों के लिये सर्वदा बन्द रहता है।

कृतज्ञता-प्रकाश।

अपना भाषण समाप्त करते हुये यह निःसंकोच कहने की लालसा है कि ऋषिकुल के संस्थापक, प्राचीन सनातन धर्म के पोषक और महामहोपदेशक रायसाहब पं० दुर्गादत्त जी पन्त और स्वर्गीय लाला सुखवीर सिंह जी विशेष धन्यवाद के योग्य हैं, जिनके अनवरत परिश्रम, स्वार्थत्याग और आयुर्वेद-हितैषिता के कारण आज ऋषिकुल में आयुर्वेद विद्यालय ने आदरणीय स्थान पाया है। इसी प्रकार मैं अपने उन आयुर्वेद प्रेमी डाक्टर भाइयों को भी सहर्ष प्रेमपूर्वक धन्यवाद देता हूँ कि जो अपनी कृपा से आयुर्वेद के गुणों का आदर करते हैं और आयुर्वेदिक संस्थाओं का सञ्चालन-सूत्र अपने हाथ में लेकर उनमें उन्नति का मार्ग खोलते हैं।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

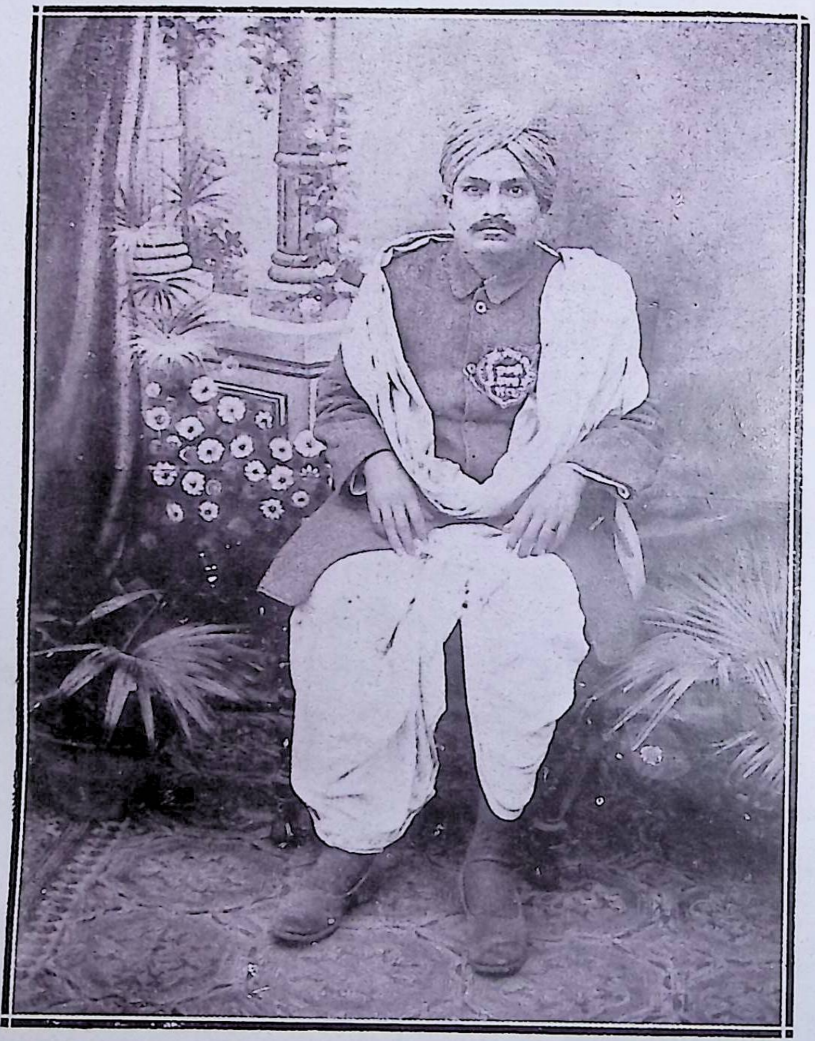

श्रीमान् पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा वाजपेयी आयुर्वेदाचार्य, एम्. ए. बनारस।
अध्यक्ष, संयुक्तप्रान्तीय ८ वैद्यसंमेलन, सीतापुर (सन १९३०)।
अध्यापक, आयुर्वेदकालेज, बनारस हिन्दुयुनिवार्सिटी।
अध्यक्ष, आयुर्वेदीयस्नातकसंमेलन, कराची (सन १९३०)।

युक्तप्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन सीतापुर के सभापति

पं० जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी, आयुर्वेदाचार्य, एम० ए० का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

आपका जन्म उन्नाव जिले के पुरा नामक ग्राम में हुआ था। और हिन्दी तथा उर्दू की शिक्षा आपने वहीं पर पाई थी। १२ वर्ष की अवस्था में ही आपके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। उसी समय से कुटुम्ब के पोषण का भार आप पर ही आ पड़ा। बड़ी कठिनाइयों के साथ आपने "लालचन्द जोखीराम संस्कृत पाठशाला, कानपुर" में व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ किया। जीविकोपार्जन से बचे हुये समय में आप अध्ययन करते। इस प्रकार सन् १९१२ ई० में आपने वहीं से क्वीन्स कालेज, बनारस की प्रथमा परीक्षा दी, और उसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। इससे इस होनहार युवक का उत्साह बढ़ गया और क्रमशः १९१३, १४ व १५ में व्याकरण मध्यमा के प्रथम, द्वितीय व तृतीय खण्ड की परीक्षायें उसी पाठशाला से पास कीं। इसी बीच में कुछ समय तक के लिये आपने दिगम्बर जैन औषधालय में कम्पाउन्डरी का कार्य किया। उसी समय से आपके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि आयुर्वेद के द्वारा स्वार्थ व परमार्थ दोनों सिद्ध होते हैं, अतः उसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

इस विचार से आपने श्री पं० रामेश्वर जी मिश्र, चिकित्सक-चूड़ामणि के पास स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया; पर आर्थिक कठिनाई के कारण वहाँ पर रहना असम्भव हो गया। अतः आप बम्बई चले गए। वहाँ पर श्री पं० रमापतिजी मिश्र की अनुकम्पा तथा सम्मति से आपने गोकुलदास तेजपाल सं० कालेज में व्याकरण और श्री पं० यादव जी त्रिकम जी आचार्य जी के पास आयुर्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया। और सन् १९१६ में व्याकरण मध्यमा चतुर्थ खण्ड तथा १९१७ में व्याकरणाचार्य द्वितीय खण्ड और साथ ही आयुर्वेद-विशारद परीक्षा पास की। तथा १९१८ में व्याकरणाचार्य तृतीय खण्ड और बड़ौदा राजकीय परीक्षा की व्याकरण प्रथमा तथा आयुर्वेद प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षायें एक साथ ही पास कीं। जिनमें राज्य की ओर से आपको ६०) सम्मान सहित पुरस्कार प्राप्त हुआ।

आप में अपूर्व प्रतिभा है। अध्ययन के समय ही आप गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज में सहायक अध्यापक बनाए गए। उस पद का आपने बड़ी योग्यता तथा कुशलता से निर्वाह किया। सन् १९१८ में कानपुर में युक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन का अधिवेशन श्री पं० गणेशदत्त जी शास्त्री, काशी निवासी की अध्यक्षता में हुआ। उन्हीं के कर कमलों द्वारा आयुर्वेद विद्यालय, कानपुर का उद्घाटन हुआ। उसके आप ही अध्यापक चुने गए। अध्यापन कार्य करते हुए ही सन् १९२० में आपने आयुर्वेदाचार्य परीक्षा पास की। इसके अनन्तर आपकी इतनी प्रतिष्ठा हुई कि जिस जैन औषधालय में आपने कम्पाउण्डरी की थी उसी के प्रधान वैद्य

नियुक्त हुए। आपके प्रबन्ध से जैन औषधालय की इतनी ख्याति हुई कि आपके समय में उसमें रोगियों की वार्षिक संख्या एक लाख से ऊपर हो गई।

सन् १९२५ में हिन्दू विश्वविद्यालय में आप अध्यापक चुने गए। उस समय से अब तक अध्यापन का कार्य आप बड़ी योग्यता के साथ कर रहे हैं।

अध्यापक चुने जाने के अनन्तर एक दिन बातचीत में पूज्य मालवीय जी महाराज ने प्रश्न किया कि क्या जगन्नाथ जी आप कुछ इङ्गलिश जानते हैं? इस पर आपने कहा कि नहीं। इस पर मालवीय जी महाराज ने कहा कि आज ही प्रारम्भ कर दो। यह शुभ उपदेश आपके लिए पथ प्रदर्शक बन गया। आपने उसी दिन से इंगलिश पढ़ना आरम्भ कर दिया और दो वर्ष के कठिन परिश्रम के अनन्तर सन् १९२८ में आप एडमिशन में उत्तीर्ण हुये। इसी वर्ष आप छात्रावास के वार्डेन चुने गए। और सर सुन्दर लाल हास्पिटल में रोगियों के निरीक्षण का भार भी आपको सौंपा गया तथा वैद्य सम्मेलन पत्रिका के सम्पादक भी चुने गए। वैद्य सम्मेलन पत्रिका का सम्पादन ३ वर्ष तक आपने बड़ी योग्यता के साथ किया। और इसी समय चक्रदत्त की हिन्दी टीका लिखी, जो कि खेमराज श्रीकृष्णदास जी के यहाँ छपी है और साथ ही साथ इंगलिश का अध्ययन करते हुये सन् १९३० ई० में इण्टर मीजियट परीक्षा पास की। इसी वर्ष आप अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ स्नातक-सम्मेलन कराची के सभापति चुने गए।

सन् १९३० ई० में सत्याग्रह आन्दोलन में आप सम्मिलित हो गए और गवर्नमेण्ट ने आपको एक वर्ष के लिए जेल भेज दिया। जेल में भी आपने समय का खूब उपयोग किया और बी० ए० का कोर्स वहीं समाप्त कर डाला। गान्धी-इर्विन सन्धि हो जाने पर आप जेल से छूट गए और फिर कालेज का काम करने लगे। सन् १९३२ ई० में आप बी० ए० की परीक्षा में बैठे और उसमें बड़े अच्छे नम्बरों से पास हुये। समग्र विश्वविद्यालय में आपको नवम स्थान इस परीक्षा में प्राप्त हुआ। इसके अनन्तर ही आपने एक स्वतन्त्र औषधालय भी खोला जो कि अस्सी मुहल्ले में जनता की सेवा कर रहा है।

सन् १९३३ में आप युक्तप्रान्तीय अष्टम वैद्य सम्मेलन, सीतापुर के सभापति चुने गए। सन् १९१५ ई० में आपने एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। इसी वर्ष इण्डियन मेडिसन बोर्ड यू० पी० के चुनाव में आप बहुत अधिक वोटों से सदस्य चुने गए। आपके जीवन में सादगी, उत्साह तथा परिश्रम का आदर्श सम्मेलन हुआ है।

आपने आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान नामक एक ग्रन्थ संस्कृत में सम्पादित किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

स्वास्थ्य वर्धक औषधालय
अस्सी—बनारस।

निवेदक—
लक्ष्मी नारायण मिश्र

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

युक्तप्रान्तीय अष्टम वैद्यसम्मेलन के सभापति काशी हिन्दू विश्वविद्यालयाध्यापक

आयुर्वेदाचार्य पं० जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी एम० ए० का

अभिभाषण ।

यस्य स्मृत्याऽथ नामोक्त्या विघ्नाः यान्ति क्षयं क्षणात् ।
मातृ रक्षाऽर्पित शिराः स गणेशः प्रणम्यते ॥१॥
यस्य ज्ञान लवानवाप्य गिरिशो हालाहलं सोढवान्
स्थाविर्येऽपि सलीलमेव रचनां सृष्टेर्विधत्ते विधिः ।
शेते शेष फणा विनिःसृत विष ज्वालाक्त शय्यां हरिः
स्वास्थ्यायुः सुखदायको विजयते वेदः सदा सायुषः ॥२॥
करुणा पूर्ण दृष्टिर्मूकान् विदधाति वाग्मिनः क्षणतः ।
यस्याः सत्कवि सेव्यां नित्यन्ताम्भारतीं वन्दे ॥३॥
सच्छात्र दीक्षण यशो धवली कृताशान्
व्याध्यब्धि मग्न जन रक्षण दत्त चित्तान् ।
ग्रन्थ प्रकाशन विमुग्ध भिषग्भिरर्च्यान्
नित्यं नमामि गुरु यादव पाद पद्मान् ॥४॥
सामीप्यं यस्य सम्प्राप्य क्षुद्रोऽपि गुरुतां व्रजेत् ।
काशीपतिर्विश्वनाथः स कस्मान्नाभिवन्द्यते ॥५॥

श्रीमान् माननीय महर्षि कल्प वैद्यराज !

देवियो और भाइयो !

सर्व प्रथम उस अखिल ब्रह्माण्डनायक जगदीश्वर जगन्नियन्ता परब्रह्म परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है जिसकी असीम अनुकम्पा से युक्तप्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन का यह अष्टम अधिवेशन सम्पन्न हो रहा है।

आप लोगों ने इस अधिवेशन का सभापति नियुक्त कर मुझे जो गौरव प्रदान किया है उसके लिये आप लोगों को अनेकानेक धन्यवाद है। अच्छा होता यदि इस शुभ अवसर के लिये आपने किसी विशिष्ट महापुरुष का वरण किया होता जिससे कि उत्सव की विशेष शोभा होती तथा उत्तम शिक्षा भी मिलती। मुझे तो वास्तव में इस पद को स्वीकार करते हुए जो संकोच हो रहा है उसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जिस पद को श्रद्धेय शुक्ल जी सदृश कर्मवीर, आदरणीय शास्त्री जी सदृश विद्वान् और पूज्य मिश्र जी सदृश वृद्धों ने सुशोभित किया हो उस पर मुझ जैसे अल्पज्ञ का आसीन होना सर्वथा हास्यास्पद है।

"कवि न होहुँ नहिं वचन प्रवीना ।
सकल कला सब विद्या हीना ॥"

यह चौपाई कवि-कुल-कमल-दिवाकर भक्त-शिरोमणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी नम्रता प्रगट करने के लिये लिखी है, किन्तु, मेरे सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य है। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोगों ने मुझे सभापति क्यों चुना। केवल एक बात समझ में आती है और वह है आयुर्वेद की सेवा का हार्दिक भाव। मुझे जिस समय आयुर्वेद की जो सेवा सौंपी गई है उसे सत्यता के साथ पूर्ण करने में मैंने कोई कसर नहीं उठा रक्खी। मुझे विश्वास हो रहा है कि आपने मेरे इसी सेवा को लक्ष्य में रखकर सभापति चुना है। अतः मैं भी अपनी प्रकृति के अनुसार आपकी आज्ञा पालन करने से मुख नहीं मोड़ता। किन्तु, साथ ही साथ स्पष्ट रूप से निवेदन किये देता हूँ कि आप लोगों को पूर्ण सहानुभूति व सहयोग के विश्वास पर ही पूज्य गुरु लोगों को प्रणाम कर इस पवित्र कर्मानुष्ठान में तत्पर होता हूँ।

विशेष कुछ कहने के पहिले प्रान्त के उन नवयुवक प्रतिष्ठित विद्वान् वैद्यों का स्मरण आये विना नहीं रहता जो आयुर्वेद का गौरव बढ़ा रहे थे, हमारे लिये आदर्श थे, जिनसे आयुर्वेद जगत् को बहुत बड़ी आशा थी और जिनके असामयिक स्वर्गवास से आयुर्वेद की क्षति के साथ ही हम लोगों के उत्साह भङ्ग हो गये हैं। उनमें से एक काशी-निवासी भारत-विख्यात श्री पं० उमाचरण जी भट्टाचार्य्य जी के सुपुत्र श्रीमान् पं० विश्वेश्वर जी कविराज हैं। आपकी अभी बहुत थोड़ी अवस्था थी, किन्तु, आपने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी और युक्तप्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के मेम्बर भी आप हो चुके थे। दूसरे पं० राधाकृष्ण जी वैद्यशास्त्री हैं। आपने काशी रसशाला स्थापित की थी और तलस्थचन्द्रोदय के निर्माण का अनुसन्धान सर्व-प्रथम नवयुवकों में आप ही ने किया था। उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए परमात्मा से विनय करते हैं कि वह उनकी आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य प्रदान करे।

माननीय सभ्यवृन्द !

आप लोग न केवल आयुर्वेद के ही किन्तु अनेक शास्त्रों के विद्वान् हैं। आप लोगों के सन्मुख मैं कोई नई बात कहूँ यह कठिन ही नहीं असम्भव है। मैं जो कुछ भी कहूँगा वह श्री समर्थ स्वामी रामदास जी के शब्दों में

सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बानी।
जानूँ उसका भेद भला क्या मैं अज्ञानी ॥

के सिवाय कुछ भी नहीं। पर, फिर भी एक परीक्षार्थी छात्र के रूप में आयुर्वेद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करता हूँ, अतः मेरे कथन को विद्वत्ता प्रदर्शन न समझियेगा। केवल युक्तायुक्त युक्त का निर्णय कीजियेगा।

सर्व-प्रथम, आयुर्वेद क्या है इसी का विचार करना चाहिये। आयुर्वेद की परिभाषा महर्षि अग्निवेश ने इस प्रकार की है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

अर्थात् जिसमें हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु, आयु के लिये हित तथा अहित, आयु का मान तथा आयु के स्वरूप का वर्णन हो उसे आयुर्वेद कहते हैं।

हित आयु अहित आयु सुख आयु तथा दुःख आयु की व्याख्या उन्होंने स्वयं इस प्रकार की है।

हितैषिणः पुनर्भूतानां परस्वादुपरतस्य सत्यवादिनः, शम परस्य, परीक्ष्यकारिणोऽप्रमत्तस्य, त्रिवर्गं परस्परेणानुपहतमुपसेवमानस्य, पूजार्हं सम्पूजकस्य, ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य, वृद्धोपसेविनः, सुनियत रागेर्ष्या मदमान वेगस्य, सततं विविध प्रदान परस्य, तपो ज्ञान प्रशम नित्यस्य, अध्यात्म विदस्तत्परस्य, लोकमिमञ्चामुञ्चावेक्षमाणस्य स्मृतिमतिमतो हितमायुरुच्यते। अहितमतो विपर्य्ययेण।

तत्र शारीर मानसाभ्यां रोगाभ्यामनभिद्रुतस्य, विशेषेण यौवनवतः, समर्थानुगत बलवीर्य पौरुष पराक्रमस्य, ज्ञानविज्ञानेन्द्रियार्थ बलसमुदाये वर्तमानस्य, परमर्द्धिरुचिर विविधोपभोगस्य समृद्ध सर्वारम्भस्य यथेष्ट विचारिणः सुखमायुरुच्यते।

असुखमतो विपर्य्ययेण।

आयुष्याण्य नायुष्याणि च द्रव्यगुण कर्माणि केवलेनोपदेश्यन्ते तन्त्रेण।

प्रमाणमायुषस्त्वर्थेन्द्रियमनोबुद्धिचेष्टादीनां स्वेनाभिभूतस्यविकृतिलक्षणैरुपलभ्यतेऽनिमित्तैरिदमस्मात् क्षणान् मुहूर्ताद्दिवसात्त्रिपञ्चसप्तदश द्वादशाहात् पक्षात् मासात् षण्मासात् संवत्सराद्वा स्वभावमापत्स्यते इति।

आयुश्चेतना प्रवृत्तिर्जीवितमनुबन्धोधारिचेत्येकोऽर्थः।

इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता जाता है कि आयुर्वेद किसी एक ग्रन्थ या एक भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों का नाम नहीं है किन्तु प्रत्येक चिकित्सा पद्धति चाहे वह एलोपैथी हो या होमियोपैथी, यूनानी या मिश्रानी, आयुर्वेद के अन्तर्गत आ जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि द्वारा देखने से तो यह विचार और भी अधिक पुष्ट हो जाता है। यह बात अब किसी भी विचारशील पुरुष से छिपी नहीं है कि चिकित्सा-शास्त्र का आविर्भाव भारत में हुआ। उसका प्रचार भारत से मिश्र में, मिश्र से यूनान में और यूनान से सारे यूरोप में हुआ।

इस प्रकार, यद्यपि समस्त चिकित्सा पद्धतियाँ आयुर्वेद के अन्तर्गत आ जाती हैं या आयुर्वेद से उत्पन्न हुई हैं, किन्तु, समय के फेर से यह कुछ ऐसी दशा में पहुँच गया है कि कोई भी चिकित्सा पद्धति इसे अपनाने में सङ्कोच करेगी। इसका कारण देश-व्यापी हजारों वर्षों से विप्लव के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता। आयुर्वेद में जो विषय सूत्ररूप से वर्णित हैं उनके उपर विस्तृत विवेचन या अनुसन्धान नहीं किया जा सका। जो विषय कष्टसाध्य हैं उनके सम्पन्न करने का उद्योग न हो सका। जो विषय आयुर्वेदीय ग्रन्थों से अन्यत्र वर्णित हैं उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा सका। अतः आयुर्वेद के अंग-प्रत्यङ्ग जितने पुष्ट हो चुके थे उससे भी पुनः शिथिल हो गये। आयुर्वेद में कई स्थानों पर अथर्ववेद की ओर सङ्केत किया गया है। यथा सुश्रुते

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य·············।

तथा च चरके

तत्र भिषजा पृष्टेनैवञ्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। वेदोह्याथर्वणः स्वस्त्ययनवलि मंगल होम नियम प्रायश्चित्तोपवास मन्त्रादिपरिग्रहाच्चिकित्सां प्राह।

पर क्या भक्तिरादेश्या का अर्थ केवल यह है कि अथर्ववेद का नाम लिया जाय। मेरे विचार से तो इसका यही अर्थ होना चाहिये कि वैद्यों को इतर वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद के अनुशीलन में अधिक परिश्रम करना चाहिये। पर, कितने खेद तथा अनवधान का विषय है कि अथर्ववेद के एक भी अंश का अध्ययनाध्यापन आज तक प्रचलित नहीं हुआ। अथर्ववेद में आयुर्वेद का जितना विषय भरा हुआ है इसका दिग्दर्शन कुछ मन्त्रों द्वारा यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

अथर्ववेद काण्ड १ अनुवाक १ सूक्त ३ की भूमिका महर्षि सायणाचार्य ने इस प्रकार लिखी है।

विद्मा शरस्येति तृतीयसूक्तेन मूत्रपुरीष निरोधे प्रमेहण साधन हरीतकी कर्पूरबन्धनम्, मूषिकामृत्तिका पूतीकतृणदधिमथितजरत् प्रमन्ददारु तक्षण शकलानामन्यतमस्य पायनम् हस्त्यश्वादि यानारोहणम्, शरविसर्जनम् शरेणमूत्रनालविदारणम् लोहशकलस्य मूत्रद्वारे प्रवेशनम् इत्येवमादीन्यपि सूत्रोक्तप्रकारेण व्याधितस्य कुर्यात् 'विषितं ते वस्तिबिलम्" इति द्वयृचेन मूषिकामृत्तिकाद्युक्तद्रव्येषु निरुद्ध मूत्रपुरीषं पुरुषमास्थापयेत्।

इस प्रकार, इस सूत्र द्वारा मूत्र-पुरीष विवन्ध को नष्ट करने के लिये हरीतकी तथा कर्पूर का वन्धन, गन्ध तृग, सूषिका मृत्तिका इत्यादि में से किसी एक का पान, हाथी घोड़े आदि की सवारी, शर-विर्जन (आजकल के लिये बन्दूक दागना) शस्त्र द्वारा मूत्रनाल को काटकर शल्य निकालना तथा मूत्र-मार्ग में सलाई पास करना इत्यादि अनेक उपाय बताये गये हैं।

अब प्रथम मन्त्र सुनिये,
विद्मा शरस्यपितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्टे अस्तु वालिति ॥ १ ॥

इसका अर्थ इस प्रकार है—शर (अर्थात् अवरोध नाशक औषध या शास्त्र) के उत्पादक वृष्टिदेव अथवा इन्द्र को जानता हूँ। उस शर के द्वारा हे मूत्ररोगार्त तुझे आरोग्य करता हूँ। तेरे शरीर से बलबल करता हुआ मूत्र निकल कर पृथिवी पर पड़े।

इसी सूत्र का वह षष्ठ मन्त्र है जिसके द्वारा महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन सरस्वती जी ने यह सिद्ध किया कि महर्षियों को वृक्कों से वस्ति में मूत्र पहुँचाने वाले दोनों स्रोतस् का प्रत्यक्ष दर्शन के अनुसार ही यथार्थ ज्ञान था। वह मन्त्र इस प्रकार है।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रितम्।
एवाते मूत्रं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥

इस मन्त्र का महत्व प्रत्यक्ष शारीर की भूमिका पढ़ने वाले सभी महाशयों को ज्ञात होगा।

जलोदर कितना दुष्ट रोग है इसके विषय में माधवकर लिखते हैं।

सर्वंजातोदकं तथा। प्रायो भवत्यभावाय,

महर्षि सायन कहते हैं—

"अयं देवानाम्" इति सूक्तेन जलोदर रोग निवृत्तये गृह तृण दर्भ पिञ्जुलि युक्त घट जलेन अभिषेकं कुर्यात्।

इस दुष्ट रोग का प्रधान निदान अथर्ववेद में असत्य भाषण बतलाया है और उसकी चिकित्सा वरुण देव की उपासना बतलाई गई है। वह इस प्रकार है।

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु।
राज्ञस्त्वा सत्य धर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम्॥

इस मन्त्र का भाष्य सायन ने इस प्रकार किया है।

हे जलोदररोगग्रस्त पुरुष! जिह्वया अभिवदन साधनेनेन्द्रियेण यत् रोग निदान भूतम् अनृतम् असत्यम् उववथ।

अनृतस्य रोग हेतुत्वमुपपादयन् विशिनष्टि। बहु अधिकं वृजिनम् पापम्।……… अन्यस्मात् पापकर्मणः अधिकतरपापहेतुः अनृतवदनमित्यर्थः।

यद्यपि अनृतवदनरूपं पापं कृतवानसि तथापि सत्यधर्मण…………सत्यभाषण स्वभावात्। विवक्षितविशेषणमेतत्। यतोऽयं वरुणः सत्य धर्मा अतः असौ अनृतभाषणं न सहते इत्यर्थः। श्रूयते हि "अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति ईदृशाद् राज्ञः……वरुणात् है रोगग्रस्त त्वां मुञ्चामि मोचयामि। तस्मादनृतवदनसम्भूताज्जलोदररूपाद्वरुणपाशान् मन्त्र-प्रभावेण त्वां वियोजयामीत्यर्थः।

क्रिमि तथा जीवाणुओं के सम्बन्ध में कितने ही मन्त्र हैं उनमें से कुछ मन्त्र यहाँ पर दिखलाना अनुपयुक्त न होगा।

अथर्व–कांड २ अनुवाक ५ सूक्त ३१ मन्त्र २, ४।

दृष्टमदृष्ट मतृह मथो कुरूरु मतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वान् शलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि॥
अवान्त्य शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन वचसा जम्भयामसि॥

अर्थात् दिखाई पड़नेवाले अथवा न दिखाई पड़ने वाले अल्गण्डु नामक तथा शलुत नामक समस्त क्रिमियों के समूह को मन्त्र द्वारा नष्ट करता हूँ। अन्त्र, शिर तथा पार्ष्णि में उत्पन्न अन्तः प्रविष्ट, अनेक मार्गों में फैले हुए, अनेक मार्ग बना देने वाले तथा अनेक औषध प्रयोगों द्वारा भी नष्ट न होने वाले क्रिमियों को मन्त्र द्वारा नष्ट करता हूँ।

इन मन्त्रों द्वारा यह सिद्ध है कि अथर्ववेद उन जीवाणुओं का भली भाँति वर्णन करता है जिसका (Micro-organisms) का पता पाश्चात्य विज्ञान-वेत्ताओं को सन् १८५० के पहिले बिल्कुल न था जैसा कि Green's Manual of Pathology and Morbid Anatomy के Twelvth Edition के Page 99 द्वारा सिद्ध है। वहाँ लिखा है।

The first organism identified as the exciting agent of disease was the bacillus of anthrax of splinic fever discovered by Davaine (1850). After this the progress of discovery was rapid, bacteria are now proved to be causal agents in a large number of infectious diseases—Anthrax, Diptheria, tetanus, Tuberculosis, Enteric fever, Plague, Cholera, Influenza—and in many others their causal connection highly probable.

अर्थात् सर्व प्रथम जो जीवाणु रोग संक्रामक कारण के रूप में ज्ञात हुआ था वह

Anthrax या Splenic fever का सीधा जीवाणु था। उसका अन्वेषण डा० डैवाइन ने सन् १८५० ई० में किया था। इसके अनन्तर अनुसन्धान बड़ी तेजी से हुआ। इस समय जीवाणु (anthrax गलग्रह, धनुस्तम्भ, आन्त्रिक क्षय, आन्त्रिक ज्वर, प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएञ्जा आदि) अनेक संक्रामक रोगों के कारण प्रमाणित हो चुके हैं और अन्य रोगों में भी उनका कार्य-कारण भाव होना सम्भव है।

खेद का विषय है कि पाश्चात्य-वैज्ञानिक जितने शीघ्र उन्नति कर गये उतना ही धीरे-धीरे हम अपने विज्ञान को भूल गये। जिस प्रकार पाश्चात्य विज्ञान यह मानता है कि बाहर के कृमि अन्न पान द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं, अथर्ववेद भी कहता है:—

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्हन्मि जनिम क्रिमीणाम्॥

सायण भाष्यम्—

पर्वतादिषु अन्तः मध्ये ये क्रिमयः स्थिताः तेऽस्माकं तन्वः तनूः शरीराणि आविविशुः व्रणमुखेन अन्न पानादि द्वारेण वा प्रविष्टाः सर्वं निरवशेषं तत् उक्तविधं क्रिमीणां जनिम जन्म उत्पत्ति मेव हन्मि नाशयामि॥

क्रिमियों की चिकित्सा भी विज्ञान के अनुसार ही मिलती है। आजकल भी सूर्य की किरणों में क्रिमिनाश करने की सबसे बड़ी शक्ति मानते हैं। अथर्ववेद का मन्त्र है।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तुरश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयः गवि॥

भाष्यम्—आदित्यः उद्यन् उदयं प्राप्नुवन् रश्मिभिर्व्यापनशीलैः स्वकिरणैः क्रिमीन् हन्तु हिनस्तु निम्रोचन् अस्तं गच्छंश्च रश्मिभिः क्रिमीन् हन्तु इत्यादि।

अधिक क्या कहा जाय सूर्य को तो प्राण ही बतलाया है।

"प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

वंशजरोग क्षय कुष्ठादि का वर्णन अथर्ववेद में बहुत ही सुन्दर है। क्षय के रोगी को खुली जगह में रखना कितना हितकर है यह सभी मानते हैं। अथर्ववेद में भी खुली जगह, शुद्ध वायु, शुद्ध जल की बड़ी प्रशंसा इन रोगों के नाश करने के लिये की गई है।

अथर्ववेद में हृद्रोग, पाण्डुरोग, कामला, विष अभिघात इत्यादि प्रायः सभी रोगों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। औषधियों के गुण भी खूब लिखे गये हैं। केवल अपामार्ग की ही प्रशंसा में कितने ही मन्त्र हैं। यह सब विषय इस छोटे से भाषण में न आ ही सकता है और न इससे पूर्ण लाभ ही हो सकता है। विद्वानों को स्वयं इसका आलोचन कर इष्ट रत्न निकालना चाहिये और जनता के कल्याणार्थ उनका प्रचार करना चाहिये। अथर्ववेद में रोगों के नाश करने के प्रयोग किस प्रकार के हैं वह केवल उसके एक मन्त्र द्वारा जाने जा सकते हैं।

यदिक्षितायुर्यदिवापरेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामिनिर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शत शारदाय॥

भाष्यम्—यदि अयं व्याधिग्रस्तः क्षितायु रोगेण क्षपितायुर्भवेत्…………

यदिवापरेनः अस्माल्लोकात्परागतो भवेत्। यदि च मृत्योः वैवस्वतस्य अन्तिकं नीतः नितरां प्राप्त एव भवति। एवं भूतमपि तम् पुरुषं निर्ऋतेः मृत्योः उपस्थात् उपस्थानात् समीपात् आहरामि इमं लोक मानयामि। आहृत्य च एनं शत शारदाय शतसंवत्सर जीवानार्थम् अस्पार्शम् प्रबलं करोमि।

आयुर्वेद का विषय न केवल अथर्ववेद में किन्तु उपनिषदों में भी अनेक स्थानों पर आता है। गर्भोपनिषद् और शारीरोपनिषद् तो आयुर्वेदीय शारीर ही हैं।

दर्शनशास्त्र में भी आयुर्वेद विषय की कमी नहीं है दर्शन शास्त्र का विषय आयुर्वेद में स्थान-स्थान पर आता है। वैशेषिक दर्शन के "तस्माद्धर्म विशेष प्रसूताद्द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः" का अक्षरशः अनुवाद चरक-संहिता के ये श्लोक प्रतीत होते हैं—

सामान्यं च विशेषं च गुणान् द्रव्याणि कर्म च।
समवायं च तज्ज्ञात्वा तन्त्रोक्तं विधिमास्थिताः॥
लेभिरे परमं शर्म जीवितञ्चापि निर्गदम्।

विशेषता इतनी ही है कि वैशेषिक दर्शनकार ने केवल ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति बताई है और महर्षि अग्निवेश ने ज्ञान पूर्वक कर्म करने से। सांख्य दर्शन के सूत्र

"सत्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारात्पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः" का ही विस्तृत व्याख्यान सुश्रुत और चरक के शारीर प्रथम अध्याय में है।

इसी प्रकार न्याय दर्शन के प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयव तर्कनिर्णय वाद जल्प वितण्डा हेत्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानाख्य पदार्थों का वर्णन भी चरक संहिता विमान स्थान अष्टम अध्याय तथा सुश्रुव संहिता ,उत्तर तन्त्र पैंसठवें अध्याय में आया है और उन पदार्थों का सम्यग् ज्ञान उन दर्शनों के अध्ययन द्वारा ही हो सकता है जैसा कि महर्षि सुश्रुत लिखते हैं:—यन्न शास्त्र विषयोपपन्नानाञ्चार्थानामिहोपविपतितानामर्थवशात्तेषां तद्विद्येभ्य एव व्याख्यानमनु श्रोतव्यम्। कस्मात्? नह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वं शास्त्राणायवरोधः कर्तुम्।

भवति चात्र

एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः॥

पुराणों में भी आयुर्वेद का विषय यथेष्ट समाविष्ट है। इसके लिये वायुपुराण, अग्नि पुराण और गरुड़पुराण विशेषतया द्रष्टव्य हैं।

तन्त्र शास्त्र में भी आयुर्वेद की कम सामग्री नहीं है। इन्द्रजाल-विद्या-संग्रह तो आयुर्वेद का ही एक अंश है। वाजीकरण के अपूर्व प्रयोग इसमें हैं। गर्भ-रक्षा का विधान बड़े अच्छे ढंग से लिखा गया है। गर्भस्राव तथा पात की सम्भावना में क्या करना चाहिये इसके सम्बन्ध में इन्द्रजाल-कार कहते हैं।

अकस्मात् प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना।
गोक्षीरैः पाययेत्तुल्यं पद्म केशर चन्दनम्॥

पल मात्रं पिवेन्नारी त्र्यहं गर्भः स्थिरो भवेत् ।
अथवा मधुकं दारु शर वृत्तस्य बीजकम् ॥
सम्पिष्य क्षीर काकोलीं पिवेत्क्षीरैस्तुगो भवैः ।
नीलोत्पलंमृणालं च यष्टिः कर्कट श्रृंगिका ॥
अश्वत्थ वल्कलं चाथ तिलं कृष्णं शतावरीम् ।
मञ्जिष्ठा सहितां पिष्ट्वा पिवेत् क्षीरैश्चतुर्गुणैः ॥

इसी प्रकार प्रत्येक मास की विधि लिखी गई है। गर्भ की शुष्कता के संबन्ध में लिखा है।

गोक्षीरं शर्करा युक्तं शुष्कगर्भप्रशान्तये ।
पिवेद्वा मधुकं चूर्णं गाम्भारी फल चूर्णकम् ॥
समांशं गव्य दुग्धेन गर्भिणी तत्प्रशान्तये ।

इसी प्रकार, वाजीकरण योग, वन्ध्या चिकित्सा, बाल चिकित्सा, विष चिकित्सा आदि इस ग्रन्थ में लिखी गई हैं। घर से चूहे, सर्प, विच्छू, मच्छड़, मक्खियाँ और खटमल भगा देने के इस पुस्तक में अनेकों योग हैं उनमें से केवल एक यहाँ पर लिखा जाता है—

मुस्त सिद्धार्थ भल्लात करि कच्छू फलं गुड़म् ।
चूर्णं भानु फलोपेतं दहेत्सर्ज रसैः समम् ॥
मत्कुणाः मशकाः सर्पाः मूषिकाः विषकीटकाः ।
पलायन्ते गृहं त्यक्त्वा यथा युद्धेऽतिकातराः ॥

भारत कृषि-प्रधान देश है, पर, आजकल कृषि में अनेकों बाधायें आती हैं उनमें से मूसे और टीड़ियों से भी कम हानि नहीं होती। यद्यपि यह विषय आयुर्वेद से सीधा सम्बन्ध नहीं रखता तथापि इससे भिन्न भी नहीं कहा जा सकता। आशा है, आप लोग इसे उपस्थित करने के लिये क्षमा करेंगे। इन्द्रजालकार कहते हैं:—

बालुका श्वेत सिद्धार्थान् प्रक्षिपेत् क्षेत्र मध्यतः ।
शलभाः सर्प कीटाश्च वराह मृग मूषिकाः ॥
मशकास्तत्र नो यान्ति तन्त्र विद्या प्रसादतः ।

अर्थात् बालू और सफेद सरसों खेत में छोड़ देना चाहिये। इससे टीड़ी, सांप, दूसरे प्रकार के कीड़े, सुअर, मृग, और चूहे खेत में नहीं जाते। यद्यपि यह विषय यहाँ पर हास्यास्पद प्रतीत होता है, तथापि सज्जनों को इसका अनुभव अपने यहाँ करना चाहिये। यदि यह प्रयोग ठीक सिद्ध हुआ जैसा कि बहुत कुछ आशा है तो खेती की एक बड़ी आपत्ति दूर हो जायगी। विषयान्तर के लिये क्षमा करें।

आयुर्वेद में वर्णित चिकित्सा भी कितने अंश में हमारे पास बची है इसको भी विचार कर दुःख होता है। शल्यतन्त्र तो पूरा ही राक्षसी चिकित्सा कह कर चिरकाल से वैद्यों द्वारा परित्यक्त है। किन्तु, काय-चिकित्सा के भी एक प्रधान विषय से हम सर्वथा पृथक् हैं। महर्षि अग्निवेश ने लिखा है—

शाखा गताः कोष्ठ गताश्च रोगाः मर्मोर्ध्व सर्वावयवाङ्गजाश्च ।
ये सन्ति तेषां नच कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥
विएमूत्र पित्तादि मलाशयानां विक्षेप संहार करः सयस्मात् ।
तस्याति वृद्धस्य शमाय नान्यद् वस्तेर्विना भेषजमस्ति किञ्चित् ॥
तस्माच्चिकित्सार्द्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपिवस्तिमेके ।

इस प्रकार वस्ति को उन्होंने पूर्ण चिकित्सा बतलाया है, पर, हम उसका भी प्रयोग नहीं कर सकते । हम लोग रस-चिकित्सा की बड़ी डींग मारा करते हैं; पर उसमें भी कितना परिश्रम किया जाता है यह किसी से छिपा नहीं है ।

ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न बहुत शीघ्र उपस्थित होता है कि जब वैद्यों ने आयुर्वेद के एक बड़े अंश को छोड़ ही रक्खा है तो उसे एक दम क्यों न त्याग दिया जाय और उसके स्थान में सर्वगुण सम्पन्न (अपटू-डेट) एलोपैथी चिकित्सा पद्धति अपना ली जाय । इसका सीधा उत्तर तो यही है कि यदि किसी का बाप बुड्ढा हो जाय तो उसे घर से बाहर निकाल देने को तो कोई भी न कहेगा । हाँ, यदि वह मर चुका हो तो अवश्य उसका अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया जायगा । किन्तु, यहाँ तो उससे सर्वथा विपरीत परिस्थिति है । यद्यपि १९ वीं शताब्दी में आयुर्वेद ऐसी जीर्ण-शीर्ण दशा में पहुँच गया था कि उसका पुनः आरोग्य होना कठिन प्रतीत होता था । किन्तु, उस समय के प्रतिष्ठित चिकित्सक महर्षि—कल्प स्वनामधन्य पं० शंकर दाजी शास्त्री पदे तथा उनके सहयोगियों ने उसे ऐसे रसायन का सेवन कराना प्रारम्भ किया और उनके अनुयायी पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन जी सरस्वती, पं० लक्ष्मीराम जी स्वामी तथा पं० यादव जी त्रिकम जी आचार्य आदि सद्वैद्यों ने उसकी इस प्रकार चिकित्सा की कि आज वह पुनः नवजवान सा प्रतीत हो रहा है । स्थान-स्थान पर दातव्य-औषधालय खुल गये हैं । प्रान्तीय कौंसिलों ने उसके लिये अनुकूल व्यवस्था करनी प्रारम्भ कर दी है । कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टों ने अपनी ओर से कालेज व स्कूल खोले हैं, जिनके द्वारा आयुर्वेद के उन अङ्गों (शल्य-शालाक्य तथा वस्ति-कर्म आदि) का भी पोषण हो रहा है जिन्हें वैद्य समुदाय एक प्रकार से भूला हुआ था । इससे स्पष्ट प्रतीत होरहा है कि आयुर्वेद का वह ओज नष्ट नहीं हुआ जिसके लिये लिखा है:—

यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति ।

यही क्यों ! आयुर्वेद में वह अमरत्व शक्ति वर्तमान है जिसके द्वारा आयुर्वेद कभी भी नष्ट नहीं हो सकता । आयुर्वेद की नित्यता के सम्बन्ध में महर्षि अग्निवेश ने लिखा है—

सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यतेऽनादित्वात् स्वभाव संसिद्ध लक्षणत्वाद्भावस्वभाव नित्यत्वाच्च । नहि नाभूत्कदाचिदायुषः सन्तानो बुद्धि सन्तानो वा, शाश्वतश्चायुषोवेदिता, अनादिमच्च सुखदुःखं स द्रव्यहेतु लक्षणमपरापर योगादेष चार्थ संग्रहो विभाव्यते आयुर्वेद लक्षणमिति । यत् पुनः गुरु लघु शीतोष्ण स्निग्ध रूक्षादीनाञ्चद्वन्द्वानां सामान्य विशेषाभ्यां वृद्धि ह्रासौ, यथोक्तं गुरुभिरभ्यस्यमानैर्गुरूणामुपचयो भवत्यपचयो लघूनामेव मेवेतरेषामित्येष भाव स्वभावो नित्यः, स्व स्व लक्षणञ्च द्रव्याणां पृथिव्यादीनाम्, सन्ति तु द्रव्याणि गुणाश्च नित्यानित्याः ।

वाग्भट ने प्रारम्भ से ही आयुर्वेद का नित्यत्व स्थापित किया है । वे कहते हैं:—

ब्रह्मा स्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।

अर्थात् ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण कर प्रजापति को पढ़ाया। यहाँ पर स्मरण शब्द का प्रयोग उन्होंने किया है। स्मरण शब्द का अर्थ भूतार्थ विज्ञान लिखा है इसी को दूसरे शब्दों में ज्ञात-विषय का ज्ञान कहते हैं। इस प्रकार यद्यपि आयुर्वेद का आगमन ब्रह्मदेव से हुआ तथापि उन्होंने उसे बनाया नहीं; किन्तु उसका स्मरण कर प्रजापति को पढ़ाया। इसलिये आयुर्वेद की नित्यता नष्ट नहीं होती।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने से तो पता भी नहीं चलता कि आयुर्वेद का अवतरण संसार में कब हुआ। चरक संहिता के प्रत्येक अध्याय के समाप्ति सूचक वचन "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रति संस्कृते" से यह सिद्ध है कि इस ग्रन्थ को अग्निवेश ने बनाया और चरक ने इसका प्रतिसंस्कार किया। यह चरक कौन थे? इस विषय में एक प्राचीन श्लोक कहा करते हैं:—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिम्प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

इससे यह सिद्ध करते हैं कि यह चरक पतञ्जलि ही थे दूसरे कोई नहीं। इन महर्षि पतञ्जलि का समय ईसा से १५० वर्ष बाद का बतलाते हैं। पर, मूल ग्रन्थकर्ता कब हुए इस का पता लगना कठिन ही नहीं असम्भव है। और, उसी चरक संहिता में लिखा है:—

दाहे धान्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्।
गुल्म चिकित्सा।
इदं तु शल्य हर्तृणां कर्मस्याद् दृष्टकर्मणाम्।
उदर चिकित्सा।
तैःशर्करा प्रच्यवतेऽश्मरीतु शाम्येन्नचेच्छल्य विदुद्धरेत्ताम्।

चरक संहिता काय-चिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ है। इसमें शल्य चिकित्सा का वर्णन बहुत ही कम है और अश्मरी का Operation तो और भी कठिन है। अतः पूर्ण निश्चय होता है कि चरक-संहिता के निर्माण काल से पहिले ही भारत में Surgery का पूरा Development हो चुका था। इससे आयुर्वेद की प्राचीनता पर तो कोई सन्देह नहीं कर सकता। साथ ही साथ उसका औषध-भण्डार तो इतना विशाल, इतना गम्भीर और इतना सुलभ है कि कोई भी चिकित्सा पद्धति उसका मुकाबला नहीं कर सकती। और, इन सब बातों से बढ़कर है आयुर्वेद की दोषानुसारिणी चिकित्सा-पद्धति। आयुर्वेद में रोगों का विभाग ऐसे ढंग से किया गया है कि कोई भी रोग उससे बाहर नहीं रह सकता। परम कुशल वाग्भट जी ने अपने अष्टाङ्ग हृदय में लिखा है:—

नानारूपैरसंख्येयैर्विकारैः कुपिता मलाः।
तापयन्ति तनुन्तस्मात्तद्धेत्वाकृति साधनम्॥
शक्यं नैकैकशो वक्तुमतः सामान्यमुच्यते।
दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्॥
यथा पक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमप्यहः।
छायामत्येति नात्मीयां यथा वाकृत्स्नमप्यदः॥
विकार जातं विविधं त्रीन्न् गुणान्नाति वर्तते।

तथा स्वधातु वैषम्य निमित्तमपि सर्वदा ॥
विकार जातं त्रीन् दोषान्,

तथा च,

विकार नामा कुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः ॥
स एव कुपितोदोषः समुत्थान विशेषतः ।
स्थानान्तराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥
तस्माद्विकार प्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च ।
बुद्ध्वाहेतु विशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम् ॥

इस प्रकार वाग्भट जी ने यह बतलाया है कि कोई भी रोग दोष वैषम्य के बिना नहीं हो सकता। और रोग का निश्चित नाम न जानने पर भी वैद्य को लज्जित होने की आवश्यकता नहीं। एक ही दोष भिन्न-भिन्न कारणों से कुपित हो भिन्न-भिन्न अवयवों में पहुँच कर अनेक रोग उत्पन्न कर देता है। इसलिये रोग के कारण (दोष), उसके आश्रय तथा दोष कुपित करने वाले कारण का निश्चय कर चिकित्सा करनी चाहिये। दोष-विशेष के ज्ञान के लिये महर्षि अग्निवेश ने महारोगाध्याय में "अशीतिर्वातविकाराश्चत्वारिंशत् पित्तविकाराः विंशतिः श्लेष्म-विकाराः" लिखकर उनको अलग अलग गिना दिया है तद्यथा "नख भेदश्च, विपादिका च पाद शूलश्चेत्यादि।

इसके अनन्तर उन्होंने लिखा है "वात-विकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमाव्याख्याताः। सर्वेषु खल्वेतेषुवातविकारेषु अन्येषु चानुक्तेषु वायोरिदमात्मरूपमपरिणामि कर्मणश्च स्वलक्षणं यदुपलभ्य तदवयवं वा विमुक्त सन्देहा वात विकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः। तद्यथा—रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं गतिरमूर्तत्वञ्चेति वायोरात्म रूपाणि। एवं विधत्वाच्च कर्मणश्च स्वलक्षणमिदमस्य भवति। तं तं शरीरा वयवमाविशतः स्रंस भ्रंश व्यासाङ्ग भेद साद हर्ष तर्षावर्त मर्द कम्प चाल तोद व्यध वेष्ट भङ्गास्तथा खर परुष विशद सुषिरतारुणकषाय विरसता शोष शूल सुप्ति सङ्कुचन स्तम्भनानि वायोः कर्माणि तैरन्वितं वात-विकापमेवाध्यवस्येत् ॥

अर्थात् अपरिसंख्येय वात विकारों में से जिनका भली भाँति अनुगम किया जा चुका है उन्हीं का वर्णन किया गया है। इन रोगों में तथा जो नहीं कहे गये उनमें भी वायु का यह स्वाभाविक रूप तथा उसके कर्म का स्वाभाविक लक्षण रहता है जिसकी पूर्णता अथवा कुछ अवयवों को ही देखकर कुशल पुरुष सन्देह-रहित होकर वात विकार ही निश्चित करते हैं। वह लक्षण—रूक्षता, लघुता, वैशद्य, शैत्य, गति और अमूर्तत्व हैं। इन लक्षणों से युक्त होने के कारण शरीर के जिस अवयव में वायु का प्रवेश होता है उसमें स्रंस, भ्रंश, खरदरापन, कठोरता इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं इन लक्षणों से युक्त होने पर वातरोग ही निश्चित करना चाहिये।

इसी प्रकार, पित्त और कफ के भी निश्चित लक्षण बतलाये गये हैं जिन के द्वारा पित्त और कफ का ही निश्चय होता है।

यद्यपि चिकित्सा में दूष्य, देश, बल, काल, आदि अन्य अनेक बातें विचारणीय होती हैं तथापि आयुर्वेदीय चिकित्सारूप विशाल देव-मन्दिर की भित्ति वात, पित्त, कफ की ही

नींव पर रक्खी हुई है। वे गर्भ के ही समय से सदैव शरीर में विद्यमान रहते हैं जैसा कि वाग्भट ने लिखा है।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च॥
शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः।
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीन मध्यमोत्तमाः पृथक्॥

वही दोष विकृत होकर रोग के उत्पादक हो जाते हैं। यथा चाग्निवेशः—

दोषाः पुनस्त्रयो वातपित्तश्लेष्माणस्तेप्रकृति भूताः शरीरोपकारका भवन्ति विकृतिमापन्नाः खलु नाना विधैर्विकारैः शरीरमुपतापयन्ति।

अन्यच्च

य एव देहस्य समा विवृद्ध्यै
त एव दोषा विषमा वधाय।
यस्मादतस्तेहित चर्ययैव,
क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः॥

इस प्रकार शारीरिक रोगों के विकृत वात पित्त कफ ही कारण होते हैं। यद्यपि पाश्चात्य विज्ञान के चकाचौंध से विभ्रान्ताक्ष बहुत से सज्जन हमारे इस वात, पित्त, कफ के सिद्धान्त को सुन कर हँस देते हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उन्हें मानना पड़ेगा कि वास्तव में उनके जीवाणु वाद की अपेक्षा आयुर्वेद का त्रिधातु सिद्धान्त बहुत ऊँचा है। उनका जीवाणु विज्ञान महर्षियों को ज्ञात न हो यह बात नहीं है वे त्रैलोक्य निखिल ज्ञानशाली थे। उन्होंने जीवाणुओं का जो वर्णन किया है वह अति संक्षिप्त होने पर भी आजकल के विद्वान से बहुत कुछ मिलता जुलता है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्र में कहे जा चुके हैं। अतः, उन्हें दुहरा कर आपका समय नष्ट न करूँगा। आयुर्वेद में जो कुछ वर्णित है उसी का दिग्दर्शन कराना उपयुक्त होगा। वर्तमान विज्ञान Micro-Organism को आकृति भेद से तीन प्रकार का मानता है अर्थात् Cocci अर्थात् वृत्त, Bacillus अर्थात् सीधे और Sparilla अर्थात् वक्र। महर्षि अग्निवेश लिखते हैं—शोणितजानां कुष्ठैः समान समुत्थानं स्थानं रक्तवाहिन्यो धमन्यः संस्थानमणवो वृत्ताश्चापादाश्च सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदर्शनाः। तथाच श्लेष्मजाः क्षीर गुड़········समुत्थानास्तेषां·········संस्थान वर्ण विशेषास्तुश्वेताः पृथुब्रध्न संस्थानाः केचित्, केचिद्वृत्त परिणाहाः गण्डूपदाकृतयश्चश्वेतास्ताम्रावभासाः केचिदणवोदीर्घास्तन्त्वाकृतयः……।

तथाच

पुरीषजास्तुल्य समुत्थानाः श्लेष्मजैस्तेषां··· ··संस्थान वर्ण विशेषास्तु सूक्ष्मवृत्त परीणाहाः श्वेतादीर्घोर्णांशुक संकाशाः इत्यादि।

इस प्रकार क्रिमियों को वृत्त तथा सीधे उन्होंने भी बतलाया है और वक्राकृति भी इन्हीं दोनों को मिल कर बनती है। अतः, उसे न वर्णन करने से कोई त्रुटि नहीं पड़ती।

विज्ञान वेत्ता Amoeba को Dysentery का कारण मानते हैं। आयुर्वेद में भी पुरीषजन्य क्रिमि द्वारा अतीसार उत्पन्न होना बताया गया है—यथा पुरीषजानां प्रभावः पुरीष भेदः कार्श्यं पारुष्यमित्यादि। तथाच—

जलाभिरमणै र्वेग विघातैः क्रिमि दोषतः ।

नृणाम्भवत्यतीसारः

विज्ञान Tuberculer Bacillus को राजयक्ष्मा का कारण बताता है। आयुर्वेद भी श्लेष्म जन्य क्रिमियों का कार्य लगभग वही बतलाता है।

तद्यथा—अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादामहागुदाः ।
चुरवोदर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यंत्त्वथुपीनसान् ॥

यह सभी लक्षण प्रायः राजयक्ष्मा में मिलते हैं।

Bacillus smegma और B. Laproe कुष्ठ के कारण हैं यहाँ भी—

केशादारोमविध्वंसारोमद्वीपा उदुम्बराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥

आयुर्वेद में हृदयाद, अन्त्राद और उदराद नाम दिये गये हैं। पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार भी Sprio Cheta Pallida or Triconema Pallidum और Strepto coccus Rheumalicus नामक जीवाणु हृत्कपाटों से अधिक प्रेम करते हैं तथा Hook worm और Tuberculer bacillus आँतों को चुन लेते हैं। इसी प्रकार अनुसन्धान करने पर और भी समानतायें मिल सकेंगी।

किन्तु आयुर्वेद केवल क्रिमियों या जीवाणुओं को रोग का कारण नहीं मानता। और पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार भी जीवाणु शरीर में प्रविष्ट होते ही रोग उत्पन्न नहीं कर देते, किन्तु अनुकूल अवसर पाने पर ही रोग को उत्पन्न करते हैं। अतएव आयुर्वेद ने जीवाणुओं को प्रधान कारण न मान, जिसके द्वारा उन्हें अनुकूल अवसर प्राप्त होता है उसे ही रोग का कारण माना है। वह है वात, पित्त, कफ का वैषम्य। उसका ठीक-ठीक निश्चय कर लेने पर ही चिकित्सा की जाती है और फलदायिनी होती है। जहाँ अन्य चिकित्सकों को अनेक प्रकार के उपकरणों और बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं (Laboratories) की आवश्यकता होती है और जिनके अभाव में अधिक संख्या में वे अटकलपच्चू ही दवा देते रहते हैं। वहाँ आयुर्वेदज्ञ दोषों के लक्षण मिला कर चिकित्सा प्रारम्भ कर देते हैं और प्रायः सफल होते हैं जिसका कि प्रमाण प्लेग, इन्फ्ल्युएञ्जा, दण्डक ज्वर आदि में मिल चुका है। यही कारण है कि आयुर्वेद इन अनेक चिकित्साओं के चकाचौंध के युग में भी न केवल जीवित है अपितु भारतीय जनता के लिये हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अतएव भारतीय कर्मवीरों ने उसके चिर परित्यक्त शल्य-तन्त्र रूपी अङ्ग को भी पुनः पुष्ट करने का आयोजन किया है। और युक्तप्रान्त इस विषय में सबसे आगे है। युक्तप्रान्त के सद्वैद्यों के सतत प्रयत्न तथा नेताओं की हार्दिक सहानुभूति व परिश्रम का ही यह फल है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद कालेज और ऋषिकुल हरिद्वार में आयुर्वेद स्कूल स्थापित हो गये हैं और, दोनों स्थानों में आयुर्वेद के साथ-साथ शल्य चिकित्सा (Surgery) के शिक्षण की भी व्यवस्था हो गई है और जिस शवच्छेद (Dissection) के लिये महर्षि सुश्रुत को निर्जन नदी का किनारा ढूँढ़ना पड़ा था जैसा कि उन्होंने लिखा है—

नींव पर रक्खी हुई है। वे गर्भ के ही समय से सदैव शरीर में विद्यमान रहते हैं जैसा कि वाग्भट ने लिखा है।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च॥
शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः।
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीन मध्यमोत्तमाः पृथक्॥

वही दोष विकृत होकर रोग के उत्पादक हो जाते हैं। यथा चाग्निवेशः—

दोषाः पुनस्त्रयो वातपित्तश्लेष्माणस्तेप्रकृति भूताः शरीरोपकारका भवन्ति विकृतिमापन्नाः खलु नाना विधैर्विकारैः शरीरमुपतापयन्ति।

अन्यच्च

य एव देहस्य समा विवृद्ध्यै
त एव दोषा विषमा वधाय।
यस्मादतस्तेहित चर्ययैव,
क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः॥

इस प्रकार शारीरिक रोगों के विकृत वात पित्त कफ ही कारण होते हैं। यद्यपि पाश्चात्य विज्ञान के चकाचौंध से विभ्रान्ताक्ष बहुत से सज्जन हमारे इस वात, पित्त, कफ के सिद्धान्त को सुन कर हँस देते हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उन्हें मानना पड़ेगा कि वास्तव में उनके जीवाणु वाद की अपेक्षा आयुर्वेद का त्रिधातु सिद्धान्त बहुत ऊँचा है। उनका जीवाणु विज्ञान महर्षियों को ज्ञात न हो यह बात नहीं है वे त्रैलोक्य निखिल ज्ञानशाली थे। उन्होंने जीवाणुओं का जो वर्णन किया है वह अति संक्षिप्त होने पर भी आजकल के विज्ञान से बहुत कुछ मिलता जुलता है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्र में कहे जा चुके हैं। अतः, उन्हें दुहरा कर आपका समय नष्ट न करूँगा। आयुर्वेद में जो कुछ वर्णित है उसी का दिग्दर्शन कराना उपयुक्त होगा। वर्तमान विज्ञान Micro-Organism को आकृति भेद से तीन प्रकार का मानता है अर्थात् Cocci अर्थात् वृत्त, Bacillus अर्थात् सीधे और Sparilla अर्थात् वक्र। महर्षि अग्निवेश लिखते हैं—शोणितजानां कुष्ठैः समान समुत्थानं स्थानं रक्तवाहिन्यो धमन्यः संस्थानमणवो वृत्ताश्चापादाश्च सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदर्शनाः। तथाच श्लेष्मजाः क्षीर गुड़·········समुत्थानास्तेषां·········संस्थान वर्ण विशेषास्तुश्वेताः पृथुब्रध्न संस्थानाः केचित्, केचिद्वृत्त परिणाहाः गण्डूपदाकृतयश्चश्वेतास्ताम्रावभासाः केचिदणवोदीर्घास्तन्त्वाकृतयः......।

तथाच

पुरीषजास्तुल्य समुत्थानाः श्लेष्मजैस्तेषां······संस्थान वर्ण विशेषास्तु सूक्ष्मवृत्त परीणाहाः श्वेतादीर्घोर्णांशुक संकाशाः इत्यादि।

इस प्रकार क्रिमियों को वृत्त तथा सीधे उन्होंने भी बतलाया है और वक्राकृति भी इन्हीं दोनों को मिल कर बनती है। अतः, उसे न वर्णन करने से कोई त्रुटि नहीं पड़ती।

विज्ञान वेत्ता Amoeba को Dysentery का कारण मानते हैं। आयुर्वेद में भी पुरीषजन्य क्रिमि द्वारा अतीसार उत्पन्न होना बताया गया है—यथा पुरीषजानां प्रभावः पुरीष भेदः कार्श्यं पारुष्यमित्यादि। तथाच—

जलाभिरमणैर्वेग विघातैः क्रिमि दोषतः ।
नृणाम्भवत्यतीसारः

विज्ञान Tuberculer Bacillus को राजयक्ष्मा का कारण बताता है। आयुर्वेद भी श्लेष्म जन्य क्रिमियों का कार्य लगभग वही बतलाता है।

तद्‌यथा—अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादामहागुदाः ।
चुरवोदर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यंत्तवथुपीनसान् ॥

यह सभी लक्षण प्रायः राजयक्ष्मा में मिलते हैं।

Bacillus smegma और B. Laproe कुष्ठ के कारण हैं यहाँ भी—

केशादारोमविध्वंसारोमद्वीपा उदुम्बराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥

आयुर्वेद में हृदयाद, अन्त्राद और उदराद नाम दिये गये हैं। पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार भी Sprio Cheta Pallida or Triconema Pallidum और Strepto coccus Rheumalicus नामक जीवाणु हृत्कपाटों से अधिक प्रेम करते हैं तथा Hook worm और Tuberculer bacillus आँतों को चुन लेते हैं। इसी प्रकार अनुसन्धान करने पर और भी समानतायें मिल सकेंगी।

किन्तु आयुर्वेद केवल क्रिमियों या जीवाणुओं को रोग का कारण नहीं मानता। और पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार भी जीवाणु शरीर में प्रविष्ट होते ही रोग उत्पन्न नहीं कर देते, किन्तु अनुकूल अवसर पाने पर ही रोग को उत्पन्न करते हैं। अतएव आयुर्वेद ने जीवाणुओं को प्रधान कारण न मान, जिसके द्वारा उन्हें अनुकूल अवसर प्राप्त होता है उसे ही रोग का कारण माना है। वह है वात, पित्त, कफ का वैषम्य। उसका ठीक-ठीक निश्चय कर लेने पर ही चिकित्सा की जाती है और फलदायिनी होती है। जहाँ अन्य चिकित्सकों को अनेक प्रकार के उपकरणों और बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं (Laboratories) की आवश्यकता होती है और जिनके अभाव में अधिक संख्या में वे अटकलपच्चू ही दवा देते रहते हैं। वहाँ आयुर्वेदज्ञ दोषों के लक्षण मिला कर चिकित्सा प्रारम्भ कर देते हैं और प्रायः सफल होते हैं जिसका कि प्रमाण प्लेग, इन्फ्ल्युएञ्जा, दण्डक ज्वर आदि में मिल चुका है। यही कारण है कि आयुर्वेद इन अनेक चिकित्साओं के चकाचौंध के युग में भी न केवल जीवित है अपितु भारतीय जनता के लिये हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अतएव भारतीय कर्मवीरों ने उसके चिर परित्यक्त शल्य-तन्त्र रूपी अङ्ग को भी पुनः पुष्ट करने का आयोजन किया है। और युक्तप्रान्त इस विषय में सबसे आगे है। युक्तप्रान्त के सद्वैद्यों के सतत प्रयत्न तथा नेताओं की हार्दिक सहानुभूति व परिश्रम का ही यह फल है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद कालेज और ऋषिकुल हरिद्वार में आयुर्वेद स्कूल स्थापित हो गये हैं और, दोनों स्थानों में आयुर्वेद के साथ-साथ शल्य चिकित्सा (Surgery) के शिक्षण की भी व्यवस्था हो गई है और जिस शवच्छेद (Dissection) के लिये महर्षि सुश्रुत को निर्जन नदी का किनारा ढूँढ़ना पड़ा था जैसा कि उन्होंने लिखा है—

'तस्मात्समस्त गात्रमविषोपहतमदीर्घ व्याधि पीडितमवर्ष शतकं निःसृष्टान्त्र पुरीषं पुरुषमवहन्त्यामापगायां निवद्धं पञ्जरस्थं मुञ्ज वल्कल कुश शणादीनामन्यतमेनावेष्टितां गम प्रकाशे देशे कोथयेत्। सम्यक् प्रकुथितं चोद्धृत्य ततोदेहं सप्त रात्रादुशीरवाल वेणु वल्कल कूर्चीनामन्य तमेन शनैः शनैरव धर्यंषंस्त्वगादीन् सर्वानेव वाह्याभ्यन्तराङ्ग प्रत्यङ्ग विशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा।' उसके लिये आज विशाल भवन बन गये हैं और उनमें सैकड़ों छात्र विना किसी कष्ट के शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और आशा ही नहीं निश्चय है कि थोड़े ही समय के अनन्तर इन संस्थाओं के स्नातक शल्य चिकित्सा के लिये भी परमुखा-पेक्षी न रहेंगे। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि इतने ही वैद्यों अथवा आयुर्वेदानुरागियों का कर्तव्य समाप्त हो जाता है। अभी जिस ओर देखिये उसी ओर विशाल कार्य क्षेत्र पड़ा हुआ है। अतः उनको पूर्ण उन्नत बनाने के लिये अभी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। और उनमें जो कुछ नव्य विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है उतनी ही को पर्य्याप्त मानकर सन्तोष न कर लेना चाहिये और न यही समझ लेना चाहिये कि नव्य विज्ञान ने जितना अन्वेषण कर डाला है वह सबका सब प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान है। प्राचीन ग्रन्थों में सूत्र रूप से सब विषय भले ही विद्यमान हों पर नवीन आविष्कारकों ने जितनी खोज की है और जितनी विस्तृत व्याख्या प्रत्येक विषय पर उन्होंने कर डाली है उसका जब तक उन्हीं से भली भाँति अध्ययन न किया जायगा तब तक पूर्ण ज्ञान नहीं पा सकता। और उसके लिये संकोच या लज्जा की भी कोई बात नहीं हैं। परमात्मा को छोड़कर कोई भी सर्वज्ञ नहीं और ज्ञान अनन्त है। उसका जहाँ तक हो सके उपार्जन करना चाहिये। जैसा कि महर्षि अग्निवेश ने कहा है—

न चैव ह्यस्ति आयुर्वेदस्य पारम्, तस्माद प्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्। तदेवं कार्यमेवं भूयस्य प्रवृत्तस्य सौष्ठवम् अनसूयता परेभ्योऽप्यागमयितव्यम्। कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्याः शत्रुश्चा बुद्धिमतामेतच्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमता अमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्च।

आयुर्वेद को विशेष व्यापक तथा उपयोगी बनाने के लिये आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में उसके अनुवाद किये जाँय। न केवल यू॰ पी॰ ही की किन्तु समस्त देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी मान ली गई है, पर, मौलिक ग्रन्थों की कौन कहे प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध अनुवाद भी बहुत ही कम मिलते हैं। इस ओर वैद्यों को ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि पाश्चात्य विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में अधिकाधिक संख्या में और बड़े सुन्दर ढंग से निकल रही हैं। इसके लिये डा॰ त्रिलोकी नाथ जी वर्मा की "हमारे शरीर की रचना" डा॰ आशानन्द जी का "व्याधि-विज्ञान", डा॰ भास्कर गोविन्द घाणेकर जो का "विकृत विज्ञान", डा॰ मुकुन्द स्वरूप जी वर्मा के "स्वास्थ्य विज्ञान" और "शल्य विज्ञान" के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। "स्वास्थ्य विज्ञान" तो इतना उत्तम निकला है कि, उसके लेखक को हिन्दी का सर्वोच्च पुरस्कार "मंगला प्रसाद पारितोषिक" प्राप्त हुआ है। हम ऐसे सभी लेखकों को बधाई देते हैं और वैद्य समुदाय से निवेदन करते हैं कि वह भी अपनी ओर से पारितोषिक निश्चित कर आयुर्वेद का भण्डार बढ़ाने वाले महाशयों को प्रोत्साहन दे। वैद्यों तथा आयुर्वेदीय छात्रों को व्यक्ति गत रूप से इन ग्रन्थों का अध्ययन कर ज्ञानवृद्धि करना चाहिये। साथ ही वैद्यों को स्वयं भी कुछ समय दे हिंदी में उच्च कोटि की पुस्तकें लिखकर आयुर्वेद का गौरव बढ़ाना चाहिये।

प्राचीन ग्रन्थों के संशोधन की भी कुछ कम आवश्यकता नहीं है। कितने ही स्थलों पर लेखक के प्रमाद या मुद्रण दोष से अनेक अशुद्धियाँ आ गई हैं और वे बड़ा भ्रम उत्पन्न कर देती हैं। उदाहरणार्थ चरक-संहिता स्रोतो विमान में लिखा है सूत्र वहानां स्रोतसां वस्तिमूलं वंक्षणौ च। वास्तव में "वंक्षणौ च" के स्थान में "वृक्कौ च" होना चाहिये क्योंकि वंक्षणों से मूत्र व स्रोतस से कोई भी सम्बन्ध नहीं है और वृक्कों से वस्ति में मूत्र का आना प्रत्यक्ष देखा जाता है जैसा कि श्रीयुत कविराज हाराणचन्द्र जी ने भी "मूत्र वहे द्वेतयोर्मूलं वस्तिर्मंढ्ञ" इसकी टीका "सूत्र वहेद्वेवृक्कतः प्रभृत एव" लिखते हुए स्वीकार किया है। इसी प्रकार सुश्रुत का वस्ति वर्णन भी बहुत ही सन्देहात्मक हो गया है। और यह अशुद्धि इतनी पुरानी है कि दृढ़बल ने त्रिमर्मीय सिद्धि में लगभग सुश्रुत के वर्तमान पाठ का ही अनुवाद कर दिया है। पर विषय बहुत बढ़ जाने के भय से उसकी विस्तृत व्याख्या यहाँ करना उचित नहीं प्रतीत होता। अस्थि गणना के सम्बन्ध में भी बड़ा ही भ्रम है। चरक और सुश्रुत का संख्या भेद यद्यपि गणना प्रकार भेद द्वारा समर्थन कर दिया जाता है पर सुश्रुत की भिन्न भिन्न प्रतियों में भी पाठ भेद है। निर्णय सागर द्वारा प्रकाशित पुस्तक में कुछ पाठ है और श्रीयुत कविराज हाराणचन्द्र जी द्वारा प्रकाशित पुस्तक में कुछ। और, प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा वह दोनों ही नहीं मिलते। चरक में क्षीर वृक्षों में "स्नुह्यर्काश्वान्तकाः" पाठ होना चाहिये। अश्वान्तक का अर्थ है कनैर। पर लगभग सभी पुस्तकों में 'स्नुह्यर्काश्मन्तकाः" पाठ छपा है। अश्मन्तक का अर्थ पाषाणभेद अथवा काञ्चनार सदृश पत्रशाला अस्ललोट नामक वृक्ष होता है। इन दोनों में से एक भी यहाँ संगत नहीं है।

खनिज तथा वानस्पतिक द्रव्यों का भी अभी बहुत कुछ अनुसन्धान करना है।

भिन्न-भिन्न डिस्ट्रिक्ट—बोर्डों तथा म्यूनिसपल बोर्डों ने यद्यपि कुछ आयुर्वेदीय औषधालय खोले हैं तथापि वे बहुत ही थोड़ी संख्या में हैं। इनकी संख्या बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिये और उनमें योग्य वैद्य ही नियुक्त करना चाहिये। बहुत से सज्जन संकोच वश साधारण लोगों को बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दे देते हैं। और कुछ ऐसी नकली संस्थायें भी चल रही हैं जो बिना ठीक-ठीक परीक्षा लिये ही बड़ी-बड़ी उपाधियाँ पैसे के लालच से दे देती हैं। ऐसी संस्थाओं को बन्द करने का यथेष्ट प्रयत्न होना चाहिये। और अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ तथा Indian Medicine Board द्वारा स्वीकृत परीक्षोत्तीर्ण ही नवीन वैद्य को प्रोत्साहन के योग्य समझना चाहिये। और योग्य वैद्य तैयार करने के लिये योग्य छात्रों को अच्छी छात्रवृत्तियाँ देकर उच्च संस्थाओं में पढ़ने के लिये भेजना चाहिये।

वैद्यों के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि श्रीयुत शुक्ल जी इसके सुधार की ही प्रतिज्ञा कर इस वर्ष बोर्ड में गये हैं।

सबसे अधिक आवश्यकता है स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त और सरल चिकित्सा के प्रचार की। महर्षियों ने आयुर्वेद का प्रकाश केवल स्वार्थ-सिद्धि या धनोपार्जन के लिये नहीं किया है। महर्षि अग्निवेश के ये वचन वैद्यों को सदा स्मरण रखना चाहिये—

धर्मार्थं चार्थं कामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम् ।।
नात्मार्थं नापि कामार्थमथभूत दयां प्रति।

वर्ततेयश्चिकित्सायां स सर्वमति वर्तते ॥
कुर्वते ये तु वृत्यर्थं चिकित्सापण्य विक्रयम् ।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशु राशिमुपासते ॥
दारुणैः कृष्यमाणा नांगदैर्वैवस्वतः क्षयम् ।
छित्वा वैवस्वतान् पाशान् जीवितं च प्रयच्छति ॥
धर्मार्थं सदृशस्तस्य दातानेहोपपद्यते ।
न हि जीवित दानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते ॥
परो भूत दया धर्मं इति मत्वा चिकित्सया ।
वर्ततेयः ससिद्धार्थः ससर्वमतिवर्तते ॥

हेमाद्रि ने चतुर्वर्ग चिन्तामणि के दान-खण्ड में औषध-दान के बराबर कोई दान नहीं बतलाया । वे कहते हैं—

तत्रारोग्यदानं तावदुच्यते यदाह विश्वामित्रः—

आरोग्य दानात्परमं न दानं विद्यते क्वचित् ।
अतोदेयं रुजार्तानामारोग्यं भाग्य वृद्धये ॥
औषधं पथ्यमाहारं तैलाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ।
यः प्रयच्छतिरोगिभ्यः सभवेद्व्याधिवर्जितः ॥

तथा च संवतः—

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोग शान्तये ।
ददानो रोग रहितः सुखी दीर्घायुरेवच ॥

तथा च अगस्त्यः—

अन्नौषध प्रदातारः सुखं यान्ति निरामयाः ।

तथाच नन्दिपुराणे—

अञ्जनं यो नरोदद्या दक्ष्णोर्व्याधि निवृत्तये ।
विप्राय स पुमान् याति सूर्य लोकं महामतिः ॥
आरोग्य नयनो दिव्यः सुभगो जायते नरः ।

आरोग्य शाला (Hospital) स्थापना की महिमा तो बहुत ही विस्तार से उन्होंने लिखी है । उसका केवल एक अंश आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ ।

स्कन्द पुराणे—

आरोग्यशालां यः कुर्यान्महा वैद्य पुरस्कृताम् ।
सर्वोपकरणोपेतां तस्य पुण्य फलं शृणु ॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः ।
तस्मादारोग्य दानेन तद्दत्तं स्याच्चतुष्टयम् ॥
अथैकमार्तं विद्वांसं स्वस्थी कृत्य प्रयत्नतः ।
प्राप्नोति सुमहत्पुण्यमनन्तं क्षय वर्जितम् ॥

ज्ञान-योगरतं शान्तं रोगार्तं शिव योगिनम् ।
यः स्वस्थं कुरुते सोऽपि सर्व दान फलं लभेत् ॥
ब्रह्म-क्षत्रिय-विट-शूद्रान् रोगार्तान् परिपाल्यच ।
यत्पुण्यं महादाप्रोति नतत्सर्वैर्महामखैः ॥
आकाशस्य यथानान्तः सुरैरप्युपलभ्यते ।
तद्वादारोग्य दानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित् ॥
तस्माद्धोगापवर्गार्थं रोगार्तं समुपाचरेत् ।
विशेषेण तु योगीन्द्रमेवं धर्मः प्रवर्तते ॥
रोगिणो नो द्विजेत् प्राज्ञो दुर्वलानपि सर्वदा ।
तान्न्य सेद्गुरुवन्नित्यमेवं धर्मः प्रवर्तते ॥

औषध-दान और रोगि-शुश्रूषा के इतने बड़े महत्व को जानकर कौन ऐसा विचार-हीन होगा जो अपने कर्तव्य पालन से विमुख होगा ।

यह सम्मेलन उस पवित्र क्षेत्र नैमिषारण्य के समीप की भूमि में सम्पन्न हो रहा है जहाँ से श्री व्यास जी तथा उनके प्रधान-शिष्य सूत जी ने अट्ठासी सहस्र ऋषियों को पुराणों द्वारा उपदेश देकर धर्म का स्रोत बहा दिया था ।

आइये, इस सम्मेलन के द्वारा आयुर्वेद की एक ऐसी लहर लहरा दें जिससे कि केवल यू० पी० या भारत क्या समस्त संसार में एक भी ऐसा दृष्टान्त न मिले जिसमें कि कोई मानव-सन्तान विना चिकित्सा या शुश्रूषा के कष्ट पाता हुआ अकाल मृत्यु का कवल बना हो । जैसा कि, वाग्भट ने लिखा है—

रस वन्ध एव धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमिति करणा ।
सिद्धेरसे करिष्ये महीमहं निर्जरा मरणाम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

मध्यप्रान्त

मध्यप्रान्तीयायुर्वेद सम्मेलनस्य द्वितीयाधिवेशन-सभापतेः—
साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति, विद्यावारिधि-विद्याभूषण, वैद्यभूषण
कविराजोपाधि भूषितस्य

श्री शालग्राम शास्त्रिणो

जीवन वृत्तान्तम्

(लेखकः— साहित्यरत्न पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित, रिसर्च स्कालर)

भाष्यान्तं पणिनात्मजीयभणितं नागेशगीर्भिर्नुतं
काणादं च विनीय गौतममथो पातञ्जलं कापिलम् ।
ते श्रद्धैकधना जयन्ति भगवत्पूज्येऽनिशं शङ्करे
यैराकारि किलत्रयीरिपुवने शार्दूलविक्रीडितम् ॥

त एते विद्वन्मौलयः पुण्यचरिताः १९४२ तमे वैक्रमेवत्सरे तपसि बरेलीत्यभिधायां पुरि जनिमलभन्त । पण्डितप्रवराः श्रीपोशाकीलाल महोदया आचार्यवर्य्याणां पूज्यपितरो दैवज्ञा आसन्; गुण्याः पितामहमहोदया पीयूषपाणिभिषजः; पितृव्याश्च लब्धप्रतिष्ठा डाक्टर पदभाजः । अधिकं तु आचार्यवर्याः

वासिष्ठानां सनाढ्यानां त्रिवेदी विदुषां कुले ।
बरेलीनगरे जाताः श्रीलक्ष्मण पुरस्थिताः ॥

पूर्वेतिवृत्तम्

भगवतो योगीश्वर श्रीकृष्णस्य विलासस्थली व्रजभूमिरासीद् रङ्गस्थली पूर्वपुरुषाणामाचार्यमहाभागानाम् । एतेषामन्ववाये अनास्यं शास्त्रपाटवम् अदम्यं च शस्त्रपाटवं अविच्छिन्नपरम्परामवाप । इत्युभयगुणवैशिष्ट्यात् ते सौख्यं समृद्धिं च महीपत्यनुकंपया सुतरां प्रपेदिरे । एकदा स तेषां वदान्यो राजन्यस्तदानीन्तनस्य यवनाऽधिपस्य नियोगात् सैन्यपेनाऽभियातः । मध्य एव राजसाहाय्यमन्तरेण अमीभिर्वीरविप्रैः ससैन्यपा यवनसेनाऽवमानिता, युद्धाय साक्षेपमाहूता पराजिता च । इत्थं पराभवेन मानभङ्गेन इद्धक्रोधो यवनाऽधिपो भीमेन बलेन पुनराक्रम्य तां द्विजवसतिं समूलमुन्मूल्य, ग्रामजनांश्च रौद्रं हत्वा, समग्रं विप्रवैभवं स्वकोपानले जुहाव ।

श्रीमान् राजवैद्य पं. शालग्रामजी शास्त्री साहित्याचार्य **लखनऊ**।
अध्यक्ष–मध्यप्रान्तीय २ वैद्यसंमेलन **नागपुर** (सन १९३२)।

तेषां सनाढ्यद्विजन्मनामन्यतमः श्रीहनुमान् तिवारी बदरिकाश्रमतः परावर्तनकाले दुर्वृत्त मिदं शुश्राव। तस्मान्मध्येमार्गमेव सपरिजनः स्वीयां वसतिं चकार। तदेव स्थानमेतर्हि बरेली रूपे जागर्ति। इहापि तेषां सनाढ्यद्विजानां सहजं शस्त्रशास्त्रप्रावीण्यं न विलुलुम्प, अपि तु अधिवंशपरम्परमनुस्यूतम्। तद्वंशजा लक्ष्मीनारायणप्रभृतयो विद्वांसः पदातय एव वाराणसीं गत्वा नाना शास्त्राण्यधीत्य नदियापर्यन्तं पण्डितमण्डलं स्वशास्त्रविमर्शनेन नमयाम्बभूवुः। अद्यापि बरेलीनगरे आचार्यमहोदयानां जनिभूमिभूता सा प्रतोली 'तिवारी मुहल्ला' इति 'छोटी काशी' इति चाऽन्वर्थां संज्ञां भजते।

अध्ययनाऽध्यापनकालः

आचार्यमहाभागाः प्रथमे वयसि व्याकरण काव्यन्यायादीन् स्वजन्मभूमावेवाऽध्यैयत। अनन्तरं पीलीभीतमण्डले श्रीत्रिवेणीप्रसाद शास्त्रिभ्यः सशेखरं कौस्तुभं भाष्यं च समधिगम्य परीक्षां दित्सवो लवपुरं गताः। तत्र विश्वविद्यालयस्य शास्त्रिपरीक्षामुत्तीर्य तत्रत्ये डी० ए० वी० महाविद्यालये अध्यापनं प्रारभन्त। ततस्ते ज्वालापुरीय महाविद्यालयेऽपि कंचन कालं छात्रवर्गमशिक्षयन्। अत ऊर्ध्वं कांगड़ी प्रदेशस्थगुरुकुले दर्शनादीन् वर्षषट्कं साध्यवसादध्यापयन्। पश्चाद् ऋषिकुलप्रधानाध्यापकपदमपि तैश्चिरं मान्यतां नीतम्। इह मध्येऽध्यापनकालमेव ते वाराणसेयक्वीन्सकालेजतः साहित्ये आचार्यपदवीमाप्नुवन्।

पण्डितमण्डितां वाराणसीमधिवसन्त एते निःशेषशास्त्रनिष्णातानां गङ्गाधरकल्पानां महामहोपाध्याय श्रीगङ्गाधरशास्त्रि C. I. E. महोदयानां सविधे साहिती देवतामलमाञ्चन्। अद्वैतसिद्धि—व्युत्पत्तिवादप्रभृतींश्च चक्रवर्तिचर्चितचरणयुगलेभ्यो भारतपण्डितमूर्धन्येभ्यो महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमारशास्त्रिपादेभ्यः सुचिरं विमर्शपथमनैषुः। आचार्यमहोदयान्प्रति पूज्यशास्त्रिपादा असाधारण्येन कृपापूर्णहृदया आसन्। प्रातः स्मरणीय पादेभ्यः सर्व तन्त्रस्वतन्त्रेभ्यः श्रीकाशीनाथशास्त्रिभ्यो दर्शनं विशेषतश्च वेदान्तमवेदिषुः। पश्चाच्च बङ्गस्थे चन्द्रनगरे श्रीमतां हरिदासभट्टाचार्य कविराजानां सकाशादायुर्वेदाङ्गानि सम्यङ् निगमितानि।

चिकित्साकालः

वैक्रमे १९७२ तमे वत्सरे आचार्यमहाभागैरध्यापनवृत्तिं समाप्य बरेलीनगरे चिकित्साकार्यमुररीकृतम्। ततोऽनेकसुहृज्जनानुरोधवशगैस्तैःप्रतीच्यविज्ञानस्य चिकित्सापद्धतेश्च केन्द्रभूतं द्राक्तराणां चोद्गमभूतं लक्ष्मणपुरं स्वौषधालयस्य शाखयासमलङ्कृतम्। अल्पेनैव कालेन श्रीमृत्युञ्जय-औषधालयो लक्ष्मणपुरेऽपि भूयसीमुन्नतिमवाप्नोत्। व्याधीनां दुःसाध्यत्वात् 'किंग जार्ज मेडिकल कालेज' प्रभृतिभिः परित्यक्तः—सिविलसर्जनप्रमुखैश्च निराशागर्ते पातितो रोगिसमूहो झटिति तत्र भवदमृतप्रदानेन नैरोग्यं भजते। अत्रत्याः प्रख्यातयशसो द्राक्तराश्चिकित्सास्थलेषु एतेषां आयुर्वेदज्ञानमहत्तां मुक्तकण्ठेन स्वीकुर्वन्ति। किं प्रपञ्चेन, हरिवर्षतः (योरोप) परावर्तिता भूयांसो द्राक्तराः स्वचिकित्सां कारयित्वा भवतां पीयूषपाणिनां पौनःपुन्येनाऽभिवन्दन्ति।

अस्ति आचार्यमहोदयेषु आयुर्वेदशास्त्रस्य अपारं ज्ञानं परं न तन्मात्रमेव, तत्राऽस्ति साहित्यस्य दर्शनशास्त्रस्य च ज्ञानाम्भोधिः। साहित्यदर्शनावारपारीणा एते न केवलं देववाण्यामेव पेशलं कौशलमुत्पादयन्ति-अपितु हिन्दीभाषायामपि किमप्यपूर्वमेव जनयन्ति। सुरभारतीवत् हिन्दीभाषापि जीवनमयी-मधुरा-प्रौढार्थबहुला च भवति तेषाम्। प्रकाशिताः सामयिका

निबन्धाः सुतरामत्र निदर्शनानि । आचार्यमहोदया यथा लेखन्या रमणीयतामुत्पादयन्ति तथैव रसस्यन्दिन्या वाण्या आवर्जयन्ति चेतांसि सचेतसाम् । तर्कपूर्णा, गभीरार्थावगाहिनी, सरला, विनोदप्रचुरा च भवत्येषां व्याख्यानशैली । अध्यापनशैल्यामपि चूडान्तमर्मज्ञत्वमाचार्यमहोदयेषु । साहित्याऽऽयुर्वेदवेदान्तसिद्धान्तग्रन्थानां मार्मिकाणि सूक्ष्मविवेचनापराणि स्थलानि तादृश्या हृदयङ्गमरीत्या विशदीकुर्वन्ति यद्धस्तामलकवज्जायते विषयोऽध्येतृणाम् ।

बहुशास्त्रविशारदत्वेन, तीक्ष्णप्रतिभत्वेन, काव्यरचनाप्रावीण्येन च भवतामाकृष्टचित्तैः ब्राह्मणवंशस्रङ्मध्यमणिभिर्मिथिलाधिपैः आनरेबुल श्री रमेश्वरसिंह K. C. I. E. महोदयैः 'विद्याभूषण' इति बिरुदालङ्कारेण भवन्तोऽलङ्कृताः । पश्चिमाम्नायस्य श्री शारदापीठाधीशैर्जगद्गुरुशङ्कराचार्यैः 'विद्यावारिधि' रिति, तथा च दक्षिणाम्नायस्य श्री श्रृङ्गेरीमठाधीश्वरैर्जगद्गुरुशङ्कराचार्यैः 'विद्यावाचस्पति' रिति पदवीं प्रदीय संमानिताः । इतोऽतिरिक्तं 'बहुविद्याविशारद' 'व्याख्यानवाचस्पति' प्रभृतिभिः सम्मानपदैर्यथासमयं भारतविशिष्टैर्व्यक्तिभिः सम्मेलनैश्च भूषिताः । आङ्गल-यवन-वङ्ग-पालि-प्राकृतादिभाषास्वपि सुषममभिज्ञत्वं श्रीमताम् । इत्यलमतिपल्लवितेन । आचार्यमहाभागानां कतिपया—

अमरकृतयः

साहित्यदर्पणस्य 'विमला'ऽभिधान्याख्या ।
अर्वाचीनसाहित्यविवेचना ।
अलङ्कारकल्पद्रुमः ।
अपराव्रतनिर्णयः ।
सुरभारतीसन्देशः ।
आयुर्वेदमहत्व ।
त्रिधातुवाद ।
रामायण में राजनीति ।
महाकविर्माघः ।
के के अंशाः संस्कृतसाहित्ये पूर्त्ति सापेक्षाः ।
यज्ञोपवीत । प्रभृति प्रभृति ।

केषां नैव नुतिं भजन्ति कृतिनो येषां वदान्या गुणा,
विद्या लोकनमस्कृता सुचरिता भूतिप्रभूतिप्रदा ।
कीर्त्तिः काचनदेवकौतुककरी निर्बाधधीरा मति-
र्भक्तिर्भक्तभयापहे भगवति श्रीचन्द्रचूडामणौ ॥

साहित्यामृतसिक्तकल्पलतिका वेदान्तविद्यालया
सद्धर्मद्रुममाश्रिता श्रुतिपथश्रान्तश्रमान्तक्षमा ।
आयुर्वेदविधानकौशलकलावैचित्र्यमातन्वती
शालग्रामशुभाभिधानभिषजां विभ्राजते भारती ॥

मध्यप्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति,
विद्यावारिधि, विद्याभूषण, वैद्यभूषण, कविराज

श्री पं० शालग्राम शास्त्री महोदय का

अभिभाषण

यत्कारुण्यकणस्पर्शात् सर्वः शब्दार्थविस्तरः ।
करामलकवद् भाति शारदा सा प्रसीदतु ॥१॥

वन्द्य विबुधवृन्द !

मेरी बुद्धि यह समझने में असमर्थ है कि मेरे जैसे दूर देशस्थ अपरिचित और साधारण व्यक्ति को आप लोगों ने इस पद के उपयुक्त क्यों समझा। जो स्वामी गुणी जन को छोड़कर निर्गुण भृत्य पर अपना कार्य भार डाल दे, उसकी सफलता में केवल ईश्वर की दया का ही अवलम्ब हो सकता है। इस दशा में यह आशा करना कि मैं आप लोगों को कोई अपूर्व सन्देश सुना सकूँगा, दुराशा मात्र है। आप लोगों के सामने मेरे सदृश अल्पज्ञ व्यक्ति का, ज्ञान-विज्ञान की चर्चा चलाना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा।

परन्तु हिन्दू धर्म अथवा सनातन धर्म में सूर्य को दीपक दिखाने की प्रथा अनादि काल से प्रचलित है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य की पूजा के समय गन्धाक्षत के साथ एक छोटा सा दीपक भी दिखाया जाता है। गङ्गा स्नान करने वाला भावुक भक्त गङ्गा में से ही जल लेकर उसी की अञ्जलि गङ्गा को समर्पित करता है। यदि केवल बाह्य दृष्टि से देखा जाय तो यह एक विडम्बना मात्र प्रतीत होगी, परन्तु भारतीय भावनाओं का रहस्य बूट, कोट, पतलून के समान दूर से दीखने वाली वस्तु नहीं है। इसका मर्म समझने के लिये आपको हृदय के अन्तस्थल में प्रवेश करना पड़ेगा। आप सूर्य को दीपक दिखाने वाले और गङ्गा को जलाञ्जलि देनेवाले पुरुष के हृदय की परीक्षा कीजिये और देखिये कि क्या वह अपने मन में समझता है कि मैं सूर्य को कोई वस्तु दिखा रहा हूँ, जो उसने कभी देखी नहीं ? अथवा गङ्गा जलाञ्जलि अर्पित करने वाले के मन में कभी यह अभिमान होता है कि मैंने गङ्गा को कोई ऐसी वस्तु समर्पित की है, जो उसे दुर्लभ है ? भक्त के हृदय में यदि इस प्रकार के अभिमान का प्रवेश हो जाय तब तो उसका सम्पूर्ण पूजन ही भ्रष्ट हो जाय। वहाँ ऐसी कोई दुर्भावना नहीं होती। वहाँ तो केवल विशुद्ध भक्ति-भाव का उदय होता है और गन्धाक्षत, धूप, दीप तथा जलाञ्जलि आदि उसी का परिचय देने वाले बाह्य साधनमात्र हैं। यदि भक्त के हृदय में भक्ति हो तो धूप, दीप आदि बाह्य साधनों के न होने पर भी कोई क्षति नहीं होती और यदि भक्ति न हो तो बाह्य साधनों की अत्यन्त प्रचुरता भी व्यर्थ है। इसीलिये भगवान् ने गीता में कहा है कि—

'पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति'

यदि भक्ति है तो एक पत्र अथवा एक अञ्जलि जल से ही भगवान् प्रसन्न हो सकते हैं और यदि भक्ति नहीं है तो सौ मन सोना भी किसी काम का नहीं। भगवान् को कौन-सी वस्तु दुर्लभ है, जो हम उन्हें दे सकें ? इसी कारण भक्त लोग कहा करते हैं कि—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये'

आज मैं भी जो कुछ आप लोगों की सेवा में निवेदन करूँगा, वह उसी भक्तिभाव से प्रेरित होकर, सूर्य को दीपक दिखाने के समान, गङ्गा की धारा में जलाञ्जलि छोड़ने के समान और भगवान् के आगे 'पत्र-पुष्प' भेंट करने के समान होगा।

इस प्रकार के सभा-सम्मेलनादि का लक्ष्य अपने उद्देश्य की उन्नति करना ही हुआ करता है। आज हम सब लोग आयुर्वेदिक संमेलन में इकट्ठे हुए हैं, इसी से स्पष्ट है कि हमारा सर्वसंमत उद्देश्य आयुर्वेद की उन्नति करना है। उसी के सम्बन्ध में विचार करने के लिये हम सब लोग यहाँ एकत्र हुए हैं।

उन्नति उसी वस्तु की हो सकती है, जो सार्थक और त्रुटिपूर्ण हो। यदि किसी शरीर में से प्राण निकल गये हों और उसकी सार्थकता नष्ट हो गई हो तो उसकी उन्नति असंभव है। इसी प्रकार जो शरीर सब प्रकार नीरोग और हट्टा-कट्टा हो उसे भी किसी प्रकार की उन्नति की चिन्ता नहीं होती। वैद्य की तलाश वही करता है जो जीवित हो और कष्टयुक्त हो। यदि यह मान लिया जाय कि आयुर्वेद की दशा आज सर्वाङ्गपूर्ण है, उसमें किसी प्रकार की उन्नति की आवश्यकता नहीं, तो यह संमेलन ही व्यर्थ हो जाता है और यदि यह समझ लिया जाय कि आयुर्वेद एक दम निरर्थक है, उसमें कोई भी लोकोपयोगी तत्त्व नहीं है, तब भी इस प्रकार के सम्मेलन की कोई सार्थकता नहीं रह जाती। हम सब लोगों के यहाँ संमिलित होने से ही यह बात सिद्ध है कि हमारी दृष्टि में न तो आयुर्वेद निरर्थक है और न सर्वाङ्गपूर्ण ही है। हम उसे सार्थक भी समझते हैं और उसकी वर्तमान दशा से सन्तुष्ट भी नहीं हैं, अतएव उसकी उन्नति चाहते हैं।

आज हमें इन्हीं दो बातों पर विचार करना है।

१—आयुर्वेद की सार्थकता क्या है ? और २—उसमें त्रुटि क्या है ? यदि इन दो बातों का ठीक-ठीक निर्णय हम कर सकें तो हमारी लक्ष्यसिद्धि का मार्ग बहुत कुछ सरल हो सकता है।

(१) सुश्रुत ने लिखा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भ में, एक लाख श्लोक और एक हज़ार अध्यायों में 'आयुर्वेद' की रचना की और फिर आगे आने वाले प्राणियों की अल्प बुद्धि तथा अल्प शक्ति का ध्यान रखते हुए उसे आठ भागों में विभक्त कर दिया। इससे स्पष्ट है कि वेद और आयुर्वेद का उद्गम स्थान एक ही है और आयुर्वेद का दर्जा भी वही है, जो वेदों का है। महर्षि गौतम ने भी न्यायसूत्र में वेदों का (२) प्रामाण्य सिद्ध करने के लिये उनके एक

---

१. इह खल्वायुर्वेदमष्टाङ्गमुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः। ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चालोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान्। ५। तद्यथा—शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रम्, बाजीकरणतन्त्रमिति। ६। सुश्रुत, सूत्र०, अ० १।

२. 'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यम्, आप्तप्रामाण्यात्'। न्या० सू० २। १

देश और प्रत्यक्षसिद्ध आयुर्वेद को दृष्टान्त में रखकर शेष भाग का प्रामाण्य सिद्ध किया है। इससे भी वेद और 'आयुर्वेद' की एकता सिद्ध होती है।

इससे यह स्पष्ट है कि चरक, सुश्रुत आदि जो 'आयुर्वेद' के ग्रन्थ आज हमें मिलते हैं, वे न तो आयुर्वेद के आदिम ग्रन्थ हैं और न उसके सम्पूर्ण अङ्ग का वर्णन ही करते हैं, बल्कि आयुर्वेद की एक-एक शाखा का वर्णन करते हैं। सुश्रुत ने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है कि वह (१)'शल्यतन्त्र' का ग्रन्थ है। चरक, काय-चिकित्सा का ग्रन्थ है, यह बात भी सर्वसम्मत है।

यद्यपि आज हमें आयुर्वेद की अन्य शाखाओं—'कौमारभृत्य', 'अगदतन्त्र' आदि पर प्रधानरूप से लिखे हुए ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि आज से बाईस, तेईस सौ वर्ष पूर्व तक भारत में इन विषयों के ग्रन्थ भी थे और उनके विशेषज्ञ भी थे।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के महामन्त्री चाणक्य (कौटिल्य) ने अपने बनाये 'कौटिलीय-अर्थशास्त्र' में लिखा है कि (२) दुर्विनीत राजपुत्रों के कारण राजकुल का ध्वंस बहुत शीघ्र हो जाता है, अतः इनकी उत्पत्ति और निष्पत्ति की ओर राजा को विशेष ध्यान देना चाहिये। जब प्रधान रानी ऋतुमती हो तो ऋत्विक् लोग इन्द्र और बृहस्पति के मन्त्रों से हवन करें, एवं गर्भस्थिति होने पर 'कौमारभृत्य' बराबर उसकी देख-रेख करता रहे और समय पर यथाविधि निर्विघ्न प्रसव कराये।

'कौमारभृत्य' आयुर्वेद की एक शाखा थी, जिसके विशेषज्ञों का काम था कि जब से बच्चा गर्भ में आये तभी से उसकी देख-रेख करें, गर्भ के उपद्रवों का दमन करें, गर्भिणी के विकारों का शमन करें, विना किसी विघ्न-बाधा के प्रसव करायें, उत्पन्न हुये बच्चे का होशियारी से पालन-पोषण करायें, माता तथा उपमाता (धात्री) के दूध आदि की परीक्षा करते रहें और बालरोगों की चिकित्सा करें इत्यादि।

इसी ग्रन्थ में लिखा है कि (३)'भिषक्' (कायचिकित्सक) और 'जाङ्गलीविद्' ये दो प्रकार के वैद्य सदा राजा के पास रहें। (४)'जाङ्गलीविद्' का अर्थ है 'विषवैद्य'। साँप, बिच्छू, ततैया, छपकली, गिरगट (सरट), चूहा, मेंढक, विषखर्पर (बिसखपड़ा), कांतर, कानखजूरा, मकड़ी आदि विषाक्त कीड़ों के विष का निदान, चिकित्सा तथा अनेक प्रकार के स्थावर-जङ्गम विषों के संयोग, विकल्प और प्रतीकार का जानना, इस चिकित्सा के अन्तर्गत था। सुश्रुत ने इसे (५)'अगदतन्त्र' कहा है।

---

१. 'अस्य तु शास्त्रस्य शस्त्रकर्मप्राधान्यात् शस्त्रकर्मैव तावत् पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्सम्भारांश्च। ४। सु०, सू०, अ० ५।

२. 'काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्माद् ऋतुमत्यां महिष्यां ऋत्विजश्चरुमैन्द्राबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्वायां कौमारभृत्यो गर्भमर्मणि प्रजने च वियतेत'—कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण — १७ अध्याय।

३. 'तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः'। कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, अध्याय २१

४. 'विषवैद्यो जाङ्गलिकः।'

५. 'अगदतन्त्रं नाम सर्पकीटलूतादष्टविषव्यञ्जनार्थं, विविधविषसंयोगोपशमनार्थं च'। सु०, सू०, १ अ०।

चाणक्य ने यह भी लिखा है कि (१)राजा स्वयं रानी के स्थान पर न जाय, प्रत्युत उसे अपने स्थान पर बुलवाये और विश्वस्त वृद्ध स्त्रियों के द्वारा परीक्षा की जाने पर उसे अपने पास आने दे । क्यों ? रानी के घर में छिप कर भाई ने राजा भद्रसेन का वध किया । माता की शय्या के नीचे छिपकर पुत्र ने 'कारूश' देश के राजा को मार डाला । खीलों को शहद में मिला हुआ बताकर रानी ने काशिराज को विष दे दिया । विष में बुझे हुए नूपुर (पैर के भूषण) के स्पर्श से रानी ने 'वैरन्त्य' को मारा । मेखला की मणि का स्पर्श कराके सौवीरराज का घात किया गया । विषाक्त दर्पण दिखाकर 'जालूथ' राजा के प्राण लिये गये । अपने केशों में शस्त्र छिपाकर रानी ने 'विदूरथ' का वध किया । इसलिये राजा को चाहिये कि इन बातों का ध्यान रक्खे ।

एक स्थान पर चाणक्य ने मुर्दों (२) की परीक्षा करने का वर्णन किया है । शीघ्र मरे हुए पुरुषों की लाश देखकर यह जानने का इसमें विधान है कि मृत व्यक्ति का गला दबाकर, फाँसी देकर, पानी में डुबोकर, ऊपर से गिराकर, विष देकर या अन्य किस प्रकार से मारा गया है ।

(३)एक स्थान पर अज्ञानपूर्वक अथवा ज्ञानपूर्वक असंगत चिकित्सा करने वाले वैद्य को दण्ड देने का विधान भी है और असंगत शस्त्रक्रिया (Operation) करने वाले को कठोर दंड देने का विधान भी है ।

अर्थशास्त्र के इन अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में 'कौमारभृत्य', 'अगदतन्त्र', 'कायचिकित्सा' और 'शल्यतन्त्र' आदि आदि आयुर्वेद की अनेक शाखाओं के पृथक्-पृथक् नाम और काम यहाँ व्यावहारिक रूप में विद्यमान थे और इन भिन्न-भिन्न शाखाओं के विशेषज्ञ विद्वान् भी थे । यह भी पता चलता है कि उस समय यहाँ आयुर्वेद की अन्य शाखाओं के समान 'अगदतन्त्र' भी अत्यन्त उन्नत दशा में था । विषों में ऐसे-ऐसे संयोग-विकल्प लोगों को ज्ञात थे कि जिन्हें दर्पण में लगा देने मात्र से उसमें मुँह देखने वाले की मृत्यु हो सकती थी । विषाक्त आभूषण का केवल स्पर्श करने और विषाक्त वस्त्र पर बैठ जाने मात्र से मृत्यु हो सकती थी । उन दिनों यहाँ के लोगों को इन सब विषों के चमत्कारक परिहार भी मालूम थे । इसी कारण चाणक्य ने कायचिकित्सक और विषवैद्य को सदा राजा के सन्निधान में रहने का आदेश दिया है ।

---

१. 'अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्, न कांचिदभिगच्छेत् । देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान, मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम्, लाजान् मधुनेति पर्पस्य देवी काशिराजम्, विषदग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यम्, मेखलामणिना सौवीरम्, जालूथमादर्शेन, वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान । तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ।'

कौटिलीय अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, अध्याय २०

२. 'कौटिलीय अर्थशास्त्र'—'कण्टकशोधन' नामक चतुर्थ अधिकरण के सप्तम अध्याय में 'आशुमृतक-परीक्षा' नामक प्रकरण ।

३. 'भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहसदण्डः । कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः । मर्मवेध-वैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ।'

कौ० अ०, चतुर्थ अधिकरण, प्रथम अध्याय

जिस देश में विज्ञान के शत्रु और कला के वैरी नर-पिशाचों ने छः-छः महीनों तक पुस्तकें जला-जलाकर हम्माम गरम कराये हों, वहाँ अनेक विज्ञान-राशियों के ध्वंस हो जाने में आश्चर्य ही क्या है ? आज इन विषयों की कोई पुस्तक शेष बची है या नहीं, इसका भी किसी को पता नहीं। प्रजा में शक्ति नहीं और सरकार को फ़ुरसत नहीं। उधर सर्वभक्षिणी सेना के पेट से बचा हुआ पैसा भी नहीं। फिर इन वस्तुओं का अनुसन्धान कैसे हो ?

आयुर्वेद की सबसे बड़ी विशेषता है, त्रिधातु अथवा वात, पित्त, कफ। आयुर्वेद का छोटे-से-छोटा या बड़े-से-बड़ा किसी शाखा का कोई ग्रन्थ उठा लीजिये, वहीं आपको ये वात, पित्त, कफ ओत-प्रोत मिलेंगे। रोगविज्ञान, चिकित्सा-विधान, द्रव्य-गुण-वर्णन या ओषधि-परीक्षा, जिधर देखिये उधर ही आपको इस त्रिधातु के प्रधान रूप से दर्शन होंगे। परन्तु यह है क्या वस्तु ?

पूर्वपक्ष

आजकल बीसवीं शताब्दी है। विज्ञान (Science) का बोल-बाला है। इस समय कोई परम्परागत या अप्रमाणिक बात लोगों के गले उतार देना 'टेढ़ी खीर' है। नये-नये साधनों और अनुसन्धानों द्वारा शरीर के प्रत्येक अङ्ग, प्रत्यङ्ग की रचना का क्रम और उनका कार्यकलाप अच्छी तरह जान लिया गया है। शरीर के हर एक रग-रेशे को देख लिया गया है। परन्तु इन वात, पित्त, कफों को किसी बड़े-से-बड़े डाक्टर ने बड़े-से-बड़े सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (Myscroscope) के द्वारा भी आज तक नहीं देख पाया। जिन कीटाणुओं का स्वरूप एक इञ्च से करोड़ों गुना कम है, वे भी माईक्रासकोप के द्वारा देख लिये गये हैं, परन्तु आयुर्वेद के इस त्रिधातु का किसी को कहीं पता न चला, फिर इनकी सत्ता कैसे मान ली जाय ? अनेक डाक्टरों की धारणा है कि यह 'त्रिधातु' केवल प्राचीन भारतीय भावनाओं का भूत है, जो आज भी वैद्यों के सिर पर खेला करता है। जिस प्रकार भूत की कथा सबने सुनी है, परन्तु उसे देखा किसी ने नहीं, उसी प्रकार इन वात, पित्त, कफों की कथा तो प्रत्येक वैद्य सुनाता है, परन्तु इनके दर्शन आज तक न किसी वैद्य को हुए हैं, न किसी अवैद्य को। आयुर्वेद का यही आधार है, जो केवल एक अन्धपरम्परा है और इसी कारण अनेक डाक्टर लोग आयुर्वेद को अवैज्ञानिक (The Greatest unscientific system in India) कहा करते हैं।

केवल यही नहीं कि पश्चिमी विज्ञान के सभी साधनों से वात, पित्तादि अज्ञेय हैं, अपितु आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अनुसार भी इनका कोई स्थान या स्वरूप निश्चित नहीं किया जा सकता। (१) सुश्रुत का कहना है कि वात, पित्त, कफ शरीर की उत्पत्ति और स्थिति के कारण हैं। ये तीनों शरीर के आधार स्तम्भ हैं, जैसे कोई गृह तीन स्थूणाओं (थूनियों) पर अवलम्बित रहता है, उसी प्रकार शरीर इन तीनों के सहारे से टिका है, इसी से शरीर को 'त्रिस्थूण' कहा जाता है, परन्तु इन स्थूणाओं के, शरीर के भीतर कहीं दर्शन नहीं होते !!! सुश्रुत ने लिखा है कि (२) आमाशय में कफ का, उसके नीचे पित्त का और 'श्रोणिगुद' में वायु का स्थान है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानों के नाम भी लिये हैं।

---

१. 'वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः। तैरेव अव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके। ३। सुश्रुत, सू०, अ० २१

२. 'वातः श्रोणिगुदसंश्रयः, तदुपर्यधोनाभेः पक्वाशयः, पक्वामाशयमध्यं पित्तस्य, आमाशयः श्ले-

चरक ने भी इसी प्रकार स्थानों का निर्देश किया है, परन्तु चरक का कथन सुश्रुत से विरुद्ध है। सुश्रुत ने आमाशय को कफ का प्रधान स्थान माना है, परन्तु (१) चरक, ने इसे पित्त का प्रधान स्थान बताया है। चरक ने अनेक स्थानों पर (२) त्रिधातु को संपूर्ण शरीर में व्याप्त भी बताया है। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद के ग्रन्थों में केवल परस्पर विरोध ही नहीं, प्रत्युत चरक और सुश्रुत के अपने वचनों में भी पूर्वापर विरोध है।

सुश्रुत का कहना है कि (३) जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और वायु जगत् को धारण करते हैं, उसी प्रकार वात, पित्त, कफ शरीर को धारण करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वात, पित्त, कफ शरीर में रहनेवाली कोई वस्तु हैं, परन्तु चरक और सुश्रुत का द्रव्य-गुण-प्रकरण देखिये तो आपको पृथ्वी के ऊपर विद्यमान प्रत्येक पदार्थ में वात, पित्त, कफ की सत्ता का वर्णन मिलेगा। अन्न, फल, मूल, शाक, दूध, मांस आदि सभी में इनकी स्थिति का उल्लेख मिलेगा। फिर यह 'त्रिधातु' केवल शरीर में रहनेवाली वस्तु कैसे हुई?

(४) आयुर्वेद का यह सर्वसंमत सिद्धान्त है कि सजातीय वस्तु के मेल से हर एक चीज़ बढ़ती है। जिस वस्तु के खाने से वायु बढ़ती है, उसमें वायु की सत्ता अवश्य माननी पड़ेगी। इसी प्रकार विरोधी गुणों से विरुद्ध गुण घटता है। सुश्रुत का कहना है कि (५) हेमन्त ऋतु में पित्त के रोग, ग्रीष्म में कफ के रोग और शरद् में वायु के रोग, ऋतु के स्वभाव से ही कम हो जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि ऋतुओं में भी त्रिधातु की सत्ता है, अन्यथा इनके स्वभाव से किसी दोष या धातु का घटना-बढ़ना कैसे संभव हो सकता है? इस प्रकार पृथ्वी, वृक्ष, वनस्पति, कन्द, मूल, फल, आकाश, दिशा, काल और हम सबके शरीर इन वात, पित्त, कफों से घिरे सिद्ध होते हैं। अब सोचिये कि इनका स्वरूप क्या हो सकता है? ऐसी कौनसी वस्तु हो सकती है जो हमारे शरीरों में भी हो और आकाश तथा काल में भी हो? डाक्टर लोग यदि इन्हें स्वीकार नहीं करते तो क्या बुरा करते हैं? जब आयुर्वेद के ग्रन्थ ही इनका कोई स्वरूप निश्चित नहीं कर पाते तो दूसरे लोग इन्हें कैसे मान लें?

ष्मणः। ६। अतः परं पञ्चधा विभज्यन्ते।……पित्तस्य यकृत्प्लीहानौ, हृदयं, दृष्टिस्त्वक्पूर्वोक्तं च। श्लेष्मणस्तु उरः, शिरः, कण्ठो, जिह्वामूलं सन्धय इति पूर्वोक्तं च'। ७। सुश्रुत, सू० स्था०, अ० २१

१. 'तेषां त्रयाणामपि दोषाणां शरीरे स्थानविभाग उपदेक्ष्यते, तद्यथा वस्तिः पुरीषाधानं कटिः सक्थिनी पादावस्थीनि च वातस्थानानि। अत्रापि पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम्। स्वेदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि। अत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्'। ९। च०, सू०, अ० २०

२. 'सर्वशरीरचरास्तु वातपित्तश्लेष्माणो हि सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि कुर्वन्ति'। १०। च०, सू०, अ० २०। 'वातपित्तश्लेष्मणां पुनः सर्वशरीरचराणां सर्वस्रोतांस्ययनभूतानि' च०, विमा०, अ० ५

३. 'विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगद्, देहं कफपित्तानिलास्तथा॥' ८। सुश्रुत, सूत्र, अ० २१

४. 'सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्' (चरक) 'वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः'। (चरक) 'समानैः सर्वभावानां वृद्धिर्हानिर्विपर्ययात' (जतूकर्ण)

५. 'तत्र पैत्तिकानां व्याधीनामुपशमो हेमन्ते, श्लैष्मिकाणां निदाघे, वातिकानां शरदि स्वभावत एव'। १४ सु०, सू०, अ० ६

'त्रिधातु' क्या पदार्थ है, इसका वर्णन न तो किसी आयुर्वेदिक ग्रन्थ में मिलता है, न किसी दार्शनिक ग्रन्थ में ही मिलता है। आप न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और वेदान्त इन छहों दर्शनों का पारायण कर जाइये, परन्तु इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलेगा कि वात, पित्त का अन्तर्भाव किस पदार्थ में होता है। और इधर आयुर्वेद के समस्त ग्रन्थ देख जाइये, इनमें भी इस बात की चर्चा नहीं मिलेगी कि 'त्रिधातु' को किस पदार्थ के अन्तर्गत मानना चाहिये।

छहों दर्शनों में दो प्रकार से पदार्थ-विभाग प्रसिद्ध हैं। एक वैशेषिक के अनुसार और दूसरा सांख्य के अनुसार। न्याय-दर्शन में यद्यपि नैयायिकों के १६ (१) पदार्थ प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे प्राचीन न्याय में ही सीमित हैं। नवीन नैयायिकों ने वैशेषिक के सात (२) पदार्थों में ही इन सोलह का अन्तर्भाव कर लिया है, अतः नव्य न्याय में वैशेषिक के ही द्रव्य, गुण, कर्म आदि प्रसिद्ध हैं। दूसरा विभाग सांख्य का है, जिससे सत्त्व, रजस्, तमस् आदि २५ (३) तत्व प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और किसी दर्शनकार ने पदार्थ-विभाग नहीं किया। सब लोग इन्हीं से व्यवहार करते हैं।

न्याय का सिद्धान्त है कि द्रव्य के आश्रित गुण, कर्म आदि रहते हैं, परन्तु द्रव्य इनमें से किसी के आश्रित नहीं। वह सबका आश्रय है, आश्रित किसी का नहीं। द्रव्य, द्रव्य के ही आश्रित रहता है। साथ ही गुणों में गुण नहीं रह सकते, न कर्म में ही रह सकते हैं। कर्म भी, न कर्म में रह सकता है, न गुण में। ये सब द्रव्य में ही रह सकते हैं। 'गुणादिर्निर्गुणक्रियः' यह न्याय का सिद्धान्त है, परन्तु (४) चरक ने मधुर आदिक ३ रसों को कफ का, अम्ल आदिक तीन को पित्त का और कटु, तिक्त, कषाय इन तीन रसों को वायु का जनक बताया है। 'वृद्धिः समानैः सर्वेषाम्' इस चरक के सिद्धान्त के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि मधुर रस में कफ है, अन्यथा वह कफ को बढ़ा नहीं सकता। न्याय शास्त्र के अनुसार रसों की गणना गुणों में है, अतः गुणों में रहनेवाला यह 'त्रिधातु' न द्रव्य हो सकता है, न गुण हो सकता है और न कर्म हो सकता है। अब बताइये कि यह है क्या बला?

द्रव्य, गुण आदि में तो 'त्रिधातु' का अन्तर्भाव हो नहीं सका। अब सांख्यशास्त्रोक्त पदार्थों को देखिये।

सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। यह प्रलय की अवस्था है। जब तक सत्त्वादिकों में वैषम्य रहता है, उसी समय तक संसार कायम रहता है, जब इनमें साम्य आने लगता है तभी प्रलय होने लगता है। वात, पित्त, कफ की दशा इससे एक दम

---

१. प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान।

२. द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव।

३. 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।' सांख्यकारिका

४. 'तत्र दोषमेकैकं त्रयस्त्रयो रसा जनयन्ति, त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति। तद्यथा—कटुतिक्तकषाय वातं जनयन्ति, मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति। कटुकाम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति, मधुरतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति। मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति'। ६। चरक, विमा, अ० १

विपरीत है। इनमें जब तक साम्य (१) रहता है, तभी तक आरोग्यसुख अथवा सृष्टि क़ायम रहती है एवं विषमता आते रोग उत्पन्न होते हैं और विनाश का आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार 'त्रिधातु' और 'त्रिगुण' परस्पर विरोधी वस्तु हैं। फिर इनमें से किसी एक का दूसरे में अन्तर्भाव कैसे हो सकता है ?

सत्त्वगुण से कोई रोग या विकार उत्पन्न नहीं हो सकता। दर्शनकारों ने इसे ज्ञान(२) प्रकाश, शान्ति और सुखस्वरूप माना है। आयुर्वेद के आचार्यों ने भी (३) रजस्, तमस् को ही विकारों का जनक बताया है और सत्त्वगुण (४) को मोक्ष का साधक माना है। इधर वात, पित्त, कफ इन तीनों से रोग उत्पन्न होते हैं। फिर इनमें से किसी का किसी में अन्तर्भाव कैसे हो सकता है ?

इसके अतिरिक्त चरक ने रजस् (५), तमस् को मन का दोष और त्रिधातु को शरीर का दोष मानकर इन दोनों की सीमा और स्वरूप को स्पष्टरूप से पृथक्-पृथक् कर दिया है। इस दशा में इनके अन्तर्भाव का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। अब बताइये कि यह 'त्रिधातु' क्या पदार्थ है ?

कुछ लोगों का अनुमान है कि 'त्रिधातुवाद' का सिद्धांत भारतवर्ष का अपना नहीं है, बल्कि यह विदेश से यहाँ आया है। ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व यूनानियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। तभी से इन दोनों जातियों का परस्पर ज्ञान विनिमय होना भी स्वाभाविक है। यूनानी चिकित्सा में आज भी सौदा, सफरा, बलग़म, खून ये चार दोष माने जाते हैं। इनमें से यदि खून को छोड़ दिया जाय तो उक्त तीनों वात, पित्त, कफ के नामांतर मात्र रह जाते हैं। भारतीयों ने यूनानियों के चार दोषों में से किसी कारण एक को छोड़कर अपने इस 'त्रिधातु' की सृष्टि की है, ऐसा अनुमान होता है। इसी कारण चरक ने त्रिधातु को केवल शरीर तक सीमित रक्खा है; क्योंकि विदेश से आया हुआ यह सिद्धान्न केवल शरीर से सम्बन्ध रखता था। सत्त्वादिक भारत की अपनी वस्तु थी, इस कारण उसकी व्यवस्था चरक ने प्राचीन भारतीय प्रथा के अनुसार की है। और उन्हें मन का दोष लिखा है।

इस प्रकार वात, पित्त, कफ के ऊपर चार आक्षेप प्रधानरूप से होते हैं—

१—आपरेशन करने पर शरीर में इनकी उपलब्धि नहीं होती।

२—आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अनुसार इनका कोई स्वरूप और स्थान निश्चित नहीं होता।

३—दार्शनिक पदार्थों में इनका अन्तर्भाव नहीं हो सकता और—

---

१. 'विकारो धातुवैषम्यं, साम्यं प्रकृतिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ।४। चरक, सू०, अ० ९

२. 'प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः'। १२। 'सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टम्। १३ (सांख्यकारिका), प्रीतिः सुखं, प्रीत्यात्मकगुणः सत्त्वगुणः (सांख्यतत्त्वकौमुदी)।

३. 'रजस्तमश्च मानसौ दोषौ······वातपित्तश्लेष्माणस्तु खलु शारीरा दोषाः' ६ (च०, विमा०, अ० ६)।

४. 'मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत्कर्मसंक्षयात्' १४० । (च० शा० अ० १)

५. 'वायुः पित्तं कफश्चेति शारीरो दोषसंग्रहः। मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च' ५६। च० सू०, अ० १

४—यह सिद्धान्त यूनान से यहाँ आया प्रतीत होता है।

उत्तर पक्ष।

हम सबसे पहले अन्तिम प्रश्न पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं; क्योंकि यदि यह मान लिया जाय कि 'त्रिधातुवाद' का सिद्धान्त अपना नहीं है तो यहाँ उसके अनुसन्धान का यत्न वैसा ही होगा जैसा आगरे के ताजमहल में शेक्सपियर की कब्र ढूँढ़ना।

भारत पर यूनानियों का आक्रमण सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के समय आरम्भ हुआ था और उन दिनों यहाँ आयुर्वेद कितनी उन्नत दशा में था, यह बात हम कौटिलीय अर्थशास्त्र के उद्धरणों से सिद्ध कर चुके हैं।

न तो अज्ञात देश पर आक्रमण होना संभव है और न किसी ऐसे देश पर आक्रमण होना संभव है जहाँ से लूट में या अन्य प्रकार से कुछ मिलने की आशा न हो। आक्रमण करनेवाला कुछ लेने के इरादे से आता है, देने के लिये नहीं।

यदि आक्रमणीय देश का रहन-सहन श्री-सम्पत्ति और भीतरी दुर्बलता का पूरा ज्ञान न हो तो किसी को उस पर आक्रमण करने का साहस ही नहीं होता। यह भी इतिहाससिद्ध है कि प्राचीन समय के आक्रमणकारी सभ्यता में आक्रमणीय देश की अपेक्षा निम्नश्रेणी के होते थे। इन बातों से यह सिद्ध है कि आक्रमण करने से पूर्व यूनानियों को भारत का अच्छी तरह परिचय था और यूनानी आक्रमण के समय सभ्यता तथा वैभव में भारत यूनान से बहुत चढ़ा बढ़ा था।

ईसा से ६०० वर्ष पूर्व पैथागोरस (Pythagoras) नामक यूनानी विद्वान् विद्याध्ययन के लिये भारत के विद्याकेंद्रों और तीर्थस्थानों में बहुत दिनों तक रहा था, यह बात इतिहास से सिद्ध है।

'बूअलीसीना' नामक यूनानी चिकित्सक भारत में आया था और यहाँ के वैद्यों में केवल आकृति देखकर रोग का निदान करने की विद्या देखकर दङ्ग रह गया था। उसने अपनी भारतयात्रा के वर्णन में इसका उल्लेख किया है।

ईसा के जन्म से ३१२ वर्ष पूर्व मेगास्थनीज़ (Megasthenes) नामक राजदूत को सेल्यूकस (Selucus necater) ने महाराज चंद्रगुप्त के दरबार में भारतीय राजनीति का अध्ययन करने के लिये भेजा था, यह भी सब जानते हैं।

ऐतिहासिक लोग इस बात से भी अपरिचित नहीं हैं कि यूनानी सेनापति सेल्यूकस ने अपनी लड़की हेलन का विवाह महाराज चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया था।

इन सब बातों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि डालने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यूनानी आक्रमण से बहुत पहले ही भारतवर्ष ज्ञान-विज्ञान तथा धन-समृद्धि में यूनान से बहुत ऊँचा था। यहाँ की विद्याओं ने जहाँ यूनानी विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट किया था, वहाँ इस देश की श्री-समृद्धि को देखकर यूनानी लुटेरों के मुँह में पानी भर आया था और उसी प्रलोभन से उन्होंने आक्रमण भी किया। साथ ही यहाँ उस समय भी ऐसे-ऐसे वीर तथा राजनीतिज्ञ विद्यमान थे, जिनसे टक्कर लेना यूनानियों के लिये किसी प्रकार संभव नहीं हुआ और अन्त में उन लोगों ने अपनी लड़की देकर किसी प्रकार मधुर-सम्बन्ध स्थापित कर लेने में

ही भलाई समझी । इन बातों से यह नहीं सिद्ध होता कि उस समय भारत को किसी प्रधान विज्ञान के सम्बन्ध में यूनान का अधमर्ण बनने की आवश्यता हुई होगी ।

व्याकरण महाभाष्य की रचना यूनानी आक्रमण के थोड़े ही दिन बाद हुई थी । महर्षि पतञ्जलि के समय में ऐसे लोग जीवित थे, जिन्होंने यूनानी आक्रमण का हाल अपनी आँखों देखा था । 'अनद्यतने लङ्' इस पाणिनि सूत्र पर एक वार्त्तिक है । जिसका तात्पर्य है कि ऐसे प्रयोग में भी लङ् लकार का विधान होना चाहिये, जहाँ वर्णनीय घटना जनता को ज्ञात तो हो, किन्तु उसकी देखी हुई न हो और वक्ता ने उसे अपनी आँखों देखा हो । इस वार्त्तिक के उदाहरण में महर्षि पतञ्जलि ने यूनानियों के अयोध्या पर घेरा डालने की बात कही (१) है । इससे स्पष्ट है कि व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय ऐसे लोग जीवित थे, जिन्होंने यूनानियों का आक्रमण स्वयं देखा था ।

पतञ्जलिकृत होने के कारण ही व्याकरण महाभाष्य को 'पातञ्जल' कहा जाता है । शब्देन्दुशेखर के आरम्भ में नागाजिभट्ट ने 'पातञ्जले महाभाष्ये कृतभूरिपरिश्रमः' लिखा है । इन्हीं महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र बनाये थे और इन्हीं ने 'अग्निवेशसंहिता' का प्रतिसंस्करण किया था, यह प्रामाणिक लोगों का मत है । चरक, पतञ्जलि का ही नामान्तर है और इसी कारण उक्त संहिता आज 'चरकसंहिता' के नाम से प्रसिद्ध है । निम्न पद्य भी इन्हीं बातों का सूचक है—

'योगेन चित्तस्य, पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥'

'इन्द्रवरुणभवशर्व० ४।१।४९ इत्यादिक पाणिनिसूत्र पर एक वार्त्तिक है 'यवनाल्लिप्याम्'—इसका उदाहरण है 'यवनानां लिपिर्यवनानी' । इन वार्त्तिककार वररुचि का समय महर्षि पतञ्जलि से भी पूर्व है अतः यह निश्चय है कि यूनानी आक्रमण से बहुत पूर्व यहाँ की जनता और भाषा पर यूनान के सम्बन्ध का प्रभाव पड़ा था ।

इन स्थानों पर 'यवन' शब्द मुसलमानों के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता, जैसा कि आज-कल होता है । उस समय इसलाम धर्म या, मुसलमानों का संसार में कहीं नामोनिशान भी नहीं था । इनकी उत्पत्ति को तो अभी १४०० वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं ।

महर्षि पतञ्जलि यूनानी आक्रमण के समय विद्यमान थे । उन्होंने 'अग्निवेशसंहिता' का प्रतिसंस्करण्ण किया और इसी कारण 'अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते' यह बात आरम्भ हुई । अब सोचिये कि 'अग्निवेशसंहिता' का निर्माणकाल क्या हो सकता है ? संहिता बनी, उसका प्रचार हुआ, और धीरे-धीरे कालक्रम से (मुसलमानी आक्रमण से नहीं) उसमें कमी आई । फिर संस्करण हुआ और पुनः प्रचार हुआ । अनन्तर फिर उसी प्रकार कमी हुई, संहिता दुर्लभ हो गई और चरक ने उसका प्रतिसंस्करण किया । अब विचारिये कि तीन-तीन बार प्रचार, ह्रास, संस्करण और प्रतिसंस्करण के लिये कितना समय अपेक्षित हुआ होगा ? यदि इन सबके लिये कम-से-कम एक सहस्त्र वर्ष भी मान लें तो चरकसंहिता का निर्माणकाल

---

१. "अनद्यतने लङ् ३।२।१११ । परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शनविषयः । परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शनविषये लङ् वक्तव्यः । अरुणद् यवनः साकेतम् । अरुणद् यवनो माध्यमिकाम् ।... प्रयोक्तुर्दर्शनविषय इति किमर्थम् ? जघान कंसं किल वासुदेवः" (व्याकरण महाभाष्य)

यूनानी आक्रमण से एक सहस्त्र वर्ष पूर्व ठहरता है, जब कि यूनानी सभ्यता नाम लेने योग्य भी नहीं थी। 'सुश्रुतसंहिता' तो अनेक लोगों के मत से 'चरकसंहिता' से भी प्राचीन है। जब इन दोनों संहिताओं में जो यूनानी सभ्यता के जन्म से भी पहले बन चुकी थीं, आदि से अन्त तक वात, पित्त, कफ का उल्लेख मिलता है, तब यह कैसे मान लिया जाय कि 'त्रिधातुवाद' का सिद्धान्त यहाँ यूनानी आक्रमण या यूनानी सभ्यता के बाद बाहर से आया?

'यूनानी चिकित्सा' के नाम से प्रसिद्ध पद्धति जो आज कुछ मुसलमानों के हाथ में हैं, वह असली यूनानी चिकित्सा नहीं है, बल्कि यूनान से अरब में पहुँचे हुए ज्ञान का रूपान्तर है। अरबों के पास अपनी कोई चिकित्सा-पद्धति नहीं थी उन्होंने सब कुछ यूनान से ही सीखा और अपनी पद्धति की प्रतिष्ठा तथा प्रामाणिकता द्योतित करने के लिये उसके साथ 'यूनानी' शब्द जोड़ लिया। भारत में आज वही प्रसिद्ध है। असली यूनानी चिकित्सा का क्या रूप था, इसका आज इनमें से किसी को पता तक नहीं।

इतिहासज्ञ लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि यूनान में ज्ञान का प्रसार मिस्त्र (Egypt) के द्वारा हुआ और मिस्त्र में बहुत-सा ज्ञान भारतवर्ष से—विशेषकर बौद्ध भिक्षुओं द्वारा—पहुँचा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान की परम्परा भारत से मिस्त्र, मिस्त्र से यूनान और वहाँ से अरब तथा अन्य यूरोपीय देशों में पहुँची। इससे यह सिद्ध होता है कि 'त्रिधातुवाद' का सिद्धान्त भी भारत से ही पश्चिम में पहुँचा। पश्चिम से उसके यहाँ आने की कोई संभावना नहीं।

भारत के लोगों ने यूनानियों के सौदा, सफ़रा, बलग़म, खून इन चार दोषों में से एक को कम करके 'त्रिधातुवाद' की सृष्टि की है, यह बात भी निर्मूल है। सुश्रुत 'शल्यतन्त्र' का ग्रन्थ है, यह हम कह चुके हैं और 'शल्यतन्त्र' में कई कारणों से रुधिर को भी प्राधान्य दिया जाता है। आयुर्वेद की अन्य शाखाओं को इसकी आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण सुश्रुत ने अनेक स्थानों पर वात, पित्त, कफ की श्रेणी में रुधिर (१) की भी गणना की है और यही सुश्रुत का मत पश्चिम में पहुँचा है। अरबी की सबसे प्राचीन चिकित्सा की पुस्तक में चरक और सुश्रुत का 'शरका' और सुशरुदा' के नाम से उल्लेख है और चरक के कई रसायनों का तद्रूप अनुवाद भी है। यूनानियों की अति प्रसिद्ध दवा 'इतरीफल' का आधार आयुर्वेद की 'त्रिफला' ही है। इससे स्पष्ट है कि असली यूनानी चिकित्सा की उत्पत्ति का आधार सुश्रुत ही है।

यह बात आज सर्वसंमत है कि ऋग्वेद से प्राचीन पुस्तक संसार में कोई नहीं है। इसके निर्माणकाल का अनुमान लगाना भी संभव नहीं है। इसी ऋग्वेद के प्रथम मंडल में एक ऋचा है, जिसमें आयुर्वेद के इस त्रिधातुवाद का स्पष्ट उल्लेख है—

---

१. शारीरास्तु अन्नपानमूला वातपित्तकफशोणितसन्निपातनिमित्ताः' (सुश्रुत, सू०, १ अ०)

'नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात्।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥ ४ ॥

आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैरुपसृष्टमबीजं भवति (सुश्रुत, शारीर०, अ० २)

'द्वौ व्रणौ भवतः शारीर आगन्तुकश्चेति।
तयोः शारीरः पवनपित्तकफशोणितसन्निपातनिमित्तः' (सुश्रुत, चि०, अ० १)

'त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजात्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती' ॥

(ऋक् १ । ७ । ३४ । ६

'आयुर्वेद महत्त्व' में हमने इस ऋचा की विस्तृत व्याख्या की है। श्रीसायणाचार्य ने यहाँ 'त्रिधातु' शब्द का भाष्य करते हुए लिखा है—

'त्रिधातु'—वातपित्तश्लेष्मधातुत्रयशमनविषयम् ।'

इससे यह सिद्ध है कि 'त्रिधातुवाद' यहाँ यूनान या और कहीं से नहीं आया, प्रत्युत इनकी उत्पत्ति वेदों से हुई है। वेद और आयुर्वेद की यह निजी संपत्ति है।

तैत्तिरीय उपनिषद् की दूसरी वल्ली (ब्रह्मानन्द वल्ली) के प्रथम अनुवाक में सृष्टिक्रम का निर्देश इस प्रकार किया है कि (१) आत्मा अर्थात् ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु और वायु से अग्नि की सृष्टि हुई। अग्नि से जल और जल से पृथिवी का जन्म हुआ। पृथ्वी से औषधियाँ और औषधियों से अन्न एवं अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह 'अन्नरसमय' है अर्थात् इस पुरुष के बनने में अन्न का रस प्रचुर परिमाण में कारण होता है।

अब सोचिये कि यह 'पुरुष' कौन है? और वेदान्त में इसका क्या स्थान है? दार्शनिकों की भाषा में आत्मा को 'पुरुष' कहते हैं। वेदान्तदर्शन में 'पुरुष' को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, असंसारी और 'अशनाया पिपासाद्यतीत' (भूख, प्यास आदि रहित) कहा है। भला इसके साथ इस अन्न के कीड़े (अन्नरसमय) का क्या मेल? चार्वाक-जैसे नास्तिकों के मत में भले ही अन्न से पुरुष की उत्पत्ति मानी जाया करे, परन्तु 'ब्रह्मानन्दवल्ली' में इसका क्या काम? यह 'काबे में कुफ़्र कैसा? यह काशी विश्वनाथ में कुरान का पाठ कैसा?' इस पर कुछ विचार तो कीजिये।

विवेचनापूर्ण सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर आपको इस श्रुति में आयुर्वेद के मूल तत्त्व स्पष्टरूप से दीखेंगे और यह पुरुष भी 'चिकित्सापुरुष' प्रतीत होने लगेगा। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस बात पर विचार किया गया है कि चिकित्सा में किस प्रकार का पुरुष अपेक्षित है। वेदान्त वेद्य पुरुष को न तो किसी प्रकार की चिकित्सा अपेक्षित हो सकती है और न उसकी चिकित्सा करना किसी प्रकार संभव ही हो सकती है। नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त को चिकित्सा की क्या अपेक्षा? निराकार का निदान कोई क्या करेगा? और 'अशनायापिपासाद्यतीत' को कोई औषध कैसे खिलायेगा? सारांश यह कि वेदांत के 'पुरुष' का चिकित्सा-शास्त्र में कुछ काम नहीं। यहाँ कैसा 'पुरुष' अपेक्षित है, यह बात आप सुश्रुत और चरक के वचनों में देखिये।

१—'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ।
आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः ।
अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ।
ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः ।
स वा एव पुरुषोऽन्नरसमयः ।'

तैत्तिरीय उपनिषद्, २ वल्ली, १ अनुवाक

वैद्यभूषण पुरुषोत्तम शास्त्री हिर्लेकर **अमरावती** ।
अध्यक्ष–मध्यप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन **जबलपुर** (सन १९३५) ।
अध्यक्ष–निझामप्रान्तीय महाराष्ट्र १ वैद्यसंमेलन **पैठण** (सन १८३४) ।
संस्थापक–श्रीभारतायुर्वेदविद्यालय **अमरावती** ।

(१) सुश्रुत का कहना है कि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इन छः तत्त्वों के संयोग से 'चिकित्सा-पुरुष' बनता है। इसी की चिकित्सा की जाती है। यही चिकित्सा-शास्त्र का 'कर्मपुरुष' है। न तो आत्मा से रहित केवल शरीर (मुर्दे) की चिकित्सा होती है और न शरीर से रहित केवल आत्मा की ही चिकित्सा हो सकती है, अतः शरीर और आत्मा इन दोनों से संयुक्त पुरुष इस शास्त्र में अधिकृत है। (२) चरक और सुश्रुत ने अनेक स्थानों पर इसी प्रकार के पुरुष का उल्लेख किया है। (३) चरक ने यह भी कहा है कि अन्न से बने हुए रस के द्वारा 'चिकित्सापुरुष' बढ़ता है। यदि इस कथन के साथ आप पूर्वोक्त उपनिषद् के 'अन्नरसमय' पुरुष का मिलान करके देखें तो आपको स्पष्ट रूप से निश्चय हो जायगा कि ये दोनों एक ही हैं।

अब इस श्रुति के अन्य अंशों पर ध्यान दीजिये। इसमें केवल एक ही आत्मा से समस्त जड़ (आकाशादि) और चेतन (पुरुष) जगत् की उत्पत्ति बताई है। वेदान्त-सिद्धान्त (अद्वैत) की यही विशेषता है कि वह ब्रह्म को ही जगत् का उपादान कारण भी मानता है और उसी को निमित्त कारण भी मानता है। 'अभिन्ननिमित्तोपादानता' ही इस सिद्धान्त का परम ध्येय है। वही इस श्रुति में भी स्पष्टरूप से प्रतिपादित हुआ है। इसी कारण प्रकृत श्रुति का वेदान्त वाक्यों में स्थान मिला है, परन्तु इसकी अन्य प्रक्रिया में आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त तथा सूत्रभूत बीज अन्तर्हित हैं।

यों तो आज-कल की साइंस (Science) भी किसी एक ही वस्तु से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति अब मानने लगी है। जिस समय वर्तमान साइंस का ज्ञान ऐटम्स् (Atoms) तक ही सीमित था उन दिनों सैकड़ों मूल तत्त्व माने जाते थे, परन्तु जब से इसे एलेक्ट्रॉन्‌ (Electrons) का ज्ञान हुआ है तब से पुराने सैकड़ों मूल तत्त्व धूल में मिल गये हैं। अब साइंस किसी एक तत्त्व से ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति मानता है, परन्तु आत्मा की सत्ता पर उसे अब भी विश्वास नहीं है। होना भी न चाहिये। सूक्ष्मदर्शक आदि अनेक प्रकार के यन्त्रों की सहायता से किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करना और उसी के आधार पर अनुमान लगाना, बस ये ही दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) साधन भौतिक-विज्ञान के ब्रह्मास्त्र हैं। जो वस्तु इन दोनों साधनों की पकड़ से परे है, उसके ज्ञान की आशा भी हम इस विज्ञान से कैसे कर सकते हैं? आत्मा न तो ऐसी वस्तु है, जो विज्ञानशाला (Laboratory) के किसी काचनली (Burner) में रख कर गरम की जा सके और न ऐसी ही वस्तु है, जिसे सूक्ष्मदर्शकयन्त्र

---

१. यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति स एष कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः। १६। (सु०, शा०, अ० १)

२. 'षड् धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते, तद् यथा पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चाऽव्यक्तमित्येत एव च षड् धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते'। ९। चरक, शारीर०, अ० ९
'खादयश्चेतना षष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः' १४ चरक, शारीर०, अ० १
'आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां योऽयं पुरुषसंज्ञकः।
राशिरस्यामयानां च प्रागुत्पत्तिविनिश्चये' चरक, सू०, अ० २९

३. 'हिताहारोपयोगएक एव च पुरुषवृद्धिकरो भवति'
च०, सू०, अ० २५

(Microscope) के द्वारा कीटाणुओं की तरह बिलबिलाता हुआ देखा जा सके। इस दशा में साइन्स यदि आत्मा पर विश्वास नहीं करता तो आश्चर्य ही क्या है ?

यद्यपि दर्शनग्रन्थों में आत्मा की सिद्धि पर बड़े लम्बे-लम्बे विचार करके यह सिद्ध किया गया है कि पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड की क्रियाओं का सामञ्जस्य तथा व्यवस्था आत्मा को स्वीकार किये बिना संभव नहीं है। हम भी इसी मत के अनुयायी हैं, परन्तु यहाँ दर्शनों के साथ साइन्स का शास्त्रार्थ छेड़कर हम आपका समय नष्ट करना नहीं चाहते। इस जगह हम उन्हीं बातों का कुछ परिणाम निकालने की चेष्टा करेंगे, जिनमें वैदिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान में विशेष अन्तर नहीं है।

'आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ', इस बात को आप थोड़ी देर के लिये भुला दीजिये और प्रकृत श्रुति के अगले अंश पर विचार कीजिये। इसमें लिखा है कि वर्तमान सृष्टि आकाश के रूप से वायु के रूप में परिणत हुई, वायु के रूप से अग्नि के रूप में आई, अग्नि की दशा से जल की दशा में बदली और जल की अवस्था के बाद फिर ठोस पृथ्वी के रूप में परिवर्तित हुई। एक ही वस्तु (जो मूलतत्त्व आत्मा थी) का प्रथम परिणाम या विवर्त आकाश हुआ और इसके अनन्तर वही एक वस्तु वायु आदि के अनेक रूप में परिवर्तित होती हुई इस वर्तमान पृथ्वी के रूप में परिणत हुई। यही इस श्रुति का भावार्थ है।

यदि आत्मा से एक श्रेणी नीचे तक देखा जाय तो वर्तमान भौतिक विज्ञान (Science) भी इस सृष्टिक्रम से सहमत है। अब साइन्स ने यह स्वीकार कर लिया है कि सब वस्तुएँ किसी एक ही मूलतत्त्व से उत्पन्न हुई हैं और वह मूलतत्त्व ईथर (Ether) है। यह ईथर वैदिक भाषा का आकाश ही है। वेद कहता है कि आकाश से समस्त स्थूल जगत् की सृष्टि हुई और साइन्स कहता है कि 'ईथर' से सब वस्तुएँ बनीं, इन दोनों बातों में केवल शब्दों का भेद है, तत्त्व एक ही है।

आज-कल अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीनों का आविष्कार करके साइन्स ने ऐसे अनेक तारापुञ्जों का पता लगाया है, जो अब तक केवल वाष्प या गैस (Gas) के स्वरूप में हैं। हम जिसे आकाशगङ्गा या ऐरावत का मार्ग कहते हैं, जो रात्रि में एक चमकती हुई पगडंडी (Foot path) सी आकाश में प्रतीत होती है, वह इसी प्रकार के अनेक नक्षत्रों का पुञ्ज है जो अभी तक वायु की दशा में हैं। साइन्स को इस बात का ज्ञान नहीं है कि यह तारापुञ्ज इस वायवीय दशा से पूर्व किस दशा में था। उसके पास इसके जानने का कोई साधन भी नहीं है, क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा नहीं जानी जा सकती। इन दो प्रमाणों के आगे साइंस की गति नहीं है। योगज ज्ञान आर्षचक्षु अथवा आगम प्रमाण का साइंस में कोई स्थान नहीं है। तथापि अपने सामान्य सिद्धान्त के अनुसार इन वायवीय तारापुञ्जों का ईथर से उत्पन्न हुआ मान लेने में साइंस को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। जब सभी वस्तुओं का आदि मूल वह ईथर को मानती है तो गैस (Gas) या वायु को भी उसी ईथर से उत्पन्न हुआ मानने में साइंस को क्या आपत्ति हो सकती है? इस प्रकार आकाश से वायु की उत्पत्ति जो वेद ने बताई है, उसका विरोध साइन्स नहीं कर सकता।

वर्तमान वायवीय दशा से घनीभूत होकर ये तारापुञ्ज प्रज्वलित तेजोमण्डल के रूप में पहुँचेंगे, यह बात भी विज्ञानसंमत है। हमारा वर्तमान सूर्य आज इसी दशा में विद्यमान है। जिस प्रकार का यह अग्निपुञ्ज है, इसी प्रकार के अन्य भी अनेक सूर्य हैं और बहुत-से अभी

बन ही रहे हैं। इन बातों से—जिनका भौतिक विज्ञान को अब ज्ञान हुआ है—वेदोक्त सृष्टि-प्रक्रिया का समर्थन होता है। आकाश से वायु और वायु से अग्नि के उत्पन्न होने की बात सिद्ध हो जाती है।

विज्ञान (Science) अब यह मानता है कि हम जिस पृथ्वी पर निवास करते हैं, इसका आरम्भिक दशा में, यह रूप नहीं था। आरम्भ में यह पृथ्वी सूर्य का ही एक अवयव थी। शुक्र, बृहस्पति आदि ग्रह-उपग्रह भी सब इसी में मिले थे। यह एक प्रदीप्त नेबुला (Nebula) था जो बड़ी तेज़ी के साथ आकाश में घूम रहा था। इसका मध्य भाग अपेक्षाकृत सघन तथा तीव्रतर गतिसम्पन्न था।

वैदिक मत के अनुसार इस नेबुले को हम वायु का विशुद्धरूप नहीं मान सकते। इससे पूर्व की दशा वायु की थी और वर्तमान दशा में क्रिया वायु की है और उष्णता (यदि हो तो) अग्नि की। उपादान कारण की स्थिति कार्य में अवश्य रहती है, अतः इस अग्निरूप परिणाम में भी वायु विद्यमान रहता है।

फिर यह नेबुला घूमते-घूमते (करोड़ों वर्ष तक) कुछ अधिक सघन हुआ। उसी भ्रमण की दशा में अनेक अंश टूट-टूटकर इधर-उधर आकाश में फैले और समय पाकर कुछ ठंडे हुए। मध्य भाग जो अधिक सघन था, सूर्य हुआ और अन्य छोटे-छोटे भाग बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा और हमारी यह पृथ्वी हुई।

संस्कृत ज्योतिष में शनि का सूर्य को पुत्र, मंगल को भौम या भूमिपुत्र, और बुध को चन्द्रमा का पुत्र कहा जाता है। इससे इन ग्रहों का इतिहास प्रकट होता है। मंगल पृथ्वी से टूटकर पृथक् हुआ है और शनि सूर्य से टूटकर बना है, इसे प्राचीन भारत के ज्योतिषियों ने जाना था।

नेबुले से छूटने पर यह पृथ्वी अत्यन्त उष्ण तरल (द्रव) पदार्थों का एक समूह थी। जिस प्रकार ज्वालामुखी पर्वत के फटने से कहीं-कहीं द्रव पदार्थ निकलते हैं उससे कहीं अधिक उष्ण पदार्थों का समुद्र इस पृथ्वी पर उस समय लहरें मार रहा था। उसके अतिरिक्त यहाँ और कुछ नहीं था, यह वर्तमान साइंस का मत है। इसके साथ वेद के 'अग्नेरापः' = अग्नि के बाद जल की सृष्टि हुई, इस मत का मिलान कर देखिये।

हम इस दशा का भी, वैदिक मतानुसार, विशुद्ध जल की दशा नहीं कह सकते। इसके भीतर क्रियाशक्ति वायु की है और उष्णता अग्नि की है—जो दोनों इसके कारण हैं—एवं तरलता तथा सघनता (आपेक्षिक) इस जल के अपने गुण हैं।

धीरे-धीरे पूर्वोक्त जलीय सृष्टि की उष्णता कम हुई और दूध पर मलाई के समान एक ठोस पदार्थ की तह उस तरल पदार्थ के ऊपर जमती गई। ज्यों-ज्यों गरमी कम हुई त्यों-त्यों यह तह मोटी होती गई, परन्तु भीतर की अति तीव्र उष्णता और प्रचण्ड वेग के कारण स्थान-स्थान पर यह तह फटकर ज्वालामुखियों का प्रादुर्भाव होता रहा। उन्हीं से निकला हुआ लावा ठण्डा होकर पर्वतों के रूप में परिणत हुआ और अनेक जगह बड़े-बड़े महागर्त भी बन गये। उष्णता की अधिकता के समय जो जल वाष्प या गैस (Gas) के रूप में था वह उष्णता कम होने पर साधारण जल के रूप में आ गया और उससे समुद्रों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार यह सृष्टि जलीय दशा से पार्थिव दशा में परिणत हुई। इसी को वेद ने 'अद्भ्यः पृथ्वी' इस एक वाक्य में कहा है।

इस प्रकार आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । विज्ञान ने अनेक साधन, विपुल व्यय और पचासों वर्ष के अथक परिश्रम से इन बातों को जाना है और ऋषियों ने इन्हें योगज ज्ञान, दिव्य दृष्टि अथवा आर्षचक्षु के द्वारा देखा था । आर्षचक्षु की गति प्रत्यक्ष और अनुमान की सीमा से परे तक होती है, अतएव वैदिक ऋषियों ने आकाश के भी मूल तत्त्व आत्मा के दर्शन किये, परन्तु वर्तमान विज्ञान वहाँ तक पहुँचने की सामर्थ्य नहीं रखता ।

आस्तिक लोग प्रत्यक्ष और अनुमान के साथ एक तीसरा 'आगमप्रमाण' भी मानते हैं । दिव्यज्ञान और आर्षचक्षु के बल पर जो लोग अतीत, अनागत तथा अतीन्द्रिय पदार्थों का प्रत्यक्ष करते हैं, उनके वचन इस 'आगमप्रमाण' के अन्तर्गत होते हैं । वेद इसी कोटि के ग्रन्थ हैं, इसीलिये यह कहा जाता है कि प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जिन पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता उनका ज्ञान वेदों के द्वारा होता है । वेदों का यही वेदत्व है कि वे प्रत्यक्ष और अनुमान से अगम्य पदार्थों का ज्ञान कराते हैं ।

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ।।

आस्तिक लोग योगज ज्ञान अथवा 'आर्षचक्षु' को सबसे उत्कृष्ट प्रमाण मानते हैं, अतः जहाँ कहीं प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के साथ आगम-प्रमाण का विरोध पड़ता है, वहाँ आगम या वेद को ही स्वीकार करते हैं । हम लोगों का विश्वास है कि प्रत्यक्ष और अनुमान से प्रमाणित बातें आगे चलकर मिथ्या सिद्ध हो सकती हैं—जैसा कि साइंस के सिद्धान्तों में अब भी बराबर हो रहा है—परन्तु आगमप्रमाण की सत्यता त्रिकालाबाध्य होती है । इसीलिये ऋषियों के सम्बन्ध में यह कहा है कि—

'आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम् ।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्नातिरिच्यते ।।
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ।।'

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनकी यथाक्रम सृष्टि होने का समर्थन वैदिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान इन दोनों के द्वारा होता है । इनमें आकाश प्रथम तो एकदम अव्यक्त तत्त्व है, दूसरे वह तटस्थ है, किसी व्यक्त पदार्थ की क्रिया में साधक या बाधक नहीं होता । इसको छोड़ देने से व्यक्त सृष्टि अथवा स्थूल सृष्टि में चार तत्त्व बचते हैं । इनमें वायु सबसे सूक्ष्म और व्यक्ताऽव्यक्त है । अग्नि उससे स्थूल और जल उससे भी स्थूल है । पृथ्वी सबसे स्थूल और सबका कार्य है । इसमें इसके पूर्व के तीनों तत्त्व कारण रूप से विद्यमान रहते हैं । जिस प्रकार सुवर्ण की बनी वस्तु सुवर्ण को छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकती, कोई भी कार्य-वस्तु अपने उपादान कारण को छोड़कर नहीं रह सकती, इसी प्रकार यह पृथ्वी भी वायु, अग्नि और जल इन तीनों उपादानों को छोड़कर एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकती । पृथ्वी की स्थिति के लिये इन तीनों की उपस्थिति नितान्त आवश्यक है ।

एक बात यहाँ विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये । वायु, अग्नि और जल ये तीनों परस्पर भिन्न तत्त्व हैं । आत्मा से लेकर जल-पर्यन्त सभी कार्य पदार्थों में अपने कारण की

अपेक्षा इतनी भिन्नता आ गई है कि उनको अलग-अलग तत्त्व मानना अनिवार्य हो गया है, परन्तु पृथ्वी पर पहुँच कर यह बात नहीं रही। यद्यपि पृथ्वी से ओषधि, ओषधि से अन्न और अन्न से पुरुष की उत्पत्ति श्रुति ने बताई है, परन्तु ये सब पृथ्वी के कार्य, अपने कारण (पृथ्वी) से भिन्न तत्त्व नहीं हो सके। सबके सब पार्थिव ही रहे, अतः व्यक्त जगत् में तत्वान्तर उत्पन्न करने का सामर्थ्य वायु, अग्नि और जल इन तीन में ही समाप्त हो गया। इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी तथा पार्थिव पदार्थों की अपेक्षा वायु, अग्नि और जल ये तीनों कारणकोटि में हैं, एवं समस्त पार्थिव पदार्थ इन्हीं तीन तत्त्वों के कार्य हैं।

यहाँ हमारी कई बातें न्यायशास्त्र के अनुयायियों को अपने मत के विरुद्ध प्रतीत होंगी। प्रथम तो आकाश की उत्पत्ति बताना और फिर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में कार्य-कारण भाव बताना, यह प्रचलित न्यायशास्त्र के मत के विरुद्ध है, परन्तु आप लोगों को यह ध्यान रखना चाहिये कि हम इस समय वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे हैं और भौतिक विज्ञान (साइंस) का समर्थन भी कर रहा है। नैयायिकों को यदि अपने मत की प्रामाणिकता सिद्ध करनी हो तो वे लोग पहले तो अपने माने पदार्थों को वेदानुकूल सिद्ध करें और फिर विज्ञान का समर्थन प्राप्त करें। सारांश यह कि हमारी इन बातों का समर्थन वेद, वेदान्तशास्त्र और विज्ञान से होगा, प्रचलित न्याय-शास्त्र से नहीं।

हम यह कह रहे थे कि वायु, अग्नि और जल के सहयोग के बिना पृथ्वी और पार्थिव पदार्थ स्थिर नहीं रह सकते। पृथ्वी में जो गति और क्रिया है, वह वायु का रूप है, एवं परस्पर अवयवों का जो मेल है, वह जल का गुण है। जल अथवा स्नेह के बिना संघटन नहीं हो सकता। पृथ्वी में जो गर्मी है वह अग्नि का गुण है। इस प्रकार पृथ्वी में उसके तीनों कारण दृष्टिगोचर होते हैं। यदि आप इनमें से किसी एक को भी अलग कर दें तो पृथ्वी का स्वरूप नष्ट हो जायगा, यदि पृथ्वी की गति अथवा क्रिया को अलग कर दिया जाय तो यह इतना बड़ा मिट्टी का गोला निराधार आकाश में एक क्षण भी न टिक सके। गति और क्रिया के कारण ही यह अपने स्थान पर स्थित है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के ऊपर ऋतुओं का परिवर्तन, वनस्पति और अन्नादि की उत्पत्ति तथा वर्षा आदि का होना भी इसकी गति और क्रिया पर ही निर्भर हैं। यदि ये दोनों पृथ्वी से पृथक् हो जायँ तो यहाँ की ऋतुएँ नष्ट हों, वृक्ष, वनस्पति तथा अन्नादिक नष्ट हों और फलतः सब प्राणी भी नष्ट हों। यही दशा जल की भी है। यदि जलीय अंश निकल जाय तो पृथ्वी का प्रत्येक कण भस्मराशि के समान आकाश में इधर-उधर उड़ने लगे। इसी प्रकार यदि पृथ्वी की गर्मी निकल जाय तो भी यह मुर्दा हो जाय और यहाँ कोई भी प्राणी न रह सके। यदि हमारी बातों पर आपको विश्वास न हो तो किसी साइंस जाननेवाले से पूछ लीजिये।

जिस प्रकार पृथ्वी की स्थिति के लिये वायु, अग्नि और जल की उपस्थिति वाञ्छनीय है, उसी प्रकार इन सबकी समानता भी अपेक्षित है। इनके वैषम्य से भी पृथ्वी नष्ट हो जायगी। यदि पृथ्वी में गर्मी की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाय तो सैकड़ों ज्वालामुखी फूट निकलें और पृथ्वी पिघलकर जल के रूप में परिणत हो जाय। यदि यही गर्मी न्यून हो जाय तो भी विनाशकारी हो। वायु की गति अत्यन्त बढ़ जाने पर अथवा न्यून हो जाने पर भी घातक हो जाय। जलीय गुणों की अति वृद्धि या अतिक्षय भी इसी प्रकार हानिकर हो। सारांश यह कि पृथ्वी को अपने स्वरूप में बनाये रखने के लिये वायु, अग्नि, जल इन तीनों की उपस्थिति ही

नहीं, अपितु इनकी समानता भी अपेक्षित है। इनकी अनुपस्थिति और विषमता दोनों ही घातक हैं।

जो दशा पृथ्वी की है, वही वृक्ष, वनस्पतियों की भी है। वायु की क्रियाशक्ति, अग्नि की पाचनशक्ति और जल की संघातशक्ति के बिना संसार का कोई वृक्ष एक क्षण भी नहीं टिक सकता। वृक्षों की जड़ों में बारीक शिफायें होती हैं। उन्हीं के द्वारा ये पृथ्वी से रस खींचते हैं, इसीसे इन्हें 'पादप' कहा जाता है। (पादैः पिवतीति पादपः) सभी वृक्ष पृथ्वी से रस खींचते हैं, जो एक ही प्रकार का होता है, परन्तु इसके परिणाम में भारी अन्तर होता है। एक ही स्थान पर आम, नीबू तथा नीम बो दीजिये और एक ही कूएँ का जल सबको दीजिये, परन्तु आम का फल मीठा, नीबू का खट्टा और नीम का कड़वा होगा। पृथ्वी से खींचे हुए इन सबके रस की आरम्भिक दशा में यदि परीक्षा की जाय तो कुछ भेद न मिलेगा। यह भेद इनके पाचक-संस्थानों की भिन्नता के कारण होता है।

वृक्षों की पाकस्थली पत्तों में होती है। पत्तों में एक गहरे हरे रंग का पदार्थ होता है जिसे क्लोरोफ़िल (Chlorophyll) कहते हैं। यह वृक्षों की पाचनक्रिया में सहायक होता है। अनेक सड़ती हुई वस्तुओं में से (Carbon di oxide) कार्बनडाइऑक्साइड नामक वस्तु का वृक्ष अपने पत्तों के सूक्ष्म छिद्रों द्वारा शोषण करते हैं और क्लोरोफ़िल की सहायता से उसे पचाकर मनुष्यों की भोजन सामग्री (Carbon) तैयार करते हैं। वृक्ष से आक्सिजन (Oxygen) नामक वायु बाहर निकलते हैं, जो जङ्गम प्राणियों के लिये प्राणप्रद है। जो रस वृक्षों में पृथ्वी से पहुँचता है, उसका भी, पाचन होकर, वृक्षों के अंग पुष्ट होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि रस खींचने के लिये क्रिया, उसे पचाने के लिये गर्मी या अग्नि की वृक्षों को भी आवश्यकता है। आक्सिजन छोड़ने के लिये भी क्रियाशक्ति अथवा वायु की अपेक्षा है और अवयवों के संघटन तथा पोषण के लिये जल की भी आवश्यकता है। इस प्रकार वायु, अग्नि और जल की सत्ता तथा समानता वृक्षों के लिये भी आवश्यक है।

हम सबके शरीरों का भी यही हाल है। हमारे शरीर पार्थिव हैं। अन्त में ये पृथ्वी के रूप में ही लीन होते हैं, परन्तु क्रियाशक्ति, पाचनशक्ति, और संघात शक्ति के विना इनका रहना असंभव है। मानव शरीर की रचना अत्यन्त जटिल है। इसमें सेकड़ों नहीं, हज़ारों क्रियायें प्रतिक्षण होती हैं, परन्तु हममें से किसी को भी उनका ज्ञान नहीं होता। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और डाक्टरों ने जीवित शरीर की अनेक क्रियाओं का वर्णन किया है, परन्तु इनमें ऐसा एक भी नहीं है, जिसने अपने शरीर के भीतर होनेवाली क्रियाओं का साक्षात्कार किया हो। सबने दूसरे के शरीरों पर ही अनुभव किया है। हृदय की गति, मस्तिष्क का संचालन, आमाशय की अनेक क्रियायें, छोटी-बड़ी आँतों के भीतर होनेवाला क्रियाकलाप, यकृत् , प्लीहा, वृक्क आदि के विलक्षण काम उरःस्थल, या फुप्फुस में होनेवाली रक्तशोधन की अद्भुत क्रियायें कहाँ तक गिनियेगा, प्रत्येक स्नायु, पेशी और सन्धि इन क्रियाओं से व्याप्त हैं, ये सब क्रियायें वायु का ही प्रधान कार्य हैं। अव्यक्त होने के कारण वायु का प्रत्यक्ष नहीं होता, परन्तु इन क्रियाओं से उसका अनुमान होता है।

यह कोई तर्क भी नहीं है कि जो वस्तु प्रत्यक्ष न हो उसकी सत्ता ही न मानी जाय। शरीर के प्रत्येक अंग को चीर डालने पर भी 'प्राण' नाम की किसी वस्तु के कहीं दर्शन न होंगे, तब क्या 'प्राण' कोई वस्तु ही नहीं है? कल्पना कीजिये कि कोई आदमी गृध्रसी के दर्द

से व्याकुल है अथवा हृदय की व्यथा से वेचैन है। क्या आप आपरेशन करके उसके दर्द को कहीं प्रत्यक्ष देख सकेंगे ? और न मिलने पर क्या उसकी सत्ता को अस्वीकार करेंगे ?

वायु व्यक्ताऽव्यक्त है। स्वयं अव्यक्त होने पर भी उसकी क्रियायें व्यक्त होती हैं। अग्नि इससे कुछ स्थूल है। उसकी गर्मी का भी प्रत्यक्ष होता है और अनेक क्रियाओं का भी। जिस प्रकार वृक्षों में गर्मी के द्वारा पाचन होता है, उसी प्रकार हमारे शरीरों में भी होता है। बाहर से पहुँचा हुआ भोजन इस गर्मी के द्वारा पचकर या परिवर्तित होकर शरीर के अंग-प्रत्यंगों में तन्मय होता है। यदि यह क्रिया न हो तो खाया हुआ भोजन ज्यों-का-त्यों रक्खा रहे। यह बात भौतिक विज्ञान भी स्वीकार करता है कि हमारे शरीर में बाहर से पहुँची प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन अवश्य होता है। डाइजेशन (Digestion) और ऑक्सिडेशन (Oxidation) के बिना कोई बाहरी वस्तु शरीर का अङ्ग नहीं बन सकती। प्रत्येक डाक्टर यह भी स्वीकार करता है कि शरीर के भीतर यह परिवर्तन गर्मी के कारण होता है। साथ ही कोई वैज्ञानिक अथवा डाक्टर अब तक यह भी नहीं समझ पाया है कि शरीर के भीतर अत्यन्त स्वल्प मात्रा में (९८–९९ फ़ैरनहीट) जो गर्मी विद्यमान है वह इन सब खाद्य सामग्रियों को पचा कैसे देती है। हमें इन बातों से कुछ मतलब नहीं। हमें तो केवल यही दिखाना है कि शरीर में अग्नि के बिना पाचन असम्भव है और यह बात भौतिक विज्ञान भी स्वीकार करता है। फलतः यह सिद्ध है कि हमारे शरीर के लिये भी वायु और अग्नि की अनिवार्य आवश्यकता है। जल की अथवा संघातशक्ति की आवश्यकता तो इतनी स्पष्ट है कि उसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं।

इन बातों से यह सिद्ध है कि हम जिस सृष्टि को देख रहे हैं, वह वायु, अग्नि और जल की दशाओं में यथाक्रम परिवर्तित होने के अनन्तर पृथ्वी के रूप में परिणत हुई है और जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं, उसमें इसकी पूर्वावस्था के तीनों तत्त्व—वायु, अग्नि और जल—कारणरूप से विद्यमान हैं। प्रत्येक वृक्ष, लता, गुल्म में और हमारे शरीरों में भी इनकी कारणता अविच्छिन्न है। पृथ्वी तथा पार्थिव पदार्थों की स्थिति उसी समय तक रह सकती है, जब तक ये तीनों तत्त्व समानरूप में बने रहें। यदि इनमें से कोई एक भी न रहे अथवा इनमें विषमता आ जाय तो पृथ्वी तथा पार्थिव पदार्थों का विनाश अवश्यंभावी है।

तैत्तिरीय उपनिषद् की प्रकृत श्रुति ने सृष्टिप्रक्रिया में अग्नि और जल के नाम से जिन कारणों का निर्देश किया है और प्रत्येक पदार्थ की स्थिति के लिये जिनकी अनिवार्य आवश्यकता है, इन्हीं का नाम 'धातु' है। धारण करने के कारण ये 'धातु' कहाते हैं। ऋग्वेद के ये ही 'त्रिधातु' हैं और आयुर्वेद में इन्हीं का नाम 'वात, पित्त, कफ' है।

'वायु' का नाम तो वेद और आयुर्वेद में एक ही है। इस पर कोई विवाद ही नहीं। पित्त के सम्बन्ध में सुश्रुत ने (१)यह प्रश्न उठाया है कि क्या शरीर में पित्त का ही नाम अग्नि है ? या इसके अतिरिक्त और अग्नि है ? इस पर निर्णय किया है कि पित्त के अतिरिक्त और

---

१. अत्र जिज्ञास्यं किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निः ? आहो-स्वित् पित्तमेवाग्निरिति ? अत्रोच्यते न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरुपलभ्यते। आग्नेयत्वात्पित्ते दहनपचनादिषु अभिप्रवर्तमाने अग्निवदुपचारः क्रियते अन्तरग्निरिति। क्षीणे हि अग्निगुणे तत्समानद्रव्योपयोगात्, अतिवृद्धे शीतक्रियोपयोगात्, आगमाच्च पश्यामो न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरिति। ९। सुश्रुत, सूत्र०, अ० २१

नहीं है, पित्त का ही नाम अग्नि है, अग्नि के सब गुण—दहन (Oxidation) और पचन (Digestion) आदि—इसी में विद्यमान है। जब ये गुण कम पड़ते हैं, तब अग्निगुण-प्रधान औषध देने से ठीक हो जाते हैं और जब पित्त बढ़ता है, तब शीतोपचार से दब जाता है। इन कारणों से और 'आगम-प्रमाण' से हम यह निश्चय करते हैं कि अग्नि और पित्त एक ही वस्तु हैं।

'श्लेष्म' शब्द का अर्थ है कफ। यह शब्द 'श्लिष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है मिलना, मिलाना, चिपकना या इकट्ठा करना। जल का यह विशेष गुण है। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग इसी के कारण संश्लिष्ट रहते हैं। आमाशय इसका प्रधान स्थान है। यहाँ कई प्रकार के द्रव भोजन में मिश्रित होते हैं। और भी कफ के अनेक स्थान सुश्रुत ने गिनाये हैं। स्नेहन और श्लेषण ये दोनों जल के गुण शरीर के जिस अङ्ग में विशेष रूप से मिलें वही कफ का स्थान हो सकता है। (१) सुश्रुत का कहना है कि 'उदककर्म'=जल के कार्य से श्लेष्मा शरीर का उपकार करता है। इससे यह स्पष्ट है कि श्लेष्मा और जल एक ही वस्तु है।

चरक (२) ने भी इसी प्रकार का कथन किया है और वायु, अग्नि तथा जल को कारण 'प्रकृतिभूत' बताया है।

आयुर्वेद ने वात, पित्त, कफ के तीन अधिष्ठातृ देवता भी माने हैं। इनका नाम है—वायु, सूर्य और चन्द्रमा। इससे भी त्रिधातु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। वात और वायु एक ही है। सूर्य अग्निरूप और चन्द्रमा जलरूप हैं।

'तत्र वायोरात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य इति' ५

सुश्रुत सूत्र० अ० ४२

सुश्रुत का कहना है कि (३) विसर्ग आदान और विक्षेप इन तीन क्रियाओं के द्वारा जैसे चन्द्र, सूर्य और वायु जगत् को धारण करते हैं वैसे ही इन्हीं क्रियाओं के द्वारा वात, पित्त, कफ शरीर को धारण करते हैं। इससे स्पष्ट है कि वात, पित्त, कफ और वायु, सूर्य, चन्द्र इनका स्वरूप भी एक है और क्रियायें भी एक हैं।

सारांश यह कि दृश्य जगत् की समस्त वस्तुएँ आकाश (Ether) से उत्पन्न होकर वायु, अग्नि और जल के रूप में परिवर्तित होने के बाद ठोस पार्थिव रूप में आई हैं, अतः पृथ्वी तथा प्रत्येक पार्थिव पदार्थ में, उसके कारण (वायु, अग्नि, जल) का स्वरूप, क्रियायें

---

१. 'स च तत्र औदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्नसंघातः सुखजरश्च भवति। १२। स तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य उदककर्मणा अनुग्रहं करोति। १४। सुश्रुत सूत्र०, अ० २१

२. 'अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभशुभानि करोति। ११।

'सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति'। १२।

'सर्वं एव खलु वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतिभूताः पुरुषमव्यापन्नेन्द्रियं बलवर्णसुखोपन्नमायुषा महतोपपादयन्ति'। १३।

(चरक, सूत्र०, अ० १३)

३. विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्, देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ ८ ॥

(सुश्रुत, सूत्र०, अ० २१)

और गुण सदा वर्तमान रहते हैं। दृश्य जगत् का कोई भी पदार्थ न तो इनके बिना रह सकता है और न इनकी विषमता में ही रह सकता है। इनकी सत्ता और समता में ही प्रत्येक जड़ जङ्गम वस्तु का जीवन संभव है। इनकी विषमता या इनमें से किसी का अभाव समस्त चराचर के लिये घातक है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के धारक ये ही त्रिधातु हैं। इनका आधिदैविक रूप 'सोम, सूर्य, अनिल' है, आधिभौतिक रूप अग्नि, जल, वायु है और आध्यात्मिक रूप वात, पित्त, कफ है। अवस्थाभेद और कार्यभेद के कारण केवल इनके नाम-रूप में भेद दीखता है, वास्तविक तत्त्व एक ही है।

चरक का कहना है कि (१) सूर्य, चन्द्रमा और वायु इन्हीं के कारण काल, ऋतु, रस, दोष, देह और बल की उत्पत्ति होती है। यह सभी जानते हैं कि यदि सूर्य न हो तो दिन नहीं हो सकता और यदि वायु के द्वारा पृथ्वी में क्रिया न हो तो दिन के बाद रात्रि न हो सके। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सन्मुख रहता है, उस पर दिन और जो व्यवहित रहता है, उस पर रात्रि होती है। इस प्रकार सूर्य और वायु के कारण दिन, रात बने। चन्द्रमा के कारण महीनों की उत्पत्ति होती है, यह बात प्रत्येक पञ्चाङ्ग में चांद्रमास की गणना देखने से ज्ञात हो सकती है। इससे दिन, रात, पक्ष, मास आदि काल की उत्पत्ति में सूर्य, चन्द्र और वायु की कारणता स्पष्ट है।

ऋतुओं की उत्पत्ति प्रधानतया सूर्य के कारण होती है, यह सभी जानते हैं, परन्तु केवल सूर्य ही इनका कारण नहीं है, वायु और जल का भी इसमें भाग है।

एक वर्ष में छः ऋतु होते हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा, शरद्, हेमन्त। इनमें पहले तीन उत्तरायण कहाते हैं और अन्तिम तीन दक्षिणायन। शिशिर ऋतु से उत्तरायण का आरम्भ होता है। सूर्य की गति दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ती है। वायु में तीव्रता और रूक्षता बढ़ती है। सूर्य पृथ्वी से रस और मनुष्यों के शरीर से बल का आकर्षण करना आरम्भ करता है (इसी से उत्तरायण को 'आदानकाल' भी कहते हैं)। इस ऋतु में बरफ़ ज़ोर से गिरने लगती है। हेमन्त ऋतु का गोला-बारूद, (हिम) अपने विपक्षी (सूर्य) का बल बढ़ता देखकर, दनादन पृथ्वी पर गिरने लगता है।

वसन्त ऋतु में गर्मी और बढ़ती है। सूर्य की गति पहले से अधिक उत्तर की ओर हो जाती है। वायु में भी तीव्रता और रूक्षता अधिक आ जाती है। पृथ्वी का रस भी पहले (शिशिर) की अपेक्षा अधिक सूखने लगता है। प्राणियों का बल कम हो जाता है। जो कफ या जलीय अंश हेमन्त ऋतु में प्राणियों के शरीर में सञ्चित हुआ था, वह वसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों की तीव्रता के कारण पतला होने लगता है। शरीर की अन्तराग्नि (पित्त) पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। पाचनशक्ति में जो तीव्रता हेमन्त ऋतु में होती है, वह वसन्त में नहीं होती। अग्नि मन्द पड़ जाती है और कफ के रोग होने लगते हैं। इसी कारण, वसन्त ऋतु में, वमन विरेचन आदि के द्वारा कफ को कम करने का आयुर्वेद में विधान है।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की उष्णता और वायु की रूक्षता अत्यन्त प्रबल हो उठती है। सूर्य की प्रखर किरणें पृथ्वी के रस को प्रबल वेग से सोखने लगती हैं। शीतल और मधुर उप-

---

१. 'तावेतावर्कवायू सोमश्च कालर्तुरसदोषदेहप्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते'। ५।

(चरक, सूत्र, अ० ६)

चार के द्वारा (ठण्डे, मीठे शरबत और फल आदि से) मनुष्य उस कमी को अपने शरीर में पूरा करते हैं।

शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओं में यथाक्रम तिक्त, कषाय और कटुरस पृथ्वी में बढ़ते हैं। कटुरस में वायु और अग्नि के गुणों की अधिकता है। लाल मिर्च में रूक्षता और तीव्रता का आप स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में वायु की रूक्षता और अग्नि की तीव्रता चरम सीमा को पहुँच जाती है। लाल मिर्च के खेत इन्हीं दिनों पकते हैं और अपने में सूर्य तथा वायु के उक्त गुणों का समावेश करते हैं। वसन्त ऋतु में पृथ्वी के भीतर कषाय रस की निष्पत्ति विशेषरूप से होती है।

उत्तरायण में तिक्त, कषाय और कटुरसों की यथाक्रम निष्पत्ति होती है। सद्वैद्य लोग चिकित्सा के समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि किस रोग में किस रस की ओषधियों का प्रयोग करना विशेष हितकर होगा।

दक्षिणायन में सूर्य की गति दक्षिण की ओर झुकती है। ताप में कमी आती है। मेघ और वर्षा के कारण यह और भी कम हो जाती है। चन्द्रमा का बल बढ़ता है। ओषधीनाथ (चन्द्र) का बल बढ़ने से ओषधियों का भी बल बढ़ता है। पृथ्वी के प्राणियों में भी शक्तिसञ्चार होने लगता है और बलवर्धक रस अम्ल, लवण, मधुर इनका इन दिनों में संचय होता है। इससे यह स्पष्ट है कि सूर्य, चन्द्रमा और वायु जैसे काल और ऋतुओं को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के बल और ओषधियों के रसों को बनाने में भी इनकी कारणता है और ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार ये कफ आदि दोषों को भी बढ़ाते घटाते हैं। फलतः चरक का यह कथन बिल्कुल युक्तियुक्त है कि काल ऋतु, रस, दोष, देह और बल की उत्पत्ति में सूर्य, चन्द्रमा तथा वायु की कारणता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य, चन्द्रमा और वायु अथवा वात, पित्त, कफ का पूरा प्रभाव काल पर भी है, दिशाओं पर भी है पृथ्वी के रसों पर भी है, प्राणियों के बल और शरीरों पर भी है, एवं उन-उन ऋतुओं में बढ़ने-घटनेवाले विकारों पर भी है। आयुर्वेद ने दिन तथा रात्रि के अंशों में भी त्रिधातु का विभाग बताया है, जिससे रोग के बढ़ने-घटने का समय देखकर वैद्यों को उसके कारणभूत दोष के समझने में सुगमता होती है।

चरक का कहना है कि (१) शरीर में उत्पन्न होनेवाला ऐसा कोई भी रोग नहीं हो सकता जो वात, पित्त, कफ के बिना उत्पन्न हो सके। जैसे आकाश में उड़नेवाला पक्षी चाहे जितने वेग से उड़े और चाहे जितनी दूर चला जाय, परन्तु वह अपनी छाया से कभी अलग नहीं हो सकता, इसी प्रकार सम्पूर्ण रोगों के पीछे, कारणरूप से वात, पित्त, कफ अवश्य लगे रहते हैं। संसार में ऐसा कोई भी रोग नहीं हो सकता। जो इनसे रहित हो। भूत, भविष्यत् और वर्तमान के सभी रोगों से इनका अविच्छेद्य सम्बन्ध है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में (२) वात, पित्त, कफ के लक्षण भी दिये हैं, इनके कार्य भी

---

१. 'सर्वं एव विकारा निजा नान्यत्र वातपित्तकफेभ्यो निर्वर्तन्ते। यथा हि शकुनिः सर्वं दिवसमपि परिपतन् स्वां छायां नातिवर्तते तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफान्नातिवर्तन्ते। १६। चरक, सूत्र०, अ० १९

२. 'तत्र प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविवेकधारणलक्षणो वायुः पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति'। ४।

दिये हैं, इससे उत्पन्न होनेवाले रोगों को समझने के लिये अनेक विकारों की सूची भी दी है और यह भी कहा है कि अब तक जितने विकार ज्ञात हुए हैं, उनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध रोगों की यह सूची है (देखिये चरक, सूत्र०, अध्याय २०) और इसके आगे ऐसे अनेक (१)लक्षणों का निर्देश किया है, जिनके द्वारा निःसन्देह होकर भूत, भविष्यत् , वर्तमान सभी रोगों के कारण (वात, पित्त, कफ) को पहचाना जा सके।

'त्रिधातु' की विषमता इनमें से एक या अनेक की क्षीणता में भी हो सकती है और वृद्धि में भी हो सकती है। इन दोनों दशाओं में रोग होते हैं। सुश्रुत ने सूत्रस्थान के चौदहवें अध्याय में क्षय और वृद्धि (त्रिधातु की) में होनेवाले विकारों का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है, जो चिकित्सा के मार्ग में अत्यन्त सहायक होता है।

हम कह चुके हैं कि पृथ्वी तथा पार्थिव पदार्थों की स्थिरता के लिये केवल वायु, अग्नि, जल की सत्ता ही नहीं अपेक्षित है, बल्कि इनकी समानता भी अपेक्षित है। यदि इनमें विषमता आ जाय तो उसी क्षण पदार्थों का ध्वंस आरम्भ हो जाय। प्राणियों के शरीर की स्थिरता के लिये भी इनकी समानता नितान्त आवश्यक है। आयुर्वेद के कथानुसार इनके (२) साम्य का नाम ही आरोग्य अथवा सुख है और इनकी विषमता को ही विकार, रोग अथवा दुःख कहते हैं। इनकी समानता बनाये रखना और किसी कारण उत्पन्न हुई विषमता को दूर करने का नाम ही चिकित्सा है। आयुर्वेद के चिकित्सक का यही लक्ष्य होता है। (३) चरक ने इसी धातुसाम्य को वैद्य का कर्तव्य बताया है। एंटीफ़ेब्रिन (Antifebrin) देकर ज्वर कम करना अथवा ऐस्पिरिन (Aspirin) खिला के किसी की व्यथा को एक ओर से दबाना और दूसरी ओर से उससे सौगुनी हानि पहुँचाने को आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा नहीं कह सकते। वस्तुतः यह एक प्रकार का दण्डनीय अपराध है।

आयुर्वेद का लक्ष्य मूल प्रकृति की ओर रहता है। 'त्रिधातुवाद' का सिद्धान्त संसार के लिये, ईश्वरीय वरदान के रूप में वेद, आयुर्वेद और ऋषियों के द्वारा पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ है। इसने प्रकृति के आधार-स्तम्भ उन तीन मूल तत्त्वों को पकड़ा है, जिनसे जगत् का छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा प्रत्येक पदार्थ व्याप्त है। संसार का कोई भी कोना और कोई भी परमाणु इन तीन तत्त्वों से रहित नहीं मिल सकता। इनकी समानता ही जड़ और जङ्गम पदार्थों की स्थिति का कारण है और इनकी विषमता से ही सबका ध्वंस होता है। आयुर्वेद ने

'रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत् पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणा अनुग्रहं करोति'। ५।

'सन्धिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृत् श्लेष्मा पञ्चधा प्रविभक्त उदककर्मणा अनुग्रहं करोति'।६।

सुश्रुत, सूत्र०, अ० १५।

१. 'सर्वेष्वपि खल्वेतेषु वातविकारेषु उक्तेष्वन्येषु चाऽनुक्तेषु वायोरिदमात्मरूपमपरिणामि, कर्मणश्च स्वलक्षणम् , यदुपलभ्य, तदवयवं वा विमुक्तसन्देहा वातविकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः'। १३। इत्यादि

चरक, सूत्र०, अ० २१

२ विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च'। ४। (च०, सू०, अ० ९)

३. 'याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद् भिषजां मतम्। ३४। (च०, सू०, अ० १६)

इन्हीं का स्वरूप, लक्षण, प्रकृति, विकृति और विषमता पहचानने के लिये एवं उसमें समानता लाने के लिये अत्यन्त सूक्ष्म, सरल, सुबोध, सर्वगम्य तथा सब देशों और सब समयों के अनुसार उपलब्ध होने वाले उपायों, साधनों और पदार्थों का निर्देश किया है। ध्यानपूर्वक इनका मर्म समझ लेने पर बड़े-से-बड़े ज्ञानी की भी बुद्धि आश्चर्यचकित हो जाती है। 'त्रिधातुवाद' का रहस्य जान लेने के बाद एक प्रकार से प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग पर अधिकार प्राप्त हो जाता है और जिन्होंने इस रहस्य का उद्‌घाटन किया है, उन महर्षियों के अनन्त, अगाध और गम्भीर ज्ञान के आगे भक्ति तथा श्रद्धा से अपने आप सिर झुक जाता है। आस्तिक लोग इसी दिव्य और अप्रतिहत ज्ञान को 'ईश्वरीय ज्ञान' अथवा 'आर्षचक्षु' कहते हैं, एवं इसे प्रत्यक्ष तथा अनुमान से परे और सबसे उत्कृष्ट मानते हैं। इसी का नाम आगमप्रमाण है। वेद और आयुर्वेद इसी कोटि के विज्ञान हैं। इन दोनों का प्रादुर्भाव भी जगत् के कर्ता ब्रह्मा जी के द्वारा ही माना जाता है। जो लोग आस्तिकों के इस विश्वास पर श्रद्धा नहीं कर सकते वे भी आयुर्वेद के मूल तत्त्वों की व्यापकता, लोकोपयोगिता और सर्वाङ्गीणता को मनुष्य की शक्ति से अगम्य लोकोत्तर ज्ञान मानने को अवश्य विवश होंगे।

यह संभव नहीं है कि कोई पुरुष सम्पूर्ण रोगों का (१) परिगणन अथवा नाम निर्देश कर सके। अतीत और अनागत का तो कहना ही क्या, वर्तमान काल की समस्त व्याधियों की गणना करना भी संभव नहीं है। चरक ने रोगों के भेदों का निदश करते हुए बताया है कि एक-एक रोग के अनन्त भेद हो सकते हैं और यह कहा है कि यदि कोई आयुर्वेदिक चिकित्सक किसी रोग का नाम (२) न बता सके तो यह कोई लज्जा की बात नहीं, क्योंकि सब रोगों का नामनिर्देश न है, न हो सकता है। चरक का कहना है कि वैद्य को रोग की प्रकृति, उसका अधिष्ठान और समुत्थानविशेष इन तीन बातों पर लक्ष्य रख कर चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये। जो चिकित्सक इन तीनों को ध्यान में रखकर अपना कार्य करता है, वह कभी धोखा नहीं खाता।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा रोगमूलक नहीं, बल्कि दोषमूलक है। रोगमूलक चिकित्साओं का सबसे बड़ा दोष यह है कि जब तक रोग के विशेषरूप का ज्ञान न हो जाय तब तक किसी प्रकार का कोई उपाय नहीं किया जा सकता। पिछले समय यहाँ इन्फ्लुएञ्जा का भयानक प्रकोप आरम्भ होने पर क़रीब एक करोड़ भारतवासियों के प्राण नष्ट हो गये परन्तु सब प्रकार के सरकारी सहायता प्राप्त एवं भारत के अति विपुल धन से परिपोषित तथा भौतिक विज्ञान के सब साधनों से सुसज्जित एलोपैथी चिकित्सा उस समय बुरी तरह फ़ेल हुई। जापान में बेरीबेरी नामक रोग का आविर्भाव होने पर भी इस वैज्ञानिकम्मन्य

---

१. 'विकाराः पुनरसंख्येयाः प्रकृत्यधिष्ठानलिङ्गायतनविकल्पविशेषात् तेषामपरिसंख्येयत्वात् । ४ । चरक, सूत्र॰ अ॰ २०

'तत्र व्याधयोऽपरिसंख्येया भवन्त्यतिबहुत्वात्' ५ । चरक, विमान॰, अ॰ ६

२. 'विकारनामाऽकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन । नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति निदर्शनम् । ५० । स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः । स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् । ५१ । तस्माद् विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च । समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत । ५२ । यो ह्येतत्त्रिविधं ज्ञात्वा कर्माण्यारभते भिषक् । ज्ञानपूर्वं यथान्यायं स कर्मसु न मुह्यति । ५३ । चरक, सूत्र॰, अ॰ १८

चिकित्सा की ऐसी ही दुर्गति हुई थी और हज़ारों आदमियों के कालकवलित होते रहने पर भी यह चिकित्सापद्धति किंकर्तव्यविमूढ़ के समान बैठी-बैठी ताकती रही। दयनीय दीन और सब प्रकार से आश्रयविहीन होने पर भी आयुर्वेदिक चिकित्सा ने भारत में इन्फ्लुएञ्जा के समय जो उपकार किया, उससे विरोधियों के हृदय में भी इस चिकित्सापद्धति के प्रति श्रद्धा का अंकुर उत्पन्न हुआ। प्रजा की सविशेष पुकार से बाध्य होकर सरकार ने भी आँसू पोंछने के लिये कहीं-कहीं कुछ-कुछ सहायता कार्य आरम्भ किया और हमारे इन वैद्यसम्मेलनों को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिला।

यदि हमारे भाई डाक्टर लोग आयुर्वेद के इस 'त्रिधातुवाद' का ध्यानपूर्वक अनुशीलन करें तो अचानक किसी रोग के आविर्भूत होने पर भी वे जनता का बहुत कुछ हित-साधन कर सकते हैं। रोगसामान्य, रोगिसामान्य और चिकित्सासामान्य का ज्ञान आयुर्वेद के अतिरिक्त संसार में अन्य किसी चिकित्सापद्धति के पास नहीं है। जिस प्रकार कोई मशीन बनानेवाला अपनी बनाई मशीन के प्रत्येक कल पुर्ज़े से परिचित होता है, इसी प्रकार प्रकृति के अधिष्ठाता परमेश्वर ने वेद और आयुर्वेद के द्वारा यह 'त्रिधातुवाद' संसार के कल्याणार्थ प्रकाशित किया है, जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, वायु, काल, दिशा, आकाश और पृथ्वी से लेकर छोटे-से-छोटा परमाणु तक अन्तर्हित है। जड़ और चेतन सभी इससे व्याप्त हैं। प्रकृति पूर्णतया इससे नियमित है। यही 'त्रधातु' विकृति या विषमता की दशा में 'त्रिदोष' कहाता है।

यह तो हुई रोग-विज्ञान या दोष-विज्ञान की बात, अब ओषधियों की ओर ध्यान दीजिये। औषध-विज्ञान और भेषज-भण्डार के विषय में तो आज भी आयुर्वेद, संसार की सभी चिकित्सापद्धतियों से कोसों आगे है। केवल ज्वर के ऊपर यहाँ कई हज़ार रसों का विधान है। आसव, अरिष्ट, अवलेह, चूर्ण, गोली और काढ़े आदि इनसे अलग हैं। इस अटूट भण्डार का क्या ठिकाना है? फिर इस मार्ग की सूक्ष्म विवेचना तो और भी आश्चर्य में डालनेवाली है। निर्माण-प्रक्रिया के भेद से औषधों के गुणों का भेद और अनुपानभेद से रसों के प्रभाव का भेद भी संसार की कल्पनाशक्ति से परे की वस्तु है? अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के अनुयायी भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, 'त्रिधातुवाद' को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है।

वनस्पति-विज्ञान में भी आयुर्वेद ने एक ऐसा रहस्य बताया है, जिससे अतीत, अनागत और वर्तमान सभी औषधियों का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। संसार में द्रव्य अनन्त हैं और प्रत्येक द्रव्य में गुण भी अनन्त हैं। यदि आप एक-एक द्रव्य को लेकर उसके गुणों की परीक्षा करना आरम्भ करें तो न कभी द्रव्यों की समाप्ति होगी और न कभी आपकी चिकित्सापद्धति में सम्पूर्णता आ सकेगी। यदि केवल कड़वी वस्तुओं की परीक्षा आरम्भ करें तो वह भी एक जन्म में पूरी न हो सकेगी। कुछ दिनों तक कुनैन की परीक्षा कीजिये, फिर नीम को देखिये, अनन्तर कल्पनाथ को समझिये, बाद में चिरायता, मेथी, गुडूची आदि अनन्त वस्तुओं से सामना कीजिये। न इधर द्रव्यों का अन्त, न उधर परीक्षा का अन्त।

आयुर्वेद ने इस कठिनता से उद्धार पाने के लिये गुणों के द्वारा द्रव्य-परीक्षा करने के मार्ग का आविष्कार किया है। यदि आपको कड़वे रस के गुण-दोषों का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान हो जाय तो आप इसी क्षण में भूत, भविष्यत्, वर्तमान सभी तिक्त द्रव्यों के गुण-दोषों का सामान्यज्ञान प्राप्त कर लेंगे और यदि इसी प्रकार आपने छहों रसों को समझ लिया तो फिर

आपके लिये तीनों काल का कोई द्रव्य अज्ञेय न रहेगा। चरक ने सूत्र स्थान के छब्बीसवें अध्याय में इसी प्रकार रसों के गुण-दोष बताये हैं।

एक बात और भी है। चिकित्सा की सम्पूर्णता के लिये यह आवश्यक है कि हम किसी वस्तु के गुण भी जानें, उनके दोष भी जानें और उन दोषों से उत्पन्न हुए विकारों का प्रतिकार भी जानें। इस प्रकार की मीमांसा आयुर्वेद के अतिरिक्त, हम समझते हैं और कहीं नहीं है। विलायतवाले किसी पेटेंट दवा के गुण लिख भेजें और हम यहाँ उसका धड़ाधड़ प्रयोग करने लगें, इसे आयुर्वेद के अनुसार 'अन्धचिकित्सा' कहा जा सकता है।

कुनैन से आज भारत का बच्चा-बच्चा परिचित है, साथ ही यह भी सब जानते हैं कि चरक के समय में कुनैन का आविष्कार नहीं हुआ था, परन्तु चरक ने कड़वे रस के जो गुण बताये हैं, उन्हें देखकर आप कुनैन के गुणों से परिचित हो जायँगे और जो दोष दिखाये हैं, उनसे आपको कुनैन के दोषों का भी ज्ञान हो जायगा, एवं उन दोषों के प्रतीकार का मार्ग भी आपको उसी स्थान पर मालूम होगा, जिसे देखकर आपको 'आगमप्रमाण' की यथार्थता का अनुभव हो सकेगा।

चरक का कहना है कि तिक्त रस स्वयं अरुचिकर होते हुए भी अरुचिरोग को दूर करता है। विष को और कीड़ों को मारता है। मूर्च्छा, दाह, कुष्ठ, कण्डू और तृष्णा को दूर करता है। त्वचा और मांस को स्थिर करता है। ज्वर दूर करता है। दीपन, पाचन, दुग्धशोधन है और लेखन गुणों से युक्त है। क्लेद (रतूबत), चर्बी, मज्जा, लसीका, पूय, पसीना, मूत्र, पुरीष, पित्त तथा कफ को सुखाता है। रूक्ष, शीत एवं लघु है।

यदि इसी एक रस का अधिकता से सेवन किया जाय तो यह रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और वीर्य को सुखाता है, स्नायुजाल में रूक्षता उत्पन्न करता है। दुर्बल और कृश करता है। ग्लानि, मोह तथा भ्रम (चक्कर) पैदा करता है। मुँह सुखाता है एवं अन्य वातविकार भी उत्पन्न करता है (१)।

इस प्रकरण में तिक्त रस को रूक्ष, शीत और लघु कहा है। इस रस से उत्पन्न हुए विकारों की चिकित्सा का यह संकेत है। स्निग्धत्व, उष्णत्व और गुरुत्व रूप विरोधी गुणों से इन विकारों की आवश्यकतानुसार चिकित्सा की जा सकती है।

इस प्रकार सामान्य ज्ञान के साथ आयुर्वेद ने विशेषताओं का भी वर्णन किया है और विशेष ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश भी दिया है। औषधियों का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये गौओं और भेंड़ बकरियों के चरानेवालों तक से ज्ञान प्राप्त करने का आदेश दिया है। वस्तुतः विशेष ज्ञान तो मनुष्य को जन्म-जन्मान्तर तक होता ही रहता है। इसका अन्त कहीं नहीं। सामान्य ज्ञान के अनेक अपवाद भी हैं। आयुर्वेदोक्त 'प्रभाव' इसी विषय का सविशेष वर्णन करता है।

---

१. तिक्तो रसः स्वयमरोचिष्णुररोचकघ्नो विषघ्नः क्रिमिघ्नो मूर्च्छादाहकण्डूकुष्ठतृष्णाप्रशमनः त्वङ्मांसयोः स्थिरीकरणो ज्वरघ्नो दीपनः पाचनः स्तन्यशोधनो लेखनः क्लेदमेदोवसामज्जालसीकापूयस्वेदमूत्रपुरीषपित्तश्लेष्मोपशोषणः रूक्षः शीतो लघुश्च। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपयुज्यमानो रौक्ष्यात् खरविशदस्वभावाच्च रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राण्युच्छोषयति, स्रोतसां खरत्वमुपपादयति, बलमादत्ते, कर्षयति, ग्लपयति, मोहयति, भ्रमयति, वदनमुपशोषयति अपरांश्च वातविकारानुपजनयति'। ४५। च०, सू०, अ० २६

अब तक हमने आयुर्वेद के उत्कर्ष और व्यापकता का वर्णन किया है, परन्तु इससे हमारे-जैसे आयुर्वेद के अनुयायियों और चिकित्सा-व्यवसायियों का कोई उत्कर्ष सिद्ध नहीं होता। हमारी दशा अत्यन्त हीन तथा शोचनीय है। चरक ने दो प्रकार के वैद्य बताये हैं, एक 'प्राणाभिसर रोगहन्ता' और दूसरे 'रोगाभिसर प्राणहन्ता'। पहले प्रकार के चिकित्सकों के लिये कहा है कि ये लोग (१) शरीरज्ञान (Anatomy) में, 'शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञान' (Physiology) में और 'प्रकृतिविकारज्ञान' (Pathology) में संशयरहित होते हैं। अर्थात् इन चिकित्सकों को शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का स्नायु, पेशी, अस्थि, सन्धि आदि का—पूर्ण और संदेहरहित ज्ञान होना चाहिये, शरीर की 'अभिनिर्वृत्ति' का—गर्भाधान से लेकर प्रसवकाल तक तथा आगे चलकर किस-किस अवस्था में देह की कौन-कौन-सी वस्तु बनती है, इसका ज्ञान होना चाहिये तथा जीवित शरीर में दाँत, आमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय, वृक्क, हृदय, प्लीहा, मस्तिष्क आदि की कैसी-कैसी क्रियाओं से क्या-क्या कार्य सम्पन्न होते हैं, इसका ज्ञान होना चाहिये। यह सब 'शारीराभिनिर्वृत्ति ज्ञान' है। इसके साथ ही 'प्रकृतिविकार-ज्ञान' अर्थात् किस रोग में शरीर का कौन-सा—आभ्यन्तर अथवा बाह्य—अङ्ग अपनी किस प्राकृतिक अवस्था को छोड़कर कैसी विकृत अवस्था को प्राप्त होता है, यह ज्ञान प्रत्येक चिकित्सक के लिये आवश्यक है। इसके बिना वह 'प्राणाभिसर' नहीं हो सकता, परन्तु आज-कल के अधिकांश वैद्यों को इन विषयों का ज्ञान नहीं के बराबर होता है।

आजकल आयुर्वेद में इन विषयों की पुस्तकें भी उपलब्ध नहीं हैं और अनेक विषय केवल पुस्तकों से जाने भी नहीं जा सकते। अनेक नये आविष्कार भी हुए हैं, अतः ये सब बातें हमें अपने भाई एलोपैथ डाक्टरों की सहायता से सीखनी चाहिये।

ऐसे बहुत कम लोग हैं जो आयुर्वेद का अध्ययन विज्ञान की दृष्टि से करते हैं। आयुर्वेद का मर्म समझने के लिये अनेक शास्त्रों का प्रगाढ़ पाण्डित्य, अप्रतिहत प्रतिभा और सूक्ष्म विवेचनाशक्ति की आवश्यकता है। आज-कल अधिकांश लोग आयुर्वेद को केवल व्यवसाय की दृष्टि से पढ़ते हैं और इसमें बहुत-से लोग घुस पड़े हैं, जिनकी बुद्धि अन्य शास्त्रों के समझने में कुण्ठित सिद्ध हुई है। ये न तो आयुर्वेद का मर्म समझने की चेष्टा करते हैं, न उसे समझ सकने की बुद्धि ही इनमें होती है। ऐसे लोगों की आरम्भ से ही यह चेष्टा रहती है कि कोई बढ़िया प्रयोग (नुसख़ा) कहीं से हाथ लग जाय जिससे 'अमृतधारा' या 'सुधासिन्धु' के समान कोई पेटेंट चीज़ तयार करके एकदम लक्षाधीश बन जाँय। किसी प्रकार का अंकुश न न होने के कारण ऐसे लोग केवल आडम्बर के बल पर थोड़े ही समय में 'स्वयम्भू कविराज' या 'वैद्यराज' बन बैठते हैं और आयुर्वेद को बदनाम करते हैं।

चिकित्सा के मूल तत्त्व, उनकी व्यापकता, सर्वदेश और सर्वकालोपयोगिता तथा औषध-विज्ञान आदि विषय हमारे भाई डाक्टरों को आयुर्वेद से सीखना चाहिये और शरीरज्ञान, शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञान, प्रकृतिविकारज्ञान और रक्तपरीक्षा आदि उपयोगी विषय वैद्यों को डाक्टरों से, विना संकोच, सीखना चाहिये।

औषधों के सम्बन्ध में आयुर्वेद के अनुयायियों के पास इतना बड़ा अक्षय निधि वर्त-

---

१. 'तथाविधा हि शरीरज्ञाने, शरीराभिनिर्वृत्तिज्ञाने, प्रकृतिविकारज्ञाने च निःसंशयाः' । ७ ।
च०, सू०, अ० २९

मान है कि उन्हें बाहर से कुछ लेने की आवश्यकता नहीं। परन्तु अपने घर की वस्तुओं के अनुसन्धान और पर्यवेक्षण की बड़ी आवश्यकता है। अनेक दिव्य प्रयोग यहाँ धूलिधूसरित रत्नों के समान कूड़े में पड़े हैं।

ऐलोपैथी के पास प्रथम तो औषध हैं ही गिने-चुने, और उनमें भी अधिकांश विलायत से पेटेंट होकर आते हैं। आयुर्वेद के अनुसार रोगी के हित की दृष्टि से रोग, देश, काल, मात्रा, औषध के घटक द्रव्य और उनकी मात्रा आदि पर जितना विचार होना चाहिये वह विलायती पेटेंट (Patent) दवाओं में होना असंभव है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की कुप्रवृत्ति से वैद्यों में भी 'अन्धचिकित्सा' की प्रथा बढ़ेगी और अपने घर के दिव्य औषधों के उद्धार में घोर बाधा उपस्थित होगी।

हम कह चुके हैं कि वेद और आयुर्वेद के रचयिता एक ही (ब्रह्मा) हैं और आयुर्वेद पढ़ने का अधिकार भी उन्हीं को बताया है जिन्हें वेद पढ़ने का अधिकार है, अतः वेद और आयुर्वेद का दर्जा समान है। आयुर्वेद भी वेद ही है। दर्शनों का दर्जा इससे बहुत नीचे है। इनकी गणना वेद के अंगों में भी नहीं, उपाङ्गों में है, अतः वेदोक्त 'त्रिधातुवाद' को दार्शनिक पदार्थों के अन्तर्गत करने की चेष्टा करना, वेदों का अपमान करना है। न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों के माने हुए पदार्थों (सोलह और सात) का मूल, वेदों में मिलना कठिन है।

वेदों में अनेक 'वादों' का मूल, सूत्ररूप से पाया जाता है—जैसे 'सद्वाद', 'असद्वाद', 'सदसद्वाद', 'द्वैतवाद', 'अद्वैतवाद', आदि। इन्हीं में से एक 'त्रिधातुवाद' भी है। जिस प्रकार वेदोक्त किसी एक वाद को दूसरे के अन्तर्गत करने की चेष्टा आज तक किसी आचार्य ने नहीं की, उसी प्रकार इस 'त्रिधातुवाद' को भी किसी के अन्तर्गत कर दिखाने का उद्योग किसी ने नहीं किया। यही कारण है कि न तो किसी दर्शनकार ने वात, पित्त, कफ को किसी दार्शनिक पदार्थ के अन्तर्गत कर दिखाने की व्यर्थ चेष्टा की और न किसी आयुर्वेद के आचार्य ने ही किसी दार्शनिक पदार्थ में इनका अन्तर्भाव दिखाकर 'वैदिकवाद' का अपमान करना उचित समझा।

वेदों ने 'त्रिधातुवाद' की सृष्टि केवल भौतिक जगत् के लिये की है, क्योंकि आयुर्वेद में पञ्च महाभूतों से आगे की बातों पर विचार करने का बहुत कम काम पड़ा है। इसी लिये सुश्रुत ने कहा है कि चिकित्सा-शास्त्र में भूतों (पृथ्वी, जल आदि) से आगे विचार नहीं किया जाता।

'भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते'। १३।

सुश्रुत, शा० अ० १

वात, पित्त, कफ स्थूल सृष्टि की वस्तु हैं। स्थूल जगत् और स्थूल देह के साथ ही इनका साक्षात् सम्बन्ध है, एवं इन्हीं का प्रभाव है। सत्त्व, रजस्, तमस् सूक्ष्म जगत् के पदार्थ हैं और बुद्धि तथा मन के साथ उनका सन्निकृष्ट सम्बन्ध है, इसी लिये चरक ने अनेक स्थानों पर रजस्, तमस् को मन का दोष और वात, पित्त, कफ को शरीर का दोष बताया है।

स्थूल जगत् में किसी एक तत्त्व का विविक्त रूप मिलना सम्भव नहीं। पृथ्वी के साथ हमें अग्नि, जल, वायु और आकश मिले-मिलाये मिलते हैं। 'गन्धवती पृथिवी' का विविक्त रूप केवल नैयायिकों के मन की कल्पना है, दृश्य जगत् की वस्तु नहीं। आयुर्वेद ने इसी

कारण, स्थूल जगत् के समस्त पदार्थों को 'त्रिधातु' से व्याप्त माना है। हमें सृष्टि भर में ऐसा एक भी पदार्थ नहीं मिल सकता जो वायु, अग्नि, जल अथवा वात, पित्त, कफ से शून्य हो।

यही कारण है कि वात, पित्त, कफ को सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त भी माना है और जहाँ-जहाँ अग्नि, वायु और जल की क्रिया तथा गुण विशेषरूप से उपलब्ध होते हैं उन स्थानों को वात, पित्तादि का विशिष्ट स्थान भी माना है।

सुश्रुत ने आमाशय को कफ का स्थान बताया है, पक्काशय और आमाशय के बीच में—नाभि के ऊपर—पित्त का स्थान एवं श्रोणि और गुदा को वायु का स्थान माना है। इसी वायु-स्थान के ऊपर और नाभि के नीचे पक्काशय माना है। इन्हीं वात, पित्त, कफ के कारण सुश्रुत ने शरीर की उपमा ऐसे गृह से दी है, जिसमें तीन 'स्थूणा' अथवा आधार-स्तम्भ लगे हों।

सुश्रुत ने लिखा है कि (१) आमाशय में पहुँच कर भोजन, जलीय द्रवों से प्रक्लिन्न (गीला) होता है और वहाँ उसके 'संघात' (मिले हुए अवयव) 'भिन्न' (पृथक्-पृथक्) होते हैं। आज-कल का साइंस भी यह मानता है कि आमाशय (Stomach) की दीवारों में वर्तमान ग्रन्थियों में से रस निकलकर खाये हुए भोजन में मिलता है। इसमें पेप्सिन तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Papsin and Hydrochloricacid) प्रधान होते हैं। इन रसों में अम्ल और लवण का होना हमारे भाई डाक्टर लोग भी स्वीकार करते हैं और चरक ने (२)अम्ल तथा लवण को कफ का आधार बताया है। अब सोचिये कि जल, अम्ल और लवण की जहाँ अधिकता हो, जो इन्हीं की क्रियाओं का प्रधान स्थान हो, उसे यदि कफ का स्थान न माना जाय तो और क्या माना जाय?

आमाशय (Stomach) का आकार थैले के समान है और पसलियों के नीचे उदर में कुछ बाईं ओर को इसकी स्थिति है। इसकी दाहिनी ओर को एक छिद्र है जहाँ से जुड़ी हुई छोटी आँत (क्षुद्रअन्त्र) नीचे की ओर जाती है। इसका आरम्भिक भाग—लगभग बारह अंगुल—जो ऊपर से नीचे की ओर, कुछ वक्रता से प्रवृत्त है, डियोडिनम (Duodinum) कहाता है।

पाचनक्रिया इसी में निष्पन्न होती है। इसीको पित्ताशय, पक्काशय अथवा पाचन संस्थान भी कहते हैं। सुश्रुत ने नाभि के ऊपर पक्काशय और आमाशय के बीच में, पित्त का स्थान बताया है, उसमें इस डियोडिनम के साथ छोटी आँत का अन्य सम्पूर्ण अंश भी आ जाता है। पित्त के प्रधान कार्य पाचन (Digestion) दहन, (Oxidation) शोषण (Assimilation) और भेदन आदि यहीं होते हैं। पित्तकोष का रस और अग्निधरा कला (Pancreas) का क्षार (Pancreatice juice) इसी स्थान पर भोजन में मिश्रित होते हैं। क्षार को चरक और सुश्रुत ने 'आग्नेय' कहा है और दहन, पचन, विलयन, शोधन, शोषण, भेदन आदि इसके कार्य बताये हैं। ये सब कार्य इसी छोटी आँत में सम्पन्न होते हैं और सम्पूर्ण शरीर का पालन-

---

१. 'तत्र आमाशयः............चतुर्विधस्य आहारस्य आधारः स च तत्र औदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्नसंघातः सुखजरश्च भवति'। १२।

(सुश्रुत, सूत्र०, अ० २१)

२. 'मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति। ६। च०, वि०, अ० १

पोषण करने के लिये भोजन के रस को परिवर्तित करना इसी स्थान का प्रधान कार्य है। अब बताइये कि यदि यह पित्त का (या अग्नि का) प्रधान स्थान न होगा तो और कौन-सा होगा ? शरीरपुष्टि के लिये अन्नरस के शोषण का सम्पूर्ण कार्य इसी स्थान पर होता है। फिर यह पित्त का प्रधान स्थान क्यों न हो ?

इसी पित्ताशय के आगे पक्वाशय है, जिसे बड़ी आँत अथवा लार्जइंटस्टाइन (Large Intestines) कहते हैं। इसमें 'पक्व' वस्तु अर्थात् जिसके ऊपर पाकक्रिया अथवा पित्त का कार्य समाप्त हो चुका है, वह वस्तु आती है। इसके अन्तिम भाग का प्रायः १२ अंगुल अंश वायु का प्रधान स्थान है। अन्नमल को बाहर फेंकना, इसकी प्रधान क्रिया है। डाक्टर लोग जिसे रिकटम (Rectum) कहते हैं और मल (पुरीष) को बाहर फेंकना जिसका प्रधान कार्य बताते हैं, वह भी यहीं है। सुश्रुत ने 'विक्षेप' (फेंकना) को वायु का प्रधान कार्य कहा है। अब विचारिये कि 'मल-विक्षेप' की सबसे अधिक और सबसे प्रधान क्रिया जहाँ होती है, वह स्थान वायु के अतिरिक्त और किसका हो सकता है ? सुश्रुत के कथनानुसार 'विसर्ग' (देना) कफ का 'आदान' (लेना) पित्त का और 'विक्षेप' (फेंकना) वायु का प्रधान कार्य है। आमाशय अपनी ओर से कई प्रकार के रस देता है, पित्ताशय उसमें से शरीर के उपयोगी अंश को लेकर शोषण करता है और बड़ी आँत—विशेषकर अन्तिम भाग—मल का विक्षेप करती है। सुश्रुत का कहना है कि 'विसर्ग' (१), 'आदान' और 'विक्षेप' इन तीन क्रियाओं के द्वारा वात, पित्त, कफ शरीर का धारण करते हैं। अब सोचिये कि इन तीनों की क्रियाओं में से यदि कोई एक भी बन्द हो जाय तो क्या शरीर की स्थिति संभव है ? कदापि नहीं। फिर शरीर के आधारभूत इन वात, पित्त, कफ को 'स्थूणा' या आधार स्तम्भ कहना क्या अनुचित है ?

एक बात और भी है। आमाशय ऊपर तिर्छा लेटा है, उसके दाहिनी ओर छोटी आँत का आरम्भिक भाग तथा बाईं ओर बड़ी आँत का अन्तिम भाग नीचे की ओर लटका है। इन तीनों की मिलित आकृति भी किसी गृह में लगी हुई तीन 'स्थूणाओं' से मिलती हुई है। आप किसी ऐसे गृह की कल्पना कीजिये जिसमें दो स्थूणायें इधर उधर खड़ी करके उनके ऊपर स्थूणा तिर्छी करके रक्खी गई हो। इनकी आकृति से आपको कफाशय, पित्ताशय और वाताशय की आकृति बिल्कुल मिलती-जुलती दीखेगी।

यद्यपि चरक ने आमाशय को पित्त (२) का स्थान बताया है, तथापि चरक ने जितने स्थान की 'आमाशय' (३) संज्ञा की है, उसमें सुश्रुत का बताया हुआ सम्पूर्ण पित्तस्थान समाविष्ट हो जाता है, अतः इन दोनों में कोई विरोध नहीं।

---

१. 'विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्, देहं कफपित्तानिलास्तथा'। ८।

सुश्रुत, सू०, अ० २१

२—'अत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्'। ९।

चरक, सू०, अ० २०

३—'नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः।
अशितं खादितं लीढं पीतश्चात्र विपच्यते'। २३। च०, वि०, अ० २

अन्त में हम फिर आपका ध्यान उसी श्रुति की ओर दिलाना चाहते हैं, जिसमें सृष्टिक्रम का निर्देश है—

'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।

चरक ने पिण्ड (१) और ब्रह्माण्ड की एकता बताते हुए लिखा है कि जो-जो वस्तुएँ पिण्ड में हैं वे ही ब्रह्माण्ड में हैं । आप आयुर्वेदोक्त पुरुष को देख लीजिये, जो-जो यहाँ मिलेगा वही ब्रह्माण्ड में होगा और जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वह सब यहाँ भी मिलेगा ।

चरक का कहना है कि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और ब्रह्म इन छः धातुओं के मेल से पुरुष बना है है और ये ही सब ब्रह्माण्ड में है । यहाँ यह देखना है कि मनुष्य के शरीर में जीव रहता है, ब्रह्म नहीं । ब्रह्म शरीरधारी नहीं है, फिर चरक ने आयुर्वेदिक पुरुष के प्रकरण में 'जीव' न कहकर, 'ब्रह्म' का नाम क्यों लिया ? अब आप सृष्टिक्रम का निर्देश करनेवाली श्रुति के साथ चरक के कहे हुए इन पदार्थों का मिलान करके देखिये तो रहस्य का पता चलेगा । श्रुति ने जिस आत्मा से समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बताई है वह जीव तो हो नहीं सकता, ब्रह्म ही हो सकता है । चरक ने इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए इस स्थान पर श्रुति के ही सम्पूर्ण पदार्थों का उल्लेख किया है । जो पदार्थ श्रुति में हैं वे ही चरक के प्रकृत 'पुरुष' में हैं । केवल क्रम का भेद है। श्रुति ने आत्मा से आरम्भ करके पृथ्वी तक की सृष्टि बताई है और चरक ने पृथ्वी से आरम्भ करके ब्रह्म पर बात समाप्त की है । इसका कारण भी है । श्रुति सृष्टि के आरभ की बात कह रही है, अतः उसे आत्मा से सृष्टि का आरम्भ करके अन्त में पृथ्वी पर पहुँचना है और चरक बनी बनाई सृष्टि में से चिकित्सा-पुरुष का वर्णन कर रहे हैं, अतः इन्हें पार्थिव शरीर से आरम्भ करके अन्त में ब्रह्म पर पहुँचना है । इस क्रमभेद के अतिरिक्त चरक के प्रकृत पुरुष-पिण्ड और श्रुति के पूर्वोक्त ब्रह्माण्ड में कोई अन्तर नहीं है । ये दोनों एक ही हैं । इस प्रकार विचार करने से आपको वेद और आयुर्वेद की एकता का भी अनुभव होगा और वेद में आयुर्वेद के मूल तत्वों का भी स्पष्ट रूप से पता चलेगा ।

इसके अतिरिक्त चरक में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं जो न तो पाणिनीय व्याकरण के अनुसार किसी प्रकार सिद्ध किये जा सकते हैं और न लौकिक साहित्य में कहीं उस प्रकार के शब्दों का प्रयोग ही मिलता है, जैसे 'तिस्रैषणीय'—'यज्जः पुरुषीय'—'कियन्तः शिरसीय' और 'नवेगान्धारणीय' इत्यादि । केवल वैदिक साहित्य में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है—जैसे 'अच्छावाकीय'—'वागम्भृणीय', इत्यादि ।

इससे दो बातें सिद्ध होती हैं । एक तो यह कि 'अग्निवेशसंहिता' का निर्माण, पाणिनी मुनि से भी बहुत पूर्व हुआ है और दूसरे यह कि इस पर वैदिक काल और वैदिक साहित्य की छाया तथा छाप स्फुटरूप में विद्यमान है । बहुत संभव है कि इसमें बहुत-से शब्द ब्रह्मप्रोक्त 'आयुर्वेद' से ही सीधे लिये गये हों जिसकी चर्चा हम आरम्भ में ही कर चुके हैं । इन सब बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से आप वेद और आयुर्वेद की एकता का अच्छी तरह अनुभव कर सकेंगे ।

---

१. 'पुरुषोऽयं लोकसंमित इत्युवाच भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः । यावन्तो हि लोके भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके' । ५ । चरक, शारीर, अ० ५

इस सन्दर्भ में हमने आयुर्वेद को सार्थकता (उपयोगिता) सिद्ध करने के अभिप्राय से वेद और आयुर्वेद की एकता का तथा वैदिक त्रिधातुवाद के स्वरूप का निरूपण किया है और उस पर हो सकने वाले आक्षेपों का समाधान करने की भी यथाशक्ति चेष्टा की है। साथ ही वर्तमान आयुर्वेद की त्रुटियों का अति संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का भी उद्योग किया है, परन्तु हमारा यह कार्य उस बालक के अंगुलिनिर्देश के समान है, जो किसी लक्ष्य की ओर संकेतमात्र करता है। अब बड़े-बड़े विद्वान् वैद्यों और डाक्टरों का काम है कि वे इस ओर अग्रसर हों।

'शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा'

राजपूताना प्रांत

ॐ नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वन्तरिसुश्रुतादिभ्यः ।

राजपूताना प्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन, बीकानेर के सभापति, वैद्यभूषण,

भिषक्केसरी श्री० पं० गोवर्धन शर्मा, छांगाणी का

अभिभाषण

सेवाहेवाकिदेवासुरनरनिकरस्फारकोटीरकोटी-
कोटिव्याटीकमानद्युमणिसममणिश्रेणिभावेणिकानाम् ।
राजन्नीराजनश्रीसखचरणनखद्योतविद्योतमानः
श्रेयः स्थेयः स देयान्मम विमलदृशो बन्धुरं सिन्धुरास्यः ॥
दिव्यस्त्रीकुचपत्रवल्ल्यविरतोल्लासैकहेतुं सुधा-
पूर्णं यः कलशं दधज्जलनिधेराविर्बभूवेच्छया ।
नानाव्याधिभरातुराखिलजगज्जीवातुरायुः स्थिरं
द्विश्याद्वो दुरितौघकुञ्जरहरिर्देवः स धन्वन्तरिः ॥१॥

प्रिय पूज्य विबुधवृन्द !

सबसे प्रथम मैं परम पिता परमात्मा का सभक्त्युन्मेष स्मरण करता हूँ जिसकी असीम दयामया से हम सबको बड़े प्रेम से एक जगह हिलमिलकर बैठने का आज का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है । इसके अनन्तर रणबंका-राठोड-वंशावतंस अनेक वीरपद विभूषित बीकानेर नरेश महाराजाधिराज श्री श्री श्री १०८ श्री गङ्गासिंह जू देव बहादुर एवं उनकी सरकार को भूरि-भूरि धन्यवाद देना उचित समझता हूँ जिनकी छत्रछाया में बैठकर बड़े आनन्द से एक सत्य संकल्प की सिद्धि के लिये हम सब प्रयत्नशील हुए हैं । केवल राजस्थान ही की नहीं, अपितु समस्त भारतवासियों की परम ऐश्वर्यवती आयुरारोग्यहितैषणा से आयुर्वेदोद्धारार्थ सत्य व्रत धारण कर कमर कसे हुए आप सबको बैठे देख मेरे हृदय में बड़े भारी आनन्द की ऐसी उत्तुङ्ग तरङ्गें उठ रही हैं, जिनका वर्णन मेरी क्षुद्र लेखनी नहीं कर सकती । अधिक तो क्या, आपका यह सम्मेलन मुझे परम पवित्र आर्तत्राणपरायण महर्षियों के उस सम्मेलन का स्मरण दिला रहा है जो किसी समय हिमालय की तराई के निकट देवराज इन्द्र की अध्यक्षता में हुआ था । परमात्मा हम सबको वह बल प्रदान करे कि जिससे बहुत जल्दी हम अपने आयुर्वेद की पताका पुनः भारत के कोने-कोने में फहरा दें ।

आपके तार द्वारा इस सन्देश को दिन के ठीक ५ बजे पाकर कि आप सब इस गुरुतर

सेवा का भार मेरे जैसे अल्पज्ञ ही नहीं, अबुध पर डालना चाहते हैं, मैं भौंचक्का सा हो गया–किंकर्तव्यविमूढ़ सा बन गया। हर एक विषय में अपनी कमियों का अनुभव मुझे सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। उत्तर देना तो दर किनार रहा, सोचते विचारते संध्या हो गई। मनीराम महाराज अपनी सदा की संकल्प-विकल्पमयी उधेड़ बुन में लगे। श्रीमती बुद्धि महाराणी भी इधर-उधर चक्कर खाने लगीं और कई बातें नहीं करने की सुझाने लगीं। इतना ही नहीं, उसने रात को अपना निर्णय तक दे डाला कि प्रातःकाल होते ही श्रीमती स्वागतकारिणी को यह लिख दिया जाय कि—

सुमवर्षिणीति नाम क्वापि न घटते यथा प्रमार्जन्याः।
अस्माकमसर्वविदां वैद्यत्वं तद्वदेव जानीत॥

भला, बुहारी (झाड़ू) भी कभी पुष्पवर्षिणी कहला सकती है? कदापि नहीं। इसी प्रकार आप मुझ अबोध का वैद्यत्व समझें और इस गुरुतर सेवा का भार मेरे पर बिना समझे बूझे न डालें यह पद उनको दिया जाय जो वस्तुतः आयुर्वेद के महारथी हैं, आयुर्वेद के सच्चे सेवक हैं और मेरे से अत्यधिक अनुभवी, तपोवृद्ध, वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध हैं। प्रातःकाल होते ही तार की कापी मँगाई गई। यह उत्तर देता ही था कि अन्तरात्मा की ओर से एक आवाज आई और वह यह थी कि "खबरदार–आज्ञा गुरूणामविलंघनीया—गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करना महापाप है।" इसके अतिरिक्त गुरुओं की आज्ञा को न मानने का तुझे अधिकार ही क्या है? तू तो सेवक है? मालिक चाहे जैसी छोटी सेवा सेवक को सौंपे, चाहे उसका उच्चातिउच्च सम्मान करें, यह उनके अधिकार की बात है। इसके सिवा जनसेवानिरत पूज्य राजस्थानीय गुरुजनों की परंपरागत एक प्रवृत्ति भी है और वह यह है कि वे अपने बच्चों को बड़े बड़े अधिकारियों के सामने पेशकर उनसे उनका परिचय कराते हैं। फलतः परम गहन सेवाधर्म जो योगिनामप्यगम्य होता है, वही उन बच्चों के लिये सुगम्य हो जाता है। बस, आप गुरुजनों की इस प्रवृत्ति के भरोसे पर ही मैंने इस सेवा भार को ग्रहण कर लिया है। आशा ही नहीं, दृढ विश्वास है कि हर तरह से मेरे सहायक रहकर मेरे इस भार को हल्का करेंगे। उपर्युक्त मेरी बातों से आप जान गये होंगे कि मैं आपके सामने ऐसा विद्वत्तापूर्ण कोई मसाला नहीं रख सकूँगा जिसे सुनकर आप सर्वथा सन्तुष्ट हो जावें। हाँ, बालक की तुतली बातों को सुनकर जैसे गुरुजन प्रसन्न हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार आपको भी प्रसन्न हो जाना पड़ेगा। दूरस्थ अपने जन को आपने प्रेम से अपनाया है एतदर्थ मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

राजस्थान–गुणगौरव।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" यह वाक्य मुझे स्वदेशाभिमान में प्रवृत्त कर संकेत कर रहा है कि मैं आपको कुछ राजस्थान की गुणगौरवगाथा भी सुना दूँ। आप इसे विषयान्तर न समझें। आज भी राजस्थान बहुत कुछ लम्बा चौड़ा है, परन्तु प्राचीन काल में इसका विस्तार इससे भी अधिक था। इसकी पूर्व-पश्चिम सीमाएँ सिन्धु नद से यमुना तक और उत्तर-दक्षिण सतलज नदी से बुंदेलखंड तक थीं। शाकम्भर, सपादलक्ष (सवालाख) जांगल, मेदपाट, मत्स्य, मरु, भादानक प्रभृति कई देश इसके अन्तर्गत थे। राजर्षि भर्तृहरि ने कहा है कि "साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः" अर्थात् जो साहित्य-

संगीत कलाविहीन है, वह मनुष्य नहीं है, अपितु विना सींग और पूँछ का साक्षात् पशु है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो साहित्य, संगीत और कला में वेदादि सभी शास्त्रों का समन्वय हो जाता है। प्राचीन इतिहास के पन्ने उलटने से पता लगता है कि शूरवीरता में तो राजस्थान सब में अग्रगण्य था ही, परन्तु साहित्य, संगीत और कला में भी यह किसी से पश्चात्पद नहीं था। उक्त साहित्यादि सभी विषयों में भारतवर्ष की इसने बड़ी भारी सेवा की है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज तक आप सबके सामने विद्यमान हैं। आपका यह वही राजस्थान है जिसके मरुदेशीय श्रीमाल (संप्रति भीनमाल) नगर ने मालव देशाधिपति महाराज भोज के समय में उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य की प्रतिमूर्ति महाकवि माघ को जन्म दिया था। उसका शिशुपालवध महाकाव्य आज भी भारत भर में उसकी यशोधवल पताका फहरा रहा है। यह वही राजस्थान है जिसने संगीत और नाट्यकला के प्रवर्तक, महामुनि भरत के अवतार, मेदपाटेश्वर महाराणा कुंभकरण को जन्म दिया था जिसकी लिखी हुई महाकवि जयदेव कृत गीतगोविन्द की रसिकप्रिया व्याख्या कई साहित्य रसिकों को मोहित कर रही है। इतना ही नहीं, सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं के प्रदर्शक, संस्कृत-काव्यमय शिलालेखों से पूरित, चित्तोड़गढ़ और कुम्भलमेर में स्थापित किये हुए कीर्तिस्तम्भ आज भी उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय दे रहे हैं। चाहुवाणान्वय महाराजा सोमेश्वर और पालनपुर के बसानेवाले प्रल्हादन ये दोनों नरेश भी इसी राजस्थान की विभूति थे जिनके कीर्तिकौमुद्यादि ग्रन्थ आज विद्यमान हैं। रणस्तम्भपुर अर्थात् रणथम्भोर निवासी, चाहुवाणान्वय शाकम्भरी देशाधिपति महाराज हम्मीर के प्रधान मन्त्री राघवदेव (सन्यासावस्था में राघव चैतन्य) को भी आपके इसी राजस्थान ने जन्म दिया था इनके उद्भट विद्वत्व एवं कवित्व का साक्षी मन्त्रमाला गर्भित वह महागणपति स्तोत्र है जिसका एक पद्य मैंने अपने इस वक्तव्य के आरम्भ में श्रीगणेश जी के स्मरणार्थ दिया है। आप इस एक ही पद्य से उनकी अलौकिक काव्यच्छटा का अनुभव कर सकते हैं। आपके इसी राजस्थान की सिरोही नगरी ने अपनी तलवार की तरह तीक्ष्ण बुद्धिवाले, जैनाचार्य हीरविजयसूरि के शिष्यप्रशिष्यों में महोपाध्याय भानुचन्द्र—सिद्धिचन्द्र जैसे गुरु-शिष्यों को पैदा किया था जिनने सम्राट् अकबर को आस्तिक, अहिंसक एवं सूर्यभक्त बना दिया था। उसे उपदेश कर शत्रुञ्जय जैसे तीर्थ पर लगनेवाला कर तक छुड़ा दिया था। जिस प्रकार महाकवि बाण ने प्रकाण्ड पण्डितों को भली भाँति छका देनेवाली ही नहीं, अपितु श्लेषार्थालङ्कारमुग्ध कवि मयूरों को नचानेवाली अपनी कादम्बरी का पूर्व भाग लिखा और उसके पुत्र ने उत्तर भाग में लिखकर उसकी पूर्ति की, उसी क्रम से इस कठिन ग्रन्थ की उक्त भानुचन्द्र-सिद्धिचन्द्र नामक गुरु-शिष्यों ने मिलकर विद्वन्मनोहरा निरन्तरा टीका लिखकर भारतीय विद्वन्मण्डल को सदा के लिये ऋणी बना दिया है। ऐसी उपयुक्त टीका और न मिलने से भारतीय विश्वविद्यालयों में संप्रति इसीसे काम लिया जाता (१) है। इसी प्रकार आपके नागौर नगर के तपागच्छीय जैनाचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि ने बालोपकारक सारस्वत व्याकरण पर

---

१. श्रीमत्तपागच्छसहस्रदीधितिः श्रीहरिसूरिः समभून्महोदयः·········श्रीसूरचन्द्रः समभूत्तदीयशिष्याग्रणोर्न्यायविदांवरेण्यः ॥·········तदायपादाम्बुजचञ्चरीको·········श्रीवाचकः संप्रति भानुचन्द्रः अकब्बरक्ष्मापतिदत्तमानः । श्रीशाहिचेतोऽब्जषडंघ्रितुल्यः श्रीसिद्धिचन्द्रोऽस्ति मदीयशिष्यः । कादम्बरीवृत्तिरियं तदीयमनोमुदे तेन मया प्रतन्यते ॥ देखिए कादम्बरी का टीकारम्भ ।

चन्द्रकीर्ति टीका लिखी है जिसे आप सब जानते ही होंगे। चापोत्कट (चावडा) सोलङ्की नरेशों के समय गुर्जर में गिने जानेवाले किन्तु संप्रति मारवाड़ के भीनमाल (श्रीमाल) नगर ने विक्रम की सातवीं शताब्दि में जिष्णुसुत विष्णुगुप्त को जन्म दिया था जिसने ब्रह्मनिर्मित ज्योतिष के ब्रह्मसिद्धान्त को खिलीभूत देखकर ठीक किया था। उसीको आधार मान दक्षिणात्य भास्कराचार्य ने ५०० वर्ष बाद सिद्धान्त शिरोमणि और करणकुतूहल नामक ब्रह्मपक्षीय ग्रन्थ रचे। गुजरात और मारवाड़ में आज तक यही पक्ष मान्य है। प्रातःस्मरणीय गणकचूडामणि पुरोहित चण्डू जी संचालित जोधपुर का भारत विख्यात चण्डू पञ्चाङ्ग इसी पक्ष को लेकर प्रचलित है। यदि सूक्ष्मतया इतिहासावलोकन किया जायगा तो अविधान चिन्तामणि (हैमकोष) आदि सैकडों ग्रन्थों के रचनेवाले प्रसिद्ध जैनधर्मोपदेष्टा श्री हेमचन्द्राचार्य भी आपको इसी राजपूताने की बहुरत्ना वसुन्धरा के विद्वद्रत्न थे यह प्रतीति होगी। जयपुर के बसानेवाले महाराजा जयसिंहादि अन्य राजधानी नरेशों के दरबारों में रहकर अनेक देशी विदेशी विद्वानों ने बहुत कुछ ग्रन्थ रचना की है। मैंने तो केवल आपको दिग्दर्शनमात्र ही कराया है। कई विद्वद्रत्न छूट गये हैं। कहीं विषयान्तर की आवाज बुलन्द न हो जाय इसलिये घबड़ाता हुआ इस संदर्भ को यहीं छोड़ देता हूँ और अपने प्रस्तुत विषय की ओर आने की चेष्टा करता हूँ।

राजस्थान और आयुर्वेद।

मान्यवर! उपर्युक्त शास्त्रीय सेवा की तरह आपका यह राजपूताना आयुर्वेद-सेवा में भी अग्रसर ही रहा है। शाकम्भरी देशाधिपति रणथम्भोर नरेश चाहुवाण हम्मीर के प्रधान मन्त्री महाविद्वान् राघवदेव का वर्णन ऊपर आ चुका है। इन्हीं के पौत्र दामोदरसुनु शार्ङ्गधराचार्य ने शार्ङ्गधरसंहिता और अनेक उद्भट कवियों के सुभाषितों को संग्रह कर शर्ङ्गधर पद्धति की रचना की थी। ये दोनों ग्रन्थ अपनी मौलिकता के कारण आज भारत भर के विद्वान् वैद्यों और कवियों के गले का हार बन रहे हैं। सुभाषितों को छोड़ आचार्य ने अपनी शार्ङ्गधर पद्धति में धनुर्वेद, उपवनविनोद, अष्टाङ्ग योगादि और भी कई विषयों को लिखा है जिससे शार्ङ्गधराचार्य की अनेक शास्त्रार्थज्ञता का भली भाँति पता लगता (१) है। हम्मीरपुर (रणथम्भौर) से जाकर चम्बल तट पर बसी हुई हस्तिकान्तिपुरी में बसने वाले, वहाँ के राजा जैत्रसिंह के राजवैद्य भावसिंह के पुत्र श्रीवास्तव्य कायस्थ आढमल्ल ने शार्ङ्गधरसंहिता की दीपिका नामक व्याख्या लिखी जिसका अपर पर्याय आढमल्ली (२) भी है। इसी रणथम्भौर के नरेश हम्मीर

तद्बुद्धिवैभवकृतेत्र वसन्तराजसच्छाकुनस्य विवृतिं प्रणत्यभिज्ञः। श्रीसूरचन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीकः श्रीशाहिराजकृतसत्कृतिभानुचन्द्रः। जम्बूद्वीपाभिधे द्वीपे चत्रे भरतनामनि। राजते रजतस्वर्णचतुर्वर्णविभूषितम्। अर्बुदाद्रिसमीपस्थे सारणेश्वरशोभितम्। सीरोहीनगरं तत्र तिलकं नगरीषु यत्॥ इत्यादि। देखिये वसन्तराजशाकुन टीकारम्भ।

१. पुरा शाकम्भरीदेशे श्रीमान्हम्मीरभूपतिः। चाहुवाणान्वयेजातः ख्यातः शौर्य इवार्जुनः॥ २॥ तस्याभवत्सभ्यजनेषु मुख्यः परोपकारव्यसनैकनिष्ठः। पुरन्दरस्येव गुरुर्गरीयान् द्विजाग्रणी राघवदेवनामा॥ ३॥ गोपालदामोदरदेवदाससंज्ञा बभूवुस्तनयास्तदीयाः।······तेषां मध्ये यस्तु दामोदरोऽभूदुत्पाद्य त्रीनात्मजान्वीतरागः। ज्येष्ठः शार्ङ्गधरस्तेषां इत्यादि॥ "शार्ङ्गधरपद्धति"

२. श्रीवास्तव्यकुलप्रकाशमणयो ये पूर्वजा विश्रुताः श्रीहम्मीरपुरे महाजनतते येषां स्थितिः कथ्यते॥

के दरबारी वैद्य प्रमोद के पुत्र रैशर्मा के छोटे भाई वाचस्पति (१) ने विजयरक्षित श्रीकण्ठदत्तकृत माधवनिदान की मधुकोप व्याख्या की नैयायिक कठिनाई का अनुभव कर सर्वसाधारण के उपयोगार्थ आतंकदर्पण टीका लिखी। भादानक देशनरेश सहनपाल के समय में उनके राजवैद्य, अंकोला नहीं, अकोला ग्रामनिवासी भारतपाल के पुत्र डल्लनाचार्य ने भास्कर, गयदास, जेज्जट, माधव, ब्रह्मदेव आदि पञ्जिका–टीका–टिप्पणकारों एवं भट्टार हरिचन्द्र (चरक के टीकाकार) तथा शल्य–शालाक्य–कायचिकित्सा–अगदतन्त्रादि के विशेषज्ञ भोज, विदेह चरक, कश्यपादि अनेक तन्त्रकारों के मतों का उपजीवन कर आयुर्वेद के मुख्य प्रथमाङ्ग शल्यतन्त्र प्रधान सुश्रुतसंहिता की निबन्धसंग्रह व्याख्या लिखी। (२) डल्लनाचार्य का सौरवंश, संभव है, सनाढ्य ही हो क्योंकि इसी अकोला के सनाढ्य वंशावतंस नरवैद्य मन्मथ के पुत्र क्षेमशर्मा ने गौरीमत, चरक, सुश्रुत, हारीत, वाग्भट रविसिद्धपाक, इन सबका अवलोकन कर विक्रम संवत् १५०५ में विक्रमसेन के राज्यसमय में क्षेमकुतूहल नामक पाकशास्त्र का ग्रन्थ (३) बनाया। अभी भी यमुनाजी से आरम्भ कर चम्बल के किनारे-किनारे भरतपुर राज्य (व्रज) धौलपुर, करौली, कोटा, झालरापाटन आदि कई नगरों में सनाढ्य ब्राह्मणों की प्रचुर बस्ती है। सारस्वत के टीकाकार नागौर के चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्ति ने योगचिन्तामणि नामक ग्रन्थरत्न आपके भेट (४) किया है। इसके प्रायः सभी प्रयोग अन्वर्थ हैं। इसी प्रकार जयपुर दरबार के वैद्यराज शङ्करभट्ट के वैद्यविनोद की तरह और भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इससे सिद्ध होता है कि राजपूताना आयुर्वेद सेवा में भी पश्चात्पद नहीं रहा है। अधिक तो

तदन्वये किं बहुना प्रसिद्धः श्रीचक्रपाणिः कुलकैरवेन्दुः ॥······तस्य बुद्धिशुभगस्य तनूजो भावसिंह इति भूपतिमान्यः। सुश्रुतादिकरहस्यविधिज्ञो यो यशांसि विपुलानि च लेभे ॥ ६ ॥ तस्यात्मजो दीर्घमतिः प्रहृष्टो नाम्नाऽऽढमल्लोऽल्पनिबन्धदर्शी। तेन स्वगुर्वचनतत्परेण विधास्यते शार्ङ्गधरप्रकाशः ॥ ७ ॥······हस्तीकान्तपुरी पुरा पुरजिता काशीव विद्वज्जनैर्व्याप्ता यत्र सरः सरिद्गुणवरा चर्मण्वती पापहा। यस्यां हृद्गतवासुदेवचरणद्वन्द्वाम्बुजः क्ष्मापतिः ख्यातो धर्म इवास्ति धर्मगतिषु श्रीजैत्रसिंहः प्रभुः ॥ ९ ॥ इत्यादि "शार्ङ्गधरटीकारम्भ"

१. श्रीहम्मीरनरेश्वरः समभवत्प्रौढप्रतापानलज्वालाजालकरालदग्धपवनप्राग्भारशुष्केन्धनः ॥······तस्याभवद्वैद्यवरः प्रभूतविश्वासपात्रं विदितश्चरित्रैः। प्रमोदनामा सकलप्रमोदी कलाविलासैकनिधिर्द्विजेन्द्रः ॥४॥ ज्येष्ठोऽभवत्तस्य सुतः प्रशस्तशास्त्रार्थवेत्ता शिवसक्तचेताः। रैशर्मनामा प्रथितः कलाभिर्महम्मदक्षोणिपतेः सभायाम्। अन्यश्च तस्यास्ति सुतः कनीयान्वाचस्पतिः सत्त्वगुणैकसङ्गः।······तेनोज्ज्वला विवृतिरल्पधियां हिताय संबद्धयते विबुधमाधवसंग्रहस्य। विज्ञाय तार्किकवरैकविचारवेद्यं वैशद्यगुम्फनवशान्मधुकोषबन्धम्। माधवनिदान की आतङ्कदर्पणटीका आरम्भ।

२. देखिये सुश्रुतसंहिता की डल्लनकृत निबन्धसंग्रह व्याख्या की अवतरणिका।

३. सन्नाहरूढान्वयभूषणोऽभूत्सलक्षणं लक्षणपूर्णगात्रः ॥ श्रीरामादपरेण या सुविदिता लब्धा ह्यकोलापुरी ग्रामा द्वादश एव चान्यविदुषा लब्धा हि दिल्लीश्वरात्।······बाणाकाशसुते नादे (१६०५) वत्सरे विक्रमाङ्किते।······गौरामतं चरकवाग्भटभोमसूक्तीर्हारीतसुश्रुतमतं रविसिद्धपाकम्। क्षेमो भिषग्वरसुधीरवलोक्य सम्यग्ग्रन्थं व्यधत्त खलु क्षेमकुतूहलाख्यम्। देखिए क्षेमकुतूहल।

४. सूरीश्वरः प्रवरसिंहशिरोवतंसः श्रीचन्द्रकीर्तिगुरुपादयुगप्रसादात्। गम्भीरचारुतरवैद्यकशास्त्रसारं श्रीहर्षकीर्तिवर पाठक उद्धार। यो. चिं.

क्या, इस गये गुजरे जमाने में भी अलवर राजस्थान के हाजीपुर ग्राम ने स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद को जन्म दिया था जिनने जयपुर महाराज माधवसिंह जी के आश्रय में रहकर अटक से कटक तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक के सहस्रों वर्ष के प्राचीन संस्कृत साहित्य को भली भाँति छान डाला था। इतना ही नहीं, उनमें से अत्यन्त मौलिक सैकड़ों ग्रन्थरत्नों का संशोधन पूर्वक आपने संपादन कर काव्यमाला रूप से भारतीय विद्वानों के भेट किया है। इसी प्रकार आपकी जयपुर नगरी ने दिवंगत महामहोपाध्याय शिवदत्त जी दाधिमथ को जन्म दिया था जो लाहोर के ऑरियेण्टल संस्कृत कालेज के प्रधान संस्कृताध्यापक थे। आपने कौमुद्यादि अनेक ग्रन्थों पर टीका टिप्पणी लिखी हैं। श्रीधन्वन्तरिकल्प जयपुरीय आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक राजवैद्य कालिदासोपम कविवर स्वर्गीय (१) कृष्णराम जी भट्ट भी जयपुर की महाविद्वद्विभूतियों में से थे जिनकी चमत्कारमयी उद्भट संस्कृत काव्यप्रतिभा तथा आयुर्वेदपारंगतता का परिचय उनके सिद्धभेषजमणिमाला, श्री कच्छवाहवंश, जयपुरविलास, मुक्तकमुक्तावलि, पञ्चमहाकाव्यसार आदि कई ग्रन्थ दे रहे हैं। इन महात्मा के अनेकों शिष्य आज भारत के भिन्न-भिन्न भागों में विद्यमान हैं। इन्हीं के पट्टशिष्य संप्रति जयपुरीय आयुर्वेदमहाविद्यालय के प्रधानाध्यापक आयुर्वेदमार्तण्ड पूज्यपाद श्री लक्ष्मीराम स्वामी जी महाराज आज विद्यमान हैं। अपनी आयुर्वेद-सेवा द्वारा राजपूताने के ही नहीं, आज भारत भर के आयुर्वेदज्ञों के लिये आप पथप्रदर्शक का काम कर रहे हैं। आपने अपने गुरु जी की लिखी हुई सिद्धभेषजमणिमाला को अपनी टीकाटिप्पणी से अलंकृत कर सर्व साधारण के लिये उसे सुगम बना दिया है। और भी हम सब आपके द्वारा आयुर्वेदक्षेत्र में बड़ी भारी सेवा की आशा करते हैं। परमात्मा आपको सहस्रायु प्रदान करे। इनके सिवा महामहोपाध्याय संस्कृत महाविद्यालयाचार्य श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी भी जयपुर ही के हैं। जीवनानन्दभैषज्यमहोदधि के कर्ता बीकानेर के प्राणाचार्य स्वर्गीय पं० केवलराम जी हर्ष ने भी अच्छी आयुर्वेद की सेवा की है। आप ही के सत्पुत्र चिकित्सक-चूड़ामणि पं० जीवनराम जी और गोपाल जी हर्ष संप्रति विद्यमान हैं। आशा है, आप अपने पिताश्री की कृति जीवनानन्दभैषज्यमहोदधि को जो अधूरी छपी हुई है उसे जल्दी पूरा करेंगे। पद्यकौमुदी, प्राकृतपद्यव्याकरणम् आदि कई ग्रन्थों को रचकर जोधपुर के स्वर्गीय पण्डित लालचन्द्र जी पुरोहित ने भी अच्छी साहित्य-सेवा की है। लाला निरञ्जनप्रसाद संकलित पारदसंहिता की भाषा टीका लिखकर जैसलमेर के विद्वान् वैद्यराज श्रीमान् पं० ज्येष्ठमल्ल जी व्यास ने भी अच्छी आयुर्वेद-सेवा की है।

प्रिय महानुभाव! सिरोही के महामहोपाध्याय रा. ब. पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि राजस्थान की कई रियासतों के कई विद्वद्दल विराजमान हैं किन्तु स्थानाभाववश मैं उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं कर सकता।

आयुर्वेद की वेदता।

पुरातत्त्वान्वेषणकर्ताओं को जिस प्रकार उत्तरोत्तर जावा, सुमात्रा, श्याम, कम्बोडिया

---

१. श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ लब्धप्रतिष्ठापदः साहित्याम्बुधिकुम्भसम्भवमुनिर्धन्वन्तरिस्त्वैद्यके।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च कवने यः कालिदासोपमः सोऽयं राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरुः॥
स्वामी लक्ष्मीरामकृत सिद्धभेषजमणिमाला टीका की अवतरणिका।

तक ही नहीं, अपितु बड़ी दूर-दूर तक हमारे विशाल भारत की संस्कृतियों का पता लगता जाता है, ठीक इसी प्रकार खोज करने पर भूमण्डल भर की प्रचलित वैद्यक प्रणालियों का जनक हमारा आयुर्वेद ही है, यह भी आपके सामने आता जाता है। हम बड़े आदर के साथ मानते हैं कि सकल कलाओं के मूल तत्त्व वेदों ही से सबको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार जन-हितकारी आयुर्वेद भी हमें वेदों ही से प्राप्त हुआ है। वेदों के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा जी ही माने जाते हैं इसलिये वेदों में प्राप्त आयुर्वेद के आदि उपदेशक भी ब्रह्माजी ही हो सकते हैं। भगवान् धन्वन्तरि ने कहा भी है कि—

"ब्रह्मा प्रोवाच, ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनौ, अश्विभ्यामिन्द्रः, इन्द्रादहम्, मयात्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः।"

सुश्रुत सू० अ० १

"यों तो ऋगादि चारों वेदों में से आयुर्वेदिक तत्त्वों के विषय में कुछ न कुछ लिखा ही है। कहीं सोमवल्ली की स्तुति है, कहीं कई औषधियों एवं रोगों का वर्णन है परन्तु अथर्ववेद में सूक्त के सूक्त आयुर्वेदिक विषयों के वर्तमान हैं। उन प्रमाणों को मैं यहाँ इसलिये नहीं लिखता कि आप स्वयं इच्छा करें और उनका भली भाँति अवलोकन करें। यज्वादि के धनुर्वेदादि की तरह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग माना गया है क्योंकि यह उसीसे लिया गया है। प्रमाण भी है कि—

इह खल्वायुर्वेदमष्टाङ्गमुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः।

सुश्रुत सू० अ० १

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने एक लाख श्लोक और एक सहस्र अध्याय में अथर्ववेद के उपाङ्ग अष्टाङ्गायुर्वेद की रचना की। शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन और वाजीकरण ये ही आठ अङ्ग उक्त सूत्र में आगे गिनाये हैं। कहा जाता है कि गुप्तवंश के साम्राज्य या चाणक्य के समय तक इन आठों अङ्गों के ग्रन्थ उपलब्ध थे और उनका साङ्गोपाङ्ग व्यवहार भी होता था परन्तु सुश्रुत की डल्लनकृत निबन्ध-संग्रह व्याख्या में ही नहीं, चरकादि अन्य तन्त्रकारों की प्राचीन टीकाओं में भी नाना उद्धरणों को देखने से पता लगता है कि उक्त टीकाकारों के समय तक भी उक्त आठ अङ्गों के वर्णन करनेवाले कई तन्त्र विद्यमान थे। हाँ, बौद्ध एवं यवन काल से हमारे आयुर्वेद को बहुत कुछ धक्का लगा है। शल्य-तन्त्र प्रधान होने पर भी सुश्रुत में आठों अङ्गों का कुछ वर्णन भगवान् धन्वन्तरि ने अपनी इस प्रतिज्ञानुसार किया है—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥

सुश्रुत सू, अ. १

तथापि चाणक्य काल के अनन्तर हमें केवल कायचिकित्सा को छोड़कर अन्य अङ्गों के सांगोपाङ्ग व्यवहार का ठीक पता नहीं लगता। जिस पर आज विदेशी बड़ा अभिमान करते हैं, वही शल्यचिकित्सा (सर्जरी) उक्त चाणक्य के काल में बहुत ऊँचे दर्जे तक पहुँची हुई थी। तत्काल मृतक की परीक्षा उस समय अच्छी तरह से की जाती थी। विष देकर, गला घोंट कर (फांसी लगा कर) जलाशय में डुबाकर आदि जिस प्रकार से मारा गया हो, जिसका वहाँ कोई न हो, ऐसे अनाथ मृतक की परीक्षा होती थी। जैसे कि —

तैलाभ्यक्तमाशुमृतकं परीक्षेत । निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शूनपादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यञ्जनकण्ठं पीडननिरुद्धोच्छ्वासहतं विद्यात् । तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात् । शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात् । निस्तब्धगुदाक्षं संदष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात् ।……विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत……अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छदम् । वस्त्रं वेषं विभूषांच दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणा ॥ इत्यादि कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण ४ अ. ७

वैद्यों पर भी बड़ी कड़ी नजर रखी जाती थी यदि शस्त्रक्रिया से किसी की मर्मवेध होकर मृत्यु हो जाती तो उसे वैसा ही कड़ा दण्ड दिया जाता था । आज से भी अधिक पुलिस सावधान थी । खेद है कि स्थानाभाव वश मैं वे सब उदाहरण यहाँ नहीं दे सकता किन्तु यह निश्चित बात है कि इस समय आयुर्वेद की दशा जितनी गिरी हुई है इससे भी कहीं अधिक उस समय उन्नति को प्राप्त थी । ईश्वर करें इसका फिर बहुत जल्दी बोलबाला हो ।

मैं कह चुका हूँ कि आयुर्वेद की उत्पत्ति वेदों से है । एक आँख से देखने वाला चाहे कोई आयुर्वेद को "Greatest unscientific system in India" अर्थात् भारत की अवैज्ञानिक पद्धति कहे परन्तु मुझे कहना पड़ेगा कि यह कहना सत्य से नितान्त दूर है । एक सच्चे शास्त्र के प्रति किया जाने वाला अक्षम्य अपराध है । धीरे धीरे अब वैज्ञानिकों की भी आँखें खुल रहीं हैं । उन्हें पता लग रहा है कि आयुर्वेदिक वैदिक सिद्धान्त एक शताब्दि में चार चार बार बदल जाने वाले हमारे साइंटिफिक सिद्धान्त नहीं हैं किन्तु हैं त्रिकालाबाधित । प्रत्यक्ष और अनुमान से भी बढ़कर हमारे यहाँ एक तीसरा आगम प्रमाण भी माना जाता है । महर्षियों ने तो इसे सिर सा मान्य किया ही है परन्तु आनन्द की बात है कि अब इसका विश्वास धीरे धीरे नव्य वैज्ञानिकों में भी बढ़ता जा रहा है । जिस बात का अर्थ प्रत्यक्ष और अनुमान से नहीं लगता उसका पता वेद वाक्यों एवं अन्तर्दृष्टि से प्रत्यक्ष देखने वाले त्रिकालज्ञ, यथार्थवक्ता आप्तों (महर्षियों) के लिखे प्रमाणों से लगता है । इसी लिये वेदों तथा महर्षियों के विषय में वेदभाष्यकर्ता सायणाचार्य एवं चरक महर्षि ने लिखा है कि—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्योपायो न विद्यते । तमर्थं वेद वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥"
"येषां त्रिकालममलंज्ञानमव्याहतं सदा । आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम् ॥"

अर्थात् वेदों की वेदता इसी लिये है कि प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा जिस अर्थ को हम नहीं जान सकते वही हमें उनसे मालूम होता है । आप्त ऋषियों के विषय में यह बात सत्य होती है । संशय करने की कोई गुंजाइश नहीं । इसी लिये वे शिष्ट, आप्त और विबुद्ध हैं । आयुर्वेद वेदों से निकला हुआ होने से वस्तुतः वह वेद ही है । आगे उसका संचालन हमारे आप्त उन महर्षियों द्वारा हुआ है जिनका ज्ञान ऊपर असंशय बताया गया है । इतना ही नहीं, प्रत्यक्ष फल दिखानेवाले आयुर्वेद का आश्रय, वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये न्याय दर्शनकार महर्षि अक्षपाद तक को लेना पड़ा है । उन्हें अपने न्यायदर्शन में यह सूत्र लिखना पड़ा है किः—

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

सारांश यह कि आयुर्वेद वस्तुतः वेद ही है और इसमें लिखी हुई बातें निस्संशय हैं । वेद में लिखा है कि—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।" तैत्तिरीयोपनिषद् अनु० १ वल्ली २.

अर्थात् आत्मा (ब्रह्म) से आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश से वायु और वायु से अग्नि का जन्म हुआ । अग्नि से जल और जल से पृथ्वी बनी । पृथ्वी से औषधियें और औषधियों से अन्न (षड्रसमय) उत्पन्न हुआ । इस अन्न से पुरुष की उत्पत्ति हुई । इसी लिये यह पुरुष अन्न रसमय है । यदि आप विवेकपूर्ण दृष्टि से देखेंगे तो आपको पता लग जायगा कि यह पुरुष वह नहीं है जिसका वर्णन वेदान्त ने किया है क्योंकि वह तो नित्य शुद्ध, बुद्ध, असंसारी पंचभूतों से रहित और अशनाया पिपासाद्यतीत है और सर्वथा मुक्त है । वह पंचभूतादि से रहित है तो यह पंचभूतों से उत्पन्न होता है । फिर यह अन्न रसमय पुरुष कौन सा है जिसका वर्णन श्रुति ने किया है ? विचारपूर्वक देखने से आपको निश्चय हो जायगा कि हमारे आयुर्वेद के मूलतत्त्व का वर्णन यह श्रुति कर रही है । इसमें जिस पुरुष का वर्णन है वही हमारा चिकित्साधिकृत पुरुष है । इसी का तन्त्रोतन्त्र वर्णन चरक और सुश्रुत में भगवान् आत्रेय और धन्वन्तरि (काशिराज दिवोदास) ने किया है । पहिले संक्षेप में "खादयश्चेतना षष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः" कह कर आगे स्पष्ट लिखते हैं कि—

षड् धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते, तद् यथा पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चाव्यक्तमित्येत एव च षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते ॥ (च० शा० अ० ५)

यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति, स एष कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः ॥ (सुश्रुत शारीर अ० १)

उपर्युक्त श्रुति में "एष पुरुषोऽन्नरसमयः" कहा है । "अन्नरसमयः" इसमें के मयट् प्रत्यय से स्पष्ट है कि इस चिकित्साधिकृत पुरुष को अन्नरस प्रचुरता से मिलना चाहिये । इसी से इसकी वृद्धि होती है । यही बात महर्षि चरक ने लिखी है—

हिताहारोपयोग एक एव च पुरुष-वृद्धिकरो भवति । चरक सू० अ० २५

उक्त पुरुष तक सृष्टि कैसे हुई यह वेदों एवं निर्मल-निःसंशय वाले महर्षियों के प्रमाणों से सिद्ध है । उक्त प्रमाण त्रिकालबाधित हैं, यह पहिले कहा जा चुका है । चाहे कोई वेदों को गड़रियों के गीत समझें परन्तु बात वस्तुतः ऐसी वैसी नहीं है । वेदों एवं महर्षियों की सूझ तक अभी नवीन वैज्ञानिक पहुँचने नहीं पाए हैं । आत्मा और मूल प्रकृति की दिल्ली अभी उनसे बहुत दूर है । बड़ी मुश्किल से वे अब अपने कल्पित अनेक सृष्टिकर्ता तत्त्वों को तथा ऐटम्स को छोड़ एलेक्ट्रन्स तक पहुँचे हैं । इतना ही नहीं, वे सृष्टि की उत्पत्ति भी कई तत्त्वों से नहीं, अपितु किसी एक ही तत्त्व से अब मानने लगे हैं और वह इनका एक तत्त्व ईथर है । ईथर का अर्थ संभव है कि डिक्शनरी में आकाश ही मिले । सुनते हैं तीव्र दूरवीनों द्वारा नवीन वैज्ञानिकों ने एक ऐसे तारापुञ्ज का पता लगाया है जो कि आज तक बाष्प या गैसेज के रूप में वर्तमान है । ईथर को सब सृष्टि का आदि मूल मानने वाले इन गैसेज (वायु) को भी ईथर से उत्पन्न हुआ मान लें तो कोई आपत्ति की बात नहीं दिखाई देती ।

यह भी विज्ञान सम्मत बात है कि उपर्युक्त तारापुञ्ज (Foot-Path) वर्तमान वायवीय दशा से घनीभूत हो कर तेजोमण्डल के रूप में आ जायगा जैसा कि आज हमारा सूर्य है । यह जैसा अग्निपुञ्ज है ऐसे और भी कई सूर्य हैं और कई बन रहे हैं । वैदिक क्रम के

अनुसार क्या उक्त क्रम से भी यह सिद्ध नहीं होता कि 'आकाशद्वायुः' और 'वायोरग्निः'।

अब रही "अग्नेरापः" की बात। विज्ञान का मत है कि हम जिस पर रहते हैं, यह पृथ्वी पहिले इस दशा में नहीं थी। एक प्रदीप्त नेबुले के रूप में थी जिसका मध्य भाग सघन था और वह दीर्घकाल तक आकाश में घूमते-घूमते अधिक सघन हुआ। उसी भ्रमणावस्था में उसके कई अंश टूट कर इधर उधर आकाश में फैले और समय पाकर ठंढे हुए। उसके मध्य का अधिक सघन भाग सूर्य हुआ और दूसरे छोटे भाग गुरु, शुक्र, चन्द्रमा और हमारी पृथ्वी हुई। नेबुले से पृथक् होने पर यह पृथ्वी अत्यन्त उष्ण एवं तरल पदार्थों का समूह थी। उस समय ज्वालामुखी से फूट कर निकलने वाले द्रव पदार्थों से भी अधिक उष्ण पदार्थों का समुद्र इस पर लहरा रहा था। यह "अग्नेरापः" नहीं तो और क्या हो सकता है? इसे विज्ञानवेत्ता ही सोचें।

इसके बाद धीरे-धीरे जलीय सृष्टि की उष्णता क्रमशः कम होने से दूध की मलाई की तरह उक्त तरल पदार्थ पर एक ठोस पदार्थ की तरह जमती-जमती मोटी हो गई। इधर भीतरी उष्णता से तह फट कर ज्वालामुखी और उनसे निकलने वाले लावा के ठंढा होने से पर्वत बने तो कई जगह बड़े-बड़े गर्त भी। अधिक उष्णता के समय गैस या वाष्प के रूप में जो जल था, वही ठंढक पाकर साधारण जल के रूप में आया और समुद्र बने। इस प्रकार हमारी यह 'अद्भ्यः पृथ्वी" सिद्ध हुई। इसका भी हमारे नवीन वैज्ञानिक बन्धु अवश्य विचार करेंगे।

ध्यान रहे कि हमारे यहाँ आकाशादि पञ्चभूतों की जननी उनकी पञ्च तन्मात्राएँ अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। एक तत्त्व की उत्पत्ति के बाद वह दूसरे में क्रमशः मिलता जाता है और आगे होने वाले अपने कार्य के कारणों से शामिल होता है। यद्यपि एक-एक तत्त्व के उत्पादक एक ही एक मुख्य तत्त्व का नाम लिया गया है तथापि उस उत्पन्न होने वाले तत्त्व के साथ उससे पहिले के तत्त्व की तन्मात्रा कारण रूप में साथ रहती हैं। इस प्रकार आकाश में हमें केवल वही एक तत्त्व मिलेगा किन्तु वायु में आकाश, अग्नि में आकाश-वायु, जल में आकाश-वायु-अग्नि और पृथ्वी में आकाश-वायु-अग्नि और जल की तन्मात्राएँ भी उसके कारण रूप से स्पष्ट दिखाई देंगी।

आत्मा से क्रमशः पंचभुत, ओषधी, अन्न (षड्रस) और पुरुष तक जडजङ्गम जगत् की सृष्टि कैसे हुई यह अब तक के इस विवेचन में आ चुका है। इसी जड़जङ्गम जगत् को लक्ष्य कर इसमें होनेवाले अनन्त रोगों की उत्पत्ति और उनका शमन केवल वात-पित्त-कफ इन त्रिधातु या त्रिदोषों में ही कैसे सीमित कर इतने बड़े भारी जड़जङ्गम जगत् के सागर को इस छोटी सी गागर में भर दिया? इसका हमें तो नहीं, हमारे दक्षतर बन्धुओं को विशेष आश्चर्य सा हो रहा है अतः थोड़े में इस पक्ष में भी कुछ कह देना अनुचित न होगा।

यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे।

उपर्युक्त वाक्य प्रायः आर्यों के कथोपकथन में आया ही करता है शास्त्रकारों का मत है कि कारण के अनुरूप ही कार्य की उत्पत्ति हुआ करती है। जगत् पञ्चभौतिक है अतः इसमें के जितने पदार्थ हैं वे भी सब पञ्चभूतात्मक अर्थात् तन्मय, तद्गुण व तल्लक्षणविशिष्ट हैं। बाह्य जगत् स्थूल ब्रह्माण्ड है, वैसे ही देह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है। स्थूल ब्रह्माण्ड की सब की सब

बातें देहरूप सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में भी वर्तमान हैं। सारांश स्थूल जगत् पञ्चभूतात्मक है तो सूक्ष्म जगत् (देह) भी पञ्चभूतात्मक है। स्थूल जगत्, देह, रोग, भैषज्य, चिकित्सा, सृष्टि, स्थिति, लय इन सबके कारण पञ्चभूत ही हैं। जीव-जन्तु का जन्म या संयोग पञ्चभूतों के आधीन है त्यों उसके बढ़ानेवाले आहारादि भी पञ्चभूतों के ही आधीन हैं। इतना ही नहीं, देह की स्थिति, पुष्टि आदि जैसे पञ्चभूतों से है वैसे ही उसका ह्रास और लय भी अन्त में पञ्चभूतों में ही होता है। इसीको पञ्चतत्व या मृत्यु कहते हैं। धमनीव्याकरण में धन्वन्तरि ने कहा भी है—

पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति।
पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥१९॥

(सु० शा० ९)

सारांश यह कि पञ्चभूतों के आधीन रहकर रस-रक्त द्वारा शरीर का पोषण करनेवाली धमनियें पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन का संयोजन कर समस्त शरीर को कार्यक्षम बनाती हैं और ये ही विनाशकाल में उक्त पञ्चभूतों में लय हो जाती हैं। इस प्रकार अव्यापन्न और व्यापन्न रूप से ये पञ्चभूत ही जन्म एवं मरण के खास कारण हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि जो बातें ब्रह्माण्ड की हैं वही सब की सब इस पिण्ड की हैं। चरक में लिखा भी है—

पुरुषोऽयं लोकसंमितः। यावन्तो हि मूर्तिमन्तो लोके भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके। ·······अपरिसंख्येया लोकावयवविशेषाः पुरुषावयवविशेषा अप्यपरिसंख्येयाः।·········तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्तिरापः क्लेदस्तेजोऽभिसन्तापो वायुः प्राणो वियच्छिद्राणि ब्रह्मान्तरात्मा।······यथा लोकस्य स्वर्गादिस्तथा पुरुषस्य गर्भाधानम्, यथा कृतयुगमेवं बाल्यं, यथा त्रेता तथा यौवनं, यथा द्वापरस्तथा स्थाविर्यं, यथा कलिरेवमातुर्यं, यथा युगान्तस्तथा मरणमित्येवमनुमानेनानुक्तानामपि। लोकपुरुषयोरवयवविशेषाणामग्निवेश ! सामान्यं विद्यात्।

(चरक शा० अ० ५)

इसका अर्थ स्पष्ट है कि जितनी बातें बहिर्जगत् में हैं वे सब की सब इस पिण्ड अर्थात् देह में भी हैं। हमारे दक्षतर बन्धु जब वैद्य बन्धुओं से पूछते हैं कि आपके वात-पित्त-कफ वस्तुतः हैं क्या? ये प्रत्यक्ष हैं या अप्रत्यक्ष? सेन्द्रिय हैं या निरेन्द्रिय? हम इन प्रश्नों को सुनकर घबड़ा उठते हैं। दक्षतरों की दया से कुछ दिनों से यह प्रश्न आयुर्वेद महामण्डल में भी उठ खड़ा हुआ है। एतदर्थ पाँच सौ रुपये इनाम की घोषणा तक हो चुकी है परन्तु कहते हैं, अभी तक इसका सन्तोष-जनक निबटारा नहीं हुआ है। मैं भी अपनी अल्प बुद्ध्यनुसार इस विषय में कुछ कह देना अनुचित नहीं समझता। आशा है, आप सब इस पर विचार करने की कृपा करेंगे।

त्रिदोषों की प्रत्यक्षाप्रत्यक्षता

प्रायः सभी जानते हैं कि जगत् का कोई भी काम बिना सूर्य, चन्द्र और वायु के नहीं चल सकता। इसी को दूसरी तरह से कहें तो कह सकते हैं कि अग्नि, जल और वायु को छोड़ जगत का काम कदापि नहीं चल सकता। यही बात शरीर के लिये लागू है क्योंकि ब्रह्माण्ड और पिण्ड वस्तुतः भिन्न नहीं हैं—एक ही हैं, यह प्रथम कहा जा चुका है। यही बात भगवान् धन्वन्तरि ने कही है।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ (सुश्रुत सू. अ. २१)

अर्थात् विसर्ग, आदान और विक्षेप इन तीन क्रियाओं के द्वारा चन्द्रमा, सूर्य और वायु से जिस प्रकार जगत का धारण हो रहा है, ठीक ऐसे ही देह के धारक कफ, पित्त और वायु हैं । दूसरे शब्दों में ये सोम, सूर्य और अनल क्रमशः जल, अग्नि और वायु ही हैं और ये ही शरीर में कफ, पित्त और वायु के नाम से पुकारे जाते हैं । सुश्रुत में यही साफ लिखा हुआ मिलता है—

“तत्र वायोरात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य इति ॥ ५ ॥”
(सुश्रुत सू . अ. ४२)

सुश्रुत के अनुसार चरक में भी यह बात अधिक स्पष्टीकरण के साथ लिखी हुई मिलती है । उसमें कहा है कि इन सूर्य, वायु और चन्द्रमा से ही काल, ऋतु, रस, दोष, देह और बल की उत्पत्ति होती है ।

तावेतावर्कवायू सोमश्च कालर्तुरसदोषदेहप्रत्ययभूताः समुपदिश्यन्ते ॥ ५ ॥
च. सू. अ. ६

सारांश, जगत में सोम, सूर्य और वायु के द्वारा निरन्तर विसर्ग आदान, और विक्षेप ये तीनों क्रियायें होती रहती हैं । चन्द्रमा जलीय गुणद्वारा पृथ्वी या सूर्य को अप्यायित करता हुआ अनुग्रह करता है । सूर्य सामुद्रिक क्षार जल एवं समस्त पार्थिव रसों को खींच, शुद्ध कर वर्षा आदि द्वारा अनुग्रह करता है परन्तु जगत के लिए वायु का अनुग्रह इन सबसे बढ़ कर एवं प्रशंसनीय है । वह विक्षेप अर्थात् प्रसरण द्वारा आवश्यक मसाले को जहाँ जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ पहुँचाता है । सूर्य और चन्द्रमा को अथवा यों कहिये कि अग्नि और जल को हम नित्य प्रति प्रत्यक्ष देखा करते हैं । वायु भी व्यक्ताव्यक्त दो प्रकार से माना गया है अतएव उसका भी हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता ही है । हमें जिस जगह वायु का बिल्कुल अंश मालूम नहीं होता परन्तु पंखा हिलाते ही उसकी प्रतीति होने लगती है । ठीक इसी प्रकार हमें कफ-पित्त-वायु का शरीर में भी विसर्गादानविक्षेप दिखाई देता है । ब्रह्माण्ड का भरण-पोषण सोम, सूर्य और वायु से दिखाई देता है । इसी प्रकार इनके ही द्वारा शरीर का भी भरण पोषण हो रहा है । वस्तुतः कफ, पित्त और वायु ये ही तीनों सोम, सूर्य और अनिल हैं । अपनी अपनी जगह पर रहते हुए (प्रकृतिस्थ) ये तीनों धातु जैसे पोषक होते हैं, वैसे ही विकृति को प्राप्त होने से ये तीनों अशुभकारी होते हैं । इसी को आप सुश्रुत और चरक के वचनों में सुन लीजिए ।

स च तत्र औदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्नसंघातः सुखजरश्च भवति ॥ १२ ॥ स तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य च उदककर्मणा अनुग्रहं करोति ॥ १४ ॥ (सुश्रुत सूत्र अ० २१) सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः शुभाशुभानि करोति ॥ १२ ॥ (चरक सूत्र अ० १२)

अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति ॥ ११ ॥ (चरक सूत्र अ० १२) रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति ॥ ९ ॥ (सुश्रुत सू० अ० १५)

तत्र प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविवेकलक्षणो वायुः पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति ॥ ४ ॥ (सुश्रुत सू० अ० १५)

सर्वशरीरचरास्तु वातपित्तश्लेष्माणो हि सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि कुर्वन्ति ॥ १० ॥ (चरक सू० अ० २०)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि जल, अग्नि और वायु इन तीनों के अनुग्रह से सारा ब्रह्माण्ड सुख और वृद्धि को प्राप्त होता है और कोप से नाना प्रकार के दुःख तथा नाश को प्राप्त होता है। इसी प्रकार कफ, पित्त और वायु के अनुग्रह से प्राणियों का देह सुखी और वृद्धिगत होता है और कोप से नाना व्याधियों से घिरकर इसका नाश हो जाता है। इस वृद्धि और नाश के कारण त्रिदोष, धातु और मल को प्राप्त होने वाले इनके सामान्य और विपरीत भाव हैं। चरक के इस कथन का आशय ही वाग्भट ने कहा है—

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ ६ ॥ रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः । सप्तदूष्या मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च १३ वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ॥ (अष्टाङ्गहृदय सू० अ० १)

सारांश यह कि दोषधातुमलमूल शरीर की वृद्धि और क्षय का कारण नित्य के हिताहारविहार या अहिताहारविहार का उपयोग ही है। यही सामान्य और विपर्यय है। बहिर्जगत् का धारण सोम, सूर्य और वायु अपनी विसर्ग-आदान-विक्षेप क्रिया द्वारा करते हैं, ठीक इसी प्रकार इन्हीं के रूप कफ, पित्त और वात अपनी विसर्गादान-विक्षेप क्रिया से शरीर का धारण करते हैं। आहार के मुख में पड़ते ही सोम अर्थात् कफ की विसर्ग क्रिया का आरम्भ होकर वह जलीय रस मधुर एवं फेनीभूत स्पष्ट दिखाई देता है। आगे वही अग्नि एवं पित्त के यकृत प्लीह स्थानों में आदान क्रिया द्वारा पक कर रंजित होता और अन्त में वायु की विक्षेप क्रिया उसका विभजन कर तेजोभूत रस (सार) और किट्ट को अलग अलग कर देती है। क्रमशः इस प्रकार रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य की उत्पत्ति होना आचार्यों ने बतलाया है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसात्मेदः प्रजायते ।
मेदोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रं तु जायते ॥ १० ॥

(सुश्रुत सू. अ. १४)

चरक में सोम-सूर्य-वायु द्वारा काल, ऋतु, रस, दोष, देह आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है। वस्तुतः ये कफ, पित्त, वायु ही हैं। वाग्भट्ट ने भी लिखा है कि—"चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु। वर्षादिषु तु पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु।" ऐसे ही "नक्तं दिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्" लिखा मिलता है। इन धातुओं को चरक ने "षट् श्लेष्मणः, पञ्च पित्तस्य" आदि अञ्जलिप्रमाण बताए हैं। इतना ही नहीं, इन त्रिधातुओं के जो गुण बताए गए हैं, रसदोषसन्निपात बताया है और बताई है चरक ने त्रिविधकुक्षीय विमानाध्याय में इनके लिये जगह रखने की बात भी। इसके सिवा "जीवो जीवस्य जीवनं" इस कथन के अनुसार ये अपने समान गुण वाले षड्रससंभूत कन्द, मूल, फल, अन्न, मांसादि सेन्द्रिय (चेतन) द्रव्यों को लेकर स्वयं पुष्ट होते हुए शरीर को भी पुष्ट रखते हैं। क्या इन प्रमाणों को देख कर भी कोई कह सकता है कि ये कुछ भी नहीं हैं या सेन्द्रिय नहीं हैं? क्या अब भी इनको आप ब्रह्माण्ड एवं देह में प्रत्यक्ष तथा सर्वत्र व्याप्त नहीं मानेंगे?

तत्र सूक्ष्मो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः। पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् ॥११॥ स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः। (अष्टाङ्गहृदय सू० १)

त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः। तद् यथा—एकमवकाशांशं मूर्त्तानामाहारविकाराणामेकं द्रवाणामेकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम् ॥ (चरक विमान अ० २)

रोग और उनकी चिकित्सा।

हमारे आचार्यों ने "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" कहकर अनन्त रोगों के महासागर को सचमुच एक छोटी सी गागर में भर दिया है। दोषों के संचय, प्रकोप, प्रसर, स्थानसंश्रय, व्यक्ति, भेदादि सब कुछ कहे हैं किन्तु महर्षिप्रणीत हमारी चिकित्सा दोषमूलक होने से उन्होंने एक ऐसा सुगम मार्ग हमें दिखा दिया है जिससे हम अनन्त रोगों की पहिचान और चिकित्सा कर सकते हैं। उन्होंने यह थोड़े में बता दिया है कि वातादि दोषों तथा रसरक्तादि उनके दूष्यों की क्षयवृद्धि में अमुक-अमुक लक्षण हुआ करते हैं और उनकी बृंहण या कर्षण चिकित्सा इस प्रकार की जाय। रोगमूलक चिकित्सावाले जब तक रोग का पता या नाम निश्चित न कर लेंगे तब तक उसकी चिकित्सा नहीं कर सकेंगे। हमारे यहाँ यह बात नहीं है। चाहे हम आजकल के न्युमोनिया-प्ल्यूरसी प्रभृति के नाम निश्चित न कर सकें परन्तु उनकी चिकित्साकर रोगी को अवश्य सुखी कर सकते हैं।

महर्षियों ने थोड़े में बतला दिया है कि जहाँ हर तरह से आरोग्य अथवा सुख है वहाँ धातुसाम्य समझो और जहाँ विकार, रोग अथवा दुःख है तो उसे धातुवैषम्य जानो। जिन क्रियाओं से धातुओं में समानता आ सकती है, वही सब रोगों को दूर करनेवाली चिकित्सा है—वैद्यों का मुख्य कर्म है। यह भी कह दिया है कि रोगों की संख्या (गिन्ती) नहीं हो सकती। उनका पार ही नहीं है। ऐसी अवस्था में यदि कोई वैद्य किसी रोग का नाम निश्चित न कर सके तो कोई लज्जा की बात नहीं है। वैद्य को चाहिये कि वह रोग की प्रकृति उसके अधिष्ठान और समुत्थान पर लक्ष्य रखकर उसकी चिकित्सा का आरम्भ कर दे। जो इन तीनों बातों को लक्ष्य में रखता हुआ चिकित्सा करता है, वह कदापि धोखा नहीं खा सकता—

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥

(च० सू० अ० ९)

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥३४॥

(चरक सू० अ० १६)

तत्र व्याधयोऽपरिसंख्येया भवन्त्यति बहुत्वात् ॥ ५ ॥

(चरक, विमान अ० ६)

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति निदर्शनम् ॥५०॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः।
स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥५१॥

तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च ।
समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत् ॥५२॥
यो ह्येतत् त्रिविधं ज्ञात्वा कर्माण्यारभते भिषक् ।
ज्ञानपूर्वं यथान्यायं स कर्मसु न मुह्यति ॥५३॥

(चरक सूत्र अ० १९)

इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु समयाभाववश इतना कहना ही अलम् समझना चाहिए ।

चिकित्सा के तीन प्रकार ।

आयुर्वेद में चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है दैवी, मानवी और दानवी । इनमें पहिली दैवी चिकित्सा में सूर्यरश्मि-जल-वायु शंकर जी से प्राप्त वरदानरूप चिकित्सा का समावेश होता है क्योंकि वेदों में सूर्य, वरुण, वायु और रुद्र, इन सबको देव माने हैं । दूसरी वनौषधियों द्वारा की जानेवाली कायचिकित्सा है और तीसरी शस्त्रक्रिया द्वारा की जानेवाली । वेदों में अन्यों की तो बात ही क्या, राजयक्ष्मा तक के कीटाणुओं का नाश करणेवाली सूर्यरश्मि, जल, वायु और मणिमन्त्र सम्बन्धिनी चिकित्सा का वर्णन यत्र तत्र मिलता है । त्रिधातु एवं उनके शमन विषय का उल्लेख सबसे प्राचीन माने जानेवाले ऋग्वेद में है । आज जितनी पैथियाँ चल रही हैं, उन सबके मूल तत्त्व आपको वेदों में मिलेंगे । मैं उन सब मन्त्रों को यहाँ लिखकर आपका अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहता इसलिये कि आप स्वयं उक्त मन्त्रों का पता लगाये बैठे हैं, या लगा लेंगे ।

रसशास्त्र और उसका रहस्य ।

दैवी चिकित्सा की सभी प्रणालियों का रसशास्त्र राजा है । आर्यों का अन्तिम ध्येय मुक्ति है । सभी संप्रदायों एवं शास्त्रकारों ने इसी के लिए उपदेश और प्रयत्न किया है । हमारे आयुर्वेद का भी “धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्” यही मुख्य सिद्धान्त है । तात्पर्य यह कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के इच्छुक को आरोग्यता का संपादन पहिले करना चाहिए । इसी लिए वाग्भट ने उपदेश किया है कि “आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ।” भगवती जगज्जननी महामाया और जगत् के जनक भगवान् शंकर ये दोनों सचमुच दया के सागर हैं । जगत् के माता-पिता होने के कारण जगत् को नाना व्याधियों से युक्त उनसे नहीं देखा गया और न देखा गया वनौषधियों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा द्वारा रोगियों की स्वास्थ्य प्राप्ति में होने वाला विलम्ब । दयासागर के हृदय में दया की लहरें लहराने लगीं और उन्होंने संसार का महोपकार करने वाले अद्वितीय रसशास्त्र को जन्म दे दिया । संसारोपकारार्थ शंकर जी के हृदय से यह रसरूपिणी करुणा टपक पड़ी । गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने यही कहा है—

“हृदयस्थैव गलित्वा जाता रसरूपिणी करुणा !”

विदेशियों का कहना है कि भारतीय रसशास्त्र की उत्पत्ति केवल कीमिया के लिये बावन तोले पावरत्ती के पाठक, ताम्र आदि धातुओं से सोना-चाँदी बनाने वालों के द्वारा हुई है । यह नितान्त झूठ है । रसेश्वरदर्शन से पता लगता है कि रसशास्त्र का अवतार वस्तुतः जीवन्मुक्ति प्राप्त करने के लिये हुआ है । षट् दर्शन पिण्डपातन (देहनाश) के बाद मुक्ति का

वर्णन करते हैं परन्तु उनके इस कथन पर विश्वास कैसे किया जाय ? शरीर को स्थिर रखते हुए, जीते जी ही मुक्ति प्राप्त कर लेने से यह विश्वास जम सकता है और यह जीवन्मुक्ति सर्वथा पारद के ही आधीन है। इसी लिये हरगौरी द्वारा हमारे रसशास्त्र की सृष्टि हुई है। यही लिखा है—

"षड्दर्शऽपि मुक्तिस्तु दर्शिता पिण्डपातने। करामलकवत्सापि प्रत्यक्षा नोपलभ्यते ॥ तस्मात्तं रक्षयेत्पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः ॥" गोविन्दभगवत्पादाचार्यैरपि—"इतिघनशरीरभोगान्मत्वनित्यान्सदैव यतनीयम्। मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥ तत्स्थैर्ये न समर्थं रसायनं किमपि मूललोहादि। एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥" रसार्णवेऽपि "पारदो गदितो यस्मात्परार्थं साधकोत्तमैः। सुप्तोऽयं मत्समो देवि मम प्रत्यङ्गसम्भवः। मम देहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते ॥" "संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः ॥"

इस सम्बन्ध में शंकर ने कहा है कि "हे देवि, तेरा बीज अभ्रक और मेरा बीज पारद है। ये दोनों मिलकर, मृत्यु और दारिद्र्य का नाश करते हैं।" रसेश्वर सिद्धान्त में लिखा है कि रस (पारा) के प्रसाद से कई देव, दैत्य, मुनि, राजा तथा सिद्ध अजरामरत्व प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो चुके हैं। शिव जी कहते हैं कि कर्मयोग ही से पिण्डधारणा प्राप्त होती है जो कि रस और पवन इन दोनों में सीमित हैं। रस और पवन ये दोनों अपनी मूर्छित, मृत और बृद्धावस्थाओं में मनुष्यों को क्रमशः नीरोग, मृत्युरहित और गगनचारी बनाते हैं। पारा लोह और देह इन दोनों में समान चमत्कार दिखानेवाला होने पर भी इसका उपयोग केवल देह के लिये करने का उपदेश है। लोह पर केवल सिद्धासिद्ध-परीक्षा कर लेना लिखा है। यथा—

"अभ्रकस्तव बीजं तु मम बीजं तु पारदः। अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ॥" देवाः केचिन्महेशाद्या दैत्याः कंसपुरस्सराः। मुनयो बालखिल्याद्या नृपाः सोमेश्वरादयः ॥ गोविन्दभगवत्पादाचार्यो गोविन्दनायकः। चर्पटिः कपिलो व्याडिः कापालिः कन्दलायनः ॥ एतेऽन्ये बहवः सिद्धा जीवनमुक्ताश्चरन्ति हि ॥ इत्यादि "रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा स्मृतः। मूर्छितो हरति व्याधीन्मृतो जीवयति स्वयम्। बद्धः खेचरतां कुर्याद्रसो वायुश्च भैरवि ॥"— "समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः। पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद्देहे प्रयोजयेत्।" इत्यादि।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि रसशास्त्र का अवतार देह की अजरामरता प्राप्त कर जीवन्मुक्त होने के लिये है न कि बावन तोला पाव रत्ती से सोना-चांदी बनाने के लिये। मूर्छित, मृत और बद्ध पारद बनाने की विधि और उसे पहिचानने की सब बातें रस ग्रन्थों में लिखी हैं। मित्रो, केवल पारे का नाममात्र लेने ही से हम अजरामरत्व या जीवनमुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। उसके अष्टादश संस्कार भी करने पड़ते हैं।

स्वेदनमर्दनमूर्च्छोत्थापनपातननिरोधनियमाश्च।
दीपनगगनग्रासप्रमाणमथ चारणाविधानं च ॥
गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिजारणरसरागसारणं चैव।
क्रामणवधौ भक्षणमष्टादशधेति रसकर्म ॥

(रसहृदय अ० २)

अर्थात् उपर्युक्त ये सब संस्कार करने पड़ते हैं। आजकल वैद्य बन्धुओं की समक्ष यह

हो रही है कि देह सिद्धि के लिए पहिले आठ ही संस्कारों की आवश्यकता है और शेष लोह सिद्धि के लिये हैं किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। पारद के अद्भुत चमत्कार तभी दिखाये जा सकते हैं जब उसमें अभ्रबीज की चारणा आदि कर्म किये जाते हैं। आजकल जहाँ तक देखा जाता है कि पारद की शुद्धि आदि तक की चिन्ता नहीं है। कज्जली कर ली जाती है तथापि बेचारा पारद अपना कुछ चमत्कार दिखा ही देता है। शोक है कि हम रसतन्त्रादि लिखे हुए पारद के अद्भुत चमत्कारों को देखने की इच्छा तक नहीं करते। यह तो गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने लिखा है वही बात है। आचार्य कहते हैं कि—

घनरहितबीजचारणसंप्राप्तदलादिसिद्धिकृतकृत्याः।
कृपणाः प्राप्य समुद्रं वराटिकालाभसन्तुष्टाः ॥१॥
अन्ये पुनर्महान्तो लक्ष्मीकरिराजकौस्तुभादीनि।
अवधीर्य लब्धवन्तः परामृतं चामरा जाताः ॥२॥

(रसहृदयतन्त्र अ० ३)

अर्थात् जो लोग पारद में अभ्रक सत्त्वादि की चारणा न करके उसे केवल अन्य धातुओं को खिला कर, उसके द्वारा वर्णवृद्धि, धातुओं के पत्र रँगने, मेलापक के द्वारा जोटक, तारकृष्टि आदि की सिद्धि में ही मस्त होकर अपने को कृतकृत्य मान रहे हैं। वस्तुतः पारद का चमत्कार उन्होंने कुछ भी नहीं देखा है। उनका इस कीमियागरी से खुश हो जाना तो उन कृपणों की खुशी के तुल्य है जो रत्नाकर को प्राप्त करके भी शंख और कौड़ियों के मिलने से राजी हो जाते हैं। धन्य वे हैं जिनने रत्नाकर द्वारा मिलने वाले लक्ष्मी, ऐरावत हाथी और कौस्तुभमणि को छोड़ अमरता प्राप्त कर ली है। इससे सिद्ध हो रहा है कि रसशास्त्र का अवतार अजरामरता प्राप्त करने के लिये हुआ है, न कि कीमियागरी के लिये।

मेरा निजी अनुभव है कि पारद जितना अधिक सुसंस्कृत होता है, उतना ही वह, अजरामरता के लिये अधिकाधिक फलप्रद होता है। सभी संस्कार करने के इच्छुकों को चाहिये कि वे रसशास्त्रों का गुरुओं के द्वारा भली भांति अध्ययन करें। बहुत से रसार्णवादि में लिखी हुई रसोपयुक्त दिव्यौषधियों के लिए यह लिखा हुआ देख कर घबड़ा जाते हैं कि "अमुकवर्णं पयस्तस्याः" उसका दूध अमुक वर्ण का होता है। हम रात दिन देख रहे हैं उनके वर्णन में भी उनके पय का रंग लिखा देखते हैं और कल्पना करते हैं कि शायद यह दूधवाली कण्टकारी, भूतकेशी आदि दूसरी हैं। उनके न मिलने के भय से पारद के संस्कार करना हम छोड़ देते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि पय नाम जल का या रस का भी तो है? चाहे उस नाम की दूधवाली और बूटी ही क्यों न हो, जो उसी नाम से हमारे सामने है हमें चाहिये कि हम उसी बूटी के रस द्वारा पारद की क्रिया करते रहें। परमात्मा हमें अवश्य सिद्धि प्रदान करेगा। यह केवल रसशास्त्र का रहस्य है। रस चिकित्सा विषय में लिखा मिलता है कि—

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसा च परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सिते ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यदा।
सर्वं तस्योपहासाय धर्महीनो यथा बुधः ॥

अनुपाने रसा योज्या देशकालानुसारिभिः।
दोषघ्नैर्मधुना वापि केवलेन जलेन वा॥

सारांश, रसचिकित्सा में दोष, रोग, पुरुष, देश और काल की परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं रहती। बात भी सच है रसों का ऐसा ही अचिन्त्य प्रभाव देखा जाता है। निस्सन्देह 'मुमुर्षुणां प्राणगतेः प्रणेता' प्रभूत रस ही होता है। कोई अनुपान न मिला तो केवल शहद और जल ही से काम चल जाता है। वस्तुतः ऐसी अद्भुत रसचिकित्सा का न जानना लज्जा की बात है। हमें चाहिये कि हम रसशास्त्र के अध्ययन में अच्छा परिश्रम करें।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट में उक्त रस धातुचिकित्सा का नाम नहीं है त्यों इनमें नाड़ी देखने आदि का भी कहीं उल्लेख नहीं है। रसशास्त्र सीधा शंकर जी से आया हुआ है। नाडी-विज्ञान और शारीर हमारे यहाँ वेद और योगशास्त्र से आये हैं। ये दोनों स्वतन्त्र शास्त्र हैं। शार्ङ्गधरादि के समय इनका वनौषधि शास्त्र के साथ समन्वय कर लिया गया है। योगशास्त्र में लिखा है कि—

श्वासोच्छ्वासविवर्तनेन जगतां जीवो यया धार्यते। सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीपावली॥······वाय्वग्निमयी देवी कुण्डली परमा कला। जीवशोणितसंघातात्सुषुम्णा जीवसाक्षिणी स्पन्दिता सर्वदेहेषु यावज्जीवो न मुञ्चति।

महानुभाव! कहाँ तक कहा जाय। जितना कहा जाय वह थोड़ा ही है। विचारपूर्वक देखने से पता चलता है कि हमारे महर्षियों ने दर्शनादि सभी शास्त्रों का समावेश करके हमारे आयुर्वेद की रचना की है। कहीं सांख्य की झलक दिखाई देती है, तो कहीं वेदान्त की छटा। कहीं न्यायशास्त्र दिखाई दे रहा है तो कहीं योगशास्त्र हमें शान्ति प्रदान कर रहा है।

"योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन" "मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः" इन प्रमाणों से सिद्ध है कि चरक महर्षि पतञ्जलि का ही लिखा हुआ है। चरक में अन्य सब शास्त्रों की और विशेषतः उनके प्रिय विषय योग की छटा शारीर के आदि में ही दिखाई देती है। इस लिये आयुर्वेद पढ़नेवालों को चाहिये कि व्याकरणादि सभी शास्त्रों को देखने से कदापि न चूकें। इन शास्त्रों के देखनेवाले ही हमारी बृहत्त्रयी के सच्चे मर्म को समझ सकते हैं। परीक्षा देकर आयुर्वेदाचार्य आदि पदों को प्राप्त कर लेना जितना सहल है, चरक के विमान और शारीर को कम से कम मेरी क्षुद्र सम्मति में समझना या समझाना उतनी ही टेढ़ी खीर है। शारीरविज्ञान, भैषज्यविज्ञान और चिकित्साविज्ञान, इन तीनों का ही समष्टिरूप आयुर्विज्ञान है। इस समय हमें अच्छे सुभीते प्राप्त हैं। पौर्वात्य और पाश्चात्य की अच्छी जोड़ है अतः कन्धे से कन्धा भिड़ाकर पुनः आयुर्वेद को हम दोनों खासा पुष्ट बना दें। बस यही मेरी आन्तरिक इच्छा है।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

श्रीमान् वैद्यशास्त्री पं. ठाकुरदत्तजी मुलतानी. **लाहोर।**
अध्यक्ष–पंजाबप्रांतयि ३ वैद्यसंमेलन **मोगा** (सन १९३०)।

पंजाब प्रांत

पंजाब प्रांतीय वैद्यसम्मेलन का

संक्षिप्त विवरण।

१९२७ से नव सभ्य समाज में भी प्रायः देशी चिकित्सा के पक्षपाती प्रचार को लक्ष्य रख कर पञ्जाब प्रान्त विशेषकर लाहौर के प्रतिष्ठित वैद्य महोदयों ने भी इस उपर्युक्त समय से लाभ उठाने की धारणा से पञ्जाब प्रान्त के वैद्य समुदाय को एकत्रित कर सामूहिक रूप से आयुर्वेद प्रसार के लिये १९२८ में "पञ्जाब प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन" की स्थापना की,

इस सम्मेलन (मण्डल) का प्रथमाधिवेशन लाहौर में मनाने का निश्चय हुआ—

जिसकी स्वागतकारिणी सभापति पद को सर गोकुलचन्द जी नारङ्ग ने सहर्ष स्वीकार किया—

सम्मेलन के सभापति पद को श्री रामप्रसाद जी वैद्यरत्न, राजवैद्य पटियाला ने सुशोभित किया—सम्मेलन २३, २४, २५ मार्च १९२८ को बड़ी धूमधाम से सफल हुआ—सम्मेलन के तद्वर्षीय अधिकारी वर्ग इस प्रकार निर्वाचित हुए।

१—प्रधान—सर्वश्री पं० रामप्रसाद जी पटियाला, २ उपप्रधान पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा, अमृतधारा, ३ उपप्रधान पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी, लाहौर, ४ प्र० मंत्री सुरेन्द्रमोहन जी बी० ए०, आचार्य दयानन्दायुर्वेदिक कालिज, ५ उपमंत्री पं० नानकचन्द्र जी वैद्यशास्त्री, ६ उपमन्त्री क० धर्मदेव जी, ७ कोषाध्यक्ष ला० सरदारी लाल जी, ८ आयव्यय निरीक्षक पं० बिहारीलाल जी झींगन लाहौर। इस सम्मेलन के महत्वपूर्ण प्रस्तावों के प्रभाव से ही अगले वर्ष पञ्जाब गवर्नमेंट तथा लाहौर म्युनिसिपैलिटी का सहायतार्थ ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ, और पञ्जाब की देशी चिकित्सा शिक्षा संस्थाओं को वार्षिक आर्थिक सहायता मिलने लगी।

२—द्वितीय वैद्य सम्मेलन—वैद्य पञ्चानन पं० मस्तराम जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य जी के उद्योग तथा पं० मनसाराम जी के सहयोग से ४–५–६ मई १९२९ में रावलपिण्डी में हुआ इसके सभापति श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा चुने गये। इस सम्मेलन में प्रदर्शनी का प्रबन्ध अत्युत्तम था, पं० मस्तराम जी शास्त्री ने शास्त्र सम्मत रस साधक-भट्टियों तथा यन्त्रों का परिष्कृत आविष्कार किया था, एवं महता सीताराम जी का भी लौह यन्त्र निर्माण भी सराहनीय था। इसी सम्मेलन में वैद्यरत्न पं० रामप्रसाद जी ने अपने ५०) के दान से धन्वन्तरि कोष की स्थापना की, जिसका उद्देश्य प्रान्तीय वैद्य समाज की आयुर्वेद मार्ग में आने वाली विपत्ति में सहायता करना था। सम्मेलन के अधिकारी—सर्वश्री—१ प्रधान पं० ठाकुरदत्त जी, अमृतधारा, २ उपप्रधान—पं० रामप्रसाद जी वैद्यरत्न पटियाला, ३—उपप्रधान—पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी लाहौर, ४ मन्त्री सुरेन्द्र मोहन जी बी० ए०

आचार्य, ५ उपमंत्री—पं० नानकचन्द्र जी वैद्यशास्त्री, ६ पं० रामगोपाल जी शास्त्री लाहौर, ७ कोषाध्यक्ष—पं० अमरनाथ जी नागर लाहौर, ८ आयव्यय निरीक्षक—पं० बिहारीलाल जी झींगन लाहौर।

३—तृतीय वैद्य सम्मेलन का निमन्त्रण मोगा से प्राप्त हुआ। अतः २८ फर्वरी तथा १-२ मार्च १९३० को मनाया गया। इसके सभापतित्व का आसन पं० ठाकुरदत्तजी मुलतानी ने सुशोभित किया, मोगा जैसा पाश्चात्य चिकित्सा प्रधान तथा आयुर्वेद के लिये अपर प्रदेश में सम्मेलन का होना ही इस सम्मेलन की विशेषता थी।

इस वर्ष कार्यकारिणी के अधिकारी इस प्रकार थे—

१ प्रधान श्री० पं० ठाकुरदत्तजी मुलतानी, २ उपप्रधान श्री० पं० ठाकुरदत्त शर्मा अमृतधारा, ३ उपप्रधान श्री० पं० भोलानाथ शास्त्री राजवैद्य, जम्मू काश्मीर, ४ उपप्रधान श्री० पं० मस्तरामजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, रावलपिण्डी, ५ मन्त्री श्री सुरेन्द्रमोहनजी बी० ए०, आयुर्वेदाचार्य, ६ स० मन्त्री पं० नानकचन्द्रजी वैद्यशास्त्री, ७ उपमन्त्री पं० रामगोपालजी शास्त्री वैद्यभूषण, ८ कोषाध्यक्ष कवि० पं० मदनमोहनजी लाहौर, ९ आयव्यय निरीक्षक कवि० हरनामदासजी बी० ए०, लाहौर।

४—चतुर्थ वैद्यसम्मेलन का निमन्त्रण अम्बाला सिटी से प्राप्त हुआ, यद्यपि कई कारणों से अम्बाला सम्मेलन स्थगित होता रहा, किन्तु अम्बाला के परम उत्साही श्रीयुत ला० गङ्गारामजी रईस के उद्योग से १३-१४-१५ नवम्बर को वैद्य पञ्चानन पं० मस्तरामजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ, और सभापति महोदय का जलूस पटियाला राज्य से प्राप्त सजे हुए हाथी पर निकाला गया था, सम्मेलन सब प्रकार से पूर्णतया सफल हुआ इस वर्ष के अधिकारी निम्न प्रकार थे—

१ प्रधान—वैद्यपञ्चानन पं० मस्तराम जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य।
२ उप प्रधान—पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा, अमृतधारा, लाहौर।
३ ,, ,, पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी लाहौर।
४ प्रधान मन्त्री—पं० शिवशर्मा, प्रसाद मकरध्वज फार्मेसी, लाहौर।
५ उपमन्त्री – पं० रामगोपाल जी शास्त्री वैद्यभूषण ,,
६ कोषाध्यक्ष—डा० आशानन्द जी, एम्० बी० बी० एस्०
७ आयव्यय निरीक्षक—ला० सुरेन्द्रमोहन बी० ए०, आ० आचार्य, लाहौर।

५—पञ्जाब प्रान्तीय पञ्चम वैद्यसम्मेलन वैद्यराज रायसाहिब पं० श्रीदत्त जी, आनरेरी मजिस्ट्रेट एवं सबजज, म्युनिसिपल चेयरमैन के उद्योग से १८-१९-२० नवम्बर १९३२ को भिवनानी नगर में मनाया गया। पञ्जाब प्रान्त का यह भाग आयुर्वेदीय चिकित्सा पर विशेष श्रद्धा रखता है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण राय साहिब श्रीयुत पं० श्रीदत्त जी वैद्यराज हैं, आप आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा सबजज एवं म्युनिसिपल चेयरमैन होते हुए एक अच्छे आयुर्वेद मर्मज्ञ भी हैं, आपके ही उद्योग से भिवानी नगर में एक विशाल आयुर्वेदीय नेत्र चिकित्सालय जनता की धर्मार्थ सेवा कर रहा है। भिवानी सम्मेलन भी बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ—इसके अधिकारी—

श्रीमान् राजवैद्य वैद्यपञ्चानन पं. मस्तरामजी शास्त्री,
आयुर्वेदाचार्य, रावलपिण्डी.
अध्यक्ष, पंजाबप्रान्तीय ४ वैद्यसंमेलन अम्बाला (सन १९३२ ई)।

१ प्रधान—श्रीमान् वैद्यभूषण पं० मनोहरलाल जी प्रिंसिपल बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय, देहली,
२ उपप्रधान—पं० रामरक्षपाल जी भिवानी,
३ उपप्रधान—पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी वैद्यराज लाहौर,
४ प्रधान मन्त्री—रा० सा० पं० श्रीदत्त जी आन० मैजिस्ट्रेट व सबजज, भिवानी।
५ उपमन्त्री—कविराज पुरुषोत्तमदत्त जी भिवानी
६ कोषाध्यक्ष—पं० उमादत्त जी भिवानी
७ आयव्यय निरीक्षक—क० हरिश्चन्द्र जी अमृतसर

६—षष्ठ वैद्यसम्मेलन १८-१९-२० नवम्बर १९३३ को जालन्धर नगर में लाहौर के विद्यावयोवृद्ध कविराज श्रीनरेन्द्रनाथ जी मित्र के सभापतित्व में बड़े समारोह से मनाया गया। कविराज पं० बालकनाथ नागर तथा पं० वेदव्यास शास्त्री आदि वैद्य महानुभावों के सदुद्योग से सम्मेलन बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ—

इस वर्ष के अधिकारी—

१ सभापति—कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र लाहौर,
२ उपसभापति—रा० सा० पं० श्रीदत्त जी आन० मैजिस्ट्रेट व सबजज, भिवानी
३ ,, डा० आशानन्द जी एम्० बी० बी० एस्०, भिषगाचार्य वाइस प्रिंसिपल द० आ०
४ ,, श्री पं० गोकुलचन्द्र जी वैद्यराज कालेज लाहौर प्रिंसिपल ब्राह्मणसभा आयुर्वेदिक कालिज लुधियाना,
५ प्रधानमन्त्री—श्रीमान् पं० दुर्गादत्त जी आयुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल स० ध० प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालिज लाहौर
६ सहकारी मन्त्री—आयुर्वेद चक्रवर्ती कविराज नरेन्द्रनाथ शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, वाइस प्रिंसिपल स० ध० पी० जी० आयुर्वेदिक कालिज, लाहौर
७ उपमन्त्री—डा० परमानन्द जी एम० ए० एल० एल० बी०, लाहौर
८ कोषाध्यक्ष—श्री ला० सरदारी लाल जी लाहौर
९ आयव्यय निरीक्षक—प्रो० शिवशर्मा जी आयुर्वेदाचार्य, लाहौर

७—सप्तम वैद्य सम्मेलन—श्रीमान् वैद्यवद्ध पं० गोकुलचन्द्र जी वैद्यराज के उद्योग से लुधियाना में भिवानी के रा० सा० श्री वैद्यराज पं० श्रीदत्त जी आन० मैजिस्ट्रेट व सबजज की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, इसमें विशेषता यह थी कि रोगनिरीक्षण के दिन केवल नेत्र रोगों के ५०० के लगभग रोगियों की चिकित्सा की गई थी। अन्य हर प्रकार का प्रबन्ध भी सुसम्पन्न था—अधिकारी वर्ग—

१ प्रधान—श्री रा० सा० श्रीदत्त जी वैद्यराज आन० मजिस्ट्रेट व सबजज भिवानी
२ उपप्रधान—पं० मस्तराम जी शास्त्री वैद्य पञ्चानन रावलपिण्डी
३ ,, श्री डा० आशानन्द जी एम० बी० बी० एस्० भिषगाचार्य
४ ,, श्री गोकुलचन्द्र जी वैद्यराज लुधियाना
५ प्रधानमंत्री—पं० दुर्गादत्त जी आयुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल स० ध० प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालिज लाहौर

६ स० मन्त्री—कविराज नरेन्द्रनाथ शास्त्री आयुर्वेदाचार्य वाइस प्रिंसिपल स० ध० पी० जी० आयुर्वेदिक कालिज, लाहौर

७ उपमन्त्री—पं० गुरुदत्त जी वैद्यभास्कर, एम० एस० सी०, लाहौर

८ कोषाध्यक्ष—पं० नानकचन्द्र जी वैद्यशास्त्री लाहौर

९ आयव्यय निरीक्षक—डा० बनारसीदास जी बी० ए० आनर्स

इस प्रकार प्रान्तीय सम्मेलन के प्रभावशाली कार्य से प्रभावित होकर पञ्जाब के बहुत से डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, म्युनिसिपल बोर्डों तथा रियासतों ने अपने-अपने प्रान्तों में धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय खोल दिये और आगे को खोलने की आयोजना की जा रही है, जिससे कि भारतीय जनता का असीम उपकार हो रहा है और होने की सम्भावना है।

* * *

श्रीमान् पं. शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य लाहोर ।
लेखक "सीस्टम ऑफ आयुर्वेद" ।

श्रीमान् वैद्यराज पं. मनोहरलालजी।
अध्यापक-श्रीबनवारीलालआयुर्वेदाविद्यालय **दिल्ली**।
अध्यक्ष- पंजाबप्रान्तीय ५ वैद्यसंमेलन **भिवानी**।

पञ्जाब प्रान्तीय पञ्चम वैद्य सम्मेलन भिवानी के सभापति दिल्ली निवासी

श्री पं० मनोहरलाल शर्म्मा वैद्यराज का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

आपका जन्म सं० १९३६ विक्रमी में हुआ था। थोड़े ही अवस्था में कोश, व्याकरण, काव्य, साहित्य, न्याय, वेदान्त शास्त्रों का समुचित अध्ययन कर पुनः श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय में आयुर्वेद शास्त्र का अनवरत पठन किया, और क्रमशः तीन परीक्षायें दीं वैद्य, वैद्यवर, वैद्यराज। फिर सन् १९०२ में आपने उक्त विद्यालय में ही अध्यापन आरम्भ कर दिया। सम्प्रति इसी विद्यालय में अतिकाल से आप प्रिन्सिपल नियत हैं। श्री भारत धर्म महामण्डल, काशी ने आयुर्वेद भूषण की उपाधि दी है। सन् १९३२ में पञ्जाब प्रान्तीय पञ्चम वैद्य सम्मेलन, भिवानी के सभापति हो चुके हैं। निम्न लिखित संस्थाओं के आप परीक्षक रहते हैं। नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ। आयुर्वेद कालेज—ऋषिकुल हरिद्वार। राजकीय आ० विद्यालय, ग्वालियर स्टेट। प्रेमगिरि आयुर्वेद विद्यालय, लाहौर। वैद्यक ऐंड यूनानी तिब्बिया कालेज, देहली।

आपसे अध्ययन कर, सहस्रशः प्रतिष्ठित वैद्य बन गये हैं। साथ ही सन् १९०२ से आपका धन्वन्तरि औषधालय, शहर देहली में प्रचलित है। आपके सौजन्य, तथा सद्गुणों से, जनता अधिक श्रद्धा करती है। आप दिल्ली के एक ख्यातिनामा वैद्यों में हैं। आपके प्रिंसिपल पद पर नियत होने से बनवारीलाल आयुर्वेद कालेज की लोकप्रियता अत्यधिक बढ़ गई है। आप बड़े परिश्रमी, अध्यवसायी और सच्चीलगन के व्यक्ति हैं। आयुर्वेदोद्धारार्थ आप हर समय दत्तचित्त रहते हैं।

* * *

श्रीधन्वन्तरये नमः

पंजाब प्रान्तीय पंचम वैद्यसम्मेलन भिवानी के सभापति, वैद्यभूषण

श्री पं० मनोहरलाल शर्म्मा, वैद्यराज का

अभिभाषण

नमामि धन्वन्तरिमादिदेवं सुरासुरैर्वन्दित पादपद्मम् ।
लोके जरारुग्भयनाशहेतुं दातारमीशं सकलौषधीनाम् ॥
सुधा कुम्भंहस्ते दधदमरतार्थं सुमनसाम् ।
सहस्रं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदम् ॥
मणिं श्रीवत्साङ्के हृदि जलनिधेर्यो जनि पुरा ।
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरि विभुः ॥

माननीय उपस्थित सज्जनवृन्द वैद्यबन्धुओं, तथा आयुर्वेदानुरागी महानुभावो !

आपने जो पंजाब प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के सभापतित्व के सम्मान का सौभाग्यावसर देकर मुझे सम्मानित किया है इसके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, यद्यपि मैं समझता हूँ कि मेरे से ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, विद्वान् विद्यमान हैं, मैं अल्पज्ञ तथा असमर्थ हूँ तथापि आप महानुभावों की आज्ञा का पालन करता हुआ, इस आसन को ग्रहण करता हूँ, मैं आशा करता हूँ कि आप सज्जनों के सहयोग से इस महान् कार्य की सेवा करने में सफलता प्राप्त कर सकूँगा । बन्धुओ !

आपके इस पुनीत प्रेम सम्मेलन से बड़ा आनन्द हो रहा है, इस समारोह से यह आशा करता हूँ कि जिस स्वार्थ-त्याग भाव से हम लोग यहाँ एकत्रित हुए हैं और आयुर्वेद की उन्नति का ही एक मात्र हमारा ध्येय है, हम सब मिलकर भगवान् धन्वन्तरि का जयघोष कर प्रार्थना करें कि इस आदर्श गौरव कार्य को सफल करें ।

आयुर्वेद का अनादित्व ।

शिक्षित समुदाय को यह बताना कि आयुर्वेद अनादि है वा नहीं, तो मैं समझता हूँ कि पिष्ट-पेषण ही होगा, इसके सहस्रों प्रमाण प्रस्तुत हैं, सर्व चिकित्साओं की अपेक्षा इसकी प्राचीनता आयुर्वेद का इतिहास बताता है, उन प्रमाणों को यहाँ लिखना अनावश्यक है ।

प्रत्येक उच्च कोटि के विद्वान् मानते हैं कि आयुर्वेद-विद्या वेदों का अङ्ग है ।

इस कारण इसके अनादित्व में भ्रम होना सर्वथा निन्दनीय है ।

हमें अपने शास्त्रों एवं अन्य चिकित्साओं के विद्वानों की लिखित सम्मतियों से ज्ञात होता है कि हमारा आयुर्वेद अनुमानतः दो हजार वर्ष पूर्व परम उन्नत दशा में था अन्य देशों

श्रीमान् पं. देवकीनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य।
अध्यापक–श्रीबनवारीलालआयुर्वेदविद्यालय दिल्ली।

श्रीमान् पं. शंकरदेवजी आयुर्वेदाचार्य।
अध्यापक–श्रीबनवारीलालआयुर्वेदविद्यालय दिल्ली।

के विद्वान् भी चिकित्सा शास्त्र के मर्म जानने के अर्थ यहाँ आते थे और यहाँ अध्ययन कर, अपने देशों में आयुर्वेद प्रणाली का प्रचार करते थे। आयुर्वेद का ही नहीं बल्कि यहाँ के विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा अन्य देश वासी, अपने-अपने चरित्रों की शिक्षा भी पाते थे। (उक्तं हि मनुना)

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

परन्तु दौर्भाग्य से भारत पर विदेशियों के बार-बार आक्रमणों से भारतीय शास्त्रों और उसके मर्मज्ञों की अवहेलना हो गई। उत्तरोत्तर ह्रास होता चला आ रहा है। आज भी हम यदि चरक सुश्रुत के अध्यायों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि महर्षिजन प्राचीन काल में शास्त्रीय तत्वान्वेषण (रिसर्च) के लिए देश देशान्तरों में भ्रमण करते थे, दिव्य पर्वतों पर सम्मिलित होकर किसी सिद्धान्त के निर्णयार्थ वाद-विवाद खंडन-मंडन कर एक निश्चय पर पहुँच जाते थे, परन्तु इस बात का भी बरताव शनैः-शनैः न रहा तथापि आज भी अपने आयुर्वेद की चिकित्सा पर जो गौरव है वह भी उन्हीं त्रिकालयज्ञ महर्षियों का चमत्कार है। यही कारण है कि वैद्य लोग कष्ट-साध्य रोगों की चिकित्सा करते समय विशेष आडम्बरों को काम में न लाते हुए भी साधारण रीति से चिकित्सा में विजय प्राप्त करते हैं। प्रथम तो आयुर्वेद की चर्य्या ही ऐसी है जिस पर चलने से मनुष्य कभी भी रोगी नहीं होता, जैसा कि लिखा हैः—

दिनचर्य्यां निशाचर्य्यां मृतुचर्य्यांयथोदिताम्।
आचरन्पुरुषस्स्वस्थ्यो सदातिष्ठतिनान्यथा ॥

कदाचित् भ्रम से कोई चिकित्सक किसी अवस्था में विपरीत औषधि प्रयोग कर दे तो ऐसी हानिप्रद नहीं होती जैसी कि विदेशी औषध। कितने ही गुणग्राही डाक्टर जब एलोपैथिक चिकित्सा से जीर्ण रोगों में लाभ होता नहीं देखते तब आयुर्वेदीय चिकित्सा कराने के लिये सम्मति देते हैं। और स्वयं भी आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषध मकरध्वज, मालतीवसन्त आदि को व्यवहार में लाते हैं। कहना होगा कि आयुर्वेद की औषधों की विशेष उपयोगिता एवं अधिक प्रशंसा देखकर ही विदेशीय मेडिसन बनाने वाली कम्पनियाँ भी देशी औषधों को बनाने लगी हैं, जैसे कि जरमन की एक कम्पनी ने मकरध्वज बनाकर बेचना आरम्भ कर दिया है। हम यह नहीं कह सकते कि इस मकरध्वज में कुछ गुण है वा नहीं; परन्तु हम देखते हैं कि यह बाज़ार में विशेष रूप से सस्ता होने से बिकने लगा है। और हमारे वैद्य भी व्यवहार में लाने लगे हैं। हमें यह देखकर कुछ काल के लिये प्रसन्नता होती है कि विदेशी भी आयुर्वेद की प्रभावशाली औषधों का भारत में अधिक प्रचार देखकर व्यवहार में लाने के लिये एवं व्यवसाय में धन वृद्धि के अर्थ उद्योग करने लगे हैं। और एक प्रकार से खेद होता है कि विदेशी कम्पनियाँ यदि इस प्रकार सिद्ध औषधों को भेजती रहीं तो वैद्य समुदाय आलस्ययुक्त हो जायगा। आयुर्वेद का अस्तित्व जाता रहेगा और वैद्य लोग दूसरों के अधीन हो जायेंगे, तथा क्रिया-कौशल्य में भी शिथिलता हो जायगी। अतः वैद्य समुदाय इस विषय को रोकने का प्रयत्न करे अन्यथा भविष्य में बड़ी हानि की सम्भावना है। साथ में यह भी कहना आवश्यक समझते हैं कि हम यह कहकर ही सन्तोष कर लें कि हमारा आयुर्वेद अनादि है, इसी से अन्य चिकित्साओं का प्रादुर्भाव हुआ है, तो भी ठीक नहीं किन्तु सर्वदा आयुर्वेद समुन्नति के अर्थ विचारास्पद विषयों पर गवेषणापूर्ण विचार करना चाहिये।

आयुर्वेद के समुन्नत करने के लिए वर्तमान में किन-किन उपायों की आवश्यकता है वह निवेदन रूप में वैद्य मंडल के सम्मुख विचार रूप में प्रकट किये हैं।

वर्त्तमान विद्यालयों में, शस्त्र चिकित्सा की आवश्यकता।

यदि देखा जाय तो आयुर्वेद की शिक्षा प्रचार के अर्थ भारत में आज भी सैकड़ों विद्यालय खुले हैं, जिनमें सहस्त्रों रुपये का व्यय भी होता है, हजारों छात्र शिक्षा पाकर स्नातक बन जाते हैं, प्रान्तीय सरकार भी पुष्कल धन देकर आयुर्वेद की शिक्षा के लिए स्कूल कालिजों की स्थापना कर रही है, यह सब कुछ होते हुए भी सन्तोष नहीं होता कि इन विद्यालय की शिक्षा से आयुर्वेद के पूर्ण चिकित्सक बन कर अन्य चिकित्सा के विद्वानों का मुकाबला कर सकें। प्रचलित विद्यालयों की उच्च परीक्षा उत्तीर्ण करने पर भी चिकित्सा के अङ्गों में अपूर्ण ही रहते हैं। हमने जहाँ तक विचार किया है, उससे यह ज्ञात होता है कि विद्यालयों के शिक्षक भी आयुर्वेद के अङ्गों से प्रायः अनभिज्ञ होते हैं। क्योंकि वर्तमान में केवल चरक-सुश्रुत के प्रमाणों के कंठस्थ करने वाले ही विद्वान् नहीं कहला सकते जब तक कि उनमें अन्य चमत्कृति न हो तथा नव्य वैज्ञानिक खोज का विज्ञान हृदय में न हो। सब से प्रथम विद्यालयों में ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जो पाश्चात्य तथा नव्य शिक्षा के पूर्ण विद्वान् हों।

विद्यार्थी भी अंगरेजी में कम-से-कम मैट्रिक और संस्कृत में कम-से-कम विशारद या मध्यमा परीक्षोत्तीर्ण हों, जो पाश्चात्य शिक्षा दी जाय वह हिन्दी में हो, उनका पाठ्य-क्रम हिन्दी में पढ़ाया जाय तथा विद्यालयों में शल्य-शालाक्य चिकित्सा का अभ्यास कराया जाय। आज हम देखते हैं कि व्रण-चिकित्सा या वस्ति-कर्म छेदनीय-भेदनीय चिकित्सा शिराव्यध नेत्रोपचार यह सब दूसरों के ही हस्तगत हैं, बहुत वैद्य तो इससे अनभिज्ञ ही हैं, कुछ घृणा के कारण नहीं करते। न करने से उनका अभ्यास भी छूट गया है।

शरीर को सब प्रकार से जान ले तभी रोगों के हटाने में समर्थ होता है जैसा कि चरक में लिखा है—

शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेदयो भिषक्।
आयुर्वेदं सकात्स्न्येन, वेद लोक सुखप्रदम्॥

पूर्व काल में महर्षियों को शल्य-शालाक्य ज्ञान कैसा था, यह प्रमाणों से स्पष्ट है।

विशीर्णदशना पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च।
शशिनो राजयक्ष्मा भू दश्विभ्यां ते चिकित्सिताः॥

साथ ही विद्यालयों के आतुरालय, शवच्छेदनालय, प्रयोगशाला तथा वनौषधों का उद्यान भी परमावश्यक है, विद्यार्थियों के प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिये पूर्ण व्यवस्था की जाय, तो समझता हूँ इस प्रकार की पठन-पाठन शैली से पूर्ण योग्य विद्वान् बन कर इस लोक व परलोक में परम यश तथा सुख के भाजन बन सकेंगे।

तब ही भारत में आयुर्वेद की जगृति का सच्चा आदर्श होगा।
और हम जनता को पूर्ण लाभ पहुँचायेंगे।

वनौषधियों के परिज्ञान की आवश्यकता ।

वैद्य बनने में जैसे अन्य विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है, इसी प्रकार वनौषधियों के विज्ञान की भी आवश्यकता है ।

ऐसे कतिपय विद्वान् दृष्टिगोचर हो रहे हैं जो औषधियों के परिचय में पूर्ण अनुभव रखते हों और विद्यालयों में भी औषधी का परिचय पूर्ण रूप से नहीं कराया जाता, ऐसा न होने से ही पंसारी तथा अत्तार व मालियों के भरोसे पर ही हमारा विश्वास रहता है । जो कुछ उन्होंने दे दिया, वह ही मान लिया जाता है इसी कारण हम लोग जो प्रयोग बनाते हैं वह यथार्थ फलप्रद नहीं होते ।

वास्तव में जो हमारा आज तक वनौषध निघण्टु है वह भी संदिग्ध औषधों से भरा हुआ है । बहुत सी औषध तो मिलती ही नहीं जो मिलती हैं उनमें भी आपसी मतभेद हैं । अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन में भी कई बार सन्दिग्ध औषध आती हैं और उन पर चर्चा भी चलती है तो भी सर्व सम्मत अभी तक कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ कि अमुक औषध ही श्रेष्ठ है ।

अतः सबसे पूर्व हमें औषध परिचय की आवश्यकता है, पंसारी और अत्तारों के भरोसे पर ही औषध संग्रह कर लेना बड़ी भूल की बात है ।

रसादि चिकित्सा करने वाले वैद्य भी वनौषधियों के बिना कुछ नहीं कर सकते अतः चिकित्सक को औषध विज्ञान नितान्त आवश्यक है ।

जब से हमने बनौषधियों के ज्ञान में आलस्य किया है तब ही से हमारा वनौषध विज्ञान नष्ट हो गया ।

कैसी-कैसी उत्तम दिव्यौषध शास्त्र में वर्णित हैं आज उनका कोई भी परीक्षक नहीं है, इस विषय को जान कर खेद से कहना पड़ता है कि हम लोग भूल गये हैं ।

कभी वनौषधियों की खोज में कोई विशेष उद्योग नहीं करते । वनों में व पर्वतों पर जाकर खोज करना आवश्यक है, जैसा कि लिखा है—

औषधं नाम रूपाभ्यां जानन्ते ह्यजपावने ।
अनपाश्चैव गोपाश्चये चान्ये बनचारिणः ।।

विदेशी चिकित्सक, यहाँ से औषध ले जाते हैं और उसको स्वरूपान्तर में बना कर यहाँ बेचते हैं, और उनसे जनता को लाभ पहुँचाते हैं। हमें आवश्यक है कि मुख्य-मुख्य स्थानों में औषधियों के विपिन लगायें जैसे कि हरिद्वार ऋषिकुल भूमि में एक ऐसा विपिन लगाया जाये, जिसमें उत्तमोत्तम दुष्प्राप्य बृक्ष लगाये हुए हों । यथा दशमूल के प्रत्येक वृक्ष, कुटज, कपिकच्छू, अर्जुन, अगस्ती, अशोक, हरीतकी, विभीतक, आमलक इत्यादि जिनको जाकर छात्र वर्ग निरीक्षण करें और उनसे सब को लाभ पहुँचायें और उस भूमि की भी शोभा हो ।

अन्य साधारण वृक्षों की अपेक्षा इन द्रुमों से विशेष लाभ प्राप्त हो सकता है ।

इस कार्य के लिये धन की आवश्यकता अवश्य है यदि उद्योगी वैद्य मंडल या ऋषिकुल के अधिकारी चाहें तो कोई कठिन भी नहीं है ।

विशेषज्ञ वैद्यों की आवश्यकता ।

आयुर्वेद चिकित्सा में इस विषय की पूर्ति होना भी आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि

प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि प्रत्येक आयुर्वेद के चिकित्सक प्रत्येक रोग की चिकित्सा करने में पूर्ण अनुभव नहीं रखते और न तो प्रत्येक रोग की चिकित्सा के साधन उनके पास रहते हैं। रोगी जब आ जाता है तब चिकित्सा तो करनी ही पड़ती है चाहे उसकी रोग-निवृत्ति में सफलता हो या न हो। यह सिद्ध बात है कि एक वैद्य अनेक प्रकार के जटिल रोगों की चिकित्सा करने का उत्तरदायित्व नहीं रख सकता, इस कारण चाहे कितना भी प्रसिद्ध वैद्य क्यों न हो प्रत्येक रोग की चिकित्सा में अनुभवी नहीं बन सकता जैसा कि चरकाचार्य ने लिखा है—

"अत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ"।

जिन वैद्यों की प्रसिद्धि एक एक रोग में हुई है वह अवश्य उन उन रोगों में सफलता प्राप्त करते हैं, जैसे कि कोई वैद्य अर्श चिकित्सक हो वह अर्श रोग के जानने के साधन यन्त्र (आले) शस्त्र, पात्र, क्षारसूत्रअनुवीक्षण यन्त्र, तैल, घृत, अग्निकर्म वह सर्व साधन सम्पन्न हो, अर्श रोगी भी तब उसी वैद्य के पास चिकित्सा करवा कर विशेष लाभ पा सकता है। वैद्य भी अर्श रोगी को उसी वैद्य के द्वारा चिकित्सा कराने की अनुमति दें। इसी प्रकार अन्य रोग यथा संग्रहणी, राजयक्ष्मा, जलोदर, कुष्ठ, क्लैव्य, वन्ध्यात्व, मधुमेह, (Diabeties) आदि जटिल विशेषज्ञ वैद्यों की परमावश्यकता है।

देखिये विदेशी चिकित्सक, अमेरिकादि में मुख्य मुख्य रोगों के विशेषज्ञ बनकर देश में कैसी प्रसिद्धि पाते हैं, और वित्त कमाते हैं। इसी प्रकार उक्त रोगों में एक एक विषय के विशेषज्ञ (Specialist) बन जायें तो, बहुत कुछ देश को लाभ पहुँचायें और यश पायें। इस कार्य की पूर्ति के लिए, ऐसे मुख्य मुख्य रोगों के विद्वान् विशेषज्ञ, उनके रोगों में पूर्ण साधन सम्पन्न होकर शिक्षा दें जिससे भविष्य में, विशेषज्ञ बन सकें।

यह कार्य कालिज के संचालकों को अपने हस्तगत करना चाहिये, वह कालिजों में विशेषज्ञ वैद्य बनाने का प्रयत्न करें और उन रोगों की चिकित्सा के साधन यथा यन्त्र, शस्त्र, स्थान आदि की सुव्यवस्था कर दें तो यह महान् कार्य हो जाना सम्भव है। आयुर्वेद के चिकित्सकों में इस प्रकार का अभाव रहने से जनता का ध्यान विदेशीय चिकित्सकों की ओर जाता है, अतः यह परमावश्यक प्रतीत होता है कि वैद्यों में भी विशेषज्ञ वैद्य होने चाहियें। चाहे औषध कोई भी बरतें परन्तु रोग का विशेषज्ञ हो। लण्डन के डाक्टर बेन यक्ष्मा के विशेषज्ञ हैं, दिल्ली के एक महानुभाव ने अपनी पुत्री के राजयक्ष्मा रोग में परामर्श पत्र-द्वारा किया जिसकी फीस १६ गिन्नी दी, डाक्टर बेन साहिब ने, प्रथम वर्णवल चेष्टा आदि का निश्चय किया, पश्चात् यह व्यवस्था दी कि अजादुग्ध १० तोले, गोला कसा हुआ १ तोला, रसोन (लहसन) ६ माशे, देखिये डाक्टर साहिब ने कोई मेडिसिन अपना नहीं नियत किया, परन्तु विशेषज्ञ होने की ख्याति से १६ गिन्नी देकर पत्र-द्वारा परामर्श लेना पड़ा।

इसी प्रकार हमारे वैद्य बन्धु भी रोग विशेषज्ञ प्रसिद्ध हो जाँय तो कितना गौरव हो जिससे आयुर्वेदीय चिकित्सा का पूर्ण आदर हो जाय।

ग्रन्थ प्रकाशन की आवश्यकता।

यदि हम अपने आयुर्वेद साहित्य की ओर दृष्टिपात करें और अन्य चिकित्सा के साहित्य की रचना की ओर देखकर तुलना करें तो, कहना होगा कि हमारी यह विद्या आर्ष होने पर भी उसके साहित्य में कुछ न्यूनता है, हमारे आर्ष ग्रन्थ उपलब्ध चरक-सुश्रुत ही माने

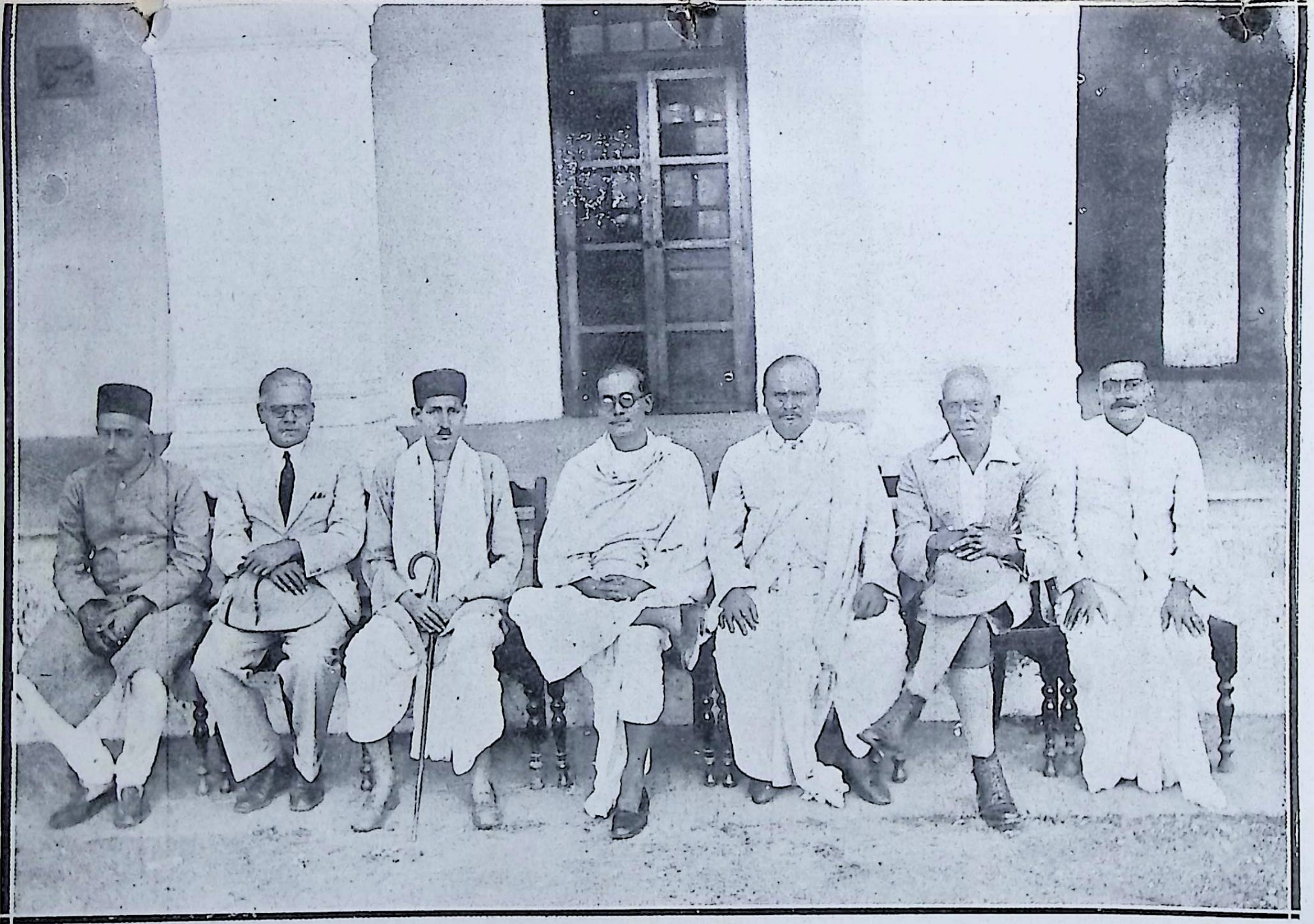

अध्यापकवर्ग आयुर्वेदिक विभाग तिब्बीकोलेज देहली।

१ श्री गोपालदत्तजी	२ श्री. डॉ. वी. एम्. शर्मा	३ श्री चन्द्रशेखरानन्द बहुगुण	४ श्री हरिरञ्जनजी मजूमदार	५ श्री उपेन्द्रनाथदासजी
आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि	M. S M. D.	आ० वि० आ० शास्त्री	एम० ए० भिषगाचार्य	का० व्या० सा० तीर्थ भिषगाचार्य.

जाते हैं, अन्य कई संहितायें तो लुप्तप्राय हो गयीं, बाद में जो ग्रन्थ बने हैं वह इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर बने हैं। विशेष कुछ नवीनता नहीं दिखाई देती; इसी की पूर्ति में स्वनाम धन्य— पं० यादव जी महोदय ने आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला प्रकाशित कर, उसमें, अनेक दुर्लभ हस्त लिखित ग्रन्थों को खोज कर, प्रकाशन द्वारा वैद्य समाज का विशेष उपकार किया है, परन्तु अब वह प्रकाशन क्रम बन्द है। अतः हम उन पूज्य पं० जी से प्रार्थना करें, कि वह प्रकाशन क्रम को प्रचलित रक्खें, जिससे आयुर्वेद साहित्य में नवीन रत्न मिलते रहा करें। अपने आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला के पश्चात् कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ रसकामधेनु, रसपद्धति आदि ग्रन्थ प्रकाशित कर अति उपकार किया है, वैद्यमात्र कृतज्ञ हैं। इसी प्रकार कलकत्ते के महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन महोदय ने प्रत्यक्ष शारीरिक सिद्धान्त निदान शिराधमनी विमर्शात्मक ग्रन्थ रचकर बहुत कुछ उपकार किया है तथा बम्बई के प्रसिद्ध वैद्य पं० हरिप्रपन्नाचार्य जी ने रसयोग सागर नामक वृहत् ग्रन्थ रचकर अत्युत्तम संग्रह किया है, वास्तव में अन्वर्थ ही यह ग्रन्थ है। कोई भी रस देखो उसके अनेक प्रकार मिलेंगे। वैद्य समाज में अनुपम ग्रन्थ है, जिन्होंने देखा है वह उक्त संग्रह की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

इसी प्रकार श्रीगोवर्द्धन शर्मा छांगाणी जी ने बसब राजीय ग्रन्थ प्रकाशित कर वैद्य-मण्डल में बड़ा भारी कार्य किया है?

अन्य कोई वैद्य महानुभावों ने अनेक उत्तम ग्रन्थ रच कर वैद्य संसार में प्रशंसनीय कार्य किया है, इतना होते हुए भी हमको संतोष कर लेना ठीक नहीं है, अभी तक आयुर्वेद के अष्टांगों पर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं उपलब्ध होते हैं। अष्टांग आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग पर पृथक् पृथक् ग्रन्थ होने की बड़ी ही आवश्यकता है। नव्य और पाश्चात्य विषयों पर भी पूर्ण विवेचन होना परमावश्यक है।

चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में वर्णित विषय का पृथक् पृथक् निरूपण होना भी वैज्ञानिक दृष्टि से आवश्यक है।

आयुर्वेद में अन्वेषण विभाग की आवश्यकता।

आयुर्वेद पद्धति क्रम में अन्वेषण की भी बड़ी ही आवश्यकता प्रतीत होती है विना अन्वेषण के औषध निर्माण, रासायनिक क्रिया, रोगी पर दी हुई औषधियों का प्रभाव तथा मल-मूत्र आदि की जांच होना कठिन है।

मान लीजिये हम किसी धातु की भस्म बनाते हैं तो पूर्व उसका संशोधन किया गया पुनः वनस्पतियों के सहयोग से भस्म की गई, भस्म के पश्चात् उसमें क्या कुछ परिवर्तन हुआ, मुख्य पदार्थ कितने अंश में रहा, कितना अंश गया, इसी प्रकार मकरध्वज आदि कूपी पक्व रसों की परीक्षा विना अन्वेषण (रिसर्च) के नहीं हो सकती है। रोगी के मल-मूत्र आदि की परीक्षा भी उनमें किन वस्तुओं का समावेश कितने अंश में है, यह सर्व विषय अन्वेषण द्वारा ही निश्चय हो सकता है अतः इस विभाग के विद्यालयाध्यापकों को अपने विद्यालयों में व्यवस्था करनी चाहिये, ऐसी व्यवस्था होने से आयुर्वेद-विज्ञान में एक नई शक्ति का सञ्चार होगा, और वैद्य लोग भी आज कल के वैज्ञानिकों से कम नहीं माने जायँगे।

योग संग्रह

आयुर्वेदीय चिकित्सा में हम देखते हैं कि बड़ा ही व्यतिक्रम है एक रोग पर एक वैद्य

जो एक औषध नियत करता है दूसरा वैद्य दूसरी और तीसरा वैद्य तीसरी। इसी प्रकार जितने वैद्य रोगी को देखेंगे, उतनी ही औषधों की व्यवस्था होगी, रोगी के चित्त में भी शङ्का उत्पन्न हो जाती है और बहुत वैद्य तो अपनी मनमानी औषध देते हैं। यदि उनसे प्रश्न किया जाय तो वह कह देते हैं कि हमारी अनुभूत कल्पित है। इस प्रकार की व्यवस्था से आयुर्वेदीय चिकित्सा करने में एक दूसरे को कठिनता पड़ती है। जिस औषध का नाम और योग नहीं ज्ञात हो तो विद्वान् वैद्य भी क्या कर सकता है। इसलिए चिकित्सा में सुविधा के अर्थ जैसे गवर्नमेन्ट के यहाँ बृटिश फार्माकोपिया एक पुस्तक रहती है जिसके अनुसार प्रत्येक डाक्टर प्रत्येक रोग में वही औषधि जो फार्माकोपिया में निश्चित हो चुकी है, दे देता है। इससे यह लाभ होगा कि न तो चिकित्सकों को विशेष विचार करने की आवश्यकता होगी और न औषध प्राप्त करने में कठिनता मिलेगी, यह फार्माकोपिया पुस्तक प्रत्येक प्रान्तीय सद्वैद्यों की सम्मति से बनायी जाय जिसका मुद्रण तीन या पाँच वर्ष में हुआ करे। जो योग संग्रह किए जायें यदि वह योग लाभप्रद हों तो रहने दिये जाएँ, अन्यथा वह योग निकाल दिए जाएँ और जो सर्व सम्मति से निश्चित हों वह उसमें सम्मिलित कर दिए जाया करें।

ऐसा करने से आयुर्वेदीय चिकित्सा करने व कराने वाले दोनों को ही विशेष सुविधा रहेगी, प्रत्येक वैद्य एक दूसरे पर विश्वास करने लगेगा, यह औषध अमुक रोगी के लिये उत्तम है व नहीं। आपस में वैद्यों की सम्मति न मिलने में कठिनता न होगी और भारत में वैद्यों की एक प्रकार की ही शास्त्रीय चिकित्सा की व्यवस्था हो जायगी। यह बात शिक्षित वैद्य समुदाय को, कोई कठिन नहीं है, किसी भी प्रान्त का वैद्य मण्डल प्रत्येक प्रान्तीय विद्वानों की एक समिति बनाकर इस कार्य का आरम्भ कर सकता है।

वैद्यों के रजिस्ट्रेशन होने की आवश्यकता।

सरकार की ओर से वैद्यों के रजिष्टर्ड होने का कानून हम समझते हैं कभी न कभी भारत में बन जावेगा। मुम्बई प्रान्त के कई देशी राज्यों; भावनगर, पोरबन्दर, राजकोट, बड़ोदा स्टेट में बन गया है, और यू० पी० गवर्नमेन्ट ने भी बोर्ड आफ इन्डियन मेडीसन के द्वारा वैद्यों की रजिष्टरी करने के नियम बनाए हैं चाहे वह उचित हैं वा नहीं। इसी प्रकार भारत में सर्वत्र ही ऐसे कानून बनाए जायेंगे, इसलिये हमें विचार करना आवश्यक है कि वैद्यों की रजिष्टरी होना आवश्यक है वा नहीं? मेरी सम्मति में तो यही है कि वैद्यों का रजिष्ट्रेशन होना आवश्यक है, इसमें यह लाभ होगा कि आज देश में जो प्रथा चल गई है कि जिसको और कुछ काम न हो वह यद्वातद्वा कुछ हिन्दी पढ़कर इधर उधर की कुछ औषध लेकर वैद्य हकीम बन जाते हैं। जनता इस बात की परीक्षा करती ही नहीं है कि अमुक वैद्य कैसा विद्वान् है वा नहीं! रजिष्ट्रेशन बनने से यह भी विशेष लाभ होगा कि अनपढ़े वैद्य हकीमों का बनना बन्द हो जाएगा, परन्तु रजिष्ट्रेशन के ऐसे नियम बनने चाहिए जिनसे वैद्य और जनता को लाभ हो, यू० पी० सरकार की ओर से जो रजिष्ट्रेशन के नियम बने हैं उनसे कुछ लाभ नहीं है।

रजिष्ट्रेशन निम्नलिखित प्रकार के वैद्यों का किया जाय।

(१) जिन वैद्यों ने वर्त्तमान प्रामाणिक विद्यालयों में नियमानुरूप परीक्षा उत्तीर्ण की है।

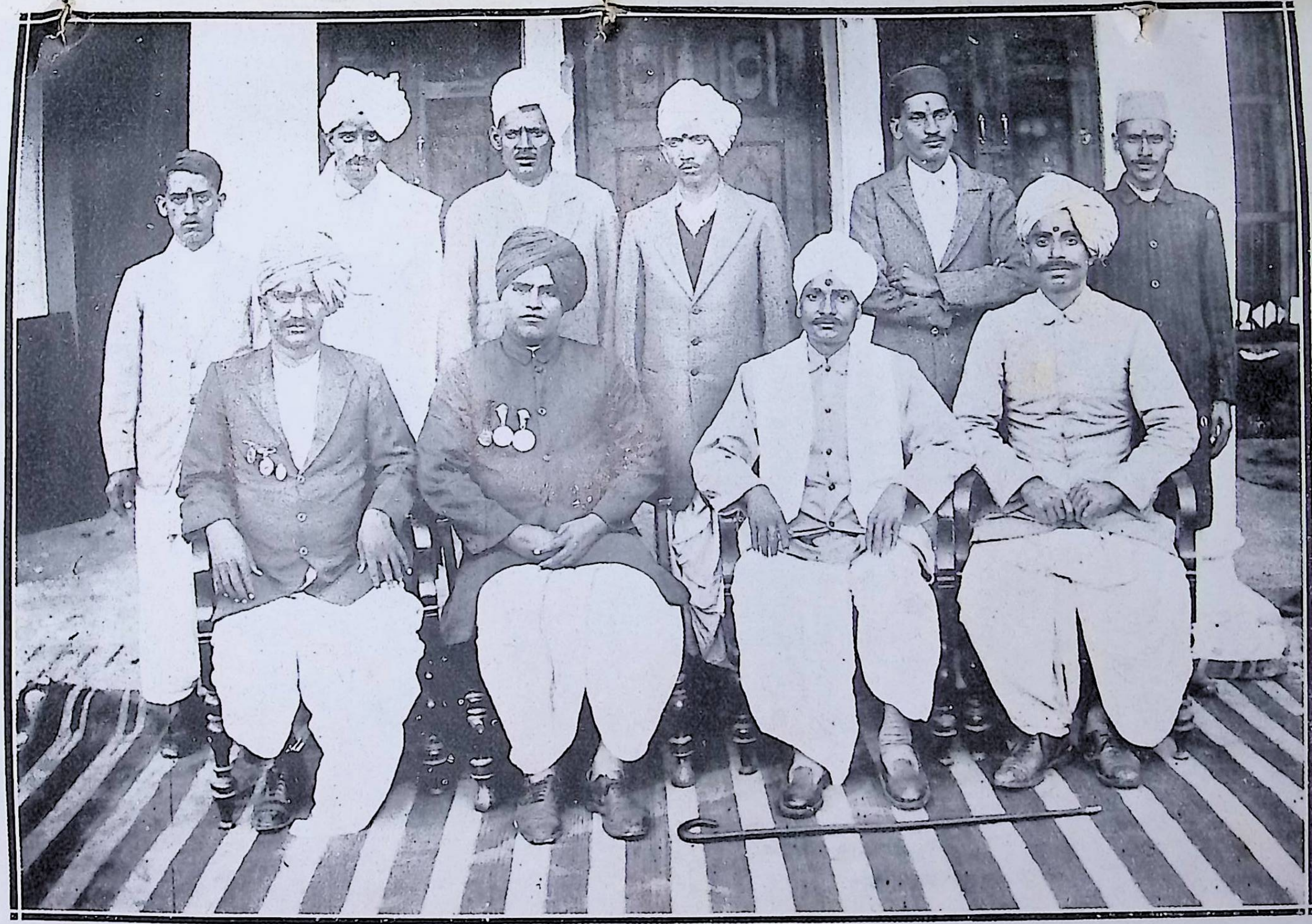

श्री १०८ बाबा कालीकमलीवालेका आयुर्वेदविद्यालय तथा औषधालय हृषीकेश।

वांईओरसे १ श्रेणिमें पं. बालकरामजी शुक्ल आयुर्वेदशास्त्राचार्य, २ पं. श्री दयानिधिजी स्वामी आयुर्वेदाचार्य, ३ पं. श्री हरिदत्तजी आयुर्वेदशास्त्राचार्य,

४ श्री शिवदत्तशर्म्माजी आयुर्वेदाचार्य,

(२) जो वैद्य दस वर्ष से अधिक समय से चिकित्सा कर रहे हैं; परन्तु परीक्षा नहीं दी है, किन्तु पढ़े लिखे हैं।

(३) सरकार की ओर से प्रत्येक प्रान्त में रजिस्ट्रेशन के योग्य व्यक्तियों की जाँच के लिये एक जाँच कमेटी बननी चाहिए, जो योग्यों की जाँच कर रजिस्ट्रेशन के लिए अपनी सम्मति दे।

(४) जो अधिकार डाक्टरों को हैं वह ही अधिकार वैद्य हकीमों को होने चाहिये, परन्तु दो विभाग कर देने चाहिये। यानी उनकी योग्यतानुसार अर्थात् जिन वैद्यों ने उच्च परीक्षा पास की है और दूसरों ने कम शिक्षा पाई है उनमें भेद रखना आवश्यक होगा यह कार्य अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन के द्वारा होना चाहिए।

अखिल भारतीय बृहत् रसायनशाला की आवश्यकता।

वर्तमान आयुर्वेद की उन्नति के उपायों में एक बृहत् रसायन शाला की भी बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है, जो भारत के वैद्यों की सम्मति से स्थापित की जाय और उसमें वैज्ञानिक ढंग से औषधियों का निर्माण हो, सब प्रकार के औषध-निर्माण-यंत्र आदि प्रस्तुत रहें। औषध उचित मूल्य पर बेची जाय, उसकी शाखाएँ भारत के प्रत्येक जिलों में खोलने का ध्यान रक्खा जाय, जिससे भारत में आयुर्वेदीय औषधियों का प्रचार हो सके, और वैद्यों को सुलभता से बनी हुई औषधें प्राप्त हो सकें, यह मानी हुई बात है कि जो वैद्य चिकित्सा कार्य में व्यग्र रहते हैं वह औषध नहीं बना सकते, अतः प्रत्येक वैद्य स्वनिर्मित उत्तमोत्तम औषधियों का संग्रह नहीं कर पाता। जब रोग के अनुकूल औषध ही नहीं प्राप्त हो सकेगी तो रोग निवृत्ति कैसे हो सकती है? जो वैद्य बनाते भी हैं वह लोभ के कारण अधिक व्यय की औषधों में यथावत् खर्च नहीं कर सकते और न परिश्रम ही करते हैं, यही कारण है कि जैसा गुण औषधियों में होना चाहिए वैसा नहीं होता, सस्तेपन पर ही ख्याल रहता है।

कदाचित् किसी वैद्य ने धन व्यय करके बहुमूल्य औषध बनाई भी तो वह विक्रय नहीं होती। इसलिए हम देखते हैं कि उत्तमोत्तम औषध हर एक स्थान पर मिलने का कहीं प्रबन्ध होना चाहिए। इससे यह बड़ा लाभ होगा कि प्रत्येक वैद्य औषध प्राप्त कर सकेंगे जिससे चिकित्सा करने में बड़ी सुविधा होगी, और रोगी को भी लाभ होगा। इस प्रकार की रसायन शाला से सब स्थानों पर एक सी औषधियाँ मिलने का अवसर प्राप्त होगा और आयुर्वेदीय चिकित्सा के साथ चिकित्सा के व्यवसाय की भी वृद्धि होगी, वैद्यों को यश और लाभ होगा, परन्तु यह कार्य तब ही सम्पन्न हो सकता है जब कि वैद्य स्वतन्त्र न बनवायें उसी स्थान से बनी हुई औषधियों पर पूर्ण विश्वास कर खरीदें और सब व्यवहार सत्य रूप से हो इसके संचालन में यथाशक्ति प्रयत्न करें। मैं समझता हूँ इस प्रकार की संस्था से वैद्यक व्यवसाय में बड़ी उन्नति होगी और आयुर्वेदीय औषधें शास्त्रोक्त रीति से बनी हुई सुलभता से प्राप्त हो सकेंगी इसके लिए एक लिमिटेड कम्पनी की आवश्यकता है, जिसका मूलधन पूर्व एक लाख से कम न हो, यदि भारत के वैद्य चाहेंगे तो यह महान् कार्य होना सम्भव है।

आयुर्वेदोन्नति के अर्थ अन्य आवश्यक उपाय।

(१) आयुर्वेद की उन्नति के लिए राजा और प्रजा, दोनों का ही साहाय्य मिलना परमावश्यक है। वैद्यों को सब प्रकार का उद्योग करना चाहिए कि जिससे इस (लेजिस्लेटिव)

असेम्बली व प्रोविन्शियल कौंसिल, म्युनिसिपल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि में स्वयं पहुँचें अथवा ऐसे व्यक्तियों को भेजें जो आयुर्वेद की उन्नति के लिये कटिबद्ध हों।

(२) प्रान्तीय सम्मेलनों के द्वारा अपने अपने प्रान्त में ऐसे आयुर्वेद विद्यालय खोलने की आवश्यकता है जिसमें स्त्री शिक्षा, उपवैद्य (कम्पाउण्डर), परिचारक-परिचारिका, प्रसाविका (दाई) आदि तैयार किए जाँय।

(३) अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन व प्रान्तीय सम्मेलनों का यह कर्तव्य होना आवश्यक है कि वह इस बात का ध्यान रक्खे कि जो वैद्य या डाक्टर किसी नवीन ग्रन्थ को लिखें या किसी औषध का आविष्कार करें या किसी विषय में रिसर्च करें तो उनके सम्मानार्थ पारितोषिक रूप में पदवी या मेडल आदि देकर उन्हें उत्साहित किया करें।

(४) वैद्यों के संगठन की भी बड़ी आवश्यकता है, लिखा है संघे शक्तिः कलौयुगे। प्रत्येक नगर व कस्बों में वैद्य संगठन रूप से वैद्य सभाओं की स्थापना कर परस्पर प्रेम भाव से कार्य करें जो कुछ भी आयुर्वेद की उन्नति के अर्थ हो सकता है उसको सब प्रकार के मतमतान्तर, बड़े-छोटे, ऊँच-नीच भाव को छोड़कर सम्पादन करें, पत्रों में ऊपर, धन्वन्तरिर्विजयतेतराम्, यह पद लिखा करें।

ऐसा होने से आयुर्वेद की उन्नति में पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

विशेष वक्तव्य

यह पञ्चम वैद्य सम्मेलन भिवानी नगर में हो रहा है। इस नगर का नाम (भवानी) होना चाहिए, उसीका अपभ्रंश भिवानी नाम पड़ गया है। भवानी श्री देवी पार्वती का नाम है, वास्तव में यह नगरी श्रीजगन्नन्दिनी पार्वती की ही है। यह नगर पूर्व काल से ही धनी तथा उदार पुरुषों का केन्द्र है, भिवानी के सेठ प्रसिद्ध हैं, यहाँ संस्कृत विद्या के प्रचार में श्री० पूज्यपाद विद्यामार्तण्ड पं० सीताराम शास्त्री जी ने वेद-वेदाङ्गों की शिक्षा का प्रचार किया, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम स्थापन कर, तपोनिष्ठ बनाकर सहस्रों विद्वान् बना दिये, समय-समय पर आयुर्वेद के लिए भी काम करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त भिवानी नगर के उदार, धनवान् लोगों ने आयुर्वेद की सेवा के लिए अपनी धार्मिक कमाई में धन से व्यय कर औषधालय तथा पाठशालायें स्थापित की हुई हैं। उदाहरण स्वरूप—ला० नानूराम आयुर्वेद विद्याल, हलवासिया औषधालय, वैश्य औषधालय, आशाराम दातव्य औषधालय, श्रीकृष्ण औषधालय के सञ्चालन में हमारे रायसाहब, वैद्यराज, आनरेरी मजिस्ट्रेट व सबजज, प्रेसीडेन्ट भिवानी म्युनिसिपल कमेटी ने जो काम किया था, यह वैद्यसमाज के लिए आदरणीय है, यहाँ मैं यह भी निवेदन करना उचित समझता हूँ कि रायसाहब ने मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड रह कर पञ्जाब में सबसे प्रथम हिसार जिले में सन् १९२४ में बोर्ड की ओर से ५ औषधालय स्थापित कराए जो अपना कार्य कर रहे हैं, यदि सब वैद्य पंडित जी की भाँति कार्य करें, तो आयुर्वेद का महान् उपकार हो सकता है। व्यक्तिगत कार्य ही अति उन्नतिप्रद होता है। इस लिए मैं उनकी इन सेवाओं के लिए उनका धन्यवाद प्रकट करता हुआ अपने वैद्य समाज के लिए यह गौरवास्पद समझता हूँ कि जो प्रतिष्ठा आपने जन साधारण (पबलिक) और गवर्मेन्ट में प्राप्त की है, वह केवल आयुर्वेदीय चिकित्सा के व्यवसाय के कारण हुई है। सर्व प्रथम—मि० ए० लतीफी आई० सी० एस०, ओ० बी० ई०, सी० आई० ई० जब वे हिसार में डिप्टी कमिश्नर थे, सन्

अध्यापक मंडल डी. ए. वी. आयुर्वेदिक कालेज लाहोर।

१९१७–१८ में उनके सुपुत्र की चिकित्सा आपके द्वारा हुई, और आपने आयुर्वेद को गौरवान्वित किया। मुझको और वैद्यसमाज को इससे अधिक प्रसन्नता का अवसर और क्या हो सकता है ?

मैं स्थानीय वैद्य मण्डल का परम कृतज्ञ हूँ जिन्होंने आयुर्वेद की उन्नति के लिए सम्मेलन की योजना में पूर्ण परिश्रम किया है तथा नगर के सुप्रसिद्ध, योग्य विद्वान्, पं० रामरक्षपाल जी वैद्यराज का भी नाम विशेष उल्लेखनीय है; जिन्होंने अधिक परिश्रम कर सम्मेलन की सफलता में पूरी सहायता की है तथा नगर के प्रतिष्ठित, धनी-मानी पुरुषों को भी विशेष धन्यवाद है जिन्होंने सम्मेलन को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने में धन तथा परिश्रम से पूर्ण सहयोग दिया है। अन्य सभी सम्मेलन के योगदाताओं को धन्यवाद करता हुआ अपने भाषण को समाप्त करता हूँ।

भिषजां साधु वृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

॥ इति शुभम् ॥

श्री धन्वन्तरये नमः

पंजाब प्रान्तीय सप्तम वैद्य सम्मेलन लुधियाना के सभापति आनरेरी मजिस्ट्रेट व सबजज भिवानी

रायसाहब पंडित श्रीदत्त शर्मा महोदय का

अभिभाषण

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योपा करोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

परम माननीय धन्वन्तरि तुल्य वैद्य महोदय तथा अन्य उपस्थित सभ्यगण !

इस पंजाब प्रान्त के नाना स्थानोंसे आये हुए आयुर्वेदोत्साही चिकित्सक और विद्वानों के इस सप्तम वैद्य सम्मेलन में मेरे समान साधारण योग्यता के पुरुष का सभापति के आसन पर बैठना एक प्रकार से धृष्टता का कार्य है, क्योंकि मुझसे अधिक विद्वान् , अधिक बुद्धिमान् एवं वयोवृद्ध जिनमें मैं पूज्य बुद्धि रखता हूँ, अनेक महोदय यहाँ उपस्थित हैं । उनके सामने यथार्थ ही, मैं अति तुच्छ हूँ । तथापि स्वागतकारिणी समिति के अनुरोध और मित्रवृन्दों की कृपा दृष्टि को अवलम्बन कर और माननीय वैद्यों की आज्ञा पालन के अर्थ, अति विनीत भाव से मैं इस पद को ग्रहण करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप लोग मेरे इस अपराध को क्षमा करेंगे । मेरे विचार में सभापति और सभा का दास होना दोनों एक ही बात है । सुतरां इसी विचार को हृदय में रख कर आप लोगों की सेवा करने का मैं साहस करता हूँ । इस समय मेरी अवस्था ठीक वैसी ही है "प्रांशु लभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।"

प्रसन्नता का समय है कि आज हम इस विस्तृत पंजाब के सूबे के चिकित्सा व्यवसायी, आयुर्वेद प्रेमी विद्वान् , धनी सभी इस सप्तम वैद्यसम्मेलन में अपनी प्राचीन आयुर्वेद विद्या व चिकित्सा प्रणाली पर विचार करने के लिये यहाँ एकत्रित हुए हैं ।

आयुर्वेद का वेदों से सम्बन्ध ।

अभी तक बहुत समुदाय ऐसा पाया जाता है, जो हमारी इस आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ है और उस अनभिज्ञता के कारण ही हम और हमारी चिकित्सा-प्रणाली उन लोगों का आलोच्य विषय बनी हुई है। आयुर्वेद शब्द का अर्थ है कि—

"आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते ॥"

अर्थात् आयु का हित और अहित रोगों के कारण और चिकित्सा यह सब विषय जिस शास्त्र में निर्णीत हैं, उसी शास्त्र का नाम आयुर्वेद है । इतना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि ये

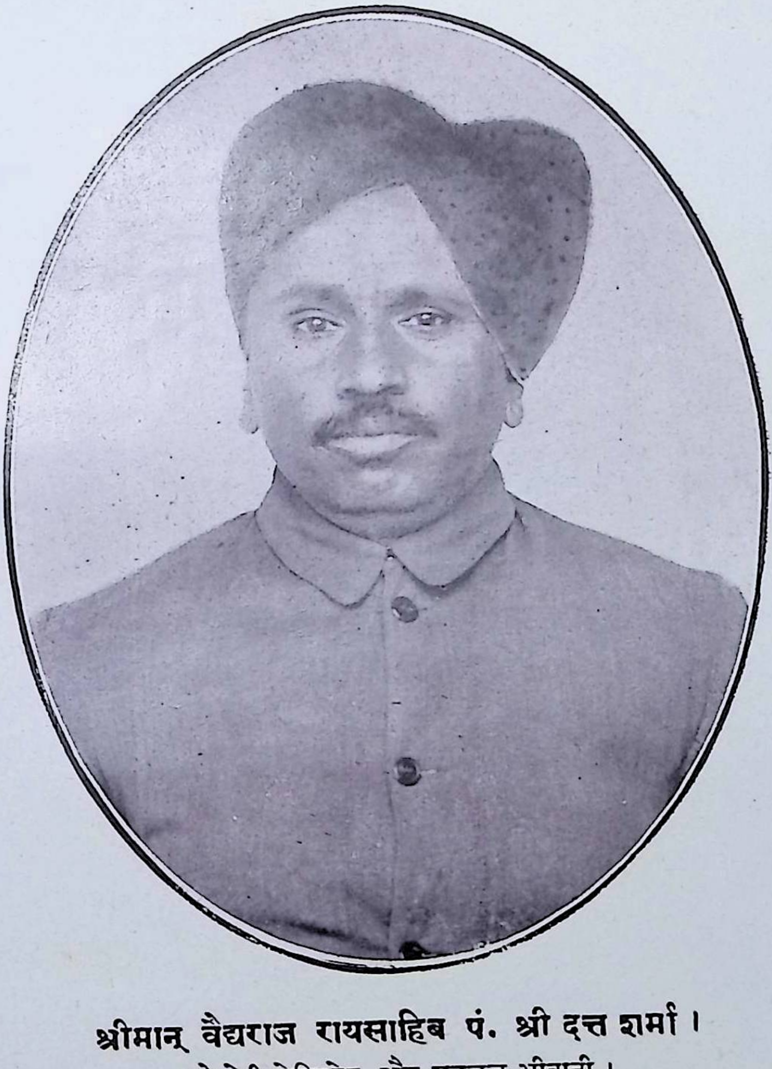

श्रीमान् वैद्यराज रायसाहिब पं. श्री दत्त शर्मा ।
ओनरेरी मेजिस्ट्रेट और सबजज भीवानी ।
प्रेसीडन्ट, म्युनिसिपल बोर्ड (भीवानी) हिसार (सन १९३२) ।
अध्यक्ष, पंजाबप्रान्तीय ७ वैद्यसंमेलन, लुधियाना ।

विषय दूसरे देशों के चिकित्सा शास्त्रों में भी पाये जाते हैं, इसलिये आयुर्वेद का भेदक लक्षण (समाना-समान जीतीय व्यावर्तक लक्षण) यह भी कहा है—

"अनेन पुरुषो यस्मात् आयुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदः प्रकीर्तितः ॥"

इस शास्त्र से मनुष्य दीर्घ आयु लाभ करता है और आयु को जानता है। इसी लिये इसका नाम आयुर्वेद है। इसका अभिप्राय यह है कि संसार में आयुर्वेद के अतिरिक्त जितने चिकित्सा शास्त्र हैं, उनमें दीर्घ जीवन लाभ के अपूर्व उपाय रसायनादि और आयु जानने के उपाय अरिष्ट लक्षण (काल-ज्ञानादि) कहीं भी निर्दिष्ट नहीं हैं। इससे सूक्ष्म दर्शियों के चित्त में स्पष्ट प्रतीत होता है कि आयुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय सब चिकित्सा शास्त्रों से अधिक और गौरवान्वित है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रयोजन केवल रोग विनाश ही नहीं है, प्रत्युत नीरोग शरीर से दीर्घ जीवन लाभ करना आयुर्वेद-कल्पतरु का अमृतमय फल है। और काल ज्ञान द्वारा रोगी के अरिष्ट लक्षण देख कर अब भी दिनों, मासों, वर्षों पहिले रोगी की निश्चित मृत्यु बतला कर वैद्य लोग भिन्न मतावलम्बी चिकित्सकों को विस्मित कर देते हैं।

आयुर्वेद का व्युत्पत्तिगतार्थ और भी विशाल है।

आयुर्वेद केवल मनुष्यों का ही चिकित्सा शास्त्र है, ऐसा नहीं। तरु, लता, पशु, पक्षी प्रभृति की भी चिकित्सा आयुर्वेद के अङ्गीभूत है। इसलिये वृक्षायुर्वेद, गजायुर्वेद, अश्वायुर्वेद आदि आयुर्वेद के नाना अङ्ग कहे गये हैं। यद्यपि हमारे भारतवासियों की धर्मान्धता और दुर्भाग्य से उन अङ्गों के बड़े-बड़े ग्रन्थ लुप्त और नष्ट हो गये, तथापि अग्निपुराण, शालिहोत्र आदि ग्रन्थों में उन अङ्गों का अच्छा परिचय मिलता है। आयुर्वेद के आचार्य लोग तरु-लतादि को स्थावर प्राणी मानते हैं, और प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीमान् डाक्टर जगदीशचन्द्र वसु ने अपनी परीक्षाओं द्वारा सायंटिफिक तरीकों से तरु-लतादि को स्थावर प्राणी सिद्ध करके प्राचीन महर्षियों के विज्ञान की महिमा को प्रत्यक्ष कर दिया है। किन्तु वर्तमान समय में आयुर्वेद केवल मनुष्यों का ही चिकित्सा शास्त्र है, इस सङ्कीर्ण अर्थ में व्यवहृत होता है और उसी अर्थ को मैं अपने वक्तव्य में कह रहा हूँ। आयुर्वेद की उत्पत्ति और प्राचीनता के विषय में 'सुश्रुतसंहिता' में लिखा है कि "इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः।"

अर्थात् आयुर्वेद नामक अथर्व वेद के इस लक्ष श्लोकमय उपाङ्ग को स्वयंभु ब्रह्मा ने प्रजा-सृष्टि के प्रथम ही बनाया था। जब वेद को अनादि माना जावे तो आयुर्वेद को भी अनादि अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। महर्षि चरक भी कहते हैं कि "भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णां वेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्याः ॥" भगवान् वेदव्यास अपने चरणव्यूह नामक ग्रन्थ में कहते हैं कि—"सर्वेषामेव वेदानामुपवेदा भवन्ति ऋग्ववेदस्यायुर्वेद उपवेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदः, अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि" पूर्वापर श्लोक में यद्यपि जरा कुछ विरोध है, तथापि सिद्धान्त यह है कि चारों वेदों में आयुर्वेद के विषय सूक्ष्म रूप से पाये जाते हैं। अतएव ब्रह्मवैवर्त पुराण में स्पष्ट लिखा है—"ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः, विचिन्त्य तेषामर्थं वै आयुर्वेदं चकार सः ॥" उपस्थित समुदाय की धैर्य्यच्युति के भय से वेद

के अधिक मन्त्रों का समावेश न करके केवल दिग्दर्शन मात्र के लिये एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जाता है।

वेदों में आयुर्वेद

यदयातं दिवोदासाय वर्त्तिर्भरद्वाजायश्विना, हयन्तारेवद्रुवाहसचन्ते रथोवां वृषभश्च शिशुंभारश्च युक्ता। ऋ० म० १ सू० १-१६

इस मन्त्र में आयुर्वेद के आचार्य्य दिवोदास और भरद्वाज के काम अश्विनीकुमारों के साथ निर्दिष्ट हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों में आयुर्वेद का प्रसंग जहाँ-तहाँ बहुत पाया जाता है। महाभारत में उदाहरणों की कमी नहीं है—

कच्चित्ते कुशला वैद्याः अष्टाङ्गे च चिकित्सिते।

महा० सभापर्व ३५ अ०

आयुर्वेदविदस्तस्मात् त्रिधातुं मां प्रचक्षते।

महा० शान्ति पर्व १३७ अ०

इसके अतिरिक्त दर्शन शास्त्रों में भी आयुर्वेद का प्रसङ्ग मिलता है जिससे आयुर्वेद का प्राचीनत्व सिद्ध है।

मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यात् तत् प्रामाण्यम्।

(गौतम सूत्र)

स्मृति ग्रन्थों में भी 'याज्ञवल्क्य स्मृति' अति प्राचीन ग्रन्थ है, उसमें भी अन्न विपाक क्रिया और अस्थिगणनादि आयुर्वेद के विषय स्पष्ट लिखे मिलते हैं। उपरोक्त प्रमाणों से साबित है कि आयुर्वेद का सम्बन्ध वेदों से है और आयुर्वेद भी एक प्रकार से ईश्वरीय ज्ञान है जो अनादि काल से है। इसलिये संसार की तमाम चिकित्सा प्रणालियों का जन्मदाता आयुर्वेद है, और वर्तमान समय की प्रचलित चिकित्सा प्रणालियाँ जिनका अस्तित्व, अनुभव पर निर्भर है, वे आयुर्वेद की सन्तति कही जा सकती हैं। क्या मनुष्यों के अनुभव और ईश्वरीय ज्ञान की समानता हो सकती है?

आक्षेप और उत्तर।

आजकल के सभ्य संसार के लोग और वर्तमान समय के अंग्रेजी चिकित्सक कई बार कहते हैं कि आयुर्वेद में अनाटमी—(Anatomy) शरीर-रचना पूर्ण नहीं है। और न ही रोगों का निदान पूर्णरूप से वर्णित है, आयुर्वेदीय साइन्स, वैज्ञानिक (सायंटिफिक) तरीकों से यह चिकित्सा प्रणाली प्रमाणित नहीं है। यह बात हम स्वीकार कर सकते हैं कि वर्तमान समय में आयुर्वेदीय चिकित्सकों में से ऐसे चिकित्सक अवश्य पाये जाते हैं जो आयुर्वेदीय प्राचीन सिद्धान्तों और तत्वों से अनभिज्ञ हैं, या उन पर मनन या गवेषणा नहीं करते हैं। किन्तु यह बात सर्वथा निर्मूल है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली उपरोक्त सिद्धान्तों से हीन और अपूर्ण है, क्योंकि सर्वप्रथम आयुर्वेद का पूर्वाङ्ग शारीर विद्या (Anatomy and Physiology) के सीखने का उपदेश आचार्यों ने किया है—

"शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेदयो भिषक्।
आयुर्वेदं सकात्स्न्र्येन वेदलोक सुख प्रदम्॥"

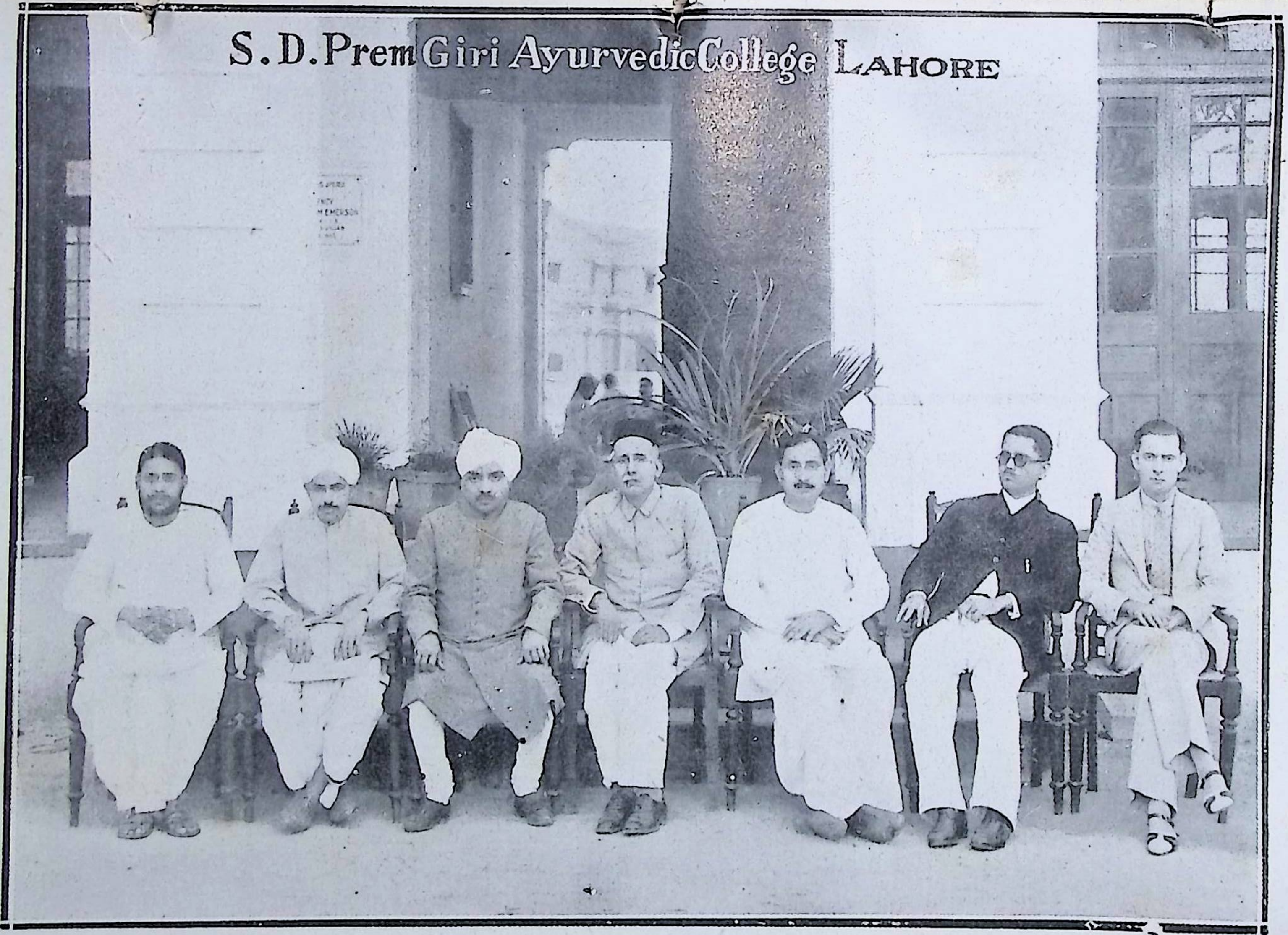
S.D.Prem Giri Ayurvedic College LAHORE

बाईं ओरसे–१ सर्वश्री डा० राधाकृष्ण पाण्डेय L. M S F. २ प्रो० हरिदत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, ३ पं. दुर्गादत्तजी आयुर्वेदाचार्य प्रिन्सिपल,
४ कविराज नरेन्द्रनाथजी मित्र, (अवैतनिक शिक्षक), ५ क. नरेन्द्रनाथशास्त्री आयुर्वेदाचार्य वाइस प्रिन्सिपल, ६ प्रो० बसन्तलालजी B. A. आयुर्वेदाचार्य,
७ प्रो० [illegible] आयुर्वेदाचार्य (अवैतनिक शिक्षक)

प्राचीन आयुर्वेद में शारीरिक ज्ञान कैसी पूर्णता को प्राप्त हुआ था, इसका ज्वलन्त दृष्टान्त यह देखिये कि त्वचा के वर्णन में 'सुश्रुत' सात प्रकार और 'चरक' छः प्रकार की त्वचा का विवरण लिखते हैं। उसी प्रकार वर्तमान समय के सूक्ष्म दर्शक यन्त्र (माइक्रोसकोप) (Microscope) द्वारा देखने से भी त्वचा का विभाग दृष्टिगत होता है। सुश्रुत आचार्य्य त्वचा के प्रथम स्तर (परदे) को अवभासिनी कहते हैं। अंग्रेजी सूक्ष्म परीक्षा से भी यही प्रतीत होता है कि प्रथम स्तर (Epidermis) ही कृष्ण और गौरादि वर्णों का आधार है।

इसी प्रकार कलाओं का वर्णन भी अति मनोहर है। कला शब्द का अर्थ रेशमी वस्त्र के सदृश सूक्ष्म झिल्ली (Membrance) है। शव-च्छेद कर प्रत्यक्ष देखने से और शास्त्र को विचारने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह झिल्ली ही धातु और आशय के मध्य में मर्यादा या व्यवधान है। यथा "कलानां मधात्वाशयान्तर मर्य्यादा।" अर्थात् अस्थि, मांस, मेद, मज्जा आदि जहाँ ही देखे जाते हैं, वहाँ ही उनके धारण करने की कला है। इसी तरह स्नायुओं का वर्णन भी आयुर्वेद में बहुत सुन्दर रीति से पाया जाता है। जिस रक्त-संवहन-क्रिया के अविष्कार को लेकर सर विलियम हार्वी योरोप खंड में प्रसिद्ध हुए उसी रक्त संवहन क्रिया (Circulation of Blood) का मनोहर वर्णन आयुर्वेद में किस प्रकार मिलता है, भगवान् चरक हृद्-यन्त्र को लेकर कहते हैं, "तेन मूलेन महता महामूला मतादश ओजोवहाः। शरीरेऽस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः॥ येनोजसा वर्तयन्ति प्रीणिता सर्वं जन्तवः। संवर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुनः॥" (च० सू० ३० अ०) रक्त हृदय से निकल कर सर्व शरीर में कैसे प्रवाहित होता है और शरीर में घूम-फिर कर हृदय में लौट आता है, इस विषय पर कैसा स्पष्ट कहा है कि "संवर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुनः" क्या यह शरीर-रचना और रक्त-संवहन क्रिया अपूर्ण कही जा सकती है?

जहाँ तक रोग परिचय निदान का सम्बन्ध है, वह भी आयुर्वेद में न्यून नहीं है, प्राचीन काल के सभी शास्त्र सूत्रों में प्रणीत हैं उस समय की ग्रन्थ रचना का प्रकार बहुत सारगर्भित सूत्रों में था। उस प्रणाली के आधार पर ही आयुर्वेदाचार्य्यों ने ग्रन्थ लिखे हैं। निदान-रोग-परीक्षा का जहाँ तक वर्णन मिलता है, वह मार्मिक और सारगर्भित है। आज कल के तरीके के मुताबिक एक श्लोक पर एक भिन्न पुस्तक लिखी जा सकती है "ग्रहोविण्मूत्र वातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः। जङ्घोरुत्रिक हृत्पुष्ट रुक शोफश्च गुदास्थिते।" इस एक ही श्लोक में निदान सम्प्राप्तिरूप, किस प्रकार से कितने रोगों का वर्णन कर दिया गया है! अपेंडिसाइटिस, पित्ताश्मरी, आंतों का शोथ, गुर्द की व्याधियें, मल व मूत्र के दोष और तज्जन्य व्याधियें और पेट में गैसिज का पैदा होना, किसी भाग में स्टोन का होना, आमाशय के दोष हृत्शूलजङ्घा ऊरू त्रिक पीठ शूल आदि का वर्णन किन गम्भीर शब्दों में किया है! इसी तरह अन्य रोगों का भी वर्णन आयुर्वेद में पाया जाता है, जिससे विद्वान् वैद्य पूर्ण कल्पना रोग व परीक्षा करते हैं।

जहाँ तक आयुर्वेद के वैज्ञानिक होने का प्रश्न है, वह इतना स्पष्ट है कि थोड़े से भी विचार से ध्यान में आ सकता है। जैसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीन शक्तियें सृष्टि को उत्पन्न, संरक्षण व संहार करती हैं, उसी तरह रज, तम गुणं अध्यात्मिक उन्नति अवनति करते हैं, उसी प्रकार वात, पित्त, कफ, शरीर को धारण व विकृत करते हैं। जिन-जिन परमाणुओं का शरीर में न्यूनाधिक्य होता रहता है, उसको निकालने व पूरा करने का कार्य स्वयं होता रहता है, जब कभी

उसमें दोष आता है तो व्याधियें उत्पन्न होती हैं। उसकी चिकित्सा उसी सिद्धान्त पर की जाती है जहाँ जिसका न्यूनाधिक है व तत्समान गुणवाले द्रव्य से पूरा किया जाता है, हर एक द्रव्य में रस, वीर्य, विपाक शक्ति का प्रभाव विद्यमान है, उसकी मीमांसा आयुर्वेद में विशिष्ट प्रकार से की है। उस विज्ञान के आधार पर औषधोपयोग होता है।

हर एक को जानकर आश्चर्य होगा कि प्रत्येक वैद्य से पुराकाल में यह आशा की जाती थी कि वह सड़कों की धूल मिले हुए, तालाबों के जल में घुले हुए विष का व छायादार पेड़ों की हवा में मिले हुए विष का पता लगा कर उनका विष (Antidotes) भी मालूम करें, जैसा कि सुश्रुत में है।

"पन्थानमुदकं छायां भक्तं यव समिन्धनम्।
दूषयन्त्यरयस्तञ्च जानीयात् शोधयेत्तथा॥

सु॰ सू॰ अ॰ ३४।

इसके अतिरिक्त आकाश से चिड़ियों का थक कर गिरना, विषाक्त वायु और धूएँ की पहिचान है। उसी वायु और धूएँ के सूखने से खाँसी, जुकाम, शिरशूल, और तीव्र चक्षु रोग हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में विषैले वायु मण्डल को लाक्षा, हरिद्रा, अतिविषा, अभया, अब्द, रेणुका, एला, तेजपत्र, कुष्ठ, प्रियंगु को जमीन पर जला कर वायुमण्डल को शुद्ध करना चाहिये जैसा कि सुश्रुत में है,—

"धूमेऽनिले वा विष संप्रयुक्ते, खगाः श्रमार्ताः प्रपतन्ति भूमौ।
कास प्रतिश्याय शिरोरुजश्च, भवन्ति तीव्राः नयनामयाश्च॥
लाक्षा हरिद्रातिविषाभयाब्द, हरेणुकैलादल वल्ककुष्ठम्।
प्रियंगुकाश्चापि अनले विधाय, धूमानिलौ चापि विशोधयेत्॥"

सुश्रुतकल्प अ॰ ३

आयुवद में विष-परीक्षा में यहाँ तक वर्णन मिलता है कि कोई विष मिली हुई वस्तु किसी द्रव पदार्थ के साथ मिला कर कौवे पक्षी पर छिड़क दी जावे तो या तो वह मर जायेगा या विशेष तौर से पर फड़ फड़ायेगा। जिस आयुर्वेद में इन सूक्ष्म सिद्धान्तों का विवेचन है, क्या वह (Unscientific) अन्सायंटिफिक और अवैज्ञानिक कहा जा सकता है?

हां यह बात बड़े दुःख के साथ कहनी पड़ती है कि वर्तमान समय में राज्याश्रय के अभाव से ऐसी उच्चतम शिक्षा तथा गवेषणा का पूर्ण प्रबन्ध नहीं है, जिससे योग्य विद्वान् पर्याप्त संख्या में उत्पन्न हो सकें और इस प्राचीन सायंस के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रचार भारत के कोने-कोने में कर सकें।

गूढ़ विषयों पर निबन्ध—ट्रैक्टों—की आवश्यकता।

वंश-परम्परा व गुरु-परम्परा से शिक्षित विद्वानों की अब भी पञ्जाब में कमी नहीं है, उन सबका ध्यान इधर आकृष्ट किया जावे कि वे अपने-अपने अनुभवों तथा विचारों से उन विषयों पर जो आयुर्वेद में संक्षिप्त रूप से वर्णित हैं, प्रकाश डालें। जैसे फेफड़ा-हृदय, जिगर-तिल्ली, गुर्दे, पित्ताशय और आंतों की व्याधियें ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों (नेत्र, कान, नाक) की चिकित्सा क्रम क्या होना चाहिए। भिन्न मतावलम्बीय चिकित्सकोंका क्या सिद्धान्त है और

वह कहां तक उपादेय तथा ग्राह्य है। एक वर्ष के सम्मेलन बाद दूसरे वर्ष में ऐसी बातों का प्रकाश होने से सर्वसाधारण पब्लिक और परिमित सीमा के शिक्षित वैद्यों के लिए यह कार्य बहुत ही लाभप्रद होगा। इसके अतिरिक्त वैद्यों से यह भी प्रार्थना है कि वे जीवाणु-विद्या (कृमिशास्त्र) व्यवहारायुर्वेद, सार्वजनिक स्वस्थवृत्त,—(Hygiene and public Health) अगदतन्त्र, मानसरोग विज्ञान, प्रसूतितन्त्र, स्त्रीरोग विज्ञान, वैद्यकोपयोगी उद्भिजशास्त्र आदि विषयों पर प्रामाणिक आधार पर गवेषणा पूर्ण उत्तमोत्तम निबन्ध लिखने की कृपा करें।

प्रचलित वनस्पति व औषधों का निघण्टु में समावेश करने का विचार।

इसी तरह सम्मेलन के लिए यह भी एक बहुत आवश्यक कार्य है, जिस पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। वह यह है कि बहुत सी ऐसी वनस्पतियें व जड़ी-बूटी पाई जाती हैं जो बहुतायत से कई तरह के रोगों में विशेष लाभप्रद हैं, किन्तु उनका आयुर्वेदीय निघण्टु में समावेश नहीं है, जैसे वनफसा, खूबकला, उशवा, रेसा खतमी, हजरतवेग, जरिश्क, कालादाना, गुड़मार अम्बर आदि-आदि पर विचार किया जाकर यूनानी आदि चिकित्सा ग्रन्थों से और अनुभव से इनके गुण-दोषों पर विवेचना की जावे। तीन चार वैद्य अपने जिम्मे यह कार्य लें और आगामी वर्ष में वे अपनी लिखित सम्मति सम्मेलन में स्वीकृति के लिए पेश करें, तदन्तर ऐसे द्रव्यों का संग्रह निघण्टु ग्रन्थों में किया जावे। इसी तरह अत्यधिक प्रचलित अंगरेजी औषधों के सम्बन्ध में कोई मत सम्मेलन को प्रकट करना चाहिए, जिससे सम्मेलन की उपयोगिता और महत्व बढ़े।

पञ्जाब आयुर्वेदीय फार्माकोपिया।

एक सर्वसम्मत आयुर्वेदीय फार्माकोपिया भी प्रस्तुत होनी चाहिए, उसमें पञ्जाब के भिन्न-भिन्न स्थानों में जिस-जिस व्याधि पर जो-जो औषधोपयोग होता है, उनका निर्देश हो। बहुत से वैद्य लोग अङ्गरेजी में औषधों का सम्मिश्रण कर उपयोग करते हैं, ऐसी अङ्गरेजी औषधियें सम्मेलन से स्वीकृत की जाकर आयुर्वेदीय फार्माकोपिया में शामिल की जावें, वरना आयुर्वेदीय चिकित्सक होकर और डाक्टरी चिकित्सा की अनधिकार चर्चा या उपयोग करते हैं, इससे आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणाली को हानि होती है। इसलिए वैद्य सम्मेलन के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह कोई व्यवस्था निश्चित करे।

परिष्कृत चिकित्सा मार्ग।

वर्तमान समय की डाक्टरी चिकित्सा के नित्य नये आविष्कारों की चकाचौंध से आजकल के सभ्य समाज की श्रद्धा और विश्वास दिनोंदिन उधर बढ़ता जा रहा है, इसलिए वैद्यसमाज को अपनी चिकित्सा प्रणाली को परिष्कृत और आकर्षक बनाना चाहिये। आजकल इञ्जेक्शनों के प्रचार का बाहुल्य है और कहा जाता है कि यह आविष्कार अद्भुत है। अभी तक यह संसार को ज्ञान नहीं है कि कोई नया आविष्कार नहीं है। पुराकाल में भी ये इञ्जेक्शन होते थे, जैसा कि चरक चि० अ० २८ में पाया जाता है कि—

"स्वेदनं स्नेहसंयुक्तं पक्षाघाते विरेचनं ।
अंतरा कण्डुराङ्गुल्या शिरावस्त्यग्नि कर्मच ॥"

इस शिरावस्ति का अर्थ इंटरावेनस इञ्जेकशन है। हमारे श्रीकृष्ण औषधालय भिवानी में इस बात की परीक्षा की जा रही है कि वासा (अडूसा) का इंजेकशन तपेदिक में कहाँ तक लाभप्रद है। वैद्यों को शिरावस्ति के कार्य में आगे बढ़ना चाहिये और जब लोग आजकल की अंग्रेजी चिकित्सा में हलाहल मिश्रित औषधोपयोग तथा इन्जेकशन लेते हैं, तो रसधात्वादिक के इन विरोधक भावों को कि चालीस वर्ष की आयु से पहले के मनुष्यों को रसधात्वादि अहितकर हैं, लोगों के हृदय से निकालने का यत्न करना चाहिये और इनकी उपयोगिता पर वैद्यों को दृढ़ता पूर्वक प्रचार करना चाहिये। क्योंकि—

"अल्पमात्रोपयोगित्वात् अरुचेर प्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वात् औषधेभ्योधिकोरसः ॥"

इसके अतिरिक्त परिचारक और परिचारिकाओं की सुविधा करने का प्रयत्न करना भी परमावश्यक है। जहाँ तक हो, चिकित्सा के अङ्गों को पूरा करने की सुव्यवस्था की जावे, जिससे वैद्य लोग यशस्वी और ख्यातिनामा हों।

वैद्यों में विशेषज्ञ चिकित्सकों की आवश्यकता।

आप सब लोग जो वैद्यक-चिकित्सा व्यवसायी हैं, अपनी योग्यता से परिचित हैं और प्रतिदिन के अनुभव से भी प्रमाणित हैं कि ऐसे कठिन रोगों के निदान व चिकित्सा के जानने वाले वैद्यों में बहुत कम पाये जाते हैं, जैसे गल रोग, नासिका व कर्णरोग और नेत्रों की व्याधिएँ तरह-तरह की देखने में आती हैं। अंग्रेजी विज्ञान ने उपरोक्त रोगों की चिकित्सा में बड़े-बड़े आविष्कार किये हैं। अकेले नेत्रविज्ञान की उन्नति को देखकर आश्चर्य होता है। मैं इस त्रुटि को बहुत समय से अनुभव करता आया हूँ और उसके लिए मैंने अपने श्रीकृष्ण औषधालय भिवानी के प्रधान वैद्य कविराज पुरुषोत्तमदत्तजी, वैद्यवाचस्पति को बम्बई एक साल भेज कर नेत्र-विज्ञान की शिक्षा दिलाई है, तदनन्तर भिवानी में 'किशनलाल जालान आई अस्पताल' की स्थापना हुई। आप आश्चर्य करते हुए हर्षित होंगे कि अभी इस आँखों के हस्पताल को खुले हुए दो साल पूरे नहीं हुए, किन्तु इस थोड़े से समय में ५० हजार रोगियों की चिकित्सा की गई और १४०० आँखों के औपरेशन किये गए हैं। हर्ष की बात है कि पञ्जाब गवर्नमेण्ट व इन्सपेक्टर जनरल सिविल होस्पिटल पञ्जाब ने अपनी निम्नलिखित चिट्ठी द्वारा हमारे कार्य की प्रशंसा तथा कार्य-कर्ताओं को धन्यवाद किया है।

Inspector General of Civil Hospitals,
Punjab,
Lahore, Dated the 31st of July, 1934.

Dear Sir,

Kindly convey my congratulations to all those who are responsible for the free work done in the Krishanlal Jalan, Free Eye Hospital, Bhiwani, during the period Ist

January, 1933 to 31st January, 1934, which is very much appreciated by the Punjab—Government (Ministry of Education).

Yours faithfully,
Sd/- REINHOLD.

To

Rai Shahib Shri Dutt,
Hony. Manager,
K. J. Free Eye Hospital,
Bhiwani, Hissar District.

विशेष हर्ष की बात यह है कि कोकेन और क्लोरोफारम का कोई उपयोग न करके आंखों का औपरेशन तथा चिकित्सा की जाती है। चेष्टा की जा रही है कि नेत्र विज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदीय औषधें तथा प्रणाली को परिष्कृत करके आपके सामने लाया जाय। इस अस्पताल के साथ हमने नेत्र-विज्ञान की प्रैक्टिकल शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। योग्य वैद्यों को उसमें लेकर शिक्षा दी जाती है। गत सालमें ऋषिकुल के दो स्नातकों ने यहां नेत्र विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की है। कविराज राजेन्द्रदेव शुक्ल एल० ए० एम० गोलागोकर्णनाथ यू. पी. में नेत्र-चिकित्सा कर रहे हैं। इसी तरह बान्दीकुई में मोहनलाल गोस्वामी ने भी नेत्र-चिकित्सा आरम्भ की हुई है। प्रसन्नता की बात है कि दोनों को नेत्र-चिकित्सा में सफलता मिलने के समाचार आरहे हैं।

मेरी इस स्कीम में सहायता देनेवाले श्रीमान् भिवनी-निवासी सेठ किशनलालजी जालान बम्बई हैं। जिन्होंने हृदय खोलकर इस कार्य के लिए दान दिया है, और कविराज पुरुषोत्तमदत्तजी हैं जिन्होंने बड़े परिश्रम, त्याग तथा सेवा-भाव से योग दान दिया है, धनी सज्जनों तथा वैद्यों को इनका धन्यवाद करते हुए अनुकरण करना चाहिए, जिससे हम सर्वसाधारण की सेवा करते हुए आयुर्वेद-महिमा की पताका दूसरे देशों में फहरा सकें।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल कमेटियों में वैद्यों की नियुक्ति के लिये यत्न करने की आवश्यकता।

बहुत प्रस्ताव व भाषण इस विषय पर हर साल होते हैं, कि वैद्यों की नियुक्ति प्रत्येक कमेटी व डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में होनी चाहिए। यह बहुत आवश्यक है, किन्तु इसमें सफलता उस समय तक नहीं होगी जब तक वैद्य लोग अपने प्रभाव से पब्लिक ओपिनियन को अपने साथ न कर लें। कमेटी व बोर्डों के मेम्बरों पर आयुर्वेद-विद्या व वैद्यों का पूर्ण प्रभाव होना चाहिए और जहाँ तक हो वैद्यों को स्वयं भी मेम्बर बनने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि दूसरे मेम्बर जो वैद्य नहीं हैं, आयुर्वेद विरोधियों के साथ दृढता के साथ वैद्यों की तरफ से वकालत नहीं करते हैं। मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ कि जब मैंने सन् १९२४ में जिला हिसार के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मेम्बर होकर आयुर्वेदीय औषधालय खोलने की स्कीम पेश की और तीन ग्रामों में तीन वैद्यों की नियुक्ति करके औषधालय खोले गये, इसके कुछ मास बाद इन्हीं ग्रामों

में अङ्गरेजी हस्पताल खोले जाने की तजवीज सिविल सर्जन साहब ने पेश की और उन्हीं ग्रामों में औषधालय के स्थान पर हस्पताल खोले गये और हमने अपने औषधालयों को दूसरे ग्रामों में बदला दिया। इस तरह से जहाँ-जहाँ हम औषधालय खोलते गये, वहाँ-वहाँ ही हस्पताल खोले जाने लगे। अन्ततोगत्वा इस मुकाबिले में तीन औषधालयों को हटाने के उद्देश्य से पन्द्रह हस्पतालों की स्थापना हुई और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में यह प्रस्ताव सिविल सर्जन द्वारा पेश किया गया कि आयुर्वेदीय औषधालयों से कोई लाभ नहीं है, इन्हें उठा दिया जाए और यदि जरूरत हो तो उन ग्रामों में वैद्यों के स्थान में ट्रेन्ड कम्पौण्डर रक्खे जायँ। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मैं उस समय बोर्ड का मेम्बर न होता तो आयुर्वेदीय औषधियों की इतिश्री हो जाती। मेरी उपस्थिति में और भगीरथ प्रयत्न करने पर भी कोई विशेष उन्नति और औषधियों की वृद्धि न हो सकी। इससे आप जान सकते हैं आपके इस सम्मेलन के प्रस्ताव क्या असर रखते हैं जब तक कि वैद्य लोग अपने-अपने डिस्ट्रिक्ट तथा लोकल कमेटियों में इस कार्य के लिए पूर्ण यत्न न करें।

इसके अतिरिक्त वैद्यों को अपने धनी रोगियों से आयुर्वेदीय औषधालय खुलवाने के लिए यत्न करना चाहिए। यदि वैद्य लोग चाहें तो यह कोई कठिन कार्य नहीं है। मैं इस प्रकार के उदाहरण पेश करता हूँ कि मैंने कई अपने रोगियों से औषधालय खुलवाये हैं। भिवानी का आशाराम आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय एक जीती जागती मिसाल है। मैं इस सम्मेलन में आये हुए वैद्य बन्धुओं से प्रार्थी हूँ कि वे भविष्य में वास्तविक कार्यक्रम को स्कीम को अपने हाथ में लेकर इस सम्मेलन को सफल बनावें।

आयुर्वेद की उन्नति भारत की दरिद्रतानाशक और स्वराज्य प्राप्ति का साधन है।

अभी तक देश में ये भाव पूर्णतया जागृत नहीं हुए हैं कि इस वैद्यसमाज ने कहाँ तक इस प्राचीन आयुर्वेदीय साइन्स की रक्षा करते हुए देश सेवा की है, अब भी सर्वसाधारण जनता तथा ग्राम-निवासियों की ८० फी सदी चिकित्सा वैद्य व हकीमों द्वारा होती है। बड़े बड़े नगरों में भी ४० फी सदी से ज्यादा डाक्टरी चिकित्सा के प्रेमी अब भी नहीं पाये जाते हैं, तो भी इन थोड़े से भारतीयों के कारण हर साल करोड़ों रुपया भारत से बाहर दूसरे देशों को जा रहा है। गवर्नमेण्ट की रिपोर्टों से जाहिर है कि सन् १९११ में (Chemical and Medicens) २,१८,०००००) रुपये की केमिकल और मेडिसिन भारत में आई हैं! किन्तु अब सन् १९३१-३२ में केमिकल (Chemical) २,५७,००,०००) रुपये की और (Medicens & Drugs) मेडीसिन एण्ड ड्रग्स १,८१,००,०००) रुपये की आई। अर्थात् सन् १९३२-३३ में केमिकल और मेडीसिन चार करोड़ अड़तालिस लाख रुपये की इस पुण्य भूमि में आई हैं। सन् १९११ से दो करोड़ तीस लाख रुपये की ज्यादती हुई है। दिनों दिन अङ्गरेजी दवाइयों में इन भारतीय एजेण्ट डाक्टरों द्वारा करोड़ों रुपये विदेश भेजे जाते हैं, हम सुनते हैं कि कांग्रेस की मूवमेण्ट के बाद लोगों का स्वदेशी के प्रति प्रेम बढ़ा है किन्तु जब हम चिकित्सक व सभ्य समाज, लीडरों के औषधोपयोग को देखते हैं, उस समय हमारे माननीय लीडरों की नब्ज (नाड़ी) डाक्टरों के हाथ में पाते हैं, यही नहीं बल्कि बहुत से महानुभावों की व्याधि के नाश करने के परमाणु ही इस भारत वसुन्धरा की वायु में नहीं रहे! इसीलिए

उन बेचारों को अपनी चिकित्सा के लिए भी हर बार योरोप-यात्रा करनी पड़ती है, और यही कारण है कि भारत की दरिद्रता बढ़ती जा रही है, और लाखों भारत के सपूत रोटी के लिए मुहताज हैं। मैं अपने वैद्य वन्धुओं से प्रार्थी हूँ कि वे तत्परता से अपनी विद्या के प्रभाव द्वारा देश का ध्यान इधर आकर्षित करें, ताकि करोड़ों रुपया भारत का बचाकर स्वराज्य प्राप्ति में सहायक बनें।

उपसंहार

अन्त में यह कह देना उचित समझता हूँ कि आनेवाला समय वैद्य-समाज के लिये तभी अनुकूल होगा, जब उसमें पारस्परिक प्रेम, संगठन, उदारता, सहिष्णुता के साथ कर्मवीरता होगी और अपनी बुद्धि-विद्या के नित नये आविष्कारों से आयुर्वेदीय सिद्धान्तों को प्रकट करते रहेंगे। एक दूसरे से परामर्श तथा सम्मति लेने देने मे संकोच का त्याग भी एक बहुत आवश्यक अङ्ग हमारी सफलता का होगा, किन्तु जिन महोदयों से सम्मति ली जावे वे भी उदार हों। क्योंकि स्वार्थ परायणता से जिस रोगी के लिये सम्मति लेने गये और सम्मतिदाता वैद्य ने उसके रोगी को छीन लिया तो भविष्य में वह पद्धति प्रचलित नहीं हो सकती। इन्हीं कारणों से आयुर्वेद की दिनों दिन हानि होती है, इसके अतिरिक्त एक आवश्यक अंग आयुर्वेद का चिकित्सा की सफलता के लिये मन्त्र पाठ है। जिन लोगों का वेद पर विश्वास है, वे अपने मन्तव्यानुसार रोग निवृत्ति के लिये चिकित्सा के साथ-साथ मन्त्र पाठ का भी साधन रक्खें, जिससे ईश्वर हमारी कामनाओं को सफल बनावें।

ॐ शान्तिः

सिंध प्रांत

सिंध प्रांतीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन के सभापति, पूनानिवासी

श्री० डा० ग० द० आपटे, एम० बी० बी० एस० का

अभिभाषण

आर्यवैद्यकप्रेमी बंधुजन !

सद्धेतुप्रेरित, नवोदित और सत्परिणामी सभा के अध्यक्ष पद पर मेरी योजना करके आप महानुभावों ने डॉक्टर वर्ग का आदर करके जो अपनी उदारहृदयता प्रकट की है इस लिये मैं आपको बहुत धन्यवाद देता हूँ। किन्तु व्यक्तिशः इस पद से मैं आपको अपेक्षित समाधान दूँगा या नहीं इस बाबत में मेरे मन में संदेह है। निमंत्रण पाते हुए ही इनकार करने का मेरा इरादा था। किंतु अनेक विचारों से लिप्त होकर मैंने संमति दी। आप सब आर्य वैद्यकानुयायियों से आर्य वैद्यकानुरागी डाक्टर को हाथ मिलाना चाहिये। तारुण्य भाव से मैं यद्यपि अल्पानुभवी हूँ तो भी आर्य वैद्यक प्रगति के बाबत आप सब मेरे को सहायता देने के लिये बद्धपरिकर हों। दूसरा एक बलवत्तर विचार ऐसा है कि मैंने आर्य वैद्यक जो कुछ अंशतः समझ लिया वो आप सब श्रीमान् धन्वन्तरि स्वरूप चरक, सुश्रुत और वाग्भट इन पूज्य आचार्यों से सीखा है। और आप उन्हीं के अनुयायी होने से आप मेरे ज्येष्ठ गुरुबंधु हो। गुरु की परंपरा जिस समय स्थगित हुई है या संशयग्रस्त हुई है उस काल में उसको नवचैतन्य देने के लिये आपका जो निमंत्रण या आज्ञा है उसको मैं हरगिज अमान्य नहीं कर सकता।

यह प्राप्त कर्तव्य करते हुए, इस प्रांत में आने से मेरे को आनंद होने के अन्य भी कारण हैं। मैं आर्यवंशीय होने से मेरे और आपके प्राचीनतम पूर्वज यहाँ ही रहते थे। प्रायः सब भारतवासियों का पितृ धन यहाँ ही है। और तलाश करने से वह पाया भी जाता है। सुप्रसिद्ध मोहेन्जोदारो और तत्रस्थ उत्खात अवशेष तो केवल एक प्रतीक है। यदि शांतता और समृद्धि हो और सब सिंधुतटस्थ प्रांत का खनन पूर्वक संशोधन किया जाय तो अवश्यमेव पुरानी आर्य संस्कृति का धवलत्व प्रतीत करने वाले अवशेष प्रत्यक्ष पाए जाएँगे। न जाने कि आपाततः जिस स्थल पर और जिस कार्य के लिये आज हम सब संमिलित हुए हैं उसी स्थल के नीचे उसही विषय पर प्रकाश डालने वाला वाङ्मय वा अन्य कोई सामग्री उपस्थित होगी। भूमिगत प्रवाह जैसा वृक्ष का उपजीव्य होता है उसी तरह यही निम्नगत पुराण अवशेषों से पुराण शास्त्र का वर्धन करने की स्फूर्ति आपको मिलती होगी। इसके सिवा भी इस प्रांत का उपजीव्य जीवन प्रवाह जो सिंधुनद—उसके नाम से ही भारतवर्ष को हिंदुस्थान कहा जाता है। आर्य वैद्यकीय वाङ्मयीन लघुत्रयी जैसी एक महनीय संहिता के कर्ता माननीय वाग्भट यहाँ के ही निवासी थे। और बृहत्रयी जैसी प्रमुख संहिता के संस्कार कर्ता भगवान्

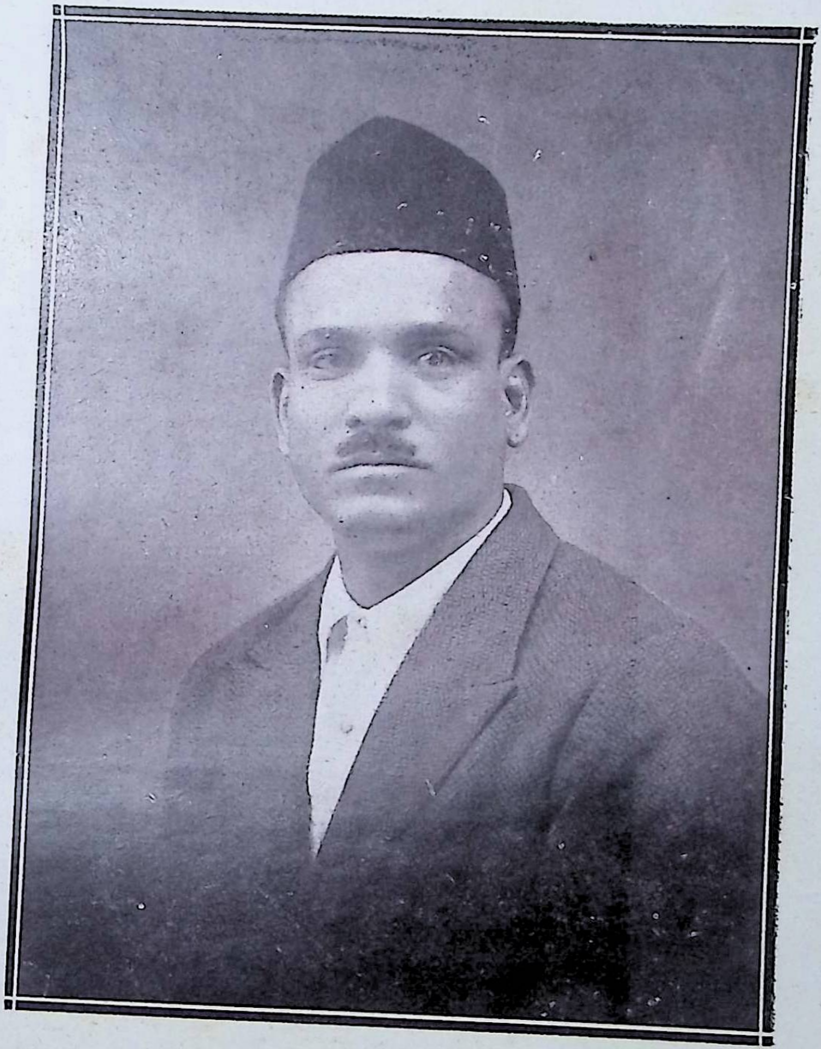

श्रीमान् डॉ. गणेश दत्तात्रय आपटे
एम्. बी.; बी. एस्.; पूना.
अध्यक्ष, सिन्धप्रान्तीय २ वैद्यसंमेलन हैदराबाद ।

चरक मुनि इसी प्रांत के अन्तेवासी थे। हिंदुस्तान की पुरातन और जगन्मान्य यूनिवर्सिटी या विद्यापीठ तक्षशिला नगरी—यहाँ से नजदीक है। इन अनेक कारणों से संभव है कि जो अनेक उत्तमोत्तम पुराण आर्यवैद्यकीय ग्रंथ आज लुप्त हैं उनका पता यहाँ ही लगेगा दैववशात् आपका प्रान्त समृद्ध है। केवल इस काम के लिये स्फूर्ति की आवश्यकता है और भगवान् ने वह भी आज आपके हृदय में उत्पन्न की है। आशा है कि अगर इस स्फूर्ति का सातत्य रख कर आप यदि उस अनुसार उद्योग करोगे तो आयुर्वेदोद्धार का परम अभिलषणीय श्रेय आपको ही मिलेगा। हिंदुस्तान और हिंदवी संस्कृती पर इसी दिशा से अनेक बार आक्रमण हो चुका है। और उस आक्रमण को आपही वीरजनों ने अनेक बार स्थगित किया है। आशा है कि सद्यःकालीन आयुर्वेदोद्धार के लिये भी आप तन-मन-धन व्यतीत करने के लिये बद्ध-परिकर होंगे!

ऐतिहासिक अवशेष स्पष्टतया बतलाते हैं कि किसी पुराण काल में आर्य वैद्यकीय चिकित्सा न तो केवल व्यवहारोपयोगी थी किंतु उस शास्त्र के सिद्धांत जगन्मान्य थे। अत्यंत खेद की बात है कि वह चिकित्सा आज उपयुक्त होते हुए भी उसके उपजीव्य पुराण सिद्धांतों की हँसी हो रही है। इस हँसी के परिणाम अनेक विधि हुये और हो रहे हैं। पुराण काल में मुसलमानों ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किया और क्रमशः वे यहाँ के ही रहवासी बन गये। अर्थात् उनकी जो वैद्यकपद्धति थी उसका प्रचार इस देश में हुआ किंतु दोनों पद्धति के अनुयायियों में कभी कलह उत्पन्न हुआ नहीं। एक ने दूसरे पर किसी प्रकार का अधिक्षेप किया नहीं। दूसरा बलवत्तर आक्रमण पाश्चात्य गौरकायों ने किया। और उनके वैद्यकपद्धति के अनुयायी जिनको डाक्टर कहते हैं उनमें और परंपरागत आर्यवैद्यकानुयायी वैद्यों में कलह शुरू होकर वही आज तक चल रहा है। यह कलह जितना उद्वेगजनक है उतना ही उद्‌बोधक है। किंतु जिस तरह से बोध होगा उस तरह किसी ने उस कलह की मीमांसा आज तक की नहीं। प्रथमतः पाश्चात्य डाक्टरों ने आर्यवैद्यक के सिद्धान्त पर आक्षेप किये। वह मूलतः शाब्दिक और शुद्ध शास्त्र विषयक थे। क्रमश- उसकी परिणति व्यवहारिक और वैयक्तिक कलह में होती रही। डाक्टर और वैद्य ये तो आज जैसी अहिनकुलवत् जाति हुई है। इस परिणतावस्था में शास्त्रविषयक चर्चा खुले दिल से होती नहीं यह बात बहुत उद्वेगकारक है। यह अवस्था किस तरह प्राप्त हुई इससे कोई सोचता नहीं। उसके उपर विचार करना न केवल मनोबोधक होगा किंतु प्रसङ्गवशात् उसे इन दोनों जाति के दिल जम जायेंगे इसलिये इसका विचार आवश्यक है।

प्रथमतः जब पाश्चात्य वैद्य का प्रचार इस देश में हुआ तब जैसा हमारे नेताओं ने दूर दृष्टि से आक्रमकों के राजनीति का अनुसंधान ठीक तरह से देखा नहीं उसी तरह हमारे परंपरागत वैद्यों ने पाश्चात्य नव्य वैद्यक की उपेक्षा की। उसको आत्मसात् किया नहीं। पाश्चात्य पद्धति का यहाँ दृढ़मूल होना था जो उसका अनिवार्य परिणाम वह हो चुका। भारतीय वैद्य पाश्चात्य वैद्यक से दूर रहे, आज भी रहते हैं और रहना चाहते हैं और उसी समय अपने वैद्यक के उद्धार की आशा करते हैं। पाश्चात्य डॉक्टर अधिक धूर्त या दूरदृष्टि थे। अपने पद्धति को दृढ़मूल करते हुए, घनघोर-संग्राम करते हुए भी वे ज्ञानपिपासु थे। उसी सङ्कटमय में उन्होंने आर्यवाङ्मय जितना मिला उतना एकट्ठा किया, अपने घर ले जाकर उसका संरक्षण किया और शान्तता मिलते ही उसका उत्कट अभ्यास किया। उस अभ्यास से उनको प्रतीत हुआ

कि पुराण काल में आयुर्वेद अति उज्वल था । जगविजिगीषु अलेक्झांडर भारतीय आदर्श वैद्यों को अपने साथ ले गया था, आयसी कृत्रिम जंघा जोड़ने की करामात आर्यवैद्यों में थी, सुश्रुत में विस्मयकारक शल्यचिकित्सा का वर्णन है, इत्यादि अनेक आर्य वैद्यकस्तुती पर बातें की जिनका अनुवाद करने बिगर हमारे नेता आयुर्वेद विषयक व्याख्यान दे सकते नहीं, उन्हीं पाश्चात्य डाक्टरों ने पहिले प्रसिद्ध की, जिनको हम आर्यवैद्यकविद्वेषी समझते हैं । इन अभ्यासकों ने आर्यवैद्यक को भारतीय शास्त्रियों के साथ पढ़कर अपने भाषा में उनका भाषान्तर किया । उस पद्धति में से काय और शल्यचिकित्सा विषयक भाग अपने पद्धति को जोड़ भी दिया । उन्होंने ही वात पित्त कफ विषयक सिद्धान्तों को ऐन्द्रजाल माना यह भी सत्य है किन्तु उनका अधिक्षेप विचारचालक ज्ञान पिपासादर्शक और प्रयोगप्रसू है यह बात मानने को भारतीय वैद्य तैयार नहीं । उन लोगों का आर्यवैद्यक विषक आचार वा विचार जो था वही आज है । आर्यवैद्यक विषयक जो व्यवहार, चिकित्सा वा कल्पना प्रत्ययप्रद हो उसे आत्मसात् करने की उनको लज्जा होती नहीं । इस दृष्टि से उनका आचार और विचार सुघटित और सुसंधानी और सुसङ्गत है । यदि हमारी वात पित्त कफ विषयक मीमांसा इनकी बुद्धि समान हम करें तो वे उसका स्वीकार अवश्य करेंगे इसमें मेरे को कोई सन्देह नहीं ।

भारतीय वैद्यों का उलटा दृश्य देखिये । उस दृश्य को बताने में वैद्यों की निन्दा करने का उद्देश नहीं । क्योंकि भारतीय डाक्टर और वैद्य ये दो जाति मैं अलग नहीं समझता जैसे कि वैद्य लोग समझा कर झगड़ा कर रहे हैं । वैद्य हो वा पाश्चात्य या पौर्वात्य डाक्टर हो जो आर्यवैद्यकजिज्ञासू हैं वे सब एक हैं ऐसा मेरा मत है और सत्यनिष्ठ और व्यवहारपटु भगवान् श्रीकृष्ण जी के 'आत्मनात्मानमुद्धरेत्' इस वचन पर मेरा दृढ़ विश्वास हे ! स्वोद्धार के लिये स्वदोषशोधन की भी अत्यन्त आवश्यकता है । ये शोधन करते हुए अनेक मनोवेधक और बोधक बातें प्रतीत होती हैं । प्रथमतः डाक्टर वर्ग का निरीक्षण करना ठीक होगा । उनकी प्राथमिक वैद्यक शिक्षा पाश्चात्यों के पद्धति से याने प्रयोगिक पद्धति से होती है । और वे केवल स्वसंस्कृति के प्रेमदृष्टि से आर्यवैद्यक को देखते हैं । संस्कृत भाषा से प्रायः अनभ्यस्त हुए वे अङ्गरेजी में मातृभाषा में उपलब्ध भाषान्तर से आर्यवैद्यक पढ़ते हैं । आप जानते हैं कि भाषान्तर में मूल हृद्य भाग हमेशा उतर नहीं सकता । अत्युच्च आर्य वैद्यकीय सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रयोगशाला में प्रयोजनीय करने की परंपरा त्रुटित होने से वे उन सिद्धान्तों के तरफ साशंक दृष्टि से देखते हैं या बिना प्रयोग उसकी अपनी मनपसंद मीमांसा करते हैं । उदाहरणार्थ एक डाक्टर दोष धातु और मल को Anaboly, Kataboly and Metaboly ये पाश्चात्य पर्याय मानते हैं । वे ध्यान में लाते नहीं कि Anaboly और Kataboly इनकी समुच्चयवाचक metaboly ये संज्ञा है । उसी तरह मल यह दोष और धातु का समुच्चय तो नहीं है । दूसरे डाक्टर वात, पित्त और कफ को Irritation (क्षोभ) Inflammation (शोथ) और Suppuration (पूयन) ऐसे पर्याय बतलाते हैं वात, पित्त, कफ ये क्षोभ-शोथ-पूयन के समान संक्रम नहीं है यह तो स्पष्ट है । एक डाक्टर inflammation को सदाह शोथ ऐसा पर्याय सूचित करते हैं पर विचार नहीं करते कि Inflammation के जो चार प्रधान लक्षण पाश्चात्य शास्त्रों में पढ़े जाते हैं उन चार लक्षणों का समुच्चय माधावाचर्य ने एक श्लोक में ग्रथित किया है । फिर सदाह शोथ कहने की क्या आवश्यकता है ? और एक वर्ग डाक्टरों का है जो वैद्य और संहिता ग्रथित आर्य सिद्धास्तों को झूठ समझकर 'आयुर्वेदीय'

चिकित्सा की प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं कि 'आयुर्वेदीय' औषधियों का उपयोग करने से आयुर्वेदोद्धार होगा। ऐसे और भी अनेक मत प्रचलित हैं कि जिनके प्रचार से आर्यवैद्यक को निश्चित धोका पहुँचता है।

यह धोका पहुँचने का कारण परम्परा-भ्रष्ट वैद्यों का अज्ञान या अदूरदृष्टित्व भी है। क्योंकि वे नये आक्रामक परिस्थिति से विमुख रहना चाहते हैं। ज्वालावृत गृह में अपने को एक कोठरी में बन्द करना जैसा सर्वथा घातक है उसी तरह वैद्यों का व्यवहार हो रहा है। युद्धशास्त्र का एक नित्य प्रतीत सिद्धांत है कि युद्ध की सूचना होते ही शत्रु के क्षेत्र में अपने पहिले पहुँचना चाहिये। गत सैकड़ों साल में या अनेक शतकों में भारतीयों ने इस नीति का अवलंब किया नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि हमने अपनी संस्कृति को नष्ट कर दिया। वैद्यक व्यवहार नित्य और वैयक्तिक होने से आज तक थोड़ा बहुत बचा। परन्तु अभी नव्य पद्धति का असर वैद्यों पर होने लगा है। आधुनिक वैद्य पुराण परंपरा अबाधित रखते नहीं और अधिक पिपासू होकर नव्य ज्ञान का यथा तथ्य लाभ भी उठाते नहीं। मातृभाषा के ज्ञान से आर्य वैद्यक आधा पढ़े हुए वैद्यराज बनते हैं और पुराण सिद्धान्तों की मीमांसा करने का आभास करते हुए नव्य 'अद्यावधि' सापेक्षवाद, (Theory of relativity) परमाणुवाद (atomic theory) इत्यादि के बाबत ऐसा लिखते हैं कि न आप समझे न दूसरा समझ सके। कोई डाक्टर या अन्य आधुनिक शास्त्रविशारद (Physics Chemistry) इत्यादि शास्त्रगत सिद्धान्त विकृत स्वरूप से स्वभाषा में उतारते हैं और आधुनिक वैद्यराज उसपर भरोसा रखकर पाश्चात्य प्रायोगिक पंडितों के ऊपर भलते ही आक्षेप करते हैं। एक M. Sc. वैद्य लिखते है सब एसिड सफेद रहते हैं किन्तु मैं नहीं जानता कि यह शोध उन्हें कहा लगा। अंग्रेजी जाननेवाले एक वैद्यशार्दूल कहते हैं कि आयुर्वेदीय भस्म ऐसे अजब है कि कोई पाश्चात्य रसायनज्ञ उसका अन्वेषण (Analysis) ही नहीं कर सकता, केवल बोलते हैं कि भस्म Ash याने रक्षा है। वह वैद्यराज आधुनिक रसायनिक परीक्षण क्या है यह जानते नहीं, पाश्चात्य पंडित प्रत्यक्ष Ash याने चुले से निकली हुई रक्षा का रासायनिक परीक्षण करते समय वह केवल रक्षा है ऐसा नहीं कहते। आयुर्वेदीय संज्ञा जो 'भस्म' इसका अर्थ पुराण भाषा में रक्षा समान ही है इसका विचार वैद्यराज नहीं करते। अगर चूले की रक्षा भेजे तो उसमें कौन से क्षार कितने प्रमाण में हैं यह आधुनिक रसायनज्ञ बतलाता है। उसको नाना विधरसायन भस्मादि में Ash—में फरक तो अवश्य प्रतीत होता है। किन्तु हॅनिमैनी पद्धति से बनाई हुई सब औषधियाँ वह एक ही समान समझता है। इससे औषधी की श्रेष्ठता प्रस्थापित हो सकती नहीं। आधुनिक रसायनशास्त्र की नालायकी भी प्रस्थापित होती नहीं। रसायन भस्मादि में जो पारद होगा उसका स्थूल प्रमाण आधुनिक पाश्चात्य रसानयज्ञ कह सकता है। वैद्यराज तो अपनी बनायी हुई तैयार औषधी में प्रयुक्त वस्तुओं का कितना प्रमाण स्थिर रहा है यह नहीं कह सकते। पाश्चात्य-रसायन-शास्त्र की ऐसी अवहेलना करने वाले वैद्य स्वतः के भस्मशाला की केमिकल लॅबोरेटरी की जोड़ देकर 'संशोधन' करने की आकांक्षा प्रसिद्ध करते हैं। रसशाला के advertisement का वह एक नमूना होता है। वैद्य हो या तत्समान केवल आयुर्वेदाभिमानी डाक्टर हो आयुर्वेद के प्रयोगों का श्रेष्ठत्व बतलाने के लिए वे 'पाश्चात्य' वैद्य को प्रमाण समझते हैं यह कोई सोचता नहीं। इससे निकर्ष वस्तु को अजानतः श्रेष्ठ माना जाता है यह बात कोई ध्यान में लाता नहीं। 'पाश्चात्य वैद्यक' ये संज्ञा भी अति संदिग्ध है। हमारे दृष्टि से एलोपैथी

जितनी पाश्चात्य है उतनी ही होमिओपाथी पाश्चात्य है। होमिओपाथी का नाम निकालते ही कोई अति अभिमानी बोल उठता है कि होमिओपाथी क्या सब आधुनिक नव्य सिद्धान्त बीज रूप से हमारे पुराणतम आयुर्वेद में मिलते हैं? अगर एक क्षण इस अतिव्याप्त विधान को सत्य माना जाय तो मध्यकालीन 'नाडीपरीक्षा' का पता चरकादि संहिता में क्यों नहीं लगता इसका उत्तर मिलना कठिन है। कोई वैद्यराज इसको भी बड़ी सहुलात से उत्तर देते हैं कि ऐसी अनेक बातें पुराणसंहिता के संस्करण प्रतिसंस्करण काल में गुप्त हो गईं। इस अंतिम विधान का आश्रय करके वैद्य या तत्समान केवल विकारप्रेरित डॉक्टर आर्यवैद्यक के बाबत चाहे सो बोल रहे हैं।

आज वैद्यक का श्रेष्ठत्व प्रस्थापित करने के लिये एक प्रमाण का पुकार उच्च स्वर से किया जाता है। किन्तु लोक और वैद्य जानते नहीं कि वह प्रमाण स्वयं ही अपूरा और दोषपूर्ण है। इङ्गलैण्ड से पदवी लेकर हुए डाक्टर से दुरुस्त न हुए रोगी को वैद्य ने रोगमुक्त किया यह प्रमाण अत्यंत अपूरा है। आज व्यवहार में प्रत्यह देखा जाता है कि इंगलैंड का पदवीधारी अगर हिंदुस्तान का पदवीधारी डॉक्टर हो, परंपरागत अधीत वैद्यराज हो, कोई स्वयम्भू आर्यांग्ल वैद्य डॉक्टर हो या कोई अशिक्षित बुढिया हो, इनमें से एक के हाथ से दुरुस्त न हुवे अनेक विध रोगी दुसरे के चिकित्सा से दुरुस्त होते हैं। किन्तु हरदम, हमखास नहीं, केवल प्रसंगवशात् होते हैं। उपर्युक्त सब व्यक्तियाँ धंदेवाले होने से वे अपने व्यवसाय में धंदे की याने पैसे कमाने की हर किस्म की चतुराई करते हैं। जब हमें विशुद्ध शास्त्र का विचार करना होगा तब इस व्यवसायिक स्पर्धाविषयक चतुराइयों को ध्यान में लेना अनुचित होगा। अधीत एलोपेथ, होमियोपाथ, हकीम, वैद्य और स्वयंभू चिकित्सक इनके ज्ञान की त्रुटियों में चाहे उतने प्रत्यक्ष अनुभविक उदाहरणों से बतला सकता हूँ।

दूसरा एक अयथार्थ शब्दप्रयोग वारंवार किया जाता है। निदान के बाबत आधुनिक एलोपाथी के विचारसरणी का अवलंब करके चिकित्सा में "आयुर्वेदीय" औषधी वापरना अत्यंत हितकारक है ऐसा आधुनिक वैद्य और तत्प्रेमी डॉक्टर कहते हैं। जरा विचार करो जगत् में ऐसी कोई औषधी है जो केवल खास आयुर्वेदीय या एलोपाथिक हो सकती है। एलोपाथी तो प्रायः हर साल हिंदी, चीनी, अरबी इन सब वैद्यकपद्धति में जो काम आती हैं वे औषधी अपने पद्धति में शामिल कर रही है। एलोपाथी ने तुलसी, अश्वगंध इत्यादि अनेक औषधियाँ 'आर्यवैद्यक' से उठायी, चिनी वैद्यक से वनस्पति लेकर श्वास के लिये एफेड्रीन नामक अकसीर इलाज तयार किया जो आज वैद्य भी वापरते हैं। टाँग-कुइ वनस्पति से युमेनाल निकाला गया है जो डाक्टर लोग स्त्रीरोग में वापरते हैं, वैद्य भी वापरेंगे। क्या इस व्यवहार से एलोपाथी चिनी वैद्यक होती है। चरक सुश्रुतादि आदि धन्वन्तरी स्वरूप आर्यवैद्य कहते हैं कि 'विनौषधि' ऐसी वस्तु ही जगत् में नहीं है, होमिओपाथी का प्रणेता हानिमान वही कहता है। लाल मिरचा, आलु, कुनैन, चाय, संटोनिन इत्यादि वस्तुओं का पता पुराण वैद्यक संहिता में न मिलते भी वैद्य लोक उनको हर रोज काम में लाते हैं। फिर 'आयुर्वेदीय' या 'एलोपाथिक' औषधी क्या अलग अलग होती है। सत्य तो यह है कि वस्तु तो एक ही है किंतु उसका उपयोग करने में भेद होते हैं और वे भेद जिन कल्पना वा प्रत्ययों से निश्चित किये जाते हैं उन कल्पनाओं के सिद्धांतों के समुच्चयानुसार एलोपाथी, आर्यवैद्यक इत्यादि चिकित्सा पद्धतियों में भेद उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ शुंठी लीजिये। ये एक ही द्रव्य एलो-

पाथी, होमियोपाथी और आर्यवैद्यक इन तीनों पद्धति के अनुयायी काम में लाते हैं मगर हर एक का उसके बाबत का दृष्टिकोण उनके प्रत्ययानुसार भिन्न है। अगर विशुद्ध अन्तःकरण से देखे तो एक ही व्यक्ति उन सब विविध प्रत्ययों का अनुभव ले सकता है। शुंठी के गुणों का तौलनिक अन्वेषण करते हुए एक डाक्टर ने एलोपाथिक मटीरिया में वर्णित Zingiberis के गुण स्वभाषा में उतार लिये और वही आपके पुराण निघंटु में है ऐसा बतलाया। पर पुराण निघंटु में शुंठी का वृष्य गुण जो दिया है उसकी मीमांसा वे कर न सके। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि उन्होंने इन दोनों पद्धति का स्वतंत्रतया विचार ही किया न होगा। झटपट कोई बोल उठेगा कि मनुष्य शरीर और प्रयुक्त वस्तु तो निश्चित है फिर उसके प्रत्यय में कैसे भेद देख सकते हैं। प्रश्न जितना चंचल है उतना ही उसका उत्तर निश्चित और सत्प्रत्ययी है। उत्तर यह है कि प्रत्यय भिन्न होते हैं। आप सत्यान्वेषी हों तो स्वयं प्रत्यक्ष लेने का धीर करो।

होमिओपाथी का उपचार मैंने अभी तक वारंवार किया। बहुत ही थोड़े वैद्य और डाक्टर जानते होंगे कि होमिओपथिका स्वतंत्र और सरल हृदय से अभ्यास किया जाय तो जनता और चिकित्सकवर्ग दोनों का भी बहुत फायदा होगा। होमिओपाथी ये संज्ञा अंग्रेजी है। स्वभाषा में उसको समात्मचिकित्सा ऐसा पर्याय मैं सूचित करता हूँ। एलोपाथ जैसी आर्यवैद्यक के सिद्धान्तों की हँसी करते हैं वैसी ही वे समात्मचिकित्सापद्धति के सिद्धान्तों की हँसी करते हैं। परन्तु एक अनुभव निश्चित और वारंवार मिलता है कि जो-जो एलोपाथ पूर्वग्रह व रखता हुआ समात्म पद्धति का प्रामाणिक अभ्यास करता है तो वह उस पद्धति से मोहित होकर उसे स्वीकार करता है। विद्यमान, जगन्मान्य जर्मन संशोधक वयोवृद्ध एलोपाथ आगस्टस बायर की यही अवस्था गये दस साल में हुई, मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि कोई ज्ञानपिपासू–धंदेवाला नहीं–यदि आर्यवैद्यक का इसी तरह प्रामाणिक अभ्यास करे तो आर्यवैद्यक का अंगीकार सर्वतः और सर्वदा करेगा। आर्यवैद्यक का प्रामाणिक अभ्यास करने वाले भारतीय थोड़े हैं किंतु पाश्चात्य पंडित अधिक हैं। परंतु उपयुक्त अपेक्षित अनुभव आता नहीं। क्योंकि मूलतः आर्यवैद्यक सर्व कर्ष सर्वग्राही, सरल, सुसंगत और सुपरिणामी है तो भी वह जिनके हाथ में है वह वैद्यों का वर्ग प्रायः परंपराभ्रष्ट परप्रत्ययी पूर्वग्रहदूषित और प्रयत्नोदासीन है। यदि उनसे प्रयोगों के बाबत् बात करें तो परिणति विवाद में होती है। उनमें से कोई नव्य ज्ञानसूर्य से पराङ्मुख रहने में भूषण मानते हैं। और कोई तो नव्य आकर्षक उपकरणों से जैसे मंत्रमुग्ध होते हैं। इन अनेक कारणों से केवल ज्ञानपिपासू का समाधान होता नहीं। समात्मपद्धति का वाङ्मय विपुल है। उस पद्धति के अनुयायी अपनी पद्धति की मर्यादा स्पष्टतया बता सकते हैं और नव्य पद्धति का तौलनिक अभ्यास करते हैं। ये पद्धति केवल सौ डेढ़ सौ साल की पुरानी है।

'समानशीले व्यसनेषु सख्यम्' यह सुभाषित ध्यान में लाकर आर्यवैद्य यदि इस पद्धति का अच्छा अभ्यास करें तो आर्यवैद्यकोद्धार का मार्ग अधिक स्पष्टतया उनके नजर आयगा। उस पद्धति को पुराण परंपरा बहुत नहीं थी, समकालीन डाक्टरों ने उस पद्धति के बाबत अति कुत्सित टीका की, उसका नाश करने के लिए नाना विध कुटिल प्रयत्न किए, प्रसंगवशात् कानून (Law) का असर उनके अनुयायियों पर चलाया, उसको कभी राजाश्रय न पाने दिया इत्यादि अनेक छल सहन करते ही उसका प्रमुख प्रणेता जो जर्मन पंडित हानिमान उसने अपनी धीरोदात्त वृत्ति दीर्घ प्रयत्न, प्रत्ययनिष्ठा, सत्यान्वेषण इन अनेक गुणों

की सहायता से अपनी पद्धति का स्थान संसार में स्थिर किया। यह एक ही बात आर्यवैद्यकोद्धारेच्छु को अति स्फूर्तिदायक होना चाहिये। ये पद्धति और आर्यवैद्यक के समान व्यसन या संकट इनका निर्देश ऊपर किया है। अधिक इतिहास देखने से प्रतीत होता है। कि आर्यवैद्यक इनके संकट उतने बिकट नहीं हैं। उस पद्धति के प्रयोगों का अभ्यास करते समय उस पद्धति और आर्यवैद्यक के समान शील भी प्रकट होयेंगे। प्रमुख समानशील का निर्देश ऐसा किया जा सकता है कि दोनों पद्धति में आज के अनुभूत रासायनिक (Chemical) और वैज्ञानिक (Physical) परीक्षणों का उपयोग कमती होता है। संसार की हर एक वस्तु औषधी रूप से उपयोग की जाती है। जीव मान प्राणी विशेषतः मनुष्य इनके ऊपर होने वाले औषधियों के परिणामों का विचार करके चिकित्सा निश्चित की जाती है। कायचिकित्सा में शारीरिक रचना का (Structural anatomy) विशेष विचार किया जाता नहीं; और रोगकारण (Cause) रोगसंक्रम Development रोगसंकर रोगांतधान (Suppression of disease) रोगोत्सर्प (Metastasis) प्रकृति (Constitation) इन अनेक बाबत में एलोपाथी से भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ (Theories) तैयार होती हैं। इन कल्पनाओं का पाया प्रत्यक्ष प्रत्ययों से (Actual clinical Experiences) न तो जड़ रासायनिक और वैज्ञानिक प्रयोग से तैयार होता है यह ध्यान में लाना आवश्यक है। इन जैविक प्रत्यक्ष प्रत्ययों का विचार करते हुए जितने वैद्यकपंथ (Pathies devising theories from clinical experiences) प्रचलित हैं उनके रोग वा प्रकृति विषयक प्रमेय इनमें बहुत साम्य है। इसी लिए होमिओपाथी यूनानी याने पुराण ग्रीक वा रोमन वैद्यक, तिब्ब याने अरबी व फारसी वैद्यक और आर्य वैद्यक इनकी अनेक कल्पनाएँ और चिकित्सा भी समशील है। आधुनिका लोपाथी केवल जड़ उपकरण प्राप्त प्रत्ययों को महत्व देती है। जैविक चैतन्य का विशेष विचार करती नहीं। चीन में तार्तार और आर्य इन दोनों का मिश्रण होने से चिनी वैद्यक में दोनों का मिश्रण प्रतीत होता है। Isopathy, Homeopathy, Hydropathy, Chromopathy, Sero-therapy, Psy-cho-therapy इन सब चिकित्सापंथों का जन्मकारण अकस्मात् प्राप्त हूवे अनुभव और तदनुसार अनुभूत पुनः प्रत्यय है। Immunity, Allergy इत्यादि प्रमेय प्रत्ययविना केवल पूर्वविचारों से बने नहीं। आर्यवैद्यकविषयक दोष धात्वादिसंबंधी प्रमेय बिनाप्रत्यय न बने होंगे। इन प्रत्ययों की अनुभूति और तदनुसार विचार पुनश्च करना चाहिये। अस्तु।

केवल सूत्रतः मैंने अभी तक नाना विध दोष बताये हैं। डाक्टर विशेषतः भारतीय डाक्टर वैद्य के दोष बतायें इसका शल्य वैद्यों के मन में आज कइ साल है। मैंने उपर निर्देश किया इसी तरह वैद्यों के दोष बताने में वैद्यक का अपमान करने की डाक्टरों की मनीषा न थी। किंतु कुछ भी हो विचारप्रेरक आक्षेप लेकर डाक्टरों का वैद्यों से अपमान हुआ वह सहन किया। सबसे प्रथम प्रागतिकों की यही अवस्था होती है। डाक्टरों को आर्यवैद्यक कुछ समझा नहीं ऐसा अधिक्षेप करके वैद्यों ने अपना काम चलाया और वैद्यक विषयक प्रश्न अंशतः आज तक स्थगित किए। किंतु अभी तो घरभेदीही बाहर आ रहे हैं। आर्यांग्ल विद्यालयों से उत्तीर्ण होते हुए छात्रों का निकट संबंध रहने से उनका मनविश्लेषण में गये दसबारा साल कर रहा हूँ। उससे मैं इन घरभेदीयों की अपेक्षा करता था। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जैसे वैद्यने 'त्रिदोष मीमांसा' प्रसिद्ध करके तो आर्यवैद्यक प्रेमियों को डायनामाइटही लगा दिया है।

उनका आह्वान डाक्टरों से तीव्र है। और उसकी आंच वैद्यों को डाक्टरों के आह्वान से अधिक लगी है। उस आंच से बनारस में जो पकेगा वह देखा जायगा। मैंने स्वामीजी और उनका आह्वान स्वीकार करने वाले वै. भू. दातार शास्त्री और उपेंद्रनाथदासजी इनसे थोड़ा पत्रव्यवहार किया। आशा है कि प्रसिध्यनुसार संधाय संभाषा परिषद यशस्वी होगी।

संधाय संभाषा परिषद् की परंपरा चरकोक्त है। उसके पुनरुज्जीवन की घोषणा प्रथमतः नासिक संमेलन में हुई और तदनन्तर तत्सम कुछ अन्य प्रयत्न हुए। किन्तु अनुभव है कि संधाय संभाषा की मनीषा पूर्ण होती नहीं। अर्थात् वाद-प्रतिवाद करनेवाले भी दोषी होंगे। उन दोषों का थोड़ा निर्देश मैंने ऊपर किया है और नव्य पिपासू वैद्य और दोषों का भी आविष्करण करते हैं। आचार्य धन्वन्तरि के एक अंक में एक वैद्य ने उनका विवरण किया है। डाक्टर न लेंगे ऐसे आक्षेप वैद्यों के बाबत 'वैद्यपत्रिका में' अनेक साल पूर्व वैद्यों ने भी लिये हुए हैं। विगृह्य संभाषा होने की सबब यह है कि पक्ष और प्रतिपक्ष पूर्वग्रहदूषित होते हैं। और एक बलवत्तर कारण है। वे प्रत्ययनिष्ठ न होने से वाद केवल गूढ़ शब्दपूर्ण होता है। इस गूढ़ता का अति विस्तृत और व्यापक क्षेत्र त्रिदोष मीमांसा है नासिक संमेलन से मैं वैद्यों को बारंबार समझाता हूँ कि त्रिदोषमीमांसा यह आर्यवैद्यक प्रेमियों का शिखर है। आप उस शिखर को देखते ही वादव्यापृत न होना। उसके पाये तक खोद कर पूरा मंदिर देखो तो उसके बाबत न आपको बल्कि सब प्रेक्षकों को ठीक ठीक कल्पना आयगी। आर्यवैद्यक मंदिर का—हर एक वैद्य का—दरवाजा औषधिशास्त्र है। और उसको खोलने की कुंजी द्रव्यगुण विज्ञान है। मैंने ऊपर कहा है कि संसार में प्रायः ऐसी कोई पाथी याने वैद्यक पंथ नहीं कि जो संसार की हर वस्तु औषधि रूप से उपयोग में लाने की आकांक्षा न करे। परिस्थिति और प्राप्त साधन-सामग्री इनके परिणाम से प्रत्ययों में भेद होता है और उन प्रत्ययों की मीमांसा करती हुई बुद्धि के अनुसार प्रेमियों में भेद होता है। यदि आपकी इच्छा हो तो इन प्रत्ययों को आप प्रत्यक्ष कर सकते हैं। और वे प्रत्यय ही उस पद्धति के पाया हैं। इस तरह इन प्रत्ययों को प्रत्यक्ष करना याने द्रव्यों के गुणों की प्रत्यक्ष अनुभूति करना यह प्रथम पद होगा। समझो कि आपके सामने मैंने एक मूठी भर द्रव्य रखा है कि जो आपने आज तक देखा नहीं और जिसके गुण पुराण निघंटु में मिलते नहीं। उस द्रव्य को प्रयोग करके अगर कोई वैद्य तत्प्रतीत गुणों का वर्गीकरण रस वीर्य विपाक प्रभाव इस पुराण परिभाषा में करेगा तो आर्यद्रव्यगुण शास्त्र का पुनरुज्जीवन होगा। अगर Chemistry के सहायता से उसके गुणों का निश्चय करते हो तो आधुनिक रसायन Chemistry बेकाम है ऐसा नादान विधान न कीजिये। एक द्रव्य अलोपाथिक और आर्यवैद्यक पद्धति से वापरनेवाले भी एलोपाथिक आधुनिक परिभाषा और आर्य परिभाषा इनका समन्वय कर सकते नहीं। ऐसे निखिल भारत-प्रसिद्ध प्रथितयश उभय शास्त्र पदवी-विभूषित महानुभावों से मेरा परिचय है। यदि इस परिभाषा का समन्वय करने की किसी को आकांक्षा हो, उसको किसी द्रव्य के गुण प्रत्यक्ष करना होगा और उन गुणों का वर्गीकरण करते समय हर एक पद्धति की गुण-परिभाषा कैसी उत्पन्न होती है इसको समझाना होगा। केवल निघंटू के श्लोक पढ़ने से आर्यवैद्यक की सेवा न होगी।

ऐसे प्रयोग क्यों नहीं किये जाते इस बात की भी मीमांसा करना चाहिये। यद्यपि चरकादि संहिता ग्रन्थ और निघंटुओं में एकांतिक द्रव्य के गुण-दोषों का विवेचन है तो भी प्रायः व्यवहार में हर एक वैद्य अनेक द्रव्यों का समवाय या तो वह कल्प हिम फांट इत्यादि हो

या रसायन भस्मादि हो काम में लाता है ! यदि वैद्य लोग इन मिश्रणों का व्यवहार छोड़ कर एकांतिक द्रव्य आर्यवैद्यक कल्पनानुसार वापरने का निश्चय करें तो उनको आर्यवैद्यकोद्धार याने आर्यवैद्यकप्रमेय प्रतिष्ठापन करने का श्रेय मिलेगा। निष्ठावंतों को यह कार्य करना कठिन नहीं है। आर्यवैद्यक में देशकालत्वादि का विवेक करके मिश्रपाठ काम में लाने की अनुज्ञा है यह मैं जानता हूँ। किन्तु यह आक्षेप लेने वाले जानते नहीं कि मिश्रपाठ वापरने के सबब से किसी एक द्रव्य के दूरगामी परिणाम वैद्य लोग जानते नहीं। इस अदूर दृष्टि से अनेक समय अयथा चिकित्सा होती है। और वैद्यों के उस अपराध से वैद्यक की बदनामी होती है। अनुचित समय पर अनुचितरीत्या और अजानतः ऐसा काम अधीत, सुख्यात वैद्यों से होता है यह मैंने देखा है। अगर आप आर्यवैद्यक का उद्धार चाहते हों तो प्रथमतः प्रयोजक और प्रत्ययनिष्ठ बनिये और विवाद प्रेमियों से दूर रहें। अवश्यमेव अति थोड़े ही अवसर में आप तत्वदर्शी बन जायेंगे।

मैंने अभी तक अनेकविध दोष बतला कर प्रयत्नशील बनने के लिए आपकी प्रार्थना की। इन प्रयत्नों का विधायक प्रक्रम किस तरह होना चाहिये यह भी बतलाने की आवश्यकता है। रोगमुक्त्यर्थ केवल औषधि खाने से काम होता नहीं, थोड़ा परहेज भी संभालना अवश्यमेव गुणदायक होता है, उसी तरह आयुर्वेदोद्धार के विषय में हरएक सत्संकल्पी वैद्य ने इस संकट समय पर एक परहेज चतुष्क अवश्यमेव संभालना चाहिये।

१ प्रथमतः नियम करे कि शास्त्र-सेवा समय पर वैयक्तिक झगड़ा अंशांशतः भी न करे। जो कुछ बोलना हो शास्त्र के बाबत बोलो। व्यक्ति के नाम न लो।

२ बिना प्रयोग और बिना प्रत्यय पीठपाठकों के (Platform Preahers) समान ज्ञानक्षेत्र में धूलिप्रक्षेप न करें। वाचाटों के स्तुति से आर्यवैद्यक के प्रमेय पुष्ट न बनते हैं, न उनके गालिप्रदानों से आर्यवैद्यक दुबला होगा।

३ समय गैर समय पर उच्च और शुष्क रव से राजमान्यता की भीख न माँगे। राजाश्रय और राजमान्यता इनमें जो भेद है उसका विचार करो। जगह जगह राजाश्रय है। किन्तु वहाँ आर्यवैद्यक प्रयोगों का पुनः शोधन या प्रतिष्ठापन होता नहीं। वहाँ आर्यवैद्यक का व्यवहार एलोपाथी के—जिसकी हँसी वैद्य करना चाहते हैं—समान ही खराब है। दृढ़ विश्वास से और प्रमाणों से मैं आपसे कह सकता हूँ कि किसी अद्भुत चमत्कार से इसी क्षण स्वराज्य मिल जाय और स्वराज्य-मंडल में आपही का कोई विश्वस्त प्रधान हो तो वह आधुनिक वैद्यों को बिना संस्कार राजमान्यता नहीं देगा ऐसी हालत है। भीख माँगने से तो आजतक संसार में किसी को राजमान्यता मिली नहीं। किसी शास्त्र वा कला का अनुरागी हो उस शास्त्र व कला को राजमान्यता प्राप्त करने के लिये उसको प्रत्ययनिष्ठ और प्रयोगवादी ही बनना पड़ा है, नाना विधि कष्ट उठाने पड़े हैं। फिर वह सर बोस जैसा भारतीय हो या Sir Rogers जैसा I. M. S. Officer हो। सरस्वती अपने गुणों से मान पाती है, माँगती नहीं।

४ परहेज का और एक पाद है। आर्य वैद्यक के स्तुतिपाठ निष्क्रियरीत्या पढ़ने वालों से सावधान रहो। उन मधु जिह्वों ने आर्य वैद्यक के लिये कुछ सक्रिय कष्ट उठाये हैं या नहीं इसका अन्वेषण कीजिये। वे आर्य वैद्यक के हितशत्रु हैं। हर समय उनके स्तुतिपाठ गाने से या उनकी मधुलिप्त उक्तियों का पुनरुच्चार करने से कदाचित् किसी का वैयक्तिक फायदा होगा परंतु आर्यवैद्यक उससे पुष्ट नहीं होता।

इस परहेज चतुष्क को यदि आप संभाले तो निम्नदर्शित चिकित्सा अवश्य सुकर और सुखकर होगी। उसका चतुष्क इस तरह है—

१ समाहरण २ प्रत्ययन ३ तत्वशोधन ४ परंपरावर्धन।

१ समाहरण याने इकट्ठा करना। यह विधन्नावस्था दूर करने का एक बहुपरिणामी प्रयत्न इतिहास पठन है। इतिहास पठन के लिये हर एक जात की पुराण सामग्री ढूँढ ढूँढ के इकट्ठी करनी पड़ती है। यह शोधित सामग्री कितनी स्फूर्तिकर होती है यह आप नजकि के उत्खातावशेष से जानते हो। उसी तरह आप प्रतिज्ञा करें कि आर्यवैद्यक विषयक पुराण सामग्री प्रथमतः इकट्ठी करें। पुराण हस्तलिखित ग्रन्थ, मुखोद्गत औषधि पाठ, पुराण शल्य-चिकित्सकों के शस्त्र यंत्रादि, रसायनादि बनाने के उपकरण इत्यादि सबका अन्तर्भाव इस सामग्री में होता है। ध्यान दीजिये ननु केवल आर्य वैद्यकीय किंतु अन्य वैद्यक पद्धति के इस प्रकार के अवशेष प्राप्त हों तो उन्हें भी जमा करो। तौलनिक अभ्यास के लिए वे बहुत काम आते हैं। आपका सौभाग्य है कि आप में से बहुत लोग उर्दू वा फारसी जान सकते हो। आप तिबके ग्रन्थ अच्छी तरह से पढ़ सकोगे। इस प्रकार का संग्रह करने से ही पाश्चात्य पंडित तौलनिक अभ्यास कर सकते हैं और अधिकृत आक्षेप ले सकते हैं। इस समाहरण का ही एक अन्य और सुलभ प्रकार है। आर्य वैद्यक के दोनों प्रमुख संहिता में से केवल तत्वदर्शक भाग शब्दशः उठाकर उससे एक संक्षिप्त संहिता बनाना अत्युपयोगी होगा। उसी प्रकार अन्यान्य वैद्यकपंथों के रहस्य का यथार्थ उद्घाटन करने वाले ग्रंथ स्वभाषा में प्रसिद्ध होना आवश्यक है। स्वीय टीका वा तौलनिक विचार इन ग्रन्थकारों को प्रदर्शित करना चाहिये।

२ आर्यवैद्यकोद्धारक दूसरा प्रक्रम प्रत्ययन है। इसके दो प्रमुख भाग और चार उपभाग होते हैं। काय-चिकित्सा और शल्य-चिकित्सा आर्यवैद्यक के प्रमुख भाग हैं। पंचकर्म विधि और द्रव्यगुणशोधन ये कायचिकित्सारहस्य के उपभाग हैं। और देहविसन (Dissection) और योग्या (Surgical practice) ये शल्यचिकित्सारहस्य के उपभाग हैं।

पंचकर्म यथाविधि करके चिकित्सा अति सुफलदायी हो सकती है यह बतलाना पाश्चात्यों को अति आकर्षक होगा। तथा एव रसवीर्येत्यादि परिभाषा द्वारा द्रव्यगुणशोधन की प्रथा प्रत्यक्ष कार्यकारी होने से वैद्य की औषधिसामग्री अक्षरशः अमर्याद होगी। सॅन्टोनाइन बाहर देश से आता है इसलिये बापरना नहीं यह अर्थशास्त्रीयों का (Economists) राजकारणी मत है। विशुद्धशास्त्ररत वैद्य यह उपाधि न माने। पुराणकाल में वैद्यों ने मानी भी नहीं। उसी तरह सुश्रुताचार्य ने जो पद्धति दी है उस क्वथन (Maceration) पद्धति से शवविच्छेदन करके पुनःपुनः प्रत्यक्ष अनुभव लीजिये। जितना आप उससे देख सकोगे उतना सब पुरातन आचार्यों ने अति सरलतया लिख रखा है। कोथन (Maceration) यह शवविच्छेदन की एकही अनन्य पद्धति है ऐसा मानोगे या भिन्न-भिन्न पद्धतिओं से अधिकाधिक अंगोपांगों का अन्वेषण हो सकता है यह न मानोगे तो शब्द जाल में पड़ोगे और सत्पथ से च्युत होंगे। शव-विच्छेदन के समानही योग्या का प्रत्यय लो। सुश्रुताचार्य के स्तुतिपाठक फलादियों को उपर शस्त्र चला के स्वयं देखते नहीं यह अत्यंत उद्वेगकारक है। इसका प्रचार वैद्यों में होने की आवश्यकता है।

इतना काम होने के उपरांतही आर्यवैद्यक प्रेमियों का तत्वशोधन सुकर होगा। तत्व का अर्थ केवल मौलिक प्रमेय (Basic proposition) ऐसा नहीं। जब किसी वस्तु वा

व्यवहार मनोमय किया जा सकता है परंतु निश्चित शब्द द्वारा उसके लक्षणों का वर्णन हो सकता नहीं, अथवा एकदा गुण उस वस्तु वा व्यवहार विना अन्यत्र कहीं पाया न जाय तो उस गुणसमुच्चय को तत्त्व (Thatness, peculiarity, principle) कहा जाता है। त्रिदोष की कल्पना आर्यवैद्यक का वैयक्तिक रहस्य होने से वो उसका तत्त्व है। समलक्षणी औषधि योजना यह समात्मचिकित्सापंथ (Homeopathy) का तत्त्व है। प्रायः यह तत्त्व किसी प्रत्ययों के पाये पर और मनुष्य के विचारों की सहायता से अधिष्ठित होता है तत्वशोधन के लिये प्रथमतः प्रत्ययों की अनुभूति पुनः पुनः प्रतीत करना आवश्यक है। हम आर्यलोक समझते हैं कि सब जगत् पंचमहाभूतों से निर्मित है। यह जो एक मनोविकार (Sentiment) माना जाय तो उसके विरुद्ध कोई बोल सकता नहीं। किंतु यदि वो नितांत चिरंतन एकमेव सत्य है ऐसा सिद्ध करना हो तो उसके लिये प्रत्यय (Experience) तत्संबंधी तर्क (Theory) और तदनुसार प्रयोग (Experiment) इनका सुसंधान बताना आवश्यक होता है। यही तर्क पश्चात् सिद्धांत (Proposition) इस नामाभिधान को पाते हैं। किसी शास्त्र के तत्वशोध को इनही चार पदों पर लक्ष देना पड़ता है। पुराण सिद्धांत शोधन के लिये वैद्य इस प्रायोगिक पद्धति का अवलंब करते नहीं। वे कहते हैं कि 'आप्तवाक्य'—वे सब पुराण बचनों को आप्तवचन मानते हैं—मानों। पुराण आप्तवचनों में मतांतर हो तो सब बचन प्रमाण मानने को वे तैयार होते हैं। ' आप्तों ने ही ' प्रमाण परंपरा में आप्तवचन अंत में रखा है यह ध्यान में लेना चाहिये।

आजकल न्यायवैशेषकादि के सूत्र समझे बिगर आर्यवैद्यक को डाक्टर न समझेंगे ऐसा विधान प्रत्यह सुना जाता है। मैंने ऐसे अनेक वैद्य देखे हैं कि जो न्याय, सांख्य इन शब्दों को भी जानते नहीं किंतु उनका चिकित्साव्यवहार सुफलदायी होता है। दूसरे ऐसे वैद्य देखे हैं कि जो न्याय, सांख्य और वैद्यक इनके पाठ्य पुस्तकों का बहुतसा भाग शब्दशः मुखोद्गत करते हैं परंतु उसका तत्वज्ञान उन्हें होता नहीं। एक वैद्य के लेख से गुण = क्रम = अवस्था, ऐसा समीकरण निकल सकता है। वे लिखते हैं कि Attribute को स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। परंतु गुण को स्वतंत्र स्थिति है। ' एकजीवी प्राणी ' ऐसा शब्द प्रयोग उन्होंने किया है। निःसंशय उसके मन में Unicelullar organism यह संज्ञा खेलती होगी जिनके मनमें ऐसा गोलमाल है वे चाहे उतना शब्दजाल लिख कर दूसरे को क्या समझा सकेंगे। इसलिये तत्व-शोधन के लिये, प्रत्यय तर्क और प्रयोग इन पूर्वतर पदों की निगा रखो।

४ पश्चात् उन तत्वों का परंपरावर्धन विद्यालयों से हो सकेगा। उसके लिये आर्यवैद्यक पाठशालाओं का अभ्यासक्रम इस तरह निश्चित करना होगा कि जो पढ़ने के बाद पदवीधर अपनी पद्धति तो अच्छी तरह समझे और अन्य पद्धतिओं का भी आलोचन करने को तैयार हो। इसी विचार से एक नव्य पाठ्यक्रम मैंने सूचित किया है जो वैद्यसंमेलन पत्रिका में छपा हुआ है। मेरी जो मनीषा है उसका वो प्रथम और निम्नतम पद है। आशा करता हूँ कि आप आर्यवैद्यकोद्धरेच्छू इसका ध्यान रखेंगे।

उस अभ्यासक्रम में यद्यपि मैंने अंग्रेजी भाषा का अंतर्भाव किया नहीं तोभी हर एक वैद्यने अंग्रेजी सीखना आवश्यक है ऐसा मेरा मत है। आप देखते हो कि वैद्यकेतर व्यवहार में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आज अधिक उपयुक्त होता है। यह परिस्थिति का परिणाम है। मुसलमानी राज्य में सबको फारसी पढ़ना पड़ता था। आज मुसलमान हो हिंदु हो सबको

अंग्रेजी की आवश्यकता है। अंग्रेजी जानने का और भी एक कारण है। आर्यवैद्यकीय ग्रंथ समझने के लिये डॉक्टरों को संस्कृत समझना आवश्यक है उसी तरह नव्य पाश्चात्य अद्यावधि वैद्यकीय प्रयोग समझने के लिये वैद्यों को अंग्रेजी समझना आवश्यक है। अगर वे अंग्रेजी न सीखे तो जिस तरह मैंने पहिले बताया उसी तरह उनको परप्रत्ययी होना पड़ता है और सम्यग्ज्ञान उन्हें होता नहीं। आज पाश्चात्य संस्कृती का संसर्ग और व्यवसायिक स्पर्धा इनका परिणाम ऐसा हुआ है कि परंपरानुयायी कहनेवाले वैद्य न समझते हुये भी उपश्रोत (Stethoscope) इत्यादि नानाविध यंत्र शस्त्र वापरते है। ब्लडप्रेशर, कान्स्टिपेशन (अवष्टंभ) इन लक्षणों को रोग समझकर पुराण संहिता में उनको ढूँढते है। उपदेश का अत्यन्त हृद्य वर्णन पुराण संहिताओं में होते भी तत्सम नव्य वर्णन का भाषांतर करके पुराण संहिताओं को जोड़ रहे हैं। उर्ज, ओज ये पुराण शब्द छोड़ कर विटामिन इस शब्द को स्वभाषा में रूढ़ करते हैं। पुराण संहिता में फक्क यह संज्ञा होते भी (Rickets) 'मृद्वस्थि यह नव्य संज्ञा रूढ़ करने के मोह में पड़ते हैं और रिकेटस. जलोदर, अर्श हृद्रोग इत्यादि रोगों की पुराण चिकित्सा तत्वतः नव्य चिकित्सा समान है ऐसा उच्च स्वर से कहते हैं। इससे भी अधिक देख कर मैं नहीं समझता कि अंग्रेजी सीखने में और नव्य पाश्चात्य चिकित्सा आर्यवैद्यकीय ही है ऐसा कहने में वैद्यों को क्यों लज्जा उत्पन्न होती है। नव्य प्राप्त उपकरण त्याज्य है ऐसा मेरा मत नहीं किन्तु नव्य उपकरण हो या नव्य कोई कल्पना हो उसको अच्छी तरह समझना चाहिये, उसके पूरी आत्मसात् करके पश्चात् काम में लाना चाहिये। अगर हम लोग यह न कर सके तो स्वपद्धति का श्रेष्ठत्व बतलाने के आभास करते हुये हम अन्य पद्धति का अंधानुकरण करके यतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः ऐसी अवस्था में पड़ेंगे।

मैंने अभी तक जिस अवस्था का और वृत्ति का वर्णन किया और जिस अनिष्ट अधोगति का रास्ता दर्शित किया है वह न केवल वैद्यों के बाबत किन्तु भारतीय हकीमों के बाबत भी सत्य है। वस्तुतः आर्यवैद्यकीय प्रश्नों की चर्चा करने वाले इस संस्था के उच्च पद से इस बाबत का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु पूना छोड़ने के पूर्व मेरे को एक पत्र मिला जिसमें, आर्यवैद्यक और तिब इन दोनों का एकट्ठा विचार करना और तदर्थ वैद्य और हकीम इनकी संघटित संस्था प्रस्थापित करना उचित है या नहीं, ऐसा एक जटिल प्रश्न पूछा हुआ है। यही प्रश्न का उच्चारण वारंबार होता है। परन्तु उसका निकाल भी लगता नहीं। तत्वतः ये दोनों पंथ एकट्ठे होकर एक काज करें तो कुछ हरकत नहीं। परन्तु व्यवहारतः मैं आग्रह से कहता हूँ कि इन दोनों पंथों का विचार दो अलग-अलग संस्था करे तो वह कार्य दोनों पंथों को उपकारक होगा। मैंने वारंवार कहा है और वारंवार मैं बतला सकता हूँ कि सम्यग् ज्ञान के लिये प्रथमतः हरएक बात का एकांतिक विचार करना आवश्यक है। पाठशाला के प्रथम श्रेणी में आप सब विद्वानों ने इसी तरह अभ्यास किया है। किसी दो तीन पद्धतियों का तौलनिक अभ्यास करने का अधिकार या पात्रता दुर्लभ है। इसी कारण से अनेक आर्याग्ल विद्यालयों में अनेक साल पठन-पाठन चलते हुए भी डॉक्टर और वैद्य इनके विचारों का अथवा दोनों पद्धति के प्रेमियों का समन्वय आज तक हो नहीं सका। और एक दो पद्धतियों की जोड़ देकर गोलमाल करने में फायदा तो नहीं होगा, कदाचित हानि जरूर होगी। पाश्चात्य शास्त्रज्ञ तिब के प्रेमियों को अधिक गुण देते नहीं। शेख उल रईस ने लिखा हुआ मान्यवर ग्रंथ जो कानून इत्यादि तिब उसका सटीक भाषांतर अंशतः अंग्रेजी

भाषा में प्रसिद्ध हुआ है। अंग्रेजी जानने वाले वैद्यों ने या हकीमों ने शायद उसको देखा होगा। देखते ही वे बोल उठेंगे कि बस तिब और आर्यवैद्यक इनके प्रयोग पाश्चात्यों को पूरे मान्य हैं। कई साल पूर्व एक आर्यवैद्यकाभिमानी डॉक्टर ने Campbell की पुस्तक पढ़ कर ऐसा भविष्य कथन किया था कि इस पुस्तक से पाश्चात्य वैद्यक में क्रांति होकर आर्यवैद्यकीय प्रमेय सर्वमान्य होंगे। वह कथन या अपेक्षा अभी अंशांशतः भी पूरी नहीं हुई। आप सब वैद्य और हकीम सभ्यों से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि यदि आर्यवैद्यक के प्रेमियों की श्रेष्ठता प्रस्थापित करने की आपको ईर्षा हो तो इन क्षणिक विकारों को आप मन में स्थान न दीजिये। शुभस्य शीघ्रं इस न्याय से, पूर्वग्रह, वैयक्तिक अभिनिवेश, हठवाद, शब्दच्छल, प्रत्ययावहेलन, अंधानुकरण इत्यादि को एकदम छोड़ कर सत्यव्रत बन जाइये। यह सब उपदेश आप महानुभावों को करने की मेरी पात्रता न होगी। किन्तु आपने ही मुझे उच्च पद दिया है। और मैं केवल चरक सुश्रुतोक्त उपदेश आपके सामने पुनश्च रखता हूँ। और दृढ़ विश्वास से एक सुभाषित आपको निवेदन करता हूँ कि—

पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः।
प्रायेण ह्यायुर्वेदस्यास्थायिन्यो विपत्तयः॥

आप यदि प्रयत्न करें तो आयुर्वेद विपत्ति अति थोड़े काल में नष्ट होगी। त्रिदोष, त्रिधातु, महाभूत वात इत्यादि प्रश्नों के बाबत मेरे विचारों की अपेक्षा कदाचित् आप करते होंगे। उनके बाबत जो कथन करने का है वो अति विस्तृत और प्राप्त काल बहुत थोड़ा है। अगर उसके बाबत कहना शुरू करूँ तो अन्यान्य और बहुत सी बातें बीच में पैदा होती हैं। इसके सिवाय मेरा इरादा ऐसा है जिन बातों के बाबत में वाद विवाद वा पक्षोपक्ष उत्पन्न होने का संभव नहीं ऐसी नानाविध बातें हैं उनको पहिले विचारार्थ लीजिये। चरक मुनि ने स्रोतसों के बाबत और सुश्रुताचार्य ने मर्मों के बाबत स्वतंत्रतया और विस्तरशः क्यों लिखा, सुश्रुताचार्य ने 'क्रियाकाल' (Time for therapeutic interferance) का निर्देश 'व्रणप्रश्न' अध्याय में क्यों किया, रक्त यह चौथा दोष मानते हुए भी चरक या सुश्रुत इन दोनों ने उसका प्रपंच वर्णन क्यों किया नहीं। ऐसे ही चार दोष तिब्बी ग्रन्थ में कैसे मिलते हैं, उपश्रोत्र से हृद्गमन का जो ज्ञान होता है और हस्त नोदन से नाडी गति का जो ज्ञान होता है इनमें कोई फरक है या नहीं, इनमें से कौन सी पद्धति अधिक ज्ञानदायक है, 'चाहार मकाले' में नाडी (नब्ज) परीक्षा प्रायः व्यवहार धूर्तता के लिये एक अवगुंठन है ऐसा बताने वाली जो कथा है उसकी सत्यता प्रतीत होती है या नहीं, ऐसे नानाविध प्रश्न विचार-प्रवर्तक, प्रयत्नप्रसू और मनोबोधक है। उनको पहिले सोचें। यही सुलभ सोपान परंपरा आपको बिना आयास ध्येय शिखर तक ले जायगी अस्तु।

नैमित्तिक क्षणिक, शिष्टाचारार्थ अलंकारादि द्वारा मैंने केवल आर्यवैद्यक और वैद्य इनकी प्रशंसा की नहीं। अनेक विद्वान् लोग वैसा कर रहे हैं। अप्रिय पथ्य बोलने वाला वक्ता इस काल में अति दुर्मिल नहीं किन्तु श्रोते तो दुर्मिल हैं। तो भी मेरे को आप जैसे निष्ठावंत, सत्कार्यरत, आत्मान्वेषी श्रोते मिले यह मेरा सुभाग्य है। मेरे इस वाग्विडंबन को आपने इतना काल अति शांत चित्त से श्रवण किया इसलिये मैं आपका अत्युपकारबद्ध हूँ। आनृण्यभाव से

मैं आपसे वचन देता हूँ कि आर्यवैद्यक का कोई सत्कार्य मेरी पात्रता अनुसार करने के लिये मैं तयार हूँ सेवक को हुकूम, मदद और आशीर्वाद दीजिये।

आपके दुर्दम्य प्रयत्ननिष्ठा में मेरा भरोसा है। थोड़े ही अवसर में नि. भा. आयुर्वेद संमेलन का रजतजयंन्त्युत्सव नजदीक आता है, इस समय ऐसा कोई आर्यवैद्यक विषयक काम करने का प्रयत्न कीजिये कि जिससे न तु भारतीय किंतु जागतिक शास्त्रज्ञों का लक्ष्य आकर्षित हो। हर एक विषय में जगद्गुरुत्व कमाने वाले ज्ञानरवि इस भारतभूमि में पुराणकाल में अनेक हुए हैं। आशा है कि इस संकट समय में भगवान धन्वन्तरी इसी भारत भू में प्रकट होकर आर्य वैद्यक का आयुर्वेद यह सर्वंकष, सर्वंव्यापी पर्याय सार्थ प्रस्थापित करें।

* * *

बंगाल प्रांत

बंगीय वैद्यसम्मेलन के सभापति, विद्यासागर, प्राणाचार्य, महामहोपाध्याय, कविराज—

श्री० गणनाथ सेन, सरस्वती, एम०ए०, एल०एम० एस० का

अभिभाषण

माननीय सभ्यगण,

जगन्नियन्ता जगदीश्वर की असीम अनुकम्पा से आज इस बङ्गीय प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन में आयुर्वेद के अनेक भक्त एवं हितैषीगण उपस्थित हुये हैं। बङ्गाल के अनेक सर्वजन-मान्य एवं प्रसिद्ध विद्वानों ने इसमें योग दान देकर आयुर्वेद के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। सबकी यही इच्छा है कि आयुर्वेद का लुप्तप्राय गौरव एवं मान पुनः जागृत हो जाय। आप लोगों ने इस सभा का सभापति मुझ जैसे शोक-रोग-जरादि-ग्रस्त व्यक्ति को बनाया है, इसलिये मैं कृतज्ञ हृदय से आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि मैं बचपन से ही आयुर्वेद का सेवक होता आया हूँ तौ भी अभी मेरे काम करने की शक्ति और उत्साह दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है। स्वदेश एवं विदेश में आयुर्वेद के प्रचारार्थ विप्लव परिश्रम करने से मैंने यही निश्चय किया है कि जो कार्य समूचे भारतवर्ष में त्याग एवं परिश्रम से सहज ही सम्पन्न हो सकता है वह कार्य बङ्गाल में करना बहुत कठिन है। इसलिये मैं आप लोगों का सहयोग विशेष रूप से चाहता हूँ।

आयुर्वेद के कतिपय गण्यमान्य एवं मेरे सहकर्मी गणों के मर जाने के कारण मैं आन्तरिक हृदय से खेद प्रकट करता हूँ। इन लोगों में से चिर-परिचित मित्र स्वर्गीय यामिनी भूषणराय, वैद्यरत्न स्वर्गीय योगेन्द्रनाथ सेन, स्वर्गीय हेमचन्द्र सेन, स्वर्गीय श्यामादास वाचस्पति, स्वर्गीय हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, स्वर्गीय धर्मदास कविराज, स्वर्गीय ललित कविसागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों के मर जाने से जो क्षति हुई है वह कभी पूरी नहीं हो सकती है। उन लोगों की अनुपस्थिति में कर्तव्य के भारी बोझ को अपने कन्धों पर रखने में मुझे अकेलेपन का अनुभव हो रहा है।

आयुर्वेद अत्यन्त विशाल एवं गम्भीर शास्त्र है। इसकी उपमा केवल समुद्र ही से दी जा सकती है। पुराने जमाने में महाभारत के युद्ध के समय प्रजाओं की रक्षा आयुर्वेद की औषधि-चिकित्सा एवं शास्त्र-चिकित्सा ही से हुआ करती थी। इसके बाद जब आयुर्वेद अन्य देशों की आर्य सभ्य जातियों का शिक्षा गुरू हुआ तब इसकी शान संसार के भिन्न-भिन्न देशों में चमकी। उस समय पश्चिमस्थ फारस, अरब, मिश्रदेश, ग्रीस, रोम, ब्रह्म देश चीन प्रभृति ने भारतवर्ष को अपना गुरु बना कर अपने को धन्य समझा। आज से करीब सवादो हजार

श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन शर्मा सरस्वती
एम्. ए.; एल् एम्. एस्. **कलकत्ता** ।
अध्यक्ष—नि. भा. व. ३ वैद्यसंमेलन प्रयाग (सन १९११) ।
„ ११ वैद्यसंमेलन इन्दोर (सन १९२१) ।
„ और २१ वैद्यसंमेलन मायसोर (सन १९३०) ।
अध्यक्ष—त्रिदोषपरिषत् काशी (सन १९३५) ।
प्रिन्सिपल—श्रीविश्वनाथआयुर्वेदमहाविद्यालय, **कलकत्ता** ।

वर्ष पहले जब सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था उस समय आयुर्वेद के चमत्कारों को देख अत्यन्त विस्मित हुआ था। उसी समय से आयुर्वेद के ही प्रभाव से ग्रीक एवं रोमन चिकित्सा एवं यूनानी और डाक्टरी चिकित्सा पद्धति का प्रादुर्भाव होने लगा। चीन देश की चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद की पूर्णतया ऋणी है। इन सब ऐतिहासिक बातों को इतिहास लेखकों ने भी स्वीकार किया है। यह अवश्य है कि कई अदूरदर्शी मनुष्य ने ग्रीक पद्धति को संसार की चिकित्सा-पद्धतियों की जननी ठहराया है। उन लोगों के पृथ्वी शब्द का अर्थ सम्भवतः योरोप मात्र ही है।

आयुर्वेद का अर्थ और परिचय

मनुष्यों के जीवित-समय का ही नाम आयु है। कभी कम नहीं होने वाली एवं सुखकर आयु प्राप्त करने का उपाय जिस शास्त्र में दिया हुआ है उसका नाम आयुर्वेद है। विद् धातु का अर्थ ज्ञान होता है। यहाँ ज्ञान का अर्थ आयु सम्बन्धी ज्ञान है। आयु सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान जिस शास्त्र से लाभ किया जासके उसका नाम आयुर्वेद है। चरक ने कहा है कि मनुष्य की आयु चार प्रकार की है (१) हित आयु (२) अहित आयु (३) सुख आयु (४) दुःख आयु। जो आयु संसार की भलाई में व्यतीत हो उस आयु का नाम हित आयु है इसका ठीक विपरीत अहित आयु है। जो आयु सुख से ब्यतीत की जाय उसे सुख आयु कहते हैं। इसका ठीक विपरीत दुख आयु है। मनुष्य जिस उपाय से हित आयु और सुख प्राप्त कर सकें उसका ही उपाय आयुर्वेद शास्त्र में दिया गया है।

सुश्रुत ने कहा है आयुर्वेद दो प्रकार का होता है। वो स्वस्थ्य आदमियों की स्वास्थ्य रक्षा और रोग हो जाने पर रोग का प्रतिकार। इसी लिए आयुर्वेद शास्त्र में विस्मृत रूप से सभी प्रकार का उपाय दिया हुआ है। चिकित्सा दो प्रकार की कही गई है। ओषधि-साध्य और शस्त्र-साध्य। इसी दृष्टि से आयुर्वेद दो विभागों में विभक्त किया गया है। काय-चिकित्सक सम्प्रदाय और शल्य-चिकित्सक सम्प्रदाय।

परन्तु केवल मनुष्य स्वस्थ शरीर एक दीर्घ आयु ही को लेकर सुखी नहीं हो सकता है। धर्म्म, अर्थ, समाज प्रभृति उनके विषयों से मनुष्य के सुख-दुख का सम्बन्ध है। इसी लिये ही आयुर्वेद में धर्म्मनीति, अर्थनीति, समाजनीति सम्बन्धी अनेक बातें बताई गई हैं। इसीलिए आयुर्वेद के अङ्गभूत अश्वायुर्वेद गवायुर्वेद, गजायुर्वेद, वृक्षायुर्वेद प्रभृति की सृष्टि हुई है। इन सभी विषयों में "शालिहोत्र संहिता" "पालकाप्य संहिता" प्रभृति प्राचीन ग्रन्थावली आज कल वर्तमान हैं। बहुत प्राचीन समय से ही आयुर्वेद आठ विभागों में विभक्त किया गया है।

(१) शल्यतन्त्र पर यन्त्रशस्त्रसाध्य रोगों का निर्णय और उनकी चिकित्सा (Surgery and Midwifery) (२) शालक्यतन्त्र अथवा, आंख, कान, नाक, कण्ठ, प्रभृति के रोगों का निर्णय और उनकी चिकित्सा (३) कायचिकित्सा या औषधि-साध्य शरीर-सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा (Practice of Medicine) (४) भूत-विद्या या मानसिक रोगों की चिकित्सा। (५) कौमार भृत्य या शिशुपालन विधि और शिशु-चिकित्सा। (६) अगदतन्त्र या स्थावर और जङ्गम सभी प्रकार के विषों का परिज्ञान और उसकी चिकित्सा। (७) रसायन तन्त्र या ज्वर से पीड़ित जीर्ण शीर्ण मनुष्यों की पुनः आयु ठीक

कर देने की चिकित्सा। (८) बाजीकरण अथवा विवाहित जीवन में वीर्यक्षय को रोकने के उपाय और जिनका शुक्र क्षीण हो गया है उनकी चिकित्सा।

इनमें से अन्तिम दो चिकित्सा के अङ्गों के प्रति पाश्चात्य चिकित्सकों का ध्यान हाल ही में झुका है। मनुष्यों का पुनः यौवन कोई असम्भव बात नहीं है योरप एवं अमेरिका में थोड़े दिन हुए कि इसका आविष्कार हुआ है।

आजकल जिस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा के अनेक भिन्न-भिन्न विशेषज्ञ चिकित्सज्ञ दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार प्राचीन समय में भी आयुर्वेद के अनेक विशेषज्ञ (Specialists) थे। वे लोग कायचिकित्सक (Physicians) शल्यतान्त्रिक (Surgeon) शालाकी चिकित्सक (Specialists in eye Ear, Nose, & Throat diseases), जगदतान्त्रिक या विष-चिकित्सक (Tosucologists) प्रभृति नामों से कहे जाते थे। आयुर्वेद की इन सब भिन्न-भिन्न शाखाओं की बहुत उन्नति हुई थी और कम से कम प्रायः हरेक शाखाओं की आठ या दश संहितायें (Authoritative works) बन गई थीं। इस प्रकार पचास साठ ग्रन्थों के नाम और पाठोद्धार सात आठ सौ वर्ष पहले बनाई हुई टीका पाई जाती है। यह बहुत दुःख का विषय है कि इन मूल ग्रन्थों में से अधिकांश राष्ट्र-विप्लव आदि अनेक कारणों से लुप्त हो गये हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि जितने प्रामाणिक ग्रन्थ आजकल पाये जाते हैं वे सब अधिकांश केवल प्राचीन संहिताओं का प्रति-संस्कार (Recompilation) या संग्रह मात्र ही है।

आयुर्वेद का पूर्व ऐतिहासिक मूल

वेद में आयुर्वेद

सुश्रुत ने कहा है कि आयुर्वेद अथर्ववेद की शाखा है। चरणव्यूह व्यासदेव ने आयुर्वेद को ऋग्वेद की शाखा माना है। सचमुच में आयुर्वेद की अनेक बातें अथर्ववेद में है। ऋग्वेद में आयुर्वेद की बातें बहुत कम पाई जाती है। इसलिये चरक संहिता में अथर्ववेद के प्रति भक्ति दिखाई गई है। सचमुच में वैदिक साहित्य में आयुर्वेद की इतनी बातें पाई जाती हैं कि यदि इन विषयों का संग्रह एवं आलोचना की जाय तो एक अलग पुस्तक ही बन जा सकती है। अथर्ववेद हृदय (Heart) क्लोम (Trached-bronchial tree) कफांड (Lungs) वृक्क (Kidneys), गवीनीद्वय (ureters), प्लाशि वा बस्ति (Bladder), अलीक्ष या अग्न्याशय (Pancreas), यकृत् (Liver), प्लीहन् (Spleen); अन्न (Intenstines), अण्ड या मुष्क (Testides), वनिष्ठु (Prostrate glands), गुद (Rectum) मस्तिष्क (Brain), पेशनी या पेशी (Muscles), स्नाव या स्नायू (Sniew or Fibros Tissue) धमनी (Artery), हिरा वा शिरा (Vein), नाड़ी (Nerves) आदि अनेक शब्द जो कि शरीर के शास्त्र में है इसमें पाये जाते हैं। शब्दोच्चारण की समानता में इन नामों को प्रचलित ल्याटिन भाषा के नामों का मूल कहा जा सकता है। 'प्रत्यक्ष शारीर' नामक ग्रन्थ को बनाने के समय अपने "प्रत्यक्ष शारीरक" नाम के शरीर सम्बन्धी ग्रन्थ में शारीरक संज्ञा के (शरीर सम्बन्धी नाम) निर्धारण के समय में इन वैदिक संज्ञाओं की सहायता मुझे अधिक परिमाण में प्राप्त हुई है।

इसके अलावे जिन सूक्ष्म या अदृश्य कीड़ों के बारे में जो अथर्ववेद में वर्णन किया

गया है उसकी आलोचना करने से चकित होना पड़ता है। अदृश्य अथवा सूक्ष्म कीड़ों के बारे में सुश्रुतादि ग्रन्थों में उल्लेख है परन्तु अथर्ववेद में जो वर्णन है वह बहुत विस्तार के साथ है अथर्ववेद में एक जगह कहा गया है कि सूर्य की किरणें अनेक छोटे-छोटे कीड़ों को नष्ट कर सकतीं हैं। रोग के वर्णन के प्रसङ्ग में अथर्ववेद में अर्श (Piles), अपरी (Scrofula), कास, कुष्ठ; हरिमा (Jaundice), तकमन या मलेरिया ज्वर, बलास (Asthma or Bronchitis), बिसल्ल (विसर्प या Erysepalus), सिकता (Calculi) विद्रधि (Deep internal suppuration), राजयक्ष्मा या जायान्य (Pthisis) आदि रोगों का बहुत उल्लेख है। उसमें जो अत्यन्त प्राचीन काल में मलेरिया ज्वर हुआ करता था वह विशेष ध्यान करने योग्य है।

औषधियों के बारे में वैदिक संहिता में बहुत वर्णन पाया जाता है। अपामार्ग, आमलकी, अश्वगन्धा, अरुन्धती (लाक्षा) करञ्ज, कुमुद, कुष्ठ, खदिर, गुग्गुल, पाठा, चपू प्रभृति औषधियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब विषयों की आलोचना करना यहाँ असम्भव है क्योंकि इससे लेख बहुत बढ़ जायगा। शस्त्रचिकित्सा की सफलता के विषय में वैदिक साहित्य में अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। उनमें से एक दृष्टान्त यह है:—

'सद्योजंघामायसीं विशपलाये धनेहिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्'

अर्थात् विशपला की जंघा टूट जाने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने स्वछन्द घूमने के लिये उसे लोहे की जंघा दी।

आयुर्वेद का दैव और आर्षकाल

आयुर्वेद के जन्म के विषय में चरक-सुश्रुतादि ग्रन्थों में इस प्रकार उल्लिखित है। जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा के मन में यह शास्त्र पहले पहल प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने दक्ष-प्रजापति को इसका उपदेश दिया, दक्षप्रजापति से स्वर्ग के वैद्य दोनों अश्विनी-कुमारों ने सीखा। दोनों अश्विनी-कुमारों से देवताओं के राजा इन्द्र ने इस विद्या को सीखा और सीख कर आयुर्वेद के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये। वे हिमालय के उस पार (तिब्बत ?) रहा करते थे। मर्त्तलोक के रोग और दुःख को देख कर ऋषिगण कातर हो गये और महर्षि भारद्वाज को इस विद्या को लाने के लिये भेजा। महर्षि भारद्वाज ने विद्या सीख लिया और मर्त्यलोक में लौट आये। यहाँ आकर ऋषिगणों को आयुर्वेद का उपदेश दिया। पूनर्वसू, आत्रेय प्रभृति ऋषियों ने विशेष रूप से आयुर्वेद का प्रचार किया। पुनर्वसू और आत्रेय के शिष्य अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत क्षारपाणी प्रभृति अनेक ऋषी थे। इन लोगों ने अपनी-अपनी एक अलग संहिता रच डाली। इन लोगों की आत्रेय सम्प्रदाय अथवा काय चिकित्सा सम्प्रदाय (School of physicians) के नाम से प्रसिद्ध थी। इसी समय में काशी के राजा दिवदास धन्वन्तरी ने एक अलग सम्प्रदाय स्थापित किया। इसकी प्रसिद्धि 'धन्वन्तरी सम्प्रदाय' के नाम से थी। यह कहा गया है काशी के राजा दिवदास समुद्र से पैदा हुए धन्वन्तरी नारायण के अवतार थे। इनके शिष्य सुश्रुत, भोज, उपधेनव, उरद्र, पुष्कलावत, वैतरन, गोपुर-रक्षित आदि ऋषिगण थे। इन लोगों ने अपने-अपने नाम की शल्यतन्त्र की संहिताओं को बनाया था। आजकल की सुश्रुत संहिता उसी सम्प्रदाय का प्रधान ग्रन्थ है परन्तु इस संहिता में उस प्रधान संहिता का केवल संक्षिप्त सार मात्र है।

इसी धन्वन्तरी सम्प्रदाय को 'शल्यतान्त्रिक सम्प्रदाय' कहा गया है। आजकल जो प्राचीन ग्रन्थ एवं टीका पाई जाती है उससे यह स्पष्ट साबित होता है कि आठ सौ वर्ष पहले प्राचीन समय के लिखे हुए ग्रन्थ पाये जाते थे। समूचे भारतवर्ष में एवं यूरोप भर में उन ग्रन्थों के खोजने की चेष्टा करने पर आज भी आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ मिल सकते हैं। जिस प्रकार कि तन्जोर के पुस्तकालय में भेल संहिता नाम का एक ग्रन्थ पाया गया है। यह ग्रन्थ कलकत्ता विश्वविद्यालय के सर आशुतोश मुखोपाध्याय के यत्न से प्रकाशित हुआ है। हाल ही में 'वृद्ध जीवन तन्त्र' अथवा कश्यप संहिता नाम का एक प्राचीन ग्रन्थ, बम्बई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक एवं अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों के सम्पादक पण्डित श्रीयुक्त यादवजी त्रिकमजी आचार्य महाशय की चेष्टा से नेपाल से लाया गया है और इन्हीं की सम्पादकता में प्रकाशित होता है।

आयुर्वेद में सिद्धयुग अथवा रसवैद्य सम्प्रदाय

रस समय तक मैंने आयुर्वेद के दैवकाल और आर्षकाल के बारे में संक्षेप समय में आलोचना की (विस्तृत प्रकार से मैंने इसकी आलोचना अपने संस्कृत ग्रन्थ और प्रबन्धावली में की है) परन्तु इस प्रसङ्ग में आयुर्वेद के बारे में एक और युग की बात कहना आवश्यक है इस युग के प्रवर्त्तक रसवैद्य अथवा 'सिद्ध सम्प्रदाय'। इन लोगों ने दो हजार वर्ष पहले पारा आदि धातुओं से औषधि करने की प्रथा निकाली। इसके पहले भी लोहा, शिलाजीत आदि कई धातुओं की औषधियाँ काम में लाई जाती थीं परन्तु पारा आदि धातुओं का व्यवहार खाने में नहीं किया जाता था। इन्हीं रसवैद्यों ने पारा आदि के सर्व-रोग-नाशिनी शक्ति का आविष्कार किया था। यह कहा जाता है कि इन लोगों ने ही पारा आदि धातुओं के एवं तांबा वगैरह धातुओं के संयोग से सोना और रूपा बनाने की प्रथा निकाली थी। इस सम्प्रदाय की उन्नति एक दिन इतनी हुई थी की चारों वर्गों की फल प्राप्ति केवल पारा से होती थी इस प्रकार का दार्शनिक मत रसेश्वरदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। माधवाचार्य ने सर्व्व-दर्शन संग्रह नामक ग्रन्थ में रसेश्वर दर्शन के बारे में लिखा है। आजकल वर्त्तमान आयुर्वेद-प्रणाली पर इस रसवैद्य सम्प्रदाय की इतनी श्रेष्ठता बढ़ गई है कि आजकल आयुर्वेद को और प्राचीन ऋषियुग का नहीं कहा जा सकता है। दक्षिण भारतवर्ष के किसी किसी प्रदेश में और सिन्धू देश को छोड़ कर प्रायः सभी प्रदेशों में आर्ष चिकित्सा और रस चिकित्सा ने मिलकर एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया है। यह कहा गया है कि इस सम्प्रदाय के मत आदिदेव महादेव द्वारा कहे गये हैं और आदिनाथ, चन्द्रसेन, नित्यानन्द, गोरखनाथ, कपालि, भालुकि, मान्डव्य प्रभृति ऋषियों के योग-साधन द्वारा स्थापित हुआ है।

दक्षिण भारत में आयुर्वेद

लोग यह कहते हैं कि दक्षिण में आयुर्वेद के प्रचारक अगस्त्यमुनि थे। परन्तु आयुर्वेद के साथ ही साथ 'सिद्ध सम्प्रदाय' अथवा रसवैद्य के मत भी तामील भाषा में वहाँ प्रचारित हुये थे। इसी लिये ही दक्षिण भारतवर्ष में यह सिद्धमत आयुर्वेद के प्रतिद्वन्दी रूप में अभी तक है। इस सिद्ध सम्प्रदाय के पुलस्त्य, प्यूहमणि, पुलिप्पाणि, भोगन, तेरय्यर, वैखरिमुसु, तिरूरान्, कुरू, जेविमुसु, मङ्गराज अभिनवचन्द्र प्रभृति तीस चालीस आचार्यों के ग्रन्थ आजकल भी तामील भाषा में वर्त्तमान हैं। दक्षिणदेश बसवराज, विज्ञानेश्वर, पूज्यपाद,

मङ्गराज, मन्थानभैरव, त्रिमल्लभट्ट, श्रीकण्ठ, नागनाथ, बल्लभेन्द्र नङ्गराज आदि आचार्यों के बनाये हुये संस्कृत ग्रन्थ भी वर्त्तमान हैं। उनमें से वसवराज प्रभृति के दो एक ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में भी प्रकाशित हुए हैं। अन्य ग्रन्थ बङ्गाल में एक दम अपरिचित है।

मालावार के किनारे कोचीन त्रिवाङ्कोर प्रदेश में विषचिकित्सा के अनेक नये ग्रन्थ संस्कृत और केरल मिश्रित अथवा विशुद्ध संस्कृत और केरल भाषा में पाये जाते हैं। उनमें लक्षणामृत, उड्डीश उत्पल, हरमेखला, नारायणीय, कालवज्र, कालवन्जन, ज्योत्स्निका और प्रयोग-समुच्चय प्रभृति प्रसिद्ध हैं। इस प्रसङ्ग में सिंघलद्वीप में प्रसिद्ध मन्थान भैरव कृत आनन्दकन्द, मयूरपाद कृत योग रत्नाकर, सारार्थ-संग्रह, भेषज-मन्जूषा, सारस्वतं निघण्टु प्रभृति ग्रन्थावलियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्राचीन आयुर्वेद के ज्ञानोन्नति का परिचय

अब तक मैंने आयुर्वेद की ऐतिहासिक बातों को बहुत संक्षेप में कहा है। उस समय के आयुर्वेद की शाखाएँ और प्रतिशाखाओं ने कितनी उन्नति की थीं इसका बिना कुछ परिचय दिये यह प्रसङ्ग अपूर्ण रह जायगा इसलिये मैं संक्षेप में इसके बारे में कहता हूँ।

प्राचीन समय में यह नियम था कि बिना शरीर-विद्या सीखे लोग चिकित्सा नहीं कर सकते थे। इस शरीर विद्या को केवल शल्यतान्त्रिक सीख सकते थे ऐसा नहीं था, कायचिकित्सकों को भी यह विद्या सीखनी आवश्यक थी। इसलिये चरक ने कहा है—

"शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेदलोकसुखप्रदम्॥"

अर्थात् जो मनुष्य हर तरह सभी शरीर-विद्या में निपुण है और जिसे शरीर-विद्या सदा स्पष्ट रहती है उसे ही आयुर्वेद शास्त्र का पूर्ण ज्ञान है। सुश्रुत ने भी स्पष्ट भाषा में कहा है—

"शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद् विशारदः।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः॥"

अर्थात् शरीर और शास्त्र दोनों को मिला कर देखने से निपुणता होती है। इस उपाय से निसन्देह पढ़ कर चिकित्सा करनी चाहिये।

शव की परीक्षा के विषय में सुश्रुत ने स्पष्ट भाषा में कहा है—

"शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः।"

अर्थात् मुर्दे के शरीर को अच्छी तरह शुद्ध करके शरीर सम्बन्धी समस्त विषयों का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिये।

केवल यह चरक सुश्रुत ही में नहीं लिखा है परन्तु वेद वेदाङ्गों शास्त्र समूह, पुराण धर्मशास्त्र में भी शारीर विद्या के बारे में संक्षेप रूप से कहा गया है। इससे समझा जाता है कि उस समय शरीर-शिक्षा साधारण पण्डितों के लिये भी अवश्य सीखने योग्य थी। शरीर-विद्या के अनेक ग्रन्थ आजकल लुप्त हो गये हैं। किन्तु उस समय भारतवर्ष के बाहर शरीर-शिक्षा किस प्रकार की थी इसकी तुलना कीजिये। Dr. Puschmaun ने अपनी किताब History of Medical Education में मध्य युग में शरीर-शिक्षा की अवस्था का इस प्रकार वर्णन किया है। "Dissection of the human subject was in the first centuries of the middle ages opposed by religious and political ordinances and also by social prejudice" अर्थात् मध्ययुग में योरोप के धर्मयाजकगण राजपुरुष एवं सामाजिक मनुष्य सभी मुर्दे के चीरने के कट्टर विरोधी थे।

प्राचीन समय में शारीर-विज्ञान की कितनी उन्नति हुई थी उसका दृष्टान्त आप लोगों को देता हूँ। रक्त की गति के बारे में चरक में सुस्पष्ट शब्दों में लिखा है कि हृदय से धमनियों में से हो कर बहने वाला रक्त सभी शरीर में बह कर लौट कर फिर हृदय ही में चला आता है। एवं गर्भस्थित शिशु का रक्त लौट कर माता ही के हृदय में आता है और वहाँ से होकर फिर गर्भस्थित शिशु के हृदय में लौट कर चला आता है। किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है, अन्त में करीब दो हजार वर्ष पहले जिस सत्य को प्राचीन समय के लोगों ने सिद्ध किया था इङ्गलैण्ड में Sir William ने उसी का अठारहवीं शताब्दी में आविष्कार किया है। उस समय की चिकित्सा-मण्डली ने इस तथ्य को निरर्थक कह कर अलग कर दिया।

आयुर्वेद के त्रिदोषतत्व अर्थात् वायु, पित्त, कफ आदि के सर्वव्यापिता का आविष्कार भी प्राचीन समय की ज्ञानोन्नति का एक श्रेष्ठ दृष्टान्त है। यही सिद्धान्त ग्रीस देश में जाकर बहुत विकृत होकर Humoural Theory के रूप में परिणत हो गया है। यद्यपि यह Humoural Theory हँसी उड़ाई जाने लायक है पर मैंने इसके मूल सिद्धान्त पर जो आयुर्वेद में है और सत्य विज्ञान-सम्मत है उसको मैंने अपनी किताब "सिद्धान्त निदान" में साबित किया है। इसकी विस्तृत आलोचना करना यहाँ असम्भव है। परन्तु यह दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि वर्तमान Endocrinology आयुर्वेद के त्रिदोष-विज्ञान का अनुकरण कर रहा है। प्राचीन-काल के षट्चक्र विज्ञान और पञ्चविध वायू का वर्णन भी जो कि शारीर विज्ञान का मूल है उसे मैंने अपनी संस्कृत की किताब 'प्रत्यक्ष-शारीर' के तीसरे भाग में दिखाने की चेष्टा की है। यह त्रिदोषतत्व वैद्यों को रोग जानने में और उनकी चिकित्सा करने में कितनी सहायता करता है इस बात को चिकित्सक लोग ही अच्छी तरह जानते हैं।

द्रव्यों के गुण और तत्व के सम्बन्ध जो आयुर्वेद में दिये गये हैं उससे डाक्टर लोग अत्यन्त अपरिचित हैं। आजकल जिस तत्व का पता बन्दर, बिल्ली, कुत्तों के ऊपर परीक्षा करके लगाया जाता है उससे कहीं ज्यादा तत्व ज्ञान का पता आयुर्वेद के रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव के निर्णय द्वारा लगाया जाना सम्भव है। द्रव्य के रस और स्वाद, शरीर के ऊपर उष्णता या ठंढ करने की शक्ति अथवा वीर्य, शरीर के अन्दर द्रव्य के रसों का होने वाला परिणाम या विपाक और रोग नष्ट करने के उपायों का ज्ञान प्राचीन समय के आचार्यगणों का बहुत चढ़ा-बढ़ा एवं पूर्ण था। आयुर्वेद में जो द्रव्यों के रस की परिभाषा दी हुई है उसको समझने से सहज ही में द्रव्यों के गुण का श्रेष्ठ ज्ञान लाभ किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि मनुष्य के शरीर पर उसकी परीक्षा करके ही द्रव्य के गुणों का विज्ञान बनाया गया है। उस समय वैद्यों को पहले अपने उपर पीछे रोगियों के उपर द्रव्यों के गुणों की परीक्षा करनी पड़ती थी। इसी कारण से ही द्रव्य के गुणों का विज्ञान अभी तक भी वैद्यगणों के चिकित्सा में इतनी सहायता पहुँचाता है।

रस शास्त्र के विज्ञान में आयुर्वेद के रसतन्त्र ने कितनी उन्नति प्राप्ति की है उसको विज्ञानाचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपनी History of Hindu Chemistry नामक ग्रन्थ में प्रमाणित किया है। नयी बात यही कही जा सकती है कि पारा के संग यदि गन्धक मिला दिया जाय तो उसकी कार्यशक्ति सहज ही में बढ़ जाती है और बिना किसी भय के

इसका व्यवहार किया जा सकता है। इस तत्व को रसवैद्य सम्प्रदाय ही ने आविष्कृत किया है। यह तत्व आजकल पश्चिमी चिकित्सकों को नहीं मालूम है। परन्तु एक साधारण भी वैद्य बिना किसी भय के रस-गन्धक के मिलावट से बनी हुई पर्पटी, कज्जली, रस-सिन्दूर मकरध्वज प्रभृति का व्यवहार कर सकता है। मीठा बिष, कुचिला, हड़ताल, रसमाणिक्य, प्रभृति विषाक्त औषधियों का भी व्यवहार वैद्यों से बहुत अच्छी तरह जाना हुआ है। विषाक्त औषधियों आदि को शुद्ध करने या निर्दोष करने की रीति भी रसचिकित्सा की थाती ही है। डाक्टरों में से अनेक डाक्टर मकरध्वज का प्रयोग करते हैं परन्तु वे दरअसल उसके गुण-दोष को प्रायः नहीं जानते हैं। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। सोना, रूपा, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा, जस्ता आदि धातुओं को थोड़ा अथवा एकदम महीन भस्म करने का कौशल और सभी भस्मों का सफल व्यवहार आयुर्वेद के चिकित्सकों का प्रधान अवलम्ब है। डाक्टरी में कितने धातुओं के व्यवहार पेटेन्ट वालों के इच्छाधीन और हस्तगत हैं। प्रायः डाक्टर बिना समझे बूझे इन धातुओं से बनाई हुई औषधों का व्यवहार करते हैं। घी, तेल, आसव अरिष्ट प्रभृति अनेक औषधों का गुणधान और उनके द्वारा सफलता पूर्वक चिकित्सा करना चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों से अथवा इसके पहले ही से चलता आया है। द्रव्यों की रोग निवारिणी शक्ति जो कि कुत्तों और बिल्लियों पर परीक्षा करके भी नहीं मालूम की जा सकी उनके लिये जो सूक्ष्मतर ज्ञान-विज्ञान की जरूरत है उनको प्राचीन समय के आचार्य्य गण ने अच्छी तरह समझा था। आयुर्वेद की चिकित्सा का मूलसूत्र और विशेषता यह है।

"या तूदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत्॥"

अर्थात् 'जो चिकित्सा एक व्याधि को अचल करे और दूसरी व्याधि को उत्पन्न करे वह ठीक चिकित्सा नहीं है। वही चिकित्सा ठीक कही जाती है जो कि एक व्याधि को ठीक करे और अन्य व्याधि को न होने दे। डाक्टर लोग मुझे क्षमा करें। उनकी सूक्ष्म बुद्धि में यह कभी आया है कि वे नाना प्रकार के बिषों और (Vaccine Injection) आदि का प्रयोग करके कितने नये रोग व्याधियों को उत्पन्न करते हैं? इसका कभी उन्होंने विचार किया है?

शल्यतन्त्र या (Sergery) में आयुर्वेद की महत्ता कम नहीं थी। हाथ और पैर का चीरना, पेट को चीर कर आमाशय, पक्वाशय गर्भाशय आदि पर शस्त्र-चिकित्सा करना, वस्ति चीरकर अश्मरी निकालना आदि उच्च प्रकार की शस्त्र-चिकित्सा की व्यवस्था आजकल सुश्रुतादि ग्रन्थों में पायी जाती है। व्यवहार में लाये जाने वाले यन्त्रों का जो श्रेणी विभाग किया गया है वह बहुत सुन्दर है। यन्त्रों के सम्बन्ध में स्वास्तिक, सन्दंश, तालयन्त्र, नाडीयन्त्र, शल्यकायन्त्र उपयन्त्र आदि ऐसे भाग आयुर्वेद ही का किया हुआ है। आजकल जो यन्त्र डाक्टरी के कामों में लाये जाते हैं वे प्रायः अच्छी तरह सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ग्रन्थों में वर्णित है। इस प्रकार की परीक्षा का मैंने स्वयं बहुत दिनों से जाँच कर पता लगाया है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि अस्थिभङ्ग, सन्धि-विच्युति आदि चिकित्सा आयुर्वेद में जैसी है वैसीही डाक्टरी के सर्जरी में है जो कि अत्यन्त नवीन मत कहा जाता है।

प्राचीन काल में युद्ध में वैद्य भी जाया करते थे और वहाँ इन लोगों का तम्बू ताना जाता था। ये लोग शत्रु से दूषित की गई हुई वायु को किस प्रकार शुद्ध करते थे इसका

भी वर्णन सुश्रुतादि में दिया गया है। डाक्टरी में इस विषय की चर्चा प्रायः लुप्त है।

अगदतन्त्र अथवा विष-चिकित्सा में भी आयुर्वेद का कोई कम ज्ञान नहीं था। सुश्रुत के कल्पस्थान की आलोचना करने से यह पाया जाता है कि सर्प-विष, अलर्कविष, क्षिप्तश्वानविष (Rabies) आदि की चिकित्सा, चूहे, बिच्छू आदि अनेक प्रकार के बिषाक्त जन्तुओं का वर्णन और उनके विषों की चिकित्सा का सीखना वैद्यों के लिए अनिवार्य था। पहले की शास्त्र (Entomology) और विषाक्त जीव जन्तुओं का श्रेणी-विभाग आदि आयुर्वेद का एक प्रधान अङ्ग था। उसके कुछ अंश भाव भी सुश्रुत में मौजूद हैं।

इसी सिलसिले में प्राचीन काल के रोग परीक्षा विधि के बारे कई बातें कहना चाहता हूँ। आजकल जिस प्रकार डाक्टर लोग चार प्रकार के इन्द्रिय जिनका कामदर्शन, श्रवन, सूंघना और छूना है रोग परीक्षा करते हैं इसी प्रकार पुराने समय में भी रोग-निर्णय किया जाता था। चरक ने इन चार इन्द्रियों के व्यवहार ही के बारे में कहा है। सुश्रुत तो और आगे तक बढ़ जाते हैं। उनके लिये जिह्वा का व्यवहार भी निषिद्ध नहीं था। केवल नाडी देख कर रोग को मालूम करने का तरीका केवल सुश्रुतादि ग्रन्थों के आचार्यगणों को ही मालूम नहीं था बल्कि दूसरे युग के वागभट्ट आदि के ग्रन्थों में भी नाड़ी द्वारा रोग को जानने का तरीका दिया हुआ है। सचमुच में दूसरे युग की शरीर चर्चा के लोप हो जाने के कारण और "अंगुठे धमनी" के सहित हृदय के यन्त्रों का सम्बन्ध तक भूल जाने से ही कविराजों ने यह नाड़ी-ज्ञान की प्रथा निकाली है। काण्ड-ज्ञान रहने से नाड़ी देखकर अनेक बातें कही जा सकती हैं। यह सत्य है परन्तु नाड़ी देखकर कविराज सभी बातों को कह सकते हैं। इस प्रकार का कौशल अच्छे वैद्य कदापि नहीं करते हैं। यदि ऐसा सम्भव होता तब आयुर्वेद के चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में चार अथवा पांच प्रकार के ज्ञानेन्द्रियों वा और प्रश्न की सहायता से रोग का अच्छी तरह विधि देखा जाता। पहले समय के शार्ङ्गधर संहिता भाव प्रकाश आदि ग्रन्थों में नाड़ी विज्ञान की बातें रहने पर भी उक्त ग्रन्थकारों द्वारा सभी रोग निर्णय किया जाता है। ऐसी बात कहीं नहीं पाई जाती हैं।

कुष्ठ, ज्वर, यक्ष्मा, आँख का उठ जाना आदि कितने संक्रामक रोगों के सम्बन्ध में भी प्राचीन काल के आयुर्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है। नहीं दिखाई देने वाले जीवाणु या क्रिमी जो कि कुष्ठ आदि रोगों के कारण हैं यह भी प्राचीन समय के लोगों को अज्ञात नहीं थे। यह अवश्य है कि इसके बारे में आजकल जितना विकास हुआ है उतना पहले नहीं था। परन्तु सुश्रुत के "रक्त-वाहिसिरास्थाना रजसा जन्तवोऽणवः षट् ते कुष्ठैककर्माणः।" और "केशादाद्या अदृश्यास्ते" आदि क्रिमि के उल्लेख अत्यन्त आश्चर्य जनक हैं। विशेष रूप से उस समय अणुविक्षण यन्त्र (Microscope) का आविष्कार नहीं हुआ था।

प्राचीन कला की शिक्षण प्रणाली और राजानुमोदन ग्रहण।

प्राचीन समय में शिष्यों को गुरु के घर में रह कर चिकित्सा करना सीखना पड़ता था। शिष्य के उपनय विधि के अनुसार कठोर नियमों से शिष्यों को चुन कर ग्रहण नहीं किया जाता था। छात्र और गुरु को अग्नि की साक्षी देकर कितनी प्रतिज्ञायें करनी पड़ती थीं। इसके बाद कठिन ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए छात्रों को गुरु की छाया के समान और नौकर के समान रह कर सीखना पड़ता था और बहुत वर्षों तक गुरु की सेवा करके

गुरु से शिक्षा सीखनी पड़ती थी। गुरु भी छात्रों को अपने पुत्र के समान समझा करते थे और अन्तःकरण से उनको शिक्षा दिया करते थे। छात्रों को गुरु के कथनानुसार मुर्दे को चीर कर शरीर परिचय करना पड़ता था। शल्यतन्त्र की शिक्षा के लिये छात्रों को सबसे चमड़ा, मरे हुए पशु आदि के ऊपर Practical training लेनी पड़ती थी।

इस सम्बन्ध में सुश्रुत में एक विस्तृत वर्णन पाया जाता है। इसके बाद छात्रों को द्रव्य-परिचय, दवाई बनाना, रोगियों की परीक्षा और चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा दी जाती थी। अन्तिम बात यह कि कोई भी विना सात वर्ष तक शिक्षा पाये चिकित्सा करने नहीं पाता था। केवल काव्य और व्याकरण पढ़ कोई भी चिकित्सा करने नहीं पाता था। ऐसा यदि करे भी तो उसकी निन्दा बहुत होती थी। सुश्रुत ने कहा है—

"यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहतम्॥
यस्तु कर्मसु निष्णातो धाष्ट्र्याच्छास्त्र वहिष्कृतः।
स सत्सु पूजां नाप्नोति बधं चार्हति राजतः॥
उभावेताव निपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि।
अर्द्धवेद धरावेतावेक पक्षाविव द्विजौ॥
स्नेहादिष्वनभिज्ञा ये छेद्यादिषु च कर्मसु।
ते निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्या नृपदोषतः॥"
"यस्तूभयज्ञो मतिमान् स समर्थोऽर्थसाधने।
आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा॥"

—सुश्रुत, सूत्र, ३ अ०

इसका भावार्थ इस प्रकार है जो व्यक्ति केवल शास्त्र जानता है एवं उसका अभ्यास नहीं किया है (Practical training) और काम में चतुर नहीं है वह रोगी के पास जाकर उसी प्रकार किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है जिस प्रकार कायर युद्ध में जाकर होता है। जो कि काम में चालाक है परन्तु शास्त्रज्ञान से रहित है और वे बल साहस वश होकर चिकित्सा करते हैं वे राजा द्वारा प्राण-दण्ड दिये जाने के योग्य हैं। इन दो प्रकार के ही वैद्य जो अनिपुण और चिकित्सा के कार्य में अज्ञान ही हैं वे अपने कार्य को उसी प्रकार नहीं कर सकते हैं जिस प्रकार एक पांख वाला पक्षी काम नहीं कर सकता है। जो सब वैद्य जिनसे स्नेह स्वेद बस्ति प्राहतिवार ज्ञान नहीं और यन्त्र शस्त्र के कामों से अनविज्ञ हैं वे लोग राजा के ही दोष से मनुष्यों के प्राण लेते हैं। जो वैद्य दोनों को जानते हैं। वे लोग उसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्र में कार्य करते हैं जिस प्रकार दो चक्के का पहिया।

उपर लिखी गयी हुई रीति से शास्त्राभ्यास और कार्य्याभ्यास करके और राजा से अनुमति लेकर वैद्य लोग कार्य्य में अग्रसर होते थे। सुश्रुत ने कहा है:—"अधिगततन्त्रेणोपासिततन्त्रार्थेन दृष्टकर्मणा कृतयोगान शास्त्रं निगदता राजानुज्ञातेन बन्धुभूतेन भूतानां सुसहायवता वैद्येन विशिरवानु प्रवेष्टव्या।" इस जगह राजाज्ञा की बात विशेषतः देखना चाहिये। बिना राजा की आज्ञा पाये कोई भी उस समय चिकित्सा नहीं करने पाता था।

इसी कारण कहा गया है कि "कुवैद्यान्नृपदोषतः।" कुवैद्यगण जो मनुष्यों को मारते हैं ये सब राजा का ही दोष है। आचार्य चक्रपाणि ने कहा है—

"निष्पन्नेन वैद्येन प्रजापालके राज्ञि आत्मा गुणतो दर्शनीयः, ततो राजा परीक्ष्य वैद्य प्रजारक्षार्थमनुमन्तव्यः एष कर्म। अनिष्पन्न वैद्य गुणचिकित्सां कुर्वाणो लोकापकारकतया राज्ञा शाशनीयः।"

अर्थात् विद्या और कर्माभ्यास समाप्त होने पर वैद्य प्रजापालक राजा के पास जाकर अपने कर्तव्य का परिचय देंगे। इसके बाद राजा उनकी परीक्षा करके प्रजा की रक्षा के कार्य में चिकित्सा के लिये अनुमति देंगे। जो आदमी वैद्य के गुण समूह के अधिकारी नहीं हैं उन्हें लोकापकारी कह कर राजा उनको दण्ड देंगे।

डल्लनाचार्य ने भी यही भाव को अपनी सुश्रुत टीका में लिखा है। "राजाहि प्रजापालन तत्परः, तत्प्रसादात् वैद्यप्रतिरूपकाः राष्ट्रं चरन्ति कण्टकभूता लोकस्य, तस्माद् राज्ञापरीक्ष्य अनुज्ञातेन विशिशा अनुप्रवेष्टव्या।

आयुर्वेद का अवनति-काल और संग्रह युग।

इस प्रकार आयुर्वेद की बहुत उन्नति हो जाने पर किस प्रकार आयुर्वेद की अवनति हुई इसके बारे में मैं यहाँ कुछ आलोचना करूँगा।

३२७ बी० सी० के पहले जब ग्रीस के सम्राट सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तब इस आक्रमण के कारण देश में महाविप्लव प्रारम्भ हुआ। अकाल पड़ने, घरों के जलने से अनगिनित मनुष्य और बहुत ग्रन्थ नष्ट हो गये। सिकन्दर ने देश विजय करके लौटते समय सबका भार ग्रीस सेना के नायक सेल्यूकस पर छोड़ता गया। सेल्यूकस ने यहाँ से अनेक ग्रन्थ ग्रीस देश में भेज दिया। इन ग्रन्थों में प्रायः बहुत चिकित्सा ही के ग्रन्थ थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सिकन्दर और उसका सेनापति दोनों ही भारतीय चिकित्सा के चमत्कार को देख कर मुग्ध हो गये थे। सेल्यूकस जाते समय महाराज चन्द्रगुप्त के राज्य में ग्रीस देश के चिकित्सक मेगस्थनीज नामक दूत को भारतीय शिक्षा ग्रहण करने के लिये छोड़ता गया था। इससे स्पष्ट मानना होता है कि ग्रीस देश के चिकित्सकों ने भारत से ही अच्छी शिक्षा प्राप्त की है।

महाराज चन्द्रगुप्त और उनके पुत्र विन्दुसार के मरने के बाद उस समय का प्रकृति वाला राजा चन्द्रशोक बहुत राजाओं को और राजवंश को मार कर गद्दी पर बैठा था (२६४ B. C.) अशोक के तीन वर्ष राजा होने के बाद बहुत जोरों से राज्यविप्लव मचा था और उसमें लाखों आदमी नष्ट हुए थे। यह निश्चित है। इसके बाद अशोक ने उपगुप्त नामक बौद्ध द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किया और फिर वह बहुत धर्मिष्ठ राजा हो गया। इसी समय में वह अनेक बौद्ध संन्यासियों को चीन ग्रीस आदि देश में भेज कर बौद्ध धर्म का ज्ञान दिया। चिकित्सा भी बौद्ध धर्म की एक अङ्गभूत है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि बौद्ध धर्म के भ्रमण करने वाले भिक्षुकों ने यहाँ तक कि यवन देश में भी इसका प्रचार किया था। किन्तु इस समय राजा द्वारा मुर्दा चीरना मना था इसलिये शरीर-शिक्षा की अवनति होती गई।

इसके बाद मौर्य्यवंश के नष्ट होने पर (१८६ बी. सी) में पार्थि नामक ग्रीक जाति शक नामक बर्बर जाति प्रायः सिन्ध नदी को पार कर साकेतपुर तक आक्रमण मचाया करते

थे और इस कारण प्रायः राष्ट्र विप्लव मचा रहता था। इसी समय मिलिन्द नामक ग्रीस देश के एक आदमी ने पञ्जाब को जीता था। मगध देश का सुंगवंशीय पुष्यमित्र ने मौर्यवंशीय राज बृहद्रथ का विनाश करके उसका राज्य अधिकार में कर लिया था, निरन्तर इसी प्रकार युद्धों से प्रायः सभी आर्य शास्त्रों की निवृत्ति होती गयी और साथ ही साथ आयुर्वेद की भी अवनति यथेष्ट हुई। और देश-व्यापी पुष्यमित्र के राजा होने के बाद एक भारी विप्लव मचा था। इसी समय भगवान पतञ्जलि ने अग्निवेश संहिता को फिर से जागृत किया था। मैंने अन्य स्थलों में यह पाया है कि इन्हीं का अन्य प्रसिद्ध नाम चरक था। बौद्धाचार्य नागार्जुन ने भी इसी समय सुश्रुत संहिता का प्रति संस्कार किया था। यह सब घटनायें करीब दो हजार वर्ष पहले घटी थीं। शक जातियों से बार-बार आक्रान्त होने पर भारतीय राजा लोग हीन बना दिये गये थे। कुशाण वंशीय कनिष्क नामक महाप्रतापी राजा ने जो कि शकजाति का राजा था हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक भारत के समस्त उत्तर पश्चिमीय देशों को जीत लिया। इसके तीन सौ वर्ष पीछे देश में शान्ति स्थापित हुई। सम्भवतः इसी समय के बीच में चरक-संहिता के कुछ अंश भी नष्ट हो गये और काश्मीर देश के दृढ़बलाचार्य ने उसके बचे हुये अंश की पूर्ति की।

इसके बाद पङ्कपाल के समान बहुतसी हूण और शक सेनाओं ने भारत पर आक्रमण कर बहुत विप्लव उपस्थित कर दिया था। इसके कुछ ही समय बाद सन् ५७ बी० सी० में मालवा देश के राजा विक्रमादित्य ने शक जातियों को मार भगा कर उज्जयिनी से हिमालय तक राज्य विस्तृत कर लिया। इस समय से लेकर प्रायः सौ वर्ष तक देश में शान्ति रही। यही आयुर्वेद का संग्रह काल है।

राजा विक्रमादित्य एवं इनके वंश के राजाओं के शासन-काल में राज्य-विप्लव से जर्जर भारतवासियों ने पुनः ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पुष्टता लाभ की। इसी समय में कालिदास के समान प्रमुख कवि और आर्यभट्ट के समान प्रमुख ज्योतिषी हुए थे। इसके ५९० वर्ष वाद वाग्भट्टाचार्य वृन्दमाधव नामक ग्रन्थों के संग्रहकर्ता और जैयट, गयदास, भास्कर ब्रह्मदेव आदि व्याख्याकारक गणों ने जन्म लिया था। बङ्गाल में चरक-सुश्रुत के टीकाकार और संग्रहकर्ता चक्रपाणि ने इसी समय (१०४० से १०५० A. D.) हुए थे। चक्रपाणि भारतवर्ष की आयुर्वेद विद्या के पुनरुद्धार के अन्तिम आचार्य थे। मालव के अनेक शास्त्रों के ज्ञाता भोज नामक राजा थे। जो सन् १००६ B. C. में पैदा हुए थे। इनका बनाया हुआ "राजमार्तण्ड" नामक वैद्यक ग्रन्थ और "पातञ्जलि वृत्ति" नामक दार्शनिक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं।

इसके बाद भारतवर्ष पर मुसलमानों का घोर आक्रमण होने लगा। पूर्व में महम्मद बिन कासिम ने सन् ७१२ A. D. में सिन्ध देश पर आक्रमण किया। परन्तु प्रभाव स्थायी या अधिक क्षति कारक नहीं हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में महम्मद गजनी ने भारतवर्ष पर बहुतसी सेनाएँ लेकर आक्रमण किया। इसके फल-स्वरूप सोमनाथ के मन्दिर प्रभृति का विध्वंस होना और अनेक सम्पदाओं का नष्ट होना था। अनेक तीर्थ स्थानों की मूर्तियाँ तोड़ी गई थीं और सैकड़ों हजारों प्रजाओं का नाश हुआ और साथही साथ धन-नाश भी हुआ। गजनी की सेनाओं ने अनेक घरों को और साथही साथ अनेक ग्रन्थों को जला डाला था। उस समय अपने धर्म-धन-प्राण आदि की रक्षा के लिये लोगों को ज्ञानार्जन की चेष्टा छोड़नी पड़ी। महम्मद गजनी की लूट-पाट के बाद थोड़े ही दिनों बाद देश-द्रोही जयचन्द द्वारा बुलाये

हुए महम्मद गोरी ने भी तुरत भारत पर आक्रमण कर दिया। सन् ११९१ A. D. में क्षत्रिय कुल के सूर्य और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज महम्मद गोरी द्वारा पराजित हुए। इसके दश वर्ष बाद ही सारा आर्यावर्त्त मुसलमानों के अधीनस्थ हो गया। इसके बाद अल्तमश और अलाउद्दीन ने दक्षिण देश और मालवा पर चढ़ाई करके उन्हें नष्ट कर दिया।

मुसलमानों के आक्रमण से दूर रहने के कारण बङ्गाल की क्षति न होने पाई थी ईसामसीह के मरने के बाद सातवीं या आठवीं शताब्दी में निदान-संग्रह-कारक माधवकर और ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणि हुए थे। बंगाल में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में मुसलमानों का विप्लव आरम्भ होने पर भी टीकाकार विजय रक्षित और श्रीकण्ठ ने आयुर्वेद की लुप्तप्राय या क्षीण ज्योति को पुनः प्रज्ज्वलित कर दिया। इन लोगों के समय तक अनेक प्राचीन ग्रन्थ पाये जाते थे। इसके बाद धीरे-धीरे क्रम से बङ्गाल भी पठान और मुगलों द्वारा विध्वस्त होने लगा।

तेरहवीं शताब्दी के बीच में चङ्गेज खां भारत पर आक्रमण करके हिमालय से लेकर लूट-पाट मचाता हुआ मध्यदेश तक आया था। चङ्गेज खां के लौट जाने पर भी बार-बार आने वाली पठान जातियों से और भारतीय राजाओं से प्रायः घोर लड़ाइयाँ हुआ करती थीं। इसके बाद चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम थोड़े वर्षों में तैमूरलङ्ग ने आकर दो महीनों तक अनेक घरों को जलाया था और कितनों को मौत के घाट उतारा था।

इसी समय दक्षिण में महाविक्रमी वीरबुक्क नामक एक राजा ने बुक्क नामक राज्य स्थापित किया था। इसने अपने सायणाचार्य और माधवाचार्य द्वारा सभासदों से वेद का उद्धार करवाया और उसका भाष्य बनवाया था। शार्ङ्गधर नामक ग्रन्थकार इसी समय उत्पन्न हुए थे।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुगल राजा बाबर ने पठानों को जीत कर राज्य पर अधिकार किया था। इसके थोड़े ही दिनों बाद हुमायूँ की दिग्विजय के कारण देश में महाभयङ्कर विप्लव मचा था। इसके बाद हुमायूँ शेरशाह नामक पठान राजा से जीत लिया गया और राज्य से हटा दिया गया। इसी समय के बीच में सोलह वर्ष मुगलों और पठानों में घोर संग्राम होता है। इसी कारण से भारत के धन प्राण और विद्या की बहुत हानि हुई।

सोलह वर्ष बाद फिर हुमायूँ ने युद्ध करके राज्य जीत लिया। उसके पुत्र अकबर ने अपनी भुजाओं के प्रताप से प्रायः सभी भारतवर्ष को जीत लिया। इसके पहले भी बहुतसी प्रजाओं के और धन के नष्ट होने पर भी अन्त में शान्ति स्थापित हुई। अकबर शाह भारतीय शास्त्रों और पण्डितों का आदर किया करता था। इसी समय आयुर्वेद के प्रसिद्ध संग्रहकर्ता भावमिश्र हुए थे।

अकबर के पौत्र औरङ्गजेब के राज्यारोहण के बाद देश में महान् विप्लव मचा था। यह सुना जाता है कि औरङ्गजेब ने जो हिन्दुओं से द्वेष करता था सैकड़ों हिन्दुओं के मन्दिरों को चूर-चूर कर दिया था। इसने भारतवर्ष के अनेक ग्रन्थों को जला कर और असंख्य स्वधर्मनिष्ठ प्रजाओं की हत्या करके एक भयङ्कर अनिष्ट मचा रक्खा था। इस लिये पहले उन्नत भारतीय विद्या भी फिर शोचनीय दशा को पहुँच गई। आयुर्वेद तो इतना मुसलमानों द्वारा लूटे जाने पर भी किसी प्रकार जीवन धारण किए रहा।

इसके बाद ईस्वी सन् १७६९ में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। इसके

पहले अहमदशाह अब्दाली ने चार बार आक्रमण किया था। इन सब आक्रमण के स्वरूप भी अनेक प्रजाओं के प्राण नष्ट हुए और बहुत से शहर श्मशान में परिणत कर दिये गये और बहुत धन और ग्रन्थ नष्ट हुए।

आर्षयुग से लेकर भावमिश्र के युग तक संग्रह काल कहा जा सकता है। यही भारतवर्ष की आयुर्वेद विद्या अथवा सभी विद्याओं का अपराह्ण काल कहा जाता है। इस समय भी प्राचीन काल की कुछ संहिताएँ खण्डित पाई जाती थीं और उन सभी ग्रन्थों को प्राप्त करने की पुनः चेष्टा की जा रही थी।

इस संग्रह काल में आयुर्वेद की अत्यधिक अवनति होने पर भी प्रति संस्कारक, संग्रहकारक और टीकाकारों की चेष्टा के कारण सम्पूर्ण नष्ट नहीं होने पाया था। टीका कारक आदि के समय भी अनेक संहितायें सुलभ थीं ये बात कही गई हैं। इसी लिये मैं संग्रह काल के बाद हो के समय को अवनति काल कहता हूँ।

इस अवनति काल में प्रायः सभी संहितायें दुर्लभ हो गईं और जो नहीं दुर्लभ हुईं वह भी सन्देह का मूल बन गईं। इसके अलावे संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का ह्रास हो जाने के कारण आयुर्वेद के चिकित्सकों की संख्या कम हो गई। राज्य-विप्लव और अभाव के कारण वैद्य लोग अपना-अपना पेशा छोड़ दूसरा पेशा करने लगे। इसका फल यह हुआ कि जिन पुरुषों के लिये आयुर्वेद के ग्रन्थ बहुमूल्य थे उनकी सन्तानों के लिये वही ग्रन्थ एकदम नाकाम और कूड़े में परिणत हो गये। इस तरह जितने रत्न नष्ट हो गये हैं उनकी कोई गिनती नहीं है।

धीरे-धीरे अनुचित धर्म के अभिमान से रोगियों के मलमूत्र रक्त आदि से लोग घृणा करने लगे और इसके फलस्वरूप बस्ति-कर्म (Enamaa) प्रायः लोप हो गया। शस्त्र-चिकित्सा को लोग नाइयों के काम में गिनती करने लगे और प्रसूति-विद्या धीरे-धीरे नीच जातियों की स्त्रियों के हाथों में चली गई।

यह पहले ही कहा गया है कि बौद्ध राजाओं के समय से ही मुर्दों का चीरना राजा के हुक्म से बन्द कर दिया गया। चाहे यह बौद्ध धर्म के ही प्रभाव से हो अथवा निरन्तर लड़ाई से त्रस्त हो भारतीय राजाओं ने या उनके आदमियों ने शस्त्र-चिकित्सा पर ध्यान नहीं दिया। बिजयी मुसलमानों का इस तरफ कोई उत्साह ही नहीं था। फलस्वरूप यह हुआ कि मुर्दों को चीर कर शरीर ज्ञान का पता लगाने की प्रथा एकदम ही लुप्त हो गई और भारतीय चिकित्सक शस्त्र-चिकित्सा से एकदम अनभिज्ञ हो गये। इस प्रकार शारीर-चिकित्सा-हीन वैद्यों की संख्या अत्यन्त बढ़ गई और यही आयुर्वेद की अवनति का कारण हुई।

पहिले समय हिन्दुओं के एवं बौद्ध राजाओं के बनाये हुए देश-देश में अस्पताल थे। बौद्ध-युग के बाद जब कि मुसलमानों का विप्लव होने लगा था उस समय ये अस्पताल धीरे-धीरे उठने लगे थे। चिकित्सा-विद्या को प्राप्त करने वाले जब तक आरोग्यशाला में कार्याभ्यास नहीं करते तब तक चिकित्सा-विद्या पारदर्शिका नहीं होती।

इसी कारण से ही आजकल चिकित्सकों का ज्ञान इतना संकीर्ण हो गया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि चिकित्सा के संग्रहकाल ही में यावनिक चिकित्सा की प्रधानता बढ़ने लगी थी। आयुर्वेद की अवनति के समय मुसलमान राजाओं का आदर ज्यादातर यावनिक चिकित्सा की तरफ बढ़ने लगा था और आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रचार घटने लगा

था। यही केवल नहीं था; बल्कि भारतीय राजा भी अपने देश में राजकीय यूनानी चिकित्सा को प्राधान्य देने लगे थे। इसी कारण भारतवर्ष में यूनानी चिकित्सा बहुतों के मत से अच्छी मानी जाती है और वे इसका आदर करते हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे ग्रन्थों का लोप, भिन्न-भिन्न अंशों में इसका अप्रचार, पाँच प्रकार के कर्मों का लोप, संस्कृत भाषा की शिक्षा और आलोचना की कमी आदि होने के अनेक कारणों से प्रायः दो सौ वर्ष पहले आयुर्वेद की अवनति चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी। तो भी लोग डाक्टरी को वाल-चिकित्सा कह करके आयुर्वेद की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। उसके बाद दोनों में अनेक परिवर्तन हुए थे।

आयुर्वेद के प्रतिसंस्कार की जरूरत

आयुर्वेद के प्रति-संस्कार के बारे में जो मैंने दो वर्ष पहले कहा था, उसे मैं आज फिर भी कहता हूँ। प्राचीन कोई-कोई कविराजों ने यह कहा है कि आयुर्वेद सबसे पुराने आर्य्यों का विज्ञान है। यह सब ठीक और युक्ति-परिपूर्ण है अब इसमें कोई बात जोड़ने की अथवा घटाने की जरूरत नहीं है। शास्त्रों के सूक्ष्म तत्वों को बिना समझे ही आधुनिक लोग कुतर्क कर बैठते हैं।

इन सब बातों का उत्तर सबसे सहज है। ऋषियों के विज्ञान के कितने ग्रन्थों को हम लोगों ने पाया है! आठ अंगों वाले आयुर्वेद का एक-एक अंग लेकर ऋषियों ने कितनी-कितनी बड़ी संहिताएँ बनाई हैं। इसका परिचय आठ नव वर्ष पहले के टीकाकारों के उद्धृत असंख्य पाठों द्वारा होता है। अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत, क्षारपाणि, खरनाद, अगस्त्य प्रभृति ऋषियों की बनाई हुई संहिताओं में से कितने को हम लोगों ने पाया है? केवल अग्निवेश की बनाई हुई संहिता के भग्नावशेष को जिसे चरक ने बनाया था और उस भग्नावशेष की पूर्ति भी दृढ़ बल द्वारा की गई थी। ऐसा भग्नावशेष आजकल हम लोगों के सामने चरक-संहिता के नाम से वर्तमान है। प्राचीन बड़ा सुश्रुत भी आजकल नहीं मिलता है, यह भी लुप्त है। उसका केवल संक्षेप में सार जो कि नागार्जुन अथवा अन्य किसी के द्वारा निकाला गया है वह आजकल सुश्रुत के नाम से प्रचलित है। इसका शारीर स्थान अनेक बड़ी-बड़ी भूलों से परिपूर्ण है इसको मैंने बार-बार प्रमाणित किया है। भेलसंहिता आजकल आविष्कृत हुई है परन्तु यह भी जीर्णशीर्ण और खण्डित है। इसमें कुछ-कुछ नई बात पाई जाने पर भी इस समय इसकी आजकल आलोचना नहीं हो रही है। ऐसी अवस्था में भी आजकल जो बातें चरक-सुश्रुत आदि ग्रन्थों में दी हुई हैं वह अवश्य ही स्वीकार करने योग्य हैं। तो भी ये सब आयुर्वेद के सर्वस्व नहीं हैं। बाद के समय में वाग्भट्ट ने 'अष्टाङ्ग-संग्रह' और 'अष्टाङ्ग-हृदय' नामक ग्रन्थों में ऋषियों के ज्ञान का संग्रह किया था, यह बात सत्य है; परन्तु इनमें से कितने कविराज ऐसे हैं जो कि इन ग्रन्थों को अनुभवी वैद्य के निकट पढ़ते हैं? शल्यतन्त्र के प्राचीन ग्रन्थ उपधेन्व औरभ्र, वैतरन, भोज, पुष्कलावर्त, गोपुर रक्षित आदि ऋषियों की संहिता केवल नाममात्र के लिये आजकल हैं। निमि, गार्ग्य, गालव, विदेह, सात्यकि, सौनक आदि की बनाई शालक्यतन्त्र की संहिताएँ आजकल कहाँ हैं? सभी प्राचीन संहिताओं का नाम मैंने नहीं लिया है। मैंने उन्हीं संहिताओं का नाम लिया जो कि हमेशा स्मरण में आया करती हैं। आयुर्वेद के जो ग्रन्थ चिकित्सकों का जीवन हैं, वे ग्रन्थ प्रायः

ऋषियों के बनाए हुए नहीं हैं। इसलिये आयुर्वेद को 'ऋषि प्रणीत और भ्रम से रहित' भी कहना कब तक चल सकता है? आयुर्वेद के भविष्य के लिये बङ्गाल के कविराज लोग कब सावधान होंगे?

आयुर्वेद के इतिहास में बङ्गाल का भाग कुछ कम नहीं रहा है। माधवकर, चक्रपाणि, हरिचन्द, गदाधर, गयदास, विजय रक्षित, श्रीकण्ठ प्रभृति बङ्गाल के ऋषिगणों ने आयुर्वेद को गौरवान्वित किया है। चक्रपाणि द्वारा बनायी हुई चरक और सुश्रुत की टीका सर्वजनमान्य है। विजय रक्षित और श्रीकण्ठ ने माधव निदान की टीका में प्रगाढ़ पाण्डित्य दिखाया है। इस प्रकार बङ्गाल के पण्डितों ने आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों को बना कर आयुर्वेद का बहुत उपकार किया है। कुछ दिन पहले ही सर्वतंत्र-स्वतन्त्र गङ्गाधर ने चरक की 'जल्पकल्पतरु' नाम की टीका बना कर अपनी असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया है। कविराज स्वर्गीय उमेशचन्द्र गुप्त ने 'वैद्यक शब्द-सिन्धु' नामक एक बड़ा कोष बना कर आयुर्वेद की यथेष्ट वृद्धि की है। कविराज स्वर्गीय विरजाचरन गुप्त ने 'बनौषधि नामक' बड़े ग्रन्थ में प्रायः गवेषणा युक्त बातों का संग्रह किया है। वैद्यरत्न योगीन्द्रनाथ सेन ने चरक की संक्षिप्त टीका बना कर जिसका कि नाम 'उपस्कार' रखा है, आयुर्वेद पढ़ने वालों की बहुत ही भलाई की है। परन्तु इन सब टीका आदि लिखने के बदले सारी शक्ति प्रत्येक अङ्ग की पुष्टि-साधना के लिये लगा देने की जरूरत है; क्योंकि आजकल नये-नये तत्वपूर्ण ग्रन्थों की जरूरत है। इस सम्बन्ध में मैंने भी दो ग्रन्थ लिख कर आयुर्वेद की यथासाध्य सेवा की है। इस लिये मैं विद्वान् चिकित्सकों से अपील करता हूँ कि वे आयुर्वेद का विस्तार करने के लिये नये-नये ग्रन्थों को लिख कर देश की सेवा करें। आयुर्वेद एक समय संसार का ऋणदाता था और उस समय संसार को ऋण देकर अनेकों के प्राणों को बचाया है। यदि आज आयुर्वेद किसी विषय के प्रत्यक्ष मूलक-ज्ञान के संग्रह के लिये किसी का ऋणी होवे तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। इस विषय में अन्यान्य प्रदेश बड़ा उत्साह दिखा रहे हैं। मगर बङ्गाल में कितनी कम चेष्टा की जा रही है।

आयुर्वेद की शिक्षा-पद्धति और उसका संस्कार

इस प्रसङ्ग में मैं आयुर्वेद की शिक्षा-पद्धति के बारे में भी दो चार बातें कह कर अपना वक्तव्य खतम करूँगा। बहुत पुराने समय में 'शिष्योपनयनीय' विधि से गुरु के गृह में रहने वाले शिष्य उपनीत होकर एकान्त में गुरु से शिक्षा ग्रहण किया करते थे। उस समय गुरु लोग यथेष्ट ज्ञान-सम्पत्ति के अधिकारी हुआ करते थे। उस समय वे मुर्दे के चीरने के साथ ही साथ द्रव्य-परिचय, औषध बनाना, रोग-विज्ञान आदि उच्च आदर्श से युक्त हुआ करते थे। उस समय रुपया लेकर रोगियों की चिकित्सा करने की रीति नहीं थी इसलिये उस समय वैद्यों को बहुत से रोगियों की परीक्षा का सुयोग मिला करता था। उस उच्च आदर्श से हम लोगों को गिरे करीब हजारों वर्ष हो गये। उसके बाद गुरु के घर रह कर पढ़ने की प्रथा जिस तरह काव्य-व्याकरण के पढ़ने की थी उसी प्रकार आयुर्वेद की भी प्रथा हो गई और आयुर्वेद की अवनति होने लगी। तथापि टोल की प्रथा, गुरु के घर रहने की प्रथा और उनके साथ-साथ रहने के कारण रोगी की परीक्षा करने का मौका छात्रों को बहुत मिला करता था। इससे उनका ज्ञान बहुत बढ़ता था। उसके बाद देश की ऐसी अवस्था आई कि लोग विभिन्न

भाषाओं को पढ़ कर और आयुर्वेद का केवल दो-एक वर्ष अध्ययन कर अपने-अपने गुरु से प्रमाण-पत्र लेकर या बिना लिये ही वैद्य बनने लगे।

इन लोगों में से जिस किसी को थोड़ा भी संस्कृत का ज्ञान हो जाता था, वह भी 'पण्डित कविराज' के नाम से समाज में ख्याति प्राप्त कर लेता था। यदि उन्हें किसी और एक शास्त्र का ज्ञान रहता—सांख्य अथवा तर्क का—था तब तो उनके गर्व और अभिमान का ठिकाना ही नहीं रहता था। गुरु के घर में पाँच-छः वर्ष तक रह कर शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती यह बात कुछ नहीं है। परन्तु ऐसे कविराजों की संख्या बहुत कम है। ऐसी अवस्था में जो होना चाहिये वही हुआ है। वही आयुर्वेद इस समय अपने ही देश में प्रवासी की तरह आजकल आधुनिक शिक्षित समाज के अवज्ञा का पात्र हुआ है।

आयुर्वेद की प्राचीन शिक्षा-पद्धति इस प्रकार अवनत हो गई है, इसलिये आयुर्वेद की शिक्षा के लिये बहुत रुपया लगा कर 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालय' 'विश्वनाथ आयुर्वेद विद्यालय' आदि विद्यालयों के खोलने की जरूरत पड़ गई थी। किन्तु जब तक कलकत्ता कार्पोरेशन से प्रचुर सहायता नहीं मिलेगी तब तक इन सब विद्यालयों की यथा योग्य उन्नति नहीं हो सकती। देश के किसी आदमी से कहा जाता है तो वह कहता है कि मैं अपने लड़कों को नहीं पढ़ा सकता जब तक यह गवर्नमेन्ट अनुमोदित नहीं हो जाता। जब तक तेज बुद्धिवाले छात्र नहीं पढ़ेंगे तब तक आयुर्वेद की उन्नति होना बहुत दूर है।

औषधियों के विज्ञान की आवश्यकता

इस समय आयुर्वेद के भेषज विज्ञान के सम्बन्ध में मैं कई बातें बोलना आवश्यक समझता हूँ। प्राचीन काल में व्यवहार की जाने वाली रसायन औषधियों का आजकल एक दम अभाव हो गया है। मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली इन 'अष्टवर्ग' रसायनों के परिचय प्रायः कविराज लोग भूल गये हैं। चरक से कही गई हुई श्रावणी, महाश्रावणी, ब्रह्म सुवर्चला, आदित्य पर्णी, पद्मा, सोम प्रभृति अनेक दवाइयां भारतवर्ष में होती हैं; परन्तु हम लोग उनसे अपरिचित हैं। रास्ना, तगर, पाटला, ब्राह्मी प्रभृति नाम की औषधियां भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यवहृत होती हैं। अच्छी तरह पहचानी हुई औषधियों का परिचय भी बहुत वैद्यों को नहीं मालूम है। वेद की कथा ही ऋषिवाक्य के समान प्रमाण रूप में पाई जाती है। उनकी दी हुई दवाईयां ही अनेक जगह सोनामुखी, रेवतचिनी, सालसा, गांजा, अफीम आदि विदेशों से आई हुई औषधियों का प्रयोग गत तीन चार वर्षों से ही आयुर्वेद में किया जाने लगा है। परन्तु सिकोना डिजिटेलिस, एस्पिरिन, प्रभृति औषध प्रकट रूप से प्रयोग में लाने में कविराज लोग यथेष्ट भय और आपत्ति करते हैं। चरक ने कहा है 'तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।' अर्थात् 'जो आरोग्यप्रद है वही उपयुक्त दवाई है।' परन्तु आजकल ऐसी अवस्था है कि उस नियम का मान करना कविराजों के लिए बहुत कठिन है इस लिए संदिग्ध-भेषज-निर्णय कर द्रव्यपरिचय प्राप्त कर अपनी सम्पत्तियों का बढ़ाना आदि अनेक विषय में विचार करने की आजकल बहुत जरूरत है।

आयुर्वेद का नया जागरण

आयुर्वेद का पुनः जागरण आज से तीन सौ वर्ष पहले मुगल-सम्राट् अकबर के समय

में हुआ था। यह पहले ही कहा जा चुका है कि उस समय के कान्य-कुब्जों के आचार्य भावमित्र ने अनेक ग्रन्थों से भिन्न विषयों का संग्रह करके एक बड़ा ग्रन्थ तैयार किया था। इस ग्रन्थ में शारीर-ज्ञान के विषय की भूल होने पर भी उत्तम चिकित्सा के कार्य के लिये उपयोगी था। विशेषतः इसमें भारत में नये आये हुए फिरङ्गरोग अथवा (Syphilis) रोग का वर्णन और उसकी चिकित्सा सबसे पहले पाई जाती है। चिकित्सा कार्य में उदार नीति का अवलम्बन करके भावमिश्र ने इस ग्रन्थ में रेवतचिनी, तोपचिनी प्रभृति अनेक यूनानी दवाइयों का गुण वर्णन किया है। प्रायः उसी समय बङ्गला के ग्रन्थ रसेन्द्रसार संग्रह, प्रयोगामृत, भैषज्य-रत्नावली आदि ग्रन्थ बनाये गये थे।

परन्तु भारत के भाग्य के दोष से अट्ठारहवीं शताब्दी में मुसलमानों के अन्तिम समय में बहुत भारी आराजकता फैल गई और जब तक अंगरेजी राज्य अच्छी तरह नहीं फैला तब तक अराजकता जारी ही रही। इसके बाद आयुर्वेद का पुनः अभ्युदय का समय १८३० इस्वी से आरम्भ हुआ। इसी समय में स्थापित संस्कृत कालेज के अध्यापक पण्डितवर स्वर्गीय मधुसूदन गुप्त सन् १८३५ में नव स्थापित मेडिकल कालेज में खुद अपने हाथों से मुर्दा चीरने के लिये गये थे। आयुर्वेद के पुनरभ्युदय का मन्त्र उन्होंने ही उच्चारण किया था। परन्तु दुःख का विषय है कि आयुर्वेद के शरीर-ज्ञान के बारे में उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है। तो भी उस समय से यह भाव सभी के मन में अच्छी तरह जम गया था कि शारीर-ज्ञान की आवश्यकता आयुर्वेद के चिकित्सकों के लिये जरूरी है। इसी के फलस्वरूप गत शताब्दी के अन्तिम भाग में मेरे पितामह स्वर्गीय कुञ्जविहारी कविराज उस समय के मेडिकल कालेज से Graduate होकर और गवर्नमेण्ट Military Service करके आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को ग्रहण किये थे। इसके बाद गंभीर शास्त्र के ज्ञान से और दूरदर्शिता के कारण महामहोपाध्याय कविराज स्वर्गीय द्वारकानाथ सेन, महामहोपाध्याय स्वर्गीय विजयरत्न सेन, स्वर्वतन्त-स्वतन्त्र स्वर्गीय विश्वनाथ विद्या-कल्पद्रुम, स्वयं शारीरज्ञ कविराज स्वर्गीय व्रजेन्द्रनारायण सेन, स्वर्गीय हरिचरनराय, स्वर्गीय पञ्चान्या राय, स्वर्गीय कैलाशचन्द्र सेन प्रभृति पण्डितों ने जो कि इस समय के पण्डितों में अग्रगण्य गिने जाते थे, अपने-अपने लड़कों को मेडिकल कालेज में साथ-साथ में शिक्षा पाने के लिये भेजा। उन्हीं की कृपा से आजकल शारीरज्ञ कविराज लोग आयुर्वेद का गौरव बढ़ाने में समर्थ हुए हैं। उन्हीं लोगों में कितने मनुष्यों के असामान्य आत्मत्याग और अक्लान्त परिश्रम के कारण ही पचीस वर्षों के ही भीतर बङ्गाल में आयुर्वेद का एक निःशुल्क विद्यालय और एक आरोग्यशाला खुल गयी है। ठीक इसी समय बम्बई में डाक्टर पोपट प्रभूराम द्वारा प्रतिष्ठित आयुर्वेद कालेज, मद्रास में गोपालाचार्लू प्रतिष्ठित मद्रास आयुर्वेद कालेज (जो आजकल गवर्नमेण्ट के संग मिलाया गया है) दिल्ली में आयुर्वेद और तिब्बि कालेज, लाहौर में दयानन्द आयुर्वेद कालेज महीशुर और त्रिवाङ्कुर में दो राजकीय आयुर्वेद कालेज और हरिद्वार में ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज और गुरुकुल आयुर्वेद कालेज काशी विश्वविद्यालय का आयुर्वेद कालेज पटना में गवर्नमेण्ट आयुर्वेद कालेज आदि अनेक छोटे बड़े आयुर्वेद की पठन-पाठन की संस्थायें स्थापित हुई। केवल यही बात नहीं है, ठीक इसके पच्चीस वर्ष पहले जो निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन स्थापित हुआ था उसका अधिवेशन ठीक कांग्रेस के अधिवेशन के समान बड़े शहरों में होता चला आता है। इस अधिवेशन में बंङ्गाली सभापति सातवार चुने गये हैं। यह भी बङ्गाल के लिए कोई कम गौरव

की बात नहीं है। इस निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के स्थायी सभापति का नाम निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल है। इसका परीक्षक मण्डल निखिल आयुर्वेद विद्यापीठ के नाम से विख्यात है। इसकी अच्छी तरह से बनाई हुई नियमावली और हमेशा की कार्य प्रणाली दृढ़ नीव पर स्थित है। ऊपर कहे गये विद्यापीठ की परीक्षायें प्रतिवर्ष भारत में तीस पैतिस केन्द्रों में हुआ करती हैं। यह चैत्र महीने में हुआ करती हैं। इन परिक्षाओं के परीक्षार्थियों को प्रश्न का उत्तर संस्कृत में ही लिखना पड़ता है। शरीर-विद्या शल्यतन्त्र शालक्यतन्त्र ऐसे व्यवहारायुर्वेदों तक इसका पाठ्य क्रम है। यह बहुत ही दुःख की बात है कि भिन्न भिन्न देश के परीक्षार्थी इस परीक्षा में सम्मिलित होते हैं और पास होते हैं और तौ भी बहुत थोड़े बङ्गाल के परीक्षार्थी बङ्गाल के केन्द्रों में उपस्थित होकर परीक्षा देते हैं। यह मालूम होता है कि संस्कृत भाषा में प्रश्न आता है और उत्तर संस्कृत में लिखना पड़ता है इसीलिये बङ्गाली छात्र लोग इसमें भाग लेने का साहस नहीं करते हैं। इस प्रसङ्ग में यह भी उल्लेख कर देने के योग्य है कि भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न देशों से आयुर्वेद के करीब ५० मासिक पत्र भिन्न भिन्न भाषाओं में निकला करते हैं। परन्तु बंगाल में केवल दो मासिक पत्रिका से ज्यादा आज भी नहीं चल सकीं।

गवर्नमेंण्ट और आयुर्वेद

गत पच्चीस वर्षों से भारत के अनेक प्रदेशों में आयुर्वेद और आयुर्वेदीय चिकित्सकों की राजा द्वारा आज्ञा लाभ करने के लिए प्रबल चेष्टा की जारही है। इसी चेष्टा के फलस्वरूप गवर्नमेण्ट व्यवस्थापिका सभा में कई बार 'आयुर्वेद के पुनरुन्नति और क्रमोन्नति' के लिए अनेक बार देश-हितैषियों ने प्रश्न उठाया है। मेडिकल विभाग के कार्य कर्त्ताओं ने गवर्नमेण्ट का पक्ष लेकर इसके विरुद्ध आन्दोलन किया था परन्तु राजमन्त्रियों की चेष्टा के कारण यह कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका। इसके फलस्वरूप मद्रास की गवर्नमेण्ट ने आयुर्वेद, युनानी और सिद्ध चिकित्सा की अनुमति दे दी। वहाँ के पानामल के राजा जैसे और मन्त्रीगणों की दृढ़ चित्तता से प्रायः चार लाख रुपयों के खर्च से आयुर्वेदीय युनानी और सिद्ध चिकित्सा की शिक्षा के लिये एक बड़ा भारी कालेज और आरोग्यशाला बनाई गई है और सरकारी व्यय से यह चलता भी है। उस देश के वैद्यों की चेष्टा से वहाँ एक "Board of Indian Medicine" नामक एक राजकीय परिषद् Registration उपाधि देने के लिये स्थापित की गई है। वहाँ परीक्षा पास हुए छात्र केवल राजकीय उपाधि ही नहीं पाते हैं बल्कि वे काम में नियुक्त किये जाते हैं। इसी के समय युक्त प्रदेश में भी उसी उद्देश के लिये Board of Indian Medicine स्थापित किया गया है। इसके अलावे वहाँ करीब सवा लाख रुपया आयुर्वेद को। (हिन्दू विश्वविद्यालय को और हरिद्वार के आयुर्वेद के कालेज को) सहायता रूप से दिया जाता है। और साथ ही साथ Board से Registration किया हुआ प्रमाण पत्र वैद्यों को दिया जाता है जो गवर्ननेण्ट आदि सब जगन्मान्य हैं। बिहार के पटना शहर में जो आयुर्वेद का स्कूल स्थापित था अब वह कालेज हो गया है। यह विद्यालय बिहार के मन्त्री मण्डल, विशेषतः दानवीर सर गणेश दत्त सिंह की असमान्य कृति का परिचायक है। बिहार के कविराज गण जिस तरह हो Registration Council और Faculty स्थापित हो उसके लिये आज कल चेष्टा करते हैं। परन्तु बङ्गाल का प्रतिष्ठान अभी तक गवर्नमेण्ट की सहायता से

वञ्चित है। इसका कारण यह है कि आयुर्वेद राजानुमोदित चिकित्सा नहीं है। अन्यान्य देशों में वैद्यगण राजानुमोदन के लिये प्राणपण से चेष्टा करते हैं परन्तु बङ्गाल के कई वैद्यगण राजानुमोदन के विरोधी हैं। उनके लिये Faculty एक भय की चीज है। इसके कारण को जानने के लिये गत पन्द्रह वर्ष से कितनी चेष्टा की जाती है एवं कितने कविराज किस प्रकार Faculty की गलत व्याख्या समझे हैं और दूसरों को समझाते हैं इसका विवरण संक्षिप्त में देना आवश्यक है इस बात को कह कर मैं अपना वक्तव्य खतम करूँगा।

बङ्गाल की आयुर्वेद कमिटी और उसका फल।

बीती हुई १९२१ ईस्वी के अगस्त महीने में बङ्गीय व्यवस्थापकों के सभा के सदस्य आयुर्वेद की उन्नति के अभिलाषी श्रीयुक्त किशोरी मोहन चौधरी महाशय का प्रस्ताव सर स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय की चेष्टा से गवर्नमेण्ट द्वारा स्वीकृत हुआ। उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार आयुर्वेद का पुनरुद्धार और उन्नति करने के लिये किस पथ का अवलम्बन करना चाहिये इसके निर्णय का भार गवर्नमेण्ट की बनाई हुई एक कमिटी को अर्पित हो। उक्त कमिटी के छ सुप्रसिद्ध कविराज और तीन उच्च पदस्थ डाक्टर एवं एक प्रस्तावक श्रीयुक्त किशोरी मोहन चौधरी महाशय सदस्य थे। उक्त कमिटी के सदस्यों ने प्रायः पांच सौ कविराजों के पास जिज्ञासा-पत्र भेजा। उत्तर में प्रायः एक सौ कविराजों ने अपना मतपत्र भेजा। इस कमिटी के अनेक उच्च पदस्थ डाक्टरों को बुला कर उन्हें साथ लेकर भारतवर्ष में जितनी आयुर्वेदीय संस्थायें हैं सभी का सदस्यों ने परिदर्शन भी किया था। इसीलिये रिपोर्ट प्रकाशित करने में प्रायः तीन वर्ष लगे थे। उस रिपोर्ट में आयुर्वेद की वर्तमान अवस्था का वर्णन एवं वर्तमान आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिये किस प्रकार की चेष्टा होनी उचित है इसके बारे में विस्तृत विचार और कार्यपथ का निर्णय किया गया था। उक्त कमिटी ने प्रस्ताव किया था कि गवर्नमेन्ट द्वारा एक विशाल आयुर्वेदीय कालेज आरोग्यशाला और अनेक दातव्य चिकित्सालयों का स्थापित होना आवश्यक है। उस कमिटी ने यह भी कहा था कि एक तत्वानुसन्धान समिति (Research committee) और आयुर्वेद की एक सरकारी परिषद् (General council) एवं शिक्षा और परीक्षा समिति का (State of faculty) होना अच्छा है। उनके मत से यह भी पास हुआ था कि आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह और नये-नये ग्रन्थ भी अवश्य बनाना चाहिये। उन लोगों का अन्तिम कहना यह था कि आयुर्वेद की शिक्षा दो प्रकार की होनी चाहिये, उच्चतर और साधारण शिक्षा। उच्चतर शिक्षा—आयुर्वेद के उच्च श्रेणी के अध्यापक बनाने के लिये और साधारण शिक्षा मध्यम श्रेणी के अध्यापक पैदा करने के लिये है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार वर्तमान डाक्टरी शिक्षा दो प्रकार से दी जा रही है उसी प्रकार आयुर्वेद की शिक्षा भी दो प्रकार से दी जानी चाहिये। उपर्युक्त रिपोर्ट १९२४ ईस्वी में निकलने पर भी गवर्नमेन्ट उसे साधारण जनसमूह में प्रकाशित करना आवश्यक नहीं समझती है। किन्तु भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की गवर्नमेन्ट द्वारा नियुक्त कमिटी की रिहोर्ट बहुत जल्दी प्रकाशित हुई थी और उसके अनुसार कालेज अस्पताल आदि की स्थापना मद्रास, युक्तप्रदेश, बिहार एवं मध्यप्रदेश में हुई है। इस विलम्ब से बङ्गाल गवर्नमेन्ट की अत्यन्त उदासीनता का परिचय मिलता है। १९२९ साल तक इसी तरह की उदासीनता चलती रही। मन्त्रिमण्डल को बार-बार इसके लिये जोर देने के फल स्वरूप, उस समय के

गवर्नर सर एच्यानजी जैकसन से मैंने मुलाकात करके गवर्नमेन्ट का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इसके फल-स्वरूप गवर्नमेन्ट ने अनिच्छा पूर्वक General Council और Faculty को स्थापित करना स्वीकार किया, इन्होंने कहा कि नयी Scheme के लिये रुपया दिया नहीं जा सकता इसलिये कालेज अस्पताल खोलना सम्भव नहीं है। इसके बाद बङ्गाल के मन्त्री-सभा का बार-बार परिवर्तन होने लगा। नदीया के परलोकगत महाराज, नसीपुर के राजा बहादुर, कुमार शिवशेखरेश्वर राय आदि मन्त्रियों के उद्योग से सरकारी परिषद् की नियमावली में कुछ-कुछ परिवर्तन होता है परन्तु विशेषतः कुछ नहीं होता है। इसके बारम्बार के तगादा के फल-स्वरूप वर्तमान मन्त्री सर विजयप्रसाद सिंह ने इस तरफ ध्यान देकर गत १९३१ साल के १८ और १९ दिसम्बर में Writers Building में एक सभा (Conference) किया। इस सभा में बुलाये गये हुए आदमियों के पास एक दो हस्तलिखित नियमावली भेजी गई थी। सभा के कई दिन पहले कविराज स्वर्गीय श्यामादास बाचस्पति महाशय के साथ मेरे घर पर एक परामर्श सभा हुआ करती थी, उक्त नियमावली पर अच्छी तरह दोनों सभाओं में विचार हुआ था। इसके बाद निर्दिष्ट तारीख को जो सभा बुलाई गई थी हुई और उसमें प्रायः सभी निमन्त्रित व्यक्तिगण आये थे। नियमावली के प्रत्येक नियमों को विचार कर और आवश्यक संशोधन करके उस सभा द्वारा नियमावली (Statutes) स्वीकृत हुई। उपरोक्त सभा में जलपाईगोरी, चटगाँव, नाटोर बरिसाल प्रभृति के प्रसिद्ध कविराज भी निमन्त्रित किये गये थे। उनमें से सब मिला कर सत्तर कविराज उपस्थित हुए थे। कविराज स्वर्गीय श्यामादास बाचस्पति महाशय ने दोनों दिन नियमावली के विचार पर विशेष रूप से योगदान दिया था और सबके अन्त में उन्होंने मन्त्री को यथेष्ट धन्यवाद दिया था।

इसके बाद देखते-देखते करीब चार वर्ष बीत गये। इन चार वर्षों में किस प्रकार व्यय-निर्वाह होगा इसी की कल्पना होती रही, कार्यतः कुछ हुआ नहीं। माननीय मन्त्री महाशय ने इसके बीच में दो बार कहा था कि शीघ्र ही सरकारी आयुर्वेद परिषद् स्थापित होगी। किन्तु वह परिषद् कब स्थापित होगी इसे बिधाता को छोड़ कर और कोई नहीं बता सकता है।

फैकल्टी के सम्बन्ध की भ्रान्ति का समाधान

यह अत्यन्त आश्चर्य और दुःख का विषय है कि इस फैकल्टी का प्राकृतिक रहस्य माननीय मन्त्री द्वारा प्रधान-प्रधान कविराजों के निकट प्रचारित होने पर इसकी अनेक प्रकार की विकृत व्याख्या हो गई है। विरुद्ध वादियों की विकृत व्याख्या को उनको कानून नहीं जानने वाले इससे डरने लगे। इसका अर्थ दूसरा समझ गये।

जो लोग फैकल्टी के विरोधी होकर अनेक प्रकार के भुलाने वाले मतों का प्रचार करते हैं वे लोग आयुर्वेद के मित्र हैं यह नहीं कहा जा सकता है। इस फैकल्टी का कैसा अभ्यास होगा यह मैं कहना उचित नहीं समझता हूँ। आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने वालों की हरेक प्रकार से सुशिक्षित करके, परीक्षा के बाद उन्हें राजकीय सम्मान देने के लिये सब भार एक समिति के हाथ में दिया गया है। यह समिति किस प्रकार बनाई जायगी, उसके निर्वाचन आदि के बारे में कविराजों की सभा जो सन् १९३१ के साल में हुई थी उसमें यह निश्चय किया गया है। एक पण्डित एवं प्रवीण कविराज सभापति, पाँच प्रसिद्ध कविराज हरेक आयुर्वेद विद्यालय के एक-एक प्रतिनिधि स्वरूप कविराजगण, जो कविराज अपने घर में पढ़ाया करते

हैं उनमें से तीन आदमी एवं कलकत्ता और ढाका के एशोसियेसन से एक-एक आदमी, कलकत्ता कार्पोरेशन के मनोनीत एक आदमी और गवर्नमेन्ट मनोनीत दो आदमी रहेंगे। अन्तिम कहे हुए सात आदमी यदि कविराज नहीं भी रहे तो भी काम चल सकता है। तो भी सदस्यों में से अधिकतर कविराज ही होंगे इसमें सन्देह नहीं है। इन लोगों की निर्द्धारित पाठ्य-पुस्तकों, पाठन-प्रणाली और परीक्षा ग्रहण पद्धति से आयुर्वेद की उन्नति ही होगी यह कोई असम्भव नहीं है।

पक्षान्तर में, भविष्य में वोट देकर कौन्सिल और फैकल्टी में प्रतिनिधि भेजने के अधिकार के लिये कविराजों को गवर्नमेन्ट के General Counsil अर्थात् आयुर्वेद परिषद में रजिष्टर्ड अर्थात् सुपरिचित होना पड़ेगा। अन्यान्य स्थान में जिस प्रकार हो किसी को भी पहले वर्ष रजिष्टर्ड होने के लिये किसी प्रकार की परीक्षा नहीं देनी पड़ेगी। इक्कीस वर्ष से ऊपर के कविराज ही यदि चाहें तो रजिष्टर्ड हो सकते हैं। रजिष्टर्ड कविराज रजिष्टर्ड डाक्टरों के समान ही अधिकतर विश्वासपात्र बनाये जायेंगे।

उन लोगों को दिया हुआ प्रमाण-पत्र डाक्टरी प्रमाण-पत्र के समान ही ग्रहण किया जायगा। इसके फल-स्वरूप रजिष्टर्ड कविराजगण अधिकतर यश और धन कमायेंगे यह इससे आशा की जाती है। भविष्य में सरकारी आयुर्वेद परिषद् और फैकल्टी के गठन में उन्हीं लोगों का अधिकार रहेगा।

फैकल्टी की निर्दिष्ट शिक्षा के बाद जो परीक्षोतीर्ण होंगे, वे लोग भी Registered होने पर ये सभी अधिकार प्राप्त कर लेंगे। विशेषतः गवर्नमेन्ट प्रदत्त उपाधि के परिचय से जनसाधारण के सामने यथेष्ट सम्मान और विश्वास प्राप्त करेंगे। इस सम्मान के विरुद्धवादी 'पास करके कम्पाउन्डर के समान सम्मान' कह कर इसके विरुद्ध प्रचार करते हैं। किन्तु मैंने बहुत खोज करने पर इस अपूर्व आविष्कार का कारण नहीं पाया। यदि ऐसी ही बात होती तो जिन-जिन देश में Registration की प्रथा है वहाँ के वैद्य अपने को गौरवान्वित नहीं समझते।

इस जगह यह भी कहना आवश्यक है कि Registration कोई बाधा नहीं डालेगा। Registered नहीं होने से वोट का अधिकार और प्रमाण-पत्र नहीं मिलेगा। किसी का व्यवसाय करना बन्द नहीं होगा। कविराजों के सम्प्रदाय पण्डित एवं विचारकों की कमी नहीं है। आयुर्वेद के फैकल्टी की विकृत रूप से व्याख्या के कारण ही कोई-कोई पण्डित कविराजों की इसके प्रति अश्रद्धा हो गई है। परन्तु आयुर्वेद की खराब हालत और आयुर्वेद के व्यवसायियों के प्रति लोगों की अश्रद्धा और अवज्ञा तो अविदित नहीं है। सुशिक्षित योग्य शिक्षार्थी के अभाव से आज आयुर्वेद बिनाश के तरफ जा रहा है। अशिक्षितों के वाह्याडम्बर से विमुग्ध होकर लोग यह नहीं पहचान सकते कि कौन यथार्थ में कविराज है। इस समस्या को हल करने के लिये, शिक्षापद्धति का संस्कार और शिक्षितों के लिये कोई विशिष्ट चिह्न होना अत्यन्त आवश्यक है। राज-शक्ति का नियन्त्रण छोड़ कर इसका कोई और उपाय है? इसके नहीं रहने से ही फैकल्टी की शरण लेनी पड़ती है। यह हम लोगों का अवश्य कर्तव्य यह पण्डितों को बनाना आवश्यक नहीं है। फैकल्टी के नियमानुसार चुने गये हुए कविराज ही पाठ्य और पाठन प्रणाली निर्द्धारित करेंगे। इसके फल स्वरूप अष्टाङ्ग आयुर्वेद का पुनरुद्धार होगा एवं परीक्षोत्तीर्ण छात्रगण गवर्नमेन्ट प्रदत्त उपाधि द्वारा विशेष रूप से चिह्नित होंगे। इसके फल स्वरूप अशिक्षितों के अत्याचार से जन-साधारण बच जायगें, यह निश्चय ही है।

उपसंहार

अब मैं अपना वक्तव्य खतम करूँगा। उपसंहार में मेरा यही निवेदन है कि भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति के लिये और गौरव की रक्षा के लिये यदि हम लोग प्रतिज्ञा-बद्ध न होंगे तब आयुर्वेद का भविष्य अन्धकारमय हो जायगा। बङ्गाल का शिक्षित-जन-समूह और कविराज-समूह यदि प्राण-पण से भारत के गौरव-आयुर्वेद की रक्षा न करेगा तो केवल इने-गिने लोगों के आत्म-त्याग और चेष्टा से आयुर्वेद सुरक्षित नहीं हो सकता है। आयुर्वेद के धन-रत्न धीरे-धीरे विदेश में चले जा रहे हैं। अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित आयुर्वेदीय चिकित्सकों में से अशिक्षित चिकित्सकों की संख्या बढ़ती जा रही है। इससे लोगों की आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा घट जाना आवश्यक है। इसको बन्द करने के लिये कविराज महाशयों की सम्मिलित चेष्टा अत्यन्त आवश्यक है।

अन्त में कविराज महाशयों को कृताञ्जली होकर प्रार्थना करता हूँ—

"सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥"

॥ इति ॥

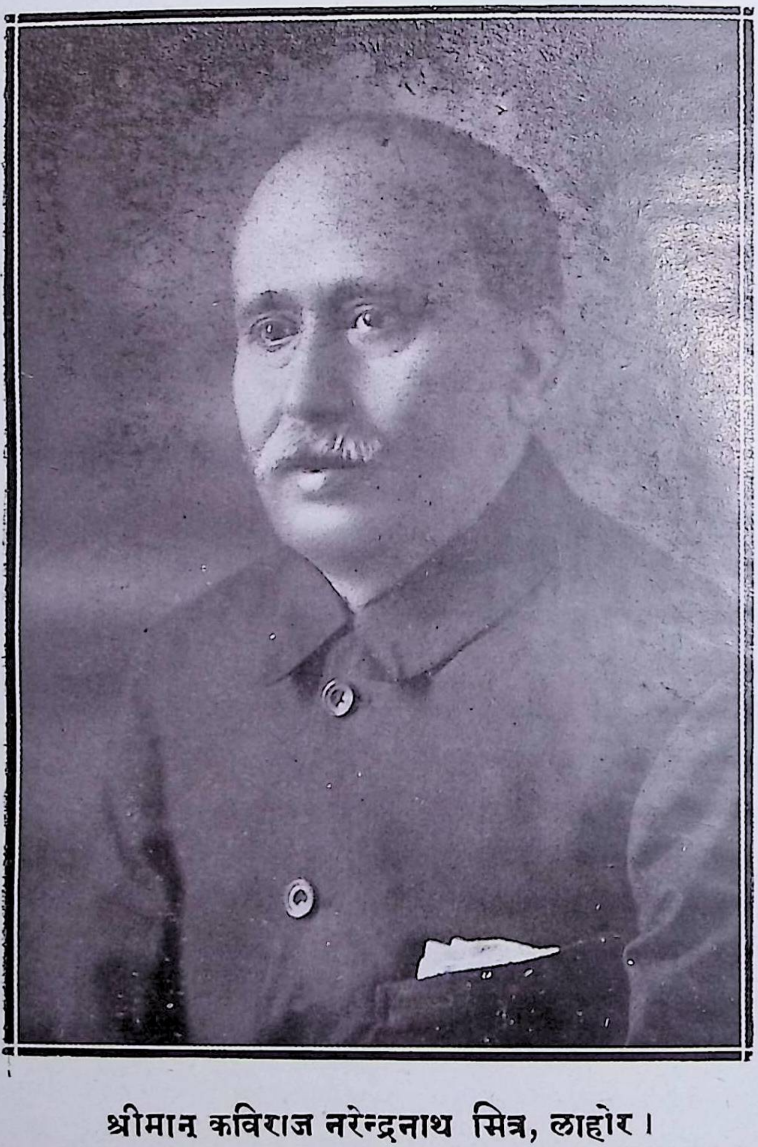

श्रीमान् कविराज नरेन्द्रनाथ मित्र, लाहोर।

अध्यक्ष, पंजाबप्रान्तीय ६ वैद्यसंमेलन, जालन्धर (स. १९३३)।

पंजाब प्रान्त

पंजाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन, जालंधर के सभापति

कविराज श्री नरेन्द्रनाथजी मित्र, लाहोर का

जीवन-चरित्र ।

श्रीमान कविराज नरेन्द्रनाथजी मित्र का शुभ जन्म सन् १८७४ ई० में हुआ। सन् १८८५ ई० में आपने इन्टर मीडिएट परीक्षा पास कर लाहोर मेडिकल कालेज में प्रवेश किया। वहाँ पर आप होनहार छात्रों की श्रेणी में अपनी प्रतिभा के कारण माने जाने लगे। फलतः आपको कालेज से १२) मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। कालेज-प्रवेश के बादही आपको 'शरीरं व्याधि मन्दिरम्' का सजीव उदाहरण बनना पड़ा। अन्ततः उत्तरादिक व्याधियों ने आपको कालेज छोड़ने के लिए वाध्य कर दिया। मेडिकल कालेज छोड़ कर आपने बी० ए० की पाठ्य पुस्तकों के साथ युद्ध आरम्भ किया। किन्तु शारीरिक स्वास्थ्य ने आपका साथ न दिया। अन्त में आप परीक्षा में सम्मिलित न हुए और लाहोर का परित्याग कर इन्दोर पधारे और इन्दोर के प्रसिद्ध राज्यवैद्य, कविशेखर श्री अमृतलालजी से अपनी चिकित्सा आरम्भ कराई और उसी के साथ-साथ उन्हीं से आयुर्वेद का अध्ययन भी आरम्भ कर दिया और कटिवद्ध होकर अनेक वर्षों तक आयुर्वेद का अध्ययन करते रहे। अध्ययन के अनन्तर गुरुदेव के आज्ञानुसार पुनः लाहोर आकर चिकित्सा कर्म में आप प्रविष्ट हुए और आज तक वही कार्य कर रहे हैं। चिकित्सा कर्म करते हुए बहुत दिनों तक आप राजा साहब शेखूपुरा के गृह-चिकित्सक भी थे। अखिल भारतीय पंचम वैद्यसम्मेलन मथुरा की आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी से आपको प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र रसौषधि निर्माण पर दिया गया था। आप एक अच्छे आयुर्वेदिक निबन्धकार हैं। 'सुधानिधि' प्रयाग ने आपके निवन्ध पर एक वार स्वर्णपदक प्रदान किया था। आपने 'चिकित्सा-कलिका' नामक ग्रंथ की टीका बड़े खोज के साथ लिख कर प्रकाशित करवाई है। आज जिस पद्धति से अपने यहाँ रसादिक निर्माण करते हैं, उसका विवरण स्वरचित 'रस-तरंगिणी' में आपने दिया है। और कई रसों के विषय में आपने जो खोज की है, वह भी इसी ग्रंथ में आपने छापा है। आप बहुत दिनों तक डी० ए० वी० आयुर्वेदिक कालेज लाहोर तथा पटना आयुर्वेदिक कालेज के भी परीक्षक रहे हैं। इस समय भी गुरुकुल आयुर्वेदिक कालेज के परीक्षक बहुत दिनों से हैं। भैषज्य-रत्नावली के संशोधक परिवर्धक, सम्पादक और यशस्वी टीकाकार के रूप में भी आयुर्वेद प्रेमीजन आप से बहुत काफी परिचित हैं। रसतंत्राचार्य, कविराज श्री नरेन्द्रनाथजी मित्र के विषय में मैं केवल एकही श्लोक उद्धृत करना अलम् समझता हूँ।

रसतन्त्ररहस्यानामद्वितीयो विचक्षणः ।
पाश्चात्येऽपि भिषक्तन्त्रे तत्ववेदी महामनाः ॥१॥
यक्ष्माद्यसाध्यव्याधीनां चिकित्सायां प्रकर्षवान् ।
नरेन्द्रनाथमित्रः श्रीसदनं शिष्यवत्सलः ॥२॥

पञ्जाब प्रान्तीय षष्ठ वैद्य सम्मेलन जालन्धर के सभापति

कविराज श्री नरेन्द्रनाथजी मित्र महोदय का

अभिभाषण

श्रीयुत प्रधानजी ! तथा स्वागतकारिणी-समिति के सदस्यो !

सबसे पूर्व मुझे आप लोगों का धन्यवाद करना है, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से हम लोगों के रहने-सहने तथा स्वागत आदि में पूर्ण प्रयत्नशील होते हुए सौजन्य का परिचय दिया है। इसके पश्चात् मुझे सब वैद्य महानुभावों से क्षमायाचना करनी है। क्योंकि यहाँ पर बहुत से अनुभवी विद्वान् वैद्य उपस्थित हैं और जिन्होंने आयुर्वेद की उन्नति की ओर सराहनीय प्रयत्न किया है। ऐसे महानुभावों के उपस्थित होते हुए मेरा सभापति के आसन पर बैठना कहाँ तक योग्य है ? तो भी मैं आशा करता हूँ कि उपस्थित महानुभाव सम्मेलन के कार्यक्रम को निर्विघ्न रूप से पूर्ण करने में मेरे सहायक होंगे।

वैद्यबन्धुओं !

आयुर्वेद की महत्ता तथा उसकी अन्य चिकित्सा प्रणालियों से श्रेष्ठता को आप लोग खूब जानते ही हैं। इस विषय में विद्वानों के भाषण आपने सुने होंगे, लेख पढ़े होंगे, स्वयं भी विचारा होगा और विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ भी आपने देखी होंगी। उनके बारम्बार दोहराने से कोई विशेष लाभ होता हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। गुड़ को बार-बार मीठा कहने से उसके मिठास में वृद्धि नहीं होती और कडुआ कहने से वह कडुआ नहीं हो जाता। यही बात आयुर्वेद की है। श्रेष्ठता की केवल मात्र घोषणा करने से उसकी सर्वश्रेष्ठता में वृद्धि नहीं होती और निंदा करने से ह्रास नहीं होता। वास्तविक रूप में उसकी श्रेष्ठता को जताना वैद्यों के हाथ में है। ज़माना वक्तृताओं का नहीं रहा, कुछ कर्म करके दिखाना है। तभी संसार विश्वास करेगा। इस उथल-पथल के युग में, जब कि भारत के धार्मिक व राजनैतिक नेता लोगों को स्व-धर्म, स्व-राज्य वा स्वदेश-प्रेम का पाठ लिखा रहे हों, हमें अपने देश की चिकित्सा-प्रणाली के विस्तार में पूर्ण-रूप से लग जाना चाहिए। राजनैतिक स्टेजों से चिल्ला-चिल्लाकर स्वराज्य की घोषणा करनेवाले हमारे राजनैतिक नेता भी तो सामान्य-से-सामान्य रोग होने पर वैदेशिक चिकित्सा-प्रणाली से चिकित्सा करनेवाले परन्तु विदेशों के एजेण्ट-रूप चिकित्सकों के पास जाया करते हैं। इसमें उनका दोष नहीं। दोष तो हमारी अकर्मण्यता का है। हमें उनकी चिकित्सा-प्रणाली से द्वेष नहीं। उस चिकित्सा-प्रणाली का पिता भी तो आयुर्वेद ही है।

उपशय के लक्षण—

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥
विद्यादुपशयं व्याधेः ।

में सब प्रणालियों का समावेश होता है। अरब, ग्रीक तथा अन्य योरोप ने यहीं से इसे

सीखा है। परन्तु वे हमारी तरह आलसी नहीं। उन्होंने उसे अपने देश के वातावरण के अनुसार उसे आगे-से-आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया और कर रहे हैं। इसमें राजकीय साहाय्य की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है, परन्तु इसकी उपलब्धि तब तक सुख स्वप्नमात्र है, जब तक कि हम स्वयं अपने पाँव पर नहीं खड़े होते।

'नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।'

अतः आवश्यकता है अपने पौरुष की। कितने ही वैद्य हैं, जिन्हें आयुर्वेद पर श्रद्धा नहीं। बड़े-बड़े नामधारी वैद्यों में बहुत-से अँगरेजी औषधों का ही प्रायशः नामान्तर से रोगियों को प्रयोग कराया करते हैं। हमें उन औषधों को अपनाने में कुछ हानि नहीं परन्तु इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि हम कहीं आयुर्वेद के सिद्धान्तपथ से विचलित तो नहीं होते। अपने यहाँ एक-से-एक औषध के बढ़कर होते हुए अन्धाधुन्ध विदेशी औषधों का व्यवहार में लाना देश और जाति के लिए हानिकर है।

'यस्मिन् देशे हि यो जातस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।'

कई एक महानुभाव केवल अपनी उदरदरी की पूर्ति के लिए अपढ़ लोगों को भी, जो आयुर्वेद का अक्षर भी नहीं जानते, कुछ-एक रुपये लेकर डिग्रियाँ दे देते हैं। फल यह होता है कि—

'यदृच्छया समापन्नमुत्तार्य नियतायुषम्।
वैद्यमानी निहन्त्याशु शतान्यनियतायुषम्॥'

सैकड़ों पुरुष काल का ग्रास होते हैं। ऐसे वैद्यनामधारियों की असिद्धि को देखते हुए आयुर्वेद के ऊपर से आमलोगों का विश्वास उठ जाता है। वैद्य-मात्र पर अश्रद्धा हो जाती है। अभिप्राय यह है कि ऐसे वैद्य मानियों पर कोई न कोई रोक होनी चाहिए। अभी हाल में ही पंजाब की मेडिकल कौंसिल की ओर से कुछ एक झूठी डिग्री लगाने वालों पर, जिन्होंने किसी युनिवर्सिटी से डिग्री प्राप्त न की थी, पर अपने नाम के आगे M. D. आदि बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लगाते थे, मुकदमे चलाये। किसी को दो सौ रुपए जुर्माना वा किसी को क़ैद की सज़ा हुई। परन्तु वैद्यों को कौन पूछता है? अखिल-भारतीय-आयुर्वेदविद्यापीठ भी इस ओर कुछ ध्यान नहीं देती। आयुर्वेदाचार्य आदि उपाधियों के रजिस्टर्ड कराने का भी कोई लाभ होता हुआ दिखाई नहीं देता। जिसे देखो विद्यापीठ की परीक्षा न देकर भी आयुर्वेदाचार्य आदि पदवी अपने आगे लगा लेते हैं। उनसे कोई पूछने वाला भी नहीं। फल यह होता है कि आमलोग परीक्षाओं को आवश्यकता ही नहीं समझते और मान्य संस्थाओं की परीक्षा न देकर स्वयं वा केवलमात्र धन के लोभी लोगों से बड़ी से बड़ी डिग्री लेते हैं और जनता को धोखे में डाले रखते हैं। ऐसे उत्तरदायित्व से हीन लोगों का जहाँ तक हो सके समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसे वैद्य 'राज्ञां प्रमादाच्चरन्ति राष्ट्राणि।' इसमें राजकीय सहायता की आवश्यकता होती है। अस्तु।

यदि हम वास्तविक रूप से वैद्यों की उन्नति चाहते हैं, वा लोगों पर वैद्यों का सिक्का जमाना चाहते हैं, तो हमें आयुर्वेद की उन्नति की ओर अग्रसर होना चाहिए। प्राचीन समय में हमारा शास्त्र अत्यन्त उन्नत था, इस विषय में किसी को सन्देह नहीं परन्तु हमने तो यह देखना है कि क्या वह इस वर्तमान युग की आवश्यकता को पूर्ण करता है? बुद्धिमान् एवं

प्रतिभा-सम्पन्न वैद्य तो उन्हीं सूत्र-रूप से निर्दिष्ट सिद्धान्तों-द्वारा कार्य चला लेंगे। परन्तु जन-साधारण को उनसे लाभ पहुँचना कठिन नहीं अपितु असम्भव दिखाई देता है। हमें आयुर्वेद का ऐसा साहित्य तैयार करना है जो साधारण वैद्यों, आयुर्वेद के विद्यार्थियों तथा जन-साधारण के लिए लाभदायक हो। अन्यथा उन्नति की आशा दुराशामात्र है। अँगरेज़ी औषधों का प्रचार इतने थोड़े-से काल में इतना अधिक क्यों हो गया, इसका भी कारण उनका साहित्य है। सबसे प्रथम साहित्य को बढ़ाइए। साहित्य-द्वारा लोगों में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी। साहित्य में—प्राचीन लुप्त ग्रन्थों का उद्धार, प्राचीन पुस्तकों का शुद्ध अनुवाद, भाषान्तर वा टीकाएँ, नवीन समयोपयोगी पुस्तकों का निर्माण आदि सबका समावेश होता है। हमें उन टीकाओं को विद्यार्थियों वा संस्कृत से अनभिज्ञ वैद्यों के हाथ में न देना चाहिये, जिनमें धात्रीस्तन्य का अर्थ आँवले का दूध 'कपित्थमांसं' का अर्थ एक प्रकार के बन्दर का मांस—किया गया हो।

Moor's Family Medicine आदि की तरह हमें भी सरल और सर्वसाधारण के लिए उपयोगी ग्रन्थ तैयार करने चाहियें। इसी प्रकार विद्यार्थियों के लिए विषय का विस्तार से निदर्शन करानेवाली पुस्तकों का निर्माण होना चाहिए। हमने इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वर्गत अपने शिष्य सदानन्द-द्वारा रसतरंगिणी का निर्माण कराया था। इसमें रसशास्त्र के विषय को बड़ी अच्छी तरह और विस्तार से बताने का प्रयत्न किया गया है। संस्कृत भी अत्यन्त ही सरल रक्खी गई है। जगह-जगह पर रहस्यों को खोल दिया है। द्रव्य के गुणों को दर्शाने के लिए दिए गये योगों के गुण सुस्पष्ट एवं विस्तृत रूप से लिखे गए हैं। वहाँ पर यह भी बता दिया गया है कि अमुक द्रव्य वा अमुक योग अमुक-अमुक लक्षणों के होने पर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर आप वत्सनाभ के आमयिक प्रयोगों में प्रसिद्ध मृत्युञ्जयरस का प्रकरण देख सकते हैं। वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी समझ जायगा कि किस प्रकार के ज्वर में इसका प्रयोग होना चाहिए। अभिप्राय यह है कि इस प्रकार के ग्रन्थों के निर्माण से वैद्यों की केवलमात्र नुस्खे या योग जानने की बढ़ती हुई रुचि रुक जायगी और वे वास्तविक अर्थों में वैद्य कहाने योग्य होंगे।

प्राचीन पुस्तकों में नुस्खों की भरमार है। आवश्यकता है नुस्खों को ठीक जगह पर प्रयोग कराने वालों की। एकही योग एक वैद्य प्रयोग कराता है तो उसे सिद्धि होती है और दूसरा असफल रहता है। असफलता में उस योग का दोष नहीं परन्तु उसके प्रयोग कराने वाले वैद्य का है। "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।" वह वैद्य यह नहीं जानता कि इस औषध का किस दोष के कोप में वा किन लक्षणों के होने पर प्रयोग कराना चाहिये। वस्तुतस्तु वह वैद्य कहाने के योग्य ही नहीं।

'योगमासां तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषक्तमः॥'

यह तब हो सकता है जब रोगपरीक्षा के साथ-साथ निघण्टु का सम्यक्तया ज्ञान हो। निघण्टु के ज्ञान से नुस्खों के जानने की लालसा मिट जायगी। निघण्टु के न जानने के कारण ही वैद्य नुस्खों के पीछे दौड़ते हैं। जब कोई एक उत्तम नुस्खा जान भी लेते हैं तो अपने अभ्यास में उसे लाभदायक नहीं पाते और निराश हो जाते हैं। निराशा का कारण उनके

निघण्टु-ज्ञान का पर्याप्त न होना है। जो आयुर्वेद के पत्र वा पत्रिकायें वास्तव में उपयोगी होती हैं उनका प्रचार तो वैद्यों में होता नहीं और वे घाटा होने के कारण बन्द हो जाती हैं। परन्तु जिन पत्रिकाओं में योगों के अतिरिक्त अन्य कोई लेख नहीं होते वे शीघ्र ही प्रचारित हो जाती हैं। इसमें जहाँ वैद्यों की ज्ञान-शून्यता का भान होता है, वहाँ वे अच्छे चिकित्सक भी नहीं बन सकते।

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥

अच्छे चिकित्सक बनने के लिये तो किसी सुप्रबन्धयुक्त संस्था से पढ़ने के पश्चात् चिकित्सा में निपुण चिकित्सक के पास रह कर कर्मदर्शन आवश्यक है। अब तक जितनी भी संस्थायें आयुर्वेद की शिक्षा देती हैं उनमें कर्मदर्शन वा कर्माभ्यास का उतना अच्छा प्रबन्ध नहीं। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी जीवन में असफल रहते हैं और चिकित्सा कार्य को छोड़ कर आजीविका के अन्य उपाय ढूँढ़ते हैं। प्रवीण चिकित्सक के पास दो-तीन वर्ष व्यतीत करने से जहाँ विद्यार्थी कर्मदर्शन से चिकित्सा में प्रवीण हो जायगा वहाँ वह अपने अभ्यास के लिये सुगमता से मार्ग को भी नियत कर लेगा। अतएव चरक में कहा भी गया है—

'तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते ॥
विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तावलमेकैकमप्यदः ॥
दृष्टकर्मा च शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात्सिद्धिभागसौ।
एकाङ्गहीनो न श्लाघ्यः एकपक्ष इव द्विजः ॥'

अतः प्रवीण चिकित्सक के पास रह कर चिकित्सा-कर्म सीखना आयुर्वेद के गौरव-प्रतिष्ठा का सोपान है। इससे नवीन वैद्य की चिकित्साभ्यास में हिचकिचाहट भी दूर हो जाती है।

आयुर्वेद के मान, गौरव वा उन्नति का एक साधन और अत्यावश्यक साधन यह भी है कि प्रत्येक चिकित्साभ्यास करनेवाला वैद्य एक नोटबुक रक्खे और उसमें रोगी-द्वारा वर्णित रोग का ऐतिह्य, वर्तमान लक्षण, निर्णीत रोग तथा व्यवस्था की हुई औषध को दर्ज करें। तदनन्तर रोगी जो भी गुण-अवगुण बताए वा जो कुछ आप परीक्षा-द्वारा जाने उसे लिखता जाय। इससे किन लक्षणों के होने पर कौन-सी औषध उपयुक्त है, यह ज्ञात हो जायगा। औषध असंख्य हैं। अतः दस-बीस मुख्य-मुख्य औषध, जिन्हें प्रायः वैद्य लोग बरतते हैं, इस कान्फ्रैंस-द्वारा नियत की जा सकती हैं। हममें से प्रत्येक वैद्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने यथार्थ अनुभव को संग्रह करके लायें। विद्वान् वैद्यों की एक उपसमिति उन संग्रहों के आधार पर यह निर्णय करे कि अमुक औषध अमुक रोग में अमुक-अमुक लक्षण होने पर लाभकर है। इससे जहाँ आयुर्वेद साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी पूरी होगी वहाँ नये विद्यार्थियों के लिए मार्ग सुगम हो जायगा। यदि ऐसा न भी किया जाय, तो कम-से-कम उस व्यक्ति को तो अत्यन्त लाभ होगा, जिसने इस प्रकार का संग्रह अपने पास किया हुआ है। यह चिकित्सा-कर्म में प्रकाशस्तम्भ होगा।

चिकित्सा की सफलता के लिए जहाँ अन्य बातों की आवश्यकता है वहाँ औषधों का यथाविधि बनाना भी आवश्यक है। एक तो वनौषधियाँ ही ठीक नहीं मिलतीं। साधारण-से-साधारण बनौषधि का भी ठीक मिलना दुष्कर होता जाता है। अमृतसर—जो कि पंजाब की मंडी है—कितने ही कृत्रिम द्रव्य तैयार करती है और उन्हें ही वैद्य अपनी औषधों में व्यवहार करते हैं, लाभ कहाँ से हो ? पहिले तो यही शिकायत हुआ करती थी कि यह चीज़ पुरानी है, अब तो यथार्थ वस्तु का मिलना भी कठिन हो रहा है। इसके लिए अभिज्ञ निर्लोभी वैद्यों की देख-रेख में वनौषधि-संग्रहालय होने चाहियें और वैद्यों को उन्हीं से द्रव्य मँगाने चाहियें। यह तो हुई वनौषधियों के प्राप्त होने की बात।

मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूँ कि हममें से बहुत से वैद्य औषधों के यथाविधि निर्माण को भी नहीं जानते। कितने ही वैद्य हैं जिन्हें घृत वा तैल का पकाना नहीं आता, कितने ही अरिष्ट-आसव को तैयार करना नहीं जानते, और कितने ही चूर्ण वा गोलियों के उपादान द्रव्यों को किस क्रम से मिलाना चाहिए, यह नहीं जनते। हम सबको इस विषय में अपनी अपनी कमी को पूरी करनी चाहिए। जो जानते भी हैं या जानने का दावा करते हैं, वे भी यथा विधान औषध को बनाने का कष्ट नहीं करते। पीछे आयुर्वेद के पत्रों में यह शिकायत छपी थी जिसमें पंजाब की ही किसी विशेष फार्मेसी पर यह दोष लगाया गया था कि वह स्वयं यथाविधि लौहभस्म को तैयार न करके बाज़ारू Iron oxide लेकर ऑर्डर पूरा कर देती है। हम यह नहीं कह सकते कि वह फार्मेसी कौन-सी है; क्योंकि उन्होंने नाम को प्रकट करना व्यवहार की दृष्टि से उचित नहीं समझा, परन्तु इसमें सत्यता बहुत है। ऐसी फार्मेसियों से किसी प्रकार का सहयोग करना अच्छा नहीं। इससे जहाँ आयुर्वेद के गौरव की हानि होती है वहाँ हम पंजाब के वैद्यों की नाक कट जाती है। एक ही मछली तालाब को गंदा कर देती है। प्राणि-मात्र के साथ सम्बन्ध रखने वाले इस शास्त्र में अनुचित रूप में व्यापारिक दृष्टि को लाना बड़ा ही जघन्य कर्म है। ऐसे अपराधियों के लिए प्राणदण्ड भी बहुत कम है। वैद्य वा रोगी किसी फार्मेसी से विश्वास पर औषध मँगाता है। उससे विश्वासघात करना कहाँ की सज्जनता वा सहृदयता है ?

इन सब बातों के अतिरिक्त वैद्यों को आयुर्वेद के प्रधान अंग शल्य (Surgey) तथा शलाक्य की ओर भी ध्यान देना चाहिये। ये अंग भी पूर्व-काल में अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था। सुश्रुतसंहिता इसकी साक्षी है। परन्तु पीछे से जैसा कि ऐतिहासिक कहते हैं, बौद्ध-काल में इस अंग को अत्यन्त घृणित ठहराये जाने से वैद्यों ने अवहेलना की। इस समय एक भी ऐसा वैद्य दिखाई नहीं देता, जो शल्य-कर्म करता हो इस कर्म की अवहेलना होने पर नाई आदियों ने इसे जैसा-तैसा सीखा और वे अब तक भी उसे वैसा ही करते चले जाते हैं। वैद्यों को चाहिए कि इसे अपनायें और इसमें पुनः उतनी ही सिद्धहस्तता प्राप्त कर लें जितनी प्राचीन समय में थी। बड़े-से-बड़ा ऑपरेशन करने में किसी दूसरे का मुँह न ताकना पड़े, यद्यपि प्रारम्भ में हमें बहुत-कुछ पाश्चात्य डॉक्टरों से सीखना पड़ेगा। सीख कर ही हम आयुर्वेद के साँचे में उसे ढाल सकते हैं। विज्ञान की उन्नति इसी प्रकार हुआ करती है।

परन्तु वैद्यों की मनोवृत्ति तो कुछ ऐसी है कि न तो वे किसी से कुछ सीखना चाहते हैं न सिखाना चाहते हैं। मिथ्याभिमान का त्याग करने से ही हम कुछ आगे बढ़ सकते हैं दूसरे

को सिखाने में हमें अपने हृदय को विशाल करना चाहिए। एक साधारण से साधारण बात के बताने में वैद्य इतना संकोच करते हैं कि कहने की बात नहीं। विद्या देने से सदा फूला-फला करती है। संकुचित मनोवृत्ति ने ही तो हमारी यहाँ तक अधोगति की है। इस मनोवृत्ति को बदलने का भरसक प्रयत्न होना चाहिए। इस विषय में हमें पाश्चात्य वैज्ञानिकों से शिक्षा लेनी चाहिए। अन्वेषणा का कार्य होने पर जब वे किसी नई वस्तु का पता लगाते हैं, तो उसी समय प्रकाशित कर देते हैं। आप जानते ही हैं कि किस प्रकार वे उन्नति की ओर बढ़ते चले जाते हैं।

आइये, और सद्भावनाओं से इस सम्मेलन में एकत्र हुए वैद्य अपनी उस मनोवृत्ति को बदलते हुए आयुर्वेद के साहित्य को उन्नत करने आप सब, लुप्तप्राय अंग—शल्य को पुनरुज्जीवित करने का तथा स्वार्थपरायणता को छोड़कर वास्तविक उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयत्न करें और आयुर्वेद को पुनः उसी उच्च आसन पर बैठायें, जिसे देख कर संसार चकित हो जाय।

॥ इति ॥

निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल और विद्यापीठ के संस्थापक, स्वर्गीय

आयुर्वेद महोपाध्याय शंकरदाजी शास्त्री पदे का

जीवन चरित्र

भारत कर्मभूमि है । इसमें आत्म-त्याग पूर्वक शुद्ध कर्मनिष्ठा से कर्तव्य करने वाले समय-समय पर उत्पन्न होते ही रहते हैं । भारतवर्ष के लिये भगवान की स्वयं प्रतिज्ञा है कि जब-जब धर्म की हानि होती है और सत्पुरुषों को कष्ट होता है, उन्हें अपना कर्तव्य पालन करना कठिन पड़ने लगता है, तब-तब धर्म की रक्षा के लिये मैं अवतार लेता हूँ । कुछ अवतारों में भगवान स्वयं अवतीर्ण होते हैं और कुछ में अपने अंश विशेष से किसी कर्मी पुरुष को अवतारित करते हैं । ऐसे अंशावतारों की पहचान के लिये भगवान ने कुछ लक्षण बतला दिये हैं—

“यद्‌यद्विभूति मत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेववा ।
तत्तदेवागच्छत्वं ममतेजोंश सम्भवम् ।।”

ऐसे तेजस्वी अंशावतारी किसी उद्देश्य विशेष को लेकर जन्म लेते हैं और उसे रास्ते पर लाकर विदा हो जाते हैं । हमारा आयुर्वेद भारतीय धर्म का एक अंग है । वेद उसका उद्गम् स्थान है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष उसके द्वारा सिद्ध होते हैं अतएव उसकी यत्परोनास्ति हानि भगवान नहीं देख सकते ।

यह वेद सम्मत आयुर्वेद देवताओं द्वारा प्रस्फुटित और ऋषि महर्षियों द्वारा पल्लवित तथा विविध आचार्यों द्वारा शाखा प्रशाखाओं से सुशोभित फूलने फलने में समर्थ हुआ था । यद्यपि बौद्धकाल में इसकी एक शाखा मलीन हो चली थी, किन्तु रस-सिद्धों के कारण उसकी रस-तन्त्र की दूसरी शाखा अपनी उन्नति की परमसीमा तक पहुँच गयी थी । मुसलमानी काल एक प्रकार से उदासीन काल था तथापि इसकी चिकित्सा वाली शाखा बढ़ती ही रही और अपने चमत्कार से बादशाहों को भी दंग करती रही । आगे चल बृटिश काल इसकी उत्तमता की परीक्षा का बहुत ही विकटकाल सिद्ध हुआ । सरकार पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा का जोर से प्रचार कर रही थी, अपनी चिकित्सा-पद्धति एलोपैथी को ही वह मान्यता दे रही थी, सरकारी बल पाकर वह भी अठखेलियाँ करती हुई विचर रही थी, सर्वत्र अपना प्रभाव जमाती चली जाती थी । उसके मायाजाल में फँस स्वयं डाक्टरी पढ़े हुए देशी लोग आयुर्वेद की निन्दा करते और कायदे कौंसिलों में भी उस पर हमले होते रहते थे । अपने घर भी इसकी पूछ कम हो चली थी । इसे निस्सार अशास्त्रीय-विज्ञान विरहित, झाड़ फूंक की तरह ढलोसलामात्र समझा जाने लगा था । भगवान ने ऐसे ही समय अपना अंश देकर आयुर्वेद महोपाध्याय शंकरदाजी शास्त्री पदे को अवतरित किया ।

जन्म और वाल्यकाल

पण्डित शंकरदाजी शास्त्रीपदे के पुर्व-पुरुष पूने जिले के नारायणगांव के रहने वाले

थे। ये महाराष्ट्रों के देशस्थ श्रेणी ब्राह्मण थे। पेशवाओं के दरबार में वेद के पद-पाठ करने के कारण इनके खानदान को पदे की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये शुक्ल यजुर्वेदी शाखा के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। इनके पिता पण्डित दाजी शास्त्री पदे ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड पण्डित थे और बम्बई में आकर उन्होंने बहुत यश और द्रव्य अर्जित किया। बम्बई के नागपाड़ा मुहल्ले में ही चैत्र कृष्ण १० संवत् १९२३ अर्थात् ३० मार्च सन् १८६७ ई० को आपका जन्म हुआ। आपने आठ वर्ष की अवस्था में ही मराठी शिक्षा पूर्ण कंठ कर ली। इसके बाद सुप्रसिद्ध प्रज्ञासु शतावधानी, भारतभानु, साहित्याचार्य स्वर्गवासी पण्डित गदूलाल जी महाराज से संस्कृतसाहित्य, न्याय, व्याकरण, मीमांसा आदि की शिक्षा ग्रहण की और पण्डित प्रभाकरदा जी बाईकर से वेद का अध्ययन किया। आयुर्वेद की शिक्षा विशेषतः कर्माभ्यास श्रीयुत् भानु वैद्य कुलकर्णी से आपने प्राप्त किया।

संगठन

शंकर शास्त्री के जीवनरहस्य और सफलताओं का सामञ्जस उनकी अद्भुत संगठन शक्ति पर निर्भर करता था। आयुर्वेद के लिये तो इनका अवतारही था और उसके लिए तो ये अपना सर्वस्व न्योछावर किये ही बैठे थे; किन्तु अन्य क्षेत्रों में भी आपके कार्यों का इतना अधिक विस्तार था कि देखकर आश्चर्य होता था। एक आदमी इतने अधिक कार्यों का संचालन कर सकता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण आपकी जीवनचर्या में अद्भुत कौशल के साथ देखा जाता था। अपनी संगठन शैली के प्रभाव से आप सब कामों की ऐसी व्यवस्था करते थे कि सब काम होते चलते थे। आपने अपने सहयोगियों और मित्रों को सदा आगे बढ़ाते रहने उनका यश विस्तार करने, उनकी सफलता में सहायक बने रहने का सदा ध्येय रखा। यही कारण है कि आपके सहायक और सहयोगी सदा आपसे प्रसन्न रहते और आपके कर्मों की सफलता में जुटे रहते थे। जो आपके विरोधी होते उन्हें भी आप साथ रखते और अपने व्यवहार से उन्हें पानी-पानी कर देते और अपना सहायक बना लेते थे। आयुर्वेद की उन्नति के लिये भी वैद्यों का सहयोग तो आवश्यक था ही; किन्तु जिन डाक्टरों के द्वारा आयुर्वेद का विरोध होता था, उसी श्रेणी के अनेक डाक्टरों को भी आप अपने कार्य-कला में शामिल रखते उन्हें आगे करते और उनसे कार्य में सफलताही नहीं पाते थे बल्कि विरोधियों का विरोध भी अनेक अंशों में ढीला कर लेते थे।

कर्तव्य पथ में—सम्पादक और लेखक

बड़ी-बड़ी विभूतियों को भी अपने प्रधान कर्तव्य में अग्रसर होने के पहले उसके सहायक बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। कुछ आवान्तर कार्यों को भी छेड़ कर सर्वसाधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना पड़ता है। और सार्वजनिक कामों में पड़ने वालों को बोलने के साथ ही अच्छा लिखने का भी अभ्यास होना चाहिये। बिना इसके उनके कार्यों का प्रभाव अधूरा रहता है। सार्वजनिक कार्यों का जोश आप में इतना अधिक था कि बारह वर्ष की अवस्था में ही अपने बड़े भाई तथा अन्य कुछ मित्रों के साथ आपने "बालमित्र" नाम का मासिक पत्र निकाल दिया। उसका सम्पादन आप स्वयं करने लगे। साथही पत्र के सञ्चालन के लिये आपने जो प्रबन्ध किया वह एक बारह वर्ष के बच्चे की आत्म-निर्भयता का ज्वलन्त उदाहरण है। आपके पिता से दोनों भाइयों को मिठाई आदि के लिये जेब खर्च मिलता था,

उससे पत्र के पोस्टेज और पत्र-व्यवहार आदि का प्रबन्ध हुआ और छपाई के लिये जगदीश्वर प्रेस के मालिक श्रीयुत् नानासोहजी से आपने यह प्रबन्ध किया कि छपाई में जो लगेगा उसके बदले हम प्रेस के प्रूफ पढ़ दिया करेंगे। यही नहीं "विद्या-प्रकाश" नामक पत्र में आपके लेख पहले से छपते थे उनका भी सिलसिला जारी रहा। इस प्रकार छोटी अवस्था में ही आप मराठी के लेखक समझे जाने लगे। उन दिनों बड़ौदे से "सयाजी विजय" साप्ताहिक पत्र निकलता था। उसके मालिक श्रीयुत् दामोदर सांवलाराम ने अपने पत्र का सम्पादन भार लेने के लिये बुलाया। आपके सम्पादकत्व में पत्र खूब चमक उठा। पिता के घनिष्ठ प्रेम ने दो चार वर्ष से अधिक बाहर नहीं रहने दिया। तथापि इस बीच में ही अपने अभ्यास और अनुशीलन-मनन से आपकी लेखन पटुता की धाक जम गयी और "सयाजी विजय" (पीछे यह पत्र बम्बई आ गया), नेटिव ओपीनियन तथा अन्य कई पत्रों में "शंकर" "पिनाकी" "भ्रमर" आदि उपनामों से आपके लेख बराबर निकला करते थे और कभी-कभी सार्वजनिक क्षेत्र में तहलका मचा दिया करते थे।

धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश

आपके पिता प्रसिद्ध ज्योतिषी थे, बड़े और छोटे भाई भी ज्योतिषी थे, काका वैदिक थे। इस तरह पैतृक विश्वास के रूप में आप सनातनधर्म के कट्टर अनुयायी थे। थियासोफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में आपके लेखों ने इतनी धूम मचा दी कि मराठी केसरी को भी स्वीकृत पक्ष को छोड़ चुप रहना पड़ा। इन्हीं दिनों सन् १९०१–२ के बीच स्वामी ज्ञानानन्द जी पण्डित दीनदयालु जी शर्मा को अलग कर भारतधर्म महामण्डल के सर्वेसर्वा बन बैठे और मधुसूदन संहिता नाम की अपने ढंग की एक नयी संहिता को प्रचलित करना चाहा। आपने उसके विरुद्ध कलम उठायी और इतना घोर आन्दोलन किया कि वह भारतव्यापी हो गया। पण्डित दीनदयालुजी को आपने बम्बई बुला कर फिर धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश कराया और उन्हें व्याख्यान वाचस्पति के पद से विभूषित कराया। आपकी सनातनधर्म परिषद और ब्राह्मण सम्मेलन प्रभावशाली काम करने लगे। माननीय मालवीयजी ने जब हिन्दूविश्वविद्यालय की पूर्व पीठिका के रूप में सनातनधर्म महासम्मेलन किया तब आप उसके भी सहायक हुए। भारतधर्म महामण्डल के भी अच्छे कामों का आप समर्थन करते और सहयोग का आदान-प्रदान करते थे। द्वारका के शंकराचार्य जगद्गुरु राजराजेश्वर महाराज से बड़ौदा महाराज का मतभेद हो गया था, जिससे वे सदा बाहर रहे। उनके बाद जगद्गुरु माधवतीर्थ को गद्दी मिलना संदिग्ध हो रहा था किन्तु आपने बड़ौदा महाराज से मिल कर सब अड़चनें दूर करा दीं। यद्यपि आप स्मार्त थे किन्तु सभी सम्प्रदायों का आदर करते और अपने हृदय में पक्षपात नहीं आने देते थे। स्वामीनारायण सम्प्रदाय को अवैदिक कहने का गुजरात में आन्दोलन उठा। किन्तु वे अपने को श्री वैष्णव कहते थे। आपने दौड़-धूप कर आन्दोलन शान्त कराया। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी आपका पूरा प्रभाव था। और उस प्रभाव का उपयोग आप सदा धार्मिक एकता राष्ट्रीयता की वृद्धि में ही होने देते थे। शुष्क विवाद से आप अपने को अलग रखते थे। एक बार महाराष्ट्र में यह आन्दोलन उठा कि "पलशे" ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु ब्राह्मणों को समझा बुझा कर आपने इस कटु आन्दोलन को भी बन्द कराया। धर्म में राष्ट्रीयता-वृद्धि के लिये सन् १८८१ के लगभग आपने "आर्यमित्र मेला"

का संगठन किया और उसे बराबर चलाया। इसके द्वारा आप गणेश उत्सव और दशहरे में जलूस, सभाएँ और व्याख्यानों का प्रबन्ध करते थे। इसमें लोकमान्य तिलक का आपको सहयोग प्राप्त होता था। किन्तु आप धर्म में राजनीति के प्रवेश का विरोध करते थे क्योंकि आपका मत था कि इसकी आड़ में सरकार को हमारे धर्म में भी हस्तक्षेप करने का अवसर मिलेगा। इसका अनुभव भी कई बार हुआ ही है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार

महाराष्ट्र में नागरी अक्षर और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रथम समर्थक आपको ही समझना चाहिये। नागरी अक्षरों का भारतव्यापी प्रचार हो और देश के सार्वजनिक व्यापक कार्य हिन्दी भाषा के द्वारा हों, इसका उद्योग आप बराबर किया करते थे। हिन्दी का अभ्यास बढ़ा कर आप स्वयम् हिन्दी में बोलते थे और इसके लिये आर्थिक हानि भी उठाते थे। आप अपने "भारतधर्म" पत्र को मराठी-गुजराती और हिन्दी में साथही निकालते और ग्राहकों की परवाह न कर उसे प्रचारार्थ, प्रभावशाली लोगों में वितरित करते थे। घाटे की परवाह न कर उद्देश्य सिद्धि के लिये आपने उसे मासिक से पाक्षिक और पाक्षिक से सप्ताहिक कर दिया था इस उद्देश्य को आप मरते दम तक नहीं भूले। मृत्यु के दो दिन पहिले सन्निपात की अवस्था में भी लड़खड़ाती जबान से आपने कहा "हे अखिल भारत के वासियों सुनो, मैंने भारत की भाषाओं को एक करने और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न किया—इसे अब तुम सँभालो।" इसके बाद आपने और कुछ कहा किन्तु वह हम लोगों की समझ में नहीं आया।

गरीबों का हित

पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे के सामने सदा मजदूरों, किसानों और गरीबों का हित रहा करता था। उन दिनों मजदूर आन्दोलन आज का ऐसा जोरदार नहीं था; किन्तु मजदूरों का एक छोटा पत्र मराठी में निकलता था। उसकी आप समय समय पर सहायता करते और सम्पादक को मजदूरों के हितके विषयों में परामर्श देते थे। अपने पुरुषों के निवास-स्थान नारायणगांव में आप एक आदर्श कृषिक्षेत्र खोलकर किसानों को खेती की अच्छी पद्धति सिखाना चाहते थे। वहीं एक व्यवहारिक शिल्पशाला खोल कर शिल्प-शिक्षा भी सिखाने का प्रबन्ध करना चाहते थे ताकि बहुत से बेरोजगार रोजी के लायक बनें। साथही एक अनाथालय भी खोलना चाहते थे जिसमें निपट असमर्थों को और निरीह बालकों तथा निराश्रित स्त्रियों को रखकर उनके भोजनादि का प्रबन्ध किया जाता। तत्कालीन गवर्नर लार्ड क्लार्क से इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी कर सब बातें तय हो गई थीं और लेडी क्लार्क के नाम से कृषिक्षेत्र का नामकरण होने वाला था। यद्यपि आप राष्ट्रीय विचार के पुरुष थे और तिलक महाराज की राजनीति को पसन्द करते थे, तथापि आपका विचार था कि देहात की ऐसी संस्थाओं में सरकारी सम्पर्क रहने से उनके संचालन में पुलिस और छोटे अफसरों की अड़चनों की सम्भावना नहीं रहेगी। इस तरह प्रजा को निर्विघ्न लाभ पहुँचाया जा सकता था।

आयुर्वेद का उद्धार

ये सब काम तो शंकर शास्त्री के सहकारी उपकरण मात्र थे। पर कार्य में उनका अवतार आयुर्वेद के उद्धार के लिये हुआ था। यद्यपि आपके पितृकुल में ज्योतिष, कर्मकाण्ड

और वैदिक विषयों का ही प्रचार था तथापि मातृकुल में वैद्यक की अधिक चर्चा थी। आपकी माता भी व्यवहारिक वैद्यक-विषय अच्छा जानती थीं। साथ ही इनके पड़ोस में श्रीयुक्त भाउ वैद्य कुलकर्णी रहते थे। ये विद्वान् तो उतने जबरदस्त नहीं थे; किन्तु निदान और चिकित्सा में उनका अनुभव विशेष था। शास्त्रीजी उनके पास बैठा करते थे और वे भी इन्हें बहुत चाहा करते थे। इस तरह शास्त्रीजी ने देखा कि इस विद्या के द्वारा सर्वसाधारण को और विशेषकर गरीबों को बहुत लाभ पहुँचाया जा सकता है। अतएव आपने कुलकर्णी जी से वैद्यक सीखना आरम्भ किया। इनके पिता ने भी इनका झुकाव देख वैद्यक सीखने की सलाह दी। शास्त्रालोचन और गम्भीर विषयों के अध्ययन की आपने अलग व्यवस्था की। धीरे-धीरे आयुर्वेद की तत्कालीन हीनावस्था आपके सामने आने लगी और उसे दूर करने के विचार आपके हृदय में हिलोरें मारने लगे। किसी महान कार्य को हाथ में लेने के लिये आवश्यक है कि समान विचार के कुछ साथी चाहिये। इसके बिना अकेले चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। विचार जागृति किये बिना, अपने उद्देश्यों का प्रचार किये बिना लोगों का आकर्षण नहीं किया जा सकता। इस लिये आपने सन् १८८३ के लगभग १६ वर्ष की युवावस्था में।

राजवैद्य

नाम का एक मासिक पत्र निकाला। इसके द्वारा आपने आयुर्वेद की तत्कालीन हीनावस्था और उसकी व्यतीत गौरवावस्था का चित्र सर्वसाधारण के सामने खींचने लगे। आयुर्वेद का उद्धार और प्रचार करने के लिए वैद्यों में जागृति भरने लगे। यही नहीं इस समय भी आयुर्वेद में प्रकाशित और अप्रकाशित कितना साहित्य है इसकी खोजकर उसे छाप कर प्रकट करने लगे। आपने लगभग ८०० पुस्तकों की तालिका प्रसिद्ध की और बतलाया कि इनमें कौन कौन छप गयी और कौन अमुद्रित है। अपने दृढ़ निश्चय और आत्मत्याग के कारण आपने पांच छः वर्षों तक पत्र को घाटा सहने पर भी चलाया। इसके बाद दूसरे ढंग से आयुर्वेद का काम करने के विचार से राजवैद्य बन्दकर

आर्यभिषक्

मासिक पत्र सन् १८८८ के लगभग निकाला। यह पत्र आपने आमरण चलाया और आपके स्वर्गवास के वाद भी डेढ दो वर्ष तक उनके भतीजे पं० गोविन्दराज दिनकर पदे ने चलाया। किन्तु उनके भी अकाल परलोक वासी होने पर वह वन्द हो गया, वैद्यों में जागृति उत्पन्न करने के अतिरिक्त आपने उनके हाथ में ग्रन्थ रत्न देते रहने की भी योजना की। इसलिए आर्यभिषक् के साथ-साथ वाग्भट, चरक, बृहत् निघण्टु, औषधिगुणदोष, निघण्टु-शिरोमणि वनौषधिगुणादर्श आदि कितनी ही प्रस्तकें संस्कृत मराठी में निकालीं। इन पुस्तकों के लिये आपने बड़ौदा नरेश श्रीमान सयाजीराव गायकवाड से कुछ सहायता ली। इससे पत्र-द्वारा आयुर्वेद के उद्धार का आन्दोलन भी चलता और पुस्तकों के द्वारा आयुर्वेद का स्थायी साहित्य भी निर्माण होकर प्रचलित होता रहता। जब महाराष्ट्र में आपने अच्छी विचार जागृति करली तब उसका क्षेत्र विस्तृत करने के लिये आपने

गुजराती आर्यभिषक्

भी निकाला और उसे कई वर्षों तक चलाया। किन्तु जब वैद्यराज जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी

ने गुजराती में "वैद्यकल्पतरु" निकाला तब आपने उन्हें ही उत्साहित करने और आयुर्वेदिक आन्दोलन में सहायक बनाने का क्रम रखा और अपना पत्र बन्द कर दिया। जिसके द्वारा आपके उद्देशों का पोषण और प्रचार होता था उसे आप कभी अपना प्रतिद्वन्दी नहीं, सहायक समझते और उसे उत्साहित कर कार्य विस्तार किया करते थे। गुजरात प्रान्त में ऐसी व्यवस्था कर हिन्दी संसार की ओर आपने दृष्टि दौड़ायी। और संवत् १९६० में हिन्दी में

सद्वैद्यकौस्तुभ

नामक वैद्यक पत्र निकाला। उस समय हिन्दी में कोई वैद्यक पत्र नहीं था। पण्डित जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य का "आरोग्य दर्पण" बन्द हो चुका था। इसलिये हिन्दी संसार में इसका अच्छा स्वागत हुआ। पत्र के साथ ही आपने पुस्तक प्रकाशन का भी काम आरम्भ करते थे। इस तरह गुजराती में तो आपकी पुस्तकों का इतना अधिक आदर हुआ कि हज़ारों के उसके कई संस्करण हो गये। अहमदाबाद का "सस्तुं साहित्य बर्धक कार्यालय" अबतक उन्हें प्रकाशित करता जा रहा है। हिन्दी में भी कुछ पुस्तकें आपने निकालीं। विद्वानों ने उनकी प्रशंसा की, किन्तु उन दिनों हिन्दी में ग्राहकों की बहुत कमी थी। इसलिये आपकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पुस्तकों के प्रकाशन का काम जारी न रखा जा सका। तथापि सुधानिधि कार्यालय ने उनकी पुस्तकों का अच्छा प्रचार किया। विचार-जागृति और उद्देश-प्रचार के लिये वैद्यक पत्रों का साधन था ही, साथ ही वैद्यों को प्रत्यक्ष कर्तव्य क्षेत्र में लाने का भी कार्य किया गया। पहले बम्बई में

वैद्यक सभा

स्थापित हुई। उसमें आप वैद्यों को एकत्र करते, उनके सामने आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति का करुणा-जनक चित्र खींच वैद्यों को आयुर्वेद की उन्नति के लिये प्रत्यक्ष कार्य करने के लिये आह्वान करते थे। स्वर्गीय वैद्यराज त्र्यम्बकलाल त्रिभुवनदास मुनि से जब इधर हमारी भेट होती थी तब उस समय के प्रयत्नों और परिस्थिति का बड़ा मनोरंजक वर्णन सुनाया करते थे, वैद्यक का व्यवसाय तो उस समय भी बहुत से वैद्य बड़ी सफलता और कीर्ति के साथ करते थे; किन्तु आयुर्वेद के लिए सार्वजनिक रूप से कोई काम करने का संगठित प्रयत्न उन्हें नहीं सूझता था। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि उस समय अधिकांश वैद्यों में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की कमी थी। किन्तु फिर भी दृढ़ निश्चय के साथ काम करने का फल तो होता ही है। आपकी सभा सफलता पूर्वक चलने लगी। आप बाहर भी जहां जाते वहाँ के वैद्यों को अपने उद्देश्य सुनाते और अपने विचारों में सम्मानित करने का प्रयत्न करते। उन्हें भी सभायें स्थापित करने को प्रोत्साहित करते। यह सब होने पर भी वर्तमान वैद्यों पर ही तो निर्भर नहीं किया जा सकता। भावी वैद्यों की पीढ़ी नये विचार की हो, आयुर्वैदिक शिक्षा-दीक्षा से पूरी हो, इसके लिये

आयुर्वेदिक-विद्यालय

खोलने की आवश्यकता प्रतीत हुई। बम्बई के वैद्यराज प्रभुरामजी के सहयोग से एक विद्यालय खोला गया। कई वैद्य उसमें अवैतनिक काम करने के लिये आगे आये। विद्यालय धूम-धाम से चला; किन्तु आगे चलकर प्रभुरामजी के सुपुत्र डाक्टर पोपटराम ने पाठ्यक्रम में पश्चिमी शिक्षा को भी सन्निवेशित करने की योजना की। इस पर वैद्यों में कुछ मतभेद हुआ।

आपने भी देखा कि विद्यालय तो चल ही रहा है अतएव उसकी व्यवस्था से आपने हाथ खींच लिया। इसी समय बम्बई के बदले नासिक को आपने अपना क्षेत्र बनाना सोचा। नासिक का जल-वायु बम्बई प्रान्त में अच्छा समझा जाता है और तीर्थ-स्थान होने के कारण वहाँ सभी प्रान्तों के लोगों का आवागमन भी रहता है। नासिक का कार्यालय खूब चल पड़ा। इसके बाद आपने नागपुर में भी एक शाखा कार्यालय और विद्यालय खोला। उसका सञ्चालन-भार अपने प्रधान शिष्य, वैद्य पंचानन पण्डित लक्ष्मणराव फणशीकर को सौंपा। आपकी प्रतिष्ठा और मान भारतव्यापी हो गया। शारदापीठ के शंकराचार्य महोदय ने आपको "आयुर्वेद महोपाध्याय" की उपाधि समर्पित कर सम्मानित किया। इतने समय में आपके कार्यों का प्रभाव महाराष्ट्रव्यापी हो गया। उसे भारतव्यापी बनाने के लिये और संगठित रूप से आयुर्वेद की उन्नति और प्रचार के लिये आपने संवत् १९६३ में आयुर्वेद-विद्यापीठ और संवत १९६४ में

वैद्यसम्मेलन

नामक संस्था की स्थापना की। इसके लिये भारतव्यापी आन्दोलन किया गया। नासिक में उसी समय ब्राह्मण सम्मेलन और सनातनधर्म परिषद के भी अधिवेशन हुए। जिससे भिन्न-भिन्न उद्देश्य और विचार के लोगों का वहाँ खास जमाव हो गया और उनके सामने आयुर्वेदिक चर्चा करने का अच्छा अवसर मिला। तीन-चार दिनों तक खूब चहल-पहल रही। शास्त्रीजी में यह खूबी थी कि वे सब तरह के विचार के लोगों से विचार-विमर्श कर किसी-न-किसी प्रकार अपना काम निकाल लिया करते थे। यद्यपि बालकपन से आपका स्वभाव बहुत क्रोधी और उग्र था तथापि सार्वजनिक कामों में आपके मनदमन की संयम-मर्यादा अद्भुत देखी गयी। अपने विरुद्ध चर्चा को भी आप चुपचाप पी जाते और काम निकाल लेने का ध्येय सामने रखते। आरम्भ में तो जिन वैद्यों से आप आयुर्वेद के उद्धार की चर्चा करते वे आपके कार्य-क्रम सुन इन्हें शेखचिल्ली समझते, कोई मौखिक सहानुभूति दिखा कर ही रह जाते। किन्तु इस समय तक उस परिस्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया था। वैद्य ही नहीं डाक्टरों को भी आपने अपने सहयोग में ले लिया था। इस सम्मिलन का डाक्टरों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हें आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ सोचने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। वैद्यसम्मेलन में चिकित्सा व्यवसायी मात्र पर प्रेम दृष्टि रखने के ध्येय का अच्छा ही फल दिखा रहा है। इस समय भी बहुत से डाक्टर सम्मेलन के साथ हैं, उसके काम करते हैं, उसकी परीक्षा देते हैं। अब शायद ही कोई विकृत मस्तिष्क हिन्दुस्थानी डाक्टर आयुर्वेद की अयथार्थ निन्दा करता हो, उसकी वैज्ञानिकता सिद्ध हो चुकी है। जो हो सम्मेलन के साथ ही विद्यार्थियों की परीक्षा लेने की भी व्यवस्था हुई। परीक्षा के लिये बड़ौदा नरेश श्री सयाजीराव के नाम पर

आयुर्वेदविद्यापीठ

की स्थापना की गयी। आगे चलकर यह संस्था एक आदर्श स्थापित कर सकी है। विद्यापीठ का पाठ्य-क्रम आपने कई बार बनाया। किन्तु इस समय जो पाठ्य-क्रम प्रचलित है उसमें भारत भर के विद्वान वैद्यों का मस्तिष्क प्रयुक्त हुआ है और वह देश भर में आदर्श पाठ्य-क्रम माना जाता है। आयुर्वेद-विद्यापीठ की परीक्षाएँ गौरवपूर्ण समझी जाती हैं। उस समय भी बहुत से योग्य और प्रभावशाली वैद्य थे; किन्तु उनकी योग्यता-प्रदर्शन का कोई साधन नहीं

था। आपने विद्यापीठ की ओर से उपाधि देने की व्यवस्था की। इससे भी वैद्यों का आकर्षण और ध्यान सम्मेलन की ओर खिंचा। यद्यपि नासिक-सम्मेलन के समय कोई परीक्षार्थी उत्तीर्ण नहीं हुआ था, तथापि विद्यापीठ की परीक्षा में सैकड़ों परीक्षार्थी बैठते हैं और अब तक उसके हजारों स्नातक हो चुके हैं। नासिक सम्मेलन के बाद दूसरा सम्मेलन बम्बई प्रान्त के पनवेल स्थान में हुआ। इसके बाद शास्त्रीजी ने सोचा कि सम्मेलन का देश-व्यापी प्रभाव बढ़ाने के लिये उत्तर भारत में इसका कार्यालय खोला जाय। इसके लिये आपने उत्तर भारत में भ्रमण कर अन्त में

प्रयागराज

को चुना। क्योंकि यह स्थान केन्द्र में है। आप संवत् १९६५ के अन्त में प्रयाग आ गये। उत्तर भारत के केन्द्र-कार्यालय का संचालन करने के लिये उन्होंने मुझे चुना और मुझे नागपुर से प्रयाग में बुला लिया। आप चाहते थे यहाँ से सम्मेलन का भारतव्यापी आन्दोलन किया जाय और काशी में तृतीय वैद्यसम्मेलन हो। कार्यालय स्थापन का मुहूर्त तो उनके सामने ही हो गया; किन्तु इससे अधिक ईश्वर को स्वीकार नहीं था। वे बीमार पड़े और संवत् १९६६ के चैत्र शुक्ल रामनौमी के दिन स्वर्गवासी हो गये। शंकर शास्त्री के कोई सन्तान नहीं थी। तीन भाइयों के बीच में एक पुत्र बालासाहब गोविन्दराज दिनकर थे। वे भी उनके डेढ़-दो वर्ष बाद स्वर्गवासी हो गये। शास्त्रीजी नहीं रहे, किन्तु जिस उद्देश्य के लिये वे अवतरित हुए थे उसका बीज उन्होंने बपन कर दिया था, उसमें दो शाखाएँ भी निकल चुकी थीं। सम्मेलन के आन्दोलन को उन्होंने अपने परिश्रम और पसीने से ही नहीं बल्कि खून से सींचा था। मुझे मालूम है कि चालीस हजार रुपये अपने और दिनकर के हिस्से में जो पिता से मिले थे उन्होंने आयुर्वेद के आन्दोलन में सब खर्च कर दिया। इसके सिवाय राजामहाराजाओं के यहाँ चिकित्सार्थ जाने में जो द्रव्य मिलता था और वैद्यक व्यवसाय से जो प्राप्ति होती थी, सब इसी में खर्च हो जाता था। उनकी ऐसी उग्रतपस्या व्यर्थ नहीं जा सकती। उन्होंने वैद्यों को आदर्श दिखला दिया, कार्य सौंप दिया। मैंने भी उनके सौंपे हुए कार्य को अपने दुर्बल कन्धों में लेकर प्रभावशाली वैद्यों के सहारे कर्तव्य क्षेत्र में कार्य का विस्तार कर दिया। तृतीय सम्मेलन प्रयाग में हुआ। फिर तो दिनोंदिन वैद्य सम्मेलन का पौधा कल्पवृक्ष के समान लहलहाता गया। आज वह योग्य हाथों में वैद्यों के आन्दोलन का केन्द्र है। समस्त भारत में उसके आन्दोलनों का प्रभाव है। आयुर्वेद के वे बुरे दिन अब नहीं रहे। अब उसकी वैज्ञानिकता की धाक जम चुकी है, उसके विरोधियों का मान-मर्दन हो चुका है। सरकार का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ है। देश में कितने ही आयुर्वेद विद्यालय चलने लगे हैं। धर्मार्थ औषधालयों के द्वारा लाखों करोड़ों भारतवासी लाभ उठा रहे हैं। वैद्यों की पूछ सर्वत्र हो रही है। उनका आदर बढ़ रहा है। वैद्य सम्मेलन की रौप्य जयंती हुई है। यद्यपि अभी आयुर्वेद के लिये बहुत कुछ करना है, किन्तु उसका भविष्य उज्वल और शुभ दिखाता है। आयुर्वेद के इतिहास में पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ अमर रहेगा।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

भारत के सुप्रसिद्ध और विद्वान वैद्य

The life sketch of

Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarkanath Sen

"Kaviraj Dwarka Nath Sen was a man of no ordinary capacity. A scholar and a philanthrophiate his fame as an Ayurvedic Physician was spread throughout the land."

Sir Lawrence Jenkins.

Family History.—Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarka Nath Sen Kaviratna was born of an ancient, respectable and Vaidya family of village 'Khandarpara' in the district of Faridpur (Bengal) in the year 1843. His ancestors were all renowned Ayurvedic physicians and eminent scholars. Among them may be mentioned the name of his great-great-grand-uncle Mahamahopadhyaya Abhiram Kavindra who was attached to the court of Raja Sitaram Roy of historic fame. One of his great grandfathers Ram Sankar Kaviraj better known as Sankara Kaviraj was the practitioner of Gopal Bhatta the wellknown compiler of Rasendra Sara Sangrah.

Early Life—Dwarka nath was the eighth and youngest child of his parents, and was known to be of simple and careless habits in his boyhood. But as he grew up, his natural aptitude for knowledge developed in a remarkable degree. He studied grammer, literature and philosphy in Vikrampur, the famous seat of Sanskrit learning in East Bengal. Laterly, he studied the Hindu Medical Science, philosophy, law and the Upanishads under the great scholar, Kaviraj Acharya Gangadhar of Murshidabad, who was well-known throughout the land for his erudition and learning. Dwarka Nath was a favourite pupil of that great savant and worthy successor to his profound scholarship and reputation, though perhaps he even surpasssd him in his professional success.

A successful Physician—In 1875, Dwarka Nath settled in Calcutta and set up his practice in Ayurvedic Medicine. Within a few years by his vast erudition, he made his mark as successful physician, not only in Bengal but in other parts of India also. He had a very large number of pupils from different parts of the country and he used to teach them various branches of Sanskrit learning, chiefly the ancient medical literature of the Hindus with unmitigated zeal. Owing to the great reputation that he enjoyed for his skilful treatment, he obtained frequent calls from very respectable quarters in different parts of India, and wherever he went his treatment produced satisfactory results. Amongst many others may be mentioned, the name of the late Maharaja of Hatwa, who summoned him for his own treatment in 1896. In 1901, when the Heir—Appaent to the throne of Mewar in Rajputana was suffering from some serious illness, His Highness the Maharana of Mewar applied to the Government of India for the best Ayurvedic Medical aid available in India. The choice of Government fell upon Kaviraj Dwarka Nath Sen who was sent to Udaipur, the capital city of Mewar. In consideration of his vast erudition and unique success in his profession, the Government for the first time recognised the Ayurvedic system and decorated him with the title of Mahamahopadhyaya in 1906. Dwarka Nath was the first Kaviraj to receive this distinction from the British Government.

A Great Man—Although he was always busy with his own profession yet he showed his patriotic zeal by regular attendance to the several sessions of the Indian National Congress both as a delegate and as a member of the Reception Committee. He was often found to take active part in political meetings, a thing quite unprecedented amongst the Sanskrit Pandits, especially of his age. His private charities were extensive and his left hand did not know what his right hand gave. He was a favourite with the Brahmin Pandits whom he gratified with his purse as well as with academical discussions. Dwarka Nath was calm in temperament, independent in spirits, affable in his behaviour, and patriotic to the core of his heart, of whom the whole country might be proud.

His death and Public appreciation—After a protracted illness of six months, the great Kaviraj breathed his last in Calcutta on the 11th February, 1909, leaving behind him his three sons, a large family and many friends and admirers to mourn his loss. His eldest son, Vaidyaratna Kaviraj Jogindranath Sen Vidyabhushan, M. A., who was a well-known physician in Calcutta, and who was the first recipient of the new title 'Vaidyaratna', maintained the reputaion of his great father. His second son Kaviraj Jogindranath was an Honarary Presidency Magistrate and a justice of the peace but still was of a highly independent spirit and took a prominent part in swadeshi movement.

His third and youngest son Kaviraj Sudhindra Nath is now the only surviving son of the great Mahamahopadhyaya. He is a swadeshi of swadeshis and has been to the Jail for swadeshi cause. He is connected with the All Indla Ayurveda Mahamandal and acted for some years as the Secretary of the Bengal Branch of the Mahamandal.

He attended several sittings of the Conference and took active parts in its deliberations. He has been taking a leading part against the passing of the Bengal Ayurvedic Faculty which is supported by the mejority of the Bengal Vaids to be suicidal. Some time after his death the friends and admirers of Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarka Natn Sen convened a public meeting under the presidency of Maharaja Bahadur Sir Prodyot Kumar Tagore to take steps to perpetuate his memory. It was decided to errect a statue of the Kaviraj in a public place in Calcutta; and a committee was formed with the late Rai Narendra Nath Sen Bahadur as president and public subscriptions were raised for the purpose. On the 29th June, 1912, Sir Lawrence Jenkins, K. C. I. E., the Chief Justice of Bengal unveiled the marble statue at Beadon Square, Calcutta, when Babu Bhupendra Nath Basu as President of the Dwarka Nath Memorial Committee opened the proceedings of the meetings and read the report of the memorial committee from which extracts are given below :—

"Kaviraj Dwarka Nath Sen was a distinguished Ayurvedic physician of this city. His great erudition was not only in the particular branch of knowledge which he made his special study but generally in ancient Hindu literature and philosphy.

His great skill in his profession, his large-hearted and unostentatious charity, his simple habits and the kindness of his disposition endeared him to his friends and made his presence always welcome at the bedside of the sick. The Ayurvedic system of medicine was one of the first to suffer from the onerous Western knowledge and western methods. A Kaviraj was only called in when other remedies had failed : but even with this great handicap a few gifted men among the Ayurvedic practitioners of this city by their knowledge and skill maintained the high standard of efficiency of this system of treatment and to-day the Ayurvedic practitioner enjoys the same position and commands the same respect as his allopathic colleagues trained under European methods. It will be invidious to mention a few names who may have laboured with conspicuous success but no exception can be taken if I refer to the services of Kaviraj Rama Nath Sen and Ganga Prasad Sen in Calcutta and of Gangadhar Sen in Berhampur in the cause they represented ; Kaviraj Gangadhar of Berhampur had a reputation for knowledge and learning which was unique in his day. A distinguished teacher he gave us a pupil who succeeded in a greater degree than his master did in establishing the claims of the Ayurvedic system ; for to Kaviraj Dwarka Nath who was one of Gangadhar's favourite pupils belongs the credit of being selected by the Government of India on the recommendation of the Principal of the Medical College, to undertake the treatment of the son and heir of the Rana of Udaipur and his merit was recognised by Government, which in conferring on him the title of "Mahamahopadhayaya" for the first time honoured an Indian Kaviraj. An equally distinguished Ayurvedic practitioner Kaviraj Bijoyratna Sen followed him in obtaining this great distinction. His absence we all mourn to day for, alas death has deprived his countrymen of his services long before his time.

My Lord, in venturing to approach you to unveil the statue of Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarka Nath Sen, we have asked you to associate your name with no mean citizen of this great city. He has left behind him, numerous pupils all over India many of whom hold distinguished positions in their profession : one of his pupils his son Jogindranath Sen has been one of the first recipients of the title of Vaidyaratna which Government has lately been pleased to create for distinguished Ayurvedic practitioners. The statue will be a silent but eloquent monument of what true worth and ability combined with devotion and singleness of purpose can achieve even under the most adverse circumstances and will be a stimulus to our people to a higher and more strenuous life."

Before unveiling the bust, Sir Lawrencc Jenkins said as follows:-

"Gentelmen, It is in response to a long standing invitation that I am here this evening to lend a helping hand in unveiling the bust of M. M. Kaviraj Dwarka Nath Sen. I am at this disadvantage that I have not the honour of his acquaintance but his name and reputation are known to all and as it is thought my presence may assist in some small measure in paying honour to the memory of one to whom honour is due, I am gladly present on this occassion. Kaviraj D. N. Sen was a man of no ordinary capacity. A scholar and a philanthropist his fame as an Ayurvedic physician was spread throughout the land. More than once were his services requisitioned to attend on Princes of India and his merit was justly appreciated by the Government who conferred on him the title he bore in recognisation of his skill and worth.

But this at least I may safely say that the Kaviraj of to-day is the inheritor of observations of centuries and the collected experience of ages, and it is difficult to suppose that in that heritage nothing of good is to be found ; rather would I believe that it embodied much that is of high utility and worthy of investigation of the modern scientist.

Though it may be going too far to say with an old world observer that a doctor is nothing but a sort of consolation (animi consolation) yet it must be within the personal experience of most of us that it is the patients confidence in his ability that is the physician's most potent ally in the fight with disease. In India with its hundreds of millions, if we exclude the few who have come under the spell of Western influence, it is to the Kaviraj, and the Hakim that the sick-men turn in their sufferings and their ailments for their mental consolation, and it is in the methods in their healing art and in their words of hope that the patients' confidence is placed.

It is a proud recompense of a life well-spent that it should be immortalised in the sculpture erected by admiring friends. This has been the reward of Kaviraj Dwarka Nath Sen's life-work and may his example and may this appreciation of his career stimulate others to a life of equal worth and merit."

His Lordship then unveiled the statue amids great rejoicings of those present. The "Bengalee" in its issue of June 29, 1912, remarked:–

"It is an unprecedented honour which his countrymen are going to do to the memory of the distinguished physician—for he is the first physician of any school to obtain this mark of popular esteem and richly did the late Kaviraj deserve this high recognition. The foremost Ayurvedic physician of his time, the late Mahamahopadhyaya was a man of vast erudition, and it is to him that we are chiefly indebted for the popularity of the Ayurvedic system at the present day, not only in Bengal, but in other provinces. There is hardly a district in Bengal where one or other of the pupils of the late Kaviraj is not in established practice, while numbers of his pupils are to-day to be found scattered all over the country. It was in the fitness of things that Kaviraj Dwarka Nath Sen should have been the first Ayurvedic practitioner to obtain Government recognition, and the Public recognition of which to-day's function is an unmistakable proof, was at once at the basis of that recognition and is a fitting sequel to it."

* * *

कविराज
ज्योतिषचन्द्र सेन, कलकत्ता ।

महामहोपाध्याय, कविराज,
विजयरत्न सेन, कलकत्ता ।

कविराज
हेमचन्द्र सेन, कलकत्ता ।

महामहोपाध्याय कविराज श्री विजयरत्न सेन

कविरञ्जन महोदय का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

कविराज विजयरत्नजी बङ्गदेश के सुप्रसिद्ध विक्रमपुर नामक स्थान में (20 Nov. 1858) बङ्गला सन् १२६९ के सात अग्रहन, रविवार को एक उच्च वैद्यकुल में जन्म लिए थे। इनके पिता कविराज श्री जगच्चन्द्र सेन भी एक सर्वगुण सम्पन्न भिषग् थे। समयानुकुल सन्तान नहीं होने के कारण विजयरत्न के पिता बहुत दुःखी रहा करते थे। दैवयोग से इसी अवसर पर एक तीर्थ-यात्री संन्यासी, उनके निवासस्थान पर आ उपस्थित हुए। संन्यासी जी उन लोगों की सेवा से परम संतुष्ट हुए और सन्तानाभाव से दुःखी देख श्री जगच्चन्द्र सेन जी महोदय को एक महौषध प्रदान कर भविष्यवाणी किये कि उन्हें तीन सन्तान होगी। फलतः उन्हें प्रथम एक पुत्र, द्वितीय एक कन्या और पुनः एक पुत्र हुए जो श्री विजयरत्नजी थे। विजयरत्न के जन्म-कुण्डली में ज्योतिषियों ने लिखा था कि यह बालक अपूर्व प्रतिभा सम्पन्न होगा और देशदेशान्तर में अपार कीर्ति फैलावेगा। ज्योतिपियों का कथन पूर्णतः सार्थक हुआ।

डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही श्री विजयरत्न पितृहीन हो गये। प्राचीन समय के वैद्यों में अर्थ-संचय की प्रवृत्ति उतनी अधिक नहीं थी। अतः विजयरत्न के पिता प्रचुर धन उपार्जन करने पर भी अर्थ संचय नहीं किये। दुर्भाग्यवश, इसी समय उनकी जन्मभूमि पद्मानदी के गर्भ में विलीन हो गई। अतएव सर्वथा निरुपाय होकर विजयरत्नजी अपनी माता के साथ अपने मामा के यहाँ कलकत्ता के प्रसिद्ध कविराज गङ्गाप्रसाद सेनजी की संरक्षता में चले गये।

१० ही वर्ष की अवस्था में, वे मिडिल-परीक्षा में बड़ी प्रशंसा के साथ उत्तीर्ण हुए थे। बचपन में ही पितृहीन हो जाने के कारण विजयरत्नजी को अनेक दुःख सहने पड़े थे और साहस पूर्वक संकष्टों को सहने के कारण ही उच्च होने की अभिलाषा जो उनके मन में थी और भी प्रबल होती गई। कलकत्ता आकर उन्होंने व्याकरण, साहित्य, अलङ्कार, न्याय, सांख्य, पातञ्जल प्रभृति का अध्ययन किये और प्रत्येक विषय में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिये। उस समय कलकत्ता में आयुर्वेदिक-चिकित्सा-क्षेत्र में कविराज गङ्गाप्रसाद सेन और आयुर्वेदशास्त्र में पाण्डित्य के लिए कविराज कालीप्रसन्न सेन बहुत ही प्रसिद्ध थे। विजयरत्नजी आयुर्वेद का अध्ययन और कर्माभ्यास के लिए दोनों के ही शिष्य हुए। यही कारण है कि विजयरत्न जी शास्त्रज्ञान और चिकित्सा-नैपुण्य दोनों में ही इतना उत्कर्ष लाभ किये थे।

विजयरत्नजी अत्यन्त प्रतिभाशाली होने के कारण कुछ ही दिनों में अध्ययन और कर्माभ्यास समाप्त कर चिकित्सा करने लगे और कम समय में ही अतुल यश एवं अर्थ प्राप्त किये। ५२ वर्ष की अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

इतने थोड़े समय में ही, उनकी चिकित्सा की ख्याति जगत् में विद्युत की भाँति

फैल गई थी। भारतवर्ष को केवल कौन कहे, यूरप तथा अमेरिका जैसे दूर महादेशों में भी उनकी चिकित्सा होने लगी थी। पाश्चात्य देशों में भी जिन रोगों का निदान नहीं होता है, उन रोगों को भी वे अपनी चिकित्सा से निर्मूल कर देते थे।

जिस समय आयुर्वेदिक-चिकित्सा पर लोगों की श्रद्धा घटती जा रही थी, उसी समय विजयरत्नजी ने अपनी नूतन-चिकित्सा-शैली से, आयुर्वेदिक-चिकित्सा प्रणाली को जनता के सम्मुख लाकर संसार को चकित कर दिया। उस समय से ही, भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के राजा, महाराजा, शिक्षित धनीमानी का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में विजयरत्नजी के साथ रहने लगा।

देशमान्य पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे उच्च श्रेणी के सम्भ्रान्त सज्जन भी श्री विजयरत्नजी के गृह में सानन्द आतिथ्य ग्रहण करते थे। काश्मीर तथा बड़ौदा जैसे देशी राज्यों के नरपतियों ने भी उनके प्रति अतीव श्रद्धा प्रगट की थी। एक बार काश्मीर दरबार से चिकित्सार्थ निमन्त्रित होकर विजयरत्नजी सात दिनों तक जम्बू राजभवन में ठहरे थे। उस समय काश्मीर नरेश ने विजयरत्नजी के प्रति जो सम्मान प्रगट किया था, वह बहुत ही दुर्लभ है। उस समय, उनके वास भवन पर जम्बू और काश्मीर से आये हुए असंख्य लोगों की भीड़ लगी रहती थी जो उनके दर्शनार्थ एवं उनसे चिकित्सा कराने आते थे। कलकत्ता से काश्मीर जाते समय तथा काश्मीर से कलकत्ता लौटते समय प्रायः प्रत्येक प्रधान स्टेशनों पर इसी तरह की भीड़ लग जाती थी। इसी प्रकार और भी कितने राजदरबारों में विजयरत्नजी चिकित्सार्थ आहूत होते और सम्मानित होते थे—जिसका सम्पूर्ण विवरण इस संक्षिप्त जीवनी में लिखना सर्वथा असम्भव है। उस समय, बाहर जाने के लिए उनकी दैनिक फीस एक सहस्र मुद्रा थी। भारत सरकार ने भी विजयरत्नजी को महामहोपाध्याय की उपाधि से अलङ्कृत कर अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया था।

विजयरत्नजी की लोकप्रियता की मात्रा भी उतनी ही प्रचुर थी। सामान्य दरिद्र गृहस्थ से लेकर उच्चकोटि के धनी और शिक्षित, सभी के साथ उनका पूर्ण प्रेम था।

वङ्गभाषा के प्रसिद्ध कवि नवीनचन्द्र सेन, कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ-जस्टिस चन्द्रमाधव घोष तथा सर आशुतोष मुकर्जी प्रभृति बङ्गाली महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय महापुरुषों के साथ भी उनका बन्धुत्व पूर्वक सर्वदा पत्र-व्यवहार होता था।

दरिद्र रोगी एवं दरिद्र विद्यार्थी के लिए तो उनका गृह सदा खुला ही रहता था। आयुर्वेदीय विषय के ही नहीं बल्कि और भी विषय के बहुतेरे विद्यार्थी उनके यहाँ भोजन और स्थान पाते थे। असमर्थ रोगी से वे कभी मुद्रा नहीं ग्रहण करते थे।

धनी और दरिद्र सभी की चिकित्सा वे एक दृष्टि से करते थे। इसी से उन्हें २४ घन्टों में ६ घन्टों का अवकाश कठिनता से मिलता था। इनके अकाल मृत्यु का यही प्रधान कारण हुआ।

चिकित्सा कार्य से अवकाश नहीं मिलने पर भी उन्होंने पहले-पहल संस्कृत टीका सहित समग्र अष्टांग हृदय को मुद्रण कर प्रकाशित किया था और उसका बङ्गलानुवाद भी पृथक् रूप से मुद्रित किया था। साथ ही आयुर्वेद की उन्नति के लिए एक सर्वाङ्ग सम्पन्न आयुर्वेदिक अस्पताल सहित उच्च श्रेणी का आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने के लिए वे प्रयत्न करना प्रारम्भ किये थे। उनके इस कार्य में कलकत्ता के आयुर्वेद-प्रेमी प्रसिद्ध डा० हेमचन्द्र सेन

एम० डी०, महामहोपाध्याय श्रीयुत् गणनाथ सेन सरस्वती एम० ए० महोदय एवं कविराज यामिनीभूषण राय एम० ए०, एम० बी०, कविरत्न महोदय प्रभृति समय-समय पर सहयोगी हुए थे। इस कल्पना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये ही एक आयुर्वेदिक सभा भी विजयरत्नजी स्थापित किये थे, किन्तु अकाल मृत्यु हो जाने से अस्पताल और महाविद्यालय स्थापित नहीं कर सके। उन्हीं के प्रियतम शिष्य कविराज यामिनीभूषण सेन ने इनके मृत्यु के पश्चात् उसको कार्यरूप में परिणत किया है।

१९११ ई० के २१ सितम्बर को, जब वे ५२ वर्ष के थे, चार पुत्रों और चार कन्याओं को छोड़ स्वर्गवासी हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र कविराज हेमचन्द्र सेन और कनिष्ठ पुत्र कविराज वङ्किमचन्द्र सेन भी अपने पिता के गुणों से अलङ्कृत हो सुप्रसिद्ध चिकित्सक हुये थे; परन्तु आयुर्वेद के दुर्भाग्य से दोनों अकाल ही काल कवलित हो गये। उनके द्वितीय पुत्र श्रीयुत् रमेशचन्द्र सेन और तृतीय पुत्र रायबहादुर श्रीयुत् योगेशचन्द्र सेन जे० पी०, एम० एल० सी० जीवित हैं। ये लोग भी आयुर्वेद की उन्नति के लिये पूरा प्रयत्न कर रहे हैं और कविराज हेमचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र कविराज श्रीयुत् ज्योतिषचन्द्र सेन, कविरत्न विजयरत्नजी की चिकित्सा पद्धति को आयत्त कर आयुर्वेद की सेवा करने के लिए चिकित्सा-कार्य कर रहे हैं। आशा है कि वे अपने महान् पितामह और पिताजी के पदाङ्क का अनुसरण कर देश की सच्ची सेवा करेंगे।

१९३५ ई० १५ मार्च शुक्रवार को कलकत्ता

यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेद कालेज के प्राङ्गण में महामान्य वर्तमानाधिपति श्रीयुत् महाराजाधिराज बहादुर सर विजयचन्द महत्ताप द्वारा विजयरत्नजी के स्मृति-रक्षार्थ संगमरमर की उनकी मूर्ति स्थापित की गई है। इसकी स्थापना के लिए जो कमिटी बनी थी, उसमें कलकत्ता के हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, बङ्गाली, मारवाड़ी, वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, कविराज, जज, मैजिस्ट्रेट, राजा-महाराजा और व्यापारी प्रभृति सभी श्रेणी के श्रेष्ठ व्यक्तिगण सम्मिलित थे।

A SHORT LIFE SKETCH OF Vaidyaratna Kaviraj Jogindranath Sen,

Vidyabhushan, M. A.

Birth and Parentage—Born in 1871, Kaviraj Jogindranath Sen was the eldest son of late Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarakanath Sen.

Education and Professional career—An M. A. of the Calcutta University and a distinguished Sanskrit scholar, he studied the Ayurveda under his illustrious father, and within a few years of his practice, came to be recognised as one of the foremost Ayurvedic physicians in India. His services were on many occasions requisitioned by the Ruling Chiefs of India and the Maharaja of Nepal.

Government Recognition—Recognition of his profound learning in Sanskrit came in the shape of the title of "Vidyabhushan" from the D. P. I., Bengal, and the Government of India also was pleased to confer upon him the title of "Vaidyaratna" as a mark of personal distinction in 1922. Incidentally, he was the first recipient of the honour.

Public Recognition—He was twice elected President of the All India Ayurvedic Conference held at Cawnpore (1912) and at Colombo (1924), and was elected Chairman of the Reception Committee of the Calcutta session of the same (1915). He was also elected President of the first Bengal Provincial Ayurvedic Conference held at Dacca (1917). He was the President of the Ayurveda Vidyapitha, an All-India Institution for conferring medical degrees, and the Dean of the Ashtanga Ayurveda Vidyalaya at the time of his death.

Scholarship, Literary work—Kaviraj Jogindranath was the author of an original commentary in Sanskrit on Charaka based on materials collected from different parts of India and London.

A Pioneer of Ayurvedic Renaissance—The production of this monumental work and his services towards the spread and popularisation of the Ayurvedic system of medicine entitle him to be regarded as one of the Pioneers of Ayurvedic Renaissance.

His Charity—Like his predecessors he maintained a *Tol* of his own at his own house at Pathuriaghata where a large number of students from all parts of India and beyond received free instruction, free board and free lodging; and a charitable dispensary where patients, not only from Ward No. V. but from all parts of the city, received medicines free of cost.

His Popularity—He was uncommonly popular in his ward as is shown by the resolution unanimously passed by various associations of the locality (e. g. Bengal Mahajan Sabha, Ratepayers' Association, Ward No. V.. &c.) requesting the Chief Executive Officer to name the new road after him. The municipal corporation has also accepted the recommendation and has named a new road after the name.

Death—He died on July 1, 1931. In him the country has lost an erudite scholar, an eminent physician, and a friend of the poor.

* * *

स्वर्गीय राजवैद्य पं० छन्नूलाल जी भिषग्रत्न का

संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त।

वंश-परिचय

फतेहपुर ज़िलान्तर्गत डिघरुआ ग्राम के सुप्रसिद्ध कान्यकुब्ज घराने के शुक्लों के प्रतिष्ठित कुल में हमारे प्रातः स्मरणीय चरित नायक का जन्म वैक्रम सम्वत् १९१८ की फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को हुआ। आपके पितामह पं० जिवराखन लाल जी शुक्ल, उस समय के, अपने प्रान्त के, सुप्रतिष्ठित विद्वानों में मूर्धन्य थे। यों तो बालक छन्नूलाल के बड़े और छोटे चार भाई और थे, किन्तु सुयोग्य और विद्वान् पितामह का अनुराग, भविष्य में स्वजाति और स्वदेश के गौरव बनने वाले बालक छन्नूलाल पर ही विशेष था।

शैशव, शिक्षा तथा विशिष्ट वैदुष्य-प्राप्ति

बाल्यावस्था में आपके मातामह ने ही आपको प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर तत्सामयिक परम्परानुसार 'सारस्वत-चन्द्रिका' आदि ग्रन्थों तक की शिक्षा दी। उसी समय सहसा वृद्ध-मातामह दिवंगत हो गये। उनके स्वर्गवास का, करुण-हृदय और भावुक बालक छन्नूलाल के नन्हें-से हृदय पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और वे बिना किसी को कुछ सूचित किये ही चुपचाप काशी चले आये। भारत वर्ष के सर्वोच्च विद्या-मन्दिर, काशी पुरी में, उस समय सिगरा पाठशाला की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपने वहीं पर व्याकरण-शास्त्र के जाज्वल्यमान सूर्य पण्डित यागेश्वर जी शास्त्री से शब्द-शास्त्र का अध्ययन करना आरम्भ किया। व्याकरण में व्युत्पन्न होने पर आप भारत-प्रसिद्ध विद्वान्, न्याय-केसरी, महामहोपाध्याय, पं० गंगाधर जी शास्त्री, सी० आई० ई० के निकट न्याय का अध्ययन करने के लिये उपस्थित हुए। आपने इन्हीं महानुभावों से वेदान्त, साहित्य और दर्शन आदि का भी सम्यक् अध्ययन किया। आपके उस समय के सहपाठियों में भी अनेक व्यक्ति आगे चलकर आपके समान ही प्रसिद्ध हुए। वर्तमान समय के भारत-प्रसिद्ध विद्या-बारिधि गोस्वामी दामोदर लाल जी षड् दर्शनाद्याचार्य भी आपके सहपाठियों में हैं। साहित्य आदि का सम्यक् अध्ययन करने तथा उन विषयों में पूर्ण पण्डित होने के अनन्तर, आपका मन मन्त्रशास्त्र के मनन की ओर प्रवृत्त हुआ और आप यत्र-तत्र भ्रमण करते तथा इस विषय की ज्ञातव्य बातों को सीखते-पढ़ते किसी प्रकार पंजाब जा पहुँचे।

आयुर्वेद की शिक्षा

मन्त्र-तन्त्र का अध्ययन करते हुए, श्रम तथा जलवायु परिवर्तन के कारण अस्वस्थ दशा में होते हुए भी, आप पंजाब के प्रख्यात विद्वान् पं० दिलाराम जी के पास पहुँचे। इतर प्रान्त वासी ऐसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को देख कर पं० दिलाराम जी के आश्चर्य का ठिकाना न

भिषग्रत्न, स्वर्गीय श्रीमान् पण्डित छन्नूलालजी राजवैद्य
संस्थापक—महाशक्ति औषधालय, काशी।

रहा । वे आप का परिचय जान कर तथा पाण्डित्य देख कर बड़े प्रसन्न हुए । होनहार अच्छा था, परमेश्वर को आपके हाथों आयुर्वेद संसार का गौरव बढ़ाना तथा आधि-व्याधि-ग्रस्त अपार जन-समुदाय को सुरक्षित बनाना था । पूज्य पं० दिलारामजी के आदेश से आपने उन्हीं के निकट आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करना आरम्भ किया और पाँच वर्षों तक अपार श्रम और मनोयोग के साथ आयुर्वेद-सागर का मन्थन करते रहे । पूर्व जन्म के संस्कारों के प्राबल्य से, जिसे अन्य छात्र अनेक वर्षों में जान-सीख सकते, समस्त वैद्यक विद्या का ज्ञान प्राप्त कर आप स्वयं आयुर्वेद महोदधि हो गये । गुरु ने ऐसे शिष्य की योग्यता पर गौरव का अनुभव करते हुए, उन्हें अपने पास ही रखना चाहा । किन्तु इनकी प्रवृत्ति तो श्री काशी-विशेश्वर के पवित्र चरण-कमलों की ओर थी । ये गुरु जी से उनका आशीर्वाद तथा उनके बहुमूल्य औषध तथा अनुभव प्राप्त कर, काशी लौटे । पूज्य पं० दिलारामजी ने औषधों के निर्माण में स्वकल्पित अनेक विशिष्ट क्रियाओं का आश्रय लिया था । पं० छन्नूलाल जी ने भी, आचार्य-चरणों का अनुराग करते हुए, काशी आकर अपनी चिकित्सा-पद्धति से समस्त नगर को विमुग्ध और आश्चर्य-चकित कर दिया ।

चिकित्सा-प्रणाली की विशेषताएँ

ऊपर लिखा जा चुका है कि आपने चिकित्सा-प्रणाली में अपनी अनेक अनन्यसामान्य क्रियाओं का समावेश किया था । अतएव वैद्यसमुदाय की चिकित्सा-पद्धति से आपकी चिकित्सा शैली नितान्त निराली थी । आप विचित्र ढंग से चिकित्सा करते थे और प्रधानतः रस-वैद्य या विष-चिकित्सक थे । सभी डाक्टरों और वैद्यों से उत्सृष्ट असाध्य रोगी को भी शर्तिया अच्छा करना आपका ही काम था । त्रिदोष में मूर्च्छा के समय रोगी को संयत बातचीत करने के लिये, औषध-बल से और जितने समय में लोग कहते थे, उतने ही समय में, तत्पर कर देना आपके लिये साधारण-सा कौतुक था । अनुपान-योजना तो आपकी सर्वथा स्वायत्त और स्वतन्त्र थी । जिन लोगों को उसका अनुभव है, वे ही उसकी मौलिकता समझ सकते हैं ।

प्रख्याति

आपके इन्हीं गुणों के कारण काशी ही क्या, सम्पूर्ण भारतवर्ष के कोने-कोने में आपकी प्रसिद्धि व्याप्त होने लग गई । स्वर्गीय राजा मुंशी माधवलाल, स्वर्गीय राजा सर मोतीचन्द, गोस्वामी भवानीपुरी, रायपरिवार-शाहपरिवार तथा अनेक प्रतिष्ठित घरानों ने आपको ससम्मान अपना गृह-चिकित्सक नियुक्त किया । जिसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन वैद्य-समुदाय भीतर से आप से बड़ा विद्वेष मानने लगा । प्लेग-चिकित्सा में वैद्यजी अद्वितीय थे । कलकत्ते के एक बड़े परिवार की स्त्री प्लेगाक्रान्त होने से काशी आयी । तत्कालीन काशीस्थ किसी भी चिकित्सक ने उसकी चिकित्सा करने का साहस नहीं किया, यहाँ तक कि सिविल-सर्जन तक ने उसे जवाब दे दिया । उस समय के कलेक्टर महोदय ने आपको बुलवाया और आपने सहर्ष चिकित्सा करने का भार उठाया और अपने अपार कौशल तथा परमात्मा की कृपा से उसे नीरोग कर दिया, जिसे देख कर लोग दंग रह गये ।

स्वर्गीय सर राजा मोतीचन्द जी के भाई स्वर्गीय मंगलाप्रसाद जी (जिनके नाम से हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रतिवर्ष साहित्य की सर्वोत्तम कृति पर दिया जाता है ।) के क्षयरोगाक्रान्त होने पर ४००) प्रतिदिन की फ़ीस पर आप

अलमोड़ा गये हुए थे और वहाँ अधिक समय तक रहे। श्रीमान् महाराजाधिराज दरभंगा ने अपनी चिकित्सा के लिए आपको दरभंगा बुलाया था। राजा कालीचरण (बरेली) की रानी साहिबा की चिकित्सा करने के लिए आप नैनीताल गये थे। वहाँ के तत्कालीन सिविलसर्जन साहब बहादुर से रानीसाहिबा की चिकित्सा के विषय में आपसे कुछ मतभेद हो गया और सिविलसर्जन साहब को आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के विषय में सन्देह हुआ। रानीसाहिबा यक्ष्मा से पीडित थीं और उसी अवस्था में उन्हें मुखपाक भी हो गया था। डाक्टर साहब लाख चेष्टा करके भी असफल रहे। अन्ततः राजासाहब ने काशी से हमारे चरितनायक को बुलाया। ये प्रातःकाल जिस समय उनके यहाँ पहुँचे। डाक्टर साहब रोगिणी की परीक्षा कर रहे थे। ये भी राजासाहब के साथ ही वहाँ पहुँचे। आपने रोगी की परीक्षा करके कहा—"शामतक रानीसाहिबा अच्छी तरह पथ्य ले सकती हैं।" डाक्टर साहब को आपकी बातें असंभव प्रतीत हुईं। इसी पर विवाद हो गया। पं० छन्नूलाल जी ने कहा—शाम के समय आप भी पधारिये, यदि उस समय रानीसाहिबा ने स्वेच्छा से पथ्य नहीं लिया तो यहीं से वैद्यक छोड़ कर काशी जाऊँगा। परमात्मा की कृपा और धन्वन्तरिजी के अनुग्रह से वही हुआ। तीसरे पहर तीन बजे से ही रानिसाहिबा ने 'भूख-भूख' चिल्लाना आरम्भ किया। और ठीक चार बजे डाक्टर के समक्ष ही, वैद्य जी ने उन्हें भरपेट साबूदाना और परवल के शाक का पथ्य दिया। डाक्टर घबड़ाये कि जो रोगी गले में ट्यूब लगाकर थोड़ा-सा जल देने में प्राणान्त कष्ट का अनुभव करता था, उसने किस चमत्कार से पथ्य लिया। परिणाम यह हुआ कि स्वयं सिविलसर्जन साहब वैद्य जी के भक्त हो गये और उन्होंने वैद्य जी से ही अपनी पत्नी की चिकित्सा करवायी।

ये सब आपके चमत्कारों में से दो एक साधारण उदाहरण हैं। यों तो आप चमत्कारों के पुंज थे और इन्हीं कारणों से लोग आपको धन्वन्तरि तुल्य समझते और अन्तःकरण से मानने लग गये थे।

औषध-निर्माण

चिकित्सा के साथ ही आपने औषध-निर्माण में भी बड़ा उद्योग किया। सहस्रपुटी अभ्रक, लौह आदि के निर्माण में आपने अपने जीवन का अधिकांश व्यय किया। आप स्वयं अपनी बनायी हुई दवाएँ ही व्यवहार में लाते थे। रस और भस्मादि का तो आपने इतनी प्रचुर-मात्रा में निर्माण किया है, जो कि कई पुश्त तक व्यवहार में आने पर भी नहीं चुक सकते। नाग-भस्म, वज्र-भस्म, मण्डूर-भस्म, हिरण्यगर्भ पोट्टली रस आदि अनेक औषधों को आपने अपने अनुभव से आयुर्वेदोक्त रीति से पृथक् ढंग पर निर्माण किया है, जिनके गुण विशेष चमत्कारपूर्ण हैं।

आविष्कार

जिस प्लेग-चिकित्सा के कारण आप अपार सम्पत्ति और यश के भागी बने। उसमें भी आपकी प्रखरबुद्धि ही सहायिका थी। आपने प्लेग के विनाशार्थ 'प्लेग नाशक लेप' का आविष्कार किया, जो अब तक सहस्रों पीड़ित प्राणियों को बचा सका है और जो अत्यन्त गुणकारी होने से बड़ा ही लोकप्रिय है। आयुर्वेदोक्त 'अर्धनारीश्वर नस्य' के नाम पर ही स्वनिर्मित 'अर्धनारीश्वर नस्य' का भी आपने आविष्कार किया। इसमें पाठ और रीति भिन्न

हैं । बिषमज्वर तथा सन्निपात के लिये भी आपने कई नवीन औषधों का आविष्कार किया । राजयक्ष्मा और वातव्याधि पर भी आपने एक-एक औषध का आविष्कार किया है । ये दोनों औषध क्रमशः 'महाराज मृगांक' और 'वृहत् वातनाशन' के नाम से चिर-प्रसिद्ध हैं ।

क्रोड़पत्र

यद्यपि आपने स्वतन्त्ररूप से किसी ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया, तथापि चरक, सुश्रुतादि सभी वृहत् आयुर्वेद ग्रन्थों के विवाद-ग्रस्त स्थलों का आपने संशोधन किया है तथा उनपर संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी लिखी हैं । अपने अनुभवों का संग्रह भी आपने पुस्तकाकार करना चाहा था, जिसमें आपकी अनुपान-योजना आदि का विवेचन है । प्रतिदिन हजारों ही रोगियों का स्वास्थ्य-संरक्षण करनेवाला व्यक्ति, ग्रन्थ-निर्माण न कर सका हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

मर्यादा

हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर, पूज्य मालवीयजी तथा सुप्रसिद्ध देशभक्त बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने आप से, आयुर्वेदिक कालेज के प्रधानाध्यक्ष पद को अलंकृत करने के लिये अनुरोध किया, किन्तु आपने अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियता तथा रोगी-समुदाय की सेवा-भावना के कारण स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया । अन्य सार्वजनिक संस्थाओं ने भी आप को अपना प्रधान बनाना चाहा था, पर आपने सबको यही स्पष्ट उत्तर दिया—चिकित्सक को अपने चिकित्सा-कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य कभी न करना चाहिये, यही मेरा सिद्धान्त है ।

स्वभाव और लिपि

यद्यपि आपकी प्रकृति बड़ी ही उग्र थी और धनिकों से आपको चिढ़-सी थी, तथापि निर्धनों और असहायों पर आप बड़ी दया रखते थे । आप कट्टर आस्तिक और भगवद्भक्त थे । ब्राह्मणों के तो आप बड़े ही नम्र सेवक थे । अनेक वर्षों तक आपने प्रातः काल प्रतिदिन एक ब्राह्मण को भोजन कराकर और उसका चरणामृत लेकर तब स्वयं जलपान करने के कठोर व्रत का निर्वाण किया था । आप नम्रों के लिये नम्र, और अभिमानियों के लिये अभिमानी थे । आप कभी थकते न थे । आपने अपार परिश्रम करके लाखों आदमियों की स्वास्थ्य-रक्षा अवश्य की और आयुर्वेद के प्रकाश का विस्तार अवश्य किया; पर स्वयं धीरे-धीरे अपना स्वास्थ्य खो बैठे ।

अन्तिम अवस्था

आपके पुत्र-पुत्रियाँ तो अनेक हुई, किन्तु एक कन्या को छोड़ सभी अल्पायु में ही काल-कवलित हो गये । अन्त में आपने अपने एक मात्र दौहित्र पण्डित हनूमानप्रसाद को अपनी पद्धति से सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा देकर, उन्हें भी एक अच्छा विद्वान् बनाया और सं० १९८३ वैक्रम के कार्तिक मास में धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन सायंकाल लाखों की अमूल्य औषध और लाखों की सम्पति छोड़कर धन्वन्तरि भगवान् में लीन हो गये ।

उत्तराधिकारी

स्वर्गीय वैद्य-सम्राट पं० छन्नूलाल जी आयुर्वेद-सागर के अद्वितीय रत्न थे । उनके ही तत्वावधान में शिक्षा-दीक्षा पाकर उनके सुयोग्य दौहित्र पं० हनूमानप्रसाद वैद्यशास्त्री महोदय भी आयुर्वेदशास्त्र का वैसा ही ज्ञान प्राप्त कर सके हैं । प्रायः देखा जाता है कि विद्वानों के

उत्तराधिकारी महामूर्ख और लम्पट होकर अपने पूर्वजों की कीर्ति पर पानी फेरते हैं। भाग्य से ही योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त होते हैं। हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि पं० हनूमानप्रसाद जी इस समय अपने मातामह की गद्दी के महत्व का बड़ी योग्यता से निर्वाह करते जा रहे हैं। आप संस्कृत साहित्य और आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता तो हैं ही, हिन्दी भाषापर भी आपका बड़ा अच्छा अधिकार है और आपने हिन्दी संसार में बड़ी व्यापक प्रसिद्धि पायी है। आप वैद्य होने के साथ ही एक कलाकार हैं। आपने हिन्दी में मौलिक कहानियाँ लिखकर उसे उन्नत किया है। आयुर्वेद के प्रचार और संक्षरण तथा हिन्दी-भाषा में उसके ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये ही, आपने महाशक्ति साहित्य मन्दिर की स्थापना कर रक्खी है। यह साहित्य-मन्दिर विगत ८ वर्षों से हिन्दी सरस्वती की सुन्दर उपासना कर रहा है। वैद्य-रत्न पं० हनूमानप्रसाद जी ने उक्तमन्दिर द्वारा काम-कुञ्ज, आहार-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, आरोग्य-मन्दिर, सुखी-गृहिणी आदि स्थायी पुस्तकें निकालकर जनता का जो बड़ा उपकार किया है, उसके लिये सम्पूर्ण भारतवर्ष के पत्रों, विद्वानों और प्रसिद्ध व्यक्तियों ने आपकी मुक्त कण्ठ से सराहना की है। आप अखिलभारतीय आयुर्वेद महामण्डल के संयुक्त मंत्री चुने गये हैं। अनेक रियासतों के नृपतिगण ने आपको बुलाकर और आप से चिकित्सा करा कर लाभ उठाते हुए आपको तथा आपके महाशक्ति-औषधालय (बुलानाला) के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। आपके सहकारी तथा आपके सुहृद् मित्र एवं भ्राता तुल्य वैद्यवर पं० नागेश्वर-प्रसाद मिश्र 'भारती' भी आपके ही समान योग्य और कार्य पटु हैं। एक बार बाहर से आये हुए एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने अपने परिवार के प्राणी की चिकित्सा के लिए काशी के प्रायः समस्त डाक्टरों-वैद्यों से परामर्श किया। और सबसे निराशात्मक ही उत्तर पाया। परन्तु आप दोनों वैद्यों ने अपने कौशल से उसे शीघ्र नीरोग और स्वस्थ किया। जिसके लिये, उसने काशी में विद्वानों की सभा करके आप दोनों को अभिनन्दन पत्र अर्पित किया।

इन पक्तियों के लेखक को उक्त दोनों वैद्य-भूषणों के कार्य का निरीक्षण करने तथा उनके व्यक्तित्व का, निकट अध्ययन करने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है, और उसका यह निश्चित मत है कि ये दोनों ही व्यक्ति अपनी योग्यता, कुशलता, सज्जनता और निरभिमानिता आदि के कारण स्वदेश, समाज और स्वजाति का गौरव बढ़ाने के साथ ही प्राचीन वैद्यकशास्त्र का महत्व, अपने मातामह के ही समान, विश्व के चिकित्सा-क्षेत्र में पुनः स्थापित करके, भारत के करोड़ों प्राणियों के आशीर्वाद भाजन होंगे। इतिशुभम्।

कान्तानाथ पाण्डेय, एम. ए., काव्यतीर्थ

सप्तसागर,
बनारस सिटी

प्रधान आचार्य—हरिमंगल हिन्दी महाविद्यालय
तथा—प्रधान मंत्री—काशी साहित्यमण्डल।

आयुर्वेदमार्तंड, स्वर्गीय श्रीमान् पं० अर्जुनजी मिश्र

संस्थापक—आयुर्वेद विद्याप्रबोधिनी पाठशाला, काशी।

स्वर्गीय श्री पं० अर्जुनमिश्र जी आयुर्वेदमार्त्तण्ड का

संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त।

पञ्जाब प्रान्तीय जिला होशियारपुर में बड़ी बसी नामक एक कसबा है। उसमें सारस्वत ब्राह्मणों का एक प्रतिष्ठित कुल है। हमारे चरित्र नायक के पूज्य पिता स्व० श्री पं० भानुदत्तजी इसी कुल-कमल के भानु थे। वे बड़े ही चरित्रवान्, सुशील एवं कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। उनकी दिनचर्य्या का अधिक भाग पूजा-पाठ में ही व्यतीत होता था। तदनुरूप ही वे निस्पृहता के भी मूर्तिमान् अवतार थे। युवा अवस्था में ही वे सपत्नीक काशी चले आये। यहाँ वे अपने स्वभावानुकूल शिवपूजन में ही तल्लीन रहा करते थे। ऐसे कर्मनिष्ठ तपस्वी ब्राह्मण के पवित्र गृह में "क्षीरनिधौ शशांकवत्" हमारे चरित्र नायक का जन्म सं० १९१० की वैशाख शुक्ल ५ को हुआ था।

"होनहार विरवान के होत चीकने पात" के अनुसार आप जन्म से ही हृष्ट-पुष्ट एवं तीव्र बुद्धि थे। यथा समय उपनयन संस्कार के बाद विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया गया। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० बालशास्त्री से भाष्यान्त व्याकरण पढ़ा। इसी समय वे दर्शन-शास्त्र के भी पारंगत हो गये 'किं बहुना' वे अल्पायु में ही अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों में गिने जाने लगे थे। उन दिनों की प्रथा के अनुसार वे शास्त्रार्थ संग्राम के एक उद्भट योद्धा थे। यहाँ तक कि उस समय के प्रसिद्ध कथावाचक श्री पं० रमानाथजी व्यास जैसे प्रकाण्ड विद्वान् भी मुग्ध हो कह उठते थे कि "अर्जुनोहि अर्जुनः स्वयं"।

उन्होंने आयुर्वेद का अध्ययन पञ्जाब प्रान्तीय संगरूर रियासत के राजवैद्य धन्वन्तरि कल्प पं० दिलारामजी से किया था। अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रताप से उसका प्रगाढ़ ज्ञान प्राप्त कर काशी पुरी में चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में उन्होंने इतनी ख्याति प्राप्त की कि वे काशी के वैद्यों में एक प्रतिष्ठित वैद्य माने जाने लगे तथा काशी के भद्र घरानों में उत्कृष्ट सम्मान प्राप्त कर लिया। इसी समय वे मुं० महादेवप्रसाद जी एडवोकेट और रायकृष्णजी आदि प्रसिद्ध रईसों के गृह-चिकित्सक हो गये थे। स्वर्गीय काशी नरेश श्री प्रभुनारायणसिंह जी उनका बहुत सम्मान करते थे। स्थानीय हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रथम प्रबन्ध कारिणी सभा ने आपको अपना सभासद बनाया था। भारतधर्म महामण्डल ने सं० १८७२ में 'आयुर्वेद सिन्धु' की उपाधि से सम्मानित किया था।

उनकी चिकित्सा प्रणाली बड़ी ही विलक्षण थी। एक बार एक मनुष्य को रोटी खाते समय ही हनुस्तम्भ (मुँह खुला) हो गया था। आप भी वहीं भोजन कर रहे थे और चूल्हे की जलती लकड़ी उठा कर उसके मुँह में घुसेड़ने चले। यह देख उस विचारे का मुँह मारे घबड़ाहट के खट से बन्द हो गया और पूर्ववत् कार्य करने लगा। इस प्रकार की अनेक बातें उनके सम्बन्ध में अभी तक प्रसिद्ध हैं।

गायन वादन कला

संगीत कला पर उनका इतना स्वत्व था कि आज भी इस विद्या के पुराने मर्मज्ञ उनकी प्रशंसा करते हैं। कहा जाता है कि जिन वाद्यों के वे अच्छे पण्डित थे उनको बजाने वाले भारत में आज दोही चार आदमी हैं। उत्साही ऐसे थे कि एक बार काशी नरेश के यहाँ संगीतोत्सव था उसमें तबला के एक बहुत बड़े मर्मज्ञ तबला बजा रहे थे और चतुर गायक महाशय भूलभुलैया में पड़ गये थे। उसी समय आप प्रतिष्ठित श्रोताओं की श्रेणी में से उठ कर अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न कर तबला बजाने लगे। तथा इस कार्य को बड़ी सफलता पूर्वक सम्पादन भी किया। यह देख उपस्थित जन-मण्डली चकित रह गयी। इस घटना की चर्चा आज भी जानकारों में हुआ करती है। अभी हाल ही में "अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन" के छठे अधिवेशन में काशी आये हुए पुराने संगीत प्रेमियों ने उन्हें याद किया था जिनमें अलवर नरेश के वर्त्तमान संगीताध्यक्ष महोदय भी थे।

पुस्तक लेखन

उन्होंने एक वृहद् निघण्टु की रचना की थी, जो उनकी मृत्यु के बाद धनाभाव के कारण प्रकाशित न हो सकी। आशा है अखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन इसपर पूर्ण रूपेण ध्यान देगा।

पाठशाला स्थापन

यों तो वे बहुत पहले ही से अपने यहाँ छात्रों को पढ़ाया करते थे, तथापि सन् १९१७ में "श्री आयुर्वेद विद्या प्रबोधिनी पाठशाला" की स्थापना कर गवर्नमेन्ट से रजिस्टर्ड करवा लिये। पाठशाला को सुचारु रूप से चलाने के लिये काशी के गण्यमान रईस, विद्वान तथा वैद्यों की एक शासन-कारिणी-सभा बनाये और स्वयं आजीवन अवैतनिक प्रधानाध्यापक का कार्य करते रहे। यह पाठशाला भी पुरातन प्रणाली के अनुसार आयुर्वेद का अध्ययन कराने वाली अपने ढंग की एक ही है। इसके लिये उन्होंने अपने मकान का बहुत बड़ा भाग प्रदान किया। जिसमें पाठशाला स्थापित हुयी। इस पाठशाला के साथ ही एक धर्मार्थ औषधालय भी स्थापित हुआ। जिसमें वे स्वयं अपना बहुमूल्य समय देकर रोगियों का निरीक्षण करते थे। अपने जीवन काल में उक्त दोनों ही कार्यों को बड़े उत्साह एवं संलग्नता के साथ वे करते रहे। मैंने स्वयं देखा है कि वे इसके लिये अपने अत्यावश्यकीय बड़े से बड़े कार्य को भी छोड़ देते थे। लेकिन पाठशालीय कार्यों में कदापि किसी प्रकार की भी त्रुटि नहीं होने देते थे। वे बड़े तेजस्वी एवं उग्र स्वभाव के थे, तथापि इससे व्यवहार में कोई त्रुटि नहीं होती थी।

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य उनका इतना अच्छा था कि वृद्धावस्था में भी उनके शरीर में किसी प्रकार का ढीलापन नहीं आया था। व्यायाम के बड़े अच्छे अभ्यासी थे। प्रत्येक आगन्तुक से उनके यही दो प्रश्न होते थे। "व्यायाम करते हो ?" कुछ गाना गाते हो ?" नहीं करने पर उत्साह दिलाया करते थे। "शतरञ्ज आदि के भी नामी खिलाड़ी थे। किमधिकम् वे "हरफन मौला" थे।

सन्तति

उनके दो सन्तति हुयी थी, एक पुत्र और एक पुत्री, दोनों का विवाह भी हो गया था; किन्तु शोक है कि वे दोनों अल्पायु में ही श्री पितृ चरणों को शोकसागर में मग्न कर स्वर्गवासी हो गये। पुत्री को एक बालक उत्पन्न हुआ था सो भी काल कवलित हो गया, अब केवल उनकी विधवा पुत्रबधू जीवित हैं, जिनके निर्वाह के लिये वे वृत्ति निश्चित कर गये हैं, उसी से वे ईश्वराराधन में तल्लीन हो कालयापन कर रही हैं। डा० एनी वेसेन्ट के समय में डा० भगवान दास जी के आग्रह से पुत्रशोक से दुखी होकर रणवीर संस्कृत पाठशाला (सेन्ट्रल हिन्दू-कालेज) में मनोरञ्जन के लिये कुछ दिनों तक आयुर्वेद के प्रधानाध्यापक-पद को सुशोभित किया था। हिन्दू विश्वविद्यालय में उक्त कार्य के लिये पूज्यमालवीय जी ने बहुत कहा; किन्तु अपनी पाठशाला के हित का ख्याल कर स्वीकार नहीं किया।

अन्तिम समय

सन् १९२२ ई० (सम्बत् १९७९ वि०) के अक्टूबर मास में वे कुछ ज्वर पीड़ित हुए। उसी समय उन्हें आभास हुआ कि अब हम नहीं रहेंगे, और श्री पं० त्र्यम्बकशास्त्री जी महोदय से उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि अब जीवन स्थिति असम्भव है। इसी अवस्था में उन्होंने मुन्शी महादेवप्रसाद जी एडवोकेट आदि महानुभावों के साथ सम्मति कर अपना सर्वस्व अपनी उक्त पाठशाला के लिये अर्पण कर दिया। जिसमें मूलधन एक गांव, अपना विशाल भवन, बृहत्पुस्तकालय, औषधि-भण्डार, औषधिनिर्माण का सब सामान है। तथा पाठशालीय विद्यार्थियों के लिये वृत्ति स्वरूप कुछ धन भी निश्चित कर गये हैं; जिसके सूद से प्रतिवर्ष ३००) तीन सौ रुपये की वृत्ति दी जाती है। तत्पश्चात् आतुर सन्यास लेकर कार्तिक कृष्ण सप्तमी सम्वत् १९७९ में इस नश्वर संसार को त्याग उस ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म में लीन हो गये। उनकी स्मारक-मूल यह पाठशाला तथा औषधालय उनके आशीर्वाद से भली-भाँति चल रहे हैं।

शिष्य वर्ग

यों तो उनके शिष्य भारत भर में विद्यमान हैं सबका नामोल्लेख करना असम्भव है तो भी कुछेक का नाम लिखा जाता है; जिनसे उनकी उज्वल कीर्ति-पताका आज भी दृष्टि-गोचर हो रही है—सर्व श्री पं० विष्णुदत्तजी राजवैद्य—अध्यक्ष आरोग्य-जीवन औषधालय काशी। पं० पुरुषोत्तम जी—प्रोफेसर आयुर्वेद विभाग काशी विश्वविद्यालय। पं० बालगोविन्द जी—प्रधानाध्यापक आयुर्वेद विभाग गोइनका विद्यालय, काशी। पं० अमरनाथ जी—बनस्पति औषधालय, देहरादून। पं० नानकचन्द्र जी आयुर्वेदाचार्य, लाहौर। स्वर्गीय पं० राधाकृष्ण जी संस्थापक रसशाला, काशी। स्वर्गीय पं० रामलाल शर्मा—अध्यापक हिं० का० काशी। स्वर्गीय पं० श्यामसुन्दर गुप्त आ० आ० रसायन सार आदि ग्रन्थों के रचयिता।

उन्हीं का एक शिष्य—

लालचन्द्र वैद्य, प्रधानाध्यापक

आ० वि० प्र० पाठशाला।

सिद्धेश्वरी, काशी।
ता० २६-९-३५ ई०

कविराज श्री हरिदास राय चौधरी भिषगाचार्य का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

वंग देश में धनिकों का स्थान राजशाही है। उस राजशाही के अन्तर्गत विजोड़ा ग्राम में रहने वाले विख्यात राय चौधुरी वंश में पं० हरिदास जी का जन्म हुआ था। इस राय चौधरी वंश के सभी जमीन्दारों का आयुर्वेद चिकित्सा में प्रेम था। पं० अयोध्या राम राय चौधुरी जी दीन एवं असहायों की चिकित्सा बड़ी सहानुभूति तथा प्रेम से किया करते थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र पं० ताराचन्द राय चौधुरी उर्फ ताराचंद कविराज जी ने आयुर्वेदीय चिकित्सक समाज में विशेष यश प्राप्त किया था। पं० ताराचंद कविराज जी उन्माद रोग ग्रस्त रोगियों के इलाज में अद्वितीय थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र कविराज जगच्चन्द्र जी ने भी चिकित्सा में सुयश अर्जन किया था। पं० जगच्चन्द्र जी में भी एक बड़ी विशेषता यह थी कि रोगी के इच्छानुकूल कुपथ्य देते हुये भी उसे औषधी से निरोग कर देते थे। उनके दो पुत्र थे पं० शम्भूचन्द्र जी और पं० हरिदास जी। पं० शम्भूचन्द्र जी ने अपने युवावस्था ही में देहावसान किया। पं० हरिदास जी ने १२८६ वंगाब्द में जगत् के सुप्रसिद्ध संस्कृत के केन्द्र तथा बड़े बड़े ऋषियों के जन्म-स्थान काशी नगरी के सुप्रसिद्ध गनेश महाल के एक गृह में जन्म ग्रहण किया था। पं० हरिदास जी एकादश वर्ष के वयस में मातृ-पितृ-हीन हो गये। चतुर्दश वर्ष के वयस में उनके ज्येष्ठ भ्राता इन्हें छोड़कर चल बसे। बन्धुहीन हरिदास जी के जातीय भ्राता कैलाश चन्द्र राय चौधुरी देखभाल करने लगे। कविराज जी ने प्रथमतः सरकार महाशय के पाठशाला में तथा बंगाली टोला हाई स्कूल में प्राचीन तृतीय श्रेणी अर्थात् अष्टम श्रेणी तक अध्ययन किया था। वहाँ से छोड़कर महाराज जयनारायण घोशाल जी के कालेज से १८९९ खीष्टाब्द में प्रवेशिका अर्थात् इन्ट्रेंस की परीक्षा दी थी। इसके बाद कुछ काल तक प्रिंसिपल डेविस साहेब के पास अंग्रेजी तथा इतिहास अध्ययन करते रहे। अपने वाल्यबन्धु महामहोपाध्याय वामाचरण न्यायाचार्य जी के अनुरोध से इन्होंने गदाधर शिरोमणि महाशय के चतुष्पाठी में मुग्ध बोधव्याकरण और कुछ साहित्य ग्रन्थों का अध्ययन किया। अनन्तर आपने महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र जी शिरोमणि के विद्यालय में सांख्य और कुछ नव्व न्याय का अध्ययन किया। पं० हरिदास जी के स्कूल सहपाठी बाबू भोलानाथ वन्दोपाध्याय जी बांकीपुर पटना में सरकारी नौकरी करते थे। बाबू भोलानाथ वन्दोपाध्याय जी के अनुरोध से पं० हरिदास जी ने पटना मेडिकल स्कूल में अध्ययन करना शुरू कर दिया। डाक्टरी अध्ययन के तृतीय वर्ष में उनके द्वितीय पुत्र वर्तमान कविराज हाराणचन्द्र राय चौधुरी आयुर्वेदाचार्य जी को यकृत् रोग हुआ था। आप काशी के बड़े-बड़े डाक्टरों से चिकित्सा कराकर विफल मनोरथ होकर पुत्र के मृत्यु समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय नाव्याधिपति के राजवैद्य गंगाधर जी के प्रिय शिष्य ईश्वरचन्द्र जी कविराज महाशय उस मकान के सामने से रोगी देखने के लिए

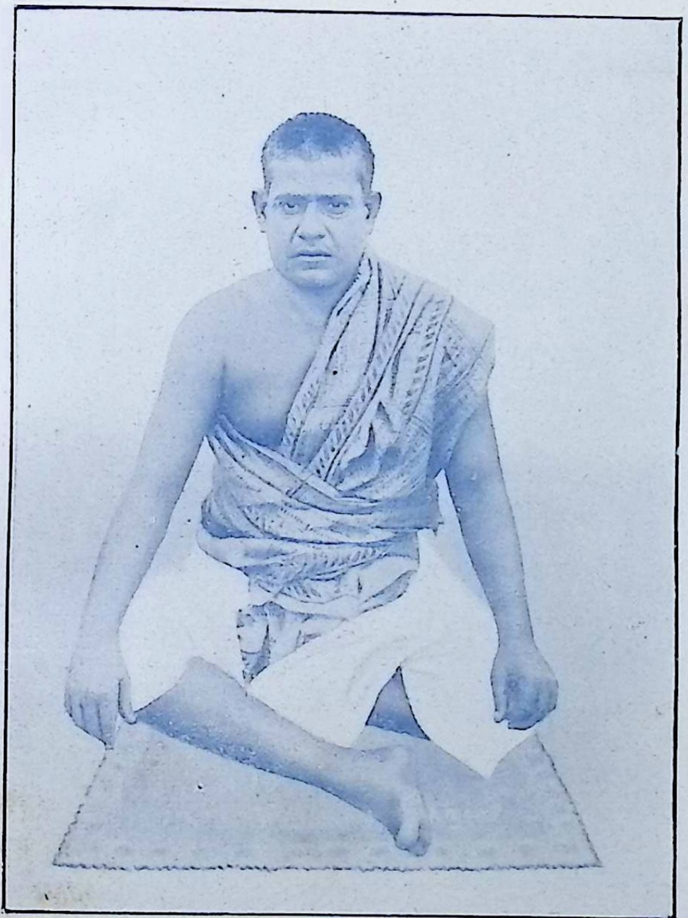

स्वर्गीय श्रीमान् कविराज हरिदास जी
राय चौधरी, भिषगाचार्य, काशी ।

जा रहे थे। पं० हरिदास जी ने बड़े अनुरोध से उनको हाराणचन्द्र जी को दिखाया। कविराज शिरोमणि ईश्वरचन्द्र जी की चिकित्सा से उनके पुत्र हाराणचन्द्र जी शीघ्र ही निरोग हो गये। यह देखते ही उनको आयुर्वेद पढ़ने का प्रेम हुआ। अतः पं० हरिदास जी डाक्टरी अध्ययन छोड़ उनके पास आयुर्वेद का अध्ययन करने लगे। थोड़े दिनों के भीतर ईश्वरचन्द्र जी के विद्वान छात्रों में पं० हरिदास जी ही अपने गुरु के सबसे प्रिय छात्र हो गये। ईश्वरचन्द्र जी ने काशी प्राप्ति के समय अपने यावतीय रोगियों को पं० हरिदास जी से चिकित्सा कराने के लिये अनुरोध किया; और हरिदास जी को 'भिषगाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया। व्यवसाय क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अति अल्प समय में ही इन्होंने काशी में चिकित्सा में प्रचुर ख्याति अर्जन की। प्रतिदिन प्रातःकाल करीब २०० गरीब रोगियों को मुफ्त औषधि देते थे। विशेषता इसमें यह थी कि स्वर्णादि घटित बहुमूल्य औषधियाँ रोगियों को देने में भी कुण्ठित नहीं होते थे। आप दीन पालक ऐसे थे कि एक दिन प्रातःकाल एक स्वाधीन नरपति के यहाँ से बुलावा आया था। परन्तु उन्होंने उसके उत्तर में कहा कि दोनों के माँ-बाप हम हैं दीनों को औषधि प्रदान करके तभी जायँगे। उस समय काशी में जन साधारण की यह धारणा थी कि सन्निपात तथा विशूचिका (हैजा) ऐसी व्याधियाँ आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा अच्छी नहीं हो सकतीं किन्तु कविराज जी ने इस धारणा को नष्ट कर सन्निपात तथा विशूचिका की चिकित्सा में सुयश अर्जन किया था। अध्यापना शक्ति भी उनकी इतनी अच्छी थी कि न्याय सांख्य आदि के अच्छे विद्वान छात्र आयुर्वेद अध्ययन कर आनन्द अनुभव करते थे। उनके आयुर्वेद के बहुत से शिष्य वंगदेश, संयुक्तप्रदेश एवं पंजाब में यश प्राप्त कर रहे हैं। भिषगाचार्य जी के वाल्यावस्था में कठिन रोग ग्रस्त होने के कारण बोली में तुतलापन आ गया था। इसलिये किसी सभा के सभापति पद को अनुरोध करने पर भी ग्रहण नहीं करते थे। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदीय चिकित्सकों के अनुरोध से आयुर्वेदीय वार्षिक कनवोकेशन सभा में सभापति का आसन एक बार ग्रहण किया था। आप और चारू बाबू काशी रामकृष्ण सेवाश्रम के प्रतिष्ठाता थे। आज तक भी भिषगाचार्य जी द्वारा स्थापित किये गये औषधालय से इस रामकृष्ण सेवाश्रम में आयुर्वेदीय औषधियाँ मुफ्त भेजी जाती हैं। उनके पश्चात् आज तक उनके सुयोग्य पुत्र कविराज हाराणचन्द्र आयुर्वेदाचार्य जी चिकित्सा भी करते हैं। आपने आयुर्वद के उन्नति कल्प में १९०६ खीष्टाब्द में आयुर्वेद के एक विद्यालय का उद्घाटन किया था जिसमें डाक्टरों के द्वारा शरीर-तत्व-शिक्षा और अस्त्र-चिकित्सा का भी प्रबन्ध किया गया था। परन्तु काशी में पृष्टपोषकों के अभाव से वह संस्था नष्ट हो गई। पुनः आपने आयुर्वेद सम्मेलन संस्था का प्रवर्तन किया। अभी तक वह संस्था आपकी कीर्ति प्रकाश कर रही है। आप शुद्ध सनातनीय होते हुये भी स्वदेश प्रेमी थे। आपने बंगाल के सुप्रसिद्ध स्वदेशी आन्दोलन के समय से ही स्वदेशी व्रत लिया था। आप आयुर्वेद के इतने प्रेमी थे कि आजकल के चिकित्सकों की भांति आयुर्वेद औषधियों के शास्त्रीय नाम में कुछ भी परिवर्तन नहीं करते थे। आप आयुर्वेदीय औषधों को मिश्रित करके चिकित्सा करने के परिवर्तक थे। आप सब रोगियों को शास्त्रीय नाम लिख कर व्यवस्था-पत्र देते थे। आपका अभिमत था कि आयुर्वेद-शास्त्रीय नाम नहीं लिखना रोगी को बँचना करना है। आपका नियम था कि प्रत्यह आरम्भ में गरीब रोगियों को देख कर तत्पश्चात् धनी रोगियों को देखते थे। आपके असीम गुप्तदान के विषय में प्रायः सभी पुरुष आपकी प्रशंसा

अभी तक करते हैं। आपको प्रायः सभी रोगी साक्षात् धन्वन्तरी तुल्य मानते थे। भारत की अनेक संस्थाओं ने आपको उपाधि द्वारा भूषित किया था पर आपने उपाधि को व्याधि स्वरूप समझ कर उनका प्रत्याखान किया था। आप सर्वदा यही कहते थे कि चिकित्सक की उपाधि रोगी को अच्छा करनी है। आप बड़े समारोह के साथ तीन दिन तक दुर्गापूजा मनाते थे। आप केवल आयुर्वेद के प्रचारक ही नहीं थे बल्कि प्राचीन संस्थाओं पर भी आपका प्रेम था। आजकल भी आपका स्थापित 'ध्रुपद समाज' काशी में आपकी स्मृति रक्षा कर रहा है। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा मथुरादि आयुर्वेदीय संस्थाओं के परीक्षक थे। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्यकारिणी सभा के सदस्य भी थे। आपके असीम गुणों से केवल काशी-वासी ही नहीं बल्कि बम्बई से प्रोम तक के निवासी अभिमत थे और सभी आज दिन इनके अभाव को अनुभव कर रहे हैं। भिषगाचार्य जी ने १३४० बंगाल की पहिली वैशाख को काशी को अन्धकार निमग्न कर एवं काशी-वासी को दुखसागर में छोड़ कर ५४ वर्ष की अवस्था में महाप्रस्थान किया। आप अपनी विधवा पत्नी, तीन पुत्र तथा पाँच कन्याओं को छोड़ गये। आपके ज्येष्ठ सुयोग्य पुत्र पं० हाराणचन्द्र राय चौधुरी आयुर्वेदाचार्य उनके सर्व कीर्ति-कलापों की रक्षा करते हुए चिकित्सा-शास्त्र में ख्याति लाभ कर रहे हैं।

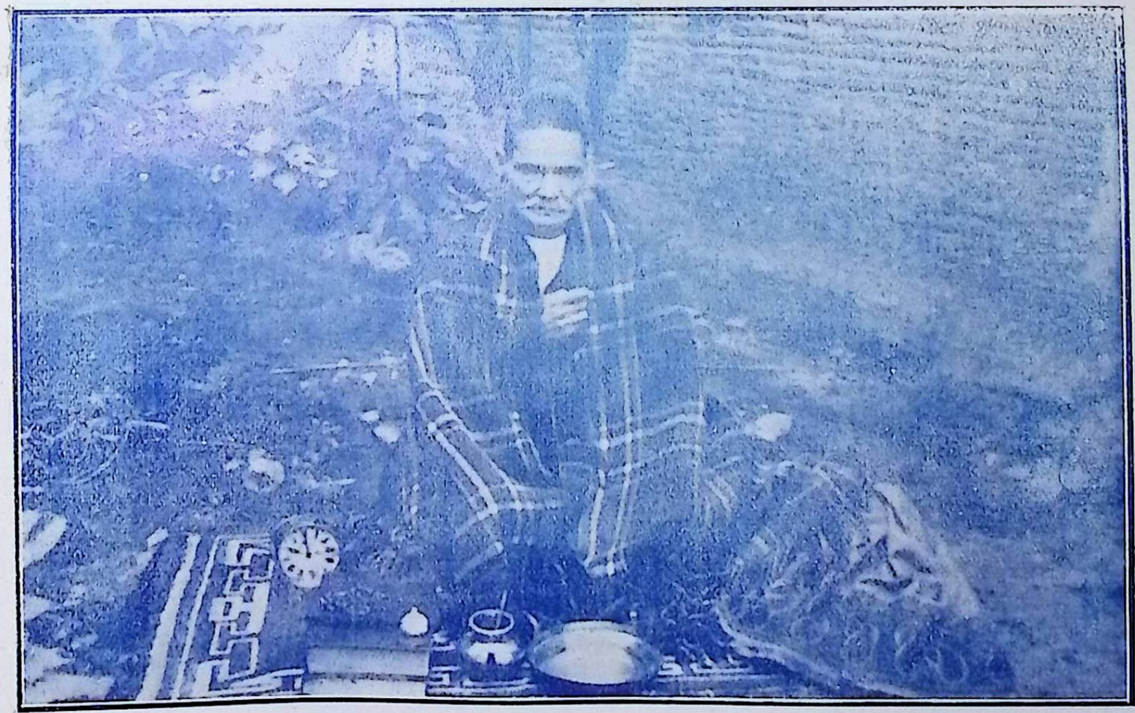

आयुर्वेदमहोदधि स्वर्गीय पं० क्षमापतिजी बाजपेयी, लखनऊ।

आयुर्वेद महोदधि स्वर्गीय पं० क्षमापति जी वाजपेयी

आयुर्वेद-भूषण का संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त

आपका जन्म सन् १८६९ ई० में लखनऊ में रानीकटरा के निकट मोहल्ला मोतीलाल के पुल में हुआ था। आपके पिता पं० गंगाप्रसाद जी वाजपेयी कुशल कवि थे और चाचा गोकुल प्रसाद जी वाजपेयी को वैद्यक का बहुत अच्छा ज्ञान था; किन्तु वे वैद्यक वृत्ति नहीं करते थे।

क्षमापति जी के बाल्यकाल में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और उनके बड़े भाई पं० उमापति जी वाजपेयी शाहजहाँपुर में वैद्यक करने चले गये थे। क्षमापति जी ने प्राज्ञ-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद केवल स्वाध्याय-द्वारा साहित्य, धर्मशास्त्र और दर्शन आदि विषयों में इतनी योग्यता प्राप्त करली कि अपने नगर के उस समय के प्रथम श्रेणी के पंडितों में समझे जाने लगे। आप लाल स्कूल में संस्कृत अध्यापक हुए; किन्तु इस काम में आपकी तबीयत नहीं लगी और इसको आपने छोड़ दिया। इसी नौकरी का छोड़ना लखनऊ में आयुर्वेद के प्रचार के लिए अच्छा साबित हुआ। वाजपेयी जी के पाण्डित्य से लाभ उठाने के लिये सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस ने आपको संस्कृत-ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया। प्रेस के लिये आपने अनेक आयुर्वेद ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया। कठिन परिश्रम के कारण आपका स्वास्थ बिगड़ गया। कहा जाता था कि उन्हें क्षय प्रतीत होने लगा, जिसके लिए लखनऊ के प्रसिद्ध झँवाई टोले के हकीमों का इलाज किया। उन हकीमों के पास वाजपेयी जी घंटों बैठकर अपने रोग और औषधों के गुण-दोषों पर वादाविवाद किया करते थे। तब से उनकी तबीयत आयुर्वेद पर झुकी और आयुर्वेद ग्रन्थों का ध्यानपूर्वक नियमित रूप से स्वाध्याय शुरू किया। इसी समय अपने परम मित्र स्वर्गवासी पं० नारायणदत्त जी शास्त्री की सहायता से लखनऊ क्रिश्चयन कालेज के स्कूल-विभाग में संस्कृत पंडित के स्थान पर नियुक्त हुये। शास्त्री जी स्वयं कालेज-विभाग में थे। अब वाजपेयी जी की आय भी पहले की अपेक्षा बढ़ गई और अवकाश भी अधिक मिलने लगा, जो आयुर्वेदिक स्वाध्याय और मनन में लगता था। लगभग १९०७ तक बाजपेयी जी स्कूल में काम करते रहे। तदनंतर आपने वैद्यक आरंभ किया। लखनऊ में शुद्ध आयुर्वेदीय औषधियों का मिलना असंभव-सा हो गया था। आपने अपने मित्र पं० भैरवप्रसाद जी पाण्डेय से अपनी देख-रेख में कान्यकुब्ज औषधालय खुलवा दिया, तीन चार साल में ही इस औषधालय ने बड़ा यश प्राप्त किया। वाजपेयी जी की चिकित्सा से प्रसन्न हो लखनऊ वैद्य सभा ने उन्हें सर्वप्रधान माना। जब आपने वैद्यक का श्री गणेश किया था, यहाँ पर वैद्यक का ऐसा ह्रास हो चुका था कि बहुत से हिन्दू धार्मिक विचार से मरने के कुछ घंटे पहिले वैद्य को बुला लिया करते थे और वैद्य का आगमन कुटुम्बियों को बहुत शीघ्र मृत्यु की सूचना से सूचित करता था और अभ्रक, चन्द्रोदय जैसी अमृत तुल्य

औषधें देना मृत्यु का आवाहन समझा जाता था। अहिन्दुओं में तो वैद्य के लिये इतना भी आदर न था। वाजपेयी जी ने ६ वर्ष में लखनऊ ऐसे विशाल नगर में इतना परिवर्तन कर दिया कि न केवल शिक्षित हिन्दुओं में ही वैद्यक का अच्छा प्रचार हुआ; वरन् मुसलमान और इसाई भी हकीम और डाक्टरों को छोड़कर वाजपेयी जी से चिकित्सा कराने लगे। यहाँ तक कि वे हकीम जो कुछ वर्ष पूर्व वाजपेयी जी का इलाज किया करते थे, स्वयं आप से चिकित्सा कराने लगे। वाजपेयी जी को धनोपार्जन की अपेक्षा आयुर्वेद की उन्नति और प्रचार का अधिक ध्यान था। वे प्रतिदिन सौ, पचास रोगियों को बिना मूल्य औषध देते थे। गरीबों के घर पर जाने की फीस भी न लेते थे। दिन भर परिश्रम के बाद रात के कई घंटे विद्यार्थियों को आयुर्वेद पढ़ाने में व्यतीत करते थे और अपनी आय का अच्छा हिस्सा छात्रवृत्ति में खर्च करते थे। आप अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के परीक्षक और लखनऊ केन्द्र (जो आपके परिश्रम से स्थापित हुआ था) के व्यवस्थापक, और लखनऊ वैद्य सभा के संस्थापक और सभापति थे। आप से गोकर्णनाथ कमेटी ने जो सरकार द्वारा आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा प्रणाली का सुधार करने के लिये नियुक्त हुई थी, सम्मति माँगी थी। जिसका अधिक अंश उक्त कमेटी ने स्वीकार किया और इसी कमेटी की रिपोर्ट के अनंतर इन्डियन मेडिसिन बोर्ड स्थापित हुआ। आप लखनऊ विश्वविद्यालय, संस्कृत प्राच्य विभाग समिति के तथा अनेक सार्वजनिक धर्म तथा शिक्षा सम्बन्धी समितियों के सदस्य थे। अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन की ओर से आपको आयुर्वेद-भूषण उपाधि और पूज्यपाद जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज श्री शारदापीठ की ओर से आयुर्वेद-महोदधि की उपाधि मिली थी। आपकी कामना थी कि लखनऊ में एक विशाल आयुर्वेद विद्यालय और दातव्य चिकित्सालय स्थापित हो जाय। उन्हीं के परिश्रम और धनी रोगियों की सहायता से लखनऊ वैद्य-सभा की ओर से आयुर्वेद मित्र पाठशाला स्थापित हुई थी। जिसके प्रधान वाजपेयी जी थे। उसी समय में शहर के प्रसिद्ध धनी लाला युगलकिशोर जी रस्तोगी अपने स्वर्गीय पिता के स्मारक में कोई सार्वजनिक काम करने के लिये उत्सुक थे, किन्तु यह निश्चय न कर पाते थे कि कौन कार्य किस रूप से करें। जो परामर्श देने वाले थे वे और भी व्यग्रता में सहायक होते थे। अन्त में वाजपेयी जी और उनके मित्र पं० व्रजनाथ शर्मा जी के परामर्श से सवा लाख की सम्पत्ति से मूलचंद रस्तोगी ट्रस्ट स्थापित किया जिसकी ओर से एक दातव्य चिकित्सालय जिसमें ७ या ८ सौ रोगी प्रतिदिन बिना मूल्य दवा पाते हैं। और एक आयुर्वेदिक (चन्डी देवी आयुर्वेदिक) पाठशाला अपना कार्य कर रहा है। वाजपेयी जी औषधालय के प्रधान चिकित्सक और पाठशाला के मुख्य अध्यापक थे। आपका शरीर पहिले ही से दुर्बल था। किन्तु अब आयु की वृद्धि के साथ-साथ सार्वजनिक कार्य और आयुर्वेदिक चिकित्सा और शिक्षा का भार इतना बढ़ गया कि आराम मिलना तो अलग रहा, आप को भोजन का समय भी मिलना कठिन हो गया। २४ घन्टे में एक बार कभी दिन में चार बजे, कभी रात्रि के १२ बजे भोजन मिलता था। किन्तु फिर भी वे अपने कार्य में तत्पर रहे। मृत्यु के ६ मास पहिले अपने जीवन से निराश हो जाने पर आपने अपनी सब सम्पत्ति धर्मार्थ वसीयत कर दी और मित्रों के आग्रह से स्वास्थ ठीक करने के लिये हरिद्वार चले गये, पर हालत बिगड़ती गई। इतने में शाहजहाँपुर से समाचार आया कि बड़े भाई मृत्यु-शय्या पर हैं। उसी हालत में वे वहाँ गये। भाई का अंतिम संस्कार करवाने के अनंतर ही आप लखनऊ आ गये। भाई की मृत्यु का

आपके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि आपके जीवन की किसी को आशा न रही। इसी शोक में भाई के सूतक-निवृत्ति के पहिले ही आपकी धर्म-पत्नी भी चल बसीं। इनके देहावसान के दूसरे ही दिन बाजपेयी जी ने फिर वसीयत की; जिसके द्वारा अपनी स्त्री के निमित्त वस्त्रादि और भाई से प्राप्त सब सम्पत्ति धर्मार्थ में लगा दी और दूसरे ही दिन पहिली अक्टूबर १९२९ को शरीर त्याग दिया। आपकी वसीयतों के अनुसार आपकी सारी सम्पत्ति आपके इष्टदेव गणेश-गौरी बनवाने तथा पूजन-अर्चनादि में आयुर्वेद के विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति में और आयुर्वेदिक औषध-वितरण के लिये समर्पित कर दी।

शास्त्री सोहनलाल जी पाठक वैद्यरत्न M.R.A.S.

आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद महोपाध्याय, भिषग्रत्न, वैद्यदत्त, विद्याभूषण, वाणीभूषण, पौराणिक-रत्न, मथुरा का

संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त

वैद्यरत्न जी का जन्म मथुरा जी के सनाढ्य ब्राह्मणों में प्रसिद्ध प्रतिष्ठित पाठकवंश में हुआ। पाठक जी के पूर्वज कई पीढ़ियों से संस्कृत-साहित्य के विशिष्ट विद्वान् होते हुए भी आयुर्वेद के समस्पृक् विद्वान् होते रहे हैं। पाठक जी के पितामह श्री पूर्णचन्द्र देव जी कई रियासतों से आयुर्वेद के सम्बन्ध में मासिक पुरस्कार पाते रहे थे। तथा आपके पिता जी वैद्यराज पं० छल्लास्वामी जी ने अपने पिता जी का अनुसरण किया था, आपने "सहस्त्ररस-दर्पण" आदि कई ग्रन्थों की रचना की, जो भाषा वैद्यों के हित की परम सुन्दर सामिग्री है और खूब प्रचलित है। आपने अपने वार्द्धक्य काल तक निरन्तर आयुर्वेद की सेवा की और अपने प्राचीन आयुर्वेदोक्त औषधालय का कार्य अच्छे रूप से निरन्तर सम्पादन करते रहे। आपके ज्येष्ठ पुत्र शास्त्री जी ने चतुर्थ वैद्य सम्मेलन कानपुर में उपस्थित हो, मथुरा में अ० भा० ब० वैद्य सम्मेलन को निमंत्रित किया, जो सर्व सम्मति से होना निश्चित हुआ, उस समय महामण्डल ने वैद्यराज जी को विशिष्ट सदस्य स्वीकार किया था। आपके समय में "वैद्यरत्न" जी सर्वतोभाव से समर्थ हो चुके थे और संस्कृत साहित्य की विशिष्ट योग्यता द्वारा आपने यह प्रत्यक्ष दिखला दिया कि विद्वान् जिस ओर प्रवृत्त हों उसको पार पहुँचा देते हैं, आपने अपने पिता जी के समय में जब कि वह अपने औषधालय का संचालन कर रहे थे, आप कई संस्थाओं के महोपदेशक होकर धार्मिक भाषणों से जनता को आनन्दित करते थे। आपका सुमधुर भाषण जनता को अतिप्रिय था, और दूर-दूर देशान्तरों से आपका आह्वान होता था। आप उस ही समय में पुराण-इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए तो आपने इस प्रकार आशातीत उन्नति की। बड़े-बड़े ठिकानों पर श्री मद्भागवत, वाल्मीकीय, महाभारत आदि के प्रवचन करने में जो प्रशस्ति प्राप्त की उसके प्रमाण रूप जयपुर विद्वन्मण्डल द्वारा "पौराणिक रत्न" की उपाधि है। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य जी तथा जगद्गुरु श्री मद्वल्लभाचार्य जी आदि से "विद्याभूषण" वाणीभूषण, आदि की उपाधि तथा स्वर्णपदकों की प्राप्ति है ही; किन्तु श्री मद्भागवत के जो १०८ सप्ताह पारायण होते हैं जिनमें १०८ से लेकर दो दो सौ विद्वान् श्री मद्भागवत का पाठ करते हैं, उनमें जो प्रधानासन होता है उसको वैद्यरत्न जी ने भिन्न-भिन्न स्थानों में अर्थात् जयपुर, गोबर्धन, घृन्दाबन (मथुरा) आदि में तेरह बार ग्रहण किया है। जब कि जयपुर में षोडश वैद्य सम्मेलन बड़े समारोह के साथ हो रहा था, उस समय आप जयपुर के राजमंदिर भक्त दीनानाथ में १०८ श्री मद्भागवत महायज्ञ के प्रधान व्यास थे। उस समय आपकी कथा सुनने के लिए भारत-रत्न महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय

आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदमहोपाध्याय, भिषग्रत्न,
वैद्यदत्त, विद्याभूषण, वाणीभूषण, पौराणिकरत्न,
श्री० शास्त्री सोहनलाल जी पाठक, वैद्यरत्न, एम. आर. ए. एस., मथुरा ।

001546

001546

001546

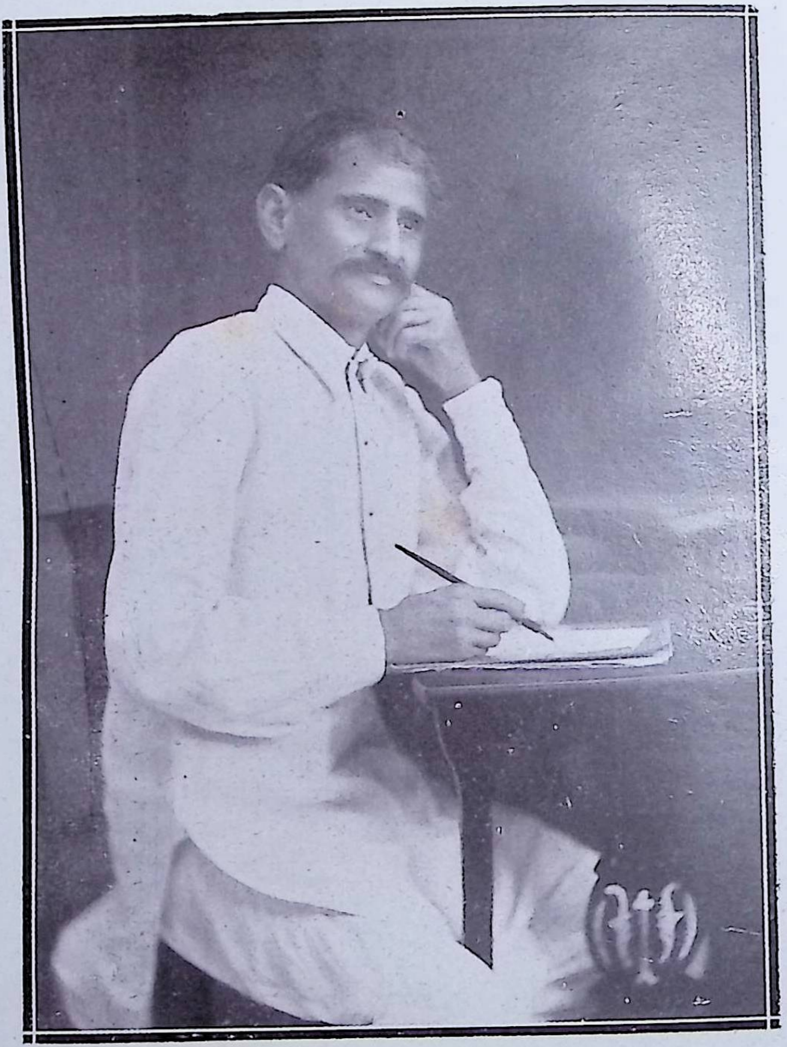

श्रीयुत वैद्यराज पं. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री बम्बई।
संपादक, आयुर्वेदविज्ञान (गुजराती मासिक पत्र)।

जो कि षोड़श वैद्य सम्मेलन के सभापति होकर पधारे थे, मंदिर में पधारे और उस महोत्सव के कई फोटो भी उतरवाये, अति प्रसन्न हुए। इत्यादि इत्यादि। आप मथुरास्थ विद्वत्सभा के प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं। पूज्य महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन जी सरस्वती जिस समय मथुरा पधारे थे उस समय विद्वत्सभा द्वारा जो आपको सम्मान-पत्र अर्पण किया गया था, जिसको कविराज जी प्रसंगोपात अब भी उस काल की बात छेड़ देते हैं।

आप आयुर्वेद सभा के सभापति हैं। पूज्य पिता जी के वार्द्धक्य काल में आपने आयुर्वेद की ओर प्रवृत्ति की और अन्यान्य सर्व कार्यों से हाथ खींचना पड़ा। आपने इस कार्य में खूब प्रशस्ति प्राप्त की है। आप यहाँ के पीयूषपाणि वैद्य हैं। मथुरा जिले में आपका अच्छा गौरव है आप बहुत काल तक आयुर्वेद महामण्डल स्थायी समिति के सदस्य रहे हैं। यू० पी० वैद्य सम्मेलन के कुछ काल तक उप सभापति भी रहे हैं। एवं अ० भा० व० आयुर्वेद विद्यापीठ मथुरा केन्द्र के चिरकाल तक व्यवस्थापक रहे हैं। आपके समय के परीक्षा प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवहार अभी तक श्लाघनीय हैं। आपके शिष्य वर्ग आयुर्वेद विद्यापीठ की उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर आयुर्वेद व्यवसाय में प्रतिष्ठा पा रहे हैं। माधव-निदान, शार्ङ्गधर, रस-हृदय तन्त्र तथा वैद्य-मनोरमा का भाषानुवाद किया है। जिसमें अन्तिम ग्रन्थ अभी अमुद्रित है। संस्कृत पद्यात्मक एक "राजवंश महाकाव्य" तथा "मनुष्य का कर्तव्य" नामक श्लोक-बद्ध-निवन्ध रचे हैं। इन ग्रन्थों का प्रचार कम है आपकी लेखनी द्वारा लिखित कई उपन्यास भी हैं। आपका मान सरकार गवर्नमेंन्ट में भी काफी रहा है आपको सरकार द्वारा "आनरेरी मैजिष्ट्रेट" पद पर नियुक्त किया गया है। आपका धनी-मानी लोगों में बड़ा आदर है। इस वर्ष नव सम्राट् श्रीमान् अष्टम ऐडवर्ड महोदय की प्रथम वर्षगाँठ के उपलक्ष में भारतवर्ष भर में केवल आपको ही "वैद्य-रत्न" की उपाधि से विभूषित किया है, जिसको अभी थोड़े ही वैद्य महानुभावों ने प्राप्त की है, आप बहुत ही सज्जन, प्रसन्नानन, दयालु एवं पीयूषपाणि वैद्य हैं।

* * *

जामनगर रस-शाला के संस्थापक स्व० झण्डु विट्ठल जी का

संक्षिप्त जीवन चरित ।

आज सारे भारतवर्ष में प्रख्यात "झण्डु फार्मास्युटिकल वर्क्स" के दो आद्यक्षर जिस प्रातःस्मरणीय धन्वन्तरिकल्प महात्मा के नाम से लिये जाते हैं, सो स्वनामधन्य झण्डुभट्ट जी के जीवन-चरित्र का अति संक्षेप में परिचय दिया जाता है ।

आप का जन्म वैक्रमीय शुभ सम्वत् १८८७ शुभ मिती वैशाख शुक्ल पक्ष ५ को हुआ था । ये काठियावाड़ की जामनगर रियासत में महाराजा साहब के राजवैद्य थे । इनके पूर्वजों में से एक इनके पंचम पूर्वज जिनका नाम गोवर्धनभट्ट जी था, बड़े साहसिक और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे । दो सौ वर्ष पहले वि० सं० १७८५ में गोवर्धनभट्ट विद्याभ्यास के लिए काशी जी गये थे । इनके पुत्र काशीरामभट्ट जी इस कुल के प्रथम वैद्य हुए । वैद्य होते हुए भी इन्होंने पुराणी का पद नहीं छोड़ा, और तभी से इनके कुल में आज तक वैद्यकीय परंपरा जीवित है । इनके प्रपौत्र विट्ठल जी भट्ट उस समय में श्रीमद्भागवत पुराण के प्रख्यात कथाकार गिने जाते थे, और आप अच्छे चिकित्सक भी थे । सं० १८५२ में आपका जन्म हुआ था । उस समय में रियासत जामनगर के महाराणा रणमल जाम के राजवैद्य आप ही थे । विट्ठल जी भट्ट के पाँच पुत्र थे, पाँचो पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ चरित्र नायक झण्डुभट्ट जी थे । इन्होंने बड़े परिश्रम के साथ विद्याध्ययन किया । विद्याध्ययन के बाद आप जामनगर के महाराजा रणमलजाम के उत्तराधिकारी महाराजा विभाजाम के राजवैद्य के पद पर नियुक्त हुये । और तभी से आपने सर्वात्मभाव और परम एकाग्रता से वैद्यक विद्या की उपासना करना प्रारंभ कर दिया । उस समय काठियावाड़ में आयुर्वेद की बड़ी दुरावस्था थी । झण्डुभट्ट जी ने अतिशय परिश्रम तथा अपूर्व बुद्धि कौशल से एवं परम औदार्य और स्वार्थ-त्याग से आयुर्वेद का उद्धार किया है । ऐसा कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है ।

झण्डुभट्ट जी ने पहिले तो कुल-परंपरा का पुराणी का धंधा छोड़ दिया, और केवल वैद्यकीय कार्य को अपना एकमात्र लक्ष्य बनाया । फिर वैद्यकीय कुशलता से और सच्ची राज-भक्ति से महाराजा विभाजाम के कृपा-पात्र बन गये । और उसी सम्बन्ध से काठियावाड़ के अन्य राज्य मोरवी, भावनगर, गोंडल, वढ़वाण आदि राज्यों से भी आपका सम्बन्ध हो गया, और राज-कुटुम्ब की चिकित्सा के लिए आप वारंवार बुलाये जाने लगे । इस प्रकार आपकी ख्याति बढ़ने लगी । परन्तु झण्डुभट्ट जी के हृदय में ख्याति होने की स्पृहा बिलकुल न थी, बल्कि इनके हृदय में आयुर्वेदोद्धार की तृष्णा ही बलबला रही थी । इस उद्देश की पूर्ति के लिए सं० १९२१ साल में जामनगर में रंगमती नदी के तट पर सुखनाथ महादेव के मन्दिर के सन्निकट रस शास्त्रोक्त पद्धति का स्मरण रखते हुए रस-शाला का मकान निर्माण कराया, और सब प्रकार शास्त्रोक्त औषधियाँ तैयार करने लगे । आयुर्वद की उन्नति के लिए शास्त्रोक्त औषधियों की सुलभता आवश्यक होने पर भी वैद्य-विद्या के प्रचार की आवश्यकता

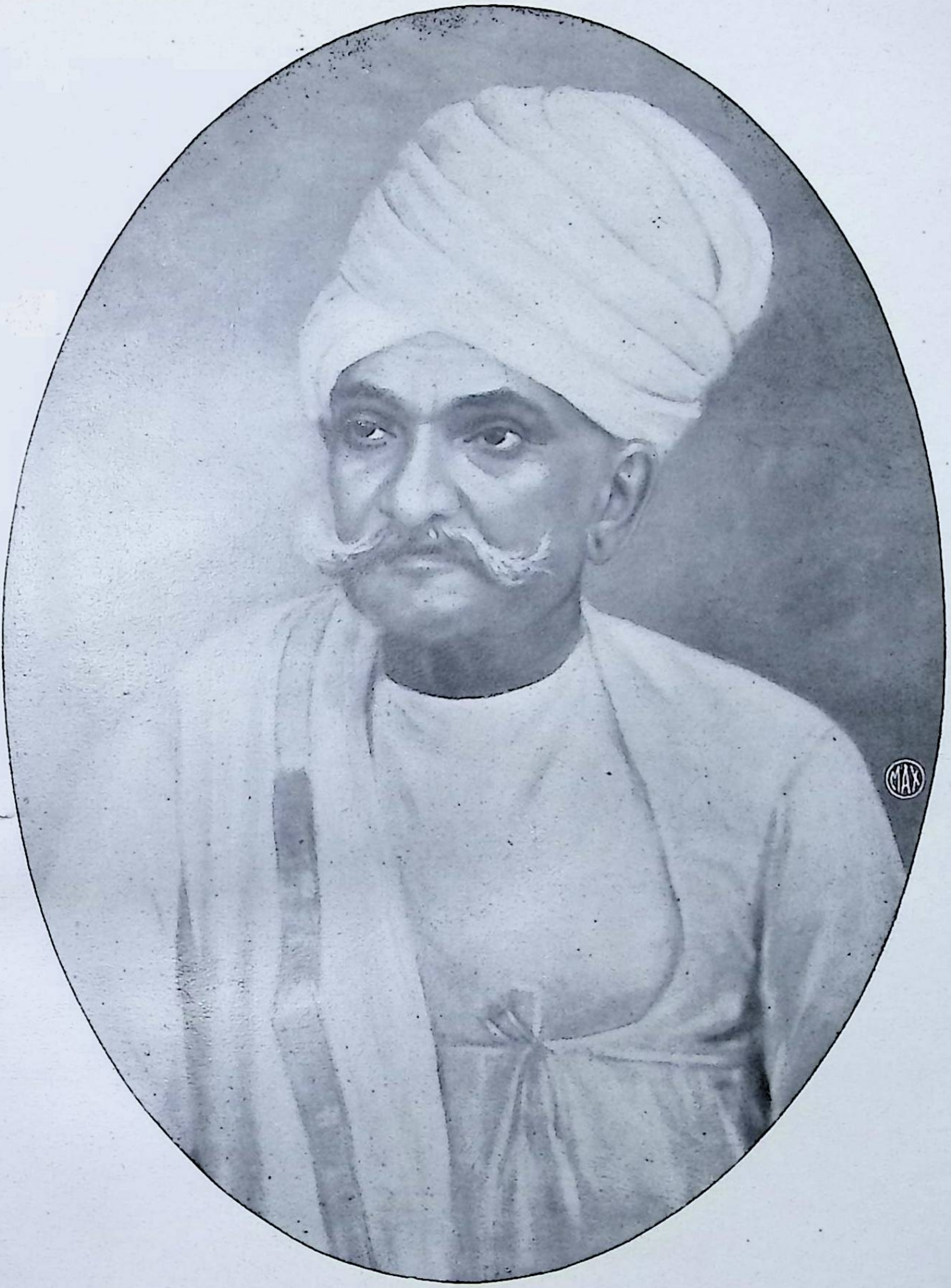

महात्मा झंडु विठ्ठलजी,
जामनगर (काठीआवाड).

जन्म सं. १८८७ वैशाख शुक्ल ५ **मरण** सं. १९५४ वैशाख कृष्ण ५

रसशाळाकी स्थापना वि. सं. १९२१.

धी ईन्डीयन आर्ट प्रेस, कालबादेवी, मुंबई, नं. २

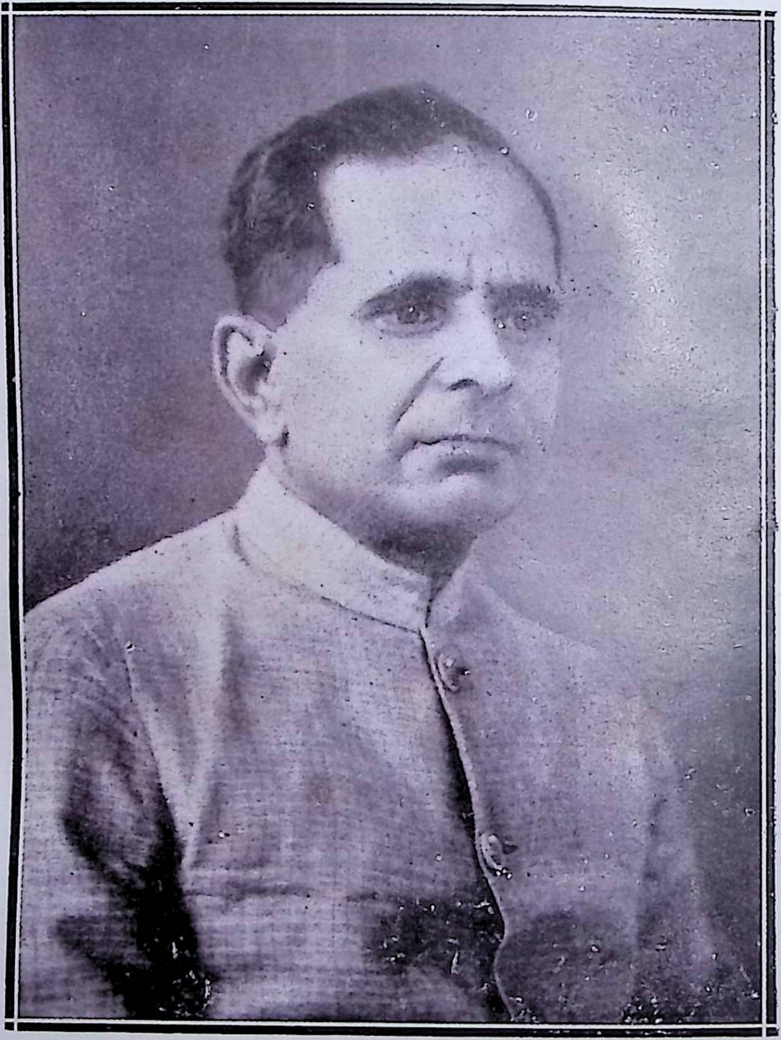

श्रीमान् राजवैद्य जुगतराम शंकरप्रसाद भट्ट।
संचालक, झंडु फार्मास्युटिकल वर्क्स, बंबई।

उनकी दृष्टि से बाहर नहीं थी। प्राचीन ग्रंथों का पठन-पाठन जो कि काठियावाड़ में उस समय बन्द हो गया था, सो झण्डुभट्ट जी ने अपने घर में शुरू किया, और विद्या दान के साथ-साथ अन्न-दान भी शुरू कर दिया था।

औषध प्रक्रिया और पठन-पाठन के साथ साथ शास्त्रीय चिकित्सा प्रक्रिया का अनुभव की आवश्यकता पर झण्डुभट्ट जी का प्रथम से ही विशेष लक्ष्य था। गंभीर रोगों के प्रायः कष्ट-साध्य रोगियों को अपनी बाड़ी अथवा घर में रखकर पथ्य की योग्य व्यवस्था के साथ औषधियों का सेवन कराते हुए "च्यवनप्राश" आरोग्य वर्धनी, विडंग तंदुल आदि का बहुत अनुभव लिया था, और इस अनुभव का लाभ दीन रोगियों की सेवा में आमरण करते रहे हैं।

शास्त्रीय निदान चिकित्सा में झण्डु भट्ट जी की बुद्धि तलस्पर्शी थी, और आयुर्वेद की उन्नति एवं जन-समाज की सेवा केवल यही उनका ध्येय था।

उदारता, स्वार्थत्याग, अतिथि-सेवा, समभाव इत्यादि गुणों के कारण काठियावाड़, गुजरात के लोग बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से उनको देखते थे।

स्वार्थ बुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्‌गतम्। यह वाग्भट्ट का उपदेश सूत्र उनके चारित्र्य का आदर्श था। और चरक के निम्नाङ्कित उपदेशानुसार भूत-दया की दृष्टि से चिकित्सा करने में झण्डु भट्ट जी का समस्त जीवन व्यतीत हुआ।

भिषगप्यातुरान्सर्वान्स्वसुतानिव यत्नतः।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम्॥

झण्डु भट्ट जी का विस्तृत जीवन चरित्र श्री दुर्गाशंकर केवल राम शास्त्री ने लिखा है। तथा झडु भट्ट जी के सुपुत्र वैद्यराज शंकरप्रसाद जी ने प्रकाशित किया है। यह झण्डु फार्मास्युटिकल वर्क्स, लिमि०, सयानी रोड, बम्बई से २॥) में प्राप्त हो सकता है।

* * *

प्राणाचार्य वैद्य पं० सुखराम दास ओझा का

संक्षिप्त जीवन चरित्र

आपका जन्म भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी, सम्वत् १९२८ विक्रमीय को सिन्ध प्रान्त की प्राचीन राजधानी प्रसिद्ध नगर ठट्टा में पुष्टिकर ब्राह्मण जाति के प्रसिद्ध ओझा कुटुम्ब में हुआ। आपके पिता का नाम पं० तेजभान दास ओझा था। उक्त ओझा-कुटुम्ब सिन्ध प्रान्त में विद्या, व्यापार, राजकार्य, कलाकौशल इत्यादि कार्यों में चिरकाल से ख्याति प्राप्त कर रहा है।

पं० तेजभान दास ओझा के छः पुत्र थे। इनमें से आपका पांचवाँ नम्बर है। आपका बाल्यकाल नगर ठट्टा में ही व्यतीत हुआ और वहीं पर गुजराती भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त किये। इसके पश्चात् एंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल में प्रविष्ट किये गये। अपनी तीव्र बुद्धि और प्रखर प्रतिभा का परिचय देते हुए आपने शीघ्र ही वहाँ की शिक्षा भी समाप्त की।

आपके ज्येष्ठ भ्राता पं० दीपचन्द्र जी अंगरेजी में ही उच्च शिक्षा प्राप्त किये और वकील की उपाधि प्राप्त कर कुछ ही दिनों में अपनी ज्वलन्त प्रतिभा के प्रमाण स्वरूप जज का न्यायासन प्राप्त कर वर्षों उसकी शोभा बढ़ाते रहे। परन्तु पं० सुखरामदास इंग्लिश में आगे न बढ़े। बाल्यकाल से ही आपको आयुर्वेद से प्रगाढ़ प्रेम था। उन दिनों आपके पितृव्य के पुत्र पं० पीताम्बर दास इसी नगर में अपना औषधालय चला रहे थे। पं० सुखराम दास को इनके सहवास से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था। उक्त औषधालय में आये हुए रोगियों को नित्य प्रति स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त होते देख आपका हृदय सदैव इस शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने को लालायित रहता था। आप अपनी इंग्लिश-शिक्षा परित्यक्त करके उक्त औषधालय में रह कर संस्कृत-व्याकरण और आयुर्वेद का अध्ययन करने लगे। अपनी प्रखर बुद्धि प्रचुर प्रतिभा और प्रगाढ़ प्रेम के प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप आपने शीघ्र ही चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया।

अध्ययन के साथ-साथ आपका अभ्यास भी सुचारु रूप से होता रहा। आपके समवयस्क बतलाते हैं कि अभ्यास काल से ही आपकी चिकित्सा पर जनता का इतना दृढ विश्वास हो गया कि बड़े वैद्य पं० पीताम्बर दास की उपस्थिति में भी रोगी इन्हीं से रोग-निर्णय तथा चिकित्सा कराने को लालायित रहते थे।

पं० पीताम्बर दास साधारण विषय का भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करने अर्थात् बाल की खाल खींचने वाले व्यक्ति थे। आपके अध्यापन में शिष्यों को साधारण से साधारण विषय में भी पूर्ण सचेत और सजग रहना तथा शास्त्र-ज्ञान और चिकित्सा-कौशल की कठिन कसौटी पर अपना वैद्यार्थिक जीवन व्यतीत करना पड़ता था। गुरु का यह स्वभाव पंडित को आशीर्वाद स्वरूप सिद्ध हुआ "आप सुविख्यात शास्त्रवेत्ता तथा क्रिया-कुशल चिकित्सक हुये।"

अध्ययन के पश्चात् आप नगर ठट्टा में ही अपना स्वतन्त्र अभ्यास आरम्भ किये सन्

प्राणाचार्य, वैद्य सुखरामदास जी ओझा, कराची ।

१९०१ में आपको कराची आना पड़ा। यहाँ आपके काका लालचन्द्र अपने औषधालय का सञ्चालन करते थे। इन्हीं दिनों पं० लालचन्द्र अपने औषधालय का भार पं० सुखराम दास को सौंप कर स्वर्गवासी हुये, तब से आज तक पंडित जी कराची की जनता की चिकित्सा रूपी अविरल सेवा करते रहे हैं। सिन्ध प्रान्त तथा भारतवर्ष की जनता तो आपकी चिकित्सा का लाभ लेती ही है। अरब-अफ्रिका युरोप के निवासी भी नित्य प्रति आपकी चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

सिन्ध प्रान्त में आयुर्वेद के पुनरुद्धार का श्रेय आपही पर है; आप सम्वत् १९८२ विक्रमीय से अपने ज्येष्ठ भ्राता के आयुर्वेदानुरागी पुत्र स्वर्गवासी कृष्णदास के स्मारक स्वरूप एक आयुर्वेदिक पाठशाला का संचालन कर रहे हैं। और आयुर्वेदोद्धारक सभा की स्थापना करके उसके प्रधानस्थल से अब तक आयुर्वेद की सेवा में प्रवृत्त हैं।

कराची में हुये उन्नीसवें अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन का साफल्य आपके अविश्रान्त परिश्रम, अदम्य उत्साह और सुयोग्य कार्य संपादन का आभारी है। सिन्धु प्रान्त का आयुर्वेद-प्रचार आपके उद्योग तथा सेवाओं का सदा ऋणी रहेगा। समस्त भारत के वैद्य आपको श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते हैं।

आप संस्कृत, हिन्दी, सिन्धी, गुजराती, मरहठी और इंगलिश आदि कई भाषाओं के ज्ञाता, दयालु, निःस्पृह, परोपकारी, दानी, उदार प्रकृति और सज्जन पुरुष हैं। आपकी शिष्य-मण्डली समस्त सिन्ध प्रान्त में योग्यता-पूर्वक आयुर्वेद की सेवा और प्रचार कर रही है।

बम्बई के प्रसिद्ध प्रभूराम आयुर्वेदिक कालेज से आपको आपकी सेवाओं के उपलक्ष में प्राणाचार्य की महत्वपूर्ण उपाधि प्राप्त हुई है। कराची की जनता द्वारा किये हुये एक महान उत्सव और विराट सहभोज में अपार जनसमुदाय के समक्ष एक महत्वपूर्ण मानपत्र के साथ तत्कालीन म्यूनिस्पल प्रमुख जमशेद मेहता के कमनीय करकमलों द्वारा यह उपाधि-पत्र आपकी शुभ सेवा में सादर समर्पित किया गया था। इस अवसर पर कराची के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी इत्यादि जातियों के प्रमुखों ने आपके कार्यों की प्रशंसा करते हुये आयुर्वेद से श्रद्धा और संतोष प्रकट किया था।

वर्तमान काल में पश्चिमीय सभ्यता से परिप्लावित सिन्धु प्रान्त में आपने आयुर्वेद का झंडा ऊँचा किया है यह आपके साफल्य का समुज्ज्वल परिचय है।

आपके एकमात्र पुत्र प्रभुराम को भी आयुर्वेद से प्रगाढ़ प्रीति है और इसी विषय की उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

परमपिता परमात्मा से अहर्निशि प्रार्थना है कि ऐसे दयालु निस्वार्थी, परोपकारी चिकित्सक को दीर्घायु तथा आरोग्य प्रदान करें। शुभम् ॥

स्नेहभाजन—

वैद्य छोटालाल विश्वनाथ पाण्ड्या

प्रसिद्ध औषधि अमृतधारा के आविष्कारकर्ता

श्रीमान पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य महोदय का

संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त

जो उन्होंने अमृतधारा औषधालय की सिल्वर जुबिली (जयंती के अवसर पर प्रतिष्ठित पुरुषों के जलसे में, जो कि मसीहुलमुल्क हकीम हाफिज़ मुहम्मद अजमल खां साहब देहलवी के सभापतित्व में अमृतधारा भवन में हुआ, वर्णन किया—

माननीय सभापति तथा उपस्थित सज्जनवृन्द !

आज पच्चीस वर्ष के पश्चात् मैं इस अमृतधारा औषधालय की स्थापना और अपने जीवन का इतिहास, इस भरी सभा में, मित्रों की इच्छा को पूरी करने के लिए, सुनाता हूँ, यदि इससे किसी को कुछ भी लाभ पहुँचा, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी।

मैं ईश्वर को मानने वाला हूँ, और मेरा विश्वास है कि उसका अनुग्रह किसी भी महान कार्य की सिद्धि के लिए परमावश्यक है। परमेश्वर की यह कृपा थी कि मेरे द्वारा एक ऐसी औषधि का आविष्कार हो, जिससे जनता को लाभ पहुँचे, नहीं तो मेरे लिखने-पढ़ने तक का भी कोई प्रबंध न था। अल्पायु में ही विद्यानुराग न जाने कैसे उत्पन्न हो गया था। मैंने जब अपने गाँव फतहवाल के पास ही बल्हड़वाल की पाठशाला से चौथी कक्षा पास की, उसी समय मेरे कुटुंबियों की इच्छा मुझे आगे पढ़ाने की न थी, मैं चुपके अमृतसर भाग आया, और वहाँ खालसा स्कूल में प्रविष्ट हो गया। वहाँ से मेरा पढ़ना छुड़वा कर मुझे फिर घर ले गए। एक दिन पिताजी ने मुझे अपनी ज्येष्ठा भगिनी को लाने के लिए जंडियाले भेजा। मैं उनको न लाकर उसी जगह एक स्कूल में भरती हो गया, और अंगरेजी पढ़ने की इच्छा से, चौथी श्रेणी में प्रविष्ट हुआ। परन्तु बड़ा परिश्रम करके एक ही वर्ष में दोनों कक्षायें पास कर लीं। दैव संयोग से वह स्कूल टूट गया और मैं अमृतसर में हिन्दू-सभा हाई स्कूल में प्रविष्ट हुआ, और वहीं से ही एन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। मुझे अब घर से खरच आने लगा। परमेश्वर की महिमा ! मिडिल में पढ़ते हुये ही न जाने कैसे मेरे हृदय में वैद्यक का शौक उत्पन्न हो गया। बोर्डिंग के सामने एक वैद्य साहब थे, उनके पास बैठना और कुछ सीखना-पढ़ना आरंभ किया। साधु सन्यासियों की सेवा और उनकी खोज में समय लगाना आरंभ किया।

बोर्डिंग के पीछे वाले मैदान में ही फूंका-फांकी शुरू हो गई। घर पहुँचे तो वहीं औषधियाँ तैयार होने लगीं। जब घर जाता तो वहाँ के तमाम ऊपले खतम करके ही आता। मास्टरों ने और हेड मास्टर साहब तक ने भी मेरी बनाई औषधियों का सेवन किया। ईश्वर की कृपा से मेरा आचरण स्कूल में बहुत अच्छा था। आरंभ से ही धार्मिक जीवन की ओर मेरा झुकाव था, इसलिये सभी मुझे चाहते थे और मेरी बात को मानते थे। सारा बोर्डिंग

श्रीमान् वैद्यराज पं. ठाकुरदत्तशर्मा अमृतधारा लाहोर।
अध्यक्ष, सिन्धप्रान्तीय १ वैद्यसंमेलन हैद्राबाद (सन १९२८)।
पञ्जाबप्रान्तीय वैद्यसंमेलन रावलपिण्डी (सन १९२९)।
संपादक, देशोपकारक।

एक बात कहे और ठाकुरदत्त दूसरी बात कहे तो हमारे सुपरिंटेंडेंट मास्टर माधोराम जी ठाकुरदत्त की ही बात मानते थे।

बहुत सा समय वैद्यक विद्या के पीछे खर्च हो जाने पर भी अपनी पढ़ाई की ओर से मैं असावधान न था। मेरी स्मरण शक्ति निर्बल थी, किन्तु परिश्रमी मैं अधिक था। मैं सबसे अधिक परिश्रम करता था। मुझे परीक्षा के निकट वाली रात्रियाँ स्मरण हैं, जब कि मैं ६ बजे शाम को सोकर ९ बजे ही उठ बैठता और फिर सारी रात पढ़ने में व्यतीत करता। यह परिश्रम केवल कंठस्थ करने वाले विषयों पर करना पड़ता था, स्मरण शक्ति क्षीण होने पर भी मेधा अच्छा था, इसलिए गणिव में बहुत होशियार था। यह एक अद्भुत बात थी कि जब मैं मिडिल में पढ़ता था तो मैट्रिक के कई विद्यार्थी मुझसे गणित के प्रश्न पूछने आया करते थे। यदि कोई प्रश्न हल न होता तो उस पर मैं रात भर लगा रहता। थर्ड मिडिल में जब मैं पढ़ता था, तो उसी श्रेणी के विद्यार्थियों को मैं स्कूल के समय के बाद पढ़ाता था और हेड-मास्टर साहब ने दो आने प्रति विद्यार्थी फीस लगा रक्खी थी जो कि मुझे दी जाती थी। ऐसा उदाहरण बहुत ही कम मिलेगा कि जिस कक्षा में कोई पढ़ता हो उसी को पढ़ाता हो। स्कूल के समय भी बहुधा मुझे सारा-सारा दिन खड़ा रहना पड़ता था। जो भी मास्टर आते ठाकुरदत्त को अधिकार दे देते कि तुम्हीं सबका पाठ सुनो या तुम्हीं सबका हिसाब लिखाओ। बस मैं मास्टर जी की कुर्सी के पास खड़ा काम कर रहा हूँ। मैं अपने स्कूल में सदा प्रथम रहा और प्राइमरी, मिडिल और मैट्रिक में छात्रवृत्तियाँ प्राप्त कीं। पत्पश्चात् कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के लिए लाहौर आ गया। प्रथम गवर्नमेंट कालेज फिर डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हुआ किन्तु एक ही वर्ष बाद विद्याध्यन का वह शौक जिसके लिए मैं घर की चोरी से भागा था, जाता रहा, और वैद्यक का शौक इतना बढ़ा कि कालेज छोड़ कर घर बैठ गया। बहुत सी वैद्यक की पुस्तकें तो पहले ही पढ़ चुका था, फिर स्वामी विशनदास वैद्य से विद्याध्ययन कर जम्मू में राजवैद्य श्री पं० जगतराम जी के पास जाकर कई रहस्य सीखे और कालेज छोड़ने के दो वर्ष पश्चात् पिता जी से लाहौर में औषधालय खोलने के लिये रुपया माँगा। उनका तो यह कहना था कि तुम जिलेदारी के वास्ते यत्न करो, वैद्यक के लिए धन व्यय करना व्यर्थ है।

किन्तु परमेश्वर को कुछ और ही अभीष्ट था। घर से खाली हाथ निकल पड़ा और रेलवे दफ़्र में निर्वाह के लिए १५) मासिक की नौकरी कर ली, और साथ ही सन् १९०० ई० में देशोपकारक औषधालय की नींव डाल दी, उस समय मेरी आयु २० साल की थी, किन्तु मनोरथ बड़े उच्च थे परन्तु क्या करता? कार्यारम्भ करने के लिए भी रुपया न था। कोई उपाय न देखकर अपनी धर्मपत्नी से जिक्र किया। उसके पास जो साधारण से आभूषण थे उसने सामने रख दिए। उनमें से चांदी के गोखड़ू २७) में बेंचे, और यही मेरे कारख़ाने की सारी पूंजी थी।

अमीरों के लड़के किसी कार्य को आरम्भ करने के वास्ते हज़ारों मांगते हैं और फिर वह भी गवाँ देते हैं। लेकिन गरीबों को देने वाला भगवान् है। औषधियां बहुत सी पहले मौजूद थीं, विज्ञापन दे दिया गया। ईश्वर की कृपा से लोगों को लाभ पहुँचा। मैंने इस समय भी रात दिन घोर परिश्रम किया। सुब्रह औषधालय में बैठता, दिन को दफ्तर जाता, और फिर रात को दवाई कूटता बनाता, सब कुछ स्वयम् ही करना पड़ता था। हृदय में

विश्वास था कि भगवान् अवश्य ही कृपा करेंगे, ईमानदारी से काम करते जाना चाहिये। रेलवे की नौकरी छोड़ कर आर्य प्रतिनिधि सभा में २५) मासिक की नौकरी कर ली, क्योंकि सभा का कार्यालय घर के निकट था। यह सब कुछ लाहौर आने के एक वर्ष के भीतर-भीतर हुआ। जब मैंने देखा कि एक मास में ६५) की औषधालय से आमदनी हुई है, उसी समय नौकरी छोड़ कर तन-मन से इसी कार्य में लग गया।

स्कूल में पढ़ते हुए ही हृदय में यह महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई थी कि कोई ऐसी औषधि निकालनी चाहिए जो लगभग बहुत सी औषधियों का गुण रखती हो। उन्हीं दिनों इस प्रकार की एक औषधि बना भी ली थी, उस पर रात दिन विचार करने लगा, उसकी परीक्षा की, घटाया-बढ़ाया और सन् १९०१ में नौकरी छोड़ते ही 'अमृतधारा' के आविष्कार की घोषणा कर दी।

जिसने इसकी परीक्षा की वही अचम्भित हुआ। ऐसा कोई भी पुरुष न निकला जिसने अमृतधारा को प्रत्येक घर में रखने योग्य औषध न बताया हो। जो औषधियों के बक्स घर में रखते थे उन्होंने इस शीशी से सबका काम लेना शुरू किया। जिसने एक बार इसको आजमाया, उसने सदा के लिए इसे अपना साथी बनाया। इसी वास्ते दिन प्रतिदिन इसकी उन्नति होती गई। सन् १९०४ में देशोपकारक पत्र जारी हुआ। हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में १९२२ तक निकलता रहा। समयाभाव के कारण १९२३ में हिन्दी संस्करण बन्द कर दिया गया। मेरे प्रिय पुत्र शुकदेव शर्मा का देहान्त हो जाने से खिन्न चित्त १९२४ में उर्दू संस्करण भी बन्द कर दिया गया। और सर्वसाधारण ने इस किंकर की योग्यता को सराहा फिर तो सारे देश में अमृतधारा और उसके आविष्कारकर्त्ता का नाम प्रसिद्ध होने लगा और उसके साथ ज्यों-ज्यों मेरी लेखनी से वैद्यक पुस्तकें निकलीं त्यों-त्यों ख्याति भी बढ़ती गई। इस समय तक २१ वर्ष से देशोपकार पत्र निकालने के अतिरिक्त लगभग ५ दर्जन पुस्तकें लिखी जाकर प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रभु की कृपा से दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति होती गई। ५) के किराये के मकान को छोड़ कर फिर ४०) के किराये के मकान में आना पड़ा। और कई क्लर्क काम करने लगे। सन् १९१० ई० में एक नया मकान रेलवे रोड पर खरीदा गया जिसका उद्घाटन-संस्कार चीफ कोर्ट पंजाब के जज सर प्रतूलचन्द्र चैटर्जी के करकमलों से लाहौर के प्रतिष्ठित लोगों के एक बड़े जलसे में हुआ। सन् १९१४ ई० में मकान और भी बढ़ाना पड़ा और एक विशाल भवन लाखों रुपये का तैयार हुआ। इस दूसरे खंड का उद्घाटन लाहौर के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मिस्टर एफ० डवल्यू० कैनवे साहब ने वैसे ही जलसे में किया जिसमें सर मोहम्मदशफी साहब बैरिस्टर और रायबहादुर दीवान बहादुर कुञ्जबिहारी थापर आदि महानुभावों की मनोरंजक वक्तृतायें हुईं, जिनमें कार्यालय की पब्लिक सेवा का वर्णन किया गया। इस विशाल भवन के पूर्व ओर जो सड़क बनी है उसका नाम म्यूनिस्पल कमेटी ने अमृतधारा रोड रक्खा और सामने एक कूचे का नाम ठाकुरदत्त स्ट्रीट रक्खा गया।

परमेश्वर की कृपा से इतना काम बढ़ा कि जहाँ पहले एक ही आदमी दवाई बनाता, बंद करता, रोगियों को देता और बाहर भेजता था, अब दर्जनों कर्मचारी यह कार्य करने लगे और अमृतधारा व अन्यान्य औषधियाँ जिनकी संख्या चार सौ के लगभग है, इतनी अधिक बाहर जाने लगीं कि डाक विभाग ने अमृतधारा के नाम से एक डाकघर खोल दिया। पुस्तकों

श्रीयुत वैद्यराज विष्णुकान्तजी । **मुरादाबाद** ।
संपादक—"वैद्य" (हिन्दीमासिकपत्र)

श्रीमान् कविराज उपेन्द्रनाथदास काव्य—व्याकरण—सांख्यतीर्थ ।
संपादक—"आचार्यधन्वन्तरि" (हिन्दीमासिकपत्र) दिल्ली ।

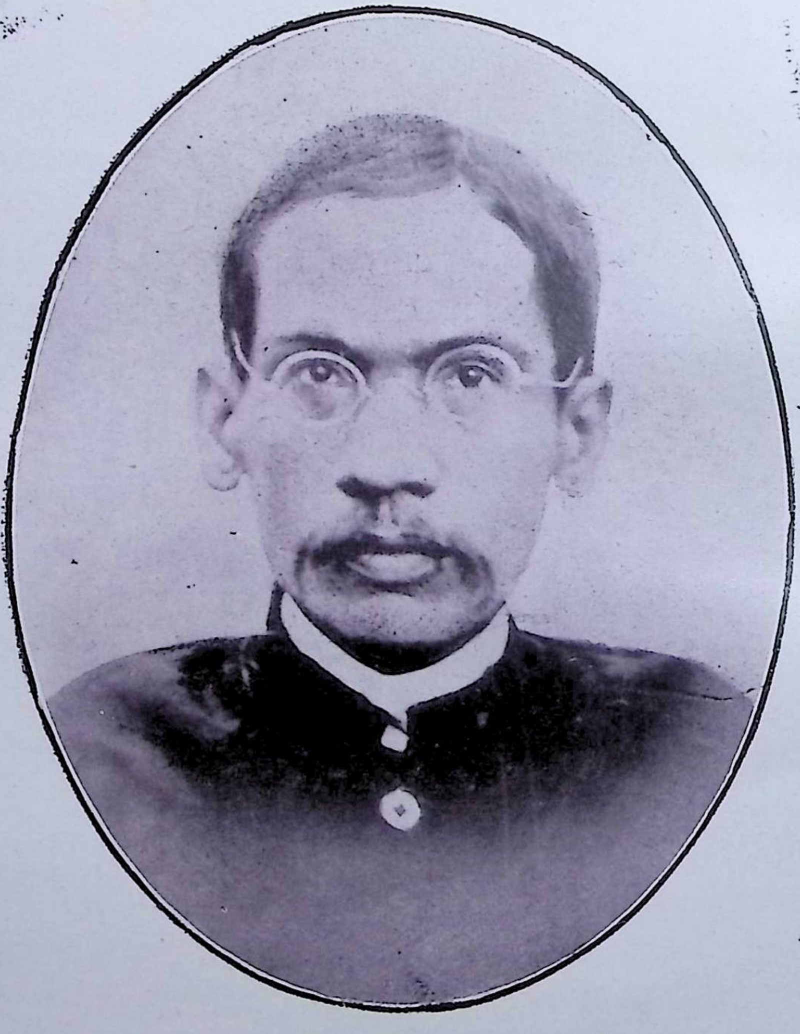

श्रीमान् स्व. वा. पं. शंकरलाल वैद्य।
संपादक, "वैद्य" (हिंदी मासिक पत्र) मुरादाबाद।

और सूचीपत्रों आदि की छपाई का काम इतना बढ़ गया कि सन् १९१६ में एक प्रेस भी खोलना पड़ा, जिसने बढ़ते-बढ़ते एक बड़े छापाखाने का रूप धारण कर लिया है, और जिसमें हर प्रकार की छपाई का काम (लेथो, टाइप व ब्लाक) घर और बाहर का किया जाता है।

सन् १९२४ में विलायत की यात्रा की। वहाँ जाकर क्या देखा और क्या पाया उसका विवरण 'सैर यूरुप" में देखना चाहिये। यूरुप के सारे देशों में भ्रमण करके, वहां की चिकित्सा प्रणाली से अभिज्ञता प्राप्त करके, अब विद्युत चिकित्सा के बहुत से यंत्र लाया हूँ। और इस नूतन चिकित्सा प्रणाली को भी जारी कर दिया गया है।

मैंने आयुर्वेद की सेवा करने की सदैव चेष्टा की है और मैं जब उस समय से, जब कि देशी चिकित्सा की ओर से लोगों की रुचि कम हो रही थी, इस समय की तुलना करता हूँ और देखता हूँ कि यथेष्ठ रूप से लोगों की रुचि फिर इस ओर बढ़ रही है, तो मैं आनन्दित होता हूँ, क्योंकि इस रुचि-परिवर्तन में थोड़ा सा मेरा भी भाग है, जिसका उल्लेख करने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। मुझे इस बात का हर्ष है कि जिस कारखाने को मैंने अज्ञात अवस्था में लाहौर में आकर जारी किया, जनता ने उसको अपनाया और आज नगर के प्रतिष्ठित लोगों का इतना भारी जलसा उसकी सिलवर जुबली मना रहा है।

भगवान से यही प्रार्थना है कि देशी चिकित्सा की ओर लोगों की रुचि बढ़े, देशी चिकित्सा प्रणाली की उन्नति करने के लिए अच्छे-अच्छे कालिज, अच्छे-अच्छे औषधालय स्थापित हों जो कि नूतन अनुसन्धानों को अपने अन्दर सन्निविष्ट कर के देशी चिकित्सा को उत्तम रूप में उपस्थित करें।

हमारी तो अब यह प्रार्थना है कि वह अपनी भक्ति प्रदान करे और बहुत शीघ्र इस योग्य बनाये कि जीवन का तीसरा युग आरम्भ हो।

॥ ॐ शम् ॥

वैद्यवर, भिषक्चूडामणि, श्री पं० मणिरामजी शर्मा

भिषगाचार्य प्रिंसिपल-श्री हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय रतनगढ़ (बीकानेर) का संक्षिप्त जीवन-चरित

आपका जन्म श्री पं० सन्तरामजी के घर विक्रम सम्बत् १९४३ में जम्बू (काश्मीर) प्रान्त के रायपुर ग्राम में हुआ था। आप वाल्यावस्था में अधिकतर अपने मामा के घर जम्बू राजधानी में ही रहा करते थे। यहाँ रहते हुए आपने रणवीर हाईस्कूल में प्रारम्भिक-शिक्षा प्राप्त की। तदन्तर जलालपुर जट्टां नामक ग्राम में तथा लाहौर की सनातन धर्म संस्कृत पाठशाला में अध्ययन किया। इसके वाद फिर आप जम्बूनगर में आये और वहाँ के श्री रघुनाथ विद्यालय में अध्ययन कर अध्यापन कार्य की खोज में भ्रमण करते हुए पटियाला राजधानी में पहुँचे। वहाँ सौभाग्यवश किसी विद्वान् से आपकी भेंट हुई, जिसने आपको आयुर्वेद पढ़ने के लिए अनुमति दी। उस विद्वान् के सदुपदेश से प्रेरित होकर आप आयुर्वेद पढ़ने के लिए देहली चले आये, वहाँ श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री पं० मनोहरलाल जी वैद्यराज के समीप रहकर लघुत्रयी का अध्ययन किया। देहली से सन् १९१० में आप जयपुर पहुँचे, वहाँ श्री राजकीय संस्कृत कालेज में निरंतर ५ वर्ष रह कर आपने भारत के प्रसिद्ध वैद्य आयुर्वेद भार्तण्ड श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी महोदय के चरणों की कृपा से आयुर्वेद की उच्च-शिक्षा प्राप्त की। सन् १९१७ में आप श्री हरनन्दराय रुईया संस्कृत कालेज के प्रधानायुर्वेदाध्यापक पद पर नियुक्त हुए, इस संस्था में रहते हुए आपने लगातार १९ वर्ष तक अध्यापन और चिकित्सा कार्य किया। आपके पास अध्ययन किये हुए सैकड़ों छात्र आचार्य शास्त्री विशारद आदि परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अनेक जगह योग्यता के साथ कार्य कर रहे हैं। आपके शान्त स्वभाव, मधुर-भाषिता, चिकित्सा-पटुता, परोपकार-परायणता आदि गुणों से रामगढ़ और उसके आस-पास की जनता का बहुत उपकार हुआ है। सार्वजनिक संस्थाओं को भी आपने अपने अमूल्य समय से बहुत लाभ पहुँचाया है।

सन् १९२० में आपने शार्ङ्गधर संहिता की संस्कृत टीका बनाई थी, किन्तु उन्हीं दिनों आढमल्लकृत संस्कृत टीका के प्रकाशित हो जाने से आपने अपनी टीका को प्रकाशित नहीं किया। सन् १९३३ में रसशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ रसेन्द्रचिन्तामणि की पाण्डित्यपूर्ण (मणिप्रभा नामक) टीका बना कर श्री १०८ स्वामी लक्ष्मीराम जी के चरण कमलों में समर्पण की। श्री स्वामी जी महाराज ने इनकी विवेचना पूर्ण कृति से सन्तुष्ट होकर नीचे लिखा आशीर्वाद दिया—

"शिष्यैः प्रशिष्यैः परिपूज्यमानः, गुणैरुदारैः परिवर्द्धमानः।
प्रशस्तभैषज्यविधानकर्मा, जीव्याच्चिरं श्रीमणिराम शर्मा ॥१॥"

अभी सन् १९३६ के आरम्भ में आप किसी कारणवश श्रीहरनन्दराय रुईया संस्कृत

कालेज से अलग हो गये थे। यद्यपि अब आप कहीं कार्य करना नहीं चाहते थे, किन्तु बहुत से सज्जनों के यह अनुरोध करने पर कि आपके किसी संस्था में रहने से आयुर्वेद की बहुत उन्नति होगी, इसलिये अब आप श्रीमान् सेठ सूर्यमल जी नागरमल द्वारा संस्थापित श्री हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय रतनगढ़ (बीकानेर) के प्रधानाध्यापक हो गये हैं।

शेखावाटी में जितना आयुर्वेद का प्रचार हुआ है उसका श्रेय आपको ही है, तथा परिष्कृत चिकित्सा-प्रणाली के प्रवर्तक भी आपही कहे जा सकते हैं। आप जैसे आयुर्वेद के धुरंधर विद्वानों की बहुत आवश्यकता है। आशा है रत्नगढ़ में रहते हुए आपके द्वारा आयुर्वेद की और भी अधिक उन्नति होगी। शम्।

वैजनाथ शर्मा आयुर्वेदाचार्य

रतनगढ़ (बीकानेर) प्रो० श्री हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय।

Charakachaturanana Chakrapani Dutta

The great commentator of Charaka Samhita and the compiler of Chakradatt was born in Chauperch (चौपेड़े) in the District of Burdwan (Bengal). According to the Colophen attached to the Chakradatt his grandfather flourished in the reign of Nayapal--of the Pal dynasty of Bengal who reigned in the 10th century A. D. Chakradatta may therefore be said to have flourished about the end of the 10th Century A. D. One of his descendants Kaviraj Bejoy Krishna Visharad is practising at Calcutta.

Kaviraj Sivadasa Sen

The great commentator of Chakradatt Sangraha is also a commentator of Charaka Samhita. He flourished in recent years say about 300 years ago in Malancha in the District of Howrah (Bengal) His name is mentioned by Bharat Mallik, the commentator of several sanskrit works by Kalidas and others in his compilation known as. Sad Vaidya Kul Panjika. Nothing more is known about him.

Kaviraj Rajendranarain Sen

Was born at Srirampur in the District of Murshidabad. He was the last disciple of Acharya Gangadhar and settled at Calcutta. Like all the other disciples of Acharya Gangadhar, Kaviraj Rajendra Narain was also vastly educated and made his name as one of the best Kaviraj of his time. It was Kaviraj Rajendra Narain who edited Acharya Gangadhar's Bharadwaj Bhashya on Vaisesika Darsana.

स्मृतिव्याकरणतीर्थायुर्वेदविशारद, कविचन्द्र,
कविराज श्री० पूर्णचन्द्र जी रथ, पुरी ।

निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलोत्कलप्रान्तीयमन्त्रिणः

कविराजकविचन्द्र श्रीपूर्णचन्द्ररथस्मृतिव्याकरणतीर्थायुर्वेदविशारदाचार्य महोदयस्य जीवनवृत्तान्तम् ।

विद्यारत्नोपाधिकश्रुतिस्मृतिपुराणप्रवीणोच्चब्राह्मणवंशोद्भवरामकृष्णरथस्यात्मजोऽसौ निखिलायुर्वेदमहांभोधिपारंगतानां भारतप्रसिद्धानां महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनशर्मसरस्वतीपादानां चरणरेणुरंजितप्रियतमशिष्यः । सैषस्तावदष्टादशवर्षं यावत् पुरीधामे श्रीमद्भगवतोऽनाथनाथजगन्नाथस्य कृपया नीलाचलकल्पतरुभवननामकायुर्वेदौषधालयं प्रतिष्ठाप्य सिद्धहस्तेन बुद्धिमत्तया स्वचिकित्साकलाकौशलवलेनैवाखिलोत्कलमण्डले सुविख्यातचिकित्सकः सममभूत् ।

पीयूषपाणिरेष खलु दयालुर्वैद्यगुणगणसंपन्नः कातरातुरैकसहायः स्वकीयौषधालये प्रत्यहं प्रातर्दारिद्र्यपीडितासमर्थासहायानामातुराणामौषधदानेनैव तान्निरातुरान् कृत्वा सर्वेषामाशीर्वादार्हः प्रियपात्रश्च संजातः । अपिचायुर्वेदशास्त्रे गभीरगवेषणयाशेषासाध्यसाध्यव्याधीन् विधिनावाधयतीति प्रत्यक्षतो दृष्टम् ।

पुनरेष स्वकपोलकल्पितपीयूषकल्पभेषजानकल्पयत् कृतवांश्चोत्कलभाषायां लोकोपकारार्थममोघमुष्टियोग-पथ्यापथ्यविचार-रोगीशुश्रुषा-रोगपरीक्षा-स्वास्थ्यपूर्णचन्द्रपुस्तकानि । एष्वाद्यत्रयः प्रकाशिता अपरे यन्त्रस्थाश्चेति ।

एष खलु सर्वायुर्वेदक्रियाकुशल आयुर्वेदस्य समधिकप्रचारप्रसारार्थमत्र नीलाचलायुर्वेदचतुष्पाठीति नामकविद्यालयं चतुर्दशवर्षंयावत् स्थापयित्वाध्यक्षशिक्षकत्वेन च छात्रान् कर्माभ्यासेन साकं स्वयमध्यापयत्यायुर्वेदं । प्रतिवर्षं च विहारोत्कलसंस्कृतसमितिसंपादितनियमानुसारेण वहवोऽन्तेवासिनः समुत्तीर्णा अभूवन् । मान्यवर गवर्नमेण्टमहोदयस्य सकाशात् प्रतिमासं नियमिताष्टादशरजतमुद्रासाहाय्यात् मान्यगण्यायुर्वेदहितैषिणां साहाय्यात् कविराजश्रीपूर्णचन्द्ररथशर्म्मणः साहाय्याच्चोत्तरोत्तरमुत्तमेनैव प्रचलत्येषा नीलाचलायुर्वेदचतुष्पाठी ।

पुनरसौ सज्जन अष्टादशवर्षावधि विहारोत्कलसंस्कृतसमितावायुर्वेदस्य मध्यमोत्तम (आचार्य) परीक्षायां प्राश्निको परीक्षकश्च, समितावस्मिन्नायुर्वेदमडरेटरवोर्डसदस्यः, पुरीसंस्कृतकालेजबोर्डसदस्यः, उत्कलायुर्वेदविवर्धिनीसमितिसंपादकश्च वर्तते ।

आतुरदुःखमसहिष्णुरेषप्रियभाषी १९३३ खिष्टाब्दे यदा पुरीमण्डलैकदेशे प्रवलवन्याप्रतापप्रादुर्भूतोऽभूत्तदा वन्याप्रपीड़ितदीनातुरेभ्यः सार्धद्विशतमुद्रामूल्येन विविधभेषजैः साकं पंचसप्तति—रजतमुद्राश्च श्रद्धया प्रदत्तवान् ।

गोगुरुदेवद्विजराजभक्तोऽसौ मान्यवरनिखिलभारतधराधीश्वरस्वर्गीयसम्राजां पंचमजार्जमहोदयानां रौप्यजयन्तीमहोत्सवावसरे तेषां वंशपरंपराक्रमेणाक्षुण्णाकण्टकराजत्वकामनया त्रिशतसंख्यकेभ्यो दीनहीनातुरेभ्यो दिनद्वयं यावत् बहूनि भेषजानि वितरितवान्, लब्धवांश्च सद्गुणातिशयात्तेभ्यो रौप्यजयन्तीपदकमिति ।

सामन्त—श्रीगोपीनाथ महापात्र काव्यतीर्थः

लोकनाथ रोड, पुरी ।

सभापति—उत्कलायुर्वेदविवर्द्धिनीसमितिः

श्रीमान पं० नन्दलाल कौल वैद्य महोदय का

संक्षिप्त जीवन-चरित्र

पण्डित नन्दलाल कौल साहिब का जन्म फाल्गुन संवत् १९५२ विक्रमी को काश्मीरी पण्डितों के उस कौल घर में हुआ जो कि साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। सैकड़ो वर्षों से जब से काश्मीर में हिन्दू सभ्यता का उत्पात प्रारम्भ हुआ और आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली का लोप प्रारम्भ हुआ केवल इसी कुल के सपूतों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा को अपनाय रखा। और इसी घराने से वे सब वैद्य उत्पन्न हुए जिन्होंने काश्मीर में आयुर्वेद को जीवित रखा। पण्डित जी के पिता स्वामी श्रीधर कौल साहिब बड़े विख्यात वैद्य हैं। उन्होंने ३७ वर्ष काश्मीर में काम किया। वह इस कार्य में इतने निपुण हैं कि काश्मीर भर में उनको सिद्ध चिकित्सक मानते हैं और लोग समझते हैं कि उनके हस्त स्पर्श से ही रोगी ठीक हो सकता है। आजकल वे प्रायशः स्यालकोट में एकान्त जीवन व्यतीत करते हैं।

पण्डित नन्दलाल कौल साहिब स्कूल की शिक्षा समाप्त करके संवत् १९७३ विक्रमी से अपने पिता जी से चार वर्ष आयुर्वेद पढ़ते रहे। १९७६ विक्रमी में उन्होंने आयुर्वेदिक चिकित्सा का अभ्यास आरम्भ किया और १९७८ में सहज औषधालय स्थापित किया। यह श्रीनगर में पहला औषधालय है।

पण्डित जी इस समय काश्मीर में मुख्य वैद्य हैं। और प्रसिद्ध चिकित्सक होने के अतिरिक्त छात्रों को पढ़ाने-लिखाने का काम भी करते हैं। काश्मीर भर में पण्डित जी के कई ऐसे छात्र हैं जो विख्यात चिकित्सक हैं।

जब कभी काश्मीर में महामारी आदि के उपद्रव का प्रकोप हुआ तो पंडित जी ने लोकहितार्थ बहुत परिश्रम किया। और हजारों की संख्या में लोग उनकी औषधि से आरोग्य हुए। वह लोग जो उन अवसरों पर देश-सेवा करते थे उनके बहुत कृतार्थ हैं। और उनको धन्यवाद देते हैं उनमें से एक दो सम्मतियाँ ही यहाँ पर लिखनी पर्याप्त होगी।

प्रोफेसर रामचन्द पंडित एम० ए० लिखते हैं—

He has almost on every occasion of an epiademic like Cholera or Influenza done yeomans work in preparing medicines and distributing it almost free of cost not only among the people of Srinagar but even in all the muffassils. His treatment for Cholera was very successful in saving the lives of all the patients who got this medicine in time. His popularity is well deserved and his good work admits of no questions.

पंडित मधुसूदन कौल साहिब शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० डाइरेक्टर रिसर्च-डिपार्टमेन्ट लिखते हैं—

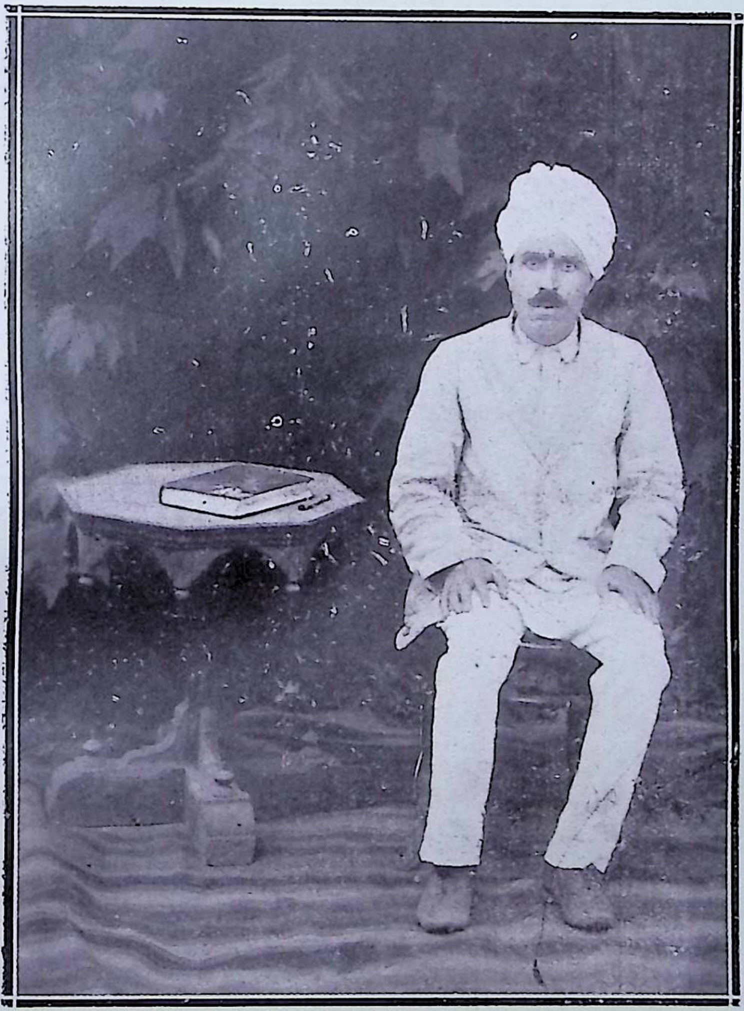

श्रीमान् वैद्यराज पं. नंदलालजी साहिब कौल।
सभापति, काश्मीर वैद्य सभा, श्रीनगर।

In the last visitation of Influenza and Cholera his treatment proved a remarkable success both in the city and suburbs. He in that period established various agencies in the muffassils to distribute his self prepared medicines in the affected quarters through influencial persons and reclaimed most of seizures from the clutches of death.

श्रीनगर म्युनिस्पेलिटी (Municipality) ने आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालयों की आर्थिक सहायता (Grant in aid) देने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में हेल्थ आफिसर (Health officer) ने इस औषधालय का स्वयं निरीक्षण करके निम्नलिखित शब्दों में अपना रिपोर्ट लिखकर नं० २५१६ ता० ११।२।३० को आर्थिक सहायता के लिए सिफारिश की—

I have personally inspected the dispensary Sahaj Aushadhalaya- The dispensary contains about 300 preparations. I have also gone through its past record, there found that the Manager P. Nand Lal Koul has done much useful work during the past twelve years espacially at the out-breaks of the epidemics Cholera and Influenza. Pandit Nand Lal Koul seems intelligent, arduous and hard working, and has the especial advantage over most other indigenous practitioners, in that he possesses a fairly sound knowledge of English, Sanskrit, Urdu, and Persian, which during the modern days of material progress really means a better opportunity, study advances in the science. I would therefore recommend him strongly for the grant of the aid in questions in the interest of the public especially in the growth of Ayurveda.

और आर्थिक सहायता के अवसर पर म्युनिस्पेलिटी ने सबसे पहिले पण्डित जी की आर्थिक सहायता के लिए रिकमेण्ड किया।

संवत् १९८९ में जब लाहौर कांग्रेस की प्रदर्शिनी (Congress exhibition) हुई। इसमें पंडित जी ने भी अपनी कुछ औषधियाँ प्रदर्शिनी के लिये भेज दी थीं। मन्त्री कांग्रेस प्रदर्शिनी ने मेरिट सारटिफिकेट (Merit cirtificate) भेजते सयय निम्न शब्द लिखते हैं—

I have great pleasure to inform you that your commodities exhibited in the last Lahore Exhibition organised under the auspices of 44th Indian National Congress have been very highly appreciated by the visitors of the Exhibition as well as by the members of the Exhibition Committee, and you have been awarded a merit certificate.

संवत् १९९० में काश्मीर में पंडित जी के उत्साह से काश्मीर वैद्य सभा स्थापित हुई। पंडित जी उस सभा के प्रधान चुने नये। पंडित जी की योग्यता और उत्साह से आयुर्वेद चिकित्सा जो कि काश्मीर से लुप्त हो रही थी पुनर्जीवित हो रही है।

काश्मीर में आयुर्वेद

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आयुर्वेद का पूर्वकालीन हिन्दू काश्मीर में पर्याप्त प्रचार था। परन्तु १३८२ विक्रमी में जब कि मुसलमानों का काश्मीर में आना हुआ और राज्य

भी उनके हाथ में आ गया और उनकी धाक जम गई तब जो चीजें हिन्दू सभ्यता से सम्बन्ध रखती थी उन पर शनैः-शनैः आघात होने लगा और आयुर्वेद के लोकोपकारक विषय होने पर भी इसके नष्ट करने के लिए वे प्रयत्न करते रहे।

पर कुछ समय बीतने पर जैनुलाबदीन के समय में पण्डित 'श्रीभट्ट' (जो कि मेरी राय में श्रीनाथ कौल हैं और जिनकी सन्तति काश्मीर के सभी कौल कहे जाते हैं) ने आयुर्वेद को कुछ समय के लिये जीवित किया। और काश्मीर के हिन्दुओं के लिए जो कि मुसलमान के आक्रमण से परास्त थे फिर बाहर निकलने का स्थान पैदा किया। बात यह हुई कि जैनुलाबदीन बीमार पड़े थे और एक विशेष प्रकार के रोग से ग्रस्त हुए थे, उनको उस समय कोई भी (यवन) चिकित्सक नीरोग न कर सका। फिर उसने यह मुनादी कराई कि यदि कोई मनुष्य उसको इस रोग से बचा सके तो उसको यथेष्ठ उपहार दिया जावेगा। 'श्रीभट्ट' जो कि इस समय किसी मुसलमान रूपी हिन्दू घर में रहते थे, राजा को यह सूचना भिजवा दी कि वह उसको स्वस्थ कर सकता है। राजा निराश हुआ था अतएव इसके वचन पर विश्वास करके इसका इलाज कराने लगे और उसको स्वास्थ्य प्राप्त हुआ। अन्त में जब उनसे (श्रीभट्ट) से पूछा गया कि आपको क्या दिया जाय तो उन्होंने कहा कि धर्म के विषय में उदारता (Toleration) होनी चाहिये और हिन्दुओं पर जो सख्तियाँ हैं दूर होनी चाहिये।

इसके अनन्तर फिर हिन्दू मुसलमान आघात-प्रत्याघातों से सिख राज के उत्थान तक आयुर्वेद डगमगाता रहा। जिस समय सिखों से जम्मू काश्मीर का राज्य डोगरों के हाथ में आ गया उस समय भी आयुर्वेद के तरफ कोई विशेष ध्यान न दिया गया। क्योंकि महाराजा गुलाबसिंह जी को अभी राज्य ही स्थापित करना था। अतएव उसको अन्य कार्यों के करने के लिये समय न मिला।

परन्तु जिस समय महाराजा रणवीरसिंह राज्य सिंहासन पर बैठ गये तो उनका ध्यान इस ओर भी गया और उन्होंने संवत् १९२५ विक्रमी में आयुर्वेद के विषय पर एक विशेष पुस्तक भाषा में संग्रह करवाया। जिसका नाम रणवीर-प्रकाश है और एक औषधालय भी स्थापित किया जो कि उनके स्वर्गवास होने के समय ही मृत प्राय हो गया।

श्री प्रतापसिंह के समय अर्धराजकीय धर्मार्थ डिपार्टमेंट की ओर से जम्मू में एक संस्कृत रघुनाथ पाठशाला में एक आयुर्वेदीय श्रेणी स्थापित की गई। जिसमें छात्रों को केवल चिकित्सा शास्त्र पढ़ाया जाता है।

श्री महाराजा हरिसिंह के आते ही नया दौरदौरा आरम्भ हुआ। प्रजा सभासदों की प्रार्थना पर प्रजा-सभा में आयुर्वेद की आर्थिक सहायता की प्रतिज्ञानुसार ३००) रुपया जम्मू के लिए और ३००) रुपया काश्मीर प्रान्त में एक-एक वैद्य को वार्षिक सहायता रूप में दिया गया और इसके पश्चात् राज्य से दो छात्रों को भारत में आयुर्वेद शिक्षा प्राप्त करने के लिये ३०-३० रुपया मासिक छात्रवृति रूप दिया गया।

नन्दलाल कौल
१५।७।३६

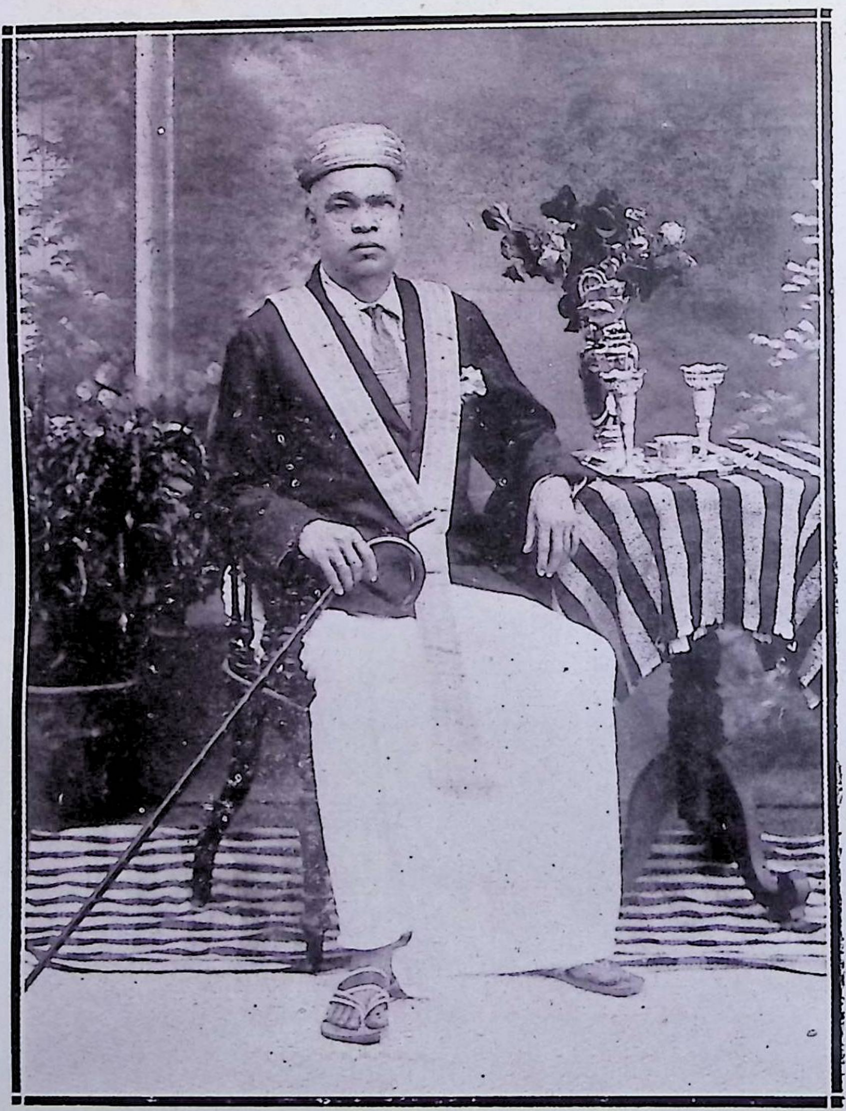

श्रीमान् वैद्यवर पी. एस्. वारियर कोट्टाकल मलबार।

अष्टांग शारीर नामक संस्कृत शारीरग्रंथ निर्माता।

अवैतानिक मंत्री, आर्यवैद्यक समाज।

प्रीन्सीपाल, आर्यवैद्यककालेज।

संपादक, धन्वन्तरि (मलयालल वैद्यक मासिक पत्रिका)।

श्रीमान् वैद्य कन्हैयालालजी भेड़ा, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई ।

सभापति निखिलभारतीय पंचविंशतितम नूतन व्याधिविचार-सम्भाषा परिषद्, अहमदाबाद ।

वैद्य कन्हैयालाल जी शर्मा का

संक्षिप्त जीवन-चरित

जयपुर राज्यान्तर्गत चिरावा (शेखावाटी) में आपका जन्म हुआ है । आप वैद्यशास्त्री श्री जगन्नाथ जी के पुत्र हैं । आपने प्रारम्भ में डालमियाँ संस्कृत पाठशाला में पं० श्री ब्रजलाल जी शास्त्रीजी से गवर्नमेंन्ट क्वीन्स कालेज की व्याकरण शास्त्री तक अध्ययन कर आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्यराज पं० श्री यादव जी त्रिकमजी आचार्य से आयुर्वेदाचार्य तक अध्ययन किया है । आप १५ वर्ष से आयुर्वेद का कार्य कर रहे हैं । सर्वप्रथम शेखावाटी बिसाऊ में आपने श्री पोद्दारों के औषधालय पर ४ वर्ष तक काम किया । अभी आप बम्बई में श्री रामनारायण जी रुइया आयुर्वेदिक औषधालय के प्रधान चिकित्सक हैं । तथा श्री मुम्बई आयुर्वेदीय पाठशाला के अध्यापक एवं मंत्री भी हैं । आपके औषधालय से गरीब एवं अमीर सभी अच्छा लाभ उठाते हैं ।

A short biography
of
Vaidyaratnam P. S. Varier.

Was born on Tuesday 16th March 1869 at Panniampalli Variem, a family of hereditary physicians. Studied Sanskrit under K. Krishna Warrier and D. Krishna Warrier locally until his seventeeth year. As he was the seniormost male member there was nobody in the family to teach him, and so he had his education of Ayurvedic medicine for five years under Brahmasree Kuttancheri Vasudevan Moosad, who was then the most prominent among the famous Ashta Vaidyans of Malabar. Then took a private tuition of English for two years. Had training in allopathy for three years under Dewan Bahadur Dr. V. Verghese and secured a working knowledge of the system. After

carrying out some experiments in combining the best of both the systems for some years Aryavaidyasala was started in October 1902 at Kottakal. This contains a pharmacy to prepare ayurvedic medicines in refined manner and also a dispensary. Soon after, a society by name Aryavaidya Samajam was started and registered to propogate the principles of Ayurveda. P. S. Varier is still the secretary and trustee of the society. Then began editing Dhanwantari, a medical journal in Malayalam. This was unfortunately stopped during Mopla rebellion and was not republished owing to increased pressure of work and some inconveniences. Aryavaidya Patasala was started in 1917 at Calicut to train students in Ayurveda. Though a subscription was collected for this in the beginning, at present the entire expense of the institution is met by Mr. Varier alone, as he has now become able to afford. In 1924, he started Aryavaidyasala Hospital at Kottakal where free treatment is given to the poor. In 1927 an allopathic doctor also was appointed in this hospital where both the systems of treatment are carried out side by side. Aryavaidya Patasala was shifted to Kottakal from Calicut in 1924 and attached to the hospital for giving clinical training to students. Finished writing Ashtanga Sareeram by the end of 1925 and this is a text book in Aryavaidya Patasala ever since its publication. Has been one of the examiners in Akhila Bharatha Varsheeya Vaidyasamiti (All-India Ayurvedic Conference) and Venkataramana Dispensary in Madras for some years. Is one of the prominent members of the Keraleeya Ayurveda Samajam. In January 1932 he was nominated a member of the Central Board of Indian Medicine by the Government of Madras and is still holding the post. On 2nd January 1933, the title of "Vaidyaratna" was conferred upon him by the Government of India. Now he is the proprietor and chief physician of Aryavaidyasala, Principal of Aryavaidya Patasala, Secretary of Aryavaidya Samajam and member, Central Board of Indian Medicine. Besides these he is the Director of the Nedungadi Bank Ltd. and Warrier Bank Ltd., and now leads a philanthropic life.

* * *

पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य का

संक्षिप्त जीवनचरित ।

जन्म स्थान—तथा संवत् १९४८ विक्रम लाहौर (पंजाब) । कुल तथा माता-पिता । नाम रामदास जी वधवा, माता मखनी देवी जी, जाति अरोड़ वंश (क्षत्रिय) । आरम्भ में डी० ए० वी० कालेज लाहौर में संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करके कालेज की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षायें पास कीं—मध्यमा में द्वितीय और उत्तमा परीक्षा में सर्वतः प्रथम रहे—सन् १९११ में पंजाब यूनीवर्सिटी से शास्त्री परीक्षा पास की ' सन् १९१३ में पंजाब यूनीवर्सिटी की मैट्रिक परीक्षा पास की, सन् १९१५ में पंजाब यूनीवर्सिटी की एफ० ए० परीक्षा और डी० ए० वी० कालेज की अन्तिम संस्कृत परीक्षा उपाध्याय पास की । इस संस्कृताध्ययन काल में स्वर्गीय वेद-तीर्थ पं० भक्तराम जी शास्त्री, पं० राधाप्रसाद जी शास्त्री (वर्तमान-प्रोफेसर हिन्दुयूनिवर्सिटी बनारस, स्वर्गीय पं० आर्य्यमुनि जी महामहोपाध्याय, पं० राजाराम जी प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर से विद्याध्ययन किया ।

सन् १९१५ से १९१९ तक डी० ए० वी० स्कूल लाहौर में अध्यापक रहे । सन् १९१९ से १९२८ तक डी० ए० वी० कालेज के रिसर्च विभाग में गवेषणात्मक कार्य किये । साथही कालेज में प्रोफेसर रहे, बीच में ३ वर्ष दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय लाहौर के उपाचार्य (वाइस प्रिंसिपल) रहे—

कालेज के इस वर्ष रिसर्च विभाग में अथर्ववेद सम्बन्धी दो पुस्तकों का सम्पादन किये, जो कालेज रिसर्च विभाग से प्रकाशित की हुई हैं । (१) अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका (२) अथर्ववेदीयाऽनयोष्टत्रविधिः ।

सन् १९२८ में रावलपिंडी में वैद्य पञ्चानन पं० मस्तराम जी शास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य योगी रामनाथ जी शास्त्री से आयुर्वेदाध्ययन तथा औषध निर्माण-चिकित्सा विधि का ज्ञान प्राप्त किया, सन् १९३२ में हरिद्वार (कनखल) के श्रीयुत पं० योगेश्वर जी वैद्य से संग्रहणी आदि उदर सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा आदि का ज्ञान प्राप्त किया ।

९ वर्षों से लाहौर चैम्बर लेन रोड पर चिकित्सा कर रहे हैं । सन् १९३० में महात्मा गांधी द्वारा प्रचलित स्वतंत्रता आन्दोलन के संबंध में एक वर्ष के लिये कारागार हुआ । उसी जेल में आयुर्वेद मूल-भूत वेद से वैदिक आयुर्वेद-संग्रह का आरम्भ हुआ । निरंतर पाँच वर्ष के परिश्रम से ४०० पृष्ठों के लगभग वैदिक आयुर्वेद संग्रह की पाण्डु लिपि तैयार हुई है अभी और लेख तैयार हो रहा है ।

ये लेख क्रमशः ९ मासों से दयानन्दायुर्वैदिक कालेज लाहौर के मासिक-पत्र आयुर्वेद संदेश में निकल रहा है । एक छोटा-सा ट्रैक्ट ज्वर संबंध में वेद की क्या सम्मति है प्रकाशित हुआ है ।

इसके अतिरिक्त पंजाब वैद्य सभा के परीक्षा-विभाग के और लाहौर वैद्य सभा के मंत्री रहे हैं। पंजाब यूनीवर्सिटी की मैट्रिक और विशारद के परीक्षक पाँच वर्ष तक रहे हैं। अखिल भारतीयायुर्वेद महामण्डल पूना की भिषक् परीक्षा तथा दयानन्दायुर्वैदिक कालेज लाहौर की परीक्षाओं के भी परीक्षक रहे हैं।

वैदिकायुर्वेद ग्रन्थ, आशा है, शीघ्र ही छप कर आयुर्वेद-जगत् का महान् उपकार करेगा अभी संक्षेप से उस ग्रन्थ में आये वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा उपलब्ध रोगों के नाम और औषधियों की सूची वैद्यों को भेंट की जायगी। इनकी विशेष व्याख्या वैदिकायुर्वेद संग्रह में मिलेगी।

शिक्षा-केन्द्र से अतिरिक्त सेवायें—

कांग्रेस हिन्दू-सभा का पर्याप्त काम किये हैं पंजाब की प्रधान तथा प्रमुख संस्था जो हिन्दू जाति और हिन्दूस्थान की अत्यन्त सेवा कर रही है उस संस्था आर्य स्वराज्य सभा पंजाब की १९२२ से स्थापना की जो वृक्ष रूप से फलित है। लाजपतराय-स्टेचू लाहौर में मित्रों के सहयोग से बीस हजार रुपया लगा कर खड़ा किया। १२ हजार से लाहौर में मित्रों के सहयोग से रामकृष्ण आश्रम रावी रोड पर जनता के सेवार्थ बनाया। श्रद्धानन्द हिन्दू मिशन, दलितोद्धार-अबला-सेवा का काम अब कर रहे हैं। इस समय आर्य स्वराज्य सभा पंजाब के प्रधान हैं।

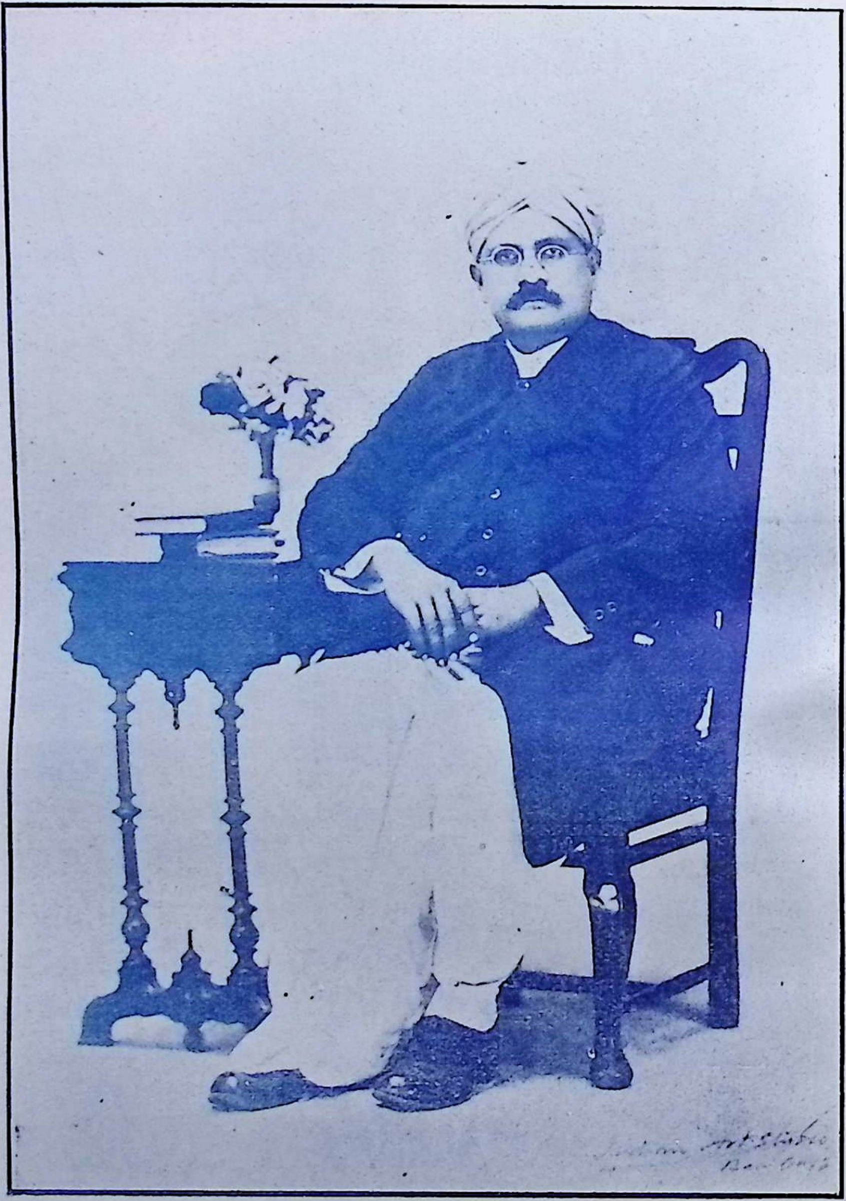

श्रीमान् वैद्य जेठालाल देवशंकरजी दवे

अध्यक्ष—दवे केमिकलवर्क्स और दवे आयुर्वेदिक-फार्मेसी, अहमदाबाद ।

वैद्य जेठालाल देवशंकर दवे का

संक्षिप्त जीवनचरित

सम्पादक—भाग्योदय और हुनर विज्ञान। अधिपति दवे आयुर्वेदिक फार्मेसी, गांधीरोड अहमदाबाद। शाखा कालबादेवी, बम्बई। वैद्यराज जेठालाल जी का जन्म संवत् १९४० के मार्गशीर्ष कृष्ण १४ को खेडा जिल्हे में नापाड नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता देवशंकर वजेराम उपाध्याय वैद्यकी वृत्ति से अपना निर्वाह करते थे। गुजराती, संस्कृत और अंग्रेजी का आपका ज्ञान विपुल है। मेट्रिक तक अध्ययन होने के बाद आपने रेवन्यू विभाग में १९०१ में नौकरी स्वीकार कर ली। इसी विभाग की ओर से १९०४ में आप मानसहित न्यायशास्त्र की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इससे आपका दरजा बढ़ कर आपने रेवन्यू विभाग की न्याय शास्त्र की परीक्षा का ग्रंथ लिख कर प्रकाशित किया। अनेकों सरकारी नौकरों को इस ग्रंथ का अध्ययन करके परीक्षा देनी पड़ती थी। इस ग्रंथ की चार आवृत्तियाँ समाप्त हो गईं। 'कायदा नो शिक्षक' नामक फौजदारी, दीवानी रेवन्यू कायदों का ग्रन्थ सन् १९०४ में आपने लिखा। उसकी कीमत १५) रु० होने पर भी चार आवृत्तियाँ समाप्त हो गईं और अब पाँचवीं आवृत्ति छपेगी। आपके पिता के संवत् १९६६ में स्वर्गवासी होने के बाद सब कार्यभार आपके सिर आ पड़ा। नौकरी के साथ साथ अपने पूर्वजों की परंपरा गत वैद्यकी वृत्ति से अपना गुजारा करते थे। १९१३ ई० में नौकरी को त्याग कर आप अहमदाबाद आये और वैद्य वृत्ति का आश्रय ग्रहण किया। इसी वर्ष आपने 'भाग्योदय' मासिक शुरू किया जिसमें तत्वज्ञान, वैद्यक आदि विषयों के लेख रहते हैं। इस मासिक ने इन २३ वर्षों में अच्छी प्रगति की है। १९१५ में 'घर नो वैद्य' नामक ग्रन्थ आपने लिखा १० बर्ष के पूर्व आपने हुनर-विज्ञान नामक मासिक शुरू किया। ८ वर्ष तक इसको चलाकर उसको बाद में 'भाग्योदय' मासिक के साथ संयुक्त कर दिया।

दवे आयुर्वेदिक फार्मसी और दवे केमिकल वर्क्स नाम से आयुर्वेदीय औषधें बनाने के लिए १९१० ई० में कारखाना शुरू किया जो अहमदाबाद में अच्छी तौर पर चल रहा है। यह आपके स्वालम्बन और दीर्घोद्योग के परिणाम से अखिल भारतवर्ष में विख्यात हो चुका है।

इसी के साथ साथ अपनी पुस्तकें, मासिक आदि के प्रकाशन के लिये 'भाग्योदय इलक्ट्रीक प्रिन्टिंग प्रेस, नामक मुद्रणयंत्रालय शुरू किया जो हाल में अहमदाबाद में अच्छी तौर पर चल रहा है। इसमें आपके लिखे हुए ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य होता है और दूसरे भी बड़े बड़े ग्रन्थों का मुद्रण यहाँ होता है। इस मुद्रणयंत्रालय की व्यवस्था का कार्य आपके पुत्र वैद्य रसिकचन्द्र जी करते हैं।

श्री चरक संहिता का गुजराती में अनुवाद करके उसका प्रथम खण्ड १९१६ ई० में मूलसहित प्रकाशित किया। उसकी प्रतियाँ समाप्त होने के कारण अब दूसरी आवृत्ति छपवाने का कार्य शुरू किया है। इस ग्रन्थ का दूसरा खण्ड १९३१ ई० में अनुवाद करके छपवाया। इसके सिवाय भैषज्यरत्नावली और चक्रदत्त, वैद्यरत्न, वैद्यविनोद, वैद्यामृत, बालबाधोदय, योगरत्नाकर आदि ग्रन्थों का अनुवाद करके गुजराती भाषा में प्रसिद्ध किये हैं। देशी वैदु, वैदोना अनुभूत प्रयोगों वैद्य याने वैद्यक भाग १—२ आदि वैद्यक ग्रन्थ गुजराती में लिख कर प्रसिद्ध किये हैं। इनमें से बहुतों की द्वितीयावृत्ति भी हो गई है।

आपका ज्योतिष का ज्ञान भी स्पृहणीय है आपने 'भविष्यवेत्ता' पुस्तक लिखकर प्रसिद्ध किया। इसका मूल्य ५) रु० होने पर भी इसकी चार आवृत्तियाँ पूर्ण हो चुकी हैं।

आपने अन्य विषयों के करीब ५० ग्रंथ लिखे हैं जिनमें से बहुतों की चार-चार आवृत्तियाँ हो गई हैं। कायदानो शिक्षक मूल्य १५ रुपया (चतुर्थावृत्ति), धनवान मूल्य ८ रुपया (पाँचवीं आवृत्ति), हिन्दुस्तान की तीर्थयात्रा मूल्य ७ रुपया (तृतीयावृत्ति), त्रिकालदर्शक योग का ग्रंथ ५ रुपया (चतुर्थावृत्ति), स्त्री हित-शिक्षक ४ रुपया (दूसरी आवृत्ति), गृहिणी रत्नमाला २ रुपया (दूसरी आवृत्ति), स्वधर्मनिष्ठ दैवी जीवन ४ रुपया, धन प्राप्तिनामार्गों ५ रुपया (प्रथमावृत्ति), मास्टर ऑफ नॉलेज ५ रुपया (दूसरी आवृत्ति), भविष्यवेत्ता ५ रुपया (चतुर्थावृत्ति), चमत्कृति ज्ञान-दर्शक योग का ग्रन्थ ५ रुपया (दूसरी आवृत्ति), एकाग्रता अने दिव्य-शक्ति, तत्त्वज्ञान का ग्रन्थ, आत्म-ज्योति किंवा ब्रह्मदर्शन योग का ग्रन्थ आदि करीब ५० ग्रन्थ आपने लिखे हैं जो बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

अहमदाबाद में वैद्य-सभा की स्थापना हुई तब से आप व्यवस्थापक समिति के सदस्य हैं। १९२६ ई० में वैद्य-सभा के आप अध्यक्ष चुने गये। १९२६—२७ में गुजरात प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री नियुक्त हुये।

१९२९ ई० में दवे फार्मेसी की शाखा बम्बई में खोली गई तब से आपको बम्बई बहुत समय रहना पड़ता है और अहमदाबाद में आपके ज्येष्ठ पुत्र वैद्यराज रमणीक राय दवे फार्मेसी के व्यवस्थापक का कार्य करते हैं।

१९३५ ई० में अहमदाबाद में नि० भा० वैद्य संमेलन हुआ तब सन्मान समिति के आप अध्यक्ष चुने गये, और १९३६ ई० के लिये गुजरात प्रान्तीय वैद्य संमेलन की स्थायी समिति के आप उपाध्यक्ष चुने गये हैं।

वैद्यराज ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए और ब्राह्मण के दया, क्षमा आदि गुणों से युक्त हैं। वैद्यों के प्रति आप अत्यंत आदरभाव रखते हैं। आपके दवे केमिकल वर्क्स की ओर से बनी हुई 'सुंदरी साथी' सर्व प्रदेशों में प्रसिद्ध है और अच्छे-अच्छे डाक्टर भी विदेशीय औषधों की जगह 'सुंदरी साथी' लेने की सिफारिश करते हैं। वैद्यराज जेठालाल देवशंकर दवे स्वावलंबन से उन्नत हुये हैं। आयुर्वेद की सेवा आपका प्रमुख ध्येय है और अपने मासिक 'भाग्योदय' द्वारा आयुर्वेद की सेवा २३ बर्षों से कर रहे हैं।

भाईलाल नंदलाल देसाई
एडवोकेट

भाग्योदय और हुनर-विज्ञान

भाग्योदय मासिक अहमदाबाद से वैद्यराज जेठालाल देवशंकर दवे २३ वर्षों से प्रकाशित करते हैं। इसमें वेदान्त, तत्वज्ञान, आयुर्वेद आदि विषयों के लेख आते रहते हैं। 'भाग्योदय' मासिक के संपादक वैद्यराज जेठालाल देवशंकर दवे स्वयं हैं और इसके व्यवस्थापक वैद्यराज रमणीकराय जेठालाल दवे हैं। इस मासिक का वार्षिक शुल्क ३ रुपया है। पर वैद्यों के लिये २ रुपया रखा है। प्रतिवर्ष भेंट की पुस्तक दी जाती है। इसका प्रचार हिंद भर में गुजराती भाषा जानने वालों में है। पहिले इसकी ३००० प्रतियाँ छपती थीं। अब २५०० प्रतियाँ जाती हैं। गुजराती भाषा में इस मासिक-द्वारा आयुर्वेद की अच्छी सेवा हो रही है।

वैद्यराज रमणीकराय जेठालाल दवे
'भाग्योदय' ऑफिस
गांधी रोड, अहमदाबाद

श्री दवे आयुर्वेदिक फार्मेसी और दवे केमिकल वर्क्स

अहमदाबाद और बंबई

अहमदाबाद में आयुर्वेदीय औषध शास्त्रीय पद्धति से बनवाने के लिये यह फार्मेसी १९१० ई० में निकाली गई। इसके अधिपति वैद्यराज जेठालाल देवशंकर दवे हैं। ये वैद्यराज १९२६ में अहमदाबाद वैद्य-सभा के अध्यक्ष और १९२६—२७ में गुजरात प्रान्तीय वैद्य संमेलन के प्रधान मंत्री थे। इस वर्ष में आप गुजरात प्रान्तीय वैद्य संमेलन की स्थायी समिति के उपाध्यक्ष नियुक्त किये गये हैं। दवे फार्मेसी की ओर से आयुर्वेदीय औषधें, रस, भस्म, आसव, अवलेह, गोलियाँ आदि विपुल प्रमाण में बनती हैं और दवे केमिकल वर्क्स की ओर से आयुर्वेदीय पद्धति से देशी पेटेन्ट औषधें बनती हैं। इनमें 'सुंदरी साथी' नामक दवा स्त्रियों के लिये समस्त हिंद भर में और चीन, अफ्रिका, बर्मा, सीलोन आदि प्रदेशों में भी बहुत प्रचार में है। इस फार्मेसी की व्यवस्था का कार्य वैद्यराज रमणीकराय जेठालाल दवे करते हैं। इस फार्मेसी के अंग-भूत श्री भाग्योदय प्रिन्टिंग प्रेस में सब तरह का मुद्रण-कार्य हो रहा है।

दवे फार्मेसी की शाखा १९२९ ई० में बम्बई में कालबा देवी रोड के स्थान पर खोलने में आयी। इसका उद्घाटन कार्य अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध मिल एजेन्ट स्वर्गीय सेठ मंगलदास गिरधरदास जी के शुभ हस्तों से हुआ था।

दवे फार्मेसी की 'सुंदरी साथी' नामक दवा बहुत सुविख्यात और लोकप्रिय है। और अनेकों वर्षों से विदेशी औषधों की जगह अच्छे-अच्छे डाक्टर लोग इस दवा को उपयोग में लाते हैं। दवे फार्मेसी प्रतिवर्ष १००० रुपया तक का इन्कमटैक्स भरती है। इसके अधिपति वैद्यराज जेठालाल दवे अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध वैद्य हैं। बम्बई में भी आपकी प्रसिद्धि बहुत है।

इन्दौर के राजवैद्य श्री वैद्यराज पं० ख्यालीरामजी द्विवेदी का

संक्षिप्त परिचय।

मालवा के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री वैद्यराज पं० ख्यालीराम जी द्विवेदी ने होलकर राज्य की राजधानी इन्दौर में निवास करते हुए अपने ५० वर्ष के जीवन काल में आयुर्वेद की जैसी सेवा और उत्थान किया है वह कुछ यहाँ पाठकों के परिचयार्थ लिखा जा रहा है।

आपके पितामह कान्यकुब्ज वंशज जयराजमऊ के द्विवेदी पं० देवीप्रसाद जी द्विवेदी युक्तप्रान्त के जिला रायबरेली, ग्राम डलमऊ से लगभग १०० वर्ष पूर्व सर्व प्रथम इन्दौर आये थे। प० देवीप्रसाद जी के पुत्र पं० गणेशराम जी द्विवेदी हुए जिनके कि अन्तिम पुत्र राजवैद्य पं० ख्यालीराम जी द्विवेदी हैं। अपने पिता के १५ सन्तानों में से केवल आपही एक पुत्र तथा तीन कन्या संतानें शेष रहीं। कन्याओं का विवाह यू० पी० के उच्च कान्यकुब्ज कुलों में पिता के समय में ही हो गया था। वैद्यक व्यवसाय आपका कुल परंपरागत है। देश में इस वैद्यक सेवाओं के उपलक्ष में इनके पूर्वजों को खजूर ग्राम आदि राजाओं से जिला रायबरेली में बहुत-सी जमीनें वृत्ति के रूप में मिली हुई अब तक चली आ रही हैं। आपके पिता पं० गणेशराम जी आयुर्वेद के अतिरिक्त संस्कृत के अन्यान्य शास्त्रों के अच्छे विद्वान थे। आयुर्वेद का अध्ययन बड़ोदा राज्य के कारवण ग्राम निवासी राजवैद्य पंडित भवानीशंकर जी से किया था। अध्ययन करने के बाद बड़ोदा राज्य में उन्होंने कई वर्षों तक इन्हीं लोगों के अनुरोध से निवास किया था और वहाँ चिकित्सा कार्य भी किया था। वहाँ इनकी चिकित्सा-चातुरी से प्रसन्न होकर गायकवाड़ सरकार से डभोई ग्राम के पास ३०० बीघे जमीन भी जागीर की तौर पर मिली थी, पर इन्दोर के लोगों के आग्रह से ७, ८ वर्ष बाद उस जमीन को एक शिष्य के सपुर्द करके इन्दौर चले आये। यहाँ आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा अच्छी ख्याति और सफलता प्राप्त की। तत्कालीन महाराजा शिवाजी राव की तथा अन्य राज्य घराने के लोगों की आपही के द्वारा प्रायः आयुर्वेदिक चिकित्सा होती थी। इसके उपलक्ष में दस-दस हजार रुपये उन्हें राजघराने से कई बार भेंट तथा लगभग चार सौ बीघे जमीन भी मिली थी, जो कि वैद्य पं० गणेशराम जी के आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रत्यक्ष निदर्शन था।

आपके यहाँ सं० १९४९ में श्री वैद्यराज पं० ख्यालीराम जी का जन्म हुआ। कुल परंपरा गत व्यवसाय के अनुसार कुछ व्याकरण और साहित्य पढ़ा कर पिता ने आपको आयुर्वेद पढ़ाया, प्रत्यक्ष अपने साथ में रख कर अनुभव और क्रियाभ्यास कराया। फलस्वरूप बीस वर्ष की अवस्था से ही अच्छी कुशलता के साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा का कार्य आप करने लगे। पिता के देहान्त के बाद सन् १९०६ में प्रभाकर औषधालय नाम के औषधालय को जो कि पिता के समय से चला आ रहा था, दितवारीया बाजार इन्दौर के निजी भवन में सुव्यवस्थित रूप दिया, तथा सन् १९१५ में वैद्य ख्यालीराम आयुर्वेदिक फार्मेसी नाम की संस्था की

स्थापना बियाबानी मोहल्ले में की। ये दोनों संस्थाएँ इन्दौर में उस समय पर उस स्वरूप में स्थापित हुईं जब कि इन्दौर में क्या, सुदूर अन्य स्थानों में भी ऐसी व्यवस्थित संस्थाएँ नहीं थीं। आगे चल कर इन्दौर के आयुर्वेद प्रेमी श्रीमानों के लिये ये संस्थाएँ पथप्रदर्शक हुईं। आज इन संस्थाओं का आदर्श लेकर इन्दौर राज्य में कई आयुर्वेदिक संस्थाएँ खुल चुकी हैं। दिनों-दिन उन्नति होकर आज इस फार्मेसी में सर्व प्रकार की औषधियाँ हजारों रुपयों की प्रत्येक समय तैयार होती रहती हैं, औषधालय से नित्य-प्रति सैकड़ों रोगी निःशुल्क तथा सशुल्क औषध काम में लेते रहते हैं।

वर्तमान में वैद्यराज जी के आयुर्वेद मन्दिर के कुल निम्न लिखित प्रकार से दस विभाग हो गये हैं।

१ प्रभाकर औषधालय, २ वैद्य ख्यालीराम फार्मेसी, ३ सिद्धौषध भण्डार, ४ वृहद् वनौषधवाटिका, ५ आतुरालय, ६ डेरी फार्म, ७ शाखाएँ, ८ एजेन्ट्स, ९ परमार्थ, १० विक्रय।

वर्तमान में वैद्यराज जी के चार पुत्र और चार कन्याए हैं। आप अपने लड़कों को भी परंपरागत व्यवसाय के अनुसार संस्कृत और आयुर्वेद का अध्ययन करा रहे हैं। आपके जेष्ठ पुत्र वैद्य पंडित कन्हैयालाल जी द्विवेदी ऊपर लिखे हुए विभागों का संचालन बहुत ही दक्षता एवं संलग्नता के साथ कर रहे हैं। आप संस्कृत के अन्य विषयों के साथ आयुर्वेद के अच्छे विद्वान् हैं और वैद्यराज जी की तरह आप भी यशस्वी तथा सार्वजनिक कार्यों में उदार भावना के व्यक्ति हैं। आपके भी दो पुत्र तथा दो कन्याए हैं। उपरिलिखित विभागों-द्वारा सैकड़ों रोगियों को नित्यप्रति आरोग्य लाभ होता रहता है। मध्यप्रान्त, मध्यभारत तथा राजपूताना आदि भारत के अनेक प्रान्तों के रोगी दूर-दूर से आकर आपके आतुरालय में रहकर आपकी चिकित्सा से लाभ लेते हैं। अतुरालय सदा वैद्यराज जी के चिकित्सार्थी रोगियों से भरा रहता है। पचीस बीघे विस्तार की जमीन में आतुरालय, डेरीफार्म, वनौषधि बाटिका आदि विभागों का कार्य चालू है। आतुरालय में रहने वाले रोगियों को डेरी फार्म से ही ताजा दूध-दही, तक्र आदि के देने की व्यवस्था रहती है। वनौषध वाटिका में प्रायः आयुर्वेदोपयोगी दुर्लभ औषधियों की ताजे रुप में प्राप्ति के लिए व्यवस्था की जा रही है। आज भी सैकड़ों औषधियाँ उसमें सदा ताजी प्रस्तुत मिलती हैं। मध्यभारत, मध्यप्रान्त तथा अन्यान्य प्रान्तों के कई मुख्य प्रधान नगरों एवं उपनगरों में शाखाएँ खुली हुई हैं, एजेन्ट्स भी समुचित कमीशन पर भारत के विभिन्न प्रान्तों में सदा भ्रमण कर प्रचार करते रहते हैं। सिद्धौषध भंडार में १५०००, २०००० की दवाइयें हरवख्त तयार सुरक्षित रहती हैं। विक्रय विभाग से सब प्रकार की औषधियाँ भारत के प्रायः प्रत्येक प्रान्तों के लोग हजारों रुपयों की तायदात में वी० पी० से मंगाते और स्थानीय लोग लेते रहते हैं। परमार्थ विभाग से पचास हजार के ऊपर-ऊपर अबतक खर्चा किया जा चुका है। इस प्रकार इन दस विभागों-द्वारा वैद्यराज जी का आयुर्वेद मन्दिर तीस वर्ष से लोकसेवा कर रहा है।

इन विभागों द्वारा लोक सेवा के अतिरिक्त स्वयं वैद्यराज जी की समस्त रोगों में अव्यर्थ चिकित्सा इतनी लोक प्रिय है कि राजा, महाराजा, धनी, दीन, सभी अपनाते हैं। यही कारण है कि मार्ग व्यय आदि के अतिरिक्त आपकी बाहर की फीस दो सौ रुपये रोजाना नियत होने पर भी बाहरी लोग आपको प्रसन्नता से बुलाते और लाभ उठाते हैं। ऐसे ही स्थानीय लोग भी। राजपूताना और मध्यभारत की कई रियासतों के राजघराने में प्रायः

आपकी ही आयुर्वेदिक चिकित्सा अपनाई जाती है। होलकर राज्यघराने में तो सदा आपकी चिकित्सा चलती रहती है। भूतपूर्व महाराजा तुकोजीराव होलकर बहादुर स्वयं आपकी ही आयुर्वेदिक चिकित्सा को अपनाते थे। महाराज ने छः सौ रुपये मासिक वेतन पर आपको आयुर्वेदिक कार्य-निरीक्षणार्थ तथा अपने चिकित्सार्थ नियुक्त करने की आज्ञा दी थी, जिस बंधन को बहुत विनय के साथ वैद्यराज जी ने टाल दिया था, किन्तु पूर्ववत् स्वतंत्र रूप से चिकित्सा द्वारा सेवा राजघराने की आवश्यकतानुसार आजतक जारी रखी है।

वर्तमान में डाक्टर, वैद्य और हकीमों के रजिस्टिर्ड कराने और चिकित्सा के लिए अधिकार देने एवं जाँच के लिए संस्थापित होलकर गवर्नमेन्ट की इन्दौर मेडिकल कौंसिल के आप गवर्नमेन्ट द्वारा मनोनीत कौंसिलर हैं। आपने डाक्टरों की तुलना में वैद्य के अधिकार समान रखाने में अथक प्रयत्न किया है, जिसका कि यह फल हुआ है कि इन्दौर राज्य में बड़े से बड़े डाक्टरों के समान ही रजिस्टर्ड वैद्यों की सारटीफिकेट देने और विषोपविषादि सभी औषधियों को बिना नियंत्रण के व्यवहार करने का पूर्ण अधिकार है।

आपकी आयुर्वेदिक सेवाएँ

इन्दौर में निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल का ११ वाँ सम्मेलन आपके स्वागत-सभा के प्रधान मंत्रित्व में और आपके ही अथक परिश्रम से सन् १९२१ में सम्पन्न हुआ था, जिसमें कि महामहोपाध्याय डाक्टर गणनाथसेन जी सरस्वती सभापति थे। आपने द्रव्य और परिश्रम की परवाह न करके इस संमेलन को पूर्णरूप से सफल बनाया था।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल तथा विद्यापीठ की प्रबंध कारिणी के समय-समय पर सदस्य रह कर आवश्यक कार्यों में योग दिया। विद्यापीठ के आदेशानुसार भिषक, विशारद और आचार्य परीक्षाओं का सन् १९१७ से परीक्षण कार्य करते रहे। विद्यापीठ की इन्दौर केन्द्र की परीक्षाओं के व्यवस्थापक भी रह कर कई वर्षों तक कार्य किया है।

आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के लोगों में प्रचारार्थ आरोग्य-विज्ञान नाम का एक मासिक-पत्र भी आपने अपने मालिकपन और संपादकत्व में सन् १९३२ में निकाला था, जिसकी कि पत्रकारों ने बहुत प्रशंसा की थी। वर्तमान में वह पत्र बन्द है।

इन्दौर राज्य के समस्त वैद्यों को सुसंघठित करने के लक्ष से आपने वैद्य सभा, इन्दौर नाम की एक सभा स्थापित कराई, जो कि आज तक अच्छे रूप में महामण्डल से सम्बद्ध होकर चली आ रही है। इस सभा द्वारा अनेक आयुर्वेदोपयोगी कार्य समय-समय पर होते रहते हैं। आप इस सभा के सभाध्यक्ष हैं।

आयुर्वेद की शिक्षा देने के लिये आपने स्थानीय श्रीमानों को प्रेरित कर सन् १९२० में आयुर्वेदिक ब्रह्मचर्याश्रम लालबाग पुलिया, इन्दौर नाम की एक संस्था स्थापित की है, जिसमें आपकी तरफ से बहुत-सा द्रव्य लगाया गया है। इस संस्था के आपही प्रधान मंत्री होकर चला रहे हैं, इस संस्था के १५ ट्रस्टी हैं। दो सौ रुपया मासिक खर्च है। भिषक्, विशारद, और आचार्य तक की पढ़ाई होती है। विद्यार्थियों के रहने और भोजन वस्त्रादि का पूर्ण प्रबंध है।

मालवा, मध्यप्रान्त एवं मध्यभारत जैसे प्रान्तों में आपके पढ़ाये हुए सैकड़ों छात्र आज विविध स्थानों में वैद्यक व्यवसाय करते हुए आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। प्रति वर्ष

आपके छात्र विद्यापीठ की तथा अन्यान्य परीक्षालयों की विविध परीक्षाओं में बैठते और पास होकर निकलते हैं। इस प्रकार अनेक कार्य भार रहते हुए भी स्वयं आयुर्वेदिक शिक्षा देने के लिए आप अपना निजी समय सदा विद्यार्थियों को देते हैं।

आपकी प्रेरणा प्रोत्साहन और अनुमति से इन्दौर में तथा इन्दौर के बाहर भी आयुर्वेद की निम्नलिखित संस्थाएँ स्थापित होकर चल रही हैं।

१ श्री वैष्णव धर्मार्थ औषधालय, शीतला माता बाजार, इन्दौर। इस संस्था के आप जन्मदाता और प्रेसिडेन्ट हैं।

२ श्रीकृष्ण औषधालय, संयोगिता गंज, इन्दौर। इसके भी आप जन्मदाता और सभापति हैं।

३ सरदार बोलीया सरकार स्मारक आयुर्वेदिक औषधालय, इमली बाजार, इन्दौर। आपके ही प्रयत्न से यह स्थापित हुआ और आपके ही देख-रेख में चलता है।

४ प्रिन्स यशवन्त राव आयुर्वेदीय जैन औषधालय, इन्दौर। आप इस संस्था के एडवाइजर हैं।

५ इसके अतिरिक्त सनावद, बड़वाहा आदि इन्दौर के बाहर स्थानों में भी कई औषधालय आपकी सम्मति से खुले और आपके दिग्दर्शन के अनुसार चल रहे हैं।

आपकी इन आयुर्वेदिक सेवाओं के उपलक्ष में कई संस्थाओं ने आपको उपाधि, पदक, मानपत्र और प्रशंसापत्र से सम्मानित किया है। जैसे—

१ निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल ने आरंभिक समय में आयुर्वेदाचार्य की उपाधि से आपको सम्मानित किया था, और दशवें अधिवेशन के समय दिल्ली के प्रदर्शन में फार्मेसी की तरफ से वनस्पति और रस, भस्म आदि के रखने पर तथा आयुर्वेद संबंधी निबंध पर सर्वोच्च स्वर्णपदक प्रदान किया है।

२ आल इन्डिया वैद्यक एन्ड यूनानी तिब्बी कान्फरेन्स देहली ने सन् १९१९ में प्रशंसापत्र और पदक प्रदान किया है। खंडवा नगर वैद्य सभा आदि कई आयुर्वेदिक सभाओं ने मानपत्र दिये हैं।

३ आल इन्डिया सेनिटरी सायंटिफिक एन्ड इन्डीजीनीस ड्रग्स इक्जिबीशन इन्दौर ने सन् १९२२ में स्वर्णपदक तथा प्रशंसापत्र प्रदान किया है, इसी प्रकार १९३३ में अखिल भारतवर्षीय स्वदेशी प्रदर्शनी इन्दौर ने प्रशंसा-पत्र और पदक दिया है।

४ श्री वैद्य सभा इन्दौर ने सन् १९२५ में आयुर्वेदमार्तण्ड की सम्मानित उपाधि आपको दी है।

५ मध्यभारतीय वैद्य संमेलन ने नागौद में तृतीयाधिवेशन के समय सन् १९३६ में चिकित्सक चूड़ामणि की उपाधि आपको प्रदान की है।

आयुर्वेदिक सेवाओं के अतिरिक्त आपने अन्य सार्वजनिक कार्यों में भी समय-समय पर प्रमुख भाग लिया है और ले रहे हैं। निम्नलिखित सभाओं के सभापति या अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता रह कर उनको सफल बनाया है जैसे—

नगर हिन्दू सभा इन्दौर—इस सभा का आपके ही हाथों से इन्दौर में बीजारोपण होकर विकास हुआ है। इस सभा के, आपने चार वर्ष तक सभापति रह कर काम किया है। इन्दौर का प्रसिद्ध हिन्दू मुसलिम दंगा इसी चार वर्ष के भीतर हुआ था, उस समय आपके सभा-

पतित्व में हिन्दू सभा ने हिन्दू पक्ष को जिस खूबी के साथ उज्ज्वल रख है, वह स्मरणीय रहेगा। कान्यकुब्ज विद्या प्रचारणी सभा इन्दौर, जो कि इन्दौर राज्य के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक प्रतिष्ठित संस्था है, उसके आदि जन्मदाता और वर्तमान में सभाध्यक्ष भी आपही हैं। बिखरी हुई कान्यकुब्ज जाति को संगठित करने में और विद्या प्रचार में वैद्यराज जी के नेतृत्व में इस सभा ने अपूर्व काम किये हैं। 'सनातन धर्म रक्षणीय सभा इन्दौर' के भी आपही जन्मदाता हैं, वह सभा इन्दौर में धर्म के संबंध में आजतक कार्य कर रही है। मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप शुरू से ही मूल घटक हैं। मध्यभारतीय खादी प्रदर्शनी इन्दौर के आप सभापति थे। निखिल भारतवर्षीय स्वदेशी प्रदर्शनी इन्दौर १९३३, जिसका कि आयोजन इन्दौर में हुआ था, आप उपसभापति थे। एवं निखिल भारतवर्षीय ग्रामोद्योग प्रदर्शनी के, जिसका कि उद्घाटन महात्मा गांधी के हाथों से सन् १९३५ ईसवी में इन्दौर में हुआ था, उसके भी अध्यक्ष आपही थे। वर्तमान में होलकर सरकार के प्रजा कष्टदायक बिलों को रद्द कराने के लिये प्रजा कष्ट-निवारक मण्डल नाम की संस्था का संगठन करके उसके प्रधान मंत्री होकर प्रजाकष्टों को दूर करने का जबरदस्त कार्य कर रहे हैं। इसमें अंशतः सफलता भी आपको मिल चुकी है। कांग्रेस के राष्ट्रीय कार्यों से भी आपको अच्छी अभिरुचि रहती है। शायद ही ऐसा कोई वर्ष गया हो जिसमें आप उसके वार्षिक अधिवेशनों में न सम्मिलित हुये हों।

इस प्रकार वैद्यराज पंडित ख्यालीराम जी द्विवेदी एक सफल वैद्य होते हुए लोकोपयोगी कार्यों में काफी लगन के साथ अग्रसर रहते हैं। यह वैद्य जगत के लिए गौरव की बात है।

इन्दौर। अश्विनीकुमार शर्मा, वैद्यविशारद

* * *

श्रीमान् महाराजा श्री भगवतसिंहजी

जी. सी आई. ई; एम् डी; एल्. एल्. डी; डी. सी. एल्.

महाराजा ठाकोर साहेब, गोंडल (काठियावाड)।

'ए शोर्ट हिस्टरी ओफ आर्यन मेडीकल सायन्स,'

'भगवद्गोमंडल' इत्यादि ग्रंथनिर्माता।

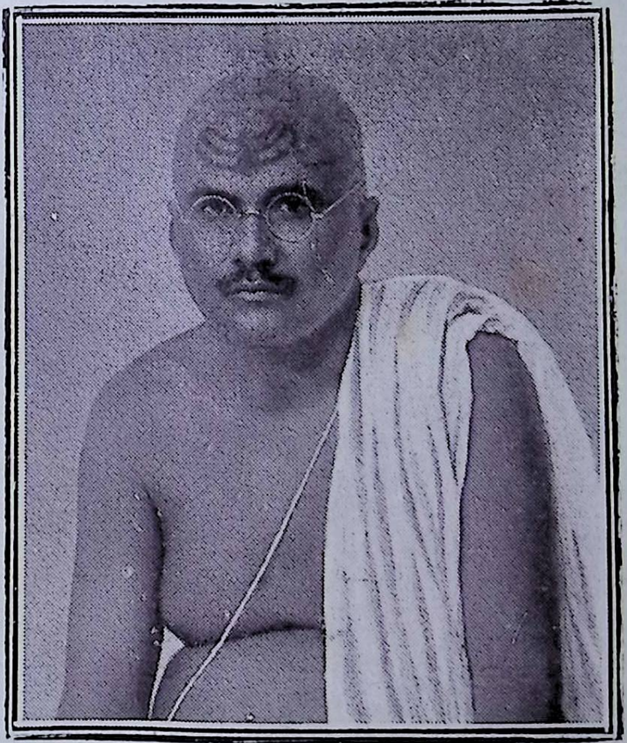

श्रीमान् राजवैद्य पं. जीवराम कालीदास शास्त्री

गोंडल (काठियावाड)।

संपादक, आयुर्वेदरहस्यार्क (गुजराती मासिकपत्र)।

रसशाला औषधाश्रम के संस्थापक

राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री महोदय का

संक्षिप्त जीवनेतिवृत्त।

जिस रसशाला औषधाश्रम का नाम आज जगत् विख्यात हो गया है, उसके संस्थापक और संचालक अनेक ग्रन्थों के कर्ता, अनुवादक, आयुर्वेद रहस्यार्क, पारद आदि मासिक पत्रों के संपादक राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्रीजी पचीस वर्ष से भी अधिक समय से भारतवर्ष के वैद्य-चिकित्सक-समाज में प्रख्यात हैं। वैद्यराज जी का जन्म औदीच्य सहस्र ब्राह्मण कुटुम्ब में वि० संवत् ३९३९ के माघ शुक्ल १० रविवार के दिन जामनगरान्तर्गत मेवासा नामक ग्राम में हुआ था। ८ वर्ष ही की अवस्था में माता-पिता का देहावसान हो जाने के कारण आपने वि० सं० १९५७ तक गोंडल में अपने काका के यहाँ रहकर भिक्षावृत्त से आजीविका चलाई, तथा पूज्य केवलराम लीलाधर जी शास्त्री के पास संस्कृत का संपूर्ण अभ्यास कर शास्त्री की पदवी प्राप्त की। कंटालकर चैत्र संवत् १९६० में आप गिरनार चले गये। वहाँ श्री अम्बा जी के मंदिर में हिमालय के श्री अच्युतानन्द ब्रह्मचारी जी से भेंट हो गई। ब्रह्मचारी जी संस्कृत, आयुर्वेद, मंत्रशास्त्र, योग और अन्य अनेक शास्त्रों में पारंगत थे। लगभग दस मास तक आप इनके साथ रहे। उन्होंने हस्त लिखित आयुर्वेद तथा रसायन-शास्त्र के ग्रन्थ आपको पढ़ाये और बहुत से गूढ गुरुभेद बताये, संवत् १९६१ वि० के आश्विन मास में ब्रह्मचारीजी ने अपने पास के हस्तलिखित मंत्रशास्त्र, वैद्यक और रसायन-शास्त्र आदि के ग्रंथ देकर बिदा किया। वहाँ से लौट कर आप बम्बई आये और ब्रह्मचारीजी की आज्ञानुसार रस-वैद्य बालाशंकर भाई के पास आयुर्वेद का शेष अभ्यास किया तथा तद्विषयक अनुभव प्राप्त किया। माघ संवत् १९६४ में गुलालवाड़ी में अपना स्वतंत्र औषधालय खोला और इसी समय में रसरत्न-समुच्चय नामक रसायनशास्त्र के गूढ तथा क्लिष्ट ग्रंथ का अनुवाद करके छपाया। वैद्यराज के मित्र रावसाहेब पुरुषोत्तम ओधवजी ने आपका राव बहादुर सेठ वसनजी खीमजी का परिचय कराया ये सेठ कुछ उग्र स्वभाव के होने पर भी सत्यवादी, परोपकारी तथा शास्त्र प्रेमी थे। वैद्यराज का आपसे परिचय बढ़ता ही गया। सदैव घंटों तक धर्मशास्त्र, श्रुति, स्मृति, वेदान्त, उपनिषद, महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि की चर्चा चलती रही। साथ ही आयुर्वेद की भी चर्चा हुआ करती थी, जिससे सेठजी को वैद्यक के प्रति भी प्रीति उत्पन्न होने लगी। अतः एक देशी औषधियों का कारखाना खोलने के लिए वैद्यराज ने सेठजी को तैयार कर लिया। सेठजी ने वैद्यराज को दो लाख रुपये देना स्वीकार किया और योजना माँगी। वैद्यराज ने सारी योजना लिख कर बता दी। उसी समय वैद्यराज का अर्श रोग एकाएक बढ़ गया, और शरीर एकदम क्षीण हो गया। अतः आरोग्य होने पर देश ही में रहने का निश्चय किया और "रसशाला औषधाश्रम" नामक संस्था की, संवत् १९६६ की माघ शुक्ला ५ को स्थापना की। उस वक्त

वैद्यराजजी के पास केवल ४०) रुपये रहे थे, परन्तु आपको अटल आत्मविश्वास था। उसी समय आयुर्वेद तथा अन्य विषयों पर वर्तमान पत्रों में वैद्यराज ने जो धारावाही लेख लिखना शुरू किया था, उससे आपने सारे भारतवर्ष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। यह जान कर कि वैद्यराज को रसशाला के हेतु द्रव्य की आवश्यकता है, अनेक स्नेहियों ने मिलकर छः महीने में हजारों रुपये भेज दिये। रुपये प्राप्त होने पर भी इस छोटे से गाँव में कारखाना आगे चलाने में बहुत-सी कठिनाइयाँ सन्मुख उपस्थित थीं। उसी समय दैववशात् अनायास ही गुरु श्री अच्युतानन्दजी मेवासा आ पहुँचे। गुरुजी ने आश्वासन तथा द्रव्य की एक बड़ी रकम देकर शीघ्र ही इस संस्था को गोंडल ले जाकर विधिपूर्वक रसशाला स्थापित करने की आज्ञा दी।

गोंडल में रसशाला औषधाश्रम

वैद्यराज ने गुरु की आज्ञानुसार तुरन्त गोंडल जाने की तैयारी की। गोंडल में आरम्भ में साधारण मकान तथा बाद में सरकारी बंगला भाड़े का ले लिया। किन्तु उसमें स्थान की संकीर्णता होने के कारण छः हजार वर्ग यार्ड जमीन तथा बंगला मोल ले लिया। इसके अनन्तर श्रीमन्त महाराजा श्री भगवतसिंहजी बहादुर, गोंडल नरेश की ओर से बड़ी सहायता मिली। अब रसशाला का प्रथम काम था शास्त्रीय औषधियों को व्यापारी पद्धति से जनसमाज के समक्ष रखना। अतः वैद्यराज ने रसशाला औषधाश्रम के लिये भी प्रारंभ में वैसा ही किया। पश्चात् सूची पत्रों की शैली में बहुत-सा परिवर्तन करना पड़ा।

इस प्रकार से क्रमशः अपूर्णताएँ पूर्ण होती गईं। वैद्यक साहित्य का प्रचार कार्य भी बहुत आगे बढ़ता गया। भारतवर्ष तथा दुनियाँ के बहुत से भागों में रसशाला की ख्याति बढ़ती गई। इस भांति रसशाला की प्रसिद्धि तथा वैद्यराज की आयुर्वेद में निपुणता देख संवत् १९७२ में श्रीमन्त गोंडल नरेश महाराजा श्री भगवतसिंह जी बहादुर ने आपको स्टेट का "राजवैद्य" नियुक्त किया।

रसशाला की ओर से प्रकाशित सूची पत्रों के अतिरिक्त वैद्यक साहित्य के रूप में विविध औषधियाँ बनाने का, विविध रोगों के नष्ट करने का ज्ञान भी दिया जाता है, जिससे रसशाला औषध आदि के द्वारा जनता की जितनी सहायता सेवा कर सकती है, उतनी ही सेवा रसशाला के वैद्यक साहित्य के प्रचार से देहाती जनता की करती है। रसशाला में बनने वाली औषधियों में पड़नेवाली काष्ठौधियाँ ताजी काम में लाई जाती हैं। निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के प्रदर्शनों तथा देश में होने वाले विविध प्रदर्शनों में इस कारखाने को सुवर्ण पदक और प्रथम श्रेणी के प्रमाणपत्र प्राप्त होते रहे हैं। रसशाला ने आज तक सब भाषाओं में मिल कर लगभग सात लाख सूचीपत्र प्रकाशित किये हैं। आयुर्वेद रहस्यार्क और पारद मासिक की हजारों प्रतियाँ प्रकट की हैं। रसोद्धार तंत्र (आयुर्वेद उपचार पद्धति) नामक ग्रंथ प्रथमवार संवत् १९६८ में १०० पृष्ठ में छपा था उसी की आज ४०० पृष्ठ की पक्की जिल्द सहित १८वीं आवृत्ति में ४७ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। रोग के कारण, चिन्ह, लक्षण, उपचार, घरेलू औषधियाँ बनाने की कृति, आरोग्य रक्षण, प्रसूता स्त्री की सुश्रूषा, शिशुपालन, आयुष्यवृद्धि के प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि विवध विषयों का इस ग्रंथ में समावेश किया गया है जिससे केवल इसी एक ग्रंथ के आधार से चाहे जिस स्थान में रहने वाला

मनुष्य विद्वान वैद्य की भाँति बिना भ्रांति पाये ही रोगों को नष्ट कर सकता है और गृहस्थ लोग अपने कुटुम्ब की आरोग्य रक्षा कर सकते हैं। इसके सिवाय राजवैद्य ने वैद्यक, इतिहास, मंत्र शास्त्र आदि विषयों के बहुत से ग्रंथ प्रसिद्ध किये हैं।

औषधों का धर्मार्थ व्यय

आयुर्वेद की आज्ञानुसार राजवैद्यजी ने रसशाला के साथ ही धर्मादा विभाग चालू किया है। उसके द्वारा किसी भी जाति के गरीब आदमियों को मुफ्त औषधि दी जाती है। भारतवर्ष में धर्मादे में दवा देने वाले पारमार्थिक औषधालयों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। आप बड़ेही सुयोग्य और यशस्वी वैद्य हैं।

स्वर्गीय श्री० श्रीकृष्णराम भट्टमहाभागानां

जीवनेतिवृत्तम् ।

आसीन्मेदपाटीयभट्टा–(भट्टमेवाड़ा)–ह्वजातीयो महीसुप्रवरः पण्डितप्रकाण्ड आयुर्वेदागमप्रवीणः 'कुन्दनजी'त्युपनामकः श्रीजीवरामभट्टः । यः खलु जयपुरराजकीय—संस्कृतपाठशालायाःप्रारम्भे जयपुरपुरन्दरेण श्रीरामसिंहमहाभागेन सादरं समर्पितमायुर्वेदविद्यायाः प्रथमाध्यापकपदमतितरामलञ्चकार । तस्य तनयद्वये ज्येष्ठः सर्वविधगुणगणैर्जयपुरजनतायाः परमप्रेष्ठश्च पण्डितश्रेष्ठः श्रीश्रीकृष्णरामशर्मा भिषग्रत्नमभूत् । जीवनरामशर्मणः क्रमशः परिणीते पत्नीद्वये प्रथमायामेव कुशाग्रधिषणः पञ्चोत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवत्सरे कृष्णजन्माष्टम्यां जन्म लेभे । अस्यैव च वैमात्रेयः कविमल्लश्रीहरिवल्लभशर्माऽसीत्, येन 'जयपुरपञ्चरङ्ग' प्रभृतयोऽनेके काव्यप्रबन्धा निरमीयन्त ।

बाल्य एवासौ मेधावी स्वपितुरेव समधिगतव्याकरणायुर्वेदाद्यागमः सुप्रसिद्धगुरूपनाम्नः श्रीजीवनाथशास्त्रिणः साहित्यशास्त्रम्, आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनां दीक्षागुरोः श्रीचन्दनदाससाधुतश्च छन्दःशास्त्रमधिगतवान् । तदेतत् तेन स्वयमेव प्रत्यपाद्यत सर्वेष्वपि स्वप्रणीतप्रबन्धेषु । तथा हि—

"येनाऽशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय-
शछन्दश्चन्दनदासतः सगणितं, वैद्यागमस्तातः ।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नूतनकाव्यपञ्चककृतिः श्रीकृष्णरामः कविः ॥"

ततश्च लब्धसर्वविधविद्यो द्वात्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवर्षे स्वपितृपरम्परया प्राप्तं संस्कृतपाठशालायामध्यापकपदमुररीकृतवान्, अध्यापितवांश्च चिकित्सकचूड़ामणिं श्रीश्यामलालवैद्यराजमहोदयम्, श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागम्, तथाविधानपरांश्च महायशसः स्वशिष्यान् । काव्यायुर्वेदोभयाध्यापनविषये तस्यातीव प्रावीण्यमासीदित्यद्यापि संगिरन्त एव तदीया अन्तेवासिनः । तारस्वरसंपन्न एष महात्मा यदाऽध्यापति स्म, तदा सर्वाऽपि पाठशाला तदीयेन स्वनेन परिपूर्यते स्मेत्यपि श्रूयते ।

सोऽयं भिषग्वरः श्रीजयपुरमहीपतेर्लब्धग्रामस्य स्वपितुर्धनसम्पदमुपभुञ्जानः सर्वविधसौख्यसम्पन्नः, अत एवादीनस्वभावः सुतरां विलासी चासीत् । तदेवंविधगुणगणरमणीयायामत एवात्युर्वरायामस्य नैसर्गिकप्रतिभापृथिव्यां सहृदयहृदयाह्लादिनी कवितालता तथा कुसुमिता बभूव, यथा सर्वोऽपि भारतभूमिभागः सुधीजनसुरभिणा सौरभेण संप्रत्यपि सुतरामामोदमानमानसो भवति ।

एवंविधस्य कवेर्हृदयं कवितायां प्रतिबिम्बितं भवतीति तत्प्रणीतकाव्येभ्यः कानिचिद्

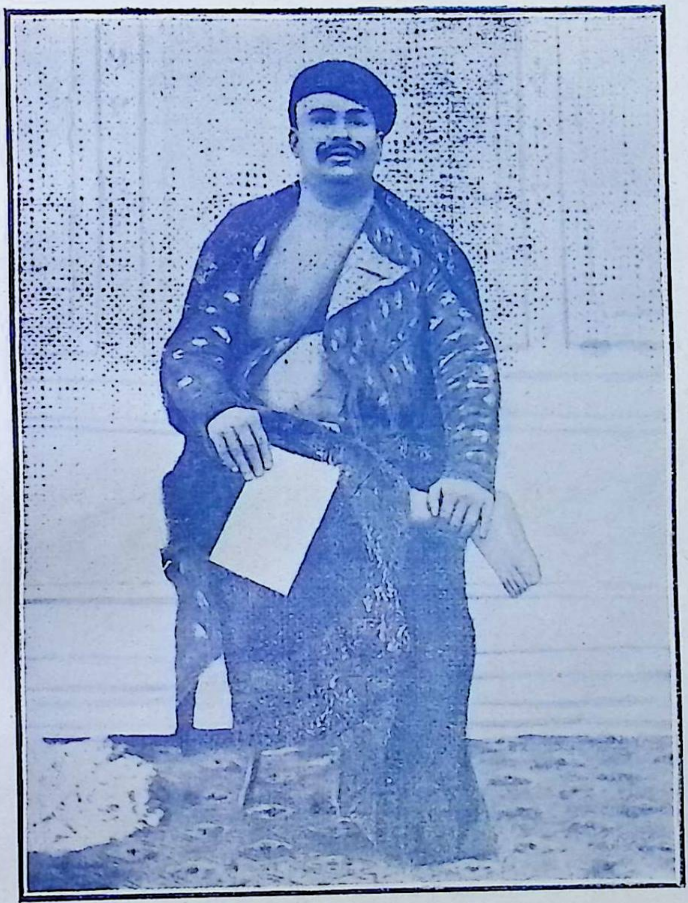

राजवैद्य स्वर्गीय पं० कृष्णरामजी भट्ट, जयपुर ।

रुचिररुचिराणि पद्यानीहोद्धरामः, यैर्विद्वांसः स्वयमेव तत्स्वभावादीन् परीक्षेरन् कविताऽमृतं चाऽऽस्वादयेयुः । तथाहि —

'कच्छवंश'महाकाव्ये स कविः समिच्चमत्कृतिमोजोभिव्यञ्जिकया कीदृश्या रचनया वर्णयति स्मेति निरीक्ष्यताम्—

अलं ज्वलत्खड्गघटाझलत्कृतिः क्षतस्रवच्छोणितसिक्तपद्धतिः ।
समुच्छलत्कच्छविमुक्तहुङ्कृतिः प्रचण्डतां प्राप समिच्चमत्कृतिः ॥
सप्तमसर्गः १२९

एवमेव मानसिंहमहीपतेर्युद्धोपक्रमे प्रतिनृपतिं प्रति वागारम्भवर्णनमप्यमुं गुणं कीदृगभिव्यञ्जयतीत्यपि परीक्ष्यताम्—

रोषपोषवशाद् बद्धभ्रुकुटिर्माधवाग्रजः ।
खड्गमुष्टौ दधन्मुष्टिं स्पष्टमित्थमुवाच तम् ॥ सप्तमसर्गः ११३

तस्मिन्नेव काव्ये जयपुरवर्णनेऽनुप्रासोत्प्रेक्षोदात्तस्वभावोक्तीनां प्रसादगुणस्य च चमत्कारोऽपि विलोक्यताम्—

प्रांशुप्राकारधवलकेतुचीनांशुकाञ्चलैः ।
कुर्वाणमिव मेघेषु बलाकावलिवल्गनम् ॥
सदोपकण्ठवलितवनमालामनोरमम् ।
गोविन्दमन्दिरोद्द्योतं विडम्बयदिव स्फुरत् ॥ दशमसर्गः ८१४-३५
मरन्दलुब्धमधुपश्यामीकृततरूत्तराः ।
दधत् प्राकारमभितः पुष्पवाटीपरम्पराः ॥ दशमसर्गः ८३७

'मुक्तकमुक्तावल्यां' कविनाऽनेन प्रावृषो रजकीरूपणं कीदृग् व्यधीयतेत्यपि श्रूयताम्—

चञ्चलविद्युद्वलया विरचितघनकृत्तिपात्रजलसेका ।
प्रावृड्रजकी परितः प्रक्षालनमम्बरस्य विदधाति ॥

(तत्रैव) प्रावृष्यप्यवग्रहमवलोक्य कविना कीदृक् तन्निदानमन्विष्टमित्यप्यवलोक्यताम्—

पापं केऽऽपि जगुः, निदानमनलं प्राहुः परे मारुतं
नक्षत्रं कतिचिज्जजल्पुरितरे दुर्दैवमूचुर्नृणाम् ।
यत्तु प्रावृषि वैपरीत्यमधुना लोके समुज्जृम्भते
तत्सुप्ते जगदीश्वरे जलमुचामन्याय उन्नीयते ॥

अस्य कवेः सर्वाण्यपि फलान्यतिशय्य रसालफले भूयानासीदनुरागः, तत्तत्पक्षपातमालम्ब्य कथमभिभावितानीतराणि फलानीत्यप्यवेक्ष्यताम्—

श्रुत्वा चूत, तव श्रियं भुवि धृतो जम्ब्वा रुषा कालिमा
कालिङ्गं त्रपयेव लीनमवनौ दीर्णं शुचा दाडिमम् ।
मृद्वीका मृदुतां दधार, पनसं रोमाञ्चितं भीतितः,
संतापादिव नारिकेलजठरे जातं जलानां भरैः ॥

ब्रजभाषायां 'कवित्त' इति प्रसिद्धेन च्छन्दसा संस्कृतभाषायां वर्णनमनेनैव कविनोपक्रान्तम् ! कीदृग्विधैश्च प्रसादपूर्णैः पदैर्जयनगरनरेन्द्रः श्रीरामसिंहोऽत्र वर्णित इत्यप्यवलोक्यताम्—

सूत, रथमेहि देहि बाणगणमाशु मे हि मित्र धृतिमत्र धेहि संगरमहामहे।
वर्म कुत्र, चर्म कुत्र, भयं वृथा मास्म कृथाः, छिन्धि भिन्धि धाव धाव सहे नास्य नाम हे॥
इति स्फुटं भवद्द्विषां शैलगुहास्वापजुषां, विलापयुग् वचो वयं समुपलभामहे।
वैरिकुलवृन्दकाल, चन्द्रसितकीर्तिजाल, कण्ठलोलरत्नमाल, महीपाल, राम हे॥

एवमेव 'दोहा' च्छन्दसाऽपि मधुरविशदैः पदैः श्रीगङ्गाजलवर्णनमाकर्ण्यताम्—

शिवशेखरशशिचन्द्रिकासंचयचारुमहांसि।
ददतु मुदं मन्दाकिनीतरलतरङ्गपयांसि॥

अनेनैव च्छंदसा हरेर्हृदयस्थल-वीक्षितयोर्वर्णनमप्यवेक्ष्यताम्—

कमलामलमनुरागि बहु करुणारसपरिणामि।
हृदयस्थलमिव वीक्षितं हरेरहं प्रणमामि॥

यश्चास्य यमकादिष्वप्यधिकार आसीत्, स हि 'जयपुर-विलासा' दिषु स्थाने—स्थाने, विशेषतस्तु 'जयपुरविलास' स्य प्रथमोल्लासे, स्पष्टमेवावलोक्यते, विस्तरभिया तु तदुदाहरणानीह नोद्ध्रियन्ते। तद्दर्शनाभिलाषुकैस्त एव ग्रन्था द्रष्टव्याः।

सेयं दिगुपदर्शिता। अतः परमनेन कविना यानि काव्यानि निरमीयन्त, तेषु कतिचन चमत्कृतिचारूण्यकरादिक्रमेण सविषयवर्णनमधस्तादुपन्यस्यन्ते। तथा हि—

१—आर्यालङ्कारशतकम्—अत्र भगवत्याः स्तुतिः प्रतिश्लोकमेकैकेनालङ्कारेण वर्णिताऽस्ति। अप्रकाशितम्।

२—कच्छवंशमहाकाव्यम्—अस्मिन्नासन्नविंशैः सर्गैः सुरुचिरैरनुष्टुप्प्रधानैर्वृत्तैर्जयनगरनरेन्द्रवंशावलीवर्णनमस्ति। परमेतदिदानीं यावन्न केनापि प्राकाश्यत। अत्र चानेन कविना भूयः परिश्रम्य कुतश्चिल्लब्धानि न केवलं जयपुरनरेशानामेव, किन्तु यवनसम्राजामपि जन्मपत्राणि वर्णितानि सन्ति। तदिदं प्रकाशितं सन्न केवलं साहित्यविदाम्, अपि त्वैतिहासिकानामपि केषुचन विषयेषूपकारि स्यादित्यस्ति नो विश्वासः।

३—काव्यमालाप्रशस्तिः—इदमल्पीयः काव्यं 'काव्यमाला' नाम्न्याः पुस्तकमालायाः प्रशंसायामलिख्यत। मुद्रितं चैतत् 'काव्यमालायां' 'मुक्तकमुक्तावल्यां' च।

४—काशीनाथस्तवः—अत्र भगवतः शिवस्य, काशीनाथनाम्नः कस्यचन द्रविपण्डितस्य च श्लेषेण वर्णनमस्ति। अप्रकाशितम्।

५—गप्पसमाधानम्—अत्र काश्चन प्रहेलिकास्तथोपन्यस्ताः सन्ति, याः प्रेक्ष्य मतिर्दोलायेत्, परं समाधानमतीव सरलं स्यात्। अप्रकाशितम्।

६—गोपालगीतम्—गोपालस्तुतिरत्र वर्णिता। अप्रकाशितम्।

७—गोविन्दभट्टभङ्गम्—इदमल्पीयः काव्यं दायभागादौ विगृह्णतः स्वपितृव्यस्य निन्दायां विलिख्य कविनैव प्रकाशितमासीत्। एतेनास्य प्रतिवादिभयङ्करत्वमुच्छृङ्खलत्वं च प्रतीयते, परं नात्युपयोगि।

८—छन्दोगणितम्—अत्र प्रस्तारादिषट्क्रियासहितानां सर्वविधवृत्तानां विशिष्टं वर्णनमस्ति। अप्रकाशितम्।

९—जयपुरमेलककुतुकम्—अत्र काव्ये जयपुरे विजयदशम्यादिषु यानि मेलकानि (मेला) भवन्ति, तेषां सामयिकं वर्णनमस्ति। अस्य कोऽप्यंशः सिद्धभेषजमणिमालायाममुद्र्यत।

१०—जयपुरविलासम्—तदेतत् सुप्रसिद्धं तेनैव कविना प्रकाशितं च काव्यं न परिचयमपेक्षते, परमिदानीं वीतपुस्तकतया पुनर्मुद्रणमपेक्षते ।

११—पलाण्डुराजशतकम्—इह पलाण्डोर्दिग्विजयस्य तथा वर्णनमस्ति यथा तत् साहित्यविदां सुखदं भिषजां चोपयुक्तं स्यात् ।

१२—माधवपाणिग्रहोत्सवः—इह तदानीन्तनस्य जदनगरनरेन्द्रस्य श्रीमाधवसिंहस्य जयपुर एवाऽऽनीतया सूर्यया साकं विवाहोत्सवस्य वर्णनमस्ति ।

१३—मुक्तकमुक्तावली—अत्र कविना स्वीयानि सुन्दरसुन्दराणि मुक्तकपद्यानि संगृहीतानि सन्ति । सैषा जयपुरविलासेन सह संमुद्रिताऽस्ति ।

१४—सम्राट्सुताभिनन्दनम्—अत्र 'प्रिन्स आफ वेल्स' संज्ञया भारते समायातस्य सम्राड्जार्जमहोदयस्य वर्णनमस्ति ।

१५—सारशतकम्—इह 'रघुवंशा'दीनां पञ्चमहाकाव्यानां शार्दूलविक्रीडितच्छन्दसा प्रतिश्लोकमेकैकसर्गकथावर्णनमस्ति । एतदपि जयपुरविलासेन सह मुद्रितम् ।

१६—सिद्धभेषजमणिमाला—अत्र वैद्यवरेणानेन स्वानुभूतानि प्राक्तनग्रन्थेष्वनुपलभ्यमानानि भूयांस्यौषधानि संगृहीतानि सन्ति, यानि भिषजामतीवोपयोगीनि । विप्रकीर्णोऽयं संग्रहस्तन्निधनानन्तरं तत्प्रियशिष्येण श्रीलक्ष्मीरामस्वामिना संपाद्य टिप्पण्या च संयोज्य प्रकाशितस्तज्जिज्ञासूनामुपकरोतीति न तिरोहितम् । सैषा द्वितीयावृत्तौ मुद्रिता जयपुरराजकीयाचार्यपरीक्षायां पाठ्यत्वेन नियताऽस्ति ।

१७—होलोत्सवः—अत्र होलासमयसमुचितानि कानिचिदश्लीलवर्णनपराणि पद्यानि सन्ति ।

अयं महाभागो भङ्गाभक्तो विचारशीलः परमरसिकश्चासीत् । निधनात् किञ्चित् पूर्वमेवैतेन महाभागेन संस्कृतचिकित्सालयः समुदघाट्यत, नानाविधैरमोघैरौषधैरचिकित्स्यन्त जनाः । आयुर्वेदप्रसिद्धायां रसप्रक्रियायामस्य महाकवेर्महन्नैपुण्यमासीत् । सर्वेऽपि च रसा अनेन निजहस्तेन निरमीयन्तेत्यपि तदन्तेवासिवृन्दमुखाच्छ्रूयते । प्राचीनपुस्तकसंग्रहेऽप्यासीदस्य महाननुरागः । अत एव यान्यायुर्वेदादिपुस्तकान्यन्यत्र नोपलभ्यन्ते, तान्यप्यस्य गृहे साधुसंगृहीतानि विहितानुक्रमणानि चासन् । संप्रति तु तेषां का दशेति कः कथयतु ।

इदानीमस्य वंशे तत्तुल्यगुणगणस्य दैवादकालमृत्युं प्राप्तवतस्तत्तनयस्य पण्डितप्रकाण्डश्रीगङ्गाधरभट्टस्य सूनुश्रीनरहरिशर्मा सुतादिसौख्यमनुभवन्नस्ति । अनेनैव महात्मना आयुर्वेदाचार्यश्रीनन्दकिशोरशर्मसु विश्वस्य 'कच्छवंश' महाकाव्यमदर्श्यत ।

हा हन्त स एष कविकुलरत्नमायुर्वेदागमपारावारीणश्चतुःपञ्चाशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवत्सरे वैशाखकृष्णप्रतिपदि ऊनपञ्चाशवर्ष एव करालेन कालेन कीर्तिशेषतां नीत इति भूयस्यो विचारपरम्परास्तेनैव सहालीयन्तेति खिद्यमानमानसा वयं विरमामो विस्तरात् ।

राजवैद्य पं० नन्दकिशोरशर्मणामायुर्वेदाचार्याणां

संक्षिप्तं जीवनवृत्तम् ।

एते श्रीमन्तः खाण्डलविप्रवंशावतंसानां जयपुरे सुप्रतिष्ठितानां दिवं गतानां राजवैद्यश्यामलालभिषक्चूडामणीनां ज्येष्ठपुत्राः जयपुरनगरमलङ्कुर्वन्ति । एते बाल्यकालिकशिक्षां प्राप्त्यानन्तरं स्वपितृणामाज्ञया सुविदुषामन्तेवासित्वमाधिगत्य व्याकरणसाहित्यादियोग्यतां सम्यगधिगतवन्तः । अनन्तरं कुलपरम्परागतायाः स्वभवने बोभूयमानाया आयुर्वेदीयचिकित्साया भारं दित्सुभिः स्वपितृभिर्नियोजिता एते जयपुरीयसंस्कृत-विद्यालये आयुर्वेदाध्ययनं प्रारब्धवन्तः । वर्षद्वयेन च भट्टवर-श्रीकृष्णरामात्मजानां गङ्गाधरशर्मणामन्तेवासित्वावसरे आयुर्वेदोपाध्यायपरीक्षामुत्तीर्णवन्तः । अनन्तरमुच्चशिक्षां ग्रहीतुमनसः श्रीमतां पूज्यपादानां स्वामिनां सेवां विदधाना यथानियमं क्रमश आयुर्वेदशास्त्राचार्यपरीक्षे सबहुमानमुदतरन् । किञ्च भेषजनिर्माणरोगिदर्शनादिप्रायोगिककार्यमपि श्रीस्वामिनां गृहचिकित्सालये स्वभ्यस्तवन्तः । एवमेते तेष्वेव दिवसेषु शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णा अपि प्रायोगिकशिक्षाकुशलाः सुप्रतिष्ठितविद्वत्समाजे सुबहुसमादृता अभवन् । एतेषां योग्यतामुग्धा महामनसः श्रीमन्तः पं० मदनमोहनमालवीया हिन्दूविश्वविद्यालये वाराणस्यामायुर्वेदाध्यापकत्वेन नियुक्तवन्त एनान् । तत्र चैभिः कियान् कालः शिक्षादाने व्यतिगमितः । अनन्तरं गृहे चिकित्साभारं दित्सुभिः स्वपितृभिरेते तत्स्थानतः पुनराहूताः । ततश्च सुविशाले स्वचिकित्सालय एव रोगिनैरोग्यसम्पादने प्रावीण्यं प्राप्तवन्तः । अथ च १९८१ वैक्रमाब्दे जयपुरीयसंस्कृतपाठशालायामायुर्वेदविभागे द्वितीयाध्यापका अभवन् । तत्र च नववर्षपर्यन्तमध्यापयन्तो बहून् छात्रान् उपाध्याय-परीक्षामुत्तारितवन्तो बहूंश्च शास्त्रिकक्षापाठ्यमध्यापितवन्तः । गतवत्सरे च श्रीस्वामिनामध्यापनकृत्यतो विरामग्रहणानन्तरमेते विशिष्टयोग्यतया तेषां स्थाने आयुर्वेदप्रधानाध्यापका अभवन् । इदानीं तस्मिन्नेव पदे विराजमानाश्चिकित्साकर्मणि वृद्धिमादधते ।

एते महानुभावा आधुनिकानां जयपुरीयवैद्यानां मध्ये प्रतिष्ठिता उत्तमकुलीनाः ग्रामत्रयस्य स्वामिनः उच्चनागरिकाणामग्रगण्याश्च सन्ति । चिकित्साप्रसारोऽप्याधिक्येनैषां राज्ञां सामन्तराजानां च गृहेष्वेव वर्तते । तथापि स्वभावतः सरला दयालवोऽनुत्सेकिनो नम्राश्च सन्तीत्येते धन्या मान्या आयुर्वेदस्य शिर उन्नमयितारश्च सन्ति । विशेषत एते पूज्यपादानां श्रीस्वामिनां कृपापात्रतल्लजाः । अहर्निशं श्रीस्वामिनामाज्ञा पवित्रयति हृदयमेषाम् । रोगिदर्शनादिकर्मणि बहुत्र श्रीस्वामिभिः सह भ्रमणावसरो लभ्यत एभिः । सामयिकीं गुणवैशेष्यापादनीं शिक्षामपि प्रतिदिनं यथावसरं श्रीस्वामिन एभ्यो वितरन्ति । एवमेषामुपरि श्रीस्वामिनां पूर्णः स्नेह आस्ते । एतेऽपि भक्त्यतिशयेन सेवन्ते श्रीस्वामिनः । तेषामन्तरङ्गेषु कार्येष्वपि प्रबन्धका भवन्तीत्यन्तरङ्गाः शिष्याः श्रीस्वामिनामिमे ।

जयपुर संस्कृत कालेजके आयुर्वेदविभागके अध्यापकवर्ग.

बांई ओरसे क्रमशः–१ भिषगाचार्य श्रीनिरञ्जनलालजी, २ डॉ. रायबहादुरजी M. B. B. S, ३ मुकुन्ददेवजी भिषग्रत्न, ४ श्री. पं. नन्दकिशोरजी राजवैद्य,

चिकित्सकचूड़ामणि श्रीमान् पं० श्यामलालजी भट्ट, जयपुर ।

चिकित्सकचूड़ामणि श्रीश्यामलालमहोदयस्य

जीवनेतिवृत्तम् ।

स एष महाभागो जयपुरादनतिदूरवर्तिनि जयपुरराजकीयप्रधानसामन्तराजधान्यां चौमूनगरे पञ्चविंशत्युत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवत्सरे सहस्ये मास्यसितषष्ठ्यां शनिवासरे निखिलजनमनोरञ्जनीं जनिमुपलेभे । ततोऽष्टवर्ष एव च जयपुरीयराजवैद्यानां चिकित्साकर्मणि सुप्रसिद्धयशसां तात्कालिकजयपुरनरपतिना समस्तसामन्तसमूहेन च संमानितानामानन्दीलालजीमहोदयानां 'ज्येष्ठे सर्वगुणैः कनीयसि वयोमात्रेणे'-त्युक्तिं चरितार्थयतोऽनुजन्मनः सुगृहीतनामधेयस्य श्रीसुखलालजीमहाभागस्य दत्तकसूनुतामुपगतः । किन्तु दुर्दैववशादल्प एव वयसि दिवंगते तस्मिन्नानन्दीलालजीमहाभागैरेवायं पालितः पोषितः शिक्षितः कार्यक्षेत्रे प्रवेशितश्च ।

अर्थलिप्सायामदैन्यम्, अध्ययने धियः कुशाग्रता, सद्य एव पृष्टस्य प्रतिवचनं चेत्यादिभिरव्यभिचारिभिर्लिङ्गैर्बाल्य एवास्य मेधावित्वं भाग्यशालित्वं चान्वमीयतानुभाविभिः । अन्तेवासिभावेऽयमासीद् गुरुजनस्य निरतिशयं कृपाभाजनम् । कैशोर एव च भट्टश्रीकृष्णराममहाभागानामन्तेवासिषु प्रथमतामुपगत्यायुर्वेदशास्त्रं यथाविधि समधिगतवान् ।

आनुवंशिकत्वाच्चास्य चिकित्साकर्मणि नितरां नैपुण्यमासीत्, न चास्य केवलमायुर्वेदीयचिकित्सापद्धतावेव तदासीत्, किन्तु यावन्यामस्यामप्यासीदप्रतिमं पाटवम् । नानाविधानामनुभूतयोगानामयं निधिरिवासीत् । सर्वजनोपकारकान् स्वल्पमूल्यलभ्यान् योगानेष तथा प्रयोजयतिस्म यथा वैद्यानां यवनवैद्यानां च चकितमिव भवति चेतः । अरिष्टज्ञाने चास्य परमं प्रावीण्यमासीत् । भूतपूर्वस्य जयपुरनरपतेः श्रीमाधवसिंहमहाराजस्यायमनितरसाधारणैःस्वगुणैः परमप्रेमास्पदताभयासीत् । वर्तमानस्य कृष्णगढनरपतेः श्रीयज्ञनारायणसिंहमहाराजस्य मातुरारोग्यमनेन संपादितम्, आसीच्च तस्य संमाननीयो गृहचिकित्सकोऽप्ययम् । समये समये स एष महाभागः समाकारयत्, सदकरोच्चैनम्, प्राकाशयच्चास्य देहावसाने स्वीयं हार्दिकशोकमस्य पुत्रेषु प्रहिते स्वकीये पत्रे । अलवरराज्यान्तर्गतजावलीसंस्थानाधिपतिरलवरराजस्य भूतपूर्वः प्रधानमन्त्री च क्षत्रियकुलभूषणं श्रीदुर्जनसिंहजीमहोदयोऽस्य गुणेष्वतीवानुरक्त आसीत् । आसीच्चानयोरन्योन्यमसाधारणं सौहार्दम् । अस्य वैकुण्ठवासावसरे राजवरेण तेन न केवलं शोकप्रकाशकं पत्रमेव पुत्रेषु प्रहितम्, किन्तु स्वयमपि सदने समागत्य सान्त्वयामास सर्वान् संबन्धिनः ।

दूर-दूरदेशेष्वप्यासीदस्य महती प्रसिद्धिः । धनिकैरामयाविभिराहूतस्तत्र तत्र प्रायादपि । सर्वस्मिन्नपि भारते विश्रुतयशसः सौजन्यजन्मभूमेरसाधारणकमलाविलासवसतेर्जबलपुरवास्तव्यस्य राजोपपदभाजः श्रेष्ठिवर्यश्रीगोकुलदासमहाभागस्याऽयं कुटुम्बिजनेभ्योऽप्यधिकसंमानित आसीत् । सत्स्वपि परश्शतेष्वाङ्गलभिषक्षु कृपाकटाक्षलेशमपेक्षमाणेष्वयमेवासीत् तस्य निरतिशयश्रद्धाभाजनम् । आसीच्च भगवत्कृपया प्रायः सर्वदैव महाभयङ्करेष्वपि व्याधिष्वेतेन चिकित्स्यमानेषु साफल्यम् ।

सामन्तसंघे, उच्चपदस्थितेषु कर्मचारिषु चास्य सुमहानादर आसीत् , ते हि यथाऽस्मिन् विश्वसन्तिस्म न तथान्यस्मिन् कस्मिंश्चिदपि । जयपुरीयदीनजनताया्स्त्वयमाश्रय एवासीत् , सर्वानपि भिषजो विहाय सैषैनं श्रयतेस्म, उत्प्रेक्षतेस्म च तस्य वैकुण्ठवाससमये स्वात्मानमाश्रयशून्यमिव । चिकित्साकर्मणि सर्वदा तत्परोऽप्ययमस्यां विंशति शताब्द्यामप्यार्षपद्धतिमनुरुन्धानो नासीद्विशेषतो लोभलालसावशगः । सर्वलोकहितमवेक्षमाणेनानेन धन्वन्तर्यौषधालयस्थापनायां सर्वतोऽधिकं परिश्रान्तम् , सर्वविधं साफल्यं चाधिगतमनितरसाधारणेन स्वानुभावेन । स्थापत्यमर्मज्ञस्यास्य भवननिर्माणकलायां सुमहाननुराग आसीत् । सर्वविधदोषविहीनता, उदारता, कार्यतत्परता, सौम्यं सरलता चेत्यादिभिर्गुणैरयमासीत् सर्वजनमनोहरः । एकवारमपि संगतो जनोऽस्य सहृदयतामय्या व्यवहृत्या सुमधुरया व्याहृत्या चाकृष्टो मन्त्रमुग्ध इव यावज्जीवमस्मिन्नन्वरज्यत ।

अस्य चिकित्साकर्म संमानतया निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदसंमेलनेनास्मै 'चिकित्सकचूडामणिः' इत्युपाधिरुपाह्रियत ।

श्रीमद्भागवतस्यायं मार्मिको रसज्ञः, भगवद्भक्तानामग्रणीः, वैष्णववरेण्यः, स्वधर्मे सुदृढबद्धश्रद्धश्चासीत् । चिकित्साकर्मणा परिहृतावकाशोऽप्ययं यत्र-तत्र भगवत्कथा यत्र-तत्र च सनातनधर्मस्य चर्चा, तत्र-तत्र सर्वतः प्रथमं समुपस्थितोऽदृश्यत । एतस्य कतिचन गुणाः संक्षिप्य 'उपवनप्रशस्तौ' एवमुपश्लोकिताः—

❀ एतस्य सत्यसुहृदा सहृदा सदा सत्कार्येषु दर्शितसमग्रसमुद्यमेन ।
भैषज्यभर्जितरुजा जयपत्तनीयभूपालवंशभिषजा भगवत्परेण ॥
सर्वत्र विश्रुतचिकित्सकवर्यचूडामण्याह्वयेन मदमानविवर्जितेन ।
श्रीश्यामलालसुधिया चिरचिन्तनीयं साहाय्यमत्र विहितं विमलान्तरेण ॥'

सोऽयं महाभागो जयपुरीयां दीनजनतां सहस्रधारैरश्रुभिरात्मनो वियोगासहिष्णुतां व्यञ्जयन्तीं विसृज्याष्टाशीत्युत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवत्सरे सहस्यशुक्लचतुर्दश्यां वैकुण्ठवाससुखानुभवाय भुवमुदस्राक्षीत् ।

महाभागोऽयं स्वस्य देहावसानसमये पुत्रत्रयं पौत्रपञ्चकं च व्यसृजत् । पुत्रेष्वस्य वयसा गुणगणैश्च सर्वप्रथमो भिषगाचार्यः श्रीनन्दकिशोरशर्मा विद्यते, यः श्रीस्वामिमहाभागानां स्थाने जयपुरराजकीय पाठशालायामायुर्वेदप्रधानाध्यापकपदमधितिष्ठति, सारल्येन, सर्वजनोपकारितया चानन्यसाधारणतामावहन् जयपुरीयजनतायां सामन्तेषु च निजगौरवोचितं संमानमुपलभते । कनिष्ठश्च श्रीयुगलकिशोरशर्मा एम्० ए० महाशयो जयपुरराज्यान्तर्वर्तिसंस्कृतपाठशालानां निरीक्षकतां (Supervisor) भजते ।

* * *

❀ श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनः ।

श्रीमात् कविराज श्रीरामचंद्र मल्लिक ।
प्रिन्सिपल–श्रीगोविन्दसुन्दरी आयुर्वेदकालेज कलकत्ता ।

काव्यतीर्थ पं० श्री श्रीकान्त शर्मा वैद्यरत्न,

वि० प्रा० वै० सं० के मन्त्री का

संक्षिप्त जीवनचरित।

आपका जन्म वि० सं० १९४१ में विहार प्रान्तीय गया जिलान्तर्गत दौलतपुर ग्राम में प्रतिष्ठित विद्वान् सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ है। बाल्यावस्था में आपने थोड़ी हिन्दी और फारसी पढ़ने के बाद संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। व्याकरण तथा साहित्य की आचार्य परीक्षा तक ग्रन्थों का अध्ययन कर व्याकरण की मध्यमा और साहित्य की उपाधि परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। गवर्नमेण्ट से "काव्य-तीर्थ" की उपाधि प्राप्त की। अनन्तर गया जिलान्तर्गत जहानाबाद संस्कृत विद्यालय में ६ वर्ष तक व्याकरण-साहित्य आदि विषयों का अध्ययन किया। बाद अपने गुरुदेव की आज्ञा से आयुर्वेद पढ़ने के लिए काशी गये। वहाँ चार वर्ष तक रहकर स्वर्गीय कविराज पं० उमाचरण जी भट्टाचार्य, कविरत्न जी से साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदशास्त्र का अध्ययन तथा कर्माभ्यास सम्पन्न कर वैद्यशास्त्री की उपाधि प्राप्त की। पश्चात् आपने मगधदेश की राजधानी अमावां में राजवैद्य के पद के ऊपर रहकर ६ वर्ष तक कार्य सम्पादन किया। बाद १९२१ में जब असहयोग आन्दोलन जोरों पर था। देश सेवा के ख्याल से इस्तीफा देकर आप पटना आ गये। और स्वतन्त्र आयुर्वेदिक कार्यालय खोलकर आयुर्वेद का प्रचार तथा जनता की यथोचित सेवा करने लगे। तब से आप पटने में विराजमान हैं, नगर के प्रधान वैद्यों में आपकी गणना है। आपके कितने शिष्य विहार के बाहर भी सफलता के साथ चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। आप संस्कृत एसोसियेशन विहार एण्ड उड़ीसा के बराबर प्राश्निक और परीक्षक होते आये हैं। प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के बहुत वर्षों से मन्त्री हैं, आयुर्वेद महामण्डल और विद्यापीठ की कार्य-कारिणी समिति के बराबर आप सदस्य रहे हैं। वि० प्रा० वै० संम्मेलन त्रैमासिक पत्रिका के आप अन्यतम सम्पादक हैं। विहार में जो आयुर्वेद का प्रचार हो रहा है उसमें सदैव आपका मुख्य भाग रहता है। सार्वजनिक संस्थायें जैसे कांग्रेस हिन्दू सभा प्रभृति में भी आपका सहयोग हमेशा रहता है। आप व्याकरण साहित्य और आयुर्वेद के सुयोग्य अध्यापक हैं। बहुत दूर दूर के छात्रगण आपसे अध्ययन के निमित्त आते हैं, आप स्पष्ट और मधुर भाषी हैं। आप सदैव न्याय के पक्षपाती रहते हैं। यही कारण है कि सिद्धान्तों में मतभेद होने के कारण जो आपके विरोधी होते हैं, वे भी आप पर विश्वास रखते हैं और परिस्थिति बदलने पर तत्काल आप के अनुयायी हो जाते हैं। आपकी प्रशंसनीय आयुर्वेद सेवा के उपलक्ष्य में प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन ने आपको "वैद्यरत्न" की उपाधि दी है। आपको पटना रहते हुए १५ वर्ष हो गये, आपकी अवस्था सम्प्रति ५२ वर्ष की है। आशा है, समाज के सौभाग्य से आप दीर्घायुष्य का उपभोग कर सकेंगे।

इति संक्षेपतो वृत्तं जीवनस्य महात्मनः।
गुरोः कल्याणकृन्मत्वा लिखितं रामधारिणा॥

ग्रंथकार

आयुर्वेद महामण्डल के रजत-जयन्ती ग्रंथ के विषय में जिस समय से उसकी सामग्री-संग्रह करने का उपक्रम मैंने किया, तभी से आयुर्वेदिक ग्रंथकारों का परिचय संग्रह करने की मैंने अत्यधिक चेष्टा की; अनेक पत्र लोगों की सेवा में भेजे; किन्तु प्रथम भाग के प्रकाशन तक कुछ भी सामग्री उपलब्ध न हो सकी । सोचा द्वितीय भाग में यह सामग्री दे दी जावेगी; लेकिन इसबार भी चेष्टा करने पर असफल प्रयास ही रहा । अन्ततः द्वितीय भाग के प्रकाशन का समय आ गया और सम्पूर्ण मैटर छप चुका, अब हताश होकर जो कुछ उपलब्ध है, उसे ही देकर संतोष कर रहा हूँ ।

प्राणाचार्य, कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य, भिषङ्मणि

का संचिप्त परिचय ।

आयुर्वेद-जगत के एक परिचित का भी आज आवश्यकतावश परिचय दिया जा रहा है । कविराजजी आयुर्वेद के पुराने सेवकों में से हैं । अथवा यह कहना चाहिये कि आयुर्वेद के लिए आपने जितना किया, उतना क्या उससे भी कहीं अधिक आपके लिए आयुर्वेद कल्पवृक्ष की भाँति फलीभूत हुआ । कविराज जी का शुभ-जन्म राजपूतानान्तर्गत उदयपुर राज्य में सन् १८९२ ई० में श्रीमान पं० गुमानीरामजी के यहाँ हुआ । आपके पिता श्रीमान पं० गुमानी रामजी प्राचीनकाल के अच्छे विद्वान थे । कविराज जी वाल्यकाल से ही उर्वर मस्तिष्क के व्यक्ति हैं । आपने महाराजा स्कूल उदयपुर में संस्कृत लेकर हाईस्कूल की शिक्षा ग्रहण की । आप सदा स्कूल-परीक्षा में प्रथम होते थे, अतः आपको स्कूल से छात्रवृत्ति भी मिलती थी । आपके पिता उदयपुर राज्य के एक पुराने जागीरदार थे ।

आपको थोड़ी अवस्था से ही शिकार आदि का भी शौक था । आप रट्टू विद्यार्थियों में नहीं थे । हाईस्कूल परीक्षा समाप्त कर अपने पिता की अनुमति विना ही आप मद्रास आयुर्वेदिक कालेज में आयुर्वेदाध्ययन करने के लिए चले गये । उस समय स्वर्गीय वैद्यरत्न डी० गोपालाचार्लु महोदय मद्रास के एक यशस्वी चिकित्सक और उक्त कालेज के सुयोग्य एवं विद्वान् प्रिंसिपल थे । कविराजजी के हृदय में पहले से ही आयुर्वेद-प्रेम अंकुरित हो चुका था । आपने उक्त कालेज से ससम्मान मद्रास आयुर्वेदिक कालेज की परीक्षा पास की और उसी साल अ० भा० आ० विद्यापीठ की विशारद परीक्षा सर्व प्रथम सफलता पूर्वक पास की और स्वर्ण-पदक प्राप्त किया । मद्रास से लौटकर कलकत्ता आये और महामहोपाध्याय, कविराज गणनाथ सेन स्वरस्वती, एम० ए०, एल० एम० एस० के परामर्श से कालेज अफ़ फिजीशियन एंड सर्जन्स बंगाल में दो वर्ष तक परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया और साथ-साथ भिषङ्मणि परीक्षा भी— श्रीमान कविराज गणनाथसेनजी सरस्वती के तत्वावधान में चलनेवाले श्री विश्वनाथ आयुर्वेद

श्रीमान् वैद्य पं. हरिप्रपन्नजी बंबई।
लेखक—रसयोगसागर।

विद्यालय, कलकत्ता से—प्रथम श्रेणी में पास की। और साथ ही अध्ययन काल में आप कविराज गणनाथ सेन जी के साथ-साथ चिकित्सा-कर्म भी करते रहे। और सन् १९१४ से आपने स्वतंत्र चिकित्सा-कर्म आरम्भ कर दिया। उसके बाद बाबा कालीकमलीवाले ने पचास सहस्र रुपए लगाकर आपकी सम्मति से और आपही की निर्मित योजना से आपही के प्रिंसिपलशिप में आयुर्वेदिक विद्यालय, आतुरालय और औषधालय का कार्यारम्भ किया। आपने वहाँ पर बड़ी योग्यता से साढ़े छः वर्ष तक कार्य किया। अनन्तर पीलीभीत के राजा ललिताप्रसाद जी ने श्री ललितहरि संस्कृत आयुर्वेदिक कालेज और तत् सम्बद्ध आयुर्वेदिक फार्मेसी के संचालन के लिए सन् १९२० में बुला लिया। वहाँ पर आपने साढ़े पाँच वर्ष तक फार्मेसी का संचालन किया और उक्त कालेज के प्रिंसिपल पद पर बड़ी योग्यता के साथ कार्य किया। तथा सन् १९२५ में महामना पूज्य मालवीय जी महाराज ने आयुर्वेदिक फार्मेसी का कार्य करने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बुला लिया। तब से आप सुपरिन्टेन्डेन्ट आयुर्वेदिक फार्मेसी के पद पर योग्यता पूर्वक बराबर उसी कार्य को कर रहे हैं। बहुत दिनों से आप सर सुन्दरलाल हास्पिटल आयुर्वेदिक विभाग के असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा आयुर्वेदिक कालेज के भेषज-कल्पना और रसशास्त्र के प्रोफेसर हैं। फेकेल्टी अफ़ मेडिसन ऐंड सर्जरी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के मेम्बर भी हैं। मंगलाप्रसाद क्षयरोग स्वास्थ्यशाला के आप सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। आप प्रारम्भ से ही गवर्नमेन्ट अफ़ इण्डियन मेडिसिन यू० पी० के मेम्बर चुने जाते हैं। और आजकल भी हैं। गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल पटना की एडवाइजरी कमिटी के आप आजीवन सदस्य हैं। निखिल भारतीय चतुर्विंशतितम वैद्य सम्मेलन, शिकारपुर अधिवेशन के आप सभापति थे। सेन्ट्रल आयुर्वेदिक रिसर्च इंस्टिट्यूट नड़ियाद (गुजरात) के आप सभापति हैं। आज एक वर्ष से आप निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के प्रधान मंत्री हैं।

आपका संक्षिप्त परिचय देने के बाद हमें ग्रन्थकार के रूप में अब आपको देखना है। 'आपने प्रसूत चर्या', 'जच्चा', संक्षिप्त विष-विज्ञान, आरोग्य-सूत्रावली, आयुर्वेदीय खनिज-विज्ञान' और आयुर्वेद महामण्डल के सचित्र रजत जयन्ती 'ग्रंथ' दो भाग—के लेखक और सम्पादक हैं। आपकी उपर्युक्त पुस्तकें हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं और काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। 'खनिज-विज्ञान' तो आयुर्वेदिक जगत् के लिए नयी वस्तु है और आयुर्वेद-प्रेमी जनता ने उसका अच्छा स्वागत किया है। उसके द्वितीय भाग की अधिक मांग है, किन्तु समयाभाव के कारण कविराजजी अभी उसे प्रकाशित नहीं करा सके हैं। 'खनिज-विज्ञान की भूमिका श्रीमान महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन जी, एम० ए०, एल० एम० एस० ने लिखी है। केवल भूमिका के पठन से ही ज्ञात हो सकता है कि इस ग्रंथ का क्या महत्व है।

रजतजयन्ती ग्रंथ के विषय में तो यही कहना पर्याप्त होगा कि संसार के समक्ष आपने आयुर्वेद का एक सच्चा और ऐसा सुन्दर ऐतिहासिक रूप रख दिया है कि केवल इसी ग्रन्थ के द्वारा आयुर्वेद ने क्या कार्य किया है, और उसका महत्व तथा वास्तविक रूप क्या है, इससे समझ में आ जाता है। और यह इतना बड़ा महत्व पूर्ण रेकार्ड आपने स्थापित कर दिया है कि आयुर्वेद के इतिहास में आपका नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

महाशक्ति-भवन, बनारस सिटी।

हनूमानप्रसाद शर्म्मा (वैद्यशास्त्री)

श्रीमतां वैद्य राजेश्वरदत्तशास्त्रिणां परिचयः

गोण्डामण्डलसंस्थिता सुविदिता प्रान्तेऽवधे मञ्जुले
आटाख्यानगरी विचक्षणजनैर्लब्धास्पदा राजते ।
आसीत्तत्र नृपार्चनीयचरणः श्रौताध्वपाराङ्गतः
नानाशास्त्र विचारपाठनरतः श्रीरामनाथो बुधः ॥१॥
तज्ज्येष्ठपुत्रोऽनुजचन्द्रिकाख्य दैवज्ञवर्य्यो मगवंशजातः ।
त्रिंशत्त्रिवर्षो वयसास्ति विप्रः नाम्ना च राजेश्वरदत्तमिश्रः ॥२॥
संरक्षिताखिल सुगौरव भारतीयैः पूज्यैर्बुधैर्मदनमोहनमालवीयैः ।
संस्थापितेऽत्र भवने निखिलागमानां विद्यालये प्रथमविश्वपदाभिधेये ॥३॥
आयुर्वेदपयोनिधेर्मतिमतो विद्यालयाध्यक्षतो
नव्योद्यत्कविराजराजपदवी सम्भूषितात्सद्गुरोः ।
विद्यावृद्धिपरोपकार निरताच्छ्री धर्मदासाद्बुधाद्
ग्रन्थानां पठनं समाप्य निखिलं तीर्णः परीक्षोदधिः ॥४॥
आयुर्वेदे वरिष्ठां सकनकपदकां प्राप्य लोकप्रशस्याम्
आचार्यश्रेणिमुच्चां सकलजनमनोमोदहेतुं नितान्तम् ।
सद्यस्तत्रैव भागे गुरुजनहृदयानुग्रहाल्लब्धकार्यो
ग्रन्थं भद्रंन्यबध्नात् सरल विधितया बोधदं सज्जनानाम् ॥५॥
पाठ्ये निर्धारितः सोऽस्ति स्वस्थवृत्तसमुच्चयः ।
लोकानामुपकाराय यथानामतथागुणः ॥६॥
इदानीं पाठयत्यत्र विश्वविद्यालये वसन् ।
चिकित्साक्रियते काश्यां सर्वेषां रोगिणामपि ॥७॥
सदस्यो राजकीयायाः सभाया भेषजस्य च ।
युक्तप्रान्तप्रतिष्ठाया वर्ततेऽयं महोदयः ॥८॥

वैद्य वामनकृष्ण पटवर्धन

श्रीयुत पं. राजेश्वरदत्त शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य (ब. हिं. यु.)

लेखक-**स्वस्थवृत्तसमुच्चय** ।

अध्यापक, आयुर्वेदकालेज काशी हिन्दुविश्वविद्यालय।

श्री० पण्डित हनूमानप्रसाद शर्मा, वैद्यशास्त्री

संयुक्त-मंत्री—नि० भा० आ० महामंडल।

अध्यक्ष—महाशक्ति-औषधालय, काशी।

काशी के विख्यात वैद्य

पण्डित हनूमानप्रसाद शर्मा, वैद्यशास्त्री का

संक्षिप्त परिचय।

आपका जन्म विक्रम संबत् १९६२ में काशी के एक सुप्रसिद्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में कंगू के दीक्षितों के घराने में हुआ। आपके पिता पण्डित अम्बिकाप्रसादजी दीक्षित ३ वर्ष की अवस्था में ही आपको छोड़कर इस लोक से सर्वदा के लिये चल बसे। इसी लिये आपका लालन-पालन और शिक्षा आपके स्वर्गीय मातामह व्याकरण-न्याय-रत्न, भिषक्शिरोमणि, पण्डित छन्नूलाल जी राजवैद्य के तत्त्वावधान में हुआ; जो काशी के तत्कालीन प्रमुख वैद्यों में अग्रगण्य थे। स्वर्गीय पण्डित छन्नूलाल जी का जीवन चरित पृष्ठ ४९४—४९८ पर पृथक् छपा है। वे बड़े ही मनस्वी एवं कर्तव्यनिष्ठ प्रतिपत्तिमान् चिकित्सक थे। पर उन्हें एक मात्र तनया के सिवा कोई सन्तति-सुख उपलब्ध न था। अतः वे श्री हनूमानप्रसाद जी के जन्म के बाद अपने लालसापूर्ण हृदय का समस्त प्रेम और वात्सल्य आपही पर निछावर कर चुके थे। आपको प्रारम्भ में मातृ-भाषा हिन्दी का अभ्यास कराया गया और बाद में प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अनुसार व्याकरण और साहित्य पढ़ाया गया। आपका वाल्यजीवन ही आपकी प्रतिभा और तीव्रबुद्धि का द्योतक रहा है। साधारण छात्र जिस अवस्था में हिन्दी लिखने पढ़ने और शुद्ध बोलने तक की भी उचित शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते उस अवस्था में आपने यथेष्ठ संस्कृत भाषा का ज्ञान उपलब्ध कर लिया था। ६ वर्ष की अवस्था से १६ वर्ष की अवस्था तक संस्कृत में व्याकरण-साहित्य आदि की आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने आयुर्वेद का अध्ययन आरंभ किया। घर में आपके पूज्य मातामह आयुर्वेद के प्रौढ़ विद्वान् एवं सिद्धहस्त चिकित्सक थे ही, अतएव आपको उनकी सेवा में रह कर २१ वर्ष की अवस्था तक आयुर्वेद की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा के साथ क्रियात्मक ज्ञान भी प्राप्त करने का सुयोग उपलब्ध हो सका, जिसका परिणाम यह हुआ कि आप अल्पकाल ही में एक विद्वान् वैद्य एवं सुयोग्य चिकित्सक बन गये। अल्पावस्था में अन्य शास्त्रों के उपयुक्त ज्ञान के साथ साथ एक शास्त्र में पूर्ण प्रवीण होना कोई साधारण बात नहीं है। यह सौभाग्य पूर्व जन्म के संस्कारानुसार इने गिने प्रतिभा शाली युवकों को ही प्राप्त होता देखा गया है। आपके मातामह भिषग्वर, पण्डित छन्नूलाल जी राजवैद्य की विद्वत्ता, प्रतिष्ठा और कीर्ति तथा आपकी विशद प्रतिभा की व्यापक चर्चा कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज में पर्याप्त हो चुकी थी, इसी से आकृष्ट होकर लखनऊ जिलान्तर्गत सिसेंडी राज्याधिपति स्वर्गीय राजासाहब पण्डित शम्भुप्रसाद जी ने अपनी सौभाग्यवती कन्या का पाणिग्रहण-संस्कार आपके साथ किया। सन् १९२७ में आपके मातामह पण्डित छन्नूलाल जी इस असार संसार से सदा के लिए अलग हो गये। उनकी बहुत बड़ी संपत्ति और अमूल्य औषधभण्डार का समस्त भार आपके शिर आ पड़ा। आपने पूज्य मातामह की और्ध्वदैहिक क्रिया को यथा विधि समाप्त करने के बाद ही बड़े साहस और धैर्य के साथ समस्त गृह-कार्य और चिकित्सा-व्यवसाय को अपने सहपाठी एवं सहयोगी मित्र पण्डित नागेश्वरप्रसाद जी मिश्र, 'भारती' की सहायता से संभाला और उनमें सफलता प्राप्त कर स्वर्गीय मातामह जी की अमरकीर्ति को उज्वल रखने में विशेष तत्परता प्रदर्शित की है। हजारों रोगी प्रतिमास आपके घर से निःशुल्क चिकित्सा और अमूल्य औषध लाभ कर रोगमुक्त होते देखे जाते हैं। जो आपके अनुभवी एवं सिद्धहस्त उदार चिकित्सक होने के बहुत बड़े उदाहरण हैं।

आपने अपने मुख्य उपास्य देव आयुर्वेद की सेवा के साथ साथ हिन्दी साहित्य की भी उचित सेवा की है। जब आपने देखा कि हिन्दी भाषा में आयुर्वेद या स्वाथ्य संबन्धी साहित्य का नितान्त अभाव है और हिन्दी भाषी जगत् वैद्यक शास्त्र के संस्कृत ग्रन्थों से अपनी ज्ञान-पिपासा मिटाने में सर्वथा असमर्थ है, तब आपने सर्वप्रथम स्वाथ्य-संबन्धी लेख लिखने आरंभ किये। और उन्हें सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया। सर्व साधारण को ये लेख बहुत रुचिकर प्रतीत हुए, अतएव आप विशेष उत्साहित हुए। तभी से हिन्दी भाषा में बराबर स्वास्थ्यसंबन्धी लेख लिखते रहते हैं। क्रमशः आपकी हिन्दी साहित्य में आयुवद का व्यापक प्रचार करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। कुछ मित्रों के अनुरोध और प्रोत्साहन पर आपने 'महाशक्ति साहित्य मन्दिर' नामकी एक संस्था स्थापित कर उसमें स्वाथ्य विषयक कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ किया। पर इतने से आपका मन सन्तुष्ट न हो सका, इसीलिये कुछ दिनों के बाद प्रकाशन को सुचारु रूप देने के लिए ही आपने महाशक्ति-प्रेस की भी वृहद् योजना की, जिससे आज आयुर्वेद की बड़ी सेवा हो रही है। प्रकाशन का कार्य आपने व्यापारिक दृष्टिकोण से नहीं किया है। क्योंकि अब तक उससे आपको हानि के सिवा कुछ लाभ नहीं हुआ है। आपकी पुस्तकमाला से अब तक १४ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें ४ आपकी अपनी लिखी हुई हैं। १—जीवन-रक्षा, २—सुखीगृहिणी, ३—आहार विज्ञान, ४—वनस्पति-विज्ञान। इन पुस्तकों की बड़ी ही सुन्दर समालोचना हुई और साहित्य-संसार ने बहुत पसंद किया। सर्वसाधारण जनता ने भी हृदय से स्वागत किया। अन्य स्थानों से भी आपकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आप कथानक या कहानी लेखक भी हैं। आपकी कहानियों का संग्रह १—"मीना बाजार" नाम से काशी से प्रकाशित हुआ है। उनमें कुछ कहानियाँ तो बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण हैं। आपके पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अधिकांश लेखों का संग्रह २—"आरोग्य-विज्ञान" नाम से प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। ३—'पुष्प-विज्ञान' नाम से भी आपकी एक बहुत ही उपादेय पुस्तक का प्रकाशन काशी से हुआ है। इनके अतिरिक्त कुछ पुस्तकें आपने कुछ सुयोग्य विद्वानों से भी लिखाई हैं। आपकी पुस्तक-माला से हिन्दी साहित्य में एक अभावांश की यथेष्ठ पूर्ति हुई है। आप एक गंभीर एवं मननशील विद्वान हैं। हिन्दी में लिखने की आपकी एक अपनी शैली है। आप बड़ी से बड़ी एवं गंभीर बातों को बहुत स्पष्ट, सरल एवं व्यावहारिक भाषा में लिखते हैं। यही कारण है कि आपने हिन्दी साहित्य में भी एक अच्छी कीर्ति स्थापित कर ली है। अहमदाबाद सम्मेलन के निश्चयानुसार १९३६ के जनवरी मास में आप निखिलभारतीय आयुर्वेद महामंडल के संयुक्त मंत्री निर्वाचित हुए हैं। तब से आप उस पद पर योग्यतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। आप एक निरभिमान एवं सरल, सरस स्वभाव के सहृदय पुरुष हैं। काशी आपके ऐसे सुयोग्य विद्वानों से गौरवान्वित है। पण्डित नागेश्वरप्रसाद जी मिश्र, 'भारती' आपके दक्षिण हस्त हैं। परमेश्वर करें आप दोनों मित्रों की युगल जोड़ी अश्विनीकुमारों के समान चिरंजीवी हो और चिकित्सा-क्षेत्र में और भी सफल होकर आयुर्वेद की चिरकीर्ति को सुदृढ़ एवं सुस्थिर बनाने में विशेष सफल हो।

एस० एल० मारवाड़ी अस्पताल,
बनारस।

दुर्गादत्त शास्त्री (आयुर्वेदाचार्य)
विद्यापीठ-मंत्री।

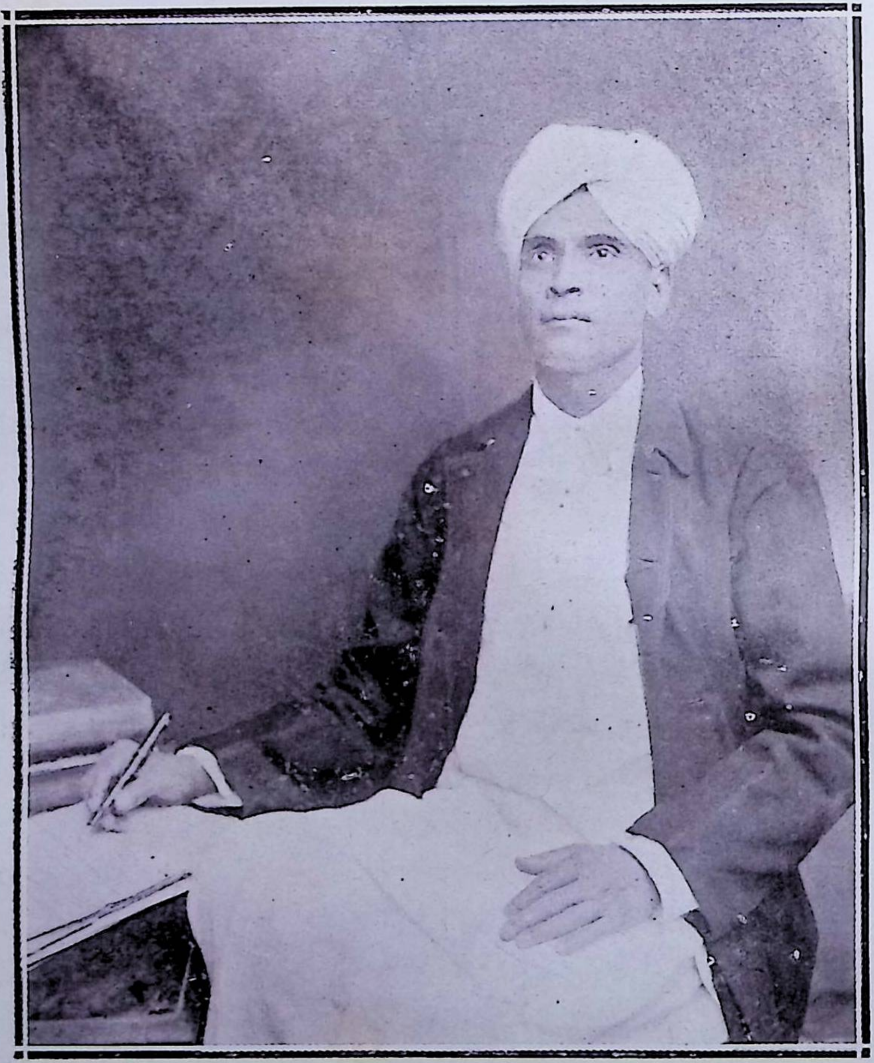

श्रीमान् स्वामीश्री हरिशरणानंदजी ।

संपादक, आयुर्वेद विज्ञान (हिंदी मासिक पत्र) अमृतसर ।

पत्र और पत्रकार

आयुर्वेद-संदेश का संक्षिप्त इतिहास

पंजाब के इस मुख्य हिन्दी वैद्यक पत्र ने मार्च १९२८ में दयानन्दायुर्वैदिक कालेज, लाहौर की छात्रसभा के उत्साह से पंजाब प्रान्तीय प्रथम वैद्य सम्मेलन के अवसर पर जन्म लिया। भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध संस्था से सम्बन्ध रखने के कारण वैद्यों ने इस शिशु का स्वागत किया। १९२८ से १९३० तक यह पत्र त्रैमासिक रहा। १९३१ से छः मासिक कर दिया गया। पुनः अप्रैल १९३४ में मासिक पत्र बना। अब इसका वार्षिक मूल्य २) है और आकार २० × ३० आठपेजी है। १९३४ से पूर्व इसका साईज १८ × २२ = ८ था। एवं यह पत्र शनैः २ बढ़ता हुआ भारत वर्ष के वैद्यक पत्रों में एक मुख्य स्थान को प्राप्त हो गया है।

इसमें प्रतिमास क्रमशः वनस्पतियों के चित्र, रोगादि वैद्यक विषयों पर उत्तम उत्तम लेख, आयुर्वेद सम्बन्धी सूचनायें और समालोचनायें, पर्वत यात्रा, कालेज-समाचारादि के प्रकाशन से यह पत्र दयानन्दायुर्वेदिक कालेज, तथा दूसरी संस्थाओं के छात्रों और सर्व साधारण वैद्यों के लिए उपयोगी और रोचक है। शास्त्र की रक्षार्थ यह पत्र सदैव तत्पर रहता है।

इसका सम्पादन कर्म आरंभ से आजतक संस्था के आचार्य के हाथ में रहा है। पं० हरदयाल जी तथा दूसरे अध्यापक सदैव इस कार्य में सहायता करते हैं। छात्र पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। मन्त्री छात्र-सभा तथा अन्य कइ योग्य छात्र सहायक सम्पादक हुआ करते हैं। पत्र का आयव्यय का निरीक्षण आचार्य के आधीन है। वर्षान्त पर डी० ए० वी० कालेज प्रबन्धकर्तृ सभा द्वारा सब हिसाब की जाँच-पड़ताल की जाती है।

एवं यह पत्र आयुर्वेद के प्रचारार्थ उपयोगी सिद्ध हो रहा है और ख्याति को प्राप्त हो रहा है। ईश्वर करे चिरकाल तक जीवित रहे।

आयुर्वेदाचार्य सुरेन्द्रमोहन, बी० ए० मुख्य सम्पादक आयुर्वेद-संदेश, लाहौर।

* * *

आयुर्वेद-विज्ञान

सबसे पूर्व स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य द्वारा सन् १९२१ में पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी नामक एक वृहद् औषध-निर्माणशाला का अमृतसर (पंजाब) में आरम्भ हुआ। इस औषधालय की कार्य-व्यवस्था जब काफी बढ़ चुकी थी, उस समय आयुर्वेद सम्बन्धी एक पत्र को निकालने की आवश्यकता दिखाई दी।

इसमें कोई संशय नहीं कि पत्र को निकालने का उद्देश्य व्यवसायिक नीति रही है। तथापि दूसरी ओर पत्र-प्रकाशन की इच्छा में मुख्य कारण स्वामीजी के क्रान्तिकारी विचार रहे हैं।

आयुर्वेद-संसार इस समय जिन नव्य युग के मध्य से गुजर रहा है उसका इस विज्ञानालोक पथ में आँख बन्द करके गुजरना स्वामीजी के लिये सह्य नहीं था। उनकी काफी

समय से यह इच्छा रही कि आयुर्वेद-संसार भी आधुनिक विज्ञान से समन्वित किया जाय। और प्रत्येक आयुर्वेद विषय को आधुनिक प्रयोग-वाद से सिद्ध किया जाय; सिद्ध ही न किया जाय, प्रत्युत क्रियात्मक रूप देकर उससे लाभ उठाया जाय। यदि आयुर्वेद आधुनिक विज्ञान-वाद को पूर्णतया तल्लीन कर ले या स्वयम् तल्लीन हो जाय तो अहोभाग्य। स्वामीजी ने इन्हीं विचारों की पूर्ति के अर्थ सन् १९२७ से आयुर्वेद-विज्ञान नामक सचित्र मासिक पत्र को जन्म दिया। इसका सम्पादन स्वयम् स्वामीजी ने किया। उस समय आयुर्वेद-विज्ञान तीन मास तक बड़ी शान-बान से निकला; परन्तु शोक! कि ऐसे विज्ञान परिमार्जित लेखों से युक्त पत्र का वैद्यों ने समुचित आदर न किया। वैद्यों की ओर से प्रायः यह माँग आती रही कि हमको तो अनुभूत नुस्खे (योग) चाहियें। हम ऐसे उच्च लेखों को पढ़ कर क्या करें। हमें तो हाथ पर सरसों जमाने वाली विधि बताओ। इत्यादि उस समय वैद्य संसार की इस निकृष्ट विचार धारा को देख कर १५००) हानि उठा पत्र का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा।

आयुर्वेद-विज्ञान का यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि नागराक्षर पढ़ने वालों को केवल योग बताकर निरक्षर वैद्य समुदाय उत्पन्न किया जाय। पत्र का प्रकाशन बन्द कर देने पर भी स्वामीजी की यह प्रबल इच्छा रही कि आयुर्वेद-संसार संसार-प्रवाह से कहीं पीछे न रह जाय इस लिये वह ऐसे वैद्यों की संख्या बढ़ाने में लगे रहे जो विज्ञान-वाद के लाभ को समझने की योग्यता रखते हों।

१९३१ जनवरी को पुनः आयुर्वेद-विज्ञान का प्रकाशन आरम्भ हुआ। अभी छः मास भी व्यतीय नहीं हुए थे कि कार्य बढ़ गया, एक व्यक्ति के लिये पत्र का सम्पादन कठिन हो गया, इसी लिये जुलाई १९३१ में गुरुकुल स्नातक पं० योगेन्द्रपालजी आयुर्वेदालंकार को सम्पादकीय विभाग में ले लिया गया। इस वर्ष तो पत्र निर्विघ्न निकलता रहा।

१९३२ में पुनः कांग्रेस आन्दोलन आरम्भ हुआ। स्वामीजी आगे ही से कांग्रेस कार्यकर्ता थे। स्थानिक राज्य-व्यवस्था द्वारा उन्हें नोटिस दिया गया कि वह किसी सभा सोसायटी के कार्य में भाग न लें; परन्तु स्वामीजी ने सविनय अवज्ञा भंग कर कांग्रेस डिक्टेटर पद पर जा डटे। गवर्नमेंट ने इसी अपराध में आपको २ वर्ष का कठिन कारावास तथा २००) रुपया दण्ड की सजा दी। स्वामीजी की अनुपस्थिति में पं० योगेन्द्रपालजी ने पत्र-सम्पादन का समस्त भार अपने ऊपर आया देख उसे न सँभाल सके। इसी लिये आपने इसे त्रैमासिक कर दिया। स्वामीजी जब तक कारावास में रहे पत्र इसी रूप में निकलता रहा।

१९३४ जनवरी को जब स्वामीजी कारावास मुक्त हुए, पुनः इसे मासिक रूप देने का निश्चय किया। परन्तु फार्मेसी सम्बन्धी अन्य आवश्यक कार्यों की अधिकता के कारण छः मास तक पत्र का प्रकाशन न हो सका। इस मध्य में स्वामीजी उक्त परिस्थिति का गम्भीरता से अध्ययन करते रहे। अन्त में स्वामीजी ने यह देखा कि बिना विज्ञान-वाद की सहायता के देश जाति का कल्याण नहीं, न आयुर्वेद ही, बिना विज्ञान के समुन्नत हो सकता है, इसी लिये किसी वैज्ञानिक संस्था की सहायता आवश्यक दिखाई दी। अन्त में पत्र-व्यवहार द्वारा निश्चय हुआ कि आयुर्वेद-विज्ञान विज्ञान नामक विज्ञान-परिषद के मुख्य कार्य में मिला दिया जाय। तथा फार्मेसी भी विज्ञान-परिषद के आधीन कर दी जाय। इस निश्चय के अनुसार १९३४ के जुलाई मास से आयुर्वेद-विज्ञान विज्ञान पत्र का मुख्य अंग बन कर उसके साथ प्रकाशित हो रहा है। जिसकी स्थिति इस समय प्रमुख पत्रों में है।

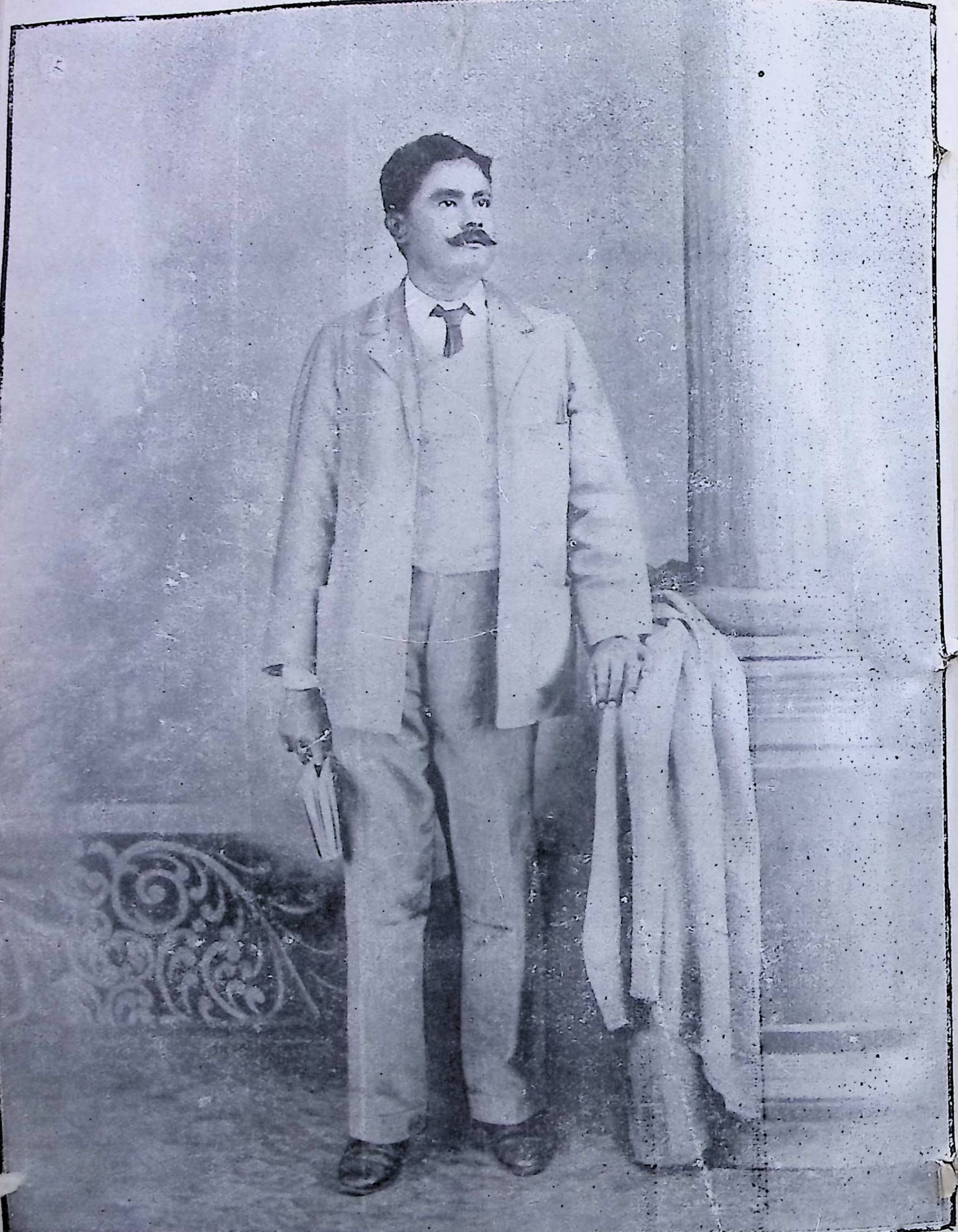

LATE VISAGBHUSAN KAVIRAJ A. C. Bisharad M. R. A. S. (Lond.)
Editor & Founder "Journal of Ayurveda".
Maker & Managing Editor, "Indian Medical Record".

Dhanwantari.

(Illustrated Monthly magazine)

This journal is running for the last 12 years. It was Registered under No. A. 1215. in the Chaitra-mas of Samvat 1980, when only a couple or two Ayurvedic journals were flourishing. Since then, Almighty have sant many companions to it, a dozen of which are still serving the Ayurveda.

The number of its subscribers now reaches to 1500, (The largest of all the Ayurvedic magazines).

The annual subscription is Rs. 3/— only.

Its proprietor is The Dhanwantari Karyalaya. Mastered equally by Vaidya Bhaskar Bankeylal Gupta. and Vaidya Debishanran, Jwalasaran Gargs.

The Editors are:—jointly:—

Vaidya Bhaskar Bankey Lal Gupta, Ayurvedacharya. Author of:—Soorya Rashmi Chikitsa, Parikshit Prayag. Ayurvediya Upchar Paddhati 2 parts & Madhava Nidan Bhaskar (not complete).

Dr. Ganpati Chandra Kela, Visharad, Sahitya Ratnakar. Author of:—Sansar Sar Sangraha, Gandhi Gita. Principles & Practice of Medicine (compiled in 8 volumes). & Visuchika-vigyan. (Not published)

A brief account of the paper may be so stated that:—

It commenced in Demy/Octavo size in the beginning of 1923. It was the first Ayurvedic journal to publish a Special number, in the same year. In the 1926 it presented Swapna-pramehank, a special number on one disease, first of its quality. In the 1927 Malawarodhanka (Specially on Constipation) was presented which has not been excelled as yet by any publication of its sort. From this year Dhanwantari attained larger size of Crown-quarto, whicn is current as yet.

In the year 5th. of its birth in 1928, it presented Praveshank (Dealing specially on Hysteria) and also the First large compilation of Prescriptions. "The Prayogank." in the 7th. and 8th. years it presented bhoot-yogank and Parikshit Prayogank, respectively containing more than a 1000 prescriptions. each, with above 60 illustrations. Priced 2/only.

As sufficient prescriptions had been selected so-far, it presented the first treatise on treatment of prominent diseases as a special number named "Anubhoot-chikitsank" in its 9th. year, edited by Vaidya Bhooshan Pt. Govardhanji Sharma Chhangani also, (Editor-in-chief of the Vaidya Sammelan Patrika).

In the years 6th. 7th. 8th. and 9th. another special numbers were also presented namely, Grihasthank, Nari-rogank, Madhumehank, and Siddha-yogank respectively. priced-/12/- only.

In the present year it has presented 2nd compilation of complete treatment of all important diseases, edited specially by Kaviraj Pratap Singh ji Rasayanacharye-President All India. Ayurveda Mahamandal; named "Chikitsa-anubhavank".

Dhanwantari has specially contributed its efforts to the establishment of Ayurvedic glory and superiority, publication of important or un-published herbs, and shrubs, drugs, and their marvellous use. Thesis from the experts about Special diseases like Athsma, Phthisis, Small-pox, Plague, Insanity, Diabetes Cholera &tc. have been published in it ; Dash-mool, Ashtawarga, Kankushtha; Kharpar, &c. all important drugs have been dealt-with and special attention has been paid towards Anatomy, Physiology and Surgical knowledge of the Ancient and Recent-days.

Antidotes for snake-bite, and publication of the results of prescriptions published in Dhanwantari has been its speciality again, and this object has been always attempted that The Public, Profession and Authorities, Hakims and Doctors as well may get good regards for our noble harm-less Ayurveda.

This is the only medical journal Approved for the school-libraries by Text-books committee of the Education Dept. of the Central Provinces and Berar.

❀ ❀ ❀ ❀

अनुभूत योगमाला

इस पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९२३ से हुआ है। १२ साल पूरे हो गये हैं। १३ वां जनवरी से प्रारम्भ होगा।

इसकी ग्राहक संख्या इस वर्ष १००० है। वार्षिक मूल्य ४) रु० है।

इसके प्रोप्राईटर और सम्पादक चिकित्सक चूणामणि पं० विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज हैं। फोटो ब्लाक भी समय समय पर छपते हैं।

प्रथम यह सन् १९२४ तक मासिक रहा। बाद को सन् १९२५ से पाक्षिक होगया सन् १९२३ में इसका मूल्य १) रुपया रहा। बाद को २) सन् १९२४ में रहा। २५ से ३) रु० हो गया। और २६ में ४) रु० होगया।

विशेषतायें। इसके साथ पुस्तक प्रकाशन विभाग भी है। जिसमें अब तक ३ दर्जन के करीब पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—सबसे बड़ी पुस्तक आयुर्वेदीय कोष है, जो २२ × २९ साईज के १०००० पृष्ठों की १० भागों में प्रकाशित होगी। इसका प्रथम भाग छप चुका है। जो "अ" रदीफ के ९५० पेजों में समाप्त हुआ है। वैद्य समाज में यह ग्रन्थ अपनी शान का अकेला है। इतना बड़ा और विशेषताओं से परिपूरित कोई भी निघण्टु इसकी शानी का नहीं आजतक निकला, इसमें आयुर्वेदीय, यूनानी, एलोपैथी की अबतक की कोई भी शोध शेष नहीं रक्खी गई। विशेष सूचीपत्र से पूरा कीजिये।

वैद्यराज पं. विश्वेश्वर दयालु।

संपादक, अनुभूतयोगमाला (हिन्दी मासिकपत्र) बरालोकपुर, इटावा।

श्रीमान् पं. रूपेन्द्रनाथशास्त्री. बरालोकपुर (इटावा)।
संपादक–राकेश (हिन्दी वैद्यकपत्रिका)।

“आयुर्वेद प्रचारक”

'सचित्र वैद्यक मासिक पत्र' काशी। संपादक कविराज श्री शाण्डिल्य त्रिवेदी जी। इस पत्र का प्रकाशन “अखिलभारत वर्षीय आयुर्वेद प्रचारणी सभा के” मुख पत्र के स्वरूप में सन् १९२१ ई० में हुआ। पुनः उक्त सभा का अस्तित्व उक्त सभा के मंत्री श्री केशरीप्रसाद जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य महोदय के स्वर्गस्थ होने से समाप्त ही सा हो जाने से उक्त पत्र का क्रमशः कई सज्जनों ने समय समय पर संपादन और संचालन किया। इधर लग भग आठ वर्षों से इसका प्रकाशन और संचालन कविराज शाण्डिल्य जी त्रिवेदी द्वारा उनकी शाण्डिल्य कुटी तथा आयुर्वेदिक अनुसन्धान भवन (आयुर्वेदिक रिसर्च इंस्टीच्यूट) के रूप में होता रहा है। और वर्तमान में भी यह पत्र पूर्ववत् आयुर्वेद की सेवा प्रचार कार्य करता हुआ प्रतिमास काशी से प्रकाशित हो रहा है। उक्तपत्र से भारत के शिक्षित समाज में आयुर्वेद का अद्भुत प्रचार हुआ है। जोर हो रहा है। इस पत्र की नीति कविराज जी के संचालन काल में प्रायः ऐसी ही रही है, जैसी की उनके स्वयम् की प्रायः रहा करती है। अर्थात् वैद्य समुदाय से तटस्थ प्रचार करना कराना; परंतु आवश्यकता पड़ने पर श्री बरार मध्यप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के न्यायोचित पक्ष का समर्थन कर इस पत्र ने C. P. के आयुर्वेद संसार में नवीन जीवन की लहर उत्पन्न कर दी। इधर भी उक्तपत्र अपनी दिनोदिन वृद्धि कर रहा है। और आयुर्वेद प्रचारार्थ अपनी पृष्ठ संख्या भी बढ़ा रहा है। एवं विशेषांक का भी आयोजन जारी है। यही इस वैद्यक मासिक पत्र का संक्षिप्त परिचय है।

* * * * *

आयुर्वेदिक पाक्षिक पत्र 'राकेश' औरं उसका संक्षिप्त परिचय

पाठको! प्रथम इसके कि मैं आपको 'राकेश' का परिचय कराऊँ, इसके उत्साही, संसार हितैषी, आयुर्वेद के सच्चे सेवक, एक्स मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, सञ्चालक महोदय श्री पं० राजकुमारजी द्विवेदी प्रतिष्ठित रईस व जमीदार, तथा आपके ही लघुभ्राता आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान् लब्धप्रतिष्ठ यशस्वी, आयुर्वेदमार्तण्ड द्विवेदी पं० रूपेन्द्रनाथ जी शास्त्री प्रधान सम्पादक 'राकेश' का कुछ परिचय कराना आवश्यक है।

आप श्रेष्ठ कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति के उज्ज्वल रत्न हैं। आप आठ भाई थे, जिसमें होनहार दो लघुभ्राता चन्द्रशेखर और राकेशदेव, किशोरावस्था में ही स्वर्गवासी हो चुके हैं। शेष भ्राता पं० बाबूराम जी शर्मा वैद्यभूषण, पं० विजयबहादुर जी शर्मा “भगवत स्नेही”, पं० कृष्णकुमार जी वैद्य तथा पं० कृष्णमुरारीलाल जी शर्मा हैं।

वैसे तो आयुर्वेद की सेवा एवं चिकित्सा कार्य आपकी कई पीढ़ियों से चला आरहा है। ऐसे-ऐसे आयुर्वेद के विद्वान् आपके खानदान में हो चुके हैं, जिनके चिकित्सा-कौशल को देखकर दांत तले उंगली दबानी पड़ती है। इसी पैत्रिक सेवा को विस्तृत रूप देने के लिए सञ्चालक महोदय ने आज से २९ वर्ष पूर्व अपने पुराने कार्य को संसार प्रसिद्ध “श्री भगवत आयुर्वेदिक फार्मेसी” का रूप देकर, बहुत ही ऊंचे परिमाण में हर प्रकार की दुष्प्राप्य बनौषधी, खनिज आदि द्रव्यों को गहन परिश्रम तथा प्रचुर व्यय-द्वारा संग्रह कर, और बड़े से बड़े

परिमाण में कई योग्य अनुभवी रसायनाचार्य वैद्यों की अध्यक्षता में रस, भस्मादिक आयुर्वेद शास्त्र की समस्त औषधें तैयार कराकर वैद्यराजों, हकीमों को अतिसूक्ष्म मुनाफ़े पर देने का वृहत आयोजन किया है। इस सेवा के फल स्वरूप भारतवर्ष के सुदूरवर्ती अनेक आयुर्वेदज्ञ विद्वानों तथा निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन से औषधियों की उत्तमता, चिकित्सा विषयक सुलभ साधन जुटाने, तथा औषधों के सभी उपादानों को असली रूप में फार्मेसी से प्राप्त होने पर, प्रधान श्रेणी के प्रमाण पत्र बहु संख्या में मिले हैं। जो संचालक की सफलता के द्योतक हैं।

उदार वैद्य विद्वानों की इच्छा और मांग के अनुसार फार्मेसी की शाखायें (ब्रान्च) इटावा और कानपुर में खोली गई हैं। और मालवा व मध्यप्रान्त के सज्जनों के लाभार्थ ग्वालियर राज्य में बड़ी शाखा खोलने का आयोजन हो रहा है।

आयुर्वेदिक पाक्षिक पत्र वैद्योपयोगी उद्देश्यों से भरपूर आज से सातवर्ष पूर्व पं० रूपेन्द्रनाथजी शास्त्रीजी के सम्पादकत्व में श्री भगवत आयुर्वेदिक फार्मेसी के एक विभाग ने निजी 'राकेश' प्रिंटिङ्ग प्रेस स्थापित कर, जन्म दिया। इस पत्र के मौलिक वैज्ञानिक सुलेखों एवं आयुर्वेद के नष्ट प्राय अङ्गों की अभूतपूर्व विवेचना पर मुग्ध हो विज्ञ वैद्यों ने अपनी उदारता का परिचय दे, अच्छे रूप में सहृदयता से अपनाया। उसी सफलता के अनुरूप 'राकेश' के जन्म से लेकर प्रत्येक वर्ष बड़े-बड़े दर्शनीय तथा पठनीय, प्रख्यात विद्वानों के खोजपूर्ण तद्विषयक लेखों से परिपूर्ण दो-दो चार-चार विशेषाङ्क प्रकाशित कर आयुर्वेद के यश को दिगन्त में धवलित किया है। उन विशेषाङ्कों में से कुछेक के नाम यह हैं। निखिलभारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन, नासिक के अवसर पर प्रकाशित होने वाला 'सम्मेलनाङ्क' 'क्लीवताङ्क' 'प्लीहाङ्क' 'वाजीकरणाङ्क' 'नेत्ररोगाङ्क' 'रसेश्वर दर्शनाङ्क' (इसमें पारद के विषय में वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।) 'गर्भाङ्क' 'धातृ विज्ञानाङ्क' 'बालरोग विज्ञानाङ्क' 'सिद्धयोगाङ्क' 'सिद्धोपचाराङ्क' 'क्षयाङ्क' 'रक्तरोगाङ्क' आदि आदि हैं। सन् ३६ के प्रारम्भ से 'राकेश' में कई दुष्प्राप्य बूटियों के बहुरङ्गे चित्र एवं पाठ्य विषय में भी वृद्धि कर दी गई है, 'राकेश' का वार्षिक चन्दा भारतवर्ष के ग्राहकों से ३) रुपया रखा गया है।

पत्र की एक ग्रन्थमाला "राकेश किरणमाला" नामक रक्खी गई है। जिसमें अप्रकाशित प्राचीन-प्राचीन ग्रन्थ एवं प्राच्य, पाश्चात्य तुलनात्मक उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित होने की व्यवस्था है। अब तक उक्त 'माला' की प्रथम किरण पूयमेह विज्ञान अथवा गिनोरिया विज्ञान, द्वितीय किरण, प्राच्य शल्यतन्त्र; पाश्चात्य शल्यतन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। जिनका आयुर्वेद जगत में अच्छा स्वागत हुआ है। निकट भविष्य में बड़े-बड़े प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ जो आयुर्वेद संसार में एकदम नवीन और महान उपयोगी हैं, प्रकाशित होंगे।

मान्यवर सञ्चालक महोदय को इतने सेवा-कार्य पर भी सन्तोष न हुआ, अब से सात वर्ष पूर्व अपने लघुभ्राता उक्त पं० रूपेन्द्रनाथजी शास्त्री के सम्पादकत्व में 'राकेश' आयुर्वेदिक पाक्षिक पत्र का, वैद्योपयोगी उद्देश्यों से भरपूर, श्री भगवत आयुर्वेदिक फार्मेसी के एक विभाग से निजी राकेश प्रिंटिंग प्रेस स्थापित कर, जन्म दिया। इस पत्र के मौलिक वैज्ञानिक सुलेखों एवं आयुर्वेद के नष्ट प्राय अङ्गों की अभूतपूर्व विवेचना पर मुग्ध हो, विज्ञ वैद्यों ने अपनी उदारता का परिचय दे, अच्छे रूप में सहृदयता से अपनाया। उसी सफलता के अनुरूप 'राकेश' के जन्म से लेकर प्रत्येक वर्ष बड़े-बड़े दर्शनीय तथा पठनीय, प्रख्यात विद्वानों के

श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य कविराज पं. गोपाल प्रसाद शर्मा कौशिक।
संपादक, 'स्वास्थ्य' (मथुरा)।

खोजपूर्ण तद्विषयक लेखों से परिपूर्ण दो-दो चार-चार विशेषाङ्क प्रकाशित कर, आयुर्वेद के यश को दिगन्त में धवलित किया है।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वास्थ्य

सचित्र मासिक पत्र का संक्षिप्त इतिहास

सुन्दर श्रृंगार कार्यालय के अध्यक्ष अनेक पेटेन्ट औषधियों के आविष्कारक और कई आयुर्वेदीय पुस्तकों के लेखक लाला जगन्नाथदासजी वैश्य, मथुरा के प्रसिद्ध व्यवसायी और आयुर्वेद प्रेमी थे। आयुर्वेद की उन्नति तथा स्वास्थ्य विज्ञान के सरल नियमों के प्रचार की ओर इनका विशेष ध्यान था। आपने इसके लिये एक विस्तृत कार्ययोजना भी बड़े तर्क-वितर्क एवं अन्वेषण के बाद बनाई। इस योजना को सफल बनाने के लिये एक विद्वान सम्पादक की खोज में थे दुर्भाग्यवश इसी बीच में उनका वैकुण्ठवास हो गया।

स्वास्थ्य के वर्तमान सम्पादक कविराज श्री गोपालप्रसाद जी शर्मा "कौशिक" आयुर्वेदाचार्य के हृदय में आयुर्वेद उन्नति और देश सेवा की महान भावना अविच्छिन्न रूप से है। आपको भी वर्तमान साहित्य में स्वास्थ्य विज्ञान विषयक उपयुक्त उचित मासिक का प्रकाशन अभाव बराबर खटक रहा था, जो कुछ पत्र हैं भी उनका सम्पादन प्रकाशन अधिक ऊँचे स्टैण्डर्ड पर चाहते थे। इसी विचार से एक स्वतंत्र मासिक प्रकाशन का विचार आप कर रहे थे जिसमें निम्न विशेषतायें हों—

१—देश-विदेश के सुप्रसिद्ध प्रौढ़ विद्वान लेखकों के लेखों का प्रकाशन।
२—यशस्वी और सफल चिकित्सकों की अनुभूत चिकित्सा प्रणाली का प्रकाशन।
३—स्वल्प मूल्य की सुलभ औषधियों (सरलता से प्राप्त होने वाली वनस्पतियों) द्वारा गृहस्थ भी लाभ उठा सकें इस लिये सरल और अनुभूत प्रयोगों का प्रकाशन।
४—स्वास्थ्य विषयक नियमों का सरल रूप से वर्णन।
५—आयुर्वेद-शास्त्र और चिकित्सा-विज्ञान के गूढ़ ज्ञान का सम्यक विश्लेषण।
६—पाश्चात्य विज्ञान के उपयोगी और आवश्यक विषयों का सरलता से निरूपण।
७—जिन विषयों का आयुर्वेद में अभाव है उनकी अनुभवबल तथा अन्य विज्ञानों से पूर्ति।
८—पबलिक हेल्थ, गवर्नमेन्ट मेडिकल डिपार्टमेन्ट, यू० पी०, इन्डियन मेडिसन बोर्ड, आयुर्वेद महामंडल वैद्य सम्मेलन, आयुर्वेदिक कालेज आदि संस्थाओं की रिपोर्ट विवरण आदि का प्रकाशन।
९—विषय के सरल और सम्यक बोध करने के लिये आवश्यक चित्रों का प्रकाशन।
१०—रोगचिकित्सा के साथ ही रोग उत्पन्न न होने देने की ओर अधिक लक्ष्य।
११—आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिये परीक्षोपयोगी प्रश्न पत्रों के लिखने की विधि।

कागज, छपाई, प्रूफ संशोधन सभी उत्तम, कवर तिरंगा चित्र युक्त भव्य, इस पर भी मूल्य केवल २) रुपया हो।

इसी सिलसिले में कौशिकजी मुझ से मिले तो पता चला कि लालाजी की और आपकी विचार धारा मिलती हैं तथा योजना में भी विशेष समानता है, अतः आपके सम्पादकत्व में "स्वास्थ्य" निकालना निश्चित हुआ है। स्वास्थ्य के साथ-ही-साथ ग्रन्थमाला भी रहेंगी। इसमें प्रत्येक रोग एवम अन्य स्वास्थ्योपयोगी विषयों पर सर्व भाषा में स्पष्ट और विशद विवेचनापूर्ण निबन्ध (ट्रैक) प्रकाशित किया है। दूसरी में आयुर्वेद के गूढ़ ज्ञान युक्त प्राचीन प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों पर सरल और सर्वाङ्गीणपूर्ण टीका करके सुलभ मूल्य में प्रकाशित किये जायेंगे—उपरोक्त योजनाएँ बहुत शीघ्र ही प्रकाश में आने वाली हैं। स्वास्थ्य द्वारा और भी जो कुछ योजनाएँ हैं या जो कुछ आयुर्वद की सेवा हमारा मण्डल (स्वास्थ्य मंडल) करना चाहता है निवेदन करेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

आयुर्विज्ञान सम्मेलनी

बंग देश में एक ही आयुर्वेद पत्रिका है जो कलकत्ते से निकलती है।

भाषा "वंगभाषा" जन्मतिथि—१३३८ वंगाब्द कार्यालय—१९१ बहुबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। आरोग्य निकेतन सम्पादक—"कविराज इन्दुभूषण सेन आयुर्वेद शास्त्री वार्षिक मूल्य दो रुपया दश आना २॥=)। प्रति संख्या चौदह पैसा ≡)॥। आपके अस्पताल में अंग्रेज डाक्टर ने जो कटाक्ष किया, उसका इस पत्रिका में तीव्र खण्डन किया है। उस लेख की कापी भेजी जाती है। सम्पादक श्रीमान इन्दुभूषण सेन आयुर्वेद शास्त्री महाशय की तसबीर भी भेजी जाती है। आप यदि रजत जयन्ती या वैद्य सम्मेलन का संवाद भेजना चाहें तो इस पत्रिका में भेज देवें।

❀ ❀ ❀ ❀

आरोग्य सिन्धु

सम्पादक—वैद्य गोपाल जी कुंवर जी ठक्कुर

यह वैद्यक मासिक पत्र आज तेरह साल से सिंध के पाटनगर कराची से प्रगट होता है। भाषा और लिपि गुजराती है और इनका प्रचार हरेक प्रांत में अच्छा हो चुका है इस पत्र के द्वारा वैद्यों में ठीक जाग्रति हुई है और गुजराती भाषा के तीन वैद्यक मासिक पत्र हैं उनमें इन पत्र का भी योग्य स्थान रहा है, वैद्य संमेलन की कार्यवाही का पूर्ण हवाला इस पत्र में हमेशा प्रगट होता रहता है। सिवाय आरोग्य आयुर्वेद और जनोपयोगी वैद्यक बातों पर अच्छा प्रकाश डाला जाता है। वार्षिक मूल्य सिर्फ २ रुपया है और निम्न पते पर से मिलता है। आरोग्य सिन्धु कार्यालय, नानकवाडा, कराची।

"आरोग्य सिन्धु ग्रन्थमाला" सम्पादक वैद्य गोपाल जी ठक्कुर, नानकवाडा, कराची, इस ग्रन्थमाला द्वारा आज दश वर्ष में करीब २० पुस्तक प्रगट हो चुकी हैं, एक पुस्तक न्यायवैद्यक और विष तंत्र हिन्दी भाषा में है और पुस्तकें गुजराती भाषा में हैं इन पुस्तकों का प्रचार अच्छा हो रहा है और पुस्तकों द्वारा वैद्यक प्रचार में ठीक सहायता होती है।

श्रीमान् वैद्यराज गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर।
संपादकः 'आरोग्यसिन्धु' (गुजराती मासिक पत्र)।
संचालक और स्वामि, धी सिन्ध आयुर्वेदिक फार्मसी (कराची)।

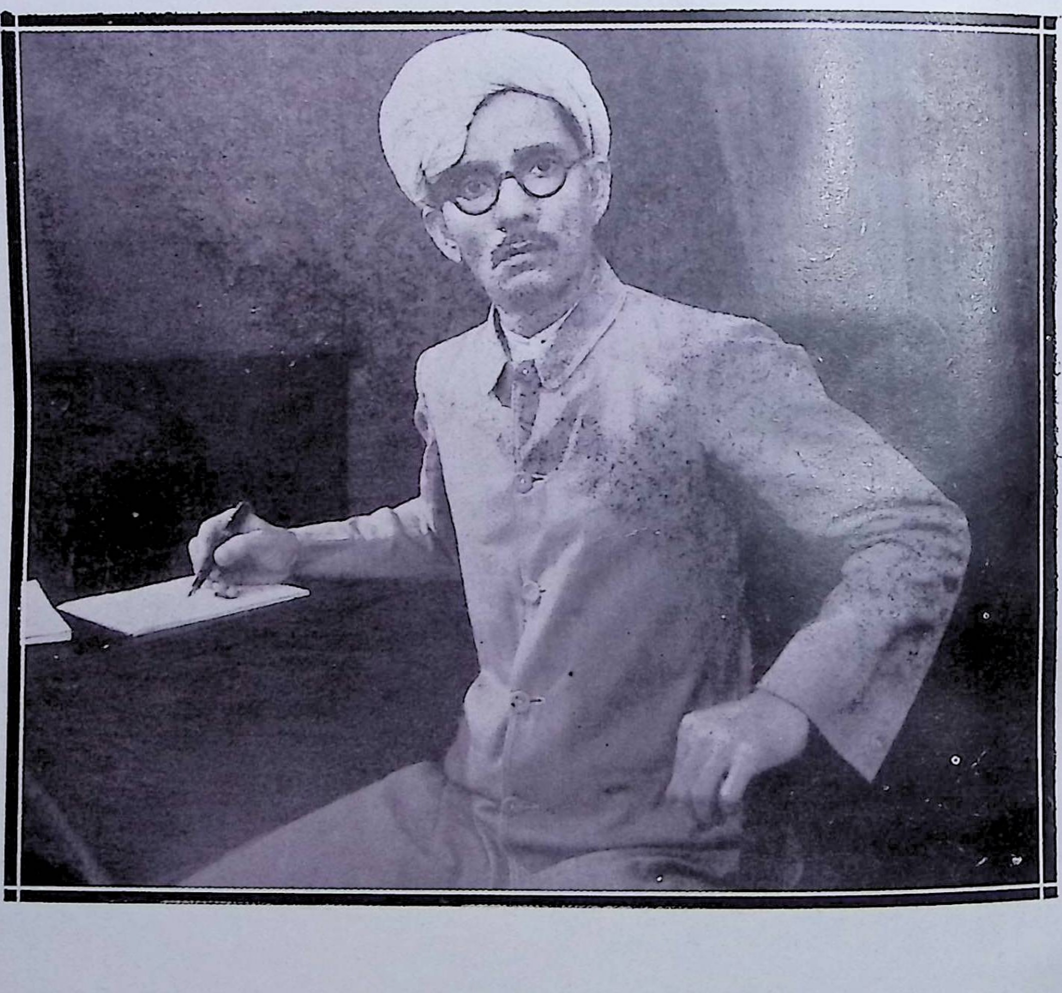

श्रीमान् वैद्यराज रविशंकर जटाशंकर त्रिवेदी अमदाबाद।
संपादक, वैद्यकल्पतरु (गुजराती मासिकपत्र)।

वैद्यकल्पतरु

आद्य संपादक स्वर्गस्थ वैद्यराज जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी आयुर्वेद पञ्चानन । वर्तमान संपादक वैद्य रविशंकर जटाशंकर त्रिवेदी मालिक गुजरात आयुर्वेदिक फार्मेसी अहमदाबाद ।

हमारे स्वर्गीय पिता श्री वैद्यराज जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी जी ने महात्मा झंडु भट्ट जी और अन्यान्य विद्वान वैद्य मित्रों के अनुग्रह से प्रथम ई० सन् १८९४ में आयुर्वेदिक मासिक पत्र वैद्यकल्पतरु नामक शुरू किया । हमारे प्रांत में वैद्यकीय साहित्य का वाचन वैद्य समाज और जनसमाज के आगे उपस्थित किया । आप सुभाषित लेखक तर्क शास्त्र में प्रवीण और शास्त्रज्ञ थे । साहित्य में भी आप अच्छे निष्पात थे । शुरुआत में तो कुछ वर्षों तक वैद्यकल्पतरु मासिक में बहुत कुछ व्यय कराया । लेखकों का अभाव था किंतु गुरुवर्य श्री महात्मा झंडु भट्टजी और आपके सुज्ञ मित्रों की वैद्यक साहित्य विषयों में अच्छी सहायता मिल जाने से हताश न हुए और उत्साह रखते हुए मासिक का कार्य के खर्च में घाटा पड़ते भी आगे बढ़ाते रहे । आपकी प्रखर प्रतिज्ञा थी कि आयुर्वेद मासिक द्वारा आयुर्वेद की, वैद्यसमाज की और जन समाज की सेवा करने की ही है । चाहे जो हो जाय मासिक को वैद्यसमाज और जनसमाज में प्रिय बनाने के लिये आपने बहुत ही कष्ट उठाया और अंत में जैसी आपकी शुभ भावना थी वैसा ही शुभ फल प्राप्त किया और कल्पतरु मासिक पत्र के साथ ही साथ अन्यान्य वैद्यकीय साहित्य के पुस्तकों को भी प्रगट करने लगे और हर साल वैद्य समाज और जनसमाज को उपयोगी होवे ऐसी एक एक पुस्तक वैद्य कल्पतरु के ग्राहकों को बिना मूल्य उपहार देना शुरू किया । इस प्रयत्न से जनसमाज की और वैद्य समाज की अभिरुचि बढ़ गई । आपके प्रयत्न से और कार्य करने की शैली से प्रसन्न होकर कितने ही डाक्टर भाइयों ने भी वैद्यकल्पतरु मासिक में अपना लेख भेजने को प्रवृत्त हुवे और अभी भी बहुत से डाक्टर भाइयों ने इस शुभ प्रसिद्ध अग्रगण्य गुर्जर मासिक पत्र वैद्यकल्पतरु में अपने विद्वत्तापूर्ण लेखों को भेज के हमको उपकृत कर रहे हैं । मासिक पत्र के ग्राहकों की संख्या हमारे पिता श्री.की हयाती में बढ़ करके २५०० से ३००० तक पहुँच गई थी । उनके देहान्त के बाद स्वाभाविक रीति से जो कुछ थोड़ा बहुत घाटा लग गया है वह भविष्य में पूर्ण होने की संभावना रहती है । हमारे पिताश्री ने घरवैदू (Family Medicine) नामक एक उपयोगी वैद्यक संग्रह का ग्रंथ गुर्जर भाषा में बनाकर सरल वैद्यक का प्रचार हमारे प्रांत में बढ़ाया है । इस ग्रंथ के द्वारा देहातों में वैद्यों और सामान्य समाज भी अपना कार्य सरलता से साध्य कर लेते हैं । भाषा ज्ञान वाले वैद्यों को यह ग्रंथ मार्ग दर्शक हैं याने आयुर्वेदीय मार्गोपदेशिका का कार्य करता है । आज दिन तक इसकी आठ आवृत्तियाँ हो चुकी हैं । हमारे पिता श्री ने वैद्यकल्पतरु मासिक को हिन्दी भाषा में प्रगट करना शुरू किया था परंतु खर्च पुरा हो जाय इतने भी ग्राहक न होने से इनको बंद करना पड़ा । हमारा मासिक कितने ही देशी राज्यों में अपने एज्युकेशन विभाग में वाचनालयों (लायब्रेरी) के लिये पसंद किया गया है । उसमें अच्छे अच्छे विद्वान वैद्यों, आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों ने अपने अपने महत्त्वपूर्ण जन समाजोपयोगी, वैद्योपयोगी और आयुर्वेद की प्रगति के लिये उत्तम लेख भेज कर इस मासिक को बहुत ही उपकृत करते हैं । हम उनके बहुत ऋणी हैं । हमारे प्रांत में वैद्यकल्पतरु मासिक पत्रों में अग्रगण्य और बहुमान्य है । नि० भा० आ० महामंडल और विद्यापीठ की प्रगती महासम्मेलनों और प्रान्तीय सम्मेलनों के हवाले और अन्यान्य वैद्यकीय समाचार

हमारे मासिक में हर समय प्रगट करते रहते हैं। वैद्यकीय नवीन आविष्कारों को भी उसमें अग्रस्थान देते हैं। मासिक का मूल्य रु० ३) तीन रुपया वार्षिक है। उपहार की पुस्तक मुफ्त भेजते हैं।

इस मासिक में आज तक वैद्यों डाक्टरों, हकीमों और सामान्य विद्वान सज्जनों ने मिला के ४५० लेखकों ने वैद्यकीय लेखों भेज कर हमको मदद दी है उनका हम ऋणी हैं।

वैद्य रविशंकर जटाशंकर

बिहारप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन त्रैमासिक पत्रिका

बिहार प्रान्त में आयुर्वेदीय पत्र पत्रिकाओं का नितान्त अभाव था, अतएव वैद्यों में परस्पर सङ्गठन, आयुर्वेद प्रचार तथा विचार-विनिमय में अत्यन्त कठिनाई का अनुभव कर प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन ने पहले पहल वि० प्रा० वै० सं० त्रैमासिक पत्रिका निकालने का निश्चय किया। तदनुसार सन् १९३३ से पत्रिका प्रकाशित हो अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए प्रयत्न करती हुई निकल रही है। पत्रिका में प्रान्तीय तथा भारतीय बड़े बड़े आयुर्वेदवेत्ता विद्वानों के आयुर्वेद विषयक गवेषणा पूर्ण मौलिक निबन्ध, अनुभूत योग तथा पश्नोतर आदि उपयोगी विषय प्रकाशित किये जाते हैं।

पत्रिका के संरक्षक हैं वैद्यरत्न भिषगाचार्य पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी जी आयुर्वेद रत्नाकर पटना।

सम्पादक मण्डल निम्न लिखित निर्दिष्ट हैं।

प्रधान सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य पं० श्री विधुभूषण सेन काव्यतीर्थ कविरत्न।
सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य गोस्वामी पं० भैरवगिरि जी का० सा० तीर्थ कविरत्न।
,, ,, पं० सुखराम प्रसाद बी० एस० सी०।
,, श्री पाठक प्रमोद शरण शर्मा चिकित्सक।
,, काव्यतीर्थ पं० श्री श्री कान्त शर्मा वैद्यरत्न।
प्रकाशक—वि० प्रा० वै० सं० कार्यालय पटना।

पत्रिका प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के सदस्यों को मुफ़् मिलती हैं और सर्व-साधारण को प्रचार के लिये १) रुपया वार्षिक मूल्य में दी जाती है।

रत्नाकर

आयुर्वेद सम्बन्धी उच्चकोटि का सचित्र मासिक पत्र। सम्पादक आयुर्वेदाचार्य पं० छोटेलाल जी जैन वैद्य। यह पत्र छः वर्षों से इटावा से प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २) है।

आरोग्य

सम्पादक वैद्य पं० चन्द्रचूड़ जी शास्त्री, चतुर्वेदी तथा वैद्य पं० सूर्य नारायण जी जोशी। वार्षिक मूल्य १)। पता—C/O बाम्बे एजेन्सी, इन्दौर।

श्रीमान् वैद्य गोपीनाथ गुप्त अहमदाबाद ।
संपादक, आरोग्यदर्पण (हिन्दीमासिक पत्र) ।

आयुर्वेद

यह महाराष्ट्र भाषा का पत्र है और वैद्य आप्पा शास्त्री साठे के सम्पादकत्व में बम्बई से बाइस वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य १॥=) है।

आर्यवैद्य

यह भी महाराष्ट्र भाषा का पत्र है। पूना से वैद्यभूषण गणेश शास्त्री जोशी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य १) रुपया हैं।

आरोग्य-सिन्धु

यह हिन्दी भाषा का पत्र इटावा से पं० लक्ष्मीनारायण जी वैद्यराज के सम्पादकत्व में ३ वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २) रुपया है।

जीवनसुधा

सम्पादक भगवद्देवशर्मा, आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली।

आयुर्वेद संसार

यह पत्र प्रताप आयुर्वेदिक फार्मास्युटिकल वर्क्स की ओर से अजमेर से प्रकाशित होता है।

Health & Vitality
The journal for National Revitalisation.
Annual subscription Rs. 3/-

Vaidya Sarathy.

An Anglo Vernacular monthly Medical journal mainly devoted to Ayurveda. Annual Subscription Rs. 3.

College of Indigenous Medicine.
Published by the Indigenous Medical Student's Union
Re. 1 per copy.

* * *

संयुक्तप्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन हरदोई के सभापति

आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल का

संक्षिप्त अभिभाषण ।

[संयुक्तप्रान्तीय द्वितीय वैद्यसम्मेलन सं० १९७६ में २१ दिसम्बर पौष कृष्ण १४ को हुआ था । उसके सभापति के पद से आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का जो भाषण हुआ था वह बहुत विस्तृत था । स्थल संकोच के कारण उसे समग्र देना सुविधाजनक नहीं होगा । किन्तु उस भाषण का उपसंहार एक महत्वपूर्ण अंश था, उसे हम यहाँ मुद्रित करते हैं ।]

सबका सारांश यह है कि हमें रात-दिन अपनी अन्तर्वाह्य उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये । विद्यासम्पादन करना, विद्या का विस्तार करना, अपने दोषों को छोड़ना, पराये गुणों का आदर करना, दुःखियों का दुःख दूर करना; सुखियों के सुख में साझीदार होना और उनसे आयुर्वेद के उपकार के लिए अपना हक निकलवाना, परस्पर मिलकर रहना, ज्ञान का आदान प्रदान करना, रोगी के सामने कई वैद्य इकट्ठा होने पर अपनी ही धाक जमाने का प्रयत्न न कर रोगी का उपकार किस प्रकार होगा वैसीही सलाह और युक्ति बताना, अपने व्यवसाय और व्यवहार में सचाई, गम्भीरता, उदारता और भूतदया को प्रधान रखना, आप सार्वजनिक प्राणों के संरक्षक हैं इस उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रखना, मत्सर के वशवर्ती हो अपने किसी भाई की निन्दा को अपनी ही निन्दा समझ त्यागना, वृद्धों को 'बालदपि सुभाषितम्" ग्रहण करना और जवानों को वृद्धों का गुरुवत मान रखना सदा उचित है । क्रोध के वशवर्ती हो अपनी और अपने आयुर्वेद की प्रतिष्ठा में कभी वाधा आने देने का अवसर उपस्थित नहीं करना । रोगी श्रीमान हो या गरीब हो, जिस प्रकार उसमें आयुर्वेद की श्रद्धा दृढ़ हो वैसाही करना, क्योंकि द्रव्य प्राप्ति के लिये उद्योग के साथ ही प्रत्येक का भाग्य भी लगा ही रहता है, वह कहीं न कहीं से आवेगा ही । विकार वासनाओं को कभी हृदय में स्थान न दे अपने पास चिकित्सा में आये हुए पुरुष, स्त्री, बालक, बालिका सबको अपने माता-पिता, पुत्र-पुत्री के समान समझ ध्यान पूर्वक उनकी बातें सुन उचित उपाय बताना आयुर्वेद का आदेश और वैद्य का धर्म है । नवयुवक उत्साही वैद्यों को ज्ञान से कभी तृप्ति नहीं होनी चाहिये वे सदा अपना भण्डार हिलोड़ते रहें और समय तथा सुविधा के अनुसार यूनानी, यूरोपीय आदि पद्धतियों के तत्व जानने के लिये भी उत्सुक और उद्योगशील रहें, कोई नवीन अनुभव और ज्ञान प्राप्त होने पर अपने भाइयों में प्रकट कर देना चाहिये, जिससे उस ज्ञान की विस्तृति और संस्कृति में सुलभता हो । वैद्यों की विशेषता में नाड़ी-ज्ञान एक मुख्य अंग है, समाज में नाड़ी-ज्ञान के कारण वैद्यों का विशेष समादर है, उस ज्ञान की प्राप्ति पुस्तकों से नहीं अभ्यास से विशेष होती है । इसलिये "नाड़ीज्ञान विनावैद्यो न लोके पूज्यतां व्रजेत्" पर ध्यान रख व्यक्तिगत रूप से इसकी प्राप्ति पर ध्यान रखना चाहिये । इष्ट के बिना इष्ट-सिद्धि नहीं होती, इसलिये वैद्यों में अपने अभीष्ट-देव का इष्ट होने के सिवाय आदिवैद्य भगवान-धन्वन्तरि का इष्ट होना आवश्यक है, इससे उनकी औषधियों में विलक्षण शक्ति आवेगी, उनका पीयूषपाणित्व बढ़ेगा । प्रतिवर्ष प्रत्येक नगर में श्री धन्वन्तरि महोत्सव होना चाहिये और सर्वसाधारण में धन्वन्तरि पूजा का महत्व प्रतिबिम्बित करना चाहिये । इस अवसर में जो सहायता मिले उसे आयुर्वेद महाविद्यालय की सहायता में भेजना चाहिये । जो अपनी

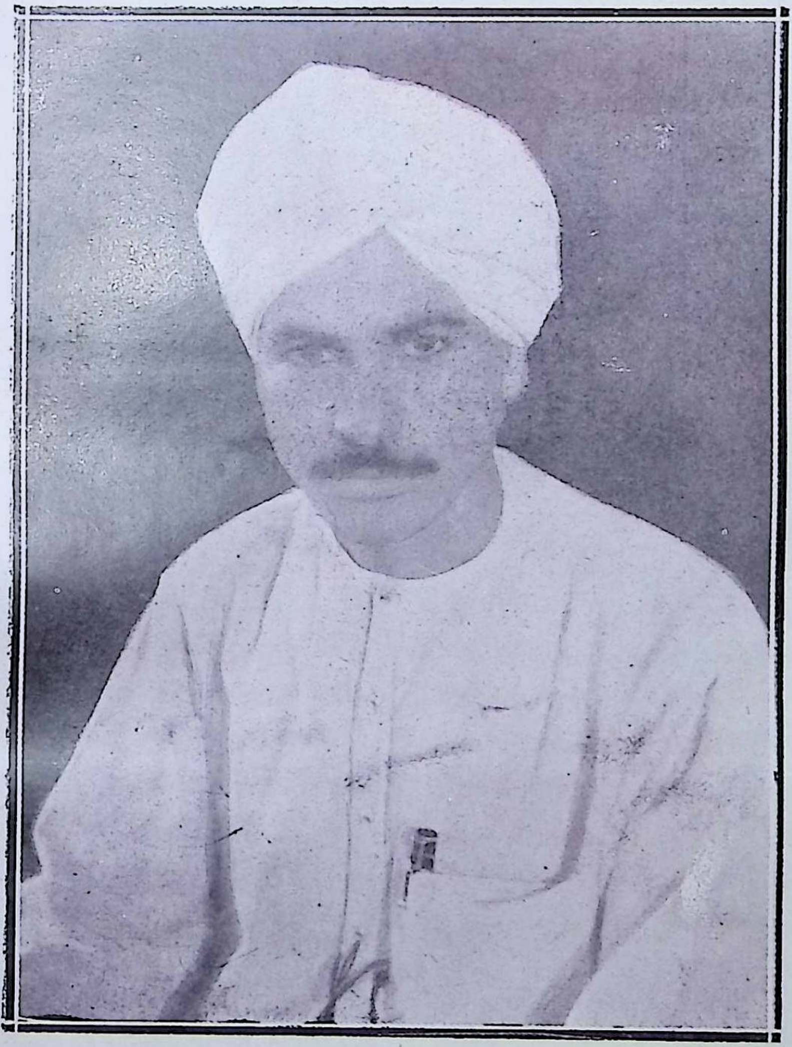

श्रीमान् वैद्यराज पं. हरिदत्तजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य लाहोर।
संपादक, 'अश्विनीकुमार' (हिंदी मासिक पत्र)।

इज्जत करना जानता है, उसकी संसार में इज्जत होती है। अपने वैद्यसम्मेलन को अपनी शक्ति, अपनी समष्टि, और अपनी प्रतिष्ठा का केन्द्र समझना और बनाना चाहिये। सम्मेलन को शक्तिमान कर संसार में आयुर्वेद का प्रताप बढ़ने के लिये उसे समर्थ करना चाहिये, जिस से ईसाइयों के मिशन के समान, आर्यसमाज की प्रतिनिधि सभाओं के समान हर प्रकार के उपायों से वह कार्य-सिद्धि के प्रयत्न करता रहे। अपने प्रत्येक कार्य में सत्य और ईश्वर का दृढ़ बल चाहिये। सच्ची कर्तृत्व शक्ति ईश्वर का बल है, ईश्वर का अंश और प्रसाद है। मानवी कर्तव्यों, उच्च सिद्धान्तों और पवित्र आकांक्षाओं के पीछे एक दिव्य शक्ति रहती है, जो मनुष्यों को पतन से बचाती है, इस बल से अवश्य सफलता मिलती है। अपना हृदय सदा उच्च, दृढ़, गम्भीर और विशाल रख कर कर्तव्य क्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहिये। हमें नकल नहीं अपनी विशिष्टता का सदा ध्यान रखना चाहिये। केवल अपने कर्तव्य में लगे रहने से ही प्रतिष्ठा होती है, प्रतिष्ठा की आकांक्षा या प्रतिष्ठा के प्रयत्न से मनुष्य प्रतिष्ठित नहीं होता, बल्कि लल्लू बनता है, उसकी ओर लोग अंगुली उठाते और हँसते हैं; "बड़े न हूजै गुणन बिन विरुद बड़ाई पाय। कनक धतूरे को कहै गहनो गढ़ो न जाय॥" किन्तु नीरव कर्तव्य साधन का फल बड़ा मधुर, सुखकर और स्थायी होता है। अपनी-अपनी अलग खिचड़ी पकाना बन्द होना चाहिये, अपना सम्मेलन और अपने विद्यापीठ के अंग रूप होकर ही आयुर्वेद के कार्यों का विस्तार होना चाहिये, जिससे किसी को यह कहने का साहस न हो कि वैद्यों का संगठन नहीं है। विद्यापीठ की परीक्षाओं को प्रभावशाली और प्रतिष्ठित होने दो, भिन्न-भिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों की परीक्षाएँ और पदवी दान के कार्य बन्द होने चाहिये, उनसे इस समय लाभ के बदले अपनी केन्द्रीभूत शक्ति को हानि है। इस प्रकार भीतरी और बाहरी कर्तव्यों और प्रयत्नों से हमारा उज्ज्वल स्वरूप प्रकाशित होगा, हमारी कीर्ति बढ़ेगी, हमारे आयुर्वेद के महत्व का विस्तार होगा, हमारा अभ्युदय होगा, हमारे देश का कल्याण और गौरव स्पृहणीय होगा। हमारी धवल ध्वजा फहरावेगी, हमारी मान-प्रतिष्ठा, हमारी सामाजिक स्थिति, उच्च होगी। हम होंगें, हमारा देश होगा और हमारे आयुर्वेद का विश्वव्यापी प्रभाव होगा। कोई अदृश्य किन्तु पवित्र शक्ति कानों में कह रही है "तथास्तु।"

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागम शालिनां।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥
उजृम्भतां प्रेमपरस्परेण, वैद्येषु निर्व्याज भवं च सख्यम्।
धत्तां प्रमोदं किल वैद्यविद्या विद्योततां कीर्तिलता दिगन्ते॥
आयुर्वेद सुधांशु भासितमिदं भूयान्महीमण्डलम्
वैद्यानां च विकाशमाशु तनुताच्छुभ्रं यशः सन्ततम्।
तूर्णं भारत भूतलं च भवतात् श्रीमत्तथा नीरुजं
लोकोऽयं निखिलोऽपि सौख्य निचयैर्युक्तः सदा तिष्ठतात्॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

Ayurveda.

By Capt. A N. N. Panikkar, M. R. C S. (Eng.) L. R. C. P. (Lond.),
Ayurveda Bhushana, (*Madras*), *M. B. Ch. B.* (*Edin.*) *L. C. P. & S.* [*Calcutta*]
L. M & S. [*Homeo*], *A. M. A. C.* [*Madras*].

It is a self-evident fact that the advancement of study of Ayurvedic Medicine amongst students at the College of Indigenous Medicine could be materially aided by the presence on the Board of Indigenous Medicine of a number of persons trained in "Scientific Medicine" There is a conservative element amongst native medical practitioners who desire to keep away from the Ayurvedic System, all those advantages which could accrue to it from the development of modern scientific medicine. These practitioners fail to realise that they are doing irreparable damage to the cause of Ayurveda by refusing to incorporate in it the methods of usefulness which have made modern 'scientific medicine' materially popular. In this way they are ignorantly retarding the proper development of Ayurveda. Both Charaka and Susrutha, the great exponants of Ayurveda, have freely advocated learning even from an enemy and Ayurvedic authors have included foreign medicines in their pharmacopæa from time to time, as is seen in the later Ayurvedic works which contain many drugs which do not find a place in the older standard works. Even the use of opium and mercury are only found in later Ayurvedic works, whilst standard works like Charaka and Susrutha did not make use of those medicines freely. On this principle even this conservative element should find easy to reconcile their conscience to the need of utilising the multiplicity of modern methods which have been evolved under the pressure of necessity to meet the discovery and treatment of new diseases. It would be a fatal error for Ayurveda to remain static when modern medicine is developing in so many directions. People would have the right to say in such a case that under the Ayurvedic System of treatment they would be deprived of the methods which alleviate suffering and reduce pain (the two primary objects of medicine) in a manner unknown to the older system. Since medicine is meant to serve humanity, it should be recognised that it knows no narrow boundaries of race and system and should be regarded as a common heritage for mankind to be freely drawn upon for all uses. A beautiful legend states that Charaka and Susrutha were born as gifts of the devas who saw the universal sufferings of man and not of the Indians alone, and those

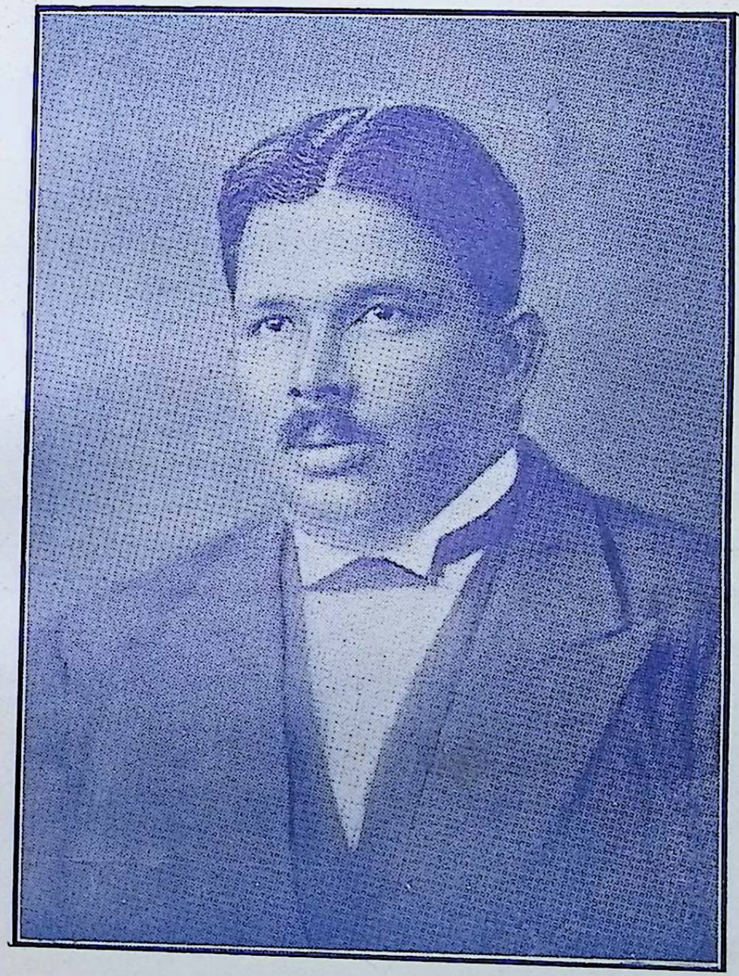

Capt. A. N. N. PANNIKKER, *M. R. C. S. (England), M. B. Ch. B. (Edin). Ayurveda Bhushana (Madras).*

who are swayed by ancient lore should read from this a lesson that Ayurveda should not be restricted in its usefulness to the poorer classes alone by a refusal to accept and absorb the results of modern scientific medicine. Another useful lssson could be learnt from the history of Western medicine. Western Medicine, it might be paradoxically stated, had its origin in the East and is therefore still under a debt of gratitude to the ancient system. In borrowing from modern Western Medicine, Ayurveda is in some measure only a part what it has already helped to create. Ayurveda therefore should not be arrested in its legitimate development by the unappreciative attitude of a certain section of Ayurvedic practitioners in this country. The Indian practitioners in the country are doing all in their power to derive the maximum usefulness from Ayurveda by an alliance with modern scientific methods. It is a vain and unfounded fear on the part of others that the individuality of Ayurveda would be lost by the process of its ineluding modern methods. In passing it might be mentioned that the resuscitation and development of Ayurveda in India for the last half a century were due to the work of Western qualified Indian doctors whose mastery of Ayurveda was largely the result of their knowledge of both systems, supplementing the deficiencies of one or the other through their knowledge of both. There is no reason why the same beneficial results should not be expected from such an enlightened method if used in this country by the students at the Ayurvedic College who have to undergo a five years' training in the study of medicine. It is not however suggested that students should go through two courses of study and qualifications but they should get the benefit of essential modern requirements with an exhaustive study of the principles and practice of Ayurveda in one and the same course at the Ayurvedic College. It is for the purpose of leading to such a result that it is necessary to have on the Board of Indigenous Medicine, for advice and guidance in controlling and regulating the course of study at the Ayurvedic College and the treatment of patients in Ayurvedic Hospital, a number of persons who have had a training in scientific medicine. It is only by such an experienced body that a course of studies could be evolved progressively which would avoid the danger of changing the character of Ayurveda and substituting in its place a hybrid scheme of studies wholly alien to the intentions of those who are interested in the correct development of Ayurveda in this country. This body could also hold itself responsible to public opinion with authority on the basis of its knowledge and experience, to remove the Ayurveda system from the danger of its being regarded as an entirely self-sufficient and self-contained system which has reached maturity and completeness in some ancient period and which therefore requires no invigoration from the discoveries of modern scientists.

New diseases have brought into being remedies. It would be disadvantageous to deprive those who have faith in the Ayurvedic system of the relief from suffering such benefits as ordinary educated laymen know to be within the competence of any Western qualified doctor to confer. Knowledge has spread through all ranks, and people are in the habit of comparing their experience. If it happens that a patient who suffers from a particular disease is not correctly diagnosed ard given an appropriate remedy by a practitioner and this patient is compelled to resort to the western qualified doctor who immediately diagnoses his case and prescribes an effective and quick remedy, such a patient would quite naturally feel the burden of the voluntary disabilities which the system of ayurveda suffers for want of a common-sence adjustment of this system to the latest available knowledge. Many examples of the reasonableness and indispensability of modern scientific method could be provided which would prove the advisability of lining up with requirements of the day.

The example might be taken first of a man suffering from a headache. The Ayurvedic physician should be able to have a reasonable apprehension that this might be due to an error of refraction in the eye in which case the only feasible remedy is to recommend the use of spectacles to correct such defect. It is to be noted here that the most assiduous treatment for such a defect by the Ayurvedic method could not prevent the necessity for ultimately wearing specticles. Then there is the inhalation of oxygen in defective aeration of the lungs in cases of pneumonia and the failing heart. This simple but powerful remedy should be made available to the dying man even to make him hold on to life long enough to enable the efficacy of Ayurvedic remedies to be proved. It is time therefore that Ayurvedic physicians cast away their prejudices and adopted the use of oxygen. A simple enema or soap and water is a time-saving necessity. A catheter for relieving a distended bladder is another necessity the use of which is essential to even the Ayurvedic physician. Then there is the use of the thermometer which cannot be dispensed with under any pretence of a more accurate method of recording the temperature Though the physician is throughly satisfied, it is only fair that the patient should also have some guarantees that a correct reading of his temperature has been made. No one has impugned the reliability of the thermometric method but not all are equally satisfied of the reliability of any other method.

श्रीयुत् डा० गिरीन्द्रनाथ मुकर्जी,
बी० ए०, एम० डी०, एफ़० ए० एस० बी०, भिषगाचार्य,
सम्पादक—जर्नल अफ़ आयुर्वेद, कलकत्ता ।

There are a number of prevalent diseases which cannot be diagnosed with tolerable certainty within a reasonable time limit except by resort to microscopic and bacteriological examination. It must be also realised that the early discovery of the true nature of specific infectious diseases like enteric fever, pulmonary tuberculosis, epidemic dysentery and eruptive fevers would effect the reduction of their spread in crowded household. Besides, these cases should be brought to the notice of the public health authorities but this could be done only after the nature of the diseases is definitely ascertained.

Patients who have been under the advice of Western practitioners desiring a change of treatment under protracted illness, would like Ayurvedic physicians to understand the effect of the medicines already used. The Ayurvedic physician should be able to detect a quinine rash, a bromide rash, bronchial catarrh resulting from the use of potassium iodide, and various forms of skin diseases resulting from the use of arsenical preparations. In this wav alone could be inspired confidence and diseases effectively dealt with.

A few more examples might be adduced in explanation. Under the conditions of modern civilization syphilis is a public health problem of the first magnitude engaging almost universal attention. Those who understand the comparitive merits of the Ayurvedic and Western systems of diagnosis and treatment are aware that the advantages as regards quick results are on the side of scientific medicine which requires the use of *Salvarsan* and other similar remedies. Other cases are the examination of the sputum for detection of consumption and asthma, examination of faeces, the detection of hookworm and diabetic conditions by the examination of urine both of which claim a very large percentage of victims in this country, the knogledge and use of local anesthetics and expeditious extraction of foreign bodies, washing out the stomach in cases of poisoning, detection of blood pressure, ante-natal advice, infant feeding, house, hospital and village sanitation, rendering first aid in cases of accidents, assisting and attending in confinements and prevention of sepsis, disposal of excreta of infectious patients, their isolation, the segregation of contacts, preservation of food from infective agencies such as flies etc., and other aspects of the development of modern medicine which are an absolute necessity of acceptable medical practice in modern times. The whole position might be summed up by stating that with the spread of knowledge it has become necessary to take into consideration the fact that the average educated man possesses a sufficient acquaintance with health problems of the kinds referred to above and unless the Ayurvedic physician of today is prepared to keep pace with this everincreasing knowledge which is diffused throughout every community by the medium of books, pamphlets, lectures, the press and health demonstrations, the utility of Ayurveda is bound to be diminished and the system brought to undeserved disrepute.

But it must not be forgotten that Ayurveda has certain distinct advantages over the system of Western medicine in many respects. From the statement made above which purposes to be only an enumeration of some of the disabilities of Ayurveda, it should not be construed that there is even the remotest intention of minimising its all-important merits over its rivals in oriental countries. Modern scientific methods have left some of its essential features untouched both on the preventive and curative side. The presence of several vitamins in the fresh decoctions and juices of indigenous plants in the Ayurvedic system, the administration of legiums and grithums which are homologous to those in the allopathic system, possessing, both curative medicinal and nuritive dietetic value, the common use of butter-milk in preventing intestinal infection like enteric fever and the time-honoured oil bath which is an effective preventive against malnutrition and consumption, the use of various oils on the head to prevent the thermic and radiant heat effects of the tropical sun and other climatic severities, the use of rasayana for preventing senile decay and the use of vajeekarana methods of treatment in respect of eugens, are all worthy of recognition.

In no circumstance, therefore, would there be any danger, immediate or remote, of Ayurveda losing its individuality by the absorption of some of the indispensable methods of modern scientific medicine. The weight of its own intrinsic and indisputable merits, its history of agelong service to the largest part of the human family, the value of the impetus it has given to the formation of the Western system of medicine and its utility in some respects in which Western medical science even is unable to offer relief, all join together in making the fears of the conservative element amongst its practitioners vain and unfounded. All things considered, therefore, it is most advisable and necessary that the management of the affairs of the Ayurvedic College should have the benefit of the wise direction and intelligent advice of scientifically trained persons to serve on the Board of Indigenous Medicine. If students have to study scientific medicine the presence of a few scientific men are necessary on the Board.

There are various diseases which cannot be diagnosed without the help of modern scientific knowledge. Diseases brought about by quinine ; for the treatment of such diseases on the ommission of quinine one must know about quinine. Bromide produces rashes on the skin resembling serious forms of skin diseases and the ayurvedic physician will be at sea to find out what this is and he might give a wrong treatment.

Potassium iodide produces bronchial cattarrh and swelling of the glands round the neck which he might mistake. Another case is that of santonine which produces yellow vision and discoloration of urine etc. The diagnosis of various forms of venereal disease and their treatment immediately by injections. Differential diagnoses of various diseases like malaria from enteric fever, a case of consumption from asthma by sputum diagnosis, differentiating an ordinary case of dysentery by examination of the faeces and the detection of hookworm which is a very common disease in this country, discovery of plague, percentage of suger in diabetes, examination of blood to differentiate different kinds of anaemia, detection of diseases due to contamination of food and water, use of local anæthetics, extraction of foreign bodies examination of blood pressure, pulse, temperature etc. with precision instruments, examination and analysis of urine and examination of the heart, examination of the efficient working of the liver and other organs, and attending to accidents, rendering first aid, proper management of a case of labour without inducing sepsis, (Statistics will prove that there is a high mortality rate of mothers in villages) advice to mothers, infant feeding dieting and nursing, sanitation in hospitals, houses, villages etc., disposal of excreta to prevent the spread of diseases, isolation and segregation of patients, preservation of food etc. are another aspects of the development of modern medicine which is absolutely necessary for an ayurvedic physician.

As popular knowledge of health is very much on the increase and the man in the street knows a lot about health, it is necessary for the Ayurvedic man to know modern sanitation before he meets present-day patients. Therefore the presence of a few scientific men will add to the usefulness of the institution.

Ayurveda.

Extract from an Address.

By Mr. K. BALASINGHAM

At the All-Ceylon Ayurvedic Congress held at the College of Indigenous Medicine in December 1933.

If the college of Indigenous Medicine is to serve any useful purpose you Vaidyas must all help the students with your learning and experience. Your ungrudging service is wanted to make this institution a centre of great usefulness not only to Ceylon but to mankind at large.

Referring to the Governor, Mr. Balasingham continued :—

"Let me also extend a cordial welcome back to Ceylon to H. E. Sir Edward Stubbs to whom you owe so much. He was the first to espouse your cause. He was anxious to do what was in his power to raise the level and status of the vedaralas or vaidyas and in this respect has anticipated Hitler of Germany by 17 years.

"Let me tell you how this happened. In 1916 I urged on Government to encourage the indigenous system of medicine. I will quote from my memorandum.

"Government can confer a great boon on the people by extending its patronage to the system of medicine on which they still rely for the most part, especially as these systems are worthy of encouragement on the testimony of those most competent to judge.

"Owing to want of encouragement the study of our Medical Science is now being neglected and an increasing number of persons take to the practise of medicine with a superficial knowledge of the subject. Encouragement may be given to the indigenous system in several ways:—

1. By the establishment of an Ayurvedic College and Hospital in Colomdo.

2. By appointing a lecturer in Oriental Medicine to the Ceylon Medical College.

3. By the granting of subsidies to hospitals and dispensaries opened by competent medical men in suitable places.

4. By the granting of scholarships to highly qualified western doctors for research in oriental medicine.

5. By the creation of a Board of Indigenous Medicine if the Government cannot undertake this work."

Mr. K. BALASINGHAM

Chairman of the Board of Indigenous Medicine
since its first appointment
by Sir Herbert Stanley, Governor

These proposals were most sympathetically received by Sir Edward Stubbs. He wrote on 19th July 1916 as follows :—

"The history of the Vedarala is something like that of herbalists in Europe. Before modern systems were invented herbalists were in many cases men of learning who knew what they were doing and why later they degenerated into quacks. Why should not wealthy men provide an institution for studying and teaching the indigenous system so as to raise the level of the vedaralas ? Think it over and if you get something started I will see if we can help you.

"In Hongkong there is a hospital where on one side patients are treated according to western method and on the other according to the Chinese system, patients choosing which they prefer. Why not try something of the kind. Dr. Kelly could tell you-how it is run."

As a result of further negotiations the Government wrote to the secretary of the Oriental Medical Science Fund, Mr. Donald Obeyesekere, offering about five acres worth about Rs. 150,000. As the Oriental Medical Science Committee was not able, owing to the prevailing trade despression in 1921, to collect sufficient money for building and working expenses the offer of the Government lapsed and the site has become the present Manning Town. Later efforts resulted in this institution. Without the sympathetic support of Sir Edward Stubbs at the start it would have been difficult to have achieved so much.

Almost everything proposed in 1916 has been achieved except the appointment of a lecturer in Oriental Medicine in the Ceylon Medical College. We have in our College two western doctors undergoing training in Ayurveda, and they will soon be qualified to serve as lecturers in Oriental Medicine in the Government Medical College.

In Germany by virtue of a new law issued by Hitler doctors practising with herbs and other old-fashioned remedies are granted the same status as fully qualified doctors. Rudolf Kess, Hitler's Deputy said a few days ago:—

"I have much experience of the value of natural healing on my own body, and it would be a crime against the German people if I did not do all in my power to give this system of healing the position it deserves."

Professorships of Nature-healing will be instituted in universities of Berlin, Cologne, and Munich.

It should not be difficult to persuade the Medical Council in Ceylon to do what the German universities are doing.

Let me now quote a few extracts from a letter dated 14th September 1933 of Dr. Newell. M. D., D. Sc., the Secretary of the National Health League of England.

He writes:—

"I am directed by Augustus Fitz George, our President, who is a cousin to Their Majesties the King and Queen, to acknowledge your letter.

"We are prepared to propagate your system of medicine under the authority of your College throughout Great Britain and in the Southern and Western States of America. Later, we are disposed to introduce it on the Continent. The writer would be prepared to visit your College on behalf of the National Health League at an early date.

'I am sure it would interest you to know that for many years I have devoted myself to the study of Ancient Indian Medicines'.

'You will find my paper on the Germ Theory of Disease herewith and in connection with the same it will, I am sure, gratify you and your College to note that the Pasteur Institute of France has agreed with our findings of the Germ Theory. Our methods of treatment are eminently similar to your own and to give an example of their efficacy I can state that we hold a report from distinguished Surgeon of Brompton Hospital for Consumption, London, in which he states that our method of dealing with acute cases of tuberculosis was successful in from 85 to 90 percent of cases treated. I therefore believe that reciprocity between ourselves and your College will confer enormous benefit on suffering humanity'.

'Be assured the writer and his colleagues will leave no stone unturned to bring the work of your College the wide recognition which it deserves. I would be open on behalf of your college to arrange funds for propagation purposes.'

Are we to understand from this letter that Pasteur's Germ Theory is likely to undergo some slight revision in the light of further research ? It is possible that Indian theories about diseases are not as absurd as some Western doctors seem to think. As a Tamil philosopher truly observed long ago:—What is now known will be forgotten. What we have now forgotten will become known again:—Unaranthana Marakkum, Maranthana, Unarum.

When it is realised that man has lived on this planet for several millions of years it would be presumptuous to reject this cyclic theory of knowledge and believe that only within the last 75 years medicine became a science."

The German Schiler, gave expression to only a partial statement of this law of knowledge when he said:—"The truths of past ages are at present recognized as errors: those of the present are on their way to be so recognized."

Now let me say a word about medical research. There can be no progress in research without your co-operation with those who have undergone a thoroughly scientific training. We are taking the necessary preliminary steps for this important work.

In 1928, one year before we started this College, an M. D. of Vienna who was in Ceylon, was prepared to study our Indigenous Medicine with a view to research work. He was also willing to study Sanskrit for the purpose, but he was not able to wait till the College was opened without a difinite promise of employment, and I was unable to give it. Sometime later a German lady doctor was interested in the study of Ayurveda, but we were not able to find a place for her on our staff.

As I told you before two Western doctors are now undergoing training in Ayurveda, and we trust that before long they will be in a position to do research work and clear the way for the evolution of a unified system of medicine combining all that is good in the indigenous systems and in Western medicine.

The time has now come for you to make an organised effort to get your position in the country clearly defined. There is a badge of inferiority placed upon you. Your certificates as to cause of death are not accepted by the Registrar of Deaths though you are allowed to treat any case. Even the heads of public departments refuse to accept the certificates of even the best of you. You are not allowed to use 'the most necessary foreign drugs, though the Western system is daily adding to its pharmacopoea from your system and from that of every country. You must agitate for permission to use some Western drugs. The Ayurvedic physicians of India are allowed to use some. Till you get the permission, even if you have studied Western medicine also here, don't use the drugs.

"I should like to make an announcement about a matter which though not coming within the scope of Ayurveda, is a subject in which you will be interested. Steps are being taken to start a Veterinary College of Indigenous Medicine. As this institution has neither the money nor the land for the purpose, it may have to be unconnected with it. In an agricultural country like Ceylon it is necessary that every village should have a qualified veterinary physician. There is no reason why the rudiments of Veterinary Science should not be known to every graduate of this College.

मध्यप्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन जबलपुर के सभापति

आयुर्वेदपंचानन श्री० पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल का अभिभाषण।

चतुर्भुजं पीतवस्त्रं सर्वालङ्कार शोभितम्।
ध्यायेद्धन्वन्तरिं देवं सुरासुर नमस्कृतम् ॥
करवदरसदृशमखिलं, भुवनतलंयत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः, सा जयति सरस्वती देवी ॥
सानन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं, निजवोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं, श्रीमद्गुरुं "शङ्कर" मानतोस्मि ॥

श्रीमान् स्वागतकारिणी समिति के सभापति महोदय, स्वागतकारिणी के सभासद तथा उपस्थित वैद्यबन्धु और मान्य सज्जन वृन्द !

जिस समय इस अधिवेशन का सभापति पद स्वीकार करने के लिये मुझे सूचित किया गया, उस समय मैं बड़े सङ्कोच और असमञ्जस में पड़ा कि मुझे ऐसा साहस करना चाहिये अथवा नहीं। मध्यप्रदेश में एकसे एक सुयोग्य वैद्यों के रहते हुए भी मेरा आह्वान क्यों किया गया, इसका कारण मैं सोचने लगा। इस समय संयुक्तप्रान्त में रहते हुए भी अखिल-भारतीय वैद्य वन्धुओं और आयुर्वेदिक संसार का मुझ पर जो स्नेह-भाव है, मुझे अपना आज्ञाकारी तुच्छ सेवक समझने की जो प्रेम भावना है, उस जागृति की तरंगों ने मुझे लाचार किया। सेवक को कहीं भी सेवा करने की आज्ञा मिलने पर उसे अस्वीकार करने का अधिकार ही कहाँ है ? मध्यप्रदेश में मेरे ज्येष्ठ वन्धु वैद्य, स्नेह रखने वाले मित्र और आयुर्वेदिक कार्यों में सदैव सहायता करने के लिये उत्सुक सहयोगियों का एक वृन्द रहता है, उन अपने लोगों के बीच किसी भी रूप में उपस्थित होने में मुझे संकोच क्यों होना चाहिये। इसके सिवाय संयुक्तप्रान्त मेरी जन्मभूमि होते हुए भी मध्यप्रदेश मेरी शिक्षणभूमि और प्रारम्भिक कर्मभूमि है, इसके बिलासपुर, रायपुर और नागपुर जिलों में मेरा निवास हो चुका है। इस दृष्टि से मध्यप्रदेश के साथ मेरा जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसे स्मरण कर आप लोगों के दर्शन का पुण्यकर सुअवसर त्यागने की मुझ में हिम्मत न हुई और प्रेमरज्जु से बँधा हुआ यह सेवक आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। आशा है उसी प्रेम और सहयोग के साथ इस गुरुतर कर्तव्य के पालन में आप मेरे सहायक होंगे और अपनी विद्वत्ता तथा अनुभव और कार्यकुशलता के द्वारा शान्ति और निर्विघ्न पूर्वक इस अनुष्ठान की सिद्धि में मेरे सहायक होंगे। मैं शास्त्रीय गुत्थियों को सुलझाने का जटिल प्रश्न छेड़ कर आपके मस्तिष्क को परिश्रम देना नहीं चाहता। मैं केवल सामयिक प्रचलित कर्तव्यों की ओर ही आपका ध्यान आकर्षित कर आपसे कर्तव्य पूर्ति की प्रार्थना करूँगा।

स्वर्गीय बन्धुओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि

अपना वक्तव्य आरम्भ करने के पहले कुछ उन आत्माओं का स्मरण हुए बिना नहीं रहता, जिनकी उपस्थिति हमारे लिये मार्ग दर्शक और कार्य में सहायक होती थी। अखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति पद को दो बार अलंकृत करने, चरक की उत्तम और सरल टीका रचने और अपनी विद्वत्ता, सरलता, विनोद प्रियता तथा शिष्य परम्परा द्वारा भारत में आयुर्वेद के प्रचार में सफलता प्राप्त करने वाले "वैद्यरत्न" कविराज योगीन्द्रनाथ सेन का वियोग सार्वदेशिक आपत्ति स्वरूप है। नागपुर के वयोवृद्ध और विद्वान वैद्य, पण्डित दामोदर गोविन्द वह्राड पाण्डेय महोदय का स्वर्गवास भी हमें बहुत खटक रहा है। आयुर्वेद की जटिली क्रिया पर आपने प्रकाश डाला था और पारद सम्बन्धी कई प्रयोगों में खासा अनुभव प्राप्त किया था। आपकी उपस्थिति हमें कई अनुभवी सन्देशे देने में समर्थ होती। जबलपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान और वृद्ध साहित्य-सेवी पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री महोदय का स्वर्गवास हृदय को आघात पहुँचाने वाला हुआ है। यद्यपि आप वैद्य नहीं थे तथापि वैद्यक विद्या के एक पुरस्कर्ता थे और गोरक्षण साहित्य के अप्रतिम अनुभवी और प्रयासी थे। इनके सिवाय हमारे और भी जिन भाइयों का इस वर्ष चिरवियोग हुआ है, उन सबों के प्रति हम अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं और स्वर्गीय सुख भोगते हुए उनके शुभाशीर्वाद हमारे लिये कल्याणकारी होते रहें, यह जगदीश्वर से याचना करते हैं।

वैद्य सम्मेलन

स्वर्गीय आयुर्वेद महोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे महोदय ने चालीस-पचास वर्ष पहले से जो आयुर्वेदिक आन्दोलन आरम्भ किया था और पचीस वर्ष पहले पुण्यक्षेत्र नासिक में जो "निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन" रूपी वटवृक्ष का कल्पवृक्ष रोपा था, उसकी जड़ें भारतव्यापी होकर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अंकुरित हुई हैं और किसी-किसी प्रान्त में तो उन्होंने स्वतन्त्र वृक्ष का रूप धारण कर वैद्यों की कामना की पूर्ति करना आरम्भ कर दिया है। स्वर्गीय शंकरदाजी शास्त्री पदे महोदय का मध्यप्रदेश से विशेष प्रेम था और बम्बई प्रान्त के साथ ही उन्होंने मध्यप्रदेश के नागपुर नगर में भी संवत् १९६४ में वैद्य सम्मेलन की शाखा खोल दी थी। मेरे ज्येष्ठ बन्धु वैद्य पञ्चानन पण्डित लक्ष्मणशास्त्री फणशीकर उसके सञ्चालनार्थ नागपुर आये थे और तब से अब तक वे नागपुर में ही हैं। निखिलभारतीय वैद्य सम्मेलन के अधिवेशन भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में हो चुके हैं, उसके द्वारा समस्त भारत यहाँ तक कि सीलोन में भी आयुर्वेद का और वैद्यों का गौरव प्रतिष्ठित हो चुका है। एक मध्यप्रदेश ही ऐसा बचा है, जहाँ अब तक सम्मेलन के अधिवेशन नहीं हुए हैं। यही नहीं सीलोन सहित भारत के सभी प्रान्तों में प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन प्रतिष्ठित हो चुके हैं और उनके अधिवेशन बराबर हुआ करते हैं। मध्यप्रदेश अभो तक इससे भी वंचित था। इससे कोई यह न समझे कि मध्यप्रदेश आयुर्वेदिक कार्यों के लिये उर्वर नहीं है अथवा मध्यप्रदेश में उत्साही और कर्मनिष्ठ वैद्यों का अभाव है। स्वर्गीय पदे शास्त्रीजी के पश्चात जब मैंने प्रयाग में आयुर्वेदिक आन्दोलन का भार अपने ऊपर लिया था, तब आरम्भ से ही सम्माननीय मित्र पण्डित गोविन्दप्रसाद शास्त्री और भाई रामभजन शर्माजी से बराबर सहायता और प्रोत्साहन की मुझे प्राप्ति होती रही है। यहाँ के विद्वान और कर्तव्य-दक्ष चिकित्सक पण्डित भिकाजी

विनायक डेगवेकर अपनी लेखनी, अपने मस्तिष्क और अपने परिश्रम का लाभ आयुर्वेदिक कार्यों के लिये बराबर देते चले आ रहे हैं। सागर, दमोह, जबलपुर, कटनी, नागपुर और बरार के मेरे कितने ही सहायक मित्र उज्वल नक्षत्रों के समान बराबर सम्मेलन के कार्यों में प्रकाश डालते रहे हैं। अतएव इस प्रान्त के वैद्यों की कर्तव्यशीलता पर सन्देह न करते हुए यही कहा जा सकता है कि कोई भी काम अपने समय पर होता है। विलम्ब से ही क्यों न हो आप लोगों ने जो इस सम्मेलन का अनुष्ठान किया है, वह बहुत उपयुक्त समय पर हुआ है। सम्मेलन के कर्तव्यों का असली कार्यकाल अब आया है और समय पर दृष्टि देकर समस्त भारत में उसके लिये कार्य करना और दृढ़ आन्दोलन उठाना आवश्यक है। आपका प्रान्त भी इस समय अपना हिस्सा पूरा करे यही अभीष्ट है। आप इस समय जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन देख रहे हैं, निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन भी शीघ्र हो सकता है। आवश्यकता यह है कि अपने इस सम्मेलन रूपी पौधे को लहलहा और पल्लवित, सुपुष्पित और सुफलों से लदा हुआ बनाने की आप सतर्कता रखें, मुझे आप लोगों से यही कहना है कि—

सम्मेलन को विरवा दियेउ लगाय।
सींचन की सुधि लीजो (कहुँ) मुरझि न जाय॥

प्रान्तीय सम्मेलनों का महत्व

मित्रो, इसमें सन्देह नहीं कि निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन ने अब तक देश में आयुर्वेद के लिये बहुत कुछ काम किया है। अब से पचीस-तीस वर्ष पहले आयुर्वेदाकाश में जो घनघोर घटा छायी हुई थी, उसके हितैषियों और प्रेमियों को जो निराशा, आक्षेप और विघ्नों से टक्कर लेनी पड़ रही थी, उस स्थिति का परिवर्तन हो गया है। जो विपरीत शक्ति आयुर्वेद को संसार से उठा देना चाहती थी, दुस्साशन के समान उसका बल थक चुका है। इस बात का पता लग चुका है कि आयुर्वेद को ईश्वरी शक्ति का सहारा प्राप्त है। अब आयुर्वेद का भविष्य बहुत उज्वल दिखलायी पड़ता है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन का कार्य भारतव्यापी है। प्रत्येक स्थान की स्थानिक आवश्यकताओं को देखना और उनकी पूर्ति का प्रयत्न करना उसकी विस्तृत शक्ति के लिये भी सम्भव नहीं है। सूर्य का काम संसार को प्रकाश दे देना अपने कर्तव्यों को स्मरण करा देना है। स्वयं जाग कर अपनी सुविधा, शक्ति, बुद्धि और कर्तव्यशीलता का परिचय देते हुए अपना कर्तव्य पूर्ण करना व्यक्तियों का कर्तव्य है। प्रान्तिक सम्मेलनों के सम्बन्ध में भी आप ऐसी ही कल्पना कर लें। निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सहारा और शक्ति पाकर प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन अपने प्रान्त की आवश्यकताओं का निरीक्षण करें, उनकी पूर्ति के लिये आन्दोलन करें, भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थानिक सभाएँ स्थापित करावें, वैद्यों को अपने कर्तव्य में लगाने का उद्योग करते रहें, उन्हें समय-समय पर कर्तव्य सुझाते रहें, राजनैतिक और व्यावहारिक परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए अपना रास्ता साफ करते रहें। भारतीय बृहद् सम्मेलन तो किसी प्रान्त के एक स्थान में हो सकेगा, वह वहाँ जागृति और जोश उत्पन्न कर देगा। भट्टी में पड़ा हुआ लोहा लाल हो जावेगा; परन्तु उसे निहाई पर रख पीटना और उपयुक्त हथियार या पात्र तैयार करना कुशल कारीगर लोहार का काम है। ऐसी कारीगरी प्रान्तीय सम्मेलनों को ही करनी होगी। प्रान्तीय सम्मेलनों की तीक्ष्ण दृष्टि सदा अपने प्रान्त के सभी जिलों में

रहेगी। आयुर्वेदिक दृष्टि से अपने प्रान्त को सुसंगठित करना, वैद्यों का संघ दृढ़ करना, आयुर्वेद की उन्नति के लिये आवश्यक कार्यों और प्रयत्नों की योजना करते रहना, प्रान्तीय सम्मेलनों का ही कार्य है। इस दृष्टि से आपका यह सम्मेलन यदि स्थायी कार्य करने वाला हो तो इस प्रान्त का बहुत उपकार हो सकता है, प्रान्त के वैद्यों का खासा अभ्युदय हो सकता है, राजदरबार में आयुर्वेद की धाक जम सकती है, सर्वसाधारण में और भी अधिक आयुर्वेद और वैद्यों के प्रति प्रेम जागृत हो सकता है।

सरकार और आयुर्वेद

एक समय था जब सरकार की उदासीनता हमें यह समझने के लिये लाचार करती थी कि सरकार का दृष्टिकोण भारत में देशी वैद्यक को नष्ट होते हुए देखना और उसकी जगह हर एलोपैथी सिस्टम को बढ़ाते और दृढ़ करते जाना है। परन्तु वैद्य सम्मेलन द्वारा उत्पन्न हुई जागृति ने देशवासियों को चौंका दिया। सार्वजनिक प्रयत्नों द्वारा, प्रान्तिक कौंसिलों और भारतीय असेम्बली द्वारा ऐसे प्रस्ताव और प्रश्न हुए कि सरकार का आसन हिल उठा। सरकारी डाक्टरी विभाग ने जब जब आयुर्वेद के विरुद्ध ज़हर उगला तभी उसका मुँहतोड़ उत्तर दिया गया। देशी वैद्यक के पक्ष समर्थन और प्रचार वृद्धि के लिये सरकार पर बराबर दबाव पर दबाव पड़ता गया। इससे जो सरकार चाहती थी कि उदासीन रहने से यह पद्धति आपही नष्ट हो जायगी वह चाहना सफल न हुई। सरकार को लाचार होकर देशी वैद्यक के लिये कुछ करना पड़ा। मद्रास, बंगाल और संयुक्त प्रान्त की सरकारों ने जांच कमीशन अथवा इनक्वायरी कमिटी नियुक्त की। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्डों को देशी चिकित्सा पद्धति को सहायता देने के लिये जहाँ रोका जाता था, वहाँ वह रुकावटें बन्द हुईं। मद्रास में आयुर्वेद और यूनानी की शिक्षा के लिये सरकारी धन से एक पाठशाला स्थापित हुई। बंगाल की सरकार भी आयुर्वेदिक विद्यालयों को सहायता दे रही है। बिहार की सरकार ने मुजफ्फरपुर में आयुर्वेद की कक्षा, पुरी में आयुर्वेद की पाठशाला और पटना में सुसञ्चालित एक विद्यालय स्थापित किया है। संयुक्तप्रान्त की सरकार ने भी आगे कदम बढ़ाया। स्वर्गीय जस्टिस गोकर्णनाथ मिश्र (भगवान उनके आत्मा को स्वर्ग में सुखी रखे) के उद्योग और परिश्रम से संयुक्त प्रान्त में एलोपैथी के मेडिकल बोर्ड के ढंग पर "बोर्ड आफ मेडिसिन" कायम हुआ है। उसकी ओर से काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में आयुर्वेद का उच्च विद्यालय तथा अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में यूनानी का उच्च विद्यालय स्थापित हुआ है। इसी तरह हरिद्वार में आयुर्वेद का विद्यालय और लखनऊ में यूनानी का विद्यालय भी स्थापित हुआ है। यही नहीं बोर्ड जिन्हें उचित समझता है उन यूनानी और आयुर्वेदिक विद्यालयों और औषधालयों को वार्षिक सहायता भी देता है और डाक्टरों के ढंग पर वैद्यों की रजिस्ट्री कराने का आयोजन भी किया है। पञ्जाब की सरकार डी० ए० वी० कालेज के आयुर्वेद विभाग को कुछ वार्षिक सहायता देती है। इससे सरकारी दृष्टिकोण बदलने का आभासमात्र मिल रहा है और इसके लिये हम सरकार को धन्यवाद भी दे सकते हैं। परन्तु यह कार्य समुद्र से एक लोटा जल खींच लेने के बराबर है। हमारा दावा है कि भारत में भारतीय चिकित्सापद्धति का ही बोलबाला होना चाहिये। उसी के प्रचार और अभिवृद्धि में टैक्स के रूप में सर्वसाधारण का दिया हुआ पैसा खर्च होना चाहिये। यदि इन पद्धतियों में कुछ पूर्ति और सुधार की आवश्यकता है तो उसे प्रसन्नता से किया जाय और

डाक्टरी सहायता इसी अंश में ली जाय जितनी आयुर्वेद और यूनानी के लिये सहायक हो। विदेशी सरकार से इस दावे का पालन कराना सहज साध्य नहीं है। तथापि सामयिक सुविधाओं का मार्ग जितना प्रशस्त होता रहे, उसकी ओर से हमें निश्चेष्ट भी नहीं रहना है।

म्युनिसिपलबोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड

म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड लगभग अपनी वस्तु हैं। हमारे चुने हुए मेम्बर वहाँ की नीति निश्चित करते हैं। अतएव म्युनिसिपलटियाँ और डिस्ट्रिक्टबोर्डों के द्वारा देशी चिकित्सापद्धति को अधिक से अधिक उत्तेजन मिलना चाहिये। कुछ वर्षों पहले एक जमाना था कि इच्छा होते हुए भी सरकारी रुकावट के कारण म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आयुर्वेद और उसके औषधालयों को सहायता नहीं दे सकते थे। अब वह स्थिति नहीं है। अतएव वैद्यों का कर्तव्य है कि ऐसा सार्वजनिक मत पुष्ट करें कि मेम्बरों को इस काम के लिये काफी द्रव्य लगाने पर ज़ोर देना पड़े। यह प्रसन्नता की बात है कि आपका म्युनिसिपल बोर्ड देशी औषधालय के लिये कुछ रकम खर्च करता है और भी कई जिलों में इस कार्य में सहायता दी जाती है। किन्तु अभी यह कार्य बहुत अल्पप्रमाण में हो रहा है। इसे बढ़ाना आवश्यक है। औषधालय ही नहीं आयुर्वेद के अस्पताल भी खुलवाने हैं। देश के और कई स्थानों में ऐसी सहायता धीरे धीरे बन्द हो रही है। इलाहाबाद जिले में २७ देशी औषधालय थे वे नष्ट हो चुके हैं और अभी बरेली म्युनिसिपल बोर्ड को बड़े लड़ाई झगड़े के बाद औषधालय बचाने पड़े हैं। आशा है आप लोग अपने अपने जिलों में इसके लिये प्रबल उद्योग करेंगे।

स्वराज्य और आयुर्वेद

इस समय स्वराज्य प्राप्त करने के लिये देशव्यापी प्रबल आन्दोलन मच रहा है। वैद्य भी देश के नागरिक हैं; उन पर भी देश की भलाई बुराई का उत्तरदायित्व है। अतएव वे इस आन्दोलन से अपने को कभी अलग नहीं कर सकते। प्रसन्नता की बात है कि पिछले आन्दोलन में प्रायः सभी प्रान्तों के वैद्यों ने अपने कर्तव्य का कुछ हिस्सा चुकाया है। राष्ट्र मानवीय घटकों का समुदाय होता है और हमारी भावना, स्वहित कल्पना और प्रचलित जीवनक्रम की भावना से बद्ध रहता है। अतएव उसके विचार, आत्म-त्याग और कष्ट सहन पूर्वक प्रयत्न करने पर ही उसका उद्धार होता है। यदि हम ऐसा न करें और सामयिक सुविधा से सन्तुष्ट रह भविष्य कल्याण की ओर से आँख मीच लें तो हम अपने ऊपर कलङ्क-कालिमा पोत लेंगे। स्वार्थत्याग और आत्मसंयम के साथ राष्ट्र की पुकार सुनना ही और आत्मकल्याण का साधन करना ही सामयिक बुद्धिमानी है। स्वार्थ के लिये राष्ट्रहित का विनाश कभी नहीं किया जा सकता। यह सच है कि वैद्य लोग यों भी जनता के कल्याण में ही लगे रहते हैं, परन्तु विशिष्ट आवश्यकता के समय साधारण दृष्टि को विशेष की ओर आकर्षित करना ही पड़ता है। अपने अथवा पड़ोसी के मकान में आग लगने पर किसी वैद्य को वहाँ की अनुपस्थिति से इसलिये क्षमा नहीं किया जा सकता कि वह जनता के कल्याण के एक काम में लगा हुआ था। इस समय हमारे राष्ट्र का निर्माण हो रहा है, उसमें अपनी शक्ति और साहस के अनुसार योग्यदान करना ही कर्त्तव्य है।

कर्तव्य के अतिरिक्त इसमें अपना स्वार्थ भी है। विदेशी सरकार की कल्पना में यह बात नहीं आ सकती कि अपनी चिकित्सापद्धति और चिकित्सकों पर देश का कितना प्रेम और

कितना विश्वास है और होना चाहिये। वह अपने ही दृष्टिकोण से हमें देखने की आदी है। स्वराज्य की स्थापना होने पर समयानुसार देशवासियों का ध्यान अपनी चिकित्सा-पद्धति की ओर अपने चिकित्सकों की ओर जाना स्वाभाविक है। उस समय वैद्यों की खिल्ली नहीं उड़ायी जा सकेगी, उनकी चिकित्सापद्धति के दोष दिखाने पर ही सारा दारमदार नहीं रहेगा। वैद्यों और हकीमों का दर्जा अवश्य बढ़ जावेगा और अपनी चिकित्सापद्धति के लिये राज्य का आवश्यक रुपया खर्च किया जावेगा। जिससे हमारे आयुर्वेद में सैकड़ों वर्ष की उदासीनता से जो मैल का पर्दा चढ़ गया है, वह दूर होगा, उसका सुन्दर और मनभावना स्वरूप सामने आ जावेगा। आत्माभिमान के साथ वैद्य सिर ऊँचा कर सकेंगे और जगह जगह आयुर्वेद के औषधालय, अस्पताल, सेनीटोरियम (स्वास्थ्यनिवास) और विद्यालय दिखलायी पड़ेंगे। अतएव अपने भविष्य कल्याण की भावना सामने रख वैद्यों को भी स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्न में अग्रसर रहना चाहिये।

देशी रियासतें

देशी रियासतें हमारे अभिमान और आत्मगौरव के प्रकाशक हैं। परन्तु दुःख है कि वहाँ भी एलोपैथी का जितना दौरदौरा है उतना हमारी देशी चिकित्सापद्धति का नहीं है। त्रावणकोर, मैसूर, बड़ोदा, ग्वालियर, पटियाला, जयपुर आदि कुछ रियासतों में आयुर्वेद की ओर कुछ ध्यान दिया गया है ; परन्तु अन्य बहुत सी रियासतें इस ओर से अब तक बे ख़बर हैं। ऐसी प्रायः सभी रियासतें हैं जहाँ राजवैद्य हैं अवश्य; परन्तु उनमें से अधिकांश का कुछ प्रभाव नहीं है और डाक्टरों का ही वहाँ भी बोलबाला है। इसमें कुछ दोष तो हम वैद्यों का भी है। राजवैद्य लोग अपनी माफी या जागीर में मस्त रहते हैं, अपना प्रभाव विस्तार करने योग्य बनकर अपनी योग्यता की धाक राजदरबार और सर्वसाधारण पर स्थापित करने, अपने कर्तव्य में सदा अग्रसर रहने की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। संसार किसी की परवाह तो करता नहीं, वह सरपट दौड़ता जाता है, जो पीछे पड़ जायगा वह रह जायगा। इसलिये वैद्यों को आत्मोन्नति का प्रयत्न सबसे पहले करना चाहिये। मध्यप्रदेश में मध्यम कोटि की छोटी बड़ी अनेक रियासतें हैं। यह सच है वे अलग अलग प्रयत्न में अधिक अग्रसर नहीं हो सकतीं। परन्तु अपने बालकों की शिक्षा के लिये जैसे उन्होंने रायपुर में राजकुमार कालेज स्थापित किया है, उसी तरह अपनी रियासत के कल्याण के लिये अपने राजवैद्यों की उन्नति के लिये सम्मिलित शक्ति से एक आयुर्वेद विद्यालय स्थापित कर सकती हैं। उसमें उत्तीर्ण वैद्यों को अपनी रियासत में प्रतिष्ठित कर जनता के कल्याण के लिये आवश्यकतानुसार औषधालय और अस्पताल खुलवा सकती हैं। जब तक विद्यालय स्थापन का कार्य नहीं हो सकता, तब तक अपनी रियासत के होनहार नवयुवकों को छात्रवृत्ति देकर हिन्दूविश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग में अथवा अन्य ऐसे ही आधुनिक ढंग से सञ्चालित विद्यालयों में पढ़ने के लिये भेज सकती हैं। इन कार्यों के लिये आप लोग अपने प्रान्त के नरेशों का ध्यान आकर्षित करने में दत्तचित रहें तो निस्सन्देह सफलता हो सकती है।

आबकारी कानून

विदेशी शासन पद्धति का जो कटुफल हमें नित्य चखना पड़ता है, उसमें से पायजन एक्ट और आबकारी कानून एक है। हमारे औषध प्रयोगों के लिये हमें अफीम, धतूरा, भाँग,

संखिया, सींगिया आदि विषोपविष की नित्य आवश्यकता रहती है। जब तक काफी तादाद में हम इनका संग्रह अपने पास न रखें तब तक आवश्यकता पड़ने पर हम औषधि में उनका उपयोग नहीं कर सकते। कायदे के अनुसार हमें केवल २॥ तोले विषोपविष खरीदने और रख सकने का अधिकार है। परन्तु तैलों में और रसोपरस बनाने में हमें सेरों विषोपविष की आवश्यकता पड़ती है। वैद्यों को औषधि बनानी ही पड़ती है और विषोपविष जैसे मिले लेना ही पड़ता है। जब तक सरकारी कर्मचारी जहाँ-तहाँ इस सम्बन्ध में मुकदमे चला देते हैं। कायदे का यह बन्धन सुविधाजनक रीति से ढीला होना ही चाहिये। कौंसिलों में प्रजापक्षीय मेम्बरों को इस सम्बन्ध में अवश्य प्रयत्न कर वैद्यों की अड़चन दूर करनी चाहिये।

दूसरी अड़चन आबकारी कानून की है। सैकड़ों हजारों वर्षों से वैद्य द्राक्षासव, कुमारी-आसव आदि बनाते आते हैं। सैकड़ों वर्षों से संजीवनीसुरा भी बनती है। बम्बई, बंगाल, बिहार, पंजाब आदि में इस सम्बन्ध के झगड़े उठ चुके हैं। बहुत आन्दोलन के बाद लगभग यह तय हो चुका है कि आसव-अरिष्ट पर मुकदमे न चलाये जाया करें। बम्बई प्रान्त और बंगाल प्रान्त में जब इस विषय के मामले उठे थे तब यह देखा गया था कि २२ डिग्री तक प्रूफ स्पिरिट द्राक्षासव में पाया जाता है। अन्य आसव-अरिष्ट में इससे कम ही मिलता है। उस समय आबकारी विभाग को हिदायत की गयी थी कि इस तरह के आसव-अरिष्ट पर मुकदमे न चलाये जाया करें। आसव-अरिष्ट को शराब की कोटि में ले जाना ही हिमाकत है। उनमें औषधि केवल आसुत की जाती है। डेग भपके से उन्हें खींचा नहीं जाता। बिहार में संजीवनी सुरा पर झगड़ा था। अवश्य ही संजीवनी सुरा में अधिक अलकोहल रहता है, और वह नली से खींची भी जाती है। जो हो; उस समय सरकारी रुख यह दिखलायी पड़ा था कि यदि इसका उपयोग वैद्य लोग अपने बीमारों पर ही करें और सर्वसाधारण के हाथ विक्री न किया करें तो उनपर मुकदमे न चलाये जाया करें। यद्यपि यह बात भी विवाद ग्रस्त ही है। रोगी और ग्राहक का निर्णय भी झगड़े की बात है। जो हो; इतना होने पर भी आबकारी विभाग जब तक कहीं न कहीं मुकदमे चला ही दिया करता है। अपने किसी अप्रिय वैद्य पर ऐसे मामले उठा देने में उसे मजा आता है। अभी हाल में ही इसी प्रान्त के गोंदिया स्थान के वैद्य पं० शिवबालक द्विवेदी जी पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो सौ रुपया जुर्माना अथवा एक महीने की कड़ी कैद की सजा भी हो गयी है। इस मामले में द्राक्षासव, अंजीर अर्क, बब्बूलारिष्ट, जम्बीरद्रव, अमृतारिष्ट और विल्वादि आसव को भी लिया गया है। मजा यह है कि आसुत होता हुआ द्राक्षासव भी अदालत में पेश हुआ था। अस्तु अभी शायद इस मामले की अपील हुई है और मामला विचाराधीन होने से मैं उस पर कोई टीका नहीं करना चाहता। किन्तु इस तरह के अन्य मामलों के बारे में हमें बतला देना चाहिये कि इस विषय में सरकार को सोचना चाहिये कि वैद्यक शास्त्रानुसार जो चीजें तैयार करने का वैद्यों को हक है, उस पर हमला करना उचित है या नहीं। अदालतें खाली अपने कायदे को देखती हैं और सजा कर देती हैं। इस सम्बन्ध का कायदा इतना लचीला है, कि उससे पिण्ड छुड़ाना सहज नहीं है। इस मामले में कुछ वैद्यों ने अदालत को यह भी बतलाया था कि आसव और अरिष्ट बनाने के तरीके क्या हैं। किन्तु मालूम पड़ता है अदालतें केवल इतना ही देखती हैं कि चाहे वह जिस विधि से बने उनमें अलकोहल होने से ही सजा देनी चाहिये। तब हमें यह भी घोषित करना होगा कि अदालतों की समझ या कायदे की कमजोरी के हम

जिम्मेदार नहीं। हम दवा बनाते हैं और बनावेंगे, आबकारी कानून चोरी से शराब बना कर बेचने वालों के लिये है, वैद्यों का गला घोंटने—वैद्यों का औषधि बनाने का हक छीनने—हमारे आयुर्वेद को सत्यानाश करने के लिये नहीं है। कायदे को साफ करना सरकार का काम है, कौंसिलों के मेम्बरों का काम है। वैद्य लोग अपना हक नहीं छोड़ सकते और अधूरे कायदे की ओट से किसी को ऐसे अधिकार छीनने का हक नहीं है। कायदा सुधारा जाना चाहिये और स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये कि शास्त्रानुसार आसव-अरिष्ट बनाने वाले वैद्यों पर इसका प्रयोग नहीं होगा। आसव-अरिष्ट बनाने की विधि अलग है और शराब बनाने की अलग। दोनों को एक झमेले में डालना सरासर अन्याय है और वैद्यों को जानबूझ कर नाहक तंग करना है। सरकार की यह मनोवृत्ति बदलनी ही चाहिये। दवा दवा रहेगी और शराब एक अनीति का विषय है। दोनों का मेल कर देना लोगों की आँखों में धूल झोंकना है।

एक बात का ध्यान वैद्यों को भी रखना पड़ेगा, उन्हें आबकारी विभाग से कोई प्रतिद्वन्दिता नहीं करनी है। उन्हें औषधि बनानी है, शराब नहीं। यह ठीक है कि आसव-अरिष्ट में कुछ प्रूफस्पिरिट-अलकोहल आ जाता है; परन्तु वह इतने अधिक प्रमाण में नहीं आना चाहिये कि वैद्यों को शास्त्र और अपने अधिकार के लिये लड़ने में गुंजाइश न रहे। बम्बई प्रान्त में जिन द्राक्षासवों की जाँच हुई थी, उनमें १८ से २० डिग्री तक अलकोहल मिली थी। और इतने के लिये सरकार की ओर से गुंजाइश रखी गयी थी। हम यह नहीं चाहते कि वैद्यों के पीछे लायसेंस का पुछल्ला लगाया जाय और हरदम की जाँचपड़ताल उनके गले पड़े। हमें औषधि बनानी है और उसे औषधि के दर्जे तक ही रखना ठीक होगा। इसे अधिक विवादग्रस्त बना देना अपने अधिकारों को झंझट में डालना होगा। जिन्हें पूरी तरह पर शराब ही बनानी हो वे चाहे वैद्य हों चाहे कोई हों, उनके लिये लायसेंस का दरवाजा खुला हुआ है। परन्तु वे स्मरण रखें कि बुढ़िया के मरने का डर नहीं, यमराज के घर देख लेने का डर है। एक आध ने लैसंस लिया नहीं कि सब वैद्यों के पीछे उसका धतिंगा लगेगा। इसलिये वैद्यों को बहुत सावधानी से अपने हक की रक्षा करनी होगी।

वैद्यों की रजिस्ट्री

बाईस वर्ष पहले बम्बई प्रान्त में प्रथम डाक्टरों की रजिस्ट्री का कानून बना था, उस समय वैद्य और हकीमों ने उसका विरोध किया था। क्योंकि उस कायदे से सरकारी नज़र में डाक्टरों का दर्ज़ा बढ़ जाता था और वैद्य हकीम अनक्वालीफाइड (अयोग्य) की श्रेणी में आ पड़ते थे। धीरे धीरे प्लेग के समान यह कायदा बढ़ा और सभी प्रान्तों में उसका अमल दखल हो गया। डाक्टर लोग वैद्यों से मिलने-जुलने, सलाह-मशविरा करने और उनकी संस्थाओं में आने जाने, पढ़ाने तथा बोलने से भी रोके जाने लगे। अब यद्यपि ऐसी उग्रता नहीं दिखायी जाती, और जहाँ तहाँ वैद्यों के सार्टिफिकेट भी मान लिये जाते हैं तथापि कायदे द्वारा आयी हुई आयोग्यता की छाप अभी तक देशी चिकित्सकों के माथे से नहीं टली है। इसी बीच संयुक्त प्रान्त में स्थापित "बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन" ने वैद्यों और हकीमों की भी रजिस्ट्री का कायदा बना डाला है। जब डाक्टरी रजिस्ट्री का प्लेग देश भर में फैल चुका है, तब उससे बचने के लिये यह रजिस्ट्री रूपी यदि प्लेग का टीका लेने की आवश्यकता पड़े तो आश्चर्य ही क्या है। अतएव संयुक्तप्रान्तीय वैद्य अपना नाम रजिस्टर कराने का विचार कर रहे हैं।

ऐसा कायदा भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्तों में धावा मार सकता है ; अतएव आप लोग भी इस पर विचार करें तो असामयिक न होगा। ऐसा कायदा किसी को रजिस्ट्री कराने के लिये वाध्य नहीं करता, तथापि रजिस्टर्ड वैद्यों के लिये कुछ अधिकारों का लालच दिखा दिया गया है। ऐसे रजिस्टर्ड वैद्य "बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन" में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार पावेंगे, विष सम्बन्धी नियमानुसार दिये हुए लायसेंस के अनुसार जिलाधीश के सम्मुख रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र प्रेषित करने पर विष रखने का अधिकार पावेंगे, और 'ब' श्रेणी के वैद्य ५०) तक के नौकरों को तथा 'अ' श्रेणी के वैद्य १००) तक के नौकरों को बीमारी, आयु, योग्यता तथा छुट्टी के सार्टिफिकेट दे सकेंगे। मालूम पड़ता है ये सार्टिफिकेट अभी म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्मचारियों को ही दिये जा सकेंगे। यदि ऐसा ही हो तो यह लालच बहुत निम्न श्रेणी की है। योग्य वैद्यों के सार्टिफिकेट तो ऐसे बोर्डों में अब भी ऊँचे कर्मचारियों के सम्बन्ध में भो मान्य होते हैं। इसके सिवाय १००) से ऊपर के कर्मचारियों को सार्टिफिकेट न दे सकना कभी सन्तोषजनक नहीं माना जा सकता। यही नहीं सरकारी परीक्षा पास वैद्य हकीमों की रजिस्ट्री तो तुरन्त हो जावेगी ; परन्तु आयुर्वेद विद्यापीठ तथा अन्य संस्थाओं की परीक्षा वालों को पाँच वर्षों तक ठहरना पड़ेगा, आयुर्वेद विद्यापीठ जैसी प्रामाणिक संस्था के वैद्यों को सरकारी परीक्षा के समान ही अधिकार न मिलने में कोई कारण नहीं हो सकता। आशा है आपके प्रान्त में ऐसे प्रश्न उठने पर आप अधिक सतर्कता से इसका निरीक्षण करेंगे। संयुक्त प्रान्तीय वैद्य आरम्भ में ही इन नियमों को कस कर जितना अनुकूल बनवा सकेंगे, उतना ही अच्छा होगा। इस समय संयुक्त प्रान्तीय वैद्यों की सावधानी अन्य प्रान्त वालों के लिये भी सुविधाजनक होगी।

वैद्य सभाएँ

जैसे मनुष्य शरीर के अङ्ग-उपाङ्ग यदि कार्यक्षम होते हैं तो वह मनुष्य अपना कर्तव्य पूर्ण करने में समर्थ होता है, उसी तरह किसी संस्था की शाखा-प्रशाखाएँ अपने कर्तव्य में निपुण रहने पर वह संस्था सफलतापूर्वक अपना काम कर सकती है। भारतीय वैद्यसम्मेलन और प्रान्तीय सम्मेलनों के अङ्गरूप स्थानिक सभाएँ हैं। जब तक स्थानिक सभाएँ स्थापित होकर अपना कार्य-विस्तार नहीं करतीं, तब तक सम्मेलन के उद्देश्यों का पूर्ण प्रचार नहीं हो सकता। प्रत्येक जिले और बड़ी जगह के वैद्यों का कर्तव्य है कि वे स्थानिक सभाएँ खोलें और उनके द्वारा सतत कार्य सञ्चालित करते रहें। ऐसी सभाओं के कर्तव्य दो प्रकार के हो सकते हैं। एक वैद्यों के उन्नति विधायक कार्य और दूसरे सर्वसाधारण के उपयोगी कार्य। समय-समय पर वैद्यक कार्य की कठिनाइयों पर सम्मिलित विचार करना, प्रचलित रोगों के सम्बन्ध में सोचना, नये-नये आविष्कारों के सम्बन्ध में अपने विचार स्थिर करना आवश्यक है। बहुत सी ऐसी औषधियाँ हैं जो अभी सन्दिग्ध अवस्था में पड़ी हुई हैं। किसी प्रान्त में उसके बदले कोई ली जा सकती है, किसी में कोई। वैद्यसम्मेलन ने ऐसी औषधियों की एक लिस्ट तैयार की है और प्रतिवर्ष दो एक औषधि के निर्णय का प्रयत्न भी करता है। सन्दिग्ध औषधियों की लिस्ट देखकर स्थानिक सभाएँ उनके नमूने इकट्ठे करें और साधक-बाधक प्रमाणों द्वारा अपने यहाँ उनकी चर्चा करें। परिमार्जित विचारों को लेकर वैद्यसम्मेलन में जावें तो वहाँ सन्दिग्ध औषधि निर्णय में बड़ी सहायता मिला करे। आपके प्रान्त के उत्साही वैद्य श्रीयुक्त कृष्णदत्त जी

इस विषय में अच्छा परिश्रम कर रहे हैं, जङ्गलों-पहाड़ों की दौड़ लगा रहे हैं। ऐसे लोगों के परिश्रम से लाभ उठाना आवश्यक है। आजकल वैद्यसम्मेलन में चरक कथित पद्धति से सम्भाषा परिषद होती हैं, वहाँ नये ढङ्ग के रोगों पर (जिनके सम्बन्ध में हमारे निदान और चिकित्सा ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक उल्लेख नहीं है।) विचार होता है। सुजाक, उपदंश, मोतीझरा, न्यूमोनिया, ब्लडप्रेशर, इनफ्लुएञ्जा, प्लूरिसी आदि पर अभी हमें बहुत कुछ चर्चा करनी है। अपने यहाँ हम इनके सम्बन्ध में विचार करते रहेंगे तो सम्मेलन में कुछ विचार लेकर जायँगे और सम्मेलन में इनके सम्बन्ध में चर्चा करने की सुविधा होगी। इञ्जेकशन, मूत्र-परीक्षा, स्टेथस्कोप आदि के व्यवहार-सम्बन्ध में तथा नये आविष्कारों के सम्बन्ध में हमें कुछ निश्चित धारणा बना लेनी चाहिये। स्थानिक सभाएँ इसके लिये उपयुक्त स्थल हैं। समय-समय पर प्रचलित रोगों और संक्रामक रोगों के सम्बन्ध में जनता को हिदायत देते रहें। उनकी रोक और उनसे बचने के सम्बन्ध में उपयुक्त उपाय बताते रहें। बीच-बीच में उत्सव करते रहें। धन्वन्तरि उत्सव (कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी) और भरद्वाज उत्सव (कार्तिक शुक्ल नौमी) इसके उपयुक्त साधन हैं। इन उत्सवों को लगातार कई दिनों तक भूमधाम से मनाया जाय। आवश्यक विषयों पर निबन्ध पढ़े जायँ। प्रदर्शिनी की जाय। इससे वैद्यों को भी कुछ नयी बातें मालूम होंगी और जनता को भी बहुत कुछ उपदेश मिलेगा।

आकर्षण

ऐसी सभाएँ जनता का ध्यान आयुर्वेद की ओर बराबर आकर्षित करती रहें, धनियों के धन का सदुपयोग कैसे हो सकता है, यह बतलाती रहें। आयुर्वेद के औषधालय और अस्पताल खुलवाने बहुत आवश्यक हैं। इनके द्वारा आयुर्वेद की यथार्थ उपकारिता प्रकट होती है। अभी हाल में ही पूने के एक धनी सेठ हनुमानरामजी ने अपने भाई के स्मारक में सेठ ताराचन्द रामनाथ धर्मार्थ अस्पताल खोला है। स्थानिक सभाएँ ऐसे उत्साहियों के सामने लावें और उनसे जनता के हित के कार्य कराती रहें। बम्बई के आयुर्वेद प्रेमी डाक्टर म्हसकर ने अपनी पुत्री श्रीमती कमलाबाई के नाम से एक आयुर्वेदिक सूतिका गृह चालिस हजार के दान से खोलवाना निश्चय किया है। उद्योग करने से ऐसे उदार सज्जन अन्य प्रान्तों में और आपके प्रान्त में भी मिल सकते हैं। ऐसे स्थल वैद्यों के अभ्यास के लिये खासी प्रयोगशाला का काम दे सकते हैं। सुनते हैं यूरोप में डाक्टरी के विद्यालय और अस्पताल प्रायः सार्वजनिक और व्यक्तिगत फण्ड से ही स्थापित हैं। सरकारी पूँजी का सदुपयोग होना चाहिये। इस वर्ष बम्बई के वैद्यसङ्घ ने धन्वन्तरि उत्सव के समय बड़े साहस का प्रयोग करना निश्चय किया था। सर्पदंश पर प्रत्यक्ष प्रयोगात्मक व्याख्यान होनेवाला था। दरअसल यह बहुत साहस और धोखे का काम था; किन्तु धोखे में डाले बिना बड़े-बड़े प्रयोग नहीं हो सकते। पश्चिमी वैज्ञानिक अपने को धोखे में डाल कर बड़े-बड़े प्रयोग किया करते हैं। यह सच है कि अभी भारत की स्थानिक सभाएँ उतने सफल प्रयत्न करने में समर्थ नहीं सिद्ध हुई हैं और इसमें हमीं लोगों का आलस्य बाधक होता है; तथापि जहाँ सभाएँ रहती हैं वहाँ कुछ न कुछ काम होता ही है। जबलपुर की सभा ने आरम्भ में उत्साह से काम किया और अब भी समय-समय पर कर ही रही है। नागपुर की सभा ने धन्वन्तरि पाठशाला तथा चर्चा मण्डल की योजना की है। आशा है उत्साही वैद्यगण अपने शहरों में वैद्य सभाएँ स्थापित कर उनके द्वारा विधायक कार्य करने की योजना करेंगे।

वैद्यक शिक्षा की सुगमता

मानवीय मनोवृत्ति का दुर्लक्ष्य करना सदा हानिकर होता है। इस समय यह विचार लोगों में बढ़ रहा है कि सुलभता पूर्वक वैद्यक शिक्षा का प्रचार किया जाय। वैद्य सम्मेलन के आयुर्वेद विद्यापीठ ने वैद्यक विद्या का एक पाठ्यक्रम तैयार किया है और वह उत्तम तथा सर्वप्रिय भी हुआ है। वैद्य सम्मेलन सत्रह-अठारह वर्षों से उसी के अनुसार तीन प्रकार की परीक्षा ले रहा है और उनसे वैद्य समाज का यथेष्ठ उपकार भी हुआ है। अब तक जितनी शिक्षा और परीक्षा की संस्थाएँ खुली हैं, उन सबों के पाठ्यक्रम का यही आधार रहा है। किन्तु इसमें उच्च परीक्षा केवल संस्कृत द्वारा दी जा सकती है। देशी भाषा द्वारा केवल भिषक् परीक्षा दी जाती है ; परन्तु यही अब काफी नहीं मालूम होता। संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने जो परीक्षाएँ स्थापित की हैं वे भी ऊँचे दर्जे की हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभाग का पाठ्यक्रम भी उच्च श्रेणी का है। एफ० ए० तक की अंग्रेजी और मध्यमा तक संस्कृत जानने वाले ही उसका लाभ उठा सकते हैं। आवश्यकता है कि उच्च श्रेणी के वैद्य तैयार करने के साथ ही ऐसे वैद्य भी तैयार किये जाँय, जिनके द्वारा देहातों में प्रचारकार्य और चिकित्साकार्य सुलभता पूर्वक हो सके। इसके अभाव में जहाँ तहाँ नकली संस्थाएँ कायम हो रही हैं और वे रुपये ले लेकर वैद्यक की पदवियाँ बाँट रही हैं। यह नकली पदवियाँ बाँटने की दूकानें तेज़ी से चमक रही हैं। सरकार का इधर दुर्लक्ष्य है और वैद्य सम्मेलन इसे रोकने में असमर्थ है। इस व्यवसाय को रोकने का यही उपाय है कि कुछ वैद्यक परीक्षाएँ और भी सरल बना दी जाँय। बिना पढ़े लिखे भी लोग वैद्य हो जाते हैं और मान्य संस्थाओं से मिलती जुलती पदवी अपने नाम के साथ जोड़कर जनता को ठगा करते हैं। इससे तो यही अच्छा हो कि वे वैद्यक क्षिक्षा भी प्राप्त कर लें और उनकी पदवी की लालसा भी तृप्त हो सके। हम नहीं चाहते कि ज्ञान में कमी रहे। अभी आयुर्वेद विद्यापीठ जैसे भिषक् परीक्षा लेता है, उसी तरह यह क्षेत्र और विस्तृत कर दिया जाय। आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदाचार्य की शिक्षा का जैसा पाठ्यक्रम है उसी के अनुसार पाठ्यक्रम रहते हुए हिन्दी द्वारा भी वे परीक्षाएँ हो सकें। जो परीक्षार्थी विशारद परीक्षा के प्रश्नपत्रों का उत्तर हिन्दी द्वारा दें, उन्हें भिषक्भूषण की उपाधि मिले और आयुर्वेदाचार्य के प्रश्नपत्रों का उत्तर हिन्दी द्वारा देनेवालों को भिषग्रत्न की उपाधि दी जाय। इससे वैद्यक ज्ञान लगभग ज्यों का त्यों रहेगा। केवल संस्कृत ज्ञान की कमी रहेगी। किसी विज्ञान की शिक्षा के लिये भाषा विशेष की शर्त रखना आवश्यक नहीं है। एक समय था जब ऐसी शिक्षा के लिये वैद्यक पुस्तकों की कमी थी; किन्तु अब हिन्दी में पुस्तकें बराबर निकल रही हैं, उनके द्वारा शिक्षा का काम सरलता से हो सकेगा। इस मनोविज्ञान की अवहेलना होने से मानवीय विचार धारा तो रुकेगी नहीं, हाँ वैद्य सम्मेलन के बदले कोई अन्य संस्था इसकी पूर्ति का प्रयत्न करे तो आश्चर्य नहीं। इस सम्बन्ध में वैद्यों को अपने विचार स्थिर कर आवश्यक कार्यवाही करने का प्रयत्न करना चाहिये।

विद्वत्परिषद

साहित्य की पूर्ति के बिना किसी विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती और साहित्य की पूर्ति उस विषय के विद्वानों के द्वारा ही हो सकती है। प्रत्येक समुन्नत और जीवित समाज में विद्वानों की संख्या बढ़ाते रहने और उनका समादर करते रहने की आवश्यकता है। ऐसे

विद्वानों का एक संगठन होना आवश्यक है। संगठन के द्वारा उनकी सम्मतियों का आदान-प्रदान होता रहेगा और उनकी विचारधारा तीव्रता से निश्चित दिशा की ओर बहेगी। प्रत्येक प्रान्तिक वैद्य सम्मेलन का कर्तव्य है कि वह अपने प्रान्त के विद्वानों की एक विद्वत्समिति बनावे और उनके विचारों का परिचालन करता रहे। समय-समय पर ऐसे विषय उठा करते हैं जिन पर विचार करना विद्वानों का ही काम होता है। यदि वह विचार सुसंगठित हो तो उसके निर्णय में सरलता और सुविधा होती है। कुछ वर्षों से "त्रिदोषवाद" और पेशी, स्नायु, कला, सिरा, धमनी आदि विषयों को लेकर विद्वानों में चर्चा चल रही है। इस विषय में महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन महोदय तथा महाराष्ट्र के कई विद्वान भाग ले रहे हैं। आपके नगर के विद्वान और उत्साही वैद्य श्रीयुक्त डेग्वेकरजी भी इस विचार में प्रमुख भाग ले रहे हैं। ऐसे विषयों को दलबन्दी का विषय न बना कर यदि विद्वत्परिषद के सज्जन शास्त्रीय निर्णय के विचार से विचार करें तो शास्त्रीय समाधान शीघ्र हो सकता है। यही नहीं आयुर्वेद की समुन्नति के लिये अभी बहुत से ग्रन्थ-रत्न तैयार करने की आवश्यकता है। एक सुसम्पादित आयुर्वेदिक कोष का अभाव बराबर खटक रहा है। किन्तु यह काम एक व्यक्ति का नहीं है। इसमें अनेक विद्वानों के सहयोग की आवश्यकता है। मैटीरियामेडिका के ढंग पर आयुर्वेदिक निघण्टु का निर्माण भी आवश्यक है। इस समय के निघण्टु बहुत संक्षिप्त हैं और उनसे रस-वीर्य-विपाक प्रभाव का विस्तृत और स्पष्ट स्वरूप उतना साफ नहीं होता। वर्ग संशोधन की भी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। स्वर्गीय डाक्टर देसाई का ग्रन्थ इस सम्बन्ध में एक कल्पना सामने रखता है। किन्तु अभी इस सम्बन्ध में बहुत काम करना होगा। डाक्टरी में जैसा फर्माकोपिया ग्रन्थ होता है, उसी तरह आयुर्वेदिक योगों के लिये यह आवश्यक है कि लाभदायक योगों का निर्णय कर एक ग्रन्थ प्रकाशित हो। बम्बई के श्रीमान् पण्डित हरिप्रपन्नाचार्यजी ने दो भागों में "रसयोगसागर" और ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी के मालिक महोदय ने तीन भागों में "भारतभैषज्य रत्नाकर" ग्रन्थ छपा कर वैद्यों का बड़ा उपकार किया है। इनमें एक नाम के जितने औषध प्रयोग हैं, वे सब एक जगह संगृहीत हो गये हैं। किन्तु एक-एक रस या औषधि के अनेक पाठ देख कर यह विचार उठने लगता है कि किस प्रकार की अवस्था में कौन योग कारगर होगा। विद्वानों की परिषद परीक्षण द्वारा इसका निर्णय कर एक ग्रन्थ रूप में उनका संग्रह कर सकती है। यही नहीं आयुर्वेद-विद्यापीठ ने शिक्षा और परीक्षा का एक पाठ्यक्रम बना दिया है और उसके लिये चरक सुश्रुत वाग्भट के अध्यायों का निर्देश कर दिया है। किन्तु पढ़ने-पढ़ाने वालों को इसमें असुविधा होती है। यदि उन अध्यायों का मन्थन कर एक पुस्तक में विचार समन्वय के साथ संग्रह हो जाय तो सुविधा हो और प्रत्येक विषय की अच्छी पाठ्य-पुस्तकें तैयार हो जाय। सुसंगठित विद्वत्परिषद ऐसे कामों का सरलता से सम्पादन कर सकती है।

प्रकाशक समिति

विद्वान लोग विविध विषयों के ग्रन्थ तैयार करेंगे सही; किन्तु उनके प्रकाशन का प्रबन्ध हुए बिना पूरी सफलता नहीं हो सकती। व्यक्तिगत प्रयत्न से पुस्तक प्रकाशन करना सबके लिये सहज नहीं है। महामहोपाध्याय श्रीमान् कविराज गणनाथ सेन तथा आयुर्वेद-मार्तण्ड पं० यादव जी त्रीकम जी आचार्य ने कई ग्रन्थरत्न प्रकाशित कर वैद्य समाज का बड़ा

उपकार किया है। नागपुर के श्रीयुक्त पण्डित गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी ने मद्रास प्रान्त में प्रचलित "बसवराजीयम्" ग्रन्थ प्रकाशित कर वैद्यों के हाथ में अमूल्य उपहार रखा है। अन्य जो सज्जन अपने द्रव्य और समय का सदुपयोग कर ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित कर रहे हैं वे सभी वैद्य समाज की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं। किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि व्यक्तिगत प्रयत्न इस कार्य के लिये पर्याप्त नहीं। एक मनुष्य की शक्ति परिमित ही होती है। ऐसे कार्यों के लिये सम्मिलित और सुसंगठित प्रयत्न अधिक व्यापक हो सकते हैं। इसलिये हमारी समक्ष में ग्रन्थ प्रकाशन समिति की बहुत आवश्यकता है। बहुत से ग्रन्थरत्न अभी तक अमुद्रित अवस्था में पड़े हैं। खोज करने से अभी सैकड़ों ग्रन्थ जहाँ तहाँ मिल सकते हैं। प्रकाशित न होने से उनके नष्ट हो जाने का भय है। उनके लेखकों का नाम और परिश्रम लुप्त हो जाने का भय है। ग्रन्थ प्रकाशन समिति के द्वारा ऐसी पुस्तकों की खोज और प्रकाशन का काम हो सकता है। ऊपर बतलाये हुए नवीन ग्रन्थों का निर्माण होने पर उनके प्रकाशन की भी व्यवस्था होनी चाहिये। ऐसी समिति के लिये यह काम जितना सहज हो सकता है, उतना व्यक्तिगत प्रयत्न से नहीं। ऐसी समिति सार्वजनिक हिस्सों के द्वारा लिमिटेड कम्पनी के ढंग पर स्थापित हो सकती है। उसके मुनाफे में सभासदों का हिस्सा होने से किसी को पूँजी लगाने में भी संकोच नहीं होगा।

साप्ताहिक पत्र

आजकल प्रचार का जमाना है। प्रचारकार्य द्वारा अपने उद्देश्यों और कार्यों का विस्तार हर एक समुदाय के द्वारा इस समय आवश्यक समझा जाता है। यह कार्य सामयिक पत्रों द्वारा हो सकता है। इस समय वैद्यक सम्बन्धी मासिकपत्र तो अच्छी संख्या में निकल रहे हैं और वे अपने उद्देश्य की पूर्ति भी यथासाध्य कर रहे हैं। किन्तु मासिक पत्रों का काम अधिकांश में विषय विवेचन और स्थायी साहित्य प्रकाशन के ढंग का होता है। सामयिक विषयों की चर्चा करना, प्रचलित आन्दोलन द्वारा मतनिर्माण करना, अपनी संस्था के उद्देश्यों का प्रचार करने में सतत उद्योगी रहने के लिये मासिक पत्र उतने उपयोगी नहीं हो सकते। महीने में एक बार प्रकाशित होने के कारण शीघ्र आन्दोलन का काम उनसे नहीं हो सकता। इसके लिये कम से कम एक साप्ताहिक पत्र की आवश्यकता है। प्रान्तिक सम्मेलनों के द्वारा पुरस्कृत होकर ऐसे साप्ताहिक पत्र हर एक प्रान्त से एक एक निकल सकते हैं। आपके मध्य प्रदेश में तो अभी किसी भी तरह का वैद्यक पत्र प्रकाशित नहीं होता। इस प्रान्त के वैद्यों को अधिक सार्वजनिक स्वरूप देने की अभी बहुत आवश्यकता है। प्रतिद्वन्द्विता के मैदान में आप लोग निकल पड़िये और कर्तव्य पूर्ति कर अपनी शक्ति, योग्यता, साहस और संगठन का परिचय दीजिये। अपनी प्रान्तिक शक्तियों को अधिक केन्द्रीभूत कीजिये और सफलता की ओर अग्रसर होते रहिये।

योग्यों का समादर

जिस समाज में योग्यों का समादर और अयोग्यों का तिरस्कार नहीं होता, 'सब धान बाईस पसेरी' होते हैं, उसका पार भी ईश्वर ही लगाता है। यह सत्य है कि वैद्यसम्मेलन के हाथ कोई शासनशक्ति नहीं है। अतएव वह अयोग्यों के लिये कोई शासन व्यवस्था नहीं कर सकता। परन्तु अयोग्यों को योग्य बनाने का प्रयत्न करना और योग्यों को समादर पूर्वक आगे

बढ़ाना उसके हाथ है। वैद्यसमाज में उपाधि प्राप्ति की लालसा विद्यमान है; किन्तु उसकी पूर्ति का कोई साधन नहीं है। कई कारणों से वैद्यसम्मेलन ने उपाधि देना बन्द कर दिया है और उसका परीक्षा विभाग परीक्षा की उपाधियों के सिवाय अन्य यूनिवर्सिटियों की तरह कोई आनरेरी उपाधि नहीं देता। इस मार्ग में बहुत-सी अड़चनें हैं; अतएव इस समय उसका जिक्र न करना ही अच्छा है। किन्तु नये आविष्कार करनेवालों के लिये और उत्तमोत्तम ग्रन्थ रचना करने वालों के लिये आदर-प्रदान का कोई साधन होना ही चाहिये। हिन्दी साहित्य की सेवा करनेवालों के लिये जैसे प्रतिवर्ष १२००) मंगलाप्रसाद परितोषिक की व्यवस्था है, उसी प्रकार वैद्यक ग्रन्थ निर्माताओं का उत्साह बढ़ाने, उनकी कद्र करने की योजना करना वैद्य संसार के लिये कठिन नहीं होना चाहिये। अधिक नहीं तो ५००) रुपये का पुरस्कार और एक स्वर्णपदक प्रतिवर्ष देने की व्यवस्था किसी उदार सज्जन के ग्यारह हजार रुपये दान के द्वारा तुरन्त हो सकती है। कम-से-कम आपका सम्मेलन एक स्वर्णपदक की व्यवस्था तो कर सकता है, जिससे इस प्रान्त में आयुर्वेद सम्बन्धी कोई नामांकित कार्य करनेवाले किसी सज्जन को उत्साह वर्धन के लिये यह दिया जा सके। प्रसन्नता की बात है कि द्रविड़ देश में प्रसिद्ध अगस्त सम्प्रदाय के ग्रन्थों का सार ले उस विषय का एक प्रामाणिक संग्रह ग्रन्थ संस्कृत में लिखने वाले सज्जन को बम्बई के पं० यादवजी महाराज ५००) पुरस्कार देनेवाले हैं। अपने समाज का समादर असीम उत्साह बढ़ाता है और बड़े-बड़े साहसिक कर्म करने को उत्तेजित करता है। उनके कार्य का महत्व सर्व साधारण पर विदित होता है और अधिकाधिक स्फूर्ति के साथ वे आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। अतएव वैद्यसमाज के सोचने समझने का यह विषय है। यादवजी भाई का पुरस्कार एक मार्गदर्शक है। इसका उच्च अनुकरण आवश्यक है।

स्नातक मण्डल

आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाएँ पास कर उपाधि प्राप्त करनेवाले स्नातकों का एक खासा समूह इस समय देश के सभी भागों में विद्यमान है। वैद्यसम्मेलन के उद्देश्यों का देश व्यापी प्रचार करने, आयुर्वेद-समुन्नति के काम में स्वयं जुटकर, वैद्य समूह और सर्वसाधारण को आकर्षित करने में उन्हें अग्रभाग लेना चाहिये। आयुर्वेद की सर्वोच्च सेवा करने और वैद्य सम्मेलन की सफलता के साधन बढ़ाने में उन्हें अधिक प्रयत्नशील होना चाहिये, उन्हें सबसे अधिक परिश्रम करना चाहिये। स्नातकों के सङ्गठन के लिये एक 'स्नातक मण्डल' स्थापित भी हो चुका है, उसे अधिकाधिक पुष्ट, दृढ़ और कार्यकर बनाना आवश्यक है। आपके प्रान्त के स्नातक सुसङ्गठित होकर अपने इस अङ्ग के उन्नति साधन का प्रयत्न करें और अपने प्रान्तिक सम्मेलन को सफल बनाने और स्थानिक सभाएँ स्थापित कर सञ्चालित करने में प्रयत्नशील हों तो इस प्रान्त की आयुर्वेदिक परिस्थिति का परिवर्तन बहुत शीघ्र हो जावे। महाराष्ट्र प्रान्त के आयुर्वेदिक शिक्षकों का एक सङ्गठन है और उसका एक सम्मेलन भी प्रतिवर्ष होता है। उसमें अनेक विचारणीय विषयों पर विचार होता है, आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का विवेचन होता है और जटिल समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है। सुदृढ़ स्नातक मण्डल ये सब काम अपने अन्तर्गत कर सकता है। स्मरण रहे कि स्नातक मण्डल वैद्य सम्मेलन के अधीन उसके सहायक स्वरूप उसका एक अंगी बनकर ही (जैसा कि उसका नियम है भी) रहना चाहिये। ऐसा होने से ही सम्मेलन की पूर्ण सहायता हो सकती है।

उपसंहार

वैद्य बन्धुओं ! सबका सारांश यह है कि जीवन संग्राम में वही विजयी होता है जो साहसी, दृढ़, वीर और सुयोग्य होता है। आप साहस और सचाई के साथ वैद्यक व्यवसाय में जुटिये, अपने प्रेम और त्याग के द्वारा सर्वसाधारण के हृदय में स्थान अधिकृत कीजिये, आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा, भक्ति और प्रेम उत्पन्न कीजिये। आयुर्वेदिक कार्यों की समुन्नति के लिये अपनी शक्ति, द्रव्य और बुद्धि का विनियोग करते हुए सर्वसाधारण की पूर्ण सहायता प्राप्त करने का उद्योग करते रहिये। आयुर्वेद की उन्नति और वैद्यों की प्रतिष्ठा की सारी जबाबदारी आप पर है; इसकी सिद्धि और समृद्धि में आपकी नामवरी और प्रतिष्ठा है। इसमें और अवहेलना होने से इतिहास में आप कलंकित समझे जावेंगे। इस समय संसार उन्नति की ओर क्षण क्षण कदम बढ़ा रहा है, शीघ्रता से बढ़ रहा है। इस दौड़ में जो आगे जावेगा, वह विजयी होगा सफलता का सेहरा उसके सिर पर होगा। पीछे रहने वाले सब दिन के लिये जायँगे, संसार उन्हें भुला देगा। इतिहास उनके नाम पर शाप देगा। स्वराज्य के उषःकाल की मनोहारिणी लालिमा की छटा दृष्टिपथ में आ रही है, उसके स्वागत की योग्यता अपने में लाइये। मैंने अपने हरदोई सम्मेलन के भाषण में आयुर्वेद के तीन काल निश्चित किये थे। वैदिक काल की आयुर्वेद स्थापना को "गौरवकाल" पौराणिक समय के परम्परा विकास को "उन्नति-काल" और विदेशी आक्रमणों के समय से अवनित पाते हुए फिर सम्मेलन के जन्म से उसके समुत्थान के आरम्भ को "कर्तव्यकाल" निश्चय किया था। भाइयों, यह कर्तव्यकाल है, कर्तव्यशील बनिये अपने कर्तव्य की भेरी बजा विजय सम्पादन कीजिये। स्वराज्य के ज़माने में अब से कहीं अधिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य का भार आप पर आने वाला है। वह आपकी कठिन परीक्षा का समय होगा। आपको सिद्ध करना पड़ेगा कि संसार की गति को आप पहचान रहे हैं; चिकित्सा वृत्ति, चिकित्सा विज्ञान की प्रतिद्वन्दिता में आप किसी से पीछे नहीं रहना चाहते। आप अपने को इस योग्य बनाने के लिये समुत्सुक और तत्पर हैं कि आप पर देश की आरोग्यता का भार सौंप दिया जा सके। आप इस दावे को लेकर मैदान में आ सकते हैं कि देश हमारा है, अतएव देश में देशी चिकित्सा पद्धति का ही बोलबाला हो सकता है। आपको एक समुन्नत, सुदृढ़ चिकित्सा पद्धति और उसके मानी प्रशंसकों के मुकाबले अपने को योग्य बनाना है। अपनी कमजोरियों को समझकर उन्हें दूर करना है, अपनी त्रुटियों की पूर्ति करना, अपनी भूलों का संशोधन करना है और संसार के सामने छाती ठोंककर 'सिर ऊँचाकर' आत्माभिमान और गौरव-गरिमा के साथ खड़े होना है। यह काम करने से होगा और आपके ही करने से होगा। आलस्य छोड़िये, कर्मभीरुता छोड़िये, पुरुष सिंह के समान उद्यमी बन कर्तव्य में जुट जाइये। आपका कर्तव्य महान है, उद्देश्य महान है, उसका फल और परिणाम भी कल्याणकारी तथा महान है। सफलता निश्चित है। आप आपस के विरोध-भाव छोड़िये, एक पारिवारिक परिस्थिति उत्पन्न कर परस्पर प्रेम, सहानुभूति, साहाय्य, समवेदना और आत्मानुभूति का स्रोत प्रवाहित कीजिये। सफलता विजयमाल लिये खड़ी है, उसे धारण करने को तैयार हो जाइये। आपके कल्याण में देश का कल्याण है, आपकी उन्नति में देश की उन्नति है, आपकी दृढ़ता में देश का सुदृढ़ और स्वास्थ्य सम्पन्न होना निर्भर है। दया, सचाई, सहानुभूति, त्याग और सुचिकित्सा से देशवासियों का हृदय जीतिये, अपनी विद्या, अपनी योग्यता, अपने विज्ञान की

श्रेष्ठता से संसार में छाती ऊँची कर खड़े हो जाइये। निश्चय कीजिये कि अन्तिम ध्येय की प्राप्ति तक हमारे अनवरत प्रयत्न जारी रहेंगे, कर्तव्यों का तांता नहीं टूटेगा। सफलता हमारे गले लगेगी और हमारी होकर ही रहेगी। आपका मूलमन्त्र हो हम हों, हमारा समुन्नत देश हो, हमारा गौरवशाली शास्त्र हो, हमारे विज्ञान की विजयपताका संसार भर में फहरानेवाली हो। एवमस्तु।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्त कर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

बंगालप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के सभापति

कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ती महोदय का

अभिभाषण ।

सिद्धिदं विघ्नहन्तारं ज्ञानाधारं गुणाकरम् ।
प्रणमामि महाकायं विघ्नशान्त्यैर्गजाननम् ॥
दृष्ट्वा प्रजामथ निजां विविधामयार्तामायुष्यबेदमखिलं कृपया स्मरन् यः ।
प्रावर्त्तयज्जगति तं जगतो हिताय तस्मै परं प्रणतिरस्तु पितामहाय ॥
सन्ध्याय विस्मयकरं खलु यज्ञशीर्षं छिन्नं सुरैरतितरामनुरुध्यमानौ ।
प्राप्तौ तु यौ सुरवरेप्सित-यज्ञभागम् तावश्विनौ शिवकृते प्रणमामि शश्वत् ॥
आयुर्वेदरहस्यतत्वमखिलं स्वास्थ्यानुवृत्तिप्रदं-
पूर्वाचार्य्य-परम्परागतमिदं धमार्थकामास्पदम् ।
भारद्वाजमुपादिशन्मुनिवरं यः शिष्यमुख्यं पुरा-
वन्दे तं मनुजोपकारनिरतं श्रीदेवराजं प्रभुम् ॥
हन्ता जरामृतिरुजां निखिलामराणां योंऽशेन विष्णुरुदतिष्ठदुदन्वतः प्राक् ।
पश्चात्तु काशीपति-गोत्रमनुप्रजातो धन्वन्तरिं तमिह नौमि भिषग्वरेण्यम् ॥
क्वानन्तायुष्यवेदोऽयं क्वाहमल्पमतिर्जनः ।
बाहुभ्यां सागरं तर्त्तुकामवद् यामि दुर्गतिम् ॥
यद्वाभो(?)प्रति नास्ति शास्त्रजलधे रत्नावलीसंग्रहे-
यस्य स्वान्ततमो जहार नितरां कारुण्यपूर्णाशयः ।
नानाशास्त्र प्रदेष्वधीतिभिरलं दीप्तो विपश्चिद्वरोः
ज्ञानोद्भासितलोचनो विपुलधीर्गंगाधरो दुर्द्धरः ॥
आयुर्वेदमहोदधिं दुरतिगं प्रोन्मथ्य यत्नाहृतै-
र्भैषज्यामृतवारिभिर्जनगणानुज्जीवयन्मृत्युतः ।
राजन्नत्र परं चिरं कविरिव ज्ञानेन विश्वश्रुतो
जातः सत्कविराज एक इह यः श्रेयान्यथार्थाभिधः ॥
पूर्वाचार्य्यगणैरुपासिततमा विद्याः समृद्धाश्चिरं-
निश्चर्चाः क्षयमाप्नुवन्त्य इह ताः प्रायेण नाशं गताः ।
यात्येका परिशिष्यते कथमपि क्षीणा चिकित्साभिधा-
सा शीघ्रं विलयाय गच्छतितरां न्यक्कृत्य युष्मानहो ॥

भो भो देशहितैषिणः कुशलिनो विद्यागरिष्ठा जना-
नानादेशनिवासिनोऽत्र मिलिताः सभ्या यशोमण्डिताः ।
युष्मानद्य निवेदयामि सततं बाढं कुरुध्वं सप-
द्यायुर्वेदमहानिधिं समवितुं यत्नं यथावन्मुदा ॥

माननीय स्वागतकारिणी समिति के सभापति महोदय और समवेत सज्जनों !

शिव सलिला जान्हवी की द्वितीय मूर्ति पद्मा-मण्डित सर्वजनवरेण्य भूमि की महानगरी राजशाही में आप लोग आयुर्वेद के हितार्थ एकत्र हुये हैं। यह देखकर मैं अत्यधिक आनन्दित हुआ हूँ। मैं कलकत्ता जाने के पहले ५० वर्ष पूर्व इस स्थान में रहकर आयुर्वेद की यथासाध्य सेवा करता था और अभी तक मैं इस नगर से सम्बन्धित नागरिक कहा जाता हूँ। ऐसी अवस्था में मैं इस महायज्ञ में आप लोगों का स्वागत करने का पूर्ण अधिकारी हूँ। भगवान् की असीम कृपा से स्थगित आयुर्वेद महासम्मेलन का पुनः अधिवेशन हुआ। प्राचीन पारस्परिक विरोध त्याग कर सम्मिलित रूप से इस अधिवेशन की सफलता हो, इसके लिये यत्न करना चाहिये। विगत सम्मेलन की घटना का भाव जब हृदय में उठता है, तब लज्जा से सिर नीचा हो जाता है। सभ्य होकर असभ्य की भाँति कार्य्य करना सनातन प्रथा का विरोध करना है। इसलिये सर्व प्रथम सनातनीय शिक्षा का प्रवर्त्तन आवश्यक है। यद्यपि यह प्रसंग नहीं है, तथापि मुझे कहना ही पड़ता है कि वर्त्तमान स्कूल तथा कालेज की विषमय शिक्षा विशेषतः निरीश्वर शिक्षा तथा स्त्री पुरुषों की सहयोग शिक्षा इत्यादि कारणों से देश की लाभ के बदले हानि हो रही है। इस विषय का आप लोग शीघ्र ही अनुभव करेंगे। आप लोगों ने मुझे इस सम्मेलन का सभापति मनोनीत कर सम्मानित किया है। वृद्ध पुरुषों की प्रतिष्ठा करना आनन्द की बात है, पर आयुर्वेद शास्त्र अति विशाल है तथा इसमें जीवन और मृत्यु का व्यापार है। इसकी समता में मैं अल्पज्ञ हूँ। सच पूछिये तो वर्तमान अवस्था में अल्पज्ञान की रक्षा करना भी दुस्तर है तथापि इस वृद्धावस्था में भी मैं भगवान पर भरोसा करके खड़ा हुआ हूँ। भाषण के पहले कविराज श्यामादास वाचस्पति का नाम स्मरण हो रहा है। स्वर्गीय कविराज श्यामादास जी ने विगत सम्मेलन के लिये बहुत प्रयत्न किया था ; किन्तु उनकी मृत्यु से आयुर्वेद-गगन का उज्वल नक्षत्र गिर गया। आप धीर, स्थिर, सुपंडित तथा विनयी थे। आपने आयुर्वेद की उन्नति के लिये बड़े-बड़े कष्ट सहन किये थे तथा आर्थिक सहायता भी की थी आप आयुर्वेद के प्रकृत भक्त थे। आपका स्थान पूर्ण होना बहुत ही कठिन है। आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले ही अपने अध्यापक सुग्रिहीतनामा, ऋषिकल्प, गंगाधर कविराज जी का नाम कृतज्ञता के साथ लेना पड़ता है। उनके विशाल पाण्डित्य के विषय में कुछ कहना ही उनका खर्व करना है। संक्षेप में कहें तो आप ही आयुर्वेद के पुनरुद्धारकर्ता थे। आप ही ने विलुप्त चरक का पठन-पाठन सर्वप्रथम प्रारम्भ किया था। सुश्रुत संहिता के सन्दीपन भाष्य की जो रचना मैंने की है वह उन्हीं की प्रतिभा का फल है। उसमें यदि कुछ नई बात है तो वह मेरी है। गंगाधर जी के आविर्भाव न होने से भारतवर्ष में आयुर्वेद का अस्तित्व न रहता। उन्हीं के शिष्य भारतवर्ष के हरएक नगरों में जाकर आयुर्वेद का प्रचार तथा यश अर्जन किया है। स्वर्गीय श्यामादास जी कविराज उनके प्रशिष्य थे। गंगाधरजी के कोई शिष्य मूर्ख तथा दरिद्र नहीं हैं। चिकित्सा-व्यापार में वे सर्वदा एलोपैथिक के उपमर्दक थे। आपको

प्रायः असाध्य रोगियों को जीवन दान देना पड़ा था। आपका तेज दृष्टान्त स्वरूप कीर्तित हो रहा है। यदि आपके तुल्य कोई कविराज होता तो आयुर्वेद के इतिहास में परिवर्तन हो जाता। अब प्रकृत विषय का अनुसरण किया जाय। आप लोग अवगत हैं कि आयुर्वेद वेद का उपांग है। यतः—

पुराणं मानवो धर्म्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञा सिध्यानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

यह रागद्वेष विवर्जित त्रिकालज्ञ ऋषियों का ज्ञान लब्ध है। इसका एक वर्ण भी असत्य नहीं है।

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्ता तपो ज्ञानबलेन ये येषां त्रिकालममलं।
ज्ञान मव्याहतं सदा आप्ताः शिष्टा विबुध्यास्ते तेषां वाक्यमसंशयं॥

इसलिये ऋषियों के शब्दों के ऊपर कुछ कहना केवल वाचालता मात्र है। यही वर्त्तमान सज्जनों के सामने आयुर्वेद का दोष है। कारण यह कि पाश्चात्य-चिकित्सा शास्त्र सदा परिवर्त्तनशील है, पर आयुर्वेद अचल सिद्धान्त है। समय के दोष से गुण की भी गणना दोष ही में होती है। आयुर्वेद के सम्बन्ध में वर्त्तमान चिन्ता की धारा ही उसका एक प्रमाण है। ऋषियों की सूक्ष्म बुद्धि से जो उत्पन्न हुआ है, वह दृढ़ है। जो आर्ष दर्शन शास्त्र से संवद्ध है वह अपरिवर्त्तनशील है।

न्याय-दर्शन, वेदान्त-दर्शन तथा सांख्य-दर्शन जैसे अपरिवर्त्तनीय हैं, वैसे ही आयुर्वेद भी है।

आयुर्वेद का विशेष अंश में योग तथा वियोग का अधिकार हम लोगों का है। हजारों औषधियाँ जहाँ प्रचलित हैं वहाँ पर योग तथा वियोग से कई सहस्र औषधियाँ कर सकते हैं। शास्त्र में इस विषय का उपदेश है और वह कार्य में भी परिणत है।

योऽल्पौषध कृतो योगो बहुग्रन्थभयान्मया।
द्रव्याणां तत्समानानामुपयोगो न दूष्यति॥
गणे क्रमपि यद् द्रव्यं भवेद् व्याधावयौगिकम्।
तदुद्धरेद् योगिकं तु प्रक्षिपेत् बुद्धिमान् भिषक्॥

इसका तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ बढ़ जाने के डर से मैंने अल्पौषधि लिखा। समान गुण वाली औषधियों का ह्रास और वृद्धि करने में कोई दोष नहीं है। यदि गणोक्त कोई द्रव्य किसी व्याधि का विरोधी हो तो बुद्धिमान् भिषग् उसका परिवर्त्तन कर दूसरी औषधि मिला सकता है। जब द्रव्य का नवीन संयोग करने में कोई विरोध नहीं है तब मैं क्यों दूसरे से दवा का ऋण ग्रहण करूँ? विजातीय औषध ग्रहण कर अपनी उन्नति करने की चेष्टा क्यों करें? युक्ति तर्क से ही क्यों न हो, उन्नति की एक सीमा है। सिर के केश की जो सीमा है उससे और अधिक वह नहीं बढ़ेगा। आयुर्वेद अन्तिम वृद्धि की अवस्था में है। अब अधिक वृद्धि की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ है यदि उसकी रक्षा हम कर सकें, तो बहुत उत्तम होगा।

बहुत से सज्जन यह कहेंगे कि पाश्चात्य चिकित्सकगण जो दृष्टफल औषधियों का आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं उन औषधियों को ग्रहण कर आयुर्वेद के सम्पदा की वृद्धि करें

तो उसमें क्या क्षति है ? उसमें क्षति नहीं है; किन्तु "इह न किञ्चिद्भेषजमास्त" और "कृतस्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः" पर यह नीति विचार कर प्रयोग करनी होगी।

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यः मन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः शुद्धन्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

इन्जेक्शन, एक शरीर से दूसरे शरीर में रक्त का प्रवेश करना इत्यादि कार्यों का हिसाब प्रायः अविशुद्ध है। Thermometer, X-ray आदि यन्त्र भ्रमात्मक हैं। क्विनाइन और तत्जातीय औषधि दोष विमिश्रित हैं। इस विषय को यदि स्पष्ट करें तो कहना होगा कि एक शरीर से दूसरे शरीर में रक्त प्रवेश कराने में जो जो विषय देखना चाहिये उन विषयों का चिन्तन एलोपेथिक शास्त्र में है। जो करना चाहिये वह क्या होता है ? एक शरीर से अन्य शरीर में रक्त का प्रवेश कराने में दोनों शरीर की सम्पूर्ण समता की आवश्यकता है। समता नहीं होने से वह रक्त भिन्न शरीर में प्रवेश कर शल्य-रूप धारण करेगा। समता का अर्थ—लिंग, अवस्था तथा धातु इत्यादि की तुलना ही है। जिनके शरीर में रक्त का प्रवेश कराना होगा उनके रक्त ग्रहण करने की सामर्थ्य और उनके वायु के Pump करने की शक्ति का भी विचार करना होगा। इसके निर्धारण करने के किसी यन्त्र का आविष्कार हुआ है ?

प्रायः प्रत्यक्ष होता है कि यह शरीर को हितकर नहीं है।

"सूक्ष्माणि हि दोष-भेषज-देश-काल-
बल-शरीराहार-सात्म्य-सत्व प्रकृति-
वयसामवस्थन्तराणि यतनुचिन्त मानानि सुविमल-
विपुलबुद्धेरपि बुद्धिराकुली कर्युः किं पुनरल्प बुद्धेः॥"

इसलिये मैं वैसी उन्नति का विरोधी हुँ। क्विनाइनादि वीर्यवान् औषधियों के ग्रहण करने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर यदि कोई ग्रहण करे तो वह डाक्टरों की भाँति अन्ध विश्वास लेकर न ग्रहण करे। वह अपनी विचार-बुद्धि और प्रत्यक्ष ज्ञान पर प्रयोग करे। क्विनाइन से सिनकोना यदि अधिक पाचन, निर्दोष सिद्ध हो, तो दे सकते हैं। पर विचार "यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्"। विशेषतः विदेशीय औषधियों के प्रस्तुत करने की रीति आयुर्वेद के मत से दोषयुक्त है। इसलिये एक्सट्रेक्टादि में विश्वास स्थापन करना अनुचित है।

सर्वत्र यह एक ही युक्ति है। नयी औषधियों की परीक्षा के विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। बहुत-सी वस्तुओं की अभिज्ञता न रहने से केवल हेतु पर अन्तिम अवस्था में निर्भर कर औषधी की कल्पना करना निरापद नहीं है। किसी-किसी स्थान में प्रभाव नामक पदार्थ में एक विशेष शक्ति को स्वीकार करना होता है। प्रभाव ही फलतः उत्पादक हेतु है। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि "सहस्रेणापि हेतूनां अम्बष्ठादि विरेचयेत्" तात्पर्य है कि अम्बष्ठादि का विरेचन के पक्ष में सहस्र हेतु होते हुये भी कभी विरेचन नहीं कर सकता। इसलिये नयी-नयी औषधियों पर न दौड़ कर परीक्षित देशज औषधियों पर आकृष्ट होना कर्त्तव्य है। इसकी रक्षा करने की चेष्टा करने में हम वाधित होंगे।

आप लोग कहेंगे कि हम लोगों का क्या था, जो उसकी रक्षा करें ? नहीं हम लोगों का यथेष्ठ था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसका कारण आप लोग स्वयं ही अनुभव करें। जिस समय मि० हार्वी ने Circulation of Blood के सम्बन्ध में आविष्कार किया, उस

आविष्कार के पहिले ही सुश्रुत संहिता के सूत्र स्थान शोणित वर्णनीय नामक चतुर्दश अध्याय में लिपिबद्ध है। शुक्रश्मरी की साधारण चिकित्सा और शस्त्र-चिकित्सा का सुश्रुत संहिता में उल्लेख है। इसका अंग्रेजों ने कब आविष्कार किया। अनुसंधान करने से ज्ञात होगा कि उसके बहुत काल बीतने पर आयुर्वेदोक्त गर्भ विमोचन प्रणाली को देखकर Govt. College के भूतपूर्व अध्यापक Dr. Charls ने विस्मय सहकार से कहा है कि "मैंने इस विषय में बहुत ही गवेषणा की है और मेरा ज्ञान भी है पर ऐसी निर्दोष वैज्ञानिक प्रणाली के विषय में मेरा ज्ञान नहीं था" सुश्रुत के शस्त्र विषय में भी उनका ऐसा ही मत था।

Dr. Hirsch Berg ने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि सुश्रुत संहिता का कर्णव्यध बन्ध विधि नामक सूत्र स्थान के १६ वें अध्याय में उल्लिखित नासादि संधान विषय Europe में युगान्तर ले आया है। अस्त्र विषय में मेरे कृत कर्मता के विषय में आप जानते हैं और मैं गर्व के साथ कहूँगा कि इस विषय से आप लोग अनभिज्ञ हैं। ज्ञात होने से आप लोगों का उपकार होवेगा इसलिये कुछ इस विषय में मैंने वर्णन किया। युद्ध में छिन्न पाद विशपला के जंघा को छेद कर लोहे के जंघा की रचना ऋग्वेद में मिलती है।

'सद्यो जंघामायसीं विशपलायै
धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्।'

Caesarian Section अर्थात् मृत प्रसूतिका प्रसव सम्बन्ध में सुश्रुत निदान स्थान के आठवें अध्याय में स्पष्ट उपदेश है कि

'वस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि
तत्क्षणाज्जन्म काले तं पाटयित्वद्धरेत् भिषक्।

अर्थात् प्रसूति की मृत्यु के बाद यदि उसका कुक्षि स्पन्दित हो तो शीघ्र ही चिकित्सक उसके वस्तिद्वार और गर्भद्वार को छेद कर गर्भस्थ सन्तान का उद्धार करे। आप लोग लक्ष्य करें कि 'तं' शब्द पूर्वश्लोकोक्त 'गर्भ' के लिये है। 'उद्धारयेत्' इस क्रिया का कर्म है। 'पाटयित्वा' क्रिया का कर्म गर्भ नहीं है। पाटयित्वा का कर्मपद 'वस्तिद्वारे' है। 'प्रस्पन्दन' का अधिकरण नहीं है। वस्तिद्वार के स्थान में 'वस्तमार' पाठ भी है पर वह ठीक नहीं है। जो सज्जन यह नहीं समझेंगे वही अनेक प्रकार का अर्थ मन में लावेंगे। इसमें प्रवेश करने से मन्तव्य को प्रकाश नहीं करेंगे।

विमलधियामाधिगम्यो शास्त्रे खिद्यति जड़ो न मोर्खेस्वे।
निन्दति कंचुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी॥

सज्जनों महर्षि सुश्रुत आजकल किसी-किसी समालोचक के हाथ में पड़कर तंग हो रहे हैं। वे लोग पाश्चात्य Anatomy से ज्ञान प्राप्त कर सुश्रुत को दोषदर्शी ठहराकर कहते हैं कि "शारीरे सुश्रुतो नष्टः" हम लोग कहते है "शान्तं पापम्" अच्छा उन लोगों से पूछा जाय कि सुश्रुत के नियमों को पालन किये हैं? 'निसृष्टान पुरीषं पुरुषम् अवहन्त्यामापगायं निवद्धं पञ्जरस्थं······कोखयेत्। ततो देहं सप्तरात्राद्धीशीरवाल वेनु वल्कल कूची नामान्यतमेन शनैः शनैरवघर्षयन् त्वगादीन सर्वानेव वाह्याभ्यन्तराङ्ग-प्रत्यङ्ग विशेषान् यथोक्तान लक्षयेत् चक्षुषां।

इस उपदेश का कोई अंश कभी पालन किए हैं? यदि नहीं हुआ है तो उसके फल के वैपस्य में विरक्त होने का क्या कारण है? सभ्य महोदय गण आप लोग अज्ञानियों के वाक्य से

विचलित नहीं होइयेगा। आप लोग विश्वास करें कि सुश्रुत नष्ट नहीं है। सुश्रुत अभ्रान्त है और अभ्रान्त उपदेश से Major and Minor हरेक प्रकार का शस्त्र कर्म प्राचीन काल में बहुत ही होता था। तन्त्र में है कि—

"धातूनां यत्र वैषम्यो भेषजं नैव सिध्यति।
आमयं दुस्तरं तस्मिन्न शस्त्रमेव विधोयते॥"

इसी प्रसंग में मैं आँख की चिकित्सा के विषय में कुछ शब्द कहूँगा। आयुर्वेद में आँख के विषय में जो उपदेश किया गया है वह पालन करने से कभी भी ऐनक का प्रयोजन नहीं होता। आज-कल की चिकित्सा से ५, ६ वर्ष के बालक भी ऐनक का प्रयोग करते हैं। सुश्रुत में विदेह का मत लिपिबद्ध है "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिती।" इस प्राचीन नियम से विदेह का प्रकरण दुरधिगम्य है पर परवर्त्ती ग्रन्थकार उसको ठीक लिपिबद्ध नहीं कर सके हैं। मैं सोचता हूँ कि इसी लिये आँख की चिकित्सा का प्रचार अधिक नहीं है। मैंने नेत्र रोग की चिकित्सा करने के लिये एलोपैथिकों की सेवा कर अनुभव किया है कि एलोपैथिक में नेत्र रोग की चिकित्सा सुन्दर नहीं है।

अनन्त वात, सुर्यावर्त्त तथा अर्धावभेदक प्रभृति रोग की भाँति अभिष्यन्द, तिमिर प्रभृति नेत्र रोगों की भी शिराव्यध ही एक मात्र औषध है। एलोपैथिक चिकित्सक इसमें अभ्यस्त नहीं हैं। नेत्र रोग की औषधि में भी वे लोग दुर्बल हैं। आयुर्वेद ही नेत्र रोग का एक मात्र चिकित्सक है यह राजशाही के प्रत्येक व्यक्ति जानते हैं। धन्वन्तरि कहते हैं,

"शिराव्यधः शल्यतन्त्रे चिकित्सार्धं प्रकीर्तितः।
यथा बस्तिः प्राणहितः सम्यक् काय-चिकित्सिते॥

आप लोग यह जानेंगे कि भारतवर्ष में आयुर्वेद ही पर दर्शन शास्त्र, गणितशास्त्रादि Europe के जानने के बहुत वर्ष पहले ही अवगत थे। हाय! वे सब विद्वान् कहाँ गये। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ माकियामेली के बहुत पहले ही भारतवर्ष में कौटिल्य और अर्थ शास्त्र प्रणनैये किये थे। वस्तुतः 'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय विस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याह्येतोश्चतुर्दश॥' इन चौदहों विद्याओं का ही नहीं बल्कि—

'आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वमर्थशासनं'

ये चार विद्यायें भी भारत की सम्पत्ति हैं। आजकल काल के महात्म्य से भारत के तुल्य हुआ है पर वह सब भारत से ही दूसरे देश में गया है। मेरा अभिमत है कि यह भारत से ही गया है। कोई किसी स्थान से भारतवर्ष में नहीं आया है इस विषय में उयेवार साहेब कहे हैं—

There is no ground whatever to suspose that Susruta borrowed his system of medicine from the Greeks. On the contrary, there is much to tell against such an idea.

History of Indian Literature.

इसका तात्पर्य्य यह है कि सुश्रुत ने अपना चिकित्सा-तन्त्र ग्रीक गणों से ग्रहण किया है ऐसी कल्पना करने का कोई भी कारण नहीं है। तथा इसके विरोध में कहने के अनेक शब्द हैं।

महाशयगण, आयुर्वेद के वैज्ञानिकत्व के प्रसंग में और त्रिधातु के सम्बन्ध में दो-चार शब्द कहने की आवश्यकता है। त्रिधातु क्या है इस विषय में बहुमत है। पर इस विषय में धन्वन्तरिजी अति सरल शब्द में कहे हैं उससे सुन्दर व्याख्या करना कष्टकर है।

'विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्य्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद् देहं कफपित्तानिलास्तथा॥'

समस्त जगत् में जिस प्रकार चन्द्र, सूर्य्य तथा वायु जिस तरह कार्य करती हैं उसी प्रकार जीव देह में कफ पित्त तथा वायु कार्य करता है। इससे त्रिधातु के स्वरूप, गुण तथा क्रिया प्रभृति का संकेत कहा गया। कफ का स्वरूप जल, गुण तथा शैत्यादि क्रिया विसर्ग अर्थात् रसदान है वैसे ही पित्त का स्वरूप अग्नि, गुण तथा तपादि क्रिया आदान अर्थात् रस्मिकषेण तथा वायु का स्वरूप वायु, गुण तथा शैत्यादि क्रिया विक्षेप अर्थात् परिचालन है। स्थान तथा क्रियादि भेद से त्रिधातु पाँच प्रकार का है। कफ और पित्त पंगु हैं इसका चालक वायु है।

योगवाही परं वायुः संयोगोदुभयार्थकृत।
दाहकृत् तेजसा युक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात्॥

अर्थात् वायु योगवाही संयोगवशतः उभय प्रकार का कार्य ही संचालन करता है। यह पित्त को चालन करता है। उस समय शरीर में दाह उत्पादन करता है और यह कफ का चालन करता है उस समय शरीर में शीत उत्पादन करता है।

(ज्वर में उत्ताप निर्णायक यन्त्र की अव्यर्थता कितनी है उसका अनुमान आप लोग कर सकेंगे।)

त्रिधातु का साम्यावस्था नाम स्वास्थ्य है। और वैषम्य का नाम रोग शरीर को धारण करता है इसलिये इसको त्रिधातु कहा जाता है और विगुण होने से शरीर में दोष का उत्पादन करता है इसलिये त्रिदोष कहा जाता है। त्रिदोष को अतिक्रम कर कोई रोग उत्पन्न नहीं होता है।

यथाहि कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेनावस्थितं सत्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते, एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेनावस्थितम् अव्यतिरिच्य वातपित्तश्लेष्मानो वत्तन्ते। सुश्रुते सूत्रस्थान २४ अ०।

त्रिधातु के विषय में प्राचीन समय में ग्रीकों की जो धारणा थी वह मेरे विश्वास का विषय नहीं है। उन लोगों के उस अपराध से मेरा शास्त्र दोषयुक्त नहीं होवेगा।

आज कल किसी अंग्रेजी भाषज्ञ से यदि त्रिधातु के विषय में कहा जाय तो वे लोग नासिका कुंचन करेंगे और कहेंगे कि मैं जानता हूँ। यह Theory तो बहुत दिन व्यतीत हुये Explored हो गयी है। आप लोगों में ही दोष है कि पुराना Theory लेकर ही बैठे हुये हैं। परिवर्तन कर नया नहीं कर रहे हैं। किन्तु बोल कर एक ही पक्ष की डिग्री को डिसमिस कर देते हैं। डाक्टरों के भक्त रोगी जब डाक्टरों से जवाब पाते हैं तब वे सज्जन वैद्यों से प्रार्थना करते हैं और कविराजों के शिर पर अपयश डाल देते हैं। ऐसी हालत में भी कविराज रोगी को अच्छा करते हैं। पर किसी किसी स्थान में 'लाभ परे गोवध' होता है। राजशक्ति का समर्थन नहीं होने से मान और प्रतिपत्ति की कोई संभावना नहीं होती है।

मैं अफसोस के साथ कहता हूँ कि पाश्चात्य मतानुरक्त अंध विश्वासी जो चिकित्सा का

विषय गुण गान करते हैं वह चिकित्सा बड़ी ही विज्ञानुगत है पर रोगी के शयन स्थान की व्यवस्था के सम्बन्ध में "प्रवाते निर्वतैक देशे' इस अमूल्य उपदेश के अभाव में वशतः रोगी को दिन में ऐसा कि रात्रि में प्राग्वात् सेवन कराना है। दूध और दही को केवल पुष्टि-कारक गुण के विषय में अवगत होकर ज्वर के तरुण अवस्था में देना दूसरे विषयों का ज्ञान नहीं है। वातिक, श्लेष्मिक ज्वर में शरीर का उत्ताप घटाने के लिये बरफ का प्रयोग कर रोगी को शीघ्र ही यमपुर में प्रेरणा करना ही है। इस देश में निउमोनिया, टाइफाइड, यक्ष्मा आदि रोगों के लिये वे लोग अधिकांश उत्तरदायी हैं। वे लोग देखते हैं कि सजधज के साथ जो इलाज नहीं करता वह अवैज्ञानिक है। ऐसे शब्द इस वैज्ञानिक काल में ही शोभा पाते हैं। "अधर्मेन जितोधर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम्" अर्थात् छोटे मुँह से बड़ी बात कहते हैं।

एलोपैथिकों के जीवाणुवाद में चमत्कृत होते हैं पर चिकित्सा-क्षेत्र में पृथक्-पृथक् परीक्षक एक पदार्थ के ही अनेकानेक जीवाणुओं का अस्तित्व कहे हैं। इससे चिकित्सकों का मोह पैदा करने के सिवा और कुछ नहीं है। और मैं पूछता हूँ कि पृथक्-पृथक् रोगों का पृथक्-पृथक् जीवाणु क्यों उत्पन्न होता है? इसके उत्तर में मैं कहूँगा कि कफ, पित्त और वायु के अनुपानादि में पृथकता है। इसलिये त्रिधातु को त्याग कर चिकित्सा में प्रवृत्त होना मूर्खता ही है। पक्षी जैसे अपना प्रतिविम्ब कभी छोड़ नहीं सकता। 'यथाहि शकुनिः सर्वादिशः परिपतन् स्वां छायां नातिवर्तते" इत्यादि—चरक।

कोई-कोई ऐसा कहेंगे कि डाक्टर Surgery में अप्रतिद्वन्द्वी हैं। मैं कहूँगा कि जिसके प्रतिद्वन्द्व हों तो वह अप्रतिद्वन्द्वी हो सकता है पर आयुर्वेद चिकित्सक इस अधिकार से वञ्चित किये गये हैं तब अप्रतिद्वन्द्वी शब्द की सार्थकता कहाँ है? कविराजों के भीतर ऐसा कोई नहीं है जो अस्त्र प्रयोग में साहसी हो। पर डाक्टर शस्त्रचिकित्सा में अनेक कार्य कर रहे हैं। उनमें बहुत से अभीष्ट तथा इष्ट दोनों करते हैं। शस्त्र को वैज्ञानिक किस प्रकार समझेंगे। पथ्यापथ्य के विषय में यदि कोई प्रश्न करे तो उसको बिना लेबोरटरी में परीक्षा किये नहीं कह सकता है। परीक्षा का फल—विटामीन और पुष्टिकारिता ही है और कुछ नहीं। वायु, पित्त, कफ सम्बन्धी नियमावली जब तक नहीं समझेंगे तब तक उन लोगों का विषय बोधगम्य नहीं होगा। इस वैज्ञानिक के विषय में ह्यालडन साहब ने अपने Possible World नामक पुस्तक में लिखा है—

Many of our cherished scientific theories contain so much falsehood as to deserve the title of myths.

अर्थात् हम लोगों के वैज्ञानिक मतवाद में अनेक मिथ्या वर्त्तमान है और वह केवल गल्पनाम से अविहित है। सुप्रसिद्ध माननीय Bertrand Russell की भी ऐसी ही राय है। आप लोग विचार करें कि जो मत दो, चार दिन बाद वर्जन करना पड़ेगा वह कैसे सत्य समझ कर शिरोधार्य हो।

ऐलोपेथिक शास्त्र कृतश्रम यशी डाक्टर श्रीमान् नलिनीरंजन सेन गुप्त एम० डी० महाशय ने भारत के साधनानामक मासिक पत्र में विज्ञान के नाम से धृष्टता शीर्षक प्रबन्ध में प्रकाश किया है कि विज्ञान विशिष्ट-ज्ञान को कहते हैं। ज्ञान का स्वरूप ऐसा है कि सम्यक् ज्ञान एक प्रकार से बराबर रहता है। पाश्चात्य विज्ञान में विज्ञान का नाम गन्ध नहीं है। उसका प्रमाण यह है कि आज जो कहते हैं कल वह बदल जाता है। "पाश्चात्य विज्ञान जैसे

परिवर्त्तनशील है वैसे ही आयुर्वेद परिवर्त्तन रहित । पाश्चात्य के परिवर्त्तन के विषय में आपने Truth पत्रिका में लिखा है कि 'उदर' रोग में आयुर्वेद जल, नीमक बंद कर दूध का सेवन बिधि कहता है—डाक्टर पहिले उस विषय में नमक ही दवा बोलते थे किन्तु अब नमक बन्द करने के लिये कहते हैं । पहिले वे नमक, पानी बन्द करने में हँसते थे किन्तु अब आप ही बंद कर रहे हैं । वैज्ञानिकता के मोह में और राज्यशक्ति पाने के लिये आयुर्वेद को गवर्नमेण्ट को दे रहे हैं । डाक्टरों की भाँति State faculty सङ्गठन का प्रस्ताव कर रहे हैं इसका मैं घोर विरोध करता हूँ तथा सबको करना चाहिये । इसमें एम, बी डाक्टरों से अधिक पण्डित कविराज Sub-Assistant Surgeon गणों के बराबर होंगे । इससे आयुर्वेद की बहुत क्षति होगी । मेरी यह प्रार्थना आप लोग स्थिर चित्त से विचार करें । इसीसे आपके हाथ से घर की लक्ष्मी चली जा रही है जो इस विषय में उत्सुक हों उनसे आप कहियेगा—

'परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधुमिव श्रियम्' ?

और अब अधिक कहने की इच्छा नहीं है । आप लोग आयुर्वेद का हित करने के लिये इस सभा में आये हुए हैं हृदय में साहस रखियेगा और आर्ष शास्त्र में विश्वास करें । दैवी तथा आसुरी शक्ति का परस्पर विरोध यह पुराना व्यापार है । उपस्थित आसुरी शक्ति की जय हो रही है किन्तु पिछले दैवी शक्ति की ही जय होगी । जगदम्बा देश तथा समाज दोनों का मंगल करें ।

"आयुर्वेदामृत सरिज्जगत् कल्याण-हेतवे ।
अवाद्यं वर्त्ततां शश्वज्जगदम्बा-प्रसादतः ॥"

श्रीमान् वैद्य पं० शिवनारायणजी मिश्र, भिषग्रत्न
भूतपूर्व प्रधानमंत्री नि० भा० आ० म० मंडल, कानपुर।

श्रीमान् वैद्य पण्डित शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न का

संक्षिप्त परिचय

पं० शिवनारायण मिश्र के पूर्वज हैदराबाद दक्षिण और लखनऊ में वैद्यक व्यवसाय पीढ़ी दर पीढ़ी से करते चले आ रहे हैं। लखनऊ की नवाबी के पतन के बाद इनके पिता पं० शिवाधार मिश्र लखनऊ से कानपुर आ बसे और यहीं चिकित्सा व्यवसाय करने लगे। इनके पितामह हकीम जुड़ावन लाल अपने जमाने में लखनऊ के प्रसिद्ध और बड़े वैद्यों में थे। इनके दूसरे पितामह पं० शिवसहाय अपनी १४ वर्ष की उम्र में ही हैदराबाद पैदल चले गये थे और कहते थे कि वैद्यक व्यवसाय से बावन हजार रुपये ५२०००) रु० पैदा करने के बाद अपने घर (ग्राम पड़री, जिला उन्नाव) लौटे थे। उन दिनों रेल, तार, डाक आदि का प्रसार न था। इसी उद्योगी कान्यकुब्ज वंश में हमारे चरितनायक का जन्म कानपुर में सन् १८९२ (सं० १९४९ वि०) में हुआ था। आपके पिता पं० शिवाधार और पितृव्य पं० भालचन्द्र मिश्र कानपुर के बहुत बड़े वैद्यों में थे और उन्हीं का पदानुसरण करते हुए पं० शिवनारायण मिश्र भी इस समय कानपुर के अग्रगण्य वैद्यों में हैं। आपकी उम्र अब लगभग ४५ वर्ष की है।

जब ये नाबालिग थे तभी से सार्वजनिक कार्यों में योग देने लगे थे। स्वर्गीय शंकर दाजी शास्त्री पदे के पट्ट शिष्य आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ने जब प्रयाग में सर्व प्रथम पं० गणनाथ सेन सरस्वती महाशय के सभापतित्व में अ० भा० वैद्य सम्मेलन का आयोजन किया था तब उसकी सफलता का बहुत कुछ श्रेय युवक शिवनारायण मिश्र को भी था। कानपुर की वैद्य मंडली को वैद्य सम्मेलन की ओर रुचि दिलाने का श्रेय हमारे चरितनायक, जो उस समय किशोर ही था, को है। इधर जितने भी वैद्योन्नति सम्बन्धी कार्य हुए हैं उन सब में किसी न किसी रूप में मिश्र जी का हाथ रहा है।

इनके जीवन को मोड़ने का अधिकतर श्रेय युक्तप्रांत के नेता स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी को है। अपनी १४ वर्ष की उम्र में ही ये 'हिन्दी केसरी' के नियमित पाठक थे और १६ वर्ष की उम्र में इनका परिचय श्रीयुत गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ। मिश्र जी तथा उनके भाई पं० शिवनन्दन मिश्र वैद्य ने मिलकर 'ब्रह्मावर्त सनातन धर्म मंडल' नाम की एक सभा खोल रखी थी जिसमें प्रति सप्ताह कुछ नवयुवक और किशोर एक साथ बैठकर धर्म चर्चा किया करते थे। एक दिन एक दुबला-पतला सा १८ वर्षीय युवक खड़ा होकर सभा में बोलने लगा। उसके वक्तृत्व कौशल को देखकर हमारे चरितनायक का आकर्षण उसके प्रति हुआ और सभा से आकर उसका परिचय प्राप्त किया। युवक ने अपना नाम गणेश शंकर विद्यार्थी बताया। उसी दिन से दोनों एक दूसरे के अभिन्न मित्र हो गये और जीवन पर्यंत रहे।

दोनों युवकों ने मिलकर एक गल्प सम्बन्धी 'गल्प' नामक मासिक पत्र निकालने की बात

सोची। एक समाचार पत्र की भी बात सोची गई। गणेश शङ्कर उस समय २०) मासिक के क्लर्क थे और शिवनारायण के पास था केवल उत्साह। इसलिये उस समय की हवाई स्कीम कार्यरूप में परिणत न हो सकी। कुछ समय बाद विद्यार्थी जी 'सरस्वती' के उप-सम्पादक हो गये और बाद को 'अभ्युदय' के प्रधान सम्पादक बनकर प्रयाग चले गये। उस समय इतनी कम उम्र का सम्पादक हिन्दी में दूसरा कोई न था। गणेश जी सम्पादक बन गने और उनकी प्रेरणा से मिश्र जी गल्पों और लेखों के लेखक। दोनों ही अपना स्वतन्त्र पत्र निकालने का स्वप्न बराबर देखते रहे। इसी बीच आर्थिक कठिनाई के कारण 'अभ्युदय' को बन्द कर देने की बात सोची जाने लगी और विद्यार्थी जी ने हमारे चरित नायक को कुछ हजार रुपये इकट्ठा कर 'अभ्युदय' ले लेने के लिए लिखा। मिश्र जी के पास पैसे का तो ठिकाना न था किन्तु लिख भेजा कि 'अभ्युदय' का कर्जा चुकाने के लिये कन्नौज के अपने एक मित्र से रुपये का प्रबन्ध कर रहे हैं, आप 'अभ्युदय' कानपुर उठा लाने की बातचीत करें। अबोध नवयुवक को क्या पता था कि हजारों रु० की रकम एक नाबालिग़ को कौन सौंप देगा ?

'अभ्युदय' को तो मालवीय जी ने प्रयाग से ही चलाना तय कर लिया। हाँ, गणेश जी को उससे अलग होना तै करना पड़ा। कन्नौज के मित्र ने हजारों तो नहीं, हाँ, २५०) की सहायता मिश्र जी को दी और सन् १९१३ की देवोत्थानी एकादशी के दिन से 'प्रताप' कानपुर में प्रकाशित करना तय हुआ। तीन रुपये महीने का दफ्तर लिया गया और 'प्रताप' दूसरे के प्रेस में छपने लगा। विद्यार्थी जी सम्पादक और मिश्र जी मैनेजर बने। चार सप्ताह भी न बीते होंगे कि प्रेस वालों ने छापना बन्द कर दिया। नये पत्र का एक सप्ताह भी प्रकाशित न होना उसकी मौत का सवाल था। कानपुर के सबसे बड़े धनाढ्य उसके सहायक हुए और ७००) (सात सौ) रु० मिश्र जी को उनकी जिम्मेदारी पर उधार दिये। तुरन्त एक छोटा सा हैंडप्रेस खरीदा गया और इधर-उधर से सामान माँग जाँचकर ४ दिन और ४ रात लगातार जागकर पाँचवें सप्ताह की निश्चित तिथि को 'प्रताप' बाजार में बिकने लगा। विरोधी इस प्रयत्न को देखकर दङ्ग रह गये। हमारे चरितनायक ने प्रेस पर स्याही लगाने का काम स्वयं अपने हाथों किया था।

इसके बाद पैसे की तङ्गी के कारण झाड़ू के काम से लेकर 'प्रताप' को कंधों पर लादकर डाकखाने पहुँचाने तक का काम करते हुए मिश्रजी कभी नहीं हिचके। इन्हीं की तपस्या और अध्यवसाय का फल है कि 'प्रताप' इतना फला फूला और हिन्दी संसार में एक विशेष स्थान प्राप्त कर सका। सन् १९१९ में 'प्रताप' के लिये लगभग ३० हज़ार रु० इकट्ठा किया और उसे एक ट्रस्ट के हाथों सौंप दिया, जिसके ट्रस्टी मिश्र जी अब भी हैं।

साप्ताहिक 'प्रताप' के बाद दैनिक 'प्रताप' निकाला। मासिक 'मनोरञ्जन' मासिक 'प्रभा' आदि कई पत्र पत्रिकाओं का जन्म दिया और उसके पूर्ण स्वामी बने रहे। प्रकाश पुस्तकालय नाम का एक प्रकाशन-व्यवसाय चलाकर आपने उस समय की एक कमी को पूरा किया। इसमें लगभग ८० पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। 'आयुर्वेदीय ग्रन्थ-माला' नाम की एक ग्रन्थमाला भी शुरू की जिसमें 'खनिज विज्ञान' जैसी कितनी ही छोटी बड़ी उपादेय पुस्तकें प्रकाशित की हैं। मिश्र जी बड़ी लगन के आदमी हैं। असम्भव तो किसी बात को मानते ही नहीं। जिस क्षेत्र में जुट गये सफलता ही प्राप्त की।

राजनैतिक क्षेत्र में भी आपकी प्रवृत्ति शुरू से ही रही। १६ वर्ष की उम्र से ही

स्वदेशी के व्रती हो गये थे और इस व्रत का खण्डन कभी नहीं होने दिया। सन् १९१५ में काशी षड़यन्त्र केस के सम्बन्ध में आपके मकान की तलाशी ली गई थी। पुलिस का विश्वास था कि अपने पठनकाल में काशी में इनकी मैत्री अराजकों से थी और उन्हीं के सम्बन्ध में पूछने के लिए मिश्रजी हैरान किये गये मगर तत्व की कोई बात न पाकर पुलिस ने छोड़ दिया। बाद में पुलिस बराबर इनकी प्रत्येक हलचल पर ध्यान देती रही और पग-पग पर पीछा करती रही।

इसी कारण सन् १९१८ में एक मजेदार घटना घट गई। मिश्रजी अपने गाँव पड़री (जि० उन्नाव) भतीजे के यज्ञोपवीत संस्कार में गये हुए थे। कानपुर की पुलिस ने इनका पीछा करने के लिये उन्नाव की पुलिस को तार दिया। दूसरे दिन अचलगंज थाने के थानेदार साहब अपने कान्स्टेबिलों सहित पड़री जा पहुँचे और उन्हें हुक्म दिया कि 'बागी' शिवनारायण के दरवाजे से चारपाइयां उठा लाओ। किन्तु 'बाग़ी' ने बगावत कर दी और थानेदार के इस गुस्ताखाना हुक्म की तामील न होने दी। फिर क्या था, थानेदार ने बदला लेने की धमकी देकर, सदर के लिये, जो वहाँ से ११ मील था, पैदल यात्रा कर दी। दूसरे दिन शाम को गिरफ्तारी का वारंट और सिपाहियों की छोटी सी पल्टन लाकर गाँव के हरेक रास्ते की नाकेबन्दी करके घेरा डाल दिया। गाँव के मुखिया ने आकर मिश्रजी को यह खबर दी। मिश्र जी ने पुलिस को तंग करने के लिए कह दिया कि वे रात ही रात कानपुर जा रहे हैं। फिर क्या था। थानेदार ने पकते हुए खाने के चूल्हे को बुझवा दिया और गाँव से बाहर जाने वाले हरेक रास्ते पर दुहरा पहरा लगाकर खुद रात भी सबकी खबर लेते रहे।

मिश्रजी निमंत्रितों की सेवा-सुश्रूषा के बाद सो गये और सुबह जब उठे तो अपने को सिपाहियों और चौकीदारों की पल्टन से घिरे पाया। मालूम हुआ कि थानेदार बहादुर घंटों से उनके जगने की प्रतीक्षा में बैठे हैं। तलाशी ली गई। हाथ में हथकड़ी और कमर में रस्सा बाँध दिया गया। इसी अवस्था में उन्हें शौचादि से निपटना पड़ा। गाँव वाले यह देख उत्तेजित हो उठे। लोगों ने कांते-बल्लम निकाल लिये। बड़ी मुश्किल से उन्हें शांत करना पड़ा। मिश्र जी पहले उन्नाव फिर कानपुर लाये गए। शहर में काफी हलचल थी। रात के बारह बजे पुलिस के बड़े अधिकारियों को अपनी भूल मालूम पड़ी कि पीछा करने का हुक्म था न कि गिरफ्तार करने का और मिश्र जी छोड़ दिये गये।

तीसरे दिन कानपुर के अधिकारियों का क्षमा-पत्र लेकर एक थानेदार साहब २४ मील इक्के पर चढ़कर पड़री पहुँचे। मिश्र जी ने कानपुर के अधिकारियों को तो छोड़ दिया किन्तु उन्नाव के सुपरिंटेन्डेट पुलिस मि० मेकडानल और अचलगंज के थानेदार के उपर मामला चलाने का भार प्रयाग के सर तेजबहादुर सप्रू को सौंप दिया। बाद का इन दोनों ने भी सर सप्रू के सामने लिखित क्षमा प्रार्थना की, थानेदार ने तो पड़री में आकर गाँव भर के सामने अपना क्षमा-पत्र मिश्र जी को देकर माफी मांगी।

सन् १९२१ में रायबरेली के प्रसिद्ध मुंशीगंज गोलीकांड के सम्बन्ध में सरदार बीरपालसिंह ने एक मुकदमा गणेश शंकर विद्यार्थी और मिश्र जी पर चलाया। मुकदमा लगभग ९ महीने लड़ा गया और करीब सत्ताइस हजार रुपया खर्च हुआ। अदालत से दोनों को ६–६ महीने की सजा और एक-एक हजार रुपया जुर्माना हुआ। सरकार न इस मुकदमे को बहुत कुछ अपना सा मान लिया था। इस मुकदमे के दौरान में ही गवर्नमेंट ने इन दोनों पर कान-

पुर में एक राजद्रोह का मुकदमा भी चला दिया और दोनों से तीस-तीस हजार रुपये की जमानतें और मुचलके माँग लिये। मित्रों ने तुरन्त दाखिल कर दीं। यह सब इसलिये सहना पड़ा कि उन्होंने माफी के दो शब्द कहने से सदा इनकार किया।

सन् १९२२ में मिश्र जी रायबरेली वाले मामले में अपनी जमानत खारिज करवा कर जेल चले गये। किन्तु थोड़े दिन बाद ही एक दिन सुबह अचानक रायबरेली के जेल सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें जेल से बाहर कर दिया और मिश्र जी के पूछने पर हँसते हुए कहा कि "आपको युवराज का स्वागत करने के लिये छोड़ रहा हूँ।"

मिश्र जी बड़े स्पष्टवादी हैं। कभी-कभी तो यह कटुवादिता का रूप धारण कर लेती है। इनकी व्यवसायिक योग्यता और अध्यवसाय बुद्धि का परिचय पाकर सन् १९२२ में अन्यतम नेता स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी नेहरू ने प्रयाग में 'इंडिपेंडेंट' का प्रबन्ध संभालने के लिये इन्हें निमंत्रित किया। आप प्रयाग गये और उसके सब कागज पत्रों की जाँच-पड़ताल करने के बाद पंडित जी से स्पष्ट कह दिया कि यह पत्र वर्तमान बुराइयों के रहते चल नहीं सकता और मैं उन्हें किसी प्रकार भी बिना आपको नाराज़ किये दूर नहीं कर सकता। पंडित जी इस स्पष्टवादिता से बहुत प्रसन्न हुए और अपने हस्ताक्षरों सहित अपना एक चित्र दिया जिसे मिश्र जी श्रद्धापूर्वक अब तक रखे हुए हैं।

आप हँसमुख और बड़े विनोदी हैं। इनके अन्तरंग मित्रों में साहित्य के बड़े-बड़े विद्वान् रहे हैं और हैं। ऐसे ही कुछ मित्रों के योग से 'गोलमाल कारिणी' नाम की एक सभा कायम कर रखी थी। उस सभा की सभासदी प्राप्त करने के लिये भरतपुर के एक सज्जन इनके पास आये। इन्होंने उनसे कहा कि अगर आप कुछ नियम पूरे कर लें तो बाकायदा आप भर्ती किये जा सकते हैं। बतलाये हुए नियमों के अनुसार उक्त सज्जन को आगरा और प्रयाग की यात्रा करनी पड़ी। एक दिन रात के ठीक १० बजे स्वर्गीय पं० रामजीलाल शर्मा के कमरे की मेज पर मिठाई का दाना रखकर ये महाशय धड़ाधड़ डंडे पीटने लगे। मुहल्ले तक के लोग जग पड़े। शर्मा जी के नींद से उठकर आने पर साक्षात्कार होते ही एक विशेष भावभंगी के साथ उस उक्त सज्जन ने अपना परिचय एक साँस में दे डाला। शर्मा जी ने थोड़ी ही देर में माजरा समझ लिया और उन्हें वैरंग कानपुर मिश्र जी के पास लौटा दिया।

एक बार इसी विनोदी सभा के सम्बन्ध में मिश्र जी आगरा गये। तय हुआ कि कोई साहित्यिक कांड होना चाहिये। पं० सत्यनारायण कविरत्न और स्वर्गीय पं० बदरीनाथ भट्ट से मिलकर तय हुआ कि आर्यमित्र सम्पादक पं० लक्ष्मीधर जी वाजपेयी को हम लोग अपना गुरु मान लें और गुरु चेले के रूप में एक चित्र खिंचवाया जाय। वाजपेयी जी कुछ दिन स्वामी रामदास जी के मतानुयायी रह चुके थे। उन्होंने अपना भगवा चोगा निकाला, कमंडल और चिमटा आया। मोर के पंख आये। भट्ट जी ने कागज के चोंगे का टोप बनाया उसमें "ल०" लिखा और वाजपेयी को इस वेश में कुर्सी पर बैठा कर भट्ट जी और मिश्र जी हाथ जोड़े हुए उनके शिष्य रूप में जमीन पर बैठे और चित्र खींचा गया। चित्र का ब्लाक बना और वह एक पुस्तक के समर्पण के रूप में छपा। चित्र के नीचे भट्टजी ने कविता लिख दी—

मोर-पंख से मुकुट सजा भंगा पहना है।
कर में चिमटा लिया वाह वाह क्या कहना है॥

तूँबो रखली, पास शिष्यगण को बिठलाया ।
अंधों में काना राजा बनकर इठलाया ॥
जिसकी लीलाओं का सुथल मूर्खों का हृद्धाम है ।
उस गुरुडम के अवतार को बारंबार प्रणाम है ॥

ब्लाक के नीचे कविता छापकर समर्पित पुस्तक में लगाकर वाजपेयीजी के पास पहुँचो । लोगों ने उन्हें भड़का दिया कि इन लोगों ने तो आपका मजाक उड़ाशा है । बस, फिर क्या था, बाजपेयी जी ने मिश्रजी को रजिस्टर्ड नोटिस दे दिया कि पुस्तक जला दो, अगर एक भी पुस्तक चित्र सहित बाहर निकली तो दण्ड भोगोगे । कुशल इतनी थी कि पुस्तक की ४–६ प्रतियाँ ही मिश्र जी ने मित्रों को दी थीं । वह चित्र अब भी अन्तरङ्ग मित्रों के लिए विनोद की सामग्री है ।

सन् १९३० के प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन में मिश्र जी ने नमक बनाने, शराब पर धरना देने से लेकर कानपुर जैसे शहर की डिक्टेटरी तक की और डिक्टेटर की हैसियत से ही जेल जाना पड़ा । आप कानपुर नगर कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री रह चुके हैं ।

वैद्यक क्षेत्र में भी आप बराबर काम करते रहे । कानपुर की वैद्य सभा, युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन और अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन और विद्यापीठ में बराबर काम करते रहे । १९२९ में आपको कराची के वैद्य सम्मेलन ने आयुर्वेद महामण्डल और विद्यापीठ का प्रधान मन्त्री चुना और इसी काल में आप जेल चले गये । सम्मेलन की सफलता सदा ही चाही । आपकी सेवाओं से सन्तुष्ट होकर १९१७ में युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन ने आपको 'भिषग्रत्न' की पदवी प्रदान की थी ।

सन् १९३१ में आप कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड के म्युनिसिपल कमिश्नर निर्वाचित हुए और तीन वर्ष उक्त पद पर रहने के बाद स्वेच्छा से उससे हट गये । आप बड़े मिलनसार हैं । समय-समय पर अपने मित्रों की सहायता को याद कर गद्‌गद हो उठते हैं ।

सन् १९३० में कानपुर के हिन्दू-मुसलिम दंगे में आतताइयों ने इनके अभिन्न मित्र श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को मार डाला । इसमें मिश्रजी भी एक बार फंस गये थे किन्तु अपनी प्रत्युत्पन्न मतित्व से जान हथेली पर रखकर बच निकले । गणेशजी की मृत्यु से इन पर तो मानों पहाड़ फट पड़ा । सारी उमंगे और सपने नष्ट हो गये । इन दिनों ये एक वैद्यक पत्र निकालने की सोच रहे थे । आयुर्वेदीय पुस्तकों का एक वृहत् पुस्तकालय खोलने की स्कीम भी इनके मन में थी । ये सब ऐसी ही पड़ी रहीं । हाँ, पुस्तकालय खोलने की स्कीम अब भी इनके सामने हैं । हस्तलिखित ग्रन्थों का जितना अच्छा संग्रह इनके पास है वैसा इस प्रान्त में दूसरे किसी व्यक्ति के पास न होगा ।

इनके संग्रहालय में एक हजार से अधिक हस्तलिखित पुस्तकें होंगी । चित्रकला से भी उन्हें प्रेम है । लखनऊ के चित्रकला प्रदर्शन में तथा कानपुर की ललितकला प्रदर्शिनी में इन्होंने जिन प्राचीन चित्रों का प्रदर्शन किया था उनकी विशेषज्ञों ने बहुत प्रशंसा की थी ।

आयुर्वेद की उन्नति के लिए आपका विश्वास है कि संसार के किसी भी चिकित्साशास्त्र में जो भी उपादेय उपाय या औषधियाँ मिलें उनको खुलमखुल्ला अपनाकर उनका प्रयोग करना चाहिए । आप वैद्यक के साथ ही जल-चिकित्सा, इञ्जेक्शन-चिकित्सा, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा

आदि के भी पक्षपाती हैं। कुनैन आदि आशुफलप्रद औषधियों को आयुर्वेद के अन्तर्गत कर लेने के भी पक्षपाती हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। जल-चिकित्सा या प्राकृत-चिकित्सा पर भी एक पुस्तक लिखी है।

मिश्रजी में कुछ कमजोरियाँ भी हैं। वे कभी-कभी अपने मित्रों की ज़िद या मान-रक्षा के लिए अपने को बड़ी से बड़ी कठिन परिस्थिति में डाल लेते हैं और लोगों के कोपभाजन बन बैठते हैं। एक बार तो इन्होंने अपने एक मित्र की मान-रक्षा के लिये एक ऐसी बड़ी बदनामी अपने ऊपर ओढ़ ली जिसका किसी को पता भी नहीं है और उसके लिए बड़ी कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार की कमजोरी इन्होंने एक बार इंडियन मेडिसिन बोर्ड के चुनाव के सम्बन्ध में भी प्रदर्शित की थी। मगर इस प्रकार की कमजोरियों के शिकार, कभी न कभी आदर्श पुरुष को छोड़ कर, सभी हो जाते हैं।

आजकल आप अपना ध्यान वैद्यक पर ही दे रहे हैं। आपका खयाल है कि बिना धन के संसार में कोई कार्य शान्ति और सफलता से नहीं किया जा सकता। आप यह भी सोचते हैं कि जीवन के एक खास भाग में इतना धन अवश्य पैदा कर लेना चाहिए ताकि वृद्धावस्था में परमुखापेक्षी न रहना पड़े। अब आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर फिर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं। उस जीवन के प्रवेश का द्वार आप आयुर्वेद के द्वारा ही खोलना चाहते हैं। ईश्वर करे उक्त इच्छाओं की तरह उनकी यह सदिच्छा भी पूर्ण हो।

* * *

कविराज श्रीमान् पण्डित सत्यनारायण जी शास्त्री, काशी ।

व्याकरणशास्त्रि भिषक्शिरोमणि विद्यावारिधि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयचरकाध्यापक

कविराज श्री सत्यनारायण शास्त्रि महोदयस्य

जीवनेतिवृत्तम्

अस्ति विविधविद्याविचारावधीरितसुरगुरुभिर्विबुधवरैर्विराजिता, निरन्तरजलनिचयपरिगताऽपि जाड्यापहारिणी राजसरहिताऽपि प्रकृतिसौन्दर्यमयी, बहुमन्दिराऽपि मुनिमण्डलमण्डिता क्रोशशून्याऽपि पञ्चक्रोशा, सावयवाऽपि नित्या,—शास्त्रपूर्णापि शास्त्रार्थिनी मङ्गलसङ्गताऽपि बुधबहुला, अहंसापि नित्यं सरस्वत्या अध्युषिता पुरीनिर्माणनिपुणेन वेधसाऽऽदर्शमिव कल्पिता, सकललोकललामभूता काशी नाम नगरी। यामुत्तरेण भगवती भागीरथी वहति।

यत्रच कुम्भसम्भवोऽपि चुलुकीकृतवारिनिधिर्भगवानगस्त्यः चिरमुवास। तदाश्रमोपान्त एव वैद्यविद्याविशारदः पाण्डेयोपनामा श्रीमान् पं० शिवनन्दनशर्म्मपाण्डेयोऽवनिसुरोत्तमो निवसिस्म। योहि शब्दसाहित्ययजुर्वेदायुर्वेदज्यौतिषशास्त्राणामपूर्व एव पण्डित आसीदेकदापाठ्यमानस्सूरिसमूहसरोरुहैकोष्णरश्मिस्वनामधन्यलोकोत्तरकीर्तिराशिः पं० श्रीशिवकुमारमिश्रमहोदयस्तल्लिखितां परिभाषेन्दुटिप्पणीमवलोक्य भूयानप्रशंसत्, नैतादृशं पाण्डित्यं कस्मिंश्चिदपि विपश्चिति मयालोकीति। तदात्मजातः पुण्यकीर्तिः पितृचरणानुरूपः पं० श्रीवलभद्रपाण्डेयोऽजायत। स च षट्चत्वारिंशदुत्तरैकोनविंशतितमे वैक्रमसंवत्सरे शुभवासरेऽसितदले माघमासीयचतुर्थीतिथौ साक्षान्नारायणप्रसादमिव सत्यनारायणनामानं पुण्यलक्षणसमन्वितं पुत्ररत्नमलभत। निखिलनयनानन्दनोऽयं वलभद्रनन्दनः शैशवेऽपि प्रतिभया सकलजनमानसानि प्रसभं जहार। दर्शकानां चेतसि चमत्कृतिमतनोत्। दधार धार्मिकताम्। अकरोत् शौचाचारान्। निनाय चायं बाललीलाभिः पितरावानन्दयन् हायनानि चत्वारि। पञ्चमवर्षारम्भ एव वसन्तपञ्चमीतिथौ पिताऽध्ययनयोग्यमिमं ज्ञात्वा दशाश्वमेधान्नातिदूरस्थितायां शिशुपाठशालायां पण्डितरामसुमेरशर्मसमीपमनयत्। तदीयसविधे कारिताक्षरारम्भश्च पिता प्रतिदिनमेनं पाठशालां प्रति प्रेषयतिस्म। कतिचिद्दिनानि साधारणबालकमिवेममाकलय्य उपाध्यायः नकिंचिदप्यपाठयत्। अयमपि शान्तस्वान्ततया किंचिदपि गुरुं नाप्राक्षीत्। एकादाऽस्य सरलतया सौम्यतया च स्वभावत एव आकृष्टो गुरुरक्षराण्यशिक्षयत्। अयं तु शीघ्रग्राहिण्या स्वबुद्ध्या समस्तानि तान्येकस्मिन्नेव दिने संजज्ञे। अपरस्मिन्नहनि उपाध्यायात् ककारोपरि मात्रासंयोजनं ज्ञात्वा समग्रवर्णोपरि ताः संयोज्य गुरवेऽदर्शयत्। अशिक्षितोऽपि तासां शुद्धोच्चारणमपि व्यधात्। तेन परमप्रीतो गुरुरेनमितरजनसविधे विकस्वरैः स्वरैः प्रशशंस। सर्वेषां च सतीर्थ्यानामादर्शत्वे न्ययोजयत्। एकस्मिन्नेव वर्षे तस्यां पाठशालायां पञ्चकक्षाः सर्वप्रथमोपस्थितोऽयमुत्ततार। एवमेवोत्तीर्णसप्तकक्षोऽयं पण्डितजयमङ्गल-

ज्योतिर्विदः सन्निधौ संस्कृतविद्यारम्भाय ययौ । तत्र च त्रिभिरेव मासैः अमरकोषस्य काण्डद्वयं सम्यगभ्यस्तवान्। अनयैव रीत्या तत्तद्विद्वत्सकाशात् समाप्य सकलप्राथमिकग्रन्थान् गोपालमन्दिरे पं० रामशास्त्रि समीपे एक वर्षं यावदधीत्य पण्डित नागेश्वर पन्त धर्माधिकारितः समग्रां सिद्धान्तकौमुदीमध्यगीष्ट ।

व्याकरणशास्त्रस्य प्रौढ़ं पाण्डित्यमासादयितुं पण्डितप्रकाण्ड श्रीगङ्गाधर शास्त्रि समीपे सकलं शेखरं भूषणं चाधीत्य स्वनामप्रसिद्ध पण्डितशिवकुमारशास्त्रितो महाभाष्यं व्युत्पत्तिवादप्रधानानन्यांश्च निबन्धानध्यजीगपत् । अयं गुरुषु देवतासु च दृढ़ां भक्तिं भेजे । दशाश्वमेध तीर्थं प्रसाधयन्त्याः श्रीकालीदेव्या अयं परमोपासक आसीत् । देवतार्चनप्रक्षीणकल्मषोऽयमेकदा प्रभातप्रायायां यामिन्यां स्वप्ने साक्षाद्भगवतीं कालीं ददर्श । चकितचेताश्चायं किंचिद्ब्रुवाणां तां शुश्राव ।

:वत्स ! अधीष्व सकललोकोपकारकमायुर्वेदम् । विधेहि ममप्रसादात्त्वरितमेव समवाप्तपाण्डित्यः विश्वकल्याणम् । उपार्जय पुण्यमार्तजनचिकित्सया । लभस्व च स्पृहणीयमविनाशि यशः । अयं तन्नूनं देवताप्रसादं भाग्योदयमिव मन्यमानस्तस्मादेव वासरात्परित्यक्तान्यकार्यः धर्मदास कविराज सकाशादाशुतरमेव चरकसुश्रुतादीन् सकलानायुर्वेदग्रन्थान् समधिजगे । लब्धवांश्च शीघ्रमेव नाडीविज्ञाने, निदाने, औषधिनिर्माणे च परमं पाण्डित्यम् ।

प्राक्तनैर्नूतनैश्च वैद्यैरसाध्यप्रतीकारतया परित्यक्तान् क्षेत्रियत्वेनोद्घोषितान् राजरोगानयं चतुर्दशहायनानि अविचिकित्सतमचिकित्सत । सफलतां च प्रापत् । अथ तीर्थराजीयधनिकश्रेष्ठं माधवप्रसादं चिकित्समानमेनं तत्रावेक्ष्यात्र च पं० श्री म० म० प्रभुदत्त महोदयादि पं० प्रवरैः पं० श्रीरघुनन्दनजी प्रमुखैर्भिषग्भिस्तोष्टूयमानम् गुणगणप्रवणीकृतहृदयेन तत्रत्यायुर्वेदमहाविद्यालयेऽध्यापनाय नियुक्तः कतिभिश्चिद्वर्षैः सर्वजनस्वान्तानि सन्तोषयंस्तत्रैव पाठयति । विदधाति च चिकित्सया सकललोकानामुपकारम् । विशेषतो दुर्विधानाम् । साम्प्रतञ्चनिखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनस्योपसभापतित्वमलङ्कुरुते यत्रवितनोति च परमप्रगाढपाण्डित्यो द्योतकम्पदार्थविज्ञानाभिधोग्रन्थोऽस्य कानिचिदंशानि वि० वि० छात्रैरधीयत एवातो न तद्वृत्तमस्ति तिरोहितम् ।

देवतासु बद्धश्रद्धो विद्यते ।

किं बहुना अयं श्रीमान् सत्यनारायणः वपुषि सुकुमारो वाचिगुरुः भूसुराणां गणेशः गौरीभूतकान्तिः लोकानांमृडः दुर्विधानां धनदः चिकित्सया लोकपालः शिष्याणां पाकशासनः गुरुषु वामनः सत्यं सर्वदेवमयस्य भगवतो नारायणस्यानुकरोति । अयं विश्वनाथकृपया लप्स्यते निर्मलमुपचीयमानं च यशः प्रतिदिनं द्विगुणिताञ्चोन्नतिम् , इति विनिश्चिन्वन्ति विपश्चित इति ।

श्रीबालकृष्ण मिश्रः

का० हिं० वि० वेदान्तशास्त्र प्र० ध्या०

स्वर्गीय रसायनाचार्य श्री० श्यामसुन्दराचार्य, वैश्य, काशी।

लेखक—रसायनसार, अनुपान विधि।

रसायनाचार्य श्यामसुन्दराचार्य वैश्य का

संक्षिप्त परिचय।

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्यामसुन्दराचार्य जी एक अद्भुत, उद्योगी, उत्साही, कर्तव्यशील विद्वान् थे। इनका जन्म सम्वत् १९२८ अधिक भाद्रपद कृष्ण प्रतिपद गुरुवार को भरतपुर स्टेट के सुप्रसिद्ध कामवन नामक स्थान में हुआ था। आप रामानुज-सम्प्रदाय के वैश्य थे। आप प्रारम्भ से ही संस्कृत-प्रेमी थे। आपने युवावस्था में काशी आकर तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महामहोपाध्याय राममिश्र शास्त्री जी महाराज से व्याकरण, साहित्य तथा रामानुज-दर्शनों का अध्ययन किया। सुप्रसिद्ध नैयायिक शिरोमणि गौतमावतार पं० सीताराम शास्त्री जी से नव्य न्याय और हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष महामहोपाध्याय स्वर्गीय अम्बादास शास्त्री जी से जैन दर्शनों का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त म० म० शिवकुमार शास्त्री; म० म० गङ्गाधर शास्त्री जी आदि महाविद्वानों से भी आप खास-खास महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन करके जैन पाठशाला में जैन दर्शनों के अध्यापक नियुक्त हुए। जैन समाज में आपकी अतिशय प्रसिद्धि थी—आपको अनेकानेक उपाधियाँ और प्रशंसा पत्र प्राप्त हुए हैं। इधर इन शास्त्रों के विद्वान् होकर आपने आयुर्वेद का क्रिया के साथ अध्ययन प्रारम्भ किया। तत्कालीन धन्वन्तरिकल्प विद्वान् स्वर्गीय अर्जुन मिश्र जी से आपने आयुर्वेद पढ़ा।

आप इतने विषयों का अध्ययन और अध्यापन करने के साथ-साथ पारद के शोधन और चन्द्रोदय-निर्माण के लिये गम्भीर अन्वेषण करते जा रहे थे। आपने अपने कमाई का अधिक अंश और जीवन के अन्तिम अनेक वर्ष इसी में लगा दिये और सबका अन्तिम फल स्वरूप रसायन-सार नामक ग्रन्थ लिखा। इस युग में यह पुस्तक अद्वितीय है। और अन्त में आप इस सम्बन्ध में इतने प्रसिद्ध और प्रामाणिक समझे गये कि जब १९१८ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का आरम्भ हुआ उस समय आप प्राच्य-रसायनशास्त्र के प्रधान अध्यापक नियुक्त हुए। इसी वर्ष की १६वीं जुलाई को जिस दिन हिन्दू विश्वविद्यालय का उद्घाटन था आप अध्यापन के लिये आते, लेकिन २६ मई १९१८ रविवार को आप काशी-वास कर गये।

आप बड़े ही प्रभावशाली व्यक्ति थे। भाषण और लेखन में तो प्रौढ़ थे ही—शास्त्रार्थ विचार में भी आपको अधिक आनन्द आया करता था। सदा आप किसी न किसी विषय पर आलोचना करते ही देखे जाते थे। स्वर्गीय काशीनरेश, राजा माधोलाल, डा० वेनिस आदि के साथ आपकी गाढ़ी मित्रता थी। आप एक युगान्तरकारी विद्वान् थे।

आपने पारद के शोधन करने और उसके द्वारा बनाए जाने वाले चन्द्रोदय आदि रसों के सम्बन्ध में जो अन्वेषण और आविष्कार किये हैं वे इस युग के लिये एक नवीन वस्तु है। इस समय इतना धैर्य और गाम्भीर्य कम लोगों में देखा जाता है। वे धुन के पक्के प्राचीन आदर्शवादी ठोस विद्वान् थे—यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह महत्वपूर्ण है।

आपने अनुपान विधि नामक एक और पुस्तक लिखी है—इसीमें आपने कुछ अनुभूत योग भी लिखे हैं। इतना सब होने पर आप बड़े ही सहृदय और विनोदप्रिय व्यक्ति थे।

आपके परिवार में पुत्र सन्तान न थी, इसलिये आपके उत्तराधिकारी आपके दौहित्र बाबू उमेदीलाल वैश्य बड़े ही उत्साही नवयुवक हैं। आपने रसायनसार ग्रन्थ का तीसरा संस्करण अनेक सुधारों के साथ प्रकाशित किया है। उनकी स्मृति में उन्होंने श्यामसुन्दर रसायनशाला भी स्थापित की है, जिसमें उनकी बनाई हुई औषधियों का संग्रह किया गया है।

श्री केदारनाथ शर्म्मा, सारस्वत।

अहमदाबादे २५ तमे नि० भा० वैद्यसम्मेलने नूतनव्याधिविचारसंभाषा-परिषदस्सभापतेः

श्री वैद्य पण्डित कन्हैयालाल शर्मायुर्वेदाचार्यस्य

अभिभाषणम्

शरदिन्दुसुन्दररुचिश्चेतसि सा मे गिरां देवी।
अपहृत्य तमः सन्ततमखिलानर्थान् प्रकाशयतु ॥ १ ॥

अयि श्रीमन्तो महाशयाः सभास्तारा भिषङ्मणयः निखिलजनभेषजदानजनितमहनीयकीर्तयः पीयूषपाणयो वैद्यमहाभागाः, निखिलशास्त्रपारङ्गतानां सुभिषग्वरेण्यानां मत्तोऽपि विद्यया वयसा च वृद्धानां तत्रभवतां भवतां पुरस्तान्नूतनव्याधिविचारसंभाषापरिषत्सदृशे प्राच्यप्रतीच्योभयविज्ञानशालिभिर्विवेचनीयेऽतिगहने विषये जिह्वाचापल्यययुतस्य मे श्लघीभवति समुत्साहः पीठमेतदधिकर्तुम्। यतो नाहं नूतनविज्ञानोन्मेषविकसन्मतिविभवो नच प्राच्यायुर्वेदपारदृश्वा, येन सहृदयानां परमविदुषां तत्रभवतां भवतां मनःसन्तोषकरं किमपि वक्तुं प्रभवेयम्। किन्तु श्रीमतां पण्डितप्रकाण्डानां भिषङ्मूर्धन्यानां श्रीगुरुवर्यमहाभागानांचरणपरिचर्यया यान् कांश्चिदायुर्वेदविज्ञानकणान् समचैषं तानेव श्रीमतां पुर उपाहर्तुं प्रयतस्य मेनिवेदनम्।

विदितमस्तु तत्रभवतां भवतां विपश्चितां यदिदं निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनं पंचविंशतिवर्षं प्रविशत् सतां हृदयाह्लादकं प्रस्तुतमास्ते।

तावति काले बहुतिथे सम्पन्ने नवनवाविष्कारानुत्तरोत्तरं प्रकटीचक्रुः पूर्वाण्यंधिवेशनानि।

नासिकवैद्यसम्मेलनादारभ्य यदनेन साकं सम्भाषापरिषदामधिवेशनं चेक्रियते, एतदेकमायुर्वेदस्योन्नतिसम्पादकं लक्ष्म दरीदृश्यते।

भूयसां भूतपूर्वाणां तथा सांप्रतं विदेशं बहुकालं संसेव्य समागतानां तदनुयायिनां चान्येषां भारतीयानां विदुषामिदं मतमस्ति—यद् भारतवर्षं सम्पूर्णविद्याभिः परिपूर्णमासीत्, परन्तु तत्र विज्ञानं (साइन्स) नासीत्।

एतदुत्तरमस्माभिरुद्घोष्यते—यदायुर्वेदशास्त्रं विज्ञान (साइन्स) पूर्णमस्ति नात्र विसंवादः।

आयुर्वेदशास्त्रस्यैकं प्रधानमङ्गं रसायनशास्त्र—(केमिष्ट्री) मपि पुरा पूर्णमासीत्। इदं तदानीन्तनपुस्तकावलोकनेन स्पष्टं प्रतीयते।

संशोधन (अन्वेषण) शक्तेश्च विज्ञानप्रगतेर्महन्निदानत्वे न कोऽपि संशयः।

अन्यच्च—प्राचीनभारतीयायुर्वेदः, तज्जातीयरसायनशास्त्रादि, एतदुभयसंवलितकार्यं महदुच्चपदं प्रतिष्ठां लेभे। तदनुक्रमेणान्वेषणसंशोधनक्रियाद्वारेण निर्मितेषु ग्रन्थेषु ततोऽप्यधिकामुन्नतिमाससाद।

यस्या विद्याया प्रजासु राजसु च भूयानादरः, यया च जगदाभ्युदयिकपथसिद्धिः, सैव विद्या लोकेषु समर्हणीया भवतीति निश्चयः।

भारतेऽस्मिन्नायुर्वेदसमुन्नतिः तावत्पर्यन्तं समभूत्—यावद्राज्यतन्त्रं भारतीयानां राज्ञामेव वश्यमभूत्—अन्यथा वैदेशिकसत्तया नैजमाधिपत्यं न स्थापितम्।

यदा प्रभृति विविध-कला-कलाप-चातुरीचणं भारतं यवनानां हस्ते पतितं गोरण्डादीनां च प्रबलया सत्तया तदीयविद्याया भूयस्त्वेन प्रचारः कृतस्तदाप्रभृत्यायुर्वेदप्रगतिः शैथिल्यं प्राप। भारतीयानि च तक्षशिलानालन्दादिस्थानि विद्यापीठानि कथाशेषतां जग्मुः। लेखनकार्यञ्चास्तमितम्। आयुर्वेदनिर्मातृभिर्महर्षिभिर्ये सिद्धान्ताः स्थापिताः, बहुषु रोगेषु च विचारः कृतः, तेषां पौर्वापर्यसङ्गतिपुरस्सरं भावसंवेदनमप्याधुनिकैर्दुश्शकं, नैषा न्यूनताऽऽयुर्वेदशास्त्रस्य? परं तन्निर्मातृणामेवौत्कृष्ट्यम्। ये च विद्वांस आयुर्वेदशास्त्रं न मन्यन्ते गर्हयन्ति च तेषु कैर्निजशास्त्र रहस्यं पाश्चात्य हृदयङ्गमं कृतं? कैश्चायुर्वेदन्यूनतायां नैजसिद्धान्ताटोपः प्रकटीकृतः। इत्याहोपुरुषिका मात्रमेतत्। कस्यापि वस्तुनो रहस्यमबुद्ध्वा कमपि विषयं निन्दितुं कथं रसना प्रसरति—इति मे महत्कौतुकम्। प्रत्युत पक्षपात एव जागर्ति।

अमुष्यां परिषदि प्रश्नद्वयं व्यवतिष्ठते—प्रथमं नूतना व्याधयः प्रत्नाश्च व्याधयः; तथाऽऽयुर्वेदशास्त्रकृद्भिः कोऽपि विमर्शोऽकारि नवा, तद्विषये ग्रन्था निरमायिषत, नवा? एतदुत्तरमेतदेव—यत्—अन्यासां विद्यानां बहुधा विलोपश्चक्षुर्गोचरस्तथैवास्यापि, कुत्रचित्स्याच्चेदनुपलम्भ इति वा।

अन्यच्च प्रचलिता अवशिष्टा ये ग्रन्था दृष्टिपथं पथिकायन्ते-तेषु अनेकव्याधीनां चिकित्सा प्रदर्शिता; तत्स्वरूपं पूर्णतयाऽवगम्यते नवा, अर्थाद् ये रोगाः प्रत्यग्रा इति मन्यन्ते, तेषु केषांचिद्रोगाणां यदि नष्टग्रन्थेषु विचारः, हस्तगतग्रन्थेष्वपि संदिग्धव्याधीनां मध्ये अल्पीयसां व्याधीनां (यान् वयं नवीनत्वेनोद्धोषयामः) वर्णनं स्यात्, तान् सर्वथा नूतनव्याधित्वेन स्वीकरणं भ्रममूलकम्।

केषुचिद् देशेषु काचिद् विद्या प्रस्त्रियमाणा तद्देशस्य मूलनिदानभूताऽस्ति, बीभत्सव्याधेर्निराकरणमपि शोधकैः संशोधितं भवेदित्युन्नेतुं शक्यते, अन्यदेशीयैस्तदुपायस्याज्ञाततत्वमपि समर्थयितुं शक्यते।

यथा सर्पदंशस्याकस्मिको व्याधिस्तच्चिकित्सा च आयुर्वेदीयग्रन्थेषु समुपलभ्यते, केचिदाचक्षते-एतच्चिकित्साकरणमपार्थम्। परन्तु सहस्रद्वयवर्षेभ्यः पूर्वं यदा ग्रीकदेशीयैरमुष्मिन् देशे प्रसह्याक्रामि तदा भारतीयाः सर्पदंशचिकित्सां कर्तुमशकन् ग्रीकचिकित्सका निष्फलप्रयत्ना अभूवन्। स्पष्टं चेदमितिहासेषु।

येषु दिवसेषु ग्रीकदेशनिवासिनां संपत्तिर्महदुच्चपदं प्रापत्। एतेन लेखेन यदिदं सिद्धंप्रायस्तेषुतेषु देशेषु-आयुर्वेदमूलं तत्रत्यपरिस्थितिमनुरुध्य प्रवर्तितमासीत्। तेन वैदेशिकानां तद्व्याधिपरिज्ञानं विना तदीयचिकित्साज्ञानं न न्यूनतासम्पादकम्। परन्तु-अगत्यास्वीकर्तव्यमेवैतत्-यदाभ्यन्तरराष्ट्रदृष्ट्याएवंविधचिकित्सावेत्तृणां चिकित्सकानां दृष्ट्या तादृशव्याधीनां नवीनत्वं सिद्धमेव।

प्राचीनकालिकेतिहासादद्यदिवसपर्यन्तं विचार्यमाणे स्पष्टं प्रतीयते यद् भिन्नदेशीयानां सम्बन्धोऽन्योन्यं सम्बन्धः सुसंघटितश्चासीत्।

अन्यच्च भारते आंग्लदेशीयसत्तया विशेषतो घनिष्ठः सम्बन्ध इति निर्विवादम्। एता-

वताऽन्यदेशीयविलक्षणरोगाणामाक्रमणं संपर्कतो भारतेऽवश्यमेवाभूत्। तेनैव सांक्रामिकरोगाणामाविर्भावो भूयान् लक्ष्यते।

जीवनस्य नूतनपरिस्थितौ संसारपरिवर्तनपरिणामादेवंविधनूतनरोगाणामाविर्भावो नासंभवी। यतो युगप्रभावाद् बहुशो रोगाणामाविर्भावे बहव उपप्लवाः समजायन्त।

प्रकृतिरनवच्छेद्या निरवधिश्च। प्रकृतेर्विकृतयो रोगाः। विकृतीनामानन्त्यादभिनवरोगाणामाविर्भावो न विस्मयावहः।

अस्मदीयप्राचीनायुर्वेदवैज्ञानिकैर्दीर्घदृष्टया प्रकृतेर्विकृतं स्वरूपं यथाशक्यं परिज्ञातुं बहु प्रयतितम्। तद्व्याधीनामुल्लेखोऽद्यत्वेऽपि तेषु तेषु ग्रन्थेषूपलभ्यते। तद्दृष्टया नूतनव्याधीनामन्वेषणकरणाद् यदि व्याधयो नूतनाः स्थिरीभवन्ति—चेद् हतं ! हता प्राचीनविद्वत्ताया गौरवम्। प्रचलितनूतनरोगाणां भारतीयायुर्वेदीयपद्धतिः प्रशमनं तत्तौल्यञ्च कर्तुमनीशाना स्यात्तदा नूतनत्वमपि कथयितुं चेतो मन्थरं भवति।

यतो मया बहुदशः प्रदर्शितं—यत्प्राचीनपरम्परागतविज्ञानं बहुधा नष्टभूतम्। यावच्च नष्टप्रायज्ञानस्य भाव्यन्वेषणं न क्रियेत तावन्नूतनत्वेनाभिमन्यमानां व्याधीनां मदीयवक्तव्यविषयेऽमुमेव सिद्धान्तमाश्रणीयं मन्ये।

नवीनव्याधीनां विचारक्षेत्रे प्राधान्यमायुर्वेदस्यैवेत्यत्र नास्ति संशयः।

रोगोत्पत्तिलक्षणचिकित्सादिषु केवलं पाश्चात्यमतमवलोक्यायुर्वेदस्योपेक्षां विधाय नवीनव्याधीनां नामधेयोट्टङ्कनं सर्वथा न समुत्सहे।

पाश्चात्यविद्वांसः नूतनव्याधीनामुत्पत्तिकारणगवेषणे तथा लीनाः सफलप्रयत्नवन्तश्च, तावन्तएव चिकित्साक्षेत्रेऽपटीयांशो विद्यन्ते। अस्मदीयचिकित्सापद्धतिः - वानस्पत्यखनिजा—द्यौषधिक्षेत्रेऽशेषे कोषे एतावती समृद्धा विद्यते, यदि एतदन्वेषणमनुभवद्वारा क्रियेत तदा पाश्चात्यविदुषां न्यूनतापर्याप्तिरल्पैर्बहुभिश्चांशैः कर्तुं न पारयामः, इति कदाऽपि मानयितुं न शक्नुमः। नूतनव्याधिविचारसम्भाषापरिदः—आयुर्वेदमहासम्मेलने प्रथमस्थापनमायुर्वेदप्रगतेः पुनरारम्भचिह्नं समर्थये। परन्तु यावद् भारतीयपद्धतेः प्राधान्येन समादरस्तावत्तद् वैशिष्ठ्यं स्थास्यति। नवीनव्याधीनामन्वेषणक्षेत्रे पाश्चात्यसिद्धान्तानामनुसरणेनायुर्वेदनैष्फल्यमस्वीकुर्वन्तोऽस्मदीयचिकित्साप्रणालिकया विज्ञानशास्त्रे वयमपि कमप्यंशं ग्रहीष्यामोऽमुना प्रयत्नेनाऽस्मिन् जगतीतले वैदुष्यभाजां मनीषिणां पुरत आयुर्वेदविजयध्वजिनी विस्फुरिष्यति।

एतस्यां परिषदि आगामिनीषु समस्यासु अस्मदीयकर्त्तव्यमेतदेव विद्यते यदन्वेषणपरया स्वतन्त्रदृष्ट्या नूतनव्याधीनामन्वेषणं भारतीयसिद्धान्ताननुसृत्य क्रियेत तदा विपुलेऽस्मिन्नौषधीक्षेत्रे उपचाराणां गवेषणमपि क्रियतां सर्वैर्विपश्चिद्भिरिति मे नम्रनिवेदनम्।

आर्यमिश्राः !

परिवर्तनशीले संसारे समस्तमपि वस्तुजातं विनिमयते–स्वातंत्र्यादस्वातंत्र्यं, निर्धनात्, संपच्छालित्वमोजस्विता च संलक्ष्यते। एतस्माद् दुःखसमूहाद् भारतवर्षमपि पृथग् गणयितुं न शक्यते। यतोऽत्र स्वातंत्र्यस्थाने पारतंत्र्यं व्यवस्थितम्, एतच्च पारतंत्र्यं निर्धनत्वं पश्चात्यसभ्यता च भारवर्षेणाप्यंगीकृता यतः परिणतिरीदृशी जाता–यया नैजमाचारविचारादि दूरे विहाय स्वकीयमर्यादोल्लंघनाद् विविधा रोगाः प्रादुर्भवन्ति।

तथा च यथामति सम्प्रति श्रूयमाणानां नूतानां व्याधीनां विषये कांश्चिन्मुख्यव्याधीनादिश्य धीधनानां तत्रभवतां भवतां पुरःस्थापयितुं यथाप्राप्तायुर्वेदानुसारं प्रयतिष्ये।

प्रकृतेर्व्याधिशब्दार्थः

शरीरमनसोर्दुःखाय ये आभ्यन्तरहेतुजाताः, बाह्यहेतुजाता वा संयोगास्ते सामान्यतो व्याधिशब्देनोच्यन्ते—"तद्दुःखसंयोगा व्याधयः" इति सुश्रुतः—

धातुस्थूणाक्तवैषम्य तद्दुखं व्याधिसंज्ञकम् ।

—काश्यपसंहिता ।

प्रकृतेर्नूतनशब्दार्थश्चः—

येषां संहितादिग्रन्थेषूल्लेखो नास्ति ये चादृष्टदेशकालाहारविहारादिभिः परिणताः सन्तो विलुप्ताः समवलोक्यन्ते अन्येषु वा रूपान्तरमधिगताः, यथा—पुरा यद्भोजनं कदाचिदेवोपयुक्ततां नीतं तन्नियतरूपेण साम्प्रतं क्रियते, तेन चानेके व्याधयोऽवलोक्यन्ते, तेऽपि व्याधयो नूतनपदेन व्यवहर्तव्याः स्युः । ये च व्याधयः स्वस्वरूपं विहायान्यरोगेषु सम्मिलिताः, रोगः स एव दृश्यते—किन्तु स्वरूपविपर्यासेन नूतनत्वेन प्रतीयते यथा—निदानग्रन्थेषु सन्निपातज्वरादिविषये, 'कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्' इति न प्राप्यते ; अपवादरूपेण क्वचिदुपलम्भः स्यादिति त्वन्यदेतत् । यद्यप्यत्रास्माकीन एव दोषः—चरकोक्तत्रिदोषज्वरानुपलक्ष्य त्रिदोषे विशेषतो गूढनिरीक्षणं न कुर्मः । एवं सति न केऽपि व्याधयो नूतनाः स्युः । येऽन्यत्र नवीनरूपेण समुत्पन्ना व्याधयः प्राचीना एव, तेस्वपि विरुद्धं परिणतं तल्लक्षणम्—कांश्चिद्व्याधीञ्छास्त्रनिर्दिष्टान् , तान् वयं नव्यत्वेन व्यपदेष्टुं शक्नुमः शास्त्रलक्षणलक्षितानपि व्याधीन् पूर्णतया ज्ञातुं नाधीष्महे । सर्वेऽपि पदार्थाः स्वरूपेणाविर्भवन्तस्तिरोभवन्तश्च सत्कार्यवादसिद्धान्तेन समवस्थिता एव, किन्तु तानेव व्याधीन्नव्यान् वक्ष्यामः यान् वयं न दृष्टवन्तः, आयुर्वेदग्रन्थेषु येषां वर्णनं नास्ति, यथा—अतिनिद्रा रोगः अफ्रिकाप्रदेशे बहुशोऽवलोकितः, साम्प्रतं भारतेऽपि आयास्यति चेत्तमपि रोगं नूतनत्वेन कल्पयिष्यामः ।

यश्च प्लेगाख्यो रोगो भारते नासीत् , प्राथमिकागमने नूतनो जातः, अद्य भारतीया आबालवृद्धाः सर्वेपि परिचिताः, इदानीं नूतनं किमपि नास्ति ।

यद्येप्येतस्य वर्णनं युनानीचिकित्सायां 'ताउन' नाम्ना विद्यते, तथापि सम्प्रति सुप्रथित एव ।

नानाविधकारणैरसंख्येयरोगाणामाविर्भावः, तथाच काश्यपसंहिता "ज्ञेया रोगा असंख्येयाश्चिकित्सानां च विस्तरात्" इति । बलप्रवृत्तिभेदेन सुश्रुते सप्तभेदा अपि निर्दिष्टाः ।

अत्र चैवं व्याधीनामानन्त्ये ज्ञेयतमाः नूतनाः केचिद्व्याधयोऽवश्यं ज्ञातव्या यथाक्रमं व्यवस्थापयितव्याश्च । तथाच भगवान् चरकः

"व्यवस्थाकरणं तेषां यथा स्थूलेषु संग्रहः" अथ प्राचांचापि वचः—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥"

नियतपरिवृत्तिशीले जगति नियमेन ध्रुवसंस्थानलक्षणास्तथाविधा एव व्याधयः सदा वर्त्तयितुमशक्याः सन्ति ।

अतएव सुश्रुतोऽपि—

"अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥"

अतश्च नेदं लज्जास्पदं—यदस्मदीयसंहितायामपि केषाञ्चिद् रोगाणां लक्षणादीनि न लभ्भेरन् ।

किञ्च अज्ञातापरिचितनूतनव्याधिलक्षणविशेषो वैद्यः, अभिनवव्याधिष्वपरिज्ञातव्याधिलक्षणसादृश्याऽसादृश्यावलोकनात् संशयमापन्नो न वा प्रभवेद् रुजः प्रतिकर्तुं हन्याद् रोगिणं त्वरया चिकित्सया ।

यथा—आन्त्रिकाख्ये सन्निपातज्वरे द्वितीये तृतीये वा सप्ताहेऽकस्मात् जनिष्यमाणं रक्तस्रावं च ।

तथा च चरकः—

"तस्माद् विकारप्रकृतीरधिष्ठानान्तराणि च ।
समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत् ॥"

सम्प्रति नूतनानां व्याधीनां मध्ये कांश्चिद् व्याधीनुद्दिश्य तत्र विचाराः प्रकटीक्रियन्ते—

रक्ताधिक्यरोगः (हाइ ब्लडप्रेसर)

परिचयः—

रक्तं हि कियता प्रवाहेण शुद्धरक्तवाहिन्या धमन्या गच्छति एतद्बोधनं यत्र भवति सोऽयं 'ब्लडप्रेसर'-नामको रोगः ।

नाडीपरीक्षाविशेषज्ञाः, नाड़ीपरीक्षयाऽपि ज्ञातुं शक्ताः सन्ति । किन्तु सम्प्रति एतस्य परीक्षायां भुजे "स्फिगनोमीटर" यन्त्रबन्धन द्वारा रुधिरगतिः प्रत्येतुं शक्यते ।

वयोरूपकारणेन रोगाणाञ्च हेतोर्भिन्नभिन्नौषधिद्वारा भेदभावः सञ्चार्यते ।

तद्यथा—

वयः—	हृदयस्य संकोचावस्थायां	विस्तृतौ
२१ से ३०	१२३॥	८२॥
३१ से ४०	१२५॥	८४
४१ से ५०	१३०	८६
५१ से ६०	१३३॥	८९

स्त्रीषु वालेषु च न्यूनतां क्रमेण भजते 'ब्लडप्रेसरः' ।

कारणञ्चात्र—

पुरुषेष्वधिकविस्तृतिः भोजनपानादिना आहारविहारेष्वनियतपरिवर्तनादिना जायते । यथा विशुद्धस्य समीरणस्यालाभः, शरीराभ्यन्तरेऽपक्वमलस्य निर्गमनादृते वह्निमान्द्यं, महतितूलासनोपवेशनेनापाचनम् , जीर्णव्याधयः, मधुमेह—नागदोष—सगर्भावस्थाप्रभृतयः ।

मानसिकहेतवः—

मनोवृत्तेश्चाञ्चल्यं हृदये महराऽऽघातः, अविश्रान्तं मानसिककार्यम् , अधिकव्यायामकरणम् , अतिभोजनं, रुधिरवृद्धिश्च इत्यादि ।

लक्षणम्—शिरोऽर्तिः (शिरोमध्यभागे पश्चिमास्थिषु च वेदना), श्रमश्च शिरसि, चेतस औदासीन्यं, विषयेच्छाविरतिः, किमपि स्वल्पमप्याचरतः श्वासवृद्धिः, रोगिणो निजश्वासवृद्धेः स्वानुभवः, अनिद्रा, घोणातो रक्तस्रावः, हृदि वेदना, करचरणादिषु शून्यत्वं, व्यापाराविमुखत्वम् ।

प्रदर्शितलक्षणानां बालेषु न प्रादुर्भावः। ये बयसा चत्वारिंशद्देशीयास्तेषु परीक्षाकरणेनाधोलिखितानि लिङ्गान्युपलभ्यन्ते।

१ बहुरुधिरसम्भृतानाड़ी (हाईप्रेसरपल्स. High pressur, pulse.)

२ हृदयप्रदेशे बृहद्धमनी, (एवोर्टा. Aorta) वृद्धिङ्गता भवति हृदयादधःप्रदेशे. 'वामनिलय' (एपेक्ष Apex.) ध्वनेर्द्वैगुण्यम्।

अन्ते हृदयस्य विस्तारीभवनम्।

अमुष्य रोगस्यारम्भे कष्टं नानुभूयते, परन्तु पश्चाद् हृदयस्य धमनीनाञ्च पेशीतन्तूनां (Myocardium) विस्तृतिभवनं, वृद्धिङ्गताः पेशीतन्तवो दौर्बल्यं प्राप्नुवन्तः शैथिल्यं भजन्ते।

संभवत्येतेनावस्थाद्वयम्—आकस्मिको रक्तसंवहनक्रियावरोधः, मस्तिष्कधमनीत्रुटनं वा। तेन मूर्च्छा मृत्युर्वा संभवेत्; चक्षुषी त्रुटिता, अक्ष्णोर्दौर्बल्यं फुफ्फुसनासादन्तवेष्टेभ्यो रुधिस्रावः स्वाभाविक एव।

आयुर्वेद एतस्य रोगस्य विषये सन्तोषावहं न किमपि वचः समुपलभ्यते, किन्तु चरके—

"वातादयः प्रकुप्यन्ति शिरस्यस्रञ्च दुष्यति।
ततः शिरसि जायन्ते रोगा विविधलक्षणाः॥"

(च० अ० १७ श्लो० १६)

विविधदोषैः प्रकुपितमसृङ्नानाविधशिरोवेदनां जनयितुं क्षमते, एतच्चरकवचनानुसारादजीर्णमूलकवातपित्तयोर्विकृत्या ब्लडप्रेसरः संजायते। रुधिरसञ्चारो न केवलं शिरसि अपितु समस्तमङ्गं व्यश्नुते वायुर्विकुर्वन् रक्तेषु धावन् पित्तेन सह शिरोधमनीषु सिरासु च प्रवर्तमानः ब्लड्प्रेसरं जनयति, इत्यपि केषाञ्चिन्मतम्।

"कूर्चैर्विघट्टितानां रक्तोत्क्लेशोऽपनेतव्यः॥"

(चरक चि० अ० ७)

चत्वारिंशत्पैत्तिकविकारेषु च—शोणितोत्क्लेद इति च।

अत्रच—रक्तोत्क्लेश—शोणितोत्क्लेद—शब्दाभ्यांब्लडप्रेसरशब्दार्थ एव निष्पन्नो भवति। आ० मा०गुरुवर्य वैद्य श्रीहरिप्रपन्नजीमते रक्तोद्गम इतिनामास्ति।

म० म० कविराजश्रीगणनाथसेनमहोदया अपि प्रत्यक्षशारीरस्य तृतीयखण्डे षष्ठाध्याये पृष्ठ ७९ मस्तिष्कपार्श्वभाग-ऊर्ध्वाधश्छेदप्रकरणे इदञ्चात्र विशेषेणावधेयम् 'मस्तिष्कमूलिकधमनीचक्रसंभवानां मस्तिष्कपोषणीनां शाखाधमनीनां मध्ये "मध्यमा मस्तिष्कानुगा" नामधमनी (अन्तर्मातृको था) स्वप्रशाखाभिः राजिलपिंड प्रविष्टा। तस्या वार्द्धक्यादिहेतोर्भंगुरत्वाद् यदा आन्तरकूर्चवाल्लिकान्तस्तदुपकंठे वा तद्भङ्गकृतो रक्तस्रावः तदा सन्यासः पक्षवधश्च वामदक्षिणपार्श्वविपर्ययेन, वामतो रक्तस्रावे तु वाक्शक्तिलोपश्च, तत् क्षेत्रस्य सान्निध्यात्।

अत्रैव टिप्पण्यां धमनीत्रुटनं शरीरे रक्ताधिक्यादिहेतोः—(Through High Blood Pressure)

एतेनैतेषां महाभागानां मते हाईब्लडप्रेसरार्थे रक्ताधिक्यमिति पदम्।

एकोऽपरोऽपि ब्लडप्रेसरो भवति यस्य नाम "लो ब्लड प्रेसर" इति। यत्र मनुष्याणां हृदयं परिपतति, हृदयस्यास्वास्थ्यं निद्राच्छेदः ? इत्यादि भवन्ति, अस्य रोगस्य कृते भेदी न रुचिकरभूताः। मलावरोधेन रोगी प्रसीदति।

अयं हि नवीनो व्याधिः, प्राचीनो वा इति वैद्यसमाज एव विचारयतु नाम, चिकित्सा—आंग्लायुर्वेदे एतस्योपक्रमाय "पोटासआयोडाइड (Patassium lodide) प्रयोगो निर्दिष्टः। आयुर्वेददृष्ट्या गुग्गुल्लुप्रयोगः कर्तव्यः, गुग्गुलौ आयोडाइडस्य विद्यमानत्वात्। माणिक्यभस्म—शिलाजतु—महामञ्जिष्ठादिक्वाथ—आरोग्यवर्द्धनीनामपि प्रयोगः सुखावहः। आंग्लायुर्वेदेऽपि सुनिश्चितश्चिकित्सापन्था न विद्यते अतो वैद्यैश्चापि विशेषप्रतिपत्तये प्रयतितव्यम्।

फक्कः (रीकेट-बालशोषः)

एतस्य रोगस्य विषये पाश्चात्त्यैर्निर्दिष्टेन लक्षणादिना तु श्रीमन्तः परिचिता एव, अतोऽस्मिन् विषये आयुर्वेदे किमस्ति तन्निवेद्यते—

फक्कनिरूपणम्.

(काश्यपसंहिता वा वृद्धजीवकतन्त्रम्, फक्कचिकित्साध्यायः पृ. १०१)
(अयं हि आ. मा. श्रीयादवाचार्यमहाभागैः मुद्राप्यते सम्प्रति)

बालः संवत्सरापन्नः पादाभ्यां यो न गच्छति।
स फक्क इति विज्ञेयस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्। ३।
धात्री श्लैष्मिकदुग्धा तु फक्कदुग्धेति संज्ञिता।
तत्क्षीरपो बहुव्याधिः कार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्।
क्षीरजं गर्भजं चैव तृतीयं व्याधिसम्भवम्।
फक्कत्वं त्रिविधं प्रोक्तम्.........
गर्भिणीमातृकः क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात्।
क्षीयते म्रियते वाऽपि स फक्को गर्भपीडितः।
निजैरागन्तुभिश्चैव.........रो ज्वरादिभिः।
अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांसबलद्युतिः॥ १२॥
संशुष्कस्फिचबाहूरुर्महोदरशिरोमुखः।
पीताक्षो हृषिताङ्गश्च कृश्ययमानास्थिपञ्जरः॥ १३॥
प्रम्लानाधरकायश्च नित्यमूत्रपुरीषकृत्॥
निश्चेष्टाधरकायो वा पाणिजानुगमोऽपि वा॥ १४॥
दौर्बल्यान्मन्दचेष्टश्च मन्दत्वात् परिभूतकः।
मक्षिकाक्रिमिकीटानां गम्यश्चासन्नमृत्युरुक्॥ १५॥
विशीर्णहृष्टरोमा च स्तब्धरोमा महानखः।
दुर्गन्धी मलिनः क्रोधी फक्कः श्वसिति ताम्यति॥ १६॥
अतिविएमूत्रदूषिकाशिंघाणकमलोद्भवः।
इत्येतैः कारणैर्विद्याद् व्याधिजां फक्कतां शिशोः।

एतेन श्रीमन्तः परिचिता एव (रीकेटनाम्ना) यो बालरोगः स एवायमिति।

उत्फुल्लिका (न्यूमोनिया)

एष च रोगः पञ्चसप्तवर्षवयस्कबालं त्रासयति । विशेषतः सूतिकागृहे चिकित्साया अकारणान्निर्मूलतामनुभवन् शीतोष्णे व्याप्य पौनःपुन्येन सम्भवति । श्वासावरोधेनाकृष्यन्ते नाड्यः । उदरे गर्तः सञ्जायते, प्रसवस्थाने शुद्धवायूनां सञ्चाराभावादरिष्टगृहस्य संकोचाद्वा वस्त्राणां मालिन्याद्वा नालकर्तने यथोचितप्रबन्धाभावाच्च आहारादिदोषैर्वा सञ्जायमान एष रोगः, अन्यैश्च विविधैः कारणैः शीतोष्णे व्याप्नुतः ।

उष्णप्रकोपे न भयं भवति शीतत्वे च महद्भयम् । कर्हिचिद् बालानां अतिसारो विशेषतः संलक्ष्यते । मूत्रमपि बहुधा न सरति । नासिका शुष्का सती जलपानं रुणद्धि । उदरं भारायमाणं कठिनं वा, अयं हि आयुर्वेदे उत्फुल्लिका नाम्ना विद्यते—

घनाध्मानं निरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ।
उत्फुल्लकुक्षिर्भवति घनक्षीरस्य सेवनात् ।
उत्फुल्लिका सा विज्ञेया बालानामसुहारिणी ।
अयंश्लोकः "सिद्धभेषजमणिमालाया टिप्पण्यामस्ति ।
योगसुधानिधिः ।

सिद्धभेषजमणिमालाद्वारा चिकित्साऽधिगन्तव्या ।

वातबलासकज्वरः (बेरी बेरी)

अयं च आर्द्रशुष्कभेदेन द्विविधः ।
खाद्यौजःपदार्थानामभावेनैवायमुत्पद्यते रोगः ।

आर्द्रे—श्वासः, हृदयदक्षिणभागे विस्तृतिः क्षुण्मान्द्यं, नाड्याः प्रगतिः, तत्समये दृष्टिहीनता, आन्ध्यत्वं, दिने रात्रितोऽपि स्तोकप्रकाशदर्शनम् । शुष्के-शोथः दौर्बल्यं मणिबन्धस्य शून्यत्वम् ।

आयुर्वेदोक्त—वातबलासकज्वरेण सहैतस्य साम्यमस्ति ।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति ।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ इति ॥

उपसंहारः ।

पाश्चात्त्यमतानुसारं येषां रोगणामायुर्वेदे वर्णनं नास्ति त एव व्याधयः सम्प्रति नूतना व्यपदिश्यन्ते । किन्तु आयुर्वेदे एकस्मिन्नेव रोगप्रकरणे प्रायस्तत्सहयोगिसमस्तव्याधीनां परिचयो दृश्यते ।

१ यथा कासरोगः । नायमेक एव रोगः, अपि तु रोगसमूह (ग्रूप) रूपः । लैरिंजाइटिस, फैरिंजाइटिस, टौन्सिलाइटिस, न्यूमोनिया, ब्रोन्काइटिस, प्लूरसी—प्रभृतयो रोगास्तत्रैव निविशन्ते । येषु कसति शिरःकण्ठादूर्ध्वं गच्छति वायुरिति कासः कसनात् कास इति चरकोक्त्या च कसनप्रधानलक्षणास्ते सर्वे अत्रैव प्रविशन्ति ।

२ येषु व्याधिषु त्वचि विकृतिः समुदेति तान् रोगान् कुष्ठत्वेन त्वग्रोगत्वेन वा नाम्ना मन्यन्ते ।

३ आयुर्वेदवर्णितैककुष्ठरोग एव रकसामादाय—दद्रु, महाकुष्ठश्वित्राद्यनेकव्याधयः कुष्ठशब्देन वर्णिताः सन्ति ।

४ मूत्रे—बहुधा क्षाराणां विशेषरूपेण गमनं सुरामेह (फास्फेचूरिया Phosphaturia) सान्द्रमेह (म्युकस इन यूरिन Mucous in urine) वसामेह (अॅल्ब्युमिन्युरिया Albuminuria) शोणितमेह (हिमेच्युरिआ Hematurea) प्रभृतिनानाव्याधयः पाश्चात्त्यैर्भिन्नंभिन्नं निर्दिष्टाः किन्तु मूत्राभ्यन्तरे विकृतिः इति सामान्यलक्षणेन प्रमेहरोग एव सर्वेषामन्तर्भावः।

५ एवम्—उदरे प्रादुर्भवतां ग्रन्थि-अर्बुद "सिस्टाईटिस" गर्भाशयरोगाद्यनेकरोगाणां विहाय विद्रधि गुल्मरोग एव समावेशः कृतः ।

६ फुफ्फुसयोः—फुफ्फुसगत यक्ष्माणमन्तरा अन्यस्थानेष्वपि जनिष्यमाणाः ये "ट्युबरक्लोसिस (Tuberculosis) क्षयरोगाः गण्डमाला अपची अस्थिक्षय-सन्धिक्षयप्रभृतयः अस्थि-सन्धि-व्रणान्तर्गताः परिदृश्यन्ते ।

७ इत्थमेव—आयुर्वेदीयज्वरे विशेषतः सन्निपातज्वरे पाश्चात्त्यनये प्रथितानां टाईफाईड, टाइफस, स्कारलेट फीवरप्रभृति साङ्घातिकज्वराणामन्तर्भावः ।

८ पाश्चात्त्यस्वीकृतानां बहुविधानां व्याधीनां क्षुद्ररोगाधिकारे समुपलब्धिः ।

वस्तुतो भारते समुत्पन्नरोगाणामायुर्वेदे स्थानं दरीदृश्यते । परम्—आयुर्वेदवर्गीकरणपद्धतिः पाश्चात्त्यवर्गीकरणपद्धतिश्च मिथो भिन्ना; अतश्चायुर्वेदे—अनेकरोगाणामप्राप्तिरिति भ्रमः समुपजायते । आयुर्वेदीयसंहिताग्रन्था नष्टा एव । टीकाग्रन्थेषु वर्तमानोपलब्धखण्डितवृद्धजीवकतंत्रे च निर्दिष्टफक्कादिरोगवर्णनेन वा निश्चितं भवति यदार्यायुर्वेदे सर्व एव व्याधयो न्यूनाधिकभावेन वर्णिताः सन्तीति ।

अस्माकमायुर्वेदे—अवर्णितानां केषांचिद् बहिर्भागागतव्याधीनामपि ग्रहणं समुचितम् । आयुर्वेदे—वातिक—पैत्तिक—श्लैष्मिकरोगाः सन्ति, तेषु—हृद्रोगस्य विशेषावस्था "पलिपटेशन आफ दि हार्ट" Palpitation of the Heart वातविकारे हृद्द्रवनाम्ना गृहीताऽस्ति । श्लैष्मिकेषु—धमनीनां प्रफुल्लनम् एन्युरीजम (Aneurism) नाम्ना पाश्चात्त्येषु प्रथितो व्याधिविशेषः धमनी प्रतिचयनाम्ना वर्ण्यते ।

लोके सर्वोऽपि विषयः—

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ।।

इति श्रीमद्भागवतोक्त्याऽऽत्मतत्त्वपरिज्ञानेन ज्ञातव्यो नावशिष्यते—
कस्यापि वस्तुनस्तत्त्वपरिज्ञानेनैव तद्रहस्यजिज्ञासाशान्तिर्भवति ।
शास्त्रीयतत्त्वपरिज्ञानमपि प्राचीनमहर्षिप्रणीताऽऽकरग्रन्थपर्यालोचनमेव ।
किं वच्मि—

यक्ष्मादिरोगाणां सविशदं अथर्ववेदसंहितायां वर्णनमुपलभ्यते येन नवनवाः "ब्रेन ट्यूमर" आंत्रिक क्षय, इण्टस्टाइनल ट्युबरक्लोसिस (Intestinal Tuberculosis) सर्वाङ्ग क्षय, जनरल ट्युबर क्लोसिस (General Tuberculosis) अस्थिक्षय, ट्युबर क्लोसिस आफ बोन (Tuberculosis of Bone) शीर्षावरण क्षय (ट्युवरकलमेनेंजाइटिस) त्वग्जन्यक्षय ट्युवर क्लोसिस आफ स्किन् (Tuberculosis of Skin) आदि विशिष्टनामधृता यक्ष्मविशेषास्तत्र तत्र श्रूयन्ते नाम तासु तासु ऋचासु भवतां पुरस्तत एवोधृत्य कियान्—अंशः प्रस्थाप्यते—

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते ॥ अथर्ववेदसंहिता
द्वितीयकाण्ड अ० ६ सू० ३३ मंत्रः १

तत्रैव पठिताः—

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते ॥ मंत्रः २
आंत्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो रुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्यां विवृहामि ते ॥ मंत्रः ४

प्लाशेः—बहुच्छिद्रात् मलपात्रात् । (मलावरोधिनां प्रायो भवत्ययं यक्ष्मा)

हृदयात्ते परिक्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते विवृहामसि ॥

हलीक्ष्णात्—क्लोमसमीपस्थात् तत्सम्बन्धात् मांसपिण्डाद् । मतस्नाभ्याम् उभयपार्श्वसम्बन्धाभ्यां वृक्काभ्यां तत्समीपस्थपित्ताधारपात्राभ्याम् ।

षष्ठी—

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनीभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामंगुलिभ्यो नखेभ्यो विवृहामि ते ॥

सप्तमी—

अङ्गे अङ्गे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि । यक्ष्मं त्वचस्यन्ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चे विवृहामसि ॥

त्वचस्यमत्र त्वचि भवम् यक्ष्मम् यश्च प्रायो बालानां भवति ।

तेनेदं निश्चेतव्यम्भवति—अस्माकमायुर्वेदविज्ञानराशिः—वेदेष्वप्यस्ति न केवलं चरकसुश्रुतवाग्भटादिबृहत्त्रयीष्वेव । तच्च हेयतया विगणय्य नूतनं नूतनमनुधावति प्राचीनायुर्वेदसंहिताग्रन्थाः पुस्तकालयेषु वर्तन्ते तेषां समीचीनतरया दृष्ट्या निपुणतया समीक्षणं प्राथमिकं कार्यम् । यान् व्याधीन् अभिनवत्वेन कल्पयन्ति तान् व्याधीन् अशेषतःपरिसंख्यातुं न क्षमन्ते साम्प्रतिकेऽनेहसि अर्वाचीना विद्वांसः । तत्सर्वं प्राचीनग्रन्थाऽपरिशीलनफलकम् । अतः प्रार्थये सर्वान् विबुधान् प्राचीनग्रन्थान् प्रथममवलोकयन्तु त्रिदोषतत्वज्ञानपरिशीलनपुरस्सरम् । पुनः पुनर्निदिध्यासनेन विचारयन्तु । मन्ये प्रायो रोगाः नूतना न सेत्स्यन्तीति मामकीनो विमर्शः ।

त्रिकालदर्शिनो हि महर्षय आसन् । तेषामार्षं चक्षुरव्याहतज्योतिः, अतएव सर्वमपि वस्तुजातं करामलकवत् पश्यन्तिस्म । तत्र श्रद्धाना भवेयुर्नाम ।

आयुर्वेदमहोदधेः पुराकालिकीं समुन्नतिं वर्तमानकालिकीमवनतिं च विचारयन् कोवा चक्षुष्मान् शोकानुतप्तहृदयो नोष्णं निःश्वसिति ।

वैद्यमतल्लिकाः !

अस्माकमायुर्वेदाचार्याः प्रायः सूत्रमयेषु निदानग्रन्थेषु स्वीयाविष्कारं स्वावबोधार्थमतिसंक्षेपशब्दैः समुल्लिख्य रोगाणां निदानादीनि प्रचारयामासुः । सम्प्रति—त्रैविध्येन शिष्यबुद्धिगम्यं कर्तुं निदानग्रन्थानां प्रतिसंस्करणमावश्यकं मन्ये । तथाहि आयुर्वेदपरिभाषया पद्धत्या

वा वर्णितानां प्रतिसंस्कृतनिदानग्रन्थानामध्ययनाध्यापनेन-आंग्लायुर्वेदचिकित्सकानां पुरो रोगनिर्णयकाले वैद्यानामर्थे संकोचो न भवेन्नाम ।

वैद्यमहाशयाः !

परस्परमैकमत्येन प्रेम्णा व्यवहरन्तो महतीमुन्नतिं प्राप्स्यंति ।

अन्यथा परस्परं कलहायमानाः सुन्दोपसुन्दन्यायं चरितार्थयिष्यन्ति । परिपन्थिराज्यसहस्रैरपि दुराक्रमाणां विद्वन्मानसानां चटुलीकरणमेव विद्वत्तायाः परमं प्रयोजनम् ।

वैदुष्यं च चिन्तासन्तानवितानझंझावातोद्धूतसंशयघनघनाडम्बरावरुद्धहृदयाकाशस्य नैर्मल्यकरणेऽसाधारणोपयोगि ननु विदुषां चेतसि प्रमोदेतरसम्पादकम् ।

अतः समयस्य ह्रसतां विविच्य परस्परं प्रेम विदधतो जगद्धितकरं पन्थानमाश्रयेयुः ।

तदा जायन्ते गुणा यदा ते सहृदयैर्गृह्यन्ते ।
रविकिरणानुगृहीतानि भवन्ति कमलानि कमलानि ॥

इति कवीश्वरैः प्रतिपादनात् सहृदयहृदयसम्मतमेव मतं ग्राह्यं नान्यत् ।

The 25th All India Ayurveda Conference
Silver Jubilee
Presidential Speech
At Ahmedabad

BY

N. S. Lokur Esq. M. A. LL B.

District and Sessions Judge

॥ श्रीः ॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
रागादिरोगान्सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदान् जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥

Ayurveda Pandits, Ladies and Gentlemen,

I sincerely thank you for conferring upon me the honour and proud privilege of presiding over this auspicious function—the celibration of the Silver Jubilee of the All India Ayurvedic Conference. I am extremely diffident about my capacity to deserve the honour, and I wish that it had been conferred upon a worthier person. Had I thought it necessary for the occupant of this chair this afternoon to possess at least an elementary knowledge of Ayurveda I would have unhesitatingly declined the honour with thanks. But the function before us is not for the purpose of discussing any topics concerning the Ayurveda, but to express our gratitude to the Almighty for bringing us this felicitous occasion, and to offer our felicitations to those yeomen workers in the field of Ayurveda who have contributed to the progress of the conference from year to year and are now able to look back upon its achievement with well-deserved pride. This task may be done by any layman, provided he has faith in and respect for the Ayurvedic System of medicine; and I can honestly and conscientiously say that I yield to no one in such faith and respect. If you find my speech this evening insipid or disappointing, it is not due to my lacking in these qualities, but to my inability to produce anything better at such a short notice.

I deem it a lucky sign that this Silver Jubilee happens to come off in the year of so many other Jubilees. The first and the foremost jubilee of the year was their Majesties' Silver Jubilee in celebrating which we all took so much interest and delight. The Congress is celebrating its Golden Jubilee throughout India. The Diamond Jubilee Inter-national Convention of the Theosophical Society is being held at Adyar in Madras. The jubilees of several rulers, colleges and eminent presonages like Lady Vidyagouri Nilkanth of Ahmedabad are being celebrated this year. Such Jubilees are publicly celebrated of only such individuals and institutions as have materially contributed to the welfare of the public. It is therefore natural that the object of such celebrations should be not only to express our gratitude and felicitations, but to take stock of the public good done by the particular individual or institution, and to chalk out a plan for doing further good work so as to deserve a more joyous celebration of the next Jubilee.

As a result of laborious researches by many Western Savants, it is now established beyond doubt that Ayurveda is the most ancient System of medicine. In his History of Medicine, Dr. Max Neuburgher has shown how Charaka and Sushruta were translated into the Arabic, and how Ayarveda then travelled from Arabia to Egypt and Greece, and thence to other European Countries. But although we ought to be proud of being the pioneers in the system of medicine, it will not do to remain harping upon the past glory of Ayurveda. Ancient as they are, the principles of Ayurveda gradually came to be transformed and developed, and gave birth to various systems of medicine, differently named by different people in different countries, and these gradually threw the Parent System into the back ground in the course of several centuries. The reason is not far to seek. It is certainly not any intrinsic demerit in the system itself. Even the staunchest advocates of allopathy do not dispute the intrinsic merits of the Ayurvedic System. After going through the English translation of Charaka, Dr. Clarke of Philadelphia observed, "If the Physicians of the present day would drop from the Pharmacopœa all the modern drugs and chemicals and treat their patients according to the methods of Charaka, there will be less work for the undertakers and fewer invalids in the world." No higher praise can be bestowed upon any system of medicine. Yet, a science, though perfect for the time being, is bound to lag behind, if it stagnates. For centuries the Ayurvedic System remained in stagnation, as unfortunately it had not the same opportunities of development and progress which are afforded to all scientific studies in the West. It is now futile to discuss the causes which led to such a state of things. What is needed is the finding out of the means and ways to face the situation and revive the past glory of Ayurveda.

Prompted with this idea, and encouraged by that beneficent ruler, who has contributed so much to the revival of the Indian Art, science and culture, I mean His Highness the Maharaja Sayajirao Gaekwar of Baroda, the late Pandit Shankar Daji Shastri Pade, convened the first All India Ayurvedic Conference in Nasik in 1907, which was presided over by Shri Kunwar Sarju Prasad Sinha Bahadur of Allahabad. Since then the conference has held its annual sittings regularly, except in a few exceptional years and has been gaining additional strength at every sittings. Its most marked achievement is the creation of interest in the Ayurveda, and of the thirst for research and advancement. It has come to realise that the Ayurvedic System cannot easily stand on its legs unless it becomes progressive and advantage is taken of modern scientific discoveries, such as the X-ray apparatus, Oxygen inhalation, injections and the therapeutic use of electricity. Of course these should be looked upon only as a suppliment to the indigenous system. There was a time when the knowledge of pulse was a pride of Ayurveda in the diagnosis of diseases. But the acquisition of that art requires so much patience and perseverence that in these days of bustle and hurry the number of experts in that art is gradually waning, and it has now become difficult even to believe that such an art can be cultivated to perfection. It is essential that the art ought to be revived and relied upon in the diagnosis of diseases, though it may be supplemented by the more modern methods like the use of stethoscopes.

The conference has every year brought together eminent Ayurvedic pandits and enabled them to compare notes and exchange thoughts. It has brought into the lime-light the glory of Ayurveda and the efficacy of indigenous drugs and indigenous methods of treatment. It is in no small measure due to its discussions and resolutions that several Ayurvedic schools and colleges have been started. There was a time when the study of Ayurveda remained hereditarily in the families of vaidyas, but with the starting of such Public Schools and Colleges, any student who has a liking may go in for the study of Ayurveda in the same way as he can join a medical school or college for the study of allopathy. The exhibitions which are being held along with the conferences have proved very useful in stimulating study and investigation of medical plants and drugs.

All this is no mean achievement and any institution may look upon it with just pride on the occasion of its Silver Jubilee. Yet this is nothing as compared to what still remains to be achieved. Surgery has been mostly neglected by the students of Ayurveda. The study of anatomy and surgery must go hand in hand with the study of medicine. Though we can justly boast that surgery was not unknown to Ayurveda, it can not be denied that it remained where it was, and owing to the want of facilities for the study of human anatomy, surgical knowledge and practice did not go much beyond the rudimentary stage. The practitioners of Ayurveda must pay more attention to these subjects if they want to be efficient and to create confidence in the public. Religious scruples or sentiments must not be allowed to come in the way of dissecting the bodies of the available dead human beings for the purpose of studying the human anatomy. It is true that many diseases which apparently require a surgical opperation can be successfuly cured by the Ayurvedic treatment. But even for that purpose a thorough knowledge of anatomy will tend to greater efficiency and further research. The easiest way in which the study of Surgery and Ayurvedic medicine can be combined is the establishment of Post Graduate courses in Ayurveda in the existing medical colleges and schools as in Madras until it is found possible to establish separate Ayurvedic colleges in every Province and Ayurvedic schools in every town. The past conferences have tried to tackle this problem and the future conferences will surely continue their efforts with unabated energy. The Benares Hindu University has done a distinct service in this behalf.

The next immediate need of the hour is the publication of standard books and text books on Ayurveda so as to be made easily available to all. Some attempts hava already been made in this direction and a good deal yet remains to be done. Here I take the opportunity of congratulating the Ayurveda Maha Mandal in publishing in commemoration of this auspicious occasion the Rajat Jayanti Volume which is so beautifully compiled by that well-known exponent of Ayurveda, Rasayanacharya Kaviraj Pratapsinha Bhishagmani, who is connected practically with all the important Ayurvedic institutions of the country and is the Superintendent of the Ayurvedic Pharmacy of the Benares Hindu University. It is a volume which is worthy of the occasion. Every effort should now be made to spread the Ayurvedic literature so as to make it reach the homes of indigent villagers. The Ayurvedic System of treatment is so simple and the ordinary drugs and herbs are so cheap that even with an elementarv knowledge of their use several petty ailments can be prevented and cured. Until recently the allopaths and the homeopaths had not made inroads into villages, and the villagers had to depend on their own knowledge of the use of indigenous drugs and on the local hereditary vaidyas for the cure of diseases. But now-a-days the universities are turning out so many Bachelors of allopathic medicine and surgery that several of them have to betake themselves to villages and are gradually supplanting the indigenous methods of treatment. If this state of things continues for a generation more, the next generation of villagers is likely to be found ignorant of even the most elementary use of our simple indigenous drugs and plants like Jinjer and Tulasi, and may have to run to the allopathic degree-holders every now and then. To avoid this, the Maha Mandal should regard it as one of its foremost duties to keep and spread the knowledge of such drugs and plants in every corner of the country, in addition to the more onerous task of establishment of schools, colleges, and post graduate courses.

There is much to be done towards the correct diagnosis of diseases, and the identification of plants and drugs. Several new diseases have been imported from over-seas countries, and though the Ayurvedic system provides for every conceivable kind of disease, such imported diseases do demand a further research. Similarly the identification of many valuable drugs and herbs mentioned in Charak and Sushruta has been unfortunately forgotten and the Maha Mandal has been trying to solve this difficulty, a good deal is still required to be done in this direction with the help of expert botanists and chemists. The collection of the right samples of herbs and drugs, such as is now being exhibited in the Exhibition here is a step in the right direction. It is also worth while to consider whether some, of the allopathic drugs should not be availed of by the Ayurvedic Vaidyas. That is a problem for the experts to decide.

The past twenty-five conferences have certainly achieved a good deal and it is our duty to congratulate with all our heart every one of those, whether unfortunately dead, or fortunately still living amongst us, who contributed to the bringing of the conference to its present position. If the future conferences continue to bring together the Ayurvedic Pandits every year and to hold such exhibitions as Ahmedabad is proud to hold this year and succeeded in achieving the objects which the past conferences have been aiming at, the recovery of the ancient glory of Ayurveda and its universal recognition as the premier system of treatment of diseases will ere long be an accomplished fact and I hope that the Golden Jubilee will be celebrated with even greater pride and joy and in the satisfaction that the end has been achieved. May Dhanwantari, the great incarnation of Vishnu, enable the Maha Mandal to achieve this object for the sake of the suffering humanity and may the world reap the full benefits of Ayurveda.

I am sorry if I have disappointed you by my inability to say more on a subject, which is not in my line, but as I said, I wholeheartedly join you in rejoicing at the occasion and in praying for an even higher and more useful future for the All India Ayurveda Maha Mandal and the conferences to be held by it.

I thank you once again for the honour done to me and for the indulgence shown to me, and beg to resume my seat.

स्वर्गीय कविराज श्री० विश्वनाथ सेन विद्याकल्पद्रुम का

संक्षिप्त परिचय ।

कविराज विश्वनाथ सेन विद्याकल्पद्रुम जी का जन्म वर्धमान जिला के श्रीखण्ड ग्राम में हुआ था । आप के पिता का नाम कविराज कुञ्जविहारी सेन था, उन्होंने कलकत्ता मेडिकल कालेज से जी० एम्० सी० वी० की उपाधि प्राप्त कर गवर्नमेण्ट डाक्टर हुए । भोटान के युद्ध-समय गवर्नमेण्ट ने आपको युद्ध का डाक्टर बना कर भेजा था । विश्वस्त भाव से काम करने के कारण पुनः राज सम्मानित हुए ।

कविराज विश्वनाथ सेन जी दो भाई थे । दोनों ही दर्शन तथा आयुर्वेद के असाधारण पण्डित थे । बड़े भाई केदारनाथ सेन जी इस असार संसार को तुच्छ मान कर युवावस्था के प्रारम्भ में ही सन्यास ग्रहण किये । कविराज विश्वनाथ सेन जी ने, पिता जी के ज्येष्ठ भ्राता पूज्य कविराज योगेश्वर सेन जी से आयुर्वेद का अध्ययन किया, जो आबाल ब्रह्मचारी थे ।

चिकित्सा तथा अध्ययन आरम्भ करने के कुछ रोज बाद काशी पण्डित मण्डली ने आपके प्रगाढ़ पाण्डित्य से मुग्ध हो कर "विद्याकल्पद्रुम" की उपाधि से भूषित किया । और माननीय काशीनरेश आपकी विद्वत्ता तथा चिकित्सा से आश्चर्यान्वित हो कर अपने स्टेट का प्रधान चिकित्सक बनाया । आपने अपनी २५ वर्ष की अवस्था में ईश्वर जगबन्धु जी की प्रथम कन्या श्रीमती सौदामिनी का पाणिग्रहण किया । श्रीमती सौदामिनी देवी को दो कन्या और एक पुत्र हुआ । पुत्र का नाम गणनाथ सेन रक्खा गया, जो आज पण्डित तथा चिकित्सक जगत् के शिरोमणि हैं । गणनाथ सेन जी के पाँचवें वर्ष के प्रारम्भ में ही सौदामिनी देवी का स्वर्गवास हुआ ।

युवावस्था में पत्नी वियोग होने पर भी कविराज विश्वनाथ सेन जी ने पुनर्दार परिग्रह नहीं किया । अल्प वयस में मातृवियोग से कातर गणनाथ सेन जी को धैर्य प्रदान करते हुए लालन-पालन किया—तथा पाँच वर्ष के आरम्भ से ही संस्कृत के छोटे-छोटे शब्दों को सिखाया। व्याकरण, साहित्य तथा साधारण दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने के बाद चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों को पढ़ाया ।

सौदामिनी देवी के परलोक-गमन के बाद काशीनरेश के स्टेट का प्रधान चिकित्सक पद त्याग कर आप कलकत्ता चले आये, और मैमनसिंह के महाराज ईश्वरसूर्यकान्त जी आचार्य चौधरी ने यथेष्ट मासिक पारितोषिक प्रदान कर अपना चिकित्सक नियुक्त किया । कलकत्ता में भी इनकी चिकित्सा तथा दान की बड़ी ख्याति हुई । कलकत्ता के सर्व प्रधान चिकित्सकों में नाम होने के कारण बाहर के राजा-महाराजा बुलाते भी थे; किन्तु वे पुत्र गणनाथ सेन जी के पढ़ाने में सदा तत्पर रहते हुए कलकत्ता से बाहर जाना अस्वीकार किया करते थे ।

मृत्यु के एक वर्ष पहिले रानी अयोध्या की चिकित्सा से बहुत रुपया लाभ किया, जिससे कलकत्ता शोभा बाजार में एक विशाल मकान खरीद लिया । कुछ रोज के बाद मालूम

स्वर्गीय कविराज श्रीमान् विश्वनाथ सेन जी विद्याकल्पद्रुम, कलकत्ता।
आप महामहोपाध्याय, कविराज श्री गणनाथ सेन जी सरस्वती,
एम० ए०, एल० एम० एस० महोदय के स्वर्गीय पिता हैं।

हुआ कि यह मकान देवोत्तर है, जिससे यह नहीं बिक सकता। हाइकोर्ट में केस हुआ, बहुत रुपये बरबाद हुए, आखिर गणनाथ सेन जी ने उस केस को चलाना छोड़ दिया।

कविराज विश्वनाथ सेन जी की मृत्यु बंगला सन् १६०६ में अग्रहण महीने की ८ तारीख को हुई। आप सदा ही दान किया करते थे, जिससे मृत्यु समय पुत्र गणनाथ सेन जी के लिये कुछ भी रुपये नहीं रख गये। द्रव्यदान-विद्यादान आपके जीवन का प्रधान कर्तव्य था। बंगाली तथा विभिन्न प्रान्तीय सहस्रशः आपके विद्यार्थी हुए। "सरल समुच्चय" नामक ग्रन्थ की आपने जैसी टीका लिखा है, उसके समान दूसरी कोई टीका नहीं देखी जाती।

भिषगाचार्य, कविराज श्री सुशीलकुमार सेन कविरत्न,

एम० एस-सी०, वैद्य शिरोमणि का

संक्षिप्त परिचय ।

भिषगाचार्य, वैद्यशिरोमणि कविराज श्री सुशीलकुमार सेनजी कविरत्न, एम्० एस्-सी० महोदय का जन्म सन् १९०२ ई० अक्टूबर महीने की १७ तारीख को कलकत्ता में हुआ । आप विश्व-विख्यात धर्मप्राण महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेनजी एम्० ए०, एल्० एम्० एस्०, प्राणाचार्य विद्यासागर सरस्वती के सुयोग्य पुत्र हैं । आपकी माता का नाम सुनीति देवी था । सत्य—जहाँ "सुनीति" वहीं सुशील का आविर्भाव सर्वथा सम्भव है । महामहोपाध्याय जी के निकट आयुर्वेदाध्ययन के लिये कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक के समागत विभिन्न प्रान्तीय विद्यार्थियों को श्रीमती जी अपने इकलौते पुत्र के समान देखती थीं ।

कविराज श्री सुशीलकुमार सेन जी प्रवेशिका परीक्षा पास करने के बाद १९२० ई० से १९२५ तक अपने पूज्य पिता जी से चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों का अध्ययन किया और १९२५ ई० के दिसम्बर महीने से चिकित्सा कार्य आरम्भ किया । १९२७ ई० में पाश्चात्य शैली के अनुसार शारीर विज्ञान और इन्द्रिय विज्ञान (Physiology with Anatomy) की सम्पूर्ण शिक्षा लेकर कलकत्ता विश्वविद्यालय (Calcutta University) से साइन्स की सर्वोच्च उपाधि (1st class M. Sc.) प्राप्त की । चिकित्सा कार्य में कई वर्षों तक अपने विज्ञ और यशस्वी पिता जी के सहकारी रहने के कारण आपको सफल चिकित्सा की रहस्य बातों को सीखने का उत्तम अवसर मिला ।

सेन्ट्रल प्राविन्स राजनाद गाँव के स्वाधीन नरेश श्रीमान महन्त सर्वेश्वरदास जी अपनी माता जी का इलाज कराने के लिये आपको तन्त्री द्वारा बुलाकर करीब ५००) पाँच सौ रुपये दैनिक परितोषिक देकर सफल चिकित्सा का पत्र प्रदान किया । इस रूप से बहुत से राजा-महाराजा तथा अन्यान्य गवर्नमेंट लब्ध प्रतिष्ठ श्रेष्ठ पुरुष आपकी चिकित्सा से आश्चर्यान्वित हुए हैं ।

आप बचपन से ही अध्यापन के असीम प्रेमी हैं । सुना जाता है कि आप अपने बाल्यकाल में दश-पाँच छोटे-छोटे बच्चों को अपने पास बुलाकर यथापठित विषयों को पढ़ाना आरम्भ करते थे और महामहोपाध्याय जी से कहा करते थे कि पिता जी ! मैं घर में स्कूल बनाऊँगा । महामहोपाध्याय जी बच्चे का शुभ भाषण सुनकर हँसते हुए गद्गद भाषा से कहते थे—पुत्र ! अभी पढ़ो कभी भगवान् की इच्छा होगी तो स्कूल करना ।

आपकी उदारता तथा अपने पूज्य पिता जी के चरण की प्रोत्साहनता के फल स्वरूप कलकत्ता "विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय" है । जिस समय महामहोपाध्याय जी ने स्वर्गीय पिता विश्वनाथ विद्याकल्पद्रुम जी के स्मरणार्थ १२५०००) सवा लाख रुपये मूल्य का विशाल

श्रीमान् कविराज श्रीसुशीलकुमार सेन, कविरत्न,

भिषगाचार्य, एम० एस-सी०, वैद्यशिरोमणि, कलकत्ता।

आप महामहोपाध्याय कविराज श्री गणनाथ सेन जी सरस्वती, एम० ए०, एल० एम० एस० महोदय के सुयोग्य और विद्वान् सुपुत्र हैं।

चार महल का मकान तथा ५००००) पचास हजार रुपये का हास्पिटल तथा विद्यालय का सब सामान (उपकरण) आयुर्वेद शिक्षा तथा रोगिशाला के निमित्त दान करने की इच्छा की उस समय आपको बुला कर पूछा—इस दान रूप महानुष्ठान में तुम्हारी क्या इच्छा है । आपने अञ्जलिबद्ध होकर उत्तर दिया—पिता जी ! अभी तो आप एक ही मकान तथा भेषजोद्यान दान करते हैं, यदि सारी संपत्ति इस कार्य के लिये दे दें और मेरा नाम सेवक-श्रेणी में लिख दें तो मैं अपने जीवन को सफल मानूँगा । मैं तो बचपन से कहता आया हूँ कि अपने घर में स्कूल बनाऊँगा । आज विश्वमय परमेश्वर की दया से मेरी बचपन की बात सत्य हुई । महामहोपाध्याय जी पुत्र की हार्दिक उदारता तथा धार्मिक कार्य में प्रोत्साहन सुनकर गद्‌गद भाषा से आशीर्वाद दिये—पुत्र ! जैसे तूने मेरे मनोरथ को पूर्ण करने के लिये अपना सर्व समर्पण स्वीकार किया है, वंग जननी ऐसी सन्तानों को सदा उत्पन्न करती रहे, जिससे शिक्षा तथा उदारता का प्रधान धाम होकर वंग चिरस्मरणीय हो ।

आज भी पूज्य पिता जी के स्थापित “कल्पतरु आयुर्वेद भवन” के विराट कार्य को वहन करते हुए ही आप उक्त महाविद्यालय में महामहोपाध्याय जी के रचित प्राच्य-पाश्चात्य और शारीर गवेषण मूलक “प्रत्यक्ष शारीर” नामक ग्रन्थ तथा कायचिकित्सा को बड़े उत्साह के साथ पढ़ा रहे हैं और महाविद्यालय तथा हास्पिटल के सहकारी अध्यक्ष भी हैं ।

आप निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल के वङ्गीय मन्त्री तथा परीक्षक हैं । गत वङ्गीय आयुर्वेदिक सम्मेलन के प्रधान सम्पादक थे । बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी आयुर्वेद विभाग के परीक्षक तथा फेकेल्टी के मेम्बर हैं । कलकत्ता के विभिन्न प्रसिद्ध प्रतिष्ठानों के सभापति हैं । आपने वङ्गभाषा में “महौषध मञ्जूषा”, “द्रव्य गुण संहिता” और “विकृत शारीर विज्ञान” नामक तीन अनुपम आयुर्वेदिक ग्रन्थ लिखा है । जिन ग्रन्थों का संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद हो रहा है । वङ्गीय साहित्य में भी आपकी बड़ी ख्याति है । “महुआ देवी” सर्ग द्वितीय ग्रन्थ के आप प्रणेता हैं ।

कविराज श्रीसुशीलकुमार सेन जी ने मुर्शिदाबाद जिला के सुप्रसिद्ध जमीन्दार ‘बरहमपुर’ ग्रामाधीश गवर्नमेण्ट लब्ध प्रतिष्ठ रायबहादुर रमणीमोहन सेन महोदय की सुपुत्री श्रीमती तरुलता देवी का पणिग्रहण किया । श्रीमती जी का पातिव्रत तथा आश्रमस्थ विद्यार्थियों के ऊपर हार्दिक दयाभाव सर्वथा सराहनीय है । श्रीमती जी के पातिव्रत के फलरूप तीन पुत्र और एक पुत्री हुई । इन सन्तानों की मेधा तथा अध्ययन में प्रेमभाव वाञ्छनीय है । इत्यलम् ।

पं० बृजबिहारी चौबे को वैद्यरत्न की सनद प्रदान करते समय बिहार के गवर्नर महोदय ने निम्नलिखित भाषण प्रदान किया !

Vaidyaratan Pandit Brijbihari Chaube,

As founder of Ayurvedic schools at Hajipore and Patna you have been largely responsible for the revival of Ayurvedic learning in this province. Your students are scattered in all parts of Behar and your son is the Principal of the Government Ayurvedic college, Patna to the upkeep of which you yourself contribute. I congratulate you on the title of Vaidyaratan which you have received in recognition of your valuable services to the Community.

◆

True copy.

Bihar Secretariate.

D. O. No. 5024 P

Patna,
The 30th November 1936.

Dear Sir,

I am desired to enclose for your information a copy of the speech delivered by his Excellency the Governor of Bihar on the occasion of your investiture at the Darbar held by His Excellency the Governor at Patna, on the 25th November 1936.

Yours Sincerely,
Sd/- D. H. Crofton

To
Vaidyaratan Pandit Brijbihari Chaube,

Vaidyaratna Pandit M. Duraiswami Aiyangar,

Ayurveda Bhushan, Ayurvedacharya of Madras.

His Life Sketch

Born in December 1888 in the village of Brahmadesam, North Arcot district, Madras Presidency. His father was Vidwan Vijayaraghava chariar, native of Malpakkam Village (Chingleput Dt.) under whom the Pandit studied Sanskrit literature. He studied Vyakaranam under Vyakaranam Rangacharya of Mannargudi in his 14th year. He lost his mother in his 5th year and the father in his 14th year and was left penniless. The helpless young Pandit had to earn his livelihood and came to Madras in his 16th year. Fortunately he was able to secure the sympathy and favour of the late Prof. M. Rangacharya, Diwan Bahadur P. Anandacharlu and others, who appreciated his learning and scholarship and the former (who was the Curator of the Govt. Oriental Mss. Library) gave him an oppointment of Pandit's post in his Library. In his young age he has originally translated the famous work Kadambari of Bhutta Bana, Megha Sandesha of Kalidasa and some other Sanskrit worksinto Tamil and some well known Publishers of Madras had undertaken the Publication of these works. In that young age he was able to teach Buddhism and some other Philosophical Science to Prof. Lakshminarasu and through these activities the Pandit became very popular among the highly learned people in his very young age. The Vaidyaratana Pandit D. Gopalacharlu happened to meet this young Pandit in the house of Prof. Lakshminarasu when he was teaching him Buddhism and asked him with great enthusiasm to join the Madras Ayurvedic College of which he was the Principal. Prof. M. Rangacharyar and others advised the young Pandit to do so and joined the college in the year 1902 as a student. In the year he joined the college, special classes for Anatomy, Physiology, Midwifery, Hygiene and some other allied subjects were opened there and he underwent four years' courses of study in Ayurveda and all the allopathic subjects above mentioned getting scholarship from the college from the date he joined it. In the fifth year he got a scholarship of Rs. 25 a month specially to be as an apprentice under Pandit Gopalacharlu in the S. K. P. D. Hospital attached to the college. Then after having completed all his courses of study in the college he went to Calcutta in the 1907 and got some more practical training for some time under the late Mahamahopadhyaya Kaviraj Dwarkanath Sen, the famous Physician of Bengal. His activities in the medical line began to grow more and more.

Pandit M. Duraiswami Aiyangar then went to Trichinopoly and practised there as an independent Physician for over two years. Pandit D. Gopalacharlu asked him to come and settle at Madras and render his services to the Madras Ayurvedic College and to S. K. P. D. Dispensary and in obedience to his Guru's wishes and instructions he came back to Madras. He was working as a Professor in the College in which he studied and as an Asst. Physician in the Dispensary under Pandit Gopalacharlu for some years. After Pandit Gopalacharlu's retirement from the services of the S. K. P. D. charities, Pandit Duraiswami Aiyanger was appointed as the Senior Physician in charge and he worked in the Dispensary for over 12 years. He was elected as General Secretary of the All India Ayurveda Mahamandal when its Conference met at Rajahmundry and was occupying that office for four years or so. He was really responsible for the very useful Conference held at Colombo (Ceylon) on account of which there are now two Ayurvedic Colleges running in that island and also from another Conference held at Hardwar. He began to translate a a number of Standard Sanskrit Ayurvedic works into Tamil (before which the Tamil world does not know a single Ayurvedic work) such as Ashtanga hridya, Madhaw Nidana, Rasaratna Samuchaya, Sarangadhara Samhita and published them beautifully spending his pocket money without anybody's help. His hundreds of very useful medical essays and articles, which are contribeuted to a number of leading South Indian papers and periodicals are appreciated by all the people in Southern India. He started and edited the only popular Tamil Medical Journel Vaidya Kalanidhi for 9 years. He has written many Sanskrit literary works like Kiratarjuniya Gadya Sangraha etc. and has translated many Sahitya Granths (Such as Sakuntala, Kiratarjuniya, Raghuvansha, Hamsa Sandesa etc.) in Tamil. He was the President of the Dravida Vaidya Provincial Conference held in Trichinopoly and of the Vaidya Vidvat Sammelan held at Tenali. He is the Chairman, Board of Examiners of The Jaffna Ayurvedic Medical College, member of the Selection Board and Board of Examiners, Govt. Indian Medical School, Madras and an Examiner, Ayurveda Siromani Examinations of the Madras University. The Government were pleased to confer upon him the Title of "Vaidyaratna" in the year 1935. His scholarship in Sanskrit, his learning in Tamil, his theoretical and practical knowledge in medicine are well recognised by the public of Madras presidency and many parts of the country including Ceylon and other places. Still he is energetically working for the cause of Ayurveda.

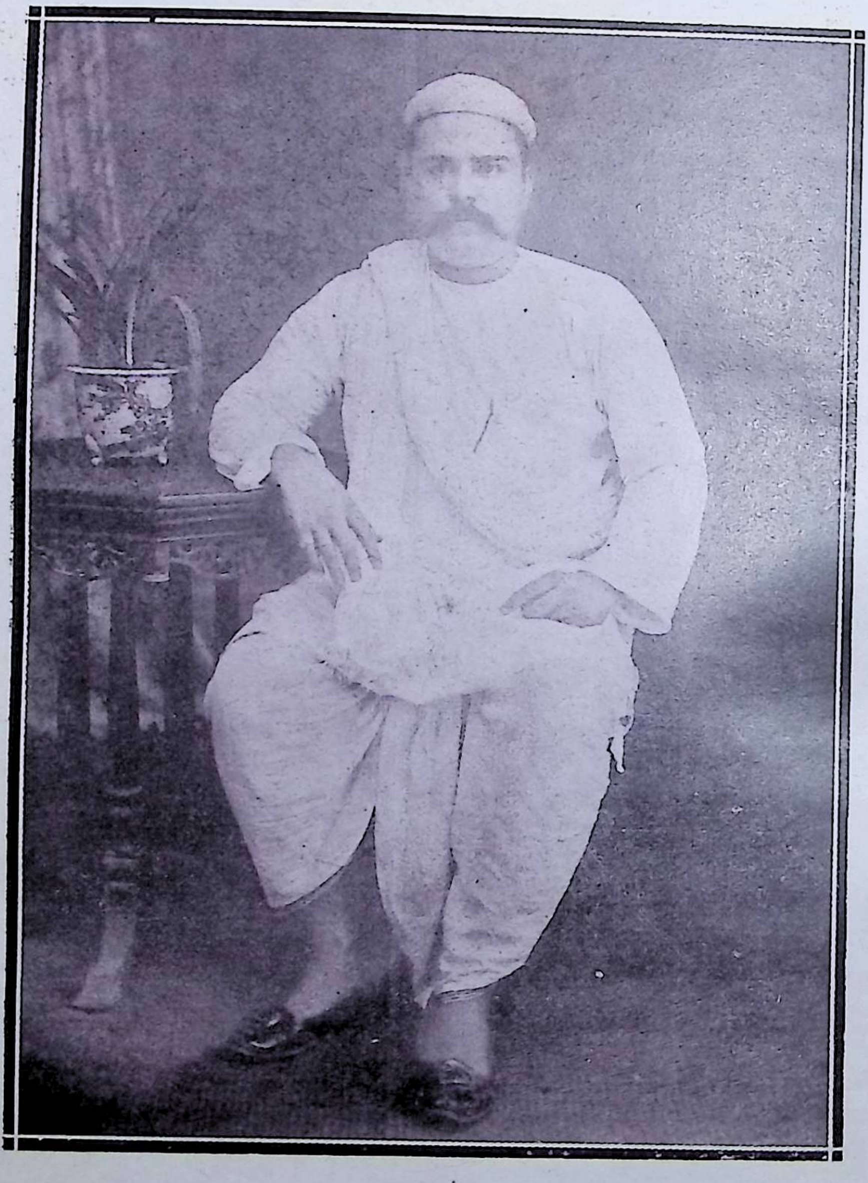

श्री धन्वन्तरि धर्मामृत औषधालय काशीके संस्थापक —

स्व. वा. पं. बाबुनन्दनजी भट्ट राजवैद्य, बनारस।

जन्म वि. सं. १९३१ निधनः वि. सं. १९६६

काशी के सुविख्यात चिकित्सक

स्वर्गीय वैद्यवर श्रीमान् पण्डित बाबूनन्दन जी भट्ट का

संक्षिप्त परिचय ।

काशी के सुप्रसिद्ध वैद्य स्वर्गीय पण्डित कन्हैयालाल जी दीक्षित अपने काल के बहुत ही सुयोग्य, यशस्वी और लब्धकीर्ति चिकित्सक थे। मान-मर्यादा, कुल, धन और ख्याति होते हुए भी एक मात्र तनया के अतिरिक्त और कोई पुत्र सन्तति न थी। किन्तु आप उससे दुःखी न थे; बल्कि बड़े उत्साह के साथ अपने औषधालय में बैठकर दीन-हीन, दुःखी और असहाय रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा किया करते थे। परमात्मा ने आपकी सुनी और एकमात्र तनया से हमारे चरितनायक का सर्वप्रथम जन्म हुआ। डूबते को सहारा मिल गया। आपने बालकाल से ही हमारे चरितनायक का बड़े ध्यान से पालन-पोषण किया और सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा भी अपनी ही देख-रेख में होने दी। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कराकर व्याकरण आदि की शिक्षा दिलाई। उसके बाद स्वयं आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा दी और अपने साथ चिकित्सा-क्रम का भी अभ्यास कराया। चिकित्सा शास्त्र में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेने पर श्रीमान् दीक्षित जी महाराज ने आपको चिकित्सा करने की स्वतन्त्रता दे दी और श्रीमान् पं० बाबूनन्दनजी ने अपने पूज्य नानाजी के ही कर कमलों-द्वारा श्री धन्वन्तरि धर्मामृत औषधालय का उद्घाटन कराया और बड़ी योग्यता के साथ अनेक वर्षों तक अपने मातामह के नाम को चलाया और असंख्य रोगी समुदाय को जीवन-दान दिया अपने उत्तराधिकारी को सम्पूर्ण कार्य समर्पित कर श्रीमान् दीक्षित जी महाराज भगगान् धन्वन्तरि में लीन हो गए।

स्वर्गीय दीक्षित जी महाराज के देहावसान के बाद कुछ ही वर्षों में हमारे चरितनायक ने भी एक पुत्र और तीन कन्याएँ छोड़कर असमय में हो स्वर्ग सिधारे। भगवान् के अनुग्रह और धन्वन्तरि की कृपा से जिस शिशु को छोड़कर भट्ट जी ने स्वर्गवास किया था, उनमें परमात्मा का एक अंश छिपा था। श्रीमान् भट्ट जी के

स्वर्गवास के उपरान्त उनके लघु भ्राता वैद्यवर स्वर्गीय श्रीमान् पं० रघुनन्दन जी भट्ट ने बड़े हार्दिक प्रेम के साथ अपने भतीजे बालक रामशंकर का लालन-पालन किया और उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया। व्याकरण-साहित्यादि की समुचित शिक्षा देकर आयुर्वेद की शिक्षा के लिये अपने गुरु काशी के सुप्रसिद्ध वैद्यरत्न श्रीमान् पण्डित त्र्यम्बक शास्त्री के श्री चरणों समर्पित कर दिया। पं० रामशंकर जी बालकाल से ही बड़ो तीव्र बुद्धि के थे। अतः थोड़े समय में ही आपको आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान हो गया। इसी बीच आपका विवाह भारत-प्रसिद्ध नेता पूज्य महामना मालवीय जी महाराज की सौभाग्वती कन्या के साथ हुआ। उस समय पूज्य मालवीयजी के आग्रह से आप काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज में प्रविष्ट हुए, और वहाँ से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की। आज कई वर्षों से आप हिज हाईनेस महाराजाधिराज बनारस के राजवैद्य हैं। और निखिल भारतायुर्वेद महामण्डल कार्यालय काशी आने के समय आप अहमदाबाद में महामण्डल के कोषाध्यक्ष सर्व सम्मति से चुने गए। आप कई वर्षों से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आयुर्वेदिक फेकेल्टी के मेम्बर तथा परीक्षक भी हैं। आजकल आप ही श्रीधन्वन्तरि धर्मामृत औषधालय में अपने स्वर्गीय पिता और पितृव्य की कीर्ति को अक्षुण्ण रखते हुए औषधालय का संचालन कर रहे हैं। योग्यों के योग्य उत्तराधिकारी कम देखे जाते हैं। किन्तु आप इसके अपवाद हैं। आपके पिताजी के समय से ही श्री धन्वन्तरि जन्मोत्सव मनाया जाता है, जो कि अब तक बराबर होता जा रहा है। उस दिन आपके यहाँ औषधियों और बहूमूल्य खरल आदि का प्रदर्शन भी होता है।

हनूमानप्रसाद शर्म्मा (वैद्यशास्त्री)

प्रान्तीय सरकारों का विवरण ।

इस प्रसङ्ग में प्रान्तीय गवर्नमेन्ट, देशी राज्य, म्युनिस्पल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के पत्रों की प्रतिलिपि इस आशा से दी जा रही है, कि जिन-जिन प्रान्तों में गवर्नमेंट म्युनिस्पल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आयुर्वेद संस्थाओं की सहायता करते हैं, वहाँ के स्थानीय वैद्य विशेष उत्साह के साथ भगीरथ प्रयत्न करके विशेष सहायता प्राप्त करके विशेष सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करें, एवं जहाँ ऐसी व्यवस्थायें नहीं है वहाँ के वैद्य अन्य प्रान्तों के उदाहरणों को सामने रखकर आन्दोलन करें और सहायता प्राप्त करके अपनी आयुर्वेदीय संस्थाओं की उन्नति करने का भरसक प्रयत्न करें ।

आजकल अनेक प्रान्तों में गवर्नमेंट स्कूल कालेज और बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन स्थापित हैं, अतः वैद्य महानुभावों की जानकारी के लिये ऐसे विद्यालयों तथा बोर्डों की नियमावलियाँ तथा पाठ्य-प्रणालियाँ प्रकाशित की जा रही हैं । जिन-जिन प्रान्तों में ऐसी संस्थाएँ नहीं हैं वहाँ के वैद्य व्यवसायियों का कर्तव्य है कि वे वहाँ ऐसी संस्थाएँ स्थापित करने का प्रयत्न करें ।

Copy of letter No. 129/ V-578 dated February 9, 1935 from the
Deputy Secretary to Government, United Provinces Medical
Department, to the President, All India Ayurvedic
Mahamandal, Benares Hindu University
Benares.

In compliance with the request contained in your letter dated November 18, 1934, I am directed to furnish the following information regarding the development of Ayurvedic system of medicine in the U. P.

1. In 1933-34 there were 148 Ayurvedic dispensaries and seven Ayurvedic teaching institutions in the U. P. (aided by Government). The principal teaching institutions are the following; (a) The Ayurvedic College, Benares Hindu University, Benares and (b) The Rishikul Ayurvedic College, Hardwar.

2. The two teaching institutions above are respectively given an annual grant of Rs. 45,000 and Rs. 9,000 direct by Government. The other dispensaries and teaching institutions, including the dispensaries attached to the above two institutions, get grants from the

Board of Indian Medicine, U. P. at whose disposal Rs. 35,000 are placed annually by Government for distribution to deserving cases. It is hoped to restore the lump allotment at the disposal of the Board to it former figure of Rs 50,000 before very long, but owing to financial stringency Government have been compelled to cut down the allotment during the last three year. The Board makes these grants on the recommendation of its grants-in-aid committee, which consists of the chairman (Sir Wazir Hasan Kt.) and six members and amounts rangs from Rs. 60 to Rs. 3,000 per annum.

3. The Government have established a Board of Indian Medicine, the constitution of which is as follows.

(a) A president appointed by Government
(b) One member elected by the Executive Council of each of the four universities, viz (1) The Benares Hindu (2) The Aligarh Muslim (3) The Allahabad and (4) the Lucknow.
(c) Two representatives of the Ayurvedic teaching institutions in the U. P.
(d) Two representatives of the Unani teaching institutions in the U. P.
(e) Two registered Hakims to represent the registered hakims in the U. P.
(f) Two registered Vaids to represent the registered Vaids in the U. P.
(g) One member elected by the U. P. Vaid Sammelan
(h) One member elected by the Anjuman-i Tibbiya.
(i) Two members elected by the U. P. Legislative Council
(j) Two members nominated by Government.

The term of the members is three years and the headquarters of the Board are at Lucknow. The names of the existing members of the Board are given in the Civil List of the U. P. The functions of the Board are the following:—

(i) To advise Government in all matters connected with the organisation and development of the Ayurvedic and Unani systems;
(ii) To prescribe courses of study for examinations;
(iii) To appoint examiners and conduct all examinations under the Indian Systems of Medicine;
(iv) To confer certificates, diplomas and degrees on the candidates who are successful at the examinations held by it;
(v) To register medical practitioners;
(vi) To distribute grants placed by Government at the disposal of the Board; and
(vii) To appoint sub-committees to advise the Board on technical questions.

2. The Board of Indian Medicine. U. P., is the department of Government for the development of indigenous systems of medicine. The dispensaries are generally given grants by the Board on the condition that the patients are treated there free of charge. The activities of the Board represent fully what Government is doing in the U. P. for the development of indigenous system of medicine. An important and useful function of the Board is the registration of approved indigenous practitioners, in accordance with the rules approved by Government. This registration gives the practitioners a distinct status and confers on them certain advantages, such as authority to issue certificates of age, leave and fitness for service to employees of local bodies and permission to stock poisonous drugs.

3. Further information may be had from the reports of the Board for 1930–32 available in one volume from the S. P. S., U. P. Allahabad, at twelve annas per copy.

No. 10661—L. S. G.

Government of Bihar and Orissa,
(Ministry of Local Self-Government)

From
Maulavi Saiyid Taqi-ud-din,
Offg. Assistant Secretary to Government.
To
Kaviraj Pratap Singh,
Superintendent, Ayurvedic Pharmacy,
Benares Hindu University, Benares.
Patna, the 31st December 1935.

Subject:—Information in regard to activities of Ayurveda.

Sir,

I am directed to refer to the correspondence resting with your letter dated the 16th October 1935 addressed to the Hon'ble Minister Local Self-Government and to enclose herewith copies of letters no. 1187-157-IX, dated the 7th February 1935 and no. 129/V-578, dated the 9th February 1935 as issued by the Governments of the Central Provinces and the United Provinces respectively to the President, All India Ayurvedic Mahamandal.

There were altogether 41 Ayurvedic dispensaries in the province in 1928 viz. 27 maintained by the local bodies, 11 partially subsidised by them, 2 run by private individuals and only one attached to the Ayurvedic School at Patna maintained by Government. More recent information is not available in the Secretariat. The Ayurvedic School at Patna which is the only teaching institution of its kind is maintained out of provincial revenues. A copy of the Annual report for the year 1933-34 which contains all the details of its working is enclosed.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant.
Offg. Assistant Secretary to Government,

Annual Report for the year 1933-34.

Introduction:—To remove the long-felt want the Government of the Province established the Government Ayurvedic School in the July of 1926 with provisions to develop through training in all eight branches of this great Oriental Science. The school is in the 8th. year of its existence and is under the direct control of the Ministry of Local Self Government administered ordinarily by a Governing Body of Government nominated members.

Sessions:—As usual the new session of the school commenced from the re-opening of the school after the summer vacation on the 17th. of July, 1933.

Location:—The house occupied by the institution on the station road having been found to have offered but insufficient accommodation particularly for new activities and extensions such as openings of Indoor Wards, Dissection Hall and laying out of the herbal garden etc. the authorities were obliged to shift school to a more specious mansion Ali Manzil on the Frazer Road.

Studentry:—The complete strength of the scholars during the year under report was 130 as against 146 of the last year.

Governing Body:—The year under report had two sets of members on the Governing Body. The retiring body was ever keen and enthusiast in introducing several improvements towards the achievements of the aims of the institution. Our thanks therefore to them. The existing Governing Body have ever since the change in November, 1933 ungrudgingly bore additional strains put on it in consequence of the unprecedented quake of fateful January 15th. this year.

School Colony:—The premises of school having been rendered completely inhabitable and dangerous by the terrible quake, the question of housing the school else-where became a taxing problem with the Governing Body more since the ravages of the quake had spared none of the houses in the town to remain in its condition to be occupied by the school. Happily the vacant spaces of Khas Mahal in the New Kadamkuan area solved the housing difficulty. Formal permission of the Khas Mahal having been obtained for a plot in the said area, the school classes were held under canopies and some temporary sheds erected to lay up the school apparatus, Records, Medicines, Furniture and other articles.

Our grateful thanks to Mr. J. L. Merriman for his sympathy and permission to use the Khas Mahal land for the school purposes and to Mr. G. A. Gadbole, I. C. S. for his offer of number of canopies for our use and to Khan Bahadur Hamid, Special Officer, Patna Municipality for his sympathy and promptness in allowing all possible facilities of road, light and water etc, to us in our New Colony.

Advisory Committee:—A committee of experts and savants in the AyurvedictScience exists to advise and counsel the Governing Body in matters technical and conduct all the External Examinations of the school.

They have as well, with great dexterity and with utmost credit to themselves helped the Governing Body and the Government in deciding what title or degrees should be conferred upon the successful candidates of the school. As an emblem of real efficiency the title of "Graduate in Ayurvedic Medicine and Surgery" in place of the former "Ayurvedacharya" is admirable and envious which inspite of continued struggle the Hindu University did not have it. Laudable has been the interest evinced by the Advisory Committee in general and that by Mahamahopadhyaya Kaviraj Gananatha Sen, M. A. L. M. S. etc, in particular who even in his most delicate and weak health never evaded his presence in Patna whenever required for the good of the institution.

Library:—The total number of books in the library is 272 only as in the previous year, namely 47 books in English, 206 in Sanskrit, 15 in Hindi and 4 in Bengali.

Teaching staff:—The teaching staff of the school remained practically the same as in the year 1931-32. It consists of a Principal and seven professors.

Out-door Dispensary:—There is an Out-door dispensary attached to the school where free medicines are distributed to the public. Year after year the dispensary has been growing in popularity as is evident from the increasing number of patients attending the same for the last eight years. The dispensary has been of great help to the students of the school in their practical training in diagnosis and treatment of diseases. The work of the dispensary is carried on by the junior compounder with the assistance of the students on duty in batches.

Pharmacy:—Medicines distributed in the dispensary are prepared in the school pharmacy from raw materials under the supervision of the Vaidya-in-charge of the dispensary. The pharmacy work is carried on by the Head Compounder and two menial servants. Students also attend the pharmacy class in batches and learn the method of preparation of medicines. The department is greatly helped by the students, attending the pharmacy class, in the preparation of medicines.

Museum:—The school has got a museum of its own where specimens of different kinds of herbs, minerals and drugs are collected to enable the students to identify them and study their properties. The museum contains at present kinds of such specimens. It receives grant from the Government with the help of which the number of samples have been increasing every year. Medicinal herbs and plants upon the use whereof the Ayurvedic system of medicine chiefly depends are grown within the school compound. The students derive much benefit thereby as they get first hand practical training of distinguishing one herb from the other.

Science Department:—The department contains a physical and chemical laboratory on a small scale, where training is given to students by practical experiments. The equipment of the laboratory has been increased with the help of the Government grant. It is hoped that this department will be of great assistance in doing the research work of the Ayurvedic system.

Anatomical Section:—This section contains a large number of models and charts which are shown to the students in the anatomy and Physiology classes. The demonstrations are very helpful to students in grasping the subjects intelligently and thoroughly. Dissection of goats, frogs etc. were also made several times during the year under review and the students took great interest in them.

Kas Department:—The department has been doing very useful work in teaching the students to prepare important Chemical Compounds of Ayurveda. The dispensary gets its supply to a great extent of reduced metals, medicines and perpared Chemical Compounds from this section. It has got a large number of samples of Chemical Compounds prepared by the students under the supervision of the Professor-in-change.

Pathological Department:—This department contains a small laboratory with necessary apparatus and arrangements for the chemical tests of urine.

Shalya Department:—This department contains apparatus for Shalya Practical demonstrations according to the theories and Shastric formula of Sushruta.

Shalakya Department:—The department deals with the treatment of the diseases of eyes, ears, nose and throats.

Athletic Club:--The club has been in charge of Babu Sukhram Prasad a member of the teaching staff of the school, who is its President. The club has introduced various shorts of games for the students such as Foot-ball, Badminton, Tennis, Hocky etc. Several friendly and inter-class matches of foot-ball were played during the year under review and the students took keen interest in them.

Students Association:—The aim of the association is to improve the general knowledge of the students by writing essays and holding debates on medical and other subjects involving research.

There is also common-room attached to this association where a large number of medical and literary books and Journals subscribed for by the students are available to them and are made use of by them in their hours of leisure and at evening from 5 P. M. to 6 P. M. The association and the common-room are under the supervision of Kaviraj Bidhubhusan Sen, a professor of the school who is the President of the association.

Poor Boys' Fund:—The fund has been started with a view to help the poor students of the school. The chief source of income of the fund is the amount subscribed voluntarily by the professors and students of the school the minimum amount being annas -8- per year. The fund remains under the control of the Principal.

Income and Expenditure:—The total expenditure of the school for the year 1933-34 was Rs. 19,156-0-3 only as against Rs. 18,054-15-6 in 1932-33. The income from fees and fines during the year was Rs. 2,376-7-0 as against Rs. 2,804-9-0 in 1932-33.

Examination:—The final and Preliminary examination of the school for the year 1933 commenced from the 22nd. April and continued upto 2nd. May. Ayurveda Panchanan Pandit Jagannath Prasad Sukul and Kaviraj Pratap Sinha came and conducted the examination.

It is a matter of great satisfaction to note that out of the 20 students in the Final Examination 17 were successful, 9 being placed in the 1 st. Division, 3 in the 2nd. Division and 5 in the 3 rd. Division and out of the 39 who sat for the Preliminary Examination 34 came out successful 5 being placed in the 1 st. Division, 15 in the 2nd. Division and 14 in the 3rd. Division.

Of 6 students who sat at the Supplementary Final and Preliminary Examination held in the month of October, 1933 all were successful.

The results and the names of the examinees are given in Appendix A.

District Board Scholarships:—There are scholarships from the District Boards as noted below:—

(1) Champaran...	One	scholarship	of	Rs.	12-	only
(2) Darbhanga	,,	,,	,,	,,	15-	,,
(3) Gaya	,,	,,	,,	,,	15-	,,
(4) Manbhum	,,	,,	,,	,,	10-	,,
(5) Monghyr	,,	,,	,,	,,	12-	,,
(6) Patna	,,	,,	,,	,,	10-	,,
(7) Puri	,,	,,	,,	,,	20-	,,
(8) Palamu	,,	,,	,,	,,	15-	,,
(9) Shahabad	,,	,,	,,	,,	10-	,,
(10) Saran	,,	,,	,,	,,	10-	,,
(11) Nepal Government ...	Ten scholarships Nine of Rs 20- and One of Rs 30- only					

Principal's Remark:—The baneful effect of the last terrible earthquake has by no means been insignificant and negligible and we have been no exception to its wide and extensive ravages. In the most miserable plight have been the students the very main interest of our school. The staff has been equally miserable. Furniture and other articles in considerable number both of the school and dispensary have been damaged and broken by tremours, by fall of the roofs and walls and not least through transplantation to our present colony.

Classes are being held either in the open or under canopies in all weathers. All these were enough to embrace the Governing Body and the Principal but their keen sense of duty baffled all confusions. But there is a silver lining behind the darkest cloud. It has afforded opportunities for the display of the latent faculties in our staff and students. Staff has been admirably co-operating with me in maintaining the standard of our efficiency. Students have learnt to render mutual help and nurse their sick fellows with great discipline under the supervision of one of their professors which affords them the additional opportunity for clinical training. Despite all odds by way of accomodation and others the Dispensay has been preparing and stocking for free distribution to the patients medicines of right standard and efficacy. The distress of the quake stricken area awakened the students to the sense of the service and sacrifice they have also imbibed from their Ayurvedic study. To mitigate the sufferings of the people these students in batches rendered the keenest service and most efficient aid all over the stricken area for sufficiently a long period while a centre of theirs still exists at Muzaffarpur as the suffering there was the greatest. These servants of humanity had at their disposal the huge stock of all ordinary and even costliest Medicines of the Ratnaker Aushadhalaya, Hajipur so generously offered by its proprietor for free distribution among the sick. Finally the Principal has to express his sense of personal gratitude to the president Mr. Justice Verma for his ready responses to him.

President's Remarks:—The President and the members of the Governing Body regret that the terrible earthquake in January taxed the resources of the school to its utmost capacity but they are glad to note that the zeal and tact of the Principal and the loyal support of the staff under him did not allow this calamity to interfere much with the teaching in the school. The students also showed great courage and power of endurance in continuing their studies as well as doing relief work at various centres.

The list of the out-gone Governing Body

(1) The Hon'ble Mr. Justice Kulwant Sahay—President.
(2) The Principal Ayurvedic School.—Secretary.
(3) Babu Sukhram Prasad—Representative of the teaching staff.

(4) Babu Kuarnandan Sahay, Vakil, Patna City.
(5) Babu Guru Charan Sinha, „ „ „
(6) Babu Laldher Prasad Advocate, Patna.
(7) Babu Madandhari Singh, Zamindar, Dharhara, Patna.

The list of the present Governing Body

(1) The Hon'ble Mr. Justice S. P. Verma—President.
(2) Babu Lakshmikant Jha.
(3) Babu Bishundeo Narain Singh.
(4) Babu Guru Sahay Lal.
(5) Babu Shashi Shekhar Prasad Singh.
(6) Pandit Harinandan Jha.
(7) Pandit H. N. Chaturvedi—Principal and Secretary.

There were nine meetings of the Governing Body in the year under review.

Number of patients:—The number of patients treated in the out-door dispensary during the last eight year is as follows:—

Dispensary was started on 12th. August, 1926.

Years	Number of patients.
1926—27	7,689
1927—28	31,096
1928—29	42,257
1929—30	46,087
1930—31	52,859
1931—32	56,706
1932—33	61,941
1933—34	55,686

Out of these patients treated in the year 1933-34, 12,292 were new patients. Amongst the new patients 6,218 were mails, 2,419 females 2,221 male children and 1,434 were female children. Patients suffering from all sorts of diseases attended the dispensary but the special diseases which were treated with great success are on the following:—

Rheumatism, Luccorhea, Abdominal Tumour, Chronic fever, Enlarged liver, Spleen, Aneamia, Jaundice, Dropsy, dispepsia, and Pthisis etc.

The shifting of the Dispensary to a locality like that of Ali Manjil in the Fraser Road was enough by itself to bring a sudden fall in attendance of patients and what attendance would remain is due to the wonderful efficacy of the medicine and the growing faith of the people in the system.

Advisory Committee:—The school has got an Advisory Committee consisting of three members viz. Mahamahopadhyaya Kaviraj Gananath Sen, Saraswati M. A., L. M. S., of Calcutta, Ayurveda Punchanan Pandit Jagannath Prasad Shukul of Allahabad and Kaviraj Pratap Sinha of Benares Hindu University. There were six meetings of the Committee during the year under review.

All Communications to Government should give the Number, Date and Subject of the previous correspondence and be addressed to the Secretary of the Department concerned.

All Communications to Government should give the Number, Date and Subject of any previous Correspondence and be addressed to the Secretary of the Department concerned.

Government of Bengal

Local Self-Government Department,
Medical Branch.

From
Babu Rebati Raman Datta, M. A.,
Assistant Secretary to the Government of Bengal,

The Hon. Sir B. P. Singh Roy, Kt.
Minister-in-charge

To
Kaviraj Pratap Sinha, Rasayanacharya,
President, All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.
Calcutta, the 21st January 1935.

Sir,

With reference to your letter dated the 19th November 1934, asking for certain informations relating to Ayurvedic Institutions in Bengal it is regretted that Government cannot directly supply these informations.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. R. Datta
Asstt. Secy. to the Govt. of Bengal.

Government of Assam

The Governor and the Minister of Local Government.
Letter No. 4447 L. S. G.
L. S. G. Department.
Medical Branch

From,
Srijut Nagendra Nath Phukan, B. L.,
Under Secretary to the Government of Assam,

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.

Shilong, the 11th December 1934

Sir,

I am directed to refer to your letter of the 19th November 1934 asking for the supply of certain particulars about Ayurvedic institution etc in Assam and to say that this Government have no information as to the number of such institutions in the province and how many of them are teaching institutions. No grant is paid by Government to any such organisation but a municipal board was only recently allowed by Government to contribute Rs. 500- per annum towards a private charitable Ayurvedic dispensary at Dibrugarh. As regards question (4) only two students in Ayurvedic Colleges have so far been assisted.

Your obedient servant,
Sd. N. Phukan
Under Secretary to the Government of Assam.

Minister in Charge—The Hon'ble Dr. BA MAW,
Bar-at-law,
Secretariat, Rangoon,
Telegraph Address—
Secretary—QUYATTILIN.

No. 528 SY 34 (1276).

Government of Burma

Ministry Of Education

Public Health Department.

From

Mr. R. M. MacDougall,
Secretary to the Government of Burma,
Education Department.

To

The President,
All India Ayurved Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares, U. P.
*Dated Rangoon,the 24*th—December 1934.

Subject :— Information about Ayurvedic Institutions in Burma.

Sir,

In reply to your letter, dated the 23rd November 1934, I am directed to say that the Ayurvedic System of medicine is not an indigenous system of medicine as practised by the people of Burma. The Government of Burma does not keep any census of the Ayurvedic Institutions in Burma nor makes any grant to any such institution.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. Illigible.
For Secretary.

The Ministry of Health,
P. O. Box No. 500,
Colombo, 8th December, 1934.

Sir,

With reference to your letter dated 23rd November, 1934, addressed to the Hon'ble the Minister for Local Administration, which has been referred to this Ministry for disposal, I am directed by the Hon' ble the Minister for Health to state as follows:—

(1) It is not known how many Ayurvedic Institutions there are in the Island.

(2) There are two Colleges—the College of Indigenous Medicine in Colombo, and the Lanka Ayurvedic Medical College in Jaffna.

(3) An annual grant of Rs. 50,000– is made to the Board of Indigenous Medicine which runs the College of Indigenous Medicine, and small grants are made to a number of dispensaries at which free treatment is provided.

(4) As in (3). A proposal to introduce an Ordinance for the registration of Ayurvedic practitioners is under consideration.

I am, Sir,
Your obedient servant,
Sd. Cl. Tibucy
Secretary to the
Minister for Health

The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University,
Benares.

It is requested that in future communications on this subject, the no. and date of this letter, and the distinguishing letter above the no. as given opposite, may be quoted, and the reply addressed to

The Surgeon General
With the Govt. of Bombay, Poona.
The Address—Hospitals Bombay, Poona.

No, 258|B of 1934
Office of the Surgeon-General
With the Govt. of Bombay.
Poona 20th December 1934.

FROM,
THE SURGEON-GENERAL,
WITH THE GOVERNMENT OF BOMBAY, POONA.

TO.
The President,
All-India Ayurvedic Mahamandal,
Benares Hindu University,
Benares.

SUBJECT:—
Information about Ayurvedic Institutions in the Bombay Presidency.

SIR.

With reference to your letter dated 19th November 1934, addressed to the Hon'ble Minister, the Local Self Government in this Presidency, which has been forwarded to this Office for disposal, I have the honour to state that it is regretted that the information about Ayurvedic institutions required by you is not available in this office.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sign Illigible
I. M. & S., B. M. S.
H. E. 19-12 For Surgn. Genl. with the Govt. of Bombay.

No. 1117-157-IX

Government of the Central Provinces

Medical Administration and Public Health Department

From,
R. N. Banerjee, Esqr., I. C. S,
Revenue Secretary to Government,
Central Provinces.

To
The President,
All-India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.

Dated Nagpur, the 7th February 1935.

Subject—Information in regard to Ayurvedic institutions in the Central Provinces and Berar.

Sir,

I am directed by the Government of the Central Provinces (Ministry of Medical Administration and Public Health) to refer to your letter dated the 19th November, 1934, on the above subject and in reply to forward the following information as requested by the All India Ayurveda Mahamandal.

1. There are 103 Ayurvedic institutions in this province.
2. Three of them are teaching institutions.
3. No recurring grants are paid by Government to any of these institutions. Non-recurring grants are paid by Government subject to budget provision on the merits of each case.
4. Ten scholarships of Rs. 20 each per mensem are given by Government to students of this province for the study of the Ayurvedic system of medicine at the Benares Hindu University.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd- R. N. Banerjee
Revenue Secretary.

No. 18666 Medl.

From,
P. Marsden, Esquire, I. C. S.,
Secretary to Government, Punjab,
Transferred Departments.

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal, Benares.

Dated Lahore, the 13th May, 1935.

Subject:—Ayurvedic Institutions.

Sir,

In reply to your letter without number dated the 19th November 1934, on the subject noted above, I am directed by the Punjab Government (Ministry of Education) to enclose a statement embodying the necessary information.

2. In 1930, Government decided to give grants-in-aid towards the pay of Vaids and hakims employed by District Boards, but the offer was accepted by seven District Boards only. These grants were paid for two years, but on account of financial stringency no grants were made thereafter.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. Illigible.
Superintendent Medical,
for Secretary to Government, Punjab,
Transferred Departments.

A statement showing the Ayurvedic Institutions in the Punjab.

Locality	No. of Ayurvedic Institutions.		Grant in aid from Government	Remarks
	Teaching	Others		
Multan	—	5		
Lyallpur	—	1		
D. G. Khan	—	1		
Kangra	—	14		
Ludhiana	1	—		
Zira	—	1		
Hissar	2	44		
Rohtak	1	9		
Karnal	—	4		
Ambala	—	4		
Simla	—	3 (Two are combined Ayurvedic and Unani Dispensaries)		
Lahore	2	—	Rs. 5, 333-5-4	D. A. V. College = 2666-10-8 Islamia College =2666-10-8
Amritsar	—	1 (dispensary)		
Gujranwala	—	1 (dispensary)		
Rawalpindi	1	2 (dispensaries)		
Gujar Khan	—	2 (dispensaries)		

D. Dis. No. 1027 of 34-LGB.

Huzur Cutcherry,
Trivandrum, 2″ November 1934.

To,
Kaviraj Pratap Sinha Rasayanacharya Esq.,
President, All India Ayurveda Mahamandal
Benares Hindu University,
Benares.

Sir,

With reference to your letter, dated the 30th September 1934, to the Private Secretary to His Highness the Maharaja of Travancore, re: the supply of certain information relating to the Ayurvedic institutions in the State, I have the honour to forward herewith the information asked for therein. A copy of the Administration Report of the Department of Ayurveda for 1108 M. E. (1932-33) is also enclosed.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. Illigible.
Chief Secretary to Government.

Ayurvedic Institutions in Travancore.

There are in all 262 Ayurvedic institutions in the State, as shown below :—

1.	Government Ayurveda Hospital	...	1
2.	Do Pharmacy	...	1
3.	Grant-in-aid Hospitals	...	3
4.	Grant-in-aid Vaidyasalas	...	127
5.	Recognised Vaidyasalas	...	125
6.	Government Ayurveda College	...	1
7.	Aided High Schools	...	4
			262

To promote the science of Ayurveda and Ayurvedic treatment in the State, a separate department was organised about half a century ago. The department is now in a flourishing condition and the scope of its activities is steadily widening. To meet the growing demands of the department, the State is incurring increased expenditure year after year. The Department comprises of two branches, viz., the medical and the educational, each under the control of an independent officer.

On the medical side, there is a Government Ayurveda Hospital in the capital city. Here, medicines are dispensed free to all people alike and the institution is getting more and more popular as years go by, as seen from the increasing number of in-patients and out-patients that resort to it. There are 3 Aided Ayurveda Hospitals and 127 aided Vaidyasalas (Dispensaries), besides 125 State Recognised Vaidyasalas distributed over the country. The 3 private grant-in-aid Hospitals receive a grant of Rs. 50 each per mensem from Government. Of the 127 grant-in-aid Vaidyasalas (Dispensaries) in the state, 4 receive a grant of Rs. 30 each per mensem, 9, Rs. 25 each, 34, Rs. 20 each and 80, Rs. 15 each. There are also several private reputed Vaidyans of long standing. Lady Vaidyans and Vaidyans belonging to backward communities are specially encouraged by the award of grants-in-aid. Ayurveda Physician of hereditary families are encouraged by the award of honoraria, civil pensions etc., by the Palace. Besides the treatment of general diseases, there are specialists in Balachikitsa and Marma chikitsa and for the treatment of poison cases and of eye diseases. The state also encourages Vaidyans practising in the Sidha and Unani systems of treatment. The Municipalities in the State are also encouraging Ayurvedic institutions established within their jurisdiction by awarding grants out of their funds.

There is a Government Ayurveda Pharmacy which is intended to meet the demand for the supply of prepared medicines to the Government Ayurveda Hospital and to impart practical training to the students of the Ayurveda College in the preparation of medicines. About 6 months back, a selling branch was opened in the Pharmacy with the object of selling medicines of standard quality to the public at comparativelv cheaper rates than are obtaining in other private pharmacies which are not a few in the State. Steps are in progress for the opening of an Ayurveda Herbarium on a large scale for rearing rare medicinal herbs and for affording facilities to the students of the Ayurveda College to familiarise themselves with the different varieties of herbs. To supervise the work of the Ayurveda medical institutions in the State, there is a separate officer under Government designated as "the Inspector of Ayurveda".

On the educational side of the Department, there are five teaching institutions. One is the Government Ayurveda College at the Capital of the State and the remaining four are aided Ayurvedic High Schools in the moffusil.

The four Aided High Schools receive a monthly grant of Rs. 30- each per mensem from Government. They are correlated to the Government Ayurveda College at the capital. Education in Ayurvedic Science is encouraged by the grant of 40 scholarships to the students of the college till they finish the 5th year course and appear for the diploma of Vaidyakalanidhi. The highest degree awarded by the College is the "Ayurveda Achariya". A gold medal known as "the Shasatiyabdapurthi Gold Medal" has been lately instituted for award each year to an Ayurveda Vaidyan who writes the best scientific account of a successful treatment according to Ayurveda. Stipends and scholarships are awarded to students who go for higher studies in Ayurveda outside the State. At present, there is a scholarship-holder from the State in the College of Ayurveda of the Benares Hindu University. Rare Ayurvedic manuscripts are collected and published at Government cost. Very lately, a valuable book on Ayurveda intended for the use of practising Ayurvedic Physicians was published under the name of "Chikitsa Manjari". The Ayurvedic educational institutions in the State are under the control of the Principal of the Government Ayurveda College.

L. Dis. 3429-1110

Office of the Diwan of Cochin,
Ernakulam,
Dated 6th December 1834.

From,
Rama Varmha Tampuran, M. A., B. Sc. (Lon), Bar-at-law,
Secretary to the Diwan.

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.

Sir,

Ayurvedic Institutions—Cochin State—particulars of.

Ref:—Your letter dated 2-10-1934 to the Private Secretary to His Highness the Maharaja of Cochin.

I have the honour to furnish the following information.—

There are altogether 191 Ayurvedic Institutions in the State, in 13 of which instruction is imparted. Of these 191 institutions, 17 are Vaidyasalas managed and supervised by Village Panchayats, 6 are institutions for the treatment of snake-bite and other poisons, one is a central institute from which medicines are supplied free to the 6 institutions, one is a vaidyasala for the treatment of Lepers and 2 are hospitals.

2. Each of the Vaidyasalas under the management of the Village Panchayats receives an annual recurring grant of Rs. 600 from the Government. The institutions for the treatment of poison cases are paid an annual grant of Rs. 300 and the Central Institute is entirely financed by Government and is unlike any other Government Hospital. The vaidyasala for treatment of Leprosy is also paid an annual grant of Rs. 600.

3. Of the two hospitals, one is run by the Government with State funds and the other is a private institution. Government have promised to contribute to the latter amounts upto a maximum of Rs. 30,000. More than half of it has already been paid.

4. Besides these, Village Vaidians and Scout Masters are also given every year special training in first aid in poison treatment at Government [expense. Medicines are also supplied free to persons so trained.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant.
For Secretary to the Diwan.

No. 347 of 1934

Subject:—Opening the Ayurvedic Dispensaries in the Kolhapur State.

From,
The Darbar Surgeon and Chief Medical Officer Kolhapur

To.
The President, All India Ayurvedic Mahamandal
Benares.

Kolhapur
Deccan 24th November 1934

Sir,

With reference to your letter No. 37 dated the 30th September 1934, I have the honour to request you to be so good as to furnish me information regarding the organisation of Ayurvedic Dispensaries either in British India or in Indian States.

At present the Kolhapur State has got one such Dispensary called the Ahilyabai Deshi Davakhana here established in 1896 in memory of the Late Lamented Maharani Shri Ahalyabaisaheb. The total expenses incurred on the same, comes to. about Rs. 1500 and some 30000 patients take advantage of the same, per year.

The information together with the detailed scheme, and the suggestions which [your mandal wishes the Darbar to do in the matter, may kindly be supplied to me in order to enable me to submit a Scheme to the Darbar in the matter.

Yours Sincerely
Sd. Illlgible.
Darbar Surgeon and Chief Medical
Officer Kolhapur.

H. 4. No. 12 of 1934-35.

Chief Medical Officer's Office,
Baroda, 13th. October, 1934.
16

From :—
The Chief Medical, Officer,
Baroda State, BARODA.

To :—
Tne President,
All India Ayurved Mahamandal Benares
Hindu University.
BENARES.

Subject :—Information about Ayurvedic dispensaries etc.

Ref :—Your letter No. 25 dated 30-2-34 addressed to the private Secretary to H. H. the Maharaja of Baroda.

Dear Sir,

In reply to your letter mentioned above I have to inform you as under :—

(1) There are in all four Ayurvedic dispensaries which are maintained by the State Medical Department and the local bodies.

(2) Besides there is one teaching institution in Pattan. (Sheth Ujamshi Pitambardas Ayurvedic College). One Rajkiya Sanskrit Mahavidyalaya in Baroda is maintained and managed by the State Educational Department. This Vidyalaya imparts instructions in the Ayurvedic system of medicines over and above the other subjects such as Astronomy, Astrology and Puranic literature.

(3) Sheth Ujamshi Pitambardas Ayurvedic College is maintained on the grant-in-aid system. About Rs. 12000/- (Twelve thousand Rupees) are spent every year. The moity being contributed by His Highness' Government and the other half is provided from the interest of Rs. 1,00,000- (One lac) donated by Late Sheth Ujamshi Pitambardas of Pattan in the year 1921.

(4) If donors come forward to contribute handsome amounts for opening Ayurvedic dispensaries, their applications are taken into consideration.

Yours faithfully.
Sd. R. B. Chardrothor
Chief Medical Officer,
Baroda State.

Private Secretary
to H. H. the Maharana Udaipur

The Palace, Udaipur Meywar
The 7th. October, 1934.

To,
Kaviraj Pratap Sinha Sahib,
President, All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.

Dear Sir,

Please refer to your letter dated the 2nd instant. The information required by you is as under:—

1. There are six Ayurvedic Institutions in Mewar,

(a) Ayurvedic class attached to Feteh Bhopal Brahma Vidyalaya, Udaipur.

(b) Sewa Samiti Ayurvedic Institution, Udaipur.

(c) Do. Do. Do. Do. Barapal.

(d) Do. Do. Do. Do. Gogunda.

(e) Dr. Narain Dutt's Ayurvedic Institution at Udaipur.

(f) Ayurvedic Institution at Bhilwara.

2. The Ayurvedic classes attached to the Feteh Bhopal Brahma Vidyalaya and Sewa Samiti Ayurvedic Institution, Udaipur, are teaching Institutions as well.

The Feteh Bhopal Ayurvedic classes are practically maintained by the State at an annual cost of Rs. 1,295

4. To popularise the system of Ayurvedic treatment, the State maintains the Ayurvedic classes in the Fateh Bhopal Brahma Vidyalaya at Udaipur and students are being prepared for the examination of Ayurveda Vidya Pith, Poona. These boys have read upto the Prathma or the Middle standard with Sanskrit as their optionals and will on their passing the Ayurveda examination be sent out as teachers to Primary Schools of the State at important centres where they will work both as Teachers and Vaids and will be placed in special grades of pay which are being reserved for them on the occurence of vacancies in higher grades of village School Teachers.

Yours faithfully,
Sd. Sinha
B. A., LL. B., Private Secretary.

All Communications to be
addressed to the Member Mahakma
Khas Kotah and not by name.
Tele: Address:—
'MANTRI'

No. 140 of 1933—1934,
9-1

From,
Rai Bahadur Pandit Bishwambhar Nath
Member, Mahakma Khas,
KOTAH STATE.

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University,
Benares.

Dated Kotah, the 26th October, 1934.

Sir,

With reference to your letter No. 1027 dated the 30th September, 1934, I have the honour to say that there are five marginally noted aided Ayurvedic Aushadhalayas in the State and the aid given to them by the State is noted against each. None of them is a teaching institution.

1. Ayurvedic Sarv Hiteshi Aushadhalaya, Kotah...... Rs. 15 p. m.
2. Sarafa Panchayat Ayurvedic Aushadhalya, Kotah... Rs. 15 p. m.
3. Ayurvedic Aushadhalya, Nizamat Mangrol, Kotah State Rs. 15 p. m.
4. Ayurvedic Aushadhalaya, Nizamat Chhipabarod, Kotah State Rs. 20 p. m.
5. Ayurvedic Aushadhalaya, Nizamat Digod, Kotah State, Rs. 15 p. m.

Besides these aided Aushadhalayas there are a few more in the State which are independent concerns and in the hands of ill qualified persons. Nothing authentic can be said about them.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant.

No............of 1934

From
The Private Secretary,
To H. H. The Maharaja Sahib Bahadur,
Kishangrah.

To
The President,
All India Ayurveda Mahamandal, Benares
Hindu University Benares.

Dated Kishangarh the 14th November, 1934

Dear Sir,

With reference to your letter dated the 2nd October, 1934, I write to say that there are no Ayurvedic Institutions in this State.

Yours faithfully
Sd. L. Singh
Private Secretary to H. H. the Maharajah,
Kishangarh State. (Rajputana)

Memorandum.

No. P 39

Office of the Personal Private Secretary
to H. H. Maharaja Sahib Bahadur,
Jodhpnr

Dated October 6-8-1934.

The President, all India, Ayurveda Mahamandal, Benares is informed that his petition dated 30th September, 1934 asking for certain information has been forwarded to the Home Minister, Government of Jodhpur, Jodhpur, for disposal.

Sd. Illigible.
Personal Private Secretary.

Government of Bikaner

No 4701 of 1934.

From
The Revenue and Home Minister,
Bikaner State,
Bikaner.

To
The President,
All India Ayurved Mahamandal,
Benaras Hindu University,
Benares.

No. of Enclosures, Dated 29-12-1934.

Dear Sir,

In reply to your letter of 30th. September, 1934, to the address of the Private Secretary to His Highness the Maharajah, I write to furnish you with the following information :—

(1 There are 3 Ayurvedic Dispensaries in the State, at Panchu, Ratnanagar and Phephana.

(2) There is one State aided Mohta Ayurvedic Pathshala at Bikaner.

(3) Rs. 122-8 p. m. are paid as grant-in-aid to Mohta Ayurvedic Pathashala by the State and Rs. 2, 403- p. m. are spent over the three Ayurvedic Dispensaries annually.

Yours faithfully,
Sd. Prem Singh
For Revenue and Home Minister.

Telegraphic Address:—
"BLIND"
No. 745

Jai Bilas Gwalior

27th Oct. 1934.

Dear Sir,

With reference to your letter dated the 30th ultimo, I write to inform you that you should directly correspond, in this connection, with the Chief Medical Officer, who will supply you the information you are in need of.

I wish your efforts be crowned with success.

Yours faithfully,
Sd. Illigible
Private Secretary
to H. H. the Maharaja Scindia.

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares.

Office of the Chief Medical Officer,
Kapurthala State.

No. 72 *Kapurthala, dated 13. 11. 1934.*

Kaviraj Pratap Sinha Rasayanacharya,
President All India Ayurveda Mahamandal Benares.

Dear Sir,

With reference to your letter No. 35, dated the 30th September 1934, to the address of the Private Secretary to His Highness the Maharaja of Kapurthala, I am to intimate to you that no Ayurveda. Teaching Institutions exist in Kapurthala State. With a view, however, to encourage Ayurvedic system of medicine stipends to the aggregate value of Rs. 85 per month are given to various Vaids, practising the system in different parts of the State.

Yours faithfully
Sd. Illigible.
Chief Medical Officer.

No. 110—340 G. 5560 E

From

Rai Bahadur, Diwan Gyan Nath, C. I. E.,
(Indian Political Service)
President, Council of Regency,
Nabha State.

To

The Presidant,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University,
Benares.

Dated, Nabha, the 12th January 1935.

Subject:—Supply of information regarding Ayurvedic institutions in the State.

Sir,

With reference to your letter No. 34, dated the 30th September, 1934, I have the honour to say that there are no Ayurvedic Institutions in this State, but that the Durbar have employed two Veds—one at Mandi Phul and one at Mandi Jaitu—for the benefit of the Public and these Veds are also supplied with medicines at State expense. In addition, there are five private individuals who are practising in the State as Veds.

I have etc., etc.,
Sd. Illigible
President, Council of Regency.

Copy of letter sent to various Municipal & District Boards.

Kaviraj Pratap Simha
Rasayanacharya
President
All India Ayurved Mahamandal.

Benares Hindu University
Benares..................*1934.*

Dear Sir,

On behalf of the All India Ayurved Mahamandal, I beg leave to approach you with the following lines and shall feel grateful if you kindly favour me with an early reply.

The Vaidya Sammelan of Mahamandal, at its meeting held last year at Sikarpur, has decided that the Silver Jubilee of the Mahamandal be held in a befitting manner next year. In this connection, we have to prepare various papers relating to Ayurveda and we have also in view to bring out a Volume giving a brief history of the activities of the Mahamandal, relating to Ayurveda. It is our view also to discuss and place before our public the present position of Ayurveda in the country. For this purpose we have to obtain various informations from different sources and I should feel very highly obliged if you could kindly favour me with the following informations at your earliest convenience.

(1) How many Ayurvedic Institutions are there in your Board ?
(2) How many, out of them, are teaching institutions ?
(3) What grants are paid to them by the Board ?
(4) What, in general, has or is being done by the Board to promote the interest of Ayurveda.

We count and depend upon the help and sympathetic co-operation of the Board and we earnestly hope that the same will not be denied to us.

Yours faithfully
Sd. K. Pratap Sinha
President
All India Ayurveda Mahamandal,

(All the Replies received to the above are given on the following pages. These have been addressed to the President, All India Ayurveda Mahamandal. Benares Hindu University.)

United Provinces

From

The Chairman,
Municipal Board, Lucknow.

No. 111-8-2950 *Dated 30-11-34*

Sir,

With reference to your letter No. nil dated 5-10-34, I have the honour to give below the information as required therein.

1. There are two Ayurvedic Dispensaries under the management of the Board.
2. None of them is a teaching institution.
3. All expenses of the above mentioned dispensaries are met by the Board.
4. The opening of these two institutions is a practical example of the Board to promote the cause of Ayurvedic system.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. Illegible, B. A. LL. B. Bar-at-law M. L.
Acg. Chairman Municipal Board.

* * *

From,
Chairman Municipal Board, Pratabgarh

No. II—114 Station Pratabgarh (Oudh) Date 13-10-34.

Dear Sir,

I give below answers siriatim to questions contained in your letter of October 8-1934.

(1) None ;
(2) Does not arise.
(3) Does not arise.
(4) There being no need in the town nothing is done by the Board.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Secretary for Chairman, M. B.

U. P. MUNICIPAL BOARD.

Rama Shankar.
M. A. LL. B., ADVOCATE,
Chairman Municipal Board.

No. 318 M. B.

SULTANPUR (Oudh)
Dated Octo. 12 1934

Dear Sir,

In reply to your letter d. 8th. instt. I am to say that there are only two Ayurvedic institutions i. e. Ayurvedic Malviya Aushadhalaya in Shawganj and Ram Aushadhalaya in Perkinsganj of which the former gets an annual grant of Rs. 70 from the Board of Indian Medicines, United Provinces, Lucknow.

2—None of the above are teaching institutions &

3—Owing to paucity of funds no grant has up till now been given by the Board to any of the above Aushadhalayas.

Yours sincerely,
Sd. Ramashankar

❀ ❀ ❀ ❀

From,
The Chairman,
Municipal Board, Rae Bareli.
No. 119 Dated October 13, 1934.

Sir,

With reference to your letter No. nil dated 8-10-1935 re furnishing information about the position of Ayurved, I have the honour to state parawise as under :—

1. None
2. None
3. None at all
4. Nothing absolutely

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. P. Clifford. M. A.
Secretary.

From
Mr. Mohd. Aijaz Hussain, Chairman,
Municipal Board, Meerut.

Dated 24th October 1934. *No. 608 XII-of 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 5th October 1934 I have the honour to say that the replies to your querries are as below:—

(1) How many Ayurvedic Institutions are there in your Board ? Two
(2) How many, out of them, are teaching institutions ? None.
(3) What grants are paid to them by the Board ? Rs. 600 annually to the one and Rs. 200 to the other.
(4) What, in general, has or is being done by the Board to promote the interest of Ayurveda ? Only grant is paid from this Board.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant.
Sd. Mohd. Aijaz Hussain Chairman.

* * * *

Municipality, Muttra.
Dated the 26th October 1934.

Dear Sir,

With reference to your enquiry regarding the Ayurvedic institutions in the Muttra Municipality, I am to inform you that as far as I could ascertain there are 5 Ayurvedic Institutions. Two, out of them are teaching institutions.

There are several Vaidyas who keep their own Dawakhana and do private practice. There is no public Ayurvedic Aushdhalaya under the name of Sewa Samiti. Rs. 25 monthly are paid to this institution by the Board as grant-in-aid.

Yours faithfully,
Sd. Jamuna Prasad Chairman.

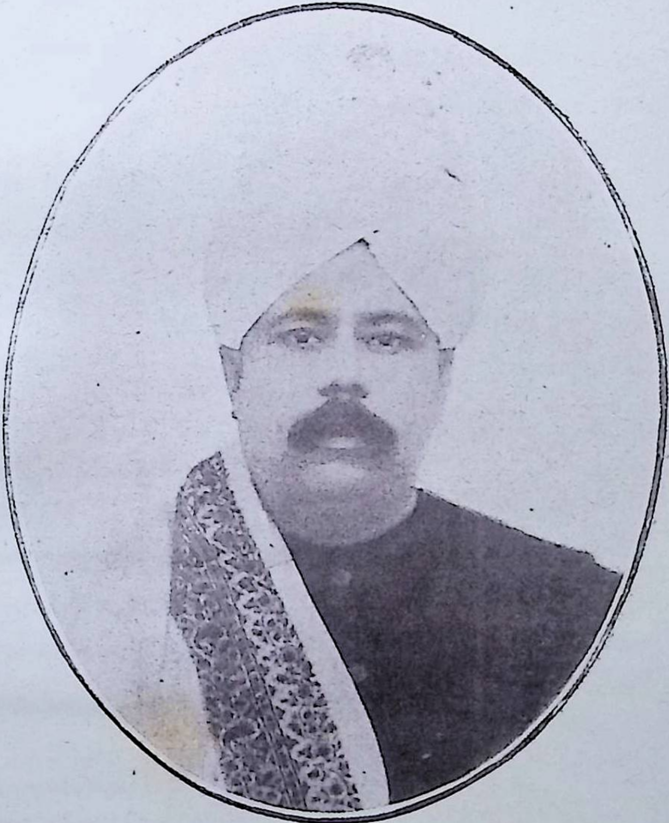

स्वर्गीय रघुनन्दनजी भट्ट राजवैद्य, बनारस।

[आप काशीके यशस्वी और सुप्रसिद्ध वैद्य थे]

जन्म वि सं. १९४३ निधन वि सं. १९८५

No. 383

Municipal Office,
Bijnor.
24 October 1934.

Dear Sir,

With reference to your letter dated October 14. 1934, I have to inform you as under:—

1. Nil.
2. Nil.
3. Nil.
4. There are a few Vaids in the town who maintain their medical halls, and treat patients.

Yours faithfully
Sd. Illegible
Chairman.

* * *

From

Seth Krishna Lal B. A. LL. B.,
Chairman, Municipal Board, Agra.

No. 6375 D. *Dated Agra the 31 X 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter No. Nil of the 7th October, 1934, I am giving here under the required information in seriatum:—

(1) This Board maintains two Ayurvedic Dispensaries of its own and gives grant-in-aid to one Charitable Ayurvedic Dispensary.

(2) None of these are teaching Institutions.

(3) The Board gives a grant of Rs. 15 p. m. to the Charitable Ayurvedic dispensary and maintains two of its own dispensaries exclusively. It also receives a grant of Rs. 75 per annum from the Board of Indian Medicines towards the Ayurvedic dispensaries maintained by the Board.

(4) The Board considers applications from charitable private Ayurvedic Dispensaries for grant-in-aid and on merits extends its helping hand to them. Some of such applications are before the Board.

One more Ayurvedic Dispensary has of late been granted an aid of Rs. 25 p. m. and the grant of the one already getting raised to Rs. 20 p. m. from 1-10-1934.

Yours faithfully
Sd. Illegible.
Chairman.

From The Medical Officer of Health,
Municipal Board, Cawnpore.

No. 1457 H Dated 27—X—1934.

Sir,

With reference to your letter dated 5th October 1934 addressed to the Chairman, Municipal Board, Cawnpore, I have the honour to inform you that we are helping indigenous system of medicine in the following ways:—

1. Cawnpore Municipal Board is running one Ayurvedic Aushadhalaya in Gwaltoli, a mohalla mainly inhabited by the labour population.
2. It gives grant-in-aid of Rs. 20 p. m. to Ayurveda Vidyalaya, teaching institution run by the local branch of the Mahamandal.
3. Rs. 530 p. m. are given as grants-in-aid to Ayurveda Aushadhalayas.
4. It has also given a plot of land on a nominal rent to Mahamandal for planting botanical herbs.
5. A non-recurring grant of Rs. 500 was also given to the Vidyalaya for building purposes last year.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. O. Trivedi
Medical Officer of Health

❀ ❀ ❀ ❀

No. 2016-VI-2

Municipal Office, Benares.

Dated. 12-10-1934.

Dear Sir,

Reference your letter dated October 3, 1934 for some information from this municipality, I write to inform you as follows :—

1. 4 Ayurvedic Institutions are in this municipality.
2. None of them is a teaching institution.
3. They are maintained by the municipality costing about Rs. 8500/—
4. 4 dispensaries are being run by the municipality with decent stock of medicines.
5. They are quite popular.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Executive Officer.

From

B. Banke Lal, B. A. Chairman
Municipal Board, Jaunpur.

No. 481/XIX-3 *Date 13-10-1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 7th October 1934 I beg to say that there are no Ayurvedic institutions either maintained or aided by this Board.

Yours faithfully,
Sd. Gur Lewak Lal.
Secretary,

* * *

From,

The Chairman, Municipal Board, Sitapur.

Returned with the following reply:—

(1 & 2 & 3) This board maintains no institution.

(4) This board has employed a Vaidya & distributes Ayurvedic medicines free.

Sd. Devee Prasad Secretary,
for Chairman 1934.

* * *

From,

The Chairman, Municipal Board,
SHAHJAHANPUR.

Dated 16. 11. 1934 No. 1869/XIX

Dear Sir,

Reference your letter dated 10-10-1934.

I regret to say that there are no Ayurvedic Institutions in the Board, nor does the Board, on financial grounds, find itself able to promote the interest thereof or pay any grants.

Yours faithfully,
Sd. Illegible
Executive Officer,

From, R. S. Khandelwala Esqr. Chairman.
Municipal Board, Bareilly U. P.

No. 1405 P. H.
X-5-1-31-32 *Dated 27-11-1934.*

Dear Sir,

In reply to your letter No. nil dated 5-10-34, I herewith supply the replies to the querries mentioned therein:—

(1) 9.

(2) Only 1.

(3) One of them is maintained by the Board; the total expenditure in 1933-34 was about 1843/-

(4) Nil.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. R. S. Khundelwal.

* * * *

No. 525 H. D. *Dated November 5, 1934*

From,
The Cnairman Municipal Board,
BUDAUN.

Dear Sir,

Reference your letter No. Nil dated 14. 10. 1934.

I am sorry to inform you that there are no Ayurvedic institutions in the Municipal Board, Budaun.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Chairman.

* * * *

From The Executive Officer,
Municipal Board, Almora.

No. 1248 XXX—1—182 Dated 29th October, 1934.

Dear Sir,

In reply to your letter dated 10. 10. 34, I am to inform you that the information asked for is nil.

Yours faithfully,
Executive Officer.

श्रीमान् प्राणाचार्य पं. सदानंद शास्त्री घिल्डियाल ।
खोला–श्रीनगर–गढ़वाल–युक्तप्रांत ।

From Secretary.
Municipal Board Naini Tal.

Dated 23—10—34 *No. 6165 of 1934*
XV-18

Dear Sir,

The answer to all your querries asked for in your letter dated 10th. October 1934 is in the negative.

Yours faithfully,
Sd. Illegible
Secretary.

* * * *

From the Chairman, M. B. Gonda.

Dear Sir,

In reply to your letter dated 8. 10. 34. I beg to state as follows:—

1. None. 2. Does not arise. 3. Nothing. 4. Nothing is being done in this connection.

Returned in original with this remark.

Sd. Illegible
Ex. Officer 13. 10. 34.

* * * *

From Chairman,
M. B. Dehradun.

Dear Sir,

In reply to your letter of 8. 10. 34. I beg to state that no Ayurvedic Institutions are managed or aided by the Dehra Municipal Board.

Sd. Illigeble.
E. O. D. Dun

Bihar

No. 1750 VI E. Patna City Municipal Office.

Dated the 31 October 1934.
1—11—34

Dear Sir,

Your letter dated the 16th October 1934. The statistics about the number of Ayurvedic Institutions within the Municipality are not available.

There is one Government Ayurvedic School which does not receive any help from the Municipality.

This Municipality has done nothing yet to promote the interests of the Ayurveda.

Yours faithfully
Sd. Illegible.
Additional District Magistrate.

✽ ✽ ✽ ✽

From Babu Akhileshwari Sahai, Zamindar,
Chairman, Bhagalpur Municipality.

No. 1893 XIII—5 *Dated Bhagalpur, the 25. 10. 1934.*

Sir,

In reply to your letter dated 17th instant I have the honour to inform you that this Municipality does not maintain Ayurvedic Institutions nor give any grant to them.

Your most obedient servant,
Sd. A. Saha
Chairman.

✽ ✽ ✽ ✽

From Babu Hira Lal Mahajan,
Vice-Chairman, Hazaribagh Municipality
HAZARIBAGH.

No. 673 *Dated Hazaribagh the 26th October, 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 18th October 1934, I beg to inform you that this Municipality has got no Ayurvedic Dispensary under its management.

Yours faithfully
Sd. Illegible.

श्रीमान् कविराज श्रीभूदेव मुखोपाध्याय एम्. ए. कलकत्ता।
लेखक—रसजलनिधि।

From The Secretary of the Municipality, Gaya.

No. G 1546—XX—I *Dated, Gaya, the 29th October, 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 16th October, 1934, addressed to the Chairman, I have the honour to inform you that there is no Ayurvedic institution under this Board.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible, Secretary.

* * * *

From Babu Harihar Saran
Chairman municipal Board,
CHAPRA.

No. 497 M. *Dated the 26th October 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 16. 10. 34, I have the honour to inform you as follows:—

1. There is one institution in the Chapra Municipality.
2. It is a teaching institution.
3. No aid is paid by the Municipality.
4. Land has been given for developing a botanical garden which is connected with the institution

Your most obedient servant,
Sd. Harihar Saran
Chairman.

* * * *

Bengal

CORPORATION OF CALCUTTA

Health Department.

No. H 614 *The 20. 11. 1939.*

From Dr. T. N. Majumdar, D. P. H., D. T. M., F. R. S. E.
Health Officer, Corporation of Calcutta.

Dear Sir,

Re : Ayurvedic Institutions.

In reply to the queries regarding the above, as mentioned in your letter dated 30. 10. 34. addressed to the Mayor, Calcutta Corporation which has been forwarded to me for disposal I beg to furnish the following information :

There is no Ayurvedic Institution entirely managed and maintained by the Corporation and there is no such teaching institution.

The total grant paid to different Ayurvedic Institutions is given below : (1933-34)

1. Jamini Bhushan Ashtanga Ayurveda Vidyalaya...170 Raja Dinendra St. 23750-0-0
2. Gobinda Sundari Ayurveda Hospital. 20 Ramakanta Bose Lane... 9650—0—0
3. Viswanath Ayurveda Mahavidyalaya 94, Grey Street. 14375—0—0
4. Svarnamayee Promada Sundary Ayurvedic Charitable dispensary 26 Balaram Mazumdar Street. 225—0—0
5. Calcutta Ayurveda Sabha 3, Kumartali Street. 5000—0—0
6. Vaidya Sastra Pith Hospital 3 A, Jeliatala St. 12450—0—0

Yours faithfully
Sd. Illegible.
Health Officer.

* * * *

Office of the Municipal Board Commissioners of Howrah.

No. 2379 G *The 22nd November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 30th October 1934, I beg to inform you that we have no Ayurvedic Institution under this Municipality.

Your most obedient servant
Secretary.

* * * *

From Rajendra Lal Sadhu Esq. M. A., B. L.,
Chairman, Hooghly-Chinsurah Municipality.

2475,29 *Dated, Hooghly, the 14th November, 1934*

Sir,

With reference to your letter dated 28-10-34 I have the honour to inform you that no ayurvedic institution is being subsidised by this municipal board and it does not maintain any register to record activity.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Chairman.

From Nawabjada K. Nasarollah, Vice-Chairman.

MUNICIPAL OFFICE, DACCA.

No. 5404 *The 20th Nov. 1934.*

I have the honour to inform you that there is no Ayurvedic Institution under the control or grants-in-aid of this Municipality.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible
Vice-Chairman.

* * *

From H. M. Shircore, Esqr., C. I. E., Chairman,

NARAYANGANJ MUNICIPALITY.

No 1748-xxii-i *Dated Narayanganj, the 9th. November, 1934.*

Sir.

With reference to your letter dated the 31st. ultimo, I have the honour to inform you that there is no Ayurvedic Institution here.

Your most obedient servant,
Sd. H. M. Shircore
Chairman.

* * *

From Babu Amita Ranjan Mukherjee, M. A. B. L.

Chairman, Suri Municipality.

No. *585, J. N. V.* *Dated Suri, the 2nd Novr. 1934.*

Dear Sir,

In acknowledging receipt of your letter dated 28-10-34, I have the honour to state that :—

(1) We have no Ayurvedic Institution connected with our Board, in any way, and therefore questions (2), (3) & (4) do not arise.

Yours truly,
Sd. Illegible,
Chairman.

LOCAL SELF-GOVERNMENT.

Office of municipal Commissioners of Bankura.

No. 2027—VIII—11 *The 1st. November 1634.*

Sir,

In reply to your letter of the 28th. October 1934, I have the honour to inform you that there is no Ayurvedic institution within this Municipality.

Your most obedient servant,
Sd. A. R. Brown
Chairman.

* * *

From Babu Nares Chandra Mitra, B. L.,
Chairman, Burdwan Municipality,

No. 3702 XII—6 *Dated Burdwan, 17 Novr : 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 28—10—34, I beg to inform you that there is no Ayurvedic Institution in this town of Burdwan and nothing can be done as there is no provision in the Budget for the purpose now.

Yours faithfully,
Sd. N. C. Mitra
Chairman.

* * *

From Babu Surendra Nath Halder, pleader.
Chairman, Jessore Municipality.

No. Des—890 *Dated Jessore, the 17th November 1919*

Dear Sir,

In reply to your letter of the 30th October last asking for certain informations regarding Ayurvedic Institution of this town. I have the honour to inform you that there is only one Ayurvedic Charitable Dispensary in this town opened by the Jessore District Board, the Municipality contributing Rs 50/— annually (3) We have got no other institutions of this kind in this Municipality nor we have done anything to promote the interest of Ayurveda.

Yours faithfully
Sd. Illegible
Chairman.

Assam.

From Sj. G. N. Bardaloi, M. A., B. L., Advocate,
Chairman, Municipal Board, Gauhati.

No. 1784 *Dated Gauhati, the 14th Novr. 1934.*

Sir.

With reference to your letter of the 2nd Novr. 1934, asking certain informations about Ayurvedic Institutions, I have the honour to say that there is no such institution within this Municipality except some Ayurvedic shops maintained by private Kavirajas.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.

* * * *

Office of the Municipality,
Cuttack.

The 5th November 1934.

No. 1957

Dear Sir,

Your letter of the 17th. October 1934, No Ayurveda institution draws grant from or is maintained by this Municipality.

Yours faithfully.
Sd. Illegible
Executive Officer,

* * * *

From Moulvi Abdul Majid Ziaosh-Shams, B. L., M. L. C.,
Chairman, Municipal Board, Dhubri.

No. *979* *Dated the 13th November, 1934.*

Dear Sir,

In reply to your letter, dated the 2nd November, 1934, I beg to inform you that (1) there is no Ayurvedic Institution in this Board. (2 to 4). Do not arise in consequence of the reply to (1)

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Chairman.

From, Babu Bramhananda Mahanti,
Chairman.
Municipal Office, Puri.

No. 1521 *Dated, Puri, the 16th November 1934*

Sir,

With reference to your letter dated the 18th October 1934, I have the honour to state that as the Municipality maintains no Ayurvedic Institution, the information required therein can not be supplied by this office.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

Andra--Dravid

From, M. R. Ry, C. Narasimham Garu, B. A., (Hons) B.L.,
Commissioner, Berhampore Municipality, Berhampore.

D. Dis. No. 4489-34. *Dated 22nd November, 1934.*

Sir,

Reference :—Your letter dated 12-11-1934 respecting certain information on Ayurvedic Institutions.

There are no Ayurvedic Institutions maintained by this Municipality except a dispensary called "The Municipal Indian Medical Dispensary, Berhampore," in which Ayurvedic medicines are used. The other information required in your letter is not available in this office.

Sd. Illegible.
Commissioners

❀ ❀ ❀ ❀

From, M. R. Ry. C. R. Karunakara Menon, Col., B. A., B. L.
Commissioner, Mangalore Municipality.

Dis. No. C. 1011/30-35 *6th December 1934.*

Sir,

Subject:—Your letter dated the 17th November 1934—re information about Ayurvedic Institutions.

With reference to the above letter I have the honour to inform you that there are two Ayurvedic Dispensaries maintained by the municipality. These are not teaching institutions. The entire cost of the maintenance of these Ayurvedic Dispensaries is met from Municipal funds. The dispensary is maintained to give treatment to the deserving poor.

Your obedient servant,
Sd. Illegible.
Commissioner.

Municipal Office,
Ootacamund. 6th December 1934.

R. C. No. L. Dis. Dl. 2572-34.

Sir,

Medical—Ayurveda—Information furnished. Reference:—Your letter dated 17th November 1934.

There are no Ayurvedic institutions in this Municipality.

Sd. Illegible.
Commissioner.

* * * *

From M. R. Ry. M. S. Jagannayukulu Nayudu Garu B. A.,
Commissioner, Kurnool Municipality, Kurnool.

No. X. L., dated 4-12-1934

Ref ;—Your letter dated 14-11-34.

Sir,

In reply to your above letter, I have to state that the Municipality maintains wholly at its cost one Ayurvedic Dispensary and it is not a teaching institution. In that institution a qualified Ayurvedic Doctor who passed 'Ayurveda Vidwan' from Sree Venkateswar Ayurvedic College, Tirupathi, two compounders, one male ward attendant and a cooly are employed.

Sd. Illegible.
Commissioner.

* * * *

From, M. R. Ry. L. R, Venkataraman Avl., M. A.,
Commissioner, Coimbatore Municipality,
Dated 11th December 1934.

Sir,

Ref: Information called for-Ayurvedic Institutions.

With reference to your letter dated 16-11-34, I have the honour to furnish the following replies to the questions raised therein.

1. There are two Ayurvedic Dispensaries maintained by this Municipality.
2. None of them are teaching institutions.
3. The two dispensaries are maintained entirely out of Municipal funds.
4. Nil.

Sd. L. R. Venkataraman;
Commissioner.

From J. P. Lasrado Esq., I. C. S.
Commissioner, Madura Municipality, Madura.
LDis, No. 15716 of 1934—A3. Dated 11th December 1934.
MUNICIPAL OFFICE, MADURA,

Sir,

Madura Municipality—Ayurvedic Dispensaries—Maintenance of information called for—furnished. Your letter dated 16-11-34.

The information called for in your letter quoted above is furnished below :—

1. There are two Ayurvedic dispensaries maintained at the cost of this Municipality.
2. & 3. Nil.
4, The two dispensaries are run by the Municipality itself at a cost of about Rs. 10,000/- a year and free medical aid is being given to the citizens attending the dispensaries.

Sd. J. P. Lasrado,
Commissioner.

* * * *

From M. R. Ry. A. K. Subbaraman Avl., L. M. & S., B. S Sc.
Commissioner-Delegate, Municipal Council, Tinnevelly.
P. C. 4356/34 *Dated 8th March 1935.*

Sir,

Ref : Your letter dated 16—11—34.

I furnish the following information seriatum.

(1) There are 3 Ayurvedic dispensaries within this municipality.
(2) None.
(3) None at present. The council has recently sanctioned a contribution of Rs. 300/- subject to the sanction of Government.
(4) Nil.

Sd. Illegible.
For Commissioner-Delegate.

* * * *

From H. C. M. Mclaughlin Esq.,
Commissioner, Trichinopoly Municipality.
TRICHINOPOLY.
No. R. C. 11838. *12th December 1934.*

Sir,

Subject:—Particulars connected with the Ayurvedic Institutions within the limits of this Municipality—furnished

Reference:—Your letter of the 16th November 1934.

This Municipality is not maintaining any Ayurvedic Dispensary. There are several Ayurvedic dispensaries maintained by private persons.

Sd. H. C. M. McLaughlin,
COMMISSIONER.

श्रीमान् स्वर्गीय डॉ. वामन गणेश देसाई

एम्. बी. लंडन (ओनर्स); एम्. सी. (लंडन); एल् एम्. एन्ड. एस्. (बम्बई)।

लेखक–भारतीयरसशास्त्र और औषधिसंग्रह ।

From M. R. Ry. C. Balagurunatham Pillai Avl., B. A.
Municipal Commissioner, Bellary.

Dis L. Gc. No. 1867, dated 8th December 1934
11-12-34

Sir,

Ref:—Your letter dated 14-11-34.

I furnish the information required by you on all the points referred to:—

(1) to (4) There are no Ayurvedic institutions in this Municipality. But there is one Ayurvedic Dispensary maintained by this Municipality for the free use of the people and a sum of Rs. 1000/- is spent annually for its up keep and establishment.

Sd. Illegible.
Commissioner.

* * * *

Bombay, Gujrat, Maharasta and Sind.

From Secretary Municipal Office,
Bombay, 21 November 1934.

Dear Sir,

With reference to your letter, dated (Benares) 12th November 1934, addressed to the "Chairman, Municipal Corporation, Bombay". I am directed by His Worship the Mayor of Bombay to inform you that there are no Ayurvedic Institutions maintained by the Municipal Corporation of Bombay. Some time ago the Corporation considered the question of starting Ayurvedic and Unani Dispensaries in the City but for financial reasons as well as for the fact that the Corporation is already maintaining a sufficient number of allopathic dispensaries in the City, the proposal was given up. The Corporation however pay grants-in-aid to a few of the charitable Ayurvedic Institutions in the City and for the current year they have sanctioned grants of Rs. 900 and Rs. 600 each to two Ayurvedic Institutions.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Municipal Secretary.

Nasik Municipal office.

No. Sani 455 of 1934-35. *Nasik 5th December* 1934.

Sir,

With reference to your letter dated 4th November 1934, I have the honour to supply the information in serial order of your questions as under :—

1. One Municipal Ayurvedic Dispensary.
2. Nil.
3. This querry does not arise.
4. There is a proposal under consideration for starting another Municipal Ayurvedic Dispensary.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Medical Officer of Health.

* * *

From B. H. Shringarpure, Esqr., B. A. LL. B., President,
City Municipality, Thana,

No. P-393 of 1934-35.
Municipal Office,
Thana the 17h Novr : 1934.

Sir,

With reference to your letter dated 5th Novr: 34, I have to inform you that this Municipality has not opened any Ayurvedic Institution nor does it patronise any.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.

* * *

From Dinkerrav Narbheram Desai Esquire, M. A. LL. B.
President Broach City Municipality, *BROACH.*

No. 1105 of 1934-35. *Broach 17th November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 3rd November 1934, I have to answer your querries as under.

(1) None.
(2) Nil.
(3) Nil.
(4) Nothing.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
President, B, C. M.

श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य पं. नागरलाल मोहनलाल पाठक।
प्रधानाध्यापक, उ. पी. आयुर्वेद महाविद्यालय, पाटण (उ. गुजरात)।

From Medical Officer of Health,
Sholapur Municipality.

No. 1749 *Sholapur 20th Dec. 1934,*

Sir,

With reference to your letter dated 10th November 1934 addressed to the Chairman, Municipal Board, Sholapur, I have the honour to state as under :—

1. Two.
2. Nil.
3. Nil.
4. The opening of an Ayurvedic Dispensary is under contemplation of the Municipality.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Medical Officer of Health.

Municipal Corporation Karachi.

No. G, 6 B/315—34 *20th November 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 2nd November 1934, I have to inform you that there is no Ayurvedic Institution in Karachi under the control of the Corporation. There are however a number of Private Ayurvedic dispensaries one of which is doing good work for the poor and which until recently was in receipt of a grant-in-aid of Rs. 1,600 per annum from the Corporation. The grant has held to be discontinued on account of a technical difficulty but the question of reviving the grant is under consideration. The Municipality also used to pay 2 scholarships each for the study of Ayurvedic and Unani systems of medicines as follows.

For the 1st and 2nd year	Rs. 30 p. m. each
For the 3rd year	„ 35 „ „
For the 4th year	„ 40 „ „

I enclose a copy of notice of motion from a Municipal councillor which is under consideration of the Corporation.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Deputy Chief Officer.

Notice of motion dated 22nd September 1934, from Mr. Kazi Khuda Baksha :—

"That the Corporation is pleased to sanction with effect from the next financial year the establishment of 2 Unani and 2 Ayurvedic Dispensaries to be located in such centres as may be selected by the Public Health Committee and the appointment of necessary staff for such dispensaries with qualifications prescribed by the Standing Committee on report from the Public Health Committee. The initial and recurring cost of the dispensaries be provided in the Budget."

Municipal Office,
19th November 1934.

* * * *

From Dowlatram Bulchand Esq., M.A., LL.B. Chief Officer.
Hyderabad (Sind) Municipality.

No. G-1157 of 1934 *13th Nov 1934,*

Sir,

With reference to your letter dated 2nd November 1934, I have the honour to state that this Municipality maintains an Ayurvedic Dispensary of its own at a cost of about Rs. 5600/-per year.

Your most obedient servant,
Sd, Illegible,
Chief Officer.

* * * *

From, The Chief Officer & Engineer,
Shikarpur Municipality.

No. 2263 of 1934 *6th November 34.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 2nd November 1934, I have the honour to reply as under:—

(1) There are four Ayurvedic Institutions.
(2) There is one teaching institution.
(3) No grant is paid to them by the Board.
(4) Nothing is being done by the Board to promote the interests of Ayurvedic.

Yours Faithfully,
Sd. Illegible,
Chief Officer & Engineer.

Central Provinces.

From, Capt. D. G. Karandikar M, B., B. S., D. P. H.,
Medical Officer of Health.
Jubbulpore Municipality.

No. H-117 *Dated Jubbulpore, the 1st November 1934,*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 22—10—34 to the Chairman, Municipal Board, I have the honour to inform that :—

(1) Here are three Ayurvedic Institutions run by the Committee.
(2) One of these is a teaching Institution.
(3) The Committee spends about Rs. 4350- p. A. over the Oshadhalaya.

All the Oshdhalayas are very popular and the public in general is appreciating their work.

Yours faithfully,
Sd. D. G. Karandiker.
Medical Officer of Health

❀ ❀ ❀ ❀

From The Secretary,
Municipal Committee, Bilaspur C. P.

No. 827 *Dated the 5th November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated the 27th Oct. 1934, I have the honour to inform you that only one Ayurvedic Dispensary is being maintained by the Municipal Committee, since January 1931 and the average expenditure is about Rs. 3000-(Three thousand) per year. There is no teaching institution nor the Committee is paying any grant in absence of any recognised Ayurvedic institution.

Your most obedient servant
Sd. Illegible.
Secretary

❀ ❀ ❀ ❀

From Mr. D. P. Shriwastav,
President, M. C. Damoh.

No. 1-Q-34. *Dated, the 31st Oct., 1934.*

Dear Sir.

With reference to your letter dated the 24th October 1934, I give below the information called for therein.

1, There are 6 Ayurvedic Institutions in this town.

2. There are no regular teaching institutions but in two Ayurvedic institutions where there are vaidyas holding Ayurvedic Mahamandal Acharya certificates, some teaching is done in them.
3. No grant is paid to any Ayurvedic institution by this committee.
4. This municipal committee is not doing any thing at present to promote the interest of Ayurvedic but it is contemplating to open one Ayurvedic institution from its fund.

Yours Faithfully,
Sd. Illegible,
President.

❀ ❀ ❀ ❀

From G. R. Trivedi Esqr. B. A. LL. B. President
CHHINDWARA.

No. 927 *Dated 1st. November.*

Sir,

With reference to yours dated 26th October 1934, I have the honour to inform you that the Chhindwara Municipal Board has no Ayurvedic Institutions, to none any grants are paid by the Board. I regret to say that this Board has hitherto done nothing to promote the interest of Ayurveda.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
President

❀ ❀ ❀ ❀

Office of the Secretary, Municipal Committee, Balaghat.

No : 762 *Dated 13-11-34.*

Your letter of the 27th ultimo. There is no Ayurvedic institution under the management of this Committee hence no information can be given.

Sd. H. S. Jhallay
Secretary, M. C.
Balaghat

From, The Secretary, Municipal committee,
Burhanpur.

Dated the 27th october 1934,

Sir,

In reply to your letter dated 23rb October 1934 I have the honour to state as under :—

As there are no Ayurvedic institutions under the management of this committee. I am not in a position to supply you with the required information. Besides the committee has no scheme under its contemplation in this connection.

Sd. Illegible,
Secretary.

❀ ❀ ❀ ❀

From The Secretary M. C. Wardha,

Dear Sir

In reply to letter dated 23-10-36 I beg to state that this Municipal Committee does not maintain an Ayurvedic Dispensary. It however pays an Annual Grant of Rs. 250 to the local Marwari Sewa Samaj Ayurvedic Dispensary.

Sd. Bhadyala
Secry. M. C. Wardha.

❀ ❀ ❀ ❀

From Chief Officer, M. B. Salari.

Dear Sir,

I beg to return herewith your letter with thanks.

The following information is supplied as desired :—

1 & 2. There is only one Ayurvedic Institution in this city which imparts Ayurvedic education.

3. This Municipality pays an annual grant of Rs. 300 to the Ayurvedic Institution.

4. Encouragement is given to the Ayurvedic Institution by paying it a grant of Rs. 300 per year.

Sd. Illegible
Chief Officer
16-11-34

From Secretary M. Committee, Betul.

Dear Sir,

In reply to your letter dated 26. 10. 34. I beg to state that there are no Ayurvedic Institution under this Municipality.

Sd. Illegible.
H. Secry. M. C. Betul

❀ ❀ ❀ ❀

Office of the President Municipal Committee, Bhandara.

No. 105] *Dated the 20th Dec. 34*

With reference to your letter dated 27-10-34, I have to inform you that there is no Ayurvedic Institution in my Committee nor there are any run by private funds. There are 14 or 15 private practicing Physicians.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
President.

❀ ❀ ❀ ❀

Punjab

From Secretary, Municipal Committee,
Simla.

No. 148 H *Dated 12-1-1935*

Sir,

With reference to your letter dated 20th October 1934, I am directed to inform you that there are two combined Unani and Ayurvedic dispensaries and one Ayurvedic dispensary in this Municipality. None of these however is a teaching institution. The total amount spent for medicines on these five dispensaries during the year 1933-34 was Rs. 2,599- which is likely to be exceeded next year owing to their popularity.

I have etc.,
Sd. S. Douman
Secretary.

From the Municipal Medical Officer of Health,
LAHORE.

No. 1251 H *Dated 19-12-1934.*

Sir,

With reference to your letter, dated the 18th October 1934, to the Chairman, Municipal Board, Lahore, I have the honour to give below the information asked for therein :—

1. There are no Ayurvedic dispensaries maintained by this Committee.
2. None.
3. None. But the Committee pay Rs. 500 as an Annual grant to each of the Anjuman Himayat Islam, Tibbia College and D. A. V. College which are private teaching institutions.
4. The Committee have sanctioned Rs. 10,000 for opening a Unani and an Ayurvedic dispensaries in Lahore and the provision for the same has been made in the Annual budget for the year 1935-36.

I have etc.,
Sd. Illegible
Municipal Medical Officer of Health, Lahore

* * *

From L. Wazir Chand Sikka B. A. (Hons), LL. B., P. C. S.,
Secretary, Municipal Committee, Rawalpindi.

No. 1701—M. *Dated 1-11-34*

Dear Sir,

In reply to your letter dated 19th October 1934 I have the honour to inform you that we do not maintain any Ayurved Institution.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Secretary.

* * *

From Dr. C. L. Sahni, D. P. H.
Municipal Medical Officer of Health, Sialkot City.

No. 725 *Dated the 15-11-194.*

Sir,

With reference to your Circular letter dated the 19th : October, 1934, to the address of Chairman, Municipal Committee, Sialkot, I have the honour to inform you that there is no Ayurvedic Institution in this town, and to promote the interest of Ayurveda the Municipal Committee has appointed a Vaid who is paid Rs. 30 per mensum from the Committee as detailed below:—

1—Pay..	Rs. 20 p. m.
2—Rent of Dispensary.	Rs. 3
3—Cost of medicines	Rs. 7
Total	Rs. 30 p. m.

Your most obedient servant,
Sd. Illigible D. P. H.
Municipal Medical Officer of Health.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chairman.
Municipality Board, Dera Ismail Khan.

Dear Sir,

The reply to your querries dated 27-11-34 is that there is no Ayurvedic Institution in this Municipality Committee. The reply to other questions (2-4) does not arise.

Yours Sincerely,
Sd. Kazi Ahmad.
President. 10. 12. 34.

❀ ❀ ❀ ❀

From The Chairman, M. C. Kohet

Dear Sir,

The reply to your querries dated 24-11-34 are as follows :—

There are no Ayurvedic Institution in the Municipality and no grants are paid in this account.

There are however private practitioners for Ayurvedic treatment but there is no teaching Institution.

Yours Sincerely,
Sd. Illegible.

❀ ❀ ❀ ❀

The Khushdil Mag. Amritsar.

No. 173/ E/2 *Dated 20-11-1934.*

Sir,

Reference your letter dated 6th inst. I have the pleasure to inform you that the Municipal Vedic & Unani dispensaries were started on 16th Dec. 1930.

(2) In the year 1933-34 in all the five Vedic & Unani dispensaries 83210 patients were treated and out of them there proportion was as following.

Male.	Female	Children
28505.	22528.	32177

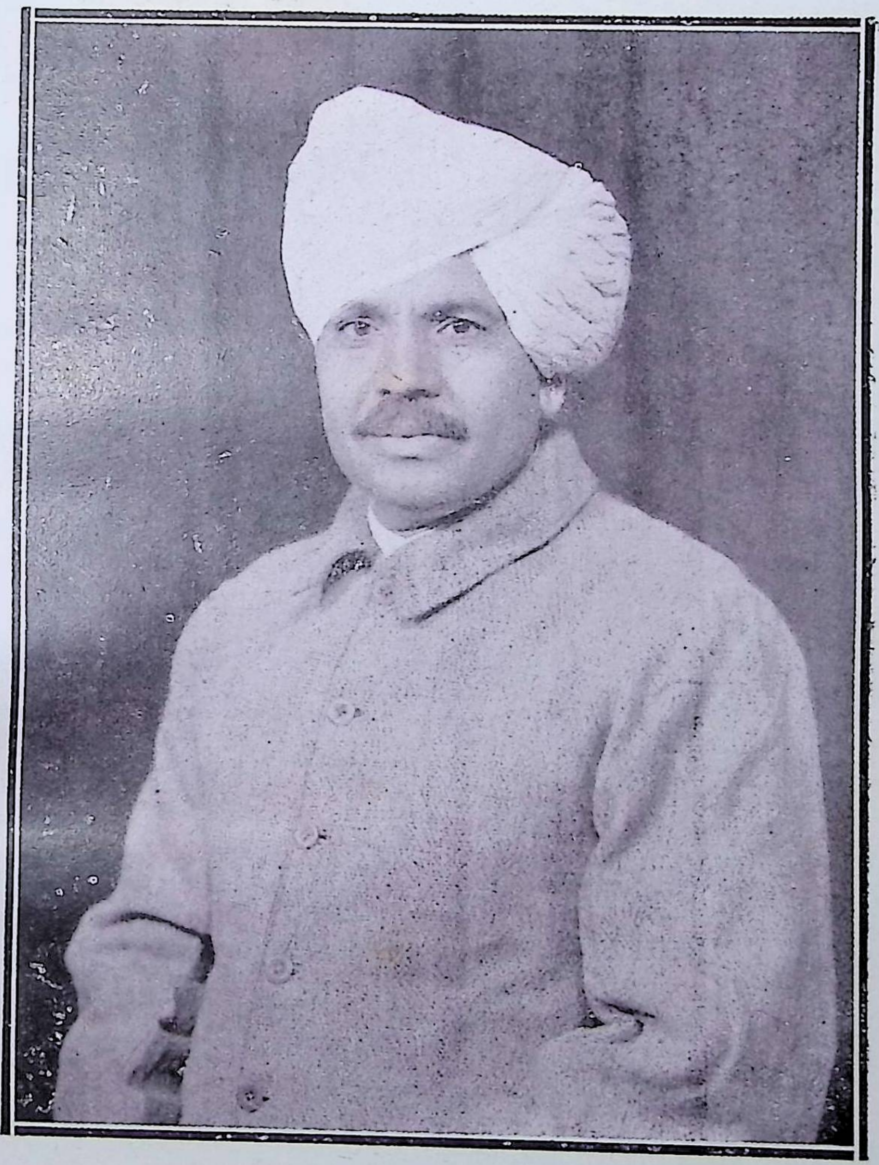

श्रीमान् पं. विश्वेश्वरदयालु स्वामी।

अर्श चिकित्सक, अजमेर।

आपके परिवारमें ५०० वर्षसे अर्श, भगन्दरादि रोगोंकी विशेष चिकित्सा प्रचलित है।

3. The Municipal Committee of Amritsar has spent Rs. 10433 this year. No income can be derived out of them, as they are purely free dispensaries.

The other dispensaries have not prepared there report yet & so I am unable to send anything regarding them.

Any service
Ever your
Sd. Illegible

❀ ❀ ❀ ❀

United Province

From The Chairman,
District Board, Lucknow.

No. 8, XII-1 (32-33) *Dated October 10, 1934.*

Dear Sir,

I am to acknowledge the receipt of your letter dated October 5, 1934, and to say that this Board maintains three Ayurvedic dispensaries at important places in the district and spends annually Rs. 4000/- on them. It is also giving grant to two other Ayurvedic dispensaries to the amount of Rs. 390/- per annum, all these dispensaries provide medical relief to rural masses free of cost and near their homes. The number of patients so treated during the financial year 1933-34 was 52949.

There are no teaching institutions under the management of the Board nor is any grant given by the Board to any such institution.

This Board is doing all what it can to promote the interest of Ayurveda.

Yours faithfully,
Brahma Datt Bajpai. M. L. C.
Chairman,

❀ ❀ ❀ ❀

From District Board office Sitapur.

D. O. No 604 *November 5, 1934.*

Dear Sir,

With reference to your note dated October 9, 1934. asking for certain information regarding Ayurvedic institutions I have to note below the information needed by you and to say that we are gladly willing to co-operate in the matter.

Yousr faithfully
Sd. Illegible,
Secretary.

1. There is one Ayurvedic Dispensary in the district directly maintained by the Board.
2. There is no teaching institution.
3. No grant is paid by the Board to any teaching institution but a grant of Rs 5/- is given to one Ayushdhalaya.
4. The Board has every sympathy with these institutions and is ready to help them in as much as it is possible.

From The Chairman, District Board, Etah.

No 675 *dated the 16th November 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 16th October 1934, I have the honour to inform you that 16 Ayurvedic. and 3 Unani Dispensaries are maintained by this Board and Rs 4,700/- have been provided to be spent on them this year.

Yours faithfully.
Sd. Illegible,
For Chairman.

* * *

From The Chairman. District Board Agra U.P.

No 548 *Dated Agra, the 22-11-1934.*

Dear Sir,

I am furnishing the information as asked for in your letter dated the 7th October 34.

1. There are 7 ayurvedic dispensaries maintained by the Board and 19 dispensaries aided by the Board.
2. There is no teaching institution in this district.
3. The Board is paying Rs. 2036/- annually as grant-in-aid to ayurvedic dispensaries.

This Board is doing its best to promote the interest of ayurved by maintaining a ayurvedic dispensaries and giving grant—in. aid to them.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
for chairman,

From, The Chairman,
District Board, Aligarh
Dated 26—10—34.

Dear Sir,

Reply to your letter of 16—10—34 is nil in this District Board.

Yours truly
Sd. Illegible.
Secretary D. B.

* * * *

District Board Office,
Bijnor, 31-10-34.

Dear Sir,

I am to inform you in reply to your P. C. of 14-10-34 reg. your certain, querries

1. There are 10 Ayurvedic and Unani Institutions.
2. There are no teaching institutions.
3. Four Hakims and Vaids are paid @ Rs 10— P. M. each, five Vaids @ 5— P. M. each and one @ 4— P. M. as grant-in-aid.
4. The Board is giving aid to Vaids for free treatment of the Public.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
for Chairman.

* * * *

From, The Chairman, District Board,
Saharanpur.

Dear Sir,

With reference to your letter dated 11—10—34 the required information is noted below :—

1. There are at present 5 aided Ayurvedic Institutions under this Board.
2. Two of these are teaching institutions as well.
3. The Board pays a grant-in-aid of Rs. 15- P. M. each.
4. To promote the interest of Ayurveda the Board has sanctioned aids to such deserving institutions.

Yours truly,
Sd. Illegible.
Chairman D. B.
25-10-34.

From, the District Board,
Muzaffarpur.

Dear Sir,

Ref : Your letter dt. 11th Oct. 34. I beg to say that there are no Ayurvedic Institutions under this Board, sometime back an aid was given to some of the Unani or Ayurvedic Aushdhalias in this district but that System is stopped for long. Hence the reply is in the negative.

Yours truly,
Sd. Illegible.
Secretary 20-10-34.

* * * *

From, The Chairman
District Board, Dehra Dun.

Dated the 23. 10. 1934.

No. 521

Sir,

I am in receipt of your letter dated the 11th October 1934, and wish to inform you that the Board has every sympathy with the promotion of Aurveda, but stringency of funds has always stood in our way. Inspite of all this difficulty, we have recently stablished one ayurvedic dispensary at Ranipokhri village which is reported to be doing good work.

2. There is no teaching institution under the Board nor the Board can assist any institution out of its funds at present.

Your most obedient servant
Sd. Illegible,
Secretary.

* * * *

From, The Chairman District Board, Jhansi.

Dated Jhansi, the 28. 11. 1934.

No. 743-iv-59-4

Dear Sir,

In reply to your query dated October 7, 1934 I beg to say as follows:—

(1) This board is maintaining six ayurvedic, one unani and one aided unani dispensaries,

(2) None,

(3) The board spent Rs. 5346--in the year 1933-34 as per details below:—

Rs. 4451—on the six ayurvedic dispensaries,
Rs. 715—on the unani dispensary and.
Rs, 180—as grant-in-aid to a unani dispensary in the district.

(4) This board has increased the number of Ayurvedic dispensaries in the district in comparison with allopathic ones, and is distributing medicines free of charge on an increased scale every year and has also provided a few instruments in each such dispensary. It has in view to increase the number still more so that every possible part of the district be benefitted by this system.

No doubt the annual grant of Rs. 200—given to this board by the Board of Indian Medicines is too inadequate, and as such further progress is a bit difficult.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Secretary for chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From The Chairman District Board, Fatehpur.

No. 476—xvii—47 *Dated 4—12—34*

Sir,

With reference to your letter Dated October 8, 1934 I have the honour to furnish as below the information required therein:—

1. There are seven (7) Ayurvedic Institutions in this Board.
2. None of them is a teaching institution.
3. This Board pays nearly the whole cost of their maintenance.
4. The measures taken to promote their interests are:—

a—Proposals for opening a number of such institutions have been sanctioned by the Board.

b—A supervisor has been appointed.

c—They are watched through inspections.

Your most obedient servant,
Sd. A. M. Panday.
Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chairman, District Board,
Rae Bareilly,

Dear Sir,

With reference to your letter Dt. 8. 10. 34 I beg to reply as follows :—

1. Only two.
2. None.

3 and 4. One Vaid is paid Rs. 30/- as pay and Rs. 15/- as cost of medicines for free distribution to poor and needy patients while the other gets a pay of Rs. 20- P. M. plus Rs. 10- a month for free distribution of medicines,

Yours truly,
Sd. Illegible.
Secretary, 28-10-34

From, The Chairman, District Board,
Partapgarh.

जनाब आली,

३०००) सालाना चन्दा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड परतापगढ़ रियासत से मिलता है। वी० एन० मेहता विद्यालय पर खर्च किया जाता है।

Sd. Illegible.
30-11-34.

* * * *

District Board Office,
Fyzabad, 5th. November, 34.

Dear Sir,

The following informations regarding Ayurvedic dispensaries which are wholly maintained or aided by this Board are furnished as desired in your D. O. Letter of the 8th ultimo.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Secretary

1. There are only 3 Ayurvedic dispensaries in this Board.
2. None of these are teaching institutions.
3. Two of them are wholly maintained by this Board and one is given Rs. 20/- as an aid.
4. These dispensaries are provided with medicines for free distribution and are regularly inspected and accounts checked by the Inspecting Officers.

* * * *

From, P. N. Singh, Esq., Secretary,
District Board, SULTANPUR.

No. 327/24-27-1 *Dated the October 12. 1934.*

Sir,

With reference to your enquiry dated 8. 10. 34, I have the honour to say that there are no Ayurvedic institutions whether teaching or medical maintained by this Board. We have appointed a vaid at Rs. 50 p. m. I may further add that there is no institution of this kind in the district.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
Secretary.

From, The Chairman,
District Board, Azamgarh,

Dear Sir,

With reference to your letter No. nil Dt. 8-10-34, I beg to say that no Ayurvedic Institutions are either maintained, aided or supervised by this Board.

Yours Faithfully,
Sd. Illegible,
for Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From Raja Harpal Singh Saheb, Chairman,
District Board. Jaunpur.

No, 543-XVII-II 1-43 *Dated the Oct 30, 1934*

Sir.

With reference to your querry of October 7, 1934, I have the honour to inform you that the Jaunpur District Board entertains 4 Vaids at the above noted places. They have been given one menial servant each and are allowed fixed monthly charges for medicines. None of them is a teaching institution.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
for Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From, Vireshwarnath Roy B. A., LL. B., M. R. A. S.
Senior Advocate & Chairman,
District Board, Ghazipur, U. P.

No. 311, *Dated 12-10-1934.*

Sir,

In reply to your letter of 7. 10. 34, I have the honour to inform you that this Board has no Ayurvedic institutions under it's direct control & management. But with a view to improve the indigenous system of medicine, the Board has been pleased to award a grant-in-aid of Rs 10/. P. M. to each of the 14 Ayurvedic & Unani private dispensaries, who have applied for help from the Board.

None of them appear to be teaching institutions.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
Secretary, for Chairman.

District Board, Office,
BALLIA
22. 10. 1934.

Dear Sir,

I am in receipt of your letter dated the 7th October, 1934, regarding silver Jubilee of the All India Ayurved Mahamandal. The information asked for you are given below :—

1. There are 8 Ayurvedic Aushadhalyas in this District, out of which three are maintained and the rest aided by the district Board.
2. There is no District Board teaching Institution.
3. In District Board Aushadhalyas, the entire cost viz. pay of Vaidyas Compounders, cost of medicines etc. are paid by the District Board. In aided ones, the Board gives aid from 5 to 15 P. M. for vaidya and Rs. 5 per institution for medicines. The total cost incurred by the Board during 1933-34 was Rs. 2815.
4. The vaidyas are required to prepare medicines at their Aushadhalyas so that hey may get actual experience. Besides we annually hold vaidya conference and exhibition to give incentive to the vaidya and public.

Yours Truly,
Sd. Illegible.
Chairman

* * *

From, The Chairman,
District Board, Gorakhpur,

No. 757 *Dated 2/XI/1934.*

Dear Sir,

Reply to your letter dated 7th October. 1934, is noted below in seriatum :—

1. Six Ayurvedic dispensaries (4 in Sardar and 2 in Deoria).
2. None.
3. Rs. 37-8- p. m. each.
4. Nil.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
for Chairman,

From, The Chairman,
District Board, Basti, U. P.

No. 478 *Dated 9-11-1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 8th October 1934, I have the honour to give below the information required therein.

1. There are 3 Ayurvedic and one Unani Aushdhalayas in this District.
2. No teaching is imparted in any of these institutions.
3. All Aushdhalyas are maintained by the Board, and it meets their full cost which, as provided in the current years budget, is Rs. 5016- p. a.
4. Though the Board's financial condition is not satisfactory yet it tries to effect an expansion. It has accordingly arranged to provide Rs. 30- p. m. this year for giving grant-in-aid to Ayurvedic and one Unani Aushdhalyas in the district.
5. There is also a Rasayanshala at sadar where medicines are prepared and stocked for outlying Aushdhalyas.
6. The Board this year is arranging to provide a new building for one of its Aushdhalyas.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
For Chairman.

* * *

From, The Chairman, District Board,
Mirzapur.

Dated 19. 10. 34.

Dear Sir,

With reference to your letter of 7th October 34 I beg to say that only one Ayurvedic dispensary has recently been opened at Ramgarh in Robertsganj Tahsil of this district. It is not a teaching institution. A vaid has been appointed there at Rs. 25 and Rs. 100 annually is given by the Board for medicines etc.

Yours truly,
Sd. Illegible.
Secry. D. B.

Bihar

From, Babu Parmeshwardhari Sinha,
Vice-Chairman, District Board, Patna

No. 1649 *Dated the 27th October 1934.*

Sir,

In reply to your letter dated the 16th October 1934, I have the honour to inform you as follows:—

(1) Patna District Board maintains nine Ayurvedic Dispensaries (2 Board managed and 7 subsidized).
(2) None of the Ayurvedic Dispensaries under this Board is a teaching institution.
(3) A sum of Rs. 510–annually is paid to each subsidized dispensary.

Your most obedient servant.
Sd. Illegible,
Vice—Chairman.

* * *

From, Babu Bijay Singh, M.A.B.L., Vice-Chairman
District Board, Bhagalpur.

No. 162 *Dated the 19—1—1935.*

Dear Sir,

In response to your letter dated 17—10—34 on the subject of furnishing with certain informations relating to Ayurved, I have the honour to reply as follows :—

Para 2 of your letter :—

(1) Two Ayurvedic Dispensaries.
  (a) One at Shahkund directly managed by D. B.
  (b) One at Nirmali under the Union Committee.
(2) None are teaching institutions.
(3) (a) Grant of Rs. 800– is paid to (b) annually.
  (b) Approximately Rs. 2000– is spent in case of (a) annually.
(4) Nothing is being done to promote the interest of Ayurved.

Yours faithfully
Sd. Illegible,
Vice-Chairman.

From, Babu Padmanabh Prasad, Vice-Chairman
Darbhanga District Board, Laheriasarai.

No. 9848 *Dated the 24th November 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter No. Nil dated the 10th October, 1934, I beg to send herewith the following informations as desired in your letter under reference.

1. There are 5 Ayurvedic dispensaries under this Board.
2. None of them are teaching institutions.
3. All expenses in connection with the upkeep of the dispensaries are met by the Board. There is one Ayurvedic dispensary at Harhacha to which a contribution of Rs. 30 per month is paid.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
for Vice-Chairman.

* * * *

From the Vice Chairman,
District Board, Muzaffarpur.

No. 6960 *Dated, the 7th November 34.*

Sir,

With reference to your enquiry dated the 16th October 1934 I have the honour to inform you as follows :—

(1) There are 5 Ayurvedic institutions under this Board.
(2) There is no teaching institutions here.
(3) They are managed institution and the entire cost is met by the Board.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman.

* * * *

From, S. Rafiuddin Ahmad Rizvi Esqr., B. A. LL. B.,
Vice-Chairman.District Board, MONGHYR.

No. 4688 L. *Dated the 3rd November 1634.*

Sir,

With reference to your letter dated 17. 10. 34, I have the honour to inform you that there are 5 subsidised dispensaries under this Board getting medicines worth Rs. 500 a year and that an allowance of Rs. 35 p. m. is allowed to each of the Vaidyas of the dispensaries.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
Vice-Chairman D. B.

From, Samuel Purti Esqr. Vice-Chairman.
District Board Ranchi.

No. 6034 *Dated the 9-11-1934.*

Sir,

I have the honour to inform you that there is no Ayurved dispensary under the management of this Board.

Your most obedient servant,
Sd. Samuel Purti.
Vice-Chairman

* * *

From, The Chairman,
District Board, Cuttuck.

No. 5679 *Dated the 31st October 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 17th October 1934, I beg to furnish you following informations as required :—

(1) This Board has at present only one Ayurvedic Dispensary at Bijoynagar.

(2) There are no teaching institutions.

(3) This dispensary is entirely financed by the Board.

(4) The Board makes a subsidy towards a Kaviraj at Rambag Pallimangal Samiti and is going to establish another dispensary next year.

Yours faithfully,
Sd. Illegible
Chairman.

* * *

Bengal

From, Babu Charu Chandra Paul, Vice-Chairman
District Board, Howrah.

No. 781 E. *Dated 24th November 1934.*

Sir,

With reference to your letter, dated 30. 10. 34. received in this office on 5. 11. 34, I have the honour to furnish below the informations asked for therein.

Item No. 1 }
" " 2 } nil.
" " 3 }
" " 4—2 stipends are paid to the students reading in the recognised Ayurvedic Colleges in Calcutta to promote the interest of Ayurved.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman.

Balasore District Board's Office.

From, Rai Saheb Prafulla Chandra Patnaik, Vice-Chairman
District Board Balasore.

No. 4200 *Dated the 16. 11. 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated the 18th October 1934, I have the honour to state that there is a subsidised Kaviraji dispensary under this Board which receives a subsidy of Rs. 25 p. m. There is no other institution either for teaching or treatment.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From, Dwijendra Nath Mookerji Esqr., M. A. B. L., Secretary
District Board, 24-Parganas, Alipore.

No, 8620 D. B. *Dated, the 6-12-1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 30th October, 1934, I beg to inform you that there are no Ayurveda Institution under this Board. A stipend of Rs. 10 per month is granted to a student of the rural area of this district tenable at the Astanga Ayurvedic College. One Kaviraj has been appointed for treating patients free in an Ayurvedic Charitable dispensary at Arbelia with a centre at Bagjola.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.

❀ ❀ ❀ ❀

From, Rai Surendra Narayan Sinha Bahadur, Chairman,
District Board, Murshidabad.

Dated 20 January, 1935.

Dear Sir,

I am in receipt of your favour of the 31st October in which you have enquired for certain informations regarding Ayurved system of treatment obtaining in this district.

In reply, I send answers to your queries ad-seriatim.

(1) There is only one institution which receives a grant-in-aid from the Board.
(2) None.
(3) Rs. 40/- per month.
(4) Nothing except making the aforesaid contribution.

Sincerely yours
Sd. Illegible.

Birbhum District Board's Office.

No. 5954 *Dated, Suri, The 13th November 1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated 28. 10. 34, I beg to inform you that there are no Ayurvedic institutions under this Board, but it grants a scholarship of Rs. 10 p. m. for training a student in Ayurvedic College at Calcutta.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman

* * * *

From Rai Nagendra Nath Mukerji Bahadur B.L. Chairman
District Board Nadia.

No. 6955 *Dated, Krishnagar, the 17th Nov. 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated the 30th October 1934 asking for certain informations regarding Ayurvedic Institutions in this district, I have the honour to inform you that this Board maintains only one Ayurvedic dispensary which has no teaching branch, at an annual cost of Rs. 600. Moreover the Board is paying a stipend of Rs. 15 per month to the Baidyasastra Pith at Calcutta.

Your most obedient servant
Sd. Illegible,
Chairman.

* * * *

From, K. Shahabuddin, Esq., Chairman,
District Board Dacca.

No. 8052 *Dated the 22-11-1934*

Sir,

With reference to your letter of the 31st ultimo, I have the honour to inform you that nothing of the kind referred to by you is in this Board except that only an Ayurvedic charitable dispensary is maintained by this Board at an annual expenditure of Rs. 680.

Your most obedient servant,
K. Shahabuddin.
Chairman.

From, The Vice-Chairman,
District Board, Jessore.

No. 1434 m. *Dated 30. 11. 34.*

Sir,

With reference to your letter of the 30. 10. 34. I have the honour to inform you as follows :—

There is only one Ayurvedic Dispensary maintained by Jessore District Board. There is no teaching institution under it. The District Board spends Rs. 1823 a year for its maintenance.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman.

* * *

From, Moulvi Shamsur Rahman, B. L., Vice-Chairman.
District Board, Khulna.

No. 6011 *Dated the 19. 11. 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 30-11-34, I have the honour to say:--

1. That there are two regular Ayurvedic Charitable Dispensaries and one Subsidised Dispensary under this Board.
2. That these are not teaching institutions as far as we know.
3. That the District Board bears entire cost of Rs. 1135 and 1421 for the maintenance of two regular Ayurvedic Dispensaries and pays a grant of Rs. 180—per annum to the Subsidised one.
4. That the District Board promotes interest of Ayurveda by appointing Kavirajes when needed.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice—Chairman.

* * *

Office of the District Board of Midnapur.

No. 1313 M. *Dated the 28 XI 34.*

Sir,

With reference to your letter no. nil dt. 28. 10. 34. I am directed to inform you that we have no Ayurvedic Institutions under this board neither do we subsidise any with District Board grants.

I have etc.
Sd. B. B. Roy
Secretary.

From Chairman, Local Board, Dhubri.

No. 2455. *Dated, the 20th November, 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated the 2nd November 1934, I have the honour to inform you that there are no Ayurvedic Institutions under this Board.

Yours faithfuylly
Chairman.

* * *

Andra-Dravid

From, The President, District Board. Kistna
Chilakalapudi.

No. 834 pel. *Dated 24. 11. 34.*

Sir,

I have the honour to furnish hereunder the information wanted by you in siriatum.

1. There are 16 Ayurvedic institutions under this District Board.
2. None.
3. An annual subsidy of Rs. 500 in some cases and in respect of others remuneration is being paid in the shape of monthly salaries ranging from Rs. 40 to 70.
4. The Board is contemplating to establish additional Ayurvedic medical institutions in the rural areas in the district.

By order,
Secretary.

* * *

From, Janab C. Abdul Hakim Sahib Bahadur,
President Distict Board, North Arcot.

D. Dis. No. 257/ of 1934. *Dated 26-12-1934.*

Sir,

I have the honour to furnish below the information asked for in your letter dated 15th November 1934 which was received in this office only on the 14th December 1934 i. e. a month hence and I therefore feel sorry I was not able to reply as desired by you.

1. There are 6 Ayurvedic Rural Institutions in this District.
2. None of them are teaching institutions.

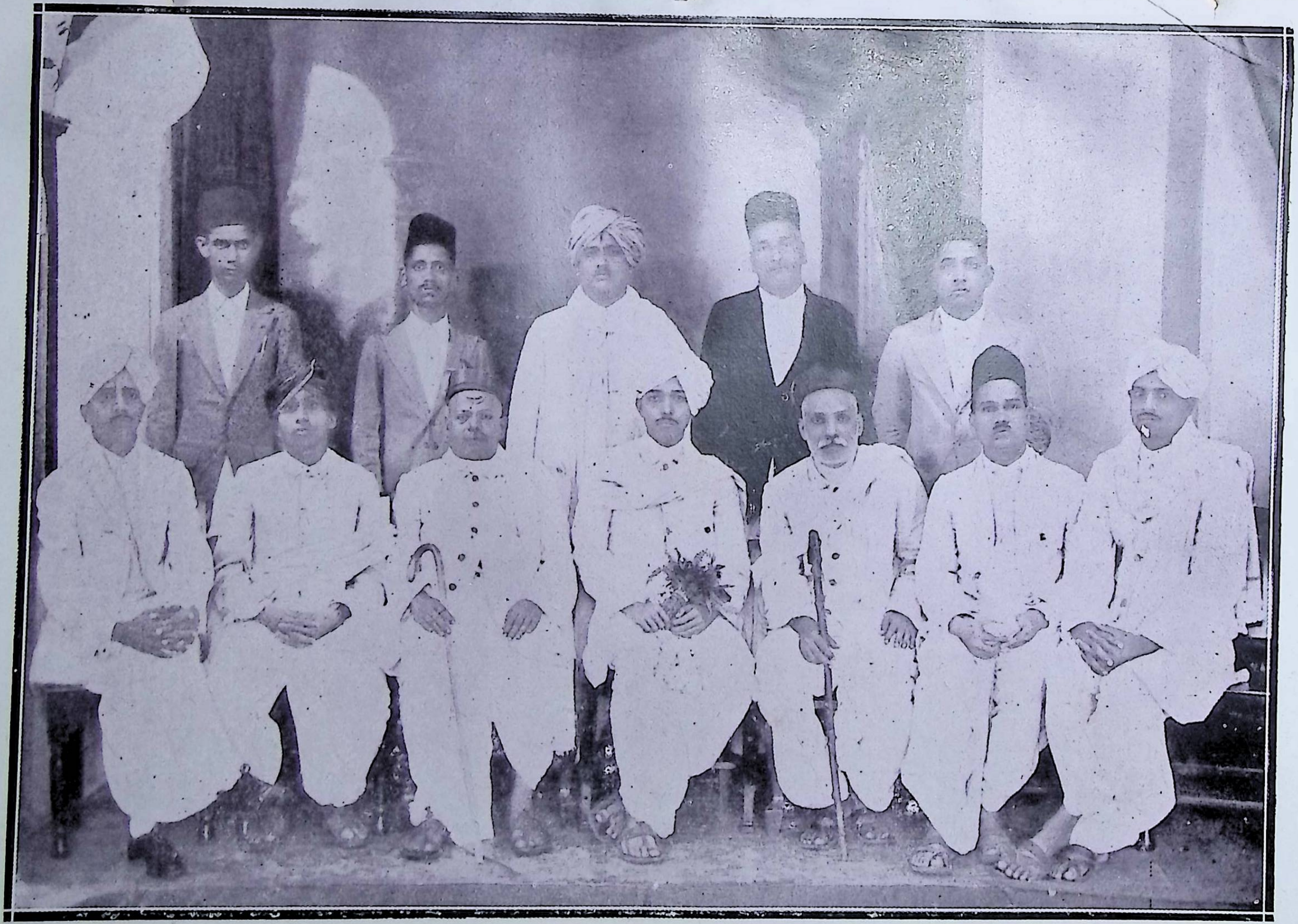

अध्यक्ष और अध्यापक मंडळ महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय बम्बई (सन १९३२)। स्थापना शके १८५४।

3. 56% of the Government subsidy towards the pay of the Rural Medical Practitioner besides meeting the entire cost of medicine etc. from the Board's funds.
4. Nothing has or is being done to promote the interest of Ayurveda for want of funds.

Your most obedient servant,
For President.

* * *

From, President, District Board, South Kanara,
Mangalore.

No. 12729-A4. 34 *Dated 8-12-1934.*

Sir,

Information required in your above letter is furnished below :—

1. There are 7 Ayurvedic Rural dispensaries in the District.
2. Nil.
3. (a) A contribution of Rs 360—each is paid by the District Board towards the cost of medicines for 4 rural dispensaries.

(b) A contribution of Rs 500—is paid towards the pay of the Medical officer and 360—for the cost of medicines in respect of I institution.

(c) The question of payment of contribution towards the pay and cost of medicines for one dispensary is under correspondence.

(d) Cost of medicines for the remaining one dispensary is met from the funds of a Sanga of Mundaje.

The subsidy at Rs 500—per annum in the case of Medical officers under (a) and (c) is met from Provincial funds.

Sd. Illegible.
For President.

* * *

From, The Chairman, District Board,
Mudura.

Dated 29-11-34.

Dear Sir,

Retransmitted with the information that there are no Ayurvedic dispensaries under the control of this District Board at present except one Siddha Dispensary at Vallalore.

Sd. Illegible.
For President.
D. B. Madura.

From, The Chairman, District Board,
Salem.

Dated 12-12-34.

Dear Sir,

Retransmitted with the information that there is no Ayurvedic Institution in this D. B. and the question of replying to other querries does not arise.

Sd. Illegible,
for President.

* * *

From, The President, District Board, Malabar.

Ref. on C. No. 951 D. 1934. *Dated 5-12-1934.*

Sir,

The information required by you is given below :—

1. There are 5 Ayurvedic dispensaries under this Board.
2. There is no teaching institution.
3. Two of the institutions are rural dispensaries and are given a subsidy of Rs. 500 each per annum by Government under the scheme of rural medical relief. The medical officer of one of the remaining three dispensaries is paid by this Board a salary of Rs. 40 p. m. in the scale of pay of Rs 40-3 B. 70 and the other two medical officers, as they are not registered practitioners, are each paid Rs. 25 p. m. for the present. In addition to this, medicines to the value of Rs. 360 per annum are also given to each of these dispensaries at the cost of this Board.
4. Two stipends of Rs. 15 and Rs. 25 each p. m. are awarded by the Board to two poor deserving pupils belonging to the District who undergo training in the Government school of Indian Medicine, Madras.

Your obedient servant,
Sd. Illegible.
For President.

* * *

From, The President, District Board, The Nilgiris,
Ootacamund.

L. Dis. ENo. 15742—34, *Dated 6th Desr. 1934.*

Sir,

No Ayurvedic Institution is maintained by this Board.

(Sd.) H.B. Ari Gowder,
President.

The chairman, District Board, Nellore

No. C. No. 2360 Gl. D. B. of 34 D. 1. 12. 1934.

Dear Sir,

Reply to your letter Dt. 14 Nov. 1934 is in the negative.

Yours truly,
Sd. Illegible.

* * * *

Bombay, Gujrat, Maharastra and Sind.

From, The President,
District Local Board, Kolaba.

Alibag, 13 December 1934.

Sir,

With reference to your letter dated 12-11-34 I have the honour to supply the following information para by para :—

(1) There are two Ayurvedic Dispensaries of this Board.

(2) None.

(3) The Dispensaries are fully maintained by the Board at an approximate cost of Rs 2000.—Per year.

(4) No special steps have been taken in this direction except opening of these two dispensaries.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Chief officer.

* * * *

From, The President,
District Local Board, Ahmedabad.

No. 1373 of 1934. 1935, *Dated 15 November 1934.*

Dear Sir,

In reply to your letter of the 3rd November 1934. I have to state as under:—

(1) The Ayurvedic Dispensarise are run by the Board.

(2) There are no teaching institutions of Ayurved under the Board.

(3) The whole cost of these Dispensaries is defrayed by the Board. The estimated cost of each dispensary is from Rs, 1,000 to Rs. 1, 200—per annum.

(4) The Board is unable to do anything further in the direction of promoting interest in Ayurved beyond the present responsibility of bearing the whole burden of the cost of these dispensaries.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
President.

From, The Chairman,
District School Board, Broach.

No. 1513. *3rd November, 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 3rd November, 1934, I have the honour to state that there is no Ayurvedic Institution under the management and control of this Board.

Your most obedient servant.
Chairman.

❀ ❀ ❀ ❀

From, Sardar Rao Bahadur Bhimbhai R. Naik, M.L.C.
President, District Local Board, Surat,

No. D.S.P. 147 of 1934. *Dated the 20 November 1934.*

Sir,

With reference to your letter of the 4th October 1934, receined on 15-11-34 I have the honour to inform you that there are no Ayurvedic Institutions under the District Local Board, Surat.

Your most obedient servant
Sd. Illegible,
President.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The President,
District Local Board, Poona.

No. G. C. 2128 *Dated 21st November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 4th November 1934, on the above subject, I have honour to state that the District Local Board, Poona, has not maintained any Ayurvedic Teaching Institutions but that it maintains six Ayurvedic dispensaries in the District at an average cost of Rs. 9,000 per year.

Your most obedient servant,
Sd. B. R. Ghosh.
For President.

श्रीमान् वैद्यराज नगीनदास छगनलाल जी

संस्थापक—ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, अहमदाबाद ।

From, The President,
District Local Board, Satara.

No. P.H.D 499- 2-2-35 of 1934-35. *Dated 21st November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 4th November 1934, I have the honour to supply with the following information:—

1. There are six Ayurvedic dispensaries in the District.
2. None of them is a teaching institution, but the Board pays Rs. 400 every year as grant to the Aryangla Vaidyak Vidyalay, Satara, which is a teaching institution.
3. The Six Ayurvedic dispensaries are wholly maintained by the Board.

Your most obedient servant,
President.

* * *

From, the President,
District Local Board, Ratnagiri.

No. 790 of 1934 *26th November 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 12-11-34, I have the honour to state that the Board has maintained two Ayurvedic dispensaries in this district with an annual grant of Rs. 200 to each. The Board is in favour of taking interest in Ayurvedic Institutions but so far it has not been able to do anything more for want of funds.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible,
Secretary,

* * *

Office of the District School Board,
DHARWAR.

No. 2817 of 1934. *Dated 24-11-1934.*

Sir,

With reference to your letter dated 11-11-1934, I have the honour to state that there are no Ayurvedic Institutions under the Board and hence the information asked for has not been supplied.

Your most obedient servant,
for Chairman.

From the President,
Dist. Local Board, Bijapur.

No. 2419 of 1934–35 *14th Decr. 1934.*

Sir,

With reference to your letter of 11-11-1934, I have the honour to state that this Board has not opened any Ayurvedic Dispensary nor any grant is paid to such a dispensary. I regret therefore that the information asked for cannot be supplied.

Your most obedient servant
President.

❀ ❀ ❀ ❀

From, Chief Officer,
District Local Board, Hyderabad.

No. 1933 of 1934. *Dated 5 January 1935.*

Dear Sir,

With reference to your letter of the 2nd November 1935, I have the honour to inform you as under :—

1. There is only one Ayurvedic dispensary within the jurisdiction of this board.
2, To my knowledge, there are no such teaching institutions.
3. The Board pays an annual grant of Rs. 600.
4. No particular steps for the promotion of Ayurvedic treatment have so far been taken by the Board. It has been left to private venture.

Your most obedient servant,
Chief Officer.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chief Officer,
District Local Board, Karachi.

No. 5206 of 1934. *Dated 17-11-1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter dated the 2nd instant regarding celeberation of the Silver Jubilee of the Mahamandal and requesting for supply of information in connection with Ayurvedic Institutions, I am to inform you that neither any Ayurvedic Institution is maintained by this Board nor is any grant paid to any such Institution in this District.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Chief officer.

Punjab

From, The Chairman,
District Board, Delhi.

Dated 25-10-34.

Dear Sir,

I beg to let you know that reply to your letter Dt. 18-10-34 is in the negative.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chairman,
District Board, Lahore.

No. 7426. *Dt. 22-10-1934.*

Dear Sir,

With reference to your letter Dt. 18. 10. 34. I beg to state that the reply is in the negative.

Yours truly,
Sd. Illegible.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chairman, District Board,
Gujranwala.

Dated 29-10-34.

Dear Sir,

In reply to your letter dated 21-10-34 I beg to state that there are no Ayurvedic Institutions in this D. Board.

Yours faithfully,
Sd. Illegible,
Secretary.

❀ ❀ ❀ ❀

From, The Chairman, District Board,
Rawalpindi.

No. 937. *Dt. 23. 10. 34.*

Dear Sir,

In reply to your letter Dt. 19-10-34 I beg to inform you that the D. B. Rawalpindi has got no Ayurved Institution under D. B.

Yours Sincerely,
Sd. Illegible.

From, The Chairman, District Board,
Ludhiana,

No. 2406 *Dt. 24-10-36*

Dear Sir,

Referring to your letter by points, the reply is in the negative.

Yours truly,
Sd. Illegible.

* * *

From, The Chairman, District Board,
Simla.

No. 343 L. F. *Dt. 23-10-1934*

Dear Sir,

In reply to your letter Dt. 20th October 1934 I beg to state that the District Board Simla, being a board in name only, it has no Ayurvedic Institution under its control.

Yours truly,
Sd. Illegible.
For Chairman, D. B. Simla.

* * *

From, The Vice-Chairman,
District Board, Faridpur.

No. 5536. *Dated the Novr. 1934.*

Sir,

With reference to your letter dated the 2nd Novr. 1934, asking for some informations relating to Ayurveda, I have the honour to inform you that I am not in a position to supply you with any information as there is no Ayurvedic Institution managed or aided by this Board.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman.

* * *

From, The Chairman,
District Board, Jullundur.

No, 1186 *Dated 1st November 1934.*

Dear Sir,

In reply to your letter dated 19th October 1934, I am to inform you that there is no Ayurvedic Institution in this District Board and no grant is made. The District Board gives a scholarship tenable at Dayanand Ayurvedic College, Lahore.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
For Chairman.

From, The Chairman,
District Board Multan.

No. 2415 *Dated 30—11—1936.*

Sir.

With reference to your letter dated the 19th October, 1934, I have the honour to inform you that this Board has appointed 3 Vaids (2 @ Rs 30—p.m. and I @ Rs, 25—p.m. each) in this District.

2. There is no teaching institution under the Board.

3. Medicines are not supplied by the Board,

I have etc,
Sd. Illegible
For Chairman

* * *

From, Deputy Commissioner, & Chairman,
Dist. Board, D. I. Khan.

No. 952 D. *Dated the 15th December 1934.*

Sir,

Reference your letter No. nil dated 27. 11. 34.

There is no Ayurveda institution in this Board and the Board has done nothing in particular in this connection.

Yours
Secretary.

* * *

From, The Vice Chairman,
District Board, Bannu,

No. 1648 *Dated 14-18-34.*

Dear Sir.

I have to inform you that there are no such like Institutes within the jurisdiction of the Board in this District.

Yours,
Sd. Illegible.
Vice Chairman.

Central Provinces.

From, Office Of The District Council, Nagpur.

No. 1067 Az *Dated the 31st Octr, 1934.*

Dear Sir,

There are no Ayurvedic dispensaries under the charge of this Council and hence no information can be given on the points mentioned in your letter under reference.

Yours,
Sd, Illegible,
Secretary.

* * *

From, Secretary,
District Council, Jubbulpore.

No, 5045 Ad. *Dated 29. 10. 1934.*

Sir.

In reply to your letter dated 22nd October 1934 I have the honour to inform you that there are no Ayurvedic Institutions of any kind under this District Council and as such no grant is paid towards this head. Alopathic Dispensaries are given grants every year.

The Council has already framed a scheme for opening Ayurvedic dispensaries but it is very regretable to state that due to general economic depression this Council is helpless to enforce the scheme. However it has kept some Ayurvedic medicines in middle schools of the District Council for distribution to the public.

Your most obedient servant,
Sd. Illegible.
Secretary.

* * *

The Chairman, District Board,
Hoshangabad.

No. 1317, *Dt. 31-10-34.*

Dear Sir,

Referring to your letter dated 24. 10. 34. I beg to state as follows,

There are no Ayurvedic Institutions under this Board and due to paucity of funds no help can be given. There are Ayurvedic Aushdhalaya under the Municipalities at Itarasi and Harda but none of these imparts instructions. One private Aushadhalaya named Hamudi is managed by Pt. R. K. Sastri at this place who distributes medicines free to poor.

Yours truly
Sd. Choudhary Radhakanta Prasad,
Vice-Chairman.

From, Office Of The District Council,
Bhandara.

No. 4554. *Date. 15—11—34.*

Dear Sir,

With reference to your letter D—27-10-34, I regret to inform you that this Council is helpless in patronising Ayurved owing to Government's refusal to include the Vaidyas in the scope of "Subsidised Medical Practitioners". However, this Council purchases certain patent Ayurvedic Medicines for free distribution.

Yours,
Sd. Illegible,
Secretary.

From, Office of the District Council,
Chanda.

No. 1747 *Dated. of 31—10—34.*

Dear Sir,

There are no Ayurvedic institutions under this council and hence no information can be supplied.

Yours faithfully,
Sd. Illegible.
Chairman.

From, Office of the District Council,
Chhindwara.

No. 3092. *Dated the 27th Novr. 34.*

Dear Sir,

There is no Ayurvedic Institution under this Council.

Yours
Sd. Illegible.
Chairman.

* * *

From, The Chairman, District Board,
Sagor.

Dear Sir,

I beg to inform you that the reply to your letter Dt. 23. 10. 34 is in the negative.

Yours truly,
Sd. Illegible.
V. Chairman.

From, Office of the District Council,
BETUL.
Dated the 31st October, 1934.

Dear Sir,

I may inform you that no Ayurvedic Institutions are working under this District Council and as such the further information asked for is nil.

Yours,
Sd. Illegible.
Vice-Chairman

* * *

राजवैद्य श्री० पं० अमृतलाल प्राणशंकर पट्टणी,

प्राणाचार्य, लिंबड़ी (काठियावाड़)

भू० पू० प्रिंसिपल—सेठ ऊजमशी पीताम्बर आयुर्वेदिक कालेज, पाटन (गुजरात)

सभापति—गुजरात-कच्छ-काठियावाड़ प्रान्तीय षष्ठ वैद्यसम्मेलन, अहमदाबाद।

Price, 3 annas.]

I.—RULES FOR THE REGISTRATION OF PRACTITIONERS OF INDIAN MEDICINE.

[*Corrected up to 31st March* 1936]

(*G. O. No. 231, P. H., dated 1st February 1933*)

SECTION I.

1. Persons possessing any of the following qualifications shall be eligible for registration :—

(i) Diplomas in Indian Medicine granted by the Board of Examiners in Indian Medicine appointed by the Gevernment of Madras.

(ii) Diplomas in Indian Medicine granted by or under the authority of the Government of India or a Provincial Government or an Indian State or by any recognized University or Examination body in India, provided that applications for the recognition of such diplomas are recommended by the Central Board of Indian Medicine, Madras, and accepted by the Government of Madras.

(iii) Holders of Government titles of professional eminence like Vaidya Ratna and Shifa-ul-Mulk.

(iv) Other practitioners of Indian Medicine who do not hold any of the qualifications noted above but are granted special recognition by the Government of Madras on their applications being recommended by the Central Board of Indian Medicine.

G. O. No. 999, P.H., dated 31st March 1936.

Proviso (1) Notwithstanding anything contained in these rules, it shall be competent for the Central Board of Indian Medicine to register, during the period of the first five years from 1st February 1933 any person who is proved to the satisfaction of the Board to be an eminent practitioner of Indian Medicine of not less than ten years' standing and is not less than 28 years of age at the time of application for registration.

G. O. No. 1401, P.H., dated 7th June 1935.

Proviso (2) Till 1937 any person who had practised for at least five years and pass the special examination conducted by the Board of Examiners in Indian Medicine will be registered in class B. Application for admission to the test should be followed by a certificate signed by one of the authorities given in the note to rule 4, in the prescribed form given on page 96. For details of the examination please see page 98 of the rules. (given in this book.)

2. Practitioners registered under these rules shall be divided into two classes as noted below.

Class A.—Practitioners whose qualifications denote at least a minimum standard of professional training for undertaking medical, surgical (including obstetrical) and medico-legal work.

Class B.—Practitioners whose qualifications denote at least a minimum standard of professional training for undertaking medical work only.

G. O. No. 2660 P.H., dated 24th November 1933.

3. Except with the special sanction of the Government, no one other than a practitioner of Indian Medicine registered under class A referred to in rule 2 above, shall be competent to hold any appointment as medical officer, in any institution of Indian Medicine maintained or aided by the Government or a local body or both.

4. The registration of applications under sub-rule (iv) of rule I above shall be subject to the condition that the applicant gives proof to the satisfaction of the Board that he has been a practitioner of not less than ten years' standing except where the Board decide otherwise, and that he has undergone adequate professional training—both theoretical and practical—for a period of not less than four years before the commencement of his practice.

G. O. No. I05 P.H., dated I5th January I934.

NOTE.—The proof required under this rule regarding the period during which a practitioner has exercised his profession shall be a certificate in the form annexed to this order (annexure 2) from an officer of the Revenue Department of and above the rank of a Deputy Tahsildar or the executive authority of the municipality or the President of the District Board within whose jurisdiction the applicant resides.

5. The following rules shall govern applications for registration under sub-rule (iv) of rule I above :—

(*a*) All applications shall be sent through a local association of practitioners of Indian Medicine if there is one in the locality.

(*b*) All applications received shall first be considered by a standing sub-committee constituted for the purpose consisting of seven members elected by the Board, of whom not less than five shall be from among city members of the Board with the President of the Board as ex-officio member and chairman of the sub-committee. In the absence of the President, the subcommittee shall elect one of their members as chairman. The sub-committee shall ordinarily meet during the time of the meetings of the Central Board of Indian Medicine.

(*c*) All applications received from a district in the mufassal where a member of the Board permanently resides shall be referred to that member for remarks before the same is considered by the standing sub-committee.

6. *(a)* Every person who applies to be registered under these rules shall pay a registration * fee of fifteen rupees and a stamp duty of twelve annas.

(b) This rule shall not apply to any person whose name has been registered under any Act or rule for the registration of practitioners of Indian Medicine for the time being in force in any part of British India, if the said Act or rule provides for the registration of persons registered under these rules without the payment of any fee.

7. The Local Government may eithe *suo moto* or otherwise revise any order passed by the Board under the rules in this section.

Section II.

8. The following rules shall regulate the procedure to be adopted for revoking or cancelling the registration of those who abuse the privilege of registration:—

Rules governing enquiries by the Central Board of Indian Medicine, Madras, or a Committee thereof.

(i) The Board may refuse to permit the registration of any person who has been convicted of any such offence as implies, in the opinion of the Board, a defect of character, or who, after an enquiry at which an opportunity has been given to the candidate to be heard in person or by pleader, has been guilty of professional misconduct.

(ii) The Board may, if it sees fit, and after giving due notice to the person concerned and inquiring into his objections, if any, order that any entry in the register which shall be proved to the satisfaction of the Board to have been fraudulently or incorrectly made or brought about, be cancelled or amended.

(iii) The Board may, after holding an enquiry at which an opportunity has been given to the person concerned to be heard in person or by pleader, direct the removal altogether or for a special period, from the register of the name of any registered practitioner for the same reasons for which registration may be refused by the Board under rule (i) above. The Board may also direct that any name so removed shall be restored.

(iv) Any enquiry under the above rules may be held by a Committee consisting of five members of the Board elected for the purpose by the Board. The Board or the Committee, as the case may be,

---

G. O, No. 1819 P.H. dated 17th July 1935.

* The Registration fee and stamp duty should be paid into a Government Treasury or the Reserve Bank of India under the heads "XXII, Medical" and "VII. A—Stamps". respectively and the treasury or Bank receipts should be submitted to the President of the Central Board of Indian Medicine along with the application. All correspondence should be addressed to the President,

may, at its discretion hold such an enquiry *in camera.* The decision of the Committee shall be deemed to be the decision of the Board.

(v) An appeal shall lie to the Local Government against every decision of the Board under rules (i) to (iv) above. Such appeal shall be preferred within three months from the date of the Board's decision. The Local Government may *suo moto* revise any order passed by the Board or the Committee as the case may be under rules (i) to (iv) above.

(vi) Whenever information is received that a medical practitioner who is an applicant for registration, or whose name has already been registered has been guilty of conbuct which *prima facie* consiitutes professional miscouduct, the Secretary shall make an abstract of such information.

(vii) Where the information in question is in the nature of a complaint by a person or body charging a medical practitioner with professional misconduct, such complaint shall be made in writing addressed to the Secretary, and shall state the grounds of complaint and shall be accompanied by one or more declarations as to the facts of the case.

(viii) Every declaration must state the description and true place of abode of the declarant ; and where the facts stated in a decleration are not within the personal knowledge of the declarant, the source of the information and grounds for the belief of the declarant in its truth must be accurately and fully stated.

(ix) (*a*) The abstract and where a complaint has been lodged, the complaint, and all other documents bearing on fhe case, shall be submitted by the Secretary to the President, who may, if he thinks fit, instruct the Secretary to furnish the medical practitioner concerned with a copy of the complaint and other documents and invite him by means of a registered letter to submit any explanation he may have to offer. The documents, including any explanation submitted by the practitioner to the Secretary, shall then be placed before the Board.

The Board may then—

(1) order that all further proceedings be stopped ; or

(2) appoint a Committee to consider the matter and submit a report to the Board as to whether proceedings should be instituted under rules (i) to (ii) above ; or

(3) direct that a regular enquiry be held by the Board or a Committee thereof appointed under rule (iv) above,

A Committee appointed to make a preliminary inquiry shall have power to cause further investigation to be made and further evidence to be taken and to take any legal advice or procure any legal assistance it may think necessary. The Committee shall report to the Board.

(*b*) If the Board consider that the case is one in which an inquiry under rule (i) or rule (ii) or rule (iii) above ought to be held, the President shall direct the Secretary to take steps for the institution of any inquiry and for having the case heard and determined by the Board.

(x) The Board or Committee thereof appointed under rule (iv) above shall observe in inquiries held by them the procedure laid down in the following rules.

(xi) When the charge is brought by a complainant they shall require the complaint to be reduced to writing and accepted by the complainant. The articles of charge and a list of documents and witnesses by which each charge is to be sustained shall then be prepared and the Secretary shall issue a notice in writing on behalf of the Board addressed to the medical practitioner concerned. Such notice shall be accompanied by a copy of the articles of charge and list of witnesses and documents referred to above and shall inform the medical practitioner concerned, of the day on which and hour at which the Board or Committee intend to deal with the case and shall call upon him to attend before the Board or Committee on that day and hour. The notice shall be in the form appended to these rules, with such variations as circumstances may require. It shall be served on the medical practitioner fifteen clear days before the beginning of the inquiry and shall be accompanied by a copy of rules (i), (ii), and (iv) above and of the rules to regulate the procedure for conducting any inquiry referred to in those rules. Service of the notice may be made either by delivery to the medical practitioner in person or by registered letter addressed to his usual residence.

(xii) In every case in which the Board resolve that an enquiry shall be instituted and notice of inquiry is issued accordingly, the complainant (if any) and the medical practitioner concerned shall, upon request in writing signed by the party or his pleader, be entitled to be supplied by the secretary with a copy of any declaration, explanation, answer or other dacument given or sent to the Board by or on behalf of the other party, which such other party will be entitled on proper proof to use at the hearing as evidence in support of, or in answer to, the charge specified in the notice of inquiry.

(xiii) Any answer. evidence, or statement forwarded, or application made by the medical practitioner between the date of the issue of the notice and the day named for the hearing of the charge, shall be dealt with by the President in such manner as he shall think fit.

(xiv) Copies of all material documents which are laid before the Board or Committee as evidence in regard to the case shall be made and furnished to each member of the Board or Committee as the case may be before the hearing of the case.

(xv) At the hearing of the case by the Board or Committee the complainant and also the medical practitioner concerned may, if they so desire, be represented or assisted by pleaders.

(xvi) When the complainant appears personally or by pleader, the order of procedure shall be as follows :—

(*a*) The complainant shall exhibit the articles of charge to the Board or Committee, which shall be openly read.

(*b*) The medical practitioner concerned shall then be called upon to plead "guilty" or "not guilty" to each of them, which plea shall forthwith be recorded with the articles of charge. If the medical practitioner refuses or without reasonable cause neglects to appear to answer the charge either personally or by pleader, he shall be taken to admit the truth of the articles of charge.

(*c*) The complainant may then address the Board or Committee in explanation of the articles of charge and of the evidence by which they are proved.

(*d*) The oral and documentary evidence shall then be exhibited. The witnesses shall be examined by or on behalf of the complainant and may be cross-examined by or on behalf of the medical practitioner concerned. The complainant shall then be entitled to re-examine the witnesses on any point on which they have been cross-examined. No questions should be asked in re-examination on any new matter without leave of the Board. The Board or Committe may put such questions as they think fit.

(*e*) If before the close of the case for the complainant, it shall appear necessary, the Board or Committee may in their discretion, allow the complainant to exhibit evidence not included in the list furnished to the medical practitioner concerned or may themselves call for new evidence, and in such case the medical practitioner shall be entitled to have, if he demands it, an adjournment of the proceedings for three clear days, before the exhibition of such new evidence, exclusive of the day of adjournment and of the day to which the proceedings are adjourned.

(*f*) When the case for the complainant is closed, the medical practitioner concerned shall be required to make his defence, orally or in writing, as he shall prefer. If made in writing, it shall be openly read and a copy shall be given at the same time to the complainant.

(*g*) The evidence for the defence shall then be exhibited, and the witnesses examined, who shall be liable to cross-examination and re-examination and to examination by the Board or Committee in the same manner as the witnesses for the complainant.

(*h*) The Board or Committee or some persons appointed by them shall take notes in English of all the oral evidence, which shall be read aloud to each witness by whom the same was given, and if necessary explained to him in the language in which it was given, and shall be recorded with the proceedings.

(*i*) If the medical practitioner concerned makes only an oral defence and exhibits no evidence, the inquiry shall end with his defence. If he records a written defence or exhibits evidence, the complainant shall be entitled to a general oral reply on the whole case and may also exhibit evidence, to contradict any evidence exhibited for the defence, in which case the medical practitioner concerned shall not be entitled to any adjournment of the proceedings, although such new evidence were not included in the list furnished to him.

(*j*) When the Board or Committee shall be of opinion that the articles of charge, or any of them, are not drawn with sufficient clearness and precision, the Board or Committe may, in their discretion, require the same to be amended, and may thereupon, on the application of the complainant or the medical practitioner concerned, adjourn the inquiry for such time as they may consider reasonable. The Board or Committee may also, if they think fit, adjourn the inquiry from time to time, on the application of either the complainant or the medical practitioner concerned, of the ground of sickness or unavoidable absence of any witness or such other cause as they may consider reasonable. When such application is made and refused, the Board or Committee shall record the application and their reasons for refusing to comply with it.

(xvii)—(*a*) When there is no complainant, or no complainant appears the proceedings shall begin by the Secretary reading to this Board the notice of inquiry addressed to the medical practitioner concerned and the articles of charge and stating the evidence by which the articles of charge are supported.

(*b*) The medical practitioner shall then be called upon to plead "guilty" or "not guilty." The further proceedings shall be conducted in substantial accordance with the procedure laid down in rule (xvi) above.

(xviii) The Board or Committee may, at their discretion, hold the inquiry *in camera.*

(xix) (*a*) Upon the conclusion of the case, the Board or Committee will deliberate thereon in private, and at the conclusion of the deliberations the Board or Committee shall vote on the question whether the articles of charge are proved or not and whether they show that the medical practitioner concerned has been guilty of professional misconduct or not.

(*b*) If the Board or Committee by a majority find the medical practitioner guilty of professional misconduct, the President shall direct the Secretarv not to register his name if he be an applicant for registrarion, or to erase his name altogether or for a specified period from the register of medical practitioners if he is already a registered practitioner, except in cases where the Board or Committee consider that in view af extenuating circumstances the practitioner may be let off with a warning.

(xx) When the registration of the name of any medical practitioner is refused or when the name of any registered medical practitioner is removed from the register in accordance with the provisions of the preceding rules, the Secretary shall forthwith send notice of such refusal or removal to the medical practitioner concerned, and such notice shall be sent by a registered letter addressed to his last known address. The Secretary shall also send forthwith intimation of any such refusal or removal to the body or bodies from whom the medical practitioner received his qualification or qualifications and shall request them not to admit him to any examination for any new qualification which is registrable in the register of registered practitioners without previous reference to the Board.

Notice referred to in Rule (ix) of Seciion II.

SIR,

On behalf of the Central Board of Indian Medicine, Madras, I give you notice that information and evidence have been laid before the Board by which the complainant makes the following charge or charges against you, namely (here set out the circumstances briefly) and that you have thereby been guilty of professional misconduct.

And I am directed further to give you notice on the day of 19 a meeting of the Board will be held at

o'clock in the to consider the abovementioned charge or charges against you and decide whether or not they should direct that your name $\frac{\text{shall not be registered in}}{\text{be removed from}}$ the register of registered practitioners pursuant to rule (xix) of the rules governing enquiries by the Central Board of Indian Medicine or a Committee thereof. You are invited and required to attend in person or by pleader before the Board at the abovenamed place and time, to establish any denial or defence that you may have to make to tha abovementioned charges ; and you are hereby informed that, if you do not attend as required, the Board may proceed to hear and decide upon the said charges in your absence.

Any reply or other communication or application which you may desire to make respecting the said charges or your defence thereto should be addressed to the Secretary to the Central Board of Indian Medicine and transmitted so as to reach him not less than three clear days before the day appointed for the hearing of the case.

A copy of the rules governing enquiries by the Central Board of Indian Medicine, Madras, or a Committee thereof is enclosed herewith for your information.

A copy of the articles of the charge and of list of documents and witnesses by which each charge is to be sustained are attached.

2. FORM OF CERTIFICATE OF TEN YEARS' PRACTICE REFERRED TO IN RULE 4.

OFFICE OF THE

Dated 193 .

On the basis of records in this office or facts known after due enquiry I certify that Mr, has been shown or proved as following the occupation of a practitioner of Indian Medicine for not less than ten years—

(*a*) at 1 (*b*) from to
2 from to
3 from to

1. The date of birth of the applicant is
2. Present occupation of the applicant is
3. Father's name and occupation are
4. Other occupations (if any) of the applicant are

Signature.
Designation.

(*a*) Here enter the name or names of the place or places where the applicant is shown as practising.

(*b*) Here enter dates showing duration of practice in each place,

N. B.—The certificate should bear the date stamp of the office of issue.

3. CERTIFICATE OF FOUR YEARS' TRAINING REFERRED TO IN RULE 4.

This is to certify that Mr. has undergone a course of prescribed professional study in the theory and practice of Ayurvedic/Sidha/Unani Medicine for a period of not less than four years' duration as shown below :—

A.—Certificate of Theoretical Training.

Name or names of the institution or institutions where the training was obtained	Duration at each of the institutions.	Signature, designation and qualifications of the head of each of the institutions.
1. 2. 3.		

B.—Certificate of Practical Training.

Name or names of the dispensary or hospital where training was obtained.	Duration at each of the institutions.	Signature, designation and qualification of the head of each of the institutions.
1. 2. 3.		

4. SCHEME OF EXAMINATION FOR PRACTITIONERS OF FIVE YEARS' STANDING.

G. O. No, 843, P.H. dated 17th March 1934.

Candidates appearing for the special examinations referred to in rule I, proviso 2, will be examined in the tests theoretical, practical and clinical of the first to fourth year L.I.M. Board Examination in the subjects of Indian Midicine only. Those who fail in the examintions in the subjects of Indian Medicine will be allowed to complete the test by sitting again at the subsequent examinations for the subject or subjects in which they have failed. The subjects for the examinations will be as follows:—

	Subject.	test Written practical and-or oral test
1	Fundamental Principles of (Indian) medicine.	One paper—3 hours—Oral.
2	Materia Medica (generl) (Indian).	One paper—3 hours Practical and oral.
3	Do. (special) (Indian)) ..	One paper—1½ hours—Practical and oral.
4	Pathology (Indian)...	One paper—3 hours—Oral.
5	Hygiene (Indian)	Do.
6	Medicine (Indian)	One paper—3 hours—Clinical and oral (conducted separately).
7	Surgery (Indian)	One paper—3 hours—Clinical and oral (on sitting).
8	Midwifery (Indian)	Do.
9	Toxicology (Indian)	One paper—1½ hours—practical and aral.

Fees for the Examination.

Rupees 40 for the whole examination and Rs. 5 for each subject. Candidates are required to appear for the whole examination in the first instance; thereafter, they may appear in the subject or subjects in which they have failed. Examination fees once paid will not be refunded or adjusted for any subsequent examination.

संयुक्त प्रान्त में वैद्यों और हकीमों के रजिस्टरी सम्बन्धी नियमों का अनुवाद

जिनको बोर्ड आफ इन्डियन मेडिसिन संयुक्त प्रान्त ने बना कर गवर्नमेंट गजट भाग ८ पन्ना ४०१ तारीख २ मई १९३१ में प्रकाशित किया।

१—बोर्ड का सेक्रेटरी वैद्यों और हकीमों का एक रजिस्टर निर्धारित शेष पत्र नं० १ के अनुसार रखेगा। यह रजिस्टर चार भागों में विभाजित होगा। प्रथम दो भागों में उन वैद्यों के नाम होंगे जो 'अ' और 'ब' श्रेणियों में रक्खे जावेंगे। इसी भांति तृतीय और चतुर्थ भागों में उन हकीमों के नाम होंगे जो 'अ' और 'ब' श्रेणियों में रक्खे जावेंगे।

प्रत्येक भाग में लिखावट वर्णमाला के क्रमानुसार होगी।

२—चेयरमैन बोर्ड के हस्ताक्षर द्वारा रजिस्टर की सत्यता प्रमाणित होगी।

३—प्रत्येक व्यक्ति के लिये जो रजिस्टर में अपना नाम अंकित कराने का प्रार्थी हो, अपनी योग्यता तथा रजिस्टर में नाम अंकित कराने के अधिकार सम्बन्धी सूचना सेक्रेटरी के आदेशानुसार सेक्रेटरी को देना अनिवार्य होगा।

४—प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य अथवा हकीम को उचित है कि अपना पता बदलने पर उसकी सूचना शीघ्र ही सेक्रेटरी को दे। और इस सम्बन्ध में जो प्रश्न सेक्रेटरी करे उसका उत्तर दे जिससे कि उसका ठीक पता नियमानुसार रजिस्टर में लिखा जा सके।

५—गत ३१ दिसम्बर तक उपरोक्त नियमित रजिस्टर को संशोधित कर सेक्रेटरी प्रत्येक वर्ष के जनवरी मास में छपवा कर प्रकाशित करेगा। सेक्रेटरी इस प्रकार छपी हुई नामावली की एक ऐसी प्रति जिसके बीच में सादे पृष्ठ लगे हुए होंगे और जिसमें वह वर्ष के अन्तर्गत कोई संयोजना, अदल-बदल काट-पीट जो आवश्यक होगी, करता रहेगा, अपने पास रखेगा, प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य और हकीम से वह यह भी जाँचता रहेगा कि उसने अपना व्यवसाय तो नहीं छोड़ दिया है, अपना निवास स्थान एवं अपनी नियुक्ति तो नहीं बदली है। यदि किसी ऐसे पत्र का उत्तर, पत्र भेजने की तिथि से छः मास के समय के भीतर न प्राप्त हो तो सेक्रेटरी ऐसे रजिस्टर्ड अध्यवसायी का नाम चेयरमैन की आज्ञा लेकर रजिस्टर से काट सकता है। परन्तु ध्यान रहे कि इस प्रकार का काटा हुआ नाम बोर्ड की आज्ञानुसार पुनः रजिस्टर में लिखा जा सकता है।

६—प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य अथवा हकीम को अपनी ही प्रार्थना पर रजिस्टर से नाम कटवाने के प्रार्थनापत्र के साथ एक प्रमाणपत्र भी सम्मिलित करना होगा कि उसे अपने प्रतिकूल किसी ऐसी कार्यवाही या ऐसी कार्यवाही के उठ खड़े होने के कारण का ज्ञान नहीं है, जिसका परिणाम उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका नाम रजिस्टर से कटवाने का निमित्त बने अथवा अपनी इच्छा के विरुद्ध उसको किसी ऐसी योग्यता या लाइसेन्स से वंचित कर दे कि जिसके आधार पर वह रजिस्टर में नाम लिखवाने का अधिकारी हो। सेक्रेटरी ऐसे प्रार्थना-पत्र को बोर्ड की आगामी सभा में उपस्थित करेगा जिसमें उस प्रार्थनापत्र तथा उसके

विरोधों पर विचार होगा। रजिस्टर से नाम कट जाने पर सेक्रेटरी उसकी सूचना प्रार्थी को उसके रजिस्टर्ड पते से पत्र द्वारा देगा।

७—उपरोक्त प्रकार के छपे हुये रजिस्टर के प्रत्येक भाग के अन्त में एक विवरण पत्र होगा जिससे निम्नाङ्कित बातें प्रगट होंगी—

(१) वर्ष के आदि में उस भाग के मनुष्यों की पूर्ण संख्या।
(२) वर्ष के अन्तर्गत बढ़े हुए रजिस्टर्ड मनुष्यों की संख्या।
(३) रजिस्टर में पुनः लिखे गये मनुष्यों की संख्या।
(४) उन मनुष्यों की संख्या जिनके नाम रजिस्टर से काटे गये कारण सहित।
(५) मृत्यु के कारण नाम कट जाने वालों की संख्या।
(६) अन्यान्य कारणों से नाम कट जाने वालों की संख्या, और
(७) बर्ष के अन्त में उस भाग में बची हुई पूर्ण संख्या।

नामों का सूचीपत्र भी वर्णमाला के क्रमानुसार होगा।

८—प्रत्येक व्यक्ति जिसका नाम रजिस्टर में लिखा गया है चेयरमैन से रजिस्ट्री का प्रमाणपत्र लेने का अधिकारी होगा, जो कि नियमित शेष पत्र नं० २ के अनुरूप होगा।

९—रजिस्ट्री के लिये प्रार्थनापत्र नियमित शेष पत्र नं० ३ के अनुरूप होगा।

१०—कोई प्रार्थनापत्र मूल (इब्तिदाई) रजिस्ट्री के दुबारा सार्टीफिकेट के लिये तब तक न लिया जायगा जब तक कि प्रार्थी का इस बात का प्रमाणपत्र उसके साथ न होगा जिसमें कि संपूर्ण विवरण लिखा हो और जिससे यह बात प्रगट हो कि यह वही व्यक्ति है कि जिसका नाम प्रथम बार रजिस्टर में लिखा जा चुका है। प्रार्थनापत्र के साथ प्रार्थी के व्यक्तित्व की पुष्टि के लिये ऐसा मसाला होना चाहिये कि जिसको चेयरमैन पर्याप्त समझे। दुबारा सार्टीफिकेट तीन रुपया शुल्क देने पर भेजा जायगा। उक्त रुपये सेक्रेटरी के पास मनीआर्डर द्वारा भेजे जाने चाहियें।

११—प्रकाशित रजिस्टर की एक प्रति जिसमें उसका नाम प्रथम बार लिखा गया है प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य अथवा हकीम को निःशुल्क दी जावेगी। यदि प्रकाशित होने वाले वर्ष के समाप्त होने के पूर्व सेक्रेटरी को ऐसी प्रति की प्राप्ति के लिये प्रार्थनापत्र दिया गया हो और डाक व्यय आदि के लिये आठ आने का मनीआर्डर भी उसके साथ भेजा गया हो। यदि ऐसा न हो तो सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट प्रेस इलाहाबाद यू० पी० से मूल्य देने पर प्रतियाँ मिल सकती हैं।

१२—रजिस्टर का केवल अंतिम संस्करण ही न्यायानुकूल रजिस्ट्री का प्रमाण है। परन्तु ध्यान रहे कि ऐसी दशा में जब कि किसी व्यक्ति का नाम छपे हुये रजिस्टर में न मिले तो प्रमाणित प्रति चेयरमैन के हस्ताक्षर सहित ऐसे व्यक्ति के नाम की लिखा-पढ़ी उस रजिस्टर में जो कि बोर्ड के दफ़्तर में रहता है इस बात का प्रमाण होगी कि उस व्यक्ति की रजिस्ट्री हो गई है।

१३—वे सब व्यक्ति जिनके नाम रजिस्टर में लिखे होंगे उन स्वत्वों के पाने के अधिकारी होंगे जो कि इन नियमों के अनुसार उनको प्राप्त होंगे।

१४—रजिस्ट्री अनिवार्य नहीं है और यह उन वैद्यों या हकीमों के व्यवसाय में कोई बाधा न डालेगी जो रजिस्टर्ड नहीं हैं।

रजिस्ट्री कराने के नियम

१—प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिये जो वैद्य या हकीम के रजिस्टर में अपना नाम अंकित कराने का प्रार्थी हो अनिवार्य होगा कि बोर्ड को इस बात का विश्वास दिलाये कि उनके पास ऐसी डिगरी या योग्यता का प्रमाण पत्र है कि जिसका वर्णन नामावली नं० १ जो कि इन नियमों का परिशिष्ठ है दिया गया है। जिसमें बोर्ड के विज्ञापन द्वारा (यदि कोई हों) यदा कदा परिवर्तन किया गया हो और यदि उसका नाम एक अथवा एक से अधिक डिगरी या योग्यता के प्रमाण पत्र के विषय में रजिस्टर में अङ्कित हो चुका है तो उसे सेक्रेटरी को ऐसी रजिस्ट्री की तिथि को ठीक २ सूचना देनी होगी और अपनी योग्यता के प्रमाणपत्र के सम्बन्ध में जिसके विषय में इस प्रकार रजिस्ट्री हो चुकी है, उन तिथियों के सहित जब उसने यह डिगरियाँ प्राप्त की हों यथोचित विवरण से सेक्रेटरी को सूचित करना होगा।

२—यदि कोई व्यक्ति जिसका नाम रजिस्टर में अङ्कित किया जा चुका है कोई उपाधि या प्रमाणपत्र अतिरिक्त उस उपाधि या योग्यता के प्रमाणपत्र के कि जिसके विषय में उसकी रजिस्ट्री हो चुकी है, प्राप्त करे तो वह प्रत्येक अतिरिक्त उपाधि या योग्यता को २) शुल्क देने पर रजिस्टर में अङ्कित कराने का अधिकारी होगा जो कि उसके नाम के सम्मुख रजिस्टर में अङ्कित किये जायगे चाहे वह प्रथम रजिस्टर्ड उपाधि या प्रमाणपत्र के स्थान में अथवा उसके अतिरिक्त शुल्क सेक्रेटरीको मनीआर्डर द्वारा प्रेषित करना होगा।

३—यदि बोर्ड को रजिस्टर की किसी लिखा पढ़ी के विषय में यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि यह छल द्वारा कराई गई है अथवा अशुद्ध है तो ऐसी लिखा पढ़ी बोर्ड को लिखित आज्ञानुसार उस व्यक्ति को सूचना देने और उसके किये हुये विरोधों पर यदि कोई हो विचार करने के पश्चात् काटी जा सकती है।

४—यदि कोई व्यक्ति जिसका नाम रजिस्टर में नहीं लिखा है इस विषय का मिथ्या और कपट पूर्ण बहाना करे कि उसका नाम रजिस्टर्ड है अथवा अपने नाम और उपाधि के साथ ऐसे शब्दों या अक्षरों का उपयोग करे जिससे प्रगट हो कि उसका नाम उसी भांति रजिस्टर्ड है तो ऐसे व्यक्ति पर अदालत फौजदारी में मुकदमा चलाया जा सकता है चाहे किसी को उससे धोखा हुआ हो अथवा नहीं।

५—बोर्ड निम्नांकित दशाओं में भी वैद्य अथवा हकीम का नाम रजिस्टर में लिखा जाने का निषेध कर सकता है अथवा उसका नाम रजिस्टर से पृथक करने की आज्ञा प्रदान कर सकता है—

(अ) जिसको अदालत फौजदारी से किसी अपराध में कारागृह-दण्ड दिया जा चुका हो जो बोर्ड के विचार से उसके आचरण में ऐसी त्रुटि लाता हो कि जिससे रजिस्टर में उसके नाम का लिखना अथवा बनाये रखना न्याय संगत न हो।

अथवा

(ब) जिसको बोर्ड ने जाँच करने के पश्चात् (जिसमें उसको अपनी रक्षा के लिये साक्षी उपस्थित करने और स्वयं अथवा किसी वकील, प्लीडर, कौंसिल अर्थात् अटारनी के द्वारा उपस्थित होने का अवसर दिया गया हो और ऐसी जाँच बोर्ड द्वारा अपनी इच्छानुकूल बन्द कमरे में की हो) उसके व्यवसाय में किसी

कुत्सित आचरण के कारण दोषी ठहराया हो। यह बोर्ड की इच्छा पर निर्भर होगा कि आगामी किसी तिथि को ऐसे व्यक्ति का नाम जिसके विरुद्ध ऐसी आज्ञा निकल चुकी है रजिस्टर में पुनः लिखने की आज्ञा प्रदान करे।

६—रजिस्ट्री के सम्बन्ध में बोर्ड के प्रत्येक फैसले के विरुद्ध फैसले की तिथि के तीन मास के भीतर प्रान्तीय करकार में अपील की जा सकेगी।

अपील लिखित होगी जिसमें उन कारणों का दिखलाना अनिवार्य होगा जिनके आधार पर अपील की गई है और जिसमें विस्तार पूर्वक मामले का विवरण होना चाहिये।

७—यदि किसी समय किसी अधिकार का दुरुपयोग होगा तो बोर्ड के हाथ रजिस्ट्री क खण्डन अथवा काटने की शक्ति सुरक्षित रहेगी।

नामावली नं० १

वे व्यक्ति जो वैद्यों अथवा हकीमों के रजिस्टर में अपना नाम अंकित कराने के अधिकारी हैं

१—वे वैद्य या हकीम जिनके पास प्रान्त अथवा प्रान्त के बाहर के राज्य सम्बन्धी आयुर्वेदिक अथवा यूनानी कालेज या स्कूल की डिगरी अथवा प्रमाणपत्र हैं। अथवा जिनको नियमानुसार स्थापित किसी भारतीय विश्वविद्यालय के इण्डियन मेडिसिन की डिगरी प्राप्त हैं।

२—वह वैद्य और हकीम जिन्होंने संयुक्त प्रदेश के बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन द्वारा ली हुई अन्तिम परीक्षा पास की है।

३—वे वैद्य अथवा हकीम जिन्होंने प्रान्त अथवा प्रान्त के बाहर के किसी आयुर्वेदिक अथवा यूनानी संस्था की परीक्षा पास की है।

परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि रजिस्ट्री के लिये ऐसी संस्था की बोर्ड द्वारा स्वीकृत हो जाने की आवश्यकता है।

४—ऐसे वैद्य अथवा हकीम जो कि बोर्ड की दृष्टि में पर्याप्त समय से व्यवसाय करते हुये प्रसिद्ध और उपयोगी सिद्ध हो चुके हैं और जिन्होंने व्यवसाय में अपनी कार्य-कुशलता से ख्याति प्राप्त की है

५—जो वैद्य अथवा हकीम इस नियमावली की धारा ३ और ४ में गणना के योग्य हैं उनमें से रजिस्ट्री केवल उन्हीं के लिये परिमित है जो अपना व्यवसाय कम से कम ५ वर्ष तक कर चुके हों। ऐसे वैद्य या हकीम १० वर्ष तक व्यवसाय करने के पश्चात् 'अ' श्रेणी में रक्खे जायँगे जिनका व्यवसाय करने का दस वर्ष का समय पूर्ण नहीं हुआ है वरन् ५ वर्ष पूरे हो चुके हैं वह 'व' श्रेणी में रक्खे जायँगे।

ध्यान रहे कि दस वर्ष तक व्यवसाय करने के पश्चात् वह 'अ' श्रेणी में रक्खे जाने के योग्य समझे जा सकते हैं।

वैद्य और हकीम जिनके पास डिगरी या प्रमाणपत्र इस प्रान्त अथवा प्रान्त के बाहर के किसी राज्य सम्बन्धी आयुर्वैदिक अथवा यूनानी कालेज का है अथवा जिनको किसी नियमानुसार स्थापित भारतीय विश्वविद्यालय की इण्डियन मेडिसिन की डिगरी अथवा कालेज की डिगरी प्राप्त है (अथवा जिनके पास संयुक्त प्रदेश के बोर्ड आफ़ इण्डियन मेडिसिन का प्रमाणपत्र है) वह 'अ' श्रेणी में रक्खे जायंगे और जिन्होंने इस प्रान्त अथवा प्रान्त के बाहर

के राज्य सम्बन्धी आयुर्वैदिक अथवा यूनानी पाठशाला की परीक्षा पास की है अथवा संयुक्त प्रदेश के बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन की अन्तिम पाठशाला की परीक्षा पास की है वह 'ब' श्रेणी में रक्खे जायँगे।

ध्यान रहे कि सात वर्ष अपना व्यवसाय करने के पश्चात् वह 'अ' श्रेणी के योग्य समझे जा सकेंगे।

वैद्य अथवा हकीम जो 'ब' श्रेणी से 'अ' श्रेणी में परिवर्तित किये जांयगे उनको बोर्ड के सेक्रेटरी के पास ५) अधिक शुल्क परिवर्तन के समय मनीआर्डर द्वारा भेजना होगा।

नामावली नं० २

रजिस्टर्ड वैद्यों अथवा हकीमों को प्रदान किये जाने वाले अधिकार

१—एक अथवा अधिक रजिस्टर्ड वैद्य अथवा हकीम को शेष रजिस्टर्ड वैद्यों अथवा हकीमों की ओर से बोर्ड में प्रतिनिधि चुनने में वोट देने का अधिकार होगा।

२—विष सम्बन्धी नियमानुसार दिये हुये लाइसेन्स के अनुसार जिलाधीश के सन्मुख रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र प्रेषित करने पर उनको विष रखने का अधिकार प्राप्त होगा।

३—'अ' श्रेणी के वैद्यों और हकीमों को आयु, निरोगता, योग्यता अथवा छुट्टी के प्रमाणपत्र स्थानीय कर्मचारियों को जिनका मासिक वेतन ५०) और १००) के बीच में हो देने का अधिकार है। और 'ब' श्रेणी वालों को उपरोक्त प्रमाणपत्र स्थानीय कर्मचारियों में से उनको जिनका मासिक वेतन ५०) से कम हो, प्रदान करने का अधिकार होगा।

टिप्पणी—प्रमाणपत्र जो वैद्य अथवा हकीम अपने हस्ताक्षर सहित दें; उसका तारतम्य अपने निजी ज्ञान से यथार्थ घटनाओं से ठीक-ठीक हो और जो असत्य, गड़बड़, अनुचित कदापि न हो।

अयोग्य और अनावश्यक कारणों में प्रमाणपत्र कदापि न प्रदान किया जाना चाहिये। जो वैद्य अथवा हकीम उपरोक्त नियमों के विरुद्ध प्रमाणपत्र देगा उसका नाम रजिस्टर से काट दिया जायगा।

नामावली नं० ३

रजिस्टर में नामाङ्कित कराने का शुल्क

(१) 'अ' श्रेणी में रजिस्ट्री कराने का प्रारम्भिक शुल्क	...	१०)
(२) 'ब' श्रेणी में रजिस्ट्री कराने का प्रारम्भिक शुल्क	...	५)
(३) 'ब' श्रेणी से 'अ' श्रेणी में पुनः परिवर्तन कराने का रजिस्ट्री शुल्क	...	५)
(४) प्रत्येक प्रतिरूप (मुसन्ना) प्रमाणपत्र का रजिस्ट्री का शुल्क	...	३)
(५) प्रत्येक अतिरिक्त योग्यता के प्रमाणपत्र का रजिस्ट्री का शुल्क	...	२)

टिप्पणी—शुल्क सम्बन्धी धन जो बोर्ड को चुकाया जायगा उसकी रसीद दिये हुए फ़ार्म पर जो कि इसमें लगा है, होगी। और रुपया सर्कारी हिसाब में जमा हो कर मूलकोष में (Head-quarters Treasury) रक्खा जायगा। बोर्ड के सेक्रेटरी के पास शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजा जायगा।

वैद्यराज श्री० पं० रंगलालजी ओझा, आयुर्वेद केसरी ।

प्रधानाध्यापक—वासिष्ठ आयुर्वेदविद्यालय ।

फार्म रसीद

बोर्ड ऑफ़ इण्डियन मेडिसिन, संयुक्त प्रान्त, लखनऊ

नं०————

तिथि————१९३ ई०

किससे प्राप्त हुआ————

मुबलिग————

विषय————

सेक्रेटरी

बोर्ड ऑफ़ इण्डियन मेडिसिन, संयुक्त प्रान्त, लखनऊ

नं०————

तिथि————१९३ ई०

किससे प्राप्त हुआ————

मुबलिग————

विषय————

सेक्रेटरी

शेष पत्र नं० १

चिकित्सकों के रजिस्टर का फार्म

नंबर	नाम	पिता का नाम	पता	योग्यता	जाति	आयु	व्यवसाय करने का स्थान	रजिस्ट्री की तिथि और स्थान	विवरण

शेष पत्र नं० २

रजिस्ट्री के प्रमाणपत्र का फार्म

बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिसिन संयुक्त प्रान्त

प्रमाणपत्र नं० ________

१—नाम

२—पिता का नाम

३—पता

४ – योग्यता

५—जाति

६—आयु

७—व्यवसाय करने का स्थान

८—रजिस्ट्री की तिथि और स्थान

यह प्रमाणित किया जाता है कि इण्डियन मेडिसिन संयुक्त प्रान्त द्वारा स्थापित वैद्यों और हकीमों के रजिस्टर में उक्त नाम की लिखा पढ़ी की यह शुद्ध प्रति है।

लखनऊ

तिथि··················१९३ ई०

चेयरमैन

Rules regulating the election of registered Vaidyas and Hakims as members of the Board of Indian Medicine, U. P.

1. In these rules "Board" means the Board of Indian Medicine, United Provinces; "Chairman" means the Chairman of the Board; "Secretary" means the Secretary of the Board and a "registered Vaidya" means a Vaidya and a "registered Hakim" means a Hakim whose name is entered in the Register of Vaidyas and Hakims prescribed by rule I of the Rules for compilation and publication of the register of Vaidyas and Hakims.

2. Two electoral rolls of persons eligible for election as members of the Board shall be prepared by the Secretary—one for registered Vaidyas in form no. I and the other for registered Hakims in form no. II annexed to these rules.

3. A copy of the electoral roll in form no. I shall be sent by registered post to each registered Vaidya, and a copy of the electoral roll in form no. II shall be similarly sent to each Hakim, at least two months before the date of an election. Such copy shall be accompanied by a nomination paper in form no. III or IV annexed to these rules as the case may be specifying therein the date and time fixed for the return of the nomination paper.

4. An election shall take place at the office of the Board on such date and time or between such hours as may be fixed by the Chairman. The date and the time fixed for the return of the nomination paper and the date, time and place of election shall be recorded in forms nos. I and II before they are issued.

5. Any person whose name appears on the electoral roll shall be eligible for nomination as a candidate for election.

6. Any Vaidya or Hakim whose name is on the roll and who intends to stand for election shall fill up a nomination form in form no. III or IV as the case may be and after signing it himself and getting it signed by one elector as proposer and by another as seconder shall send the same in a sealed cover by registered post or by hand to the Secretary so as to reach him not later than the date and time specified for the return of the same.

7. No elector shall subscribe, propose or second the nomination of more persons than there are seats in the particular electorate to which he belongs. If more than such number of nominations signed by the same elector be received, all such nomination papers shall be held to be invalid.

8. When a nomination paper is received, the Secretary, or any other person authorized by the Chairman, shall forthwith endorse thereon the date and hour of the receipt and shall place it in safe custody, and shall also have the date and hour of receipt entered in a register in form no. V annexed to these rules.

9. The Secretary shall fix a date and hour for the scrutiny of the nomination papers not larer than a week from the date fixed for the presentation of the nomination papers, notice whereof shall be given by entering the same in forms nos. III and IV before they are issued. On the date and hour so fixed the Secretary shall lay for scrutiny all nomination papers received by him together with the register in form no. V before the Chairman. The Chairman shall scrutinize such nomination papers and shall decide all questions which may arise as to the validity of any nomination, and his decision on all such questions shall be final.

10. Any candidate or his proposer or seconder may be present at the scrutiny of nomination papers and shall be entitled to examine any nomination papers he desires.

11. Nomination papers which are received in the office of the Board after the date and hour specified in form no. III or form no. IV shall be rejected.

12. If any objection is made that any nomination paper does not comply with these rules or with the instructions contained therein or in any other paper, or is for any other reason invalid, or if an objection is taken to the rejection of a nomination paper such objection shall be decided by the Chairman, whose decision shall be final.

13. The Chairman shall at the time of the scrutiny endorse "Rejected" on any nomination paper which is rejected under rule 11 or which is held to be invalid.

14. Any nominated candidate may withdraw his candidature by sending to the Secretary a written and signed withdrawal not later than two clear days before the date fixed for the scrutiny of the nomination papers. Such withdrawal shall not be allowed subsequently to be cancelled.

15. If on the scrutiny of the nomination papers it is found that the number of duly nominated candidates does not exceed the number of members to be elected, the Chairman shall forthwith declare such candidate or candidates to be elected.

16. In case the number of nominated candidates exceeds the number of members to be elected, the Secretary shall prepare a voting paper for duly nominated Vaidyas in form no. VI and voting paper for duly nominated Hakims in form no. VII (annexed to these rules). He shall then send a copy of the voting paper in form no. VI to all registered Vaids and a copy of voting paper in form no. VII to all registered Hakims, and require them to send their votes in accordance with these rules by registered post or by hand in a sealed cover within fifteen days of the issue of the voting paper. The vote shall be recorded by the entry of the name of the person to be elcted in the column prescribed therefor by the elector with his own hand. Each registered Vaidya or Hakim shall be entitled to vote for as many persons as there are vacancies to be filled up from the electorate to which he belongs, but he shall not be entitled to give more than one vote to one person.

17. As soon as a voting paper is received, the Secretary or any other person authorized by the Chairman shall note the date and hour of receipt thereon, and shall place it in safe custody, and shall also have such date and hour entered in a register in form no. VIII.

18. Voting papers which are received in the office of the Board after the date and hour specified therein shall be rejected.

19. On the date and at the hour fixed for election, the Secretary shall lay for scrutiny and counting of votes all voting papers wnich he may have received together with the register in form no. VIII before the Chairman who shall scrutinize them and shall decide all questions which may arise as to the validity of any voting paper and his decision on such questions shall be final.

20. Any nominated candidate may be present in person or may send a representative duly authorized by him in writing to watch the process of counting. If a candidate or his duly authorized representative desires to examine any voting paper, he shall be allowed to do so on the date and during the hours fixed for the election.

21. If any objection is made that any voting paper does not comply with these rules or with the instructions contained therein or in any other paper or is otherwise invalid or if any objection is taken to the rejection of a voting paper under Rule 18, such objection shall be decided by the Chairman. whose decision shall be final.

22. The Chairman shall at the time of scrutiny endorse "Rejected" on any voting paper which he may reject under Rule 18, or on the ground that it does not comply with these rules or with the instructions on the voting or any other paper.

23. After the votes have been counted, the Chairman shall forthwith declare the candidate or candidates to whom the largest number of votes have been given to be elected.

24. In case of equality of votes between any two or more candidates election shall be made by lot to be drawn in the presence of the Chairman and in such manner as he may direct.

25. Upon the completion of the scrutiny and the counting of votes and after the result has been declared, the Secretary in the presence of the Chairman shall seal up the voting, nomination and other papers and shall retain the same for a period of two months from the date of the election and thereafter cause them to be destroyed.

26. The names of the elected candidates shall be reported to the Local Government, which shall declare the date from and the period for which the election shall be operative, and the result of the election with such declaration shall be published in the *United Provinces Government Gazette.*

27. No election shall be invalidated by reason of the non-receipt by an elector of his voting or any other paper.

28. The decision of the Local Government on any question that may arise as to the intention, construction or application of these rules shall be final.

29. These rules shall apply as far as may be to elections to be made to fill up casual vacancies occurring within the prescribed term. Such election shall be made for the residue of the term of the member whose vacancy is to be filled.

(Note—Necessary forms for purposes of the election will be supplied to each elector in due course.)

WAZIR HASAN, KT.,
Chairman,
Board of Indian Medicine,
United Provinces.

LUCKNOW :

September 24, 1935.

* * *

Board of Indian Medicine,
UNITED PROVINCES

Ayurvedic Schools

PROSPECTUS

SECTION A.
Ayurvedic Schools.

Ordinances and Regulations.

1. No candidate shall be admitted to the Diploma of Ayurveda-Visharada unless he shall have attended the prescribed course of studies which shall cover a period of four years after his passing the examination, qualifying him for admission to the school of Ayurveda.

2. No student shall be admitted to a course of studies in the school unless he shall have passed the admission examination which the Principal of the school will hold every year :—

(i) Students who have passed the व्याकरण प्रथमा of Kashi or equivalent examination of some other recognized institution will be exempted from Sanskrit papers.

(ii) Students who have passed the Matriculation Examination of the High School and Intermediate Board will have to appear in Sanskrit and Hindi only.

3. Students will have to appear in practical examination at the end of the first year in (1) रसायन शास्त्र (Chemistry) and भौतिक विज्ञान (Physics), and प्राणी विज्ञान (Biology).

Before presenting themselves for examination candidates shall produce evidence of—

(i) having completed the first year of their prescribed course,

(ii) having completed the course of practical classes.

4. The first professional examination shall be held in (i) शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy), (ii) शरीर-कार्य-विज्ञान (Physiology) and (iii) द्रव्यगुण शास्त्र [Materia Medica including परिभाषा, रसशास्त्र and भैषज्य कल्पना (Practical Pharmacy)]

Before presenting themselves for examination candidates shall produce evidence of

(i) having completed the second year of their studies,
(ii) having attended the complete course of studies prescribed by the Board,
(iii) having completed the dissection of at least one human dead body.
(iv) having acquired practical knowledge in (*a*) identification of common indigenous drugs and (*b*) preparation of common pharmaceutical recipes used in Ayurveda.

5. The second and final professional examination shall be divided into two groups :—

Group no. I shall include—

(*a*) **प्रसूति शास्त्र, स्त्री रोग और बाल तंत्र** (Obstetrics, Gynaecology and common diseases of children),
(*b*) **व्यवहारायुर्वेद और अगद तंत्र** (Jurisprudence and Toxicology),
(*c*) **स्वस्थ्य वृत्त** (Hygiene).

Group no. II shall include—

(*a*) **रोग विज्ञान चिकित्सा सहित** (Practice of medicine and treatment).
(*b*) **विकृति विज्ञान और जीवाणु विद्या** (Pathology and Bacteriology).
(*c*) **शल्यशालाक्य तंत्र** (Surgery).

Examination in Group no. I will be held at the end of third year while that in Group no. II at the end of fourth year.

(i) having passed the second professional examination,
(ii) having attended the complete course of lectures, demonstrations and practical classes according to curriculum,
(iii) having completed the third and the fourth year of their studies for the examinations of Group no. I and Group no. II respectively,
(iv) of having, for Group no. II—
  (*a*) attended as a clinical clerk in the medical wards for six months,
  (*b*) attended as a surgical dresser in the surgical wards for three months.
  (*c*) attended as a clinical clerk in the medical outdoor department for three months,
  (*d*) attended as a surgical dresser in the surgical out-door for two months.

6. A student who fails in one subject in any professional examination may be permitted to re-appear at the ensuing examination in that subject only in which he has failed, provided he has obtained not less than 25 per cent, marks in the aggregate of that subject.

7. No re-examination of the answer-books is allowed, but re-totalling of marks can be done on the candidate paying a fee of Rs. 5 only.

8. On payment of a fee of Rs. 2 only, the applicant will be supplied with his aggregate marks as well as the marks obtained in the subject in which he fails. The candidate must apply for his marks within two months from the date of publication of the results.

GENERAL REGULATIONS.

1. No student will be allowed to appear at any examination unless he has attended at least 75 per cent. of the lectures in each subject.

2. No student will be allowed to appear at any examination with whose progress the lecturers of different subjects are not satisfied.

3. Before appearing at the examinations students must produce a certificate from the teacher of having attended a full course of practical classes.

4. Students must keep regular notebooks of their work in practical classes which will have to be produced before the examiner who will pay them due consideration.

5. The lecturer shall keep a regular record of the marks obtained by the students in various examinations held in the class from time to time and shall produce it before the examiner who will duly consider it.

6. Attendance at all the examinations, whether of class or Board, is compulsory. Students, not present in the examinations, even if due to illness, will be supposed to have obtained O marks which be entered against their names.

Curricula of Studies for the School of Ayurveda.

FIRST YEAR.

1. **रसायन शास्त्र तथा भौतिक विज्ञान** (Chemistry and Physics)
   A course of 40 lectures.
   A course of 20 practical classes.
2. **प्राणी शास्त्र** (Biology).
   A course of 40 lectures.
   A course of 30 practical classes.

3. शरीर कार्य विज्ञान (Physiology).
   Lectures ... ... 1 term.
4. शरीर रचना विज्ञान (Anatomy).
   Lectures and Demonstrations ... 3 terms.
   शवच्छेद (Dissection) ... ... 2 terms.
5. द्रव्यगुण शास्त्र (Materia Medica)
   Lectures and Demonstrations ... 3 terms.
   Lectures and Demonstrations ... 2 „

At the end of first year, students will be examined only in Physics and Chemistry and Biology.

SECOND YEAR.

1. शरीर रचना विज्ञान (Anatomy) ... 3 terms.
   शवच्छेद Dissection ... ... 2 „
2. शरीर कार्य विज्ञान (Physiology) ... 3 „
   (Practical) ... 2 „
3. द्रव्यगुण शास्त्र (Materia Medica) ... 3 „
   Practical Pharmacy ..... 3 „

At the end of second year students will be examined in शरीर शास्त्र, शरीर कार्य विज्ञान and द्रव्यगुण शास्त्र ।

THIRD YEAR.

1. प्रसूति शास्त्र ... (Obstetrics, Gynaecology
   स्त्री रोग और ... and some common di-
   बाल तंत्र ... seases of children).
2. व्यवहारायुर्वेद ... (Elementary Jurispru-
   और अगद तंत्र dence and Toxicology).
3. स्वस्थ्य वृत्त ... (Hygiene).
4. रोग विज्ञान और चिकित्सा ... (Medicine and treatment)
5. शल्य शालाक्य तंत्र ... (Elementary surgery).
6. 'विकृति विज्ञान ... (Elements of Pathology
   जीवाणु विद्या सहित and Bacteriology).

At the end of the third year students will be examined in स्वस्थ्य वृत्त, प्रसूति तंत्र तथा स्त्री रोग और बालतंत्र, व्यवहारायुर्वेद तथा अगदतंत्र ।

FOURTH YEAR.

1. रोग विज्ञान और ... (Medicine and treatment).
   चिकित्सा
2. शल्य शालाक्य तंत्र ... (Surgery, elementary)

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

3. विकृति विज्ञान ... (Pathology and Bacteriology)

Students will be examined in रोग विज्ञान (चिकित्सा सहित) शल्य शालाक्य तंत्र and विकृति विज्ञान और जीवाणु विद्या at the end of the fourth year.

The number of lectures, demonstrations and practical classes in different subjects should be as follows :—

Subject.	Lectures.	Demonstrations.	Practical classes.
1. Chemistry and Physic.	40	...	20
2. Biology ...	40	...	30
3. Hygiene ...	20	5	
4. Anatomy ...	60	60	(6 terms)
5. Physiology ...	50	20	20
6. Meteria Medica ...	60	60	40
7. Medicine ...	60	15	Clinical Tutorial.
8. Surgery ...	50	15	Ditto.
9. Bacteriology ...	10	5	10
10. Jurisprudence and Toxicology.	20	...	(Post mortem examinations).
11. Obstetrics and Gynaecology.	30	10	

Syllabus for Admission Examination for the Diploma of Ayurveda-Visharad.

1. Candidates appearing at this examination shall be examined in the following subjects :—

1. Sanskrit.
2. Hindi.
3. Geography of India.
4. Arithmetic, and
5. English.

SANSKRIT.

There will be two papers of 100 marks each. First paper will be set from the prescribed text-books. The second paper will contain questions on general composition and translation from Hindi to Sanskrit and *vice versa*.

1st paper ...व्याकरण लघुकौमुदी
2nd paper ...तर्क संग्रह परकृत्य सहित। अनुवाद हिन्दी से संस्कृत और संस्कृत से हिन्दी, पत्र लेखन इत्यादि। निबन्ध रचना

HINDI.

One paper of 100 marks containing questions on general composition and books.

Text-books ...१ हिन्दी निबन्ध माला भाग १ प्रकाशक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
२ संक्षिप्त रामायण बाबू श्याम सुन्दरदास कृत, इण्डियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।

GEOGRAPHY.

One question paper of 100 marks.

Text-books भारतवर्ष का भूगोल ... बाबू कालिका सिंह एम० ए० लिखित

Arithmetic.

Addition, subtraction, multiplication, division, simplification and simple rule of three.

One paper of 100 marks.

English.

One paper of 100 marks containing passages for translation from Hindi to English and *vice versa*. There will also be a paper on general composition in the form of an essay or a letter. (The standard expected will be that of the VIII standard of High School Board.)

SECTION B.

Syllabus.

रसायन शास्त्र और भौतिक विज्ञान।

(रसायन शास्त्र)

१—पदार्थ की परीक्षा, उसके रंग, गंध, स्वाद इत्यादि के अनुसार।

२—घोल (Solution) मिश्रण (Mixture) एमल्शन (Emulsion) नित्यन्दन (Filtration), स्फटकी करण (Crystalization) स्रवन (Distillation) और ऊर्ध्वपातन (Sublimation).

निम्नलिखित वस्तुओं के साथ ऊपर लिखित प्रयोगों का ज्ञान करनाः—

साधारण लवण, शोरा, खटिव, चूना, बालू, नील, तुत्थ, कसीस, गंधक, गंधकाम्ल, नाइट्रिक अम्ल (शोरे का तेजाब), हाईड्रोक्लोरिक अम्ल (नमक का तेज़ाब) – लोह, यसद, सीसा, ताम्र, कपूर, तेल।

३—वायु—संगठन, दहन (Combustion) धातुओं में जंग लगाना।

४—जल-संगठन, सोडियम व मगनेशियम की जल पर क्रिया, वाष्प की तप्त लोह पर क्रिया।

५—निम्नलिखित गैसों को बनाना और उनके साधारण गुणों का ज्ञान—

अक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, क्लोरिन, कारबोनिक अम्ल (Carbonic Acid) इनके मुख्य योगों का ज्ञान करना।

६—मौलिक तथा संयोगिक पदार्थ, अणु और परमाणु, इनके सिद्धान्त, रसायनिक संयोजन के नियम।

७—निम्नलिखित वस्तुओं का सामान्य ज्ञान—

एलकोहल (Alcohol), ईथर (Ether) क्लोरोफ़ारम (Chloroform) एसेटिक (Acetic) अम्ल, औक्ज़ैलिक (Oxalic) अम्ल और टारटैरिक (Tartaric) अम्ल।

पाठ्य पुस्तक—प्रारम्भिक रसायन, भाग प्रथम और द्वितीय, लेखक—प्रोफ़ेसर फूलदेव सहाय वर्म्मा प्रकाशक—नन्दकिशोर एण्ड ब्रादर्स, बनारस।

(भौतिक विज्ञान)

८—साधारण—पदार्थ (Matter), जड़त्व (Inertia) शक्ति (Energy), बल (Force), दबाव (Pressure), पदार्थों की भौतिक अवस्थाएँ; क्षेत्रफल, लम्बाई, और आयतन की माप; मात्रा (Mass) और तोल (Weight), गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of Gravitation) रसायनिक तुला (Chemical Balance), घनत्व और विशिष्ट गुरुत्व (Density and specific gravity) आर्किमिड़ीज का सिद्धांत (Theory of Archimides).

९—ताप (Heat) का घन (Solids), द्रव (Liquids), और गैसों पर प्रभाव, आयतन और तापक्रम का परिवर्तन, थर्मामीटर, क्वथनाङ्क (Boiling point) गलनाङ्क (Melting point), वाष्पीकरण (Evaporation), द्रवीकरण (Condensation), स्रवन (Distillation), ताप की मात्रा, आपेक्षिक ताप (Specific heat) गुप्तताप (Latent heat) तापगमन (Conduction of heat), तापवहन (Convection), तापविसर्जन (Radiation).

१०—प्रकाश (Light) सरल रेखात्मक गमन—छाया (Shades) समतल और गोलीय दर्पणों से परिवर्तन (Reflection of light from plain and spherical mirrors) वास्तविक और अवास्तविक प्रतिबिम्ब (Real and virtual images), समतल, त्रिपार्श्व और तालों से परिवर्तन (Refraction from plain surfaces, prisms and lenses), सूक्ष्म दर्शक (Microscope) दुरबीन (Telescope) रश्मिवर्णमाला (Spectrum).

११—विद्युत और चुम्बकत्व (Electricity and Magnetism) चुम्बक और चुम्बकीय पदार्थ—आकर्षण ध्रुवदिक-सूचक (Magnetic Compass), संघर्षण के द्वारा विद्युत की उत्पत्ति—घन और ऋण विद्युत (Positive and Negative Electricity), संचालक और रोध पदार्थ (Conductors and non-Conductors), विद्युतधारा, विद्युतघटिका, विद्युतधारा का चुम्बक पर प्रभाव, धारामापक, विद्युतधारा से ताप और प्रकाश की उत्पत्ति, विद्युत विश्लेषण स्वर्णपत्र विद्युत-दर्शक (Gold leaf Electroscope), वोल्टे तथा लेकलांची का विद्युत घट (Volte's and Lachlanche's cells)

१२—सांख्य और वैशेषिक के अंतर्गत जो भौतिक शास्त्रोपयोगी आयुर्वेदीय अंश हैं विद्यार्थी को उनका ज्ञान होना चाहिये ।

अभिसरण (Osmosis).

१४—शब्द—शब्द के विस्तार सम्बन्धी प्रारम्भिक नियम ।

पाठ्य पुस्तक—प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान by Dr. Nihalkaran Sethi, D. Sc., published by Benares Hindu University.

वनस्पति शास्त्र और जन्तु विज्ञान, (वनस्पति)

बीज की रचना और स्फुटन (Germination), उसकी आवश्यक अवस्थायें—सेम व मटर व एरण्ड के बीज का उदाहरण ।

जड़—प्राकृतिक और अप्राकृतिक रूप (Normal and adventious roots) जड़ का कार्य—वृक्ष का स्तंभ—उसकी शाखायें, अंकुर, अधोतलीय मूल का स्तंभ से भेद, स्तंभ के भिन्न २ रूप ।

N. B. पाठ के समय साधारण वस्तु जैसे हरिद्रा, अदरक, आलू व अन्य आतुर्वेद में प्रयोग होने वाली औषधियों का व्यवहार करना चाहिये । पत्र—पत्रक्रम (Phyllotaxis); भिन्न २ प्रकार के पत्र; संयुक्त पत्र (Compound leaf) और शाखा का भेद, निम्नलिखित विधि के अनुसार पत्र की व्याख्याः—

(१) पतन शील (Deciduous) व चिरहरित (Evergreen) पक्षान्तर (Alternate) व संमुख (Opposite) मूल—सहित (Petiolate) व मूल रहित, वेष्टित (Sheathed) इत्यादि ।

पत्र का आकार ।

(२) पुष्प—पुष्प क्रम, पुष्प का आकार, उसके भिन्न २ भागों की स्थिति पुष्प की व्याख्या ।

Calyx.
Corrolla.
Androecium.
Gynaecium,
Ovaries.

(३) फल (Fruit)—जाति, बीज और फल का वितरण ।

वृक्ष-क्रिया-विज्ञान—श्वास क्रिया; भोजन का ग्रहण करना, जाति अवरोहन, प्रकाश का वृक्ष पर प्रभाव ।

(जन्तु विज्ञान)

व्याख्या—जन्तुओं के वर्गीकरण के मुख्य २ सिद्धान्त—भिन्न वर्ग और जातियां—मनुष्य की स्थिति, सेल और प्रोटोप्लाज़्म-विकासवाद के स्थूल नियमों की सूक्ष्म रूप से व्याख्या-मेंढक के शरीर की व्याख्या-उसके मुख्य २ संस्थानों की रचना और उनका कार्य ॥

शरीर रचना विज्ञान (Anatomy).

There will be one paper in Anatomy containing questions from modern as well as classical literature on the subject carrying 100 marks of 3 hours' duration. There will also be a practical examination of 100 marks.

अस्थि संस्थान—अस्थियों के प्रकार, उनकी रचना, तथा कार्य्य, करोटि के अतिरिक्त शरीर की अस्थियों का विशद ज्ञान; तथा करोटि की अस्थियों के नाम और तत्सम्बन्धी विशेष बातें ।

संधि संस्थान—प्रकार—रचना तथा कर्म । निम्नलिखित संधियों का विशद ज्ञान ।

(१) स्कंध (Shoulder).

(२) कूर्पर (Elbow).

(३) वंक्षण (Hip).

मांस संस्थान – शरीर की पेशियों के नाम, उनका उद्भव और निवेश, उनकी क्रिया का सामान्यतः ज्ञान ।

रक्त-वाहक संस्थान—हृदय की रचना, स्थिति, आकार इत्यादि तथा शरीर की मुख्य धमनी और शिराओं का विवरण, मुख्य धमनियों के संबंध ।

नाड़ी संस्थान – मस्तिष्क की स्थूल रचना का सामान्य ज्ञान, मस्तिष्क के केन्द्र, मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से निकलने वाली नाड़ियां तथा उनका विवरण ।

आशय खंड—निम्नलिखित आशयों का उपयुक्त ज्ञानः—

मुख, अन्न प्रणाली, आमाशय, पक्वाशय—क्षुद्र अंत्रिया, बृहद आंत्र, मल स्थान, उदर गुहा, औदर्या कला (Peritoneum) तथा आंत्र सम्बन्धी कला, (Mesentry)

वृक्क, उपवृक्क (Suprarenals) गवीनो, (Ureter) मूत्राशय शिशन, मूत्र मार्ग ।

अंड कोष, उसके स्तर, उपाण्ड ।

गर्भाशय, डिंभग्रन्थि (Ovary) योनि, भग । फुस्फुस, श्वास—प्रणाली तथा प्रणालिकायें, अवटुका (Thyroid) और पीयूष (Pituitary) ग्रन्थियां ।

विशेष ज्ञानेन्द्रियां—नेत्र, श्रोत्र, नासिका, त्वचा तथा जिह्वा ।

पाठ्य ग्रंथ – वाग्भट्ट—शरीर स्थान ।

प्रत्यक्ष शारीरम्—गणनाथ सेन (हिन्दी) Supplemented by notes.

क्रियात्मक—एक सम्पूर्ण शव का शवच्छेद ।

शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology).

There will be one paper in Physiology carrying 100 marks of 3 hours' duration containing questions from modern as well as classical text-books dealing with the subject. There will also be a practical examination of 100 marks.

जीवन के लक्षण—

जीव कोषाणु (Cell)—आद्यसार (Protoplasm), उसका भौतिक और रसायनिक संगठन तथा उसके गुण।

धातु (Tissues), प्राकार—अस्थि, सृक्कि (Cartilage) इत्यादि।

नाड़ी, (Nerve), प्रकार, उनका कार्य तथा मांस पेशी से संबंध।

मांसपेशी (Muscles), उनकी भौतिक रचना, संकोच तथा विस्तार, मृत्यूत्तर संकोच, (Rigor Mortis).

रक्तवाहक संस्थान—हृदय का कार्य, हृत्कार्यचक्र—भिन्न भिन्न-भाग जैसे कपाट—(Valves) इत्यादि के कार्य—हृत्कार्य चक्र का समय, हृदय का शब्द—रक्तपरिभ्रमण या संवहन (Circulation of Blood), रक्त भार (Blood Pressure), हृदय की नाड़ियाँ, और फुस्फुस का सबंध।

श्वासोछ्वास संस्थान (Respiratory system)—फुस्फुस, श्वास प्रणाली तथा श्वास प्रणालिकाओं की रचना, श्वास कर्म, श्वास के कारण वक्ष में गति, वायु और रक्त की गैसों का परिवर्तन, श्वास का कारण, कृत्रिम श्वास क्रिया—

पाचक संस्थान (Digestive system)—भोजन के अवयव (Constituents of diet), कुछ साधारण भोजन पदार्थों का संगठन, भिन्न-भिन्न पाचक रस, उनकी उत्पत्ति तथा क्रिया, पित्त, भोजन का अंत्रियों द्वारा शोषण, आमाशय और अंत्रियों में गति—

मूत्रवाहक संस्थान (Urinary system)—मूत्र की मात्रा तथा संगठन, वृक्क द्वारा मूत्र की उत्पत्ति, मूत्र के स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक अवयव, ।

नाड़ी मंडल—(Nervous system) वृहद मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा नाड़ियों के कर्म, केन्द्रों का अन्वेषण, स्वतंत्र मंडल (Sympathetic or Autonomous Nervous system) का साधारण ज्ञान।

विशेष ज्ञानेन्द्रियां—नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका, और त्वचा की रचना, और उनके कर्म का साधारण ज्ञान।

निःस्रोत ग्रन्थियां (Ductless Glands) निम्नलिखित निःस्रोत ग्रन्थियों का विशेष ज्ञान—

अवटुका (Thyroid).
पीयूषिका (Pituitary).
उपवृक्क (Suprarenals).
चयापचय (Metabolism).

पाठ्य पुस्तक—(१) मानव शरीर रहस्य by Dr. M. S. Varma. Published by Newal Kishore Press, Lucknow.

(२) वाग्भट्ट तथा चरक के विषय सम्बन्धी प्रकरण का ज्ञान।

क्रियात्मक—

सूक्ष्म रचना (History)—धातु, आमाशय, क्षुद्रांत्र, बृहदांत्र, अग्न्याशय, वृक्क, यकृत्, मांसपेशी, नाड़ी सूत्र, और अंडकोष की सूक्ष्म रचना का ज्ञान।

रक्त की परीक्षा—रक्त का Slide बनाना और उसका रञ्जन (making and staining a blood film), रक्त कणों (blood corpuscles, red and white) की गणना।

रक्तभार को मापना

मूत्र की परीक्षा

द्रव्य गुण-शास्त्र तथा रस शास्त्र परिभाषा सहित

There will be one paper in Materia Medica containing questions on the following syllabus of 3 hours' duration carrying 100 marks. There will also be a practical examination of 100 marks.

साधारण परिभाषाओं की व्याख्या

वानस्पतिक, जान्तव और खनिज औषधियों का उनके प्रभाव के अनुसार वर्गीकरण।

परिमाण—मात्रा का निश्चय—गुण विरोध्य, (incompatibility)

रस, वीर्य्य, विपाक, प्रभाव, तथा गुण—औषधि के शरीर में प्रवेश के मार्गप्रयोग पत्र (prescription) लिखना।

निम्नलिखित औषधियों के उत्पत्ति व प्राप्ति स्थान, उनका स्वरूप, प्रभाव, मात्रा, प्रयोग इत्यादि का पूर्ण ज्ञान—

त्रिफला, त्रिमद, चतुर्जात, दशमूल, त्रिणपंचमूल, अम्ल वर्ग, अष्टवर्ग, परोल, पर्पटक, तुलसी, निर्गुण्डी. ब्राह्मी, केतकी, मंडूकपर्णी, क्षुरक, हवुषा, गोरक्षमुंडी, इन्द्रवारुणी, मदन फल, कोषातकी, पंचबल्कल, क्षाराष्टक, वासा, भार्ङ्गी, लवंगयमानी, शतपुष्पद्वयम्, कुष्ट, श्रृंगी, ताम्बूल, कुस्तुम्बरू, शठी, तालीषपत्र, जीरक, देवदारु, पुनर्नवा, दुरालभा, वलाचतुष्टय, अश्वगंधा, विदारी, वृद्धदारुक, भल्लातक, त्रिवृत्त, रण्ड, दन्ती, आरग्वध, जयपाल, दारुहरिद्रा निम्ब, गुडुची, अगुरु, कुंकुम, चन्दन, जटामांसी, पलाण्डु, रसोत, कटफलं, कपूर, उषीर, हिंगु अशोक, सारिवा, सप्तपर्ण, शालसा, अहिफेन, गंजा भंग, वत्सनाभ, विषमुष्ठि, धतूरा, गुंजाफल, देवदाली, ज्योष्मिनी, अम्बर, मुक्ता, प्रवाल, शंख, शुक्ति।

निम्नलिखित वस्तुओं के अष्ट संस्कार, उनके बनाने की रीति, गुण और प्रयोगों का ज्ञान—

रसभस्म, महारस, लोह, फेनाश्म, मृद्दारश्रृंग, हिंगुल, रसपर्पटी, रससिंदूर मकरध्वज रसकपूर, ताम्र, नाग, वंग, स्वर्ण, रजत. यशद, अभ्रक, हरताल, मनःशिल, रसमाणिक्य, अंजन, तुत्थ, कासीस।

Arsenic and its salts, Potassium Iodide, Potassium Permanganate, Potassium Bromide, Ammonium Bromide, Ammonium Chloride, Sodium Bromide, Hydrarg perchlor, Acids—Nitric, Hydrochlor, Hydrochloric and Sulphuric, Iodine, Stramonium, Datura, Digitalis, Strophanthus, Nux Vomica, Strychnine, Opium, Morphine, Aconite, (मीठा तेलिया) Ergot, Alcohol, Ether, Chloroform, Thymol, Carbolic Acid, Mustard, Castor oil, Cascara Sagrada, Rhubarb, Santonine, Cinchona and quinine, Adrenalin, Pituitarin, Thyroid Extract, Anisi, Anithi, Cinnamon, Cajuput, Cloves.

क्रियात्मक—औषधि निर्माण

निम्नलिखित श्रेणियों के कम से कम दो योग बनाने होंगेः—

(१) कषाय—हरीतक्यादि, मंजिष्ठादि, पुनर्नवा, कुटजाष्टक।
(२) पुटपाक—कुटजत्वक, विभीतक, सूरण।
(३) चूर्ण—लवणभास्कर, चित्रकादि. तालीषादि, सितोपलादि।
(४) अवलेह—च्यवनप्राश, कष्टकारी, वासा, स्वर्णमुखी।
(५) घृत—पंचतिक्ता, विन्दुघृत।
(६) तैल निस्सारण—वाकुची, स्वर्णक्षीरी, चालमुग्रा, (तुवरक तैल)।
(७) अरिष्ट तथा आसव—अहिफेन, पुनर्नवा, द्राक्षा।
(८) पानक—चंदन, बनपलांगु।
(९) अर्क—शतपुष्प, गुलाब, कर्पूर, त्वक।
(१०) प्रलेप—त्रिफला, राल, शतधौत।

निम्नलिखित उपकरणों का ज्ञान—

खल्व, स्थाली, तथा Infusion pot.

Pill machine,
स्वेदन यंत्र,
अर्क ,, ,
डमरू ,, ,
भस्म ,, ,
भूधर ,, ,
पाताल ,, ,
डोला ,, ,
गुदवर्ति के सांचे।

Pill Roller.
कच्छप यंत्र।
त्रियक पातन ,,।
ऊर्ध्वपातन ,,।
अधः पातन ,,।
लवण ,,।
नाडिका ,,।

निम्नलिखित श्रेणियों के कम से कम दो योग बनाने होंगे—और दो प्रक्रिया करनी होंगीः—

(१) कज्जली—रसगंधक, खटिक।
(२) शोधन—शिलाजीत, बंग, नाग, गंधक।

(३) सत्वपातन—अभ्रक, हरताल, तुत्थ ।
(४) मारण—बंग, ताम्र, लोहनाग, अभ्रक ।
(५) जारण—गंधक ।
(६) रस—इच्छाभेदी, स्वच्छन्द भैरव, मृत्युञ्जय, जयमंगल, कस्तूरी ।
(७) पर्पटी—पञ्चामृत, रसगंधक ।
(८) लेप—दशांग, सिक्तकादि ।
(९) वटी—आरोग्यवर्धनी, सञ्जीवनी ।

पाठ्य ग्रंथ—(१) भावप्रकाश का निघण्टु,
(२) गंगाधरी परिभाषा,
(३) आयुर्वेद प्रकाश,
(४) Materia Medica by Ghosh.

रोग विज्ञान (Medicine). चिकित्सा सहित

There will be two papers, one from modern and the other from classical text-books, each carrying 100 marks and of 3 hours' duration. There will also be a practical examinatian of 100 marks.

निम्नलिखित रोगों के लक्षण, सम्प्राप्ति, कारण, परीक्षा तथा उनकी चिकित्सा का ज्ञान होना चाहिये ।

संक्रामक रोग—भिन्न २ प्रकार के ज्वर, बातज्वर, पित्तज्वर, श्लेष्मज्वर, तथा संधिवातज्वर (Rheumatism), विषमज्वर (Malaria), काला-अजार (Kala-Azar), मस्तिष्कावरणज्वर (Cerebral Meningitis), कर्ण ग्रन्थिज्वर (Parotitis), वातश्लेष्मज्वर (Influenza), डिप्थीरिया (Diptheria), धनुर्वात (Tetanus), आंत्रज्वर (Enteric fever) प्लेग (Plague) मसूरिका (Small pox), आतपज्वर (Heatstroke), विशूचिका (Cholera), प्रवाहिका (Dysentery), फिरंगरोग (Syphilis), पूयमेह (Gonorrhoea), राजयक्ष्मा (Tuberculosis), पराश्रमी–कृमिज रोग, जैसे अंकुर कृमि रोग (Ankylostomiasis), अन्य रोग—बेरी बेरी (Beri beri), स्करवी (Scurvy), रिकेटस (Rickets), गठिया (Gout), पाचन के रोग—कंठशालूक, गलशोथ, (Pharyngitis), अजीर्ण और मंदाग्नि, (Dyspepsia) आमाशय वृग (Gastric ulcer), आमाशय का कैंसर (Cancer of stomach), अतिसार (Diarrhoea), क्षयजन्य अतिसार कोष्टवद्धता (Constipation), संग्रहणी, आन्त्र परिशिष्ठ शोथ (Appendicitis), उदर शूल (Intestinal colic), गुल्म ।

यकृत के रोग—कामला (Jaundice), यकृत शोथ, (Hepatitis) पित्ताश्मरी (Billiary calculus).

औदर्याकला—औदर्य्याकला का साधारण शोथ (Simple Peritonitis), क्षयजन्य शोथ (Tuberculous Peritonitis), जलोदर (Ascitis)

प्लीहा—प्लीहा वृद्धि (Enlargement of Spleen)

श्वास सम्बन्धी रोग—प्रतिश्याय, स्वरयंत्रशोथ (Laryngitis), पार्श्वशूल तथा उरस्तोय (Pleurisy), कास (Bronchitis), श्वास रोग, (Asthma), फुस्फुस प्रसार (Emphyseima), श्वासज्वर (Pneumonia), फुस्फुस विद्रधि (Abscess of lungs),

मूत्ररोग—तरुण तथा जीर्ण वृक्क शोथ (Acute and Chronic Nephritis),

वृक्कशूल (Renal Colic)

वृक्काश्मरी (Renal Calculus)

मूत्रविषसंचार (Uraemia), इक्षुमेह (Diabetes Mellitus), उदकमेह (Diabetes Insipidus).

रक्तमेह (Haematuria).

बसामेह (Chyluria).

रक्त संवहन के रोग—हृदयपर्यावरण तथा अंतरावरण शोथ (Pericarditis and Endocarditis), हृत्कपाटों के रोग (Valvular diseases of heart) हृत्प्रसार और हृदयातिं वृद्धि (Dialatation and Hypertrophy), हृच्छूल (Angina Pectoris).

रक्तरोग—पांडु (Anaemia), घातक पांडु (Pernicious Anaemia), नासारक्तस्राव (Epistaxis), रक्तवमन (Haemoptysis), रक्तातिसार।

त्वग्रोग—शीतपित्त, दद्रु (Ringworm), पामा (Eczema), कंडु (Scabies), श्वित्र, त्वक्क्षयरोग (Lupus), लोमनाश (Alopaecia),

नाड़ीमंडल के रोग—पक्षाघात (Hemiplegia), मस्तिष्क रक्तस्राव (Cerebral Haemorrhage), मस्तिष्क सिरारोध (Cerebral Embolism), मस्तिष्कावरणशोथ (Cerebral Meningitis), उन्मत्तपक्षाघात।

अपस्मार (Epilesy), नाड़ीवातशूल (Neuritis),
अर्धावभेद (Forticollis) सूर्यावर्त (Hemicrania),
धनुस्तम्भ (Tetanus),

विसर्पीमांसक्षीणता (Progressive muscular Atrophy)

दृष्टिनाडीशोथ (Optic Neuritis), त्रिशाखा नाडीशूल (Trigemiral Neuralgia) अर्दित, गृध्रसी (Sciatica).

पाठ्यग्रंथ—वाग्भट्ट—सूत्रस्थान अ० १, १२, १३, १४, १६ से २४ तक
,, शारीरस्थान-अ० ५, ६
,, निदानस्थान-समग्र
,, उत्तर तंत्र अ० २२, ३१, ३३, ३४, ४०
,, चिकित्सास्थान, अ० १ से १२, १४ से २२,
,, कल्पस्थान—समग्र।

Wheeler's Hand book of Medicine.

स्वाध्याय ग्रंथ—Taylers Practice of Medicine.

विकृति विज्ञान (Pathology).

There will be one paper in Pathology carrying 100 marks and of 3 hours' duration, consisting of questions from modern as well as classical text-books. There will also be a practical examination of 100 marks.

त्रिदोष सिद्धान्त—

स्वास्थ्य और रोगावस्था का सामान्य ज्ञान। शोथ (Inflamation) वृणरोहन (Repair of wound), क्षीणता (Atrophy) अतिवृद्धि (Hypertrophy) अर्बुद, सामान्य तथा घातक (simple and malignant ulcers).

निम्नलिखित रोगों में विकृत दशा का साधारण ज्ञान—

ज्वर (Fevers), विषम ज्वर (Malaria), आंत्रज ज्वर (Enteric), राजयक्ष्मा (Tuberculosis), श्वसन ज्वर (Pneumonia), श्वास रोग (Asthma), वृक्क शोथ (Nephritis), बसामेह (Chyluria), फिरंग रोग (Syphilis), हृदय के मुख्य मुख्य रोग जैसे हृत्कपाट के रोग (Valvular diseases of heart), प्लीहा और यकृत के कुछ विशेष रोग—

पराश्रयी जीवन ज्ञान—

मुख्य २ पराश्रमियों का जीवन चक्र—

गंडूपद कृमि (Round worms.)
सूत्र कृमि (Thread worms) श्लीपद कृमि (Filaria)
अंकुर कृमि (Ankylostoma duodenale)

जीवाणु विद्या (Bacteriology) के साधारण नियम—

जीवाणुओं की उत्पत्ति, वृद्धि, भोजन, वायु और प्रकाश का प्रभाव, जीवाणुओं के प्रकार तथा आकार, रोगक्षमता (Immunity) का ज्ञान—

निम्नलिखित रोगों के जीवाणुओं का ज्ञान तथा उनकी परीक्षा—

पाक (Suppuratian), श्वसनक ज्वर (Pneumonia), पुनराक्रमक ज्वर (Relapsing fever), डिप्थीरिया (Diphtheria), आंत्रज ज्वर, राजयक्ष्मा, विशुचिका, कुष्ट, पूयमेह, फिरंग रोग, प्लेग, एक्टिनोमाइकोसिस (Actinomycosis)

पाठ्य ग्रंथ—प्राचीन ग्रंथों के विषय सम्बन्धी भाग का अध्ययन—

Green's Text Book of Pathology.

जीवाणु विद्या, गुरूपदेशानुसार

शल्य तथा शालाक्य तंत्र (Surgery, General and Special)

There will be one paper in Surgery containg questions from modern as well as classical text-books, carrying 100 marks of 3 hours' duration. There will also be a practical examination of 100 marks.

निम्नलिखित विषय का ज्ञान—

शोथ (Inflamation), पाक (Suppuration), विद्रधि (Abscess), अधस्त्वक शोथ (Cellulitis), गतिव्रण (Sinus), व्रण (Ulcer) रोहन (Repair).

अष्ट विधि कर्म

निर्विष तथा विषहारी चिकित्सा (Aseptic and anti-septic surgery) विसंक्रामक पदार्थ तथा उनका प्रयोग (Anti-septics).

अर्बुद (Tumours), भिन्न-भिन्न प्रकार—चिकित्सा।

पूय संचार (Pyaemia), क्षतजविसर्प (Erysepilas), धनुर्वात (Tetanus), फिरंग रोग (Syphilis), पूयमेह (Ganorroea), क्षयव्रण (Tuberculosis).

स्तब्धता (Schock), अस्थिभग्न (Fractures)—अस्थिभग्न के प्रकार तथा चिकित्सा के साधारण नियम।

निम्नलिखित अस्थियों के भग्नों का विशेष ज्ञान—

अक्षकं (Clavicle), प्रगंडास्थि (Humerous), बाहु की अस्थियाँ (Radius and ulna), उर्वस्थि (Femur), जंघास्थियाँ (Tibia and Fibula) जान्वस्थि (Patella), हन्वस्थि (Mandabile), पादास्थियाँ (Tarsals), करभास्थियाँ (Carpals) और अंगुल्यास्थियाँ (Digital bones).

संधिविश्लेष—

निम्नलिखित संधियों के विश्लेषों का विशेष ज्ञान—

हनुसन्धि (Mandibular Joint), अंसफलक की संधियाँ (Acromial Joints), कूर्पर (Elbow), मणिबंध (Wrist), अंगुष्ठ (Thumb), वंक्षण (Hip), जानु (Knee), गुल्फ (Ankle).

संधि तथा अस्थियों के रोग—

संधिविवर्त (Sprain), संधिशोथ (Arthritis), अस्थिशोथ (Periostitis), अस्थिमज्जा शोथ (Osteomylitis.).

निम्नलिखित रोगों का पूर्ण ज्ञान—

रक्तस्राव (Haemorrhage)—भिन्न-भिन्न प्रदेशों का रक्तस्राव तथा उसकी चिकित्सा के उपाय।

मूत्रावरोध (Incontinuance of urine), मूत्रकृच्छ, (Retention of urine), मूत्रपरिविसार (Extravasation of urine), मूत्राशयाश्मरी (Stone in bladder) वृक्काश्मरी (Renal calculus), बद्धन्य (Intestinal obstructure), आंत्रपरिशिष्ठ शोथ (Appendicitis), आंत्रवृद्धि (Hernia), अर्श (Piles), भगन्दर (Fistula-in-An), मूत्रमार्गसंकिरण (Urethral stucture), यकृत विद्रधि (Liver abscess).

व्रणोपचार का पूर्ण ज्ञान—व्रग तथा कुशाबन्धन—व्रण शोधन।

शस्त्र कर्म, पूर्व कर्म, प्रधान कर्म, पश्चात् कर्म, सूची वेधन, वन्धन तथा सीवन (Lignatures and sutures), उत्तर वस्ती, मूत्र मार्ग परिशोधन ।

संज्ञाहरण (Anaesthesia)

पाठ्य ग्रंथ—(१) वाग्भट्ट —सूत्र स्थान अ० २५–३० । शरीर स्थान अ० ३–४ ।
,, चिकित्सा स्थान अ० १३–१८ । उत्तर स्थान अ०२८–३० ।
(२) संक्षिप्त शल्य विज्ञान by Dr. M. S. Verma,
PUUBLISHED BY
MESSRS NAND KIHORE & BROTHERS, *Chowk, Benares.*

प्रसूति तंत्र, स्त्री रोग तथा बालतंत्र ।

(Obstetrics, Gynæcology, diseases of children).

There will be one paper containing questions from modern as well as classical text-books, carrying 100 marks and of 3 hours' duration There will also be practical and viva-voce examinations of 100 marks.

शुद्ध आर्तव का लक्षण—वीजोत्पत्ति (Ovulation), पुरुष तथा स्त्री वीजों का संयोग और उससे गर्भ स्थापना—अपरा की उत्पत्ति (Development of Placenta) और उसके कर्म, भ्रूण का रक्त संवहन, गर्भाशय की भिन्न भिन्न अभिकालिक वृद्धि, गर्भ के लक्षण (signs of pregnancy)

. साधारण प्रसव का ज्ञान (Course and mechanism of normal labour)

मूढ़ गर्भ तथा विपरीत उदयन (abnormal labour and malpresentations), कष्ट प्रसव (difficult labour), उनकी परिचर्या (management).

प्रसूति काल ।

गर्भ रोग—अर्बुद (Tumours), भ्रूण कोषाति वृद्धि (Hydramnios), रक्तस्राव (Haemorrhage),—(Antepartum and Postpartum), गर्भस्राव (Abortion and miscarriage), बहिर्गर्भस्थिति (Extrauterine pregnancy).

फिरंग रोग, क्षय रोग, हृत रोग तथा गर्भाशय रोग ।

विष संचार (Scepticaemia), जीवाणु संचार (Pyaemia).

आर्तव सम्बन्धी रोग—

कष्टार्तव (Dipmenorrhoea), अत्यार्तव (Metrorrhagia and Menorrhagia), नष्टार्तव (Amenorrhoea), श्वेत प्रदर (Lencorrhoea)

भग शोथ—योनि शोथ (Vulvitis and vaginitis), गर्भाशय के शोथ (Metritis endometritis and para-metritis), योनि तथा गर्भाशय के अर्बुद श्रोणि-पर्यावरण-शोथ (Pelvic cellulitis).

नवजात शिशु का स्नान, भोजन, स्तन पोषित तथा हस्त पोषित—(breast fed and hand fed), शिशुओं की भिन्न-भिन्न अवस्था पर भोजन विधि, दन्तोत्पत्ति, तत्सम्बन्धी परिचर्या, शिशु स्वास्थ सम्बन्धी साधारण नियम, विशेष बाल रोगों का ज्ञान, बाल-अतिसार (Infantile Diarrhoea), मलबंध (Constipation), काली खांसी (Whooping cough), आध्मान (Tympanitis), वातश्लेष्म ज्वर (Broncho-pneumonia), आक्षेप (Convulsions), बाल-शोथ (Rickects), कुकूणक पारिगर्भिक तालुकंटक (Stomatitis),

पाठ्य ग्रन्थ—यामिनी भूषण राय कृत (१) प्रसूति तन्त्र (२) कौमार तन्त्र (३) गुरुपदेशानुसार

व्यवहारायुर्वेद और अगद तंत्र ।

(Medical Jurisprudence and Toxicology),

There will be one paper in Medical Jurisprudence and Toxicology of 3 hours' duration carrying 100 marks.

स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक मृत्यु, दुर्घटनायें, आत्महत्या, परहत्या, शिशुहत्या । मृत्यु के लक्षण, मृत्यूत्तर संकोच (Rigor mortis).

क्षतों के लक्षण (wounds), भेद तथा परिचय, आत्मकृत तथा परिकृत ।

विषों का वर्गीकरण तथा उनकी शरीर पर क्रिया, चिकित्सा के साधारण नियम — निम्नलिखित विषों के लक्षण और उनकी चिकित्सा ।

धात्वीय तथा बानस्पतिक अम्ल (Mineral and vegetable acids) दाहक क्षार ।

धात्वीय विष—संखिया, पारद, नीलाञ्जन, सीसा, ताम्र, धतूरा, भंग, कुचला, वत्सनाभ, अफ़ीम, जायफल, चित्रक, सर्प-विष, कांच, हीरा ।

पाठ्य ग्रन्थ—

(१) व्यवहारायुर्वेद—गुरूपदेशानुसार ।

(२) अगद तंत्र—विष विज्ञान by Dr. M. S. Varma published by University Stores, Benares Hindu University.

स्वस्थ्य वृत्त (Hygiene).

There will be one paper in Hygiene carrying 100 marks of 3 hours' duration containing questions on modern as well as classical text-books.

वायु—संगठन, दोष, उत्पन्न होने वाले रोग; व्यजन (Ventilation) श्वास के लिये उपयुक्त वायु ।

जल—संगठन, संग्रह, वितरण दोष, उससे उत्पन्न होने वाले रोग ।

भोजन—मूल अवयव, पर्याप्त मात्रा, भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन, दूषित भोजन से उत्पन्न होने वाले रोग ।

वासस्थान—शुद्धता, आदर्श स्थान, सूर्य्य प्रकाश ।

वैयक्तिक स्वस्थ्य वृत्त—निद्रा, स्नान, भिन्न २ प्रकार के स्नान, और उनसे लाभ, व्यायाम और दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या, आहारचर्य्या, ऋतुचर्य्या, उद्वर्तन, अभ्यंग ।

संक्रामकरोग—मलेरिया, प्लेग, विशूचिका, प्रवाहिका, मसूरिका, तथा अन्य मुख्य-मुख्य रोग, उनके कारण, लक्षण और रोग को रोकने के उपाय । निस्संक्रामण की विधि, मुख्य निस्संक्रामक वस्तुयें और उनका प्रयोग ।

पाठ्यग्रंथ—(१) वाग्भट्ट—सूत्र स्थान, अ० २—८ ।

(२) स्वास्थ्य विज्ञान, by Dr. M. S. Varma, publishd by The Secretary, Hindi Publication Board, Benares Hindu University.

THE PROSPECTUS OF THE GOVERNMENT SCHOOL OF INDIAN MEDICINE, MADRAS.

Introduction.

1. The Government School of Indian Medicine, Madras, was established in pursuance of G. O. No. 1581, P.H., dated 3rd November 1924, and regular work was begun on the 5th January 1925.

2, The school works in three sections, viz, Ayurveda, Siddha and Unani.

3. The School is intended to provide such training to its alumni as will enable them to become competent practitioners of Indian systems of Medicine with a good working knowledge of the western system also. It is with this end in view that provision has been made in this school not only for the proper training of students in Ayurveda, Siddha and Unani but also for giving them courses of instruction in such subjects like Modern Anatomy, Physiology and Surgery in all its branches, including Midwifery and Ophthalmology. Provision has also been made for clinical teaching (both out-patient and in-patient) as well as for Herbarium, Museum, Library. etc. Vernaculars (Tamil, Telgu and Urdu) are the general Media of instruction, but subjects of western medicine are at present taught in English. It is hoped, however. that Vernaculars will soon be used as the media of instruction for these subjects also.

Admissions.

4. The number of admissions is, for the present, fixed as a maximum of 120 per annum, of whom 60 will ordinarily be allocated to the Ayurvedic section and 30 to each of the two sections, Siddha and Unani. The vacancies occuring in any one section may, however, be filled in by admission to any other section, provided that the total number in all sections does not exceed 120.

5. Selection will be made by a Selection Committee appointed by the Government.

6. The standard of preliminary general qualification required is a working knowledge of English in addition to proficiency in (*a*) Sanskrit or Telugu, (*b*) Tamil, (*c*) Urdu for admission to the Ayurveda, Siddha and Unani sections respectively. Other things being equal, preference will be given to candidates who possess the Secondary School-Leaving Certificate (especially to those who took up science subjects as optionals) or any other equivalent or higher qualification.

7. The academical year of the school extends over a period of ten months consisting of two terms—a long term of six months from the beginning of July to the end of December and a short term of four months from the beginning of January to the end of April. The months of May and June constitute the school recess.

8. Canditates seeking admission to the school should not be below 16 years of age at the time of their admission to the school.

9. (*a*) Applications for admission should be made before the 15th June in the prescribed form which may be had on application to the Principal. A Registration fee of Rs. 5 should be paid into a Government Treasury or the Imperial Bank of India to the Credit of 'Government School of Indian Medicine, Madras—Fees' and the Treasury or Bank receipt should accompany the application. No application will be registered without the production of such a receipt. The registration fee will be counted towards the school fees in the case of candidates selected for admission who will then be required to pay only the balance due to complete the payment. The Registration fee will be returned to the candidates not selected for admission but forfeited in the case of those who are selected but do not join on or before the prescribed date.

(*b*) Intimation of selection will be duly sent to all selected candidates who should then pay their fees and join the school on or before the prescribed date.

(*c*) Every application for admission should be accompanied by the following certificates without which it will not be considered:—

(1) Cerficate of physical fitness from a registered medical practitioner.
(2) Certificate of Character.
(3) Certificate of the standard of general education attained.

Fees.

10. (*a*) The fees payable by students will be as follows :—

	Per annum. Rs.	
Candidates who are natives of the Madras Presidency.	60	Payable in advance in two equal half-yearly instalments,
Other Candidates	100	

(*b*) A fee of Rupee one for a term or Rupees two for a whole year towards the Athletic Union of the school shall be paid in advance by each student.

(*c*) The fees should in all cases be paid into a Government Treasury or the Imperial Bank of India to the credit of 'Government

School of Indian Medicine, Madras—Fees' and the receipt granted by the Treasury or Bank filed at the School office on or before the prescribed date.

(*d*) If a student leaves the school during a session, he shall have no right to claim a remission of any portion of the fee paid.

Freeships and Scholarships.

11. (*a*) The Government have provided 20 free studentships to be awarded annually to deserving students who belong to this Presidensy, preference being given to women and to students of backward communities.

The Goverment have also instituted five scholarships of the monthly value of Rs. 20 each to be awarded annually to women students who are not in receipt of stipends from other sources. The stipendiaries will be supplied with books and instruments at the cost of Government. On the completion of the course, successful candidates who were in receipt of stipends from the Government will be liable to serve the Government, if required, for a period not exceeding five years; but no guarantee of such employment will be given to any candidate.

(*b*) Local bodies are permitted to depute their own stipendiaries for study in the school subject to certain conditions. A few scholarships provided by private donors are also available.

(*c*) Applications for all freeships and scholarships should be made in the prescribed form which may be had on application to the Principal. Applications should reach the Principal not later than the 1st July of each year. Every such application should be accompanied by the certificates and other documents mentioned in the prescribed form. No application will be considered without the production of such certificates or documents.

Attendance, leave and general discipline.

Attendance.

12. (*a*) No student will be eligible for promotion to a higher class unless his attendance and progress have been found to be satisfactory and all the school and hospital demands against him have been duly paid.

(*b*) Every student is required to attend regularly and punctually at the stated hours for lectures, dissections and demonstrations.

(*c*) No student will be eligible for the grant of a certificate of attendance in any class unless he has attended at least 80 per cent of the meetings of that class.

(*d*) No student will be eligible for the grant of a certificate of progress in any subject unless he has obtained at least one-third of the maximum number of marks allotted to that subject in the class and sessional examinations of the school.

13. Every student who obtains not less than 75 per cent of the total number of marks in any subject will be eligible for the grant of a certificate of honour in that subject.

14. Student found indulging in unfair practices during any examination such as being in possession of or using text-books, notes or manuscripts or copying will be forthwith removed from the examination room and the matter reported to the Principal.

Absence and leave.

15. Candidates should not absent themselves without leave; in emergent or other exceptional circumstances, however, the cause of absence should be satisfactorily explained in writing at the earliest possible opportunity.

16. Absence at any sessional examination must be accounted for by production of a medical certificate when a re-examination may be held to determine the grant of the progress certificate.

17. Any student who absents himself without leave shall be liable to be punished by loss of marks or fines unless such absence is satisfactorily explained.

18. When sickness necessitates absence, a student shall produce a medical certificate to that effect from a registered medical practitioner.

19. Candidates applying for leave are strictly warned that the total number of their days of absence in any class should in no case exceed 20 per cent of the meetings of such class. The grant of leave to any student means that the reasons given for the grant of such leave are deemed satisfactory; it does not, in any sense, convey a guarantee that, after excluding the period of such leave, the student has, or will have enough attendance to enable him to obtain the certificate of attandance referred to in rule 12 (*c*) above. Students applying for leave are therefore strictly warned that, in every case it is at the risk of the student himself that the leave is granted and that he will not be eligible for certificate of attendance referred to in rule 12 (*c*) if, after deducting the number of days he was absent on leave, it is found that the number of attendance in any class is less than 80 per cent of the meetings of that class.

Class room.

20. On the teacher entering the class room the students shall

rise and remain standing till they are desired to sit or till the teacher takes his seat.

21. No student shall leave the class room without the permission of his class teacher or until the class is dismissed,

22. Students are expected to assemble in the class rooms five minutes before the appointed time when the rolls shall be called and the absence of any student noted. A student coming into the class after roll call may be punished by loss of marks or by a fine. Any misconduct in the class shall subject a student to such loss of marks or to such fine as the offence may appear to the teacher to warrant. Should the punishment be deemed insufficient, a report will be made to the Principal.

Dress.

23. No special dress is prescribed, all accepted types of dress being permitted, provided the dress is clean. Foot-wear is recommended, especially when working in dissection rooms and hospitals.

Correspondence.

24. Students are forbidden to address the Government direct. Every such communication should be submitted through the Principal.

Books and apparatus.

25. Every student is expected to provide himself with all the prescribed text-books, dissecting instruments, and other necessary equipment.

26. Every student to whom books or other property of the Government are entrusted shall be held responsible for their preservation in good condition and, in the event of their being lost or damaged, shall be required to replace them or defray their cost.

27. Any student breaking or injuring any school property shall be required to pay the cost of repair or replacement; in case of wilful damage, he shall also be liable to such punishment as the Principal may think fit.

General discipline.

28. The scale of punishments is as under :—

(1) Loss of marks gained by students at class examinations.

(2) Slight fines—the amount not to exceed annas eight.

(3) Heavy fines—amount not to exceed rupees two.

(4) Forfeiture of a portion or whole of leave during holidays and the school recess.

(5) Forfeiture of prize and class distinction.

(6) Forfeiture of stipends from one to three months in the case of Government and other stipendiaries or forfeiture of free studentships in the case of students holding such studentships.

(7) Expulsion from school with forfeiture of certificates and of fees paid, if any.

Numbers (1) and (2) may be inflicted by Lecturers, Assistant Lecturers and Clinical teachers. Numbers (3), (4) and (5) by the Principal. Numbers (6) and (7) by the Principal subject to appeal to the Government.

The Curriculum of Studies.

29. The following is the curriculum of studies for all sections:—

(The name of the subject are given in English so as to be applicable to all sections, viz. Ayurveda, Siddha and Unani, but instruction in the various subjects will be based upon the Ayurvedic, Shiddha and Unani writings, respectively, the subjects included in Western Medicine being taught in accordance with books on the subject.)

First year.

(1) Anatomy and Dissections, first course.
(2) Physiology, first course.
(3) Materia Medica and Pharmacy—General, first course.
(4) Materia Medica and Pharmacy—Special (Mineral preparations), first course.
(5) An elementary course of lectures on the physical and biological sciences with special reference to their applications in medicine, first course.
(6) Fundamental principles of Medical Science, first course.

Second year.

(1)
(2)
(3) Subjects Nos. (1) to (5) of first year *(continued)* second course.
(4)
(5)
(6) Pathology and Diagnosis, first course.

Clinical Practice.

Compounding and dispensing practice	...	3 months.
General out-patient practice ...	...	3 „
Total	...	6 months.

Third year.

(1) Pathology and Diagnosis *(continued)*, second course.
(2) Medicine—General and special first course.
(3) Surgery, first course.

(4) Midwifery and diseases of women and children, first course.
(5) Toxicology and Medical Jurisprudence, first course.
(6) Hygiene and preventive medicine, first course.

Clinical practice.

Out-patient's department		...	...	2 months.
Medical wards	...	...	...	3 "
Surgical wards	...	...	...	3 "
Women and children wards		...	...	2 "
		Total	...	10 months.

Fourth year.

(1)
(2)
(3)
(4)
(5)
} Subjects Nos. (2) to (6) of third year *(continued)*, second course.

(6) History of Medicine, first course.

Clinical practice.

(Ten months as in third year)

30. At the end of the first, second and third year, there will be an annual school examination to test the fitness of candidates for promotion to the next higher class; final year students will however be examined by a special Board appointed by the Government, and those who are suceessful in this examination will be granted the Deploma of Licentiate in Indian Medicine (L. I. M.).

The examination will be held each year in the month of April, candidates will not be considered qualified for promotion to the next higher class or, in the case of the final year candidates, for the grant of the Disploma of L. I. M. unless they secure a pass at these examinations.

31. To secure a pass at any of these examinations, candidates will be required to obtain not less than one-third of maximum number of marks in each subject in which they are examined.

A candidate who passes in all the subjects and obtains not less than 75 per cent of the aggregate total number of marks will be declared to have passed in the first class.

32. Candidates of the first, second and third year classes who fail to secure a pass at the examination held in April will be re-examined in the month of July of the same year in the subject or subjects in which they have failed. If they then secure a pass in

the subjects concerned, they will be considered to have passed the annual school examination and be declared eligible for promotion to the next higher class. If however they again fail in any subject or subjects, they will be referred to a further study of one year in the class in which they failed. Candidates of the final year class who fail at the Board examination will be referred to a further study of six months and be re-examined at the end of that pariod in the subject or subjects in which they failed.

33. Every student who completes the prescribed course of study in the school successfully and passes the prescribed examinations will be entitled to style himself a Licentiate in Indian Medicine and to affix the title L. I. M. to his name.

ANNEXURE A.

(Vide Rule No. 9).

Form of application for admission to the Government School of Indian Medicine, Madras.

Questions. Answers in applicant's handwritting,

1. Name of applicant *(in full)* ... ...
2. Name and address of father or guardian.
3. Rank and occupation of father or guardian.
4. Nationality, caste and religion ...
5. Province and district to which the applicant belongs.
6. Age and date of birth
7. School or College at which the applicant last studied *(a testimonial as to character and abilities from the Headmaster or Principal should be invariably attached)*.
8. Certificates or Diplomas gained (*copies to be sent*) or standard of general education with special reference to the applicant's knowledge of Sanskrit, Tamil, Urdu and English.
9. Mother tongue

Ayurveda, Siddha, Unani

10. Section to which the applicant seeks admission.
11. Are the following documents attached ?

(*a*) Certificate of Physical fitness from a registered medical practitioner.

(*b*) Certificate of character and abilities

(*c*) Receipt granted by the Imperial Bank or Government Treasury in evidence of payment of registration fee,

12. Address (*in full*)

Signature of applicant.

Annexure B.

Rules for the grant of stipends to women students studying in the Government School of Indian Medicine, Madras.

1. Stipends of the monthly value of Rs. 20 each are awarded to women students subject to a maximum of five stipends in any one year. Each stipend is ordinarily tenable for the full period of the course of studies in the school.

2. These stipends are open to women students of any nationality who are under the age of twenty-five and are not in receipt of stipends from any other source. Preference will, however, be given to those who belong to the Madras Presidency.

3. Applications for stipends must be submitted in the form appended so as to reach the Principal, School of Indian Medicine, Medras, before the 1st July in each year. Printed copies of the form may be obtained from the Principal.

4. Every candidate who is awarded a stipend will be required to furnish security by a bond executed by two sureties approved by the Principal, to refund the amount drawn by her or such portion of the same as in the circumstances of the case the Principal may see fit to demand in the event of her (*i*) failing from any cause, except illness or accident, to complete her course of study within the prescribed time or such extension thereof as may be sanctioned by the Principal; (*ii*) failing within one month of notification from the Government to join any appointment to which she has been posted; (*iii*) failing to serve for the term of years stated in the bond at any place or places in the Madras Presidency to which she may be posted at the rates of pay approved by Government; or (*iv*) being dismissed for misconduct or inefficiency while holding such an appointment or whilleundergoing her course of study.

5. Every candidate must produce a certificate from a Magistrate or other responsible person to the effect that the sureties who will execute a bond on her behalf are persons of sufficient means and capable of fulfilling the conditions of the bond. In the event of a recipient of stipend resigning her appointment at any time after passing out of the school and before the completion of the compulsory period of service, the sum which she or her sureties may be called on to refund will ordinarily be determined with reference to the period by which her service, if any, falls short of the compulsory period.

Note—(I) The Government do not guarantee employment to any or every successful candidate.

(2) The surety bond is to be executed before a Magistrate, a District Medical Officer or a Civil Surgeon.

6. Books and instruments will be provided for the stipendiaries but will remain the property of the Government. The Principal may, however, permit students who have successfully completed their course to retain their instruments and text- books.

7. The Pincipal has power to suspend or withdraw any stipend if the holder of it misbehaves, shows a want of zeal or is unlikely to prove efficient.

8. Should the holder of a stipend fail to obtain a pass at any of her examinations, the Principal may either grant an extension of stipend for not more than one year at its former monthly value or on less favourable terms or may withhold all stipends until the candidate passes her examination.

Form of application for stipend.

(To be filled in by women students of the School of Indian Medicine.)

Questions, Answers in applicant's handwritting.

1. *Name* (in full) ... ...
2. *Age* (last birthday) ... ...
3. *Name and address of father or guardian.*
4. *Occupation and rank of father or guardian.*
5. *Nationality, religion and caste* ... ...
6. *Single, married or widow* ... ...
7. *District to which the applicant belongs* ...
8. *School or College where the applicant was last studying* (a testimonial as to applicant's character and capabilities from the Headmaster or Principal should be invariably attached)
9. *Certificate or Diploma gained* (copies to be sent).
10. *Are the following documents attached ?*

(*a*) The necessary certificate from a Magistrate or other responsible person to the effect that the sureties who will execute a bond on your behalf are persons of sufficient means and are capable of fulfilling the conditions of the bond.

(*b*) A certificate of physical fitness, age and personal marks from a registered medical practitioner.

(*c*) Certificate of character and abilities.

11. *Do you possess any means of support besides the stipend applied for ?*
12. *Are you in receipt of stipends from any other source ?*
13. *Do you realize that the acceptance of a stipend involves the obligation after successfully completing your course to serve the Government for a period not exceeding five years in any appointment or appointments to which you may be posted and also that the Government do not guarantee to provide a stipendiary with an appointment after she successfully completes her course or*

to make any payments to stipendiaries between the time of success at the final examination and the time of posting?

14. *Your permanent address* (in full)

Signature of applicant.

ANNEXURE C.

Bond to be executed by stipendiaries of Local Boards and Municipalities deputed for the study at the Government School of Indian Medicine, Madras.

Know all men by these presents that we (student) of
of and
severally bound to $\frac{\text{the} \qquad \text{Board}}{\text{the} \qquad \text{Municipal Council}}$ (hereinafter referred to as the $\frac{\text{Council}}{\text{Board}}$ or to its certain attorney or attorneys to the extent of Rs.
of lawful money of British India to be paid to the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ or to its certain attorney or attorneys for which payment, will and truely to be made, we bind ourselves, our heirs, executors, administrators and legal representatives and each of us binds himself, herself, his or her heirs, executors, administrators and legal representatives firmly by these presents.

Whereas the said (student) is disirous of qualifying $\frac{\text{himself}}{\text{herself}}$ for the medical profession by undergoing the course of studies in the Government school of Indian Medicine Madras.

And whereas the said (student) has applied for the award to $\frac{\text{him}}{\text{her}}$ of a stipend to enable $\frac{\text{him}}{\text{her}}$ to pursue $\frac{\text{his}}{\text{her}}$ studies in the Government school of Indian Medicine at Madras.

And whereas the said (student) has been granted a stipend of Rs. per month for a period of
years from under and subject to the rules and conditions laid down by the Government of Madras and embodied in G. O. No. 850, P. H., dated 22nd April 1925.

And whereas it has been agreed by and between the said
(student) and the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ that the said
(student) shall *if so required* by the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ at any time after the completion of the said course of instruction serve in any appointment to which $\frac{\text{he}}{\text{she}}$ may be posted for a period of not less than

seven yeats at a specified rate of salary to be fixed by the $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ and in consideration of the stipend so to be paid to the said (student) it has been agreed that the said (student) and the said and the said as $\frac{\text{his}}{\text{her}}$ sureties shall execute the above written bond (subject to the conditions hereinafter contained).

Now the condition of the abovewritten bond is such that if the said (student) shall, unless prevented by illness or accident, complete $\frac{\text{his}}{\text{her}}$ course of study within the prescribed time or such extension thereof as may be sanctioned by the Principal for the time being, of the Government School of Indian Medicine, Madras, and shall join within one month from the date of notification by the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ any appointment to which $\frac{\text{he}}{\text{she}}$ may be posted and serve for the term of seven years as abovementioned and conduct $\frac{\text{himself}}{\text{herself}}$ without giving cause for being dismissed for misconduct or inefficiency while holding the said apointment or undergoing the said course of study or if the said (student) and and or any one or more of them, their or any of their heirs, executors, administrators or representatives shall well and truely indemnify the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$, its successors and assigns against all loss, damage and expenses which it or they might or may in any way suffer or be put to by reason of the said (student) not completing $\frac{\text{his}}{\text{her}}$ course of study within the prescribed time or not joining the said appointment or not serving for the said term or in the event of dismissal while holding the said appointment or while undergoing $\frac{\text{his}}{\text{her}}$ course of study and if the said (student) and and or any one or more of them, their or any of their heirs, administrators or legal representatives shall also pay the said $\frac{\text{Board}}{\text{Council}}$ such a sum not exceeding Rs. as may be determined by the said Principal then the abovewritten bond or obligation shall be void otherwise the sum shall remain in full force and virtue.

Signed by the above bounden in the presence of

Signature of sureties with the address in full.

Signature.

RULES FOR THE GOVERNMENT AYURVEDIC SCHOOL, PATNA.

GENERAL.

1. The general management of the school shall vest in the Governing Body described in rule 2, subject to the control of Government, and to these rules.

2. (1) The Governing Body shall consist of not less than seven and not more than eleven persons appointed by Government including a President nominated Government who shall hold office for one year or until fresh members are appointed.

(2) The Principal shall be the Secretary *ex-officio.*

3. (1) The duties and powers of the Governing Body shall include—

(*a*) general supervision over the welfare and discipline of the students;

(*b*) the award of such scholarships or free studentships as may be sanctioned by Government;

(*c*) control over the expenditure of such sums of money as may by allotted by Government or from other sources for the maintenance of the school subject to such conditions as may be imposed; the preparation of annual budget, and the examination and passing of the accounts of the school;

(*d*) the initiation and consideration of projects for the extension, improvement and repair of the school buildings and property;

(*e*) the determination subject to the provisions of rule 5 of the general scheme of studies, the curriculm, equipment and external examinations of the school;

(*f*) advising Government with regard to appointments, punishment and leave of the teaching staff.

(*g*) the selling or disposing of worn out or obsolete tools, furniture, apparatus and other articles upto a limit of Rs. 100 for each article, the sale being public and the proceeds being deposited in the treasury;

(*h*) deciding appeals made by students against orders of punishment passed by the Principal, where the punishment inflicted is other than punishments nos. 1—5 provided in rule 19;

(*i*) the appointment, dismissal or punishment of the clerical staff and the menial servants;

(*j*) the consideration of such matters as may be referred to it by Government;

(*k*) the exercise of such additional functions as may be assigned by Government.

(2) The Governing Body may authorize the President to exercise such of their powers as they may consider necessarv for speedy disposal of matters relating to the administration of the school.

(3) The Governing body may ordinarily delegate the powers required for the ordinary administration of the school to the Principal whose orders passed in the exercise of the powers so delegated to him shall be final.

(4) In order to enable Government to exercise their general powers of revision and control the Governing Body shall maintain a record of its proceedings and shall report them to Government after each meeting.

(5) All correspondence between the Governing Body and Government shall be addressed to the Secretary to Government in the Local Self-Government Department by its President.

4. The duty and power of selecting students for admission to the school shall be exercised by a selection committee consisting of three members of the Governing Body to be nominated by Government every year. One of these members shall be the Principal.

5. The duty and power of fixing the courses of studies and generally of advising the governing body on matters relating to the curriculum, equipment, external examination and other similar administrative matters requiring expert advice shall be performed by the Advisory Committee constituted by Government in their resolution no. 968-L. S. -G., dated the 26th January 1927,

6. (1) The term of office of a member of the Advisory Committee referred to in rule 5 shall continue until his resignation or until his removal by Government or until the committee is re-constituted by Government.

(2) The Advisory Committee shall ordinarily meet once a year before the beginning of the school session, but may for urgent reasons meet on other occasions on the requisition of the Governing Body.

(3) The Advisory Committee shall maintain a record of its proceedings and shall forward a copy of them after each meeting to the Governing Body and to Government.

(4) The Advisory Committee may correspond with Government direct. Such correspondence shall be signed either by all the members

or, if the committee so resolves, by one of its members, and shall be addressed to the Secretary to Government in the Local Self-Government Department.

7. The Principal shall, unless for reasons to be specially recorded the Governing Body otherwise resolves, be empowered—

- (*a*) to spend the grants which are provided in the sanctioned budget of the school for contingencies and for supplies and services on the purposes for which they have been sanctioned and subject to such conditions, if any, as may have been imposed, provided that no re-appropriation may be made from one unit to another without the sanction of Government;
- (*b*) to contersign bill for scholarships;
- (*c*) to submit indents for form with the countersignature of the President of the Governing Body;
- (*d*) to draw his own pay and that of the officers of the teaching staff and of the clerical and menial establishment;
- (*e*) to draw contingent charges;
- (*f*) to draw from the treasury and keep a permanent advance for emergent expenditure.

ADMISSION.

8. Not more than 40 students shall be admitted in the first year class every year.

9. Admissions shall be made by the salection committee described in rule 4.

10. (1) Candidates for admission to the school shall submit their applications in writing to the Principal in form A appended to these rules in time to reach him by the 30th June in each year,

(2) No candidate shall be admitted unless—

- (*i*) he is not less than 16 years of age at the beginning of the session at which he applies for admission; and
- (*ii*) he is a native of or domiciled in Bihar and Orissa ; and
- (*iii*) he has passed either—
  - (*a*) the Matriculation examination from any recognised University : or
  - (*b*) the final examination from any of the first grade training schools ; or
  - (*c*) the Madhyama examination in Sanskrit from any institution recognised by Government ; and
- (*iv*) he produces a certificate of good character from the head of the institution in which he has last studied; and

(*v*) he passes the text examination prescribed in rule 12.

(3) A candidate who claims to be domiciled in Bihar and Orissa under clause (*ii*) of sub-rule (2) of this rule shall produce a domicile certificate granted in accordance with the rules of Government in force for the grant of such certificate.

11. The Principal shall lay all the applications of candidates qualified under clauses (*i*) to (*iv*) of sub-rule (2) of rule 10 without delay before the selection committee described in rule 4.

12. The selection committee shall hold a test examination of such candidates in the following subjects, namely :—

Elementary Arithmetic, Sanskrit, Hindi and English.

13. The selection committee shall then admit such candidates as appear to be the most suitable.

FEES.

14. (1) The annual fees specified in the statement below shall be payable by the persons and at the times specified :

Description of fees.	By whom payable.	Amount of fee	Time of payment.
1	2	3	4
		Rs.	
(*i*) Admission fee ...	By every candidate admitted under rule 13.	5	On or before the 15th July unless any other date has been fixed by the selection committee.
(*ii*) Tuition fee ...	(*a*) By every student of the first year class.	(*a*) 12	(*a*) Monthly on such date as may be fixed by the Principal.
	(*b*) By every student of the higher classes.	(*b*) 24	(*b*) Ditto.
(*iii*) Athletic club fee	By every student ...	1	At the beginning of the session each year on such date as may be fixed by the Principal.
(*iv*) Students Association fee.	By every student ...	Annas 12	Ditto.

(2) If any candidate selected under rule 13 fails to pay the admission fee in accordance with sub-rule (1) of this rule the Principal may remove his name from the list of candidates admitted under rule 13.

(3) If any student fails to pay the tuition fee in accordance with sub-rule (1) of this rule the Principal may impose on him a daily fine of one anna, and if the fee plus the daily fine. if any, imposed has not been paid in full by the end of the month in which it was due, may strike his name off the rolls :—

Provided that the Principal may for reasons to be recorded order the re-entry of the student's name on the rolls either on payment of an additional fee of Rs. 5 or, for special reasons to be recorded, without such additional fee, on subsequent payment of the fees due under this rule.

(4) No fees shall be refunded after they have been credited into the school's accounts.

Discipline.

15. No student shall address any external authority, such as the President of the Governing Body, member of the said body or of the Advisory Committee except through the Principal. An infringement of this rule shall be treated as a breach of discipline.

16. Students are required to be orderly and quiet at all times in the school.

17. Every student who does not reside with his parent shall be required to reside with a guardian approved by the Principal.

18. For the maintenance of discipline, the punishments set forth in the rules immediately below may be inflicted.

19. The ordinary punishments shall be (1) verbal reprimand. (2) written reprimand in the order book, (3) extra duty, (4) fine, (5) stoppage of leave, (6) deprivation of studentship. (7) rustication and, (8) expulsion.

20. Expulsion from the school shall only be inflicted for offenses of a heinous nature involving disgraceful or dishonourable conduct or persistent and wilful infringement of the school rules, or for gross insubordination and disrespect to the constituted authorities of the school. A student who cheats or attempts to cheat at an examination shall, on the first occasion on which he is found guilty of such offence, be liable to rustication for one year with or without fine, and shall, if found guilty of the same offence on the second occasion, be expelled from the school. Should it be apparent to the Governing Body, on the report of the Principal that any students have combined to stay away from school or in any other way to defy authority or to defeat

discipline the names of the students shall be struck off the rolls and such students shall not be re-admitted to the school, unless they can give such an explanation of their absence as may appear sufficient to the Governing Body, or unless the Governing Body may, for other sufficient reasons, think proper to re-admit them.

21. On the expulsion of a student from a school, his name, with as much information as may be available for his identification. shall be reported to Government in the Local Self-Government Department to enable Government to take such measures as it thinks fit to prevent him from being admitted into any other Government school.

Attendance.

22. The Principal shall, before the commencement at each session, circulate for the information of the students a programme of the lectures of each teacher.

23. Every student is required to attend punctually at the stated hours for lectures (practical or theoretical) and shall not leave the class or duty without premission.

24. Every student shall attend seventy-five per cent of the lectures in each subject to entitle him to a certificate of attendance, provided that no certificate of attendance shall be granted to a student unless he has satisfied the authority or authorities responsible for granting the certificate or certificates that his progress has been satisfactory and until he has paid all demands due from him.

25. Students of the third, fourth and fifth year classes are required to be present in the dispensary for clinical duties and instruction, according to the duties assigned to each of them.

Leave and Absence,

26. Students shall not absent themselves without leave,

27. The students shall be granted the following holidays :—

(*i*) the long summer vacation ;

(*ii*) the Durga Puja vacation ;

(*iii*) the Christmas and the New Year's Day holidays ; and

(*iv*) such other holidays as may be approved by the Governing Body ; provided that the total number of holidays shall not exceed 165 days exclusive of the Durbar Day and the King-Emperor's Birth day.

Note.—The regular vacation leave shall be notified in the school orders on each occasion.

28. The Principal may grant casual leave to students up to a maximum of ten days at a time which may be extended to fifteen days in exceptional cases,

29. In the following cases no leave, except on medical certificate, shall be allowed :--

(*a*) in extension of regular vacation leave ;
(*b*) when a student is undergoing any punishment ;
(*c*) when there is any matter pending in connection with which the student has been directed to appear before his teacher or the Principal :
(*d*) when the leave is for absence from any periodical examination,

No departure from this rule shall be permitted except with the written sanction of the Principal and then only under the most urgent circumstances.

30. A student absenting himself for more than fifteen days without the previous sanction of the Principal shall be liable to expulsion.

31. (1) No student, who has not attended at least seventy-five per cent of all lectures and demonstrations in all subjects including dispensary and pharmacy classes for a diploma examination, shall on any account be certified as having completed his course of instruction or shall receive promotion or shall be permitted to appear at such examination :

Provided that in special cases it shall be within the competence of the Governing Body to condone for sufficient and satisfactory reasons shortages in the required attendance.

(2) Students will be required to work in the out-door dispensary during the vacations in batches as arranged by the Principal ; and any student absenting himself from that work without the permission of the Principal will not, until specially permitted by the Governing Body, be eligible to sit at the next diploma examination.

32. All medical certificates in support of absence from classes or dispensary duty shall be signed either by a medical officer in Government employ or by a competent Vaid to the satisfaction of the Principal. They shall be forwarded to the Principal within three days of the date on which the student states that he was ill.

Courses of study, sessions and curricula.

33. The course of study shall extend over a period of five years.

34. The session shall commence in the month of July and terminate in the month of June every year.

35. The curricula and syllabus of the school are given in the Appendix.

EXAMINATIONS.

36. (*a*) Examinations shall be of two kinds, namely Internal and External.

(*b*) Internal examinations shall be conducted by the school staff and shall consist of—

- (*i*) (*a*) Progress examinations in January and October;
  - (*b*) Test examinations for the preliminary and final diploma examination.
- (*ii*) Annual examinations at the end of the 1st, 2nd and 4th year classes.

(*c*) External examinations shall be conducted by such outside examiners, members of school staff and members of the Advisory Committee as may be selected by a sub-committee of the Governing Body appointed for this purpose and shall consist of—

- (*i*) Preliminary examination at the end of 3rd year class.
- (*ii*) Final diploma examination at the end of 5th year class.

(*d*) Fees for the external examination shall be Rs. 3 for the preliminary and Rs. 5 for the final diploma examinations.

(*e*) For all internal and external examinations—

- (*i*) the full marks assigned in written paper and practical tests shall be 100 in each;
- (*ii*) the standard for passing in written paper and practical test combined on each subject shall be 40 per cent. of the total marks except that for the science (i. e., Physics and Chemistry) written paper it shall be 33 per cent.; and
- (*iii*) the standard for passing in aggregate shall be 40 per cent. except that in the final diploma examination it shall be 50 per cent.

37. No promotion shall be given to a higher class unless a student secures at least the pass mark as described in clause (*e*) of rule 36;

Provided that—

- (*i*) In the event of a student failing to appear at any annual examination owing to his illness or for other reasons considered satisfactory by the Principal, promotion may be given on the result of his progress examinations.
- (*ii*) Students failing in one subject only in the annual examinations or in the Preliminary examination may be promoted to the next higher class subject to the condition that he will be reverted to the class from which he has been promoted if he fails to pass in that subject at a supplementary examination to be held within three months of his promotion.

38. A student who fails to pass the annual preliminary or the final diploma examination in more than one subject may be permitted to continue his studies in the same class during the next session.

39. For students who fail in one subject in the final diploma examination, there will be a supplementary examination in October.

40. (1) A certificate shall be granted to the students passing the final examination in form B appended to these rules.

(2) A certificate shall be granted to the students passing the final examination in form C appended to these rules.

STUDENTSHIPS.

41. Free studentships may be allotted by the Governing Body to deserving students up to a maximum of 5 per cent. of the number of students on the roll.

42. Studentships shall be liable to forfeiture on the recommendation of the Principal for misconduct, unsatisfactory progress, or irregular attendance.

APPENDIX TO RULE 35.

Syllabus of the Government Ayurvedic School, Patna.

Preliminary Examination.

अध्ययनकालः—वर्षत्रयम् ।
प्रतिपत्रं पूर्णाङ्काः—१०० ।

द्रव्यगुणशास्त्रम् (Materia Medica).

(१) प्रथमपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

द्रव्यगतरसादिपदार्थानां स्वरूपज्ञानम् , द्रव्याणां परिचयः, प्रसिद्धनामानि, रसादिनिरूपणम् , गुणाः परिभाषा च ।

ग्रन्थांशाः—

(क) भावप्रकाशान्तर्गतमिश्रवर्गस्य द्रव्यगतपञ्चपदार्थवर्णनादिक्षुवर्गस्यान्तं यावत् ।	७०
(ख) चरकसंहितायां विमानस्थाने प्रथमाध्यायः ··· ···	१०
(ग) परिभाषाप्रदीपस्य प्रथमद्वितीयतृतीयखण्डाः ·· ···	२०
	१००

(२) द्वितीय (Practical) पत्रस्य ज्ञेयांशाः—

(क) गुरूपदिष्टभेषजानां परिचयः··· ··· ···	६०
(ख) ,, प्रसिद्धनामानि ··· ···	२०
(ग) ,, प्रसिद्धगुणाः (यथा-अर्जुनो हृद्यः, शिरीषो विषापह इत्यादयः)	२०
	१००

रसशास्त्रम् (Hindu Chemistry).

(१) प्रथमपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

(प्राचीनमते)—रसशब्दस्य व्युत्पत्तिः, रसस्य शोधनमूर्च्छनासंस्कार—बन्ध—भेद—गतयः, हिङ्गुलाद्रसाकृष्टिः, रसमारणम् , जलूकाबन्धः, रसे गन्धकजारणम् , रसकर्पूर—रससिन्दूर—मकरध्वज-रसमाणिक्य-हिङ्गुलीयमाणिक्यरसानां निर्म्माणम् , अभ्रादिमहारसानां गन्धकाद्युपरसानां कम्पिल्लादिसाधारणरसानां रत्नोपरत्नानां स्वर्णादिलोहानां च यथोक्तं शोधन—मारण—सत्वपातन—द्रुतिकरणानि, मयूरपक्षस्य सत्त्वपातनम् , भूनागस्य सत्त्वपातनं मुद्रिका च । स्वर्णरजतयोर्मण्डलीकरणम् स्थावर—विषोपविष—सर्पविष—रक्तचित्रक—वृद्धदारक—निम्बूकवीज—हिङ्गु—गुग्गुलु—खटी—दुग्धपाषाण—गोदन्त — शङ्ख — शुक्ति — वराटिका—

मृगश्रृङ्ग—समुद्रफेन—कान्तपाषाणानां यथोक्तं शोधनं मारणम्, क्षारत्रयस्य तिलार्कपलाशापामार्गस्नुहीचिञ्चाक्षाराणां सैंधवविट्-सौवर्चल-सामुद्र-रोमक-लवणानां च समुचितविवरणम्, रसपरिभाषायाः कोष्ठी-पुट-मूषा-यन्त्राणाञ्च कृत्स्नं परिज्ञानम्, रससिन्दूराभ्रक-स्वर्ण-रजत-ताम्र-वंग-यशद-लौह-शिलाजतु-विद्रुमाणामामयिक प्रयोगाः।

ग्रन्थांशाः—

(क) रसरत्नसमुच्चयस्यादित एकादशाध्यायं यावत् ... ५०

(ख) रसतरङ्गिण्याः प्राचीनरसोपयोगिनोंऽशाः २५

(नवीनमते) रसतरङ्गिणीतः—

निम्बूकाम्ल-भूतघ्नचक्रिकयोर्निर्माणम्।

सजलसोरकद्रावकस्य गुणाः।

सोरकद्रावक-गंधकद्रावक-लवणद्रावक-चूर्णोदक- सोरकाम्लीयरजत - गंधकाम्लीययशद-नवसादरबाष्प-रसपुष्प-रसकर्पूर-सुवर्णलवण-आरनालीयसीसद्रव-टंकणाम्लानां निर्माणविधयो गुणाश्च।

चतुर्थशंखद्रावकस्य कृत्रिमतुत्थस्य कासीसस्य च निर्म्माणप्रकारः—

मुग्धरसस्य निर्म्माण-गुण-मात्रामयिकप्रयोगाश्च २५

१००

(२) (क्रियामूल) द्वितीयपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

यथालब्धद्रव्याणां शोधनमारणसत्त्वपातनादिकम्।

(प्राचीनमते)—

(क) रसशालायामनुष्ठितरसक्रियायां २५

(ख) रसशालायां सम्पादितरसौषधपरिचये १५

(ग) यन्त्र-मूषा-कोष्ठी-पुटादि निर्म्माणे ३५

(नवीन मते) (घ) प्रथमपत्रोक्तविषयाणां यथासम्भवं क्रियानुष्ठाने ... २५

१००

शरीरशास्त्रम् (Anatomy)

(१) प्रथमपत्रज्ञेयांशाः—

शारीरज्ञानस्य प्रयोजनम्, शवच्छेदप्रकारः, शरीरोपादनानां त्वगादीनां स्थूलपरिचयः, अस्थिसंख्याने नव्यप्राचीनमतसमन्वयः, अस्थ्नां विशेषज्ञानम्, संधिस्नायुज्ञानम्, पेशीनां सामान्यविज्ञानमावरणज्ञानञ्च, महाप्राचीरा, पर्शुकान्तराला, द्विशिरस्का, त्रिशिरस्का, अंगुष्ठप्रसारणी, अंगुष्ठसंकोचनी, कनिष्ठाप्रसारिणी, कनिष्ठासंकोचनी, उरश्छदा, गुर्वी, लघ्वी, आसां तथा तिसृणामुदरच्छदानामुदरदण्डिकायाश्च विशेषवर्णनम्, रक्तसंवहनयन्त्रम्, रसरक्तलसीकासंवहनम्, महाधमनीवर्णनम्, महाधमनीविभागवर्णनम्, उदर्य्यधमनीवर्णनम्, तत्सहचरीणां सिराणां वर्णनम्, सम्वाहिनीसिरावर्णनम्, सिराणामुत्तानगम्भीरत्वज्ञानपूर्वकं विषूचिकादौ लवणजलनिक्षेपयोग्यानां सिराणां परिचयमात्रम्, रसप्रपारसकुल्यादिज्ञानम्, लसीकाग्रन्थीनां निर्माणप्रकारः, श्वसनयन्त्रम्, अन्नपचनयन्त्रम्, मूत्रणयन्त्रम्, प्रजननयन्त्रम्, इत्येतेषां प्रतिकृतिप्रदर्शनपूर्वकं कार्यवर्णनसहितं विशेषवर्णनम्।

ग्रन्थांशाः—

(क) प्रत्यक्षशारीरेप्रथमभागस्य १-२-३-४ अध्यायाः, संधिस्नायुखण्डम्, द्वितीयभागस्य पेशीखण्डे प्रथमाध्यायः, तृतीयाध्यायश्चोपरिनिर्दिष्टपेशी वर्णनमात्रकः चतुर्थाध्यायश्च निर्दिष्टपेशीवर्णनपरः, धमनीखण्डे १-२ अध्यायौ, तृतीयाध्यायश्चनिर्दिष्टधमनीविवरणपरः, सिराखण्डेप्रथमाध्यायः निर्दिष्टसिरावर्णनमात्रकः, रसायनीखण्डे प्रथमाध्यायः, आशयखण्डं सम्पूर्णम् । ७०

(ख) सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थाने ४-५-७-९ अध्यायाः अवेध्यसिराज्ञानंविना २०

(ग) भावप्रकाशस्य शारीरप्रकरणे दोषाणां स्थानसंस्थानकार्यवर्णनम् १०

(२) द्वितीय (व्यावहारिक) पत्रस्य ज्ञेयांशाः—

प्रथमपत्रोक्तशारीरवस्तूनां प्रत्यक्षपरिचयः ।

१००

शारीरक्रियाविज्ञानम् (Physiology)

ज्ञेयांशाः—

अन्नपरिपाकक्रिया, श्वासयन्त्रक्रिया-रक्तसंवहनक्रिया-मूत्रयन्त्रादिक्रिया सविज्ञाना समस्तिष्क नाड़ीक्रिया च ।

ग्रन्थांशाः—

"हमारे शरीर की रचना" इतिनाम्नः पुस्तकस्य पूर्वोक्तज्ञेयांशोपयोगिनोंऽशाः ।

Physiology.

In addition to the existing syllabus, as detailed above, an elementary knowledge of the following :—

Reproduction.

Metabolism.

Excretory system.

Cells of the Human Body and the various tissues minor knowledge of Histology.

रोगविज्ञानम् (Diagnosis of diseases).

(१) क—माधवनिदाने—ज्वर—अतिसार — प्रवाहिका — ग्रहणी—अर्शः—अग्निमान्द्य—अलसक—विलम्बिका—भस्मक—क्रिमि—पाण्डु —कामला—हलीमक—रक्तपित्त—राजयक्ष्म, उरःक्षत—कास—हिक्का—श्वास—स्वरभेद—अरोचक—छर्दि—तृष्णा—दाह—वातव्याधि—वातरक्त— उरुस्तम्भ—आमवात—शूलउदावर्त—गुल्म—हृद्रोग—मूत्रकृच्छ्र—मूत्राघात— अश्मरी—शर्करा — प्रमेह — मेदोरोग—उदर—शोथ—गलगंड—वृद्धि—श्लीपद—शीतपित्त—अम्लपित्त—कुष्ठ—विसर्प—मसूरिका—विस्फोट—उपदंश — फिरंग — ध्वजभंग—कार्श्यरोगाः । ५५

(ख) चरकसंहितायां निदानस्थाने—
—ज्वर—रक्तपित्त—गुल्म—प्रमेह—कुष्ठ—शोषरोगाः··· ··· १५

(ग) आयुर्वेदविज्ञाने—
अंशुघात—अपमुमूर्षु—उरस्तोय—ओजोमेह—औपसर्गिकमेह—योन्याक्षेप—
शीर्षाम्बु—स्नायुशूल—हृद्रोग—ध्वजभंग—गदोद्वेगरोगाः।
योषापस्मारः सोमरोगश्च ··· ··· ··· १५

(घ) सिद्धान्तनिदाने—
आन्त्रिकज्वर—ग्रन्थिकज्वर—सन्धिज्वर—श्वसनकज्वर—दण्डकज्वर—कर्णमूलिकज्वर—कालज्वर—श्लपदिकज्वर—औपद्रविकज्वराः। १५

१००

(२) व्यावहारिकपरीक्षाविषयः—
यथोपदेशं रोगिपरीक्षापूर्वकं रोगनिर्णयः—

प्राप्याङ्काः—
(क) रोगिपरीक्षाक्रमे ··· ··· ··· ३०
(ख) पत्रीलेखने ··· ··· ··· ३०
(ग) रोगनिर्णये ··· ··· ··· ४०

१००

स्वस्थवृत्तम् (Ayurvedic Hygiene).

तत्र—सुश्रुतसूत्रस्थानषष्ठाध्यायस्य विषया—यथा—कालनिर्वचनम्—कालस्य निमेषादिप्रविभागः तेषां विवरणञ्च—
ऋतूनां लक्षणानि दिग्वातगुणाश्च—
सुश्रुतसूत्रस्थानीय—४६ अध्यायस्य विषयाः—आहारविधिवर्णनम्।
सुश्रुतस्य चिकित्सास्थान—२४ अध्यायस्य अनागतबाधाप्रतिषेधनीयं चिकित्सितम्।
अष्टाङ्गहृदयस्य सू० २ अ०, दिनचर्य्या—रात्रिचर्य्या—
,, ,, ४ अ०, रोगानुत्पादनीयक्रमः।
चरकस्य सू० ६ अ० सम्पूर्णः।
,, ,, सप्तमाध्यायस्य संकलिताविषयाः—
यथा—दोषसञ्चयहरणकालनिर्देशः, विकाराणामनुत्पत्तौ हेतुनिर्देशः, आगन्तूनाञ्चानुत्पत्तौ मार्गनिर्देशः, सेव्या असेव्याश्च पुरुषाः नक्तं दधि न सेव्यम्,—सेवनविधिश्च।
,, ,, अष्टमाध्यायस्य—अखिलेन सद्वृत्तस्योपदेशः।
चरकस्य विमान अ० ३ जनपदोद्ध्वंसनीयः।

सुश्रुते ··· ··· ··· ४०
अष्टाङ्गहृदये ··· ··· २०
चरके ··· ··· ··· ४०

१००

औषधनिर्म्माणम् (Pharmacy).

(क)	औषधनिर्म्माणविषये	३०
(ख)	निर्मितौषधीनां परिचये	२५
(ग)	,, प्रयोगे	३०
(घ)	,, पत्रीकरणे	१५
		१००

ज्ञेयांशाः—अधोलिखतानां चूर्णवाटिकावलेहानां यथासम्भवं निर्म्माणम् ।

चूर्णम् ।

१—सितोपलादिचूर्णम् ।
२—हिंग्वादिचूर्णम् ।
३—विजयचूर्णम् ।
४—लवणभास्करः ।
५—रसपिप्पली !

अवलेहाः

१—च्यवनप्राशः ।
२—वासावलेहः ।
३—अमृतप्राशः ।

वटी ।

१—हिंगुदेश्वररसः ।
२—मृत्युञ्जय ,,
३—वातगजांकुश ,,
४—यकृत्प्लीहारिलौहं ।
५—लोकनाथरसः ।
६—कलधौतरसः ।
७—कांकायनवटी ।
८—वातरक्तान्तकरसः ।
९—पथ्यादिवटी ।
१०—कनकसुन्दररसः ।
११—सिद्धप्राणेश्वर ।
१२—योगराजगुग्गुलुः ।
१३—कैशोरगुग्गुलुः ।
१३—सिंहनादगुग्गुलुः ।

ग्रन्थांशाः—

भैषज्यरत्नावल्या उपयोगिनोंऽशाः ।
अन्योवा कश्चिदुपयोगी ग्रन्थः ।

विज्ञान (Science).

रसायन (Chemistry).

(१) प्रथमपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

विलयन (solution) निस्यन्दन (Filteration) निस्राव (Decantation) बाष्पीभवन (Evaporation) द्रवीभवन (condensation) स्रवण (Distillation) स्फटिकीकरण (Crystallisation) ऊर्ध्वपातन (Sublimation).

रासायनिक और भौतिक परिवर्तन (Physical and Chemical changes)—तत्व और यौगिक (Elements and compounds) मिश्रण और यौगिक (Mixtures and compounds) धातु और अधातु (Metals and non-metals) विश्लेषण और संश्लेषण (Analysis and Synthesis).

वायु—वायु में जलना—मोरचा लगना—वायुमण्डल में भिन्न-भिन्न गैस ।

ओषजन (Oxygen) तैयार करना, ओषजन के गुण ओषिद (oxide).

नत्रजन (Nitrogen) तैयार करना—नत्रजन के गुण, जल—वर्षाजल—नदीजल—स्रोतजल—खनिजजल—समुद्रजल—जल के गुण, उदजन (Hydrogen) की प्राप्ति, जल से—अम्ल से, उदजन के गुण ।

कार्वन और उसके भेद—कार्वन द्विओषिद गैस (Carbon Dioxide)—कार्वन एकौषिद (carbon monoxide gas).

नमक—उदहरिकाम्ल गैस (Hydrochloric Acid) तैयार करना और इसके गुण—हरिन (chlorine) तैयार करना और उसके गुण —

नवसादर—अमोनिया (Ammonia)—सोरक—नत्रिकाम्ल (Nitric Acid) की प्राप्ति और गुण—

गन्धक द्विओषिद (Sulphur dioxide) की प्राप्ति और गुण, गन्धकाम्ल (Sulphuric Acid) की प्राप्ति और गुण—

अम्ल (Acid), भस्म (Base) और लवण (Salt) अणु (Molecules) और परमाणु (Atoms) रासायनिक संयोग के नियम, पदार्थ का अमरत्व, अणु और परमाणु भार ।

स्फुरक (Phosphorus) की प्राप्ति और गुण—
स्फुरक के भेद और उपयोग—
ब्रोमिन और नैल (Iodine) की प्राप्ति और गुण—नैल का उपयोग—
शैल (Silicon) के प्रसिद्ध यौगिकों का साधारण वर्णन ।
धातुओं के भौतिक और रासायनिक गुण ।

निम्नलिखित धातुओं का तथा उसके प्रसिद्ध योगिकों का सामान्य ज्ञान—

(१) सोडियम (२) पोटाशियम (३) खटिक (calcium) (४) मग्न (magnesium), (५) यशद (zinc) (६) ताम्र (copper) (७) पारद (mercury) (८) स्वर्ण (९) रजत (silver) (१०) वङ्ग (tin) (११) सीसा (lead) (१२) ताल (Arsenic) (१३) अञ्जन (Antimony) (१४) विस्मथ (Bismuth) (१५) मङ्गल (manganese) और (१६) लोहा (iron) ।

कार्वनिक रसायन (organic chemistry) मिथेन गैस की प्राप्ति—मद्यसार (Alcohol) क्लोरोफार्म, आयडोफार्म और इथर का साधारण परिचय और इनका उपयोग—

पिपीलिकाम्ल (Formic Acid), सिरकाम्ल (Acetic Acid) निम्बूकाम्ल (Citric Acid), द्राक्षाम्ल (Tartaric Acid) यूरिया—शर्करा (sugar) और कार्वोलिकाम्ल (Carbolic Acid) ।

भौतिक विज्ञान (Physics).

क्षेत्रफल (area) और आयतन (volume) निकालना, पदार्थों की अवस्थायें—ठोस, द्रव और गैस पदार्थों के गुण, द्रवों का भार, गैसों का भार, वायुभारमापक यन्त्र (Barometer) और वायुनिष्कासकयन्त्र (Air Pump)।

तुला का उपयोग—मात्रा, आयतन और घनत्व (Density) और आपेक्षिक घनत्व (Relative Density) तापमापक यन्त्र (Thermometer)—द्रवणांक—क्थनाङ्क (Boiling point) ताप परिचालन (conduction) परिवाहन (conviction) और विकिरण (Radiation)।

प्रकाश (Light) की गति, प्रतिक्षेप (Reflection) वक्रीभवन (Refraction) प्रकाश-रचना (composition of light) और ताल (Lenses)—चुम्बक (Magnetism), शब्द (Sound) और विद्युत् (Electricity) का सामान्य और अतिसंक्षिप्त ज्ञान।

(२) प्रथमपत्रोक्त विषयाणां:—

प्रायोगिक (Practical) परीक्षा १००

द्वितीयखण्डपरीक्षा ।

Final Degree Examination.

अध्ययनकालः—वर्षद्वयम् ।

प्रतिपत्रं पूर्णाङ्काः १०० ।

शल्यतन्त्रम् (Surgery).

प्रथमपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

(क) आयुर्वेदोत्पत्तिः, शल्याद्यष्टांगनिरूपणम्, चतुष्पादसिद्धिः वैद्यकर्त्तव्यनिर्णयः, अग्रोपहरणम्, यन्त्रशस्त्रविधिस्तद्रूपविज्ञानादिसहितः, कर्माभ्यासविधिः, शल्यतंत्रोक्तरोगज्ञानोपायाः क्षाराग्निजलौकावचारणविधिः, वज्राभिहतोपायाः, दुष्टरोगवर्णनम्, मर्मविज्ञानम्, सिराव्यधविधिः, व्रणस्यामपक्वताविज्ञानम्, व्रणालेपनबंधवर्णनम्, बंधस्वरूपविज्ञानम्, आतुरालयवर्णनम्, व्रणितोपासनम्, व्रणस्रावविज्ञानम्, कृत्याकृत्यव्रणविज्ञानम्, अष्टविधशस्त्रकर्मीयव्रणविज्ञानम्, प्रनष्टशल्यविज्ञानम्, शल्यापनयनम्, विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानम्, व्रणानां विम्लापनादियोगाः, द्विव्रणीयोपक्रमः, सद्योव्रणोपक्रमः, भग्नोपक्रमः, अर्शःसु क्षाराग्निशस्त्रोपक्रमः, भगन्दरोपक्रमः, उदररोगे शस्त्रकर्म, मूढगर्भे शस्त्रकर्म, अश्मर्युपक्रमः, विद्रध्युपक्रमः, नाडीव्रणस्तनविद्रध्युपक्रमः, ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डोपक्रमः, वृद्ध्युपदंशश्लीपदब्रध्नोपक्रमः, क्षुद्ररोगोपक्रमः, शूकदोषोपक्रमः उपरिनिर्दिष्टानां रोगाणामुपक्रमः हेतुलिंगज्ञानसहितः ।

ग्रन्थांशाः—

सुश्रुतसंहितासूत्रस्थानस्य १-५-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१७-१८-१९-२२-२३-२५-२६-२७-२८-३७—अध्यायानामुपयोगिनोंऽशाः । निदानस्थानस्य ३-४-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५-अध्यायाः । शारीरस्थानस्य ६-८-अध्यायौ; चिकित्सास्थानस्य-१-२-३-६-७-८-१४-१५-१७-१८-१९-२०-२१ अध्यायानामुपयोगिनोंऽशाः ।

निबंधसंग्रहस्य शस्त्रस्वरूपवर्णनम्—बंधस्वरूपवर्णनञ्च। अष्टांगहृदयसूत्रस्थानस्य २१-२६-३० अध्यायाः। अथवा वामदेवकृतः शल्यतन्त्रसमुच्चयः। ६०

(२) द्वितीय (क्रियामूलक) पत्रस्य ज्ञेयांशाः—

प्रथमपत्रोक्तविषयेषु चिकित्सालये सम्पादनयोग्यानां क्रियानुष्ठानम्, Practical Shalya and Bandaging, etc.

शालाक्यतन्त्रम् (Diseases of Ear, Eyes, Nose and Throat, etc., and their treatment).

(२) प्रथमपत्रस्य ज्ञेयांशाः—

श्रवणनयनवदनघ्राणशिरःसंश्रितानां रोगाणां सनिदानचिकित्सा।

ग्रन्थांशाः—

सुश्रुतसंहितायाः सूत्रस्थानस्य १६ अध्यायः, निदानस्थानस्य १६ अध्यायः, चिकित्सास्थानस्य २२ अध्यायः, उत्तरतन्त्रप्रथमाध्यायात् षड्विंशाध्यायं यावत्।

(२) कर्माभ्यासः पूर्णाङ्काः १००।

तर्पणाश्च्योतनसेकाञ्जनादीनि।

DENTAL SURGERY.

Extraction of tooth—Operation of (Gum boils.)

EAR, NOSE, THROAT AND EYE.

Diseases of Eye (elementary knowledge of)

EAR.—Removal of foreign bodies, Ear Syringing—Use of Auriscope—Elementary knowledge of diseases of the ear.

NOSE—Nasal Donche, Elementary knowledge of the diseases of the nose.

THROAT.—Tonsilitis—Pharyngitis, Removal of foreign bodies, Diptheria.

अरिष्टविज्ञानम् (Prognosis of diseases).

ग्रन्थांशाः—

(क) चरकसंहितायाइन्द्रियस्थानं सम्पूर्णम्।

(ख) अष्टाङ्गहृदयस्य शारीरस्थानस्य ५ अध्यायः।

(ग) सुश्रुतसंहितायाः सूत्रस्थानस्य २९, ३०, ३१, ३२, अध्यायाः।

Pathology (Vikriti Vijnan).

(1) First paper 100

An elementary knowledge of the following:—

(1) Germs (Pathogenic), (2) Parasites (including Helminthology), (3) Infection, (4) Immunity, (5) Phthisis

(Tuberculosis of lungs), (6) Typhoid fever, (7) Malaria, (8) Kala Azar, (9) Plague, (10) Pneumonia and Pleurisy, (11) Cholera, (12) Gonorrhoea, (13) Syphilis, (14) Leprosy, (15) Mumps, (16) Cerebro spinal fever, (17) Dengue, (18) Influenza, (19) Filariasis, (20) Tuberculosis of Intestine and bones, (21) Small-pox, chicken-pox and measles, (22) Beri-beri, (23) Pathological conditions of urine and its examination, (24) Pathological conditions of stool and its examination, (25) Examination of sputum, (26) Simple examination of blood films, (27) Whooping cough, (28) Diphtheria.

(2) Second paper (practical) 100

मानसरोगः (Mental diseases and their treatment).

ज्ञेयांशाः—आयुर्वेदोक्तदार्शनिकविषयाणां स्थूलपरिचयः अन्तरिन्द्रियाणां बहिरिन्द्रियाणाञ्च परिज्ञानम्, उन्मादापस्मारमूर्च्छाभ्रमसन्न्यासमदात्ययानां कामक्रोधादीनाञ्च सनिदानचिकित्साविधिः ।

ग्रन्थांशाः—

(क) सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थानस्य प्रथमाध्यायः, चरकसंहितायां सूत्रस्थानस्य प्रथमाध्याये सामान्यादि पदार्थषट्कवर्णनमात्रम् ८।११ अध्यायौ, विमानस्थानस्याष्टमाध्यायः शारीरस्थानस्य १।५ अध्यायौ, च। एतेषामुपयोगिनोंऽशाः । ५०

(ख) पूर्वोक्तमानसरोगाणां निदानंचिकित्सा च ५०

१००

अगदतन्त्रं व्यवहारायुर्वेदश्च (Toxicology and Medical jurisprudence).

ज्ञेयांशाः—अन्नपानरक्षाविधिः, त्रिविधविषविज्ञानम्, सविज्ञाना सर्पदष्टचिकित्सा, अलर्कविषचिकित्सा, वृश्चिकादिदष्टचिकित्सा, अहिफेन - भङ्गा—धतूर—वत्सनाभ—विषतिन्दुक—करवीर—फेनाश्म—क्षार—द्रावक—वाष्पविषजुष्टाना सविज्ञाना चिकित्सा, व्यवहाराधिकरणोपयोगिनां विषयाणां स्थूलपरिचय आशुमृतकपरीक्षाविषयकं स्थूलज्ञानं यथासम्भवं तच्चिकित्सा च ।

ग्रन्थाशाः—

(क) चरकसंहितायां चिकित्सास्थानस्य २३ अध्यायः, सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थानम् । ५०

(ख) " व्यवहारायुर्वेद और विषचिकित्सा " इतिनाम्नः कानपुरतः प्रकाशितस्य हिन्दीपुस्तकस्य पूर्वोक्तज्ञेयांशोपयोगिनोंऽशाः ।

Jurisprudence (Medical).

An elementary knowledge of the following :—

(1) Post mortem Examination (signs of death, etc),
(2) Toxicology (signs, symptoms and treatment).
(3) Preservation of exhibits in medicolegal cases. 50

100

प्रसूतितन्त्रं कौमारभृत्यश्च (Midwifery and Diseases of children and their treatment).

प्रसूतितन्त्रस्य ज्ञेयांशाः ।

(क) (प्राचीनमते) गर्भलक्षणानि, गर्भिणीचर्य्या, पुंसवनविधिः, मृतामृतगर्भपरीक्षा, मूढ़गर्भस्य परिज्ञानं तस्य चिकित्सा च, गर्भपातगर्भस्रावयोर्भेदः, चिकित्सा भेदश्च, सूतिकासन्निपातः (Septicermia) प्रसूतायाः प्रायोभाविनोरोगाः, तच्चिकित्सा च, योनिव्यापदस्तच्चिकित्सा च, प्रदराद्या अपरे स्त्रीरोगाः । २५

(ख) (नवीनमते)—

"प्रसूतिपरिचर्य्या" नामकं पुस्तकमवलम्ब्य पञ्चोपदेशाः ... २५

(ग) कौमारभृत्यस्य ज्ञेयांशाः ।

प्रसवात् प्रभृति शिशोः पालनविधिः, स्तन्यपरीक्षा, स्तन्यशोधनवर्द्धनोपायाः, स्तन्याभावे शिशोः पथ्यविधिः, धात्रीनियुक्तिकथनम्, दन्तोद्गमकालः, शिशोः तल्पपरिच्छदादिकम्, परिचारकगुणाः, शिशूनां प्रायोभाविनोरोगास्तत्प्रतीकारश्च । ५०

१००

ग्रन्थांशाः—

चरकसंहितायां शारीरस्थानस्य २।३।४।८ अध्यायाः (सम्पूर्णाः) ६ अध्यायः (गर्भोत्पत्तिप्रकरणतोऽन्तं यावत्) । चिकित्सास्थानस्य ३० अध्यायः (क्लैब्यप्रकरणं विना, स्तन्यदोषबालरोगप्रकरणं यावत्) ।

सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थानस्य २।३।१० अध्यायाः सम्पूर्णाः, ५ अध्यायः (गर्भगर्भाशययोः स्थित्यादिवर्णनमात्रम्) । निदानस्थानस्य ८ अध्यायः । चिकित्सास्थानस्य १५ अध्यायः (सम्पूर्णः) १७ अध्यायः (स्तनरोगचिकित्सामात्रम्) उत्तरतन्त्रस्य २७ अध्यायात् ३७ अध्यायं यावत् ।

अष्टाङ्गहृदये शारीरस्थानस्य १।२ अध्यायौ । उत्तरतन्त्रस्य १।२।३।३४ अध्यायाः (सम्पूर्णाः) ३३ अध्यायः (योनिव्यापत्तिमात्रम्) ।

Midwifery.

An elementary knowledge of the following :—

Normal delivery.

Position and lie of child in normal and abnormal pregnancy.

Extraction of dead foetus.
Twins (Delivery of locked twins).
Asphyxia Neo Natorum.
Forceps (Application of low forceps).
Treatment of Retained Placenta.
Treatment of Post Partum Haemorrahage.
Section of the Umbilical cord.

रसशास्त्रम् (Hindi chemistry).

(१) ज्ञेयांशाः—

रससिन्दूरम् , स्वर्णसिन्दूरम् , बृहच्चन्द्रोदयः, मकरध्वजः, स्वर्णभस्म, तारभस्म, ताम्रभस्म, रसपर्पटी, स्वर्णपर्पटी, मृगांकरसः, महामृगांकरसः, राजमृगांकः, वसन्तमालती, वसन्तकुसुमाकरः, ज्वरधूमकेतुः, श्रीवेतालः, कस्तूरीभैरवः, जयमंगलरसः, ज्वरार्यभ्रम्, लोकनाथः, सुधानिधिः, शृंगाराभ्रम् श्वासचिन्तामणिः, रामबाणः, अमृतार्णवः, पीयूषवल्ली, गुल्मकालानलः, रसमाणिक्यम्, रसकर्पूरः, बृहद्वातचिन्तामणिः, वसन्ततिलकः, आमवातारिः, चन्द्रप्रभावटिका, स्वर्णवंगम् , पूर्णचन्द्रः, रत्नप्रभावटी, गर्भचिन्तामणिः, कुमारकल्याणरसः, बृहत्कांचनाभ्रम्—इत्येतेषां यथासम्भवं निम्र्माणं तथा विषपित्तादिघटितानामौषधीनामपि यथाशक्ति निर्माणम् ।

(क)	निर्मितानामौषधानां		पत्रीकरणे	२०
(ख)	,,	,,	निर्माणप्रकारे	४०
(ग)	,,	,,	परिचये	२०
(घ)	,,	,,	प्रयोगज्ञाने	२०
				१००

ग्रन्थांशाः—

भैषज्यरत्नावली, अन्यो वा कश्चिदुपयोगी ग्रन्थः ।

चिकित्सा (Practice of Medicine).

ज्ञेयांशाः—

स्नेहः	च० सू० १३ अ०
स्वेदः	,, ,, १४ ,,
वमनम्	,, ,, १५ ,,
विरेचनम्	,, ,, १६ ,,
निरूहः अनुवासनम् उत्तरवस्तिः	चरकसिद्धिस्थानम् ।
लंघनम् बृंहणम्	च० सू० २२ अ०
सन्तर्पणम्	,, ,, २२ ,,
रसायनम्	,, चि० २३ ,,

वाजीकरणम्	…	…	…	,, ,, १ ,,
ज्वरचिकित्सा		…	…	,, ,, ३ ,,
अतीसार—चिकित्सा		…	…	च० चि० १९ अ०
ग्रहणी	,,	…	…	,, ,, १५ ,,
अर्शोरोग	,,	…	…	,, ,, १४ ,,
पाण्डु	,,	…	…	,, ,, १६ ,,
छर्दि	,,	…	…	,, ,, २० ,,
तृष्णा	,,	…	…	,, ,, २२ ,,
रक्तपित्त	,,	…	…	,, ,, ४ ,,
राज्ययक्ष्म	,,	…	…	,, ,, ८ ,,
क्षतक्षीण	,,	…	…	,, ,, ११ ,,
हिक्काश्वास	,,	…	…	,, ,, १७ ,,
कास	,,	…	…	,, ,, १८ ,,
वातव्याधि	,,	…	…	,, ,, २८ ,,
वातरक्त	,,	…	…	,, ,, २९ ,,
उरुस्तम्भ	,,	…	…	,, ,, २७ ,,
गुल्म	,,	…	…	,, ,, ५ ,,
हृद्रोग	,,	…	…	,, ,, २६ ,,
				आयुर्वेदविज्ञानञ्च
मूत्रकृच्छ्र	,,	…	…	,, ,, २६ ,,
अश्मरी	,,	…	…	,, ,, २६ ,,
प्रमेह	,,	…	…	,, ,, ६ ,,
मेदोरोग	,,	…	…	च० सू० २१ ,,
उदररोग	,,	…	…	च० चि० १३ ,,
शोथ	,,	…	…	,, ,, १२ ,,
कुष्ठ	,,	…	…	,, ,, ७ ,,
कार्श्य	,,	…	…	च० सू० २१ ,,
ध्वजभंग	,,	…	…	च० चि० २ ,,
विसर्प	,,	…	…	,, ,, २१ ,,
दाह	,,	…	…	भैषज्य रत्नावली।
आमवात	,,	…	…	,, ,,
अजीर्णादि	,,	…	…	,, ,,
शीतपित्त	,,	…	…	,, ,,
आम्लपित्त	,,	…	…	,, ,,
शूल	,,	…	…	सु० उ० ४२ अ०
				भैषज्य रत्नावली।

विसूचिकाचिकित्सा		सु० उ० ५६ अ०
क्रिमि	,,	,, ,, ५४ ,,
अरोचक	,,	,, ,, ५७ ,,
उदावर्त	,,	,, ,, ५५ ,,
आनाह	,,	,, ,, ५६ ,,
मूत्राघात	,,	,, ,, ५८ ,,
स्वरभेद	,,	,, ,, ५३ ,,
वृद्धि	,,	सु० चि० १९ ,,
गलगण्ड	,,	,, ,, १८ ,,
श्लीपद	,,	,, ,, १९ ,,
उपदंश	,,	,, ,, १९ ,,
क्षुद्ररोग	,,	,, ,, २० ,,
अंशुघात	,,	आयुर्वेदविज्ञानम् ।
गदोद्वेग	,	
योषापस्मार	,,	
उरस्तोय	,,	
सोमरोग	,,	भावप्रकाशः ।
फिरङ्ग	,,	
विस्फोट	,,	गदनिग्रहः ।
मसूरिका	,,	
ग्रन्थिकज्वर	,,	आयुर्वेदविज्ञानम् ।
श्लैष्मिकज्वर	,,	
श्वसनकज्वर	,,	
दण्डकज्वर	,,	
कालज्वर	,,	

(२) द्वितीय (practice) पत्रस्य ज्ञेयांशाः—

रोगिपरीक्षया रोगनिरूपणं तच्चिकित्सानिर्देशश्च । १००

चरकसाधारणपत्रम् (General paper on Charak Sanhita).

ग्रन्थांशाः—

चरकसंहितायां सूत्रस्थानस्य १।२।३।४।५।९।१०।१२।१७।१८।१९।२०।२४।२५।२६।२८।२९।३०।

अध्यायाः । विमानस्थानस्य २।४।५।६।७। अध्यायाः (सम्पूर्णाः) शारीरस्थानस्य ६।७। अध्यायौ ।

Final Degree Examinations.

औषधिनिर्माणम् (Pharmacy).

औषधिनिर्माणविषये	३०

निर्मितौषधीनाम्पत्रीकरणे	१५
,, ,, परिचये	२५
,, ,, प्रयोगे	३०
	१००

ज्ञेयांशाः—अधोलिखितानां तैलघृतखण्डमोदकासवारिष्टसुराप्रभृतिनामौषधालये यथासम्भवं निर्माणम् ।

तैलानि ।

१—नारायणम् ।
२—श्रीविष्णुतैलम् ।
३—सैंधवादितैलम् ।
४—विषगर्भतैलम् ।
५—महामाषादितैलम् ।
६—सोमराजी तैलम् ।
७—पुनर्नवादितैलम् ।
८—दीपिकातैलम् ।
९—विजयभैरवतैलम् ।
१०—शूलगजेन्द्रतैलम् ।

घृतानि ।

१—पञ्चतिक्तघृतम् ।
२—अशोकघृतम् ।
३—ब्राह्मीघृतम् ।
४—शतावरीघृतम् ।
५—छागलादिघृतम् ।

मोदकाः ।

१—मदनानन्दमोदकः ।
२—कामेश्वरमोदकः ।

आसवारिष्टाः ।

१—कनकासवः ।
२—पुनर्नवासवः ।
३—लौहासवः ।
४—चन्दनासवः ।
५—द्राक्षारिष्टः ।
६—कुटजारिष्टः ।
७—अश्वगन्धारिष्टः ।
८—दशमूलारिष्टः ।
९—तक्रारिष्टः ।
१०—मृतसंजीवनीसुरा ।

खण्डाः ।

१—कुष्माण्डखण्डः ।
२—नारिकेलखण्डः ।

ग्रन्थांशाः—भैषज्यरत्नावली अन्यो वा कश्चिदुपयोगी ग्रन्थः ।

Hygiene and Bacteriology (स्वस्थ वृत्त और जीवाणुवाद) ।

Air.—(Compositon, Purification and the ordinary impurities found in it).

Requirement for the healthy and the sick, air space ventilation.

Water.—[Distribution. kinds of, compositon, impurities, purification, its need for life, tanks, wells (disinfection of water in tanks and wells) methods for prevention of pollution of water during epidemics.]

Food.—(Varieties, proximate principles, the kind of food required for the support of health and life.)

Refuse water.—Its removal (removal of sewage and night-soil).

Drains and drainage.

Conservancy and latrines.

Infectious diseases.—Small-pox, Chicken-pox, Measles, Mumps, Influenza. Dengue, Malaria, Kala Azar, Plague, Typhoid, Cholera. Tuberculosis, Leprosy, Dysentery, Diphtheria, whooping cough and Beri-beri.

Bacteriology.

An elementary knowledge of the following:—

(1) Germs (Pathogenic), (2) Parasites (including Helminthology), (3) Infection, (4) Immunity, (5) Phthisis (Tuberculosis of Lungs), (6) Typhoid Fever, (7) Malaria, (8) Kala Azar, (9) Plague, (10) Pneumonia and Pleurisy, (11) Cholera, (12) Gonorrhoea, (13) Syphilis, (14) Leprosy, (15) Mumps, (16) Cerebro spinal Fever, (17) Dengue, (18) Influenza, (19) Filariasis, (20) Tuberculosis of Intestine aud Bones, (21) Small-pox, Chicken-pox and Measles, (22) Beri-Beri, (23) Pathological conditions of urine and its examination, (24) Pathological conditions of stools and its examination, (25) Examination of Sputum, (26) Simple examination of blood films, (27) Whooping couch (28) Diphtheria.

FORM B [APPENDIX TO RULE 40 (1)].

Government of Bihar and Orissa.

Certified that...,
son of......................................., aged..................years...............
months duly passed the Preliminary Examination in Ayurveda, both theoretical and practical, held in.........................19............from the Government Ayurvedic School, Patna, and was placed in the............
Division.

Principal,
Government Ayurvedic School,
Patna.

President,
Governing Body,
Government Ayurvedic
School, Patna.

Patna:
Dated the.....................19 .

[FORM C APPENDIX TO RULE 40 (2)].

Government of Bihar and Orissa.

Certified that..
son of.... ....aged.......................years......................
months duly passed the Final Examination in Ayurveda, both theoretical and practical, held in...19......................
from the Government Ayurvedic School, Patna, and was placed in the
...............Division, The diploma of Graduate in Ayurvedic medicine and surgery is hereby conferred on him and he is authorized to practise Ayurveda.

Principal,	*President,*
Government Ayurvedic School, Patna.	*Governing Body, Government Ayurvedic School, Patna.*

Patna:
Dated the.....................19 .

COLLEGE OF INDIGENOUS MEDICINE,

Jaffna. 9th Nov. 1935.

To,
The President,
All India Ayurveda Mahamandal,
Benares Hindu University, Benares.

Sir,

With reference to your letter dated 24th Oct. 1935 I have the honour to inform you that there are two Colleges of Indigenous Medicine in Ceylon. One situated at Colombo and the other at Jaffna. The one situated at Colombo promotes the Ayurvedic System of Medicine and the other situated at Jaffna promotes the Siddha System of Medicine in particular.

In Ceylon Singhalese Physicians practice the Ayurvedic System and the Thamil Physicians practice the Siddha System of Medicine.

College of Indigenous medicine, Colombo, was started in the year 1929 and the College of Indigenous medicine, Jaffna was started in the year 1935.

The Principal of the College of Indigenous medicine, Colombo, is Capt. A. N. N. Pannikker, M. B. L. LB. (Edin), M. R. C. S. (Eng.) L. R. C. P. (Lond) I. M. S. (Retired), Ayurveda Bhushan (Madras) and the Principal of the College of Indigenous Medicine, Jaffna is Dr. E. T. Mac Intyre, M. D. (Dees) D. T. M. (Lond.), L. R. C. P. & S. (Edin), L. R. F. P. & S. (Glas) etc.

The Registrar of the College of Indigenous Medicine. Colombo, is Dr. J. M. L. Mendis, L. M. S. (Ceylon) and the Registrar of the College of Indigenous Medicine, Jaffna, is Dr. S, M, Ponnaiyah. L. I. M. (Madras) First Class

If you desire to have the photos of the Principals and the Registrars of both the Colleges along with the Building's of both the Colleges, I shall send same on receipt of a reply from you.

I shall send you a report of Both the Colleges in the meanwhile.

Thanking you for your kindness

I have the honour to be,
Sir,
Yours obediently
Sd. S. M. Ponnaiyah.
Registrar
College of Indigenous Medicine,
Jaffna.

N. B. In Ceylon there are two Indigenous Medical association. One is known as the "All Ceylon Ayurvedic Congress" and the other "All-Ceylon Thamil Medical Conference."

All Ceylon Ayurvedic Congress is an organization of the Singhalese Physicians and the other is an organization of the Thamil Physicians of Ceylon. Each of the Conferences have each a medical council of their own incorporated for the purpose to regulate the singhalese and Thamil medical practitioners of Ceylon and also to force registration for the better control of the Indigenous Medical Practictioners on the same lines as those of the Modern Medical Practitioners.

Sd. S. M, Ponnaiyah.

* * *

Prospectus of the College of Indigenous Medicine

The Aim.

The College of Indigenous Medicine has been established for training those who desire to practise the three indigenous systems of medicine: Ayurveda, Siddha and Unani.

Referring to the need for this training, the Report* on Indigenous Medicine says :—

"When so large a number of persons either from choice or necessity have recourse to native treatment it becomes the duty of Government to see that those who practise the indigenous systems are not quacks. Government has done something to eliminate the quack from those professing the allopathic system. Nothing has been done to protect the public against the quacks professing the indigenous systems. At present many persons who have got hold of a few recipes but without adequate training and experience are going about practising the indigenous systems. The danger to the public from these unqualified persons cannot be exaggerated"

"The exclusive appropriation of the term "Scientific" to Western Medicine is unwarranted. Even if the indigenous systems are not scientific in the sense that they are based on incorrect theories as to the causes of diseases it does not follow that the indigenous systems can be dismissed as mere quackery.

These systems have been spoken of in terms of high praise by those who are competent judges. Sir Pardey Lukis who was Director General of the Medical Services for India, said:

"I wish to impress upon you most strongly that you should not run away with the idea that everything that is good in the way of medicine is contained within the ringed fence of allopathy or Western medicine. The longer I remain in India and the more I see of the country and the people, the more convinced I am that many of the empirical methods of treatment adopted by the Vaids and Hakims are of the greatest value, and there is no doubt whatever that their ancestors knew ages ago many things which are nowadays being brought froward as new discoveries.

---

* S.P. No. 1 of 1927.

On another occasion he said:

"We re ourselves just emerging from the slough of empiricism. Until a few years ago we believed malaria to be due to foul air as its name implies...... Personally if I were ill I may frankly say that I would prefer to be' treated by a good Vaid or Hakim rather than by a bad doctor. I resent strongly that spirit of Medical Trades Unions which leads many modern doctors to stigmatise all Vaids and Hakims as quacks and charlatans Many of the so-called discoveries of recent years are merely rediscoveries of the facts known centuries ago to the ancients."

Sir Havelock Charles, when professor of the Calcutta Medical College often used to say to his pupils: "I am only repeating to you what the Aryan medical science preached two thousand years ago and am reproducing to you only a small fragment of the lesson taught by Charaka."

The "Sadler Commission" reporting on the Calcutta University said: "This ancient system possesses an imposing treasure of empirical knowledge and technical achievement which cannot be safely ignored even in these days of rapid progress.

Sir Edward Denham in his Ceylon Cencus Report for 1911 bore testimony to the skill of the Vederalas in these terms: There has been considerable controversy as to the merits and methods of Vederalas. It can however scarcely be disputed that amongst them there are men of considerable knowledge, experience, and skill, while many of their remedies have been proved to be wonderfully efficacious...... Many Vederalas have undoubtedly performed successful operations as occulists and as bone-setters; while their treatment of dysentery and certain bowel diseases, abrasions. sores, and even snake bites have been in many cases successful."

The object of the College is to preserve as far as possible the treasures of medical knowledge "which cannot be safely ignored even in these days of rapid progress," and to make the exponents of the indigenous sytems more efficient.

The curriculum therefore provides for the training of students not only in the three indigenous systems but for elementary instruction in modern science and discoveries relating to medicine.

Though about 12 million rupees are spent annually for providing medical relief there are many parts of Ceylon which are inadequately served by existing hospitals and dispensaries. Allopathic private practitioners find it unprofitable to establish themselves in practice in many areas. It is hoped that the graduates of this College will be specially useful in carrying efficient and cheap medical aid to such areas and in ministering to the poor in all parts of Ceylon who cannot now afford to summon to there houses Allopathic doctors.†

The Board of Indigenous Medicine receives from Government a grant of Rs. 50,000 per annum.

The Ministry of Health has informed the Board (19th September, 1934), that the Government Grant will stop at the end of 10 years—i. e. in 1938.

The hope of making the Board self-supporting lies in making the Pharmacy a revenue yielding institution.

It wonld not be possible to reduce the aggregate sum now paid under the head of salaries and travelling allowances, which now exceeds the Government Grant.‡ The rest of the expenditure is now met from the revenue derived from fees.

HISTORY OF THE COLLEGE,

In 1925 the Government appointed a Committee consisting of Mr. K. Balasingham (Chairman), Hon. Mr. E. R. Tambimuttu, Hon. Mr. C. W. W. Kannangara, Hon. Mr. T. B. Jayah, Hon. Mr. F. A. Obeyesekera, Hon. Mr. S. Rajaratnam, Hon. Mr. W. A. de Silva, Hon. Mr.

---

† In 1934 the Board paid for salaries :—

	Rs.	c.
Hospital	9,952	79
Pharmacy and Dispensary	7,059	69
College	33,594	12
Examining Fees	510	25
...	51,116	85
Ground Rent paid to Government, and Municipal Taxes	1,249	31

The total expenditure of the Board for 1934 was Rs. 88,661.68.

‡ The President of the All India Medical Conference of Allopathic doctors) bore testimony to the value of Ayurvedic College in these terms. (Dec. 26, 1933) :—

Conditions being what they are I am not quite sure that we can fight the misery of our people on a country wide scale except through men and women trained by such indigenous institutions. They will be efficient enough to fight the general diseases that are the bane of our country. They can be trained in less time and at less cost and they will be valuable to the general body of the population. Indeed it is these medical men who can constitute the answer in the present conditions to the crying needs of rural India."

P. B. Rambukwelle, Sir Marcus Fernando, † Dr. L. F. Hirst, M. D. (Lond.), and Mr. C. T. Symons, B. A., to report

(*a*) Whether it is practicable for the Government to assist financially or otherwise

- (i) in the training of those seeking to qualify themselves as practitioners of the indigenous systems of medicine;
- (ii) and in the investigation of the medicinal value of drugs used by those practising such systems; and

(*b*) If practicable, to prepare a detailed scheme of such training and investigation for the consideration of Government.

The Committe‡ in October. 1926, made the following recommendations:—

I. That a Board of Indigenous Medicine be constituted to deal with all matters connected with the education of those seeking to qualify themselves as practitioners of the indigenous systems of medicine.

II. That the number of members of the Board be 15 and that the Controller of Revenue be the Chairman. Ten members, six of whom shall be members of the Legislative Council, shall be nominated by Government and the remaining five shall be persons practising the indigenous systems nominated by the above-mentioned ten members.

III. That a college be established in Colombo for the training of those who seek to practise the indigenous systems or any of them.

IV. That a hospital and out-door dispensary be attached to the college and that adequate provision be made for growing plants used in the indigenous system.

V. That the course of instruction at the college be for a period of four years.

VI. That the course of instruction be according to the syllabus prescribed in Schedule I.

VII. That during the last two years of the course, lectures in Sidda and Unani methods of treatment and pharmacology be delivered to such students as may desire instruction in those subjects.

VIII. That students be required to attend the hospital, dispensary, and pharmacy, during the last three years of their course of studies.

---

† Dr. Gunasekera was appointed a member of the Committee in place of Sir Marcus Fernando, when he left for England in May, 1926.

‡ Dr. S. T. Gunasekera, Dr. Hirst and Mr. Symons did not agree to these proposals.

IX. That privately established schools which in the opinion of the Board of Indigenous Medicine are properly conducted be paid a grant of Rs. 50 for each student who passes the first, Rs. 100 for the second, and Rs. 150 for the final examination held by the Board for this purpose.

The syllabus of studies at the privatevely managed schools should be approved by the Board.

X. That for the present till the college proposed in Recommendation III. is established, 12 scholarships each of the value of Rs. 360 per annum be granted by Government to enable students to proceed to some of the Schools of Indigenous Medicine established in India.

XI. That a register should be kept of all persons qualified to practise the indigenous systems of medicine.

XII. That no person who is not so registered be permitted to practise medicine as a profession whether for gain or otherwise after seven years from the day specified for registration.

XIII. That all persons who have been practising the indigenous system for a period of not less than three years on a date to be notified should have the right to be registered.

XIV. That after a specified date no person should be registered unless he has passed an examination prescribed by the Board of Indigenous Medicine, or is a preson trained by a specialist of repute and is in the opinion of the Board qualified to practise as a specialist.

XV. That a Research Institute be established in connection with the Government Analyst's Department, and every facility be given to those desirous of doing research work in the institute.

XVI. That two scholarships each of the value of Rs. 125 per mensem for three years be given to graduates in Western medicine to study the Ayurvedic systems in India and after that with some of the physicians of great repute in this country.

XVII. That one scholarship of the value of Rs. 300 per mensem for two years be given to one graduate in Westen medicine to study research work in indigenous drugs at the school of Tropical Medicine, Calcutta.

The earlier history of the movement to train Ayurvedic practitioners is thus stated in Section 4 of the report of this Committee :—

"In 1916, the Government was prepared to consider favourbly a practical scheme for the granting of assistance for the training of those seeking to practise the indigenous system of medicine (*vide* Hansard 1916, pages 218 and 232). In 1916 the Government offered to the Oriental Medical Science Society, a valuable site in Colombo † for the establishment of an Ayurvedic College and Hospital. This offer was withdrawn in 1922 as the funds then collected by the Society were not sufficient for building, equipping, and endowing the purposed institutions. When the Supply Bill, 1925-1926, was considered in Committee the Government was asked by several members to vote a sum of money for the training of those seeking to practise the indigenous systems of medicine, and the Acting Colonial Secretary requested the Chairman of this Committee to prepare a scheme in detail. As it was thought more desirable that a Committee should prepare such a scheme, a motion was introduced by the Chairman for the appointment of a Committee for the purpose. The Government accepted the motion, but desired that the Committee should also report on the practicability of giving assistance in the investigation of the medicinal value of drugs used by those practising the indigenous system."

---

† Maining Town houses were subsequently built on this site.

The College of Indigenous Medicine was opened in rented premises, "The Bower," Cotta Road, by His Excellency Sir Herbert Stanley, G.C.M.G., on 10th June, 1929, with 72 students on the roll.

Though "The Bower" was a spacious house situated in a large garden it was soon found to be inadequate, and an additional hall had to be built.

An applicantion was made to the Chairman of the Municipal Council for permission to dissect bodies at the College premises.

The Council imposed certain conditions which made it almost impossible to conduct dissection classes in the permises. Besides it was not easy to obtain permission from the lessor to make structural alterations.

The Board applied on 10th September, 1929, to the Government Agent, W. P., for permission to erect a temporary iron shed on the land leased from the Crown which was situated just outside the Municipal limits on the Cotta Road. The Government Agent replied that the land should be used, according to the lease, and only for a medicinal farm.

The Board thereupon applied in November, 1929, to Government for four acres of land for the erection of a dissection hall, hospital etc.

On the 31st July, 1930, the Government gave the Board an acre of land bordering on Cotta Road for the erection of a dissection hall. The erection of this building was commenced in October when the Director of Electrical Undertakings objected to it, as being too close to the electric high tension transmission line. The Board then applied to Government for a site near the Government Printing Office and Bacteriological Institute for the erection of the College, hospital, and dispensary. Government replied that this site was reserved for the proposed Research Institute. The Government also intimated that it was also not in a position to offer suitable land in the City. The Board subsequently obtained permission of Government to erect the Anatomy Block at Cotta Road further to the west of the original site. As no other site was available, a lease of the grass field to the west of the Anatomy Block was accepted by the Board for erecting the other buildings. Temporary structures were immediately erected on the new site, as "The Bower" provided far too insufficient accomodation for the rapidly growing needs of the College. Plans were then prepared for housing the College, Hospital, Out-door Dispensary, Library and quarters for resident officers in one and the same building on this small area.

When later, after commencing to build according to the plan, more land to the north of the Anatomy Block became available it was resolved to erect the College buildings on it. Later a Block to the east of the Anatomy Block was also obtained, and the Out-patients' Clinic, Quarters for the Superintendent and for resident officers were built on it.

As the accommodation required for the Institutions controlled by the Board increased beyond anticipation it became necessary to make frequent modifications on the original plan even when the buildings were in progress.

The portions of the hospital built for class rooms had to be made suitable for hospital wards. A building erected for a garage was converted into a Dispensary and Pharmacy. This was again converted into quarters for attendants, etc. Later, the Anatomy Shed had to be rendered suitable for a Pharmacy. Soon experience showed that far more accommodation was needed for the Pharmacy than the original Anatomy shed could have given. Large extensions had to be made making the area available more than three times the former area. A building built for a Hostel for students have to be converted into quarters for 5 Resident Officers. A portion of the hospital originally intended as a waiting hall had to be converted into a portico and then converted partly into an office and partly into a portico, and then into 2 office rooms.

The Western Ward which was used for non-paying patients was converted into a Maternity Ward.

Owing to the nature of the ground, many of the buildings had to be steel structures on concrete foundation with walls of brick and cement, and floors of cement concrete.

The ground being swampy and subject to floods, had to be filled up.

The ground level has to be raised if the land to the north of the College is to be built upon.

BUILDINGS.

THE COLLEGE.

The following College buildings have been completed and are of the total area of 10,767 square feet.

LIBRARY BLOCK consists of a hall and two rooms and is of the area of 2,325 square feet (93×25)

SCIENCE BLOCK is (99′×31′) 3069 square feet and is divided into two halls and two rooms.

ANATOMY BLOCK is of the same size and is divided into three Dissection Halls and three rooms.

There are seven other class rooms, three of these rooms are between the Science and Anatomy blocks and are of the total area of (24′×46′) 1104 square feet. Another hall 60′×29′ is divided into 4 class rooms (1200 square feet).

THE HOSPITAL.

The following buildings have been completed and are of the total area of 21216 sq. ft.

(*a*) ONE PAYING WARD. 121′×40′ divided into nine rooms with verandahs on all sides (3840 sq. feet).

(*b*) TWO PAYING WARDS. (84′×40′ each) divided into 14 rooms and verandahs (6729 sq. ft.)

(*c*) TWO WARDS FOR "ORDINARY" PATIENTS. (98′×32′ each) divided into 2 rooms and 8 wards. (6272 sq. ft.)

(*d*) AN OFFICE. (24′×31′) 744 sq. ft.

(*e*) A DETACHED PAYING WARD. (64′×30′) divided into four rooms.

(*f*) A KITCHEN BLOCK divided into three rooms (24′×30′) 720 sq. ft.

The Hospital Wards provide accommodation for 165 patients.

PHARMACY.

The old Anotomy Block of 1580 sq. ft. (60′×26½′) has been converted into Pharmacies for the preparation of medicine by the addition of four rooms, two verandahs, and a new hall (60′×28′). The total area now available for the Pharmacy is 4430 sq. ft. As this building is now required for an extension of the Hospital, the Pharmacy will soon be housed elsewhere.

QUARTERS FOR RESIDENT OFFICERS.

Quarters for 5 resident officers have been completed and are of the area of about 7250 sq. ft.

A house for the Superintendent of the Hospital of the floor area of 3768 sq. ft. (office room, 3 bed-rooms, drawing room, dining room, and 6 verandahs and out-houses) has been erected between the Out-patients, Department and the Quarters for the Resident Medical Officers.

OUT-PATIENT BLOCK.

This consists of 6 consulting rooms, a dispensary and two waiting halls and is of the area of 4800 sq. ft.

OTHER BUILDINGS.

Other buildings include a Mortuary, rooms for attendants, garage, and the necessary out-houses.

COST OF BUILDINGS.

The total cost of all buildings erected is Rs. 121,153.25 † This expenditure as well as all cost of equipment has been paid out of the annual grant.

NEED FOR MORE BUILDINGS.

There is an urgent need for the following buildings :

(1) A pathological museum, laboratory and lecture hall.
(2) A Physiological Laboratory and Lecture Hall.
(3) Retiring room for lecturers and physicians.
(4) A Common room for lady students.
(5) A Common room for male students.
(6) An isolation ward.
(7) A Pharmacy.
(8) An out-patients' clinic for non-paying patients.
(9) Three Class rooms.

Land is also required for a medicinal farm (five acers) and for a dysentery ward and tuberculosis ward, not far from the Hospital.

The Board has no funds available for these buildings.

---

† The Physiological Block of the Medical College cost Rs. 425,000 ; the Anatomy Block cost Rs. 106,000. The Walasmulla Hospital (56 beds, quarters for Medical Officers, nurses, etc.). cost Rs. 135,000. The Kayts Hospital (46 beds, quarters, etc.) Rs. 167,000, the Giriulla Hospital (46 beds, quarters, etc.), Rs, 133,000.

THE BOARD OF INDIGENOUS MEDICINE.

The Board of indigenous Medicine was constituted by the Government of Ceylon in September, 1928, with the following members :—

Hon. Mr. K. Balasingham, (Chairman),
Hon. Mr. (later Sir) D. B. Jayatileke,
Hon. Mr. A. F. Molamure,
Hon. Mr. D. S. Senanayake,
Hon. Mr. W. A. de Silva,
Donald Obeyesekere, Esqr.,
Pandit M. S. P. Samarasinhy, Esqr.
C. Muttukumaru, Esqr.

The following were appointed members of the Board in June, 1933:-

Mr. K. Balasingham (Chairman),
Mr. W. A. de Silva, M. S. C ,
Mr. Donald Obeyesekere.
Pandit M. S. P. Samarasinha,
Mr. V. Siva Subramaniam,
Mr. P. M. P. Abeyasinghe,
Mr. K. W. Y. Attukorala,
Mr. U. B. Dolapihilla,
Mr. Daniel Fernando,
Mr. A. Ratnayake, M. S. C.,
Mr. S. Vythialingam M. S. C.
Pandit Wickramaratchi.

Vacancies caused by the death of Mr. K. W. Y. Attukorala and Mr. Siva Subramaniam, were filled by Mr. E. S. Jayasinghe and Mr. M. Katiravalupillai

The following were appointed in June, 1935 :—

Mr. K. Balasingham (Chairman).
Mr. W, A. de Silva,
Mr. Donald Obeyesekera.
Mr. A. Ratnayake.
Mr. S. P. Vytilingam.
Mr. E. S. Jayasinghe,
Mr. U. B. Dolapihilla,
Veda Mudaliyar M. S. P. Samarasinha,
Veda Mudaliyar W. Daniel Fernando,
Mr. P. M, P, Abeysinghe,
Mr. V. S, Ramanathan,
Mr. Z. D. Jalaldeen.

THE STAFF OF THE COLLEGE.

The Principal

Capt, A. N. N. Panikker. Apurveda Bushana (Madras), M. B., Ch. B. (Edin), M. R. C. S. (Eng.), L. R. C. P. (Lond.), L. C. P. & S. (Calcutta). L. M. & S (Homeo), A. M. A. C. (Madras), I. M. S. (Retd.)

Medical Snprintendent and Registrar

Dr. J. M. L. Mendis. L. M. S. (Ceylon),

Lecturers

Dr. T. Nallainathan, M. R. C. S. (Eng.), L. R. G. P. (Lond.).
G, N, Nanayakkara Esq., B. Sc. (Lond.)

Kaviraja R. B. Lonora, Master of Ayurvedic Medicine (Hons). Calcutta, L.A.M.S. (Calcutta), M.B.H.S. (Calcutta), Bhishagachariya (Ashtanga Ayurvedic College. (On study leave in England.)
A. Kanakaratnam, Esq., Bhishagwara (Madras), Vaidya Simham (Siddha), A. M. A. C. (Madras), Bhishak, All India Ayurvedic Board (1st Class).
D. L. Wimalajeeva Esq., L. A. M. S., Bhishagaratne (Ashtanga Ayurvedic-Vidyalaya, Calcutta).
C. Sambasiva Iyer. Esq,, L. A. M. S., Bhishagaratne (Calcutta), and Pundit (Tamil and Sanskrit).
D. D. Obeysekere, Esq , L. A. M. S. (Calcutta).
T. Bhoologasundram, Esq., L. I. M. (Madras).
Mr. M. A. Ahamed, Esq., L. I. M. (Madras).
Mr. Jaffer, Esq., L. I. M. (Madras).
† Dr. A. D. P. Wijegoonewardene, L. M. S. (Ceylon.)
† Dr. S. Ariaratnam, L. M. S. (Ceylon).
† Dr. M. Thiruvalingam, L. R. C. P. & S. (Edin.) L. R. A. P. & S. (Glas.)
J. E. F. Wickremesinghe, Esq., L. M. P. (Madras). [On study leave in Madras.]
R. Perera, Esq , L. M. P. (Madras).
B. L. S. Silva, Esq., B. S. (Lond.)
† K. C. Thilliampalam, Esqc. (Passed First Professional M.B. (Lond).

Assistant Lecturers

A. Ganapathy, Esq., D. I. M. S. (Ceylon).
T. P. Gunawardene, Esq., D. I. M. S. (Ceylon).
D. Rajapakse, Esq., D. I. M. S. (Ceylon).
R. D. A. Seneviratne, Esq., D. I. M. S. (Ceylon).

---

† Visiting Lecturers,

BOARD OF EXAMINERS.‡

The following have been appointed Examiners for the Pracheena Vaydyachariya Examination :—

Dr. Gananath Sen (Calcutta)
Dr. L. Lakshmipathi (Madras)
Dr. A. N. N. Panikker
PanPit M. S. P. Samarasinha, Mudaliyar
Pandit G. P. Wickramaratchi.

The Board of Examiners for the Final Examination consists of:—

Ayurvedic Section.

Principal and Lecturers,
Veda Mudaliyar Pandit Samarasinha,
Dr. D. H. Samarasinghe,
Pandit G. P. Wicramarachi of Gampaha,
Dr. Abeyrante of Borellasgamowa,
Kavichintamani P. M. P. Abeyasinghe,
B. L. Sarnelis Silva Kavitilaka.

Siddha Section.

Principal and Lecturers,
Dr. Kandiah of Point Pedro,
Dr. M. Kathiravaloopillai, of Jaffna,
Dr. S. Ramanathan, of Jaffna.

Unani Section.

The Principal,
Dr. M. A. Ahamad.
Dr. S. M. Jaffer.

ADMISSION OF STUDENTS.

The number of admissions is for the present fixed at a maximum of 100 per annum ; of whom 45 will ordinarily be allocated to the Ayurvedic Section, and 40 to the Siddha Section and 15 to the Unani Section. The vacancies occuring in any one section may be filled in by admission to any other section.

Applications for admission to the College should be made to the Registrar before the 25th of April every year on the prescribed form which may be had on application to the Registrar.

Candidates who have not passed an approved entrance examination will be examined in the following subjects :—Grammar, Literature, General Knowledge and Arithmetic. Candidates can offer Sanskrit in lieu of General Knowledge or Arithmetic. Candidates must obtain 50 per cent in the aggregate for a pass.

---

‡ For 1934-1935.

A registration fee of Rs. 3 should be paid by candidates who have passed a qualifying examination. Candidates who have not passed a qualifying examination should pay Rs. 6 as examination and registration fee.

The fee should be deposited in the Imperial Bank of India to the credit of the Board of Indigenous Medicine and should not be sent to the Registrar. The Bank receipt should be annexed to the application and sent to the Registrar.

The following are the approved Entrance Examinations:—

(1) Matriculation Examination of London or Indian Universities.
(2) Cambridge Senior or Junior Examinations.
(3) School Leaving Certificate Examination of the Ceylon Education Department,
(4) Vaidya Pracheena Examination, or
(5) Pracheena Prarambha Examination (Oriental Studies Examination), or
(6) Vernacular School Leaving Certificate Examination, or
(7) Oriental Studies Examination (Tamil),

Candidates who haye passed the above examinations will be entitled to admission in preference to others,

Candidates who have not passed the approved examination in Singhalese or Tamil will be examined in one of these languages before admission.

RULES FOR STUDENTS.

1. All fees must be paid into the Imperial Bank of India, Colombo, to the credit of Board of Indigenous Medicine, and a receipt obtained, and that receipt must be handed personally to the Registrar or Clerk nominated by him.

2. Every student will receive from the Registrar at the commencement of each Session an enrolment card signed by the Registrar. Students may only attend such courses as are entered on their enrolment cards and in the Students' Register.

3. The enrolment card is to be taken to the lecturer on each specified subject, and is to be signed by him as evidence that the student has been entered on his roll.

4. A student who has not passed a professional examination will not be permitted to attend lectures in a higher class without the permission of the Board.

5. At the end of a course of lectures or other classes of instruction a student, provided he has attended regularly and has satisfactorily performed the work of the class, will receive a Class Certificate

These certificates are to be produced when entering for professional examinations.

6. A student who fails to attend regularly or to perform satisfactorily his work in the class will be refused a Class Certificate by the lecturer and will be called upon to take the course over again.

7. Irregular attendance or neglect of work will be reported to the Registrar.

8. Punishment for irregularity in attendance, persistent idleness, misconduct or for breach of discipline may be according to the nature of the case, a warning, fine, suspension from membership of the College for a period not exceeding one month, or recommendation to the Board for expulsion from the College for the Academic year, or detention from being sent up for the examination or for rustification.

9. In case of serious misconduct or habitual idleness, the punishment may be accompanied by the entry of the offender's name in the Conduct Book. When the name of a student has been entered thrice in the Conduct Book he shall be liable to expulsion from the College.

10. A student desiring leave of absence must apply to the Registrar. For absence without leave he will be liable to a fine of -/10 cents a day, and if the period of such absence exceed a fortnight his name may be struck off. In emergent and other exceptional instances however cause of absence should be satisfactorily explained in writing at the earliest opportunity possible.

11. Students who have absented themselves without permission from class examinations will not be entitled to a certificate of attendance in the class.

12. Students who do not return to the College punctually at the beginning of the session or after the vacation are liable to be fined. In case of illness or other unavoidable cause a student must without loss of time notify the fact to the Registar.

13. Students are required to keep the Registrar informed oftheir addresses. Any change of address must be communicated without delay.

14. Students must appear at periodical examinations and if their progress is found unsatisfactory they will be liable to be refused admission to the higher classes or to the profesional Examination as the case may be, or they may be required to repeat their course of study before appearing for the Professional Examination.

15. No student will be eligible for promotion to a higher class, unless his attendance and progress have been found to be satisfactory and all the school fees have been duly paid.

16. Every student is required to attend regularly and punctually at the stated hours for lectures, dissections and demonstrations.

17. No student will be eligible for a grant of certificate of attendance in any class unless he has attended at least 75% of the meetings of that class.

18. No student will be eligible for a grant of a certificate of progress in any subject unless he has obtained at least one third of the maximum number of marks allotted to that subject in the class and sessional examination of the school.

19. Absence at any sessional examination must be accounted for by production of a medical certificate when a re-examination may be held to determine the grant of progress certificate.

20. When sickness necessitates absence, a student shall produce a medical certificate to that effect. Candidates applying for leave are strictly warned that the total number of their days of absence in any class should in no case exeeed 25% of the meetings of such class. The grant of leave to any student means that the reasons given for the grant of such leave are deemed satisfactory; it does not in any sense, convey a guarantee that, after excluding the period of such leave, the student has, or will have, enough attendance to enable him to obtain the certificate of attendance referred to in rule 17 above. Students applying for leave are therefore strictly warned that in every case it is at the risk of the student himself that the leave is granted and that he will not be eligible for certificate of attendance referred to in rule 17 if, after deducting the number of days he was absent on leave, it is found that the number of attendance in any class is less than 75°/₀ of the meetings of that class.

21. On the teacher entering the class room, the students shall rise and remain standing till they are desired to sit or till the teacher takes his seat.

22. No student shall leave the class room without the permission of his class teacher or until the class is dismissed. Students are expected to assemble in the class rooms five minutes before the appointed time when the rolls shall be called and the absence of any student noted. A student coming into the class after roll call may be punished by loss of marks or by a fine. Any misconduct in the class shall subject a student to such loss of marks or to such fine as the offence may appear to the teacher to warrant. Should the punishment be deemed insufficient, a report will be made to the Registrar.

23. The Principal may for good reason remit or modify any punishment imposed by the Registrar or Lecturer.

24. Students suffering from infectious or contagious diseases are not allowed to attend the College

25. It is within the power of any Lecturer to suspend temporarily any student or students from his class pending a report to the Registrar.

26. It is within the power of the Registrar to suspend any student for misbehaviour pending reference of his case to the Board, which may inflict such punishment, including dismissal from the College, as it may consider necessary.

27. Apparatus lost or broken by a student must be replaced or paid for within fourteen days of the occurrence otherwise he will not be allowed to attend the class at which the damage was done. In the case of valuable apparatus the time of payment may be extended. In any case payment must be made before a certificate of attendance is issued.

28. Students failing to pass their Final Examination at the end of their tenth year or the First Professional Examination at the end of their fourth year or the Second Professional at the end of their sixth year shall cease to be members of the College.

29 Students entering for an examination or a term are particularly warned to see that receipts for fees and all certificates are brought to the Registrar personally at least forty eight hours before the day fixed for the examination. On presentation of the necessary certificates and receipts an admission card to the Examination will be issued by the Registrar. Students who do not produce the admission card, will not be allowed inside the Examination Hall.

30. If a certificate is lost, another may be obtained on payment of Rs. 2-50.

31. In connection with medical Associations, Societies, or functions, students are not permitted to collect subscriptions from the Staff or others without previous sanction from the Registrar.

32. The Medical College compound and buildings will be closed to students daily at 6-30 p. m. Special sanction must be obtained from the Registrar if the use of College compound, buildings, or rooms is required after closing hours.

33. Students should not enter hospital wards without the permission of the Superintendent, except in the company of lecturers.

34. All communications to the Board shall be made through the Registrar.

RULES AND REGULATIONS WITH REGARD TO EXAMINATIONS.

1. Students not sitting for the examinations are not allowed access to the College and College grounds during the examinations. The Registrar may by special notice exclude students from a part of the College buildings only.

2. Candidates must present themselves for all the subjects of an examination at one and the same time. Any Candidate who obtains 50% in any subject need not be examined again in these subjects, but may complete the examination in the remaining subjects on a subsequent occasion.

3. On no consideration whatever must the Candidate write his name on the answer books. A Candidate so doing is liable to be disqualified at the discretion of the Examiners.

4. Any Candidate more than fifteen minutes late shall not be allowed to enter the examination Hall.

5. No Candidate shall be allowed to leave the Examination Hall before the expiration of half an hour.

6. A Candidate copying from the papers of other Candidates, or obtaining assistance from other Candidates or from persons outside the Examination Room, or introducing books, manuscripts, or papers of any kind into the Examination Room, will be at once dismissed from the examination. His case shall be brought before the next meeting of the Board.

7. At the discretion of the Examiners in any subject on consultation with the Principal and Registrar, a Candidate may be informed that he has not obtained sufficient marks in the written examination to enable him to proceed with the practical.

8. No Candidate will be eligible for a pass unless he obtains 50% in the aggregate and not less than 35% in each subject. Candidates who obtain 75% in the aggregate shall be placed in the Honours Division.

9. Candidate who obtains 85% in any subject will be entitled to a certificate for proficiency in that subject.

RESULT OF EXAMINATIONS.

In publishing the results the names of the candidates who have passed in all subjects at the correct term will be placed in two classes in order of merit.

Each rejected candidate shall be informed in which subjects he failed to satisfy the Examiners and at the same time shall be informed which courses of instructtion he must attend before being again admitted to the examination.

THE RULES OF THE STUDENT'S LIBRARY.

1. The Library is open from 8-30 to 10 a. m. and from 12 noon to 1-30 p. m., 4 to 6 p. m., daily, except on Saturdays when it is open from 9 a. m. to 1 p. m.

2. Library is open during the vacations from 9 to 12.

3. The marking of any book belonging to the Library is strictly forbidden.

4. Students must give a receipt to the Librarian for every book issued for use.

5. On returning the book to the Librarian, the student must see that Librarian enters the receipt of the book in the Library book, otherwise he will be responsible for the loss of the book.

6. Silence must be strictly observed in the Library, and smoking is prohibited.

7. One table is specially reserved for women students.

8. Books are not allowed to be removed by any student from the Library unless he deposits half the value of the book so removed. The deposit will be refunded when the book is returned.

9. No student will be allowed to remove books marked "Not for Lending" or any manuscripts.

COURSES OF CLINICAL INSTRUCTION.

Students of the third and fourth year classes will be given instruction in the diagnosis and treatment of diseases in the Out-patient Department and in the wards of the Hospital.

A.—OUT-PATIENT DEPARTMENT.

1. Students of the third year are expected to attend the practice of the O. P. D. during two College terms.
2. They should work in batches and submit their names to the Physicians attending the O. P. D. who will enter them in a Register and keep a record of their attendance.
3. Students must attend daily from 9-10 a. m.
4. They must examine cases under the direction of the Physician in charge and enter details regarding treatment, etc., in their note books.
5. At the end of the period of instruction if his attendance is regular and work satisfactory a certificate of attendance will be issued to him by the Physician in charge.
6. These certificates of attendance must be produced before the Registrar when entering for the Final Examination.
7. Students must obtain at least 80% attendance to qualify for a certificate.

B.—THE HOSPITAL.

1. Students of the Final year are expected to attend the practice of the Hospital.

2. They should submit their names to the Physician under whom they desire to work, who will keep a record of their attendance.
3. They must attend daily from 8-10 a· m· and 4-5 p. m· during three College terms·
4. A 80% attendance is necessary and no student should absent himself without the permission of the Medical Officer keeping the attendance register·
5· The Physician in charge will allot a number of beds in the non-paying section to the students who are working under him, and the student will be responsible for the conduct of the cases so allotted to them.
6. They shall enter every morning the daily states of the patients under their care in the bed-head ticket.
7· In the case of new admissions students must write a full history of the case in a separate case sheet and submit it to the Physician in charge for approval· This should be done preferably in the evenings.
8· If the examination of urine, blood, etc., of a patient under his care has been orderd he shall be personally responsible for such examination and for entering the details in the bed-head ticket.
9. Every student attending the practice of the Hospital must keep a full record of at least six cases that have come under his care and shall submit such record for the examination of the Physician in charge before obtaining a card of attendance.
10. Students will be premitted the practice in the nonpaying section only. In the case of the paying section the Physician in charge may with the consent of the patient demonstrate any case of interest to the student.
11. Students are premitted to write only the daily states in the bed-head ticket· They shall not write any prescription or other lines of treatment which properly belong to the Medical Officers of the Hospital·
12· At the end of a course of clinical instruction a student will be awarded a certificate of attendance if his attendance is regular and work satisfactroy. This should be produced when entering for the Final Examination·
13· Loitering in the corridors and verandahs of the Hospital or smoking in the Hospital are Strictly Forbidden

COLLEGE PHARMACY.

Rules For Students Attending The Pharmacy·

1· Students of the Second year must attend the Pharmacy twice a week during two College terms·

2· They must familiarise themselves with the herbs and other raw drugs ordinarily used in the preparation of medicines·

3 They must study the method of preparation of the various pills, powders, arishtams, asavams, avalehas, etc., stocked in the Pharmacy

4· Candidates at the examination will be expected to identify medicinal herbs, other raw drugs and prepared medicines· They may also be asked to enumerate the more important ingredients that enter into the composition of any medicinal preparation·

5· The Pharmaceutist shall keep a record of the attendance of students and shall issue a certificate of attendance at the end of the course of instruction·

6. Certificates of attendance must be produced before the Registrar when sitting for examinations·

DIPLOMA.

Graduates of the College will receive the Diploma in Indigenous Medicine and Surgery (D. I· M· S·) with the title of Vaidya Kalanidhi.

DOCTOR OF ORIENTAL MEDICINE.

The title of Pracheena Vaidyacharya, Doctor of Oriental Medicine, will be conferred on:

1. Diplomates of the College,
2· Graduates of other recognised Indigenous Medical Colleges,
3· And Allopathic Doctors,

who have undergone a course of postgraduate study and pass a Theoretical and Practical examination on advanced Subjects of Indigenous Medicine·

COLLECE TERMS.

1st Term begins on 2nd Wednesday in May every year and lasts till the 31st of July·

2nd Term begins on the 3rd Wednesday of August and lasts till the 2nd Wednesday in December·

3rd Term begins on the 3rd Wednesday in January and lasts till the 20th of March·

FEES.

Fees payable by students are :—

(1) Registration fee on admission Rs· 3—

(2) Examination for admission when required Rs. 3—

(3) Tuition fee Rs. 5 per mensem (60 per term).
(4) Sports : Rs. 1 per annum.
(5) Library : Rs. 1-50 per annum,
(6) First Professional Examination : Rs. 5.
(7) Second Professional Examination : Rs. 7-50.
(8) Final Examination : Rs. 15.
(9) Diploma : Rs 15.

Students are to deposit their tuition fee along with other fees in the Imperial Bank of India to the credit of the Board of Indigenous Medicine, on or before the 15th of each month, and the receipt is to be handed over to the Registrar.

Defaulters shall have to pay a fine of 50 cents after the 15th.

Students who are in arrears for more than one month will not be permitted to attend any class until all arrears are paid with an additional fine of Rupee one per mensem.

FREE STUDENTSHIPS.

1. Fifteen per cent of the total number of students may be granted whole or half free-studentships which is liable to be cancelled on the ground of misconduct, irregularity in attendance or unsatisfactory progress.

2. Application for full or half free-studentships should be made to the Board of Indigenous Medicine before the 20th of May.

3. A list of the students whose application are granted will be published as early as possible towards the end of the month.

4. A free or half free-studentship will not be granted as a rule to Scholarship holders.

5. Every year in May a list showing the names and classes of the students whose free studentships and half free-studentships are renewed is published.

6. Free or half free students so announced should pay the other fees of the College.

N. B.—There is no exemption from any fee except the tuition fee.

SCHOLARSHIPS.

Scholarships of the value of Rs. 240 per annum are awarded to students who have high academic qualifications. A scholarship of a higher value may by special resolution of the Board be granted where the student possesses exceptionally high academic qualifications.

CURRICULUM.

Provision is made for the training of students in Ayuryeda, Siddha, and Unani systems of medicine. Instruction is also given in

Anatomy, Physiology, Modern Science, Modern methods of diagnosis, Principles of Western Medicine, Hygiene, etc.

Lectures are delivered in Singhalese, Tamil or Sanskrit.

Lectures in Comparative Medicine are delivered to the 3rd and 4th year students.

One hour a day is devoted to the study of Sanskrit, Singhalese or Tamil by all students of the 1st and 2nd year classes.

Besides the classical writers on the Indigenous Systems of Medicine, Text-books prepared by the Government School of Indian Medicine are also prescribed for study.

Opportunity is given to students of one system of medicine to study the methods of treatment adopted in any of the other systems of Indigenous Medicine.

The following is the Curriculum† of studies for all sections :—

The names of the subjects are given in English so as to be applicable to all sections, viz., Ayurveda, Siddha and Unani, but instruction in the various subjects will be based upon the Ayurveda, Siddha and Unani writings, respectively, the subjects included in Western Science being taught in accordance with English books on the subjects.

FIRST YEAR.

General Science.
Biology.
Anatomy.
Physiology.
Fundamental Principles of Indigenous Systems of Medicine.
Sanskrit or Tamil.

SECOND YEAR.

Anatomy.
Physiology.
Nidana.
Chikitsa.
Darviya and Pharmacy.
Sanskrit or Tamil.

THIRD YEAR.

Nidana.
Chikitsa.
Medicine.
Surgery.

---

† For list of text-books and reference books recommended for study and for syllabus, see "Syllabus of Studies" available in English Singhalese and Tamil.

Pathology and Bacteriology.
Hygiene and Public Health.
Toxicology.

FOURTH YEAR.

Nidana.
Chikitsa.
Medicine.
Surgery.
Midwifery and Diseases of women and Children.
Medical Jurisprudence.

Students should attend Pharmacy in the Second year, and the Out-patient Departments in the Third and Hospital in the Fourth Year.

THE HOSPITAL.

The Hospital was opened on the 23rd February, 1933. The fee ranges from 60 cents per day to Rs. 5/- according to the accommodation and comforts provided. In all there are 165 beds. The Board bears the cost of non-paying patients and also the cost of equipment. The Hospital is now in a position to afford specialised treatment for the following diseases :—

Paralysis, Rheumatism, Carbuncle, Catarrh and Nose diseases, Eye diseases, Dysentery and bowel complaints, Diseases of pregnancy, Mental diseases.

Capt, A. N. N. Panikker, Ayurveda Bhushana (Madras), M. B., ch. B. (Edin.), M. R. C. S. (Eng.), L. R. C. P., (Lond.), L. C. P. & S. (Calcutta), L. M. & S. (Homeo), A. M. A. C. (Madras), I. M S. (Retd.), is the chief Pysician of the Hospital. Dr. J. M. L. Mendis, L. M. & S. is Superintendent.

Dr. Kanagaratnam (Siddha),
Dr. Wimalajeewa (Ayurveda), and
Dr. Ahmed (Unani), are visiting Physicians.

Several specialists of high repute have been appointed to serve as Honorary Physicians in the Hospital.

The "Specialist" Visiting Physicians are :—

Dr. D. H. Samarasinghe—(Paralysis).

Veda Mohandiram Attygala of Madapatha—(Dysentery and Bowel Complaints).

Dr. Wethasinghe of Pamangada-(Rheumatism and Joint Diseases).

Dr. Kaviratna—(Eye Diseases).

Dr. Wanaguru—(Specialist for Fractures and Dislocations).

Dr. Lewis Appuhamy—(Children's Disease).

Veda Arachy Gunasekara of Moratuwa—(Mental Disease)

Sathiyaloka Wijayasinghe—(Carbuncle and Boil, Ulcer).

OUT-PATIENT CLINIC.

Out-patient Department is in charge of four full-time officers.

Opportunity is given to eminent physicians who are reputed to be specialists to treat patients both in the Dispensary and Hospital.

Specialists selected by the Board to be Honorary Physicians are paid their travelling allowance at the prescribed rate. When they have to travel from out-stations they are provided with board and lodging as well.

Specialists for the treatment of the following diseases have been apppointed as Honorary Physicians :—

(1) Paralysis.
(2) Rheumatism.
(3) Carbuncle.
(4) Catarrh and Nose diseases.
(5) Eye diseases.
(6) Dysentery and bowel complaints.
(7) Diseases of pregnancy.
(8) Mental Diseases.

Clinical training is given to third and fourth year students in the Hospital and Dispensary.

THE PHARMACY.

The Board resolved in November, 1929, to establish a Pharmacy and Dispensary at the "Bower." As this was estimated to cost Rs 4,000 per annum, the project was abandoned for want of funds.

In January, 1931, it was felt that pharmacological and clinical training could not any longer be delayed and it was decided to establish an Ayurveda and Siddha Pharmacy and Dispensary on a self-supporting basis at the "Bower."

Pandit Samarasinghe and Dr. A. Kanakaratnam were invited to undertake the training of students in Pharmacology of Ayurvedic and Shiddha systems, and conduct the Ayurvedic and Siddha Dispensaries on the following conditions :—

They shall receive no remuneration for their services or for the services of any of their staff beyond what they themselves can get by the sale of Medicines prepared by them.

The total sum to be advanced by the Board on account of Drugs to be purchased shall at no time exceed Rs. 2,000 for the Siddha Section and Rs. 1,500 for the Ayurvedic Section. These sums shall be paid back as soon as the dispensaries are able to pay, at the latest from 6 months after opening.

The Pharmacy and Dispensary shall be housed and eqipped at the expense of the Board and the charges shall not be added to the cost of the Dispensary for the first 3 years.

That a Pharmaceutist, Dispenser and an assistant for each section be appointed on their recommendation.

That Pandit M. S. P. Samarasinghe and Mr. A. Kanakaratnam be asked to be personally responsible for the repayment of any sum to the Dispensaries. [Extract from minutes of Board meeting of 19th January, 1931]

Both the physicians very kindly undertook this work. Subsequently a third pharmacy and dispensary were established by Dr. Lenora.

These pharmacies were closed in February, 1932. A new Pharmacy was started in May, 1932, and Mr. M. S P. Samarasinghe was appointed Pharmaceutist. He was assisted by two lecturers in the preparation of Siddha and Unani medicines—Mr. Bhoolagasundram and Mr. Ahmed. Mr. L. G. Perera was appointed to assist in the preparation of certain metalic Ayurvedic preparation.

At present the Ayurveda, Siddha and Unani Pharmacies are working independently of each other.

It is hoped that these Pharmacies will become Central pharmacies for supplying medicines of proved value to both Western and Indigenous Medical practitioners.

NURSES, MIDWIVES AND ATTENDANTS.

There is a paucity of qualified nurses, midwives and trained attendants.

It is proposed to start, after the midwifery department is probably organised, classes for training nurses, attendants, midwives, and to give them a practical training in the preparation and administration of medicaments according to the Indigenous systems. These would, besides taking proper care of the sick in their homes for reasonable remuneration, serve to disseminate the rules of sanitation of the sick room, as now understood, and reduce thereby the spread of contagious diseases.

PHARMACY APPRENTICES.

A limited number of apprentices are admitted to the Pharmacy to learn the art of preparing medicines. They are started on an allowance of cents 40 a day.

RESEARCH.

It is not possible with the funds available to establish a properly equipped Research Institute in connection with the College of Indigenous Medicine. Government is about to establish a Reseach Institute and it would be possible to get adequate facilities there for research for those interested in Indigenous Medicine.

There is however a phase of research for which this College and the associated hospital and pharmacy are specially suited.

Some physicians are reputed to have remedies of the greatest value for the cure of certain diseases. Rooms are reserved in the hospital for the treatment of patients by these specialists. Medicines of proved value will be prepared at the pharmacy and made available to the members of all branches of the medical profession.

The improving of the methods of preparation and the isolating of the curative or active principle will subsequently become the subject of further research at the laboratory.

A fund has been started for compensating in some measure persons possessing secret recipes of proved value, if they should consent to making them available to the profession generally.

The generous donation of Mr. Gunaratne of Rs. 1000 has been set apart for this purpose. Other donations to the fund willbe thankfully received.

MEDICINE FARM.

On the 21st December, 1928, the Board applied for a block of land for the cultivation of medicinal plants. On the 15th March, 1929, Government replied that a block of 3 acres would be leased to the Board at Rs. 400 per annum. But it was not possible to take possession of the block for about one year owing to some delay in giving notice to the previous lessee. The Board spent some money in preparing the ground for the cultivation of medicinal plants. But during the floods of May, 1930, the land got under water. The Board, requested Government to cancel the lease.

An application subsequently made to Government for a lease of 5 acres of high land for a medicinal farm was also Refused.

The establishment of nursery for the distribution of plants of great medicinal value is under contemplation. The planting of such trees and shrubs in private gardens or public parks cannot but be of great benefit to the country.

LIBRARY.

There is a good collection of English, Sanskrit, Arabic, Sinhalese, and Tamil Medical books. A large number of Sinhalese and Tamil Manuscript (ola) books have been purchased. Many of those olas have been copied into folio books and are easily accessible for reference. Members of all branches of the Medical profession and all College students are entitled to become members of the Library.

EXTENSION LECTURES FOR PRACTISING VAIDYAS.

At the request of the All Ceylon Ayurvedic Committee a course of lectures and practical demonstration classes on Anatomy, Physiology and Sick room methods for the benefit of the practitioners of Indigenous Systems of medicine has been instituted.

1. The course axtends for a period of three months.
2. Fee for the Course is Rs. 15.
3. The classes will be held twice a week.
4. Intending Vaidyas should apply to the Registrar College of Indigenous Medicine, Cotta Road, Colombo.

Lecture 1. Anatomy and Physiology of the Brain.
Lecture 2. Anatomy and Physiology of the Spinal Cord and Nerves.
Lecture 3. Anatomy and Physiology of the Special senses.
Lecture 4. Anatomy and Physiology of the Lungs and Bronchial Tubes.
Lecture 5. Anatomyand Physiology of the Pleura Thoracic Wall.
Lecture 6. Anatomy and Physiology of the Heart and the Main Blood Vessels.
Lecture 7. Circulation of Blood.
Lecture 8. Anatomy and Physiology of the Digestive System.
Lecture 9. Physiology of Digestion.
Lecture 10. Anatomy and Physiology of the Urinary System.
Lecture 11. Examination of Urine and Foecal Matter.
Lecture 12. Anatomy and Physiology of Generative Organs.
Lecture 13. Physiology of the Liver and Spleen.
Lecture 14. Anatomy and Physiology of the eye.
Lecture 15. Anatomy and Physiology of the Teeth and Gums.
Lecture 16. Muscular System.
Lecture 17. Bones and Ligaments of the Body.
Lecture 18. The Ductless Glands.
Lecture 19. General Hygiene.
Lecture 20. Sick Room Methods.

Two courses have been already given.

SPORTS.

The extent of land leased out from Government for use as a playground for the students had been found unsuitable, and an attempt is being made to secure a playground in front of the College.

A Tennis Court and a Volley Ball Court are maintained in the College premises. The Board of Indigenous Medicine gives an annual grant to the Sports Club which is run by a committe selected amongst the staff and the students of the College and Hospital. A sports fee of Re. 1—per annum is recovered from every student along with the 1st term fees by the College. Dr. J. L. M. Mendis is the President, S. C. Wijayaretnam, General Secretary, S. Solomon Silva, Esq, B. Sc. (London), Treasurer of the Sports Club.

STUDENTS' ASSOCIATIONS.

There are four associations formed by the College students :--

Swadesia Vaidya Sisya Samaja,
Oriental Medical Students' Union (Third and Fourth Year students),
Indigenous Medical Students' Union (First and Second Year Students).
Siddha Students' Association.

PROSPECTUS FOR GRADUATES.

At present, graduates must in the main look forward to private practice. Every student is given, not merely a thorough training in the practice of Indigenous Medicine and the principles of that Science, but is also taught the methods of diagnosis known to Western Medicine and the discoveries of Modern Science relating to medicine. It is but reasonable to hope that physicians who have received such a training will have, other things being equal, a better prospect of success in the medical profession than those trained in only one system of medicine.

The Secretary of the British Medical Association, Ceylon Branch, who went to India to report on the study and practice of Ayurvedia there said that there were several practitioners in Calcutta who combined both Eastern and Western systems of medicine and that they were credited with charging Rs. 63 for a visit and Rs. 31-50 for a consultation in their rooms, and that one or two of them were reported to be enjoying an income of Rs. 15,000 to Rs. 20,000 per annum.

The Government is now granting subsidies to persons running Ayurvedic dispensaries which fulfil certain conditions.

An endeavour is being made to obtain for graduates of the College recognition of their superior claims to be placed in charge of the increasing number of Ayurvedic Hospitals and Dispensaries maintained by Municipal Councils, and Urban District Councils; and of hospitals and dispensaries maintained on estates by planting companies and of some hospitals and dispensaries maintained by Government in rural areas.

विहारोत्कल संस्कृत समितेः सामान्यनियमाः

१—विहारोत्कलप्रान्तीया एव विद्यालया विहारोत्कलसंस्कृतसमित्याङ्गीकृता भविष्यन्ति । अङ्गीकृतिश्च तेषां प्रार्थितेषु विषयेषु तत्तत्परीक्षार्थमध्यापकयोग्यतानुसारं भवेत् ।

२—अङ्गीकृता एव विद्यालयाः परीक्षार्थं छात्रान् प्रेषयितुं शक्नुवन्ति । अङ्गीकृतविद्यालयेऽपठन्तः परीक्षार्थिनः स्वतन्त्रतया परीक्षासूपस्थातुमर्हन्ति ।

३—विद्यालयस्याङ्गीकृत्यर्थमावेदनपत्रं तत्तमण्डलस्य डिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टर औफ स्कूल्स द्वारेण स्वतन्त्रप्रदेशेषु (Feudatory States) च इन्स्पेक्टर औफ स्कूल्स द्वारेण मार्चमासस्यान्तिमदिनात्प्रागेषु समितिनिर्धारितमुद्रितपत्रे कार्यसम्पादकसमीपे प्रेषणीयम् ।

४—प्रतिवर्षं समितिनिर्धारितसमये (प्रायेण वैशाखे चैत्रे वा) प्रथमामध्यमाचार्यपरीक्षा भविष्यन्ति ।

५—प्रोक्तपरीक्षा लेखद्वारेण गृहीता भविष्यन्ति । आयुर्वेदाचार्यतृतीयखण्डे चतुर्थपत्रपरीक्षा तु मौखिकी गृहीता भविष्यन्ति । प्रश्ना उत्तराणि च विशिष्य निर्देशन्मन्तरा संस्कृते भविष्यन्ति ।

६—अस्याः समितेः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य वा मध्यमां पञ्चनदप्रान्तीयविशारदपरीक्षां वोत्तीर्ण एवाचार्यपरीक्षायां प्रवेष्टुं शक्नोति । संस्कृते बी० ए० परीक्षोत्तीर्णश्च साहित्य एव । तत्र च प्रथमखण्डपरीक्षामुत्तीर्ण एव द्वितीयखण्डे तामुत्तीर्णस्तृतीयखण्डे तथा तामुत्तीर्णश्चतुर्थखण्डे परीक्षायाम्प्रवेष्टुं शक्नोति । एवमुक्तसमितेः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य वा प्रथमां पञ्चनदस्य प्राज्ञपरीक्षां वोत्तीर्णो वर्षत्रयं नियतान् ग्रन्थानभ्यस्यैव मध्यमपरीक्षायां प्रवेष्टुमर्हति । आई० ए० परीक्षोत्तीर्णश्च व्याकरणसाहित्य एव ।

७—यस्मिन्विषये मध्यमपरीक्षामुत्तीर्णस्तस्मिन्नेवाचार्यपरीक्षां दातुं शक्नोति । पुराणाचार्यपरीक्षां दातुन्तु ज्योतिषायुर्वेदो विहायापरस्मिन् यस्मिन् कस्मिन्नपि विषये समुत्तीर्णमध्यमपरीक्षः शक्नोति । एकस्मिन्विषय उपाधिपरीक्षोत्तीर्णो विषयान्तरे मध्यमामनुत्तीर्योऽपि आचार्यपरीक्षायाम्प्रवेष्टुं शक्नोति । १९२४ खृष्टाब्दे ततः परतो वा मध्यमां तथा १९२५ खृष्टाब्दे ततः परतो वाचार्यपरीक्षामुत्तीर्णानां विषयान्तरे पुनस्तस्यामेव परीक्षायां प्रवेष्टुकामानां सर्वसाधारणपरीक्षायामुपस्थानं नावश्यकम् । परन्तु सर्वसाधारणपत्रपरीक्षायामनुपस्थायच्छात्रवृत्तिमध्यापकपारितोषिकं वा नार्जयितुमर्हन्ति ।

८—प्रथमा परीक्षा सर्वेषामपि विषयाणामेकैव पत्रचतुष्टयेन गृहीता भविष्यति ।

९—मध्यमपरीक्षोपरिष्टादङ्कितेषु विषयविभागेषु षड्भिः पत्रैर्गृहीता भविष्यति ।

(१) वेदकर्मकाण्डधर्मशास्त्राणि । (२) व्याकरणसाहित्ये । (३) ज्योतिषम् । (४) मीमांसावेदान्तशास्त्रे । (५) न्यायसांख्ययोगशास्त्राणि । (६) आयुर्वेद । (७) आगमः ।

१०—आचार्यपरीक्षा चतुर्भिर्वर्षैः सम्पन्ना भवेत् । तत्र च खण्डचतुष्टयं भविष्यति । प्रतिखण्डं पत्रद्वयम् । चतुर्थखण्डे द्वितीयपत्रं । सर्वसाधारणम् केवलमायुर्वेदस्य चतुर्थखण्डे द्वितीयपत्रं विषयसम्बन्धि मौखिकोत्तरम् ।

११—आचार्यपीक्षा वक्ष्यमाणविषयेषुः—

(१) वेदः । (२) व्याकरणम् । (३) ज्यौतिषम् (गणितं फलितञ्च) (४) धर्मशास्त्रम् । (५) नव्यन्यायः । (६) प्राचीनन्यायः (७) सांख्ययोगौ । (८) मीमांसा (९) वेदान्तशास्त्रम् । (१०) आयुर्वेदः । (११) साहित्यम् । (१२) कर्मकाण्डम् । (१३) पुराणम् । (१४) आगमः ।

१२—सर्वासु परीक्षासु शतं पूर्णाङ्का भविष्यन्ति । प्रश्नाश्च होरात्रयेणोत्तरणीयाः भविष्यन्ति ।

१३—परीक्षाप्रवेशार्थमुपरिष्टान्निर्दिष्टं शुल्कं देयम् ।

	प्रान्तनिवासिभिः ।	अन्यप्रान्तनिवासिभिः ।
आचार्ये प्रतिखण्डम्	३)	६)
मध्यमायाम्	२)	४)
प्रथमायाम्	१)	२)

१४—आचार्यपरीक्षायाः केन्द्रं ❀ प्रान्तीय विभागस्य प्रधाननगरे प्रथमामध्यमयोश्च मण्डलस्य प्रधाननगरं भवेत् । विहारोत्कलसंस्कृत (कौंसिल) समितेरनुमत्यान्यदपि स्थानं परीक्षाकेन्द्रम्भवेत् ।

१५—प्रान्ताद्बहिन किमपि परीक्षाकेन्द्रम्भवेत् ।

१६—कार्यसम्पादकस्यानुमतिमन्तरा न कश्चित्परीक्षार्थी स्वाधिगम्यकेन्द्रं विहायान्यत्र परीक्षार्थमुपस्थातुंशक्नुयात् । केन्द्रान्तरे समुपस्थित्यै तु परीक्षादिनान्मासन्तदधिकं वा पूर्वमेवविद्य कार्यसम्पादकस्यानुमतिः प्रापणीया ।

१७—विद्यालयस्य निखिलैरेवच्छात्रैरेकस्मिन्नेवाधिगम्यकेन्द्रे परीक्षार्थमुपस्थानीयम् ।

१८—अङ्गीकृतविद्यालयानां छात्रैर्मुद्रितपत्रेषु कृतमावेदनमध्यापकेन यत्रैकाधिकाध्यापक-संख्या तत्र च प्रधानाध्यापकेन मण्डलस्य डिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टर-समीपे स्वतन्त्रप्रदेशेषु च इन्स्पेक्टर-स्कूल्स्-समीपे च नवेम्बरमासस्यान्तिमदिनात्प्रागेव प्रेषणीयम् ।

१९—प्रान्तीयः स्वतन्त्रः परीक्षार्थी स्वयमेव डि० इन्स्पेक्टर-औफ्-स्कूलस् समीपे स्वावेदनं प्रेषयेत् ।

२०—अन्यप्रान्तनिवासिभिः परीक्षार्थिभिः स्वावेदनपत्राणि सशुल्कानि साक्षादेव समितिकार्यसम्पादकसमीपे प्रेषणीयानि । तत एव च परीक्षावेदनपत्राणि लब्धव्यानि । एते क्वापि केन्द्रे परीक्षायामुपस्थातुम्प्रभवन्ति ।

२१—सर्वेषामपि स्वन्त्रपरीक्षार्थिनामावेदनपत्राणि सुप्रतिष्ठितेन केनापि प्रमाणितानि भवेयुः।

❀ आचार्य-परीक्षायाः केन्द्राणिः—(१) पटना (२) मुजफ्फरपुर (३) भागलपुर (४) पुरी (५) कटक (६) बोलाङ्गीर (७) रांची ।

प्रथमा-मध्यमपरीक्षयोः केन्द्राणिः—(१) पटना (२) गया (३) आरा (४) मुजफ्फरपुर (५) छपरा (६) मोतीहारो (७) दरभङ्गा (८) भागलपुर (९) लक्ष्मीपुर (१०) मुङ्गेर (११) पुर्णियां (१२) दुमका (१३) रांची (१४) हज़ारीबाग (१५) डालटेनगञ्ज (१६) पुरुलिया (१७) चाईबासा (१८) कटक (१९) पुरी (२०) बालासोर (२१) सम्बलपुर (२२) अङ्गुल (२३) बोलाङ्गीर (२४) मधुबनी ।

२२—अस्मिन्प्रान्ते आवेदनार्थपत्राणि स्कूल-डिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टरैः स्वतन्त्रप्रदेशेषु च स्कूल-इन्स्पेक्टरैरध्यापकानां स्वतन्त्रपरीक्षार्थिनाञ्च समीपे प्रेषितानि भवेयुः । यानि च तैः संख्यां निश्चित्य प्रतिवर्षं जूनमास एव कार्यसम्पादकाल्लप्स्यन्ते ।

२३—प्रतिवर्षं नवेम्बरमासस्यान्तिमदिनात्प्रागेव शुल्कसहितानि परीक्षावेदनपत्राणि स्कूलडिस्ट्रिक्ट-इन्स्पेक्टरकार्यालये प्रापणीयानि । जनवरीमासस्य द्वितीयदिनं यावत्प्रथमामध्यम परिक्षार्थिभिरर्धमुद्राचार्याभिश्चैका मुद्रा यदि दण्डरूपेण दीयेत तदावेदनपत्राणि गृह्येरन् ।

२४—स्वतन्त्रपरीक्षार्थिभिर्मध्यमपरीक्षार्थावेदनकाले प्रथमोत्तीर्णतासूचकं मूलप्रमाणपत्रं तथाचार्यावेदनकाले मध्यमोत्तीर्णतासूचकं मूलप्रमाणमवश्यं प्रदर्शनीयम् ।

२५—आवेदनपत्राणि सशुल्कानि प्राप्य तत्प्रेषकाणां समीपे तत्तत्परीक्षाप्रवेशकपत्राणि परीक्षार्थिभ्यो वितरणार्थं समितिकार्यसम्पादकः प्रेषयिष्यति । यानि दर्शयित्वा परीक्षार्थिनः केन्द्रेष्वन्तःप्रवेशं लप्स्यन्ते ।

२६—परीक्षाणां निर्धारितग्रन्थनामानीहैव पुस्तकेऽग्रे निर्दिष्टानि सन्ति ।

ईश्वरीदत्तदौर्गादत्तिः,
विहारोत्कलसंस्कृतसमितिकार्य सम्पादकः ।

विशेषः—आचार्यपरीक्षाया द्वौभागौ सञ्जातौ साम्प्रतमतः प्रथमभागपरीक्षाया उपाधिः 'शास्त्री' इति दीयते । प्रत्येकभागो वर्षद्वयेन सम्पन्नो भवतीति सम्पादकः । २४-१०-३६

आयुर्वेदीयामध्यमापरीक्षा

		लभ्याङ्कः
प्रथमंपत्रम् —	१—भावप्रकाशस्य निघण्टुभागस्तत्परिभाषा प्रकरणसहितः ।	६०
	२—रसेन्द्रसारसङ्ग्रहः ।	४०
द्वितीयम् ,,	१—भावप्रकाशस्यादितो गर्भप्रकरणान्तोभागः	६०
	२—भावप्रकाशस्य दिनचर्यारात्रिचर्यर्तुचर्यामिश्रवर्गाः	४०
तृतीयम् ,,	१—माधवनिदानम् (पी॰ के॰ सेन प्रकाशितम्)	७०
	२—आयुर्वेद विज्ञानस्य यकृद्धृदयोरस्तोयौपसर्गिकोपदेश विषोपदंश भोगोपदंशागन्तुज पक्षाघात भदोद्वेग शैशवसन्यास योषापस्मार तत्वोन्माद स्नायुशूल ताण्डवक्लोम वृक्कौजो मेहौपसर्गिकमेहशीर्षाम्बु मस्तिष्कवेपन मस्तिष्कचयापचपांशुघात वाधकयोनि कण्डूयोन्याक्षेप ज्वराम्वण्डाधार रोगाणां निदानांशाः ।	२०
	३—भावप्रकाशतो नाडीनेत्रसूत्रपुरीष जिह्वापरीक्षाः	१०
चतुर्थकम् ,,	१—चक्रदत्तः सम्पूर्णः	८०
	२—आयुर्वेदविज्ञानस्य यकृद्धृदयोरस्तोयादि रोगाणां चिकित्सांशः ।	२०
पञ्चमम् ,,	१—मनुस्मृतेर्द्वितीयाध्यायमात्रम्	३५
(सर्वसाधारणम्)	२—श्रुतबोधः	१५
	मातृभाषा	५०
	{ १— हिन्दी—तुलसीदास कृत रामायणस्य सुन्दरकाण्डम्	
	{ २—हिन्दी कौमुदी, व्याकरणचन्द्रोदयो वा	

अथवा

लभ्याङ्कः

पञ्चमम् —उत्कलीया— { १—सीतावनवासः नन्दकिशोरबलेन कृतः
(सर्वसाधारणम्) { २—व्याकरणं चन्द्रमोहन महाराणा कृतम्

अथवा

वंगीयाः— { १—सीतावनश्रास ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृतः
{ २—व्याकरणं लोहाराम कृतम्

षष्ठम् — अनुवादः (मातृभाषातः संस्कृतेततश्च मातृभाषायाम्) ७०
संस्कृते प्रबन्ध रचना ३०

उपाधिपरीच्चा

प्रथमम् —	(१) सुश्रुतसंहितायाः सूत्रनिदान शारीरस्थानानि	१००
	(२) सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्साकल्पोत्तर तन्त्राणि	१००
द्वितीयम्—	(१) अष्टाङ्गहृदयस्य सूत्रशारीरनिदानस्थानानि	१००
	(२) अष्टाङ्गहृदयस्य चिकित्साकल्पोत्तर तन्त्राणि	१००
तृतीयम् —	(१) चरकसंहिताया आदितइन्द्रियस्थानान्तो भागः	१००
	(२) चरकसंहितायाश्चिकित्सास्थानात्समाप्तिं यावत्	१००
चतुर्थम् —	(१) रसरत्नसमुच्चयः	१००
	(२) मौखिकपरीक्षा व्यावहारिकी	१००

१—औषधपरिचयः।
२—औषधनिर्माणम्।
३—शारीरपरिचयः।
४—रोगपरीक्षा।

* * *

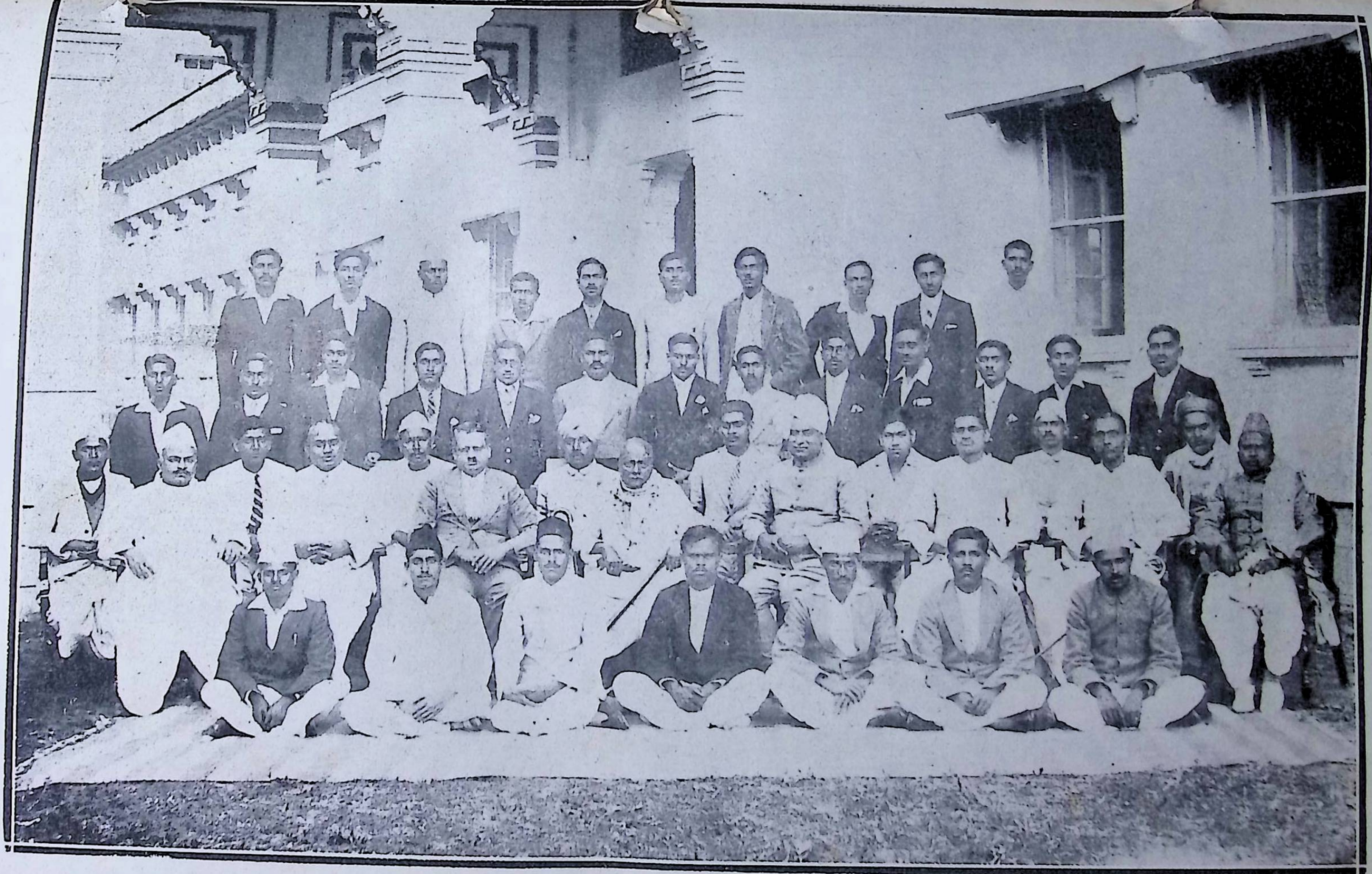

Benaras Hindu University Ayurvedic College Staff & Final year Students (II Batch) 1935.

CHAIRS 1st row:—Pt. J. S. Bajpeyi, Capt. G. S K. Iyer, Dr. M. S. Verma, Principal D. D. Kaviraj, K. P. Singha, Dr. B G. Ghaneker, Pt S. N. Shashtri, Pt. P. D. Upadhyaya,

" 2nd row:—H. D. Dube, Dr. K. N. Misra, prof. R. S. Singh, Pt. R. D. Misra, Dr. P. N. Misra, Dr. V. N. Pathak, Prof. B. Singh, Prof. D. A. Kulkarni,

Benares Hindu University.
Prospectus of studies for Examinations of the College of Ayurveda.
1935

ADMISSION.

The College session commences on the 10th of July. Admission to the 1st and 2nd year classes begins from the 1st of July. Applications for admission should be made to the Principal in the form precribed for the purpose, a copy of which can be obtained from the office at the time of seeking admission.

A student coming from another University shall be required to produce the following *Certificates for enrolments.*

1. A Leaving or Transfer certificate from the school or college testifying to the satisfactory conduct of the student and mentioning the highest examination he has passed.

2. A certified copy of all the entries against his name in the enrolment register of his University, if such a copy is obtainable.

3. The Migration Certificate in the case of students who come from other Universities. Those who have passed the examination conducted by a duly constituted Board of High School and Intermediate Education or the Admission Examination, Benares Hindu University, or the School Leaving Certificate Examination of Madras are not required to produce migration certificates.

4. A certificate of good conduct from a gazetted officer or from a respectable person will be produced by those who have passed the examination as private candidates.

N. B.—Students must produce the necessary certificates for enrolment either at the time of seeking admission or within *one month* from the date of their admission.

Equivalent Examinations.

1. The School Leaving Examination of Ajmer-Merwara.
2. The Senior Oxford Local Examination.
3. The Senior Cambridge Local Examination.
4. The Final Examination prescribed for European Schools.
5. The Diploma Examination of a Chief's College.

6. The Secondary School Leaving Certificate Examination of the Madras Presidency provided that the candidate has fulfilled the conditions regarded as necessary for admission to college classes by the University of Madras.

7. The School Final Examination of the North-Western Frontier Province provided that the papers of the candidate have been classified under Article 151 of the Educational Code of that Province as (a) Excellent (b) Satisfactory in one year in any complete group of subjects required for the Admission Examination of the Benares Hindu University.

8. The School Leaving Certificate Examination of Bombay provided that the candidate has fulfilled all the conditions demanded by the Bombay University for purposes of Matriculation, that is that he has passed it in one and the same examination, in English, Additional Language, Arithmetic, Algebra, Geometry, and History and has produced a certificate from the Head Master of a registered school showing that he possesses a satisfactory knowledge of Geography and Vernacular (or optional English) and Elementary Science, according to the courses prescribed by the Board and has carried out satisfactorily the prescribed course in the latter subject.

9. The Entrance Examination of the Mysore University.

10. The School Leaving Certificate Examinatlon held in the States of Hyderabad, Mysore, Travancore, and Cochin provided the successful candidate has been declared eligible for admission to College classes by the University of Madras.

11. The Matriculation Examination of the Punjab or the Delhi University.

N. B.—Any other Examinations equivalent to the Admission Examination of the Benares Hindu University which will be added to the list of the equivalent examinations from time to time as accepted by the proper authorities.

It is compulsory for the students to pass in Sanskrit as one of their optional subject at the aforesaid examinations.

ATHELETICS.

The Atheletic department is in charge of a special Association, which looks after the various games and affords all facilities to students for taking active part in them. The games usually played are Football, Hockey, Cricket, Lawn-Tennis, and Volleyball. Swimming classes are organised every year for the benefit of swimmers. Instruction in Gymnastic and arts of self defence is given to the students of the University attending the gymnasium.

Student seeking admissian to the club have to pass a swimming test. No student will be allowed to join the Swimming and Boating Club *except with the permission of his Guardian.*

TUITION AND OTHER FEES.

The students of the Ayurvedic College shall have to pay the following fees for ten months in the year.

1. Tuition Fees Rs. 4 for ten months in the year, at persent.
2. Game Fee Annas Four per month for ten months in the year.
3. Boarder's Union Fee Rs. 2 for the whole session.
4. University Enrolment Fee Rs. 2 at the time of admission.
5. Admission Fee Rs. 2.
6. Library Fee—Every student has to deposit Library Caution money of Rs. 5 which will be refunded on his leaving the College.
7. Hostel Rent—Re. 1 p. m.
8. Light charge—Re. 1 p. m.

N. B.—The rates of tuition fees and other fees noted above are liable to revision at the end of the academic year. Any other additional fees will be levied from the students after they are sanctioned by the Council of the Benares Hindu University.

Free Studentships.

1. Fifteen percent of the total number of the students are granted whole or half-free studentships, which may be cancelled on the ground of misconduct, irregularity in attendance, or unsatisfactory progress.

2. Application for full or half-free studentships should be made to the Principal before the 20th of July. A list of the students whose applications are granted will be published as early as practicable towards the end of the month.

3. A free or half-free-studentship will not be granted as a rule to scholarship-holders.

4. Every year in July a list showing the names and classes of the students whose free-studentships and half-freestudentships are renewed is published.

5. Free or half-free students, so announced, should take particular care to pay the other fees of the college.

N. B.—There is no exemption from any fee except the tuition fee.

Students who desire that their names should be removed from the College Registers should apply to the Principal in writing stating therein the cause of such removal. Otherwise they will be liable to pay the tuition fees till the end of the session in which they were admitted.

Students as a rule are to deposit their tuition fees along with other fees, such as Games etc., on or before the 20th of each month. Defaulters shall have to pay a fine of four annas for late payment between the 20th and the 26th (both inclusive) and eight annas between the 27th and the end of the month. On the first of the month following that for which the fees have not been paid the names of the defaulters will be removed from the rolls, and they will not be re-admitted except by a special order of the Principal on payment of arrears of fees with such additional fine and re-admission fee as the Principal may direct.

Scholarships.

At present there are the following scholarships (Special) for the Ayurvedic students. Application for these scholarships should be made to the Pro-Vice-Chancellor at the end of July. The granting of these scholarships will be subject to the recommendation of the scholarship Committee appointed by the Syndicate.

1. Thakur Dutta Sharma Scholarship. Rs. 12 p. m (10 months).
2. Bidani Scholarship Rs. 10 (10 months).
3. Pandit Harbhajan Scholarship Rs. 12 (10 months).
4. Pandit Hari Prasad Dwivedi's Rs. 8 p. m.
5. Lady Willinker's Rs. 10 p. m.
6. Pandit Tulsi Ram Pathak Rs. 6-6
7. Pandit Govind Ramji Vaidya's Rs. 6
8. Pandit Yajna Dutta Bhola Dutta 2 scholarships of Rs. 10 each.

Rules of Discipline.

1. All students belonging to a constituent college of the University shall be under the disciplinary control of the Principal of the college. The discipline of students not belonging to any constituent college and of all students while outside the college shall be under the control of the Pro-Vice-Chancellor.

2. A Professor or Assistant Professor may for sufficient cause punish the misconduct of a student in his class-room by a fine not exceeding one rupee, or cancellation of the day's attendance in the subject, or suspension from his class for a period not exceeding three days, provided that the punishment in each case is communicated to the Principal. Cases requiring more severe punishment shall be reported to the Principal for necessary action.

3. In the absence of the Principal from the college, all his powers with regard to discipline will be exercised by the members of the staff in charge for the time being.

4. Punishment for irregularity in attendance, presistent idleness, misconduct or for breach of discipline may be, according to the nature of the case, a warning, fine, suspension from membership of the college for a period not exceeding one month, or recommendation to the University for expulsion from the college for the academical year, or detention from being sent up for the examination or for rustication.

5. In case of serious misconduct or habitual idleness the punishment may be accompanied by the entry of the offender's name in the Conduct book. When the name of a student has been entered thrice in the Conduct book, he shall be liable to expulsion from the college.

6. A student desiring leave of absence must apply to the Principal. For absence without leave he will be liable to a fine of four annas a day and if the period of such absence exceed a fortnight his name may be struck off.

7. All cases of grave misconduct or persistent idleness will also be reported to the parent or guardian concerned.

8. Subsidiary rules of discipline may be framed by the Principal of a college for the proper maintinance of discipline in the institution.

9. Any question of discipline not covered by the regulations of Chapter 12 and the above rules, shall be dealt with by the Pro-Vice-Chancellor.

10. Students who have absented themselves without permission from class examinations will not be entitled to a certificate of attendance in the class.

11. Students who do not return to the University punctually at the beginning of the session or after vacations, are liable to be fixed under Rule 6 or to be refused permission to attend courses of instruction. In case of illness, or other unavoidable cause, a student must without loss of time notify it to the Principal.

12. No student who has suffered from any infectious disease shall be allowed to attend his class without a medical certificate stating that he is free from infection.

13. Students are required to keep the Principal informed of their addresses. Any alteration of address must be communicated without delay.

14. A student expelled for idleness or misconduct shall forfeit all fees and privileges.

15. Students must appear at periodical examinations and if their progress is found unsatisfactory, they will be liable to be refused admission to the higher class or to the University Examination as the case may be, or they may be required to repeat their courses of study before appearing for the University Examination.

16. Breaches of hostel regulations shall be dealt with in accordance with the rules laid down by the Syndicate for the purpose from time to time.

17. Breaches of college regulations shall be dealt with by the Principal.

18. Any student of the University, whether resident or non-resident, who is guilty of misbehaviour or improper conduct, anywhere outside his college or hostel, shall be dealt with by the Pro-Vice-Chancellor.

19. All breaches of discipline involving expulsion whether from hostel or college shall be reported forthwith to the Pro-Vice-Chancellor.

20. Every officer of the University and every member of the teaching staff shall have the power of demanding from a student of the University his name and that of the college to which he belongs both in and outside the precincts of the University, and the student must comply with the demand. Failure to do so will make the student liable to such punishment as the Pro-Vice-Chancellor may determine.

21. As long as a student's name remains on the college roll, he shall be amenable to the discipline of the University authorities whereever he may be.

22. It shall be competent to the Syndicate to lay down special subsidiary rules for the enforcement of discipline in the University.

The Faculty of Medicine and Surgery (Ayurveda) Regulations.

1. The Faculty of Medicine and Surgery (Ayurveda) shall, so far as funds permit, consider and devise such measures as it may from time to time deem necessary for :—

(a) The promotion of the scientific study of and researches in Ayurveda and the publication of important works connected therewith;

(b) the investigation of the properties of medicinal herbs and minerals and the manufacture of Ayurvedic medicines;

(c) the correlation of Ayurveda with other systems of medicine, and,

(d) the education and examination of students in Ayurveda.

2. No candidate shall be admitted to the degree of Ayurvedacharya (**आयुर्वेदाचार्य**) unless he shall have attended the prescribed course of studies which shall cover a period of six years after passing the examination qualifying him for admission to the Faculty of Ayurveda.

3. No candidate shall be admitted to a course of study in the Faculty of Ayurveda unless he has passed.

- (i) the Admission Examination of the University with Sanskrit, or
- (ii) the Praveshika (प्रवेशिका) Examination of the University with English as an optional subject provided that a student who has passed the Praveshika Examination of the University without taking up English as an optional subject may be admitted on the condition that he will have to pass a preliminary examination in English within *nine* months of his admission.
- (iii) the Matriculation or an equivalent examination with Samskrit of any Indian University established by an act of the Legislature or a duly constituted Board.
- (iv) the Madhyama Examination of the Government Samskrit College, Benares, the preliminary examination for the Oriental Title of Shiromani of the Madras University, the Visharad Examination of the Punjab University or the Madhyama Examination conducted under the authority of the Government of Bihar and Orissa, or an equivalent examination of some other institution recognised by the Syndicate of the University, provided he passes a preliminary examination in English within *nine* months of his admission.

4. A student who has passed the Intermediate Examination of this University or of any other University, established by an act of Legislature in British India or of any other University or Board recognised by this University, with Physics, Chemistry, Zoology and Botany, may be admitted to the second years course, provided that, if he did not take up Samskrit as an optional subject either at the Matriculation or the Instermediate Examination, he has passed the Praveshika, Admission or an equivalent examination in Samskrit. Such a student shall be exempted from the First Professional Examination. But he shall have to attend a course of lectures on स्वस्थवृत्त (Hygiene) and appear at an examination in it, before he is allowed to sit for the Second Professional Exmination.

5. The First Professional Examination shall be held in स्वस्थवृत्त (Hygiene) रसायनशास्त्र (Chemistry), भौतिक विज्ञान (Physics), जन्तुशास्त्र (Zoology), and वनस्पतिशास्त्र (Botany).

The presenting themselves for the examination candidate shall produce evidence of—

(i) having completed the first year of the prescribed course.
(ii) having completed the course of practical classes.

6. The Second Professional Examination shall be held in शरीर-शास्त्र (Anatomy), शरीरकार्य-विज्ञान (Physiology), द्रव्यगुणशास्त्र (Materia Medica) and भैषज्य-कल्पना (Pharmacy).

Before presenting themselves for the examination, candidates must produce evidence of—

(i) having passed the First Professional Examination except when exempted under Regulation 4.
(ii) having completed the third year of their studies in the Faculty :
(iii) having completed a prescribed course in dissection ;
(iv) having acquired proficiency in—
    (a) the identification of common indigenous drugs.
    (b) the preparation of common pharmaceutical preparations used in Ayurveda.

7. The Third and final Professional Examination shall be held in—

रोग विज्ञान और चिकित्सा	Diagnosis and treatment of diseases.
शल्यतन्त्र	Surgery.
विकृति-विज्ञान	Pathology.
प्रसूति-शास्त्र और स्त्री-रोग	Obstetrics and Gynaecology.
जीवाणु शास्त्र	Bacteriology.
व्यवहारायुर्वेद	Medical Jurisprudence.
अगद तन्त्र	Toxicology.
कौमारभृत्य	Diseases of children.
मानसरोग	Mental Diseases.

The examination will be held in two Parts, A and B :—Part A will include :—

(i) प्रसूति-शास्त्र, स्त्री-रोग और कौमारभृत्य Obstetrics, Gynaecology and Diseases of Children.
(ii) व्यवहारायुर्वेद, अगद-तन्त्र Medical Jurisprudence and Toxicology.
(iii) मानसरोग Mental diseases.

and shall be held at the end of the fifth year.

Before appearing for this examination, candidates shall have to produce evidence of—

(i) having passed the Second Professional Examination.
(ii) having attended the complete course of lectures and practical classes according to the curriculum and

(iii) having devoted a part of their time to clinical studies after passing the Second Professional Examination.

Part B will include :—

(i) रोगविज्ञान और चिकित्सा–Diagnosis and treatment of diseases.
(ii) शल्यतन्त्र Surgery.
(iii) विकृतिविज्ञान Pathology.

and shall be held at the end of the VI year.

Candidate who appear at the examination shall produce evidence of—

(i) having passed the Third Professional Examination, Part A.

(ii) having completed the course of studies prescribed by the University.

(iii) having received the prescribed course of instruction in the following subjects :—

(1) Tuberculosis राजयक्ष्मा
(2) Infectious diseases, संक्रामक रोग
(3) Eye diseases नेत्ररोग
(4) Clinical Medicine.
(5) Clinical Surgery.
(6) Operative Surgery.
(7) Anasthesia.

(iv) of having—

(1) attended as clinical clerk in the medical work for six months.
(2) attend as a surgical dresser in surgical wards for six months.
(3) attended as a clinical clerk in opthalmic wards for three months,
(4) attended post-mortem clinical for two years,
(5) attended our-door patients department for six months,
(6) attended the tuberculosis ward for three months.

8. A student who fails in one of the subjects in the 2nd or 3rd (Part A or B) Professional Examination, may be premitted to re-appear only in that subject in which he has failed, provided he obtained no less than 25 per cent of the marks in the subject in which he failed.

A student who does not fulfil this condition may be permitted to appear in all the subjects of the examination.

9, Before being re-admitted in the examination in one or more subjects, a candidate must produce evidence of having pursued such further courses of study as may have been prescribed by the Dean of the Faculty.

27

10. A candidate who fails in two of the subjects in the 3rd Professional (Part A or B), may be permitted to re-appear in those two subjects only in one of the succeeding examinations provided he obtained not less than 33 per cent of the marks in the aggregate of the two subjects.

The First Professional Examination.

1. It has been decided that the subjects fixed for the First Professional Examination in Medicine and Surgery (Ayurveda) will group in the following manner :—

GROUP I	Maximum marks.	Minimum marks in any individual paper.	Minimum pass marks for the Group.
Chemistry, Theory paper	100	30%	40%
Physics Do.	100	30%	
GROUP II			
Chemistry Practical test	100	40%	
Physics Do.	100	40%	

1. Botany and Zoology are treated as forming one group.

2. 40% marks on aggregate are considered as pass marks in both Botany and Zoology theory papers, keeping 30 per cent marks as the minimum pass marks in each paper separately.

3. 40 per cent marks are taken as pass marks in the practical of both Botany and Zoology separately.

Arrangement of Papers and Practicals For The First Professional Examination.

		Time	Maximum marks.	Maximum pass marks.	
Chemistry.	One paper	3 hours.	100	30	Group I
	Practical test		,,	40	
Physics.	One paper	,,	,,	30	
	Practical test		,,	40	
Zoology.	One paper	,,	,,	30	Group II
	Practical test		,,	40	
Botany.	One paper	,,	,,	30	
	Practical test		,,	40	
Hygiene.	Paper I.	,,	,,	40	
	,, II.	,,	,,	40	
	Oral & Practical test	,,	,,	50	

Not less than ten lectures in addition to the courses prescribed above will be delivered in general Biology.

SYLLABUS.

CHEMISTRY.

रसायन में तीन घण्टे का एक प्रश्न पत्र होगा और क्रियात्मक रसायन में भी एक परीक्षा होगी।

जड़पदार्थ (matter) जड़पदार्थ की तीन अवस्थाएँ (1) उनके गुण, तथा (2) पदार्थों पर ताप का प्रभाव।

विलेयता (solubility), निःस्यन्दन (filtration), क्रिस्टलीकरण (crystallisation), स्रवण (distillation) और उद्धनन (sublimation). उपर्युक्त गुणों का अध्ययन निम्न पदार्थों के साथ होगाः—

Hydrochloric acid, magnesium, Bismuth and Antimony.

नमक, शोरा, खड़िया, तूतिया, कसीस, गन्धक, बालू, नौसादर, फिटकरी, कपूर, लाख, शर्करा, तैल।

वायु का अध्ययन, पदार्थों पर वायु की क्रिया, पदार्थों का जलना और उनमें मोरचा लगना।

जल का सङ्गठन, पदार्थों पर जल की क्रिया।

मौलिक और यौगिक, मिश्रण, रासायनिक संयोग के नियम।

निम्न तत्वों और यौगिकों का अध्ययन।

औक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, क्लोरीन, गन्धक, कार्बन डाइआक्साइड, अमोनिया, नाइट्रिक अम्ल, गन्धक के आक्साइड, गन्धकाम्ल, लोह, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, वङ्ग, पारद, सीसा, आर्सनिक, सोडियम और पोटासियम और इनके आक्साइड, सल्फाइड, क्लोराइड, सल्फेट, नाइट्रेट और कार्बनेट।

निम्न पदार्थों के सम्बन्ध में अङ्गारिक रसायन के सामान्य सिद्धान्त से परिचयः—

पाराफीन, अलकोहल, ऐसिटिक अम्ल, शिरका, यूरिया, तैल, चर्बी, शर्करा और स्टार्च।

फरमेन्टेशन और उससे अलकोहल और ऐसिटिक अम्ल का प्राप्त करना और चर्बी में पदार्थों की विलेयता, (Solubilities of substances in oils and fats).

क्रियात्मक रसायन।

विलेयता द्वारा मिश्रणों के अवयवों का पृथक्करण

क्रिस्टलीकरण के द्वारा लवणों का शोधन

निम्न लवणों में धातुओं और मूलकों की पहचान।

स्वर्ण, चाँदी, सीसा, पारद, ताम्र, विसथ, आर्सनिक, अन्टीमनी, वङ्ग, लोह, आलुमिनियम, यशद, कालसियम, सोडियम, पोटासियम, मैगनीसियम, और अमोनियम के सल्फाइड, क्लोराइड, सल्फेट, नाइट्रेट और कार्बनेट, Manganese and oxide etc.

भौतिक विज्ञान

इस विषय में तीन घण्टे का एक प्रश्नपत्र होगा और एक प्रयोगात्मक परीक्षा भी होगी।

साधारण—लम्बाई, क्षेत्रफल, आयतन तौल और समय के एकांक, जड़पदार्थ सम्बन्धी सरल बातें, पदार्थ की तीन अवस्थायें, अणु तथा परमाणु, वेग, वेगवृद्धि, तथा बल का प्रारम्भिकज्ञान, साम्य, जाड्य और भार, गुरुत्वाकर्षण, तुला, गुरुत्वकेन्द्र शक्ति और उसके भिन्न-भिन्न रूप, द्रवों का दाव, अर्कमेदिस का सिद्धान्त, तैरना, घनत्व, आपेक्षिक तथा विशिष्ट घनत्व, घनत्व नापने की रीति, वायु का दाब, बैरोमीटर, बायल का नियम, सरल प्रकार के जल तथा वायु पम्प, साइफन, अभिसारकादाब ।

ताप—ताप तथा तापक्रम, ताप का प्रभाव, प्रसार, अवस्था, परिवर्तन-तापमापक, शरीर-तापमापक, ताप की मात्रा, आपेक्षिक और गुप्त ताप, द्रवणांक तथा क्वथनांक, वाष्पीभवन, द्रवीभवन तथा स्रावण, बर्फ जमाना, वाष्पदाब और आर्द्रता-मापक, मेघ, वर्षा, ओस, कुहरा इत्यादि, ताप का चालन, वाहन और विकिरण, ताप से यांत्रिक शक्ति की उत्पत्ति।

प्रकाश—प्रकाश का सरल रेखागमन, छाया, समतल तथा गोलीय दर्पणों से प्रकाश का परिवर्तन, वास्तविक तथा काल्पनिक प्रतिबिम्ब, त्रिपार्श्व और लेंसों से प्रकाश का वर्तन, वर्तनांक प्रकाश-सम्बन्धी साधारण यंत्र तथा दूरबीन, सूक्ष्मदर्शक, फोटो का केमरा, चित्रदर्शन लालटेन, नेत्र दृष्टि के दोष और उनको दूर करने का उपाय, वर्णपट तथा नील-लोहितोत्तर प्रकाश ।

शब्द—शब्द की उत्पत्ति, कम्पन, तीव्रता, सुर तथा रूप, वायु में शब्द का गमन और वेग, तरङ्ग दैर्ध्य, मनुष्य का कान, अनुवाद, साधारण वाद्यों का अत्यन्त सामान्य ज्ञान ।

चुम्बकत्व—प्राकृतिक तथा कृत्रिम चुम्बक, चुम्बकीय ध्रुव, चुम्बकीय बल, बलरेखायें, दिक्सूचक पृथ्वी का चुम्बकत्व, उपपादन ।

विद्युत्—वर्षण से विद्युत् की उत्पत्ति, विद्युत् आवेश के प्रकार, वैद्युतबल, चालक तथा पृथग्न्यासक, वैद्युतउपपादन, विद्युद्दर्शक, घर्षण विद्युत यन्त्र, तड़ित और तड़िच्चालक ।

विद्युद्-धारा, वोल्टीय सेल, डेनियल, लैकलांश तथा संचायक सेल, विद्युद्वह्नि का बल, विद्युद्धारा का चुम्बकीय प्रभाव, धारामापक विद्युत चुम्बक, तारप्रेषण तथा टेलीफोन, बिजली की घण्टी, प्रतिरोध, चुम्बकीय क्षेत्र में धारायुक्त चालक का गमन, अम्पीयर मापक तथा वोल्ट मापक विद्युच्चुम्बकीय उपपादन, उपपादनवेष्टन, डायनमो तथा मोटर के मूल सिद्धान्त, विद्युद्धारा से ताप तथा प्रकाश की उत्पत्ति, विद्युद्विश्लेषण तथा मुलम्मा करना, एक्सीकरण और उसका उपयोग, रेडियम ।

नोट—जहाँ तक हो सके इस विषय में गणित का प्रयोग कम किया जाय ।

प्रयोगात्मक कार्य—प्रत्येक विद्यार्थी को निम्नलिखित प्रयोग करना चाहियेः—

१. लम्बाई का नाप
२. आयतन का नाप
३ तुला का प्रयोग
४. घनपदार्थों के घनत्व का नाप (अर्कमीदिस सिद्धान्त द्वारा)
५. द्रव पदार्थों के घनत्व का नाप—घन व बोतल तथा द्रवघनत्वमापक के द्वारा
६. सायफन का उपयोग ताप से
७. घनों का प्रसार

८. ताप से द्रवों का प्रसार
९. द्रवणांक का नाप
१०. क्वथनांक का नाप
११. प्रकाश परिवर्तन के नियम की परीक्षा
१२. प्रकाश वर्तन के नियम की परीक्षा
१३. नतोदर दर्पण के नाभ्यन्तर का नाप
१४. उन्नतोदर लेंस
१५. चुम्बक बनाना
१६. विद्युद्दर्शन के द्वारा कुछ सरल प्रयोग
१७. विद्युद्धारा का चुम्बकीय प्रभाव
१८. विद्युद्धारा से ताप की उत्पत्ति

BOTANY.

I. Distinction between living and non-living matter; the distinctive properties of protoplasm; distinctions between animal and plants.

II. A general outline of the study of living plant machinery with a view to understand the way in which it is constructed and the various life-phenomena it exhibits, including :—

(*a*) An elementary knowledge of the external structure of its various parts, such as, Root, Stem, Leaf, Inflorescence, Flower, Ovule, Fruit and Seed. The differentiation of development of these parts from the seed during germination.

(*b*) The structure of a typical young plant cell; process of histological differentiation. Different kinds of tissues and tissue-systems. Internal structure of stem, root, and leaf of Angiosperms.

(*c*) An elementary knowledge of the functions carried on by the living plant including root-absorption, transpiration, carbon-assimilation, respiration and growth. A general survey of the structure of plant body as adapted to its functions.

(*d*) An elementary knowledge of the physiology of reproduction, the Sexual and Asexual modes of reproduction; pollination of fertilisation and the agencies by which these are secured.

Methods of propagation in space by dispersal of fruits and seeds.

III. Outline of the principles of classification of Angiosperms into principal groups with a knowledge of the distinguishing characters of medicinal plants (with special reference to those used in Ayurveda) of the following families :—

Ranubculauceæ, Papaveraceæ, Cruciferæ, Rutaceæ, Leguminosæ, Rubiaceæ, Sciophulariaceæ, Labiatæ, Compositæ, Couphortraceæ, Liliaceæ, and Graminal.

IV. An elementary knowledge of the theory of evolution and general principles of heridity and Mendelism.

PRACTICAL WORK

Candidates should be able to describe the various parts of the plant body fully and correctly and identify prepared sections of important parts and tissues under the microscope. They should also acquire sufficient practice to identify the plants of the above families and place them in their proper position.

They should be able to explain simple experiments on plant physiology which are set up. They should also know the methods of preservation of specimens.

ZOOLOGY

Definition and scope of Zoology. Nature of Protoplasm. Structure of the cell. Cell division and gametogenesis ; Conjugation and Fertilisation. Structure and functions of animal tissues. Living and non-living. Characteristics of the living creatures. From unicellular to multicellular. Is organism more than mechanism ? Performation versus Epigenesis. Spontaneous creation. The web of life. The balance of life. Struggle for existence. Survival of the fittest. Nature and nurture. Organism as a historic being. The continuity of the germ-plasm. Healthy living in relation to healthy inheritance. Modern interpretation of instincts.

Frog.

The anatomy and osteology of the frog. The elementary physiology of the various organs.

Main features of the life history of frog.

Protozoa :

The structure and life history of Amœba. Entamœba coli Entamœba histolytica and Malatial Parasite—Omitting the details of the life-history.

General classification of the animal kingdom with the characteristics of the principal Phyla. Characteristics of Mammalia.

Practical :—

The candidates will be required to dissect and describe the animals named in the Syllabus.

N. B.—Candidates will be required to keep a record of all practical work done in the Library in Separate note books for Physics, Chemistry, Botany and Zoology, which will be examined by University Examiners.

Hygiene

1. Water—uses—sources—properties—impurities—diseases due to impurities—purification.

2. Air—composition—impurities—impurities due to combustion—disease due to impurities—effects of air vitiated by respiration.

3. Ventilation—internal and external—amount of air required for healthy, sick, animals and for combustion--system of ventilation—natural purification of air—determination of the amount of cubic space—determination of the efficiency of ventilation in an inhabited room.

4. Industrial hygiene and occupational diseases—offensive trade—effects of offensive trades on health.

5. Soil—features influencing climate and health—varieties of soil—diseases arising from soil.

6. Houses—construction—site for houses, cowsheds and stables.

7. Hospitals and sanitoriums—general idia about hygienic conditions and requirements.

8. School hygiene—general idia about school hygiene.

9. Climatology and Meteorology—classification—climate in relation to health—effects or temperature—atmospheric pressure—rain fall—humidity.

10. Food—classification—quantity required—relative value of food—cooking—diseases caused by faulty dieting vitamines—standard diet—food—according to age and physical and mental work.

11. Animal foods—meat—eggs—fish—milk—preparations of milk.

12. Vegetable foods—cereals—pulses—roots and tubers—green vegetables—fruits and nut—sugars.

13. Beverages and condiments—intoxicating drugs like tobacco bhang, opium.

14. Disposal of sewage—scavenging—conservancy system—collection and disposal of night soils—trenching grounds—incineration of night soil—water carriage system—house drainage—sewers.

15. Disposal of sewage—cesspool system—disposal into sea or river—chemical treatment—general principals of biological treatment.

16. Disposal of dead—burning and burial.

17. Personal Hygiene.

18. Infection—bacteria—modes of infection—insects—(mosquitos, sand-flies, bed-bugs etc.) as media.

19. Restraint of infection—notification—insolation—quarantine—inoculation—disinfection.

20. Infectious diseases—malaria--kalaazar--yellow fever--elephantiasis--plague--cholera--dysentery--typhoid--tuberculosis--relapsing fever--leprosy--rabies—small pox--chiken pox—measles--whooping cough--influenza...venereal diseases.

There will be a written Paper of 100 marks and in addition an oral examination of 50 marks.

स्वस्थवृत्त विषयाः

स्वास्थ्यलक्षणम् , निन्दितानिन्दितपुरुषाः

शरीरोपस्तम्भाः

आहारः आहारविधिनिषेधाः, पथ्यापथ्यविधयः
निद्रानियमाः
ब्रह्मचर्यम् , वीर्यरक्षणोपायः, व्यवायनियमाः,
ऋतुमतीनियमाः, विवाहवयः इत्यादि ।

दिनचर्या, ऋतुचर्या, वेगविधारणे दोषाः सद्वृत्तम्,
पानीय जलविचारः, जलदूषणहेतवः, तत्प्रतिषेधः जलशोधनविधिश्च
हिताहितद्रव्याणि, विषदुष्टमार्गोदकादि ज्ञानम् ,
मलमूत्रसंकरादीनां दूरीकरणविधयः,
वासस्थानविचारः, वायुसंचारप्रयोजनादि,
जनपदोद्ध्वंसकारणानि, संक्रामकरोगाः संक्रमणप्रकारः,
संक्रमणप्रतिषेधोपायाश्च, देशविचारः, प्रकृतिविचारः,
मादकद्रव्योपयोगदोषाश्च ।

विषयेऽस्मिन् भविष्यति प्रश्नपत्रमेकन्तत्र च पूर्णाङ्काः १००, मौखिकी चैका परीक्षा तत्र च पूर्णाङ्काः ५० ॥

निम्नलिखित पुस्तकें पाश्चात्य और प्राच्य स्वस्थवृत्त के पाठ्य के लिये स्वीकृत की गई हैं ।

१—स्वास्थ्यविज्ञान (पाश्चात्य) [डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा लिखित]
२—स्वस्थवृत्त समुच्चय (प्राच्य) [पं० राजेश्वरदत्त मिश्र लिखित]

The Second Professional Examination.

शारीरम् ।

भविष्यति चात्र प्रश्नपत्रद्वयम् । एकं शरीरनिर्माणमश्रित्यापरञ्च शरीरक्रियाविज्ञानम् । प्रतिपत्रम्पूर्णाङ्काः शतमुत्तरसमयश्च घण्टात्रयम् ।

शरीर रचना विज्ञानम् (Anatomy)

शुद्धाशुद्धशुक्रार्तवलक्षणानि, शरीरनिर्मापकाः प्रकृत्यादयो भावाश्च ।
वर्णोत्पत्तिकारणानि ।

सोपपत्तिकपितृजमातृजरसजात्मजादयो भावाः ।
अङ्गानि, प्रत्यङ्गानि च ।
त्वचः, कलाः, अपरा च ।
यकृत्प्लीहान्त्रगुदबस्तिवृक्कहृदयफुफ्फुसगर्भाशयादयश्च ।
आशयाः, कण्डराः, जालानि, कूर्चाः, मांसरज्जवः, संघाताः, सीमन्ताः ।
स्नायवस्तद्भेदाश्च ।
अस्थीनि, तेषां संख्या, भेदाः, स्थानानि च ।
दन्ताः, केशाः, नखाश्च ।
सन्धयस्तेषाम्भेदाः, स्थानानि च ।
पेश्यस्तासाम्भेदाः, स्थानानि च ।
मर्माणि, तेषाम्भेदाः, स्थानानि मानञ्च ।
शिरास्तासां संख्या, भेदाः, अव्यध्याश्च शिराः ।
स्रोतांसि, तेषां मूलस्थानानि च ।
धमन्यस्तासां संख्या, भेदाः, अव्यध्याश्च शिराः ।
प्राणाः, प्राणायतनानि च ।
पार्थिवाद्यंशाः, शरीरावयवमानम् , उदकस्वेदरसरक्तादिमानञ्च ।
गर्भाज्जननपर्यन्तं गर्भस्वरूपविज्ञानञ्च ।

शरीरक्रियाविज्ञानम्

Physiology

वातादीनान्निरुक्तिः, तेषां स्थानानि, भेदाः, कर्माणि च । वृद्धानां क्षीणानाञ्च तेषां कर्माणि, सञ्चयप्रकोपप्रसरादयः, कोष्ठशाखादिगमनक्रिया, अग्निपित्तयोर्विवेचनञ्च ।
ओजोलक्षणम् , तस्य कर्माणि, तद्व्यापदश्च ।
अशिताद्यन्नपाकव्यवस्था, रसादिधातूनान्निर्वृत्तिप्रकारः, तेषां गुणाः वृद्धिप्रकारः कर्माणि च ।
मूत्रपुरीषस्वेदकर्माणि च ।
पुरुषस्थभावानां लोकस्थभावैः सामान्यम् ।
आभ्यन्तरो रोगमार्गो बाह्यो रोगमार्गश्च ।
गर्भोत्पत्तिकारणानि, तन्निर्वृत्तिप्रकारः, गर्भानुत्पत्तिहेतवः, गर्भवृत्तिः, तद्वृद्धिक्रमः, प्रत्यङ्गनिर्वृत्तिप्रकारश्च ।
वातिकादिप्रकृतिलिङ्गानि, सात्विकादिप्रकृतिलिङ्गानि च
स्रोतसां कार्याणि ।
शिराधमनीकार्याणि, हृदयकार्याणि च ।
सन्धिस्नाय्वादिकार्याणि च ।

PHYSIOLOGY.

There will be 2 papers in modern Physiology, each of 3 hours duration and each carrying 100 marks and also a practical carrying 200 marks. The syllabus of the subjects is as follows:—

जीव कोषाणु (cell)—भिन्न-भिन्न प्रकार के कोषाणु—आवरण कलाकोष (Epithelial cells)—प्रोटोप्लाज़्म् (Protoplasm), उसके गुण, संगठन, स्वभाव, भौतिक संगठन के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त, धातु विवरण (Tissues), संयोजक धातु, (Connective) सौत्रिक धातु, वसामय धातु स्थितिस्थापक धातु, (Elastic Tissue) लसीका धातु (Lymphoid).

अस्थि, तरुणास्थि व कारटिलेज – दन्त उसकी रचना—मांसपेशी-नाड़ी-उनका कार्य—पेशी तन्तु का रासायनिक संगठन उनके भौतिक गुण संकोच तथा विकाश-विद्युत् का प्रभाव—मृत्यूत्तर संकोच—

नाड़ियों का पेशियों के साथ संबंध और उनकी क्रिया। नाड़ियाँ—श्रेणीकरण कार्य, ध्वंस (Degeneration) और पुनरुत्पत्ति; नाड़ियों की संज्ञा, उसकी गति और दिशा-विद्युत् का प्रभाव।

रक्त-संस्थान—हृदय की रचना, रचना का कार्य के अनुकूल होना, हृतकार्यचक्र (Cardiac cycle) कपाटों का कार्य, हृदय का शब्द, हृदय की नाड़ियाँ—रक्त संवहन (Circulation of blood), धमनी, शिरा, केशिका, उनकी सूक्ष्म रचना—रक्त का मार्ग; रक्त की दाब (Blood pressure), गति, धमनी स्पंदन (Pulsation); रक्त की फुफ्फुस में शुद्धि।

श्वासोच्छ्वास संस्थान—श्वासनलिका तथा फुस्फुस की रचना; धमनी, शिरा तथा श्वास प्रणालिकाओं का आपस में सम्बन्ध; श्वासकर्म, नाड़ियों द्वारा नियंत्रण; श्वासकर्म के कारण, रासायनिक तथा भौतिक, श्वास सहायक पेशी; धातुओं में श्वास क्रिया, (Tissue Respiration), श्वासरोध (Apudea), श्वासकष्ट (Dyspnoea), कृत्रिम श्वास-क्रिया, (Artificial respiration), श्वास वायु का प्रवेश पथ-स्वरयन्त्र इत्यादि।

भोजन—वर्गीकरण-मौलिक अवयव, अतिभोजन व उपवास के परिणाम जीवनीय गण (Vitamines).

पाचक संस्थान—मुख, आमाशय, क्षुद्र तथा बृहद् अंत्र की रचना, यकृत, अग्न्याशय इत्यादि; भिन्न भिन्न पाचक रस उनकी क्रियायें, उद्रेचन, गुण, तथा संगठन; भोजन का शोषण, मल।

रक्त ज्ञान—रक्त का विश्लेषण, उसके भिन्न भिन्न अवयव, रुधिराणु का ज्ञान; श्वेताणुओं की भिन्न-भिन्न जातियाँ—रक्तद्रव (Plasma), सीरम; (Serum), प्रस्कंदन (Coagulation of blood), रोगाक्षमता (Immunity).

लसीका—ग्रंथियाँ तथा संवहन, कार्य, पायसनियाँ मूत्र प्रक्रिया—वृक्क का कार्य—मूत्र की रचना, उसके अवयव तथा उत्पत्ति।

नाड़ी मंडल—मस्तिष्क की रचना तथा कार्य, केन्द्र-उनके कार्य-उनका अन्वेषण लघु मस्तिष्क, सुषुम्नाशीर्षक उसका कार्य सुषुम्ना की रचना, उर्ध्व और अधोगामी तन्तुओं का प्रबन्ध, संवेदनिक और संचालक सूत्रों का प्रबन्ध—उनके मार्ग—स्वतंत्र नाड़ी मंडल।

विशेष ज्ञानेन्द्रियाँ—नेत्र के भिन्न भिन्न स्तर—उनकी सूक्ष्म रचना, छाया की उत्पत्ति दूर तथा समीप दृष्टि—वर्णविवेकाशक्ति (Colour blindness) के सिद्धान्त इत्यादि।

श्रवणेन्द्रिय—ध्वनि व शब्द की उत्पत्ति—कर्णपटह पर उसका प्रभाव, अन्तःकर्ण तक ध्वनि का मार्ग अन्तःकर्ण की रचना, इत्यादि ।

घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, जननसंस्थान इत्यादि ।

क्रियात्मक—सूक्ष्म रचना दर्शक नमूने की पहिचान, स्लाइड बनाना रञ्जन (Staining) सूक्ष्मदर्शकयन्त्र (Microscope) Sphygmomanometer, Manometers, Hacmoglobinometer, Haemocytometers इत्यादि का व्यवहार ।

ANATOMY.

There will be two papers in modern anatomy, each carrying 100 marks and of 3 hours duration each. The Syllabus of the subjects is as follows:—

अस्थि संस्थान (Osteology)—अस्थियों का वर्णन, पेशी सम्बन्ध इत्यादि । भिन्न भिन्न प्रकार की संधियाँ; उनकी रचना, शरीर की मुख्य मुख्य संधियों का वर्णन, स्नायु, संधिकोष इत्यादि ।

मांस संस्थान—पेशी उनका प्रभव अथवा उदय और निवेश; कण्डरा; मुख्य मुख्य पेशियों की स्थिति की व्याख्या; उनकी नाड़ियाँ और कर्म ।

रक्त संस्थान—हृदय की स्थिति; उसकी रचना इत्यादि, शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों को जानेवाली मुख्य मुख्य धमनी और शिरा; उनका मार्ग और समीपवर्ती अङ्गों से संबंध । रसायिनी और लसीका ग्रंथियों का संक्षिप्त वर्णन ।

स्वरयन्त्र, श्वासनलिका तथा उनकी शाखाओं का ज्ञान; फुस्फुस की रचना; स्थिति, आवरण तथा धमनी और शिराओं से संबंध ।

मुख की रचना, जिह्वा, दन्त, कठिन और कोमल तालु, भोजन प्रणाली, आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रान्त, वृहदन्त्र आन्त्रकोष (Mesentary), गुदा इत्यादि की रचना; उनकी स्थिति, आकार, आयाम, अन्य अङ्गों के साथ संबद्ध धमनी व शिरायें जिनके द्वारा इन अंङ्गों में रक्त वितरण होता है । उदर गुहा और उदर आवरण (Peritoneum) ।

भिन्न भिन्न लाला ग्रन्थियों का संक्षिप्त ज्ञान ।

यकृत, प्लीहा, वृक्क, अग्न्याशय, पौरुष ग्रन्थि, मूत्राशय, गवीनियाँ, इत्यादि की स्थिति, आकार, रचना, धमनी, शिरा और नाड़ियों से संबंध । पित्ताशय और अधिवृक्क, अंडकोष, अंडबंधनी, उपांड, शिश्न इत्यादि की रचना और नाड़ी, धमनी और शिराओं से संबंध ।

गर्भाशय, बीजस्रोत, बीजकोष, योनि, भगौष्ठ इत्यादि ।

निस्रोत ग्रन्थियाँ—ग्रैवेयक, बालग्रैवेयक, पीयूष ग्रन्थि, अग्न्याशय, अधिवृक्क इत्यादि ।

नाड़ी संस्थान—वृहद् और लघु मस्तिष्क, उनके आवरण, उनके खंड, चक्रांग तथा सीतायें, धूसर और धवल भाग, केन्द्र, कोष्ठ इत्यादि । मस्तिष्क का रक्त संवहन; मध्यमस्तिष्क सेतु सुषुम्ना; मस्तिष्क से निकलने वाली नाड़ियों का प्रभव; उनकी रचना, तथा भिन्न भिन्न अङ्गों द्वारा मार्ग तथा वितरण । स्वतन्त्र नाड़ी मंडल ।

ज्ञानेद्रियाँ—नेत्र, गुहा, गोलक के भिन्न भिन्न स्तर, पेशी, धमनी और नाड़ियों के साथ संबंध, नासिका, कर्ण इत्यादि।

There will also be a Practical Examination in modern anatomy carrying 200 marks.

रसशास्त्रयुक्त भैषज्य-कल्पना

रसशास्त्रयुक्त भैषज्य-कल्पना में तीन घन्टे का एक प्रश्नपत्र होगा और क्रियात्मक भैषज्य कल्पना में भी परीक्षा होगी। प्रश्नपत्र पर १०० अंक और क्रियात्मक परीक्षा के लिये रस और भैषज्य कल्पना में २०० अंक नियत किये गये हैं।

भैषज्य निर्माण शिक्षा का अभ्यास-क्रम एक नोट बुक में प्रतिदिन लिखकर अध्यापक के हस्ताक्षर कराकर परीक्षक के सन्मुख उपस्थित करना होगा।

परिभाषा—

मागध मान। कालिंग मान। प्रचलित मान सहित शुष्कार्द्र भेष से द्रव्यमान पंचविध कषाय कल्पना। द्रव्यों के गृहणीय अङ्ग। ग्रहण काल विषोपविष शोधन। द्रव्यसंरक्षण विधि। क्षीरपाक विधि। यवाग्वादि साधन। घृत, तैल, आसव, अरिष्ट, अवलेह, मोदक आदि की निर्माण विधियाँ।

रस शोधन प्रकार, हिंगुल से रसाकृष्टि, गन्धक शोधन, कृष्णभस्म वा कजली, रस पर्पटी, रस सिन्दूर, मकरध्वज, रस में अनेक बार गन्धक जारण, रसकर्पूर।

लौह, ताम्र, नाग, वंग, सुवर्ण, रजत, यशद का शोधन मारण।

अभ्रक के भेद, शोधन और निश्चन्द्र भस्मीकरण।

हरिताल, मनःशिला का शोधन, रसमाणिक्य। मन्डूर, माक्षिक और खर्पर का परिचय तथा शोधन और मारण।

अंजन, तुत्थ, काशीस आदि का शोधन। साधारण पुटपाक के लिये त्रिफलादि गण। विशिष्ट पुटपाक के लिये एरण्डादि गण और किरातादि गण।

सब लोहों के निरुत्थीकरण के लिये मित्र-पंचकादि। मुक्ता, प्रवाल, शंख, शुक्ति आदि का शोधन मारण।

वैक्रान्त, राजावर्त, चुम्बक, स्फटिक, गैरिक, नरसार, टंकण, शिलाजतु का शोधन व विशिष्ट उपयोग।

विविध प्रकार के पुटनिर्माण। डमरू, दोला, वालुका, पातालादि यन्त्रों का परिज्ञान।

औषध निर्माण—

भिन्न-भिन्न प्रकार की निम्नलिखित श्रेणियों की औषधियों में से कम-से-कम दो दो योग बनाना आवश्यक है।

१ कषाय
२ फाण्ट
३ पुटपाक
४ चूर्ण
५ शीत कषाय
६ वटी
७ अवलेह
८ घृत

९ तैल
१० अरिष्ट, आसव
११ पानक
१२ रस क्रिया
१३ अर्क
१४ प्रलेप
१५ गुदवर्ती
१६ पाक
१७ विलेप
१८ प्लास्तर
१९ अनेक प्रकार की छानने की विधियाँ
२० क्षार निर्माण
२१ द्रावक निर्माण
२२ यवागू कल्पना
२३ पानीय
२४ प्रमथ्या
२५ खंड पाक
२६ भावना
२७ मद्य
२८ शुक्त
२९ मिश्रण
३० स्वरस
३१ कल्क
३२ शोषण विधि
३३ स्फटिकीकरण
३४ क्षीर पाक
३५ गुग्गुल, श्रीवेष्टक, सर्जरसादि निर्यासशोधन

पदार्थ विज्ञानयुक्त द्रव्यगुणशास्त्र

पदार्थविज्ञान सहित द्रव्यगुणशास्त्र में तीन-तीन घंटे के दो प्रश्नपत्र होंगे । क्रियात्मक द्रव्यगुण में भी परीक्षा होगी । प्रत्येक प्रश्नपत्र पर १०० अंक तथा क्रियात्मक परीक्षा के लिये १०० अंक नियत किये गये हैं । एक प्रश्नपत्र पदार्थ विज्ञान का, दूसरा द्रव्यगुण का रहेगा ।

ज्ञेयांश—

१ जल वर्ग
२ दुग्ध वर्ग
३ घृत वर्ग
४ तैल वर्ग
५ मधु वर्ग
६ इक्षु वर्ग
७ मद्य वर्ग
८ शूकधान्य वर्ग
९ शमीधान्य वर्ग
१० मांस वर्ग
११ शाक वर्ग
१२ पुष्प वर्ग
१३ फल वर्ग
१४ लवण वर्ग
१५ कृतान्न वर्ग
१६ आहारोपयोगी वर्ग

अधोलिखित औषधियों का विशेषतः स्वरूप ज्ञान कराया जावे:—

औद्भिद—

१ त्रिफला
२ त्रिमद
३ चतुर्जात
४ षडूषण
५ दशमूल
६ तृण पञ्चमूल
७ अम्ल वर्ग
८ अष्ट वर्ग
९ पटोल
१० पर्पटक
११ तुलसी
१२ निर्गुण्डी

१३ केतकी
१४ ब्राह्मी
१५ मण्डूकपर्णी
१६ इक्षुरक
१७ हपुषा
१८ गोरक्ष मुण्डी
१९ इन्द्रवारुणी
२० मदन फल
२१ कोषातकी
२२ पंच वल्कल
२३ क्षाराष्टक
२४ वासा
२५ भार्गी
२६ लवङ्ग
२७ यवानी
२८ शतपुष्पाद्वय
२९ कुष्ठ
३० शृङ्गी
३१ ताम्बूल
३२ कुस्तुम्बुरु
३३ शठी
३४ तालीस पत्र
३५ जीरक द्वय
३६ देवदारु
३७ दुरालभा
३८ पुनर्नवा
३९ बलाचतुष्टय
४० अश्वगन्धा
४१ विदारी
४२ वृद्धदारुक
४३ भल्लातक
४४ त्रिवृत्
४५ एरण्ड
४६ दन्ती
४७ आरग्वध
४८ जयपाल
४९ दारुहरिद्रा
५० दार्वी रसाञ्जन
५१ निम्ब
५२ गुडूची
५३ अगुरु
५४ कंकुम
५५ चंदन द्वय
५६ जटामांसी
५७ पलाण्डु
५८ रसोन
५९ कट्फल
६० गोक्षुर
६१ कर्पूर
६२ उशीर
६३ हिंगु
६४ अशोक
६५ सारिवा
६६ सप्तपर्ण
६७ शालसा
६८ अहिफेन
६९ गञ्जा (गांजा)
७० भङ्गा (भाँग)
७१ वत्सनाभादि शृङ्गिक विषजातियाँ
७२ विषमुष्टि
७३ धत्तूर
७४ गुंजाफल
७५ लाङ्गली आदि अन्य विशेष उपयोगी गुरुपदिष्ट भेषज गण ।

जान्तव

१ कस्तूरी
२ गोरोचना
३ पूति (खटाशी)
४ पित्त पञ्चक

५ मृग शृङ्ग
६ अम्बर
७ मुक्ता
८ प्रवाल
९ शंख
१० शुक्ति आदि

पार्थिव

१ रस
२ महारण
३ साधारण रस
४ लोह
५ उपलोह
६ रत्न
७ उपरत्न आदि
८ फेनाश्म (संखिया)
९ सौवीराद्यञ्जन
१० मृद्दारश्रृङ्गादि

पदार्थ विज्ञानम्

चरकोक्त मूल पदार्था—

सामान्य लक्षणम् ,
विशेष लक्षणम् ,
द्रव्यलक्षणम् , द्रव्य संग्रहः,
गुणलक्षणम् , गुण संग्रहः,
कर्मलक्षणम् ,
समवायलक्षणम् ,
अभावलक्षणम् ,

आत्मनिरूपणम् , मनोनिरूपणम् । दोषाः, रसाः, तेषां परस्परं सम्बन्धः ।

द्रव्यभेदाः

सुश्रुतोक्तपदार्थाः—

प्रकृतिः, प्रकृतिविकृतयः, विकृतयः, पुरुषः ।

ज्ञानेन्द्रियाणि इन्द्रिय द्रव्याणि, इन्द्रियाधिष्ठानानि, इन्द्रियार्थादयः । इन्द्रियाणाम्मनसा संबन्धः । अध्यात्मद्रव्यगुणाः, ऐन्द्रियिकं विषयग्रहणम् ।

द्रव्य-गुण-रस-वीर्य—विपाकःप्रभाव-पदानामर्थाः, गुणवाचक मृदुतीक्ष्णादि पदानामर्थाः, रसवीर्यविपाकानां प्रकारा गुणाश्च । दीपनपाचनानुलोमनविरेचन वमन छेदन लेखन प्रमाथि ग्राहिस्तम्भनाभिष्यन्दि रसायन बल्य बृंहण वाजीकरण विषादि पदानामर्थास्तन्त्रयुक्त्यादिविज्ञानञ्च ।

The Third Professional Examination

PART A.

प्रसूतिशास्त्रं स्त्रीरोगचिकित्सासहितम् ।

विषयेऽस्मिन् भविष्यति प्रश्नपत्रमेकं पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः— गर्भिणीचर्या, पुंसवनविधिः, गर्भलक्षणानि, गर्भस्य मृतामृतपरीक्षा, मूढगर्भपरिज्ञानं तच्चिकित्सा च । गर्भस्रावपातयोश्चिकित्सा, सूतिका सन्निपातः, अपरापतने दोषाः, प्रसूतायाः प्रायोभाविनो रोगास्तच्चिकित्सा च । योनिव्यापदस्तच्चिकित्सा च ।

प्रदरसोमरोगस्तनरोगरक्तगुल्मयोषापस्माराणां विज्ञानं सचिकित्सितम् ।

MIDWIFERY AND GYNAECOLOGY.

SYLLABUS.

There will be one paper carrying 100 marks and oral carrying 50 marks.

I. Obstetrical anatomy, Material and Foetal. Obstetrical Diagnosis.

II. Symptoms and Signs of Pregnancy, Diagnosis of Labour, Method of Examining pregnant women.

III. Obstetrical asepsis, Obstetrical armamentarium.

IV. Disorders of pregnancy, Diseases of decidua and ovum. Toxaemias of pregnancy, Abortion, Miscarriage, Premature Labour, Delayed Labour, Extra-utrine pregnancy Ante-partum haemorrhage, abnormalities of utrus and cervix, Perineum. Cord, Placenta and Membrances. Malpositions of Gravid utrus.

V. Labour—Causation, Phenomena, Stages of mechanism, Presentation, Cephalic, Pelvic, Transverse, Management of normal labour.

VI. Precipitate Labour, Utrine inertia, Contracted pelvis, Common forms, Multiple Pregnancy, Monsters, Hydrocephalus. Post-partum Hæmorrhage, Rupture of Utrus, Rupture of Perineum, Laceration of Cervix, Inversion of Utrus.

VII. Puerperium Phenomena and management—including care of the new-born.

VIII. Obstetrical operations, Preparation of the patient. Dilatation of cervix, Forceps, Version, Craniotomy, Pubitomy. Caesarcan section, Induction of premature Labour.

IX. Puerperal infection, Diseases associated with Puerperium, Phlegmasia alba dolens, Mastitis. Subinvolution and Superinvolution of utrus.

X. Accidents to the infant, Asphyxia neonatorum, Injuries to head aud bones, Hæmorrhage from the cord, Septic infection and tetanus.

XI. Instructions in the following subjects :—
 (a) Ante-natal conditions.
 (b) Infant hygiene.

GYNAECOLOGY.

XII. Gynaecological diagnosis, Method of examination, Diagnostic instruments.

XIII. Disorders of menstruation.

XIV. Inflamatory disease of vulva—Vagina, Uterus, Fallopian tubes, Ovaries, Peritoneum and pelvic cellular tissue, Pelvic Haematocele.

XV. Displacements of uterus and new growths, Sterility.

XVI. Gynaecological operations, Methods of preparation, dilation of cervix, curretting, Perineorrhaphy, Colporrhaphy, Tracheorraphy, Mymomectomy Ovarotomy, Ventral fixation and ventral suspension of uterus. After—treatment of vaginal and abdominal operations.

अगदतन्त्रम् ।

विषयेऽस्मिन् भविष्यति प्रश्नपत्रमेकम् । पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—त्रिविधविषविज्ञानम् । सविज्ञाना सर्पदष्टचिकित्सा, अलर्कविषचिकित्सा च । वृश्चिकादिदष्टचिकित्सा । अहिफेनभङ्गागञ्जाधुत्तूरवत्सनाभ विषमुष्टि फेनाश्म ताल मनःशिलादि प्रसिद्ध विष जुष्टानां सविज्ञानं चिकित्सा अन्नपान रक्षा च ।

Medical Jurisprudence.

There will be one paper in medical Jurisprudence and toxicology carrying 100 marks and oral of 50 marks.

I. Definition, police, inquest, difficulties in detection of crimes, subpœna, oath medical evidence, medical certificates, Dying Declaration. Rules of giving evidence, Professional secrets.

II. Personal Identification, Definition, Age, Race, Sex, Colour etc. etc.

III. Post mortem Examination.

IV. Examination of Blood and seminal stains.

V. Death in its medicolegal Aspect. Modes of death, Signs of death, Post mortem, changes of the body.

VI. Death from Asphyxia, Hanging, strangulation, Difference between hanging and strangulation, suffocation, drowning.

VII. Death from starvation, cold, and heat.

VIII. Death from burn and scalds, Lightning and Electricity.

IX. Injuries and wounds and their medicolegal aspects.

X. Impotency and sterility.

XI. Virginity, Pregnancy and Delivery.

XII. Legitimacy.

XIII. Rape and unnatural offences.

XIV. Miscarriage and Fœticide.

XV. Infanticide.

XVI. Insanity and its medicolegal aspects.

XVII. Law in relation to a medical man.

Toxicology.

I. Definition law relating to poisons, sale of poisons, errors in dosage of poisons in prescriptions. Classification of poisons, modes of administering poisons, chhannels of elimination, causes modifying the actions of poisons. Diagnosis of poisoning, Duties of medical men in cases of suspected poisoning, Treatment in a case of poisoning.

II. Corrosive poisons—Nitric acid, Hydrochloric acid, Sulphuric acid, Oxalic acid, Carbolic acid, Ammonia, Caustic potash, Caustic soda.

III. Irritant poison—Phosphorus, Arsenic, Mercury, Lead (Nag), Antimony (Nilanjan), Copper, Zinc, (Yashad).

IV. Irritant poisons (Vegitable), Arand (castor seeds), Jamalgota (coroton seeds), Indrayan (colocynth), Ergot, Gumchi, Chitrak.

V. Irritant poisons (Animal)—Canthrides, Snake-Venum.

VI. Mechanical poisons—powdered glass.

VII. Neurotic poisons.

Opium, Alchohol, Chloroform, Chloral Hydrate, Petrolium, Dhatura, Belladonna, Cocaine, Bhang, Kuchla, Tobacoo Digitalis, Oleander, Aconite, Hydrocyanic Acid, Carbondioxide. Carbon monooxide.

कौमारभृत्यम् ।

प्रश्नपत्रमेकम् पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—प्रसवादारभ्य शिशोः पालनविधिः, धात्रीपरीक्षा, स्तन्यपरीक्षा, स्तन्यशोधनवर्धनोपायाः; स्तन्याभावे शिशोः पथ्यविधिः, शिशूनां रोगास्तत्प्रतीकारश्च ।

मानसरोगविज्ञानम् ।

प्रश्नपत्रमेकम्पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—मानसरोगाणामुन्मादापस्मारादीनां परिज्ञानम् ; आयुर्वेदोक्तानि दार्शनिकतत्वानि, संयमादि प्रयोजनम् , मानसरोगाणां चिकित्साविधयश्च ।

प्राचीन संहिता

चरक संहिता—सूत्रस्थानादारभ्य इंद्रिय स्थानान्ता ।

अत्र प्रश्नपत्रमेकम्पूर्णाङ्काः शतम् ।

PART B.

There will be three Papers. Two on Eastern and one on Western and also one practical on Eastern carrying 200 marks.

रोगविज्ञानं सचिकित्सितम्

अत्र प्रश्नपत्रत्रयं भविष्यति । एकं रोगविज्ञानं प्राच्यमतेन, द्वितीयं रोगविज्ञानं प्रतीच्यमतेन, तृतीयं कायचिकित्सामाश्रित्य । प्रत्यक्षरोगपरीक्षायां चिकित्सानिर्णये च भविष्यन्ति पूर्णाङ्काः शतद्वयम् प्राच्यमतेन

ज्ञेयांशाः—

प्रकृतविकृतवातादीनां स्वरूपस्थानलक्षणादीनि । दूष्यविज्ञानम् व्याधिविज्ञानम् । निदानपञ्चकम् । रोगपरीक्षा । मलमूत्रनाड़ीजिह्वानेत्रहृदयफुफ्फुसोदरादीनां स्थूलतः, परीक्षाविधयः ।

ज्वरभेदाः प्लेगादिपरिचयसहिताः, अतिसारः, प्रवाहिका, ग्रहणी, अग्निमान्द्यम् , अजीर्णम् , अम्लपित्तम् , विषूचिका, क्रिमिरोगाः, शूलम् , उदावर्तः, हिक्का, राजयक्ष्मा, रक्तपित्तम् , छर्दिदाहतृष्णारोचकाः, मूर्छा, अपस्मारः, सन्न्यासः, वातव्याधयः, वातरक्तम् , कुष्ठानि, उन्मादः, पानात्ययः, ऊरुस्तम्भः, हृद्रोगः, वृक्करोगाः, शोथः, मूत्रकृच्छ्रम् , मूत्राघातः, पूयमेहः, श्लीपदगलगण्डगण्डमालादयः मेदोरोगः, मसूरिकाविस्फोटकशीतपित्तादयः, उपदंशः, फिरङ्गरोगः, क्षुद्ररोगादयश्च । एतेषां विज्ञानेन सहिताश्चिकित्साविधयः ।

स्नेहस्वेदवमनविरेचन निरूहानुवासनोत्तरबस्ति लंघनबृंहणादिविधयः ।

अरिष्टविज्ञानश्च ।

रसायनवाजीकरणप्रयोगाश्च ।

शल्यतन्त्रं सशालाक्यम् ।

विषयेऽस्मिन् भविष्यति प्रश्नपत्रमेकम् । पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—

सामान्यव्रणादिज्ञानम् , सद्योव्रणानां भग्नादिसहितानां विज्ञानम् चिकित्सा च । व्रणलेपनबन्धनादिविधयः । यन्त्रशस्त्रविज्ञानम् , यन्त्रशस्त्रपिचुप्लोतादीनां वह्निवाष्पादिसंयोगेन शोधनविधयः । अग्रोपहरणम् । व्रणितोपासनम् । अष्टविधशस्त्रकर्मणां स्थूलतः परिज्ञानम् । शल्योद्धरणम् । जलौकावचारणम् । अग्निकर्म । क्षारकर्म । शोणितमोक्षणम् । क्षतजविसर्पस्तदुपक्रमश्च ।

चक्षुःश्रोत्रमुखनासारोगाणां परीक्षा चिकित्सा च । कर्णव्यधविज्ञानम् । कर्णबन्धनासासन्धानविज्ञानञ्च ।

SURGERY.

There will be one paper in Modern Surgery of *three* hours' duration carrying 100 marks. Practical and Oral Examinations will carry 200 marks.

SYLLABUS.

I. Non-Specific Pygonic Infection. Inflamation, Abscess. Sinus. Fistula. Whitlow. Onychia. Cellulitis Septicæmia Pyæmia.

II. Ulceration and Gangrene.

III. Specific Infective Diseases—Erysipelas, Tetanus, Syphilis, Soft Chancre, Gonorrhoea.

IV. Wounds.

V. Affection of blood Vessels—Haemorrhage—General, and Special Haemorrhages, Aneurism, Phlebitis, Varicose Veins.

VI. Surgical Diseases of Skin—Carbuncle.

VIII. Affections of Muscles and Tendons—Tenosynovitis, Ganglin.

VIII. Orthopaedic Surgery—Deformities, Scolisis, Talipes.

IX. Affections of Bones and Joints—Fractures—general, Fracture of Nasal bones, inferior Maxila, Ribs Clavicle Fracture of Humerus, about the elbow, the fore-arm Colles's Fracture of Pelvis, Neck of Femur, Shaft of Femur, Patella, Fracture of Tibia Pott's Fracture, Diseases of bones—Necrosis Caries, Osteosclerosis, Periostitis, Osteomyelitis, Tubercular diseases of bones, Synovitis—acute and chronic, Arthritis. Tubercular diseases of joints, Hip joints disease, Sacro, Illiac disease Fracture, dislocation of spine, Fracture of the skull, Pott's disease.

Dislocations—general and of the lower jaw, shoulder, elbow. wrist and thumb. Dislocation of the hip joint. Affections of lips and jaws. Harelip, Pyorrhoea Alvolaris, Necrosis of Jaw, Tumours and Cyst of jaw.

X. Affections of Mouth, Throat and Oesophagus–Ulcer of the tongue, Stricture and other diseases of the oesophague.

XI. Affections of nose, Naso-pharynx—Ozonea, Nasal polypus, Adenoids.

XII. Surgery of Air Passages, Empyema.

XIII. Disease of the Breast—Mastitis—acute and chronic, Cysts and Tumours of the breast.

XIV. Abdominal Surgery—Appendicitis Acute abdominal conditon.

XV. Hernia—general—Inguinal hernia, Femoral and Umbelical hernia, Inflamed, Irreducible. Obstructed and strangulated hernia.

XVI. Affections of Rectum and Anus–Imperforate Anus. Ischiorectal abscess, Fissure of anus, Ulcers of the rectum, Fistula-in ano, Rectal structure and prolapse, Tumours, Piles internal and external.

XVII. Surgical Affections of Genito-urinary Organs—Renal Calculus Floating kidney, Rupture of bladder, Cystitis, stones in bladder, Hypetrophy of Prostate, Stricture of Urethra, Rupture of Urethra, Acute affections of geniteurinary system.

Phimosis. Paraphimosis Cancer of the penis. Orchitis. Epididymitis. Hydrocele. Hæmatocle, Varicocele. Differential diagnosis of scrotal tumours.

XVIII. General Surgery—Anæsthesis, Asceptic surgery.

XIX. Surgery of emergent conditions—Foreign bodies in the respiratory, urinary, and alimentary tracts. Emergencies of respiration. Injuries of the chest. Tracheotomy Laryngogotomy. Recent treatment. Emergencies connected with head injuries, Emergencies connected with penetrating wounds.

Pathology.

There will be two papers in Pathology each carrying 100 marks.

1st Paper.—Indriavijynana of 100 marks covering the following syllabus:—
Vernaswaradivikriti, Gandhavikriti,
Sparshavikriti, Swapnavikriti, Dristivikriti,
and Chhayadivikriti.

2nd Paper.—This will consist of Section A—Pathology and Section B—Bacteriology of 50 marks each.

PRACTICAL—50 marks.

SPECIAL PATHOLOGY.

Syllabus.

General Pathology—Health and disease. Cause of diseases (a) Hereditary and (b) environmental Infection and Immunity Inflamation and Repair. Degenerations and infilterations. Disturbances of blood and circulation, Neoplasms, Specifiic granulomata.

Elementary Bacteriology & Parasitology.

General character and Biology of Bacteria, Bacterioligical methods, Sterilization, Cultivation and Isolation of Bateria. The Morphology and Biology of the following Micro-organisms.

Pyogenic Cocci, Pneumococcus, Baccilus Coli-communis, Bacillus Typhosus, Bacillus Pestis, Bacilus Tetani, Bacillus Lepræ, Bacillus Tuberculosis. Diptheriæ, Gonococcus, Vibrio, Cholera, Spirochæta, Palida, Spirrillium of relapsing fever, Hœmatozoon malariac, Entamœba Coli and histolyleca, Parasite of Kala-azar. Ascaris Lumbricoides, Oxyuris Vermicularis, Ankylostima duodenale, Filaria, Sanguinis Hominis, Taenia Solium, Acaro, Pediculi, Mosquito, Flies, Bedbugs.

Identification of the Cobra, Russells Viper and Echis, and the action of their poisons.

Special Pathology—The more important structural changes produced in organs and tissues by diseases.

प्राचीन संहिता ।

अत्र प्रश्नपत्रमेकं भविष्यति । पूर्वाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—चरकसंहिता चिकित्सा स्थानादारभ्य समाप्ति पर्य्यन्ता ।

भिषगाचारः

(१) भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥
(२) विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु !
पक्तौ हि कारणं पक्तुर्यथा पात्रेन्धनानलाः ॥
विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च ।
आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाः कारणसंज्ञिताः ॥
(३) भिषग्बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसम्पदि ।
परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदः स्याद्यथा नृणाम् ॥
(४) श्रुते पर्यवदातत्वं वहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमितिज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥
(५) हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः ॥
(६) विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया ।
यस्यैते षड्गुणा स्तस्य नाऽसाध्यमतिवर्तते ॥
(७) विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः ।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तावलमेकैकमप्यदः ॥
यस्यत्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः ।
स वैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणिसुखप्रदः ॥
(८) भिक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धसाधिताः ।
सन्ति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥
वैद्यभाण्डौषधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।
लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रतिरूपकाः ॥
श्रीयशोज्ञानसिद्धानां व्यपदेशादतद्विधाः ।
वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धसाधिताः ॥
प्रयोगज्ञानविज्ञान सिद्धिसिद्धाः सुखप्रदाः ।
जीविताभिसरास्ते स्युर्वैद्यत्वं तेष्ववस्थितम् ॥
(९) वरमात्मा हतोऽज्ञेन न चिकित्सा प्रवर्तिता ।
पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ॥
नौ मारुतवशेवाज्ञो भिषक्चरति कर्मसु ॥
यदृच्छया समापन्नमुत्तार्य नियतायुषम् ।
भिषङ्मानी निहन्त्याशु शतान्यनियतायुषाम् ॥

Identification of the Cobra, Russells Viper and Echis, and the action of their poisons.

Special Pathology—The more important structural changes produced in organs and tissues by diseases.

प्राचीन संहिता ।

अत्र प्रश्नपत्रमेकं भविष्यति । पूर्णाङ्काः शतम् ।

ज्ञेयांशाः—चरकसंहिता चिकित्सा स्थानादारभ्य समाप्ति पर्य्यन्ता ।

भिषगाचाराः

(१) भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥
(२) विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु !
पक्तौ हि कारणं पक्तुर्यथा पात्रेन्धनानलाः ॥
विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च ।
आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाः कारणसंज्ञिताः ॥
(३) भिषग्बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसम्पदि ।
परं प्रयत्नमातिष्ठेत्प्राणदः स्याद्यथा नृणाम् ॥
(४) श्रुते पर्यवदातत्वं वहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमितिज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥
(५) हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः ॥
(६) विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया ।
यस्यैते षड्गुणा स्तस्य नाऽसाध्यमतिवर्तते ॥
(७) विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः ।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तावलमेकैकमप्यदः ॥
यस्यत्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः ।
स वैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणिसुखप्रदः ॥
(८) भिक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धसाधिताः ।
सन्ति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि ॥
वैद्यभाण्डौषधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।
लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रतिरूपकाः ॥
श्रीयशोज्ञानसिद्धानां व्यपदेशादतद्विधाः ।
वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धसाधिताः ॥
प्रयोगज्ञानविज्ञान सिद्धिसिद्धाः सुखप्रदाः ।
जीविताभिसरास्ते स्युर्वैद्यत्वं तेष्ववस्थितम् ॥
(९) वरमात्मा हतोऽज्ञेन न चिकित्सा प्रवर्तिता ।
पाणिचाराद्यथा चक्षुरज्ञानाद्भीतभीतवत् ॥
नौ मारुतवशेवाज्ञो भिषक्चरति कर्मसु ॥
यदृच्छया समापन्नमुत्तार्य नियतायुषम् ।
भिषङ्मानो निहन्त्याशु शतान्यनियतायुषाम् ॥

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने ।
भिषक्चतुष्टये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते ।।
(१०) शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ।।
(११) नाभिज्ञाय तु शास्त्राणि भेषजं कुरुते भिषक् ।
यम एव स विज्ञेयो मर्त्यानां मर्त्यरूपधृक् ।।
(१२) दृष्टकर्मा च शास्त्रज्ञो वैद्यः स्यात्सिद्धिमानसौ ।
एकाङ्गहीनो न श्लाघ्य एकपक्ष इव द्विजः ।।
(१३) रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ।।
(१४) यथाविषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं तथा ।।
(१५) यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् ।
अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया ।।
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः ।
साध्यासाध्यविधानज्ञस्तस्य सिद्धिः करे स्थिता ।।
(१६) विपरीतगुणै—र्देशमात्राकालोपपादितैः ।
भेषजैर्विनिवर्तन्ते विकाराः साध्यसम्मताः ।।
साधनं नत्वसाध्यानां व्याधिनामुपदिश्यते ।
(१७) योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् ।।
भेषजं वापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम् ।
तस्मान्न भिषजायुक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् ।
धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकाङ्क्षिणा ।।
(१८) कुर्यान्निपतितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः ।
सशेषमातुरं कुर्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ।।
(१९) दुःखिताय शयानाय श्रद्धानाय रोगिणे
यो भेषजमविज्ञाय प्राज्ञमानी प्रयच्छति ।
व्यक्तधर्मस्य पापस्य मृत्युभूतस्य दुर्मतेः ।
नरो नरकपाती स्यात्तस्य सम्भाषणादपि ।।
(२०) सम्यक्प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम् ।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ।।
(२१) मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता ।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा ।।

(२२) तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥
(२३) स्मृतिमान् हेतुयुक्तिज्ञो जितात्मा प्रतिपत्तिमान् ।
भिषगौषधसंयोगैश्चिकित्सां कर्तुमर्हति ॥
(२४) शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥
(२५) साध्यासाध्यविभागज्ञो ज्ञानपूर्वं चिकित्सकः ।
काले चारभते कर्म तत्तत्साधयति ध्रुवम् ॥
(२६) अर्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसङ्ग्रहम् ।
प्राप्नुयान्नियतं वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत् ॥
(२७) मैत्रीकारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥
(२८) यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिलागतिः ॥

(२९) जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः ।
वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥

(३०) ग्रहेषु प्रतिकूलेषु नानुकूलं हि भेषजम् ।
प्रतिकृत्य ग्रहानादौ पश्चात्कुर्याच्चिकित्सितम् ॥
(३१) त्यजेदार्तं भिषग्भूपैर्द्विष्टं तेषां द्विषं द्विषम् ।
हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम् ॥
चण्डं शोकातुरं भीरुं कृतघ्नं वैद्यमानिनम् ।
यादृच्छिकं सशङ्कं च श्रद्धाहीनं विशेषतः ॥
एतानुपाचरन् वैद्यो बहून् दोषानवाप्नुयात् ।

(३२) आहाराचारचेष्टासु सुखार्थी प्रेत्य चेह च ।
परं प्रयत्नमातिष्ठेद् बुद्धिमान् हितसेवने ॥

(३३) ओषधीः प्रशस्ता धारयेत् ।

(३४) मलायनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्यमादध्यात् ।

(३५) त्रिःपक्षस्य केशश्मश्रुलोमनखान् संहारयेत् ।

(३६) नित्यमनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात् ।

(३७) साधुवेशः, प्रशाधितकेशः, पूर्वाभिभाषी, सुमुखः, काले हितमितमधुरार्थवादी, वश्यात्मा, हेतावीर्षुः फले नेर्षुः, निश्चितः, निर्भीकः, ह्रीमान्, धीमान्. महोत्साहः, दक्षः, क्षमावान्, धार्मिकः, आस्तिकः, विनयबुद्धिविद्याभिजनवयोवृद्धसिद्धाचार्याणामुपासिता, मङ्गलाचारशीलः, क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वासयिता, दीनानामुपपत्ता, सत्यसन्धः,

30

शमप्रधानः, परपरुषवचनसहिष्णुः, रागद्वेषहेतूनां हन्ता, प्रशमगुणदर्शी, सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्, प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत् हेतुप्रभावनिश्चितः स्याद्धेत्वारम्भे नित्यश्च ।

(३८) छत्री दण्डी मौली सोपानत्को युगमात्रदृगनुचरेत् ।

(३९) नानृतं ब्रूयात्, नान्यस्वमाददीत, नान्यस्त्रियमभिलषेन्नान्यश्रियम् , न वैरं रोचयेत् , न कुर्यात्पापम् न पापेऽपि पापी स्यात् , नयान्यदोषान् ब्रूयात् , नान्यरहस्यमानेमयेत् , नाधार्मिकैर्न नरेन्द्रद्विष्टैः सहासीत नोन्मत्तैर्न पतितैर्न भ्रूणहन्तृभिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः, न दुष्टयानान्यारोहेत्, नोच्चैर्हसेत् , न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत् , नानावृतमुखोजृम्भां क्षवक्षुं हास्यं वा प्रवर्तयेत् , नैकः शून्यगृहं न चाटवीमनुप्रविशेत् , न पापवृत्तान् स्त्रीमित्रभृत्यान् भजेत, नोत्तमैर्विरुध्येत, नावरानुपासीत, न जिह्मं रोचयेत् , नानार्यमाश्रयेत् , न भयमुत्पादयेत् , न साहसातिस्वप्नप्रजागरस्नानपानाशनान्यासेवेत, न व्यालानुपसर्पेन्नदंष्ट्रिणो न विषाणिनः, कलिं नारभेत, न वेगितोऽन्य कार्यः स्यात् , न पन्थानमवमूत्रयेत् , न जनवति नान्नकाले न जपहोमाध्ययन बलिमङ्गलक्रियासु श्लेष्मसिंघाणकं मुञ्चेत् , नस्त्रिपमवजानतो, नातिविश्रम्भयेन्न गुह्यमनुश्रावयेन्नाधिकुर्यात् , नातिसमयं जह्यात् , न नियमंभिन्द्यात् , न नक्तं नादेशे चरेत् , न वालवृद्ध लुब्धमूर्खक्लिष्टक्लीबैः सह सख्यं कुर्यात् , न मद्यद्यूतवेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात् , न कंचिदवजानीयात् , नाहंमानी स्यात् , न वृद्धान्न गुरून्न गणान्न नृपान् वाधिक्षिपेत् , न चातिब्रूयात् , नाधीरो नात्युच्छ्रितसत्वः स्यात् , नकार्यकालमतिपातयेत् , नाऽपरीक्षितमभिनिविशेत् , न चञ्चलं मनोऽनुपाययेत् , न बुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात् , न चाति दीर्घसूत्री स्यात् , न क्रोधहर्षावनुविदध्यात् , न शोकमनुवसेत् , न सिद्धावुत्सेकं गच्छेन्नाऽसिद्धौ दैन्यम् , न कृतमित्याश्वसेत् , नवीर्यंजह्यात् , नापवादमनुस्मरेत् ।

(४०) बुद्धिविद्यावयः शालीधैर्य स्मृतिसमाधिभिः ।
वृद्धोपसेविनो वृद्धाः स्वभावज्ञा गतव्यथाः ॥
सुमुखाः सर्वभूतानां प्रशान्ताः शंसितव्रताः ।
सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणदर्शनाः ॥
(४१) पापवृत्तवचःसत्वाः सूचकाः कलहप्रियाः ।
मर्मोपहासिनो लुब्धाः परवृद्धिद्विषः शठाः ॥
परापवादरतयश्चपला रिपुसेविनः ।
निर्घृणास्त्यक्तधर्माणः परिवर्ज्या नराधमाः ॥
(४२) न कश्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम् ।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥
(४३) प्रतिभूर्न भवेत्काऽपि न च साक्षी वृथा भवेत् ।
(४४) त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तच्चाऽविरोधयन् ।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ॥
(४५) अर्चयेद्देवगो विप्र वृद्धवैद्य नृपातिथीन् ।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत् ॥

(४६) आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः ।
अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीक्षकः ॥

(४७) कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ।
पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धनवन्तरिसमा यदि ॥

(४८) व्याधे स्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

(४९) विकारनामाऽकुशलो न जिहीयात्कदाचन ।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥

(५०) नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः ।
अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

(५१) चिकित्सितशरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ।
स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥

(५२) कुर्वते ये तु लोभेन चिकित्सापण्यविक्रयम् ।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते ॥

(५३) अप्येकं नीरुजीकृत्य जन्तुं यादृशतादृशम् ।
किन्नतेन कृतं पुण्यं काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥

(५४) क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः ।
कर्माभ्यासःक्वचिच्चापि चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥

(५५) सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरोभवेत् ॥

(५५) कपिलाकोटिदानाद्धि यत्फलं परिकीर्तितम् ।
फलं तत्कोटि गुणितमेकातुर चिकित्सया ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं कारणं यतः ।
तस्मादारोग्यदानेन नरो भवति सर्वदः ॥

(५७) अवृत्ति व्याधिशोकार्तानुवर्तेत शक्तितः ।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलकम् ॥

(५८) काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादिवेशलम् ।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः ॥

(५९) जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ।
तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥

(६०) आर्द्रसन्तानता त्यागः कामवाक्चेतसां दमः ।
स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ॥

राजेश्वरदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्यः
M. B. I. M.
अध्यापक व चिकित्सक, हिन्दू विश्वविद्यालयः काशी ।

* * *

बोर्ड आफ मेडिकल एथिक्स जो यूनाइटेड प्राविन्स मेडिकल कौंसिल ने १७ मार्च सन् १९२९ ई० में स्वीकार कर प्रकाशित किया है, उसको वैद्य व्यवसाइयों की जानकारी के लिये प्रकाशित किया जाता है,

वैद्य-समाज इस पर विचार कर आयुर्वेद महामण्डल के सदस्यों के लिये ऐसे नियमोपनियम बनावे कि जिससे आयुर्वेद व्यवसाइयों को दूसरे चिकित्सा व्यबसाइयों की तुलना में उच्चता प्राप्त हो ।

चरक संहिता में हमारे व्यवसाय के लिये अनेक उपदेश ऐसे हैं जिनका व्यवहार करना आवश्यक है, वे भी संक्षेप में यहीं पर प्रकाशित किये जाते हैं ।

* * *

Code of Medical Ethics

Approved by the United Provinces Medical Council March 17, 1929

UNITED PROVINCES MEDICAL COUNCIL.

The followig advice and remarks on some of the main principles of Medical Ethics are approved by the United Provinces Medical Council and published for the information and guidance of registered practitioners :—

I.—Some objectionable practices.

1. The following and similar practices tend to lower the dignity of the professsion and should be avoided :—

(*a*) Soliciting private practice, either personally or by advertisement in the newspapers, by placards, or by the distribution of circulars, cards, or handbills or by giving as commission a percentage of fees received.

(*b*) Entering into any compact in his personal capacity with a pharmacist or any manufacturer or firm dealing with medical and surgical appliance or requisites, to receive a share in the profits arising from the sale of medicines prescribed, or medical or surgical appliances.

(*c*) Keeping an open shop, that is, one for the sale of medicines, medical or surgical appliances, etc., other than those prescribed by himself or by another registered practitioner, or styling his dispensary in such a way as to cause it to be taken for a chemist's shop, e. g., "Nelson & Co., Dispensing Chemists," etc.

(*d*) Deriving pecuniary profit from the sale of any secret remedy.

(*e*) Taking any part in the manufacture, or sale of a proprietary food or medicine. A practitioner should not allow his name to be associated in any way with articles of this description or lend himself to the advertisement of such articles.

(*f*) Receiving commissions from agents or tradesmen in return for recommending tradesmen or their wares or from a dentist for recommending patients and paying commissions to hotel proprietors, lodging-house-keepers, monthly nurses, midwives, or others for introduction to cases.

(*g*) Writing prescriptions in a private formula of which only a particular pharmacist has the key. Such Secret prescriptions are unprofessional.

(*h*) Meeting in consulation an unqualified practitioner. There is no objection to a registered practitioner seeing the patient even if already attended by an unqualified practitioner, so long as he gives his advice to the patient directly and does not enter into consultation with the unqualified practitioner.

(*i*) Agreeing to attend any patient on the terms of "no cure no pay."

(*j*) Exhibiting publicly a scale of fees when such scale is visible from outside the house.

But there is no objection to a scale of fees being put up in the practitioner's waiting room or consulting room.

(*k*) Publishing or sanctioning the publication of reports of cases or operations or other treatment, or letters of thanks from patients, or of any kind of laudatory notices with regard to professional matters, with or without photographs in non-professional newspapers or journals.

(*l*) Discussing the futility or utility of different methods of diagnosis or treatment of various diseases, in the lay press under their names and designations, or by correspondence or by granting interviews to the representatives of the lay press, and allowing the same to be published in or under their names.

(*m*) It is not proper for a practitioner to style a private nursing home, dispensary or hospital either after his own name, e. g., Dr. Anderson's hospital, or after that of some renowned personage, e. g., Hippocrates Clinic, or by high-sounding medical terms, e. g., Genito-urinary; Venereal and Skin Hospital, Canser Institute, etc. There would be no objection to a registered practitioner being financially interested in a nursing home either as part or whole proprietor.

(*n*) (i) It is not in consonance with professional ethics that a medical institution should be advertised in the lay papers unless such institution is registered as a charitable society,

(ii) No medical practitionr should make use of an unduly large sign-board, and only in cases where there are several entrances, or the building has more than one frontage should more than one sign-board be placed.

The board should never indicate more than the name, degree or diploma, and rank or title, if any, with bare details of any particular line of practice. This, it would be proper to add "Physician," "Surgeon or Physician and Surgeon," "Ophthalmic Surgeon," or "Throal and Nose Specialist," or such other single designation of one speciality only. The parctitioner should not notify treatment of a disease by a special line of treatment, e.g., treatment of diabetes by insulin, nor is it advisable to mention on a board any position he may be holding, or have previously held on the staff or a hospital or other institution.

II.—Medical Certificates.

(*a*) Certificates issued by a medical practitioner over his signature should correspond strictly with facts within his personal knowledge, and should not be *untrue, misleading or improper* (vide Warning Notice of General Medical Council.)

(*b*) They should not be given for inadequate or extraneous reasons. Certificates granted in contravention of the above will make the practitioner liable to have his name erased from the Medical Register.

III.—General advice on Medical Attendence in General, and Consultations.

1. The atttendence of a consulting practitioner should cease when the consultation is concluded, unless another appointment is arranged by the medical attendant or unless the patient has dispensed with the services of the medical attendant and engaged those of another. In no case should the consulting practitioner treat the patient alone or had him over to his assistants or remove him to a nursing home or private hospital, without the knowledge of the medical attendant, or injure the latter's position in any respect.

2. When it becomes the duty of a practitioner occupying an official position to see and report upon a case of illness or injury, he should communicate with the practitioner in attendance, so as to give him the option of being present. The practitioner seeing the case officially should scrupulously avoid interference with, or remarks upon, the treatment or diagnosis that has been adopted.

3. When a consultant in his room sees a patient at the request of a medical practitioner, it is his duty to write to the latter, stating

his opinion of the case, with the mode of treatment he thinks should be adopted, and he should not again see the same patient without a fresh note from his medical attendent.

4. A registered practitioner entrusted with the care of the practice of another member during sickness or absence should not charge the absent practitioner for his services, except in the case of a special arrangement between the practitioners.

5. A registered practitioner called upon *in an emergency* to visit a patient, who under ordinary circumstances would have been attended by another practitioner, should when the emergency is provided for retire in favour of the ordinary medical attendant, but shall be entitled to charge the patient for his services.

6. When a registered practitioner is consulted by a patient whom he has proviously attended during the course of the same illness at the request of another practitioner, he may propose a consultation with the said practitioner; but should decline to take charge of the case.

7. There is no rule that medical practitioners should not charge one another for their services, but it should be regarded as a pleasure and privilege to give one's services freely to a professional brother his wife and children, or to a medical student.

8. A medical practitioner in justified in refusing to continue attendance on a case—

(*a*) where he finds another practitioner is in attendance;
(*b*) where other remedies than those prescribed by him are being used;
(*c*) where his remedies are refused;
(*d*) where he is convinced the illness is an imposture, and he is being made a party to false pretence;
(*e*) where the patient persists in the abuse of opium, alcohol, chloral, or similar poisons.

He is not in any way bound to give up a case because he cannot cure it, so long as the patient desires his services.

9. A medical practitioner is under an obligation to his patient to preserve his secrets, and in legal matters should, except with patient's consent, answer questions only at the express direction of the judge or magistrate presiding in a court of law.

10. A medical practitioner is not bound to answer questions put to him by policemen, solicitors, vakils or other non-judicial persons.

11. No medical practitioner should volunteer to give evidence in a court of law against any person who has been under his professional care. He should only appear on *subpœna*.

12. Medical officers of health should not visit a patient under the care of a medical practitioner without notice and should not express doubt or dissent with respect to the diagnosis before the patient or his friends. A medical officer of health or sanitary authority ought not to demand a statement of the symptoms upon which a diagnosis of a notifiable disease was based by any medical practitioner.

13. It is the duty of medical practitioners as citizens to assist cordially in carrying out the provisions of the Public Health Acts especially with regard to the notification of diseases so as to enable the public health authorities to take preventive measures to check the spread of epidemics.

C. A. SPRAWSON, COL., I. M. S.
President,
United Provinces Medical Council,
J. P. SANYAL,
Secretary.

March 17, 1929.

Miscellaneous.

The 28th March, 1923

No. 323.—At the meeting of the United Provinces Medical Council, held on the 23rd March 1923, the question of the "Warning note," referred to in the Council notification no. 1037, dated the 4th December, 1922, was reconsidered in the light of the criticisms and opinions which were received from medical practitioners and medical societies. It was resolved that, subject to certain modifications, the "Warning note" should be adopted and published for information. The "Warning note" is accordingly herewith published :—

Warning Note.

The United provinces Medical Council desires to bring to the notice of registered medical practitioners the following statement upon offences and forms of professional misconduct which may be brought before it for disciplinary action in view of the jurisdiction conferred upon it by section 26 (1) of the United Provinces Medical Registration Act III of 1917, namely.—

2. The Council may, upon reference from the Registrar or otherwise, prohibit the entry in, or order the removal from, the register of the name of any medical practitioner—

(*a*) who has been sentenced by a criminal court to imprisonment for an offence indicationg in the opinion of the Council such a defect in character as would render the entry or continuance of his name in the register undesirable, or

(*b*) whom the Council after inquiry (at which an opportunity has been given to him to be heard in his defence and to appear either in person or by counsel, vakil, pleader or attorney, and which may in the discretion of the Council be held *in camera*) has found guilty by a majority of two-thirds of the members present and voting at the meeting of infamous conduct in any professional respect.

3. It must be clearly understood that the instances of offences and of professional misconduct which are given do not constitute, and are not intended to constitute, a complete list of the infamous acts which may be punished by erasure from the register, and that by issuing this notice the Council is in no way precluded from considering and dealing with any form of professional misconduct on the part of registered practitioners (as for example immorality involving the abuse of professional relationship, bringing a false accusation against a brother practitioner under this Act, or taking advantage of their position to defeat the purposes of the provisions of any Act dealing with the possession or sale of any specified poisons or other drugs) which may be brought before it, although it may not appear to come within the scope or precise wording of any of the categories herein set forth. Circumstances may, and do, arise from time to time in relation to which there may occur questions of professional misconduct which do not come within any of these categories. In such instances, as in all others, the Council has to consider and decide upon the facts brought before it.

I.—Certificates, notifications, reports.

4. Registered practitioners are in certain cases bound by law to give. or may be from time to time called upon or requested to give, certificates, notifications, reports and other documents of a kindred character, signed by them in their professional capacity for subsiquent use in courts of justice or for administrative purposes, etc.

Such documents include among others certificates, notifications, reports—

(*a*) Under the Act relating to lunacy.
(*b*) Under the Factory Act.

(*c*) Under the Acts and Orders of Government relating to the notification of infectious diseases, e. g., plague.

(*d*) Under the Cantonment Act.

(*e*) In connection with sick benefit, insurance and friendly societies.

(*f*) For procuring the issue of passports.

(*g*) For excusing attendance in course of justice, in the public services, in public offices or in ordinary employment.

(*h*) In connection with naval and military matters.

(*i*) In connection with medico-legal examinations and reports.

Any registered practitioner who shall be shown to have signed or given under his name and authority any such certificate, notification report or document of a kindred character, which is untrue, misleading or improper, whether relating to the several matters above specified or otherwise, is liable to have his name erased from the register.

II.—Advertising and canvassing.

The practices of (*a*) advertising by a registered medical practitioner with a view to his own gain, particularly if depreciatory of other practitioners or of sanctioning such advertising, (*b*) employing or sanctioning the employment of agents or canvassers for the purpose of procuring patients, and (*c*) associating with or accepting employment under any association which practices canvassing or advertising for the purpose of procuring patients, are, in the opinion of the Council, contrary to the public interest and discreditable to the profession of medicine, and any registered medical practitioner resorting to any of such practices renders himself liable in proof of the facts to have his name erased from the medical register.

IV.—Association with unqualified persons.

Any registered practitioner who, either by administering anaesthetics or otherwise, assists an unqualified person to perform an operation upon any other person in respect of matters requiring professional discretion or skill will be liable on proof of the fact to have his name erased from the register.

A. W. R. COCHRANE,, M. B., F. R. C. S., LT.-COL., I. M. S.,
President, United Provinces Medical Council.

Programme of the Darbar
To be Held by
His Excellency the Governor
At
Government House, Patna, on the
25th November 1936.

His Excellency the Governor of Bihar will hold a Darbar at Government House, Patna, on Wednesday, the 25th November 1936, at 10 A. M., for the purpose of presenting to Mr. Henry Carlos Prior, C. I. E., I. C. S., the badge of a Companion of the Most Eminent Order of the Indian Empire to Mr. Joseph Francis Gantzer, M. B. E., the badge of a Member of the Most Excellent Order of the British Empire, to Mr. Abdul Sattar Haji Suleman Naviwala the Kaisar-i-Hind Medal of the Second Class, to Maulvi Shaikh Abdul Ghafoor, the Imperial Service Medal and to Nawab Abdul Wahab Khan, the *sanad* of the title of Nawab.

2. The *sanads* and badges of the titles conferred upon the following gentlemen, as personal distinctions, by His Excellency the Viceroy and Governor-General, will also be delivered to them:—

1. Vaidyaratna Pandit Brijbiharl Chaube and others

3. All gentlemen invited to attend will assemble before 9-30 A. M.

4. Indian noblemen and title-holders, in order of presidence, and members of the Bihar Legislative Council will be seated to the right of the dais, as will also the Hon'ble Judges of the Patna High Court, the Members of the Council of His Excellency the Governor the Ministers and the President, Bihar Legislative Council, while other high officials will be seated on the left according to their rank.

5. Five minutes before the hour fixed for the Darbar, the Hon'ble Judges of the High Court will enter the Darbar Hall in Procession in their robes escorted by the Chief Secretary. As the procession enters the Hall, all present will rise and remain standing until the Hon'ble Judges are seated.

6. A Guard-of-Honour of the 1st Battalion, the Duke of Cornwall's Light Infantry, with Colours and Band, will be drawn up outside the Darbar Hall and will give a Royal Salute to His Excellency

the Governor on his arrival. A salute of 17 guns will be fired and His Excellency will inspect the Guard.

7. After His Excellency has taken his seat, the Chief Secretary will ask permission to begin the business of the Darbar.

8. Vaidyaratna Pandit Brijbihaii Chaube, robed in his *khilat,* will then be escorted from the robing room by the Under-Secretary in the Political Department, who will conduct him to the dais, where the Chief Secretary will present him to His Excellency. His Excellency and all present will remain seated. The Chief Secretary will read out the *sanad* conferring the title of Vaidyaratna and hand it to His Excellency who, after making a short address, will present it to the Vidyaratna who will then be conducted to his seat.

9. The same ceremonial will be observed in the case of the remaining recipients of titles.

10. The Private Secretary will then conduct the Maharajadhiraj Maharajas Bahadur, Maharajas, Rajas Bahadur, Nawabs and Rajas, who may be present at the Darbar, to the front of the dais to receive *itr* and *pan* from His Excellency. The Chief Secretary will distribute *itr* and *pan* to the Indian recipients of honours and other title-holders. The Under-Secretary and his assistants will distribute *itr* and *pan* to the other gentlemen present.

11. Indian officers of the Army present will then be conducted to the dais where they will be presented to His Excellency by the Officer Commanding, Dinapore.

12. When these proceedings are concluded, the Chief Secretary will report the fact and obtain permission of His Excellency to close the Darbar. All present will rise from their seats. The procession will then be reformed in the same order as before and leave the Darbar Hall, followed by the Hon'ble Judges of the High Court in procession.

13. The Guard-of-Honour will give a Royal Salute when his Excellency emerges from the Darbar Hall and a salute of seventeen guns will be fired.

14. All present will remain standing till the processions have left the Darbar Hall.

001546

अखिलभारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलनीय-
षड्विंशतितमाधिवेशनस्य
मनोनीत-सभापतेः
वैद्यशास्त्री-प्राणाचार्य नारायणशंकर देवशंकर महोदयस्य
संक्षिप्त-जीवन-वृत्तान्तः ।

अस्माकं चरितनायकानां प्राणाचार्य-महोदयानां जन्म १९३० मिते वैक्रमाब्दे अहमदाबाद नगरे समभूत् । एतेषां पूज्याः पितृचरणाः श्रीमन्तो देवशङ्करशास्त्रिमहोदयाः प्राचीनप्रणाली विद्वांस आसन् । इमे प्रथममेव व्युत्पत्तिदायिन्या प्राचीनाध्ययन-सरण्या संस्कृत ग्रन्थानधीत्य व्याकरण-साहित्येषु च प्रौढतरां व्युत्पत्तिं सम्पाद्य तदानींतने सुप्रसिद्धे संस्कृतविद्याकेन्द्रभूते जयपुरनगरे महाकविप्रवरेभ्यः, भैषज्यरत्नावली-जयपुरविलासादिविविधायुर्वेद-काव्यादिग्रन्थ विधायकेभ्यः पूज्यप्रवर श्रीश्रीकृष्णरामराजवैद्य-महोदयेभ्यः राजकीय-संस्कृतायुर्वेद-महाविद्यालये निखिलमपि सक्रियमायुर्वेदाध्ययनं विहितवन्तः । तदनन्तरं प्रतिनिवृत्ताः वटोदरानगरस्थ-सुप्रसिद्ध-राजकीय-परीक्षा सुव्याकरण-साहित्य-धर्मशास्त्र-आयुर्वेदेति चतुर्षु विषयेषु क्रमशः परीक्षामुत्तीर्याऽपि व्याकरणविषये प्रौढिमानमासादयितुं वाराणस्यां राजकीय-संस्कृत-प्रधान-विद्यालये वर्षद्वयं यावत् महाभाष्याध्ययनं सकलमप्यचीकुर्वन् ।

एवं ४ वर्षेषु निखिलामपि साहाय्यसामग्रीमायुर्वेदस्य यथानियमं यथाशास्त्रञ्च सुसम्पाद्य श्रीमद्भिः प्राणाचार्यैः भूवाणाङ्कविधुमिते (१९५१) वैक्रमाब्दे (१८९५ मिते च खीष्टाब्दे) गुर्जरप्रान्तीय महानगरे श्रीनगरे (अहमदाबादनगरे) आयुर्वेदचिकित्सालयस्तदङ्गभूतो विद्यालयश्च संस्थापितः । अयं च विद्यालय "आयुवद-पाठशाला" नाम्ना संस्थितः साम्प्रतं सुव्यवस्थितो वरीवर्त्ति । विगतवत्सरे अस्याः स्थायित्व-सम्पादनाय राजकीयनियमानुसारं राजेष्टताऽपि (गवर्नमेन्ट रजिस्टर्ड) विहिता । तस्या व्यवस्थायै 'ट्रस्टडीड' पत्रमपि कृतम् । सञ्चालनाय व्यवस्थापका निर्णीताः, प्रचुरतरं धनमप्यत्र प्रदत्तम् । साम्प्रतमस्यां पाठशालायां त्रिंशत् छात्रा अध्ययनं कुर्वन्ति । अत्र पाठशालायां निखिलभारतवर्षीयायुर्वेद-विद्यापीठ-नियमावलीमनुसृत्य पाठ्यक्रमो विहितः । अध्यायनार्थञ्च नियुक्ता अध्यापका जयपुर-राजकीय-परीक्षा-समुत्तीर्णाः सन्ति ।

एतदतिरिक्तमन्येऽप्यध्यापकास्तत्राध्यापनं कुर्वन्ति । यथाः—वैद्यरत्नम् श्रीमाधवप्रसाद शास्त्री, श्रीशम्भुप्रसाद वैद्यशास्त्री, डा० बालकृष्ण महाशयश्चेति । अस्याः सञ्चालन-समितेः प्रधानव्यवस्थापकाः प्राणाचार्या एव सन्ति । धनसङ्ग्रहायापि समितिरेका संस्थापिता । साम्प्रतं विंशतिसहस्रं रूप्यकाणां सम्पन्नम् । प्राणाचार्याणामयमभिलाषो विद्यते यत् सति धनवाहुल्ये विद्यालयोऽयं महाविद्यालयत्वेन परिणतः स्यात् । एवमायुर्वेदप्रचारे प्राणाचार्याणां महान् प्रणयो जाजागरीति ।

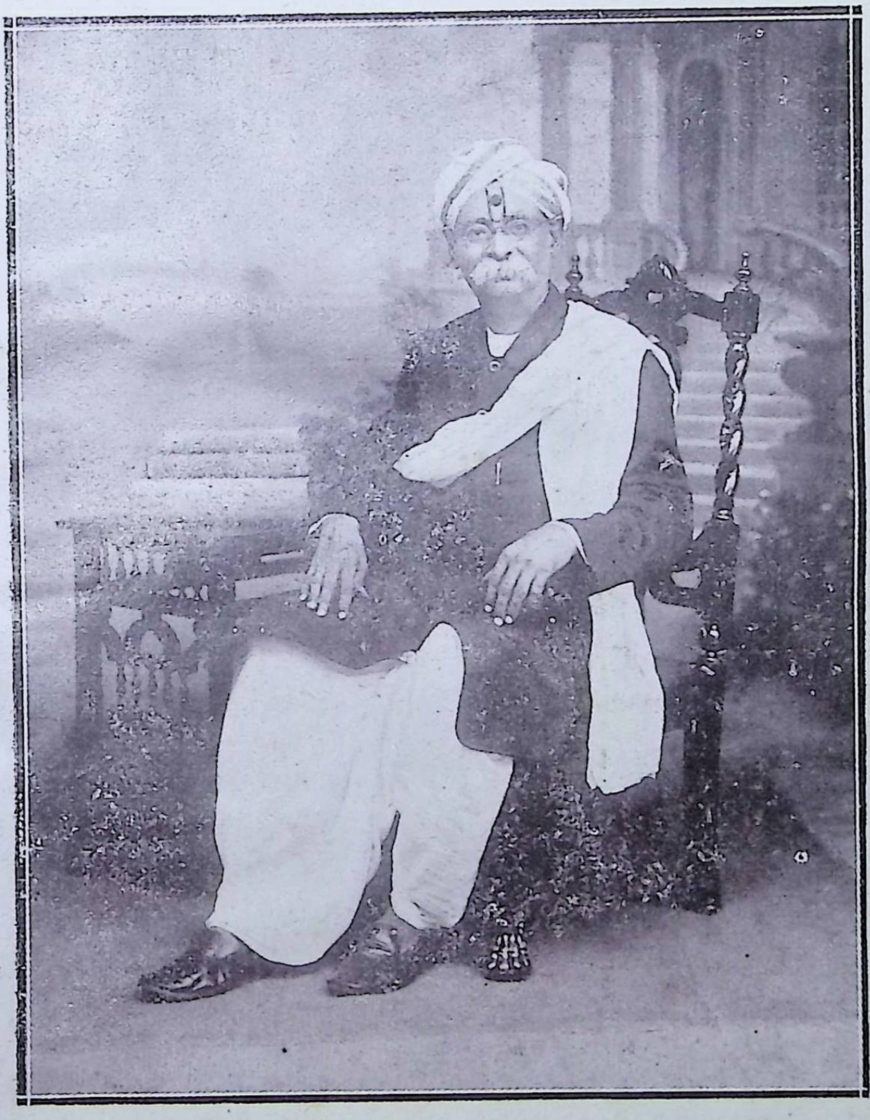

श्रीयुत् प्राणाचार्य वैद्यशास्त्री पं. नारायणशंकर देवशंकरशास्त्री,
अहमदाबाद,
अध्यक्ष, कच्छकाठियावाडगुजरात प्रान्तीय २ वैद्य संमेलन, बम्बई (सन १९२६ ई.)

प्राणाचार्य नारायणशंकर देवशंकर महोदयस्य संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्तः

प्राणाचार्यैश्चिकित्सा विषयेऽपि पर प्रावीण्यं यशश्च समुपलब्धम् । श्रीनगरस्थानामन्येषाञ्च गुर्जरप्रान्तीयानां महतां गृहस्थानां धनिकानां राज्ञां महाराजानाञ्च प्रशंसापत्रदर्शनेन ज्ञायते यत् चिकित्सायां श्रीमद्भिर्महत्साफल्यमनुभूतम् ।

सार्वजनिक—सेवासु कार्येषु च श्रीमतामेतेषां प्रचुरतर उत्साहः समालोक्यते । अहमदाबाद-मण्डलीय-व्यवस्थापक-संघ (डी० जी० लोकलबोर्ड) संस्थापितानां आयुर्वेदीयौषधालयानां सञ्चालनसमितौ सभापतिपदमेभिरेवालङ्क्रियते । अस्य संघस्य चतुर्दशसंख्यका औषधालयाः प्रचलन्ति । एवं अहमदाबादनगरे सुप्रसिद्धस्य शेठ अम्बालाल-दलपतराम-धर्मार्थायुर्वेदीयौषधालयस्य प्रधानव्यवस्थापका अपि सन्ति ।

आयुर्वेदीय-शिक्षा-संस्थास्वपि महत्वमेतेषां जागर्त्येव । इमे खलु अखिल-भारतीयायुर्वेद-विद्यापीठस्य पाटणनगरस्थ-आयुर्वेद-महाविद्यालयीय—परीक्षाणाम् , वरोदरा-राजकीय दक्षिणापरीक्षासु प्रभुराम-आयुर्वेद-महाविद्यालयस्य च तत्परीक्षासु परीक्षका अपि सन्ति ।

वैद्य-सम्मेलनेषु चैतेषां प्रचुरतरः प्रेमा प्रकटीभवति । कराची-नगरस्थ-महासम्मेलनाधिवेशने स्वास्थ्य-सम्भाषा-परिषदि प्राणाचार्यैः सभापत्यमलङ्कृतमासीत् । तथैव महिशूरनगरे १९३१ तमे सम्वत्सरे सम्मिलिते भारतीयायुर्वेदसम्मेलने रसायन-तद्विद्य-संभाषा-परिषदि सभापतित्वं महत्या योग्यतया संपादितम् ।

गुर्जरप्रान्तीय-वैद्यसंमेलनस्य द्वितीयाधिवेशने १९२६ तमे खिस्ताब्दे प्राणाचार्याः सभापतिपदमलङ्कृतवन्तः । एवं गुजरात-कच्छ-काठियावाड-प्रान्तीय-संमेलनानामपि प्रमुखपदे सांप्रतं विद्यन्त एव । अहमदावादीय—वैद्यसभाया अपि प्रधानपद-स्थिता विद्यन्ते । अखिलभारतीय-वैद्य-महासंमेलनस्य पञ्चविंशतितमे महाधिवेशने स्वागताध्यक्षपदलङ्कुर्वाणैरेभिः संमेलनस्य महत्साहाय्यं विहितम् । भूयांश्च धनव्ययो विहितः । एवमन्येष्वपि सामाजिक-साहित्य-धार्मिक-कार्यक्षेत्रेषु तेषां सहयोगः समुत्साहः साफल्यञ्च वर्तते ।

सम्प्रति पञ्चविंशतितमे निखिलभारतीयायुर्वेद-महामण्डलस्य महाधिवेशने स्वागतसमितेरध्यक्षपदं स्वीकृत्य महत् कार्यमनुष्ठितम् । एवमेवाहमदावादनगरे समस्तेऽपि गुर्जरकाठियावाड-कच्छप्रान्ते नैतादृशो विद्वान् वैद्यो वरीवर्त्तीति सर्वत्र तत्प्रान्ते विदितचरमेव ।

साम्प्रतं षड्विंशति तमाधिवेशने निर्द्धारितेषु त्रिषु सभापतिनामसु प्राणाचार्य-महोदयानामधिकसम्मत्या सभापतिनिर्वाचन सञ्जातम् ।

एतेषां प्रथमतनयाः वैद्यरत्न-श्रीमाधवप्रसादशुक्लमहोदयाः सन्ति । ते अहमदानगरस्थ म्युनिसिपलबोर्ड-संस्थापिते चिकित्सालये प्रधान-चिकित्सकाः सन्ति ।

भैरवप्रसाद शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

Bhatji
c Library
Delhi-26
002796

* * *